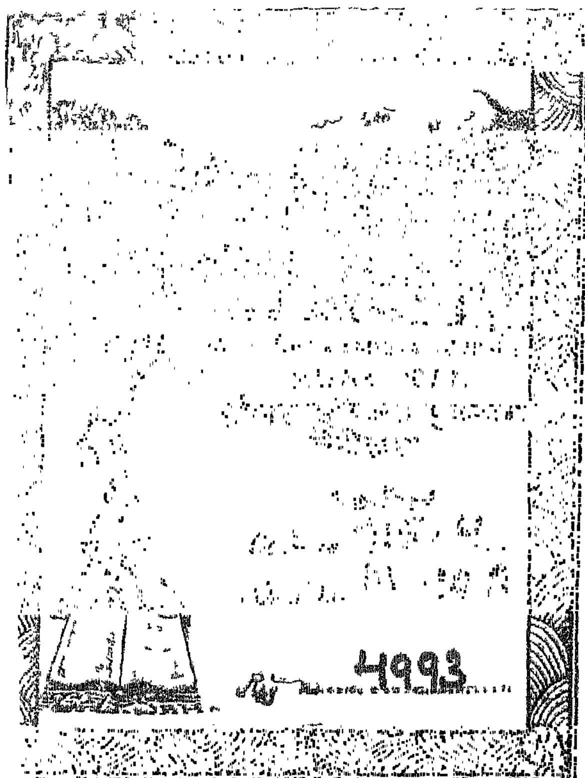

4993

समर्पण

जिनकी अनन्त प्रेरणा, असीम स्नेह एवं सौहार्द्र
के फलस्वरूप इस पुस्तक की रचना संभव
हो सकी है उन्हीं ममतामयी विमला
मामोरिया के कर कमलों में यह
भेंट सस्नेह समर्पित है—

—चतुर्भुज मामोरिया

डा० मामोरिया की अन्य रचनायें :

1. Agricultural Problems of India, Third Edn., 1960.
2. Tribal Demography in India, 1958.
3. Principles of Human Geography, 1958.
4. India's Population Problem (A Geographical Study), 1960.

५. आर्थिक और वाणिज्य भूगोल, द्वितीय परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण, १९६
६. विश्व भूगोल, द्वितीय संस्करण, १९६०.
७. भारत का आर्थिक भूगोल, ;चम संस्करण, १९६०
८. भारत-भूमि, तृतीय संस्करण, १९६०.
९. प्रैक्टीकल ज्यॉग्राफी, भाग १, १९५२.
१०. वही, भाग २, १९५८.
११. भूगोल के भौतिक आधार (प्रेस में)

आधुनिक भारत का बृहत् भूगोल

[Advanced Geography of Modern India]

लेखक

डा० चतुर्भुज मामोरिया, एम. कॉम., एम. ए. (भूगोल), पी. एच-डी.,

प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, व्यावहारिक अर्थशास्त्र एवं वित्त विभाग,

वाणिज्य परिषद्, महाराणा भूपाल कॉलिज, उदयपुर

एवं

सदस्य, वाणिज्य परिषद्, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रकाशन-विभाग

[illegible] एण्ड सन्स : आगरा

प्रकाशक :

प्रकाशन-विभाग

गयाप्रसाद एण्ड संस

बाँके विलास, सिटी स्टेशन रोड, आगरा

मुख्य विक्रय-केन्द्र :

गयाप्रसाद एण्ड संस, हॉस्पीटल रोड, आगरा
ऑरियंटल पब्लिशर्स, परेड, कानपुर
श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा
पॉपुलर बुक डिपो, चौड़ा रास्ता, जयपुर
लॉयल बुक डिपो, पाटनकर बाजार, ग्वालियर
कैलाश पुस्तक सदन, हमीदिया रोड, भोपाल

पुस्तक का मूल्य :

१८ रुपये

पुस्तक का संस्करण :

दीपावली, १९६०

मुद्रक :

धर्मचन्द्र भार्गव, बी० एस-सी०
अमृत इलैक्ट्रिक प्रेस, आगरा।

दो शब्द

प्रत्येक देशवासी एवं उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों को अपने देश के भौतिक, आर्थिक एवं वाणिज्य और मानव भूगोल सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्यों से परिचित होना आवश्यक है। इस ज्ञानोपार्जन के लिए उच्च स्तर की प्रामाणिक पुस्तकों का होना वाञ्छनीय है। किन्तु दुख का विषय है कि इस विज्ञान की आवश्यकता होते हुए भी कतिपय विद्वानों को छोड़ कर किसी ने भी इस अभाव को पूरा करने का सन्तोषजनक प्रयास नहीं किया है। यदि किसी ने भारत के केवल भौतिक भूगोल पर ही ध्यान केन्द्रित किया है तो किसी ने अनावश्यक रूप से आर्थिक दशाओं को प्रधानता दी है जिससे पुस्तक की विषय रचना एकांगी हो गई है। फलतः भूगोल, अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य के स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों को आवश्यक विषय-सामग्री के एकत्रित करने हेतु इधर-उधर भटकना पड़ता है अथवा अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित पुस्तकों का सहारा लेना पड़ता है। भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण ये पुस्तकें उच्च स्तर की होते हुए भी उनके लिए ग्राह्य नहीं होतीं। विद्यार्थी समुदाय एवं अन्य जिज्ञासुओं के लिए—जो अपने देश सम्बन्धी विभिन्न भौतिक परिस्थितियों और उनका देशवासियों के आर्थिक क्रिया-कलाप पर पड़ने वाले प्रभावों से परिचित होना चाहते हैं तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन प्रकृतिदत्त एवं मानव-सुलभ परिस्थितियों पर भारतीय मानव ने किस प्रकार तथा कहाँ तक विजय प्राप्त की है? नैसर्गिक स्रोतों का किस प्रकार विदोहन किया गया है? एवं देश के आर्थिक और औद्योगिक आयोजन और विकास में उन्होंने किस प्रकार योग-दान दिया है? आदि महत्वपूर्ण बातों को जानना चाहते हैं—उनके लिए ही इस पुस्तक की रचना की गई है। इसकी रचना में—विषय सामग्री को देखते हुए—कितना परिश्रम एवं समय लगा होगा इसका अनुमान विज्ञ पाठक स्वयं ही कर सकते हैं। मैंने केवल प्रयास मात्र किया है कि हिन्दी भारती को एक उच्च कोटि की पुस्तक 'भारत के भूगोल' पर दे सकूँ—इसमें मुझे कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय मैं विद्वानों एवं पाठकों पर छोड़ता हूँ।

पुस्तक को पूर्ण रूप से प्रामाणिक, उच्च स्तरीय एवं विश्वसनीय बनाने हेतु विषय सामग्री का चयन विभिन्न लेखों, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, राज्यकीय प्रकाशनों एवं अन्य उपलब्ध हिन्दी-अंग्रेजी के ग्रन्थों के आधार पर किया गया है लेखक उन सबका हृदय से आभार प्रदर्शन करता है। विषय का प्रतिपादन सरल भाषा में इस ढंग से किया गया है कि साधारण पाठक भी विषय को समझ सकें। पुस्तक में यथा-शक्ति नवीनतम आंकड़े और सूचनायें देने का प्रयास किया गया है जिससे पाठक-वृन्द विभिन्न विकासों की प्रवृत्ति अथवा वर्तमान स्थिति का सही अनुमान लगा सकें। पाठ्य-सामग्री को अत्यधिक लाभदायक एवं ग्राह्य बनाने हेतु अध्यायों का क्रम इस प्रकार रखा गया है कि उनका समन्वय एक दूसरे से हो जाता है और पाठक को एक वैज्ञानिक एवं सरल ढंग से विषय का ज्ञान हो जाता है। भूगोल विषय पर उत्तम पुस्तक वही हो सकती है जिसमें सही एवं चित्ताकर्षक चित्रों और मानचित्रों का भली-भाँति समावेश किया गया हो। इस दृष्टि से यह प्रकाशन लाभदायक सिद्ध होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत की भौतिक अवस्था सम्बन्धी विभिन्न रूपों, जलवायु दशाओं, कृषि, वन, मिट्टी एवं खनिज सम्पत्ति आदि के दिग्दर्शन से लगा कर वृहत् उद्योगों, परिवहन के विभिन्न स्वरूपों, व्यापार एवं भारत के मानव भूगोल सम्बन्धी समस्याओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में केवल यही कहा जा सकता है कि जो कुछ अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा वह सब तो इस पुस्तक में मिलेगा ही, किन्तु जो इसमें मिलेगा वह कहीं नहीं मिलेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी जगत में इस पुस्तक का स्वागत किया जायगा और यह पुस्तक सामाजिक विज्ञानों की वृद्धि में एक ठोस देन होगी।

इस पुस्तक के प्रणयन एवं प्रकाशन में मेरे सुहृदय प्रकाशक श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल ने जिस तत्परता, रुचि और लगन का परिचय दिया है उसके लिए मैं उनका बहुत ही आभारी हूँ। पांडुलिपि एवं मानचित्र आदि की व्यवस्था करने के लिए मुझे जो सहयोग श्री राधेकृष्ण रावत, श्री जानकीलाल व्याती, कुमारी रजनीबाला मामोरिया, श्री रणजीत स्वरूपिया और श्री लक्ष्मणसिंह बोल्या से मिला है वह स्तुत्य है। जिन असंख्य मित्रों की कृपा एवं विद्यार्थी समाज के आग्रह से यह पुस्तक शीघ्र ही समाप्त की जा सकी उसके लिए मैं विशेष ऋणी हूँ। अन्त में मुझे अपनी संगिनी श्रीमती विमला से जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसे शब्दों में व्यक्त करना कठिन है, केवल हृदय ही अनुभव कर सकता है।

पुस्तक को आगामी संस्करण में अधिक उपादेय बनाने हेतु जो भी सुझाव मिलेंगे उनका सहर्ष स्वागत किया जायगा।

किमधिकम्—

चतुर्भुज मामोरिया

मामोरिया कुटीर,
उदयपुर

प्राक्कथन

मुझको डा० सी० बी० मामोरिया के 'भारत का भूगोल' नामक पुस्तक के प्रकाशन का स्वागत करते हुये अत्यधिक हर्ष होता है। लेखक ने आर्थिक भूगोल से सम्बन्धित अनेक विषयों की पुस्तकों का प्रकाशन करवा लिया है अतः उनका परिचय देने की आवश्यकता नहीं है किन्तु प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिये वे इसलिये अत्यधिक बधाई के पात्र हैं कि अभी तक हिन्दी में भारत के भूगोल पर इतनी महत्वपूर्ण एवं विस्तृत पुस्तक का प्रकाशन नहीं हुआ है। पुस्तक का कलेवर ६०० पृष्ठों से अधिक का है और मैं कह सकता हूँ कि इससे उच्चतर शिक्षा को प्राप्त करने वाले विद्यार्थी लाभान्वित होंगे और हिन्दी-साहित्य की भी अभिवृद्धि होगी। पुस्तक में भूगर्भ तत्वों से लेकर अर्थशास्त्रीय तथा मानवीय सभी तत्वों को अत्यन्त व्यापकता किन्तु सरलता से प्रस्तुत किया गया है अस्तु इसको भारतीय भूगोल के ज्ञान का बृहत-कोष (Encyclopedia) कहा जा सकता है। भूगर्भ सम्बन्धी तत्वों के इसमें सूक्ष्म, किन्तु प्राकृतिक भूगोल को ध्यान में रखते हुये अत्यन्त स्पष्ट एवं सुबोध ढंग से लिखा गया है। देश की खनिज सम्पदा, जलवायु, मिट्टी आदि तथा विकास योजनाओं को बहुत ही सुरुचिपूर्ण ढंग से लिखा गया है। कृषि, वन, धातु एवं अन्य उद्योगों का अध्ययन अत्यन्त व्यापक ढंग से किया गया है। साथ ही इसमें मनुष्यों एवं जनसंख्या की समस्याओं का इतने रोचक ढंग से वर्णन तथा व्याख्या की गई है जो संभवतः अन्यत्र नहीं मिलेगी। पुस्तक नवीनतम आँकड़ों और अनेक चित्रों तथा मानचित्रों से सुसज्जित है। इसलिये इसमें कोई अन्योक्ति नहीं होगी, यदि मैं कहूँ की उच्चतर शिक्षार्थियों को इस एक ही पुस्तक में सारी सामग्री सुविधा से प्राप्त हो जावेगी। भारत के भूगोल पर इस प्रकार की अधिकार-पूर्ण एवं विस्तृत पुस्तक के प्रकाशन से भारत ज्ञान में व्यापक वृद्धि हुई है, इस पुस्तक से केवल पाठन का स्तर ही नहीं बढ़ेगा अपितु शीघ्र ही इसको राष्ट्रीय साहित्य में उपयुक्त स्थान प्राप्त होगा।

मैं लेखक को फिर एक बार अपना साधुवाद प्रस्तुत करता हूँ कि उन्होंने इस महत्वपूर्ण पुस्तक को प्रकाशित किया, क्योंकि मैं जानता हूँ कि शीघ्र ही यह पुस्तक हिन्दी साहित्य में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करेगी।

उदयपुर,
१२ अक्टूबर, १६६०

डा० के० पी० रोड़े
एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (ज्यूरिच)
अध्यक्ष, भूगर्भशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय

विषय-सूची

सामान्य-परिचय

भारत का क्षेत्रफल १२.५९ लाख वर्ग मील है, जबकि सम्पूर्ण विश्व का १३५.१ लाख वर्ग मील। अतएव स्पष्ट है कि भारत का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का लगभग २.५% ही है। क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से भारत की गणना विश्व के बहुत बड़े देशों में की जाती है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह अफ्रीका महाद्वीप का लगभग १/९ है। यदि रूस को छोड़ दें तो लगभग यूरोप के बराबर है। भारत का छोटे से छोटा राज्य भी यूरोप के अनेक देशों से बड़ा ही है। भारत का क्षेत्रफल जापान के क्षेत्रफल का लगभग ८ गुना, इंगलैंड का १३ गुना तथा कनाडा का १/३ और रूस का १/७वां भाग है।[1] किन्तु भारत के क्षेत्रफल के सम्बन्ध में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस देश का लगभग समस्त भू भाग मानव उपयोग में ले लिया गया है जबकि अन्य देशों में यह बात नहीं। रूस और कनाडा के अधिकांश भाग में बर्फ जमी रहती है, आस्ट्रेलिया में अधिकांश भूमि मरुस्थल है तथा ब्राजील के बड़े भाग पर उष्ण कटिबन्धीय वनों की अधिकता है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में भी लगभग ११ लाख वर्ग मील भूमि में पश्चिमी भागों में मरुस्थल स्थित है। अतः इन देशों में कहीं पहाड़ी क्षेत्रों की अधिकता और कहीं वन प्रदेशों और मरुभूमियों के कारण अधिकांश भूमि मनुष्य के उपयोग में नहीं लाई जा सकती है।

जनसंख्या की दृष्टि से भी भारत एक बड़ा देश है। यद्यपि हमारा क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का केवल २.५% ही है किन्तु यहां की जनसंख्या सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या की १६ प्रतिशत है। इससे भारत की घनी आबादी का भी अनुमान लगाया जा सकता है। चीन के अतिरिक्त भारत की जनसंख्या सबसे अधिक है। भारत की जनसंख्या उत्तरी और दक्षिणी अमरीका की सम्मिलित जनसंख्या के बराबर, अफ्रीका की जनसंख्या की लगभग आधी, और आस्ट्रेलिया की ४४ प्रतिशत है। यह रूस की १.८ गुनी, सं० राज्य अमरीका की २.४ गुनी, और इंगलैंड की ७ गुनी है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि विश्व के प्रत्येक १३ व्यक्तियों में से २ व्यक्ति भारतवासी हैं। १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या ३६.१ करोड़ थी। १९५९ में यह ४०.२ करोड़ थी। प्रतिवर्ष १.८ प्रतिशत की दर से जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, जबकि विश्व की वृद्धि का औसत केवल १.६ प्रतिशत है।[2]

उत्तर से दक्षिण तक देश का अधिक विस्तार होने के कारण यहां न केवल भौतिक अवस्था में ही वरन् जलवायु में भी बड़ी भिन्नता पाई जाती है। एक ओर उत्तर में गगनचुम्बी हिमाच्छादित पर्वत है तो दूसरी ओर उसके दक्षिण में सतलज-गंगा का विशालकाय उपजाऊ मैदान तथा पश्चिम में गर्म और शुष्क मरुस्थल और दकन के पठार पर यत्र-तत्र टूटी और बिखरी हुई गोल तथा चपटे सिरे वाली पहाड़ियाँ—जिन पर वनस्पति का प्रायः अभाव पाया जाता है और अकाल-ग्रस्त क्षेत्र जिनमें जल प्राप्ति के लिए हजारों तालाब आदि पाये जाते हैं।

सम्पूर्ण देश पूर्णतः विषुवत् रेखा के उत्तर में स्थित है तथा कर्क रेखा देश को दो असमान भागों में बाँटती है। अतः दक्षिणी भाग गर्म जलवायु वाले और उत्तरी

१. India, 1960, p. 1.
२. Hindustan Year Book, 1960, p. 282.

भाग शीतोष्ण अथवा अर्द्ध-उष्ण जलवायु वाले है। एक ओर हिमालय की हिमाच्छादित चोटियां ध्रुवों के सदृश्य ठण्डी रहती है, वहा दूसरी ओर दक्षिण में प्राय. वर्ष भर ही गरमी रहती है। मैदानी भाग गर्मियो मे गर्म और सर्दियो मे अपेक्षाकृत ठण्डे रहते है। श्री गगानगर मे तापक्रम १२०° फा० तक पहुच जाते है तथा मद्रास मे ये—३२° फा० तक गिर जाते है जबकि अन्य भागो मे तापक्रम उत्तर से दक्षिण की ओर तथा पश्चिम से पूर्व की ओर बढने पर क्रमशः बढते जाते है। थार के मरुस्थल मे वर्ष मे ५" से भी कम वर्षा होती है, वहा चेरापूंजी मे वार्षिक औसत ४२५" का है। सम्भवतः विश्व मे सबसे अधिक वर्षा भारत मे ही होती है।[1]

वार्षिक वर्षा

स्थान	ऊंचाई (फीटो में)	वर्षा (इंचो मे)	विशेष
चेरापूंजी (भारत)	४३०९'	४२८"	अत्यधिक
वैलिले (Waialeale) (हवाई द्वीप)	५०७५'	४००"	वर्षा वाले
सिलोनोरा (ओरगन)		१३१"	स्थान
हैलीवान (मिश्र)		१.३३"	
ग्रीनलैंडरैंच (केलिफोर्निया)		१.४५"	सबसे न्यून
अदन (अरब)		१.८४"	वर्षा वाले
ला सैरेना (चिली)		५.३६"	स्थान

तापक्रम और वर्षा की भिन्नता के फलस्वरूप देश मे अनेक प्रकार का उत्पादन भी होता है। वन प्रदेशों में अतुलित वनस्पति पाई जाती है। प्राय: ४,००० किस्म के वृक्ष मिलते है किन्तु उपयोग अभी केवल २५० किस्मो का ही किया जा सका है। भारत के वन प्रदेशो मे सम्भवत: विश्व मे पाई जाने वाली सभी प्रकार की वनस्पतियां मिलती हैं—उष्ण कटिबन्धीय से लगा कर शीत कटिबन्धीय तक—किन्तु देश की आवश्यकता के अनुरूप वन प्रदेशो का क्षेत्रफल केवल २१ प्रतिशत ही है जो पर्याप्त नहीं कहा जा सकता है। जहाँ प्रति व्यक्ति पीछे रूस मे ३.५ हैक्टेअर भूमि पर, संयुक्त राज्य में १.८ हैक्टेअर पर वन पाये जाते है, वहाँ भारत मे ये केवल ०.२ हैक्टेअर पर ही फैले हैं[2]। कम से कम ३३ प्रतिशत भाग पर वनो का होना वाछनीय माना गया है।

भारत में प्राय: सभी प्रकार की फसलें और फल आदि पैदा किये जाते हैं। उष्ण कटिबन्धीय उपज के अन्तर्गत चावल, चाय, कहवा, गन्ना, जूट, मसाले, रबड़, केला, अनन्नास आदि, अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय उपजो में नील, तम्बाकू, अफीम तथा कपास और आम—और शीतोष्ण कटिबन्धीय उपजों में गेहूँ, जौ, दालें, आलू, अलसी, मकई, सेव, नाशपाती आदि पैदा की जाती है।

भारत में विश्व के उत्पादन का $\frac{1}{3}$ चावल उत्पन्न किया जाता है। तिलहन, चाय, गन्ना और तम्बाकू के उत्पादन मे भारत का स्थान सर्व प्रथम है। अमरीका के पश्चात् कपास उत्पादन में और पाकिस्तान के बाद जूट उत्पादन में भारत का स्थान प्रथम है। विश्व में सबसे अधिक लाख भी यहीं पैदा होती है।

---

१. Blair, T. A., *Weather Elements*, pp, 295-6.
२. India, 1960, p, 254.

सिंचाई में भी भारत का स्थान अग्रगण्य है। यहां ५.५ करोड़ एकड़ भूमि पर सिंचाई की जाती है और ३२ करोड़ एकड़ भूमि पर खेती। अर्थात् १७ प्रतिशत भाग पर सिंचाई उपलब्ध है जबकि मिस्र में ७० प्रतिशत पर, जापान में ४८ प्रतिशत, चीन में ४० प्रतिशत, इराक में २० प्रतिशत और पाकिस्तान में ८० प्रतिशत भाग पर सिंचाई होती है। किन्तु विश्व में सबसे अधिक सिंचाई का क्षेत्रफल भारत में ही है जहां लगभग ८० हजार मील लम्बी नहरें है।

विश्व की लगभग ३० प्रतिशत गायें और ८४ प्रतिशत बैल भारत में पाये जाते हैं किन्तु इतना होने पर भी दूध का उत्पादन प्रति गाय पीछे केवल ४१३ पौंड वार्षिक है। कुल उत्पादन की दृष्टि से भारत का स्थान दूसरा है। यहाँ ब्रिटेन का ४ गुना, डेनमार्क का ५ गुना, आस्ट्रेलिया का ६ गुना, और न्यूजीलैंड का ७ गुना दूध पैदा किया जाता है।[1]

खनिज पदार्थों की दृष्टि से भारत धनी ही कहा जा सकता है क्योंकि किसी ऊँची सभ्यता वाले देश को जिन-जिन खनिज पदार्थों की आवश्यकता होती है, वे सभी यहां वर्तमान है। रूस को छोड़ कर विश्व में मैंगनीज पैदा करने वाले देशों में भारत का स्थान दूसरा है। अभ्रक इलेमेनाइट, जिरकन और मोनेजाइट उत्पादन में तो भारत का एकाधिकार ही है किन्तु टिन, सोना, सीसा, जस्ता, प्लेटीनम, पेट्रोलियम आदि खनिजों में यह दरिद्र है। शक्ति के साधनों की उपलब्धता में भारत की स्थिति नगण्य ही है किन्तु सम्भावित जल विद्युत शक्ति में विश्व के देशों में इसका स्थान रूस और कनाडा के बाद है। यहां सभी नदियों में लगभग ४१० लाख किलोवाट विद्युत शक्ति होने का अनुमान है।

निम्न तालिका से स्पष्ट होगा कि भारत में विश्व में प्राप्त किये गये खनिज पदार्थों का कितना प्रतिशत मिलता है :—

कोयला	१.० प्रतिशत	तांबा	०.४ प्रतिशत
मिट्टी का तेल	०.१ प्र० श०	सोना	०.६ प्र० श०
लोहा	१.८ प्र० श०	अभ्रक	४८.० प्र० श०
मैंगनीज	१५.० प्र० श०	नमक	०.६ प्र० श०
सज्जीखार	०.३४ प्र० श०		

कृषि भारत का प्रमुख उद्योग है, जिसमें ७० प्रतिशत जनसंख्या लगी हुई है जबकि अन्य देशों में कृषि पर आधारित जनसंख्या का प्रतिशत इससे बहुत कम है। इंगलैंड में ७ प्रतिशत, स० राज्य अमरीका में १० प्र० श०, फ्रांस में २६ प्र० श०, जापान में ४६ प्र० श०, बेल्जियम में १३ प्र० श०, नीदरलैंड्स में २२ प्र० श० और प० जर्मनी में १८ प्र० श० है। स्पष्ट है कि इन देशों की तुलना में भारत में अभी तक औद्योगिक विकास पूरी तरह नहीं हो पाया है और इसीलिए प्रति व्यक्ति पीछे औसत आय भी बहुत ही कम है। एक भारतवासी की औसत आय केवल २६४ रु० है जबकि एक जापानी की १,२०० रु०, न्यूजीलैंडवासी की ४,६८८ रु०, एक आस्ट्रेलियावासी की ५,०२१ रु०, अंग्रेज की ४,७११ रु०, कनाडावासी की ७,११२ रु० और अमरीकी की १०,९११ रु० है। इससे प्रतीत होता है कि औसत भारतवासी दरिद्र है तथा उसके रहन-सहन का स्तर बहुत ही नीचा है।

१. Wright, N. C., Report on the Development of Cattle and Dairy Industry in India, p. 1.

सूती वस्त्र उद्योग में भारत का स्थान चौथा है जबकि जूट वस्त्र उत्पादन और गन्ने की शक्कर के निर्माण में वह विश्व में अग्रगण्य है। उत्तम प्रकार का स्टील भी यहाँ बनाया जाता है लेकिन सं० रा० अमरीका, इंगलैंड, जर्मनी आदि देशों की तुलना में इसका उत्पादन बहुत ही कम है। पूँजीगत वस्तुओं के लिए अभी भी भारत को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। खाद्यान्न भी प्रति वर्ष अधिक मात्रा में आयात करने पड़ते हैं।

यातायात के साधनों की दृष्टि से भारत की स्थिति बहुत ही निराशाजनक है। यद्यपि यहाँ प्राचीनतम वाहनों से लगा कर नवीनतम साधन उपयोग में लाये जाते हैं किन्तु देश की मांग की तुलना में ये बहुत ही अपर्याप्त एवं अविकसित हैं। मरुस्थलों में परिवहन का मुख्य साधन ऊंट, हिमालय में याक और पहाड़ी बकरियाँ, सतलज-गंगा के मैदान में बैलगाड़ियाँ एवं मोटर बसें, रेल मार्ग आदि तथा पश्चिमी एवं पूर्वी तटों में नावें ही यातायात के एकमात्र उपलब्ध साधन हैं। बड़े औद्योगिक नगर प्राय: सभी वायु मार्गों से सम्बन्धित हैं किन्तु अभी भी देश के अधिकांश भागों में मार्गों का अभाव ही है।

नीचे की तालिका में परिवहन की दृष्टि से विश्व में भारत की क्या स्थिति है, यह बताया गया है :—

	सड़कें प्रति वर्ग मील क्षेत्र फल	प्रति एक लाख जन संख्या पीछे	मोटरें प्रति १ लाख जन संख्या पीछे	पोत शक्ति (ग्रास रजिस्टर्ड टन)	रेल मार्गों की लंबाई
ब्रिटेन	३.२४	३८४	६,६००	२०७.६ लाख	१९,१५१ मील
फ्रांस	३.०३	१,५०२	१,४००	४५.३ लाख	२५,६०० मील
सं० रा० अमरीका	१.००	१,८३४	३८,०००	२५२.९ लाख	२२४,८१६ मील
भारत	०.२५	८२	८९	७.५ लाख	३४,७३५ मील

भारत के प्राय: सभी भागों में एक ही संस्कृति पाई जाती है, यद्यपि यहाँ विभिन्न धर्मों और जातियों का आधिक्य है। आदि वासियों से लगाकर पाश्चात्य सभ्यता में पूर्ण निवासी यहाँ मिलेंगे। हिन्दू, जैन, बौद्ध, अग्निपूजक, मुस्लिम, सिक्ख और ईसाई धर्म सभी का यहाँ मेल पाया जाता है। यद्यपि इनके अनुयायियों में धार्मिक-भिन्नता है किन्तु अन्तत: संस्कृति सभी की एक ही है। भाषाओं और वेषभूषा में भी बड़ा अन्तर मिलता है। लगभग ७२० भाषायें व्यवहृत की जाती हैं जिनमें से १४ को संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त है और जो देश के ९१% मनुष्यों द्वारा बोली जाती हैं। कहा जाता है कि प्रति १५० मील बाद भाषाओं, रहन-सहन एवं रीति रिवाजों में अन्तर हो जाता है जो एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने पर पूर्णत: परिलक्षित होता है। इसी कारण जहाँ एक ओर सिक्खों के गुरुद्वारे, मुस्लिमों की मस्जिदें और मकबरे तथा ईसाइयों के गिरजाघर मिलते हैं वहाँ प्राय: सभी गाँवों व नगरों में हिन्दुओं के असंख्य मंदिर एवं धार्मिक स्थान भी मिलते हैं। वास्तव में भारतवासियों

का जीवन धर्म द्वारा बड़ी सीमा तक प्रभावित है। शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार मठ—उत्तर में बद्रीनाथ, पूर्व में जगन्नाथ, पश्चिम में द्वारिका और दक्षिण में रामेश्वरम्—भारत की हिंदू संस्कृति के प्रतीक हैं जिनके दर्शन करने आज भी लाखों मनुष्य जाते हैं। विश्व के दो प्रधान धर्मों—हिन्दू और बौद्ध—का जन्म स्थान होने का गौरव भी भारत को ही प्राप्त है।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि भारत जैसे विशाल देश में भौतिक संरचना, जलवायु और वनस्पति में अंतर होने के कारण एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में होने वाली उपज, पशु-पक्षी और मानव के रहन-सहन, वेष-भूषा, खान-पान एवं रीति रिवाज आदि में अत्यधिक विषमता पाई जाती है किंतु, सभी एक विशेष संस्कृति से बँधे हुए हैं। वास्तव में भारत एक बड़ा देश है, जादू की पिटारी है, रंग बिरंगे पशु पक्षियों का पिंजड़ा है तथा प्रकृति और पुरुष का अजायबघर है जिसकी समता विश्व के किसी अन्य देश से करना असंभव है।

कुछ भूगोलवेत्ताओं ने भारत को महाद्वीप या उप-महाद्वीप कहा है। उनके इस कथन के मुख्य आधार निम्नांकित हैं—

(१) भारत का क्षेत्रफल बहुत बड़ा है—विश्व का लगभग ३ प्रतिशत।

(२) भारत की जनसंख्या भी अधिक है विश्व की लगभग १६ प्रतिशत।

(३) *भारत और पाकिस्तान मिलकर एक ऐसी प्राकृतिक सीमा से घिरे हुए* हैं कि जिसके कारण प्राचीन काल में इनका सम्पर्क अन्य देशों से स्थलीय मार्गों के कारण कम हो सका।

(४) भारत के भीतर भी भौतिक परिस्थितियों संबंधी अनेक अवरोध (barriers) पाये जाते हैं—यथा पहाड़, पठार, नदियाँ, मरुस्थल, बीहड़ और जंगल आदि—जिनके फलस्वरूप उत्तर और दक्षिण तथा पश्चिम और पूर्व के बीच निवासियों की भाषाओं, बोलियों, वेश भूषा, खान-पान एवं रहन-सहन में भारी अन्तर पाया जाता है।

इन भूगोल वेत्ताओं के अनुसार भारत में पहले कभी भी राजनीतिक एकता नहीं रही। समूचे देश का नाम भी एक नहीं रहा। उत्तरी भारत को आर्यावर्त और दक्षिण भारत दक्षिण पथ कहलाता था और यहां पर विभिन्न संस्कृतियों एवं विरोधी धर्मों का विकास हुआ है।[1]

किन्तु गंभीरतापूर्वक विचार करने पर ज्ञात होता है कि भारत को एक उप-महाद्वीप कहना युक्तिसंगत नहीं है। हमारे ऐसा मानने के निम्न कारण हैं—

(१) विश्व के अनेक देशों का क्षेत्रफल भारत से भी अधिक है। रूस, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, ब्राजील तथा चीन इत्यादि देशों का क्षेत्रफल भारत के क्षेत्रफल से बहुत अधिक है। जब इन देशों को उपमहाद्वीप नहीं माना जाता तो भारत को भी इसी आधार पर उपमहाद्वीप कहना उपयुक्त नहीं।

(२) चीन की जनसंख्या भारत से भी अधिक है। विश्व के कई देशों की जनसंख्या का घनत्व भी भारत से अधिक है।

(३) विश्व के कई अन्य विशाल देशों की सीमा भी प्राकृतिक है और प्राचीन काल में आवागमन के साधनों के अभाव में वे देश भी अन्य देशों के सम्पर्क में नहीं आ सके।

---

१. Spate, O.H.K., India & Pakistan, 1959.

(४) भारत जैसे विशाल देश में अन्तर्राज्यीय अवरोध मिलना स्वाभाविक है। पुराने समय में जब संवाद-वाहन के साधनों की उन्नति आधुनिक ढंग पर नहीं हुई थी तब मनुष्यों के आचार-विचार, रहन-सहन, भाषा, बोली, खान-पान आदि में अन्तर होना भी स्वाभाविक ही था। आज भी ब्रिटेन में इसी प्रकार के अन्तर दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार के अन्तर संयुक्त राज्य अमरीका और रूस में भी मिलते हैं। यहाँ तक कि एक ही परिवार के सदस्यों में भी कई प्रकार की असमानतायें पाई जाती हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय जनसंख्या में असमानताओं का पाया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इसके विपरीत यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो भारत में विभिन्नता होते हुए भी एक मूलभूत एकता (Unity among diversity) पाई जाती है। यह एक भौगोलिक सत्य है कि मानसून का प्रभाव सारे ही देश पर पड़ता है। कृषि पूरे देश का धंधा है और वर्षा न होने पर हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही को बराबर हानि उठानी पड़ती है। दोनों जातियों के कृषि करने के ढंग भी समान हैं। इसके अतिरिक्त, भारत के निवासियों का दृष्टिकोण सदैव से ही आध्यात्मिक (Spiritual) रहा है। विचारों की स्वतन्त्रता के कारण एक ही काल में दो या उससे अधिक विचार धाराओं का होना भी स्वाभाविक है और वह भी पूरे देश में। उदाहरणार्थ बौद्ध, मुस्लिम एवं जैन धर्म का प्रचार भी पूरे भारत में था और अब भी है। शंकराचार्य ने भारत की सीमा पर चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की -- उत्तर में बद्रीनाथ, पूर्व में जगन्नाथ, पश्चिम में द्वारिकापुरी और दक्षिण में रामेश्वरम। अन्य धर्मों के पवित्र स्थल भी देश के कोने-कोने में फैले हुए पाये जाते हैं, जो इस बात को स्पष्ट करते हैं कि भारत में मूलभूत एकता थी और है।

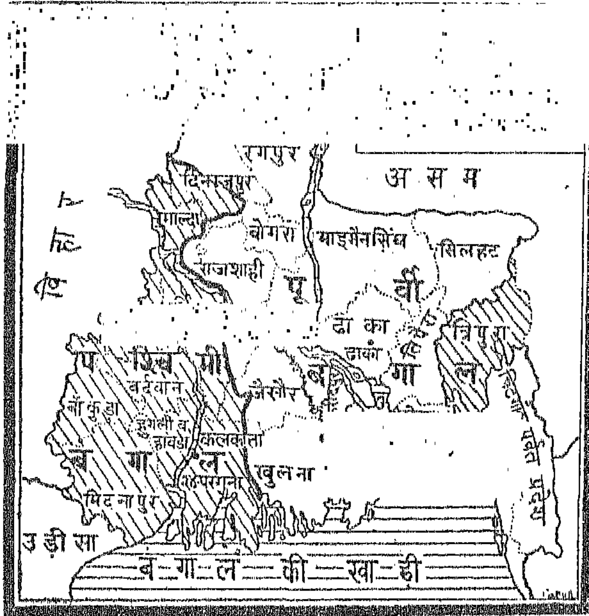
अस्तु, यह कहना उचित ही है कि भारत एक उप-महाद्वीप न होकर एक देश ही है। केवल अंग्रेज भूगोलवेत्ताओं ने ही इस बात पर विशेष जोर दिया कि भारत एक उप-महाद्वीप है। उनके ऐसा मानने का मुख्य कारण ब्रिटिश सरकार की फूट-डालने की नीति (Policy of Divide and Rule) थी जिसके आधार पर ही अन्ततः भारत दो भागों में विभाजित हुआ।

राजनीतिक परिचय (Political Set-up) :

१५ अगस्त १९४७ के पूर्व तक भारत के अंतर्गत वर्तमान पाकिस्तान का भाग भी सम्मिलित किया जाता था। सम्मिलित भारत का क्षेत्रफल १५,७१,१०७ वर्ग मील और जनसंख्या ३९०० लाख थी। किंतु इसके बाद ही भारत के दो राजनीतिक विभाग हो गये। बड़ा भाग भारत और छोटा पाकिस्तान बना। देश का यह विभाजन मुस्लिम लीग के उस प्रस्ताव पर आधारित किया गया कि जिन प्रान्तों में मुस्लिम जनसंख्या का बाहुल्य है वहाँ पूर्ण रूप से मुस्लिम राज्य ही हो। ऐसे प्रान्त जिनमें हिन्दुओं की संख्या कम और मुस्लिमों का आधिक्य था क्रमशः उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त, बलूचिस्तान, पश्चिमी पंजाब, सिंध और पूर्वी बंगाल थे। अस्तु, इन प्रान्तों को मिलाकर पाकिस्तान राज्य की स्थापना की गई। अविभाजित पंजाब और बंगाल को उनकी जनसंख्या के आधार पर ही विभाजित किया गया। इस प्रकार पश्चिमी पंजाब में -- जो अब पाकिस्तान के अन्तर्गत है—गुजरानवाला, लाहौर, शेखूपुरा, सियालकोट, अटक, गुजरात, जेलम, मियाँवाली, रावलपिंडी, शाहपुर, डेरा गाजी खाँ, झंग, लायलपुर, मांटगोमरी, मुल्तान, मुज्जफरगढ़ तथा गुरुदासपुर के भाग सम्मिलित

किये गये। शेष भाग पूर्वी पंजाब के नाम से भारत को मिला अर्थात् पंजाब का अविभाजित ६२% पाकिस्तान को और ३८% भारत को मिला।

इसी तरह बंगाल के दो टुकड़े किये गये। पूर्वी बंगाल के चिटगाँव, नोवाखली,



बंगाल—पूर्वी तथा पश्चिमी

तिपैरा, बाकरगंज, ढाका, मैमनसिंह, जैसोर, पावना, बोगरा, रंगपुर, फरीदपुर, खुलना, राजशाही आदि जिले, असम के सिलहट जिले का कुछ भाग और मालदा, नादिया, दिनाजपुर के कुछ भाग पूर्वी पाकिस्तान के नाम से पाकिस्तान को और शेष पश्चिमी बंगाल भारत को मिला। इस प्रकार अब पश्चिमी पाकिस्तान में उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांत, बलूचिस्तान, सिंध, पश्चिमी पंजाब सम्मिलित हैं तथा पूर्वी पाकिस्तान के अन्तर्गत पूर्वी बंगाल तथा असम का सिलहट जिला है।

विभाजन का प्रभाव भारत की आर्थिक अवस्था पर इस प्रकार पड़ा है :—

विभाजन का प्रभाव (कृषि पर)

	भारत %	पाकिस्तान
क्षेत्रफल (वर्ग मील) में		
जनसंख्या	८२	१८
वन प्रदेश (एकड़ में)	८३	१७
कृषि योग्य भूमि (एकड़)	७९	२१
सिंचित क्षेत्र (एकड़)	६७	३३
खाद्यान्नों का क्षेत्रफल	८१	१९
,, उत्पादन	७५	२५

	भारत %	पाकिस्तान %
गन्ना का क्षेत्रफल	८४	१६
,, उत्पादन	८४	१६
तिलहन का क्षेत्रफल	९४	६
,, उत्पादन	९५	५
कपास का क्षेत्रफल	७८	२२
,, उत्पादन	६०	४०
जूट का क्षेत्रफल	२२	७८
,, उत्पादन	१९	८१
चावल का क्षेत्रफल	७२	२८
,, उत्पादन	६८	३२
गेहूँ का क्षेत्रफल	७०	३०
,, उत्पादन	६६	३४
चाय का क्षेत्रफल	...	...
,, उत्पादन	८५	१५
तम्बाकू का क्षेत्रफल	८३	१७
,, उत्पादन	७८	२२

विभाजन का प्रभाव (उद्योगों पर)

	कारखानें (%)		श्रमिक (%)	
उद्योग	भारत	पाकिस्तान	भारत	पाकिस्तान
सूती वस्त्र	९८	२	९८	२
जूट ,,	१००	—	१००	—
इन्जीनियरिंग	८५	१५	८८	१२
लोहा और इस्पात	१००	—	१००	—
शक्कर	९३	७	९६	४
रासायनिक पदार्थ	९३	७	९५	५
दियासलाई	९७	३	९३	७
कागज	१००	—	१००	—
सीमेंट	१९०	१०	९२	८
कांच	९८	२	९८	२
चमड़ा खालें और	९७	३	९४	५
सभी उद्योग	९१	९	९३	७

भारत-संघ २६ जनवरी सन् १९५० ई० से एक सर्वाधिकार पूर्ण प्रजातंत्रात्मक जनतंत्र (Democratic Republic) घोषित हुआ, और तभी से नवीन भारतीय विधान की सृष्टि भी की गई। इस संविधान में भारत को राज्यों का संघ माना जाता है कोई भी इकाई इससे पृथक् नहीं हो सकती। इस नये विधान के अनुसार भारत को निम्नलिखित इकाइयों अथवा राज्यों में बाँटा गया :—

क श्रेणी के राज्य (Part A States) : ये वे राज्य थे जिनकी शासन-व्यवस्था केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त गवर्नरों द्वारा की जाती थी। इस वर्ग में

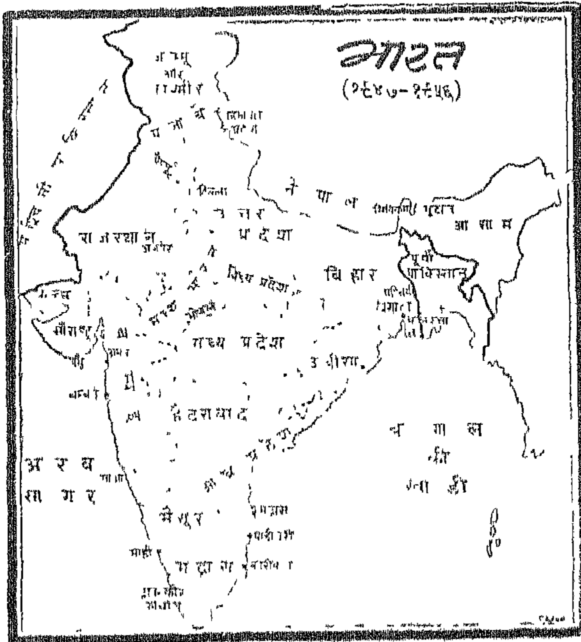
(१) आंध्र, (२) असाम, (३) बिहार, (४) बम्बई, (५) मध्यप्रदेश, (६) मद्रास, (७) उड़ीसा, (८) पूर्वी पंजाब, (९) उत्तर प्रदेश, (१०) पश्चिमी बंगाल आदि सम्मिलित किये गये।

इन प्रान्तों का क्षेत्रफल ७,६६,५३६ वर्गमील और जनसंख्या २७८,८०३,००० थी।

ख श्रेणी के राज्य (Part B States) : पहले जो बहुत से छोटे-छोटे देशी राज्य थे वे या तो पृथक् इकाई के रूप में रखे गये या उन्हें मिला कर संघों का रूप दे दिया गया। ऐसे राज्यों अथवा संघों का शासन राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये राज-प्रमुख द्वारा होता था। ऐसे राज्य निम्नलिखित थे—(१) हैदराबाद, (२) जम्मू व काश्मीर, (३) मध्य भारत, (४) मैसूर, (५) पटियाला और पूर्वी पंजाब संघ, (६) राजस्थान, (७) सौराष्ट्र, (८) ट्रावनकोर कोचीन संघ।

इन सबका क्षेत्रफल ४,२१,७९५ वर्गमील और जनसंख्या ६,७८,८७,००० थी।

ग श्रेणी के राज्य (Part C States) : तीसरी श्रेणी में वे छोटे राज्य थे जिनका शासन प्रत्यक्ष केन्द्र से नियुक्त चीफ कमिश्नरों द्वारा होता था। ऐसे छोटे-छोटे राज्य निम्नलिखित थे— (१) अजमेर, (२) भोपाल, (३) बिलासपुर, (४) कुर्ग, (५) दिल्ली, (६) हिमाचल प्रदेश, (७) विन्ध्य प्रदेश, (८) कच्छ, (९) मनीपुर, (१०) त्रिपुरा।



चित्र—भारत के राजनैतिक विभाग (१९४९-५६)

इन राज्यों का क्षेत्रफल ७५,३५० वर्गमील और जनसंख्या ९९,७१,००० थी।

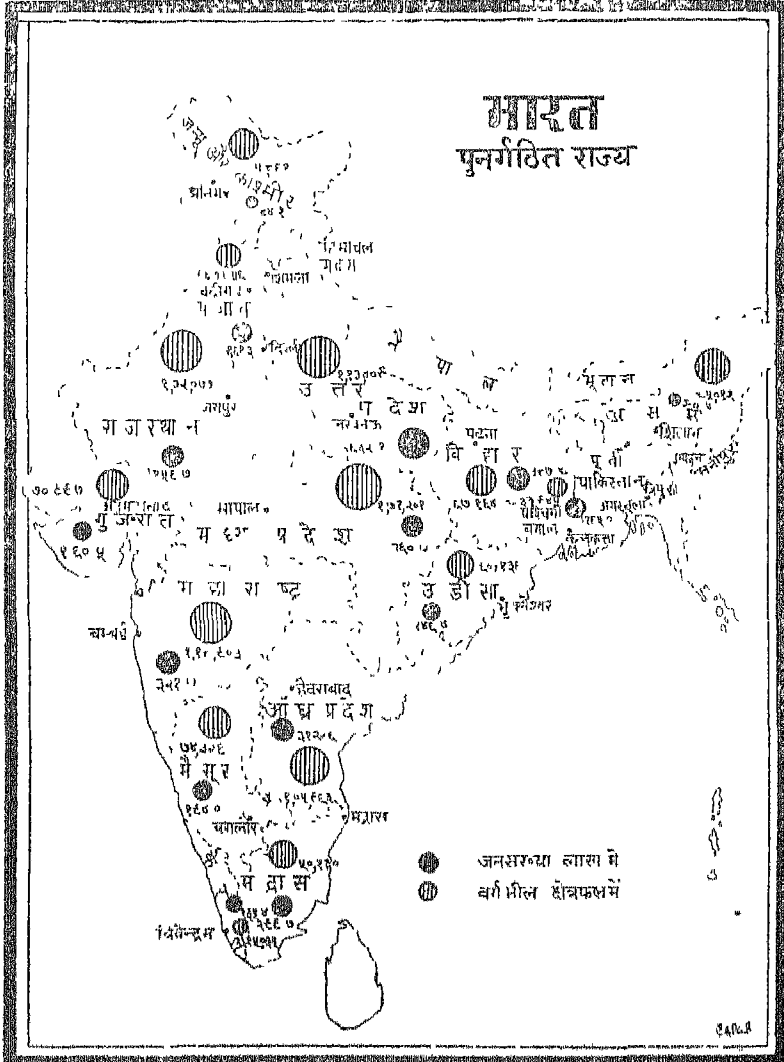
द श्रेणी के राज्य (Part D States)—वे राज्य जो भारत सरकार से अपना सम्बन्ध रखते थे उनका प्रबन्ध भी सीधा केन्द्र द्वारा चीफ कमिश्नर की सहायता से होता था। ऐसे राज्य (१) अण्डमान और निकोबार द्वीप तथा (२) सिक्किम थे। इनका क्षेत्रफल ५,६५६ वर्गमील और जनसंख्या १६८,००० थी।

भारत सरकार ने १६५३ में एक आयोग (Commission) राज्यों के पुनर्सठन करने हेतु सुझाव देने को नियुक्त किया। इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन ३० सितम्बर १६५५ को प्रस्तुत किया। इस आयोग की रिपोर्ट के अनुसार १ नवम्बर १६५६ से देश के सभी राज्यों को, जो पहले 'क', 'ख', 'ग' व 'द' प्रकार के राज्यों में विभाजित थे, समाप्त कर केवल दो श्रेणियों में विभाजित कर दिया: (i) राज्य और (ii) केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश। प्रथम प्रकार के राज्यों की संख्या १४ और द्वितीय प्रकार के राज्यों की संख्या ६ थी। यह स्थिति १ मई १६६० तक रही। १ मई को बम्बई राज्य को गुजरात और महाराष्ट्र दो विभिन्न राज्यों में बाँट दिया गया है। अस्तु, अब १५ राज्य और ६ केन्द्र द्वारा प्रशासित राज्य हैं। इनका क्षेत्रफल और जनसंख्या इस प्रकार है :—

राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग मील)	जनसंख्या	जनसंख्या का घनत्व
आंध्र प्रदेश	१,०६,०५२	३,१२,६०,१३३	२६५
असम	८४,८६६	६०,४३,७०७	१०६
बिहार	६१,१६८	३,८७,८३,७७८	५७७
गुजरात	७०,६७२	१,६०,४६,३२५	२२८
जम्मू-काश्मीर	८६,०२४	४४,१०,०००	५१
केरल	१५,००३	१,३५,४६,११८	६०३
मध्य प्रदेश	१७१,२१०	२,६०,७१,६३७	१५२
महाराष्ट्र	११८,६०३	३,२१,६८,६१४	२७०
मद्रास	५०,१३२	२,६६,७४,६३६	५६८
मैसूर	७४,१२२	१,६४,०१,१६३	२६२
उड़ीसा	६०,१६२	१,४६,४५,६४६	२४३
पंजाब	४७,०८४	१,६१,३४,८६०	३४३
राजस्थान	१,३२,१५०	१,५६,७०,७७४	१२१
उत्तर प्रदेश	१,१३,४५२	६,३२,१५,७४२	५५७
पश्चिमी बंगाल	३३,६२८	२,६३,०२,३८६	७७५
केन्द्र द्वारा प्रशासित राज्य			
अंडमान तथा निकोबार द्वीप	३,२१५		
दिल्ली	५७३	३०,६७१	१०
हिमाचल प्रदेश	१०,८८०	१७,४४,०७२	३,०४४
लकद्वीप-मिनीकॉय और		११,०६,४६६	१०२
अमीनीदीवी द्वीप समूह	११	२१,०३५	१,६१२
मनीपुर	८,६२८	५,७७,६३५	६७
त्रिपुरा	४,०३६	६,३६,०२६	१५८
भारत का योग	१२,५६,७६७	३६,११,५१,६६६	२८७

पुनर्गठित भारत के राज्यों की रचना निम्नांकित प्रकार से हुई है :—

आन्ध्र—पुनर्गठन के पूर्व के आन्ध्र राज्य में हैदराबाद के राज्य के तेलंगाना क्षेत्र को मिला दिया गया है जिसमें हैदराबाद, मेडक, निजामाबाद, करीम नगर,



वारंगल, खम्माम, नालगोंडा और महबूब नगर जिले तथा अलीदाबाद जिले का कुछ भाग, रायचूर, गुलबर्गा और बीदर जिलों के कुछ ताल्लुक तथा नान्देड़ जिले के कुछ क्षेत्र सम्मिलित हैं।

केरल—केरल राज्य में त्रिवेन्द्रम जिले के चार ताल्लुकों और क्विलोन जिले के शेनकोट्टा ताल्लुक को छोड़ कर त्रावणकोर-कोचीन का भाग सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त इसमें मद्रास राज्य का मलाबार जिला (लक्काद्वीव और मिनिकोय द्वीपों को छोड़ कर) तथा दक्षिणी कनारा के कसारा गौद ताल्लुक को भी मिला दिया है।

मध्य प्रदेश—नये मध्य प्रदेश में पुराना मध्य प्रदेश (बुलढाना, आकोला, अमरावती, यवतमाल, वर्धा, नागपुर, भण्डारा और चान्दा जिलों को छोड़ कर), पुराना मध्य भारत (मंदसौर जिले के थोड़े से भाग को छोड़ कर), भोपाल, विन्ध्य प्रदेश और सिरोंज (जो पहले राजस्थान का भाग था) सम्मिलित हैं।

मद्रास—पुराने मद्रास का कुछ भाग केरल में और कुछ भाग मैसूर में चला गया है। परन्तु मद्रास में दक्षिण की ओर कुछ ताल्लुक बढ़ा दिये गये हैं जिनका नाम नये मद्रास राज्य में कन्याकुमारी जिला रखा गया है।

मैसूर—नए मैसूर में पुराना मैसूर और कुर्ग, बम्बई के बीजापुर, कनारा और धारवाड़ जिले तथा बेलगाँव जिले का एक बड़ा भाग, हैदराबाद के गुलबर्गा, रायचूर और बिदार जिलों का अधिक भाग और मद्रास के दक्षिणी कनारा और कोयम्बटूर जिलों के कुछ भाग मिला दिये गये हैं।

पंजाब—नए पंजाब में पूर्वी पंजाब और पेप्सू को मिला दिया गया है।

बिहार और पश्चिमी बंगाल—बिहार व पश्चिमी बंगाल में केवल इतना परिवर्तन हुआ है कि बिहार के पूर्णिया और मानभूम जिलों के कुछ क्षेत्र पश्चिमी बंगाल में मिला दिये गये हैं।

राजस्थान—नए राजस्थान में पुनर्गठन के पूर्व का अजमेर राज्य मिला दिया गया है। कोटा जिले का सिरोंज सब-डिविजन मध्यप्रदेश में मिला दिया गया है और इसके बदले में पुराने मध्य भारत के मंदसौर जिले के सुनेल टप्पा (Sunel Tappa) क्षेत्र को राजस्थान में मिला दिया गया है। इसके अतिरिक्त पुराने बम्बई राज्य के बनास कॉठा जिले के आबूरोड ताल्लुके को भी राजस्थान में मिला दिया है।

बम्बई—इस राज्य में कच्छ, सौराष्ट्र, हैदराबाद के मराठी भाषा-भाषी क्षेत्र (मराठवाड़ा), मध्य प्रदेश का मराठी-भाषी क्षेत्र (विदर्भ) और भूतपूर्व बम्बई राज्य (जिसमें से कन्नड़ भाषा-भाषी बेलगाँव, बीजापुर, कनारा, धारवाड़ जिले मैसूर में मिला दिए गए और बनास कांठा जिले का आबूरोड ताल्लुक राजस्थान में मिला दिया गया है) सम्मिलित थे। किन्तु १ मई १९६० से इस राज्य को दो भागों में बिभाजित कर दिया गया है (i) प्रथम को गुजरात, जिसमें गुजराती भाषा-भाषी जिले सम्मिलित किये गये हैं, तथा (ii) दूसरा महाराष्ट्र जिसमें मराठी भाषा-भाषी जिले सम्मिलित किये गये हैं।

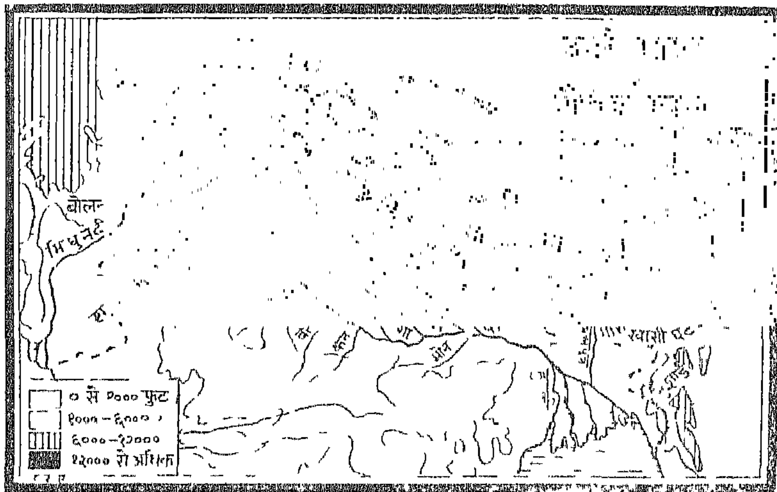
गुजरात में बनास कांठा (आबू तालुका को छोड़कर), अमरेली, साबरकांठा महसाना, अहमदाबाद, खेड़ा, पंचमहल, बड़ौदा, भड़ौंच, सूरत, हलार, मध्य सौराष्ट्र, झालावाड़, गोहिलवाड़, सोरठ और कच्छ के जिले सम्मिलित किये गये हैं। इसकी राजधानी अहमदाबाद (साबरमती) है।

महाराष्ट्र के अन्तर्गत थाना, पश्चिम-खानदेश, पूर्वी खानदेश, नासिक, अहमदनगर, शोलापुर, दक्षिण सतारा, उत्तरी सतारा, कोल्हापुर (चाँदगढ़ तालुका सहित) रत्नागिरि, कुलाबा, पूना, उस्मानाबाद (अहमदपुर, नीलंगा और उदयगिरि तालुकों सहित), बीड़, औरंगाबाद, परभणी, नांदेड (विशिष्ट क्षेत्रों को छोड़ कर), बुलढाणा, आकोला, अमरावती, यवतमाल, वर्धा, नागपुर, भंडारा, चाँदा एवं बृहत्तर बम्बई जिले हैं।

अन्य राज्य—उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और जम्मू-काश्मीर की सीमा रेखा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

असम में नागा लोगों के लिए नागा-प्रदेश बनाने का भी निश्चय किया जा चुका है। इसमें असम के वे पहाड़ी इलाके होंगे जिसमें नागा लोग रहते हैं।

है। इस श्रेणी की औसत ऊँचाई ६ से १० हजार फीट है। इसमें कई छोटी-छोटी श्रेणियाँ हैं जिनकी अनेक भुजाएँ (Spurs) हैं। भारत के प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान शिमला, मसूरी,



चित्र २—उत्तरी भारत की भौतिक रचना।

नैनीताल और दार्जिलिंग आदि इसी श्रेणी के निचले भागों पर हैं। इस श्रेणी में स्लेट, चूने के पत्थर, क्वार्टज और अन्य शिलाओं की अधिकता पाई जाती है। इनमें शिलामूल अवशेष बिल्कुल नहीं मिलते।

(३) उप-हिमालय (Sub-Himalayas) पर्वत श्रेणी उपरोक्त दोनों श्रेणियों के दक्षिण में है। यह हिमालय का सबसे नवीन भाग है। इसको लघु हिमालय से अलग करने वाली घाटियों को पश्चिम में 'दून' (Doon)[1] और पूर्व में 'द्वार' (Duars) कहते हैं। आजकल इस सम्पूर्ण श्रेणी को शिवालिक कहते हैं। इसकी चौड़ाई ५ से ३० मील और औसत ऊँचाई ४,००० फीट के लगभग है। बड़े मैदान के भाँति यह श्रेणी भी चिकनी मिट्टी बालू और कंकड़ की बनी है। इसका सम्पूर्ण भाग दलदल और वनाच्छादित है।

(४) ट्रान्स हिमालय (Trans Himalayas)—कुछ भूगोलवेत्ता हिमालय की एक चौथी श्रेणी और स्वीकार करते हैं। यह श्रेणी ट्रान्स-हिमालय के नाम से पुकारी जाती है। सन् १९०६ ई० में स्वेन हेडिन (Seven Hedin) ने इसकी खोज की थी। यह श्रेणी अपने मध्य में १४० मील चौड़ी है तथा पूर्व और पश्चिम की ओर अपने सिरों पर २५ मील चौड़ी है। इसकी कुल लम्बाई ६०० मील है यह १२,००० से १४,००० फीट ऊँची है। यह श्रेणी बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों तथा उत्तर की ओर भूमि से घिरे हुए जलाशयों में गिरने वाली नदियों के लिये जल विभाजक का कार्य करती है। इस श्रेणी में कई दर्रे हैं जिनकी औसत ऊँचाई १७,५००

१. सबसे प्रसिद्ध देहरादून है। अन्य 'दून' या घाटियाँ कुमायूँ में कोटा दून, पतलीदून, कोठरीदून, चुम्बीदून और कियार्दादून हैं।

फीट है। परन्तु इनमें से डिगला (Dingla) दर्रे की ऊंचाई १९,००० फीट से भी अधिक है।

कराकोरम पर्वत-श्रेणी (Karkoram Range)—कराकोरम पर्वत-श्रेणी किस प्रकार फैली हुई है, यह तो आज भी विवादास्पद है परन्तु सेविन हेडिन (Seven Hedin) ने इसे 'एशिया की रीढ़, (Back-bone of High Asia) कहा है। इस पर्वत श्रेणी का आधा दक्षिणी भाग-श्योक (Shyok) नदी की घाटी तक लगभग ५० मील चौड़ा है और औसत ऊंचाई १२,००० फीट है। यही ऊंचाई शेष उत्तरी भाग के लिये भी मानी जा सकती है। कराकोरम के शिखर से दक्षिण की ओर जो प्रमुख पहाड़ियाँ निकलती हैं उनमें हरमोश (Haramosh), माशरबूम (Masherbum) और सासिर (Sasir) हैं। इनमें से हरमोश पहाड़ी लद्दाख श्रेणी को जोड़ती है और सासिर कैलाश श्रेणी को। माशरबूम पहाड़ी बालतोरो ग्लेशियर की घाटी द्वारा कराकोरम श्रेणी से अलग होगई है। इस पहाड़ी में माशरबूम की ऊँची चोटी स्थित है और यह प्रमुख श्रेणी के समानान्तर फैली हुई है। उत्तरी श्रेणी की मुख्य पहाड़ियाँ अगहिल (Aghil) पहाड़ी और कराकोरम जल-विभाजक है। यह बड़ी ही ध्यान देने योग्य बात है कि नैपाल हिमालय की तरह कराकोरम में भी हिमालय की कुछ बहुत ही ऊंची चोटियाँ पाई जाती हैं—जैसे K² (२८,२५० फीट) और माशरबूम (२५,६६० फीट) हैं। एलिंग कंगरी (Aling Kangri) श्रेणी, जो सदा बर्फ से ढकी रहती है, कराकोरम के दक्षिण की ओर फैली हुई है।

जान्सकर पर्वत-श्रेणी (Zanskar Range)—यह पर्वत-श्रेणी हिमालय की उत्तरी शाखा है और यह उत्तर में लद्दाख श्रेणी और दक्षिण में महा हिमालय के बीच स्थित है। इसमें ड्रास (Dras) और जान्सकर (Zanskar) दो बड़ी नदियां बहती है। कामेत (Kamet) जो २५,४७७ फीट ऊँची है, इसकी सबसे प्रसिद्ध चोटी है। इस श्रेणी में कई दर्रे हैं। उनमें से कुछ प्रसिद्ध दर्रे है : दर्मा (Dharma) १८,००० फीट, किंगरी बिंगरी (Kingri Bingri) १८,३०० फीट, शाल शाल (Shal Shal) १६,२०० फीट और नीति (Niti) १६,५०० फीट हैं।

जल विभाजक और हिमालय की ऊँची **चोटियाँ**—यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि हिमालय की सबसे ऊँची चोटियाँ भारत और तिब्बत के बीच जल विभाजक के दक्षिण की ओर हैं और मैदान से लगभग १०० मील दूर हैं। जल विभाजक की औसत ऊँचाई १८,००० फीट से अधिक है परन्तु भारत और तिब्बत के बीच मार्ग समुद्र तल से लगभग १६,००० फीट की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

हिमालय की शाखायें (Off-Shoots of Himalayas)- यदि कोई व्यक्ति बाँस के टुकड़े को दबाये तो उसे अनुभव होगा कि वह टेन्जेन्ट (Tangentially) के अनुरूप फटता है और जो टुकड़े उससे अलग होते हैं वे अपनी मूल दिशा (original) बनाये रखते हैं। ठीक यही बात हिमालय में भी देखी जाती है। जहां कहीं श्रेणी का केन्द्रीय बिन्दु अपनी दिशा बदलता है अथवा जहाँ कहीं नदी इसे आड़े रूप में काटती है वहाँ एक नई शाखा मूल दिशा की ओर निकली हुई पाई जाती है। जहां कहीं इस प्रकार शाखायें फूटती हैं छोटी श्रेणी पहले उस दिशा की ओर जाती है जिसे बड़ी श्रेणी छोड़ देती है। धीरे धीरे यह अपनी दिशा बदल देती है और अन्त में बड़ी श्रेणी के अनुरूप उसके समानान्तर चलती है। उस बिन्दु से जहाँ सतलज महा-हिमालय को काटती है पीर पंजाल की नवीन श्रेणी महा-हिमालय के दक्षिण में पश्चिम की ओर

निकल जाती है। इसी तरह जहाँ अलकनन्दा, बद्रीनाथ के मंदिर के चरण धोती हुई महा हिमालय को पार करती है वहाँ मूल श्रेणी के दक्षिण मे धौलाधार (Dhauladhar) नामक प्रसिद्ध श्रेणी पश्चिम को फट जाती है। जहाँ काली गंडक धवलागिरी के समीप महा-हिमालय को काटती है वहाँ नगतीबा श्रेणी (Nagtibba Range) पश्चिम को निकल जाती है और धौलाधार से जाकर मिल जाती है। कुमायूँ जिले मे लगभग १०० मील तक यह श्रेणी लगातार चली गई है और बीच म कही भी कटी हुई नही है। इसलिये यह अलकनन्दा और पिन्डर को इसके समानान्तर बहने को बाध्य कर देती है। केवल हरिद्वार के उत्तर मे ये इसे पार कर पाती है। गुरलामान्धाता (Gurla-mandhata) के नीचे करनाली नदी इसको (महा-हिमालय को) पार करती है और वही जान्साकर श्रेणी बन जाती है जो उसके उत्तर की ओर जाती है और जिसके ऊपर केमत चोटी स्थित है।

हिमालय का प्रादेशिक वर्गीकरण (Regional Classification of the Himalayas)—सिडनी बुर्राड ने महान् हिमालय का वर्गीकरण चार खडो मे किया है :—

(क) **पंजाब हिमालय** (Punjab Himalayas)—सिन्धु नदी से लगाकर सतलज नदी तक ३५० मील की लम्बाई मे फैले है। सतलज के पश्चिम की ओर इसकी ऊचाई कम होती जाती है किन्तु पूर्व की ओर २२,००० फीट से भी अधिक ऊँची केदारनाथ तथा बद्रीनाथ आदि चोटियाँ है। इस श्रेणी के उत्तरी ढाल निर्जन ऊबड-खाबड और सूखे है जिसके बीच मे पठार और कुछ झीले अवस्थित है किन्तु दक्षिणी ढाल सर्वत्र ही सघन वनो से आच्छादित है। ये हिमालय अधिक शुष्क है अत यहाँ हिम-रेखा भी अधिक ऊचाई पर पाई जाती है।

(ख) **कुमायूँ हिमालय** का विस्तार सतलज नदी से काली नदी तक २०० मील है। इसी श्रेणी मे उत्तर प्रदेश के मुख्य जिले अलमोड़ा, गढवाल तथा नैनीताल स्थित है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बहुत पहले इस प्रदेश मे ३६० झीलें थी, उन्ही के सूख जाने से यहा कुछ उपजाऊ भाग बन गये है। इस भाग की मुख्य ऊची चोटिया बद्रीनाथ (२३,१९०), केदारनाथ (२२,७७०), त्रिशूल (२३,३६०), माना (२३,८६२), गंगोत्री (२१,७००) और शिवलिंग (२१,७६० फीट) है। भागीरथी और यमुना आदि नदियो के उद्गम स्थान यही है।

(ग) **नेपाल हिमालय** (Nepal Himalayas)—यह ५०० मील के विस्तार मे काली नदी और तिस्ता नदी के बीच मे फैले है। इसी भाग मे भारत की सबसे ऊची चोटियाँ अवस्थित है। कचनजघा २८,१४६ फीट; मकालू २७,७९० फीट, और एवरेस्ट २९,१४१ फीट आदि।

(घ) **आसाम हिमालय** (Assam Himalayas)—तिस्ता नदी से ब्रह्मपुत्र नदी तक ४५० मील की लम्बाई मे फैले है। इस श्रेणी का ढाल मैदान की ओर बड़ा तेज है किन्तु पश्चिम की ओर क्रमश. धीमा होता गया है। इसकी मुख्य चोटियाँ कुला कांगडी (२४,७८४ फीट), चुमल हारो (२३,९९७ फीट), काबरू (Kabru) (२४,०१५ फीट) जागसागला (२४,३४० फीट) और पौहुनी (२३,१८४ फीट) है।

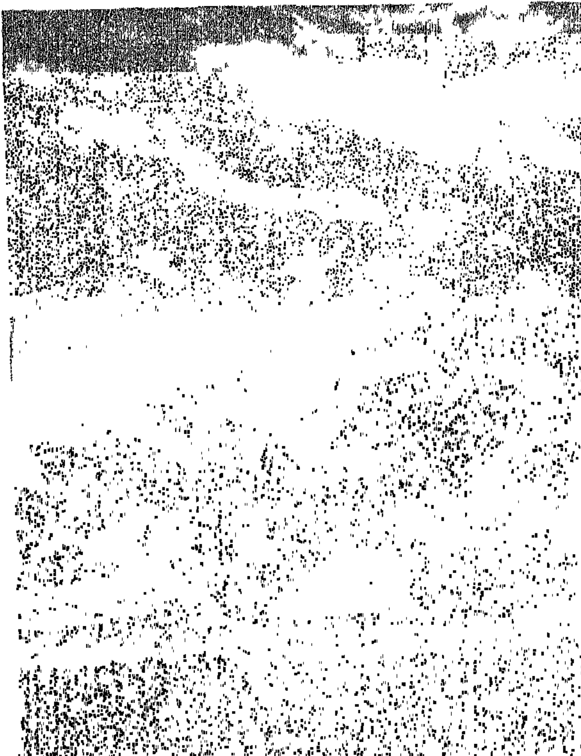
हिमालय की ऊँची चोटियाँ (Himalayan Peaks)—हिमालय की ऊँची चोटियों की स्थिति और उनका ज्ञान भूगोलवेत्ता, अन्वेषक और आपरीक्षण करने वाले सबके लिये बड़ा महत्वपूर्ण है। नदियो का मार्ग तथा कम महत्व के धरातली

रूप इनके सन्दर्भ से भली प्रकार प्रकट किये जा सकते है। सर सिडनी बुरार्ड ने हिमालय की चोटियो को उनकी ऊँचाई के अनुसार पाँच भागो मे बाटा है[१] :—

(१) प्रथम श्रेणी की वे चोटियाँ है जिनकी ऊँचाई २८,००० फीट से अधिक है। ये निम्न है :—

एवरेस्ट की चोटी	(नेपाल हिमालय)	२९,१४१ फीट
K[२]	(कराकोरम)	२८,२५० ,,
कञ्चनजघा	(नेपाल हिमालय)	२८,१४६ ,,

एवरेस्ट की चोटी—यह हिमालय की सबसे ऊँची चोटी है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई २९,१४१ फीट है। धरातल का यह सबसे ऊँचा बिन्दु है। यह नेपाल



चित्र ४—माउंट एवरेस्ट का दृश्य

हिमालय मे स्थित है। सन् १८५६ में सर एन्ड्रयू वॉग (Sir Andrew Waugh) ने उसके पहले के भारत के मुख्य आपरीक्षणकर्त्ता (Surveyer General) सर जार्ज

१. J. Banerjee, The Glory of Himalayas, in 'Himalaya,' Vol I. No. 1 (1952). p. 17.

एवरेस्ट (Sir George Everest) के नाम पर इसका उपरोक्त नाम रखा। तिब्बत में इस चोटी को चोमोलुंग्मा (Chomo Lungma) कहते हैं। आधुनिक समय में इस चोटी को विजय करने के लिये मनुष्य ने कई प्रयत्न किये हैं। इसी प्रयत्न में कई लोगों ने अपने प्राण तक गंवा दिये। वस्तुत: ऐसे ऊँचे पर्वतों पर चढ़ना बड़ा ही दुष्कर होता है किन्तु सन् १९५३ में तेनसिंह और हिलैरी नामक दो व्यक्तियों ने इसे पददलित कर ही दिया। ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ने का सर्वाधिक अनुकूल समय १ मई से जून के प्रथम भाग तक रहता है।

K^2 या गोडविन आस्टीन (K^2 or Mount Godwin Austin)—यह कराकोरम की सबसे ऊँची चोटी है और काश्मीर को चीनी तुर्किस्तान से अलग करती है। एवरेस्ट पर्वत शिखर के बाद संसार की यह दूसरी बड़ी चोटी है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई २८,२५० फीट है। इस चोटी को सन् १९०९ ई० में एब्रुजी के ड्यूक (Duke of Abruzzi) ने विजय किया था।

कंचनजंघा (Kanchanjunga)—यह हिमालय की तीसरी बड़ी चोटी है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई २८,१४६ फीट है। यह पूर्व हिमालय में सिक्किम और नैपाल की सीमा पर स्थित है। इसकी हिम-मंडित सुन्दर धवल चोटियाँ दार्जिलिंग से दिखाई पड़ती हैं। इस चोटी का दृश्य—जो उष्ण वनस्पति के प्रदेश से प्रारंभ होकर सदा ढके रहने वाले हिम क्षेत्र तक समाया हुआ है—संसार में सर्वाधिक सुन्दर और अद्वितीय माना गया है। यह पर्वत भारत और तिब्बत के बीच जल विभाजक के बहुत अधिक दक्षिण की ओर स्थित है। अत: इससे निकलने वाली समस्त नदियाँ—उत्तरी ढाल की भी—भारत के मैदान में बहती हैं।

(२) दूसरी श्रेणी की वे पर्वत चोटियाँ हैं जिनकी ऊँचाई २७,००० और २८,००० फीट के बीच में हैं। ये चोटियाँ निम्न हैं :—

E1	नैपाल हिमालय	२७,८९० फीट
कंचनजंघा II	नैपाल हिमालय	२७,८०३ ,,
मेकालू	नैपाल हिमालय	२७,७९० ,,

(३) तीसरी श्रेणी की वे चोटियाँ हैं जिनकी ऊँचाई २६,००० से २७,००० फीट के बीच में है। ऐसी चोटियाँ १२ हैं :—

धौलागिरी (Dhaulagiri)	नैपाल हिमालय	२७,८९० फीट
चो यू (Cho Oyu)	,,	२६,७५० ,,
कुटंग I (Kutang I)	,,	२६,६५८ ,,
नंगा पर्वत I (Nanga Parbat I)	(पंजाब हिमालय)	२६,६२० ,,
अन्नपूर्णा I (Annapurna I)	नैपाल हिमालय	२६,४९२ ,,
गेशरब्रुम I (Gasherbrum I)	कराकोरम	२६,४७० ,,
ब्रौड पीक (Broad Peak)	,,	२६,४०० ,,
गैशरब्रुम II	,,	२६,३६० ,,
गोसाईंथान (Gosainthan)	(नैपाल हिमालय)	२६,२९१ ,,
गैशरब्रुम IV (Gasherbrum IV)	(कराकोरम)	२६,१८० ,,
गेशरब्रुम III (Gasherbrum III)	,,	२६,०९० ,,
अन्नपूर्णा II (Annapurna II)	(नैपाल हिमालय)	२६,०४१ ,,

(४) चौथी श्रेणी की वे चोटियाँ हैं जो २५,००० और २६,००० फीट के बीच ऊँची हैं। सर सिडनी बुर्राड ने ऐसी ३१ चोटियाँ गिनाई हैं किन्तु यहाँ नीचे कुछ मुख्य चोटियों के नाम ही दिये जा रहे हैं :—

पूर्वी माशर ब्रुम	(काराकोरम)	२५,६६० फीट
नंदा देवी	(कूमायूँ हिमालय)	२५,६४५ ,,
पश्चिमी माशर ब्रुम	(काराकोरम)	२५,६१० ,,
नंगा पर्वत II	(पंजाब हिमालय)	२५,५७२ ,,
कामेत	(जान्सकर श्रेणी)	२५,४४७ ,,
नमचा बरवा	(आसाम हिमालय)	२५,४४५ ,,

(५) पाँचवी श्रेणी की वे चोटियाँ हैं जो समुद्रतल से २४,००० और २५,००० फीट के बीच ऊँची है। ऐसी लगभग ३६ ज्ञात चोटियाँ हैं। कुछ चोटियाँ ऐसी भी हैं जो २४,००० फीट से कम ऊँची हैं। ऐसी कुछ प्रमुख चोटियों के नाम और ऊँचाई इस प्रकार हैं :—

गंगोत्री	(कूमायूँ हिमालय)	२१,७०० फीट
गौरीशंकर	(नैपाल हिमालय)	२३,४४० ,,
कैलाश	(कैलाश)	२२,०२८ ,,
केदारनाथ	(कूमायूँ हिमालय)	२२,७७० ,,
पूर्वी त्रिशूल	,, ,,	२२,३२० ,,
पश्चिमी त्रिशूल	,, ,,	२३,३६० ,,

नये पर्वत होने के कारण हिमालय पर्वत की प्रायः सभी चोटियाँ बहुत ऊँची हैं। इनकी तुलना उत्तरी अमरीका, दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, तथा आल्पस की चोटियों से की जा सकती है। निम्न तालिका में विश्व के प्रमुख पर्वतों की चोटियाँ बताई गई हैं[1] :—

अकनकैगुवा	(एन्डीज)	२२ ८३५ फीट
इलाम्पू	(,,)	२१,५०० ,,
चिम्बाजो	(,,)	२०,४९८ ,,
माऊंट मैकिनले	(अलास्का)	२०,३०० ,,
माऊंट लोगन	(रॉकीज)	१९,८५० ,,
कोटोपैक्सी	(एन्डीज)	१९,३४४ ,,
किलीमांजरो	(अफ्रीका)	१९,३४० ,,
डैमावन्ड़	(ईरान)	१८,६०० ,,
एलब्रुर्ज	(काकेशस)	१८,४८१ ,,
माऊंट ब्लैंक	(यूरोप)	१५,७८१ ,,

यह जानकर आश्चर्य होगा कि हिमालय की लगभग १४० चोटियाँ आल्पस की उच्चतम चोटी माऊंट ब्लैंक से अधिक ऊँची हैं।

हिमालय की घाटियाँ (Himalayan Valleys) :—

ऊपर यह बताया जा चुका है कि हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ घाटियों द्वारा एक दूसरे से अलग करदी गई हैं। कहीं-कहीं ये श्रेणियाँ समुद्र तल से ३,००० फीट

१. Hindustan Year Book, 1957, p. 57

हिमागार	लम्बाई मीलों में	ऊँचाई फीट में	किस्म
		कराकोरम	
१. हिस्पार (Hispar)	३८	१०,५००	लम्बवत (Longitudinal)
२. बतुरा (Batura)	३६	८,०३०	लम्बवत (Longitudinal)
३. सासाईनी (Sasaini)	९९	८,०००	आडा (Transverse)
४. मोहिल यज (Mouahil Yaz)	१८	९,५००	आडा (Transverse)
५. यज गिल (Yaz ghil)	१८	१०,४००	आडा (Transverse)
६. खुरडोपिन (Khurdopin)	२६	९,०००	आडा (Transverse)
७. विरजी रेव	२४	११,३२०	आडा (Transverse)
		बालटिस्तान-लद्दाख	
बियाफो (Biafo)	३७	१०,३६०	लम्बवत
बालटोरो (Baltoro)	३६	११,५८०	,,
सियाचिन (Siachen)	४५	१२,१५०	,,
पुन्मेह (Punmeh)	१७	११,६००	आडा
रिमो (Rimo)	२५	१६,३५०	,,
		उ० प० काश्मीर के हिमागार	
हिनार्ची (Hinarche)		८,०००	आडा
बार्ची (Barche)		१०,०००	लम्बवत
मिनापिन (Mina...) [illegible]		[illegible]	[illegible]

गति किनारों पर ३-४'' तथा बीच में १ फुट तक होती है। बड़े-बड़े हिमागारों की चौड़ाई १ से २½ मील तक होती है। इन हिमागारों में बर्फ की मोटाई भी बहुत होती है। बालतोरो में बर्फ की मोटाई ४०० फीट, जैमू में ६५० फीट और फेडचैको में १,८०० फीट है। फेड्चैको हिमागार प्रतिदिन १½ फुट और जैमू (Zemu) ९'' की गति से आगे बढ़ता है। पिंडारी हिमागार नीचे की तरफ ९.४'' और ऊपर की ओर १०'' की दैनिक गति से बढ़ता है जिसकी तुलना आल्प्स के मर-डी-ग्लेस (Mer-de-Glace) हिमागार से भी की जा सकती है जिसकी दैनिक गति २४'' है।

हिमालय के इन हिमागारों के पिघलने से ही भारत की बड़ी नदियों को जल प्राप्त होता है। गंगा, यमुना आदि नदियाँ गंगोत्री और यमुनोत्री आदि हिमागारों से ही निकलती हैं। डा० बनर्जी के अनुसार हिमालय से निकलने वाली नदियों को दिसम्बर से जून तक ६०% जल इन हिमागारों से प्राप्त होता है (और जुलाई से नवम्बर तक ३५%) और शेष ४०% जल निचले ढालों पर होने वाली वर्षा से प्राप्त होता है। हिमालय पर प्रति वर्ष बर्फ के रूप में जो वर्षा होती है उसमें से केवल १८% ही नदियों को मिलता है शेष ८२% वाष्पीकरण की क्रिया द्वारा उड़ जाता है। हिमालय पर स्थित प्रति वर्गमील क्षेत्र के बर्फ और हिमागारों से हमारी नदियों के लिए प्रतिवर्ष ४१० एकड़-फीट जल मिल सकता है।

भारत में पूर्वकालीन हिमयुग (Periods of Glaciation in India)—पृथ्वी के धरातल पर पूर्वकाल में एक के बाद एक अनेक हिमयुग आये हैं। भारत में भी

हिमयुग रहा है किन्तु यहाँ सभी हिमयुगों के चिन्ह नहीं मिलते। किन्तु यह निश्चित है कि भारत में ऐसे युग समय समय पर आये हैं जब वर्तमान काल की अपेक्षा जलवायु अधिक ठंडा था और हिम नदियाँ काफी नीचे तक उतर आई थीं। यहाँ मुख्यतः तीन हिमयुग आये हैं—क्रमशः धारवाड़, गोंडवाना और प्रातिनूतन-युग (Pleistoscene)।

धारवाड़ हिमयुग के चिन्ह दक्षिणी भारत में पाये जाते हैं। श्री फुट की खोजों के अनुसार दक्षिण में कालद्रुग सपिंड (Kaldrug Conglomerate) की अस्थिलाओं पर हिमावरण के कारण हुए अनेक खरोंच (scratches) के चिन्ह पाये जाते हैं। ये चिन्ह धारवाड़ हिमयुग के ही प्रतीक होते हैं और भारत में हिमावरण के सबसे प्राचीन प्रमाण हैं।

धारवाड़ के अतिरिक्त गोंड़वाना हिमयुग के चिन्ह भी कई स्थानों पर मिलते हैं। निम्न गोंडवाना युग में (Lower Gondwana period) उड़ीसा की तलचर शिलाओं (Talchir Series) में हिमावरण के चिन्ह स्पष्टतः प्रतीत होते हैं। इन शिलाओं के निम्न भागों में गंडाश्म के पात्र (Boulder-beds) पाये जाते हैं जो इस काल के हिमयुग को प्रमाणित करते हैं। गोदावरी नदी की घाटी में विंध्याचल के चूने के पत्थरों पर भी हिमानियों की खरोंच के चिन्ह पाये जाते हैं। ऐसे ही प्रमाण राजस्थान, मध्यप्रदेश, शिमला, हजारा और साल्ट रेंज प्रदेशों में भी उपलब्ध हुए हैं। इसी हिमयुग के गंडाश्म के पात्र अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में भी पाये गये हैं।

पोटवार क्षेत्र में हिमनदी द्वारा संचित ऐसी सामग्री पाई गई है जिसमें ऐसे शिलाखंड पाये गये हैं जिनका इस प्रदेश की भू-संरचना से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। इन्हें हिमनदी ही बहुत दूर से बहा कर लाई है। इन शिलाखंडों को विदेशी रोड़े (Erractic Blocks) कहते हैं। प्रायः एक श्रेणी या टीले में २० या उससे अधिक प्रकार की चट्टानों के टुकड़े पाये जाते हैं। जब हिमनदियाँ पिघलने लगीं तो ये रोड़े यहीं जमा होगये। हिमनदियों के घर्षण और अपक्षरण की क्रियाओं द्वारा ये रोड़े घिसकर गोल हो गये और इनमें खरोंचे पड़ गईं।

उत्तरी काश्मीर में श्री मिडिलमिस (Middlemiss) के अनुसार हिमानियाँ ८,००० फीट घाटी में नीचे उतर कर पिघलने लगीं, इसके फलस्वरूप यहाँ हिमानियों के चिन्ह पाये जाते हैं। डलहौजी प्रदेश में हिम के पिघलने की सीमा सामूल में ४,३०० फीट, धर्मशाला के निकट ३,२०० फीट और पंगी घाटी में ७,५०० फीट अनुमान की गई है। हिमालय पर्वत की घाटियों में हिमानियों के प्राचीन अस्तित्व को कई चिन्हों द्वारा पहचाना जाता है। इनकी घाटियों में हिमानी की प्रक्रिया से अर्द्धगोल-रंगमंच (amphitheatre-like) के समान धंसे हुए गड्ढे सिर्क (Cirque) पाये जाते हैं तथा घाटियों में तीक्ष्ण मोड़ नहीं पाये जाते। परस्पर शिला बाहुओं (Spurs) का अभाव पाया जाता है तथा घिस कर क्षीण होगई शिला बाहुओं में बहुधा त्रिकोण-तल पाये जाते हैं। घाटी का कटाव U-आकार का होता है तथा धरातल की भूमि ढालू होते हुए भी समतल न होकर सीढ़ियों की पंक्ति के रूप में पाई जाती है। सहायक घाटियों के अंतिम छोर प्रमुख प्रमुख घाटियों के तल से ऊँचे टंगे से प्रतीत होते हैं।

भारत का सबसे अंतिम हिमयुग प्रातिनूतन हिमयुग है। यह हिमयुग विश्व-व्यापी था और इसी का प्रभाव सबसे अधिक भी रहा है। भारत में भी यद्यपि इसका

प्रभाव उत्तर भारत में ही अधिक रहा है किन्तु दक्षिणी भारत का जलवायु भी इसके फलस्वरूप अधिक ठंडा होगया था। दक्षिणी भारत के नीलगिरी पर्वत में हिमालय-प्रदेशीय जंतुओं का पाया जाना इसको प्रमाणित करता है। यह हिमयुग निरंतर न होकर रुक-रुक कर हुआ है।

हिमालय की नदियाँ :—

ऐसा माना जाता है कि हिमालय की नदियाँ—ब्रह्मपुत्र, सतलज और सिन्धु—हिमालय पर्वत के उत्थान के पूर्व भी विद्यमान थी। ये तीनों नदियाँ हिमालय की ऊँची चोटियों से दूर तिब्बत की ओर से निकलती हैं। हिमालय के क्रमिक उत्थान से इनका ढाल उत्तरोत्तर बढ़ता गया। फलतः उनकी अपक्षरण शक्ति भी बराबर बढ़ती गई। यही कारण है कि ये नदियाँ हिमालय पर्वत श्रेणियों के पार अपना आरंभिक मार्ग बनाये रखने में सफल हुई हैं।

डा० पिल्ग्रिम के अनुसार हिमालय की नदियाँ चार भागों में बाँटी जा सकती हैं :—

(१) हिमालय के पूर्व की नदियाँ—ब्रह्मपुत्र, सतलज और सिंध आदि।

(२) महा-हिमालय की नदियाँ, जैसे गंगा, काली, घाघरा, गंडक और तिस्ता आदि। ये नदियाँ मध्य मायोसीन युग (Mid-Miocene) के बाद अर्थात् हिमालय के दूसरे उत्थान के बाद उत्पन्न हुई मानी गई हैं।

(३) लघु-हिमालय की नदियाँ, जैसे व्यास, रावी, चिनाब और झेलम आदि।

चित्र ७—हिमालय की नदियाँ।

(४) शिवालिक की नदियाँ, जैसे हिंडन और देहरादून के समीप सोलानी।

हिमालय से निकलने वाली २३ प्रमुख नदियाँ हैं जिनका सम्बन्ध तीन बड़ी नदी प्रणालियों से है। ब्रह्मपुत्र नदी प्रणाली में ब्रह्मपुत्र, लोहित, दिबांग, सुबनसिरी, मनास, सनकोश, रैदाक और तिस्ता नदियाँ सम्मिलित हैं। गंगा नदी प्रवाह प्रणाली कोसी, बागमती, राप्ती, गंडक, करनाली, रामगंगा, गोमती, सोह, काली या शारदा, यमुना और गंगा आदि नदियों से मिल कर बनी है। सिन्धु प्रणाली में सतलज, व्यास, चिनाब, झेलम, रावी और सिन्धु नदियाँ सम्मिलित हैं।

हिमालय की कुछ नदियों ने हिमालय के आर-पार गहरी घाटियों का निर्माण किया है। ऐसी नदियों में सिन्धु, सतलज, अरुण और ब्रह्मपुत्र हैं। ये बहुत दूर तक

हिमालय की प्रधान (Gorge) श्रेणी के साथ-साथ बहती है और अनुकूल अवस्था पाकर श्रेणी को पार कर मैदान की ओर आती है। इन सबमें सिन्ध नदी की घाटी मुख्य है। यह गिलगित के पास १८,००० फीट गहरी है।

नीचे की तालिका इन तीनों नदियों की प्रणालियों की विशेषताओं को प्रकट करती है[१] :—

प्रणाली	प्रवाह क्षेत्र (Catchment area) (वर्गमील)	साधारण वर्षा वार्षिक (इंचों में)	वाष्पीकरण और सोखने की क्रिया द्वारा जल की क्षति (इंचों में)	वास्तविक जल प्रवाह (Run off) (इंचों में)	प्रत्येक एकड़ क्षेत्र में जल प्रवाह[२] (वार्षिक)
सिन्धु-प्रणाली	१३६,६७३	२१·८६	१३·०२	८·८४	[illegible]
गंगा प्रणाली	३७६,८१२	४३·७६	२८·००	[illegible]	[illegible]
ब्रह्मपुत्र प्रणाली	१९५,४६०	४८·११	१८·४७	२९·६४	[illegible]

इन नदियों के प्रवाह में बहुत बड़ी जलराशि हिम तथा हिमागारों के पिघलने से प्राप्त होती है।

हिमालय पर्वत की नदियों की विशेषताएं :—

(१) हिमालय पर्वत से निकलने वाली प्रायः सभी नदियों के तीन खंड हैं : पहाड़ी खंड, मैदानी खंड और डेल्टा खंड। ये नदियाँ [illegible] न केवल

...में पाया गया है।

(४) हिमालय की कई बड़ी-बड़ी नदियों ने छोटी-छोटी नदियों के पानी को अपने में मिला लिया है। उदाहरण के लिए गंगा, सिन्धु ब्रह्मपुत्र आदि नदियों ने कई छोटी नदियों के पानी को, जो तिब्बत में बहती हैं, अपने में हड़प लिया है।

हिमालय की झीलें (The Himalayan Lakes):— हिमालय में कई झीलें बहुत अधिक ऊँचाई पर पाई जाती हैं। भारत की सबसे ऊँची हिमानी-निर्मित झील गढ़वाल हिमालय में देवताल के समीप है, जो १७,७४५ फीट की ऊँचाई पर है।

---

१. S. K. Banerjee, 'Snow Glacier Fields of Himalayas' in the Himalaya, Op. Cit., p. 26.

२. एक एकड़ फुट से आशय जल की उस राशि से है जो एक एकड़ क्षेत्र को एक फुट की गहराई तक घेर लेता है।

इसी प्रकार प्रसिद्ध मानसरोवर झील भी १५,०९८ फीट की ऊँचाई पर स्थित है। इसकी आकृति अंडाकार है यह लगभग २०० वर्ग मील क्षेत्र में फैली हुई है। इसकी अधिकतम गहराई २७० फीट है। इसी के समीप राकस ताल (Rakas Tal) भी इसी ऊँचाई पर स्थित है। इसका क्षेत्रफल १४० वर्ग मील है। यह दोनों ही मीठे पानी की झीलें हैं।

मानसरोवर से जब हम पवित्र कैलाश पर्वत के ग्लेशियर पर चढ़ते हैं तो हम डोलमा दर्रे के सिरे पर पहुँच जाते हैं। यहीं पर एक छोटी गोरीकुन्ड (Gaurikunda) नामक झील स्थित है। यह संसार की दूसरी ऐसी झील है जो सबसे अधिक ऊँचाई पर पाई जाती है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई १८,२०० फीट है। संसार की सबसे ऊँची झील तिब्बत की टिसो सिकुरू (Tso Sekuru) झील है जो १८,२८४ फीट ऊँची है। गोरीकुन्ड झील लगभग ३०० फीट लम्बी और १५० फीट चौड़ी है। इसकी ऊपरी सतह सदा बर्फ से ढकी रहती है। दूसरी प्रमुख झीलें जो १५,००० फीट से ऊपर स्थित हैं इस प्रकार हैं :—

झील	ऊँचाई
१. टिसोजिलेंग (Tso Zillang)	१५, १२५ फीट
२. टेंगरी नोर या नेमचो (Tengri nor or Namcho)	१५, १९० ,,
३. तासी भूप (Tashi Bhup)	१५, २८९ ,,
४. टिसो टिगु (Tso Tigu)	१५, २८५ ,,
५. सेची गेटाई (Schi gatai)	१६, २४० ,,
६. एन्टीलोप झील (Antilope Lake)	१६, ४७० ,,
७. टिसो होरपा (Tso Horpa)	१७, ३९० ,,
८. लोक पाल झील या हेम कुण्ड (Lok pal Lake or Hem-kund)	१५, ००० ,,

हिमालय की अधिकांश झीलों की उत्पत्ति तीन प्रकार से हुई है[1] :—

(१) कई झीलों का विकास मुख्य नदियों के मार्ग में सहायक नदियों द्वारा बनाये गए कांप मैदानों (alluvial fans) के अवरोध स्वरूप हुआ है। इन मैदानों द्वारा जल बांध के रूप में रुक कर झीलों का रूप बन जाता है।

(२) कुछ झीलों का निर्माण नदी-पात्र के कुछ भागों के तीव्रगति से ऊंचा उठ जाने से हुआ है जबकि नदियों का उपक्षरण धीमी गति से हुआ है।

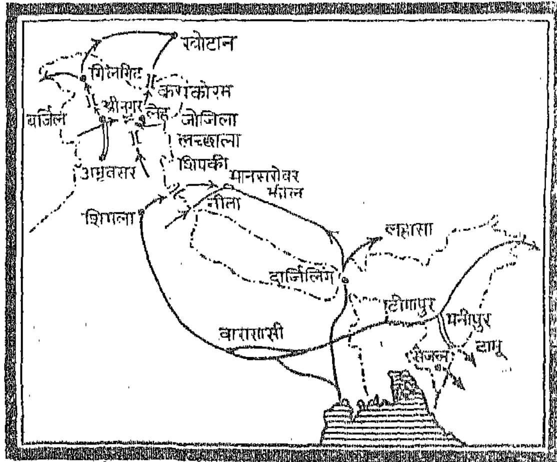
(३) कई झीलों की उत्पत्ति हिमानियों द्वारा चट्टानों में रगड़ लगने से बने गड्ढों में जल भर जाने से हुई है।

हिमालय के दर्रे (Himalayan Passes) :—

हिमालय पर्वत की श्रेणियों को पार करने के लिये इसमें कई दर्रे हैं। उत्तरी पहाड़ों में मालाकन्द का दर्रा (६,२८० फीट) है जिससे होकर चितराल को मार्ग जाता है। बरोगिल के दर्रे (१२,४०० फीट) द्वारा काशगर और मध्य एशिया जाने का मार्ग है। जोजिला दर्रा (११,३०० फीट) श्रीनगर से लेह का रास्ता है। वहाँ से कराकोरम दर्रे (१८,११० फीट) होकर यारकन्द को रास्ता जाता है। शिपकी दर्रे से शिमला से

१. D. N. Wadia, Op. Cit, p. 21.

तिब्बत जाने का मार्ग है। माना और नीति दर्रों में होकर भारतीय यात्री मानसरोवर भील और कैलाश की चोटी के दर्शन करने जाते हैं। जेलेप्ला और नाटूला दर्रों द्वारा दार्जिलिंग और चुम्बी होकर तिब्बत को जाते हैं। पश्चिमी हिमालय श्रेणियाँ अधिक छिन्न-भिन्न हैं। इसमें कई प्रसिद्ध दर्रे पाये जाते हैं जिनके द्वारा प्राचीन काल में भारत पर कई एतिहासिक आक्रमण हुए हैं। ये दर्रे क्रमशः खैबर (३,३७० फीट), टोची, कुर्रम, गोमल तथा बोलन हैं। ये सभी अब पाकिस्तान में हैं।



चित्र ८—हिमालय पर्वत के दर्रे

आसाम और ब्रह्मा के बीच में आवागमन के लिये कई मार्ग हैं। किन्तु हिमालय और आसाम के इन मार्गों को पार करना बड़ा ही कठिन है क्योंकि पहाड़ी भागों में अधिक वन और बर्फ के कारण आने-जाने में बड़ी कठिनाई होती है। इस ओर के मुख्य दर्रे तेजू गैप, मनीपुर, तोंगप और ऐन आदि हैं।

हिमालय के दर्रों की औसत ऊंचाई १६,००० से लेकर १८,००० फीट तक है। इसकी तुलना संयुक्त राज्य और आलप्स के महत्वपूर्ण दर्रों से की जा सकती है। कालोराडो में आलपाइन दर्रा १३,५५० फीट ऊँचा है। किन्तु इटली और आस्ट्रिया के बीच ब्रूनर दर्रा ४,५८८ फीट; इटली और स्विटजरलैंड के बीच सिम्पलन दर्रा ६,५९५ फीट तथा इटली और फ्रांस के बीच माऊंट सेनिस ६,८५० फीट ऊँचा है। आलप्स के अन्य दर्रे सैंट गोथार्ड ६,९५६ फीट तथा सैंट बर्नर्ड ८,१०० फीट ऊँचे हैं। ऊँचे दर्रों के कारण भारत और मध्य एशिया के बीच हिमालय पर्वत व्यवसायिक और सामाजिक अवरोध बने हुए हैं। इसी कारण भारत पर जितने भी आक्रमण बाहर से हुए वे सब इन दर्रों में होकर नहीं वरन् उत्तरी पश्चिमी दर्रों द्वारा हुए जो बहुत ही कम ऊँचे हैं—यथा खैबर केवल ३,३७३ फीट और बोलन ५,८८० फीट ऊँचे हैं।

हिमालय के घुमाव या वक्र (S... of the Himal...) ... पर्वत के विस्तार के बारे में भूगर्भशास्त्रियों ... मतभेद है। कुछ विद्वानों का कथन है कि हिमालय पर्वत पूर्व में आसाम और उत्तर पश्चिम में सिंध नदी की

बिहार में रांची जिले में छोटा नागपुर का पठार, दक्षिण में दकन का मुख्य पठार, आदि। इस प्रायद्वीप का धरातल बहुत कम चपटा है। यह साधारणतः टीलेदार या लहरदार है। यह प्राचीनतम कठोर चट्टानों का (जो मुख्यतः परिवर्तित चट्टानें हैं यथा-धारवाड़ चट्टानें, आग्नेय चट्टानें) बना है।

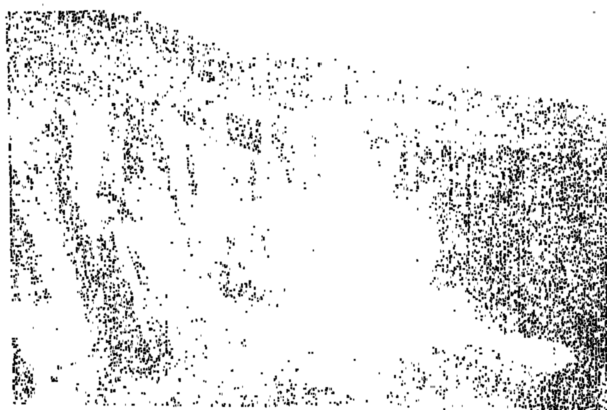
नर्मदा नदी जिस घाटी में होकर बहती है वह सम्पूर्ण प्रायद्वीप को दो असमान भागों में बांट देती है। उत्तर के भाग को मालवा का पठार और दक्षिण के भाग को दकन ट्रैप कहते हैं।

मालवा का पठार (Malwa Plateau)—मालवा का पठार स्थान-स्थान पर नदियों के प्रवाह के कारण टूटा है। इस भाग में बघेलखंड और बुन्देलखंड में नदियों द्वारा निर्मित बड़े २ बीहड़खड्ड (Ravines) पाये जाते हैं जिनके कारण अधिकांश भूमि खेती के अयोग्य हो गई है। शेष भाग में भूमि काफी समतल और उपजाऊ है। इस पठार का ढाल गंगा की घाटी की ओर है। मालवा पठार के इस लहरदार प्रदेश में कहीं-कहीं साधारण ऊंचाई की पहाड़ियाँ भी मिलती हैं—जैसे ग्वालियर की पहाड़ियाँ किंतु इन सबमें मुख्य विंध्याचल (Vindhyachal) हैं। यह पर्वत बम्बई (में जोबत) से प्रारम्भ होकर मध्य प्रदेश, बघेलखंड, उत्तर प्रदेश होता हुआ बिहार उड़ीसा में सोन घाटी के ऊपर दीवार के समान दक्षिण के पठार और गंगा की घाटी के मध्य में (सासाराम तक) स्थित है। इसकी ऊंचाई १,५०० से २,००० फीट तक है। किंतु कहीं-कहीं ये ३,००० फीट से भी अधिक ऊँचे हैं। यह पर्वत गंगा के प्रवाह प्रदेश को नर्मदा, ताप्ती और महानदी के मिलने वाले जल से पृथक करता है। यह पर्वत मुख्यतः बालू के लाल पत्थरों (Red Sand stones) और क्वार्टज के बने हैं। इन पत्थरों के पात्र बहुत ही कम अव्यवस्थित हो पाते हैं। अधिकतर ये आड़े ही पड़े हैं। इन चट्टानों का अधिकतर उपयोग भवन निर्माण के लिए किया जाता है। मालवा के पठार का पूर्वी भाग महादेव, मैकाल, बाराकर और राजमहल की पहाड़ियों के रूप में गंगा नदी की घाटी में बनारस तक फैला हुआ है।

छोटा नागपुर का पठार (Chota Nagpur Plateau) विन्ध्याचल के दक्षिण में उन्हीं के समानान्तर ७०० मील के विस्तार में सतपुड़ा (सात परतों वाला पर्वत) पर्वत फैले हुए हैं। यह पर्वत श्रेणी मध्य प्रदेश में नर्मदा के [illegible] गीवां से लगा कर पश्चिम की ओर राजपीपला [illegible] घाट तक फैली है। यह अधिकतर बैसाल्ट और [illegible]। इसकी औसत ऊंचाई २,५०० फीट है किन्तु [illegible] फीट ऊँची हैं जो आगे जाकर पूर्व की ओर छोटा नागपुर के पठार पर समाप्त हो जाती हैं। छोटा नागपुर के पठार के अन्तर्गत बिहार में रांची, हजारीबाग और गया के जिले हैं। इस पठार में कई अधिक ढाल वाली घाटियां [illegible] जिनके तल में होकर नदियां बहती हैं। इस पठार पर अधिकतर [illegible] पैदा किया जाता है। [illegible] यह पठार परिवर्तित [illegible] और क्वार्टज [illegible] का बना है जिसमें कहीं २ [illegible] भी पाई जाती है, अतः [illegible] मिट्टी प्राप्त होती है। किन्तु यह पठार खनिज पदार्थों में बड़ा धनी है। यहां भारत के [illegible] के सुरक्षित भंडार पाये जाते हैं। भारत का लगभग [illegible] अभ्रक भी यहीं से प्राप्त होता है। सिंहभूमि में [illegible] और [illegible] में [illegible] मिट्टी तथा फेलस्पार, क्वार्टज, कोयला, तांबा आदि पाया

जाता है। इमारती पत्थरों का तो यहाँ अक्षय भंडार है। अतएव इस पठार को 'खनिज पदार्थों का भंडार' (Storehouse of Minerals) कहा जाता है। छोटा नागपुर के पठार से संबंधित ही चित्तूपालू घाट (Chittupalu Ghat) और टैटारघाट (Tetarghat) क्रमश: २,००० फीट और २,६५० फीट ऊँचे हैं। इनके अतिरिक्त कई छोटे चपटे सिरे वाली अन्य पहाड़ियाँ भी पाई जाती हैं जो मूल ऊँचे पठार के ही भाग हैं। ये क्रमश: लालमाटिया पाट (Lalmattia Pat), ३,४०० फीट ; बागरू पठार (Bagru) ३,४६८ फीट और दूधा पाट, धूलूआ पाट और गढ़पाट ३,८०० फीट ऊँचे हैं। इस पठार पर साल, सागवान, जामुन, शीशम, हल्दू, सेमल, बांस, आदि के वृक्ष बहुत पाये जाते हैं।

सतपुड़ा पर्वतों के दक्षिण में ताप्ती नदी की घाटी है। नर्मदा और ताप्ती दोनों नदियों ने काफी चौड़े कछारी मैदान निर्मित किये हैं। नर्मदा का मैदान २०० मील लम्बा और १२ से ३५ मील तक चौड़ा है। इसकी औसत गहराई ५०० फीट है। ताप्ती का मैदान प्राय: १५० मील लंबा और ३० मील चौड़ा है। दोनों ही नदियाँ उन दरार घाटियों में होकर बहती हैं जो प्राचीन काल में हुई भूगर्भिक घटनाओं के फलस्वरूप बन गई थीं। दोनों नदियों की घाटियाँ समुद्र तल से प्राय: १,००० फीट ऊँची हैं अत: एक घाटी से दूसरी घाटी में जाने में कठिनाई पड़ती है। किंतु खंडवा और बुरहानपुर के निकट पहाड़ियाँ नीची हो जाने से मार्ग कुछ सुगम होगया है। इसी मार्ग द्वारा मध्य रेल मार्ग बम्बई से जबलपुर जाता है। यह विशेष स्मरणीय है कि जब सतपुड़ा पर्वत में अनेक दरारें पड़ीं तो सभी नदियाँ गहरी दरारी घाटियों में होकर बहने लगीं। ये गहरी घाटियाँ नदियों के आकार के अनुसार छोटी या बड़ी हैं। ये नदियाँ जब पठारों से नीचे उतरती हैं तो जल प्रपात बनाती हैं। जबलपुर के निकट नर्मदा नदी का धुआंधार प्रपात इसका मुख्य उदाहरण है। नर्मदा की घाटी में जबलपुर के निकट भारत के सर्वोत्तम श्वेत संगमरमर की चट्टानें मिलती



चित्र १४—जबलपुर के निकट धुंआधार प्रपात

हैं। नर्मदा और ताप्ती दोनों ही नदियाँ पठार के सामान्य ढाल के विरुद्ध बहती हैं क्योंकि जिन दरारों में होकर वे बहती हैं उनका ढाल पूर्व से पश्चिम की ओर है।

अरावली पहाड़ियाँ (Aravallis)—मालवा पठार के उत्तर पश्चिम में अरा-

वली की पहाड़ियाँ है जो लगभग पूर्व-पश्चिम दिशा में राजस्थान में लगभग ४०० मील की लंबाई में फैली हुई हैं। ये उत्तर पूर्व की ओर संकरी होकर टीले मात्र (Ridge) रह जाती है और दिल्ली के निकट दिल्ली की पहाड़ियों (Delhi Ridges) के नाम से समाप्त हो जाती है। अरावली पहाड़ियाँ १,००० से ३,००० फीट तक ऊँची हैं किंतु दक्षिण-पश्चिम में आबू के निकट इनकी सबसे ऊँची चोटी गुरुशिखर ५,६५० फीट है। श्री हैरो (A. M. Heron) का अनुमान है कि ये पहाड़ियाँ पृथ्वी के धरातल पर संभवतः सबसे प्राचीन हैं जो आज भी वर्तमान हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये प्राचीन पर्वत किसी समय उत्तर में हिमालय के उत्तरी पश्चिमी कोने तक और दक्षिण में लकद्वीप तक फैले थे। इन्होंने न केवल हिमालय के मुडावों को ही प्रभावित किया है वरन् पामीर और फरगना की श्रेणियों पर भी इनका प्रभाव पड़ा है। इनमें पूर्व-विध्यन युग में मोड़ पड़े हैं। दक्षिण के पठार के उथल-पुथल होने के कारण कालांतर में यह पहाड़ियाँ मौसमी क्षति द्वारा छिन्न भिन्न होकर काफी नीची हो गई। वर्तमान काल में यह पहाड़ियाँ टीलों के रूप में एक दूसरे के समानान्तर फैली हैं जिनके ढाल बहुत तीव्र हैं और सिरे प्रायः चपटे। इससे ज्ञात होता है कि ये क्षयीकरण के पर्वत (Mts. of Circum-denunation) हैं। उदयपुर के उत्तर-पश्चिम में ये लगभग ४,००० फीट ऊंची हैं किन्तु अलवर के निकट ये केवल १,८००-२,२०० फीट और दिल्ली के दक्षिण में १,००० फीट ही हैं। किन्तु मध्य में इनकी औसत ऊँचाई ३,५०० फीट है। आधुनिक काल में अरब सागर में लकद्वीप इसी श्रेणी के अवशेष हैं जो पश्चिमी तट के समुद्र में डूब जाने से बने हैं। श्री फरमर (Fermor) के अनुसार अरावली पर्वत होर्स्ट (Horst) प्रकार के पर्वत हैं जिसके पूर्व में राजस्थान की बड़ी सीमान्त दरार (Great Boundary fault) और पश्चिम में काल्पनिक दरार है।

अरावली पहाड़ियों को अनेक ऐसी नदियाँ पार करती हैं जो वर्षाकाल के अतिरिक्त सदैव सूखी रहती हैं। इनमें पश्चिम की ओर बहने वाली मुख्य नदियाँ माही और लूनी हैं जो मरुस्थल में बहकर अरब सागर में गिर जाती हैं। पूर्व की ओर बनास मुख्य नदी है जो चम्बल में मिलकर गंगा के मैदान में पहुँचती है। इन पहाड़ियों के कारण सम्पूर्ण राजस्थान दो असमान भागों में बँट गया है। उत्तरी-पश्चिमी और दक्षिण-पूर्वी। उत्तर-पश्चिमी भाग मुख्यतः रेतीला है। यही **थार का रेगिस्तान** (Thar Desert) कहलाता है। यह प्रायः ४०० मील लम्बा और १०० मील चौड़ा है। यहाँ के रेत के टीलों की स्थिति हवाओं की दिशा में समानान्तर [illegible] है। यद्यपि दक्षिणी भाग में जहां बहुत तेज आंधियां चलती हैं [illegible] जो वायु प्रवाह के समानान्तर (Transverse dunes) हैं। बालू के इन टीलों का ढाल हवाओं के रुख की ओर लम्बा, सरल तथा लहरदार है किन्तु दूसरी ओर (Leeward) इनका ढाल अधिक खड़ा है। कभी २ इन ढालों की ऊँचाई ४००-५०० फीट तक चली जाती है। अधिकांश टीले २-३ मील लम्बे और ५० से १०० फीट तक ऊँचे हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष बालू के ये टीले ५० मील की गति से [illegible] पूर्वी उत्तर प्रदेश के मथुरा और आगरा जिले की ओर बढ़ रहे हैं। अतः बालू के इस [illegible] प्रवाह को रोकने के लिये भारत सरकार ने मरुस्थल की सीमा पर वृक्षा-रोपण आरम्भ किया है।

इस मरुभूमि की उत्पत्ति के बारे में कई अनुमान लगाये गये हैं। साधारणतया इस भाग की अत्यधिक शुष्कता ही इसका मुख्य कारण है। कच्छ की खाड़ी की ओर

से आने वाली दक्षिण पश्चिमी मानसून हवायें अपने साथ समुद्र तट तथा निम्न सिंधु के बेसिन से रेत के बादलों को उठाकर लाती है और इन्हें देश के इस भाग में यत्र तत्र बिखेर देती है। पहाड़ों के अभाव के कारण वाष्प युक्त हवायें वर्षा बिल्कुल नहीं करती वरन् अत्यधिक ताप के कारण वाष्पीभवन क्रिया ही अधिक हो जाती है। अतः जल द्वारा रेत को समुद्र तक बहाकर ले जाने की क्रिया यहाँ नहीं होती। फलस्वरूप प्रति वर्ष रेत की मात्रा बढ़ती जाती है। दूसरा कारण यह भी है कि दिन और रात के बीच यहाँ तापक्रम भेद अधिक रहता है। अतः दिन में यहाँ की चट्टानें गर्मी पाकर बढ़ जाती हैं और रात में सर्दी के कारण कुछ सिकुड़ जाती हैं। इस क्रिया के निरंतर होते रहने के कारण चट्टानों में दरारें पड़ जाती हैं और उनमें टूट फूट होती रहती है इससे पर्याप्त मात्रा में रेत के कण निकलते हैं और चलने वाली वायु द्वारा ये कण और भी छोटे २ बनकर भूमि पर फैलते रहते हैं। इस रेत को उपजाऊ मिट्टी में परिवर्तित करने वाली किसी भी रासायनिक क्रिया का यहाँ पूर्ण अभाव है अतः रेतीली अनउपजाऊ मिट्टी बढ़ती ही रहती है। इस भाग की प्रधान नदी लूनी और उसकी सहायक जोजरी, बांडी और सूकरी है। यह मरुस्थली प्रदेश नितान्त ही वृक्ष-रहित नहीं है किन्तु थोड़ी बहुत वनस्पति भी पाई जाती है।

मरुस्थलीय प्रदेश में भारत की प्रमुख खारी पानी की झीलें-सांभर, लूनकरनसर, पचभद्रा आदि पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त बीकानेर डिवीजन में जिप्सम, लिग्नाइट कोयला और जोधपुर में संगमरमर और मुलतानी मिट्टी पाई जाती है। जैसलमेर जिले में मिट्टी के तेल पाये जाने की सम्भावना की जाती है।

राजस्थान के पूर्वी भाग में अरावली का एक छोटा भाग बूंदी की पहाड़ियों (Bundi Hills) के नाम से फैला है। इस भाग का अंत आगरा के निकट फतहपुर-सीकरी में होता है। राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग को चम्बल और उसकी सहायक नदियाँ बनास, कोठारी, खारी आदि सींचती है। इस प्रदेश में सर्वत्र ही लहलहाते खेत, मीठे जल और फलों के वृक्ष मिलते हैं। यह प्रदेश भी प्राचीन चट्टानों का बना होने से खनिज पदार्थों में धनी है। चाँदी-जस्ता-सीसा (उदयपुर में जावर खानों से), अभ्रक, घीया पत्थर (जयपुर, अजमेर व भीलवाड़ा जिलों में), मैंगनीज, एसबस्टस, पन्ना आदि उदयपुर जिले में पाये जाते हैं।

सौराष्ट्र और कच्छ (Saurastra & Rann of Cutch)—थार के मरुस्थल के दक्षिण पश्चिम में सौराष्ट्र का थैलीनुमा प्रायद्वीप है। इसकी लहरदार धरती मध्य में प्रायः ३-४ हजार फीट ऊँची है। अनुमान किया जाता है कि यह भाग प्राचीन काल में एक द्वीप था और कच्छ तथा खम्भात की खाड़ियाँ एक दूसरे से मिलती थीं। सौराष्ट्र के उत्तर में कच्छ का उजाड़ रेतीला और पहाड़ी भाग है। कच्छ का यह भाग पहले अरब सागर का ही एक अंश था जो अब उत्तर व उत्तर पूर्व की ओर से इसमें गिरने वाली छोटी-छोटी नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से भर गया है। उत्तर पश्चिम से लौटने वाले समय में यह खारी कीचड़ से भरा रहता है। कांप से भरा हुआ इसका चौरस धरातल सूर्य की गर्मी पाकर सफेद नमक के धरातल का रूप धारण कर लेता है। वर्ष के दूसरे भाग में यह नदियों के जल से भर जाता है। यह प्रायः २०० मील लम्बा और १०० मील चौड़ा रेतीला मैदान ही कच्छ का रन है। यहाँ गर्मियों में गदहे लोटा करते हैं।

दकन का मुख्य पठार (Deccan Tableland)—ताप्ती नदी के दक्षिण में

दकन का असली त्रिभुजाकार पठार है। इसका क्षेत्रफल लगभग २ लाख वर्ग मील है। इसके अंतर्गत मध्य प्रदेश, बम्बई का अधिकांश भाग, मैसूर, मद्रास आदि राज्य स्थित हैं। यह पठार प्राचीनकाल में मध्य जीवयुग और टर्शरी युग में धरातल में लम्बी दरारें पड़ जाने से हुए ज्वालामुखी उद्गारों से निकले लावा के जम जाने से बना है। लावा के ये जमाव पूर्व में अमरकंटक और सरगुजा तक, उत्तर-पश्चिम में कच्छ तक तथा दक्षिण में बेलगाँव और दक्षिण-पूर्व में राजमहेन्द्री तक फैले हैं। लावा की अधिकतम गहराई ७,००० फीट तक आंकी गई है किन्तु पूर्व और उत्तर की ओर यह कम है। कच्छ में लावा की गहराई २,५०० फीट, अमरकंटक में ५०० फीट और नागपुर के निकट ५० फीट तथा जबलपुर के निकट चूई और बड़ा शिमला की पहाड़ियों के निकट केवल २० से ३० फीट ही है। ज्वालामुखी के उद्गार से निकला यह लावा पैठिक लावा (Basic lava) है जो धीरे-धीरे अपने मुख से ६०-७० मील दूरी तक फैल गया है।

इस पठार की चट्टानें बहुत ही कठोर और पुरानी हैं विशेषत: आर्कियन और धारवाड़ युग की। इनमें कहीं भी प्राचीन अवशेष नहीं पाये जाते। ये चट्टानें या तो आग्नेय (Ignesous) हैं या रवेदार (Crystalline) हैं। इनके मुख्य उदाहरण ग्रैनाइट (granite), नीस (gneiss), बैसाल्ट (Basalt) बलुए-पत्थर (Sand stone), क्वार्टज (quartz), चूने के पत्थर (limestone) हैं। बैसाल्ट अधिकतर पहाड़ियों की चोटी पर हल्की परत के रूप में मिलती है। पठार की चट्टानें खनिज पदार्थों में बड़ी धनी हैं। यहाँ मध्य प्रदेश में मैंगनीज, बिहार में लोहा, मैसूर में सोना तथा अन्य स्थानों पर अभ्रक, मोनाजाइट, मैग्नेसाइट, बाक्साइट, लैटेराइट आदि खनिज मिलते हैं। इन्हीं चट्टानों से भारत के प्रसिद्ध हीरे भी प्राप्त हुए हैं। नदियों की घाटियों में निम्न गोंडवाना युग की कोयले की श्रेणियाँ पाई जाती हैं। यही कारण है कि भारत का ९८%कोयला इन्हीं क्षेत्रों से उपलब्ध होता है।

खनिज पदार्थों के अतिरिक्त बैसाल्ट चट्टानों से भवन निर्माण के लिए उत्तम पत्थर तथा सड़कों के लिए भी पत्थर मिलते हैं। इन्हीं चट्टानों से काली लावा मिट्टी प्राप्त होती है जिसमें लोहे के अंश मिले होने से अधिक उपजाऊ तत्व पाये जाते हैं। इसी में भारत के मुख्य रुई उत्पादक क्षेत्र फैले हैं।

पश्चिमी घाट (Western Ghats)—दक्षिणी पठार का पश्चिमी भाग पश्चिमी घाट और पूर्वी भाग पूर्वी घाट [illegible] कहलाता है। पश्चिमी घाट (Western Ghats), जिन्हें सह्याद्री (Sahayadris) भी कहते हैं, बम्बई से लगाकर धुर दक्षिण में कुमारी अंतरीप तक लगभग १,००० मील की लम्बाई में विस्तृत हैं। ये घाट सागर की ओर सीधे ढाल तथा [illegible] जाते हैं। पश्चिमी घाट का अरब सागर की ओर खड़ी [illegible] को प्रमाणित करता है कि कभी ऐसा निमज्जन हुआ [illegible] प्रदेश से विलग होगया जो अब अरब सागर में डूबा हु[illegible]वल: तृतीय जीव-कल्प है और गोंडवाना के अंतिम खंडन से सम्बन्धित हो सकता है। सामान्यत: ये घाट ३० मील से भी कम चौड़े हैं किन्तु दक्षिण की ओर ये ४० से ५० [illegible] चौड़े होगये हैं। ये घाट उत्तर दक्षिण दिशा में समुद्री भागों के समानान्तर और लगातार फैले हैं जिनकी औसत ऊँचाई ३,५०० से ४,००० फीट है। इन घाटों पर लावा की तहें पाई जाती हैं जिनके [illegible] की क्रियाओं द्वारा कट जाने से घाटों की आकृति सीढ़ीदार (Landing-

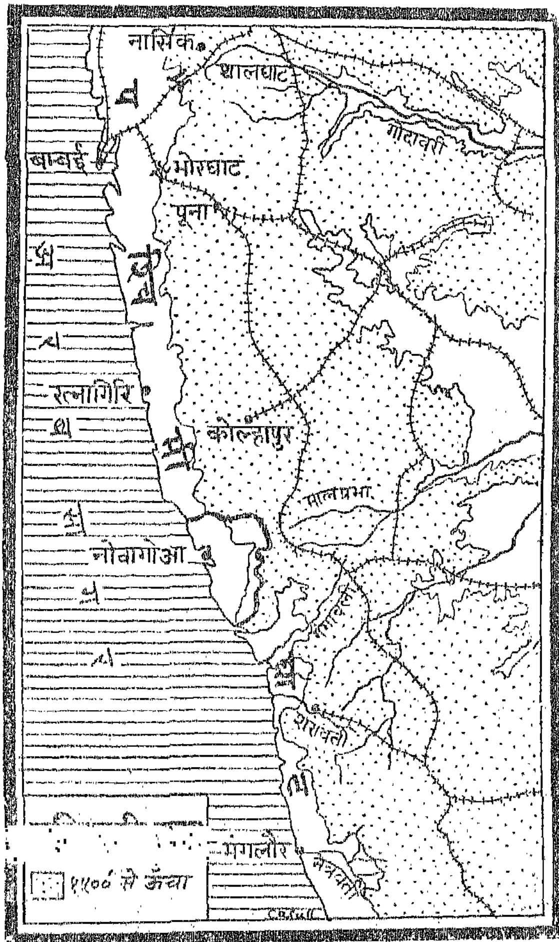
Stair) बन गई है। इन घाटों को कुछ ही स्थानों पर पार किया जा सकता है। उत्तर में स्थित दो दर्रों–थाल घाट (Thalghat) जो १,९१२ फीट ऊँचा है तथा भोर घाट (Bhorghat) जो २,०७२ फीट ऊँचा है -- में होकर ही मार्ग निकला है। पश्चिमी घाट के दक्षिणी भाग में वे कुमारी अंतरीप से धारवाड़ तक पुरानी मणिभ और परिवर्तित शिलायें---नीस, शिष्ट और चार्नोकाईट हैं किन्तु इनके उत्तरी भाग में दक्षिन के लावा फैले हैं अतः इनके सिरे चपटे हैं। इस भाग से भीमा, गोदावरी और कृष्णा नदियाँ निकलकर पूर्व की ओर बहती हैं और पूर्व की तापी और गोदावरी नदियों के बीच पश्चिमी घाट की एक श्रेणी सतमाला (Satmala) के नाम से और दूसरी श्रेणी भीमा और कृष्णा के बीच में महादेव के नाम से चली गई है। कृष्णा के उद्गम के निकट बम्बई राज्य का प्रसिद्ध स्वास्थ्यवर्धक स्थान महाबलेश्वर ४,७१७ फीट ऊंचा है।

दक्षिण की ओर मलाबार के उपरांत नीलगिरि की पहाड़ियों द्वारा ये घाट पूर्वी घाट से मिले हैं। घाट की सबसे ऊँची चोटी दोदाबेटा (Dodabeta) है जो ८,६५० फीट से अधिक ऊँची है। नीलगिरि के दक्षिण में अनामलाय (Anamalai) की पहाड़ियाँ है जो (Palghat) के दर्रे (१,००० फीट) द्वारा नीलगिरि से अलग हैं। यह दर्रा १५ मील चौड़ा है और इसके द्वारा पूर्वी और पश्चिमी तट के बीच सरलता से जाया जा सकता है। अनामलाय की एक शाखा पलनी (Palni) पहाड़ियों के नाम से उत्तर-पूर्व दिशा में फैली हुई है। दूसरी शाखा इलायची की पहाड़ियाँ (Cardamom) दक्षिण में फैली हुई है। नीलगिरी की मकरूती चोटी ८,३८० फीट; अनामलाय की अनायमुड़ी चोटी ८,८३७ फीट और पालनी की बम्वाड़ी शोला चोटी ८,११८ फीट ऊँची है।

पश्चिमी घाट समुद्र के बहुत निकट है वहाँ चट्टानें समुद्र के भीतर तक पहुँच गई हैं इसीलिए वहाँ नावों और जहाजों का चलाना खतरनाक है। पश्चिमी घाट से अनेक नदियाँ पश्चिमी ढाल पर तथा अनेक पूर्वी ढाल से निकलती हैं। पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों का मार्ग छोटा होने से बड़ी तेजी से बहती हैं अतः उनके मुहाने पर बहुत कम मिट्टी जमा हो पाती है किन्तु पूर्व की ओर बहने वाली नदियों का मार्ग अपेक्षाकृत लम्बा है अतः उनके निचले भाग में अधिक चौड़ी घाटियाँ बन गई हैं तथा उनके मुहाने के पास बड़े-बड़े डेल्टा बने हैं। जहाँ-जहाँ ये नदियाँ पूर्व की ओर पठारों पर या पश्चिम की ओर मैदानों पर उतरती हैं वहाँ बड़े-बड़े जल प्रपात बन जाते हैं। मैसूर में कावेरी नदी का सिवासमुद्रम प्रपात (३०० फीट ऊँचा), बेलगाम जिले में गोकक नदी पर गोकक प्रपात (१८० फीट), उत्तरी कनारा में शरवती नदी के जिरसप्पा प्रपात (८५० फीट); महाबलेश्वर के यना प्रपात (६०० फीट) आदि इनके मुख्य उदाहरण हैं। पश्चिमी घाट के अधिकांश प्रपातों का उपयोग जल विद्युत शक्ति उत्पादन के लिए किया गया है।

पूर्वी घाट (Eastern Ghats)—पूर्वी घाट पूर्वी समुद्र तटीय मैदान के समानान्तर महानदी की घाटी से दक्षिण में [illegible] पूर्वी दिशा में ५०० मील की लम्बाई में फैले हैं। ये पश्चिमी घाट [illegible] क्योंकि ये पश्चिमी घाट की तुलना में न तो अधिक ऊँचे ही हैं और न शृंखलाबद्ध ही। इन पहाड़ियों में उड़ीसा और उत्तरी सरकार के पूर्वी घाट, नल्लैमलाय, पालकोंडा, [illegible] तथा अन्य पहाड़ियाँ हैं। इन घाटों को काट कर महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि नदियाँ पश्चिमी भागों से पूर्व की ओर बहकर अपने डेल्टाओं में उपजाऊ मैदान

का सृजन करती हैं। ये घाट उत्तर पूर्व की ओर छोटा नागपुर की पहाड़ियों और सुदूर दक्षिण में नीलगिरि से मिल जाते हैं। अपने सारे प्रसार में पूर्वी घाट समुद्र से



चित्र १५—पश्चिमी घाट और तट

दूर रहते हैं और इस प्रकार एक चौड़ी तट की पट्टी छोड़ते चलते हैं। अस्तु, तटीय मैदान ५० से ८० मील तक चौड़ा है। अरावली की भाँति ये घाट भी पुराने मोड़दार पर्वतों के अवशेष हैं जिनका ढाल बड़ा धीमा है। इन घाटों की औसत ऊँचाई दक्षिण में २,५०० फीट तक है किन्तु कहीं-कहीं ये ५,००० फीट ऊँचे होगये हैं। उदाहरण के लिये [illegible] जिले में कोरलापुर ५,६८१ फीट; [illegible] ४,१८५ फीट; कोरापुट जिले में [illegible] ४,९७२ फीट; पाल लहारा में मलयागिरी ३,८९५ फीट; मयूरभंज में मेघासानी ३,८२४ फीट; [illegible] में [illegible] ३,६६६ फीट और गंजाम में महेन्द्रगिरि ४,९१६ फीट ऊँची है। पूर्वी घाट की पहाड़ियाँ कई तरह की शिलाओं

से बनी हैं—नीस, खोंडलाइट (Khondalite), चार्नोकाइट और आग्नेय तथा अवसादीय उत्पति की शिस्टों से ।

चित्र १६—पूर्वी तट

प्रायद्वीप की उत्पत—दक्षिण का प्रायद्वीप उस गोंडवाना महाद्वीप का भाग है जो किसी समय टेथिस महासागर के दक्षिण में फैला था । इन सब भागों में पाये जाने वाली मिट्टी के जमाव, पशु-पक्षी विशेष तथा वनस्पति विशेष आदि में विशेष समानता मिलती है जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, मैडागास्कर, भारत और अन्टार्कटिका में एक ही भूमि-सम्बन्ध स्थापित था । कई दृष्टिकोणों से यह प्रणाली अद्वितीय बनावट की है । धरातल से लेकर नीचे की सतह तक इनकी मिट्टी की एकरूपता, अतीत काल से पृथ्वी के इस भाग के धरातल के इतिहास को अब तक सुरक्षित रख सकने की इसकी क्षमता, क्रमशः नीचे

को धंसने वाले दरारी गड्ढों में मिट्टी की सतहों का विशेष ढंग से बनना तथा बहुमूल्य कोयला भंडारों का विभिन्न भागों में अविभाज्य रूप से सुरक्षित रहना आदि ऐसे तथ्य हैं जो यहाँ की चट्टानों को अद्वितीयता प्रदान करते हैं। अधिक प्राचीन होने के कारण इस भाग में अनेक पर्वत निर्माणकारी क्रियाओं के फलस्वरूप गोंडवाना महाद्वीप के भाग छिन्न भिन्न होकर अलग-अलग होगये तथा कुछ भाग तो सदा के लिए समुद्र के गर्भ में विलीन होगये।

मध्य प्रदेश में नर्बदा नदी के दक्षिण में गोंड राज्य में जो पुरानी चट्टानें मिली हैं उन्हीं के आधार पर इस समस्त भू-भाग को **'गोंड़वानालैंड'** की संज्ञा दी गई है। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग १७७२ में श्री मेड़लीकॉट (Medlicott) और १८७६ में फीस्मैंटल (Feistmantel) और १८६३ में ओल्डहम (Oldham) प्रभृति भूगर्भ-वेत्ताओं ने किया। बाद को यह नाम उन भूखंडों को भी दिया गया गया है जहाँ ऐसी ही चट्टानें और अवसाद (Sediments) पाये गये हैं। गोंड़वाना शिलाओं का विकास भारत में एक तिकोने प्रदेश के दो भागों में हुआ है। यह एक ओर दामोदर, सोन और ऊपरी नर्बदा की घाटियों में है जिसकी प्रगति लगभग पूरब-पश्चिम है। दूसरा भाग गोदावरी घाटी में फैला है। इस तिकोने क्षेत्र में एक गौण मेखला (belt) महानदी घाटी में फैली है। दार्जिलिंग, भूटान, और आसाम के उप-हिमालय प्रदेश में भी इसके कुछ प्रदर्शन मिलते हैं। काश्मीर में भी निचली गोंडवाना शिलायें मिलती हैं। भारत के पूर्वी तट पर ऊपरी गोंड़वाना शिलायें मिलती हैं।

इस प्रकार की चट्टानें १५ करोड़ वर्ष पूर्व बनी मानी जाती हैं। गोंडवाना युग का आरंभ, जब ये चट्टानें बनीं, एक सर्दी में हुआ। उस काल के आरंभ में सबसे नीचे शिलापिंड-पात्र (boulder-belt) और उनके ऊपर क्रमशः हरी जम्बशिलायें (Shale) और बालूशिलायें (Sand stone) जमीं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि उनका निर्माण सर्दी में हुआ है। इसके बाद के काल का मौसम गरम व आर्द्र था और इस समय कोयला गर्भित स्तर बिछाये गए। इस काल में वनस्पतियों का बाहुल्य था और इनका संग्रह ग्लोस्सोप्टेरिस शस्यजात (Glossopteris flora) के नाम से ज्ञात है। उसके बाद भूभाग क्रमशः शुष्क होने लगा और मौसम गरम होने लगा, क्योंकि उस समय के जमाव भौमिक आकार के हैं। इन जमावों में मुख्यतया लाल बालू शिलायें और जम्ब शिलायें हैं जिनमें सरीसृपगण (Reptiles), उभयचरण [illegible] आदि जन्तुओं के अवशेष मिलते हैं। फिर मन्द तथा आर्द्र परि-[illegible] काल आया और उस समय एक नया शस्यजात बढ़ा जिसका नाम [illegible] (Tilophyllum flora) है। [illegible] का दूसरे शस्य[illegible] काल में हुआ। यह भाग गोंड़वाना [illegible] के लगभग बीच का है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है गोंड़वाना स्तर बालू शिलाओं और जम्ब शिलाओं से निर्मित है। ये एकान्तर क्रम से स्थित है। जहाँ कहीं उनके बीच में कोयला-पात्र (Coal belt) आये हैं, तो प्रायः ऐसा देखा गया है कि अवसादन के [illegible] एक लघु-चक्र में पहले बालू शिलायें, उसके बाद जम्ब शिलायें और अन्त में कोयला है। आधुनिक काल में बालू शिलायें पहाड़ियाँ बन गई हैं और जम्ब शिलायें घाटियों के रूप स्थित हैं।

प्राचीन युग में बनी इन चट्टानों में आधुनिक भारत की बड़ी भारी कोयला राशि [illegible] पाई जाती है। गोंड़वाना कोयले का संचय लगभग २००,००० लाख टन

है, किन्तु इसमें से केवल ५,०००० लाख टन ही बढ़िया श्रेणी का है। कोयले के ये क्षेत्र रानीगंज, बाराकर उप-समुदायों में पाये जाते हैं। इनमें कोयले की तहें २० फीट से लगाकर ८० फीट तक मोटी पाई जाती हैं।

बाराकर-रानीगंज और पचमढ़ी उप-समुदायों में मिलने वाली बालू शिलायें इमारतें बनाने के लिए बहुत उपयोगी है। बाराकर बालू शिलायें चक्की बनाने के काम में भी आती हैं। कोयला क्षेत्रों में अग्नि मिट्टीयाँ भी पाई जाती हैं, जो बर्तन व ईंटें बनाने में उपयोगी हैं। कई भागों में वर्ण 'मिट्टी' (Ochre) और लिमोनाइट श्रेणी का लोहा भी मिलता है।

भारत का प्रायद्वीप बहुत ही पुराना भू-भाग है जो अति प्राचीन युग में टेथिस नामक महासागर के दक्षिण में अवस्थित था। इस भूभाग का विस्तार बहुत अधिक था। इसके अंतर्गत दक्षिण-अमरीका, दक्षिण अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया और अण्टार्टिका भूखंड थे। इस सारे भूखंड का नाम भूगर्भ विशारदों ने 'गोंडवानालैंड' की संज्ञा दी थी। कई युगों से भूमि के नग्नीकरण (Denudation) और मौसमी क्षति (Weathering) के परिणाम-स्वरूप ही भारत का आधुनिक रूप बना है। कठोर शिला-समूह, जो मौसमी प्रहारों का सामना कर चुके हैं, आज पहाड़ के रूप में खड़े हैं। उन्हीं में जो कुछ कोमल थे वे आज घाटी और मैदान बन गये हैं। यह भू-पपड़ी (Earth Crust) के एक स्थायी खंड (Stable-landmass) का सूचक है। यद्यपि विभंग (faulting) और दीर्घकालीन भू-चलनों (Secular movements) का इस पर थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ा है, फिर भी उप: कल्प-काल (Pre-Cambrian) के भू-चलनों के कारण अधिक विचलित नहीं हुआ है। वह मुख्यत: पुरानी रवेदार (Crystalline) और परिवर्तित शिलाओं से बना है जो कुछ स्थानों में बाद के अवसादों और लावा के बहाव से आवृत है। उष: कल्प-काल से समुद्री शिलायें उसके किनारों में ऊपरी द्वितीय जीव-कल्प (Upper Mesozoic) और तृतीय जीव-कल्प (Tertiary) में जम गयी हैं। लेकिन ये कुछ अवसादों में गोंडवाना कल्प में नदीय और झील-अवसादों से बनी हैं।

गोंडवानालैंड का विभंजन (Disruption of Gondwanaland) पृथ्वी की सबसे ऊपरी तह सब तहों में हल्की होती है। [illegible] यह ग्रैनाइट और नीस चट्टानों की बनी है और इसमें सिलिका (Silica) और एल्यूमिनियम तत्व अधिकता से पाये जाते हैं। इसलिये इसका संक्षिप्त नाम 'सियाल' (Sial) रखा है। इस तह से नीचे वाली तह बसाल्ट जैसी भारी चट्टानों से बनी होने के कारण सबसे ऊपर वाली तह से भारी होती है। इसका घनत्व ३.५ है। इसमें सिलिका और मैगनेशियम तत्व प्रधान होते हैं। अत: इसका नाम 'सीमा' (Sima) रखा गया है। सीमा-परत से सागरों की तलहटी बनती है।

श्री स्विस (Suess) नामक आस्ट्रेलियाई भूगर्भशास्त्री ने कल्पना की थी कि महाद्वीपों का वर्तमान भाग जो अधिक कठोर पदार्थों से बना है [illegible] थे। वर्तमान [illegible] कम कठोर भाग पहले [illegible] थे। [illegible] भौगोलिक हलचलों के बीच के समय में पुराने [illegible] टूट गये तथा [illegible] विस्तार बढ़ गया। कम कठोर भागों के क्षेत्र में महासागर की तलहटियाँ बन गईं और स्थल रूप हो गईं। इस सिद्धान्त का प्रमाण भूमध्यसागर है जो प्राचीनकाल के टेथीस महासागर का अवशेष है।

सन् १९१२ में जर्मनी के जलवायु विज्ञानवेत्ता श्री वेगनर (Wagner) ने यह साध्य रखा कि 'सियाल' का पिंड (जिससे महाद्वीप बने हैं) 'सीमा' के घने तत्व पर तैर रहा है। उनके अनुसार संसार के सारे महाद्वीप आदिकाल में एक साथ जुड़े हुए थे और यह मिश्रित पिंड '**पैन्जिया**' (Pangea) कहलाता था। इसके चारों ओर एक गहरा महासागर था, जिसे '**पंथालैसा**' (Panthallasa) कहते थे, और इस स्थल पिंड का कुछ भाग उथले जल से ढका था। कुछ समय पश्चात् कुछ अप्रत्यक्ष कारणों से इस स्थल पिंड का कुछ भाग पश्चिम और उत्तर की ओर खिसक गया। फलतः उत्तर तथा दक्षिण अमरीका बन गये। विभजन का यह कार्य दीर्घ काल तक चलता रहा। सबसे पहले आस्ट्रेलिया और मलाया द्वीप समूह आदि स्थल से अलग हुए। फिर दक्षिण अफ्रीका से दक्षिण अमरीका का भूखंड अलग हुआ और सबसे अंत में भारत और मडेगास्कर के बीच का स्थल पुल (जिसे लेमूरिया (Lemuria) कहते थे) अलग हुआ। इस विभजन के फल-स्वरूप अमरीका और यूरोप-अफ्रीका के बीच आन्ध्र महासागर बन गया तथा भारत और अफ्रीका के बीच अरब सागर की उत्पत्ति हुई।

श्री वेगनर के अनुसार प्रारंभिक कल्प (Paleozoic Era) में सारे महाद्वीप 'पैन्जिया' के भाग थे किंतु 'परमो-कारबन युग' (Permo-Carboniferous Era) में यह स्थल समूह दो खंडों में चटक गया—टैथिस महासागर का उत्तरी तथा दक्षिणी भाग। मध्य जीवयुग (Mesozoic) में उत्तरी और दक्षिणी भाग का पुनः वितरण पूर्वी और पश्चिमी भागों में हो गया। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण अमरीका, अफ्रीका, एशिया, आस्ट्रेलिया और अन्टार्टिका महाद्वीप एक दूसरे से अलग हो गये और इनके बीच में नये बड़े महासागर उपस्थित हो गये।

वेगनर का यह सिद्धान्त निम्न कारणों से मान्य हुआ है —

(१) ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका तथा प्रायद्वीपीय भारत के पठार पर एक ही प्रकार की चट्टानों के समूह मिलते हैं जिनका भौगर्भिक इतिहास और प्राकृतिक बनावट भी एक सी है।

(२) आन्ध्र महासागर के दोनों किनारों की वनस्पति और जीवजन्तु तथा उनके अवशेष एक से हैं - ग्लोस्पोटेरिस शस्यजात के। भारत, मेडेगास्कर और दक्षिणी अफ्रीका के जल-क्षेत्रों में एक ही सी मछलियाँ और अन्य सरीसृप पाये जाते हैं। भूतपूर्व मध्य भारत में क्रिटैशियस काल में जो 'दानवसरस' नामक भीमकाय जन्तु पाया जाता था उसी जन्तु के अवशेष पेटेगोनिया, ब्राजील, यूरेग्वे और मेडेगास्कर में मिले हैं। इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों किनारे किसी समय एक थे।

(३) प्राचीन काल के भूखंड के टूट जाने पर उसमें 'आरे की दरोती जैसी व्यवस्था' (Jigsaw Fit) पायी गई है। जिसके एक ओर उत्तर और पश्चिम यूरोप तथा पश्चिम अफ्रीका की सीमान्त रेखायें थी और दूसरी ओर उत्तर और दक्षिण अमरीका थे। कुछ विशेष भागों को छोड़कर ब्राजील का उभड़ा हुआ भाग गिनी की खाड़ी में भली प्रकार सटाया जा सकता है। उत्तरी अमरीका की सीमांत रेखा ठीक प्रकार से स्कैंडेनेविया और पश्चिम यूरोप के कटानदार भागों से सटायी जा सकती है। इस प्रकार इथोपिया और इरीट्रिया का उभड़ा हुआ भाग पश्चिमी भारत और पाकिस्तान की तट रेखा के टेढ़े भाग में उपयुक्त रूप से सटाया जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में यह सब भाग सम्बद्ध थे।

(४) विशाल हिम-आवरण, 'जो परमो कारबनयुग' में पृथ्वी के एक बहुत बड़े भाग पर फैला हुआ था, दक्षिण अमरीका, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण भारत और आस्ट्रेलिया पर अपने चिन्ह छोड़ गया है। भारत में हिमावरण के चिन्ह, पत्थरों पर खरोंचे आदि विशेषत: राजमहल से गोदावरी घाटी और रानीगंज से नागपुर तक मिलते हैं। डा० वाडिया के अनुसार हिमावरण का मुख्य केन्द्र अरावली पर्वत थे, जिनसे चारों ओर हिमानियाँ बहती थीं। इससे यह प्रकट होता है कि ये सारे प्रदेश, जो अब भिन्न भिन्न महाद्वीप हैं, पहले एक ही पिंड के अंग थे।

इस प्रकार आदि भूखंड को विभंजन करने वाले ये परिवर्तन 'इयोसीन युग' के आरंभ में हुए। इस समय एक ओर गोंड़वानालैंड विभिन्न भूभागों में टूट टूटकर अलग हुआ जिनसे कुछ भागों में भूमि समुद्र में डूब गई और कहीं नये महाद्वीपों का आविर्भाव हुआ, वहाँ दूसरी ओर टैथिस महासागर के गर्भ से हिमालय का जन्म हुआ। 'क्रिटैसियश युग' के अन्त में प्रायद्वीप के धरातल पर भूपर्पटी की दरारों (Fissures) से लावा के बहाव निकले। ये बहाव दकन ट्राप (Deccan Trap) के रूप में भूतल पर बड़े क्षैतिज स्तरों (Horizontal sheets) के आकार में फैले हैं। ये प्राय: भूमि के चलन से प्रभावित नहीं हुये। इस प्रकार के ट्राप बंबई, सौराष्ट्र, मध्य प्रदेश एवं आंध्र के विशाल भू-भाग में फैले हैं। इन दरारों से अनुमानित ४००,००० घन मील लावा पदार्थ निकला जो हिमालय के वजन और आयतन से भी अधिक माना जाता है।

दकन ट्राप को मौसमी क्रियाओं ने कई स्थानों पर नष्ट कर गहरे काले रंग की मिट्टी का निर्माण किया है जो अपनी विशेषताओं के कारण कपास के उत्पादन में उत्तम मानी जाती है। इनसे लैट्राइट मिट्टीयों का भी जन्म हुआ है। इसमें लोहे की मात्रा अधिक किंतु चूना कम होता है। दकन ट्राप के खनिजात्मक लक्षणों में आश्चर्यजनक एकरूपता पाई जाती है। ये डोलैराइट अथवा बसाल्ट जाति के हैं। इनका आपेक्षिक घनत्व २.६ है। इनका रंग गाढ़ा भूरा, गाढ़ा हरा मिला भूरा होता है। इनका उपयोग भवन निर्माण और सड़क बनाने में किया जाता है। बम्बई और मध्य प्रदेश के ट्रापों में बाक्साइट के उत्तम भंडार मिलते हैं।

पश्चिमी घाटों के दक्षिणी भागों में नीलगिरी, अनामलाय, पालनी आदि पहाड़ियों के ऊंचे ढालों पर घने वन-प्रदेश मिलते हैं जिनमें टीक, इबोनी, रोजवुड प्रभृति वृक्ष मिलते हैं। केरल तथा मैसूर के राज्यों में इन घाटों के ढालों पर चाय, कहवा, सिंकोना, इलायची और रबड़ के बगीचे मिलते हैं।

(ग) सतलज-गंगा का मैदान (Sutlej-Gangetic Plain) :—

प्रायद्वीप और बाहरी प्रायद्वीप के बीच में ये मैदान भूमि की पपड़ी के अवनमन (Depression) को सूचित करते हैं जो प्लीस्टोसीन तथा आधुनिक कालों में बने हुए अवसादों (Sediments) द्वारा पाट दिया गया है। ये बालू और मिट्टी की तहों के बने हैं। हिमालय पर्वत के दक्षिण में भारतवर्ष का ही नहीं संसार का सबसे अधिक उपजाऊ और घनी जनसंख्या वाला भाग सतलज-गंगा का विस्तृत मैदान है। इसका क्षेत्रफल ३,००,००० वर्ग मील है। यह मैदान पूर्व में ९० मील से लगा कर पश्चिम में ३०० मील चौड़ा है तथा १५०० मील की लम्बाई में फैला है। इस मैदान का ढाल बड़ा समतल है अतः ऊँचे भाग बहुत ही कम हैं। अरावली पर्वत श्रेणी को छोड़ कर कोई भी भाग समुद्र तल से ५०० फुट से अधिक ऊँचा नहीं है इस मैदान की

गहराई भी काफी है। उस मैदान के धरातल की काप मिट्टी की मोटाई यद्यपि अभी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुई है परन्तु भूमि में खुदाई के कुछ प्रयोगों से प्रकट हुआ है कि उसकी मोटाई पृथ्वी की ऊपरी सतह से १,३०० फीट तक तथा समुद्री-सतह से १,००० फीट नीचे तक है। पातालतोड़ कुओं की खुदाई के लिए जितने भी छिद्र हुए। सब पथरीली चट्टानों तक पहुँचने में असफल रहे हैं यहाँ तक कि उनकी काप मिट्टी की अन्तिम तह तक भी पहुँचने का कोई चिन्ह नहीं पाया गया है। श्री ओल्डहम (Oldham) के अनुसार इस मिट्टी की मोटाई उसकी उत्तरी सीमा के निकट १,५०० फीट है। बुर्राड के मतानुसार मसूरी के दक्षिण की दरार घाटी २० मील गहरी है। दिल्ली व राजमहल की पहाड़ियों के मध्य इसकी मोटाई सर्वाधिक है। राजस्थान व राजमहल तथा आसाम के मध्य यह उथली है। इसकी नीचे की सतह न तो समतल प्रतीत होती है और न एक सार ही वरन् वह असमान व ऊँची नीची है। इसके नीचे दक्षिणी पठार के उत्तरी किनारे तथा हिमालय पर्वत के दक्षिणी किनारे छिपे हैं। इस मैदान में सिन्ध का बड़ा भाग (पश्चिमी पाकिस्तान), उत्तरी राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, उड़ीसा और पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल व आसाम का आधा भाग सम्मिलित है।

यह मैदान सिन्ध, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बना है। यह मैदान वास्तव में पहाड़ों की धूल है।[1] अतः यह बहुत ही उपजाऊ है। इस मैदान के बीच में अरावली पर्वत आ जाने के कारण सिन्ध और उसकी सहायक नदियाँ (झेलम, चिनाब, रावी, व्यास तथा सतलज) पश्चिम में और गंगा तथा उसकी सहायक नदियाँ (यमुना, गंडक घाघरा, गोमती, सरयू, सोन) तथा ब्रह्मपुत्र पूर्व में बहती हैं। अरावली पर्वत इन दोनों नदियों के झुण्डों के बीच में जलविभाजक का काम करता है। अतः इसी मैदान का पश्चिमी और पूर्वी भाग क्रमशः पश्चिमी और पूर्वी मैदान कहलाते है। पश्चिमी मैदान का ढाल उत्तर से दक्षिण की ओर है और पूर्वी मैदान का ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है।

पश्चिमी मैदान (Western Plains)—पश्चिमी मैदान का अधिकांश भाग (जिसमें पश्चिमी पंजाब और सिन्ध सम्मिलित है) अब पाकिस्तान में चला गया है। इस भाग में मिट्टी के टीले अधिक पाये जाते हैं। कहीं-कहीं इन टीलों के बीच में नीची जमीन भी मिलती है जिसे 'तल्ली' कहते हैं। वर्षा के दिनों में यह तल्लियाँ पानी से भर कर एक तरह की झीलें बन जाती है इन्हें 'ढाढ' कहते है। पश्चिमी मैदान अधिकतर सूखा है अतः सिचाई के साधनों की प्रचुरता है।

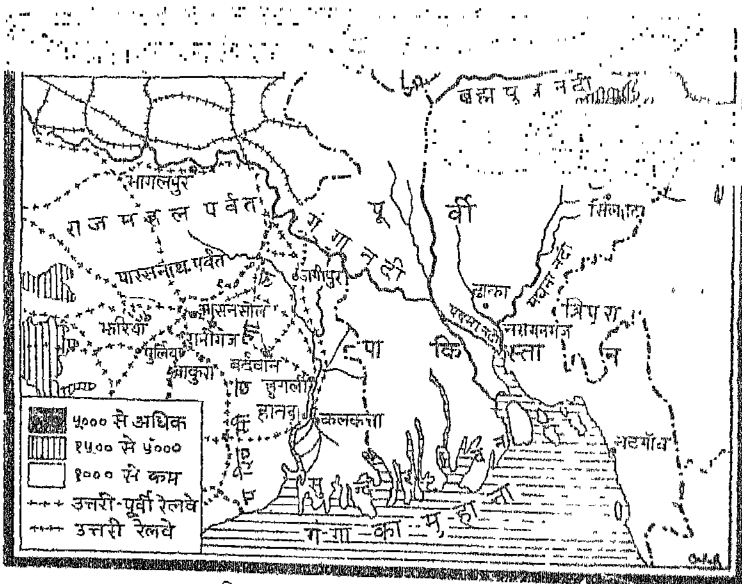
पूर्वी मैदान (Eastern Plains)—इस मैदान का पूर्वी भाग ही वास्तव में मुख्य मैदान है। इस मैदान की गहराई बहुत अधिक है। प्रति वर्ष गंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा लाई गई बारीक काप मिट्टी की तहें पर तहें जमती जाती है अतः हजारों फीट की गहराई तक खुदाई करने पर भी पुरानी चट्टानों का पता नहीं चलता। गंगा के मैदान को धरातल की ऊंचाई सिंचाई के विचार से दो भागों में बांटा गया है बांगर और खादर। बांगर (Bangar) वह जमीन कहलाती है जो कुछ ऊँची होती है और जिसे नदियों ने बहुत पहिले बनाया था। खादर (Khadir) उस नीची भूमि को कहते है जिसमें नदियाँ अब भी बहती है और अपने साथ लाई हुई मिट्टी को जमा करती जा रही हैं।

1. T. W. Holderness, Peoples and Problems of India, p. 34.

बाँगर और खादर—गंगा का सारा मैदान इस बांगर और खादर नामक ऊँची नीची जमीन से बना हुआ है। बांगर की ऊँचाई कही कही ८० फीट है लेकिन ऊँचाई मे इस तरह उतार और चढ़ाव है कि सरसरी दृष्टि से देखने पर बांगर और खादर मे बहुत ही कम अन्तर दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि इस मैदान मे धरातल का उतार चढाव समुद्री लहरो की तरह लहराता हुआ मालूम होता है।

बागर के मैदान उत्तर प्रदेश में बहुत पाये जाते हैं लेकिन खादर की बहुतायत बिहार और बगाल मे विशेष रूप से है। पंजाब की तरह उत्तर प्रदेश मे भी कही २ बालू के ढेर पाये जाते है जिन्हे 'भूड' कहते है। यह भूड़ (Bhoors) पुराने जमाने मे पानी के बहाव से बन गये थे लेकिन सिंध के मैदान की तरह हवा द्वारा बने हुए बालू के टीले गंगा के मैदान में नही मिलते क्योकि इस मैदान मे बालू और सूखी मिट्टी कम पाई जाती है। बागर की पुरानी जमीन में कही २ कंकड़ ज्यादा पाये जाते हैं। यह कंकड़ चूने वाली मिट्टी के जम जाने मे बने है। इनका फैलाव बिहार मे (तिरहुत जिले में) अधिक है।

गंगा नदी का डेल्टा लगभग ५०,००० वर्ग मील मे फैला हुआ है। इसका धरातल समुद्र की सतह से बहुत ही कम ऊंचा है अतः समुद्र मे उठने वाले ज्वार इसके अधिकाश भाग को पानी से ढक लेते है और इसलिये यह भाग अधिकतर दलदल बना रहता है। इस डेल्टा के ऊपरी भाग में कही २ कुछ टीले या नदियों के पुराने



चित्र १७—गंगा ब्रह्मपुत्र का डेल्टा

किनारे चर्स (Chars) भी पाये जाते हैं अतः लोग गांव बनाकर इन्हीं पर बस गये है। नीची भूमि को बिल (Bil) कहते है। इनमे जूट बोने के लिए पर्याप्त जल मिल जाता है।

ब्रह्मपुत्र का मैदान—गंगा के डेल्टा के उत्तर-पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी का मैदान मिलता है । यह गारो और हिमालय पहाड़ के बीच में फैला हुआ एक लम्बा और पतला मैदान है जिसमें ब्रह्मपुत्र नदी की बाढ़ का पानी पहाड़ से लाई हुई बारीक मिट्टी को हर जगह फैला देता है । पानी में मिली हुई मिट्टी की मात्रा इतनी होती है कि पानी के बहाव में जरा सी रुकावट पड़ने पर ढेरों मिट्टी इकट्ठी हो जाती है और पानी का बहाव इधर उधर हो जाता है । यही कारण है कि ब्रह्मपुत्र नदी में द्वीप बहुत पाये जाते हैं । ब्रह्मपुत्र की घाटी में चावल, जूट तथा चाय पैदा की जाती है ।

भाबर प्रदेश (Bhabbar)—जहाँ हिमालय पर्वत और सतलज गंगा का मैदान मिलते हैं वहाँ हिमालय पर्वत से निकलने वाली असंख्य धाराओं ने अपने साथ पहाड़ से टूट कर गिरे हुए पत्थरों के छोटे २ टुकड़े काफी गहराई तक जमा कर दिये हैं । इन कंकड़-पत्थरों से ढका हुआ भाग 'भाबर' कहलाता है । इस तरह के पथरीले ढाल हिमालय के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले हुये हैं । यह प्रदेश ५ मील तक चौड़ा है । इस ढाल को पार करते समय केवल बड़ी २ नदियों का पानी ही ऊपर रहता है । छोटी २ धाराओं का पानी इन्हीं कंकड़ों के ढेर के नीचे मिट जाता है । इससे इस प्रदेश में लम्बी जड़ों वाले बड़े २ पेड़ तो अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु छोटे पौधों और खेतों तथा जनसंख्या का प्रायः अभाव है ।

तराई प्रदेश (Tarai)—भाबर प्रदेश के अधिक आगे जाकर भाबर के नीचे २ बहने वाला पानी ऊपर धरातल पर प्रकट हो जाता है । इससे बड़े २ दलदल हो गये हैं । इन दलदलों में ऊंची घास, घने पेड़ और असंख्य जंगली जानवर पाये जाते हैं । इन भयानक जंगलों में मलेरिया के कारण जनसंख्या अधिक नहीं है । इस रोग ग्रस्त प्रदेश को 'तराई' कहते हैं । अधिक पश्चिम में वर्षा कम होने के कारण सिन्ध के मैदान और हिमालय के ढालों के बीच में भाबर तो बहुत है पर तराई का अभाव है । भाबर की अपेक्षा तराई का प्रदेश अधिक चौड़ा है । आजकल उत्तर प्रदेश की सरकार इस भाग को साफ कर मशीनों द्वारा सामूहिक खेती करवा रही है । तराई को प्रायः 'No-man's Land' कहते हैं ।

बड़े मैदान की उत्पत्ति—हिमालय पर्वत की रचना के कारण उसके और प्रायद्वीपी भारत के मध्य में एक गहरी खाई बन गई जिसमें टेथिस सागर का कुछ अवशिष्ट जल खाड़ियों के रूप में भरा हुआ रह गया । इनमें से उपर्युक्त खाई के पश्चिम की ओर के टेथिस सागर के अवशेष को 'सिन्ध की खाड़ी' (Gulf of Sind) और पूर्व की ओर के अवशेष को **'पूर्वी खाड़ी'** (Eastern Gulf) के नाम से पहचाना जाता है । इन दोनों को वह उच्च प्रदेश अलग करता था जो अब दिल्ली और कालका के बीच में है । इन खाड़ियों को वर्तमान अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी के वे उत्तर भाग कहे जा सकते हैं जो अब नष्ट हो चुके हैं । हिमालय पर से निकलने वाली आरम्भिक नदियों ने हिमालय पर से पत्थर, कंकड़, रेती और मिट्टी ला-लाकर और इन्हें इन खाड़ियों के तल प्रदेश पर क्रमशः जमा कर धीरे २ इनके स्थान पर भूमि की रचना करके इन खाड़ियों को नष्ट कर दिया । इस प्रकार नव-सर्जित हिमालय की आरम्भिक नदियों द्वारा जो मिट्टी का एक बड़ा समतल प्रदेश हिमालय और प्रायद्वीपी भारत के मध्य में बना वही आज सिन्धु-सतलज-गंगा का मैदानी प्रदेश कहलाता है ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है लगभग पौने दो लाख वर्ष पूर्व हिमालय के उत्थान के कारण नष्ट होने से इसके द्वारा बहने वाला हिमालय की तलैटी का जल

अनेक नदियों के रूप में दक्षिण की ओर बहने लगा। पंजाब और उत्तर प्रदेश का सीमान्त इस घटना के स्वरूप कुछ ऊँचा उठा जिसके परिणाम-स्वरूप हिमालय के पूर्व भाग का जल जो पहले इण्डोब्रह्म (Indo-brahma) नदी के प्रवाह के साथ पश्चिम की ओर जाता था, अब इस अवरोध के कारण उस दिशा में जाने के बदले दक्षिण-पूर्व की ओर ब्रह्मपुत्र, गण्डक, घाघरा, गंगा, यमुना आदि नदियों के रूप में बहने लगा और इस प्रकार इन नदियों की उत्पत्ति हुई। उस समय बंगाल का अस्तित्व नहीं था। इन नदियों ने मिट्टी पाट पाट कर बाद में बंगाल के भू-पृष्ठ का निर्माण किया है। उपर्युक्त प्राकृतिक अवरोध के कारण पश्चिम की ओर का इण्डोब्रह्म नदी का जल व्यास, सतलज, चिनाब, झेलम, सरस्वती और सिंध नदी के रूप में दक्षिण पश्चिम की ओर प्रवाहित होने लगा। उस समय बंगाल की भांति सिन्ध, पश्चिम राजस्थान और उत्तर गुजरात का अस्तित्व भी नहीं था—ये प्रदेश उस समय समुद्र के गर्भ में थे किन्तु इन नदियों ने मिट्टी बिछा बिछा कर बाद में इन प्रदेशों की सृष्टि की।

प्रसिद्ध भूगर्भवेत्ता श्री एडवर्ड स्विस (Edward Swiss) के मतानुसार यह मैदान प्रायद्वीप की कठोर भूमि (resistant mass) के सामने उस अग्रिम समुद्र के रूप (fore-deep) में है जहां से टिथिस सागर के तल की मिट्टी दक्षिण की ओर फेंक दी गई थी और जो प्रायद्वीप के सामने जम गई है। सिडनी बुर्राड के मत के अनुसार यह मैदान एक दरार घाटी के रूप में है जहां पर कि विस्फुटित दरार के समय भूमि की सतह धरातल से नीची चली गई। इस विस्फुटित दरार की बनावट—जो प्राय: १,५०० मील लम्बी और सैकड़ों फीट गहरी है—इसी मत के अनुसार हिमालय पर्वत श्रेणियों के उत्थान से संबंधित है किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं है। भूगर्भ-शास्त्रियों का मत तो यही है कि यह मैदान भूमि की ऊपरी सतह में साधारण गहराई का एक समुद्र था जो वहाँ की नदियों द्वारा लाई गई कांप मिट्टी के जमा होने से वर्तमान मैदान के रूप में परिवर्तित हो गया।

बड़े मैदान का महत्व—इस मैदान का विस्तार बहुत है। यह भारत के लगभग एक तिहाई क्षेत्रफल को घेरे हुए है और सम्पूर्ण देश की लगभग ४४ प्रतिशत जनसंख्या यहाँ रहती है। यद्यपि भौगोलिक तथा आर्थिक दृष्टि से यह प्रदेश भारत का सर्वोत्तम भाग है किन्तु भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से इसका महत्व अधिक नहीं है। क्योंकि यह भारत का नवीनतम भाग है और इसकी बनावट सरल है। अत: इस भाग में खनिज पदार्थों का नितान्त अभाव है। किन्तु भूमि समतल होने और रेल मार्गों व नदियों का जाल बिछा होने के कारण इसी भाग में देश के बड़े बड़े व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र हैं तथा जनसंख्या भी घनी है। सिन्ध, सतलज, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बना होने और उन्हीं से सिंचित होने के कारण यह मैदान **'पर्वतों की देन'** कहलाता है। इस मैदान की कुछ मुख्य विशेषतायें ये हैं :—

(१) भारत के शेष भाग की तरह इस विशाल मैदान की जलवायु भी गरम है और इसको अनेक नदियाँ सींचती हैं। अत: गरम जलवायु और अनेक नदियों के कारण यह मैदान बड़ा उपजाऊ है।

(२) यह मैदान बड़ा चौरस है अत: यहाँ नदियाँ बड़ी धीरे २ बहती हैं अत: इनका पानी आसानी से मिट्टी में समाकर अच्छी तरह भूमि को सींच देता है।

इसी कारण इस मैदान में नदियों के भाग में कुएं आसानी से खोदे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन नदियों में बहुत दूर तक नावें भी चलाई जाती हैं। भूमि चौरस होने के कारण यहाँ रेल मार्ग और सड़कें सुगमता से बनाई जा सकी हैं।

(३) पहाड़ों से आने वाली सैकड़ों नदियाँ अपने साथ महीन रेत और मिट्टी ले आती हैं। बरसात के मौसम में बाढ़ के समय नदियाँ इस मिट्टी को मैदान में बिछा देती हैं और उसके बहुत बड़े भागों को नई और उपजाऊ मिट्टी की तह से ढक देती है। यह कार्य लाखों वर्षों से होता आया है जिससे यह उपजाऊ मिट्टी अब बहुत गहरी हो गई है अतः इस पर बिना खाद के ही उत्तम फसलें तैयार हो जाती हैं।

(४) इसी मैदान की चौरस भूमि सभ्यता की जन्म भूमि रही है। प्राचीन समय में झुण्ड के झुण्ड आक्रमणकारी मध्य एशिया से यहाँ आकर बड़ी २ नदियों की घाटियों में बस गये। जब नदियों ने अपना मार्ग बदला तब मनुष्यों को भी उनके साथ २ चलना पड़ा। इस प्रकार सारे मैदान पर आजकल केवल बड़े २ नगर और गाँव ही दिखाई नहीं देते परन्तु पुरानी बस्तियों के खण्डहर, टूटे-फूटे किले और उजाड़ नगरों की पंक्तियाँ भी देख पड़ती हैं।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि भारत का यह मैदान एक विशाल और विस्तृत खेत है। शताब्दियों से नदियाँ इस खेत पर माली का काम कर रही हैं। इन मालियों ने धरती को एक सा कर दिया है जिससे उसे सींचना और जोतना सुगम हो गया है। उन्होंने मिट्टी को खूब मिला दिया है जिसके कारण वह अधिक गहरी और उपजाऊ हो गई है। उन्होंने उसे ढीला और मुलायम कर दिया है जिससे पौधे अपनी जड़ें सुगमता पूर्वक फैला सकते हैं। वे उसे तर रखते हैं और इसलिये पौधों को अपने लिये भोजन मिल जाता है।

समुद्रतटीय मैदान (Coastal Plains)—दक्षिणी प्रायद्वीप के पूर्वी और पश्चिमी ओर पूर्वी तथा पश्चिमी घाटों और समुद्र के बीच में समुद्र तटीय मैदान स्थित हैं। ये मैदान या तो समुद्र की क्रिया द्वारा बने हैं या नदियों द्वारा लाई गई कीचड़ मिट्टी द्वारा। ये मैदान क्रमशः पश्चिमी समुद्र तटीय मैदान और पूर्वी समुद्रतटीय मैदान कहलाते हैं।

पश्चिमी तटीय मैदान (Western Coastal Plain)—यह मैदान प्रायद्वीप के पश्चिम में खंभात की खाड़ी से लगाकर कुमारी अंतरीप तक फैले हैं। इनकी औसत चौड़ाई ४० मील है। इस तटीय मैदान में बहने वाली नदियाँ छोटी और तीव्रगामी हैं अतः इनके द्वारा पश्चिमी घाटों पर होने वाली वर्षा का जल व्यर्थ ही समुद्र में बहकर चला जाता है। तीव्रगामी होने के कारण इनके द्वारा मिट्टी भी अधिक नहीं जमाई जाती। दक्षिणी भाग में लम्बे और संकरे अनूप (Lagoons) पाये जाते हैं जो नदियों के मुहाने पर बालू के जम जाने से बने हैं। इन अनूपों में सैकड़ों मीलों तक नौकागमन सम्भव है। कोचीन का बन्दरगाह ऐसे ही अनूप पर स्थित है। इन अनूपों में मछलियाँ भी पकड़ी जाती हैं। पश्चिमी मैदान उत्तर की ओर चौड़ा होकर नर्मदा-ताप्ती का डेल्टा बनाता हुआ गुजरात तक चला गया है। सौराष्ट्र के तटीय मैदान तथा कच्छ पेनीप्लेन (Peneplain) के मुख्य उदाहरण हैं। मैदान के उत्तरी भाग को कोंकण (Konkan) और दक्षिणी भाग को मलाबार (Malabar) कहते हैं। इनमें उत्तम जलवायु और उपजाऊ मिट्टी के कारण अधिक जनसंख्या पाई जाती

है । भारत का पश्चिमी तट प्रधानतः महाद्वीपीय ढाल असाधारण रूप से सीधा है और विभंग के परिणाम को सूचित करता है । यह विभंग संभवतः तृतीय जीव-कल्प और गोंडवाना भूमि के अंतिम खंडन से सम्बन्धित माना गया है । केरल और सौराष्ट्र के तट पर मायोसीन काल के अवसादों की उपस्थिति सूचित करती है कि इस तट के कुछ भाग अंतिम तृतीय जीव-कल्प में ऊँचे उठे हैं ।

पूर्वी तटीय मैदान (Eastern Coastal Plain)—पश्चिमी तटीय मैदान की अपेक्षा अधिक चौड़ा है । इसकी औसत चौड़ाई १०० से ३०० मील है । यह गंगा के मुहाने से कुमारी अंतरीप तक फैले हैं । यह मैदान दो भागों में बांटा जा सकता है : निचला भाग जिसमें नदियों के डेल्टा हैं और ऊपरी भाग जो अधिकांशतः नदियों के ऊपरी मार्ग में हैं । निचला भाग पूर्णतः कांप मिट्टी का बना है जो महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों ने पठार के ऊपरी भागों से लाकर बिछा दी है । इसके समुद्र निकटवर्ती भागों पर बालू के ढेरों की लम्बी शृंखला मिलती है जो लहरों द्वारा मैदान पर बन गई हैं । इन ढेरों द्वारा घिरी हुई चिलका और पालीकट छिछली झीलें बन गई हैं । ऊपरी भाग अंशतः कांप मिट्टी का अवशिष्ट मैदान है जो उभरे हुए भूभाग के क्षयीकरण द्वारा बना है । यह मैदान कहीं-कहीं नदियों की हल्की उपजाऊ मिट्टी से ढँका है तथा शेष भागों में पुरानी चट्टानें स्पष्टतः दिखाई पड़ती हैं । इस सम्पूर्ण तट को **'कोरोमंडल तट'** कहते हैं । उत्तरी भाग को **'उत्तरी सरकार'** और दक्षिणी भाग को **'पयानघाट'** कहते हैं ।

इन तटीय भागों में उपजाऊ मिट्टी तथा जल की पर्याप्त मात्रा मिलने से चावल, गन्ना, जूट अधिक पैदा किया जाता है तथा जनसंख्या भी घनी पाई जाती है ।

पूर्वी तट को आधुनिक रूप जुरासिक काल में मिला माना जाता है क्योंकि इस तट में जुरासिक अवसाद मिलते हैं । इस तट में क्रिटेशियस और मायोसीन कालों में समुद्री अतिक्रमण हुए हैं । ये अतिक्रमण स्थल और समुद्र के आपेक्षिक तल के दीर्घ-कालीन रूपान्तरों को सूचित करते हैं ।

अध्याय ३

भारत की तट रेखा और द्वीप
(Coastline & Islands of India)

भारत के क्षेत्रफल अथवा लम्बाई चौड़ाई के विचार से इसकी तट रेखा बहुत छोटी है। संसार के किसी भी महत्वपूर्ण देश—जो समुद्र से लगा हुआ है—के साथ इसकी तुलना करने पर उपरोक्त बात स्पष्ट प्रतीत होगी। यहाँ की तट रेखा बहुत ही कम कटी फटी है। लगभग ३,५०० मील लम्बी समुद्र तट रेखा शायद ही कहीं खाड़ी द्वारा टूटी हुई हो।[१] यहाँ की तट रेखा प्राय: सीधी और सपाट है। लम्बी तथा गहरी खाड़ियों का तट रेखा पर पूर्ण अभाव है। यही कारण है कि हमारे यहाँ की तट रेखा पर सामान्यत: अच्छे बन्दरगाहों और पोताश्रयों की कमी है। भारत के पूर्वी अथवा कारोमंडल तट के लिये तो यह बात विशेष रूप से सही है। पूर्वी तट की ओर बंगाल की खाड़ी में अनेक बड़ी बड़ी नदियाँ प्रवेश करती हैं और इस दृष्टि से इस ओर अच्छे बन्दरगाहों की कमी कुछ भ्रम पैदा कर देती है परन्तु इसका कारण समझ पाना कठिन नहीं है। यही नदियाँ जो बंगाल की खाड़ी में प्रवेश करती हैं अपने मुहानों पर बालू की दीवारें खड़ी कर देती हैं जिससे धारायें कम गहरी हो जाती हैं और अन्ततोगत्वा नौका संचालन के लिये अयोग्य सिद्ध होती हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय तट पर बन्दरगाहों की कमी का एक और बहुत बड़ा कारण है। अच्छे बन्दरगाहों की कमी अफ्रीका, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और ऐसे ही अन्य प्राचीन अवशिष्ट भाग—जो कभी गोंडवाना भूमि से सम्बद्ध थे—के तटों पर भी पाई जाती है।[२] दूर दूर की भूमियों में उनके आकारों के बीच ऐसी समानता निश्चय ही उनके प्राचीन इतिहास और क्रमिक विकास की ओर इंगित करती है। एडवर्ड स्वैस के अनुसार पुरा-कल्प (Paleozoic) में दक्षिण में एक काल्पनिक (hypothetical) महाद्वीप था जो गोंडवाना भूमि (Gondwanaland) के नाम से प्रसिद्ध था। इस गोंडवाना भूमि में समस्त अफ्रीका, मैडागास्कर, प्राय:द्वीपीय भारत, आस्ट्रेलिया, टस्मानिया, एन्टार्टिका, फाकलैंड और सारा दक्षिणी अमेरिका—केवल पश्चिमी और उत्तरी पश्चिमी भाग को छोड़ कर—सम्मिलित था।[3] यह भूबन्ध खटी-युग (Cretaceous times) के अंत में छिन्न भिन्न हो गया। यह महाद्वीप दक्षिणी गोलार्ध की समस्त कठोर भूमियों (rigid masses) को एक विस्तृत भूखंड में मिलाये हुए था[४]। यह प्राचीन भूबन्ध एक लम्बे भौगर्भिक काल तक समुद्र के ऊपर शुष्क, कठोर और स्थिर भूमि बना रहा। अतएव इन सब ही भागों में अच्छे बन्दरगाहों की कमी का यही मूल कारण है। भारतीय तट की दूसरी विशेषता उसके चारों ओर द्वीपों की कमी होना है।

---

१. Morrison. C, Scot. Geographical Mag. XXI (1905) p. 457.

२. Frew, David, "A Regional Geography of the Indian Empire." p. 176.

३. Quoted from the article in the Encyclopaedia Britanica 14th Edition p. 514.

४. Steers. J. A., Unstable Earth. p. 12.

सामान्यतः तटों के समीप समुद्र कम गहरे हैं तथा पेंदी एक दम चपटी और बलुही है। इन दोनों ही कारणों से यहाँ नौका संचालन बड़ा कठिन हो जाता है। तटों के समीप समुद्र की औसत गहराई १०० फैदम पाई जाती है। पश्चिमी तट पर पूर्वी तट की भाँति समुद्र गर्तों (Deeps) का अभाव है, किन्तु पश्चिमी तट की ओर समुद्र थोड़ी दूरी पर ही यकायक गहरा हो जाता है। भारतीय तट मूलतः 'एटलान्टिक तट' के प्रकार का है। यह खाड़ियों और प्रवाल भीतियों से रहित (reefless) है और अपनी प्रकृति में महाद्वीपीय है।[1] मलाबार तट की ओर अपवाद स्वरूप कुछ खाड़ियाँ और प्रवाल भीतियाँ अवश्य देखी जाती हैं।

तट रेखा पर निमग्न तट (Continental shelf) सामान्यतः पूर्ण रूप से विकसित है। पूर्वी तट की ओर गंगा के मुहाने के पास इसका बहुत ही अच्छा विकास पाया जाता है। इसके अतिरिक्त भारतीय तटों पर तटीय मैदान भी देखे जाते हैं। परन्तु दोनों ओर तटीय मैदान समान रूप से फैले हुए नहीं हैं। पश्चिम की ओर का तटीय मैदान पूर्वी तटीय मैदान से कम चौड़ा है।

तट भूमियाँ (The Coastal Strips)—पूर्व और पश्चिम दोनों ओर तट के समानान्तर पूर्वी और पश्चिमी घाट खड़े हैं। समुद्र तट और इन घाटों के बीच तटीय मैदान पाये जाते हैं। पूर्वी तटीय मैदान कर्नाटक की अपेक्षा अपनी चौड़ाई में सब जगह एक समान नहीं है। दक्षिण की ओर यह अधिक चौड़ा है पर उत्तर की ओर सँकरा हो गया है। मद्रास के उत्तर में इसकी अधिकतम चौड़ाई ३० मील है जबकि दक्षिण की ओर इसकी अधिकतम चौड़ाई ८० मील तक है। यह मैदान कछारी मिट्टियों द्वारा बना हुआ है। पूर्वी घाट पहाड़ से निकल कर समस्त नदियाँ इस मैदान में बहती हैं अतः उनके निम्न बहावों में (डेल्टाओं) अच्छे मैदानों की रचना हो गई है। पश्चिमी समुद्र तट पूर्णतया बालु, मिट्टी और कंकड़ द्वारा बना हुआ है। यहाँ मिट्टी प्रायः कंकड़ों (Kankur) के साथ मिली हुई पाई जाती है।[2] यह तट एक दम सँकरा और ऊबड़ खाबड़ है। पूर्वी और पश्चिमी दोनों तटीय मैदान दक्षिण के पठार के किनारों के कटाव द्वारा बने हैं। कटाव के मलबे द्वारा दोनों ओर तंग मैदानी पट्टियाँ बन गई हैं। साथ ही साथ इन तटों के किनारे धीरे २ समुद्र में समाते रहे और डुबकियाँ लगाते रहे हैं। इसीलिये पूर्वी तट पर कुए खोदते समय इन्जिनियरों को कई स्थानों पर प्राचीन समुद्री मैदान (Old sea beaches) मिले हैं और धरातल के लगभग ६०० फीट नीचे ओयस्टर के खोल (Oyster shells) देखे गये हैं।[3]

सिडनी बुरार्ड का कहना है कि सीस-रेखा (Plumb line) के झुकाव धरातल की इस बात को प्रकट करते हैं कि तटीय भूमियाँ तटों के सहारे कमजोर पेटियाँ हैं। उसकी मान्यता है कि ये पेटियाँ गंगा के मैदान की भाँति भंजन, निमज्जन और अधो-भौमिक न्यूनता (Subterranean deficiency) की पेटियाँ हैं। धरातल की वर्तमान रूप-रेखा इस बात को प्रकट करती है कि प्राचीन समय में पश्चिम की ओर महाद्वीप के बहुत बड़े भाग का निमज्जन हुआ है। उपरोक्त तथ्य श्री स्लेटर (Solater) के इस

---

१. S. Krishnawamy. "The Coasts of India", The Indian Geographical Journal, Vol. XXIX, 1954, p. 18.

२. Frew, David,—A Regional Geography of the Indian Empire p. 176.

३. Morrison, New Geography of the Indian Empire and Ceylon, p. 27.

विश्वास का प्रतिपादन करता है कि भारत मैडेगास्कर द्वारा दक्षिणी अफ्रीका से जुड़ा हुआ था। दक्षिण के पठार के खड़े ढाल (escarpment) के सम्बन्ध में फरमर (Fermor) का हाल ही का अध्ययन भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता है।

भारत की पश्चिमी तट रेखा (The Western Coastline of India)—यह तट रेखा खंभात की खाड़ी से कुमारी अन्तरीप तक फैली हुई है। उत्तरी भाग में यह कोंकन तट और दक्षिण में मलाबार तट के नाम से प्रसिद्ध है। ओमान की खाड़ी से खंभात की खाड़ी तक की तट भूमि यद्यपि रचना की दृष्टि से समान है किन्तु चट्टानों की दृष्टि से भिन्न है।

साधारणतः ओमान की खाड़ी से कराँची तक और भारत में बम्बई तक समुद्र का निमग्न तट प्रवल्याओं (Coral-reefs) से रहित है। यह ५० से ८० तथा १०० मील चौड़ा है और अपनी बाहरी सीमा पर ५० फैदम गहरा है। तट के सहारे कुछ प्रवल्यायें अवश्य पाई जाती हैं। बम्बई के दक्षिण में निमग्न तट (Shelf) ५० से ३० मील तक सँकरा हो जाता है। यहाँ पर भी प्रवल्याओं का अभाव रहता है परन्तु कहीं २ बीच में खाड़ियाँ आ गई हैं।[१]

चट्टानों की दृष्टि से मकरान तट बम्बई तट से उतना ही भिन्न है जितना कि बम्बई तट दक्षिण के मलाबार तट से है। मकरान तट पर सर्वत्र ही प्रस्तरी-भूत चट्टानें फैली हुई पाई जाती हैं। यहाँ मुख्यतः भद्दी हरी शैल चट्टानें और हल्का रंगीन बलूही पत्थर ही अधिक पाया जाता है। चीका प्रधान चट्टानें टूटने वाली चिकनी मिट्टी (friable clay) के रूप में मिलती हैं जो कि समुद्री पंक (marine ooze) से मिलती जुलती होती हैं।[२] शैल तथा चीका (Clays) चट्टानें समुद्र तट के समानान्तर कई स्थानों पर प्रतिनति (Anticline) के रूप में उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं।

पश्चिमी तट पर हिन्द महासगर के किनारे नर्मदा के उत्तर में चपटी निम्न भूमियों और बम्बई की तंग पट्टी में स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक विभेद पाया जाता है। नर्मदा के उत्तर में समुद्र में भूमि का विस्तार एक साधारण बात है किन्तु ताप्ती के दक्षिण में बम्बई तक तट के समीप भूमि का समुद्र में कोई विस्तार दृष्टिगोचर नहीं होता।[३] नर्मदा के उत्तर में समुद्र तट तलछट (Sediments) द्वारा बना है जो न तो अधिक पुराने हैं और न अच्छी तरह जम ही पाये हैं।

बम्बई का तट पैठिक लावा (Basic lava) द्वारा बना हुआ है। मेडलीकोट और ब्लैंफोर्ड के अनुसार खटी युग (Cretaceous times) में अकेले प्रायःद्वीपीय भारत से भी बहुत बड़े स्थल भाग में लावा की कई परतें फैल गई थी। लावा से आच्छादित प्रायःद्वीपीय भाग जो कि अब बहुत ऊँचा उठ गया है पश्चिम की ओर पश्चिमी घाट तक सीमित है जो अरब सागर के किनारे कोंकन की निम्न भूमि की ओर ढालू हैं। इन भूगर्भवेत्ताओं ने कहा है कि "पश्चिमी घाट कोंकन से एक दीवार के समान ऊँचे उठ गये हैं और इनकी ऊँचाई २,००० से ४,००० फीट के बीच है।

१. The Imperial Gazetteer, Vol I. p. 37.

२. Fermor L. L. Quoted by Davis W. M. in his "The Coral Reef Problem", 1928, p. 53.

३. Davis W. M., The Coral Reef Problem, p. 227.

कुछ ही स्थानों पर यह कट गये हैं अन्यथा ये समुद्री कगार (Sea Cliff) के अनुरूप ही दिखाई पड़ते हैं।"[१] इससे यह स्पष्ट है कि आधुनिक समय में अरब सागर की पेंदीं जो नीचे बैठ गई गई है (recent down faulting) उसका प्रतिरूप हाल ही में दक्षिण के पठार के ऊँचे उठ जाने में मिलता है। यदि उपरोक्त मत सही है तो बुरार्ड का यह अनुमान कि "पश्चिमी घाट अभी युवावस्था (Younger age) के हैं" स्वीकार किया जा सकता है। पश्चिमी घाट दक्षिणी पठार के लावा के जमकर ठोस हो जाने और चट्टानों में परिवर्तित हो जाने के बाद ही ऊपर उठे हैं। यह घटना तृतीय कल्प (Tertiary age) युग की है।[२]

मलाबार तट (The Malabar Coast)—मलाबार तट ऊपर वर्णित बम्बई तट के विपरीत प्राचीन रूपान्तरित चट्टानों द्वारा बना हुआ है। यह तट बहुत ही क्षत विक्षित (dissected) है। पश्चिमी घाट पहाड़ों से निकलने वाली अनेक छोटी २ और वेगपूर्ण नदियों के अथक परिश्रम से यहाँ पर कई कांप मैदान (Alluvial plains) बन गये हैं। तट के ऊपर लहरों का भी बराबर आक्रमण होता रहता है विशेषकर द० प० मानसून के समय जिससे समस्त तट भूमि के ऊपर अनेक बालुका-स्तूप (sand dunes) बन गये हैं।

इस तट का भौगर्भिक इतिहास ठीक बम्बई तट के अनुसार ही है। दोनों में केवल यही भेद है कि यहाँ खाड़ियों, झीलों और लैगूनों का प्राबल्य है जबकि बम्बई तट पर इनका अभाव पाया जाता है। साथ ही साथ यहाँ ज्वारीय नदियों के मुहानों पर दलदल भी बहुतायत से पाये जाते हैं।

भारत के दक्षिणी सिरे पर और वहाँ से उत्तर पूर्व की ओर लंका तक बड़ा विकसित निमग्न तट है। यहाँ समुद्र की औसत गहराई ५० फैदम है और निमग्न तट पर द्वीपों का पूर्ण अभाव है। लंका तट के अतिरिक्त तट के समीप कहीं भी प्रवल्यायें नहीं मिलती। लंका के दक्षिण पूर्व की ओर तट से १५-२० मील दूर डूबी हुई प्रवल्यायें दिखाई पड़ती हैं। सेतु-बन्ध लहरों और धाराओं के प्रभाव से बनी भीति है जो लंका को मुख्य भूमि से जोड़ती है।

मद्रास तट (The Madras Coast)—मद्रास तट प्रवल्याओं रहित उन्मग्न महाद्वीपीय तट का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ तट पर कुछ तो पूर्व समुद्र की पेंदी का बिना भली प्रकार जमा हुआ (Unconsolidated) मलबा बिछा हुआ है परन्तु अधिकतर मलबा पूर्ण विकसित समुद्री कगारों की घिसावट और छीलन से ही प्राप्त हुआ है। इन कगारों का क्षय लम्बे समय से होता रहा है अतः अब ये कगारें तट से कई मील भीतर पाई जाती हैं[३]।

यहाँ कगारों की रचना उस समय हुई मालूम पड़ती है जबकि तट प्रवल्याओं से स्वतन्त्र था। तट पर प्रवल्याओं के अभाव के कारण रेतीली दीवारों (Sand Reefs) की लम्बी श्रंखला स्थापित हो गई है पर बीच २ में डेल्टे बने हुए हैं[४]।

१. Medlicott & Blanford--Manual of Geology of India, Vol. I. p. 318.

२. Burrard, S. G.--Op. Cit. Pp. XCI-XCII.

३. Davis, W. M. Op. Cit., p. 227.

४. Davis, W. M. Op. Cit., p. 227.

मद्रास तट का सम्भवतः दूसरी बार उन्मज्जन हुआ है। फलतः वहाँ दूसरा तटीय मैदान बन गया और इसी कारण यह प्रवल्याओं से अछूता है[1]। उत्तर की ओर बंगाल की खाड़ी के उत्तरी सिरे पर यह तट बहुत अधिक डेल्टाओं द्वारा घिरा हुआ है। यहाँ भयंकर लहरों के आक्रमण और संभावित निमज्जन के विपरीत भी नदियाँ डेल्टाओं का निर्माण करने में सफल हुई हैं। डेल्टाओं का विस्तार समुद्र में चौड़े निमग्न तट के ऊपर तक पाया जाता है। इस तट पर भी प्रवल्याओं का अभाव है। इस रूप में यह न्यूगायना के मध्य दक्षिणी तट के अनुरूप है जहाँ प्लाई नदी के डेल्टे ने विस्तृत चबूतरे का निर्माण किया है[2]।

भारतीय तट की खाड़ियाँ, झीलें और जलडमरू-मध्य

भारतीय तट की महत्वपूर्ण खाड़ियाँ और झीलें पश्चिमी तट पर पाई जाती है। विशेष तर मलाबार तट पर। पूर्वी तट की ओर खाड़ियों के नाम पर केवल पुलीकट, कोलार और चिल्का झीलें ही पाई जाती हैं जो वस्तुतः आंतरिक (inland) झीलें हैं और सँकरे जल मार्गों द्वारा समुद्र से जुड़ी हुई हैं।

भारत के पश्चिमी तट पर हमें कच्छ की खाड़ी, कच्छ का रन (Rann of Cutch) खंभात की खाड़ी तथा कोचीन व मलाबार के पृष्ठ-जल (Back-waters) देखने को मिलते हैं[3]। इनमें कच्छ का रन सबसे बड़ा है इसका क्षेत्रफल लगभग ९,००० मील है। इसका कुछ भाग सदा ही समुद्र जल में डूबा रहता है किन्तु यह बहुत छिछली है। कोचीन और मलाबार तट के पृष्ठ-जल वस्तुतः एक दूसरे से जुड़ी हुई अनूप हैं जो एक ओर छोटी-छोटी नदियों को मिलाते हैं और दूसरी ओर समुद्र से स्वयं जुड़ी हुई हैं[4]। भारत के दक्षिण में मनार की खाड़ी और पाक जलडमरू मध्य स्थित है जो लंका द्वीप को भारत की मुख्य भूमि से जोड़ते हैं।

समुद्र तल का परिवर्तन (Changes in Sea-level)—यद्यपि साधारणतः भारत के पूर्वी तट पर हाल ही के उन्मज्जन के चिह्न पाये जाते हैं वहाँ पर स्थित कगारों में समुद्री गुफाओं, समुद्री अपक्षरण के चिह्नों से उन्मज्जन स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु कुछ स्थानों पर (जैसे पांडीचेरी) ऐसे चिह्न भी देखे जाते हैं जो हाल ही में हुई भूमि के निमज्जन की ओर इशारा करते हैं।

समुद्र तल में विवर्तन पश्चिमी तट पर अधिक जटिल रहा है। सौराष्ट्र का तट जहाँ एक ओर भूमि के उन्मज्जन को प्रकट करता है विशेषकर कच्छ के रन में—वहाँ बम्बई और मलाबार तट निश्चय ही निमज्जन के द्योतक हैं।

तट रेखा का उन्मज्जन और निमज्जन (Emergence & Submergence of Coastline)—भारतीय समुद्र तटीय भागों में पृथ्वी की आंत[illegible] स्थानों पर भूमि ऊँची नीची होगई है। भूमि के ऊँचे होने को उन्मज्जन (upheaval or emergence) और नीचे धँसने को निमज्जन (submergence) कहते हैं। पश्चिमी तट पर कच्छ का रन ऐतिहासिक युग में सागर का एक छिछला भाग था किन्तु अब

१. Davis, W. M. Op. Cit., p. 275.

२. Daivs, W. M. Op. Cit., p. 228.

३. Morrison, New Geography of the Indian Empire & Ceylon, p. 29.

४. Morrison, Ibid

इस पर मिट्टी आदि जम जाने से शुष्क भूमि समुद्र के ऊपर उठ आई है जो प्रायः नमकीन और दलदली है। सौराष्ट्र के तट पर चोरिला पर्वत के १,१७३ फीट ऊँचे शिखर पर कार्गुकाश्म (Miliolite) नामक चूने का पत्थर पाया जाता है जो कागुक नामक (Miliola) समुद्री जीव के अवशेषों से बना है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में यह भाग समुद्र के गर्भ में था किन्तु अब उससे ऊँचा उठ गया है। इसी प्रकार मकरान तट पर समुद्र तल से १०० फीट ऊँचाई पर तथा भारत के पूर्वी तट पर (विशेषतः उड़ीसा, नैलोर, मद्रास, मदुराई और तिन्नैवैली भागों में) ५० से १०० फीट की ऊँचाई पर समुद्री जीवों के खोल (shells) प्राप्त हुए हैं। यह तथ्य इस बात को सिद्ध करता है कि ये भाग समुद्र से ५० से १०० फीट ऊँचे अवश्य उठे हैं।

भारतीय तटों का कई स्थानों पर निमज्जन भी हुआ है। उदाहरणार्थ सन् १८७८ ई० में बम्बई के समीप (प्रिन्स डाक्स की खुदाई करते समय) ऐसे कई वृक्ष पाये गये जो उच्च-जल-चिह्न (High water mark) से ३० फीट नीचे धंसे हुए थे। इसी प्रकार १९१२ में एलैक्जैन्ड्रिया डॉक्स की खुदाई करते समय ऐसे वृक्ष प्राप्त हुए जो उच्च जल चिह्न से ४० फीट नीचे थे। दोनों ही स्थानों पर पाये गये सैकड़ों वृक्ष अपनी मूल-स्थिति में ही खड़े थे और कुछ झुकी हुई दशा में भी पाये गये थे। इन दोनों ही उदाहरणों से बम्बई के निकटवर्ती तट का नीचे धंसना सिद्ध होता है। इसी प्रकार के कुछ प्रमाण तिन्नैवैली तट के निकट पांडूचेरी में भूमि तल के २४० फीट नीचे से निकाली गई लिग्नाइट की मोटी तह के मिलने से प्राप्त हुए हैं। ये वृक्ष यहाँ भूमि सूखा के नीचे दबे पाये गये हैं।

तटीय भागों में भूमि का केवल उन्मज्जन और निमज्जन ही नहीं हुआ है वरन् यहाँ कई क्षेत्रों में तट रेखा बहुत दूर तक समुद्र में भी बढ़ गई है। यह बात दक्षिणी प्रायद्वीप की कुछ नदियों के डेल्टों से सिद्ध होती है। गोदावरी के डेल्टा पर कलिंगपट्टनम, कावेरी के डेल्टा पर कावेरीपट्टनम, तिरुनलवेली तट पर कोरकाई आदि १-२ वर्ष पूर्व बहुत ही अच्छे बन्दरगाह थे किन्तु अब डेल्टा की भूमि समुद्र की ओर बढ़ हजार जाने से इनका महत्व कुछ घट गया है। इसी प्रकार कच्छ का रन भी अब होगया है।

कई क्षेत्रों में समुद्र भी भूमि की ओर बढ़ गया है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण तंजौर तट पर स्थित ट्रैनक्वीबार में देखा जा सकता है जहाँ एक पैगोडा के अवशेष एक शताब्दी पूर्व निम्न जल-चिन्ह के ऊपर पाये गये थे। इसी प्रकार सैन थॉम टाउन (जो अब मद्रास का ही एक भाग है) पहले समुद्र तट से कुछ भीतर की ओर स्थित था किन्तु अब यह समुद्र तट पर ही स्थित है। इस समय भी मद्रास के पूर्वी भागों पर समुद्र का प्रहार हो रहा है इससे बचाव हेतु दीवारें बनाई जा रही हैं।

तट रेखा का प्रभाव— तट रेखा का प्रभाव देश के व्यापार और वहाँ के मनुष्य के चरित्र पर पड़ता है। वस्तुतः भारत जैसे देश में— जहाँ तट रेखा बहुत ही कम कटी-फटी और छिछली तथा बालुका-मंडित है और बड़ी उत्ताल तरंगें नृत्य किया करती हैं— न तो उत्तम बन्दरगाह ही पाये जाते हैं और न ही पोताश्रयों की अधिकता है। अतएव, भारत के विदेशी व्यापार को भी इससे बड़ी हानि पहुँचती है क्योंकि जहाँ समुद्र तट के कटे फटे होने से जापान और ब्रिटेन जैसे देशों का कोई भी भाग समुद्र तट से २०० मील से अधिक दूर नहीं है जब कि भारत के बन्दरगाह भीतरी भागों से बहुत दूर पड़ जाते हैं अतः निर्यात की जाने वाली वस्तुएं बन्दरगाहों

तक लाने में अधिक व्यय पड़ जाता है। यही बात आयातित माल के लिये भी लागू होती है।

भारत में गुजरात और मलाबार तट के कुछ सीमा तक कटे-फटे होने के कारण विदेशों से व्यापार करने की सुविधा प्राप्त है। इन तटीय भागों के निवासी भी प्रगतिशील, सभ्य, आराम-तलब और शांति प्रिय हैं किन्तु वह साम्प्रदायिक भावनाओं वाले न हो कर विश्व बंधुत्व में विश्वास करने वाले हैं क्योंकि उनका सम्पर्क समुद्र द्वारा विदेशों से होता है। समुद्र के निकट होने से वे निर्भीक, उत्साही और अच्छे व्यापारी हैं किन्तु इसके विपरीत कोंकन तट के सपाट होने से निवासी भी यद्यपि शांतिप्रिय, उत्साही और तेज-बुद्धि वाले हैं किन्तु ये अच्छे मल्लाह और नाविक भी हैं।[1] किन्तु मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय अच्छे मल्लाह नहीं हैं।

भारत के प्रमुख द्वीप आदि

भारत के पश्चिमी और पूर्वी तटों से कुछ दूर कई एक द्वीप हैं जिनमें से मुख्य (i) लक्ष द्वीप; (ii) पाम्बन द्वीप; (iii) हेअर द्वीप; (iv) श्री हरीकोटा द्वीप और (v) अंडमान नीकोबार द्वीप हैं।

(i) ***लक्ष द्वीप*** *(Laccadive)—का शाब्दिक अर्थ एक लाख द्वीप है। भारत* के पश्चिमी तट से लगभग १२५ से २०० मील की दूरी पर १०° से १२° उत्तरी अक्षांशों और ७१°४१′ तथा ७४° पूर्वी देशान्तरों के बीच ये द्वीप समूह स्थित हैं। अनुमान किया जाता है कि ये अरावली पर्वत माला के ही अवशेष हैं जो प्राचीनकाल में हिमालय के पश्चिमी भाग से लगा कर यहाँ तक फैली थी। यह एक डूबे हुए पर्वत के अंश हैं जिनका जन्म प्रवालियों (Coral reefs) के पूर्वी भाग से हुआ है। ये मूँगे के द्वीप हैं जिन पर नारियल के वृक्ष अधिकता से पाये जाते हैं। इन द्वीपों पर अनाज, दालें, केले और सब्जियाँ आदि पैदा की जाती हैं।

माल द्वीप (Maldive)—अधिकतर ज्वालामुखी द्वीप माने जाते हैं इन पर भी थोड़ी बहुत खेती की जाती है।

(ii) **पाम्बन द्वीप** (Pamban Islands)—इन द्वीपों की आकृति सर्पाकार सी है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि किसी समय ये द्वीप लंका से जुड़े हुए थे अब इनके बीच में आदम का पुल (Adam's Bridge) और मनार की खाड़ी है। इन द्वीपों का विस्तार प्राय: ११ मील लम्बा और ६ मील चौड़ा है। पूर्वी भागों की ओर बालू मिट्टी की अधिकता पाई जाती है किन्तु उत्तरी तट के निकट मूँगे की दीवार है।

(iii) **हेअर द्वीप** (Hare Islands)—ये द्वीप तूतीकोरिन से प्राय: २½ मील दूर हैं तथा पूर्णतः मूँगे के बने हैं। इन पर खरहे अधिक मिलते हैं।

(iv) **श्री हरीकोटा द्वीप** (Shri Harikota Islands)—ये द्वीप पुलीकट झील के पश्चिमी तट पर हैं और प्राय: ३५ मील की लम्बाई में फैले हैं। इन पर वन क्षेत्र अधिक मिलते हैं।

(v) **अंडमान नीकोबार द्वीप** (Andaman Nicobar Islands)—ये दोनों ही द्वीप बंगाल की खाड़ी में कलकत्ता से ७८० मील दूर हैं। ये द्वीप समूह उस निमग्न

१. H. L. Kaji, Principles of General Geography.

पर्वत श्रेणी की बनी हुई चोटियाँ हैं जो किसी समय अराकान योमा को सुमात्रा द्वीप की मध्यवर्ती पर्वत श्रेणी से मिलाती थी। अंडमान द्वीप में सब मिला कर लगभग २०५ द्वीप हैं जिनमें उत्तरी अंडमान, मध्य अंडमान, दक्षिणी अंडमान, बारातंग और रुथलैंड बड़े द्वीप हैं शेष सभी छोटे हैं। यह द्वीप समूह २१९ मील लम्बे और ३५ मील चौड़े हैं। ये एक दूसरे से जल-संयोजकों द्वारा अलग हैं। इनका किनारा काफी कटा-फटा है। इनके आसपास मूंगे के कीड़ों की अधिकता है। समुद्र के निकट सुन्दरी वृक्ष बहुत पाये जाते हैं।

नीकोबार द्वीप अंडमान द्वीप से ८० मील दक्षिण की तरफ है। ये प्रायः जन-विहीन हैं।

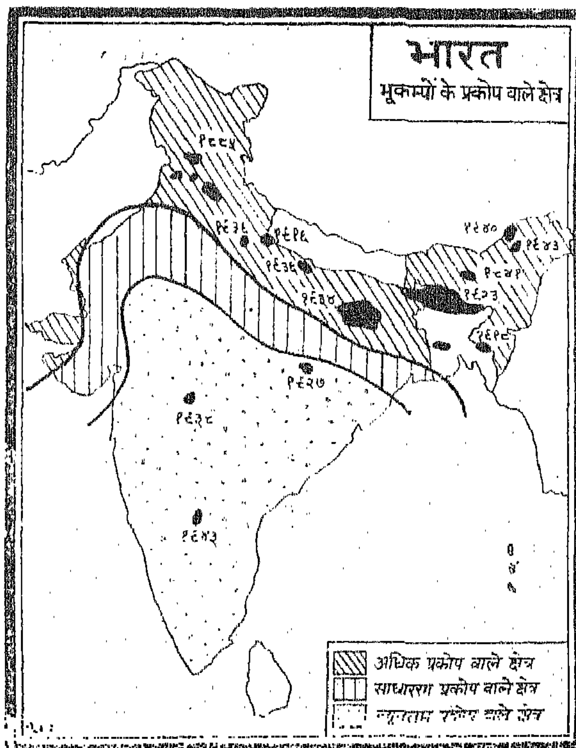
अध्याय ४

भूकम्प और ज्वालामुखी क्षेत्र

(Earthquake & Volcanic Zones)

भारत के प्राकृतिक विभागों और भूकम्प-क्षेत्रों में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। तीन प्राकृतिक भागों के अनुरूप ही भारत में तीन भूकम्प-क्षेत्र पाये जाते हैं।

(१) **हिमालय प्रदेश** (Himalayan Region)—यह उत्तरी भूकम्प क्षेत्र है जिसमें हिमालय पर्वत तथा उसके समीपवर्ती भाग सम्मिलित हैं। ये भाग रवेदार और प्रस्तरीभूत चट्टानों से निर्मित हैं। यह क्षेत्र सबसे अधिक अस्थिर (Unstable) हैं क्योंकि अभी तक हिमालय पर्वत पूर्णतः संतुलन प्राप्त नहीं कर पाये हैं और वे अभी भी ऊँचे उठ रहे हैं। अतः इस भाग में ही भारत के सबसे विध्वंसकारी भूकम्प



चित्र १८—भूकम्पों के प्रकोप वाले क्षेत्र

उत्पन्न हुए हैं। इसी क्षेत्र की एक शाखा ब्रह्मा की पहाड़ियों में चली गई है। यह क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र (Zone of Maximum Intensity) कहा जाता है।

(२) **गंगा-सिंधु का प्रदेश**—यह प्रदेश प्रायद्वीप की कठोर भूमि के सामने उस अग्रिम समुद्र का रूप है जिससे हिमालय की उत्पत्ति हुई है। यह क्षेत्र अपरोक्त अस्थिर भू-भाग के सन्निकट है किंतु इस क्षेत्र में भूकम्पों का प्रभाव इतना विनाशकारी नहीं है फिर भी यदा-कदा इस क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से भूकम्प उत्पन्न होकर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर अकथनीय जन-धन की हानि कर देते हैं। सन् १९३४ का बिहार, सन् १९३५ का क्वेटा और सन् १९५० का आसाम का भूकम्प इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस क्षेत्र को भूकम्पों से सामान्यतः प्रभावित क्षेत्र (Zone of Comparative Intensity) कहा जाता है।

(३) **प्रायद्वीपीय क्षेत्र**—भूकम्प का तीसरा क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप है जो बड़ा स्थिर भू-भाग है। यह अतीतकाल से होने वाली भू-क्रांतियों में भी अविचल रहा है। अतः इस क्षेत्र में भूकम्प का अनुभव नहीं के बराबर होता है। (सन् १८४३ का दक्षिण का भूकम्प अथवा १९५६ का कच्छ का भूकम्प इसके अपवाद हैं)। अतः इस क्षेत्र को न्यूनतम प्रभावित क्षेत्र (Zone of Minimum Intensity) कहा जाता है।

ज्यों-ज्यों उत्तर से दक्षिणी भारत की ओर बढ़ते हैं भूकम्प-क्षेत्रों की तुलनात्मक प्रभावशालीनता कम होती जाती है। भारत में कुछ प्रमुख भूकम्पों का प्रादेशिक वितरण निम्न प्रकार है[1] :—

(१) उत्तरी-पूर्वी भारत (नैपाल-सिकिम तथा तिब्बत सहित)—३१.

(२) उत्तरी-पश्चिमी भारत (वर्तमान पाकिस्तान के बलूचिस्तान, सिंधाल तथा भारत के काश्मीर सहित)—२१

(३) प्रायद्वीपीय भारत—२

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि भारत के अधिकांश गहरे भूकम्पों का उत्पत्ति क्षेत्र गंगा-सिंधु के मैदान के निकटवर्ती अस्थिर भू-भाग ही हैं[2] :—

भारत में आने वाले प्रमुख भूकम्प ये हैं :—

प्रसिद्ध भूकम्प	प्रभावित क्षेत्रफल	हानि
दिल्ली (सन् १७२०)	दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्र, किला आदि	लाल किले की दीवार तथा कई मकान और फतहपुरी मस्जिद को हानि हुई।
कलकत्ता (१७३७ ई०)	कलकत्ता के निकट	अपार जन और जहाजों को हानि।
कलकत्ता (१७६२ ई०)	बंगाल और ब्रह्मा	चिटगांव के निकट ६० वर्ग मील भूमि जल मग्न हो गई तथा कई स्थानों पर जल और बालू भूगर्भ से निकलने लगे।

१. H. L. Chibber, Physical Basis of Geography of India, vol I, 1945, p. 88.

२. C. S. Fox, Physical Geography for Indian Students, pp. 237-239

प्रसिद्ध भूकम्प	प्रभावित क्षेत्रफल	हानि
उत्तर प्रदेश (१८०३ ई०)	उत्तर प्रदेश के दिल्ली, मथुरा, गढ़वाल, कुमायूं जिले।	इसका प्रभाव कलकत्ता तक अनुभव हुआ।
कच्छ (१८१९ ई०)	प्रायः सम्पूर्ण भारत, सूरत, पूना, अहमदाबाद, भड़ौच आदि बुरी तरह प्रभावित हुए।	अकेले भुज में २,००० व्यक्ति मर गये। कच्छ के रन पर बाढ़ आ गई तथा उ० प० भाग में ८० मील ऊँचे भू-भाग ने सिंधु को रोक लिया।
दक्कन (१८४३ ई०)	दकन का पठार मुख्यतः शोलापुर, मकतल, बलारी, कर्नूल, बेलगाम और सिंगरूरगढ़ नगरों को अपार क्षति पहुँची।	—
आसाम (कच्छार) (१८६९ ई०)	२,५०,००० वर्ग मील भूमि पर।	भूमि में दरारें पड़कर बालू तथा जल बहने लगा।
काश्मीर (१८८५ ई०)	१,१०,००० वर्ग मील क्षेत्र	३,००० व्यक्ति मरे।
बंगाल (१८८५ ई०)	२,३०,००० वर्ग मील क्षेत्र	इसका प्रभाव आसाम, छोटा नागपुर, सिकिम आदि तक हुआ।
आसाम (१८९७ ई०)	१७,५०,००० वर्ग मील क्षेत्र। शिलांग, गोलपाड़ा, नवगाँव, सिलहट तथा कलकत्ता को अकथ हानि।	संभवतः ऐतिहासिक युग का सबसे बड़ा भूकम्प १,६०० व्यक्ति मरे।
कांगड़ा (१९०५ ई०)	१६,२५,००० वर्ग मील क्षेत्र; कांगड़ा, धर्मशाला, तथा निकटवर्ती क्षेत्र पूर्णतः नष्ट-भ्रष्ट हो गये।	२०,००० मृत्यु।
आसाम(धुब्री)(१९३०ई०)	३,५०,००० वर्ग मील क्षेत्र	—
उत्तर बिहार (१९३४ई०)	१९,००,००० वर्ग मील सीतामढ़ी, मधुबानी, मुंघेर, [illegible] तक हुआ।	भारतीय भूकम्पों में सबसे अधिक विध्वंसकारी। १०,००० से भी अधिक व्यक्तियों की मृत्यु।
क्वेटा (१९३५ ई०)	१,००,००० वर्ग मील क्षेत्र	२५,००० मृत्यु।

भारत में इस शताब्दी में जो भयंकर भूकम्प आए वे इस प्रकार हैं :—

(१) १५ अगस्त १६५० को आसाम में भारी भूकम्प आया। इससे आसाम के विस्तृत क्षेत्र को अपार हानि पहुँची। दिहांग नदी के प्रवाह मार्ग में एक चट्टान उभर आने से उसका प्रवाह रुक गया और भयंकर बाढ़ आ गई। इससे अपार धन-जन की हानि हुई।

(२) अगस्त सन् १६५६ में कच्छ प्रदेश में अंजर नामक नगर के निकट जो भूकम्प आया उससे सारा नगर ध्वंस्तप्राय हो गया। कई भवन नष्ट हो गये और हजारों व्यक्तियों की जानें गईं।

(३) ६ सितम्बर, १६५६ को बुलन्दशहर में जो भूकम्प आया उसका प्रभाव उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भागों में बुलंदशहर, मेरठ तथा मुजफ्फरनगर जिलों में तथा दिल्ली राज्य में पड़ा। बुलंदशहर की ७५ प्रतिशत इमारतें गिर गईं।

भारतीय भूकम्पों का मुख्य कारण पृथ्वी के कमजोर चिप्पड़ में आंतरिक हलचलों का होना हैं जिससे निकटवर्ती क्षेत्रों में न केवल दरारें ही पड़ जाती हैं वरन् नई भूमि का भी सृजन हो जाता है। सूखी भूमि पर पानी के फव्वारे फूट पड़ते हैं तथा गहरे गड्ढे बन जाते हैं। असंख्य धन-जन की हानि होती है।

ज्वालामुखी (Volcanoes)

यद्यपि आधुनिक काल में जागृत ज्वालामुखी भारत में नहीं पाये जाते किंतु भारतीय भूगर्भ विज्ञान के कई कालों में यहाँ ज्वालामुखियों के उद्गार होते रहे हैं। सबसे पहले भारत में दक्षिणी पठार पर आर्कियन युग (Archean Era) के धारवाड़ काल (Dharwar Period) में ज्वालामुखी का उद्गार १ अरब वर्ष पूर्व हुआ इसका मुख्य केन्द्र बिहार में डालमा श्रेणी था। इसके बाद कडुप्पा काल (Cuddapah Period) में मद्रास के कडुप्पा जिले में तथा मध्यप्रदेश में बीजावर और ग्वालियर में ज्वालामुखी के उद्गार हुए। उपरोक्त दोनों ही उद्गारों के फलस्वरूप भूगर्भ से विस्तृत लावा की मात्रा निकलकर समीपीय क्षेत्रों में फैल गई। ग्वालियर में बेला और चौरा के निकट गहरे भूरे रंग का बैसाल्ट लावा जमा पाया जाता है। चौरा के निकट इसकी मोटाई २५ फीट और नयागांव के निकट लावा की मोटाई ७० फीट तक पाई गई है। यह यहाँ २½ मील क्षेत्र में जमा पाया गया है। मध्य प्रदेश के लावा क्षेत्र लगभग ५ करोड़ वर्ष पुराने हैं।

इसके बाद विंध्यन काल (Vindhyan Period) में लावा के उद्गार बड़ी मात्रा में हुए। इस उद्गार का मुख्य केन्द्र जोधपुर के निकट मालानी था। यहाँ लावा का जमाव लगभग १७,००० वर्ग मील में हुआ है। यह क्षेत्र पूर्व से पश्चिम को १४५ मील और उत्तर से दक्षिण को १२० मील विस्तृत है। यहाँ लावा का रंग भूरा है इसमें बड़े बड़े दाने हैं। यह जमाव भी काफी गहरा माना जाता है।

प्रारंभिक जीव-युग (Poleozoic) में ज्वालामुखी के उद्गार अधिकतर कुमायूं हिमालय में हुए जिनके मुख्य केन्द्र नैनीताल जिले के भुवाली-भीमताल क्षेत्र थे। इसके अतिरिक्त गढ़वाल जिले के लोभा (Lobah) क्षेत्र तथा उत्तरी शिमला की सतलज की घाटी में भी ज्वालामुखी के उद्गार इसी युग में हुए। ऊपरी कार्बन-युग (Upper Carboniferous) में काश्मीर में ज्वालामुखी के उद्गार विशेषतः पीर पंजाल श्रेणी, लद्दाख आदि स्थानों में हुए। आरंभ में उद्गार बड़ी तीव्र गति से हुए

किंतु शनैः शनैः इनकी तीव्रता कम हो गई। यह उद्गार ट्रियासिक-युग तक समाप्त हो गए।

इसके बाद मध्यजीव-युग (Mesozoic Era) में लगभग १½ करोड़ वर्ष पूर्व ज्वालामुखी के उद्गार राजमहल की पहाड़ियों में हुआ। यहाँ लावा के जमाव २,००० फीट की गहराई तक पाये जाते हैं। इसी समय आसाम में भी अभोर पहाड़ियों में लावा के उद्गार हुए। इसके चिन्ह अब भी दिहांग नदी की घाटी में मिलते हैं। यहाँ लावा का रंग गहरा हरा तथा गहरा भूरा है।

मध्यजीव-युग के अंत में अथवा तृतीयक युग (Tertiary) के आरंभ में एक बार फिर लावा के भीषण उद्गार हुए विशेषत: दक्षिण के पठार पर—पश्चिमी और मध्यवर्ती भारत में। इस उद्गार से निकले लावा के जमाव की गहराई ७,००० से लगाकर १०,००० फीट तक मानी जाती है। इसका विस्तार दकन के पठार के रूप में लगभग २ लाख वर्गमील क्षेत्र में पाया जाता है। यह लावा बहुत अधिक उपजाऊ होने के कारण शताब्दियों से काली मिट्टी में कपास उत्पादन करने के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसके अतिरिक्त लावा द्वारा निर्मित चट्टानें साधारणत: कठोर होती हैं अत: ये भवन निर्माण के लिए बड़ी उपयुक्त हैं।

वर्तमान काल में भारत के ज्वालामुखी उद्गारों का महत्व कम ही है यद्यपि भूगर्भशास्त्रियों का कथन है कि हिमालय, ब्रह्मा और बलूचिस्तान में तृतीयक युग के ज्वालामुखियों का प्राधान्य है।[1] डाक्टर चिब्बर के अनुसार भारत में निम्न मुख्य ज्वालामुखी क्षेत्र हैं :—

(१) बिहार में पूर्व-पश्चिम का क्षेत्र—इसमें बिहार की डालमा श्रेणी के ज्वालामुखी आते हैं। यह ज्वालामुखीय क्रिया धारवाड़-युग में क्रियाशील थी।

(२) कड़ुपा, बीजापुर और ग्वालियर क्षेत्र—यह श्रेणी उत्तर-दक्षिण में फैली है। यहाँ कड़ुप्पा-युग में ज्वालामुखीय विस्फोट हुए थे।

(३) जोधपुर में मालानी से लगाकर पंजाब में किराना पहाड़ियों तक का क्षेत्र—यह श्रेणी भी उत्तर-दक्षिण में फैली है। यहाँ विंध्ययुग में विशेष हलचल रही है।

(४) नैनीताल, भुवाली, भीमताल, सतलज की घाटी, गढ़वाल जिले का लोमा तथा डलहौजी और पीर पंजाल श्रेणी के निचले भाग वाले क्षेत्र—यह श्रेणी उत्तर पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर फैली है। इसमें पुराकल्प में विस्फोट हुए थे।

(५) यह श्रेणी आसाम, बंगाल और बिहार होती हुई उत्तर-पूर्व से दक्षिण व दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली है। [illegible] आसाम की अभोर श्रेणी सम्मिलित है। यहाँ मध्य कल्प में ज्वालामुखी के विस्फोट हुए थे।

(६) दक्षिण भारत का विस्तृत लावा प्रदेश—यहाँ मध्य कल्प और नवकल्प के प्रारम्भिक युग में विस्फोट हुए थे।

गर्म जल के स्रोत
(Hot Springs)

गर्म जल के स्रोतों का सम्बन्ध ज्वालामुखी क्रिया से है अतएव गर्म जल के

१ M. S. Krishnan, Geology of India and Burma, p. 47.

स्रोत अधिकांशतः उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ प्राचीन काल में कभी ज्वालामुखी क्रिया प्रगतिशील रही हो और जहाँ ज्वालामुखी के विस्फोट के फलस्वरूप आग्नेय चट्टानें पाई जाती हों। भारत में गर्म जल के सोते ग्रैनाइट, नाइस आदि चट्टानों अथवा रूपान्तरित चट्टानों के प्रदेश, में मिलते हैं। ऐसे प्रदेश काश्मीर, पंजाब, बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश, आसाम, केरल और उत्तर प्रदेश हैं।

जम्मू-काश्मीर राज्य में काश्मीर की घाटी, बर्दवान की घाटी, इस्लामाबाद, लद्दाख, पुगा घाटी क्षेत्र में गर्म जल के स्रोत मिलते हैं। काश्मीर घाटी में विही जिले में फूकनाग नामक झरने हैं। फरीआबादी नदी के १० मील ऊपर बर्दवान घाटी में कई गर्म जल के सोते हैं जिनमें गंधक मिलता है। लद्दाख में पनामिक नामक स्थान के निकट गर्म पानी का एक सोता है जिसके जल का तापक्रम १७०° से १७२° फा० है। पुगा घाटी में भी कई गर्म सोते हैं, जिनके जल में गंधक या सुहागा मिला है। इन झरनों से लगभग ४,००० मन सुहागा और ५०० मन गंधक प्रतिवर्ष प्राप्त होता है।

पंजाब राज्य में कुल्लू घाटी, कांगड़ा घाटी तथा सतलज घाटी में गर्म जल के स्रोत मिलते हैं। कुल्लू नगर के समीप मणीकरणं नामक गरम जल का सोता है जिसके जल में यात्री चावल उबाला करते हैं। इसके जल में स्नान करने से गठिया का रोग भी ठीक हो जाता है। इस झरने के जल के भाप बन जाने पर मोती जैसे श्वेत कण जम जाते हैं जो मणियों की तरह चमकदार होते हैं। इसी कारण यह सोता 'मणी-करण' सोता कहलाता है। इस सोते से गंधक मिश्रित हाइड्रोजन भी निकलता है।

कांगड़ा जिले में **ज्वालामुखी** स्थान पर भी गर्म जल-स्रोत है। इस जल में क्षार-युक्त आयोडाइड होता है जो गले की बिमारियों के लिए लाभप्रद है।

सतलज घाटी में शिमला से ३० मील दूर सतलज के तट पर गर्म जल का सोता है, जिसका जल नदी के जल से बहुत अधिक गरम है जबकि नदी की धारा और इस सोते के उद्गम में कुछ ही इंचों का अन्तर है।

पंजाब के गुड़गांव जिले में भी **सोना** नामक स्थान पर गर्म जल का सोता है जिसके जल का तापक्रम १२५° फा० है। इसमें गंधक मिला रहता है।

सिक्किम में कई गरम जल के सोते हैं किन्तु इनमें मुख्य ये हैं : रंगीत नदी के पूर्वी भाग में रिनचिपोंग मठ से लगभग २ मील दूर **'फूट साचू'** नामक गरम सोत है जिसके जल का तापक्रम १००° फा० तक है। रंगीत नदी के पश्चिमी तट पर **'रलोंग साचू'** नामक स्रोत है जिसके जल का तापक्रम १३१° फा० तक पाया जाता है किन्तु नहाने के लिए बनाये गए हौज में जल का तापक्रम ११८° फा० तक पाया जाता है। लचूंग नदी के पूर्वी किनारे पर भी **'यूमलांग'** स्रोत है जिसमें से गरम जल के साथ गंधक मिली हाइड्रोजन गैस निकलती है। इसके जल का तापक्रम साधारणतः ११३° फा० तक रहता है। अन्य मुख्य गर्म स्रोत किनचिनझा ग्लेशियर के लगभग १ मील नीचे है। इसके जल का तापक्रम ११६° फा० तक पाया गया है।

बिहार राज्य में गर्म जल के अनेक सोते हैं। राजगिरी, हजारीबाग व संथाल परगना जिले गर्म जल स्रोतों के लिए प्रसिद्ध है। राजगिरि पहाड़ी के क्षेत्र में **राजगिर और तपोवन** नामक गर्म सोते हैं।

मुंघेर जिले में धारवाड़ चट्टनों से सम्बद्ध **पंचबर, शृंगीऋषि, ताता पानी, ऋषिकुण्ड, रामेश्वर कुण्ड, सीता कुण्ड, लक्ष्मी कुण्ड, जन्म कुण्ड, भीमबन्द और झुरका**

नामक १० सोते हैं। इनके जल का तापक्रम १४०° से १४५° फा० तक रहता है। इनका जल बड़ा स्वच्छ है।

हजारी बाग जिले में ६ प्रमुख सोते हैं—क्रमशः **लुरगरथा, पिड़ारकुण्ड, द्वारी, सूरज कुण्ड, बेलकापी और केशबड़ोह**। इन सभी का जल गंधकीय है। इनके जल का तापक्रम ११०° से १६०° फा० तक पाया जाता है। इनमें सबसे गर्म सोता बेलकापी और सबसे कम गर्म सूरज कुण्ड है।

संथाल परगना में तीन-चार मुख्य गर्म सोते हैं जो सभी गंधकीय हैं। इनके जल का तापक्रम १०२° से १४८° फा० तक रहता है। नूनबिल, तातापानी, ततलोई और सिद्धपुर प्रसिद्ध सोते हैं।

मध्य प्रदेश राज्य में होशंगाबाद के **अनहोनी** तथा समोनी नामक गर्म सोते मुख्य हैं। यहाँ के जल में गंधक मिला होता है। इनके जल का तापक्रम ११४° फा० तक रहता है।

छिंदवाड़ा जिले में **अनहोनी सोना** प्रमुख सोता है। इसके जल का तापक्रम १३०° फा० तक रहता है।

पूर्णा घाटी में **सलबन्दी** नामक गर्म सोता है। इसके जल का तापक्रम १००° फा० तक रहता है। इसका जल स्वादरहित है।

ग्वालियर के निकट **सिपरी** नामक गर्म सोता है। इसमें गंधक का मिश्रण है।

बम्बई राज्य में गर्म जल के कई सोते हैं। पंचमहल जिले में तबा नामक गर्म जल का सोता है। इसका जल बड़ा पवित्र माना जाता है। जल का तापक्रम १५३° फा० तक रहता है।

इसके समीप ही **लसुन्दरा** नामक सोता है। इसके जल का तापक्रम १११° फा० तक रहता है।

थाना जिले में **वज्रबाई** से गिरगाँव तक ५० मील के भीतर अनेक गर्म जल के सोते हैं। ये क्रमशः **अवलोली, गणेशपुरी**, नीम्बोली आदि हैं।

सूर्या नदी के दायें तट पर पालघर स्टेशन के समीप **कोकनेरा** नामक गर्म जल का सोता है।

बड़ौदा के समीप **ऊनी** नामक गर्म जल स्रोत भी उल्लेखनीय है।

उत्तर प्रदेश में देहरादून के समीप **सहस्त्रधारा** नामक प्रसिद्ध जल स्रोत है जो गंधकीय है।

उच्च पर्वतीय शिखरों पर **गंगोत्री और जमनोत्री** नामक गर्म जल के सोते उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान में दिल्ली से ३३ मील दक्षिण में **सोहना** गर्म जल का स्रोत है। इसमें गंधक मिली रहती है। इसके जल का तापक्रम १२५° फा० तक रहता है।

अलवर के दक्षिण-पश्चिमी भाग में १५ मील दूर **तालवृक्ष** सोता है जिसका जल ११८° फा० तक गरम रहता है।

अजमेर जिले में नरसिंहपुरी नामक गर्म जल स्रोत है। इसे नाई लोग बड़ा पवित्र मानते हैं।

इन राज्यों के अतिरिक्त आसाम, उड़ीसा, बंगाल और केरल में भी गर्म जल स्रोत पाये जाते हैं।

अध्याय ५

भारत की प्रवाह-प्रणाली

(Hydrography of India)

भारत के आर्थिक विकास में नदियों का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। नदियाँ यहाँ आदि-काल से ही मानव के जीवन और गतिविधि का साधन रही हैं। पश्चिम की ओर से आने वाले आर्य लोगों ने सिंधु और गंगा नदियों के किनारे ही अपना निवास स्थान बनाया। फलतः इन्हीं नदियों की घाटियों में भारत की मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और आर्य सभ्यता का जन्म हुआ। भारतीय नदियाँ न केवल सिंचाई ही करती हैं वरन् इनके मार्गों में पड़ने वाले जल प्रपातों द्वारा जल विद्युत शक्ति भी प्राप्त की जाती है। उत्तर प्रदेश की गंगा नदी तथा मैसूर की कावेरी नदियाँ इसके सुन्दर उदाहरण हैं। नदियाँ आवागमन के भी प्रमुख साधन हैं। प्राचीन काल में इन्हीं नदियों द्वारा आन्तरिक व्यापार नावों द्वारा होता था किंतु रेल मार्गों के निर्माण और जल मार्गों के प्रति उपेक्षा भाव होने से इस महत्त्वपूर्ण साधन का विकास कम हो गया। चूँकि भारत की प्राचीन सभ्यता के स्थल इन्हीं नदियों की घाटियाँ रही हैं अतएव आज भी भारत के अधिक प्राचीन मन्दिर, धार्मिक और व्यवसायिक केन्द्र इन्हीं नदियों के तट पर अवस्थित पाये जाते हैं। ये नदियाँ मानव को सदैव से ही मछली के रूप में खाद्य प्रदान करती आई हैं। उत्तर प्रदेश और मद्रास तथा आसाम की कुछ नदियों की मिट्टी में स्वर्ण-कण भी पाये जाते हैं। उत्तरी भारत की नदियों का जल अधिकांशतः भूमि को सींचने के लिए बड़ा ही उपयुक्त साधन है अतएव उत्तरी भारत में विशेष कर पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में नहरों का जाल सा बिछा है। गंगा और सतलज तथा दक्षिणी भारत की नदियों के डेल्टा की उर्वरा शक्ति नदियों के कारण ही स्थिर रह पाती है।

प्रवाह क्षेत्र में परिवर्तन (Change in Drainage System)—भारत की नदियों के प्रवाह क्षेत्र (Drainage area) में प्राचीन काल से ही बहुत परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्तरी और दक्षिणी भारत की सभी नदियों की बहाव प्रणाली पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। तृतीयक युग (Tertiary Era) में उत्तरी भारत की प्रमुख बहाव-रेखा में महान परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्तरी भारत की सभी मुख्य नदियों का प्रवाह उल्टा हो गया है। कई पर्वत निर्माण-कारी हलचलों के कारण प्राचीन टिथिस महासागर हिमालय पर्वत में परिवर्तित हो गया। इस लंबी प्रणाली के समय में समुद्र पहिले एक उथले जल क्षेत्र में बदला। तत्पश्चात् यह शिवालिक नदी (Shiwalik) के रूप में हो गया। यह नदी आसाम के उत्तर-पूर्वी भाग में अपने निकास क्षेत्र से निकल कर हिमालय के समा-नान्तर चलती हुई भारत की पूरी चौड़ाई में बहती हुई सुलेमान तथा किर्थर श्रेणियों के सहारे उत्तरी-पश्चिमी कोने तक जाती थी और फिर वहाँ से दक्षिण को मुड़ कर पंजाब व सिंध से पीछे हटते हुए अरब सागर में गिर जाती थी। श्री पैस्को (Pascoe) और श्री पिल्ग्रिम (Pilgrim) प्रभृति भूतत्ववेत्ताओं ने इस नदी का नाम इन्डोब्रह्म

(Indo-Brahm) दिया है। इसकी तीन सहायक प्रणालियाँ थीं—(i) वर्तमान सिंधु; (ii) सिन्ध की सहायक नदियाँ और (iii) गंगा की सहायक नदियाँ। किंतु पोटवार (Potwar) के पठार के रूप में ऊंचे उठ जाने से यह प्रणाली छिन्न-भिन्न हो गई। इसके परिणाम-स्वरूप मुख्य नदी का उत्तरी-पश्चिमी भाग सिंध नदी का स्वतंत्र बेसिन बन गया जिसकी अंतिम पूर्वी सीमा सतलज नदी ने बनाई। प्रमुख धारा का शेष ऊपरी भाग विपरीत दिशा में बहने लगा क्योंकि पंजाब की भूमि ऊँची होने से इसकी धारा विवशतः पूर्व की खाड़ी में गिरने को बाध्य हुई। इस प्रकार शिवालिक नदी के ऊपरी भाग, जो लौटकर पूर्वी खाड़ी में गिरे, वर्तमान काल की गंगा नदी है।

भूगर्भशास्त्रियों का अनुमान है कि ऐतिहासिक युग में सतलज और जमुना राजस्थान में होकर बहती थी। इसी प्रकार सरस्वती नदी (जो हिन्दुओं की परम्परा में अब विलुप्त होगई मानी जाती है) कदाचित् वह नदी थी जो सोतर (Sotar) या घाघर (Ghaggar) की तलहटी को घेरे हुए थी और नाहन (Nahan) के निकट बहती थी। जमुना दिल्ली के निकट उत्तर में स्थित करनाल के पश्चिम की ओर बहती थी। उत्तरी बीकानेर के सूरतगढ़ के पास ये दोनों नदियाँ मिल गई और हकारा (Hakra) के नाम से दक्षिण पश्चिम की ओर बहती हुई कच्छ की खाड़ी में गिर जाती थी। ईसाई युग (Christian Era) के प्रारंभिक काल में सतलज नदी भी एक स्वतंत्र नदी थी जो सिंधु से अलग ही बहती थी। यह घाघर में मिलती थी या नहीं इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है किंतु अब यह व्यास नदी में मिल जाती है। अमरकोट और सिरसा के बीच में इसकी पुरानी धारा के अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं।

लगभग २०० वर्ष पूर्व ही गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ १५० मील की दूरी पर अलग अलग नदियाँ थीं। बाद में ब्रह्मपुत्र मधुपुर के जंगलों के पूर्व में मेघना से मिल गई। किंतु वर्तमान काल में ही एक भूमि परिवर्तन क्रांति के परिणाम-स्वरूप मधुपुर के जंगल १०० फीट ऊंचे उठ गये इससे ब्रह्मपुत्र नदी ने अपना मार्ग जंगलों के पूर्व की अपेक्षा जंगलों के पश्चिम में बना लिया। यह घटना अभी केवल १०० वर्ष पूर्व ही हुई मानी जाती है।

गंगा तथा उसकी सहायक नदियों के मार्ग में भी परिवर्तन हुए हैं। चौथी से छठी शताब्दी तक मौर्य और गुप्त राजाओं की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) एक बड़ा ही उत्तम नगर था जो गंगा, सोन, घाघरा, गंडक और पुनपुन नदियों के संगम पर स्थित था। नदियों के तट पर होने से यह एक प्रमुख बन्दरगाह और व्यापारिक केंद्र भी था किंतु इसकी समृद्धि कालांतर में नष्ट हो गई। अब सोन और घाघरा नदियाँ गंगा से यहाँ नहीं मिलतीं किंतु कई मील आगे जाकर गंगा से मिलती हैं। इसी प्रकार गंगा के डेल्टा पर गौड़ (Gaur) नामक स्थान ५वीं से १६वीं शताब्दी तक एक मुख्य व्यापारिक केन्द्र था किंतु कालान्तर में इसके चारों ओर दलदल फैल जाने से उसका महत्व कम हो गया। १६वीं शताब्दी तक बंगाल के मुस्लिम राजाओं की राजधानी और प्रसिद्ध बन्दरगाह सतगांव (Satgaon) त्रिवेणी नदी के निकट सरस्वती नदी पर स्थित था किंतु सरस्वती नदी के सूख जाने से इसका महत्व भी घट गया। १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुगली, चन्द्रनगर और सीरामपुर आदि बड़े मुख्य बन्दरगाह थे किंतु दामोदर नदी के मार्ग परिवर्तन (यह पहले हुगली नदी से नया सराय स्थान पर मिलती थी किंतु १७७० ई० में यह कलकत्ता से ३५ मील नीचे की ओर हटकर मिलने लगी) से नदी में बालू के उत्पन्न हो गयी अतः इनका महत्व सामुद्रिक जहाजों के लिए कम हो गया।

कोसी नदी १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पूर्णिया नगर के नीचे की ओर बहती थी किन्तु अब यह इसके ५० मील पश्चिम की ओर बहती है जैसा कि नदी के पुराने मार्ग के अवशेषों द्वारा ज्ञात होता है।

हिमालय क्षेत्र का प्रवाह अनुगामी प्रवाह (Consequent Drainage) नहीं है। अनुगामी प्रवाह के अंतर्गत जब नदियाँ पहाड़ों से निकलती हैं तो उनका प्रारंभिक प्रवाह-पथ उसके प्रवाह-प्रदेश के ढाल के अनुसार ही होता है। अर्थात् जल प्रवाह नये प्रकट हुए भूखंड के ढाल के स्वरूप होने लगता है। ऐसी नदियों का बहाव मोड़ के बीच की घाटियों में उनकी रचना के अनुरूप होता है अतः इनका प्रवाह जल-विभाजकों के समानान्तर होता है और नदी को निचले भागों तक पहुँचने में उसे ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रों का लम्बा चक्कर लगाकर बाहर निकलना पड़ता है। किन्तु हिमालय की नदियों का प्रवाह पूर्वगामी प्रवाह (Antecedent) है क्योंकि नैपाल की अरुण और भारत की सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, सतलज तथा तिस्ता नदियाँ हिमालय पर्वत के निर्माण के पूर्व भी उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती थी। बाद में हिमालय के निर्माण के उपरांत भी वे पूर्ववत बहती रहीं। इसका कारण यह है कि हिमालय के ऊँचे उठने और नदियों के अपक्षरण की गति लगभग समान रही है। इसका प्रमाण यह है कि जहाँ ये नदियाँ हिमालय को पार करती हैं वहाँ इनकी घाटियाँ काफी गहरी, तंग और तीव्र ढाल वाली होती है।

किन्तु सतलज, गंडक, कोसी, स्वर्णसीरी आदि नदियों के प्रवाह क्षेत्र के सम्बन्ध में पूर्वगामी प्रवाह का सिद्धान्त लागू नहीं होता क्योंकि ये नदियाँ उत्तरी बर्फीले क्षेत्र के एक बड़े भाग का पानी लाती हैं। ये नदियाँ बर्फीली चोटियों को काट-कर दक्षिणी पहाड़ियों में होती हुई मैदानों में उतरती हैं। ये नदियाँ अपनी घाटी को पीछे की ओर से काटती हैं। इसका कारण यह है कि दक्षिणी ढालों पर उत्तरी ढालों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

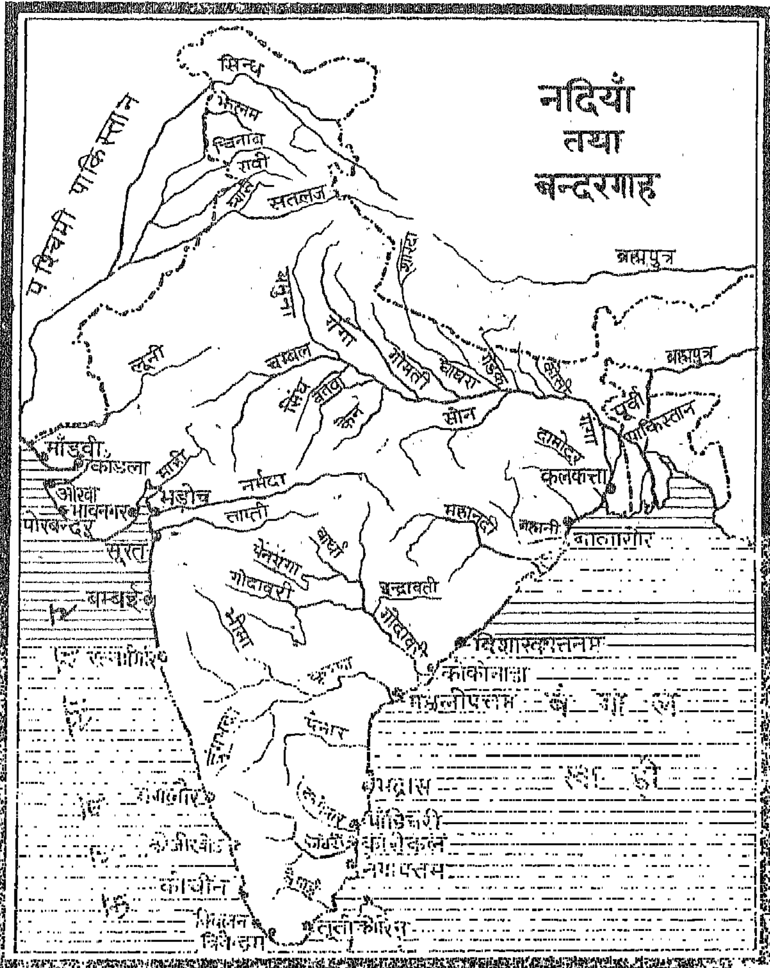
प्रायद्वीप का प्रवाह क्षेत्र—प्रायद्वीप की सभी नदियाँ अरब सागर के निकट पश्चिमी घाट से निकलती हैं। केवल दो बड़ी नदियाँ नर्मदा और ताप्ती ही पश्चिम की ओर बहती है। इसका कारण भूगर्भ-शास्त्री यह बताते हैं कि नर्मदा और ताप्ती अपनी बनाई हुई घाटियों में नहीं बहतीं किन्तु उन्होंने अपनी धाराओं के लिए दो ऐसी घाटियाँ बनाली हैं जो भूमि में दरार विस्फोट क्रिया के परिणामस्वरूप बन गई है। ये गहरी कांप भूमि से भरी हुई घाटियाँ उन चट्टानों में बन गई हैं जो विंध्याचल पर्वत श्रेणी के समानान्तर चली गई हैं। इन दरार घाटियों का उत्पत्ति काल उस समय से सम्बन्धित है जब कि हिमालय के ऊपर उठने के साथ-साथ प्रायद्वीप का उत्तरी भाग टेढ़ा होगया था। उसी उथल-पुथल के साथ इस प्रदेश के दक्षिण ओर स्थित प्रायद्वीपीय भाग थोड़े से पूर्व की ओर झुक गये अतः उस भाग का ढाल पूर्व को होगया।

प्रायद्वीप के प्रवाह प्रदेश के बारे में दूसरा मत यह है कि प्रायद्वीप उस बड़े भूभाग का शेष अर्द्धभाग है जिसका कि पश्चिमी घाट जल-विभाजक था। यह जल विभाजक स्थित रह गया किन्तु इसके पश्चिम का बहुत सा भाग अरब सागर में डूब गया। इसी कारण पश्चिमी तट पर समुद्र की गहराई केवल १०० फीट है।

भारत की नदियाँ

भारत की नदियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—एक वे जो हिमालय

से निकल कर उत्तरी भारत में बहती हैं और दूसरी वे जो पश्चिमी घाटों से निकल कर दक्षिणी भारत में बहती हैं।



चित्र १९—भारत की नदियाँ

उत्तरी भारत की नदियाँ (Rivers of North India)—उत्तरी भारत की प्रसिद्ध नदियाँ ये हैं :—

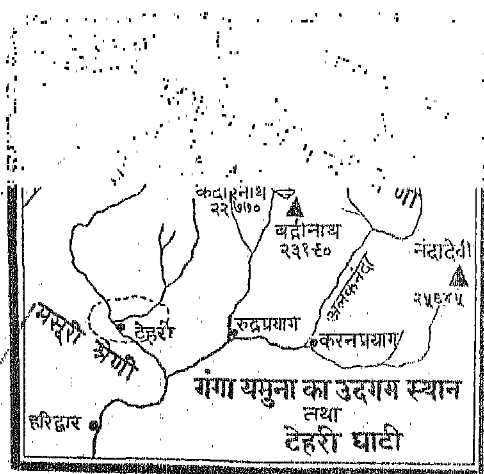
गंगा नदी (Ganga)—उत्तरी भारत की सबसे प्रमुख नदी है। स्ट्रैबो (Strabo) के मतानुसार यह तीन महाद्वीपों में सबसे बड़ी नदी है जिसकी कम से कम चौड़ाई ३० स्टैडिया (1 Stadium=606¾ ft.) है। मेगस्थनीज के अनुसार इसकी

साधारण चौड़ाई १०० स्टैडिया है और गहराई १२० फीट।[१] यह हिन्दुओं की सबसे अधिक धार्मिक नदी है। इसके प्रवाह प्रदेश में भारत के सबसे घने बसे और उपजाऊ राज्य हैं—उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल आदि जहाँ आर्यों की आदि-सभ्यता का जन्म हुआ था। गंगा नदी कई सहायक नदियों से मिलकर बनी है। इसकी मुख्य सहायक नदियाँ—जो इसमें उत्तर की ओर से आकर मिलती हैं जमुना, रामगंगा, करनाली, राप्ती, गंडक, कोसी, काली आदि हैं तथा दक्षिण के पठार से मिलने वाली नदियों में चम्बल, सिंध, बेतवा, केन दक्षिणी टोंस, सोन आदि हैं। इन नदियों का संग्रहण-क्षेत्र (Catchment area) इस प्रकार है[२] :—

हिमालय में संग्राहण क्षेत्र

कोसी	२३,९०० वर्ग मील
करनाली	२०,६०० ,,
गंडक	१४,६०० ,,
गंगा	८,९०० ,,
काली	६,३०० ,,
जमुना	४,५०० ,,
रामगंगा	२,६०० ,,

गंगा नदी वास्तव में भागीरथी और अलकनन्दा नदियों का ही सम्मिलित रूप है। अलकनंदा में भागीरथी की अपेक्षा अधिक पानी की मात्रा रहती है। यह



चित्र २०—गंगा यमुना का उद्गम स्थान

धौली (Dhauli)—जो नीती दर्रे के निकट जास्कर श्रेणी से निकलती है—और विष्णुगंगा (Vishnu-Ganga)—जो माना दर्रे के निकट माऊंट कामेत से निकलती

१. P. Sen Gupta, The Ganga, in March of India, Vol VII, No. 1, 1954, p. 19.

२. Burrard, S. H. and Hayden, H. H. and Heron, A. M.: A Sketch of the Geography and Geology of the Himalayan Mountains and Tibet, 1933, p. 175.

है—आदि नदियों से मिल कर बनी है। यह दोनों विष्णु-प्रयाग के निकट मिलकर एक हो जाती हैं। इसके बाद अलकनंदा मध्य हिमालय के प्रमुख और गहरे गड्ढे में होकर बहती हैं जिसके एक ओर नंदादेवी और दूसरी ओर बद्रीनाथ की ऊँची चोटियाँ हैं। इसकी एक अन्य सहायक नदी पिंडार (Pindar) है जो नंदादेवी से निकल कर कर्ण प्रयाग में अलकनन्दा से मिल जाती है। मंदाकिनी (Mandakini) नदी इससे बद्रीनाथ के दक्षिण की ओर रुद्र प्रयाग में मिलती है। त्रिशूल पर्वत के पश्चिम में पिंडार और नंदका (Nandaka) नदियाँ नंद प्रयाग में मिलती हैं। अलकनंदा और भागीरथी देव प्रयाग में मिलकर एक हो जाती है। यहीं से अलकनंदा पहाड़ियों को काट कर शिवालिक होती हुई ऋषिकेश और हरिद्वार पहुँचती है।

गंगा नदी (वास्तव में भागीरथी) का मुख्य श्रोत गंगोत्री हिमानी से है जो केदारनाथ चोटी के उत्तर में गऊमुख नामक स्थान पर १२,८०० फीट की ऊँचाई पर है इसीसे नीचे उतर कर गंगोत्री का पवित्र स्थान है। इस हिमानी के निकट सातोपंथ, शिवलिंग आदि कई ऊँची चोटियाँ हैं। मुख्य हिमालय के कुछ उत्तर में जाह्नवी (Jahanavi) नदी निकल कर भागीरथी से गंगोत्री के निकट मिलती है। दोनों नदियाँ एक होकर मुख्य हिमालय श्रेणियों में बन्दरपंच और श्रीकान्ता चोटियों के बीच १३,००० फीट गहरी घाटी बना कर बहती हैं। श्री ग्रीसबैच (Griesbach) के अनुसार गंगा नदी बहुत ही गहरी घाटी में होकर बहती है। यह घाटी इतनी अद्भुत् और चित्रमय है जिसकी तुलना विश्व की किसी भी घाटी से करना अनुचित है। इसके किनारे प्रायः लंबवत हैं जिन्हें नदी की घाटी ने काट कर कुछ चिकना बना दिया है। भैरोंघाटी नामक संकड़े स्थान पर एक तार का झूलता पुल बनया गया



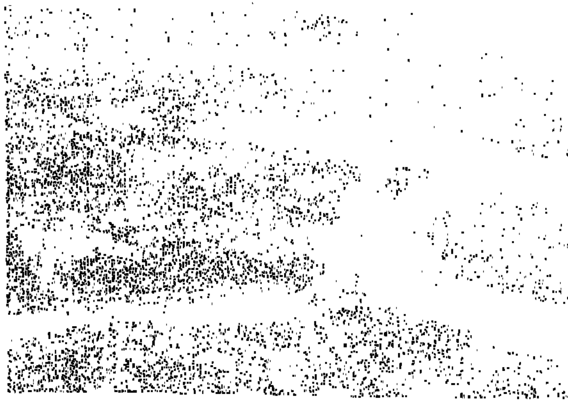
चित्र २१—देव प्रयाग के निकट गंगा का उद्गम

है जिसके सहारे यात्री गंगोत्री स्थान के दर्शन करने जाते हैं।[1] भूगर्भ शास्त्रियों का विश्वास है कि गंगा का प्रवाह पूर्वगामी है। यह हिमालय की श्रेणियों से भी पुराना

१. Greisbach, C. L., Geology of Central Himalayas, 1891, Memoirs

है। इन पर्वतीय क्षेत्रों में हिन्दुओं के कई धार्मिक स्थान हैं जैसे केदारनाथ, बद्रीनाथ, मानसरोवर झील, कैलाश आदि।

गंगा नदी हरिद्वार के निकट मैदान में प्रवेश करती है जिससे थोड़ी दूर पर ऊपरी गंगा की नहर निकाली गई है। यह नदी हरिद्वार से पहले दक्षिण और फिर दक्षिण पूर्व बहती हुई उत्तर प्रदेश के मेरठ, रुहेलखंड, फरुखाबाद, अवध, इलाहाबाद, मिर्जापुर, बनारस, बलिया आदि जिलों में होती हुई बहती है। प्रयाग के निकट इसमें जमुना नदी आकर मिल जाती हैं। यहाँ से यह पूर्व की ओर घूमती है यहाँ इसमें गाजीपुर के निकट गोमती और बलिया के निकट घाघरा मिलती हैं। मध्य के पठार से निकली हुई सोन नदी गंगा से पटना के निकट मिलती है। कुछ और पूर्व की ओर हटकर गंडक और कोसी भी गंगा में मिल जाती है। यहाँ से मुख्य नदी पद्मा (Padma) के नाम से राजमहल की पहाड़ियों को पार कर दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई ग्वालंडो के निकट ब्रह्मपुत्र से मिल जाती है। यहाँ नदी कई मील चौड़ी हो जाती है और कई धाराओं में बंट जाती है। इसके पश्चात् मेघना नदी से मिलकर ६० मील चौड़ी एस्चुरी बनाकर बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। बंगाल तक पहुँचने में यह नदी १,५५१ मील बह चुकती हैं जिसमें ५४० मील तो बंगाल में ही बहती है। गंगा की अन्य धारायें क्रमशः हुगली, माटला, रायमंगल, मलंचा, हरिंग घाटा, नाडिया और भागीरथी हैं।



चित्र २९—हरिद्वार के निकट गंगा का दृश्य

गंगा का डेल्टा हुगली और मेघना नदियों के बीच में है। यह संसार का सबसे बड़ा डेल्टा माना जाता है जिसमें अनेक धाराओं और छोटी-छोटी द्वीपों का जाल सा बिछा है। इस डेल्टा के अन्तर्गत मुर्शिदाबाद, नाडिया, जैसोर और २४ परगने के जिले हैं। डेल्टा का समुद्री भाग घने जंगलों से ढका है जिनमें चीते आदि हिंसक पशु रहते हैं। सुन्दरी पेड़ों की अधिकता से यह भाग सुन्दर वन (Sunderbans) कहलाता है। बंगाल का सबसे बड़ा जलमार्ग हुगली नदी है जो विश्व की सबसे अधिक धोखेबाज नदी (Treacherous River) कहलाती है। यह विश्व की सबसे अधिक व्यस्त नदी भी है। इसी के तट पर कलकत्ता बन्दरगाह है जिसे पूर्व का लंदन (London

in the East) कहा जाता है। हुगली के किनारे कलकत्ते से २५ मील ऊपर और ३५ मील नीचे के क्षेत्र में ही भारत के जूट के मिल स्थित हैं।

जमुना (Jamuna)—गंगा नदी प्रणाली की सबसे मुख्य नदी जमुना है जो जमनोत्री (Jamnotri) के गर्म सोते से ५ मील उत्तर की ओर टहरी गढवाल राज्य से निकलती है। हिमालय पर्वत की यात्रा के ऊपरी भाग में उत्तर की ओर से इसमें टोंस (Tons) नदी आकर मिलती है। इसके बाद यह लघु-हिमालय की पहाड़ियों को काटकर आगे बढ़ती है जहाँ पश्चिम की ओर से इसमें गिरी (Giri) और पूर्व की ओर से आसन (Asan) नदियाँ आकर इसमें मिल जाती हैं। अब यह नदी बड़ी तेजी से मैदान में उतरती है और प्रयाग में गंगा से मिल जाती है। मैदान में उतर कर यह बल खाती हुई दिल्ली, मथुरा, आगरा और इटावा का चक्कर लगाती है। इटावा से नीचे इसमें चंबल और सिन्ध आकर मिलती है तथा हमीरपुर के निकट बेतवा और प्रयाग के निकट केन नदियाँ इसमें मिलती हैं। जमुना संपूर्ण लम्बाई में ८६० मील बहती है। जमुना का उपयोग पश्चिमी जमुना नहर को जल देने के लिए किया गया है। इसकी ऊपरी भाग में टिम्बर तथा मैदानी भाग में पत्थर, कपास, अनाज आदि ढोया जाता है।



चित्र २३—जमुना नदी की सुन्दर घाटी का दृश्य

रामगंगा (Ram Ganga)—यह तुलनात्मक दृष्टि से एक छोटी नदी है जो मुख्य हिमालय श्रेणी के दक्षिणी भाग से निकलती है। यह नदी अपने प्रथम ६० मील की यात्रा में बड़ी तेजी से बहकर कालागढ़ किले के निकट (बिजनौर जिले में) मैदान में प्रवेश करती है जहाँ १५ मील नीचे की ओर इसमें खोह नदी (Khoh)

आकर दाहिने किनारे से इसमें मिल जाती है। शिवालिक पहाड़ियों के कारण इसका प्रवाह मार्ग दक्षिण-पश्चिम की ओर हो जाता है और मैदान में उतरने पर दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई मुरादाबाद, बरेली, बदायूँ और शहाजहाँपुर जिले में ३७० मील बहती हुई कन्नौज के निकट गंगा में जाकर मिल जाती है। यद्यपि इस नदी का जल सिंचाई के लिए अधिक उपयोग में नहीं आता किन्तु रामनगर के निकट कोसी के दोनों किनारों से छोटी २ नहरें निकाली गई हैं। इस नदी का मार्ग मैदान में बड़ा अनिश्चित और परिवर्तनशील है।

काली, कालीगंगा, सारदा अथवा चौका नदी (Kali, Kaliganga or Sarda)—काली नदी कुमांयू के उत्तर-पूर्वी भाग में मिलाम हिमनदी से निकलती है। इसकी दो सहायक नदियाँ हैं—धर्मा (Dharma) और लिसार (Lessar) जो अपने ऊपरी भागों में दक्षिण-पूर्वी दिशा में बहती है। किन्तु मुख्य नदी में सरजू (Sarju) और पूर्वी रामगंगा नदियाँ उत्तर पश्चिम से आकर पंचेश्वर के निकट मिलती हैं। यहीं से यह नदी सरजू या सारदा के नाम से पहाड़ियों में चक्कर लगाती हुई बरमदेव के निकट मैदान में प्रवेश करती है। यहाँ इसके दो भाग हो जाते हैं किन्तु मुंडिया घाट के निकट पुन: मिलकर एक हो जाती है। इससे आगे यह नदी नैपाल और पीलीभीत जिले के बीच की सीमा बनाती है। खेरी में इस नदी की चार शाखायें हो जाती हैं—ऊल, सारदा (चौका) दहावर और सुहेली। सारदा नदी चक्करदार मार्ग बनाती हुई बहरमघाट के निकट घाघरा से मिल जाती है। इसमें ब्रह्मदेव के निकट सारदा नहर निकाली गई है।

करनाली, कौरियाला या घाघरा नदी (Karnali or Kauriala)—यह नदी पहाड़ी क्षेत्र में करनाली या कौरियाला तथा मैदान में घाघरा कहलाती है। यह तकलाकोट से २३ मील उत्तर पश्चिम की ओर मापचा चुंगो (Mapcha Chungo) हिमानी से निकलती है और गुरलामांधाता के दक्षिणी और पश्चिमी सिरों का चक्कर लगाकर आगे बढ़ती है। यह दक्षिण पूर्वी दिशा में बहकर दक्षिणी-पश्चिमी ओर से हिमालय श्रेणी को पार करती है। यहाँ यह १०० मील लम्बी है। यहाँ इसमें एक सहायक नदी आकर मिल जाती है। अब करनाली नदी एक गहरे खड्ड में होकर महान हिमालय को पार करती है तथा लगभग ५० मील दक्षिण-पश्चिमी दिशा में बहने के बाद पूर्व की ओर से टीला नदी इसमें मिल जाती है। यहाँ से यह बालों की पिन की तरह का मोड़ खाती हुई पश्चिम की ओर जाती है जहाँ इसमें सेती नदी मिलती है। अब यह महाभारत श्रेणी को काटती हुई आगे बढ़ती है जहाँ इसमें कुआनघाट के निकट बेरी नदी आकर मिलती है। शिवालिक को पार करते समय यह नदी शीशपानी नामक ३०० गज चौड़ा खड्ड बनाती हुई २,००० फीट गहरी बहती है। इसी के बाद इसमें तेज रपटें बनती जाती हैं। मैदानी भाग में पहुँचकर इसकी दो शाखायें बन जाती हैं पश्चिम की ओर करनाली तथा पूर्व की ओर गिरवा किन्तु आगे जाकर पुन: दोनों मिलकर एक हो जाती हैं। आगे यह नदी अवध होती हुई छपरा के निकट गंगा में मिल जाती है। इस नदी में प्रति सैकंड १० लाख घन फुट पानी बहता है।

राप्ती (Rapti)—यह नदी नैपाल के पिछले भाग की ओर से निकल कर पहले दक्षिण और फिर पश्चिम की ओर बहती है। एक बार फिर दक्षिण की ओर मुड़कर बहराइच, गोंडा, बस्ती और गोरखपुर जिलों में ४०० मील तक बहती हुई बरहज

के निकट घाघरा में मिल जाती है। इसमें छोटी नावें भींगा तक तथा बड़ी नावें गोरखपुर तक खेई जा सकती हैं। नैपाल से अनाज तथा लकड़ियाँ आदि इसी नदी द्वारा ढोई जाती है।

गंडक (Gandak)—इस नदी को नैपाल में सालिग्रामी (Saligrami) और मैदान में नरायनी (Narayani) कहते हैं क्योंकि इसमें गोल-मटोल सालिग्राम बहुत मिलते हैं। इसकी दो मुख्य शाखायें हैं—पश्चिम की ओर काली गंडक तथा पूर्व की ओर त्रिसूली गंगा जिनकी स्वयं की कई सहायक नदियाँ हैं जो महान हिमालय से निकलती हैं। काली गंडक फोटू (Photu) दर्रे के निकट से निकलती है किन्तु इसमें धौलागिरी चोटी से भी जल आता है। यह एक गहरे खड्ड में होकर महान-हिमालय को पार करती है तथा पूर्वी भाग में बहने लगती है। त्रिशूली गंगा गोसाईंथान के उत्तरी-पश्चिमी भाग से निकलती है और फिर दक्षिण की ओर बहती हुई महाभारत श्रेणी के उत्तर तक जाती है। यहाँ इसमें बूढ़ी गंडक (Buri Gandak), मरस्यान्डी (Morsyandi) आदि अन्य सहायक नदियाँ मिलती हैं। यहीं इसमें काली गंडक नदी भी मिलती है। अब नदी संयुक्तरूप में महाभारत श्रेणी को काटकर दक्षिणी-पश्चिमी भाग में बहती हुई शिवालिक श्रेणी को पार कर मैदान में प्रवेश करती है। यह पटना के निकट गंगा से मिल जाती है। मैदान में कहीं २ तो इसकी चौड़ाई २ मील से भी अधिक हो जाती है।

कोसी (Kosi or Kausika)—यह गंगा की सबसे बड़ी सहायक नदी है। मुख्य धारा अरुण के नाम से गोसाईंथान के उत्तर से निकलकर काफी दूर तक पूर्व दिशा में बहती है। इसका बेसीन ब्रह्मपुत्र के बेसीन के दक्षिण में है इसे यहाँ दिगंरी मैदान कहते हैं जो प्रायः २०० मील लम्बा और सपाट है। इसमें अरुण नदी सर्पाकार बहती है। यहाँ इसमें पूर्व की ओर से यारु (Yaru) नदी आकर मिलती है अब यह सम्मिलित रूप से दक्षिण को बहती है। अरुण नदी पश्चिम में माऊंट एवरेस्ट और पूर्व में कंचनजंघा के बीच में दक्षिण-दिशा में बहती हुई आगे बढ़ती जाती है। यहाँ इसकी घाटी बहुत गहरी है। लगभग ६० मील बहने के बाद इसमें पश्चिम की ओर से सुन कोसी (Sun kosi) और पूर्व की ओर से तामूर कोसी (Tamur kosi) नदियाँ इसमें आकर मिलती हैं। सून कोसी की कई सहायक नदियाँ हैं—इन्द्रावती, भोट कोसी, ताम्बा कोसी, लीखू, दूध कोसी आदि। कोसी नदी शिवालक को पार कर छत्तर खड्ड के निकट मैदान में प्रवेश करती है तथा गंगा में मिलने के पूर्व स्वयं का भी अपना बड़ा डेल्टा बनाती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि आरम्भ में कोसी महानंदा नदी से, जो दार्जिलिंग हिमालय से आती थी, मिलती थी और २०० वर्ष पूर्व कोसी पूर्णिया के ठीक पश्चिम में बहती थी किन्तु अब यह उस स्थान से १०० मील पश्चिम की ओर हटकर बहती है। इन दो सौ वर्षों में इस नदी ने कई बार अपना मार्ग परिवर्तन किया है तथा लगभग ४,००० वर्ग मील क्षेत्र पर बही है। अब यह गंगा से मनीहारी के २० मील पश्चिम की ओर मिलती है। इस नदी में बाढ़ें बहुत अधिक आती हैं जिससे अपार जन-धन की हानि होती है। अधिक बाढ़ के समय इस नदी में लगभग ७½ लाख क्यूसैक (Cusec) जल आता है।

पठार से निकलने वाली गंगा की सहायक नदियाँ

यद्यपि गंगा में जल मुख्यतः उन सहायक नदियों से आता है जिनका उद्गम

स्थान हिमालय में है किन्तु कुछ जल पठार की नदियों द्वारा भी उसे प्राप्त होता है। ये नदियाँ क्रमशः चम्बल, बेतवा, काली सिंध, दक्षिणी टोंस और केन आदि हैं।

चम्बल (Chambal)—यह नदी मध्य प्रदेश में मऊ के निकट जनपाव नामक पहाड़ी से निकलती है जो समुद्रतल से २,०१९ फीट ऊंची है। यह पहले उत्तर-पूर्व की ओर बहकर बूंदी, कोटा और धोलपुर में आती है फिर पूर्वी भाग में बहती हुई इटावा से २५ मील दूर जमुना में जा मिलती है। कोटा डिवीजन में भैंसरोड़गढ़ के निकट ६० फीट ऊंचाई से इसका जल चूलिया झरने में गिरता है। इसकी सहायक नदियाँ काली सिंध, सिप्रा, पारबती और बनास हैं। इस नदी में बड़ी बाढ़ें आती हैं और तब यह अपने धरातल से १०० फीट ऊंची तक बहने लगती है। इसकी धारा ने निकटवर्ती क्षेत्रों में बड़ी गहरी खाइयाँ बना दी हैं अतः ग्वालियर के निकटवर्ती भागों में बड़े खड्ड (Ravines) पाये जाते हैं। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई ६५० मील है। अब इस पर चम्बल जल विद्युत योजना बनाई जा रही है। काली सिंध, पार्वती और बनास नदियों का जल इसमें मिल जाने पर यह नदी विशाल बन जाती है। धोलपुर होती हुई इटावा से ४०० मील नीचे ६५० मील बहने के बाद यह जमुना में मिल जाती है।

बेतवा या वेत्रावती (Betwa or Vetravati)—यह मध्य प्रदेश में भोपाल से निकल कर उत्तर पूर्वी दिशा में बहती हुई भोपाल, ग्वालियर, झांसी, ओरछा और जालौन आदि जिलों में होकर जाती है। इसके ऊपरी भाग में कई झरने मिलते हैं किन्तु झांसी के निकट यह कांप के मैदान में धीमे धीमे बहती है। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई ३०० मील है। यह यमुना में हमीदपुर के निकट गिर जाती है। झांसी से १५ मील दूर परिच्छ में इससे बेतवा नहर निकाल गई है। इसके किनारे सांची और भेलसा के प्रसिद्ध नगर हैं।

काली सिंध (Kali Sindh) **या सिंध**—यह राजस्थान में टोंक जिले में नैनवास से निकल कर २६० मील बहती हुई जगमनपुर से कुछ उत्तर की ओर जमुना से मिल जाती है।

दक्षिणी टोंस या तमसा नदी (Southern Tons or Tamasa)—यह नदी कैमूर की पहाड़ियों में स्थित तमाशाकुंड नामक जलाशय से निकल कर उत्तर-पूर्वी दिशा में बहती हुई सतना नदी से मिलती है। इसके ४० मील आगे पुरवा के निकट यह मैदानी क्षेत्र में उतरती है। इसमें मार्ग में कई सुन्दर प्रपात बन जाते हैं जिनमें सबसे मुख्य बिहार का प्रपात है जिसमें जल ६०० फीट की चौड़ाई और ३७० फीट की ऊंचाई से गिरता है। यह नदी १६५ मील बहकर इलाहाबाद से लगभग १९ मील दूर सिरसा के निकट गंगा से मिल जाती है।

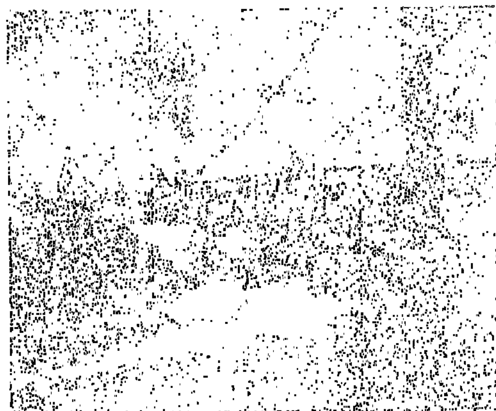
सोन या स्वर्णनदी (Sone or [illegible] नदी अमरकंटक की पहाड़ियों में नर्मदा के उद्गम स्थान के [illegible]। शीघ्र ही इसे पठार को पार कर नीचे उतरना पड़ता है अतः इसमें झरने बन जाते हैं। अब यह उत्तर-पश्चिम की ओर बहने लगती है जहाँ सोहागपुर से कुछ दूर इसमें जोहिला नदी आकर मिलती है। रीवां और बघेलखंड के बीच यह नदी २८० मील तक कैमूर की श्रेणी के दक्षिणी भाग में बहती है। इसी भाग में यह महानदी, बनास और गोपद नदियों से मिलती है। उत्तर प्रदेश में यह बड़े टेढ़े मेढ़े आकार में बहती है। यहां इसमें रिहंद और कन्हार नदियाँ मिलती हैं। बिहार में इसका पाट ३ मील चौड़ा हो जाता है किन्तु शुष्क ऋतु में इसकी धारा बड़ी पतली हो जाती है। बाढ़ के समय इसके प्रति

सैकंड ८००,००० घन फीट पानी वहता है। इसकी बाढ़ें बड़ी ही यकायक और विनाशकारी होती हैं। १,००० वर्ष पूर्व यह नदी गंगा से पटना के नीचे मिलती थी किन्तु अब यह गंगा नदी में दीनापुर से १० मील ऊपर की ओर गिरती है यह ४८५ मील लम्बी नदी है।

ब्रह्मपुत्र प्रणाली (Brahamputra River System)—ब्रह्मपुत्र नदी को 'ब्रह्मा का बेटा' कहा जाता हैं। यह भारत की सबसे बड़ी नदी है। यह तिब्बत में कैलाश पर्वत से, मानसरोवर झील से ५० मील की दूरी पर, १६,००० फीट की ऊँचाई से निकलती है। इसका उदगम् दक्षिण-पश्चिम में सतलज और सिंध के श्रोतों के निकट ही है। यह नदी सांपू' (Tsan-Po) नदी के नाम से लद्दाख और कैलाश की घाटियों के बीच महान हिमालय की श्रेणी के समानान्तर पूर्व की ओर ८०० मील तक बहती है। पुन: हिमालय की प्रमुख श्रेणी का चक्कर काटकर यह दक्षिण की ओर मुड़ती है और हजारों फीट नीचे गिरकर यह आसाम के उत्तरी-पूर्वी कोने से धियांग (Dhiang) के नाम से निकलती है। यहाँ इसमें उत्तर की ओर डिबोंग (Dibog) *और सेसरी (Sesseri) तथा दक्षिण की ओर से नोवा डिहांग (Noa Dihang)* नदियाँ इसमें आकर मिलती है। यहाँ से दक्षिणी—पश्चिमी दिशा की ओर बढ़ती है और इसमें स्वर्णसीरी, माद्री, धनसीरी, बर्नाड़ी, मानस, संकोश, धारला तथा तिस्ता-नदियां उत्तरी किनारे से और बुरही, दिहिंग, दिसांग, दिखो, जांझी, धनसीरी, कुलसी, तथा जिंजीराम दक्षिणी किनारे से मिलती हैं। गारो पहाड़ी से मुड़ कर यह दक्षिण दिशा में बहने लगती है। इसी समय इसमें इसकी सहायक शाखा यमुना निकलती है जो दक्षिण में बहती हुई ग्वालन्दो के निकट पद्मा नदी से मिलती है तथा प्रमुख धारा जो जमुना से पतली है. दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़कर मेघना नदी में मिल जाती है। अंत में पद्मा और जमुना दोनों नदियाँ इसमें चांदपुर के निकट आकर मिलती है। ये संयुक्त-धाराएँ बहुत चौड़ी होकर एक बड़ी एस्चुरी बनाती है जिसमें बहुत से द्वीप बनते हैं। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई १८०० मील है तथा इसका प्रवाह-प्रदेश ३,६१,००० वर्ग मील में फैला है। इसके समुद्र में गिरने के स्थान से लगभग ८०० मील ऊपर डिब्रूगढ़ तक बड़े जहाज चल सकते हैं। छोटी नावें तिब्बत तक जा सकती हैं। इस नदी में बड़ी भयंकर बाढ़ें आती हैं जिससे आसाम राज्य को जन-धन की अपार हानि उठानी पड़ती है।

सिंधु नदी (Indus)—यह नदी लद्दाख श्रेणी के उत्तरी भाग से निकलती है। इसमें कैलाश चोटी के दूसरी ओर से एक सहायक नदी सिंगी खंबाब—और दक्षिणी ओर से गरतंग चू आकर मिलती है। यह ब्रह्मपुत्र नदी से ठीक उल्टी ओर बहती है। ६६० मील उत्तर-पश्चिम की ओर बहने के बाद यह नंगा पर्वत पर समकोण बनाती हुई मुड़ती है। तब यह अनेक चट्टानों और प्रपातों पर होती हुई अटक के पास मैदान में प्रवेश करती है। यहीं से इसकी पाकिस्तानी यात्रा आरंभ होती है। सिंध की कई सहायक नदियाँ हैं। जांस्कर श्रेणी से निकलने वाली जांस्कर नदी लेह के निकट इससे मिलती है। जोजिला दर्रे के उत्तर की ओर से आने वाली द्रास नदी तथा कराकोरम के उत्तर की ओर से आने वाली श्योक नदी [illegible] के निकट इससे मिलती है। गिलगित और [illegible] अन्य सहायक नदियाँ हैं जो इससे मिलती है। [illegible] के निकट यह नदी ५०० फीट चौड़ी और १० फीट गहरी रहती है। अटक के निकट यह समुद्र के धरातल से २,००० फीट की ऊंचाई पर बहती है तथा १०० से २५० गज चौड़ी हो जाती है। मैदान का आधा भाग तय करने के बाद

यह पंचनद, सतलज और चिनाब की संयुक्त धाराओं में मिलती है। चिनाब में झेलम और रावी नदियाँ आकर मिलती हैं तथा सतलज में व्यास नदी। आगे यह सिंध के शुष्क राज्य में बहती हुई अरब सागर में गिर जाती है। ग्रीष्म में बर्फ पिघलने से



चित्र नं० २४—नागा पहाड़ियों में नदी पर झूलता हुआ पुल

इसमें प्राय: बड़ी बाढ़ें आया करती हैं। इस नदी की सम्पूर्ण लम्बाई १,८०० मील है तथा प्रवाह क्षेत्र ३७३ वर्ग मील। बाढ़ के समय इसका जल २० से २५ फीट ऊंचा बढ़ जाता है तथा जल की मात्रा १० लाख क्यूसेक से भी अधिक हो जाती है। इसका डेल्टा ३,००० वर्ग मील में फैला है जिसमें अनेक पुरानी नदियों के मार्ग बने हैं।

सतलज या सतद्रु (Sutlej or Satadru)—यह नदी कैलाश पर्वत के दक्षिणी ढालों पर मानसरोवर झील के निकट १५,२०० फीट की ऊंचाई से राक्षसताल से निकलती है। तिब्बत में यह नदी बहुत ही संकड़े भाग में बहती है जहाँ इसके किनारे साधारण ६००—७०० फुट ऊँचे हैं। राक्षसताल से शिपकी तक नदी की दिशा उत्तर-पश्चिम की ओर रहती है। यहाँ नदी की घाटी में काफी गहराई तक कांप मिट्टी पाई जाती है। यहाँ से यह दक्षिण की ओर मुड़ती है और हिमालय को काट कर गहरा खड्ड (Canyon) बनाती है, जो कहीं कहीं ३,००० फीट तक गहरा है। इस भाग में अनेक छोटी नदियाँ आकर इसमें मिलती हैं। इसके दोनों ओर २०,००० फीट की ऊंची पर्वतीय दीवारें खड़ी हैं। शिपकी के पास नदी की ऊंचाई समुद्रतल से १०,००० फुट है। इसकी मुख्य शाखा सिप्ती नदी है जो मध्य हिमालय श्रेणियों का जल लेकर इसमें मिलती है। हिमाचल प्रदेश और कुलू घाटी में इस नदी ने भी गहरी नद-कंदरायें बनाई हैं। सिप्ती के मिलने पर सतलज में जल की मात्रा अधिक हो जाती है अत: यह बड़ी तेजी से बहती है। बशहर में रामपुर के पास यह ३००० फुट और बिलासपुर के निकट केवल १००० फुट की ऊंचाई पर ही बहती है। [illegible] श्रेणी का चक्कर काट कर मैदान में प्रवेश करती है। [illegible] है। आगे बढ़ने पर यह जालंधर दोआब को सरहिंद पठार से अलग करती है और पश्चिम की ओर बहने लगती है। कपूरथला के दक्षिणी-पश्चिमी सिरे पर यह व्यास से मिल जाती है और

मिथनकोट के निकट सिंधु से। ११वीं शताब्दी में यह नदी सिंधु में न मिलकर बीकानेर जिले में बहनेवाली हकरा अथवा सरस्वती नदी से मिलती थी। यह नदी ९०० मील लम्बी है।

झेलम (Jhelum)—यह नदी काश्मीर में शेषनाग झील से निकल कर ७० मील उत्तर-पश्चिमी दिशा में बहती हुई वूलर झील से मिलती है। इस मार्ग में यह मुख्य हिमालय और पीर पंजाल श्रेणियों के बीच बहती है। श्रीनगर से नीचे इसमें सिंधु नदी मिलती है। बारामूला के आगे यह ७,००० फीट गहरी बहती है और आगे जाकर इसमें किशनगंगा नदी मिल जाती है। जम्मू से आगे बढ़ने पर यह पिंड दाननखान और बेहरा होती हुई त्रिमू के निकट चिनाब से मिलती है। सम्पूर्ण नदी की लंबाई ४५० मील है। इससे काश्मीर राज्य को आवागमन एवं व्यापार में बड़ी सहायता मिलती है। श्रीनगर में इस पर 'शिकारा' अधिक चलाये जाते हैं तथा नावों में फल, सब्जियों और फूलों की खेती की जाती है।



चित्र २५—श्रीनगर में झेलम पर लकड़ी का पुल

चिनाब (Chenab)—यह नदी लाहुल में बरालाचा दर्रे के विपरीत दिशा में १६,००० फीट की ऊँचाई से चन्द्रा और भागा नामक दो नदियों के रूप में निकलती है। यह नदियाँ क्योंकि पहाड़ों से निकलती हैं अतः बर्फ का जल पिघल कर उनमें निरन्तर आता रहता है। ये दोनों टांडी के निकट मिल कर चम्बा राज्य में उत्तर-पश्चिमी दिशा में लगभग १०० मील बहती है। किश्तवार के निकट एक बड़ा तेज मोड़ लेकर यह पीरपंजाल श्रेणी में गहरी कंदरा बना कर मैदान की ओर बढ़ती है

जहाँ इसकी घाटी चौड़ी हो जाती है। यहीं से इसकी पाकिस्तानी यात्रा प्रारम्भ होती है।

रावी (Ravi)—यह पंजाब की सबसे छोटी नदी है जो धौलाधर पर्वतमाला के उत्तरी और पीर पंजाल श्रेणी के दक्षिणी ढालों का जल बहा कर लाती है। यह अपने मार्ग में बड़ी ऊँची श्रेणियों में हो कर गहरी कन्दरायें बनाती हुई बहती है। फिर यह बसोली के निकट मैदानी भाग में बहने लगती है।

व्यास (Beas)—रावी के स्रोत के निकट से ही यह नदी भी निकलती है। अपने उद्गम से ६ मील दूर यह कोटी दर्रे से हो कर बहती है जो मुश्किल से २० फीट चौड़ा और ३०० गज लम्बा है। धौलाधर पर्वतमाला को काट कर यह कूलू, मंडी और कांगड़ा जिलों में बहती हुई कपूरथला तथा अमृतसर होती हुई कपूरथला के निकट सतलज से मिल जाती है। यह २९० मील लम्बी है।

दक्षिण भारत की नदी प्रणाली (River System of Peninsular India)—दक्षिण के पठार पर बहने वाली नदियों में अनेक विशेषतायें पाई जाती हैं, जैसे :—

(१) बड़े मैदानों की अपेक्षा यहाँ की नदियाँ छोटी और कम संख्या में हैं क्योंकि यहाँ वर्षा कम होती है। इसलिये इन नदियों में गरमी के मौसम में पानी कम रहता है और वे पहाड़ी प्रदेश पर हो कर बहती हैं इसलिये कृष्णा, कावेरी, गोदावरी आदि नदियाँ भी नावों के अधिक काम की नहीं हैं।

(२) मार्च से जून तक (गरम सूखे मौसम में) जब मैदान की नदियों में हिमालय का बर्फ गल कर आता है तो उन दिनों पठार की नदियाँ सूख जाती हैं क्योंकि इनके उदगम स्थान बर्फ से ढके पर्वतों में नहीं हैं।

(३) धरती पथरीली होने के कारण पठार पर गिरने वाला वर्षा का जल धरती में नहीं सोखता परन्तु शीघ्र ही नदियों में बह जाता है। यही कारण है कि पठार की नदियों में एक दम बाढ़ें आ जाती है और वे बहुत शीघ्र उतर भी जाती हैं। चम्बल, सोन और महानदी गहरी और आकस्मिक बाढ़ों के लिये प्रसिद्ध हैं।

(४) पठार के धरातल के ढालू और चटियल होने के कारण नदियों से सिंचाई के लिये नहरें नहीं निकाली जा सकतीं।

(५) पठार की प्राय: सभी नदियाँ बड़ी पुरानी हैं। सैकड़ों वर्षों से यह नदियाँ अपने मार्ग को काटती आ रही हैं। अत: अब इनकी काटने की शक्ति नष्ट प्राय: सी हो चुकी है इनकी घाटियाँ चौड़ी किन्तु छिछली हैं।

दक्षिणी भारत में अनेक छोटी बड़ी नदियाँ पाई जाती हैं। इनमें से अधिकांश बंगाल की खाड़ी में, कुछ अरब सागर में और कुछ उत्तर की ओर बहती हुई गंगा नदी-प्रणाली में गिरती हैं। कुछ नदियाँ अरावली तथा मध्य प्रदेश के पहाड़ी भागों से निकल कर कच्छ के रन अथवा खंभात की खाड़ी में गिरती हैं। नीचे की तालिका में इन नदियों का प्रवाहक्षेत्र आदि बताया गया है :—

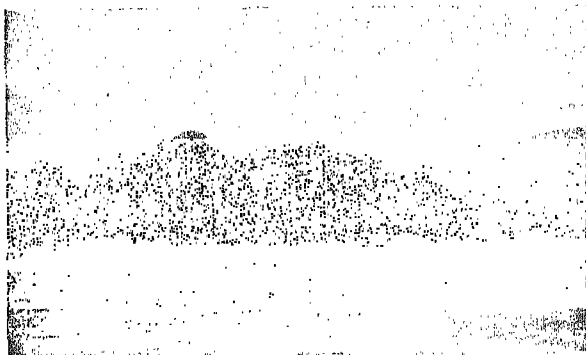
	नदियाँ	लम्बाई मील	प्रवाह क्षेत्र (वर्गमील)
(क) बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियाँ	दामोदर	३७०	११,०००
	स्वर्णरेखा	३००	-----

	नदियाँ	लम्बाई मील	प्रवाह क्षेत्र (वर्गमील)
	ब्राह्मणी	२६०	—
	महानदी	५५०	४४,०००
	गोदावरी	६००	१,१२,०००
	कृष्णा	८००	१,००,०००
	कावेरी	४७५	२८,०००
	पेन्नार		
(ख) अरब सागर में गिरने वाली नदियाँ :	नर्मदा	८००	३६,०००
	ताप्ती	४३५	—
(३) खंभात की खाड़ी या कच्छ के रन में गिरने वाली नदियाँ	माही	३५०	
	बनास	१७०	
	लूनी	२००	
	साबरमती	२००	
(४) गंगा नदी प्रणाली में गिरने वाली नदियाँ :	चम्बल	६००	
	सिंध, बेतवा, केन,		
	दक्षिणी टोंस, सोन		

गोदावरी (Godavari)—यह नदी दक्षिणी पठार की सबसे बड़ी नदी है। यह पश्चिमी घाट में बम्बई राज्य में नासिक से दक्षिण-पश्चिम की ओर ४० मील दूर त्र्यंबक गांव से निकलती है। अपने ऊपरी भाग में यह नदी पूर्व की ओर बहती है और उथली है। यहाँ दक्षिण में गोदावरी के समानान्तर बहने के बाद मंजरा नदी दाहिने किनारे पर मिल जाती है फिर यह नदी दक्षिण पूर्व की ओर मुड़ती है। यहीं इसके बांयें किनारे पर वैनगंगा, वर्धा और पैनगंगा का संयुक्त जल गोदावरी में मिल जाता है। मोड़ के कुछ आगे इन्द्रावती नदी दुर्गम प्रदेश को पार करती हुई गोदावरी से बायें किनारे पर आ मिलती है। इनकी पहाड़ियों में गोंड लोग रहते हैं। इन्द्रावती के संगम से उत्तर-पूर्व की ओर सबरी नदी इसमें मिलती है। इन नदियों के कारण गोदावरी में जल की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है। जब यह पूर्वी घाट की ओर पहुँचती है तो आंध्र राज्य के २० मील में इसकी घाटी तंग हो जाती है। यहाँ पोलावरम के निकट यह कंदरा में होकर बहती है। पूर्वी घाट को पार करने के बाद अंतिम ६० मील में यह फैलकर इतनी चौड़ी हो जाती है कि इसमें प्रायः द्वीप बन जाते हैं। राजमहेन्द्री के निकट गोदावरी की धारा ६,००० फीट चौड़ी है यहीं इसके आर पार लगभग २½ मील लम्बा एनीकट बांध बनाया गया है। इससे तीन नहरें निकाल कर डेल्टा में लगभग ८ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। इस नदी में १३५ मील तक नावें चल सकती हैं। यह ६०० मील लम्बी है और इसका वार्षिक प्रवाह लगभग ८ करोड़ ४० लाख एकड़ फीट है किन्तु इसमें से अभी तक १४ प्रतिशत जल का ही उपयोग किया गया है। यह हिन्दुओं की पवित्र नदी है।

महानदी (Mahanadi)—यह नदी मध्य प्रदेश के रायपुर जिले में सिहावा के

निकट से निकलती है और दक्षिण पूर्व की ओर बहती है। यह नदी मध्य प्रदेश के आधे भाग और आंध्र प्रदेश के कुछ भाग का जल लेकर लगभग ५५० मील बहकर



चित्र २६—पूर्वीघाट के निकट गोदावरी नदी

उड़ीसा में बड़ा डेल्टा बनाती है। डेल्टा के पास ही बाईं ओर से ब्राह्मणी नदी आ मिलती है। यह नदी कोयल और सांख नदियों से मिलकर बनी है जो कोनार्ड, ससनर और बालासोर जिले में होकर बहती है तथा आगे जाकर वैतरणी नदी से मिल जाती है। वैतरणी उड़ीसा की क्योंझार पहाड़ियों से निकलती है और दक्षिण पूर्व की ओर बहती है। वैतरणी और ब्राह्मणी दोनों नदियाँ संयुक्त होकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इनका डेल्टा बड़ा उपजाऊ है। महानदी में सम्बलपुर के निकट हीराकुंड योजना कार्यान्वित की जा रही है। महानदी का जल सिंचाई के भी काम में आता है। इसका अनुमानित प्रवाह ७ करोड़ ४० लाख एकड़ फीट है। हीराकुंड योजना के बन जाने पर इसके १ करोड़ १० लाख एकड़ फीट जल का उपयोग हो सकेगा।

कृष्णा (Krishna)—यह महाबलेश्वर के पास पश्चिमी घाट से ४५०० फीट की ऊंचाई से निकलती है। इसका निकास अरब सागर से केवल ३० मील दूर है। यहाँ से इसकी तेज धारा दक्षिण की ओर बहती है। आगे चलकर यह पूर्व की ओर मुड़ती है। इस भाग में कृष्णा और इसकी सहायक नदियाँ गहरी तली में बहती है कि इनका जल सिंचाई के काम में नहीं आ सकता। वर्षा ऋतु में इनकी सहायक नदियाँ बाढ़ से उमड़ पड़ती है। ऊंचे पठार को पीछे छोड़कर कृष्णा शोलापुर और रायचूर के द्वाबों में पहुँचती है। शोलापुर द्वाब भीमा और कृष्णा के मिलने से बना है। भीमा नदी महाराष्ट्र के अहमदनगर, पूना और शोलापुर जिलों का पानी बहा लाती है। रायपुर द्वाब तुंगभद्रा ने कृष्णा से मिलकर बनाया है। तुंगभद्रा उत्तरी मैसूर, बलारी और कर्नूल जिले का पानी लाती है। कुछ आगे बढ़ने पर कृष्णा में मूसी नदी मिलती है। मूसी के किनारे ही हैदराबाद नगर बसा है जो आन्ध्र राज्य की राजधानी है। पूर्वी घाट की पहाड़ियों के पास पहुँचने पर कृष्णा समुद्र तक कृष्णा का डेल्टा १०० मील लम्बा है और कृष्णा दो प्रधान धाराओं में बँटकर समुद्र में गिरती है। कर्नूल में इसकी तली पथरीली है और इसका जल निर्मल है। डेल्टा के प्रदेश में यह अपने मिट्टी के प्रदेश में बहती है। इससे इसका पानी मटिला हो जाता हैं। विजयवाडा के पास दो पहाड़ियों के बीच में इसकी

चौड़ाई १,३०० गज़ है। विजयवाड़ा के नीचे कृष्णा की धारा मन्द पड़ जाती है। इसका पाट तीन-चार मील चौड़ा हो जाता है। विजयवाड़ा के पास कृष्णा एनीकट बनाकर दो नहरें निकाली गई हैं। इन नहरों से कृष्णा डेल्टा की सवा दो लाख एकड़ जमीन सींची जाती है। कृष्णा के निचले भाग में वर्ष के छः महीनों में नावें चल सकती हैं पर इसके जल से डेल्टा की भूमि सींची जाती है। इस नदी का वार्षिक प्रवाह ५ करोड़ फीट है किन्तु अभी तक इसके केवल १८ प्र० श० का ही उपयोग किया गया है।

पेन्नार (पिनाकिनि) (Pennar)—पिनाक अथवा शिव धनुष के आकार का मार्ग होने से दक्षिण भारत की दो नदियों को पिनाकिनि कहते हैं। यह नदी मैसूर राज्य में नन्दीदुर्ग पहाड़ी से निकलती है। यह पूर्व की ओर कर्नाटक में बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। उत्तर पिनाकिनि नन्दी दुर्ग से उत्तर पश्चिम केशव पहाड़ी से निकली है। कोलार जिले में उत्तर की ओर बहकर आन्ध्र राज्य में पूर्व की ओर मुड़ती है। नेलोर नगर से १६ मील की दूरी पर कई शाखाओं में बँट कर यह बंगाल की खाड़ी में गिरती है। नदी का समस्त मार्ग ३५५ मील लम्बा है। पापग्नि और चित्रावती इसकी सहायक नदियाँ हैं। वर्षा में पिनाकिनि में अचानक बाढ़ आ जाती है। नाव चलाने के लिए यह नदी अनुकूल नहीं है। पर इसका पानी सिंचाई के काम में आता है। सिंचाई के लिए तालाबों और छोटी नालियों को रोक लिया जाता है। नेलोर नगर के सामने डेल्टा प्रदेश को सींचने के लिए नदी में आर-पार जल-तल पर १५० गज लम्बी दिवार बनी है।

दक्षिण पिनाकिनि—चेन्नाकेशव पहाड़ी से निकल कर बंगलौर जिले में होती हुई मद्रास राज्य में कड्डालूर के उत्तर में फोर्टसैन्ट डेविड के पास समुद्र में गिरती है। यह नदी २४५ मील लम्बी है। बंगलौर जिले में इसका ८० प्रतिशत पानी तालाबों में सिंचाई के लिए भर लिया जाता हैं।



चित्र २७—शक्ति उत्पादन केंद्र के निकट कावेरी नदी

कावेरी (Cauvery)—कावेरी नदी कुर्ग से निकलती है और दक्षिण पूर्व की ओर मैसूर और मद्रास राज्यों में होकर बहती है। भवानी, नोयिल और अमरावती

आदि इसकी सहायक नदियाँ हैं। मैसूर राज्य में इसके किनारों पर उपजाऊ भूमि है। इसलिए इसके बहाव को रोकने के लिए दस-बारह जगह पर बाँध बनाये गये हैं। मैसूर राज्य में इसने श्रीरंगपट्टम और शिवसमुद्रम् द्वीपों को घेर रखा है। यह दोनों द्वीप पवित्र गिने जाते हैं। स्वयं कावेरी भी दक्षिणी गंगा कहलाती है। शिवसमुद्रम् के नीचे कावेरी की दोनों शाखाओं में कई सुन्दर प्रपात हैं। झरनों की सहायता से ३,००० फीट नीचे उतर कर कावेरी नदी मद्रास राज्य में प्रवेश करती है। इसके डेल्टा से ही तंजौर का उपजाऊ जिला बना है जो दक्षिण भारत का बगीचा कहलाता है।

तुंगभद्रा (Tungbhadra)—यह तुंगा और भद्रा के मिलने से बनी है। तुंगा मैसूर राज्य में पश्चिमी घाट की गँगामूल चोटी के नीचे से निकलती है। पास ही कादूर जिले में भद्रा निकलती है। शिमोगा जिले में कुदाली में दोनों का संगम है। मानसूनी वर्षा ऋतु में जून से अक्टूबर तक तुंगभद्रा की संयुक्त धारा आध मील से अधिक चौड़ी हो जाती है। इसमें पश्चिमी घाट के लट्ठों के बेड़े बहकर पूर्वी मैदानी भाग में आते हैं। इसका जल सिंचाई के काम आता है। हाल में तुंगभद्रा योजना के बन जाने से सिंचाई का क्षेत्र और अधिक बढ़ गया है। अब से प्रायः ४ सौ वर्ष पूर्व सिंचाई के लिए विजयनगर के राजाओं ने तुंगभद्रा के ऊपर सात बड़े बाँध बनवाये थे। कुमदवती और वर्धा इसके बाएँ किनारे पर मिलती हैं। हग्गरी और हिन्द्र दायें किनारे पर किनारे पर मिलती है। ४ सौ मील बहने के बाद तुंगभद्रा कर्नूल नगर से १६ मील उत्तर पूर्व की ओर कृष्णा में मिल जाती है। पथरीली तली होने के कारण गरमी में यहाँ बड़ी नावें नहीं चल सकती हैं। केवल टोकरी के आकार की छोटी नावें चलती हैं। हरिहर और कर्नूल इसके किनारे के प्रमुख नगर हैं। तुंगभद्रा में मगर बहुत रहते हैं।

माही (Mahi)—नर्मदा ताप्ती के बाद यह गुजरात में तीसरी बड़ी नदी है। यह विन्ध्याचल के पश्चिमी सिरे के पास समुद्र तल से १,८५० फीट की ऊँचाई पर अमझरा में मेहद झील से निकलती है। आरम्भ में यह विन्ध्य श्रेणी के समानान्तर बहती है। यहाँ इसकी घाटी गहरी है। इसके दोनों ओर १०० फीट ऊँचे किनारे खड़े हैं। पूर्व की ओर से इसमें कई सहायक नदियाँ मिलती हैं। पश्चिमी शुष्क भाग से कोई सहायक नदी नहीं आती है। १४० मील के बाद बागर की पहाड़ियाँ इसे पश्चिम की ओर मोड़ देती हैं। २५ मील के बाद फिर इसे मेवाड़ की पहाड़ियाँ दक्षिण-पश्चिम की ओर मोड़ देती हैं। इसी दिशा में बह कर यह खम्भात की खाड़ी में गिरती है। निकास के १०० मील बाद इसकी चौड़ाई १०० गज और गहराई १ फुट हो जाती है। बेरा खाड़ी तक इसमें ज्वार आता है। अन्तिम ४५ मील में इसकी साधारण गहराई डेढ़ फुट और चौड़ाई १२० गज हो जाती है। खम्भात की खाड़ी में इसके मुहाने की चौड़ाई कस्बे से कावी तक ५ मील है। ज्वार के समय मुहाने से ऊपर की ओर फेन भरे हुये पानी की दीवार २० मील ऊपर तक पहुँचती है। पड़ौस की भूमि से नदी की तली इतनी नीची है कि इसका पानी सिंचाई के काम नहीं आ सकता।

नर्मदा (Narmada)—अमरकंट से निकल कर नर्मदा एक तंग गहरी और सीधी घाटी में पश्चिम की ओर बहती है। नर्मदा के उत्तर में विन्ध्य और दक्षिण में सतपुड़ा की ऊँची दीवार खड़ी हुई है। इस भाग में नर्मदा की धारा बड़ी तेज और

निर्मल है। जबलपुर के नीचे संगमरमर की चट्टानों और धूँआधार प्रपात का दृश्य बड़ा मनोहर है जो ३० फीट ऊँचाई से गिरता है। मध्य प्रदेश छोड़ने के बाद नर्मदा बीच में चौड़ी हो जाती है लेकिन इसकी धारा मन्द पड़ जाती है। भड़ौच के नीचे इसकी एस्चुअरी (खुला मुहाना) १७ मील चौड़ी है। यहाँ साठ मील तक बड़ी नावें चलती हैं। पर नर्मदा का उत्तरी भाग नाव चलाने और सिंचाई करने के लिए अनुकूल नहीं है। गंगा की भाँति नर्मदा नदी भी पवित्र मानी जाती है। होशंगाबाद आदि बहुत से स्थानों पर नर्मदा नदी के किनारे सुन्दर घाट और मनोहर मन्दिर बने हैं।

ताप्ती (Tapti)—ताप्ती नदी मध्य प्रदेश के बेतूल जिले में मुल्ताई (मूलताप्ती) नगर के पास से निकलती है। ताप्ती नदी की घाटी सतपुड़ा के दक्षिण में है। वह मध्य प्रदेश का जल लेकर ४५ मील बहने के बाद खम्भात की खाड़ी में गिरती है। खानदेश में घुसने के पहले इसमें पूर्वी नदी मिलती है। छोटी छोटी नावें इस नदी में सूरत तक चलती हैं। इसका वार्षिक प्रवाह १ करोड़ ७० लाख एकड़ फीट है।

उत्तरी और दक्षिणी नदियों की तुलना

उत्तरी और दक्षिणी भारत की नदियों में निम्न अंतर पाया जाता है :—

(१) हिमालय से निकलने वाली नदियाँ नये पहाड़ों (New fold mountains) से निकलती हैं इसलिये अपने पहाड़ी मार्ग में उनकी धारा बहुत तेज होती है। वे नदी के विकास में अभी नये और अपरिपक्व अवस्था में हैं। ये अभी भी अपने मार्ग की चट्टानों को काटने का कार्य कर रही हैं और अपनी धारा को कम तेज कर रही हैं। जबकि दक्षिण की नदियाँ अधिक पुरानी हैं, उनकी घाटियाँ चौड़ी और छिछली हैं तथा झरनों को छोड़ कर इनका ढाल बहुत ही साधारण है। ये नदियाँ हर अवस्था में भूमि अपक्षरण के अंतिमकाल या आधार तल (Base Level) को पहुँच चुकी हैं।

(२) हिमालय की नदियाँ अपने मार्ग की श्रेणी में विशेषता रखती हैं। इनके मार्ग में पर्वतीय, मैदानी और डेल्टा आदि की अलग अलग अवस्थाएँ पाई जाती हैं किन्तु दक्षिणी नदियों का मैदानी मार्ग बहुत ही थोड़ा है। अतः हमें हिमालय से निकलने वाली नदियों से सिंचाई और नाव चलाने का अच्छा साधन प्राप्त होता है किन्तु दक्षिण की नदियाँ इस दृष्टि से बिल्कुल व्यर्थ हैं केवल डेल्टाओं में ही नावें चलाई जा सकती हैं अथवा सिंचाई के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है।

(३) हिमालय की नदियों को बड़ी बड़ी हिमानियों (Glaciers) से अनंत राशि में जल मिलता है जब कि दक्षिणी नदियाँ वर्षा जल से ही पूरित रहती हैं। अतः उत्तरी नदियाँ प्रायः वर्ष भर ही भरी रहती हैं किन्तु दक्षिणी नदियाँ गर्मी में सूख जाती हैं और वर्षा ऋतु में उनमें भयंकर बाढ़ें आ जाती हैं। अस्तु, हिमालय से निकलने वाली नदियों के तट पर अनेक स्थानों पर प्रमुख नगर और व्यापारिक केन्द्र अवस्थित हैं किन्तु दक्षिणी नदियों के तट पर नगरों का प्रायः अभाव सा है।

(४) हिमालय से निकलने वाली नदियाँ मुलायम चट्टानों और मिट्टी पर बह कर आती हैं अतः वे अपने साथ उम्दा चिकनी मिट्टी और कीचड़ बहा ले आती हैं जिसे बाढ़ के समय अपने तट के दोनों ओर बिछा देती हैं। अस्तु, ये क्षेत्र अत्यधिक उपजाऊ हो जाते हैं। इसके विपरीत दक्षिण की नदियाँ पुरानी कड़ी चट्टानों पर हो कर बहती हैं अतः इनके जल में बहुत कम मिट्टी बह कर आती है जिससे ये नदियाँ उपजाऊ मैदान बनाने वाली नहीं हैं।

(५) हिमालय की नदियाँ उपयुक्त स्थानों में बहुत कम प्रपात बनाती हैं लेकिन दक्षिण की नदियाँ मार्ग में पठारों से नीचे उतरते समय अनेक झरने बनाती हैं अतः इनका उपयोग मुख्यतः जल-विद्युत शक्ति उत्पादन करने में होता है ।

बाढ़ें (Floods)

पहाड़ी क्षेत्रों में वन प्रदेशों के निर्दयतापूर्वक काटे जाने का सबसे भयानक परिणाम यह हुआ है कि भारत की प्रायः सभी पहाड़ी नदियों में वर्षाकाल में भयंकर बाढ़ें आती हैं । जब भूमि की सतह पर वनस्पति होती है तो वह वर्षा का अतिरिक्त जल स्पंज की भांति चूस लेती है और नदियों के निचले क्षेत्रों में आने वाली बाढ़ों को रोक देती है किन्तु जब इस वनस्पति का विनाश स्वयं मानव द्वारा या पशुओं द्वारा किया जाता है तो वर्षा जल बड़ी तीव्र गति से नदियों में बाढ़ें उत्पन्न कर देता है । भारत की अधिकांश नदियाँ अपनी बाढ़ों के लिए प्रसिद्ध हैं । घाघरा, कोसी, सोन, स्वर्णरेखा, अजीजा, दामोदार, ब्रह्मपुत्र, पदमा, तिस्ता, महानदी तथा गोदावरी सभी में वर्षा काल में भयंकर बाढ़ें आती हैं जिनका एक मात्र कारण उनके ऊपरी क्षेत्रों के वन-प्रदेशों का नष्ट हो जाना ही है । इन बाढ़ों के कारण जो उपजाऊ मिट्टी भारत के मैदानों में होनी चाहिए थी वही अब बंगाल की खाड़ी में पहुँचा दी गई है । इन बाढ़ों के फलस्वरूप ही जमुना, चम्बल आदि नदियों के प्रवाह-प्रदेश में बीहड़ों का निर्माण हुआ है जिससे हजारों एकड़ उपजाऊ भूमि विलीन हो गई है । अस्तु, बाढ़ों से न केवल भूमि की ही हानि होती है वरन् कई स्थानों पर नदियों के तल भी सूख जाते हैं अथवा वे वक्राकार रूप में बहने लगती हैं ।

नदियों की बाढ़ों द्वारा कितनी मिट्टी बहाकर लेजाई जाती है इसका पूरी तरह अनुमान करना प्रायः असम्भव है किन्तु ऐसा विश्वास किया जाता है कि अकेली गंगा नदी ही अमरीका की मिसिसिपी नदी द्वारा ले जाई गई मिट्टी की आठ गुनी अधिक मात्रा बहाकर समुद्र में ले जाती है । श्री एवरेस्ट (Everest) के मतानुसार गंगा नदी प्रति वर्ष ३५६,०००,००० टन से भी अधिक मिट्टी बहाकर ले जाती है अर्थात औसतन ९००,००० टन प्रति दिन । कुछ अन्य नदियाँ तो इससे भी अधिक मात्रा में मिट्टी आदि बहाती हैं । हैदराबाद के निकट सिन्ध लगभग १,०००,००० टन मिट्टी और ठोस पदार्थ बहा कर लाती है । ब्रह्मपुत्र तो इन सबसे अधिक भार ढोती है । इन नदियों द्वारा असंख्य मात्रा में भूमि पर का नमक जल में घुलकर समुद्र में पहुँच जाता है । नर्मदा नदी के जल में घुले नमक की मात्रा प्रति वर्ष करोड़ों घन फुट होती है । महानदी के जल में प्रति १ लाख घन फीट जल में ८६ भाग नमक का होता है ।

भारतीय नदियों में आने वाली बाढ़ों से जो हानि होती है वह अकथनीय है । सही अर्थ में इसका अनुमान लगाना बड़ा ही कठिन है । सन् १९५१ से १९५६ तक भारत में बाढ़ों से लगभग २ अरब ३७ करोड़ रुपये की हानि हुई । मनुष्यों व पशुओं की भी बड़ी क्षति हुई । बाढ़ की हानि का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि यदि बाढ़ों से क्षति न हो तो हमारी राष्ट्रीय आय में लगभग १०० करोड़ रुपये की वृद्धि हो जाय ।

बाढ़ नियन्त्रण (Flood Control)—कृषि उद्योग की सफलता एवं विकास के लिए जितनी अवर्षा से रक्षा करने के लिए सिंचाई के साधनों की आवश्यकता है उतनी

ही आवश्यकता फसलों की बाढ़ से रक्षा करने की है, परन्तु इस ओर सन् १९५४ तक कोई ध्यान नहीं दिया गया था। सन् १९५४ एक ऐसा वर्ष था जिसमें अप्रत्याशित बाढ़ें आने से देश की असीमित हानि हुई। फलस्वरूप भारत सरकार ने सितम्बर सन् १९५४ में बाढ़ नियन्त्रण कार्यक्रम बनाया जिसके तीन खण्ड हैं :—तत्कालीन, अल्पकालीन और दीर्घकालीन।

तत्कालीन खण्ड की अवधि २ वर्ष है जिसमें बाढ़ सम्बन्धी गहन खोज और आँकड़ों के एकत्रीकरण का समावेश था। दूसरे खण्ड की अवधि अगले ५ वर्ष की थी जिसमें बाढ़ सुरक्षा साधनों को कार्यान्वित करना था, जैसे—तटबन्दी और नहरों में सुधार। तीसरे रूप में कुछ नदियों की सहायक नदियों पर संग्राही-तालाब तथा आवश्यक अतिरिक्त तटबन्दी का निर्माण होना था।

इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए एक केन्द्रीय बाढ़ नियन्त्रण सभा तथा १२ राज्यों में बाढ़ नियन्त्रण सभाएँ बनाई गई हैं। इन सभाओं को तांत्रिक मामलों में सहायता देने के लिए सलाहकार समितियाँ भी हैं। इसके अलावा केन्द्रीय बाढ़ नियन्त्रण सभा की सहायता के लिए चार नदी आयोग (बाढ़) [River Commission (Floods)] भी हैं। केन्द्रीय बाढ़ नियन्त्रण सभा ने २७·२८ करोड़ रु० के लागत की ६० योजनाएँ स्वीकृत की हैं। इनमें से प्रत्येक की लागत १० करोड़ रु० से अधिक है। इसके अलावा १२·४५ करोड़ रु० के लागत की २४९ योजनाएँ विचाराधीन हैं। विभिन्न राज्यों एवं संघीय प्रदेशों में (Union Territories) ११.२७ करोड़ रु० की ५०९ अन्य योजनाएँ स्वीकृत की गई हैं।[१] अभी तक बाढ़-नियन्त्रण का जो कार्य हुआ है उसमें उत्तर-प्रदेश के ४,२०० गाँवों का धरातल ऊँचा किया गया, कोसी नदी पर १३५ मील की तटबन्दी तथा २,४४३ मील की अन्य तटबन्दियाँ की गई हैं।

उच्च-स्तरीय समिति (High Level Committee on floods)—उपलब्ध जानकारी के आधार पर बाढ़-नियन्त्रण की समस्या का विचार कर रक्षात्मक साधनों पर सलाह देने के लिए एक उच्च-स्तरीय समिति सन् १९५७-५८ में बनाई गई जिसने अपना प्रतिवेदना भारत सरकार को १९५८ में प्रस्तुत किया।

समिति ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि बाढ़-नियन्त्रण के लिए पूरे देश को चार क्षेत्रों में बाँटा गया है :—(१) उत्तर-पश्चिम की नदियों का क्षेत्र, (२) गंगा नदी क्षेत्र, (३) ब्रह्मपुत्र नदी क्षेत्र और (४) दक्षिण की नदियों का क्षेत्र। काश्मीर में बाढ़ का मुख्य कारण यह है कि झेलम का पाट और मुहाना चौड़ा न होने के कारण उसका पानी चारों ओर फैल जाता है। पंजाब में जल की निकासी ठीक से नहीं होती। गंगा की घाटी में भी मुख्य समस्या यह है कि पानी चारों ओर भर जाता है और गाँव डूब जाते हैं। कहीं-कहीं किनारों के कटाव से और पानी की निकासी ठीक न होने के कारण भी क्षति होती है। कोसी नदी की धारा बदलती रहती है और इससे बहुत नुकासन होता है। सुन्दरबन के क्षेत्र में बाढ़ के साथ ज्वार आने के कारण किनारे धसक जाते हैं। ब्रह्मपुत्र तथा उसकी सहायक नदियों की बाढ़ से किनारे बहुत कटते हैं और कभी-कभी भूमि पानी में डूब जाती है। दक्षिण में मुख्य समस्या नदियों के मुहानों के आस-पास के क्षेत्र का जलमग्न होना है।

समिति ने बाढ़ से होने वाली क्षति का अनुमान लगा कर बताया कि यदि बाढ़ न आए तो देश की राष्ट्रीय आय प्रति वर्ष एक अरब रुपये बढ़ सकती है। सबसे

१. India, 1959, p. 290

अधिक क्षति असम में होती है। सन् १६५० से अब तक बाढ़ से अधिक क्षति गंगा के मैदान में हुई, इसके बाद ब्रह्मपुत्र की घाटी में। सबसे अधिक क्षति फसलों को और उसके बाद गाँवों और शहरों की सम्पत्ति को पहुँचती है। इसके बाद सार्वजनिक इमारतों, सड़कों, पुलों आदि का नम्बर आता है।

समिति ने इस बात पर जोर दिया है कि क्षेत्र विशेष के लिए अलग-अलग बाढ़-नियन्त्रण योजनाएँ बनाई जानी चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो इन योजनाओं का सिंचाई और बिजली योजनाओं से मेल बैठाना चाहिए। बहुमुखी योजनाओं पर विचार के समय उनके बाढ़ रोकने के पहलू पर भी विचार होना चाहिए और सबके लिए एक साथ धन स्वीकृत किया जाना चाहिए।

बाढ़ नियन्त्रण के लिए तटबन्ध (Embankments) बहुत उपयोगी हो सकते हैं यदि उन्हें ठीक तरीके से बनाया जाये, उनकी डिजाइन सही हो और वे उपयुक्त स्थानों पर बनाये जायँ, किन्तु तटबन्धों के साथ-साथ बाढ़ का पानी इकट्ठा करने के लिए जलाशय आदि भी बनाए जाने चाहिए। इनकी मरम्मत भी अवश्य होती रहनी चाहिए। इन कामों में काफी लागत पड़ सकती है और नदियों के बहाव और मार्ग के अनुसार इनमें परिवर्तन भी होना चाहिए। समिति ने बाढ़-नियन्त्रण के दूसरे उपायों पर भी विचार किया है जिन्हें दो वर्गों में बाँट दिया गया है—(१) बाढ़ रोकने के उपाय और (२) क्षति कम करने के उपाय। बाढ़ रोकने के कई उपाय हैं, जैसे—बाढ़ का पानी जमा करने के लिए जलाशय बनाना, धारा पर नियन्त्रण, गाँवों, बस्तियों आदि को ऊँचाई पर बसाना और पानी के बहाव का ठीक प्रबन्ध करना।

क्षति घटाने के भी कई उपाय हैं, जैसे—लोगों को बाढ़ क्षेत्रों से हटाकर दूसरी जगहों में बसाना, बाढ़ की पहले से सूचना देना और बाढ़ का बीमा करना। समिति ने विभिन्न राज्यों में बाढ़-नियन्त्रण के इन उपायों की सफलता और त्रुटियों पर विचार किया है।

समिति ने इस बात पर भी जोर दिया है कि बाढ़-नियन्त्रण के लिए नदी के तल में बालू व मिट्टी न जमने दी जाए। इसलिए भू-संरक्षण बहुत आवश्यक है। जमीन का कटाव रोकने से धारा में मिट्टी कम बह कर जाती है और इससे बाढ़ की कुछ रोक होती है।

जमीन का कटाव रोकने के तरीकों में मेंड़बन्दी, खड्डों या कटी जमीन को भरना और उन पर पेड़ लगाना, सीढ़ीनुमा खेत बनाना आदि हैं। ये काम बहुमुखी बाँधों के क्षेत्र में, हिमालय की तराई में, गंगा के मैदान में और दक्षिण की पठारी भूमि में होने चाहिए। काम शीघ्रता से और उपरोक्त क्रम से होना चाहिए। राज्य सरकारों को जमीन का कटाव रोकने के काम कराने के लिए विभाग या मण्डल बनाने चाहिए और उन्हें समुचित अधिकार देना चाहिए।

जहाँ बाढ़ से खतरा बहुत हो उसके लिए तात्कालिक उपाय किए जायें। इसके बाद ऐसे उपायों और कामों को हाथ में लेना चाहिए जिनसे आगे चल कर बाढ़ रुकने और अन्न की पैदावार बढ़ने में मदद मिले।

झीलें
(Lakes)

झीलें वे आन्तरिक जलाशय हैं जो विभिन्न आकार विस्तार की चट्टानों की

तलहटियों में बन जाते हैं। इनका आकार बनावट के अनुसार भिन्न भिन्न होता है। ये जलाशय न केवल मैदानी क्षेत्रों में ही वरन् पहाड़ी भागों मे भी पाये जाते हैं। ये खारी पानी के भी हो सकते हैं और मीठे जल के भी। भारत की अधिकांश झीलें उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में ही पाई जाती हैं। भारत में निम्न प्रकार की झीलों के उदाहरण मिलते है :—

(१) **भूमि के धरातल पर परिवर्तन होने से बनी झीलें** (Tectonic Lakes)—इस प्रकार की रचना मुख्यत: भूपृष्ठ के ऊचे नीचे होते रहने से जो विशाल खात बन जाते है उनमे जल भरने से होती है। अधिकतर झीले भूपृष्ठ के फटने से उत्पन्न होती है। काश्मीर मे पुराने प्लैस्टोसीन युग की बनी झीले इस का मुख्य उदाहरण है।

(२) **ज्वालामुखी उद्‌गार से बनी झीलें** (Volcanic Basin Lakes)—धरातल पर ज्वालामुखी के उद्‌गार जब शान्त हो जाते हैं तो उनके मुख में वर्षा जल के एकत्रित होने से झीलें बन जाती है। बम्बई के बुलढाना जिले में लूनार झील की उत्पत्ति का मुख्य कारण ज्वालामुखी ही माना जाता है।

(३) **अनूप झीले** (Lagoons)—जब समुद्र में गिरने वाली नदियों के मुहाने पर समुद्र की धारायें या हवाएें बालू मिट्टी के टीले बना देती है तो जल का एक क्षेत्र समुद्र से अलग हो जाता है और अनूप का रूप धारण कर लेता है। ऐसे अनूप भारत में निचले बलुही समुद्र तटों पर बहुतायत से मिलते है। पूर्वी तट पर उड़ीसा की चिल्का और नैलोर की पुलीकट झीलें इसी प्रकार बनी है। पश्चिम तट पर केरल राज्य में भी असंख्य अनूप पाये जाते है जिन्हे कयाल (Kayals) कहते हैं। ये अनूप प्राय: छिछले होते हैं।

(४) **हिमानी द्वारा बनी झीलें** (Glacier Lakes)—जब हिमानियाँ पहाड़ी भागों को छोड कर नीचे की ओर उतरने लगती है तो वे अपने मार्ग में चट्टानों की कांट छांट करती रहती हैं इससे भूतल पर इस छीलन के जमा हो जाने से बड़े २ गड्ढे बन जाते है। यही गड्ढे कालांतर में वर्फ के पिघले हुए जल से भर जाने पर झीलों का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार की झीलें अधिकतर कुमायूं हिमालय में पाई जाती हैं। इनके मुख्य उदाहरण राकसताल, नैनीताल, नौकुछिया ताल, भीमताल आदि है।

कभी २ हिमानियों में मिले हुए कंकड़ पत्थर का ढ़ेर भी हिमानियों के मार्ग को अवरुद्ध कर देता है जिसके फलस्वरूप हिमानियों का जल रुक कर झीलें बन जाती है। ऐसी झीलें मोरेन झीलें (Moraine Lakes) कहलाती हैं। पीर-पंजाल श्रेणी के उत्तरी-पूर्वी ढालों पर इस प्रकार की कई झीलें बनी हैं।

(५) **वायु द्वारा निर्मित झीलें** (Aeolian Lakes)—इस प्रकार की झीलें मुख्यत: पश्चिमी राजस्थान के थार के मरुस्थल में पाई जाती हैं इन्हें ढाढ़ (Dandhs) कहते हैं। ये झीलें अस्थायी होती हैं। इस भाग में बालू मिट्टी के टीले अधिक पाये जाते हैं। इन टीलों के बीच मे नीची भूमि भी मिलती है। वर्षा के दिनों में इस भूमि में जल भर जाता है और झीलें बन जाती हैं।

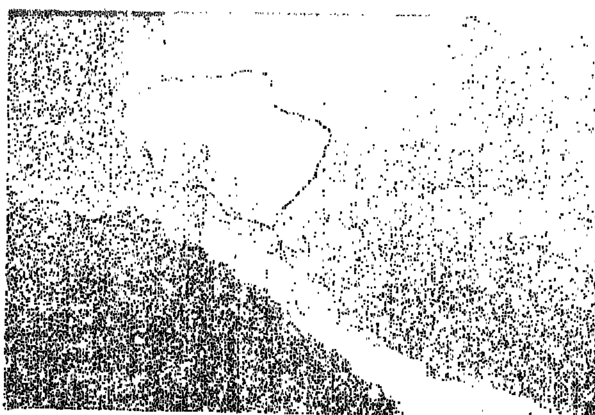
(६) **घुलन क्रिया द्वारा निर्मित झीलें** (Dissolution Lakes)—इस प्रकार की झीलें उन भागों में पाई जाती है जहाँ की चट्टानें चूने, जिप्सम या नमक की बनी होती हैं। चूने की चट्टानों की कंदराऐं जब पृथ्वी की हलचल द्वारा नीचे धंस जाती है तो उनमें जल भर जाने से झीलें बन जाती हैं। भारत में इस प्रकार की कुछ झीलें कुमायूं हिमालय में पाई जाती हैं।

(७) **भूमि के खिसकाव की झीलें** (Rock-fall Basins)—वायुमंडल की प्रतिक्रिया से चट्टानों के नष्ट भ्रष्ट और जीर्णशीर्ष अंश घाटियों में पर्वतों के ढालों पर जमा हो जाते हैं किन्तु कभी कभी यह जमाव सम्पूर्ण रूप से नीचे खिसक जाता है इससे नदी घाटी में जलधारा का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है और धारा का जल जलाशय के रूप में बदल जाता है। सन् १८६३ ई० में हिमालय में अलकनन्दा नदी के मार्ग में एक बड़े पहाड़ी ढाल से चट्टानों के खिसक पड़ने से गोहना नामक झील बन गई थी। इस प्रकार की झीलें बहुधा अस्थायी होती हैं और इनके टूट जाने से नीचे के प्रदेशों में बाढ़ आ जाती हैं।

(८) **नदियों के मार्ग में झीलों की रचना** (Lakes in River Basins)—नदियों के प्रवाह मार्ग में कई स्थानों पर जरा भी रुकावट पड़ने से उनका जल जमा होकर झीलों का रूप ले लेता है। अथवा मैदानी प्रदेशों में जब नदी धीमे धीमे बहती है तो उसमें मुडाव या घुमाव पड़ जाते हैं। ये घुमाव धीरे २ बढ़ते जाते हैं। जब कभी इन घुमावों के बीच का स्थल कट जाता है तो नदी घुमाव को छोड़ कर पुनः सीधी बहने लगती है। इन मुड़ावों में बाढ़ के समय जल भर जाता है और झीलें बन जाती हैं। गंगा की ऊपरी घाटी में इस प्रकार की झीलें पाई जाती हैं।

(क) **कुमायूं हिमालय की झीलें**—भारत में सबसे अधिक झीलें कुमायूं हिमालय में हैं। इस भाग में सात बड़ी-बड़ी झीलें—**नैनीताल, भीमताल, नौकुछिया ताल, सतताल, पूना ताल, मालवा ताल और खुरपा ताल**—हैं।

(१) **भीमताल** (Bhimtal)—इन सबमें बड़ी झील भीम ताल है। यह उत्तर प्रदेश में काठगोदाम से ६ मील उत्तर की ओर है। इसकी आकृति त्रिभुजाकार है। उत्तर से नौली गदना नामक छोटे से नाले का पानी इस झील में आता है। इसकी लम्बाई ५,५८० फीट, चौड़ाई १४६० फीट और गहराई ८७ फीट है। यह



चित्र [illegible]८-- नैनीताल झील

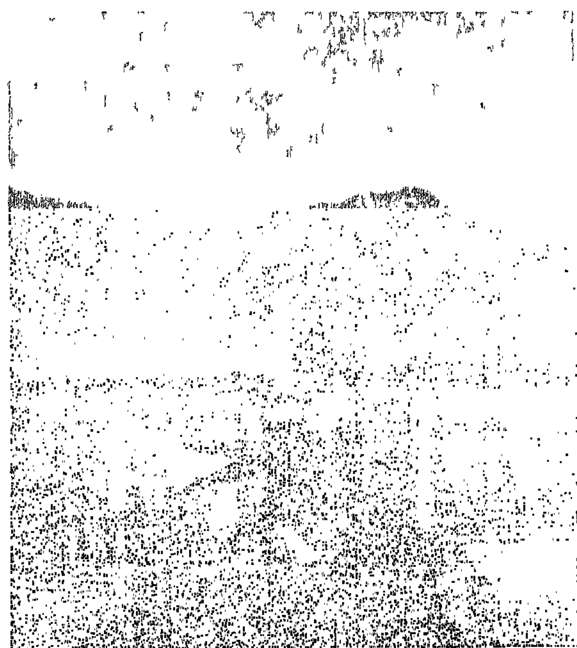
झील समुद्रतल से ४,३४० फीट ऊंची है। इसमें से छोटी-छोटी नहरें निकाल कर सिचाई भी की जाती है। इसके बीच में एक छोटा-सा टापू है जो ज्वालामुखी चट्टानों का बना है।

(२) **नैनीताल झील** (Nainital)—इस प्रदेश की दूसरी झील है जो समुद्रतल से ६,३५६ फीट ऊँची है। इसके चारो ओर केवल दक्षिणी पूर्वी भाग को छोड कर—जिस तरफ से इसमे से बालिया नदी निकलती है—ऊचे-ऊचे पहाड है। इस झील के बीच मे एक छोटी-सी चट्टान है जो इसे दो भागो मे बाँट देती है। सम्पूर्ण झील ८,७०३ फीट लम्बी १,५८१ फीट चौडी और ८७.३ फीट गहरी है। इसके चारो ओर का दृश्य बडा ही सुन्दर है। इसमे कई प्रकार की मछलियाँ भी मिलती है।

(३) **नौकुछिया ताल** (Naukuchhiya Tal)—भीमताल से २॥ मील दक्षिण पूर्व की ओर नोकुछिया झील है। यह समुद्रतल से ४,२४० फीट ऊची तथा ३,१२० फीट लम्बी, २,२७० फीट चोडी और १३२ फीट गहरी है। यह इस प्रदेश की सबसे गहरी झील है।

(ख) **काश्मीर की झीलें**—काश्मीर राज्य मे भी—जहाँ पजाब हिमालय फैला है—दो सुन्दर झीलें है।

(१) बूलर झील (Wulur Lake)—काश्मीर की सबसे बडी झील बूलर झील है। यह १० मील लम्बी तथा ६ मील चोडी और उत्तर-पूर्व की ओर १८



चित्र २९—काश्मीर की डल झील में एक शिकारा

फीट गहरी है। किन्तु यह अब नदी की मिट्टी मे भरती जा रही है। इसके चारों ओर चन्द्रमा के आकार मे पहाड़ फैले है। झील के उत्तरी किनारे पर कई छोटे-छोटे गाँव भी बसे है।

(२) डलझील (Dal Lake)—श्रीनगर के पूर्व की ओर है। इसमें सोतों और नालों से पानी आता है। यह झील ५ मील लम्बी और २ मील चौड़ी है। कई जगह दलदल होने के कारण यह कम गहरी है। इसके तीन ओर ३–४ हजार फीट ऊंचे पर्वत है। वूलर झील की भांति इसके किनारे पर भी कई गांव है जिनमें सैकड़ों फलों के बाग हैं।

(ग) राजस्थान की झीलें—राजस्थान की अधिकतर झीलें खारी हैं। ये झीलें भीतरी बहाव (inland drainage) के क्षेत्रों में हैं जहाँ छोटी छोटी नदियां आकर समाप्त प्रायः हो जाती है। यहाँ की सबसे बड़ी झील सांभर है जिसमें मेंढा, रूपनगर, खारी और खंडेल नदियाँ आकर गिरती हैं। इनका बहाव-क्षेत्र लगभग २,००० वर्गमील है। सांभर झील साधारणतः ८० मील लंबी, ८ मील चौड़ी और १२ फीट गहरी है किन्तु मानसून काल में इसका जल ९० वर्ग मील क्षेत्र में फैल जाता है और ग्रीष्म ऋतु में जब वाष्पीभवन क्रिया अधिक होती है तो यह क्षेत्रफल संकुचित होकर बहुत कम रह जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि १२ फीट की गहराई तक इस झील में नमक की मात्रा ५५० लाख टन है। अर्थात् प्रति वर्ग मील क्षेत्र पीछे १० लाख टन नमक होने का अनुमान है।[१]

इस तथा राजस्थान की अन्य झीलों के खारीपन के बारे में श्री ह्यूम्स (Humes), श्री नोटलिंग (Noteling) तथा हालैंड और क्राइस्ट (Holland and Christe) प्रभृति विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। श्री ह्यूम्स के अनुसार इन झीलों के स्थान पर पहले एक विशाल जलाशय या समुद्र था जिसके सूख जाने से ही यहाँ नमक की इतनी अधिक मात्रा का जमाव पाया जाता है। किंतु डा० नोटलिंग का अनुमान है कि सांभर झील में नमक भूमि के नीचे खारे जल के स्रोतों के बहने से प्राप्त होता है। अन्य विद्वानों के अनुसार इन झीलों के निक्षेपों के नीचे प्राचीन नमक की चट्टानें बिछी हुई हैं अतएव केशाकर्षण-शक्ति (Capillary action) द्वारा नमक ऊपर आता रहता है जिससे ये झीलें खारी होती रहती है।

किंतु ये अनुमान अन्य विद्वानों द्वारा अस्वीकृत हुए हैं। वर्तमान काल में होलैंड और क्राइस्ट का मत ही सर्व मान्य है। इन विद्वानों के मतानुसार राजस्थान में इतनी अधिक नमक की मात्रा पाये जाने का एक मात्र कारण ग्रीष्म ऋतु में प्रवाहित होने वाली दक्षिणी पश्चिमी मानसून है जो अपने साथ कच्छ की खाड़ी से सोडियम क्लोराइड़ नामक नमक धूल के कणों के रूप में लेकर राजस्थान की ओर आती है। ज्यों ज्यों यह हवायें राजस्थान की ओर बढ़ती जाती हैं उनकी चाल कम होती जाती है इस कारण ये नमक के कणों को आगे नहीं ले जा सकती और वे इस राज्य की मरुभूमि में गिर पड़ते हैं। यह असंख्य कण इस भाग की छोटी छोटी नदियों द्वारा वर्षा ऋतु में सांभर जैसी झीलों में एकत्रित कर दिये जाते है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में इन हवाओं द्वारा औसतन १३०,००० टन नमक राजस्थान की इन झीलों में पहुँच जाता है। फलतः झीलों में नमक की कभी भी न्यूनता नहीं आने पाती। जब मार्च अप्रैल में झीलों का जल सूखने लगता हैं तो झील की मिट्टी के ऊपर नमक के कण जम जाते हैं।

नीचे की तालिका में राजस्थान की विभिन्न झीलों—सांभर, डीडवाना, पचभद्रा

१ M. S. Krishnan, Geology of India and Burma, 1956, p. 43.

में कौन कौन सा नमक किस किस मात्रा में पाया जाता है, यह बताया गया है। इनकी तुलना समुद्र तल में मिलने वाले नमक की मात्रा से की गई है :—[१]

लवण	साभर %	डीड़वाना %	पचभद्रा %	समुद्र %
१. कैलशियम-कार्बोनेट	—	—	—	०·३४५
२. कैलशियम-सल्फेट	—	—	२·९७०	३·६००
३. सोडियम-क्लोराईड	८७·३००	७७·१९०	८५·६६०	७७·७५८
४. सोडियम-सलफेट	८·६५०	२०·६५०	—	—
५. सोडियम-कार्बोनेट	३·८७०	०·६००	—	—
६. सोडियम-बाई-कार्बोनेट	—	१·५६०	—	—
७. पोटेशियम-क्लोराईड	०·१२९	—	—	२·४६५
८. मैग्नेशियम-सल्फेट	—	—	९·४४०	११·७३७
९. मैग्नेशियम-क्लोराईड	—	—	१·९३०	१०·८७८
१०. मैग्नेशियम-ब्रोमाईड	०·०५१	—	—	०·२१७
योग	१००·०००	१००·०००	१००·०००	१००·०००

इन सभी झीलों से बड़ी मात्रा में खाने का नमक प्राप्त होता है किन्तु तीनों ही स्थानों पर बनने वाले नमक की मात्रा, रंग और उनके रासायनिक सम्मिश्रण में थोड़ा अन्तर होता है। सांभर झील में तैयार किये जाने वाले नमक में सोडियम क्लोराईड की औसत मात्रा ९६ से ९८ प्रतिशत; नमी १ से ३ प्रतिशत और घुली हुई अशुद्धियाँ—सोडियम कार्बोनेट, बाई कार्बोनेट और कारबनीय पदार्थ—०.५ से १.०८ प्रतिशत तक पाई जाती है। इसके नमक का रंग कुछ भूरा होता है। डीड़वाना से प्राप्त नमक अधिक अशुद्ध होता है। यहाँ नमक में सोडियम सल्फेट की मात्रा अधिक पाई जाती है और नमक प्रायः खाने के अयोग्य होता है। पचभद्रा का नमक रंग में अधिकतया सफेद होता है।

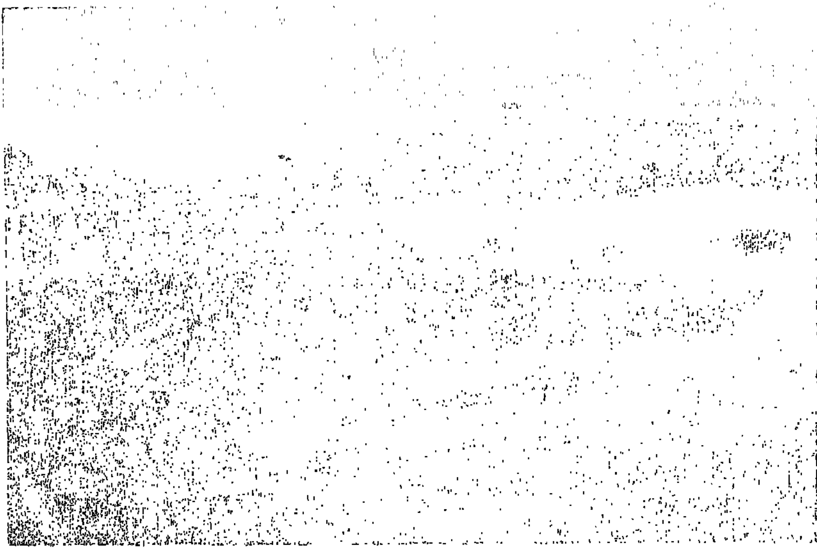
राजस्थान में उदयपुर जिले में अनेक झीलें बनाई गई हैं जिनका उपयोग मुख्यतः सिंचाई के लिए होता है। ऐसी झीलों में उदयपुर में उदयसागर, पिछोला, फतहसागर, जयसमुद्र और कांकरोली की राजसमन्द झीलें मुख्य हैं।

(छ) **अन्य झीलें**—(१) **लूनार झील** (Lunar Lake)—बम्बई राज्य के बुलढाना जिले में है। पेंदे में इस झील का घेरा ३/४ मील है किन्तु ऊपरी धरातल १½ मील है। पूर्व की ओर से एक सोते द्वारा पानी आता है। इसकी औसत गहराई बहुत कम है—केवल ३०० फीट। झील के चारों ओर कीचड़ है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि दक्षिण के लावा पठार में यह झील प्राचीन काल में ज्वालामुखी के मुंह में पानी भर जाने से बनी है।

(२) **चिल्का झील** (Chilka Lake)—उड़ीसा के तटीय भाग में नाशपाती की शक्ल में पुरी जिले में स्थित है। यह ४४ मील लम्बी तथा २० मील चौड़ी है किन्तु इसका क्षेत्रफल ३०० से ४५० वर्ग मील तक हो जाता है। यह समुद्र का ही

१. J. L. Sorin, 'The Salinity of Rajasthan Desert', in Bulletin of the National Institute of Sciences of India. No. 1 (Sept. 52), p. 84.

एक भाग है जो महानदी द्वारा लगाई गई मिट्टी के जमा हो जाने से समुद्र से अलग हो कर एक छिछली झील के रूप में हो गया है। दिसम्बर से जून तक इस झील का पानी खारा हो जाता है किन्तु वर्षा ऋतु में इसका पानी मीठा हो जाता है। इसकी औसत गहराई १० फीट है।



चित्र ३०—फतहसागर का एक मनोरम दृश्य

(३) **पालीकट झील** (Pulicut Lake)—मद्रास के तट पर ३७ मील लम्बी और ३ से १० मील चौड़ी है। यह एक छिछली अनूप है। इस झील की औसत गहराई ६ फीट है। यह समुद्र से बालू की भीत्ति द्वारा अलग होने से बनी है। इसके निकट जो द्वीप है—श्री हरीकोटा—उसकी मिट्टी में सेलखड़ी के स्तर मिलते हैं जिन्हें आधुनिक काल में समुद्री लहरों ने बिछा दिया है।

(४) **कोलेरू झील** (Kolleru or Colair)—कृष्णा जिले में एक मीठे पानी की झील है किन्तु यह छिछली है और इसकी आकृति अंडाकार है। वर्षा ऋतु में इसका क्षेत्रफल लगभग १०० वर्ग मील हो जाता है। अब यह झील अनेक छोटे स्रोतों द्वारा भरती जा रही है।

प्रपात (Water falls) :—

भारत के अधिकांश प्रपात दक्षिणी भारत में पाये जाते हैं जहाँ नदियाँ पश्चिमी घाट को पार कर प्रायद्वीप की ओर नीचे उतरती हैं। इनमें से अधिकांश तो बहुत ही छोटे होते हैं और २० से ३० फीट ही ऊँचे हैं। बम्बई और मैसूर राज्यों की सीमा पर शरवती नदी पर **जोग प्रपात** (जिरस्प्पा) है जो चार छोटे छोटे प्रपातों—राजा, राकेट, रोरर और दाम ब्लांचे—से मिल कर बने हैं। इसका जल ८५० फीट की ऊँचाई से गिर कर बड़ा सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है।

कावेरी नदी पर सिवासमुद्रम प्रपात है जो ३०० फीट की ऊँचाई से गिरता है। इसका उपयोग जल विद्युत शक्ति उत्पादन के लिये किया गया है।

नीलगिरी की पहाड़ियों में पायकरा प्रपात का उपयोग भी जल शक्ति के लिए किया गया है।

बेलगाम जिले में गोकक नदी पर गोकक प्रपात १८० फीट ऊँचे और महाबलेश्वर के निकट यन्ना प्रपात ६०० फीट ऊँचे हैं।

दक्षिणी टोंस नदी जब विन्ध्याचल के पठार को पार करके निकलती है तो कई झरने बनाती है जिसमें मुख्य बिहार प्रपात है जो बाढ़ के समय ६०० फीट चौड़ा और ३७० फीट ऊँचा हो जाता है।

चम्बल नदी में अनेक छोटे बड़े प्रपात मिलते हैं। कोटा के निकट चूलिया प्रपात ६० फीट ऊँचा है। इसी के सहारे चम्बल योजना में शक्ति उत्पादन की जायेगी। सोन और बेतवा नदी के मार्गों में कई प्रपात मिलते हैं। नर्मदा नदी में जबलपुर के निकट धुँआधार प्रपात—जो केवल ३० फीट ऊँचे हैं—बड़ा सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं। इसी नदी पर अन्य दो प्रपात—४० फीट ऊँचे—मंधार और पुनासा के निकट हैं। कृष्णा नदी में भी बाढ़ के समय उसके मार्ग में कई रपटें और प्रपात बन जाते हैं।

अध्याय ६

सिंचाई

(Irrigation)

भारत के लिये सिंचाई का महत्व और आवश्यकता

भारत में अनादिकाल से ही सिंचाई की जाती रही है। इसका प्रमाण दक्षिण भारत में ग्रान्ड एनीकट बांध से मिलता है। हिन्दु और मुस्लिम राजाओं ने सिंचाई के लिए कुएं और नहरें बनाई थीं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में सिंचाई का महत्व बहुत अधिक है। यहाँ पानी ही भूमि का जीवन है। भूमि सम्बन्धी उन्नति के सभी उपाय व्यर्थ हो जाते हैं यदि इसे सींचने के लिये पर्याप्त पानी उपलब्ध न हो सके। पानी के प्राकृतिक स्रोतों पर यदि भरोसा नहीं किया जा सकता तो मनुष्य को उन पर नियंत्रण स्थापित करके उन्हें अपनी आवश्यकता के अनुरूप मोड़ना होगा।

(१) वर्षा की अनियमितताओं का तकाजा है कि सिंचाई योजनाओं का द्रुत गति से विकास किया जाय। भारत में वर्षा अनिश्चित होती है और स्थान २ में उसकी मात्रा में भिन्नता रहती है। मोटे तौर पर अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक चार या पाँच वर्ष में एक बार सूखा पड़ जाता है जो संबंधित क्षेत्रों की कृषि सम्बन्धी समूची अर्थ प्रणाली को अस्त-व्यस्त कर देता है और उसका सन्तुलन बिगाड़ देता है। ऐसा कोई वर्ष मुश्किल से ही निकलता हो जब कि देश के एक न एक भाग में अभाव की स्थिति न उत्पन्न हो जाती हो। इसके अतिरिक्त वर्षा का समय भी प्रायः अनिश्चित ही रहता है। कभी तो समय से बहुत पहले ही वर्षा शुरू हो जाती है कभी काफी देर से शुरू होती है। यदि समय से पहले पानी बरस पड़ा तो बीजांकुर असन्तोष-जनक होते हैं क्योंकि बीज बोने के पहले ही धरती सूख जाती है और यदि वर्षा काफी देर से हुई तो फसल पिछड़ जाती है। जाड़े की ऋतु में वर्षा न होने से फसलों की वृद्धि रुक जाती है अथवा जाड़ों में वर्षा देर से हुई तो खड़ी फसल को या खेत में कटे हुए अनाज को क्षति पहुँचती है।

(२) वर्षा की कमी और अनिश्चितता के साथ ही सम्पूर्ण देश में इसके अनियमित वितरण की भी समस्या है। भारत में प्रतिवर्ष औसत वर्षा ४२ इंच होती है किन्तु इसके वितरण और इसकी अवधि में अन्तर देखा जा सकता है। राजस्थान में यदि ५ से लेकर १० इंच तक वर्षा होती है तो चेरापूंजी की पहाड़ियों में ४२५ इंच तक पानी बरसता है। साथ ही वर्षा का वेग वर्ष के कुछ ही महीनों तक सीमित है। इस प्रकार भारत के अधिकतर भागों में पूरे वर्ष के लिये पानी की पूर्ती के कुछ ही साधन प्राप्त हैं।

गंगा नदी के मैदान तथा पश्चिमी तट को छोड़कर अन्य सभी भागों में वर्षा की कमी से मनुष्य तथा जानवरों को समान रूप से क्षति पहुँचती है और आये दिन अकाल का संकट उपस्थित रहता है। राजस्थान और दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब के उन भागों में जहाँ बिल्कुल वर्षा नहीं होती, सिंचाई के बिना खेती करना सम्भव नहीं है। दक्षिण के ऊपरी भागों में सूखा का प्रकोप सदैव रहता है। संक्षेप में यह कहा

जा सकता है कि भारत की कृषि अंतत सिंचाई के साधनों की उन्नति और प्रगति से सम्बन्धित है।

(३) चावल तथा गन्ना जैसी कुछ विशेष फसलों की वृद्धि के लिये पानी की नियमित आवश्यकता पड़ती है और यह नियमितता मनुष्य द्वारा निर्मित सिंचाई साधनों से ही निश्चित हो सकती है।

(४) खेती ही चूंकि इस राष्ट्र का मुख्य उद्योग है इसलिये घनी खेती करने तथा प्रति वर्ष एक से अधिक फसल उगाने की नितान्त आवश्यकता है। इस कार्य के लिये सूखे मौसम में भी पानी मिलना जरूरी है।

(५) अंततः व्यापक अर्थ में सिंचाई की समस्या बड़ी महत्वपूर्ण है। क्योंकि वर्षा की अनिश्चितता के विरुद्ध सुरक्षा की स्थिति उत्पन्न करने के साथ ही यह उत्पादन बढ़ाने तथा किसान की स्थिति सुधारने का महत्वपूर्ण साधन है। सिंचाई से अन्न के उत्पादन में वृद्धि होती है। सुनियोजित खेती संभव होती है, फसल के उत्पादन में निश्चितता और स्थिरता आती है, अकाल आदि से रक्षा होती है, यातायात जैसे उद्योगों की उन्नति के लिये पर्याप्त अवसर मिलता है, राज्य को अतिरिक्त आय होती है, जीवन के सामान्य स्तर के उत्थान की दिशा में सहायता मिलती है और राष्ट्र की अर्थ प्रणाली पर सिंचाई सम्बन्धी सुविधायें वरदान सदृश सिद्ध होती हैं। इस प्रकार सिंचाई से शक्ति और सुरक्षा दोनों ही निश्चित हो जाती हैं।

(६) देश के कुछ भागों में मिट्टी इस प्रकार की है कि जिसमें अधिक समय तक नमी नहीं रुक सकती। अतः मिट्टी को नम बनाये रखने के लिए बार बार सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

विश्व में सिंचित भूमि का क्षेत्रफल सबसे अधिक भारत में ही पाया जाता है। भारत में ५६३ लाख एकड़ पर सिंचाई की जाती है इसमें से ३२ करोड़ एकड़ भूमि पर खेती की जाती है। सिंचित क्षेत्रफल के २६ करोड़ एकड़ भूमि पर खाद्यान्न उत्पन्न किये जाते हैं। इसी से भारतीय कृषि के लिए सिंचाई का महत्व स्पष्ट हो जाता है। संयुक्त राज्य में केवल २५० लाख एकड़, रूस में ८० लाख एकड़, जापान में ७० लाख एकड़, मिश्र में ६० लाख एकड़, मैक्सिको में ५७ लाख एकड़ और इटली में ४५ लाख एकड़ भूमि सींची जाती है। नीचे की तालिका में एशिया के विभिन्न देश में सिंचाई का विस्तार बताया गया है :-[1]

देश	भूमि का क्षेत्रफल (दस लाख हैक्टेयर)	सिंचित क्षेत्रफल	जोती गई भूमि पर सिंचाई का प्रतिशत	नदियों के जल का उपयोग %
ब्रह्मा	८.७	०.५३	६	०.८५
लंका	१.५	०.२४	१६	६.६०
चीन	९१.०	४२.२६	४६	१५.००
इंडोचीन	४.७	०.७	१५	—
भारत	१४७.०	२०.०	१७	५.४५
इंडोनेशिया	[illegible]	४.३	३९	—

१ सी० बी० मामोरिया, आर्थिक और वाणिज्य भूगोल, १९५७, पृ० ३३१.

देश	भूमि का क्षेत्रफल (दस लाख हैक्टेयर)	सिंचित क्षेत्रफल	बोई गई भूमि पर सिंचाई का प्रतिशत	नदियों के जल का उपयोग %
द० कोरिया	२.६	०.६	२३	—
पाकिस्तान	२१.०	८.५	४०	—
थाईलैंड	४.७	०.६	१३	५.२५
जापान	६.०	२.८५	४८	—
मिश्र	३.५	२.४५	७०	—
ईराक	६.६	१.३०	२०	—

विश्व के अन्य देशों में सिंचाई का क्षेत्रफल (१९५४) में इस प्रकार है :—

आस्ट्रेलिया, ६५३ हजार हैक्टेअर ; अर्जेनटाईना १,४५० हजार हैक्टेअर
इटली १,१७९ ,, चिली १,४०० ,,
यूनान २९९ ,,
संयुक्त राष्ट्र अमरीका १०,६९५ ,,
स्पेन १,६३३ ,,

अस्तु, यद्यपि भारत में सिंचाई का क्षेत्रफल यन्य देशों की अपेक्षा बहुत अधिक है किंतु फिर भी यह हमारी कृषि की आवश्यकताओं के लिये पर्याप्त नहीं है। सम्पूर्ण सिंचाई वाले क्षेत्र का १८% बड़ी और छोटी सिंचाई-योजनाओं द्वारा जल प्राप्त करता है तथा शेष वर्षा पर ही निर्भर है।

भारत विश्व में सिंचाई की नहरों के लिए प्रख्यात है। सिंचाई के साधन सबसे अधिक उत्तरी भारत में गंगा--सतलज तथा यमुना नदियों के मैदानों में पाये जाते हैं। इसके मुख्य कारण निम्नांकित हैं :—

(१) यह भाग समतल है। इन भागों की भूमि का ढाल इतना धीमा है कि नदियों के ऊपरी भागों से निकली हुई नहरों का जल आसानी से ही सारे मैदान में फैल जाता है।

(२) उत्तरी भारत की भूमि अधिकांशतः नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बनी होने के कारण बड़ी उपजाऊ है। अतः इस मिट्टी को जल मिल जाने पर उत्तम फसलें पैदा की जा सकती हैं।

(३) इन भागों में चट्टानें कम है तथा धरातल मुलायम है अतः नहरें खोदने में बड़ी सुगमता रहती है और खर्च भी अधिक नहीं होता।

(४) उत्तरी भारत के मैदानों में हिमालय पर्वत से निकलने वाली बड़ी बड़ी नदियाँ बहती हैं जिनमें अथाह जल-राशि भरी रहती है अतः इनसे जो नहरें निकाली जाती हैं वे भी वर्ष भर भरी रहती हैं जिससे लगातार सिंचाई की जा सकती हैं।

(५) देश की अधिकांश जनसंख्या खेती-बाड़ी में संलग्न है अतः खेती के लिए तथा अधिक उत्पादन करने के लिए सिंचाई की मांग भी अधिक है।

अस्तु, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भारत में कुछ ऐसी सिंचाई व्यवस्था की प्रणालियाँ पाई जाती हैं जो विश्व की सर्वोत्तम सिंचाई व्यवस्था में गिनी जाती हैं। भारतीय नहरों की कुल लम्बाई लगभग ६०,००० मील मानी जाती है जिनकी कुल क्षमता २२०,००० क्यूसेक (Cusecs) है। पानी की यह मात्रा उस परिणाम को प्रकट करती है जो एक दिन और रात लगातार चलकर समूचे दिल्ली राज्य को दो फीट पानी की गहराई से ढक देगा।

सिंचाई के विभिन्न साधन—भारत में सिंचाई के लिये भिन्न भिन्न साधन काम में लाये जाते हैं। इसका कारण देश के विभिन्न भागों में प्राकृतिक दशा में अन्तर होना है। अस्तु, उत्तरी भारत में विशेषकर नहरों और कुओं से तथा दक्षिण के पठार पर तालाबों से सिंचाई होती है। कुल सींची गई भूमि का ४२% नहरों में; ३०% कुओं से; १५% तालाबों से और शेष १३% अन्य उपायों से प्राप्त होता है।



चित्र ३१—भारत में सिंचाई के क्षेत्र

नीचे की तालिका में विभिन्न फसलों के सिंचित क्षेत्रफल संबंधी आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—

फसलों का सिंचित क्षेत्रफल (१९५६–५७) (हजार एकड़ों में)

चावल	२८,३५२	एकड़	दालें आदि	४ ३०५	एकड़
ज्वार	१,५४१	,,	गन्ना	५,१३८	,,
गेहूँ	९,८८९	,,	अन्य खाद्यान्न	२,८८५	,,
जौ	३,२६७	,,	कपास	२० १४३	,,

विभिन्न स्रोतों द्वारा सिंचाई का क्षेत्रफल (१९४७-४८ से १९५६-५७)

अवधि	नहरें सरकारी	नहरें निजी	योग	तालाब	कुएँ	अन्य साधन	योग
			(हजार एकड़ों में)				
१९४७-४८	१५,३१२	४,४४८	१९,७६०	७,९९१	१३,५५५	६,३६८	४६,६४४
१९५०-५१	१७,९३८	२,८१७	२०,७५५	८,२८८	१४,९९५	७,६०१	५१,२९९
१९५३-५४	१८,७८३	३,१९६	२१,९७९	१०,१८८	१६,४४४	५,०८३	५३,६९४
१९५४	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible],४००
१९५५							६,२००
१९५							५,६८२

में ९६

लाख सिंचाई

का ९

राज	सरकारी	निजी	तालाब	कुएँ	अन्य	ोग
आंध्र						६,७८८
आसा						१,५३३
बिहा						४,४०५
बम्बई						३,५९३
जम्मू						७१६
केरल						८११
मध्य						२,०३८
मद्रार						५,३०६
मैसूर						१,६३४
उड़ीर						२,४१४
पंजाब						८,०६२
राजा						३,३३६
उत्तर						२,२३५
प० ब						२,९७०
दिल्ली	२२	—	५	४०	—	७८
योग	१२,८३२	३,३६०	१०,८८४	१६,६४३	५,४४४	५६,१६३

१९५६-५७ में ६८०,००० एकड़ क्षेत्र में अतिरिक्त सिंचाई की गई और १०५१६...

१. पांच सौ एकड़ से कम।

५८ में १,११०,००० एकड़ में। १९५८-५९ में २,०३०,००० एकड़ में सिंचाई होने का अनुमान था। १९५१ से लगा कर मार्च १९५८ तक नई योजनाओं द्वारा सब मिला कर १८० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की गई।

नहरें (Canals) :—

भारत में सिंचाई का मुख्य साधन नहरें हैं। अधिकांश नहरें या तो उत्तरी भारत के मैदानों में या तटवर्ती नदियों के डेल्टाओं में पाई जाती हैं। नहरें बनाने के लिए मुख्यत: दो बातों की आवश्यकता होती है—समतल भूमि और नदियों में जल का निरन्तर प्रवाह। ऐसी आदर्श अवस्था उत्तरी भारत में नदियों के विशाल मैदान में मिलती है। नहरों में जल या तो नदियों से पहुँचाया जाता है या कृत्रिम तालाबों में इकट्ठे किए हुए जलाशय से। उत्तरी भारत की प्राय: सभी नहरों में साल भर नदियों द्वारा ही जल आता रहता है, किन्तु दक्षिण की अधिकाँश नहरों में जल जलाशयों में एकत्रित किए गए भाग से मिलता है क्योंकि यहाँ की नदियाँ गर्मियों में सूख जाती हैं। अत: नदियों की बाढ़ के समय उनका जल बड़े संग्राहकों में इकट्ठा कर लिया जाता है और यही जल नलियों द्वारा निकटवर्ती भूमि की सिंचाई करता रहता है।

नहरें दो प्रकार की होती हैं : (१) अनित्यवाही या बाढ़ द्वारा भरने वाली नहरें और (२) नित्यवाही या सदैव भरी रहने वाली नहरें।

(१) **अनित्यवाही नहरें** (Inundational Canals)—ऐसी नहरों को पानी तब मिलता है जब नदियों में बाढ़ें आती हैं। इस प्रकार की नहरें अक्टूबर से अप्रेल तक जल की कमी से सूखी रहती हैं अत: ये बेकार हो जाती हैं। जहाँ इस प्रकार की अनित्यवाही नहरें पाई जाती हैं वहाँ एक ही फसल पैदा की जाती है और प्राय: अक्टूबर से अप्रेल तक खेत खाली रहते हैं अथवा कुओं आदि से सिंचाई में सहायता लेकर फसलें पैदा की जाती हैं। इस प्रकार की नहरें अब अधिकांशत: नित्यवाही नहरों में परिवर्तित की गई हैं।

(२) **नित्यवाही नहरें** (Perennial Canals)—उन नदियों से निकाली जाती हैं जिनमें सदैव ही पानी भरा रहता है। नदी के पानी को कभी कभी बांध बना कर रोक दिया जाता है और फिर इस रोके गये जल से नहरों द्वारा आसपास के प्रदेश के खेतों की सिंचाई की जाती है। उत्तर प्रदेश की नहरें इसी प्रकार की हैं।

नहरों से सिंचित क्षेत्रफल अधिकतर आंध्र प्रदेश, बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, पंजाब, और उत्तर प्रदेश में पाया जाता है।

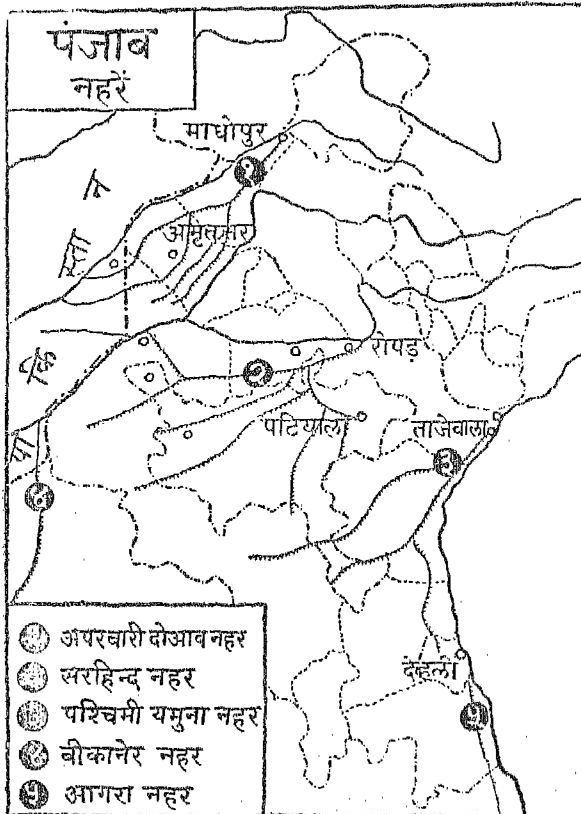
(क) पंजाब की नहरें

पंजाब में कुल ७४ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की जाती है जिसमें से लगभग ६५% (४६.५ लाख एकड़) सिंचाई नहरों द्वारा की जाती है।

पंजाब में सिंचाई करने वाली नहरें इस प्रकार हैं :—

पंजाब	निर्माण-काल	कुल व्यय पूँजी (लाख रु० में)	सिंचित-क्षेत्रफल (००० एकड़ में)	व्यय पूंजी का%
पश्चिमी जमुना नहर	१८२०	१०४	१०१८	८.१
ऊपरी बारी दोआब नहर	१८७९	—	७८३	२०.९
सरहिंद नहर	१८८४	२६७	२३१२	१४.६
पूर्वी नहर	१९२८	११४	१६०	—
नागल बैरेज नहर	१९५४	४०६	—	—

(१) पश्चिमी यमुना नहर (Western Jamuna Canal)—यह नहर १४ वीं शताब्दी में बनाई गई थी, फिर इसमें कुछ सुधार कर वर्तमान स्थिति में लाया गया है। यह नहर यमुना नदी से तेजवाला के निकट पानी लेकर अम्बाला, करनाल, रोहतक, हिसार (द० पं०), पटियाला व जिन्द राज्यों के प्रदेशों में सिंचाई का कार्य करती है। इस नहर की तीन प्रमुख शाखायें हैं : (१) दिल्ली शाखा जो १८१८ ई० में बनी ; (२) हांसी शाखा, जो १८२५ ई०में बनाई गई और (३) सिरसा शाखा जो १९ वीं शताब्दी में बनाई गई। पश्चिमी जमुना नहर के द्वारा १,९०० प्रशाखाओं के सहयोग से १० लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होती है।



चित्र ३२—पंजाब की नहरें

(२) सरहिन्द नहर (Sirhind Canal)—यह नहर सतलज से रूपड़ स्थान पर पानी लेती है और लुधियाना, फ़िरोजपुर, हिसार, पटियाला, जिंद, नाभा व पंजाब राज्य की २३१ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई करती है। इसकी लम्बाई शाखाओं सहित ३,८०० मील है। इसकी मुख्य शाखायें अभोर, भटिंडा, पटियाला, कोटला, घग्घर और ढोआ हैं। यह नहर सन् १८८४ में खोली गई थी। इसमें शीघ्र मिट्टी भर जाती है। फ़िरोजपुर के निकट यह नहर पुनः सतलज में मिल जाती है।

(३) **ऊपरी बारी दोआब नहर** (The Upper Bari Doab Canal)—यह १८५६ ई० में खोदी गई थी। यह रावी नदी से माधोपुर स्थान पर पानी लेती है और गुरदासपुर तथा अमृतसर के जिलों में ७.८ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करती है। शाखाओं सहित इसकी लम्बाई १,८०० मील है। इसकी मुख्य शाखायें लाहौर, कसूर और सबरो हैं।

(४) **नांगल की नहरें**—सतलज नदी से भाखरा स्थान से निकाली गई है। ये नहरें १९५४ ई० में बन कर तैयार हुई। इनसे अम्बाला, पटियाला, हिस्सार, करनाल और उत्तरी राजस्थान के लगभग ६६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो रही है।

(५) **बिस्त दोआब नहर**—यह नहर १९५४ में तैयार हुई है। यह भाखरा-नागल की ही शाखा है जो सतलज नदी से नोवा स्थान पर निकाला गई है। शाखाओं सहित इसकी लम्बाई ९० मील है। इस नहर द्वारा सतलज और व्यास के दोआबों में जलंधर और होशियारपुर जिलों की लगभग ६½ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होती है।

(६) सन् १९५४ में व्यास और रावी नदी को भी एक नहर द्वारा मिला दिया गया जिसमे व्यास नदी से निकलने वाली पुरानी और नयी प्रस्तावित नहरों को पर्याप्त जल मिलता रहे।

(ख) राजस्थान की नहरें

राजस्थान में वर्षा-विशेषतः पश्चिमी भागों में बहुत ही कम होती है। इस असुविधा से संरक्षण पाने के लिए **बीकानेर नहर** बनाई गई है। यह नहर सतलज नदी से फ़िरोजपुर के निकट निकाली गई है। इसकी तली सिमैंट की बनी है जिससे जल भूमि में नहीं सोख पाता है। इसके द्वारा बीकानेर जिले में ३½ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई कर गन्ना, कपास और गेहूँ पैदा किया जाता है। इस नहर को **गंग नहर** भी कहते हैं।

राजस्थान नहर—राजस्थान के बीकानेर जिले में एक और नहर बनाने का कार्य आरंभ हो [illegible] और व्यास नदियों के संगम-स्थल पर बने हरिके अवरोधक [illegible] से निकलती है। यह नहर विश्व में सबसे लम्बी नहर होगी [illegible] लागत से १९६२ ई० तक बन कर समाप्त होगी। यह नहर [illegible] और २० फीट गहरी होगी। इसकी लम्बाई ४२६ मील होगी। इसमें से ११० मील पंजाब में और शेष राजस्थान में होगी। शाखाओं-प्रशाखाओं सहित इसकी लम्बाई ५,००० मील होगी। इसके द्वारा बीकानेर डिवीजन में सूरतगढ़, अनूपगढ़, रायसिंहनगर, हनुमानगढ़ और बीकानेर तहसीलों में और जोधपुर डिवीजन के जैसलमेर जिले की नचना, जैसलमेर और रायगढ़ तहसीलों की ४० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। प्रथम चरण में स्थायी रूप से केवल दस लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और शेष भाग की अस्थायी सिंचाई होगी। द्वितीय चरण में रावी और व्यास नदियों पर मानसून के अतिरिक्त जल को एकत्रित किया जायेगा और और तब सम्पूर्ण क्षेत्र में सिंचाई हो सकेगी। इसके फल-स्वरूप अनाज, कपास तथा चारे का उत्पादन ७० करोड़ रुपये तक का होगा और इस नहर द्वारा ५० लाख व्यक्ति प्रभावित होंगे तथा सारा भाग लहलहाता बन कर

भारत का सबसे अधिक अन्नोत्पादक राज्य बनेगा। बाद में इस नहर का उपयोग जैसलमेर और बीकानेर के बीच यातायात के लिए भी हो सकेगा। भाखरा नांगल से जल-विद्युत इस क्षेत्र में भी मिलेगी इससे व्यापारिक मंडियों का विकास होगा। अनुमान है कि ३ बड़ी-बड़ी मंडियाँ जिनमें तीस हजार प्रति मंडी में जनसंख्या होगी और ११ छोटी मंडियाँ विकसित की जायेंगी जिनमें प्रत्येक में १०,००० जनसंख्या होगी।

(ग) मद्रास, केरल और आंध्र की नहरें

दक्षिणी भारत में मद्रास राज्य में ही अधिक नहरें पाई जाती हैं। ये नहरें अधिकतर नदियों के डेल्टों में बनाई गई हैं क्योंकि पूर्वी भाग में तटीय मैदानों में ग्रीष्म काल में मानसून हवाओं से इतनी पर्याप्त वर्षा नहीं होती जिससे फसलों के लिये पानी की पूर्ति हो जाय किन्तु शीतकाल में यहाँ अच्छी वर्षा हो जाती है। अस्तु, सिंचाई केवल ग्रीष्म ऋतु में ही करने की आवश्यकता पड़ती है। इस ऋतु में पश्चिमी घाटों पर घनी वर्षा होने से इस ओर की नदियों में काफी पानी भरा रहता है। इसी जल का उपयोग पूर्वी तट की ओर आंध्र और मद्रास राज्यों में गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के डेल्टाओं में सिंचाई के लिए किया जाता है।

मद्रास में तालाब या कुओं की अपेक्षा नहरों से ही अधिक सिंचाई की जाती है। यहाँ नहरें कुल सिंचित क्षेत्रफल के लगभग ३८% भाग को सींचती है तथा आंध्र में कुल सिंचित क्षेत्रफल के लगभग ५२% भाग को। सिंचाई के सहारे पूर्वी तटीय भागों में चावल, ज्वार, बाजरा आदि उत्पन्न किए जाते हैं।

नीचे की तालिका में आंध्र और मद्रास की प्रमुख नहरें तथा उनसे सिंचित क्षेत्रफल बताया गया है :—

मद्रास	निर्माण-काल	कुल व्यय पूंजी (लाख रु० में)	सिंचित क्षेत्रफल (००० एकड़ में)	व्यय (पूंजी का%
कावेरी डेल्टा नहरें	१८८९	८७	१०७०	१३.९
गोदावरी डेल्टा नहरें	१८९०	२१०	१२२९	१२.१
कर्नूल कड्डापा नहरें	......	२३४	८८	०.८
पैनार नदी नहर	१८९४	७१	१७८	६.५
पेरियर नहरें	१८९७	१०८	२०२	५.६
कृष्णा डेल्टा नहरें	१८९८	२२७	१००२	१५.७
निचली कैलोरुन नहर	१९०३	३०	१२३	१०.१
कृष्णा नहर (पूर्वी)	१९१३	५८	१०.०	७.८
कावेरी-मैट्टूर योजना	१९३४	६४६	२३२	१.७
निचली भवानी नहर	१९५६	९६१	२०७	—
तुंगभद्रा नहर	१९५६	२,५४४	१९७	—
रैलापद नहर	१९५७	९०	८	—

(१) **कावेरी डेल्टा की नहरें**—कावेरी डेल्टा में नहरों का निर्माण दूसरी शताब्दी में किया गया। डेल्टा के प्रारंभिक स्थान से १८ मील ऊपर की ओर कावेरी नदी दो

धाराओं में बंट जाती है। कावेरी की प्रधान धारा श्रीरंगम द्वीप के दाहिनी ओर से और कोलरून नदी बायीं ओर से बहती है। कावेरी के जल को कोलरून की ओर बह जाने से रोकने के लिए कोलरून पर **ग्रांड एनीकट** (Grand Anicut) नामक बांध बनाया गया है जो १,०८० फीट लंबा, ४० से ६० फीट चौड़ा और १५ से १८ फीट तक ऊँचा है। दूसरा बांध श्रीरंगम पर **ऊपरी एनीकट** के नाम से बांधा गया है। यह २,५६२ फीट लम्बा है। इसकी मुख्य नहरों की लंबाई शाखाओं सहित १,५०० मील है। इसी की सहायता से कावेरी डेल्टा में तंजोर जिला 'दक्षिण का उद्यान' बन गया है। सिंचाई के सहारे चावल पैदा किये जाते हैं।

(२) **गोदावरी डेल्टा की नहरें**—गोदावरी नदी अपने डेल्टा में गोमती गोदावरी तथा वशिष्ठ गोदावरी नामक शाखाओं में विभक्त होकर बहती है। गोमती नदी पर **धौलेश्वरम** तथा **रोली** बांध क्रमशः ४,९४० फीट और २,८५९ फीट लंबे बनाये गये हैं। वशिष्ठ गोदावरी पर **मद्दूर** और **बिजेश्वरम** बांध क्रमशः १,५४८ फीट तथा २,५९८ फीट लंबे हैं। इन दोनों से नहरें निकाली गई हैं जिनकी प्रधान शाखाओं की लंबाई ५०० मील और प्रशाखाओं की लम्बाई २,००० मील है। गोदावरी डेल्टा की नहरें १८९० ई० में २½ करोड़ रुपये की लागत से बनाई गई थी। इनके द्वारा ११ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

(३) **कृष्णा डेल्टा की नहरें**—कृष्णा नदी अपने मुहाने से ६० मील दूर विजयवाड़ा की ३९ हजार फीट चौड़ी घाटी में जहाँ पहुँचती है वहीं उसका जल बांध बनाकर रोका गया है। इससे दोनों ओर की नहरें निकाल कर डेल्टा में सिंचाई की जाती है। नहरों का निर्माण १८९८ में २½ करोड़ रुपये की लागत से किया गया। इनके द्वारा ११ लाख एकड़ भूमि का सिंचाई की जाती है। इन नहरों को गोदावरी नदी के डेल्टे की नहरों से जोड़ दिया गया है जिससे इन दोनों के बीच यातायात भी होता है।

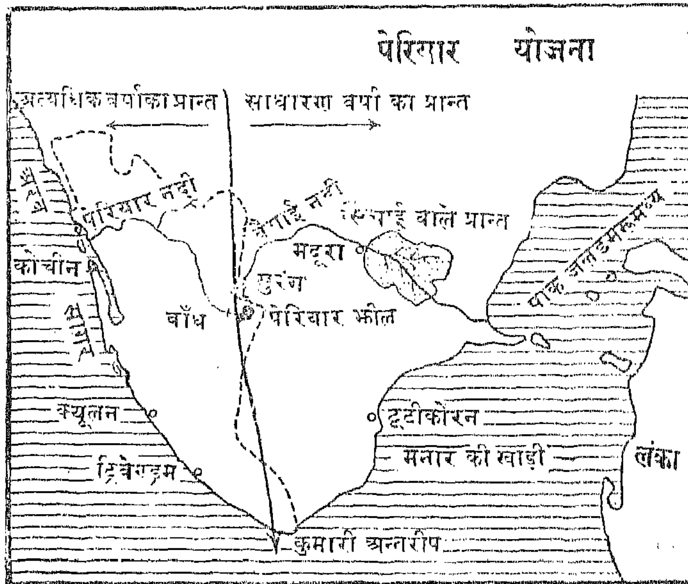
(४) **कृष्णा बैरेज प्रोजेक्ट**—कृष्णा नदी पर कृष्णा एनीकट से ६० फीट ऊपर की ओर यह बांध १९५६ में बनाया गया है। यह ३,४५८ फीट लंबा है। इसके द्वारा नहरें निकाल कर डेल्टा तथा ऊपर के क्षेत्र में ४६ हजार एकड़ भूमि का सिंचाई की जाती है।

(५) **निचली भवानी योजना की नहरें**—१९५६ में कावेरी की सहायक भवानी नदी पर एक बांध १० करोड़ रुपये की लागत से बनाया गया। यह ५½ मील लंबा और १६० फीट ऊँचा है। इसी को बांध कर भवानीसागर झील का निर्माण किया गया है। इससे नहरें निकाल कर कोयम्बटूर जिले के भवानी, ईरोड़, धारापुरम्, गोबी, चेटीपलायम् तालुकों की २ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है और कपास तथा अनाज बोया जाता है।

(६) **मालमपुजा बांध की नहरें**—केरल राज्य के मलाबार जिले में यह बांध १९५६ में मालमपुजा नदी पर ५½ करोड़ रुपयों की लागत से बनाया गया। इसके द्वारा निकाली गई नहरों से ४८ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

(७) **बलयार जलाशय की नहरें**—केरल राज्य में कोरयार की सहायक बलयार पर १९५७ में १ करोड़ रुपये के व्यय से बांध बनाया गया है। इससे मलाबार जिले के पालघाट तालुका की ८४ हजार एकड़ भूमि को सींचा जाता है।

(८) **पैरियर नहर योजना** (Periyar Project)—दक्षिणी भारत में पैरियर नदी इलायची की पहाड़ियों से निकल कर पश्चिम की ओर बहती हुई अरब सागर में गिर जाती थी। इसके जल का कोई उपयोग नहीं होता था जबकि इन पहाड़ियों के



चित्र ३३—मद्रास की नहरें

पूर्व में मद्रास के मदुराई और तिरुनलवेली जिलों में बहुत ही कम वर्षा के कारण बहुधा अकाल पड़ा करते थे। अतएव इंजिनीयरों ने उस नदी का प्रवाह मार्ग पूर्व की ओर बदल डालने के लिए पश्चिम की ओर एक १७५ फीट ऊँचा बांध बना कर इस नदी को एक झील के रूप में परिणत कर दिया। फिर इस झील का पानी एक १¾ मील लम्बी कृत्रिम सुरंग द्वारा पूर्व की ओर ले जाकर वेगई नदी में डाल दिया है। इससे वेगई नदी में काफी पानी हो गया है इसलिये उससे नहरें निकाल कर मदुराई जिले के आस पास की लगभग २ लाख एकड़ भूमि की सिन्चाई की जाने लगी है। पैरियर प्रणाली की नहरों की लंबाई लगभग २७० मील है।

(९) **कावेरी मेट्टूर योजना** (Cauvery Mettur Project)—मद्रास में कावेरी नदी पर उद्गम स्थान से लगभग २५० मील दूर के पहाड़ी प्रदेश में मेट्टूर नामक स्थान पर एक बाँध बनाकर ९,३५,००० लाख घन फुट पानी रोका गया है। इससे ९४३ मील लम्बी नहरें निकाल कर कावेरी डेल्टा में २.३ लाख एकड़ भूमि में सिन्चाई की जाती है।

(१०) **रामपद सागर योजना** (Rampad Sagar Project)—मद्रास में एक नई योजना बनाई गई है जिसके अनुसार गोदावरी नदी पर पोलावरम नामक स्थान पर एक बड़ा बांध—रामपद सागर—बना कर १२० लाख एकड़ फुट पानी रोका जा रहा है और इस बांध के दोनों किनारों से दो नहरें निकाल कर गोदावरी डेल्टा में लगभग

६००,००० एकड़ शुष्क भूमि की सिंचाई की जायगी। डेल्टा की वर्तमान नहरों को भी इस बांध से पानी प्राप्त हो सकेगा जिसके फलस्वरूप १० लाख एकड़ भूमि और अधिक सींची जा सकेगी और १'५ लाख किलोवाट बिजली भी उत्पन्न की जायगी।

(११) **तुंगभद्रा योजना** (Tungbhadra Project)—इसके अनुसार एक बांध कृष्णा नदी की सहायक नदी पर मालापुरम नामक स्थान पर १६० फीट ऊँचा और ७.९४२ फीट लम्बा बनाया गया है जिसमें २६ लाख एकड़ फुट पानी समाहृत हो सकेगा।[1] इससे नहरें निकाल कर मद्रास में (बलारी, कर्नूल और मद्रास) ३,००,००० एकड़ भूमि और आन्ध्र में ६,००,००० एकड़ भूमि सींची जा सकेगी तथा ११,००० किलोवाट बिजली भी उत्पन्न की जायगी।

(घ) उत्तर-प्रदेश की नहरें

उत्तर प्रदेश की उन्नति का प्रमुख कारण बड़ी नहरें हैं। उत्तर-प्रदेश में कुल बोई गई भूमि के ३१ प्रतिशत भाग में सिंचाई होती है। ऊपरी गंगा की घाटी में वर्षा प्रतिवर्ष ४० इन्च से भी कम होती है, अतः इस प्रदेश की खेती की उन्नति में नहरों का प्रमुख स्थान है। सिंचाई के सहारे यहाँ गन्ना, कपास तथा मकई पैदा की जाती है। उत्तर प्रदेश में सिंचाई के लिए नहरों और कुओं दोनों का ही महत्व अधिक है।

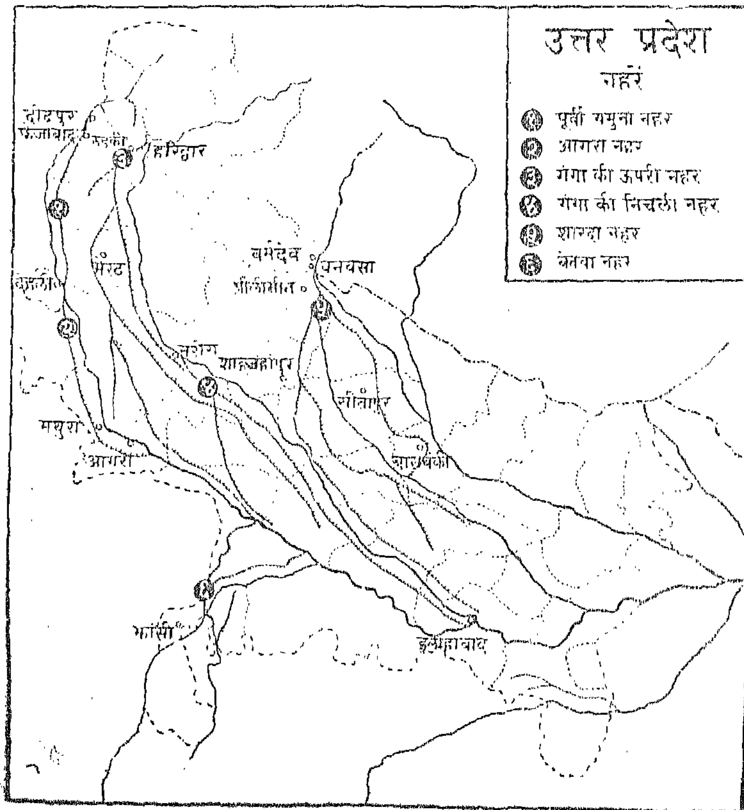
उत्तर प्रदेश में निम्न नहरें मुख्य हैं :—

नहरें	निर्माण काल	व्यय पूंजी (लाख रु० में)	सिंचित क्षेत्रफल (००० एकड़ में)	व्यय पूंजी का %
पूर्वी जमुना नहर	१८३१	६६	४४६	६३.२
आगरा नहर	१८७५	१२९	३४३	४.६
ऊपरी गंगा नहर	१८५६	४४६	१६२०	२५.२
निचली गंगा नहर	१८८०	४६७	१२५१	८.६
बेतवा नहर	१८९३	१२४	२२१	१.०
केन नहर	१९०९	६७	१४०	५.४
शारदा नहर	१९०३	११५७	१२९७	२.९
शारदा नहर-बांध	१९५७	४८०	१७२	—

(१) **ऊपरी गंगा की नहर** (Upper Ganges Canal)—यह नहर गङ्गा नदी से हरिद्वार के पास निकाली गई है। इस नहर का निर्माण १८४२ से प्रारम्भ होकर १८५६ में समाप्त किया गया था। रुड़की तक आने में इसे तमाम ऊँची-नीची भूमि में होकर गुजरना पड़ता है। अतः हरिद्वार और रुड़की के बीच में कई जगहों पर इसे नदियों के नीचे, कहीं-कहीं नदियों के ऊपर और कहीं-कहीं नदियों के साथ-साथ चलना पड़ता है। इस नहर के मार्ग में ७ जगह झरनें बनाकर बिजली उत्पन्न की जाती है। यह गङ्गा-यमुना दोआब के उत्तरी भाग के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, मेरठ, एटा, इटावा, अलीगढ़, मथुरा, कानपुर, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और

१. १ एकड़ फुट पानी=४३,५६० घनफुट ; या ३२५,८५० गैलन ; या १,३०३,४०० क्वार्ट या २,७१७,६०० पौंड जल।

फतहपुर जिलों की १७ लाख एकड़ से अधिक भाग में सिंचाई करती है। प्रमुख नहर की लम्बाई २१३ मील तथा उसकी शाखाओं की लम्बाई ३,५०० मील से भी ऊपर



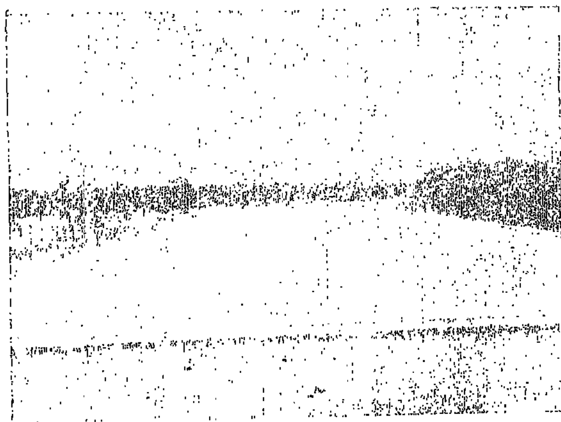
चित्र ३४—उत्तर प्रदेश की नहरें

है। इस प्रकार इसकी कुल लम्बाई ३,८८८ मील है। यह नहर आगरा नहर और निचली गङ्गा नहर को भी पानी देती है। इसकी मुख्य शाखाएँ अनूपशहर और माट हैं। ऊपरी गङ्गा नहर ८,००० घन फीट पानी प्रति सैकंड की रफ्तार से ले जा सकती है। इस नहर से जल-विद्युत शक्ति भी पैदा की जाती है। इस नहर से अब कपास, गन्ना और गेहूँ अधिक पैदा किया जाने लगा है।

(२) **निचली गंगा नहर** (Lower Ganges Canal)—यह नहर नरोरा स्थान पर गङ्गा नदी से निकाली गई है। इसका निर्माण १८७२ से प्रारम्भ कर १८८० में समाप्त किया गया। यह नहर ऊपरी गङ्गा नहर की शाखाओं-प्रशाखाओं के सहित ३,८३७ मील है तथा इसके द्वारा मैनपुरी, फर्रुखाबाद, एटा, कानपुर और फतहपुर जिलों की लगभग १२,५०,००० एकड़ भूमि में सिंचाई होती है। इसकी मुख्य शाखायें कानपुर, इटावा और फतहपुर हैं।

(३) आगरा नहर (Agra Canal)—यमुना के दायें किनारे से ओखला नामक स्थान पर पानी लेती है (यह स्थान दिल्ली से ११ मील नीचा है)। यह १८७५ में बनाई गई थी। यह नहर अपनी १,००० मील लम्बी शाखाओं-प्रशाखाओं के द्वारा दिल्ली, मथुरा, गुड़गांव और आगरा की ३.४ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करती है।

(४) शारदा नहर (Sharda Canal)—यह नहर १९२८ में बनाई गई थी। यह नहर गोमती नदी से बनबासा स्थान (नैपाल की सीमा पर) से निकाली गई है। इसकी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित लम्बाई ५,५५५ मील थी। १९४१ में इसका विस्तार किये जाने से इसकी लम्बाई ७,६६७ मील हो गई है। अब यह ८०० मील और लम्बी बनाई गई है। शारदा नहर पर खातिमा शक्तिगृह बनाया गया है। इसकी सर्वाधिक



चित्र ३५—शारदा जिले में शारदा नहर

पानी देने की क्षमता ६,५०० घन फीट प्रति सैकंड है। यह नहर रोहिलखण्ड और अवध के पश्चिमी भाग को सींचती है। इस नहर द्वारा इलाहाबाद, प्रतापगढ़ राय-बरेली, बाराबंकी, उन्नाव, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, खेरी, शहाजहाँपुर, बरेली और पीलीभीत जिलों की २५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। इसकी मुख्य शाखायें खेरी, सीतापुर, लखनऊ और हरदोई हैं।

(५) पूर्वी जमुना नहर (Eastern Jamuna Canal)—यह नहर उत्तर-प्रदेश के उत्तरी-पूर्वी भाग में सिंचाई करती है। यह नहर फैजाबाद के पास यमुना नदी से निकाली गई है जो देहली तक [illegible] है। इसकी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित लम्बाई ६०० मी[illegible] सहारनपुर और मुजफ्फरनगर की चार लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। यह भी हमारे देश की उत्पादक नहरों में से एक है।

(६) बेतवा नहर (Betwa Canal)—यमुना की ही एक शाखा है जो झांसी से १५ मील दूर परिच्छा नामक स्थान से निकाली गई है। इस नहर द्वारा झांसी, जालौन, हमीरपुर आदि की २ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। हमीरपुर और कठौना इसकी दो प्रमुख शाखायें हैं।

उत्तर प्रदेश की अन्य नहरें (१) केन नहर, (२) धसान नहर, (३) घग्घर नहर और मिर्जापुर नहर हैं। इनके द्वारा क्रमशः बांदा जिले, हमीरपुर जिले तथा मिर्जापुर जिलों की सिंचाई की जाती है।



चित्र ३६—खातिमा में शारदा शक्ति-गृह

(च) बिहार की नहरें

बिहार में वर्षा की अनियमितता के कारण भूमि की सिंचाई करने के हेतु गंडक और सोन नदियों से नहरें निकाली गई हैं। यहाँ कुल बोई गई भूमि के २३% भाग पर सिंचाई होती है। बिहार में निम्नांकित नहरें मुख्य हैं :—

(१) **पूर्वी सोन नहर** (Eastern Sone Canal)—यह नहर १८७५ में सोन नदी के दाहिने किनारे से बारून नामक स्थान से निकाली गई है। यह नहर पटना के समीप गङ्गा नदी में मिला दी गई है। इसके द्वारा पटना और गया जिलों की ७½ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। इस पर २६८ लाख रुपये खर्च हुए हैं। इस नहर की लम्बाई ८० मील है।

(२) **पश्चिमी सोन नहर** (Western Sone Canal)—सोन नदी के बाँये किनारे से डेहरी नामक स्थान से निकाली गई है। इसकी दो शाखायें हैं। एक शाखा बक्सर के निकट गङ्गा नदी में मिल जाती है और दूसरी शाखा आगे चल कर दो भागों में विभक्त हो जाती है। उत्तर की ओर की शाखा डुमराव नहर कहलाती है और दूसरी शाखा का नाम आरा नहर है जो उत्तर-पूर्व की ओर बह कर गङ्गा में मिल जाती है।

(३) **त्रिवेणी नहर** (Tribeni Canal)—गंडक नदी से त्रिवेणी नामक स्थान के निकट से निकाली गई है। इससे उत्तरी बिहार के चम्पारन जिले की लगभग ६ लाख एकड़ भूमि सींची जाती है।

(छ) बंगाल की नहरें

बंगाल में सिंचाई के लिये सिर्फ दो ही नहरें मुख्य हैं—(१) **मिदनापुर नहर,** और (२) **एडन नहर**। मिदनापुर नहर मिदनापुर के पास कोसी नदी से निकल कर

पूरब में हुगली नदी से मिल जाती है। इस नहर का कुछ भाग तो केवल सिंचाई करने और कुछ नाव चलाने दोनों ही कामों में आता है। लेकिन हुगली के पास वाला भाग सिर्फ नाव चलाने के काम आता है। इससे धान की सिंचाई ज्यादा होती है। दूसरी नहर दामोदर नदी से निकाली गई है। सिर्फ बर्दवान के जिले में इस नहर से थोड़ी-सी सिंचाई होती है।

नहरें	निर्माण-काल	कुल व्यय (लाख रु०)	सिंचित क्षेत्रफल (००० एकड़)
दामोदर नहर	१९३५	१३०	१७२
मिदनापुर नहरें	१८८८	८५	७४
मयूराक्षी	१९५६	१,६११	७२०

(ज) बम्बई राज्य की नहरें

दक्खिन में पठार का जो भाग बम्बई राज्य में है उसमें मद्रास की तरह तालाबों के द्वारा सिंचाई के लिये छोटी-छोटी नहरें निकाली गई हैं। जिनमें (१) नीरा नदी की नहरें, (२) गोदावरी की नहरें, और (३) मूठा नहरें मुख्य हैं।

नहरें	निर्माण-काल	कुल व्यय पूँजी (लाख रु० में)	सिंचित क्षेत्रफल (००० एकड़ में)	व्यय पूँजी का %
नीरा नहर (बांई)	१९०६	१४८	९०	४.७
गोदावरी नहर	१९१६	१०७	६३	४.२
प्रवरा नहर	१९२६	१५१	९०	—
नीरा नहर (दांई)	१९३८	४१२	८९	१.८
गंगापुर बाँध	१९५७	३३४	४५	—
घाटप्रभा बांई नहर	१९५७	५४५	१३८	—
ककरापाड़ा नहर	१९५७	११०१	५६२	—

गोदावरी की नहरें—गोदावरी नदी पर बेल झील के पास एक ९२ फीट ऊँचा बांध बना कर उसके दोनों किनारों से नहरें निकाली गई हैं। यह नहरें लगभग ११७ मील लम्बी हैं। नासिक और अहमदनगर जिलों के ऐसे भागों में सिंचाई करती हैं जहाँ बहुधा अकाल पड़ा करता है।

मूठा नहर—मूठा नहर पूना को पीने के लायक पानी पहुँचाने के लिये जिला पूना की फ़ाइफ झील (Lake Fife) से निकाली गई थी। यह खड़कवासला नामक स्थान पर बनी है। इससे दो नहरें निकाली गई हैं। दाहिनी ओर की नहर ७० मील लम्बी और बायीं ओर की १८ मील लम्बी है। इससे थोड़ी सिंचाई भी की जाती है।

भंडारदरा बांध—इसका निर्माण १९३५ में किया गया। बम्बई में सबसे ज्यादा महत्व इसी बांध का है। यह तालाब पश्चिमी घाट के ऐसे भाग में बनाया गया है जहाँ बहुत अधिक वर्षा (१२७" और २१४" के बीच में) होती है। तालाब

बनने से पहले इस राज्य की वर्षा का समस्त पानी बह कर सागर में चला जाता था। लेकिन वह अब इसी तालाब में इकट्ठा होकर सिंचाई के काम आता है। भण्डारदरा के स्थान पर प्रवीरा नदी में २७० फीट ऊँचा एक बांध बाँधा गया है जिसे **विलसन बांध** (Wilson Dam) कहते हैं। यह जलाशय भारत के सब बांधों से ऊँचा है। इसमें २०,००० लाख फीट पानी इकट्ठा किया जाता है। इस बांध से निकाली हुई नहरें लगभग ८५ मील लम्बी हैं और अहमदनगर जिले में इनसे लगभग २ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

भाटागर बांध—इसका निर्माण १९२६ में किया गया। बम्बई में कृष्णा की सहायक नीरा नदी पर भाटागर नामक स्थान पर लायड़ बांध (Lloyd Dam) बनाकर २४२,००० लाख एकड़ फीट जल संग्रहित किया गया है। इस बांध के दांये-बायें किनारों से नहरें निकाल कर पूना और शोलापुर जिलों की सिंचाई की जाती है। सिंचित क्षेत्रफल १.६ लाख एकड़ है।

(झ) मध्य प्रदेश की नहरें

मध्य प्रदेश में अधिकांश सिंचाई तालाबों द्वारा होती है किन्तु इस प्रदेश में तीन मुख्य नहरें भी हैं:—

(१) **महानदी नहर** (Mahanadi Canal)—रुद्री नामक स्थान से महानदी से निकाली गई है। शाखाओं-प्रशाखाओं सहित यह ९५० मील लम्बी है। इस नहर द्वारा लगभग २ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। यह १९२७ में १५९ लाख रुपये की लागत से बनाई गई।

(२) **वैनगंगा नहर** (Wainganga Canal)—वैनगंगा नदी से निकाली गई है। यह नहर बालाघाट और भंडारा जिले में लगभग १० हजार एकड़ भूमि सींचती है।

(३) **तन्दुला नहर** (Tandula Canal)—तन्दुला और सुखा नदियों के संगम पर दो बाँध बनाकर निकाली गई है। यह १९२५ में १२० लाख रुपये की लागत से तैयार की गई। इसके द्वारा रायपुर और द्रुग जिलों की १६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

नहरों से लाभ

(१) बंजर भूमि हरे भरे खेतों में परिणत की जा सकती है। पंजाब की नहरी बस्तियों में तथा उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और दकन के पठार आदि के उन क्षेत्रों में जहां वर्षा कम होती है कृषि का तीव्र गति से विकास इसका सजीव उदाहरण है। नहरों ने बहुत हद तक अकाल की भयानक आशंका को निर्मूल कर दिया है और आर्थिक सुख-समृद्धि के लिये एक नूतन अध्याय का सूत्रपात कर दिया है।

(२) **कृषि के उत्पादन में वृद्धि**—इस सम्बन्ध में श्री मुख्तारसिंह का मत है कि कृत्रिम सिंचाई से उत्पादन में २६% वृद्धि होती है। डाक्टर सुधीरसेन के कथनानुसार चावल के उत्पादन में तो इस प्रकार की सिंचाई से ५० प्रतिशत और ६६ प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। आई० सी० ए० आर० के सलाहकार बोर्ड ने भी समान मत व्यक्त किया है जिसका कहना है कि किसी क्षेत्र में सिंचित भूमि की उपज

में असिंचित भूमि की अपेक्षा प्रति एकड़ ५० से लेकर १०० प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है।

(३) गन्ना, जूट (पटसन), रुई आदि व्यापारिक फसलों के उत्पादन में उन्नति हुई है। नहरों का पानी अपने साथ उपजाऊ मिट्टी लाकर सिंचित भूमि की उर्वरता में और अधिक वृद्धि कर देता है। महत्वपूर्ण व्यापारिक फसलों के लिये यह अत्यन्त लाभकर होता है।

(४) नहरों से उन विशाल क्षेत्रों के लिये यातायात तथा संचार साधन की संतोषजनक व्यवस्था हो जाती है जहाँ सड़कों तथा रेल यातायात का सर्वथा अभाव है। उदाहरणार्थ पूर्वी डेल्टा की नहरों द्वारा सिंचाई और यातायात दोनों ही कार्य होते हैं।

(५) सरकार के लिये आय का प्रमुख साधन--साधारणतया नहरों में लगाई गई पूंजी से ७ से लेकर ८ प्रतिशत तक आय होती है। इससे एक लाभ यह भी है कि अकाल सहायता सम्बन्धी सरकारी व्यय में कमी हो जाती है। यह बात भी महत्व की है कि "सिंचाई से होने वाले लाभ को केवल सरकारी आय अथवा सिंचित क्षेत्रों के लाभ से नहीं आँका जा सकता। भारत की जनसंख्या में बराबर वृद्धि हो रही है। इस बढ़ती हुई जन संख्या का उदर-पोषण नितान्त आवश्यक है। वह समय दूर नहीं है जबकि चप्पा-चप्पा भूमि पर खेती करनी पड़ेगी। बल्कि कोटि कोटि जनता के लिये खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिये और अधिक भूमि की आवश्यकता होगी। इस दयनीय स्थिति का सामना करने के लिये एक मात्र उपाय यह है कि जिस भूमि पर इस समय खेती हो रही है उसके उत्पादन में अधिक से अधिक वृद्धि की जाय।"

(६) सस्ते किस्म के खाद्यान्नों--जैसे ज्वार, बाजरा आदि--के स्थानों पर गेहूँ, चावल जैसे अच्छे किस्म के अन्नों का उत्पादन होने लगा है। इससे किसानों की आय में वृद्धि होने के साथ ही उन्हें पुष्टिकर भोजन भी मिलता है।

इन सारी बातों का निष्कर्ष यह है कि नहरों की सिंचाई ने भारत की ग्रामीण अर्थ-प्रणाली को अगणित वरदान दिये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन साधनों के और अधिक विकास और प्रसार से जनता का सामान्य जीवन-स्तर उन्नत बनाने का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा।

सिंचाई द्वारा होने वाली हानियाँ

(१) नीची भूमि की सतह पर हानिकारक नमक जम जाता है जिससे मिट्टी का उपजाऊपन नष्ट हो जाता है। वस्तुतः नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्रों में अनेक स्थानों के ऊसर हो जाने का खतरा बना रहता है। यह हानिकर नमक तथा रसायन के अनियन्त्रित वितरण के कारण होता है। बम्बई राज्य की नीरा नदी की घाटी में नमक की तह जम जाने से लगभग ५१,००० एकड़ भूमि खेती के अयोग्य हो गई है। यह क्षेत्रफल कुल सिंचित क्षेत्रफल का २५% से भी अधिक है।

(२) जिस भूमि में इस प्रकार नहर का पानी जमा हो जाता है वहाँ मच्छरों का खतरा पैदा हो जाता है क्योंकि सारी भूमि इतनी अधिक संपृक्त हो जाती है कि उसमें सदा पानी भरा रहता है तथा दलदल हो जाता है।

(३) नहरों का तल और उनके किनारे हानिकर नमक की क्रियाओं से जम जाते हैं जो कि नहरों की सुरक्षा की दृष्टि से काफी खतरनाक होते हैं।

(४) अधिक सिंचाई के कारण भूमि से इतनी अधिक फसलें प्राप्त हो जाती हैं कि कृषक को उनका उचित मूल्य नहीं मिलता फलतः कृषि में मंदी आ जाती है।

उपाय :—(१) पानी लगे हुये क्षेत्रों में नल कूप बनवा कर पानी की सतह नीची कर दी जानी चाहिये।

(२) नहर के तल और किनारों की क्षति रोकने के लिये सोडियम कारबोनेट का प्रयोग किया जाय।

(३) पानी का व्यर्थ बहाव और पानी का जमाव रोकने के लिये यह भी आवश्यक है कि पानी के देने के समय का उचित ढंग से नियंत्रण किया जाय।

२. कुएँ (Wells)

भारत में कुओं द्वारा सिंचाई करने का तरीका प्राचीन काल से चला आ रहा है। कुल सिंचित भूमि के ३०% भाग में कुओं द्वारा सिंचाई होती है। कुओं द्वारा सिंचाई उन्हीं भागों में की जाती है जहाँ कुओं के निर्माण के लिए निम्न भौगोलिक दशाऐं अनुकूल होती हैं :—

(१) देश के एक बहुत बड़े भाग में चिकनी बलुई मिट्टी पाई जाती है जिसमें जहाँ तहाँ बालू के बीच काँप की तहें मिलती हैं। इनमें मिट्टी से रिसकर काफी मात्रा में जल एकत्रित हो जाता है अस्तु, कांप की यह तहें जल का अगाध भंडार बन जाती हैं। इन्हें खोदने पर काफी पानी प्राप्त हो जाता है। इस पानी को सरलता से ऊपर उठाकर धरातल पर पहुँचाया जा सकता है। भारत की भौगर्भिक बनावट इतनी सरल है कि जहाँ भी पानी का दबाव इतना है कि पानी स्वतः ही धरातल तक आ सके वहाँ पाताल तोड़ कुऐं आसानी से बन सकते हैं। जिन स्थानों पर कांप मिट्टी की तहें काफी मोटी पाई जाती हैं वहाँ गहरे छेद करके साधारण कुओं की अपेक्षा अधिक पानी प्राप्त किया जा सकता है।



चित्र ३७—राजस्थान में चरस द्वारा सिंचाई

(२) अधिकतर कुएँ वहीं बनाये जाते हैं जहाँ पानी भूमि के निकट ही पाया जाता हो। इस दृष्टि से गंगा-सतलज का मैदान कुओं द्वारा सिंचाई के लिए बड़ा

उपयुक्त है क्योंकि जहाँ भूमिगत-जल (Underground Water) प्राय: सभी स्थानों पर भूमि सतह से थोड़ी ही गहराई पर मिल जाता है। इस संबंध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ कुओं में जल थोड़ी ही गहराई पर मिल जाता है किंतु जहाँ वर्षा पर्याप्त नहीं होती वहाँ भूमिगत जल भी अधिक गहराई पर मिलता है। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में जल-तल १०–१२ फीट की गहराई पर ही मिल जाता है किंतु पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ५०-६० फीट और राजस्थान में २००-३०० फीट की गहराई पर जल-तल मिलता है। अत: सिंचाई करने में इन स्थानों में परिश्रम और व्यय दोनों ही अधिक होते हैं।

कुओं से सिंचाई करने के दृष्टिकोण से सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग पंजाब से लेकर बिहार तक का गंगा-सतलज का मैदान है। पंजाब और उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भागों में कुओं से सिंचाई, नहरों द्वारा सिंचाई के सहायक रूप में होती है क्योंकि यहाँ अधिकांश भागों में नहरों का पानी मिल जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ भागों में कुएँ सिंचाई के मुख्य साधन हैं। इन भागों में कुओं में पानी भूमि के धरातल के निकट ही मिल जाता है अत: फसलों के लिए पानी की उतनी आवश्यकता नहीं रहती जितनी पश्चिमी भागों में। इन भागों में बहुत से कच्चे कुएँ आवश्यकतानुसार थोड़े ही खर्च में बना लिए जाते हैं। जिस वर्ष वर्षा कम होती है ऐसे कुओं की संख्या भी बढ़ जाती है। ऐसे कुएँ एक या दो मौसम से अधिक काम नहीं देते। बिहार के पूर्व में वर्षा की अधिकता के कारण बंगाल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पूर्वी पंजाब में पूर्वी भागों की अपेक्षा पानी अधिक गहराई पर मिलता है अत: यहाँ सामान्यत: पक्के कुए ही बनाये जाते हैं। इन कुओं की काठी काफी नीचे तक पानी में बैठाई जाती है और तब नीचे की चिकनी मिट्टी में —जिस पर कुएँ का ढांचा खड़ा होता है—छिद्र करके स्रोतों से पानी निकाला

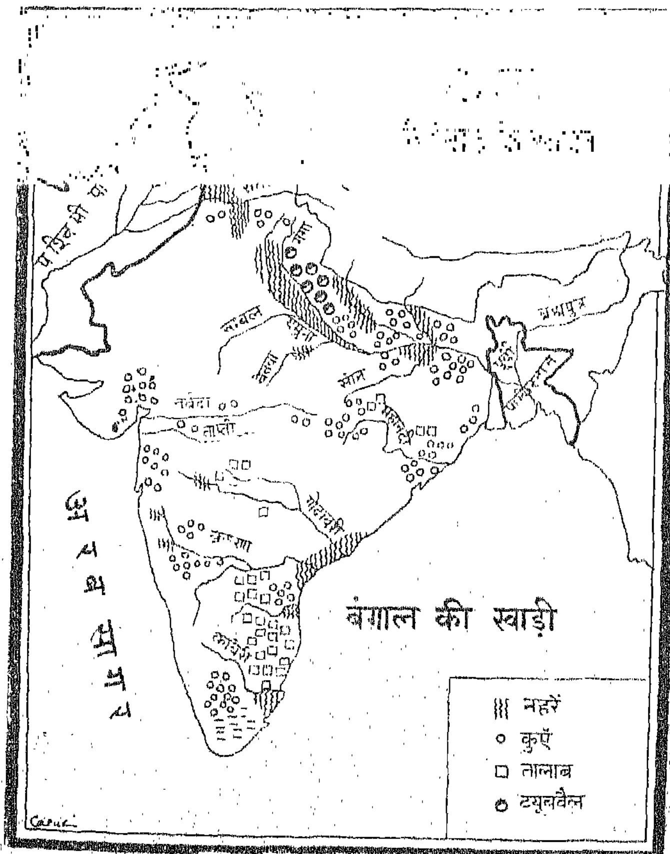


चित्र २८—रेंहट द्वारा सिंचाई

जाता है। इस प्रकार के कुओं में पानी की पूर्ति काफी अधिक होती है और इनके निर्माण में व्यय भी अधिक होता है। पूर्वी भागों में कुओं से पानी ऊपर लाने के

लिए प्राय: हल्के पानी उठाने के साधन काम में लिये जाते हैं—जैसे हाथ से पानी निकालना, ढेंकली द्वारा आदि—किंतु पश्चिमी भागों में चरस और रेंहट द्वारा पानी निकाला जाता है। साधारणत: ढेंकली द्वारा प्रति दिन में ½ एकड़ ; चरस द्वारा १ एकड़ और रेंहट द्वारा ८ से १० एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकती है।

कुओं से सिंचाई प्राप्त करने वाले अन्य मुख्य क्षेत्र मद्रास का दक्षिणी भाग और नालगिरी और इलायची की पहाड़ियों का पूर्वी भाग है, जो गन्तूर से कोयम्बट्टूर होता हुआ तिरूनलवैली तक त्रिभुजाकार रूप में फैला है। यह प्रदेश पूर्वी समुद्र तट के मैदान का है जहाँ ग्रीष्म में इतनी पर्याप्त वर्षा नहीं होती कि फसलें उगाई जा सकें। यहाँ कोयम्बट्टूर, रामनद और मदुराई जिलों में कुओं द्वारा अधिक सिंचाई होती है।



चित्र ३६—सिंचाई के साधन

बम्बई के दक्षिणी पठार से लगाकर पश्चिमी घाट के पूर्वी भागों में काली मिट्टी के क्षेत्र में भी कुओं द्वारा सिंचाई होती है।

पंजाब के हिमालय के निकटवर्ती जिलों में भी कुओं द्वारा सिंचाई होती है।

किंतु हिमालय के बहुत ही निकटवर्ती क्षेत्र आसाम, अराकान की पहाड़ियाँ और पश्चिमी घाट के पश्चिमी क्षेत्र कुओं द्वारा सिंचाई के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।

कुओं की सिंचाई में कई दोष पाये जाते हैं, यथा—

(१) यदि लगातार अधिक समय तक कुओं से पानी निकाला जाय तो विशेषकर छिछले कुएं शीघ्र ही सूख जाते हैं तथा जिस वर्ष वर्षा कम होती है उस वर्ष भी पानी की कमी पड़ जाती है अतः सिंचित क्षेत्रफल में भी कमी हो जाती है।

(२) कुओं द्वारा सिंचाई करने में नहरों की अपेक्षा व्यय और परिश्रम दोनों ही अधिक होते हैं अतः ऐसी ही फसलें अधिक बोई जाती हैं जिनसे कृषक को धन मिल सकता है—यथा गन्ना, कपास या गेहूँ।

(३) कुओं से केवल सीमित क्षेत्रों में ही सिंचाई हो सकती है। उदाहरणार्थ कच्चा कुआँ अधिक से अधिक प्रति दिन ३ एकड़ और पक्का कुआँ १५-२० एकड़ भूमि सींच सकता है।

(४) अधिकांश कुओं का जल खारी होता है जो सिंचाई के लिए अनुपयुक्त होता है। यह फसलों को भी नष्ट कर देता है।

किन्तु कुओं का सबसे बड़ा लाभ यही है कि इनके बनाने में व्यय कम लगता है तथा इन्हें खोदने में किसी यन्त्र विशेष की आवश्यकता नहीं पड़ती नही विशिष्ठ ज्ञान अपेक्षित होता है। अस्तु, भारतीय किसान के लिए यही सबसे सस्ता और सरल साधन है।

नलकूप (Tube-wells)

भारत में नल-कूपों से सिंचाई होने के साधन के जन्मदाता श्री विलियम स्टैम्प माने जाते हैं। इनके कथनानुसार गंगा-सिन्धु के मैदान के नीचे प्राचीन काल की विलुप्त सरस्वती नदी का जल प्रवाहित हो रहा है तथा हिमालय के हिम क्षेत्रों का प्रयोग इस मैदान के शुष्क भागों की सिंचाई में किया जा सकता है। इनका विश्वास है कि हिमालय के प्रपातों से जल-विद्युत-शक्ति बना कर यदि उससे कुओं में पम्प लगाये जायें तो भूमि के नीचे के पानी को ऊपर लाया जा सकता है और इससे ऐसी सिंचाई व्यवस्था विकसित की जा सकती है जिससे बहुत सा शुष्क प्रदेश उपजाऊ बनाया जा सकता है।

इन्हीं की राय के अनुसार भारत में बिहार और उत्तर प्रदेश में सर्वप्रथम १९३० में नलकूप निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया। साधारणतः नल कूपों की सफलता निम्न दशाओं पर निर्भर करती है :—

(i) भूमि तल के नीचे पानी की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए जिससे वह धरातल की जल की मांग को स्थायी रूप से पूरा कर सके।

(ii) जल-तल का धरातल भूमि से ५०० फीट की गहराई से अधिक न हो तथा उसका तल साधारणतः तल से नीचा हो।

(iii) सिंचाई की मांग औसत रूप से वर्ष भर में ३,२०० घन्टे हो।

(iv) सस्ती विद्युत-शक्ति की उस क्षेत्र में सुविधा हो। यह साधारणतः दो पैसे प्रति इकाई से अधिक न हो।

नलकूपों द्वारा सिंचित क्षेत्रफल अधिकतर उत्तर प्रदेश में ही पाया जाता है इसके निम्नांकित कारण हैं :—

(क) यहाँ नदियों के मैदान के अधिकांश भागों में १०० फीट के परिमाण के अच्छे जल धारण करने वाले स्तर पाये जाते हैं जिनमें भूमि की ऊपरी सतह से ३०० फीट नीचे तक भली भांति खुदाई हो सकती है। बोरिंग द्वारा नीचे वाले स्तरों में छिद्र किये जाते हैं ताकि निकट वाले साधारण कुओं में जल की कमी न हो जाय। अगर इस १०० फीट के मोटाई के जल-धारण करने वाले स्तर में ६'' व्यास वाले बोरिंग का नल १८ फीट नीचा बैठा दिया जाय तो एक कुएें से लगभग ३४,००० गैलन प्रति घन्टा के हिसाब से जल लिया जा सकता है। इतने जल से सामान्यत: २४ घन्टे में लगभग ४ इन्च गहराई की ५ एकड़ भूमि सींची जा सकती है। साधारणत: एक नल-कूप के अन्तर्गत १,००० एकड़ भूमि होती है जिसमें से प्रति वर्ष ४०० एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। कुओं से खेतों तक जल ले जाने के लिए प्रति कुए के निकट १ मील ईंटों की बनी और २ मील कच्ची नालियाँ (Guls) होती हैं।

(ख) यहाँ के अधिकांश कुओं में पानी का स्रोत पृथ्वी की ऊपरी सतह से ३० फीट से भी कम गहराई पर मिलता है। इन कुओं में केंद्रोपसारी पम्प लगाये जाते हैं जो बिजली की एक इकाई शक्ति से २,५०० से ४,५०० गैलन तक पानी खींच लेते हैं। जिन भागों में जल-स्रोत ३० से ४० फीट की गहराई पर मिलता है वहाँ नल कूपों में छिद्र (Boreholes) का प्रयोग किया गया है जिनसे प्रति घन्टा २ हजार से ३ हजार गैलन तक पानी फेंका जाता है।

(ग) यहाँ वर्ष भर ही सिंचाई की मांग रहती है। खरीफ के मौसम में गन्ना, चरी और कपास तथा रबी की मौसम में गेहूँ, चना और चरी आदि की फसल की सिंचाई की जाती है।

उत्तर प्रदेश में नल कूपों की सिंचाई के क्षेत्र मुख्यत: दो भागों में विभाजित हैं:—(१) गंगा नदी के पश्चिम की ओर के भाग जिनमें मेरठ, मैनपुरी, एटा, इटावा, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और अलीगढ़ के वे जिले हैं जिनमें वर्षा की मात्रा कम होती है तथा जहाँ पानी का स्रोत भूमि के ऊपरी धरातल से २०-३० फीट की गहराई पर मिल जाता है। इस क्षेत्र में लगभग ५०० नल कूप हैं।

(२) गंगा नदी के पूर्व की ओर के भाग—जिसमें बिजनौर, मुरादाबाद, आजमगढ़, गोरखपुर, बलिया, बनारस, गाजीपुर, सुल्तानपुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच और बदायूं के जिले सम्मिलित हैं—में जल स्रोत भूमि से १५-२० फीट नीचे की गहराई पर मिलता है। गंगा की नहरों से उत्पादित सस्ती बिजली इन कुओं को चलाने के लिए उपलब्ध है। प्रत्येक कुऐं से सम्भवत: १½ वर्ग मील भूमि की सिंचाई की जाती है। इस क्षेत्र में लगभग २,००० कुऐं हैं।

१९५१ तक भारत में २,५०० नलकूप थे इनमें से २,३०० उत्तर प्रदेश में थे। इनसे लगभग १० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती थी। प्रथम योजना काल में विभिन्न राज्यों में ५,८३० नलकूप बनाने की योजना थी जिनमें से २,६५० भारत अमरीका—टैकनीकल सहयोग कार्य-क्रम के अन्तर्गत, ७०० नलकूप अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के अन्तर्गत और २४८० नलकूप राज्यों की विकास योजनाओं के अन्तर्गत सम्मिलित थे। इनमें से ३,२०५ नलकूप बन कर तैयार हो चुके हैं।

नल--कूपों के निर्माण का कार्य क्रम

वर्ष (अप्रेल/मार्च)	टैकनीकल मिशन के अंतर्गत २६५० कूपों की योजना	अधिक अन्न उपजाओ आंदोलन के अंतर्गत	कुल नलकूप समाप्त किये गए--पम्पों सहित
१९५३-५४	१९९	—	१९९
१९५४-५५	१,१९७	४	१,२०१
१९५५-५६	८९२	१३२	१,०२४
१९५६-५७	३३०	३६४	६९४
१९५७-५८	२७	५८	८५
योग	२,६४५	५५८	३,२०३

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत २० करोड़ रुपये की लागत से ३,५८१ नलकूप और बनाये जा रहे हैं जिनका क्षेत्रीय वितरण तथा सिंचित क्षेत्रफल इस प्रकार होगा। इन कूपों के अतिरिक्त पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा भारत के अन्य राज्यों में ३५० गहरे नल कूप (Exploratory Tube-Wells) भी बनाये जायेंगे।

राज्य	नलकूप	संभावित सिंचित क्षेत्रफल (००० एकड़)	गहरे नलकूप
आंध्र	—	—	२५
आसाम	५०	१५	१५
बिहार	१५०	१५	१
बम्बई	४००	८०	३५
मध्य प्रदेश	९८	३९	३०
मद्रास	३००	६	५०
उड़ीसा	२५	७	२०
उत्तर प्रदेश	१,५००	४८५	४७
बंगाल	१५०	३२	३७
पंजाब	७५८	२१०	५१
राजस्थान	५०	१६	५
दिल्ली	५०	८	—
अन्य	५०	३	१४
योग	३,५८१	९१६	३५०

इनसे ९१६ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी।

उत्तर प्रदेश में १,५०० नलकूपों में से. ५८७ नलकूप ३० नवम्बर १९५८ तक खोदे गए, इसमें से ४१९ पूरे हो चुके हैं और ३२० काम भी करने लगे हैं। बम्बई में ३१ और आसाम में ९ कुएं खोदे गये।

अनुसन्धानात्मक नलकूप योजना के अंतर्गत ६ कुएँ बिहार, १ केरल, ४ कच्छ, २७ मद्रास, ११ आंध्र और ११ पंजाब में खोदे गए, इनसे पर्याप्त जल सिंचाई के लिए

मिल रहा है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में १३, पश्चिमी बंगाल में १६ और उड़ीसा में अनुसन्धानात्मक कुओं को नलकूपों में परिवर्तित किया गया है।

तालाब (Tanks)

तालाबों द्वारा भारत के कुल सिंचित क्षेत्रफल का लगभग १५% भाग सींचा जाता है।

तालाब दक्षिण की विशेष परिस्थिति के द्योतक हैं। इसके कई कारण हैं :— (१) दक्षिण की नदियाँ बर्फीली नहीं हैं इसलिए वे सिर्फ वर्षा के पानी पर ही निर्भर हो कर बहती हैं। दक्षिण में ऐसे बहुत से झरने प्रख्यात हैं जो वर्षा के अत्यधिक वेग से प्रभावित हो कर बहते हैं परन्तु वर्षा के बाद सूख जाते हैं। इस प्रकार नदियों व जल प्रपातों की अस्थायी दशा तथा दक्षिण का पहाड़ी धरातल, दोनों स्थितियाँ इस बात के लिए एक बड़ी भारी बाधा उपस्थित करती हैं कि वहाँ नहरों का निर्माण कैसे हो। (२) इसके अलावा वहाँ की दृढ़ चट्टानें भी पानी को सोख नहीं सकतीं इसलिए कुओं का निर्माण होना असम्भव है परन्तु बड़े-बड़े जलाशयों और जल-भण्डारों का जल आसानी से बांध बना कर तालाबों का निर्माण करके खेतों को निरन्तर पानी पहुँचाया जा सकता है। (३) इसके साथ ही वहाँ की जन-संख्या बिखरी हुई है इसलिए वह स्वयं बांध की योजना के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करती है अतः यही एक सुव्यवस्थित और सुविधाजनक उपाय है जिसकी वजह से वर्षा का पानी संग्रह किया जाकर सिंचाई के प्रयोग में लाया जा सकता है अन्यथा वह यों ही बह कर बेकार चला जावेगा। बांध निर्माण योजना विशेषतः मद्रास में अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुकी है।

मद्रास में लगभग २४,००० तालाब हैं—ये तालाब चिंगलपुट, दक्षिणी और उत्तरी अर्काट, सलेम, कोयम्बतूर, तिरूचिरापल्ली, तंजौर, मदुराई, रामनाथपुरम और तिरूनेलवेली जिलों में हैं इनके द्वारा १½ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

बांध (Dams)

बांधों का आकार तालाबों से बड़ा होता है तथा इनके निर्माण में व्यय भी अधिक होता है किन्तु इनमें जल रोक कर वर्ष भर ही नहरों द्वारा निकटवर्ती क्षेत्रों को जल दिया जा सकता है। ऐसे बांध उत्तर प्रदेश, मद्रास और मैसूर में अधिक पाये जाते हैं।

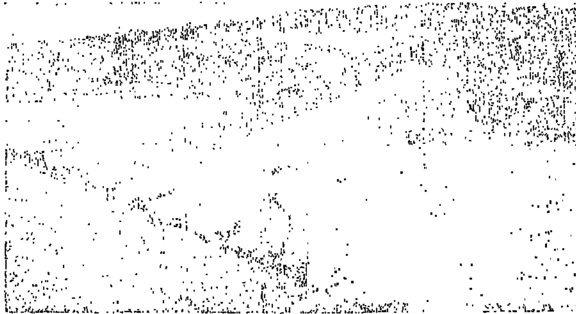
उत्तर प्रदेश के बांध

(१) **चन्द्र प्रभा बांध**—यह बांध वाराणसी जिले में चन्द्रप्रभा नदी पर चकिया नामक स्थान से १२ मील दूर दक्षिण में बनाया गया है। यह ६५ फीट ऊँचा और ५०० फीट लम्बा है। इसमें ७० हजार क्यूसेक जल समा सकता है। इसके निर्माण में ८८ लाख रुपये खर्च हुए हैं। इससे नहरें निकाल कर चन्दौली और चकिया तहसीलों की लगभग ६० हजार एकड़ भूमि सींची जाती है।

(२) **ललितपुर बांध**—यह बांध झांसी जिले में बेतवा की सहायक शहजाद नदी पर बनाया गया है। इससे नहरें निकाल कर ४० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

(३) **सपरार बांध**—यह झांसी जिले में मऊरानीपुर से ४½ मील दक्षिण में

करौंछा नामक गांव में बनाया गया है। इससे नहरें निकाल कर लखरी-धसान दोआब की ४० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।



चित्र ४०—चन्द्रप्रभा बांध

(४) **नगवा-शाहगंज बांध**—झांसी जिले में नगवा स्थान पर कर्मनासा नदी पर मिर्जापुर से ८० मील दक्षिण-पूर्व की ओर बनाया गया है। इससे लगभग ९०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

(५) **माताटीला बांध**—यह बांध झांसी जिले में बेतवा नदी पर बनाया जा रहा है। यह २,३४० फीट लम्बा और १२० फीट ऊँचा होगा। इसके निर्माण की पहली सीढ़ी समाप्त हो गयी है। माताटीला जलाशय से गुरसराय तथा मंदर नहर निकाल कर झांसी, जालौन एवं हमीदपुर और मध्य प्रदेश की लगभग ४ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी।

(६) **सिरसी बांध**—सम्पूर्णतः मिट्टी का बना है। यह २½ मील लम्बा और ७२ फीट ऊँचा है। यह बांध सिरसी प्रपात के निकट बनाया गया है। इसके द्वारा १६ वर्गमील क्षेत्र की झील बन गयी है इसमें ७½ करोड़ घन फुट जल एकत्रित होता है और लगभग १ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है।

इनके अतिरिक्त अर्जुन बांध, अहरौरा बांध, नौगढ़ बांध आदि भी बन कर तैयार हो चुके हैं।

सिंचाई का भविष्य

भारत में वर्ष भर में लगभग २७,५०० लाख एकड़ फीट पानी वर्षा के रूप में प्राप्त होता है इसमें से ५१% (लगभग १४,००० लाख एकड़ फीट) जल भाप बन कर वायु में उड़ जाता है इसका केवल १½—२ प्रतिशत भूमि में सोख कर पुनः कुओं द्वारा प्राप्त होता है। किन्तु ४९% (अर्थात् लगभग १३,५०० लाख एकड़ फीट) जल धरातल पर बह कर व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। इस जल की मात्रा को यदि खेती योग्य भूमि पर फैला दिया जाय तो इसकी गहराई ३½ फीट होगी। इस वृहत् मात्रा का केवल ५·६% भाग अथवा ७६० लाख एकड़ फीट पानी ही सिंचाई व जलविद्युत् के उत्पादन में काम आता है शेष ९४·४% यों ही बह कर नष्ट हो जाता है और [illegible]-प्रदेश में अवर्णनीय हानि करता है।

भारत की नदियों और भूमि में बहुत जल की मात्रा निहित है। भारतीय नदियों में प्रति वर्ष २३ लाख घन फीट प्रति सैकिंड की दर से पानी बहता है। यह पानी कि मात्रा इतनी अधिक है कि इसके द्वारा एक ऐसा गोल जलाशय पूरी तरह भरा जा सकता है जिसका व्यास ४० फीट हो और जो १,४०० फीट ऊँचा हो (अर्थात् कुतुब मीनार की ६ गुना ऊँचाई का)।[1] किन्तु इस अपरिमित मात्रा के विपरीत नहरों द्वारा खेती और अन्य उद्देश्यों के लिये प्रतिवर्ष १ लाख ३३ हजार घन फीट प्रति सैकंड की दर से पानी का उपयोग किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि २१ लाख ६७ हजार घन फीट पानी प्रति सैकंड प्रति वर्ष व्यर्थ ही बहकर चला जाता है क्योंकि साधनों के अभाव में इसका पूरा उपयोग नहीं होता। अस्तु, यदि इस जल राशि का पूरी तरह उपयोग किया जाय तो मोटे तौर पर सिंचित क्षेत्रफल को १५-२० वर्ष में दुगुना किया जा सकता है और सैकड़ों मील लम्बे जल मार्गों को नव्य बनाया जा सकता है तथा इस जल राशि से ३००-४०० लाख किलोवॉट बिजली भी पैदा की जा सकती है।

१९५०-५१ में सिंचाई के सारे साधनों से कुल मिला कर ५१० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होती थी। प्रथम योजना में सिंचाई की जो बड़ी और मध्यम श्रेणी की योजनायें आरम्भ की गई उनसे १९५६ तक ५६३ लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में सिंचाई होने लगी। इसी अवधि में छोटी सिंचाई योजनाओं द्वारा १०० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की गई।

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में २०० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की जायगी। इसमें से १२० लाख एकड़ भूमि बड़ी और मध्यम श्रेणी की योजनाओं द्वारा और ९० लाख एकड़ छोटी-छोटी योजनाओं द्वारा सींची जायेगी। इस १२० लाख एकड़ भूमि में से ९० लाख एकड़ पर प्रथम योजना काल में आरम्भ की गई व्यवस्थाओं से सिचाई होगी और ३० लाख एकड़ भूमि पर दूसरी योजना काल में आरम्भ की गई सिंचाई व्यवस्था से। इन योजनाओं के पूर्ण होने पर १५० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी। अर्थात् १९६०-६१ तक सब मिला कर ८८८ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होने लगेगी। द्वितीय योजना में सम्मिलित नई सिंचाई योजनाओं पर कुल मिला कर ३८० करोड़ रुपये खर्च होंगे तथा सिंचित क्षेत्रफल २२.६% से बढ़ कर ३०% तक हो जायेगा।

द्वितीय योजना से निम्न प्रकार से सिंचित क्षेत्रफल में वृद्धि होगी :—

महाराष्ट्र : उकाई योजना	६१४,००० एकड़	**आंध्र** : बमसधारा	३०६,००० एकड़
खडकवासला योजना	२०४,००० एकड़	**बंगाल**: कांग्सबत्ती	९५०,००० एकड़
नर्मदा योजना	१,१५७,००० एकड़		
भादर योजना	९०,००० एकड़		
मध्य प्रदेश : तवा योजना	५९०,००० एकड़	**राजस्थान** बनास	२५०,००० एकड़
पूर्णा योजना	१५६,००० एकड़	**केरल** : बूथाथांकेतू	६३,००० एकड़

नीचे की तालिका में ३१ मार्च, १९५८ को समाप्त होने वाली अवधि में सिंचाई के अन्तर्गत जो प्रगति हुई, बताई गई है :—

१. C. B. Mamoria, Agricultural Problems of India, p. 164.

राज्य	सिंचाई योजनायें जो पूरी नहीं हुई	सिंचाई योजनायें जो पूरी हो चुकी	सिंचित क्षेत्रफल (लाख एकड़)
आंध्र	१२	१६	१.६३
बिहार	१६	८	२.४१
गुजरात+महाराष्ट्र	५२	२३	१.०७
जम्मू-काश्मीर	३	३	०.११
केरल	१३	३	१.२१
मध्य प्रदेश	२५	१	०.१८
मद्रास	७	६	२.७६
मैसूर	१६	१५	१.२८
राजस्थान	२३	७	१.६७
उड़ीसा	—	३	१.३६
पंजाब	५	८	१८.५५
उत्तर प्रदेश	१६	१८	११.४६
प० बंगाल	५	४	४.०५

विभिन्न राज्यों में सिंचाई की कितनी कारगर क्षमता उपलब्ध है यह निम्न तालिका में बताया गया है :—

राज्य	अंततः जितनी भूमि की सिंचाई होगी	मार्च ५७ तक उपलब्ध सिंचाई की क्षमता	मार्च ५७ तक सिंचाई की सुविधाओं का उपयोग
	(लाख एकड़ों में)		
आंध्र	२.६४	१.६३	०.७३
बिहार	३.६७	३.६१	२.६५
गुजरात+महाराष्ट्र	८.२७	१.५२	०.६६
जम्मू-काश्मीर	०.३६	०.३६	०.११
केरल	१.३५	०.६०	०.६०
मध्य प्रदेश	०.१०	०.१०	०.१०
मद्रास	३.०३	२.५५	२.०८
मैसूर	१०.६८	२.२२	१.०४
उड़ीसा	६६.७२	०.८६	०.८६
पंजाब	३८.५३	१८.८५	१८.०३
राजस्थान	६.६२	१.६७	१.६७
उत्तर प्रदेश	१८.७८	१६.६२	६.६६
प० बंगाल	२०.७६	४.८७	२.६४
योग	१२२.४४	५६.७०	३६.०६

सिंचाई के भावी विकास में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सिंचाई की बड़ी-बड़ी योजनाओं में ही नहीं वरन् भावी उन्नति के लिए भी निम्न दिशाओं में प्रगति होनी चाहिए :—

(१) भूमि की सतह के नीचे के जल का सदुपयोग अधिक से अधिक किया जाय। अमरीकन विशेषज्ञों के अनुसार पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी राजस्थान में नलकूपों के विकास की बड़ी सम्भावनायें हैं।

(२) नहरों के जल के उपयोग में मितव्ययता होनी चाहिए क्योंकि अधिक जल देने से न केवल जल ही व्यर्थ जाता है वरन् भूमि और फसलों को भी भारी हानि पहुँचती है।

(३) सिंचाई की दरें उचित रखी जायें और किसानों को जल उचित समय पर मिल सके।

(४) मिट्टी में क्षारों की वृद्धि रोकने के लिए खादों और अन्य साधनों का प्रयोग किया जाय।

(५) नालियों की उचित व्यवस्था हो और यथा सम्भव प्राकृतिक बहाव में सुधार किया जाय।

अध्याय ७

बहुमुखी योजनायें
(Multi-Purpose Projects)

भारत की नदियों में अथाह जल राशि बहती है, जिसका लगभग ४/५ वाँ भाग बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों से प्राप्त होता है किन्तु राजस्थान के शुष्क मरुस्थल में जल-राशि का अभाव है। निम्न तालिका इसी तथ्य को प्रकट करती है[1] :—

क्षेत्र	प्रवाह क्षेत्र (वर्ग मीलों में)	साधारण औसत वर्षा (इंचों में)	औसत मध्यम तापक्रम (फा० में)	वार्षिक हानि (इंचों में)	वार्षिक बहाव	वार्षिक बहाव (दस लाख एकड़ फीट में)
१. अरब सागर में गिरने वाली सभी नदियाँ	१८६,७६०	४७·६५	७७·६°	२३·११	२४·८४	२५१,४६
२. भारत में सिन्धु नदी का प्रवाह क्षेत्र	१३६,६७३	२१·६६	५४·७°	७३·०१	८·८४	६४,४३
३. बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली सभी नदियाँ (गंगा और ब्रह्मपुत्र को छोड़कर)	४६७,३०६	४२·७७	७६·०°	२६·३७	१३·४०	३३४,०३
४. गंगा नदी प्रणाली	३७६,८१८	४३.७६	६२·२°	२४·००	१६·७६	३६७,०६
५. ब्रह्मपुत्र नदी प्रणाली	१६५,४६०	४८·११	४६·८°	१८·४७	२६·६४	३०८,६५
६. राजस्थान का शुष्क मरुस्थल	६४,८८७	११·४८	७६·१°	११·४८	—	—
योग	१,४३०,६३७	४१·४८	—	२३·२६	१७.७७	१,३५५,६६

प्रतिवर्ष भारत की नदियों में १३,५६० लाख एकड़ फीट पानी बहता है किन्तु इसमें से अभी तक ७६६·५ लाख एकड़ फीट जल का ही उपयोगी किया गया है अर्थात् वृहत् जलराशि के केवल ५·६% भाग का। यह बात निम्न तालिका से और भी स्पष्ट हो जायगी :—

१. A. N. Khosla, Affraisal of India's water Resources,

भारत के जल भंडार व उसका उपयोग

(लाख एकड़ फीट में)

समस्त उपस्थित जल राशि	१,३३५९.६
जल का वर्तमान उपभोग	७६६.५
(i) सिंचाई	७३९.२
(ii) जल-शक्ति	१६.७
(iii) अन्य उपयोग	००.६
आयोजित उपयोग :	२८१५.३
(i) सिंचाई	१४३२.५
(ii) जल-शक्ति	१५०५..
(iii) अन्य उपयोग	४२७
शेष अनुपयुक्त जल राशि	९९८७.८

योजना आयोग के अनुसार भारत की मुख्य-मुख्य नदियों के जल का बहाव, उसका उपभोग और आयोजित उपयोग इस प्रकार हैं :—

(१० लाख एकड़ फीट में)

नदियों के बहाव-क्षेत्र	अनुमानित औसत प्रवाह	१९५१ तक उपयोग	प्रथम योजना के अंतर्गत अतिरिक्त उपयोग	द्वितीय योजना के अंतर्गत अतिरिक्त उपयोग
सिन्धु	१६८	८.०	११.००	१.२
गंगा	४००	२०.०	२१.५	१४.५
ब्रह्मपुत्र	३००	---	---	---
गोदावरी	८४	१२.०	१.०	१.५
महानदी	८४	०.६	१०.५	०.२
कृष्णा	५०	९.०	१५.६	१०.१
नर्मदा	३२	०.२	---	१०.१
ताप्ती	१७	०.२	०.७	३.५
कावेरी	१२	८.०	१.३	०.६

भारत की इस विशाल जलराशि का उपयोग करने हेतु केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने कुछ योजनायें बनाई हैं जिनके उद्देश्य बहुमुखी हैं। इन योजनाओं से न केवल देश के सिंचाई के साधनों में ही उन्नति होगी वरन् इनसे जल-विद्युत शक्ति भी उत्पन्न होगी। इसके अतिरिक्त इन योजनाओं से बाढ़ नियंत्रण, जल मार्गों की सुविधा, आमोद-प्रमोद के साधनों की उपलब्धि, मछली पकड़ने और वृक्षारोपण आदि करने की सुविधायें भी प्राप्त होंगी। उद्देश्यों की बहुलता के कारण ही इन योजनाओं को बहुमुखी योजनाएँ (Multi-Purpose Projects) कहा जाता है।

टेनेसी घाटी योजना (T. V. A) के ढंग पर संसार के अन्य देशों-फ्रांस, जर्मनी, रूस, अमरीका—में बनी नदी घाटी योजनाओं की सफलता से उत्साहित होकर भारत में जल राशि का उपयोग करने के लिए ही इन योजनाओं को अपनाया गया है। इन योजनाओं के उद्देश्य निम्नांकित हैं :—

(१) सिंचाई और भूमि का वैज्ञानिक उपयोग एवं प्रबन्ध;
(२) विद्युत् शक्ति में वृद्धि और औद्योगीकरण;
(३) बाढ़ नियंत्रण और बीमारियों की रोक-थाम में सहायता;
(४) जल मार्गों का विकास तथा क्षेत्रीय आर्थिक प्रगति;
(५) घरेलू कार्यों के लिये जल की व्यवस्था;
(६) मछली उद्योग का विकास तथा कृत्रिम झीलों में आमोद-प्रमोद के साधन उपस्थित करना।
(७) जंगलों की रक्षा, वृक्षारोपण एवं इंधन का प्रबन्ध;
(८) पशु सम्पति के लिये चारे की व्यवस्था;
(९) दुर्भिक्ष आदि से मुक्ति दिलाना;
(१०) भूमि का कटाव रोककर उसे कृषि योग्य बनाना;

इन विभिन्न योजनाओं के पूरा हो जाने पर भारत की निहित जल-राशि के १० प्रतिशत भाग का जल विद्युत के रूप में उपयोग किया जा सकेगा और लगभग २८० लाख एकड़ भूमि पर अतिरिक्त सिंचाई की जा सकेगी।

भारत की विभिन्न योजनाओं से लाभ

अवधि	अतिरिक्त सिंचाई (एकड़)	अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन (टन)	अतिरिक्त शक्ति (उत्पादन किलोवॉट)
१९५३-५४	२०,००,०००	७,००,०००	५५४,०००
१९५४-५५	४३,००,०००	१४,००,०००	५९५,०००
१९५५-५६	५५,००,०००	१८,००,०००	६३६,०००
१९५६-५७	६७,००,०००	२२,००,०००	७०८,०००
१९५७-५८	७५,००,०००	२५,००,०००	७९१,०००
१९५८-५९	८५,००,०००	२८,००,०००	८१७,०००
१९५९-६०	९०,०७,०००	३१,००,०००	९१०,०००
१९६०-६१	१,२९,००,०००	४३,००,०००	१,९९६,०००

प्रस्तावित योजनाएँ नियन्त्रण के दृष्टिकोण से निम्न भागों में विभाजित की जा सकती है :—

(१) पूर्वी पंजाब की नदियों सम्बन्धी योजनाएँ जो भारत विभाजन के पूर्व सिन्ध घाटी के अन्तर्गत आती थीं।
(२) मध्य गंगा का बहाव प्रदेश जो इसके उद्गम और उत्तर प्रदेश की सीमा के बीच में आता है।
(३) पूर्वी गंगा का बहाव प्रदेश जिसमें प्रधानतः इसकी उत्तरी सहायक नदियाँ बहती हैं।
(४) उत्तरी आसाम की ब्रह्मपुत्र बहाव प्रदेश की योजना।
(५) हुगली के बहाव प्रदेश की योजना जो पूर्वी बिहार और लगभग समस्त पश्चिमी बंगाल को अपना कार्य क्षेत्र बनाती है।
(६) उड़ीसा की नदियों के बहाव प्रदेश की योजनाएँ जिसकी सीमा उत्तर में स्वर्ण रेखा और दक्षिण में महानदी के उद्गम से बनती है।

एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। इसके फलस्वरूप अब यहाँ के किसानों को भवानी नदी के मार्ग बदलने और अनिश्चित मानसूनों से कोई भय नहीं रहा है। सिंचाई के द्वारा कपास, ज्वार, बाजरा और चावल की उपज में वृद्धि हुई है। इस योजना से १०,००० किलोवॉट शक्ति भी प्राप्त की जाती है। यह मुख्यतः सिंचाई योजना है।

(११) मनीमुथार योजना (Manimuthar Project)

इस योजना के अन्तर्गत मद्रास के तिरूनलवैली जिले में मनीमुथार नदी पर एक बांध बनाया जा रहा है जो ११,१४५ फीट लम्बा होगा। इसमें से अधिकांश मिट्टी का बनेगा। इसके दाईं ओर से एक नहर निकाल कर तिरूनलवैली जिले में सिंचाई की जायेगी।

(१२) कुन्दा योजना (Kundah Project)

नीलगिरी जिले में कुंदानदी के बेसिन में कुंदानदी के जल का उपयोग करने हेतु चार बांध बनाये जायेंगे जिनसे अन्ततः २४०,००० किलोवॉट शक्ति उत्पादित की जायेगी किन्तु अभी यह योजना दो चरणों में ही कार्यान्वित की जारही है। प्रथम चरण में अवलांश और एमरैल्ड नालों के आर-पार सम्मिलित रूप से एक बांध बनाकर ५५,००० लाख घन फीट पानी रोका जायेगा। कुंदानदी के किनारे दो शक्ति गृह भी बनाये जायेंगे जिनमें से एक इसके दाहिने ओर और दूसरी बाईं ओर होगा। पहले स्थान पर २०,००० किलोवॉट शक्ति के दो उत्पादक यंत्र और दूसरे स्थान पर ३५,००० शक्ति वाले तीन उत्पादक यंत्र लगाये जायेंगे।

द्वितीय चरण में ऊपरी भवानी नदी पर एक विशाल जलाशय बना कर ऊपर वर्णित दूसरे स्थान पर एक ३५,००० शक्ति वाला उत्पादक यंत्र और लगाया जायेगा।

यह योजना मुख्यतः शक्ति योजना है।

(१३) भद्रा योजना (Bhadra Project)

तुंगभद्रा की सहायक नदी भद्रा पर बनने वाला मैसूर का सबसे ऊँचा बांध बड़ी तेजी से उठता जा रहा है। भद्रा बहुद्देशीय योजना पर १९४७-४८ में काम शुरू हुआ था। इस योजना के अन्तर्गत एक पत्थर का बांध, दो मुख्य नहरें और दो बिजली घर बनाये जायेंगे। अब तक भद्रा बांध नदी की तलैटी से १०२ फीट की ऊँचाई तक बन चुका है और करीब इतना ही और बनना है। बायीं तरफ की ५० मील लम्बी नहर भी बन चुकी है और शिमोगा और चिकमगलूर जिलों में इसकी सिंचाई हो रही है। दायीं ओर की नहर भी पहले ५० मील तक खोदी जा चुकी है और शुरू के ६ मील तक इसको पक्का किया जा चुका है। इसके आगे पानी पहुँचाने के लिए एक पहाड़ी में २॥ मील की सुरंग खोदनी पड़ेगी। यहाँ से नहर दो भागों में बँट जायगी। एक से ४० हजार एकड़ क्षेत्र में और दूसरे से ६६ हजार एकड़ क्षेत्र में सिंचाई होगी।

बांध के दोनों ओर के भाग १०२ फीट ऊँचे उठ चुके हैं और इसका सबसे नीचा भाग जो बाढ़ का पानी निकालने के लिए छोड़ा गया है, फरवरी १९५८ तक ६३ फुट की ऊँचाई तक बन चुका था। बिजली घरों की मशीन चलाने के लिए बांध में से पानी निकालने के १०-१० फीट व्यास के दो और ६ फीट व्यास का एक नल डाला (Pen-stock) जा चुका है। बायें किनारे पर सिंचाई के लिए पानी छोड़ने वाला फाटक लगाया जा चुका है। इस तरफ की नहर में फरवरी १९५७ में पानी

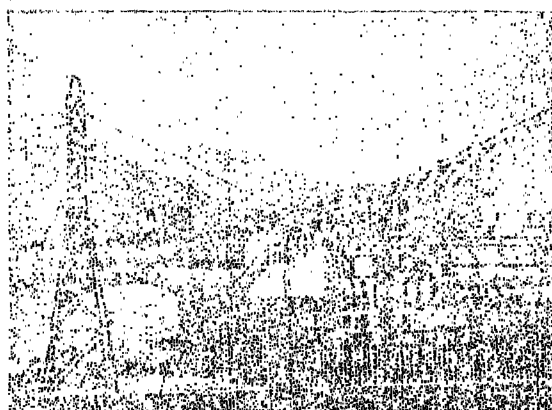
छोड़ा गया था। इस नहर में सितम्बर १९५७ तक ६,००० एकड़ में सिंचाई हुई। बांध में नदी-तल से ४५ फीट की ऊँचाई पर जो फाटक लगाये जाने थे, वे लग चुके हैं। इस योजना से लाभ उठाने वाले ९० प्रतिशत क्षेत्र में दायीं ओर की नहर से सिंचाई होगी। बायीं ओर की नहर से शिमोगा और चिकमगलूर जिलों के १७,८९४ एकड़ क्षेत्र को लाभ पहुँचेगा। इसकी पूरी लम्बाई में सिंचाई हो रही है। संशोधित अनुमान के अनुसार इस योजना पर २४ करोड़ ४२ लाख रुपया खर्च होगा।

नदी के दायें बायें किनारों पर दो बिजली घर बनाने की योजना है। ये दोनों बिजली घर नदी के किनारे ही नहीं नदी में भी फैले होंगे। दायें बिजली घर में शुरू-शुरू में ७,२०० किलोवॉट बिजली बनाने वाला यन्त्र लगाया जायगा। बाद में इसमें एक और यन्त्र लगाने का विचार है। बाएं बिजली घर में दो हजार किलोवॉट का यन्त्र होगा जो इस पानी से चलेगा जो बायीं नहर में जायेगा और नदी में छोड़े जाने वाले पानी से भी चलने वाले १२-१२ हजार किलोवॉट के दो यन्त्र यहाँ और काम करेंगे।

इस प्रकार दोनों बिजली घर में ३३,२०० किलोवॉट बिजली बनाने की व्यवस्था होगी। आशा है इसमें से १२ हजार किलोवॉट बिजली दूसरी योजना के अन्त तक मिलने लग जाएगी। शिमोगा में इस बिजली को सारे क्षेत्र में बांटने के लिए एक बिजली घर भी बन रहा है। मैसूर की भद्रा घाटी में वर्षा, उपजाऊ भूमि, जंगलों खनिज पदार्थों और जन शक्ति की कोई कमी नहीं है। अब बिजली और समय पर सिंचाई के लिए पानी मिलने से इस क्षेत्र में समृद्धि के युग का एक शुभारम्भ होगा।

(१४) मयूराक्षी बांध (Mayurakshi Project)

बिहार के संथाल परगने में मैसेनजोर नामक स्थान पर मयूराक्षी नदी पर एक बांध १५५ फीट ऊँचा और २,१७० फीट लम्बा बांध बनाकर लगभग ५ लाख एकड़ फीट पानी संग्रहित किया गया है। यह बांध **कनाड़ा बांध** भी कहलाता है।



चित्र ५३—कनाड़ा का मयूराक्षी बांध

दूसरा बांध मैसेनजोर से लगभग २० मील नीचे पश्चिमी बंगाल में तिलपाड़ा के निकट १,०१३ फीट लम्बा बनाया गया है। इसके दोनों किनारों से नहरें निकाल

कर पश्चिमी बंगाल के वीरभूम, बर्दवान और मुर्शिदाबाद जिलों और बिहार की लगभग ७ लाख एकड़ भूमि सींची जायेगी। इसके फलस्वरूप ३ लाख टन चावल और २५ हजार टन रबी की फसल इन दोनों राज्यों में उत्पन्न की जा सकेगी। इस योजना पर १६ करोड़ रुपये व्यय हुए हैं।

मैसेनजोर नामक स्थान पर एक छोटा सा शक्ति गृह भी बनाया गया है जिससे ४,००० किलोवॉट शक्ति उत्पन्न की जारही है। यह शक्ति मुर्शिदाबाद, संथाल परगना और बर्दवान को दी जाती है। यह योजना मुख्यतः सिंचाई योजना है।



चित्र ५४—तिलपारा अवरोधक

(१५) कांगसबत्ती योजना (Kangsabati Project)

इस योजना के अंतर्गत पश्चिमी बंगाल के बांकुड़ा जिले में कांगसबत्ती नदी पर खटरा नामक स्थान पर एक बांध तथा जलाशय बनाया जारहा है जिसके दोनों किनारों से नहरें निकाल कर खरीफ की फसल के ८ लाख एकड़ और रबी की फसल के १'५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी इसमें लगभग २५' १४ करोड़ रुपया खर्च होगा—

(१६) माताटीला बांध (Matatila Dam)

यह बांध बेताव नदी के आर-पार झाँसी से ३० मील दक्षिण की ओर बनाया गया है। यह २,२०० फीट लम्बा है। इस बांध से दो नहरें निकाल कर उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की लगभग ४'१३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जारही है। द्वितीय चरण में १०,००० किलोवॉट उत्पादन शक्ति का बिजली घर बनाया जारहा है। संपूर्ण योजना पर ८ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है।

(१७) तवा योजना (Tawa Project)

यह योजना मुख्यतः सिंचाई योजना होगी। इसके अंतर्गत तवा नदी जहाँ धेनवा नदी से मिलती है, उससे आधा मील नीचे तवा नदी के आर-पार एक कंक्रीट और मिट्टी का बांध बनाया जा रहा है। इससे बाईं ओर से ६० मील लम्बी नहर निकाल कर मध्य प्रदेश की लगभग ५६०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी।

एक शक्तिगृह भी बनाया जायेगा जिसमें ७,५०० किलोवॉट वाले चार उत्पादक यंत्र लगाये जायेंगे। सम्पूर्ण योजना पर लगभग १८·३६ करोड़ रुपये खर्च होंगे।

(१८) ककड़ापार बांध (Kakrapara Project)

यह बांध गुजरात राज्य में ताप्ती नदी पर ऐसे स्थान पर बनाया गया है जहाँ ताप्ती वनों और पर्वतों को छोड़कर गुजरात के मैदान में प्रवेश करती है। ताप्ती नदी मध्य प्रदेश के घने वनों में स्थित पर्वत मालाओं से निकलकर २०० मील तक उसके तीन जिलों—बेतूल, अमरावती और नीमाड़—से होती हुई खानदेश जिले में गुजरात की सीमा में प्रवेश करती है। यहाँ भी यह लगभग २०० मील बहने के बाद सूरत के समीप खम्भात की खाड़ी में गिर जाती है। इसका जल-स्रवण क्षेत्र (Catchment area) लगभग २६,००० वर्ग मील है और ककड़ापार के समीप—जो सूरत से ५० मील दूर ऊपर की ओर ताप्ती के किनारे है—उसमें प्रति सैकंड १३⅓ लाख घन फीट जल बहता है। अनुमान लगाया गया है कि ताप्ती की धारा से होकर प्रति वर्ष इतना पानी सागर में जाकर गिरता है जिसकी मात्रा आसानी से १६० लाख एकड़ फीट तक की होगी किन्तु यह पानी व्यर्थ बह जाता है। नदी के १ प्रतिशत से भी कम पानी का उपयोग होता है जिसमें १·५ लाख एकड़ से कम भूमि में चावल और ८०,००० एकड़ से भी कम भूमि में गेहूँ की पैदावार की जाती थी। जबकि पूर्वी भागों में वर्षा की मात्रा कम होती है अतएव रबी की वर्षा के अभाव में गेहूँ आदि की खेती करना प्राय: असम्भव ही रहता है। उपजाऊ धरती के अतिरिक्त इस घाटी में वन-सम्पत्ति प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जिसमें सागवान और अन्य प्रकार की उपयोगी लकड़ियाँ, कागज बनाने के काम में आने वाली घास और बांस के अतिरिक्त रेयन तथा प्लाईवुड भी होते हैं किन्तु विद्युत् शक्ति के अभाव और समय-समय पर आने वाली बाढ़ों के कारण उद्योगों के काम में आने वाले ये सब साधन नष्ट हो जाते हैं।

अस्तु, १९४६ के अन्त में तत्कालीन बम्बई सरकार ने तब के केन्द्रीय जल मार्ग, सिंचाई तथा जहाजरानी आयोग (CWINC) से अनुरोध किया कि वह नर्मदा और ताप्ती से होने वाली बाढ़ों को रोकने और उनके जल को सिंचाई के काम में लाने तथा विद्युत्-शक्ति के उत्पादन की संभावनाओं के बारे में अपनी राय दे। इस आयोग ने दोनों नदियों की घाटियों का विस्तृत निरीक्षण कर बताया कि सिंचाई, बाढ़-नियन्त्रण, विद्युत् उत्पादन और नौकानयन की इन दोनों घाटियों में पर्याप्त गुंजाइश है।

ताप्ती घाटी के विस्तृत निरीक्षण से ज्ञात हुआ कि योजना और विकास के लिए उसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले भाग में भुसावल से पश्चिम ताप्ती के दोनों किनारों की ५.२ लाख एकड़ भूमि का तट प्रदेश है। अत: भुसावल के ऊपर हाथनूर के समीप एक विशाल जल-सागर का निर्माण सम्भव है। इससे भी ऊपर दो विशाल बांध बांधे जा सकते हैं। इनसे महाराष्ट्र के खानदेश जिले को नहर की सिंचाई का लाभ मिल सकता है और ३०,००० किलोवॉट बिजली का उत्पादन हो सकता है। योजना के दूसरे विभाग में खानदेश जिले की लगभग ४ लाख एकड़ भूमि आती है जिसके अन्तर्गत पंजान में गिरणा नदी पर बांध के निर्माण स्वरूप नहरों द्वारा सिंचाई सम्भव है। योजना के तृतीय भाग में ककड़ापार में ताप्ती नदी पर बांध का समावेश है। इसके द्वारा ९ लाख एकड़ भूमि तक की सिंचाई की जा सकती है जबकि ५०,००० एकड़ भूमि को जल स्थायी रूप से मिल सकता है। इसके

अन्तर्गत ही बांध के दोनों ओर की नहरों और वहाँ से १७ मील दूर उकाई (Ukai) में एक दूसरे बांध का निर्माण करने की योजना भी है (जिससे बाढ़ों को रोक कर सूरत और भडौंच जिलों में ६१४,००० एकड़ भूमि की सिंचाई की जायगी तथा बांध के निकट १६०,००० किलोवॉट शक्ति का बिजली घर भी निर्मित किया जायेगा।

वैसे तो सम्पूर्ण घाटी के लिए यह आवश्यक था कि योजना के तीनों भागों का काम एक साथ आरम्भ किया जाता किन्तु अर्थाभाव और अन्य कठिनाइयों के कारण ककड़ापार बांध को ही प्राथमिकता दी गई है। यह बांध १९४७ में आरम्भ कर १९५३ में समाप्त किया जा चुका है। यह बांध २,०३९ फीट लम्बा और ५० फीट ऊँचा है। नदी की तलहटी में पानी के भीतर १,८०० फीट लम्बाई का भाग कंक्रीट का बना है शेष भाग मिट्टी का है। बांध बांधने के फलस्वरूप जो प्राकृतिक जलाशय बना है वह ५५ मील तक फैला है और उसमें १ लाख एकड़ भूमि आ गई है। इस जलाशय में ५६ लाख एकड़ फीट पानी संग्रह किया जा सकता है।

बांध के निचले भाग के पास एक बिजली घर भी बनाया जा रहा है जिसके 'टरबाइन' में से निकलने वाली पानी की धारा १६ मील लम्बी विद्युत् नहर (Power-Canal) में से हो कर गुजरेगी। नहर के छोर पर दूसरा बिजली घर बनेगा। पहले बिजली घर में विद्युत् उत्पादन के लिए ५ यन्त्र और दूसरे में ४ यन्त्र लगाये जायेंगे। दोनों को मिला कर २८८,००० किलोवॉट विद्युत् शक्ति का उत्पादन किया जा सकेगा। यह स्थान बम्बई और अहमदाबाद नगरों के मध्य स्थित होने से इसके द्वारा उत्पादित बिजली इन दोनों नगरों के उद्योगों के लिए उपलब्ध हो सकेगी।

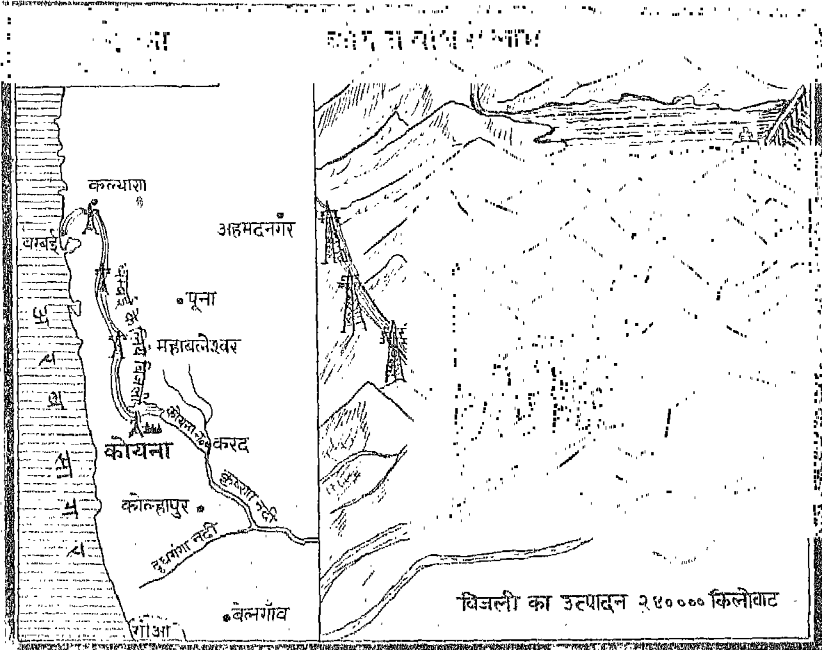
नदी के बायें तट की मुख्य नहर और उसकी शाखायें भी बन चुकी हैं। नहरों की कुल लम्बाई ५२० मील है। बांध के दोनों ओर की नहरों द्वारा ८ लाख एकड़ भूमि को पानी मिल सकेगा। मुख्य बांध के साथ ही जब उसके दोनों ओर की मुख्य नहरों और उनके नियंत्रक-यन्त्र (Regulators) पूर्ण रूप से निर्मित हो जायेंगे तो उनसे ६.५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी जिसके परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में १.६ लाख टन की वृद्धि होगी।

इस योजना द्वारा उत्पादित सस्ती विद्युत् शक्ति द्वारा—जो लगभग २.८ लाख होगी—गुजरात का तीव्र औद्योगीकरण सम्भव हो सकेगा और निकटवर्ती नगरों को पर्याप्त तथा स्वच्छ पीने का जल भी सुगमता से उपलब्ध हो सकेगा। बाढ़ों पर नियन्त्रण तो होगा ही किन्तु मांडवी से ऊपर ताप्ती के ६० मील के जल-प्रदेश में नौका-व्यवहार भी हो सकेगा। यह योजना बम्बई के लिए पूर्ण रूप से अन्नदाता सिद्ध होगी।

(१९) कोयना बांध (Koyna Dam)

कोयना बांध योजना के अन्तर्गत महाराष्ट्र राज्य के उत्तरी सतारा जिले में हेलवाक (Helwak) के निकट कृष्णा की सहायक कोयना नदी के आर-पार जल्कावाड़ी नामक स्थान पर नदी-तल से २०८ फीट ऊँचा और २,२०० फीट लम्बा बांध बनाया जा रहा है। यह बांध सीमेंट और कंकरीट का होगा। इसमें ३६ अरब ४ करोड़ ५० लाख घन फीट पानी संग्रह किया जायेगा। बांध के समीप ३४४ वर्ग मील क्षेत्र का पानी बह कर आता है। जलाशय का क्षेत्रफल २१ वर्ग मील होगा। फालतू पानी ४१ फीट चौड़े और २० फीट ऊँचे ६ द्वारों से निकाला जायेगा। इस पानी की गति २२७,००० क्यूसेक होगी। ३०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई भी की जायगी। कोयना बांध से

बम्बई को २२० के० वी० के दोहरे परिपथ (Double Circuit) वाली १५० मील लम्बी लाइन से बिजली भेजी जायगी। यह बिजली ट्राम्बे स्थित टाटा बिजली के कारखाने में पहुँचेगी। दक्षिणी महाराष्ट्र में बिजली पहुँचाने के लिए २२० के० वी० की



चित्र ५५—कोयना बांध

एक लाइन कराड़ की ओर लेजायी जायेगी। यह काम बम्बई-बिजली मंडल करेगा। कोयना का बिजली घर देश में अपनी किस्म का पहला बिजली घर होगा। जब यह बिजली घर ४०,००० किलोवॉट बिजली पैदा करने लगेगा तब इस योजना का दूसरा चरण आरम्भ होगा। दूसरे चरण में ६४ फीट बांध को और ऊँचा कर दिया जायेगा। इस प्रकार जो अतिरिक्त पानी जमा होगा उसमें से कुछ सिंचाई के लिये और कुछ ज्यादा बिजली (४०८,००० किलोवॉट) पैदा करने के काम में लाया जाएगा। योजना के अन्तिम चरण में कोयना बांध के निकट एक बिजली घर स्थापित किया जायेगा। यह बिजली घर ३०,००० किलोवॉट बिजली पैदा करेगा। कोयना से समुद्र तक नदी के ढलान का लाभ उठा कर एक दूसरा भूमिगत बिजली घर बनाया जायेगा जो ६० हजार किलोवॉट बिजली तैयार करेगा। इस बांध द्वारा उत्पादित बिजली का उपयोग बम्बई, पूना, कोल्हापुर, सतारा, बीजापुर, रत्नागिरि और थाना जिलों में किया जायगा।

(२०) घाटप्रभा योजना (Ghatprabha project)

यह योजना मैसूर राज्य के बीजापुर और बेलगांव जिलों में घाटप्रभा नदी के जल का उपयोग करने हेतु कार्यान्वित की जा रही है। इसके अन्तर्गत दो बांध—

एक हदलगा और दूसरा अजरा नामक स्थानों पर १९५९ से बनने आरम्भ हुए हैं। सम्पूर्ण कार्य तीन चरणों में समाप्त किया जायेगा। प्रथम चरण में (जो समाप्त हो चुकी है), वर्तमान धूपदल डाइवरशन बांध से बाईं ओर एक ४४ मील लम्बी नहर बनाई गई है। द्वितीय चरण में इसी नहर को बढ़ाकर ७३ मील लम्बी करदी जायगी तथा हदलगा बांध का निर्माण भी होगा। तृतीय चरण में अजरा बांध और दाईं नहरों का निर्माण किया जायेगा।

(२१) गंगापुर योजना (Gangapur project)

इस योजना में गोदावरी नदी पर नासिक के निकट एक १२,५०० फीट लम्बा मिट्टी का बांध बनाया जा रहा है इसमें १⅞ लाख एकड़ फीट जल रोका जा सकेगा। इसके बाईं किनारे से एक नहर निकाली जायेगी तथा वर्तमान नंदूर बांध से निकलने वाली नहरों का पुनरुद्धार किया जायेगा। गंगापुर बांध गोदावरी और कश्यापी नदियों के संगम स्थान पर है। यह १९५५ में बनकर समाप्त हो चुका है। इससे लगभग ४५ हजार एकड़ फीट की सिंचाई हो रही है।

(२२) पूर्णा योजना (Purna Project)

यह योजना भी महाराष्ट्र राज्य में कार्यान्वित की जा रही है। इसके अन्तर्गत (१) गोदावरी की सहायक पूर्णा नदी यालदरी नामक स्थान पर एक संग्राहक बांध बनाया जायेगा। (२) इससे ४० मील नीचे की ओर सिद्धेश्वर पर एक पिक-अप बांध बनाया जायेगा। (३) एक ३४ मील लम्बी नहर जो सिद्धेश्वर बांध के बाईं ओर से निकल कर २७५,५०० एकड़ क्षेत्र को सींचेगी। (४) यालदरी पर एक बिजली घर बनाया जायेगा जिसमें ५,००० किलोवॉट शक्ति के दो यंत्र लगाए जायेंगे। बिजली भेजने के लिए एक ९० मील लम्बी तार की लाइन भी लगाई जायेगी।

(२३) चम्बल योजना (Chambal Project)

चम्बल मध्य प्रदेश व राजस्थान की मुख्य नदी है जो महू के निकट जनापाव स्थान से निकल कर पहले इंदौर, उज्जैन, रतलाम एवं मन्दसौर के जिलों में बहती हुई राजस्थान में कोटा के मैदान में प्रवेश करती है। यहाँ १३० मील बहकर पुनः मध्य प्रदेश में मुरैना व भिंड जिलों की सीमा बनाती हुई उत्तर प्रदेश की यमुना नदी में इटावा के निकट मिल जाती है। चम्बल ६०० मील लम्बी नदी है तथा इसका प्रवाह क्षेत्र ५५ हजार वर्गमील है। यद्यपि वर्षा काल में यह जल की अपार जलराशि के कारण तीव्र जलधारा बन जाती है किन्तु शेष काल में यह अत्यन्त क्षीण हो जाती है। अतएव बरसात का सारा जल व्यर्थ ही बह कर चला जाता है इससे चम्बल के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में बाढ़ें भी आ जाती है और भूमि अपक्षरण भी अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका है।

अस्तु, इस नदी के जल का उपयोग करने हेतु मध्य प्रदेश और राजस्थान सरकार ने सम्मिलित रूप से चम्बल घाटी योजना बनाई है जो तीन अवस्थाओं में पूर्ण होगी। इसके अन्तर्गत ३ बांध, ५ बिजलीघर और १ अवरोधक जलाशय बनाया जायेगा।

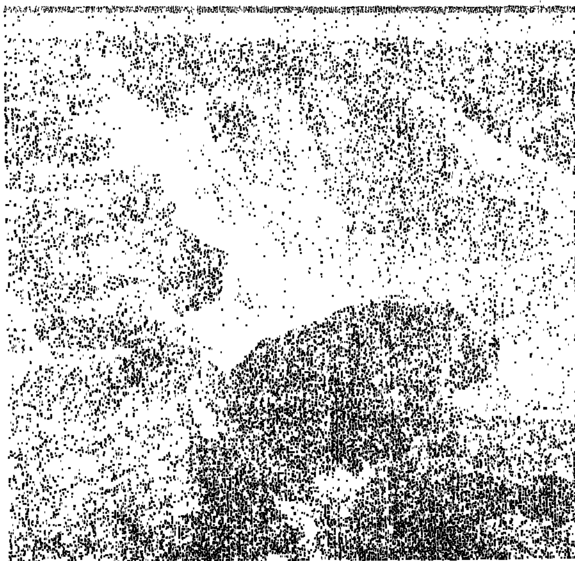
गांधी सागर बांध (Gandhi Sagar Dam)

भानपुरा तहसील में चौरासीगढ़ स्थान पर चम्बल ७० मील लम्बी उपत्यका में प्रवेश करती है। अपने मुहाने पर इस उपत्यका की चौड़ाई लगभग २१ हजार

फीट है किन्तु कुछ मील बाद धीरे-धीरे यह ६०० फीट ही रह जाती है। आगे इसकी चौड़ाई १,२०० फीट से २,००० फीट तक घटती बढ़ती रहती है। इसके किनारों की चट्टानों की ऊँचाई साधारणतया २००-३०० फीट के बीच में है। इस घाटी में भानपुरा से २१ मील व चौरासीगढ़ से ५ मील दूर जहाँ घाटी की चौड़ाई कम है, पहला बांध बनाया जायगा। इसका नाम गांधी सागर बांध (Gandhi Sagar Dam) होगा। यह बांध १,६८७ फीट लम्बा और २०० फीट ऊँचा होगा। इसके ऊपर १५ फीट चौड़ी सड़क भी बनाई जायेगी। बांध से जो विशाल जलाशय तैयार होगा उसका क्षेत्रफल २२४ वर्गमील होगा। इसमें ६६ लाख एकड़ फीट पानी समा सकेगा। इस जलाशय की अत्यधिक लम्बाई ६५ मील नदी में और १२ मील चौड़ाई होगी। बांध पर ही गांधी सागर विद्युत् स्टेशन ३०० फीट लम्बा होगा जिसमें २३,००० किलोवॉट शक्ति के ५ उत्पादक यंत्र लगाये जायेंगे। इनमें से चार प्रथम चरण में लग जायेंगे। शेष आवश्यकतानुसार विद्युत् की मांग बढ़ने पर। इस प्रकार ६०% लोड फैक्टर (Load factor) की कम से कम ६२,००० किलोवॉट बिजली तो तुरन्त ही मिलने लगेगी।

राणा प्रताप सागर बांध (Rana Pratap Sagar Dam)

गांधी सागर बांध से ३० मील दूर बहाव की ओर राजस्थान में चूलिया प्रपात के पास रावतभाटा में दूसरा बांध राणा प्रताप सागर बांध के नाम से बनाया जायेगा। यह बांध ३,६२० फीट लम्बा और १२३ फीट ऊँचा होगा। इसके द्वारा



चित्र ५६—चूलिया जल प्रपात का मनोरम दृश्य

बनने वाले जलाशय का क्षेत्रफल ६० वर्गमील होगा और उसमें २३·५ लाख एकड़ फीट पानी समा सकेगा। जलाशय की अत्यधिक लम्बाई २१ मील और चौड़ाई ८

मील होगी । विद्युत् स्टेशन इस प्रपात के निकट होगा जिससे जलाशय के जल-तल तथा प्रपात के पानी गिरने के अन्तर का लाभ उठाया जा सके जो बरसात में २०० फीट तक हो जाता है । इस बिजली घर का विद्युत् उत्पादन ६०% लोड़ फैक्टर की ६०,००० किलोवॉट बिजली होगी ।

कोटा बांध (Kota Dam)

तीसरा बांध राणा प्रताप सागर बांध से २० मील आगे (कोटा से १० मील उत्तर की ओर) होगा । यहाँ चम्बल की चौड़ाई चौरासीगढ़ की अपेक्षा ४०० फीट कम हो जाती है । यह केवल एक पिक-अप बांध (pich-up dam) होगा । पहले दो बांधों से छोड़ा गया पानी ही यहाँ विद्युत् उत्पादन के लिए प्रयुक्त होगा । यह बांध १,८०० फीट लम्बा और ८० फीट ऊँचा होगा । इस बांध की जल धारण शक्ति ४० हजार एकड़ फीट होगी व ६०% लोड़ फैक्टर की ४५,००० किलोवॉट बिजली पैदा होगी ।

कोटा बांध से १० मील आगे कोटा शहर के पास एक सिंचाई बांध या या अवरोधक (Barrage) का निर्माण होगा । यह बांध ६१ फीट ऊँचा और १,८०० फीट लम्बा होगा । इसके दाईं ओर मिट्टी की व बाईं ओर पत्थर की मजबूत दीवार होगी । इस दीवार में लोहे के १४ विशाल फाटक होंगे जिससे बाढ़ के समय अति-रिक्त पानी निकाला जासके । इस बांध से दो नहरें निकाली जायेंगी—जो एक दाईं ओर और दूसरी बाईं ओर होगी । पहली नहर पहले ६०-७० मील तक राजस्थान में होगी और बाकी लम्बाई में मध्य प्रदेश में तथा दूसरी नहर पूर्णतः राजस्थान में होगी । दोनों राज्यों में ६-६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी ।

चम्बल से निकलने वाली मध्यभारत सिंचाई नहर पारवती नदी को पार करके मध्य प्रदेश में मुरैना जिले में राधापुर ग्राम के पास प्रवेश करेगी । इस नहर के निर्माण में पहले २-३ मील तक बड़ी-बड़ी चट्टानों को काटना पड़ेगा । नदी पर सीमेंट-कंक्रीट का बना पक्का मार्ग नहर-पुल (Aqueduct) तैयार कर नहर को इस पार लाया जायेगा । यह पुल २,०२१ फीट लम्बा होगा इसमें २२ स्तंभ होंगे यहाँ से यह नहर उत्तर-पूर्व की ओर मुड़कर आगे बढ़ेगी और कूनी नदी को पार करेगी । टैटरा के निकट इस नहर की दो उप-शाखायें हो जायेंगी । बाईं ओर की उप-शाखा-अम्बाह शाखा नहर अम्बाह के पास होती हुई चम्बल से मिला दी जायेगी । इसकी लम्बाई ११२ मील होगी । दाईं उप-शाखा मुरैना शाखा, नहर सबलगढ़, गौरा, मुरैना होती हुई आसन नदी में मिला दी जायेगी । यहाँ से पुनः इसकी एक शाखा मुरैना की ओर जायेगी आसन नदी में छोड़ा गया पानी कोतवाल जलाशय में इकट्ठा किया जाकर सांक नदी के दूसरी ओर पिलुवा जलाशय में भरा जाएगा ।

यातायात की सुविधा के लिए नहर के आर-पार पक्की सड़कें बनाई जाएँगी । बैलगाड़ियों की सुविधा के लिए ३-४ मील के अन्तर पर पुलिएँ व पैदल यात्रियों के लिए २-२ मील के अन्तर पर मार्ग बनाये जायेंगे । अगर राजस्थान को अधिक पानी मिला तो बाईं ओर वाली नहर को सवाई माधोपुर जिले में [illegible] ले जाया जायेगा । यदि वह आगे बनी तो मेज नदी को पार करके [illegible] भाग में भी सिंचाई करेगी ।

आगे दी गई तालिका से सम्पूर्ण योजना का महत्व स्पष्ट होगा :—

योजना	पूर्ण होने का समय	परिणाम विद्युत् शक्ति (किलोवॉट)	सिंचाई एकड़ में
प्रथम चरण :			
गांधी सागर बांध	१९६०-६१	—	—
गांधी सागर बिजलीघर	१९६०-६१	६९,०००	—
राणा प्रताप सागर	१९६१-६२	—	—
कोटा सिंचाई बांध	१९५७-५८	—	१२,००,०००
नहर प्रणाली	१९५९-६०	—	—
विद्युत् प्रसार प्रणाली	१९६०-६१	—	—
योग		६९,०००	१२,००,०००
द्वितीय चरण :			
भूपाल शक्ति गृह		९०,०००	—
विद्युत् प्रसार प्रणाली		—	—
योग		९०,०००	—
तृतीय चरण :			
कोटा बांध और शक्ति गृह		६९,०००	—
योग		६९,०००	—
महायोग		२,२८,०००	१२,००,०००

इस प्रकार बांध के सम्पूर्ण होजाने पर अन्ततः २ लाख २८ हजार किलोवॉट शक्ति उत्पन्न होगी और १२ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जायेगी।

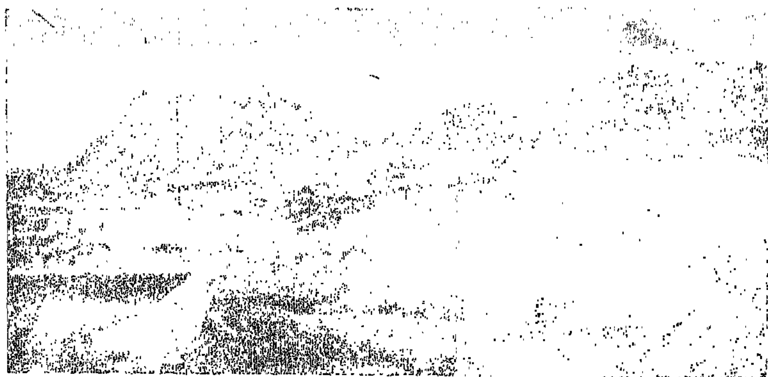
विद्युत् तारों द्वारा उत्पादित बिजली २०० मील के अर्द्ध-व्यास की परिधि के क्षेत्र में पहुँचाई जायेगी। गांधी सागर शक्ति गृह से दो मुख्य लाइनें जाएँगी। पहली दक्षिण में इन्दौर की ओर और दूसरी उत्तर में कोटा, सवाई माधोपुर, जयपुर, ग्वालियर, अजमेर, उदयपुर की ओर। विद्युत् की सुलभता से सांभर झील के नमक, मकराने का संगमरमर, जयपुर व भीलवाड़ा का घीया पत्थर, जयपुर, किशनगढ़, कोटा और भीलवाड़ा की सूती कपड़े की मिलों, उदयपुर की जावर की खानों, बूंदी के सीमेंट तथा जयपुर के धातु व बॉल बियरिंग उद्योग की पर्याप्त उन्नति होगी। इस समय लगभग १½ लाख टन कोयला ८०० मील की दूरी से मंगवाना पड़ता है, योजना के पूर्ण होजाने पर यह सारा व्यय बच जायेगा।

राजस्थान में इस योजना द्वारा सिंचित क्षेत्रफल—सवाई माधोपुर, भरतपुर, कोटा व बूंदी जिलों में होंगे। मध्य प्रदेश में इसकी नहरों व उप-नहरों द्वारा ग्वालियर, मुरैना और भिन्ड जिलों की ९ तहसीलों के लगभग १,३०० गांवों में सिंचाई होगी। चम्बल से प्राप्त सिंचाई के फलस्वरूप ४ लाख ६० हजार टन से अधिक अनाज पैदा होने लगेगा। गेहूँ और मक्का की पैदावार में प्रति एकड़ १२ से १६ मन और चावल

की पैदावार में प्रति एकड़ १० से १५ मन तक की वृद्धि होगी। इस सिंचाई से साग-सब्जी, फलों, रुई, गन्ना आदि की पैदावार भी बढ़ जायेगी। इस योजना से घास और चारे की भी अधिक मात्रा उत्पादित होगी। घास लग जाने से भूमिक्षरण की समस्या का भी आंशिक हल होगा। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि मछली पालन से लगभग ८ लाख रुपये का लाभ प्रति वर्ष होगा। चम्बल की नहरों से जल का तल भी ऊँचा हो जायेगा जिससे पानी का इतना अभाव नहीं रहेगा—अभी यह जल-तल ४० से २०० फीट तक है। योजना का प्रथम चरण १९६२ तक समाप्त हो जायेगा इसमें ६४ करोड़ रुपया व्यय होगा।

जवाई बांध योजना (Jawai Project)

राजस्थान में जवाई बांध जोधपुर डिवीजन में जवाई नदी पर एरनपुरा रेलवे स्टेशन से १ मील दूर दक्षिण में बनाया गया है। इस योजना के अन्तर्गत एक जलाशय का निर्माण, एक कंकरीट बांध का निर्माण, दो मिट्टी के बांधों का निर्माण, दो पहलू दीवालें (Flank walls) और नहरों का निर्माण सम्मिलित है। यह बांध ११४ फीट ऊँचा और ३,०३० फीट लम्बा है। इस बांध का क्षेत्रफल १० वर्गमील है। इसमें ३०० वर्गमील क्षेत्र का ६५ लाख घन फुट जल एकत्रित होता है। यहाँ से इस जल का वितरण कंक्रीट की तैयार की हुई नहरों के द्वारा किया गया है। मुख्य बांध के अगल-बगल दो बांध बनाये गये हैं जिनका सामना तो पक्का है किन्तु आधार मिट्टी का है। इन बांधों का काम जल को जलाशय की बगलों से इधर-उधर ले जाने से रोकना है। इसी प्रकार दो बगल की दीवारें हैं जिनकी लम्बाई क्रमशः ३,५०० फीट तथा ४,००० फीट है। ये दीवारें जलाशय के तटों का काम करती हैं ताकि बाढ़ के रूप में जल नष्ट न हो सके। इस बांध से १४ मील लम्बी मुख्य नहर निकाली गई है। यह लगभग ४०० क्यूसेक जल ले जाती है। इस मुख्य नहर से ४ शाखायें और निकाली



चित्र ५७—जवाई बांध

जायेंगी जो १२० मील लम्बी होंगी। इस योजना पर ३ करोड़ से अधिक खर्च हुआ है। इससे ९० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इस योजना के फलस्वरूप शुष्क क्षेत्र में रबी की फसलें उगाई जाने लगी हैं। इस योजना का अधिक लाभ जोधपुर डिवीजन के पाली, जालोर, और सिरोही जिलों को है।

विदूर बांध योजना (Vidur Dam Project)

दक्षिण भारत में मद्रास राज्य की विदूर बांध योजना पर हाल ही में काम शुरू किया गया है। यह बांध वराह नदी पर बनाया जा रहा है और इससे दक्षिणी अर्काट जिले (मद्रास) और उसके आस-पास के क्षेत्रों में सिंचाई की जा सकेगी। इस नदी पर बांध बनाकर पानी से अतिरिक्त क्षेत्रों की सिंचाई करने के अलावा बरसाती तालावों को भी इसके पानी से भरा जाएगा। इस बांध के बन जाने पर अन्न की उपज में प्रतिवर्ष १,४०० टन की वृद्धि होगी जिसकी कीमत लगभग ८ लाख रु० है।

वराह नदी दक्षिण अर्काट जिले के जिंजी तालुका पश्चिमी भाग से शुरू होकर जिंजी, तिण्डीवनम और विलयुपुरम तालुकों में होकर पूर्व की बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। आगे चलकर इसमें तोंडियार और पाम्वर नदियाँ मिल जाती हैं यह नदी ४६ मील लम्बी है और वह क्षेत्र जिसमें नदी का पानी बहकर आता है ५०१ वर्ग मील है। इस नदी के क्षेत्र में पूरा जिंजी तालुका, पोलूर का कुछ भाग, तिरूवन्नमलाई, विल्लीपुरम और तिण्डीवनम तालुका आते हैं। इन क्षेत्रों में कई बरसाती तालाब हैं। विदुर योजना पर लगभग ६७ लाख ४६ हजार रु० खर्च होगा। इसके अन्तर्गत वराह नदी को बांध कर जलाशय बनाया जाएगा जो तिंडीवनम तालुका में विदूर गांव के ½ मील पश्चिम में बनेगा। यह बांध नदी की तलहटी से ४२ फुट ऊँचा होगा और इसका ४५१ फुट लम्बा हिस्सा ईंट-पत्थर का बनेगा। इसी भाग में ३६६ फुट लम्बा पानी निकलने का रास्ता (Spill-way) छोड़ा जायगा। पक्के भाग के बायीं ओर ६,२०१ फीट लम्बा और दायीं ओर १२,८८८ फीट लम्बा कच्चा बांध होगा। विदूर जलाशय में ५,५०० लाख घनफीट पानी रह सकेगा। बाढ़ का पानी बहार निकालने के नल के अलावा जलाशय में से नदी में पानी डालने के लिए ३० वर्ग फीट की एक नाली भी बनाई जायगी। मिट्टी के बांध की बायीं ओर से जमीन की सिंचाई के लिए नहर निकाली जाएगी। इसके अलावा बांध में एक ऐसी नाली बनायी जायगी जिससे विदूर जलाशय में पानी गिरा करेगा।



चित्र ५८—मालमफुजा बांध

नयी नहर कुल ११ मील लम्बी होगी। इससे पांडिचेरी के लगभग ३,२०० एकड़ भू-भाग की सिंचाई हो सकेगी। इस योजना से जो जमीन सींची जायगी उसमें थोड़े समय में तैयार होने वाली फसलें बोयी जाएँगी।

योजना पर जो खर्चा होगा उसे मद्रास और पांडिचेरी ११.५ के अनुपात से आपस में बांट लेंगे। यह योजना ३ साल में पूरी की जाएगी और इससे ८ लाख रुपये के मूल्य का १,४२० टन चावल पैदा होगा। इस जलाशय से जिस क्षेत्र को लाभ पहुँचेगा वह आजकल बहुत पिछड़ा हुआ है। योजना के पूरे हो जाने से यहाँ की पैदावार बढ़ने के अलावा जमीन, जनशक्ति और पानी का सदुपयोग होगा, जिससे सारे क्षेत्र की समृद्धि होगी।

मालमफुजा योजना (Malamphuza Project)

पश्चिमी घाट के सहारे मालमफुजा नदी के आर-पार ओलावकोट स्टेशन से ३ मील पूर्व की ओर एक बांध बनाया गया है। इससे बांयी ओर एक २० मील लम्बी नहर निकाल कर केरल के मलाबार जिले की सिंचाई की जारही है। यह बांध ६,०६६ फीट लम्बा है जिसमें ५,३३७ फीट मिट्टी का बना है। दांयी ओर की नहर भी अब बन रही है।

अध्याय ८

जलवायु
(Climate)

देश के अधिक विस्तार और अनेक भू-आकृतियों के कारण सम्भवतः विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में जलवायु सम्बन्धी दशाओं में बड़ी विभिन्नता पाई जाती है। देश का एक भाग कर्क रेखा के उत्तर में और दूसरा उसके दक्षिण में है। उत्तर-पश्चिमी भागों में थार का विशाल मरुस्थल है जहाँ वर्ष भर में ५" से भी कम वर्षा होती है; जब कि उत्तरी व पूर्वी भाग में खासी की पहाड़ियों में चेरापूंजी नामक स्थान पर ४२५" वर्षा का औसत रहता है। काश्मीर में द्रास नामक स्थान पर न्यूनतम तापक्रम –४६° फा० तक पहुँच जाता है जब कि राजस्थान में श्रीगंगानगर का उच्चतम तापक्रम अनेक बार १२०° फा० से अधिक अंकित किया जा चुका है। हिमालय के अधिकांश पहाड़ी केन्द्रों में अगस्त के महीने में आर्द्रता १००% पाई जाती है और आकाश मेघाच्छन्न रहता है, किन्तु दिसम्बर में इन्हीं स्थानों में आर्द्रता 0% हो जाती है। कोचीन का मध्यम औसत तापक्रम ८०° फा० से नीचे नहीं जाता और न ही न्यूनतम तापक्रम ७३° फा० से नीचे उतरता है। इसके विपरीत श्रीगंगानगर में औसत उच्च तापक्रम मई में १०८° फा० से अधिक और औसत न्यूनतम तापक्रम जनवरी में ३८° फा० तक पहुँच जाता है। अस्तु, स्पष्ट होता है कि भारत में जलवायु की दशा में देश के विभिन्न भागों में अन्तर पाया जाता है।

भारत के जलवायु पर दो बाहरी कारणों का प्रभाव पड़ता है। उत्तर की ओर हिमालय की हिमाच्छादित श्रेणियाँ इसको मध्य एशिया की ओर से आने वाली शीतल वायु से बचाकर इसको महाद्वीपीय जलवायु (Continental Climate) का रूप देती हैं जिसकी प्रमुख विशेषतायें स्वच्छ दशाओं का आधिक्य, वायु की शुष्कता, अधिक दैनिक तापक्रमान्तर और वर्षा की न्यूनता है। दक्षिण की ओर हिन्दमहासागर की निकटता इसको गर्म मानसूनी जलवायु देती है जिससे उष्णकटिबन्धीय जलवायु की आदर्श दशायें प्राप्त होती हैं। डा० स्टाम्प का कथन है कि "हम भारत को सदैव ही मुख्यतः उष्ण कटिबन्धीय देश मानते हैं। और यह सत्य भी है क्योंकि उत्तर की विशाल पहाड़ी-दीवार से अवरोधित सम्पूर्ण क्षेत्र को एक ही इकाई मानना चाहिए, जिसमें एक ही प्रकार की जलवायु उष्ण मानसूनी पाई जाती है।"[१] इस प्रकार की जलवायु की मुख्य विशेषतायें न्यून दैनिक तापक्रमान्तर और उसकी एक-समानता, वायु की अधिक आर्द्रता एवं वर्षा का न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र ही होना है।

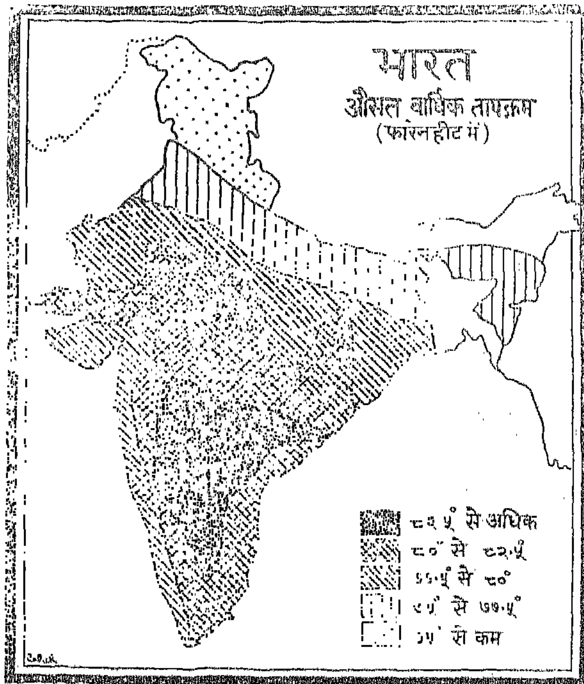
भारत के जलवायु विभाग—

डा० स्टाम्प के अनुसार जलवायु की दृष्टि से भारत को दो भागों में बाँट सकते हैं: (१) उत्तरी भारत या महाद्वीपीय भारत और (२) दक्षिणी प्रायद्वीप या उष्ण कटिबन्धीय भारत।

---

१. L. D. Stamp, Asia, p. 170.

दक्षिणी प्रायद्वीप कर्क और विषुवत् रेखाओं के मध्य में स्थित है अतएव इस भाग की जलवायु उष्ण कटिबन्ध जैसी है। यहाँ तापक्रम सदैव ऊँचा रहता है और तापक्रम का मौसमी अन्तर प्रायः नहीं के बराबर रहता है। शीतकाल में तापक्रम विषुवत् रेखा से निकटता और सामुद्रिक प्रभावों द्वारा निर्धारित होते हैं। यह तापक्रम ६५° से ८०° फा० के बीच रहते हैं किन्तु ग्रीष्म ऋतु में कर्क रेखा के निकट तापक्रम ९०° फा० तक पहुँच जाते हैं। इस समय समुद्री तटों पर सामुद्रिक प्रभावों के कारण सम-जलवायु (Equable Climate) और मेघाच्छन्नता पाई जाती है। समुद्र के धरातल से ऊँचाई तथा समुद्र से निकटता के कारण कुछ स्थानीय विभिन्नताएँ भी पाई जाती हैं। जनवरी महिने में समताप रेखायें दक्षिण की ओर झुकी पाई जाती है इससे यह स्पष्ट होता है कि पूर्वी तट के शीतकालीन तापक्रम पश्चिमी तट की अपेक्षा अधिक गर्म रहते हैं। मलाबार तट पर तापक्रमान्तर केवल ६° फा० रहता है जब कि दक्षिण-पूर्वी मद्रास में यह लगभग १२° फा० तक रहता है। पठारी प्रदेश में वर्षा साधारण किन्तु तटीय भागों में ८०" तक वर्षा होती है।



चित्र ५६—औसत वार्षिक तापक्रम

उत्तरी भारत कर्क रेखा के उत्तर में स्थित है किन्तु इस भाग की जलवायु सब जगह एक समान नहीं है। पश्चिमी भाग में (मुख्यतः पंजाब और राजस्थान) गर्मी का मौसम बहुत गर्म और जाड़े की ऋतु बहुत ठंडी होती है तथा वर्षा में वाष्प की मात्रा बहुत ही कम होती है। इसके विपरीत पूर्वी प्रदेश में बंगाल, आसाम, बिहार और पूर्वी-उत्तर प्रदेश में जाड़े का मौसम कम ठंडा और गर्मियों में कम गर्म होता

है तथा वायु में सदैव ही नमी बनी रहती है। उत्तरी भारत में ग्रीष्म काल के तापक्रम पर इन बातों का प्रभाव पड़ता है : (i) सूर्य की सीधी किरणें; (ii) समुद्र से दूर होने के कारण स्थल का प्रभाव; (iii) प्रतिचक्रवात जो निरंतर तापक्रम को ऊँचा बनाये रखते हैं; (iv) वर्षा लाने वाली दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हवाओं के आने से तापक्रम में कमी हो जाना। गर्मी की मौसम में भारत में अधिकतम तापक्रम दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब, मध्यप्रदेश और राजस्थान में रहते हैं। जाड़े की मौसम में सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने के अतिरिक्त यहाँ चलने वाले प्रतिचक्रवात भी तापक्रम को निर्धारित करते हैं। शीतकालीन तापक्रम ५५° फा० और ६५° फा० के बीच रहते हैं और जून में ९०° से ९५° फा० के बीच में। वर्षा पश्चिमी भागों में ३०″ से कम किन्तु पूर्वी भागों में १००″ से भी अधिक होती है।

उपरोक्त दोनों भागों को जनवरी के तापक्रम एवं वर्षा की मात्रा के आधार पर कई उपविभागों में बांटा जा सकता है। ये उपविभाग इस प्रकार हैं :—

(क) **महाद्वीपीय भारत**—यह कर्क रेखा के उत्तर में फैला है। इसके अन्तर्गत निम्नांकित उप-विभाग हैं :—

(१) हिमालय प्रदेश,
(२) उत्तरी पश्चिमी पठार,
(३) उत्तरी पश्चिमी शुष्क मैदान,
(४) मध्यम वर्षा का प्रदेश,
(५) अधिक एवं मध्यम वर्षा के मध्य का भाग।

(ख) **उष्ण-कटिबन्धीय भारत**—कर्क रेखा के दक्षिण में स्थित है। इसके निम्नांकित उप-विभाग हैं :—

(६) अत्यन्त वर्षा का प्रदेश,
(७) अधिक वर्षा का प्रदेश,
(८) मध्यम वर्षा वाला अन्तर्द्वीपीय भारत,
(९) पश्चिमी समुद्र तट (कोंकन तट), Konkan
(१०) पश्चिमी समुद्र तट (मलाबार तट), Malabar
(११) मद्रास तट।

(क) महाद्वीपीय भारत

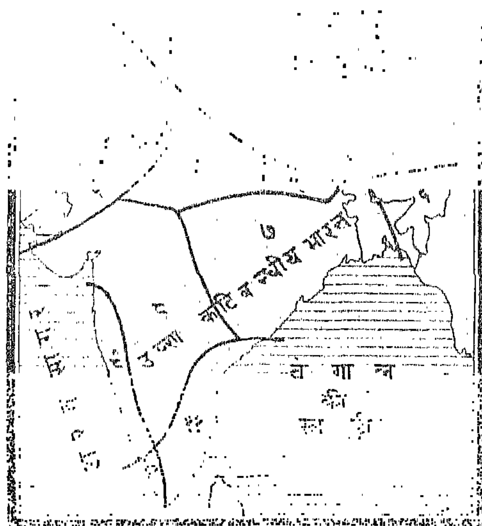
(१) **हिमालय प्रदेश** (Himalayan Region)—यह प्रदेश भारत के उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक लगभग [illegible] में फैला है। विभिन्न ऊँचाईयों पर तापक्रम में भिन्नता पाई जाती है। ८,००० फीट तक शीतकाल का तापक्रम ४०° फा० से ४५° फा० तक रहता है और गर्मियों में ५५° फा० से ६५° फा० तक। औसत तापक्रम ५५° फा० रहता है किन्तु पश्चिमी हिमालय प्रदेश में तापक्रम हिमांक बिन्दु से नीचे भी गिर जाते हैं। मसूरी तथा शिमला जैसे नगरों में शीतऋतु में बर्फ गिरना एक साधारण सी बात है। बंगाल की खाड़ी से उठने वाले मानसून से आसाम से उत्तर प्रदेश की तराई तक ८०″ वर्षा हो जाती है। पंजाब के हिमालय प्रदेश में जाड़े में चक्रवातों द्वारा पर्याप्त वर्षा हो जाती है। पश्चिमी हिमालय प्रदेश का प्रतिनिधि नगर शिमला एवं पूर्व का दार्जिलिंग है।

(२) **उत्तरी पश्चिमी पठार** (North Western Plateau)—यह प्रदेश सतलज नदी के उत्तर-पश्चिम में है। इसकी भूमि पथरीली और शुष्क है। शीतकाल में

इसका तापक्रम ५५° फा० से कम रहता है कहीं-कहीं तो तापक्रम हिमांक बिन्दु से भी नीचे हो जाता है। गर्मियों में औसत तापक्रम ७५° फा० तक रहता है। यहाँ वर्षा बहुत कम होती है। १५" से भी कम। अधिकतर वर्षा चक्रवातों द्वारा होती है। अमृतसर इस भाग का प्रतिनिधि नगर है।

(३) **उत्तर-पश्चिमी शुष्क मैदानी प्रदेश** (North-West Dry Lowlands)—इस प्रदेश के अन्तर्गत दक्षिणी पंजाब और राजस्थान शामिल हैं। यहाँ तापक्रम गर्मी में ११०° फा० से ऊँचा किन्तु जनवरी में ५५° फा० से ७५° फा० तक रहता है। यह प्रदेश शुष्क है। वर्षा १०" से भी कम होती है। कहीं-कहीं तो ५" से भी कम होती है। जब कभी वर्षा होती है तो प्रायः बाढ़ें आ जाती हैं। जयपुर इस प्रदेश का प्रतिनिधि नगर है।

(४) **मध्यम वर्षा का प्रदेश** (Moderate Rainfall Region)—इस प्रदेश के अन्तर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मालवा के पठार का पश्चिमी भाग, पूर्वी राजस्थान, और देहली हैं। गर्मी के आरम्भिक महीनों में—अप्रैल मई—में इस प्रदेश का तापक्रम बहुत ऊँचा हो जाता है और अधिकांश भागों में 'लू' चलती हैं। जनवरी का तापक्रम ५५° फा० और ६५° फा० के बीच में रहता है तथा गर्मी का तापक्रम ९०° फा० से ९५° फा० तक। गर्मी में अधिक गर्मी और सर्दी में पर्याप्त सर्दी पड़ती है। वर्षा का औसत १५" से ३०" तक है। गर्मियाँ प्रायः सूखी बीतती हैं। कुछ वर्षा शीतकाल में चक्रवातों से हो जाती है।



चित्र ६०—जलवायु के विभाग

(५) **अधिक एवं मध्यम वर्षा के मध्य के प्रदेश** (Transitional Region)—इस प्रदेश के अन्तर्गत उत्तरी बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश है। इसका जनवरी तापक्रम ६०° फा० से ६५° फा० रहता है। वर्षा का औसत ४०" से ६०" है। इसका लगभग ९०% बंगाल की खाड़ी के मानसून द्वारा प्राप्त होता है। पटना इस जलवायु का प्रतिनिधि नगर है।

(ख) उष्ण कटिबन्धीय भारत

(६) **अत्यधिक वर्षा का प्रदेश** (Very Heavy Rainfall Areas)—यह प्रदेश आसाम में पड़ता है। इस प्रदेश की जलवायु बहुत नम है। वर्षा ऋतु लम्बी होती है। अधिकतर वर्षा बंगाल की खाड़ी के मानसून द्वारा होती है। औसत वर्षा १००″ से भी अधिक होती है। चेरापूंजी नामक स्थान में ४२५″ वृष्टि हो जाती है। इस प्रदेश का तापक्रम साधारणतया ऊँचा रहता है—जनवरी में ६५° फा० से ऊपर। शीतऋतु छोटी होती है।

(७) **अधिक वर्षा का प्रदेश** (Heavy Rainfall Region)—इस प्रदेश के अन्तर्गत पूर्वी पठार व गंगा की घाटी के मध्यवर्ती और निचले भाग सम्मिलित हैं—यथा बंगाल, उड़ीसा, दक्षिणी बिहार और मध्य प्रदेश। यहाँ जनवरी का तापक्रम ६५° फा० से ७५° फा० तक और मई का तापक्रम ८५° फा० से ९५° फा० तक रहता है। वर्षा ४०″ से ८०″ तक होती है जिसका कुछ भाग जाड़े में बंगाल की खाड़ी से उठने वाले चक्रवातों द्वारा प्राप्त होता है। नागपुर और कलकत्ता इस प्रदेश के प्रतिनिधि नगर हैं।

(८) **मध्यम वर्षा वाला अन्तर्द्वीपीय भारत** (Moderate Rainfall Area)—इस प्रदेश में गुजरात, सौराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश से लेकर मैसूर और आंध्र तक स्थित पूर्वी तथा पश्चिमी घाट के पहाड़ों के बीच का क्षेत्र सम्मिलित है। यह प्रदेश पश्चिमी घाट के वृष्टिछाया में आजाने के कारण साधारण वर्षा प्राप्त करता है। यहाँ वर्षा ३०″ से अधिक नहीं होती। यहाँ गर्मी में साधारण गर्मी और सर्दी में मामूली सर्दी पड़ती है। मई का औसत तापक्रम ९०° फा० और जनवरी का ६५° फा० से ७५° फा० रहता है। हैदराबाद इस प्रदेश का प्रतिनिधि नगर है।

(९) **पश्चिमी समुद्र तट** (Western Coast)—यह प्रदेश नर्मदा से आरम्भ होकर गोआ तक फैला है। समुद्र के निकट होने के कारण यह प्रदेश उससे प्रभावित रहता है। जनवरी में तापक्रम ७५° फा० से नीचे नहीं गिरता। औसत तापक्रम ७५° फा० से ८०° फा० तक रहता है। वार्षिक तापक्रमान्तर १०° फा० से थोड़ा ही अधिक रहता है। वर्षा यहाँ ८०″ से अधिक हो जाती है। यह अरब सागर के मानसून से होती है। [illegible] नगर है।

(१०) [illegible] यह प्रदेश गोआ से लगाकर कुमारी अंतरीप तक फैला है। यहाँ [illegible]″ तक होती है। यह प्रधानतः दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से होती है। यहाँ का वार्षिक औसत तापक्रम ८०° फा० तक रहता है। वार्षिक तापक्रमान्तर १०° फा० रहता है। इसीलिये इस प्रदेश को विषुवत् रेखीय जलवायु की श्रेणी में रखा जाता है। त्रिवेन्द्रम इस प्रदेश का प्रतिनिधि नगर है।

(११) **मद्रास का तट**—इस प्रदेश में जनवरी का तापक्रम ७५° फा० रहता है तथा वार्षिक तापक्रमान्तर १०° फा० से कुछ ही अधिक रहता है। वर्षा की मात्रा ४०″ से ६०″ तक होती है किन्तु इसका अधिकांश नवम्बर-दिसम्बर में लौटते हुए उत्तरी-पूर्वी मानसून द्वारा प्राप्त होता है। मद्रास इस प्रदेश का प्रतिनिधि नगर है।

नीचे की तालिकाओं में प्रमुख नगरों के तापक्रम सम्बन्धी आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—

मासिक तथा वार्षिक सर्वोच्च तापक्रम (फा० में)

क्षेत्र	ऊँचाई (फीटों में)	जन०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	नं०	दि०	वार्षिक तापक्रम
पहाड़ी प्रदेश :														
दार्जिलिंग	७,४३२	४७·०	४७·८	५५·४	६१·२	६२·९	६४·९	६५·७	६५·६	६४·६	६१·७	५५·६	५०·५	५८·६
शिलांग	४,९२१	६०·१	६०·१	७०·४	७४·१	७४·०	७४·५	७५·३	७५·१	७४·३	७१·१	६६·०	६१·६	६९·९
शिमला	७,२२४	४७·५	४७·८	५७·०	६५·९	७३·२	७५·१	७०·९	६८·४	६८·४	६४·३	५८·३	५०·६	६२·४
तटीय प्रदेश :														
बम्बई	३५	८३·२	८३·१	८६·२	८९·१	९१·१	८८·५	८५·५	८५·०	८५·५	८८·९	८९·४	८६·६	८६·८
मद्रास	५१	८५·३	८८·३	९१·४	९१·५	१०१·३	९९·६	९६·६	९४·८	९३·९	९०·१	८५·४	८४·१	९२·२
मैदानी प्रदेश :														
इलाहाबाद	३३२	७४·८	७९·२	९१·७	१०२·६	१०७·१	१०२·२	९२·१	८९·४	९१·५	९०·४	८३·४	७५·७	९०·१
कलकत्ता	२१	४९·६	८३·७	९२·५	९६·८	९५·६	९२·४	८९·५	८९·०	८९·९	८९·२	८४·२	७९·४	८८·५
कानपुर	४१३	७१·९	७७·०	८९·४	९९·४	१०६·२	१०२·७	९२·४	८९·७	९०·९	९१·२	८२·८	७४·०	८९·०
कटक	८७	८३·१	८८·२	९६·६	१०१·२	१०१·४	९५·५	८९·५	८९·०	९०·०	८९·७	८५·०	८१·२	९०·९
नई दिल्ली	७१०	७०·५	७४·७	८५·०	९६·६	१०४·८	१०२·४	९५·३	९३·०	९३·५	९२·५	८३·२	७३·७	८८·८
लखनऊ	३७१	७३·९	७८·६	९०·८	१०१·४	१०५·४	१००·२	९२·४	९०·५	९१·९	९१·४	८३·९	७५·९	८९·७
पटना	१७३	७३·०	७७·८	८९·८	९८·९	१००·३	९६·२	९०·७	८९·१	८९·७	८८·६	८२·१	७४·६	८७·६
पठार :														
देहरादून	२,२३९	६६·१	६९·३	७९·४	९०·०	९६·०	९३·७	८६·५	८४·५	८४·८	८२·९	७५·४	६८·७	८१·४
नागपुर	१,०१०	८३·७	८८·२	९६·७	१०४·२	१०८·७	९९·५	८८·३	८७·३	८९·८	९०·६	८५·५	८१·७	२·९०

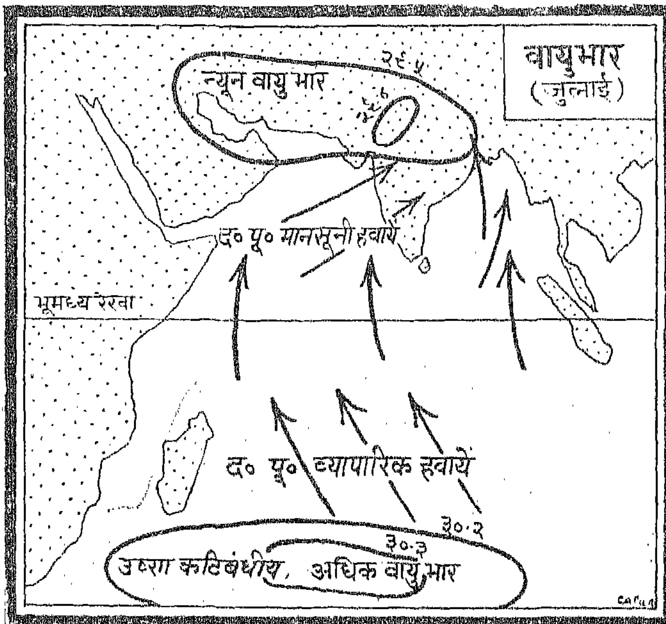
मासिक तथा वार्षिक न्यूनतम तापक्रम (फा० में)

	ऊँचाई (फीटों में)	ज०	फ०	मा०	अ०	मई	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक तापक्रम
पहाड़ी प्रदेश :														
दार्जिलिंग		३५·४	३६·६	४३·०	४८·८	५२·४	५६·५	५८·०	५७·७	५६·०	५०·२	४३·१	३३·६	४७·९
शिलांग		३८·८	४२·४	५०·८	५७·०	५९·१	६३·०	६४·६	६४·०	६१·६	५४·८	४६·२	४०·०	५३·५
शिमला		३५·४	३६·१	४३·६	५०·६	५७·७	६०·१	५९·२	५९·२	५६·३	५१·४	४४·२	३९·३	४९·४
तटीय प्रदेश :														
बम्बई		६६·७	६७·४	७१·९	७६·१	७९·६	७८·६	७६·७	७६·१	७५·७	७५·६	७२·५	६८·८	७३·८
मद्रास		६७·१	६८·४	७२·४	७८·१	८१·७	८१·१	७९·३	७८·०	७७.२	७५·०	७१·९	६८·९	७४·९
मैदानी प्रदेश :														
इलाहाबाद		४७·१	५०·९	६१·०	७१·४	७९·९	८२·९	७९·८	७८·५	७६·६	६७·१	५४·३	४७·१	६६·४
कलकत्ता		५४·६	५९·४	६८·८	७५·५	७७·५	७८·६	७८·६	७८·३	७८·०	७३·८	६३·७	५५·०	७०·२
कानपुर		४५·७	५१·०	६०·१	७०·६	८०·४	८३·०	७९·९	७८·७	७६·२	६६·०	५३·९	४६·५	६६·०
कटक		५६·८	६४·८	७१·८	७७·५	७९·९	७९·६	७८·३	७८·१	७७·८	७४·४	६५·८	५८·७	७२·२
नई दिल्ली		४३·३	४९·२	५७·१	६७·७	७८·८	८२·५	८०·१	७८·४	७५·५	६४·३	५१·८	४५·०	६४·५
लखनऊ		४७·१	५१·४	६०·६	७०·८	७८·३	८१·७	७९·५	७८·६	७६·५	६६·५	५४·१	४७·३	६६·०
पटना		५१·१	५४·८	६४·३	७३·५	७८·१	७९·९	७९·९	७९·७	७८·९	७२.८	६१·०	५२.३	६८·९
पठार :														
देहरादून		४४·०	४६·६	५४·१	६२·५	७०·१	७४·९	७३·८	७२·९	६९·५	६०·३	५१·१	४५·१	६०·३
नागपुर		५६·०	५९·९	६६·७	७४·५	८०·९	७९·६	७५·५	७५·०	७४·२	६६·५	५९·१	५३·८	६८·५

मानसूनी जलवायु

भारत मानसूनी जलवायु का मुख्य देश है। इस जलवायु की सबसे बड़ी विशेषता ऋतुओं का बदलना है। हवा की दिशा साल भर में दो बार बदलती है। साल के ६ महीने यह स्थल की ओर से और शेष ६ महीने जल की ओर से चलती है। 'मानसून' एक अरबी भाषा का शब्द है जिसके अर्थ 'मौसम' होते हैं। हवाओं का बदलना यूरेशिया जैसे महाद्वीप में असाधारण गरमी और सरदी के प्रभाव से होता है। भारतवर्ष के उत्तर में एशिया का अविभाज्य अंग एवं दक्षिण में हिन्द महासागर की लहरों से पल्लवित होने के कारण मानसून एक विस्तृत खण्ड के रूप में हमारे लिये विशेष महत्व रखता है।

ग्रीष्म में (जून में) जब सूर्य कर्क रेखा पर या उसके आस-पास लम्बवत् चमकता है तो उत्तरी गोलार्द्ध में विशेषकर एशिया महाद्वीप एवं भारत जैसे उष्ण-कटीय देश में प्रचण्ड रूप से गर्मी पड़ती है। परिणाम स्वरूप मध्य एशिया में बैकाल झील के आस-पास न्यून-भार का एक केन्द्र बन जाता है पर हिमालय के कारण एक दूसरा न्यून-भार का केन्द्र लाहौर के आसपास भी बनता है। (यह भार ७४७ मिलीमीटर है)। यद्यपि यह एशिया वाले भार से कुछ अधिक ही होता है पर उसकी महत्ता अधिक है। इस समय उच्च वायुभार के क्षेत्र जापान के दक्षिण में प्रशान्त

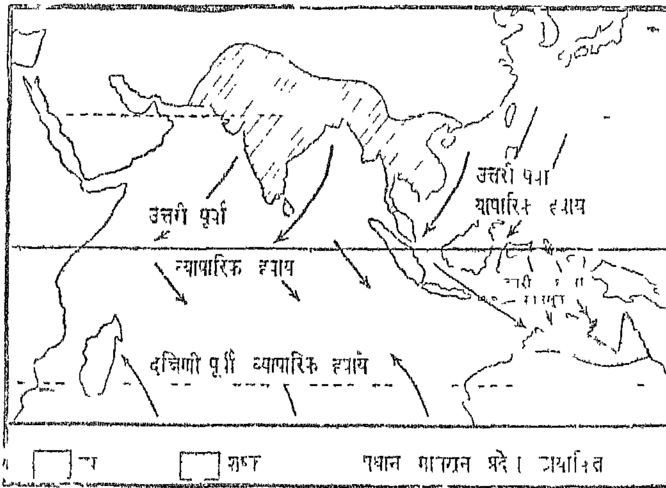


चित्र ६१—जुलाई वायुभार और हवायें

महासागर तथा आस्ट्रेलिया में होते हैं। जब किसी क्षेत्र विशेष में वायुभार न्यून हो जाता है तो उस स्थान पर चारों ओर से हवाएँ (समुद्रों से) चलने लगती हैं। चूंकि ये हवाएँ भाप से भरी होती हैं अतः खूब वर्षा करती हैं। इन्हीं हवाओं में से दक्षिणी

हिन्द-महासागर में उठने वाली दक्षिणी पश्चिमी हवाएँ भारत में आने के बाद हिमालय को पार नहीं कर सकतीं अतः यह भारत में ही खूब गर्जन-तर्जन के साथ वर्षा कर देती हैं।

इसके ठीक विपरीत सर्दियों में (जनवरी में) होता है जबकि सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में होता है एवं उत्तरी गोलार्द्ध में सर्दी के कारण एशिया महाद्वीप के मध्य में बैकाल झील के निकट उच्च भार का केन्द्र बन जाता है। यहाँ का औसत वायुभार ७७७ मिलीमीटर होता है। इसी प्रकार भारत के सीमान्त पश्चिमी भाग में भी मुल्तान के आस पास उच्च वायुभार का केन्द्र बनता है इसका औसत भार ७६५ मिलीमीटर होता है। इसके फलस्वरूप समुद्रीय धरातल पर विशेषतः उत्तरी प्रशान्त महासागर और विषुवत् रेखीय प्रदेशों से लेकर दक्षिण तक तुलनात्मक भार रहता है। आस्ट्रेलिया में भी निम्न भार रहता है क्योंकि इस समय वहाँ गर्मी पड़ती है। अतएव, हवायें स्थल से समुद्र की ओर चलने लगती हैं। यह स्थलीय हवायें उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक हवायें (या शीतकालीन मानसून) होती हैं। सूखी होने के कारण इन हवाओं से वर्षा नहीं होती। इस समय सारा पूर्वी और दक्षिणी एशिया इन हवाओं द्वारा प्रभावित होता है।



चित्र ६२—शीतऋतु का मानसून

मानसूनी भागों में होने के कारण भारतवर्ष भी वर्ष के कुछ महीनों तक स्थली हवा और कुछ महीनों तक समुद्री हवा के प्रभाव में रहता है। यह स्थली हवाएँ साधारण तौर पर उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक हवाएँ होती हैं। समुद्री हवायें दक्षिणी-पश्चिमी मानसून कहलाती हैं जो अधिकतर दक्षिणी गोलार्द्ध में चलने वाली दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक हवायें ही होती हैं लेकिन विषुवत् रेखा पार करने पर फैरल नियम के अनुसार उनका रुख दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर हो जाता है किंतु भारत के उत्तर में हिमालय और उससे मिली हुई पर्वत श्रेणियों के कारण यहाँ पर चलने वाली हवायें मध्य एशिया की हवाओं से कोई लगाव नहीं रखतीं। इसलिये

भारत की जलवायु एशिया के दूसरे मानसूनी प्रदेशों (चीन, इण्डोचीन आदि) की जलवायु से भिन्न होती है।

भारत में निम्न चार प्रमुख ऋतुयें पाई जाती हैं :—

(१) **उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक हवा का समय** (N. E. Monsoon Season)—यह ऋतु दिसम्बर से फरवरी तक रहती है।

(२) **ग्रीष्म ऋतु** (Hot Weather Season)—यह ऋतु मार्च से मई तक रहती है।

(३) **दक्षिणी-पश्चिमी मानसून का समय** (South West Monsoon Season)—यह ऋतु जून से सितम्बर तक रहती है और इसी काल में देश व्यापी वर्षा होती है।

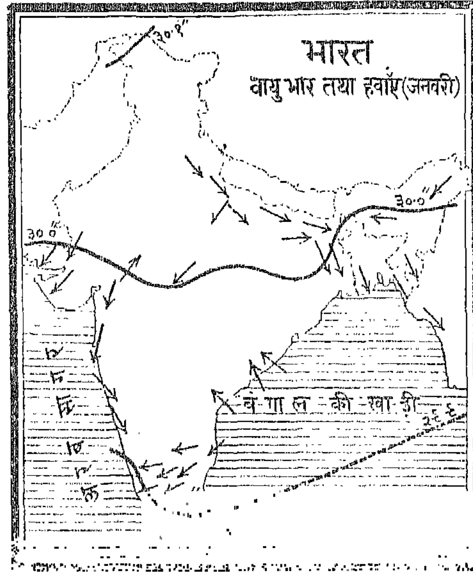
(४) **लौटती मानसून का समय** (Retreating Monsoon Season)—यह ऋतु अक्तूबर एवं नवम्बर दो महीने रहती है इसी समय मद्रास आदि स्थलों पर वर्षा होती है।

१. उत्तरी-पूर्वी व्यापारिक हवा का मौसम (North East Monsoon Season)—इस ऋतु को शीत ऋतु (Cold Weather Season) भी कहते हैं। इसकी अवधि दिसम्बर से फरवरी तक होती है।

(क) **वायुभार की दशायें** (Weather Conditions)—उत्तरी भारत में अक्टूबर से ही आकाश मेघ रहित हो जाने लगता है और दिसम्बर तक सम्पूर्ण देश मेघ-विहीन हो जाता है—केवल दक्षिणी-पूर्वी भारत में लौटती मानसून से जो वर्षा होती है उसके कारण कहीं-कहीं बादल छा जाते हैं। भारत में यह मौसम दिसम्बर से ही प्रारम्भ हो जाता है। चूंकि इस समय सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में होता है वह दिसम्बर के अन्त तक (२२ दिसम्बर) मकर रेखा पर पहुँच जाता है और फिर विषुवत् रेखा की ओर लौटना प्रारम्भ करता है। अतः इस समय एशिया में उच्च-भार की पेटी मध्य एशिया से उ० पू० चीन और अरब तथा फारस तक फैल जाती है। [illegible] उच्च-भार पेशावर के आस-पास बन जाता है। सारे देश के इस [illegible] रहते हैं। "स्वच्छ आकाश, सुहावनी मौसम, निम्न तापक्रम एवं आर्द्रता, [illegible] दैनिक तापान्तर तथा धीमी चलने वाली उत्तरी हवाएँ" इस ऋतु की प्रमुख विशेषतायें हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों का तापान्तर भिन्न-भिन्न रहता है। कहीं-कहीं पर दैनिक तापान्तर बहुत ही कम होता है किन्तु कहीं-कहीं यह [illegible] फा० तक पहुँच जाता है जैसे मालाबार प्रदेश में तापान्तर ४०° फा० होता है जब कि मद्रास में यह अन्तर १२° फा० और बंगाल के कुछ क्षेत्रों में २०° फा० तथा पश्चिमी राजस्थान में ४०° फा० तक पहुँच जाता है।

दिसम्बर के मध्य से मध्य एशिया में उच्च-भार (७७७ मिली बार) होने के कारण पछुआ हवाओं की शाखाएँ दक्षिण की ओर मुड़ जाती हैं तथा वे फारस, उत्तरी भारत एवं दक्षिण-चीन की ओर बढ़ने लगती हैं। इसी क्षेत्र में इन चक्रवातों से भारत के उत्तरी भागों में बीच-बीच में आकाश की स्वच्छता मेघाछन्न स्थिति में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार के चक्रवात एक महिने में ४ से ६ तक आ सकते हैं। यद्यपि इनसे बहुत ही कम वर्षा होती है परन्तु यह वर्षा रबी की फसल के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। वर्षा कहीं भी ५″ से अधिक नहीं होती है। पर्वतों के

उच्च ढालों पर बर्फ की वर्षा भी होती है। कभी कहीं तो कुछ बादलों से (चक्रवातों से) सारे उत्तरी भारत में वर्षा हो जाती है और कभी-कभी ये चक्रवात स्थानीय रूप से ही पंजाब एवं काश्मीर में अधिकतर वर्षा कर देते हैं। आरम्भ में जब चक्रवात

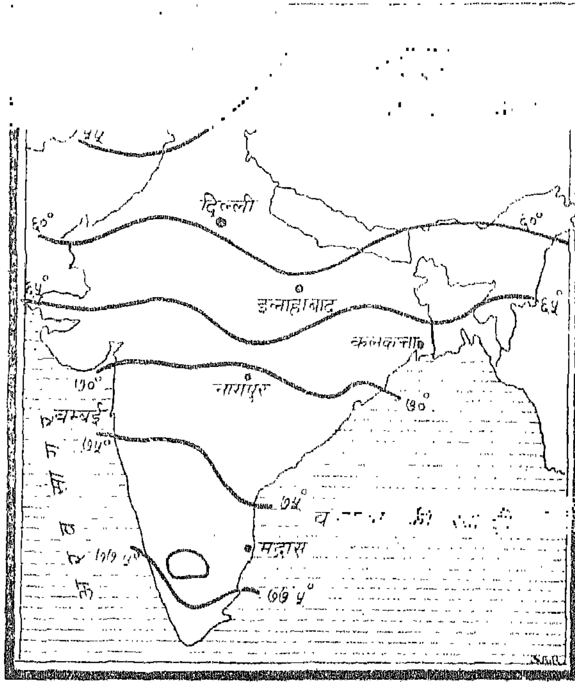


चित्र ६३—वायु भार तथा हवाएँ (जनवरी)

आने की सम्भावना होती है तो तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं परन्तु वर्षा के बाद में तापक्रम कम हो जाते हैं। कुछ स्थानों पर तो तापक्रम बहुत ही कम बढ़ते हैं किन्तु ऐसा स्थानीय एवं अस्थायी रूप से ही होता है। इस ऋतु में सारे देश के तापक्रम न्यून रहते हैं। सबसे कम तापक्रम उत्तरी पश्चिमी भारत में पाये जाते हैं। यहाँ यह ५०° फा० तक पहुँच जाते हैं। पर ज्यों-ज्यों हम पश्चिम व उत्तर से पूर्वी या दक्षिणी भारत में जाते हैं तापक्रम बढ़ते जाते हैं। गंगा सिन्धु के मैदान में तापक्रम ५०° फा० से ७०° फा० तक एवं दक्षिणी भारत में इसी ऋतु में तापक्रम ७०° फा० ६०° फा० तक पहुँच जाते हैं।

(ख) **तापक्रम** (Temperature)—सर्दियों में भारत के अधिकांश भागों में महाद्वीपीय वायु चलती है क्योंकि इस समय पेशावर के आस-पास के क्षेत्रों में उच्च-भार परिपक्वावस्था की स्थिति में पहुँच जाता है। तापक्रम ज्यों-ज्यों हम उत्तर से दक्षिण में जाते हैं बढ़ते जाते हैं। समताप रेखायें अक्षान्स रेखाओं के समानान्तर चलती हैं। सर्दी की मौसम में साधारणतया सबसे अधिक सर्दी दिसम्बर एवं जनवरी में पड़ती है। इस समय भारत के औसत तापक्रम कुछ स्थानों पर ८५° फ० तक रहता है जब कि उत्तर-पश्चिम में यह केवल ६५° फा० तक ही होता है। इसके विपरीत न्यूनतम औसत तापक्रम दक्षिणी भारत के धुर दक्षिण में ७५° फा० एवं उत्तर पश्चिम में कहीं-कहीं पर तापक्रम ४०° फा० या इससे भी कम हो जाते हैं। पश्चिमी राजस्थान में तो रात्रि को तापक्रम कई बार हिमांक बिन्दु (३२° फा०) से भी नीचे

पहुँच जाते हैं। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में नवम्बर की अपेक्षा फरवरी में अधिक ठंड रहती है और इसी महिने के प्रथम सप्ताह में ही निम्नतम तापक्रम अंकित किये गये हैं जबकि दक्षिणी भारत में तापक्रम फरवरी की तुलना में नवम्बर में अधिक निम्न रहते हैं। फरवरी में तो दक्षिणी पठार के कई भागों में तापक्रम ९०° फा० तक भी अंकित किया गया है।



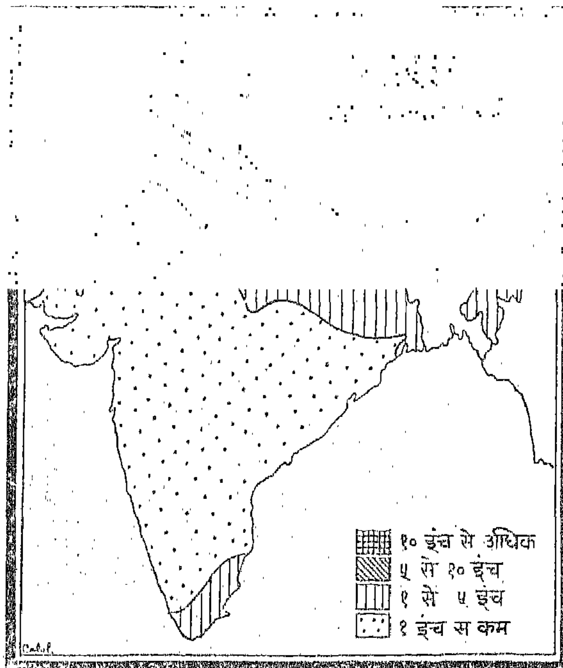
चित्र ६४—औसत तापक्रम (जनवरी)

इस समय फरवरी के आस-पास कैस्पियन एवं तुर्किस्तान प्रदेश की ठंडी हवायें भारतीय प्रदेश में प्रवेश कर जाती हैं। कभी-कभी इन ठन्डी लहरों के कारण तापक्रम १५° फा० से २०° फा० तक गिर जाते हैं। इसके फलस्वरूप बहुत ही गहरा कुहरा छा जाता है। यह विशेषकर उत्तर पश्चिमी भारत के मैदानों में कभी-कभी ही होता है। रात्रि के पिछले पहर ऐसे मौकों पर बहुत ही शीतल होते हैं। देश के उत्तरी पश्चिमी भाग पंजाब, काश्मीर आदि में प्रायः पाला भी पड़ता है लेकिन ज्यों-ज्यों दक्षिण और समुद्र की ओर बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों पाले की मात्रा धीरे-धीरे कम होती जाती है—यहाँ तक कि पश्चिमी बंगाल में (समुद्र के निकट होने से) तथा मद्रास में (विषुवत् रेखा के निकट होने से) पाले का नाम भी सुनाई नहीं पड़ता।

(ग) आर्द्रता (Humidity) सर्दी की ऋतु में ज्यों-ज्यों हम देश के आन्तरिक भागों में आते हैं त्यों-त्यों तापक्रम के साथ-साथ आर्द्रता में भी कमी आती जाती है। अतः इस काल में आपेक्षिक आर्द्रता (Relative humidity) कम ही रहती है। पश्चिमी

दक्षिणी पठार, गुजरात एवं दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में आर्द्रता का प्रतिशत ४० से ५० तक रहता है। देश के किसी भी भाग में आर्द्रता का प्रतिशत ६० से अधिक नहीं होता परन्तु राजस्थान के मरुस्थल में कई ऐसे भाग भी हैं जहाँ इस मौसम में आर्द्रता शून्य प्रतिशत रहती है।

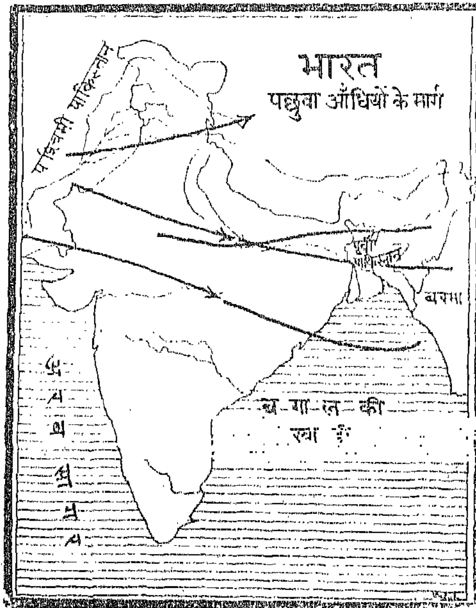
(घ) **वर्षा** :—इस मौसम में उत्तरी भागों में उत्तर-पश्चिम से आने वाले चक्रवात एवं दक्षिण में लौटती हुई मानसूनों द्वारा वर्षा होती है। उत्तरी पश्चिमी भारत में जो चक्रवात चलते हैं उसमें रुक रुक कर वर्षा होती रहती है। इसी समय दक्षिणी भारत के कोरोमण्डल तट पर भी वर्षा होती है क्योंकि इस दक्षिणी भाग में 'शान्त खण्ड' (Doldrums) आ जाते हैं जिससे हवा चक्कर लगाती है और यहाँ वर्षा कर देती है। यहाँ पर तूफान भी आते रहते हैं। प्रति तीन वर्ष में एक बार तूफान आने की आशा की जाती है जो मद्रास के दक्षिणी तटीय प्रदेशों तक वर्षा कर देते हैं। इस क्षेत्र में दिसम्बर के महीने में १०" तक वर्षा हो जाती है। यह औसतन १० दिन में होती है जबकि मैसूर में १" वर्षा एक या दो दिन में ही हो जाती है। उत्तर पश्चिम में या आन्तरिक भागों में जायें तो वहां सिर्फ बूंदी बूंदी ही होती है।



चित्र ६५—वर्षा (जनवरी-फरवरी)

उत्तर पश्चिमी भारत में पश्चिम से आने वाले चक्रवातों से वर्षा होती है। इन चक्रवातों में प्रायः १० में से ६ भूमध्यसागर से ईरान होते हुए आते हैं और शेष मध्य भारत या अरब-सागर में उत्पन्न होते हैं। इनका मार्ग साधारणतः हिमालय पर्वत श्रेणियों के साथ होता है। अस्तु १२° अक्षांश के दक्षिण के भाग में इनका

प्रभाव नहीं पड़ता। ये चक्रवात यूरोपीय चक्रवातों से मिलते-जुलते हैं किन्तु उनकी तरह प्रबल नहीं होते। इनसे उत्तरी भारत के तापक्रम एक दम बढ़ जाते हैं और इनकी समाप्ति पर तापक्रम गिर जाते हैं। इन चक्रवातों का मार्ग विषुवतरेखीय शांत खंडों (Doldrums) द्वारा निर्धारित होता है। जब इन खंडों की स्थिति उत्तर की ओर होती है तो इनका मार्ग उत्तर की ओर अधिक होता है तथा उनमें अरब-सागर की हवा कम होती है। इसके विपरीत जब शांत खंड दक्षिण की ओर स्थित होते हैं तो चक्रवातों का मार्ग भी दक्षिण की ओर अधिक होता है। इस समय चक्रवातों में नम हवा अधिक आ जाती है अतः इनके द्वारा पहाड़ों पर भी भीषण हिम-वर्षा होती है। इन चक्रवातों का औसत नवम्बर में २, दिसम्बर से अप्रैल तक प्रति महीने ४-५ और मई में २ का होता है[१]। ये चक्रवात पर्वतों की तलहटी एवं उनके आसपास के मैदानों में वर्षा कर देते हैं। इस प्रकार के चक्रवात महीने में ५ से ६ तक आते हैं परन्तु वर्षा की दृष्टि से सभी की महत्ता एक समान नहीं है। ये सब एक अनिश्चित अन्तर पर आते रहते हैं। महा-हिमालय में इस समय बहुत हिमपात होता है कुछ हिमपात उप-हिमालय में भी हो जाता है पर शिवालिक की पहाड़ियों पर हिमपात नहीं होता क्योंकि इस समय यहाँ पर वसन्त ऋतु के प्रारम्भिक दिन होते हैं। यदि

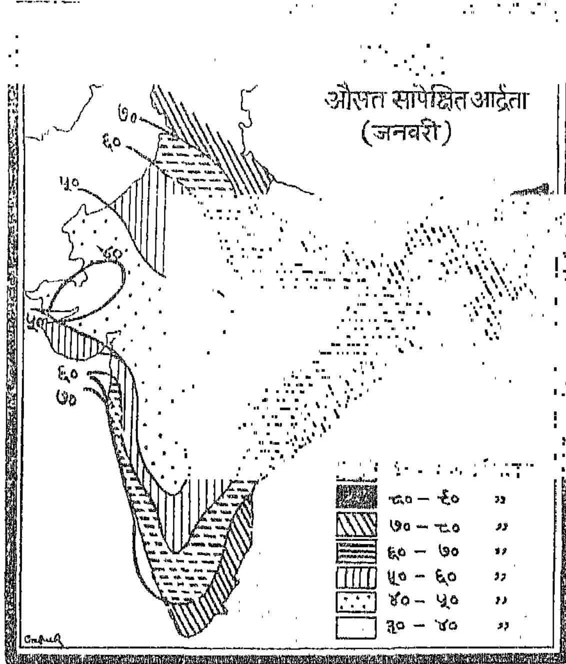


चित्र ६६—पछुवा आँधियों के मार्ग

वर्षा होती भी है तो यह हिमपात के रूप में नहीं होती। जब चक्रवातों का जोर अधिक होता है तो क्योंकि पहाड़ों की ठंडी हवा भारत के मैदानों में ठंडी लहर (Cold-wave) के रूप में आ जाती है इनसे सर्दी अधिक बढ़ जाती है। कई बार इन तूफानों से ओले भी पड़ते हैं जिनसे फसल को बहुत हानि पहुँचती है।

१. M. S. Randhawa, Agriculture & Animal Husbandry in India, 1958, p. 36

इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में वर्षा शिवालिक को मिलाते हुए होती है। यह वर्षा अधिकतर पंजाब एवं पश्चिमी भागों तक तथा कभी कभी बंगाल एवं आसाम तक भी पहुँच जाती है। कुल मिला कर इस क्षेत्र में १०" से कम वर्षा होती है। कभी-कभी देश के मध्य भागों एवं दक्षिणी पठार के उत्तरी भागों में भी कुछ शीतकालीन वर्षा हो जाती है। परन्तु इसी समय दक्षिणी कोरोमण्डल तट पर भी १०" के आसपास तक हो जाती है। इस ऋतु की वर्षा मात्रा में बहुत कम होती है (सम्पूर्ण वर्षा का केवल २%) किन्तु पंजाब और उत्तर-प्रदेश की गेहूँ, जौ, चना, आदि फसलों के लिए बहुत महत्व रखती है।



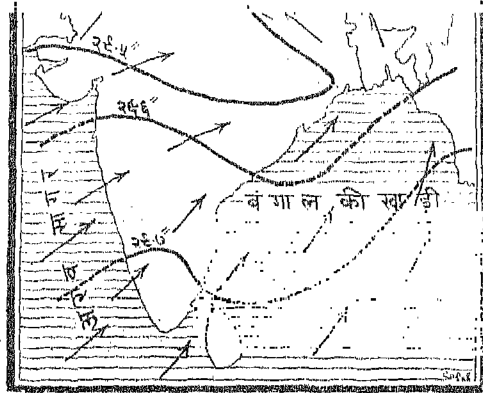
चित्र ६७—औसत सापेक्षिक आर्द्रता (जनवरी)

२. ग्रीष्म ऋतु (Hot weather Season) :—

(क) **वायुभार की दशायें** :—फरवरी तक सूर्य विषुवत रेखा के आस पास होता है तथा मार्च के अन्त तक वह कर्क रेखा की ओर आना आरम्भ कर देता है इस कारण सारे देश में तापक्रम बढ़ने लगते हैं और वायुभार में गिरावट आ जाती है। ठीक इसी समय दक्षिणी हिन्द महासागर, दक्षिणी अफ्रीका एवं आस्ट्रेलिया में भी तापक्रम गिरते हैं तथा उन क्षेत्रों में प्रति-चक्रवातों का चलना आरम्भ हो जाता है। ज्यों-ज्यों सूर्य कर्क रेखा की ओर बढ़ता जाता है त्यों-त्यों निम्न वायुभार उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ने लगता है। मार्च में देश के सर्वाधिक तापक्रम (१००° फा०) दक्षिणी भारत में पाये जाते हैं जबकि अप्रैल में मध्य प्रदेश, गुजरात, एवं सिन्धु के डेल्टा में उच्चतम तापक्रम १००° से ११०° फा० रहते हैं। मई में उच्चतम तापक्रम उत्तरी पश्चिमी

रेगिस्तान में १२०° फा० तक पहुँच जाता है। इससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि ज्यों २ गर्मी की मौसम बढ़ती है त्यों २ निम्न वायुभार का केन्द्र सूर्य के साथ २ पश्चिमोत्तर भाग में रेगिस्तान होने से खिसकता जाता है। मरुस्थल के अतिरिक्त इस समय नागपुर के निकट पठारी क्षेत्रों में भी एक निम्न भार का केन्द्र बन जाता है।

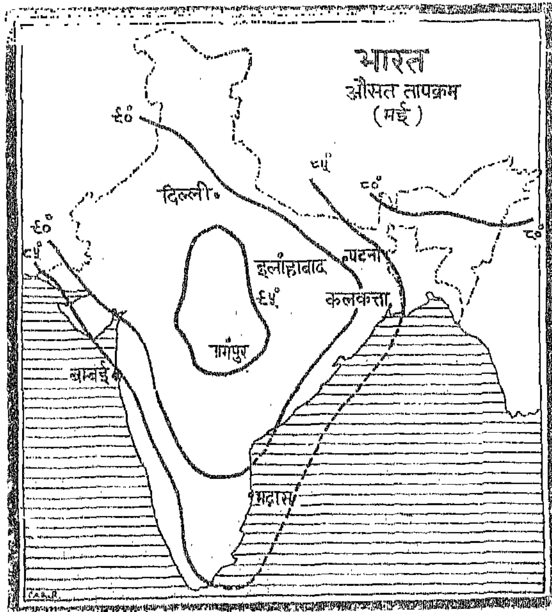
मार्च से मई तक, जब कि तापक्रम बढ़ते हैं तथा निम्न वायु-भार की दशायें बनती रहती हैं, हवा की दिशा एवं मार्ग में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। इस समय तक शीतकालीन मानसूनी हवाओं की दिशाएँ परिवर्तित हो जाती हैं तथा उनके निकटवर्ती स्थलों और समुद्रों में स्थानीय हवायें चलने लगती हैं। उत्तरी भारत में दिन में पश्चिमी हवायें तेज रहती हैं जबकि रात्रि को यही हवायें कमजोर पड़कर अनिश्चित दिशा में बहने लगती है। इन गर्म हवाओं को लू (Loo) कहते हैं। ये हवायें मैदानों पर दिन में असाधारण गर्मी पड़ने के कारण चलती हैं जब इन शुष्क हवाओं से आर्द्र हवायें मिलती हैं तो तेज तूफान आते हैं। इनका वेग कभी-कभी ७०-८० मील प्रति घंटा होता है इनसे वर्षा भी हो जाती है। बंगाल में इन तूफानों को नॉरवेस्टर (Norwester) कहते हैं। इसी समय धूल के तूफान उत्तर के शुष्क और उत्तरीय पश्चिमी प्रदेश से भी आते रहते हैं। इनसे बहुत हानि होती है।



चित्र ६८—वायुभार तथा हवाएँ (जुलाई)

(ख) **तापक्रम और आर्द्रता** :—इस समय तटीय प्रदेशों में स्थली एवं जलीय पवनें चलती हैं इसके फलस्वरूप वहाँ पर निम्न तापक्रम पाये जाते हैं जबकि दूसरी ओर आन्तरिक प्रदेशों में हवायें स्थल के एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलती हैं। इसके परिणाम स्वरूप तटीय प्रदेशों के तापक्रमों में एवं आन्तरिक प्रदेशों के तापक्रमों में बहुत ही अन्तर पड़ता है। यही नहीं दैनिक तापान्तर भी आन्तरिक भागों में अधिक

बना रहता है। यह ४०° फा० अथवा कभी कभी इससे भी अधिक पहुँच जाता है। किन्तु तटीय प्रदेशों में दैनिक तापान्तर १०° या १५° फा० पहुँचते हैं। ज्यों ज्यों गरमी का मौसम बढ़ता जाता है त्यों त्यों निम्न भार के क्षेत्र उत्तरी भारत की ओर बढ़ते हैं इसके फलस्वरूप उत्तर में बड़ी तेजी से तापक्रम बढ़ने लगते हैं। वैसे तो सारे देश में ही तापक्रम बढ़ते हैं पर उत्तर में विशेपतौर पर तेजी से बढ़ते हैं। जनवरी में उत्तरी भारत में सर्वोच्च तापक्रम ६५° फा० तक रहते हैं, मार्च में ६०° फा० या इससे अधिक तथा मई में तो उत्तरी पश्चिमी भारत में यह १२०° फा० से भी अधिक हो जाते हैं। सबसे अधिक तापक्रम श्री गंगानगर का रहता है (१२२° फा०)। रात्रि के न्यूनतम तापक्रम ७०° फा० के आसपास उत्तरी भारत में और ८०° फा० से कुछ अधिक दक्षिणी पठार के पूर्वी भागों में रहते हैं। मई में गंगा के निचले मैदानों में तापक्रम समय समय पर आने वाले बज्र तूफानों (Thunder Storms) के कारण



चित्र ६९—औसत तापक्रम (मई)

अधिक नहीं बढ़ते हैं। इस काल में दक्षिणी पंजाब, पश्चिमी राजस्थान और उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भाग सबसे अधिक गरम रहते हैं। आसाम, बंगाल, बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश भी इस समय बहुत गरम रहते हैं किन्तु समुद्र के निकटवर्ती भाग तथा पहाड़ी स्थान इस समय काफी ठंडे रहते हैं। पश्चिमी समुद्रतट पर इस समय तापक्रम ८०° से ८५° फा० रहते हैं। यहाँ दिन में तापक्रम १००° फा० से ऊँचा नहीं बढ़ता। यहाँ दिन यद्यपि ठंडा रहता है किन्तु रातें उत्तर की अपेक्षा गर्म रहती हैं। तापक्रम का उतार-चढ़ाव भी कम रहता है।

अनुपातिक आर्द्रता ज्यों-ज्यों हम किनारे से आन्तरिक भागों की ओर बढ़ते

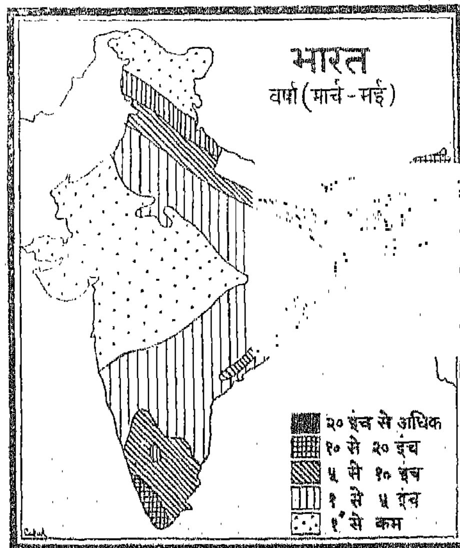
हैं त्यों-त्यों कम होती जाती है। वैसे तो भारत के आन्तरिक भागों में आर्द्रता कम ही रहती है पर देश के मध्यवर्ती भागों में विशेषकर मध्य दक्षिणी पठार के उत्तरी भाग एवं उसके आस-पास के प्रदेशों में आर्द्रता का प्रतिशत ३० या इससे भी कम होता है। गर्मियों में दोपहर के बाद उत्तरी भारत में पंजाब से बिहार तक कई स्थानों पर आर्द्रता ५०% तक पहुँच जाती है। ऐसे समय में जबकि हवा शुष्क एवं गर्म होती है प्रत्येक भाग में विप्लवकारी (Turbulent) प्रभाव बताती है। ठीक यही बात उत्तरी भारत के भागों में होती है। इस समय जब हवा की नीचे की परतें गर्म हो जाती हैं तो ऊपर की ठन्डी हवा नीचे उतरती है और गरम हो जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस मौसम में हवा बहुत ही कम आर्द्र पाई जाती है।



चित्र ७०—औसत सापेक्षित आर्द्रता

(ग) वर्षा :—मार्च से मई तक गर्मी की ऋतु में सारे भारत में वर्षा या तो होती ही नहीं या यदि होती भी है तो कुछ ही भागों में और वह भी बहुत ही कम मात्रा में (सम्पूर्ण वर्षा का केवल १%)। मार्च में उत्तरी भारत में पश्चिम से चक्रवात आते हैं इससे इन प्रदेशों में थोड़ी बहुत वर्षा हो जाती है। इन हवाओं के प्रभाव के कारण गंगा के पूर्वी मैदान और उत्तरी-पूर्वी भारत में तूफान आते रहते हैं जो कभी-कभी बड़ी हानि करते हैं। बंगाल और आसाम में इस समय समुद्र की ठंडी हवा के स्थल की गर्म हवा के मिलने से तूफान आते हैं—जिन्हें नॉर-वेस्टर (Nor-Wester) कहते हैं। इनसे साधारण वर्षा होती है। आसाम में मई में इतनी वर्षा हो जाती है कि वह जून की वर्षा की ⅓ होती है। इन तूफानों से कभी-कभी ओले भी

पड़ जाते हैं। दक्षिण पठार के दक्षिण पश्चिम में और पूर्व में हल्की-हल्की वर्षा होती है और तूफान भी आते रहते हैं। अप्रैल और मई में उस प्रदेश में वर्षा ३″ से ५″ तक हो जाती है। मलाबार तट के आस-पास भी मई में थोड़ी बहुत वर्षा हो जाती है। दक्षिण भारत की इस वर्षा को आम्र-वर्षा (Mango Showers) तथा कहवा उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में फूलों वाली बौछार (Blossom Shower) कहते हैं। इस वर्षा का आर्थिक महत्व दक्षिण की अपेक्षा बंगाल व आसाम में अधिक है क्योंकि आसाम के चाय के बागों में नवीन पत्तियों का पनपना इसी वर्षा के बाद होता है जब कि उत्तरी पश्चिमी प्रायद्वीप में सारी गर्मी में वर्षा का अभाव रहता है। हवायें शुष्क, जल-रहित होती हैं तथा मौसम कष्टदायक होता है किन्तु जून के आरम्भ में अचानक बड़ी तेजी से तूफान चलते हैं और मानसून प्रारम्भ हो जाता है। पंजाब, उत्तर प्रदेश और आसाम तथा उनके आस-पास के प्रदेशों में इस समय तूफान (hail-storms) चलते हैं। इनमें मेघगर्जन और ओले गिरते हैं। इस प्रकार के तूफान दक्षिण भारत के मध्यवर्ती प्रदेशों में भी आते रहते हैं। इन सब प्रदेशों में ज्यों-ज्यों ग्रीष्म ऋतु समाप्त होती जाती है त्यों-त्यों तूफानों की संख्या घटती जाती है। उत्तरी भारत में ये तूफान बहुत ही हानिप्रद होते हैं क्योंकि इनमें छोटे-छोटे पत्थर मिले होते हैं। कभी-कभी तो इन पत्थरों एवं कंकड़ों का व्यास २″ से ३″ तक होता है। इनके द्वारा न केवल कई बार पशु व मनुष्य ही मर जाते हैं वरन् गेहूँ की खड़ी फसल भी नष्ट हो जाती है।



चित्र ७१—वर्षा (मार्च-मई)

भारत में इस मौसम में वर्षा निम्न प्रकार से होती है :—

वर्षा (इन्चों में)	क्षेत्र
१" से भी कम	राजस्थान, गुजरात, खानदेश और मध्यप्रदेश तथा कुछ दक्षिणी भाग।
२" से ५" तक	बिहार, उड़ीसा, उत्तर-प्रदेश, पंजाब व दक्षिणी पठार में।
६" से १५" तक	मलाबार और कोरोमण्डल तट।
१५" से २५" या इससे अधिक	आसाम व बंगाल के कुछ भागों में (स्थानीय रूप से)।

इस प्रकार राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और दक्षिणी पठार के कुछ आन्तरिक भागों में मार्च या मई में (दक्षिणी पठार में) वर्षा होती है शेष समय शुष्क एवं गर्म रहता है। मई के अन्त तक तापक्रम बढ़ते रहते हैं और वर्षा जून में ही तटीय प्रदेशों में व्यापक रूप से प्रारम्भ हो जाती है।

३. वर्षा ऋतु (South-West Monsoon Season)

(क) वायु भार की दशायें—मई के अन्त तक उत्तरी भारत में हवा में शुष्कता आ जाती है और धूल के तूफान आने लगते हैं। ठीक इसी समय सूर्य भी कर्क रेखा पर लम्बवत् चमकने लगता है तथा निम्न भार का केन्द्रीय स्थल पश्चिम में पंजाब के आस-पास बन जाता है। जून के आरम्भ में इस स्थिति के उत्पन्न होजाने से अचानक ही बड़े मेघ-गर्जन एवं विद्युत्-तर्जन के साथ दक्षिणी-पश्चिमी मानसून फट पड़ता है। इस प्रकार अचानक मानसून के फटने का (Burst of monsoons) मुख्य कारण यह है कि विषुवत रेखीय निम्न भार की तुलना में थार के रेगिस्तान का निम्न भार और भी गहरा (Intense) हो जाता है। इसके फलस्वरूप दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक हवायें (जो कि विषुवत रेखा के दक्षिण में बहती हैं) इस निम्न वायु भार के केन्द्र तक आने का प्रयास करती हैं।[१] ज्योंही ये हवायें विषुवत रेखा को पार करती हैं फेरल के नियमानुसार अपनी दिशा बदल देती हैं और दक्षिणी पश्चिमी मानसून के नाम से भारत की ओर बढ़ने लगती हैं।

जिस प्रकार एक निम्न वायु भार का क्षेत्र थार रेगिस्तान में होता है उसी प्रकार का एक दूसरा निम्न वायु भार क्षेत्र नागपुर पठार के आसपास भी बन जाता है। पर चूंकि यह क्षेत्र एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते अतः वर्षा भी सभी स्थलों पर एक समान नहीं होती। भारत में मानसूनी वर्षा थोड़े २ अन्तर से आती है। यह अन्तर कभी २ बहुत लम्बा भी हो जाता है। सारी मानसून दो शाखाओं में परिवर्तित होकर वर्षा करती है। पहले यह मानसून बंगाल की खाड़ी की शाखा और बाद में अरब सागरीय शाखा के रूप में देश के आन्तरिक भागों में वर्षा करती है। मानसून जून एवं जुलाई तक बढ़ता ही रहता है और अगस्त तक स्थिर रहता है परन्तु उत्तर पश्चिमी भारत से यह सितम्बर के तीसरे सप्ताह में लौटना प्रारम्भ कर देता है। मानसून के मौसम में (जून से सितम्बर तक) पश्चिमी घाट पर वर्षा १००" तक हो

१- ठीक इसी प्रकार बैकाल झील के पास भी निम्न भार का केन्द्र बन जाता है जिसके कारण प्रशान्त सागर की हवायें पूर्वी एशिया में प्रवेश करती हैं। हिन्द महासागर की हवाओं को हिमालय रोक देता है। द्वितीय निम्न भार की पेटी (Secondary L. P. Belt) थार रेगिस्तान में उत्पन्न होती है।

जाती है जबकि यही वर्षा पूर्वी घाट पर पहुँचते-पहुँचते २०" से ३०" तक ही रह जाती है। आसाम में वर्षा १००" से भी ऊपर होती है पर पश्चिमी राजस्थान में यह कम होते २-५" या इससे भी कम रह जाती है।

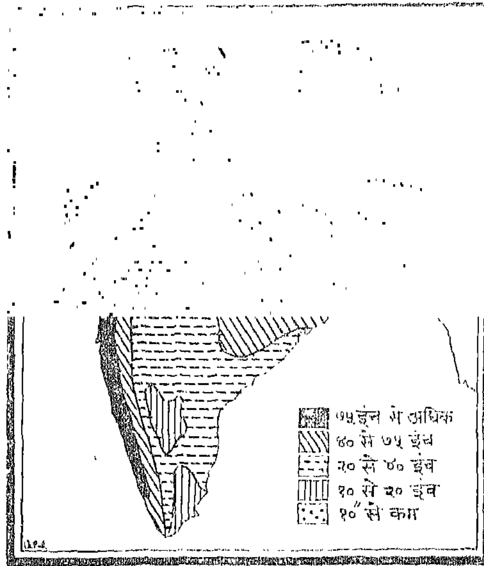
(ख) तापक्रम व आर्द्रता :—ज्यों-ज्यों मानसून वर्षा बढ़ने लगती हैं त्यों-त्यों तापक्रम भी कम होने लगता है। जून एवं जुलाई में पश्चिमी रेगिस्तान और देश के कुछ दूसरे भागों को छोड़कर सारे देश के तापक्रम में समानता रहती है किन्तु यदि लम्बे समय तक वर्षा नहीं होती तो बीच २ में तापक्रम बढ़ जाते हैं। उत्तरी पश्चिमी राजस्थान ही एक ऐसा भाग है जहाँ तापक्रम लम्बे समय तक काफी ऊँचे रहते हैं किन्तु अगस्त या सितम्बर तक वह भी कम हो जाते हैं। जून में देश के कई भागों में तापक्रम काफी ऊँचे रहते हैं। इसी समय उत्तरी पश्चिमी राजस्थान और उत्तर-प्रदेश के कई स्थानों का तापक्रम १०५° फा० या इससे भी अधिक पहुँच जाता है। परन्तु जुलाई में अधिकतम तापक्रम (११०° फा०) थार रेगिस्तान में ही मिलता है। अगस्त में तापक्रम और भी गिर जाता है। ऐसे समय में थार रेगिस्तान में हवा में आर्द्रता बढ़ जाने के कारण रात्रि को कोहरा एवं ओस गिरती है जिसके फलस्वरूप प्रातःकालीन तापक्रम काफी नीचे हो जाते हैं। परन्तु सितम्बर में इन प्रदेशों के तापक्रम फिर से बढ़ जाते हैं। सितम्बर में यह तापक्रम १०५° फा० तक अरावली के पश्चिम में अंकित किये गये हैं।

इस काल में तापक्रम एवं आर्द्रता दोनों ही वायुमण्डल में परिपूर्ण रहती है। देश के अधिकतर भागों में आर्द्रता ० से ६०% तक होती है किन्तु उत्तर पश्चमी भारत (थार में) में इस समय आर्द्रता ८०% से भी कम रहती है।

इस प्रकार भारतीय जलवायु इस मौसम में विभिन्न प्रकार की आर्द्रता (प्रतिशत के रूप में) लिये होती है। वर्षा के काल में कभी २ स्थानीय रूप से वायुमण्डल में आर्द्रता शत प्रतिशत तक भी हो सकती है पर मई की भाँति उत्तरी भारत में यदि गर्म हवा बहे तो आर्द्रता १०% तक ही रह जाती है। दिन में तापक्रम के बिल्कुल विपरीत अवस्था में अनुपातिक आर्द्रता घटती है। प्रातःकाल वायुमण्डल बहुत ही नम रहता है। दिन में सूर्य की गर्मी के कारण आर्द्रता में कमी आ जाती है परन्तु सायंकाल को ज्यों २ तापक्रम गिरते हैं त्यों २ आर्द्रता बढ़ती जाती है इस समय पाकिस्तान में बलूचिस्तान ही एक ऐसा भाग रहता है जहां कि आर्द्रता ४०% से भी कम एवं दोपहर बाद तो यह ५% से भी कम पहुँच जाती है।

(ग) वर्षा :—मई-जून में अत्यधिक गर्मी के कारण भारत एवं मध्य एशिया में निम्न भार के केन्द्र बन जाते हैं उसके फलस्वरूप दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक हवाएँ बड़ी तेजी से विषुवत रेखा को पार करती हुई उत्तरी गोलार्द्ध में प्रवेश करती है। ज्योंही यह हवायें विषुवतरेखा को पार करती हैं उनकी दिशा दक्षिण पश्चिम हो जाती है। इसी कारण इन्हे 'दक्षिणी पश्चिमी मानसून' भी कहते हैं। यह हवाएँ दक्षिणी प्रायद्वीप की स्थिति के कारण दो भागों में विभक्त हो जाती हैं। इनमें से एक बंगाल की खाड़ी से और दूसरी अरब सागर से देश में घुसती है। बंगाल की खाड़ी का मानसून देश में पहले प्रवेश कर जाता है और अरब सागरीय मानसून करीब १० दिन बाद। देश में इन्हीं हवाओं से बड़ी तेजी से गर्जन-तर्जन के साथ वर्षा होती है। चूंकि यह हवाएँ हिन्द महासागर के गरम जल के ऊपर होती हुई हजारों मील से

आती हैं अत: इसमें भाप की मात्रा बहुत भर जाती है। इसी कारण जहाँ २ यह हवा पहुँचती है वहीं वहीं अधिक वर्षा करती है।



चित्र ७२—वर्षा—जून से अक्तूबर

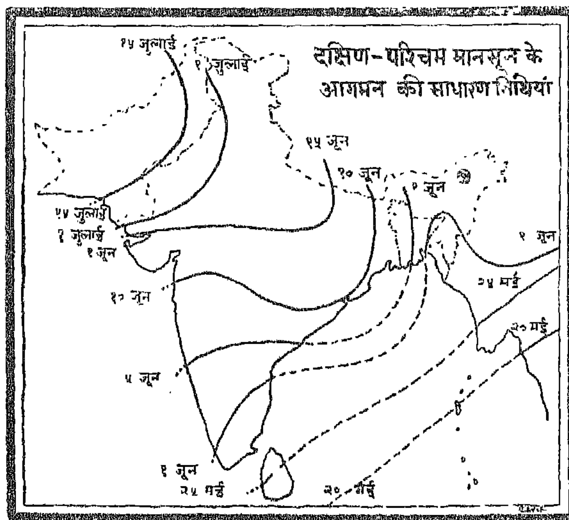
प्राय: देखा गया है कि दक्षिणी-पश्चिमी मानसून का आरम्भ एवं समाप्ति नियत समय पर ही होती है जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

राज्य	वर्षा आरम्भ होने की तिथि	समाप्ति
आसाम	२५ मई	३० अक्टूबर
बंगाल	१ जून	१५ से ३० अक्टूबर
(महाराष्ट्र)	५ जून	१५ अक्टूबर
दकन	७ जून	20 अक्टूबर
मध्य प्रदेश	१० जून	१५ अक्टूबर
मध्य भारत	१५ जून	३० अक्टूबर
राजस्थान	१५ जून	२० सितम्बर
उत्तर प्रदेश	२५ जून	३० सितम्बर
पू० पंजाब	१ जुलाई	१४ से २१ सितम्बर

जुलाई तक यह मानसून सम्पूर्ण भारत में फैल जाता है और सितम्बर तक स्थिर रहता है।

मानसून की पहली शाखा अधिक जोरदार होती है लेकिन मार्ग में पश्चिमी घाट के आजाने से इसकी वर्षा थोड़े ही भागों तक सीमित रहती है कभी-कभी यह मानसून बड़ी तेजी से आता है—बम्बई में इसकी चाल लगभग १४ मील प्रति घन्टे

होती है—किन्तु अन्दर पहुँचने पर इसकी चाल में बहुत कुछ कमी हो जाती है। दूसरी शाखा यद्यपि इतनी शक्तिशाली नहीं होती किन्तु फिर भी देश की बनावट के कारण देश के भीतरी भागों में बहुत दूर तक फैल जाती है इससे हमारे यहाँ ८५ प्रतिशत वर्षा हो जाती है। ये दोनों शाखायें मध्य प्रदेश में मिल कर घनघोर वर्षा करती हैं जहाँ तक लम्बा निम्न वायु भार क्षेत्र होता है जो सिन्ध के निम्न वायु भार केन्द्र से दक्षिण पूर्व की ओर फैला रहता है।



चित्र ७३—द० प० मानसून की आगमन तिथियाँ

दक्षिणी पश्चिमी मानसून के आरम्भ होते ही तूफान (Cyclones) आने लगते हैं। यह तूफान विशेषकर बंगाल की खाड़ी से उठते हैं और देश के भीतर तक पहुँच जाते हैं। लेकिन जब दक्षिणी-पश्चिमी मानसून अच्छी तरह चलने लगती है तो यह तूफान नहीं उठते और अक्टूबर तक इनके उठने की सम्भावना नहीं रहती।

(क) **अरब सागरीय शाखा** (Arabian Sea Branch)—अरब सागर से चलने वाली मानसून सबसे पहले पश्चिमी घाट से सीधी टकराती है (जो इसके मार्ग में पड़ते हैं)। यहाँ इसे अनिवार्यतः ३,००० से ७,००० फीट की ऊँचाई तक चढ़ना होता है। इस चढ़ाव के कारण यह असाधारण मात्रा में ठन्डी हो जाती है अतः पश्चिमी घाट और पश्चिमी तट के मैदानों में वर्षा अधिक होती है (लगभग १००" के)। पश्चिमी घाट को पार करते समय इसकी सील का अधिक भाग व्यय हो जाता है क्योंकि दक्षिण के पठार की ओर उतरने पर यह गरम हो जाती है इसलिये सूखी हो जाने के कारण पठार के भीतरी भागों में वर्षा कम होती है क्योंकि यहाँ [illegible] वृष्टि छाया (Rain shadow) का क्षेत्र बन जाता है। अस्तु, पश्चिमी समुद्र तट पर कालीकट में जहाँ १००" वर्षा होती है और मंगलोर में १३०"। बम्बई में जून से सितम्बर तक ६६.६" वर्षा होती है और महाबलेश्वर में जुलाई के महीने में १००" तथा मानसून के कुल ५ महीनों में २६१" से भी अधिक वर्षा होती है। इसके विपरीत महाबलेश्वर

से ६५ मील दूर पूर्व में गोकाक में केवल २२" ही वर्षा होती है। अधिक दक्षिण और पूर्व की ओर बढ़ने पर यह मात्रा और भी घट जाती है। धूलिया में २२", बलारी में १८" और नागपुर में ४१"। इसी प्रकार दक्षिण में इलायची की पहाड़ियों के वृष्टि छाया प्रदेश में स्थित तिरुनलवैली में वर्षा बहुत ही कम हो जाती है। जून से सितम्बर तक केवल २.७" ही वर्षा होती है।

बम्बई के उत्तर में इस मानसून का कुछ भाग नर्मदा और ताप्ती नदियों की घाटी में होता हुआ मध्य प्रदेश में कुछ वर्षा कर छोटा नागपुर में पहुँचता है यहाँ लगभग ६०" के वर्षा हो जाती है। यहाँ से यह बंगाल की शाखा से मिल जाती है। अरब सागर की मानसून का एक भाग सिन्ध के डेल्टा और राजस्थान पर लांघता हुआ यहां बिना पानी की एक बूंद बरसाए सीधा हिमालय पर्वत से जा टकराता है और वहाँ धर्मशाला के स्थान के निकट अधिक वर्षा करता है। इसके द्वारा सिन्ध और पश्चिमी राजस्थान में १० इंच से भी कम पानी बरसता है इसका कारण यह है कि (१) ये भाग प्रमुख मानसून हवाओं के मार्ग से दूर पड़ते हैं। (२) यह भाग अधिक गर्म और समतल है किन्तु इन हवाओं को रोकने वाला कोई पहाड़ नहीं है, तथा (३) फारस और बलूचिस्तान से आने वाली सूखी हवायें मानसूनी हवाओं में मिलकर उनकी नमी को कम कर देती है। सिर्फ अरावली पर्वत पर, जो इस मैदान के एक कोने पर स्थित है, लगभग ५० इंच वर्षा हो जाती है। (४) पूर्व, उत्तर तथा थार के मरुस्थल में उत्तर पूर्व से वह हवा पहुँचती है जो गंगा के मैदानों की अपनी यात्रा में सारी नमी छोड़ आती है और जब यह हवा पंजाब में उतरती है तो उतार के कारण और भी ठंडी हो जाती है। अतः थार मरुभूमि इस दूसरी मानसून शाखासे भी वर्षा प्राप्त नहीं कर पाती।

राजस्थान के पश्चिमी भागों में कभी-कभी वर्षा ऋतु में पानी ही नहीं बरसता और जब बरसता है तो पतली फुहारों के रूप में। कभी-कभी सहसा बिजली कड़क के साथ दोपहर के बाद थोड़े ही समय में २"-३" पानी बरस जाता है और छोटी नदियों में बाढ़ें उत्पन्न कर देता है। खम्भात की खाड़ी से उत्तर-पश्चिम की ओर चलने पर वर्षा की मात्रा निरन्तर कम होती जाती है। अहमदाबाद में २९" और भुज में १५" वर्षा ही होती है।

(ख) बंगाल की खाड़ी की मानसून (Bay of Bengal Branch)—दक्षिणी-पश्चिमी मानसून बंगाल की खाड़ी से चलकर ब्रह्मा की पहाड़ियों से जा टकराता है और इन पर्वतों तथा तटीय मैदानों में अत्यन्त वेग से वर्षा करता है। अक्याब में ३००" से भी अधिक वर्षा होती है जिसमें से १७०" केवल जून से सितम्बर तक बरसता है। इस मानसून की एक शाखा गंगा के डेल्टा से होकर खासी की पहाड़ियों से टकराती है और उसे एक दम ५,००० फीट की ऊँचाई तक उठना पड़ता है। अधिक ऊँची उठने के कारण इससे चेरापूंजी नामक स्थान पर वर्ष में ४२५" के लगभग वर्षा हो जाती है।[1] इसमें से ३२५" वर्षा जून से सितम्बर के महीनों में होती है। इस पहाड़ी श्रेणी को पार करने के बाद मानसून ब्रह्मपुत्रा की घाटी और हिमालय की तराई की तरफ चलता है। लेकिन इन भागों में इसकी उठान अधिक न होने के

१. यहाँ एक वर्ष में तो ६००" से भी ऊपर वर्षा हो चुकी है। यह वर्षा इतनी अधिक थी कि इसके द्वारा एक तीन मंजिल का मकान डुबोया जा सकता था। १४ जून सन् १८७६ को एक ही दिन में यहां ४१" वर्षा हुई थी।

कारण वर्षा कम होती है। यही कारण है कि चेरापूंजी से केवल २५ मील दूर शिलांग में ८५ इंच के लगभग ही वर्षा होती है।

इस मानसून का कुछ भाग बंगाल में चलता है और पूर्वी हिमालय के प्रभाव में आने के कारण पर्वतों की तराई में बहुत पानी बरसाता है। इस मानसून की प्रवाह-दिशा बहुधा हिमालय पर्वत की तरफ ही रहती है अतः हिमालय पर्वत से टकराकर पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। चूंकि हिमालय पर्वत बहुत ऊँचे हैं इसलिये यह हवायें उसे पार नहीं कर सकती। अतः दक्षिणी ढालों पर बड़े वेग से वर्षा होती है और उत्तरी ढालें शुष्क रहती हैं। यही कारण है कि शिमला में ६१"; नैनीताल में ८०" और दार्जिलिंग में १२६" से भी अधिक वर्षा होती है परन्तु श्रीनगर में २६" लेह और लासा में—जो इन पर्वतों के उत्तर में हैं—लगभग २" के वर्षा होती है।

इस मानसून की दूसरी विशेष बात यह है कि ज्यों-ज्यों यह पश्चिम की ओर बढ़ती जाती है त्यों-त्यों सूखी होने के कारण वर्षा भी कम करती जाती है क्योंकि यह नमी वाले स्रोतों से दूर होती जाती है। अतः गंगा और सिन्धु के मैदान के पूर्वी भाग में पश्चिमी भाग की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है। यही कारण है कि बंगाल में ५४ इंच, उड़ीसा में ४४ इंच, बिहार में ४२ इंच और उत्तर प्रदेश में ३४" वर्षा होती है। पश्चिमी पंजाब में तो १५ इंच के लगभग ही वर्षा होती है। इस मानसून द्वारा कलकत्ता में ६२", पटना में ४०", इलाहाबाद में ४२", दिल्ली में २६", हिस्सार में १७" और जकोबाबाद में केवल ३" वर्षा होती है।

चूंकि मानसून हवायें मुड़कर हिमालय पर्वत के साथ-साथ चलती है इसलिये जो स्थान हिमालय पर्वत के समीप स्थित हैं वहाँ उन स्थानों की अपेक्षा जो दक्षिण की ओर पर्वत से दूर स्थित हैं अधिक वर्षा होती है। यही कारण है कि अम्बाला और मेरठ में ३३" इंच, गोरखपुर में ५०", बरेली में ४३", नैनीताल में ८०", शिमला में ६१" और मंसूरी में ८८" के लगभग वर्षा होती है किन्तु वाराणसी में ४१", आगरा में २७" और ग्वालियर में २३" से भी कम वर्षा होती है।

दक्षिण-पश्चिमी मानसून की दोनों शाखाओं के भागों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि पाकिस्तान में सिन्ध और भारत में पश्चिमी राजस्थान के थार का रेगिस्तान ऐसे भाग हैं जो या तो इन हवाओं के मार्गों से बाहर रहते हैं या मानसून वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते सूख जाता है इससे वर्षा का होना असम्भव हो जाता है।

इस मानसून की शाखा का महत्व भारत के लिए सबसे अधिक है। इसी से देश की ८०% वर्षा प्राप्त होती है। यही यहाँ के लाखों निवासियों की जीविका का स्रोत होती है। इसी के द्वारा भारत की प्रमुख फसलों को जल मिलता है।

भारत में मानसून द्वारा होने वाली वर्षा का कुछ भाग पर्वतीय वर्षा (Orographical) के रूप में होता है तथा कुछ चक्रवातीय (Cyclonic) अथवा संवाहनीय (Convectional) वर्षा के रूप में। हिमालय और पश्चिमी घाट में सभी जगह (जहाँ मानसून हवाएँ पहाड़ों को पार करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं) हवाओं के ऊँचे उठने के कारण उनके ठंडी हो जाने से वर्षा हो जाती है। इस प्रकार की पर्वतीय वर्षा में पवनमुखी ढालों (Wind-ward Slopes) पर पवन-विमुखी (Lee-ward Slope) ढालों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी तट पर स्थित मंगलौर में १३०" वर्षा होती है जबकि बंगलौर में केवल ३४" और मद्रास

में पूर्वी तट पर केवल १५" वर्षा ही होती है।[1] इसी प्रकार जहाँ चेरापूंजी में ४२५" से भी अधिक वर्षा होती है वहाँ २५ मील दूर शिलांग में वर्षा का औसत केवल ८५" ही होता है।

चक्रवातीय वर्षा अधिकतर चक्रवातों या तूफानों के कारण होती है। इनमें से कुछ चक्रवात स्थानीय तापक्रम के कारण उत्पन्न होते हैं और कुछ अन्य पड़ोसी देशों से उठ २ कर भारत की ओर बढ़ते हैं। चक्रवात अपने अपने क्षेत्र में वर्षा को केन्द्रीभूत तथा घनीभूत करते हैं अतः भारत के किसी स्थान विशेष में जब अधिक या कम वर्षा होती है तो उसका कारण चक्रवातों की प्रचंडता होती है।

संवाहनीय वर्षा स्थानीय गर्मी के कारण होती है। इस गर्मी के कारण आठों पहर जलज (Cumulous) बादल बनते जाते हैं। इस प्रकार की वर्षा प्रायः स्थानीय ही होती है। यह अधिकतर पतझड़ या बंसत ऋतु में होती है। गर्मी द्वारा हवा में संवाहनीय धाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिससे वायु ऊपर उठ कर ठंडी हो जाती है और वर्षा कर देती हैं।

४. मानसून परिवर्तन का काल (Retreating South West Monsoon Season)

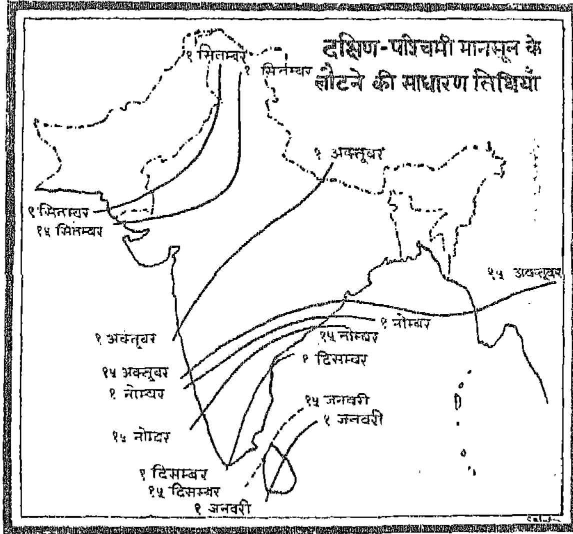
(क) वायु भार :—सितम्बर के समाप्त होते-होते सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में पहुँच जाता है इसके परिणाम स्वरूप जो निम्न भार क्षेत्र उत्तर-पश्चिम में बना हुआ था वह समाप्त होने लगता है। अक्टूबर में यह निम्न भार क्षेत्र बंगाल की खाड़ी की तरफ बढ़ता जाता है अतः मानसून लौटने प्रारम्भ हो जाते हैं। पर मानसून उतनी तेजी से नहीं लौटते जितनी तेजी से वे आते हैं। वर्षा की गति पहले धीमी पड़ती है और सितम्बर के अन्त तक उत्तरी मैदानों में बंद हो जाती है। अब आर्द्र हवाओं के स्थान पर शुष्क हवाएँ आ जाती हैं। चक्रवाती परिस्थितियों का स्थान प्रति-चक्रवाती परिस्थितियाँ ले लेती हैं। दिन और रात का तापक्रमान्तर बढ़ने लगता है। मानसून की प्रगति प्रारम्भ होते समय उत्तर की ओर होती है किन्तु मध्य सितम्बर के बाद लौटते समय यह दक्षिण की ओर हो जाती है। सबसे पहले अरब-सागर की शाखा के मानसून पंजाब तथा राजस्थान के भागों से और बंगाल की खाड़ी के मानसून गंगा के ऊपरी डेल्टा से धीरे-धीरे पीछे हटने प्रारम्भ होते हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है निम्न भार का क्षेत्र भी दक्षिण की ओर खिसकता रहता है। पंजाब से लगभग १५ सितम्बर को उत्तर प्रदेश से १ अक्टूबर को और बंगाल से १५ अक्टूबर को मानसून लौटने लगता है। इस समय हवा की दिशा दक्षिण से बदल कर उत्तर-पूर्वी हो जाती है। इन्हीं हवाओं द्वारा मद्रास एवं पठार के कुछ आन्तरिक भागों और पूर्वी तट में सर्वाधिक वर्षा हो जाती है।

इस समय हेमन्त ऋतु का मौसम होता है। मानसून दिसम्बर के प्रारम्भ तक भारत में अनेक प्रभाव बताता रहता है क्योंकि मद्रास में सर्दियों के प्रारम्भ में जो वर्षा होती है वह इन्हीं कारणों से होती है। इसके बाद दिसम्बर में निम्न भार क्षेत्र दक्षिणी गोलार्द्ध में सूर्य के साथ-साथ चला जाता है और उत्तरी भारत में भी पश्चिम से पंजाब एवं गंगा के मैदानों में चक्रवात आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

(ख) तापक्रम और आर्द्रता :—ज्यों-ज्यों उत्तरी भारत से मानसून लौटने लगते हैं

१. W. G. Kendrew, Climate of The Continents, 1941, p. 130. Ibid, p. 131.

त्यों-त्यों उत्तरी-पश्चिमी भागों में तापक्रम एक दम गिरते जाते हैं। अधिकतम तापक्रम उतने नहीं गिरते जितने कि न्यूनतम क्योंकि अक्टूबर और नवम्बर में अधिकतम औसत तापक्रम १००° फा० के आसपास रहते हैं जबकि न्यूनतम तापक्रम इसी समय



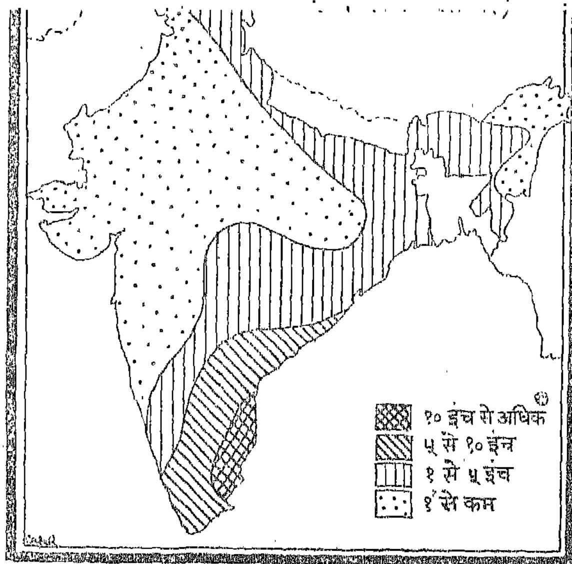
चित्र ७४—द० प० मानसून के लौटने की तिथियाँ

५०° फा० या इससे भी कम हो जाते हैं। एक दम उत्तर में किसी-किसी रात्रि को तापक्रम ३२° फा० से भी कम हो जाता है।

ज्यों-ज्यों मानसून पीछे खिसकते जाते हैं उत्तरी भारत में आर्द्रता कम होती जाती है। पर दक्षिणी पठार के पूर्वी भागों में अब भी आर्द्रता ७५% के आसपास रहती है क्योंकि इस समय बंगाल की खाड़ी में निम्न-भार का केन्द्र बन जाता है। किसी-किसी दिन तो मद्रास के आस पास के प्रदेशों में (नवम्बर में) आर्द्रता ६०% तक पहुँच जाती है। परन्तु नवम्बर के अन्त में फिर से (जब कि पश्चिम से चक्रवात आते हैं) उत्तरी भारत में आर्द्रता का प्रतिशत विशेषकर पंजाब, काश्मीर एवं उनके आसपास के प्रदेशों में ६०% से ७५% तक हो जाता है।

(ग) **वर्षा** :—अक्टूबर तक वर्षा पश्चिमी उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, एवं काश्मीर के भागों में समाप्त प्रायः हो जाती है। इस समय उत्तरी-पूर्वी भारत में वर्षा हो रही होती है। यहाँ पर भी १० अक्टूबर के बाद वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती है। इसी समय अरबसागरीय शाखा भी दक्षिणी पठार के उत्तरी-पूर्वी भागों से भी नीचे की ओर खिसक जाती है और इन सब भागों में मौसम साफ, आकाश स्वच्छ एवं वर्षा-रहित रहने लगता है। परन्तु इस समय ब्रह्मा के दक्षिणी भाग एवं कोरोमण्डल तट में वर्षा होती है। जब ये उत्तरी-पूर्वी मानसून हवायें घूमती हुई तट पर टकराती हैं तो मद्रास, बंगाल के डेल्टा, आराकान योमा एवं चिटगाँव के तटीय भागों में वर्षा कर देती है, पर ज्यों-ज्यों हम आन्तरिक भागों में जाते हैं वर्षा एक दम कम हो जाती है। कभी-कभी अरब सागर में मलाबार तट पर भी स्थानीय कारणों से वर्षा हो जाती

है। नवम्बर में भी कोरोमण्डल तट पर यही स्थिति रहती है। इस मौसम में दक्षिणी-भारत में मद्रास के आस-पास वर्षा २५″ से ३०″ तक हो जाती है। परन्तु ज्यों-ज्यों हम आन्तरिक भागों की ओर जाते हैं वर्षा एक दम कम होती जाती है। यदि हम मंगलौर से डिब्रूगढ़ तक एक रेखा खींचें तो उसके पश्चिम में वर्षा १″ से भी कम होती है।



चित्र ७५—वर्षा (नवम्बर से दिसम्बर)

इस काल की वर्षा का अधिकांश १२° उत्तरी अक्षांस के दक्षिण में उत्पन्न हुए चक्रवातों से आता है जबकि सूर्य की गति दक्षिण की ओर हो जाती है। ये चक्रवात जब किसी बड़े भू-भाग को पार करते हैं तो या तो बिलकुल ही समाप्त हो जाते हैं या बहुत ही क्षीण हो जाते हैं। किन्तु जब तक इनका केन्द्र बिन्दु समुद्र के ऊपर रहता है, समुद्र तट पर इनके द्वारा भयंकर हानि हो सकती है। ये चक्रवात बंगाल की खाड़ी से उठ कर प्रायद्वीप को पार कर अरब सागर तक जाते हैं। इनके द्वारा कभी-कभी समुद्र में बड़ी-बड़ी ज्वार तरंगें (Tidal waves) आती हैं जिनके द्वारा तट के निकट के निम्नस्थ क्षेत्रों को बड़ी क्षति पहुँचती है। सन् १८७६ ई० में बाकरगंज में जो उच्च ज्वार तरंग आई थी वह अब तक की सबसे हानिकारक तरंग मानी जाती है। इसके द्वारा मेघना नदी के कछार में बसे लगभग १ लाख व्यक्ति आधे घंटे में ही मृत्यु के ग्रास बन गये। इसी प्रकार १९४२ में भी एक ऐसा ही भयंकर तूफान बंगाल के ऊपर हो कर गुजरा था। "यह तूफान १५ अक्टूबर को प्रातः ७-८ बजे आरम्भ हो कर १७ अक्टूबर की सुबह समाप्त हुआ। १६ ता० को तीसरे पहर

तूफान के कारण खाड़ी से उठ कर एक भीषण ज्वार तरंग भूमि की ओर बढ़ी जिससे मिदनापुर के दक्षिणी भाग और चौबीस परगना को अपार हानि पहुंची। तूफान के साथ-साथ भारी वर्षा भी हुई। कहीं-कहीं तो २४ घन्टों में १२" तक पानी गिरा। इन जिलों की सभी नदियों में ज्वार तरंग, जल-वृष्टि और वायु वेग के कारण भयानक विनाशकारी बाढ़े आई। इनके द्वारा मिदनापुर जिले में १० हजार व्यक्ति और २४ परगना में १ हजार व्यक्ति मर गये। पशुओं की क्षति इस संख्या में लगभग ७५% अधिक हुई।

"यह एक बड़ी मनोरंजक बात है कि भारत के किसी न किसी भाग में वर्ष के प्रत्येक महीने में काफी वर्षा हो जाती है। जनवरी-फरवरी में शीतकालीन चक्रवातों से उत्तरी भारत में वर्षा हो जाती है। मार्च में मेघ-गर्जन के साथ भीषण वात बंगाल और आसाम में अधिकतर चलने लगती है और उससे जून तक (जबकि मानसून आरम्भ होता है) भारी वर्षा होती रहती है। फिर सामान्य मानसूनी वर्षा अक्टूबर तक होती रहती है और नवम्बर-दिसम्बर में मानसून के लौटते समय मद्रास एवं पूर्वी तट पर भारी वर्षा हो जाती है।"[१]

नीचे की तालिका में भारत की औसत मासिक वर्षा बताई गई है :—

महीना	मात्रा (गैट्स में)	प्रतिशत
जनवरी	३,६४१	१
फरवरी	५,१५६	१.५
मार्च	५,८२०	१.८
अप्रैल	८,३८८	२.५
मई	१६,२७७	५.६
जून	५५,६५६	१६.३
जुलाई	८६,१३०	२६.२
अगस्त	७४,६८२	२२.४
सितम्बर	४२,२४४	१३.८
अक्टूबर	१८,६५०	५.५
नवम्बर	८,५७२	२.६
दिसम्बर	३,३३१	६

नीचे के कोष्टक में भारत के चार प्रदेशों के मुख्य स्थानों की मासिक तथा वार्षिक वर्षा के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं :—

१. W. G. Kendrew, Op. Cit., p. 138

मासिक तथा वार्षिक वर्षा (इंचों में)

प्रदेश	ऊँचाई (फीट में)	ज०	फ०	मा०	अ०	म०	जू०	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०	वार्षिक वर्षा
पहाड़ी प्रदेश :														
दार्जिलिंग	७,४३२	०·५३	१·१६	१·८८	४·१४	६·६३	२४·१८	३२·६२	२६·५६	१८·६०	५·४१	०·८१	०·२७	१२६·४२
शिलांग	४,६२१	०·५२	१·०६	१·६७	५·१०	११·२६	१८·१६	१३·६५	१२·४६	११·७६	६·७२	१·६१	०·२८	८४·६४
शिमला	७,७२४	२·६१	२·६२	२·३६	१·८१	२·५३	६·०४	१६·३०	६६·८५	६·६८	१·१८	०·५२	१·२४	६१·०४
तटीय प्रदेश :														
बम्बई	३५	०·१४	०·०८	०·०५	०·०३	०·६५	१६·०६	२४·२७	१३·३६	१०·३६	२·५४	०·५३	०·०८	७१·२१
मद्रास	५१	१·४१	०·४१	०·२६	०·६१	१·०३	१·८६	३·६०	४·५८	४·६८	१२·०४	१३·६६	५·४५	४६·६२
मैदानी प्रदेश :														
इलाहाबाद	३३२	०·८५	०·६३	०·५६	०·१७	०·६३	५·०४	१२·५६	१०·०३	८·३६	२·३४	०·३१	०·३४	४१·८२
कलकत्ता	२१	०·३७	१·१७	१·३६	१·७५	५·४६	११·६६	१२·८१	१२·६२	६·६५	४·४८	०·८१	०·१८	६२·६८
कानपुर	४१३	०·५६	०·६६	०·२६	०·२२	०·३२	३·१६	१०·७५	११·२०	६·७६	१·३०	०·३५	०·२८	३५·६१
कटक	८७	०·३२	०·७८	१·०४	१·०७	३·५७	६·६५	१२·८६	१३·४०	६·७६	५·३४	१·६२	०·२३	५६·६७
नई दिल्ली	७१०	०·६६	०·८३	०·५१	०·३३	०·५२	३·०३	७·०३	७·२३	४·८४	०·४०	०·१०	०·४३	२६·२४
लखनऊ	३७१	०·७३	०·७२	०·३४	०·२५	०·७७	४·४६	१२·००	११·५०	७·४०	१·२८	०·२२	०·३२	४०·०२
पटना	१७३	०·५६	०·७४	०·४२	०·२७	१·४०	७·१४	११·५८	१३·०६	८·६०	२·३०	०·३४	०·२२	४६·६६
पठार :														
देहरादून	२,२३६	२·३२	२·४७	१·२६	०·६५	१·४५	८·५५	२६·३०	२८·७६	१०·६२	१·२६	०·३५	१·०२	८५·०४
नागपुर	१,०१०	०·३७	०·६५	०·६०	०·६०	०·७६	८·८२	१४·६०	११·४२	८·०१	२·१७	०·७७	०·४७	४६·२४

नीचे की तालिका में भारत के विभिन्न उप-विभागों में साधारण मौसमी वर्षा का वितरण दर्शाया गया है[1] :—

साधारण मौसमी वर्षा (इंचों में)

क्रम संख्या	उप-विभाग	शीतकाल (दि० से फ०)	ग्रीष्मकाल (मार्च से मई)	मानसून काल (जून से सि०)	मानसून-पश्चात-काल (अ. से न.)	योग
१.	आसाम	२·३८	२५·०६	६४·२६	५·९६	९७·६६
२.	पश्चिमी बंगाल	१·५३	१२·४२	५६·०१	५·१७	७५·१३
३.	उड़ीसा	१·८२	५·६२	४४·४९	४·९८	५६·९१
४.	छोटा नागपुर	२·५७	३·६४	४२·७१	२·२६	५१·१८
५.	बिहार	१·४१	३·३०	४०·९६	२·५४	४८·२१
६.	पूर्वी उत्तर प्रदेश	१·५३	१·१२	३४·४४	२·०४	३९·१३
७.	पश्चिमी उत्तर-प्रदेश	२·२७	१·३६	३२·९८	०·९७	३७·५८
८.	पूर्वी और उत्तरी पंजाब	२·७६	१·८९	१८·२३	०·३७	२३·२५
९.	द० प० पंजाब	१·२८	१·३६	६·५८	०·१३	९·३५
१०.	काश्मीर	९·१२	०·०९	२२·१९	०·९४	४१·३४
११.	प० राजस्थान	०·६२	०·५६	११·७४	०·१२	१३·०४
१२.	पू० राजस्थान	०·९६	०·७८	२२·९१	०·५५	२५·२०
१३.	गुजरात	०·२२	०·२४	३१·४६	०·७७	३२·६९
१४.	प० मध्यवर्ती भारत	०·८५	०·४७	३१·५६	०·७५	३३·६३
१५.	पू० ,,	१·४४	०·७९	३५·०५	१·३०	३८·५८
१६.	बरार	१·०१	०·९६	२८·१०	२·०७	३२·१४
१७.	प० मध्य प्रदेश	१·४७	१·१४	४१·०४	१·७६	४५·४१
१८.	पू० मध्य प्रदेश	१·५८	२·१०	४६·३७	१·९९	५२·०४
१९.	कोंकन	०·२८	१·८५	१०२·४५	४·७५	१०९·३३
२०.	बम्बई-दकन	०·५१	२·१३	२४·४१	३·८२	३०·८७
२१.	उ० हैदराबाद	०·६७	१·५३	२९·५१	३·२०	३४·९१
२२.	द० हैदराबाद	०·५७	२·१०	२३·३८	३·८८	२९·९३
२३.	मैसूर	०·७३	५·४७	२२·२७	७·५४	३६·०१
२४.	मलाबार	२·७३	१२·६१	७१·४७	१६·९३	१०३·७४
२५.	द० पू० मद्रास	४·७६	४·५३	१२·०१	१३·८०	३५·१०
२६.	मद्रास-दकन	०·७४	२·४२	१५·२७	०·९०	२४·५२
२७.	उ० मद्रास तट	१·६९	३·४४	२५·०३	१०·११	४०·१६

भारतीय वर्षा की विशेषताएँ

भारत में होने वाली वर्षा की कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं जिनको नीचे दिया जाता है :—

१. Agriculture and Animal Husbandry in India, 1958, p. 33.

(१) भारत की सम्पूर्ण वर्षा का ७५ प्रतिशत भाग ग्रीष्म ऋतु में दक्षिण-पश्चिमी मानसून से प्राप्त होता है। शीतऋतु का मानसून भारत के लिये विशेष महत्व नहीं रखता। दक्षिणी-पश्चिमी मानसून काल में देश की सम्पूर्ण वर्षा का ७५%; मानसून उपरांत काल में १३%; शीतकालीन मानसून काल में २% और पूर्व-मानसून काल में १०% वर्षा होती है।[1]

(२) ग्रीष्म में होने वाली वर्षा विश्वासजनक नहीं होती। किसी किसी वर्ष कहीं तो ऐसी घनघोर वर्षा हो जाती है कि जिससे भयानक बाढ़ों का सामना करना पड़ता है लेकिन कभी-कभी उन्हीं स्थानों पर उन्हीं समयों में इतनी कम वर्षा होती है कि वहाँ अकाल का सामना करना पड़ता है। १८६६ का अकाल इसी प्रकार की अनावृष्टि का ही फल था।

(३) वर्षा किसी वर्ष तो निश्चित समय से पूर्व ही आरम्भ हो जाती है और निश्चित समय से पूर्व ही समाप्त भी हो जाती है जिससे खरीफ की फसल को बड़ी हानि उठानी पड़ती है और रबी की फसल को बोने में भी कठिनाई पड़ती है। सन् १८८३ में बंगाल में एक महीने पूर्व ही मानसून पीछे हट गई थी जिससे खेती नष्ट भ्रष्ट होगई।

(४) वर्षा का वितरण भी समान नहीं है। किन्हीं-किन्हीं भागों में तो वर्षा १००" से भी अधिक हो जाती है किन्तु कुछ भागों में ५ इंच से भी कम होती है। सम्पूर्ण देश के ११% भाग में ७५" से अधिक वर्षा होती है; २१% भाग में ५० से ७५" तक; ३७% भाग में ३० से ५०" तक; २४% भाग में १५ से ३०" तक और ७% भाग में १५" से भी कम वर्षा होती है।[2]

(५) वर्षा लगातार नहीं होती बल्कि कुछ दिनों के अन्तर से हुआ करती है। कभी-कभी तो यह अन्तर जुलाई और अगस्त के महीने में बहुत लम्बा हो जाता है जिससे किसानों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है क्योंकि फसलें सूख जाती हैं।

(६) किन्हीं भागों में वर्षा बड़ी तेज पड़ती है और कहीं बिल्कुल ही बौछारों के रूप में होती है अतः जब वर्षा अधिक तेजी से गिरती है तो वर्षा का जल भूमि का कटाव कर भूमि को कृषि के अयोग्य बना देता है। बम्बई की ७२" वर्षा लगभग ७५ दिन में ही प्राप्त होती है जबकि लंदन की २४" वर्षा १६० दिन में हल्की फुहारों के रूप में होती है। अतः बम्बई की वर्षा का अधिकांश भाग धाराओं के रूप में समुद्र में व्यर्थ ही बह कर चला जाता है किन्तु लंदन का अधिकांश भाग धरती में सोख जाता है।

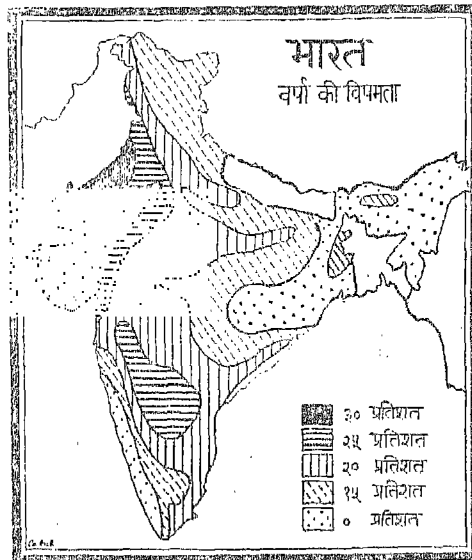
(७) वर्ष की लगभग ७५% वर्षा जून से सितम्बर के महीनों में होती है अर्थात् वर्ष का प्रायः दो-तिहाई भाग सूखा ही रह जाता है। इस सूखे काल में फसलों की सिंचाई करनी पड़ती है।

(८) पहाड़ों के पवनमुखी (Wind-ward Side) ढालों पर उनके विमुख वाले ढालों की अपेक्षा कम वर्षा होती है।

(९) भारत के विशाल क्षेत्रों में वर्षा की अनियमितता (Variability) बहुत है। उदाहरण के लिये, पाकिस्तान के नौशेरा स्थान में जहां वर्षा केवल ५" होती है

१. Govt., of India, Indian Agriculture in Brief, 1956, p. 22.
२. Census of India, 1951, Vol I. Pt. I. A.

अनियमितता ५३% है, परन्तु कानपुर में जहां ३४" वार्षिक वर्षा होती है वहां अनियमितता केवल २०% है। कलकत्ता में ६५" वर्षा होती है तो अनियमितता केवल



चित्र ७६—वर्षा की विषमता

११% है। वर्षा की अनियमितता अधिकतम और न्यूनतम वर्षा के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण नहीं होती क्योंकि अधिकतम वर्षा के क्षेत्रों में सदैव ही फसलों के लिए पर्याप्त पानी हो जाता है। इसी तरह शुष्क क्षेत्रों में फसलें उगने के लिये सिंचाई के साधनों की समुचित व्यवस्था की जाती है किन्तु अन्य क्षेत्रों में वर्षा न होने से भारी क्षति पहुँचती है। ऐसे क्षेत्र देश के मध्यवर्ती भागों में स्थित हैं जहाँ साधारण तथा वर्षा २०" से ४०" तक होती है। यही भारत के प्रमुख अकाल के क्षेत्र (Famine Zones) कहलाते हैं।

भारत में वर्षा का वितरण

जैसा कि ऊपर दिये गये वर्णन से ज्ञात होगा सम्पूर्ण भारत में वर्षा का वितरण समान नहीं है। कहीं अधिक और कहीं कम। भारत की वर्षा का औसत ४२" है अर्थात् हमारे यहाँ प्रति एकड़ भूमि पीछे एक लाख मन जल गिरता है।[1] कभी कभी तो इस सामान्य औसत से वर्षा +१२" और −८" तक विचलित हो चुकी है जैसा कि सन् १९१९ और १८९९ ई० में हुआ था। देश में जाड़े की वर्षा का औसत १", गर्मी का ५", वर्षा ऋतु का ३४", तथा लौटती हुई मानसून से २" है।

भारत के जनगणना-आयुक्त ने भारत को वर्षा की दृष्टि से पांच भागों में बांटा है :—

(१) १५" से कम
(२) १५" से ३०" तक

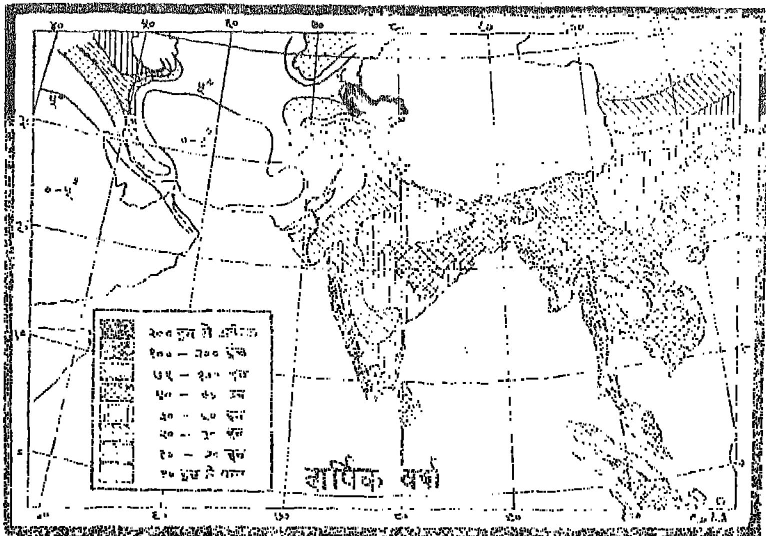
१. Census of India, 1951, Vol I. Pt I. A. p. 10

(३) ३०″ से ५०″ तक
(४) ५०″ से ७०″ तक
(५) ७५″ से ऊपर

प्रथम दो भागों के अन्तर्गत देश का एक तिहाई क्षेत्रफल है। यहाँ वर्षा की अनिश्चितता बड़ी ही एकनिष्ट है। जब कभी सूखे या अकाल पड़ जाते हैं तो इन भागों के निवासियों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पहले भाग में तो वर्षा की नितान्त कमी के कारण बहुत ही कम निवासी रहते हैं किन्तु दूसरे भाग में लगभग ⅓ जनसंख्या पाई जाती है। देश का एक तिहाई भाग तीसरे क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। यहाँ वर्षा यदि समय पर हो तो वह पर्याप्त होती है किन्तु यहाँ कई बार सूखा पड़ जाता है। शेष ⅔ क्षेत्रफल चौथे और पाँचवे भागों के अन्तर्गत है। इनमें वर्षा का वितरण अच्छा है और यह विश्वसनीय भी है।

हम वर्षा के सामान्य वितरण (Normal Rainfall) के अनुसार भारत के निम्न भाग कर सकते हैं:—

(१) **अधिक वर्षा वाले भाग**—इसमें पश्चिमी तट के कोंकन, मलाबार और दक्षिणी कनारा तथा उत्तर में हिमालय की दक्षिणवर्ती तलहटी में उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, आसाम के क्षेत्र सम्मिलित हैं। अधिक जलवृष्टि के कारण इन क्षेत्रों में उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वन मिलते हैं। इन क्षेत्रों की मुख्य उपज धान है तथा वर्षा की मात्रा ८०″ से अधिक होती है।



चित्र ६६—वार्षिक वर्षा

(२) **साधारण वर्षा वाले भाग**—इस क्षेत्र के अन्तर्गत पश्चिमी घाट के पूर्वोत्तर ढाल और बंगाल के पश्चिम दक्षिण में उड़ीसा, बिहार, दक्षिणी-पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं तराई के समानान्तर उत्तर प्रदेश और पंजाब की संकीर्ण पेटी है। यहाँ वर्षा ४०″ से ८०″ तक होती है। इस क्षेत्र में वर्षा की विषमता १५ से २० प्रतिशत तक

रहती है। मानसूनी वन प्रदेश इन क्षेत्रों में ही मिलते हैं। मानसूनों के देर में आने से चावल की फसल को बड़ी हानि उठानी पड़ती है। पश्चिमी भागों में गेहूँ प्रमुख उपज है। गन्ना एवं तिलहन भी खूब पैदा किया जाता है। इसी क्षेत्र में अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि से अकाल आते हैं अतः बड़ी-बड़ी सिंचाई की योजनायें कार्यान्वित की गई हैं।

(३) **न्यून वर्षा वाले भाग**—साधारण वर्षा वाले क्षेत्र के बीच में दक्षिण के पठार से लेकर गुजरात, समस्त मध्य प्रदेश, उत्तरी और दक्षिणी आंध्र प्रदेश, मैसूर, पूर्वी राजस्थान एवं दक्षिणी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में वर्षा २०″ से ४०″ तक होती है। वर्षा की मात्रा न केवल अपर्याप्त ही है वरन् अनिश्चित भी। वर्षा की विषमता २० से २५ प्रतिशत तक रहती है अतएव सही अर्थ में ये क्षेत्र अकाल के क्षेत्र हैं। यहाँ सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है और उसी के सहारे ज्वार, बाजरा, कपास, तिलहन एवं गेहूँ पैदा किया जाता है।

(४) **अपर्याप्त वर्षा वाले भाग**—उपरोक्त क्षेत्र के पश्चिम में राजस्थान में वर्षा की मात्रा २०″ से भी कम होती है। मद्रास का रायलसीमा भी ऐसा ही क्षेत्र है। इन क्षेत्रों में बहुत ही कम वर्षा होने से सिंचाई के सहारे ही फसलें पैदा की जा सकती हैं।

मानसून से निम्न बाहरी बातों का गहरा सम्बन्ध है

(१) जब हिमालय और उत्तरी पश्चिमी पहाड़ों पर मई के महीने तक भारी बरफ पड़ती रहती है तो उत्तरी और पूर्वी खुश्क हवाएँ चलने लगती हैं। इससे मानसून देरी से आता है और कम पानी बरसाता है। इसके विपरीत हिमराशि की कम मात्रा तापक्रम को ऊँचा उठने का अवसर देती है जिससे मानसून द्वारा वर्षा अधिक होती है।

(२) मारीशस के पास हिन्द महासागर में वायु-भार अधिक होने से भारत में भी हवा का भार बढ़ जाता है और मानसून कमजोर पड़ जाता है क्योंकि इसके कारण भारत में प्रति-चक्रवातीय हवाएँ उत्पन्न हो जाती हैं और बादल कम बन पाते हैं।

(३) मार्च, अप्रेल और मई महीनों में जिस तरह का वायु-भार अर्जेन्टाइना और चिली में रहता है उसका उल्टा भारत में देखा गया है। यदि वहाँ वायु-भार ऊँचा होता है तो मानसून अच्छा चलता है क्योंकि इसके कारण हिन्द महासागर में निम्न वायु भार उत्पन्न हो जाता है।

(४) यदि अफ्रीका में जंजीबार आदि भूमध्य रेखा के पास वाले स्थानों में अप्रेल और मई में घनी वर्षा होती है तो मानसून कमजोर पड़ जाता है। यदि इन महीनों में वहाँ कम पानी बरसता है तो भारत में मानसून अधिक पानी बरसाता है।

(५) यदि हिन्द महासागर के दक्षिणी भाग में अधिक बरफ पाई जाती है तो मानसून उस साल खूब पानी बरसाता है।

(६) नील नदी में अधिकतर बाढ़ एबीसीनिया की वर्षा से होती है। जिस साल नील नदी में बाढ़ें आती हैं उस साल भारत में भी मानसून से अच्छी वर्षा होती है।

(७) यदि भारत में किसी वर्ष वायु-भार ऊँचा रहता है तो दूसरे वर्ष वायु भार कम रहता है और वर्षा अच्छी होती है।

मौसम संबंधी प्रतिकूलतायें (Weather Abnormalities)

मौसम सम्बन्धी अवस्थाएँ सदैव स्थिर और एक सी नहीं रहतीं। इन अवस्थाओं

में कभी कभी अचानक इतने तीव्र परिवर्तन हो जाते हैं कि जिनका प्रभाव फसलों पर बड़ा प्रतिकूल पड़ता है। मौसम की प्रतिकूलताओं के निम्न स्वरूप पाये जाते हैं :—

(१) बाढ़ें, (२) अनावृष्टि, (३) तूफान एवं अनियमित वर्षा, (४) ओले, धूल तथा गर्जन लिए हुए तूफान; (५) गर्म हवा की लहरें; (६) ठंडी हवा की लहरें और पाला; (७) कम या अधिक सूर्य ताप और (८) तेज हवाएँ।

अतिवृष्टि अथवा बाढ़ (Excessive Rains or Floods)

भारतीय ऋतु विज्ञान कार्यालय द्वारा मौसम-संबंधी जो सूचनाएँ एकत्रित की गयी हैं उनके आधार पर ऋतु-विज्ञानवेत्ताओं ने अतिवृष्टि (बाढ़) के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष निकाले हैं :—

(१) सम्पूर्ण भारत में २४ घंटे के भीतर ५″ से भी अधिक वर्षा हुई है।

(२) ब्रह्मा तथा प्रायद्वीप के अधिकांश भीतरी भागों में २४ घंटे में वर्षा १०″ से अधिक हुई है।

(३) पश्चिमी समुद्र तटीय भागों में—गुजरात और सौराष्ट्र सहित—दक्षिणी कोरोमंडल तट, ब्रह्मा के उत्तरी तट, दक्षिणी आसाम और हिमालय के निचले भागों में वर्षा की मात्रा २४ घंटे में १५″ से २०″ तक हुई पाई गई है।

(४) मैदानी क्षेत्रों में यत्र-तत्र कई भागों में २४ घंटे में वर्षा २०″ से भी अधिक हो सकती है।

(५) खासी की पहाड़ियों में स्थित चेरापूंजी में २४ घंटे में ४०″ से भी अधिक वर्षा हुई है।

जब नदियों के प्रवाह-क्षेत्रों में लगातार इस प्रकार घनी वर्षा होती है तो उसके फलस्वरूप नदियों में भयंकर बाढ़ें आ जाती हैं। बाढ़ों के आने का एक मुख्य कारण नदियों के प्रवाह क्षेत्रों में वन प्रदेशों का अविवेक पूर्ण रूप से काटा जाना है। इन बाढ़ों को वृक्षारोपण कर रोका जा सकता है।

अनावृष्टि अथवा सूखा (Droughts or Scanty Rains)

जिन क्षेत्रों में वर्षा कम होती है वहाँ वर्षा की मात्रा बड़ी अनियमित होती है। इस प्रकार की अवस्था मुख्यतः दक्षिण के पठार पर पाई जाती है। वर्षा की अनियमितता के कारण बहुधा फसलें सूख जाती हैं अथवा रबी की फसल को बढ़ने में सुविधा नहीं मिलती। इस समस्या को हल करने के लिए प्राप्त जल का अधिक से अधिक उपयोग किया जाता है तथा तालाब, बांधों और झीलों आदि में एकत्रित जल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त न्यून वर्षा वाले भागों में शुष्क कृषि की प्रणाली अपनाई जाती है अथवा सूखा-सहने वाली फसलें पैदा की जाती हैं। कई भागों में भूमि से नमी वाष्प बन कर न उड़ सके इसके लिए पौधे भी लगाये जाते हैं।

चक्रवातिक तूफान (Cyclonic Storms & Depressions)

जब चक्रवात अथवा भारी तूफान आने की सम्भावना होती है तो ऋतु विज्ञान कार्यालय उचित समय पर कृषकों, नाविकों तथा सिंचाई विभाग आदि को पूर्व सूचना देता है इससे आने वाले तूफानों से बचाव करने के ढंग काम में लाये जा सकते हैं और उनसे होने वाली हानियों से फसल, पशु तथा मनुष्यों को बचाया जा सकता है।

गड़गड़ाहट, ओले और धूल के तूफान (Thunderstorms, Hailstorms & Dust-storms)

इस प्रकार के तूफान यद्यपि साधारणत: स्थानीय ही होते हैं किन्तु कभी-कभी इनका सम्बन्ध चक्रवातों से होता है, तब ये बड़े विनाशकारी सिद्ध होते हैं क्योंकि तब इनका कार्य क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जाता है। इस प्रकार के तूफान मुख्यत: मानसून के आरम्भ होने और समाप्त होने के समय ही आते हैं। जब वायुमंडल में पर्याप्त नमी का अभाव होता है तो धूल के तूफान अधिक आते हैं किन्तु जब वायु में नमी की मात्रा अधिक होती है तो ये तूफान ओले अथवा गर्जन का रूप धारण कर लेते हैं। यद्यपि इनकी अवधि थोड़ी होती है किन्तु इनसे विनाश अधिक होता है। कभी-कभी इनकी चाल ८० से १०० मील प्रति घन्टा की हो जाती है। दक्षिण के कई भागों में मानसून के पूर्व और पश्चात् काल में इन तूफानों से जो वर्षा होती है उससे कृषि को बड़ा लाभ पहुँचता है। जब तूफानों के साथ ओले गिरते हैं तो उनसे न केवल फसलें ही नष्ट हो जाती हैं वरन् पशु भी मर जाते हैं। शीतकाल के आरम्भ में ओले के तूफान कम आते हैं किन्तु ज्यों-ज्यों ग्रीष्मकाल आता है इनकी संख्या बढ़ती जाती है। हिमालय प्रदेश में वर्ष भर में ऐसे तूफानों का औसत १० माना गया है जबकि निकटवर्ती भागों में इनका औसत केवल १ या २ का होता है। निचले बंगाल और मध्य प्रदेश में वर्ष में साधारणत: एक बार ऐसे तूफान आते हैं। तटीय भागों में ऐसे तूफानों का नितान्त अभाव होता है। इन तूफानों में ओलों का व्यास ५" तक तथा वजन १ पौंड तक होता है।

ठंडी हवा की लहरें (Cold Waves)

शीतकाल में पश्चिमी भागों की ओर से चक्रवातों के साथ प्रति १-१ सप्ताह के बाद ठन्डी हवा की लहरें आती हैं जो सिन्धु-गंगा के मैदान तथा मध्यवर्ती भाग से होती हुई उत्तर-पूर्वी सीमा प्रान्त की ओर बढ़ती हैं। इनके आने पर आकाश में बादल छा जाते हैं, हवा दक्षिण दिशा की ओर से चलने लगती है और तापक्रम बढ़ जाते हैं। इनके फलस्वरूप १-२ दिन में वर्षा हो जाती है। इन तूफानों के निकल जाने पर तापक्रम पुन: गिर जाते हैं और बड़ी ठन्डी तथा शुष्क हवायें उत्तर या उत्तर पश्चिम की ओर से पूर्व की ओर चलने लगती हैं। इन ठन्डी धाराओं का प्रभाव देश के बड़े क्षेत्र तक पड़ता है। १६२६ में संभवत: बड़ी ठन्डी लहर भारत में पश्चिम की ओर से आई जिसका प्रभाव २६ जनवरी से ३ फरवरी तक रहा।

शीतकाल में ही उत्तरी भारत के कई भागों में रात के पिछले पहर घना पाला भी पड़ता है इससे अंगूर अथवा गन्ना और गेहूँ आदि की फसल को बड़ी हानि होती है। पहाड़ों की घाटियों में पाला अधिक अनुभव किया जाता है अत: सेव, नासपाती आदि फल मुख्यत: घाटियों में न बोकर निचले पहाड़ी ढालों पर पैदा किये जाते हैं। पाले का प्रभाव नष्ट करने के लिए कई भागों में कृत्रिम रूप से खेतों में गर्म वायु पहुँचाई जाती है। यदि शीतकाल में खेतों की सिंचाई की जाये तो उससे भी पाले का विनाशकारी प्रभाव रोका जा सकता है। पाला उत्तरी भारत से दक्षिणी भारत की ओर बढ़ने पर बहुत ही कम पड़ता है।

गर्म हवा की लहरें (Heat Waves)

जिस प्रकार ठन्डी वायु की लहरें फसल के लिये हानिकर होती हैं उसी तरह

गर्म लहरें भी। इस प्रकार की लहरें मार्च, अप्रेल और मई में दक्षिण के अधिकांश भागों में तथा राजस्थान के मरुस्थल में चलती हैं। मानसून हवाओं के आरम्भ होने पर इनका चलना बन्द हो जाता है।

अधिक या न्यून सूर्य ताप (Excessive or Defective Insolation)

सूर्य ताप किसी स्थान विशेष पर सूर्य की ऊँचाई, दिन की लम्बाई और वायुमंडल की दशा पर निर्भर करता है। ग्रीष्म ऋतु में जब आकाश मेघ रहित रहता है तो भूमि का तापक्रम बड़ा ऊँचा हो जाता है क्योंकि सूर्य की किरणें भूभाग पर सीधी पड़ती है। काली लावा मिट्टी में दैनिक ताप १६७° फा० तक अंकित किया जा चुका है। पूना में जो परीक्षण किये गए हैं उनसे यह मालूम हुआ है कि यदि भूमि पर खड़िया मिट्टी की पतली परत बिछा दी जाये तो दोपहर के समय मिट्टी का तापक्रम ३६° फा० गिर जाता है। इसी प्रकार यदि कोयले का चूरा आदि बिछा दिया जाये तो यह ताप को सोख लेगा और जब प्राकृतिक रूप से सूर्य ताप की कमी होती है तब यह मिट्टी के तापक्रम को बढ़ा देता है। यदि धरातल पर पानी दिया जाये तो ताप में लगभग २७° फा० की कमी हो सकती है।

तेज हवाएँ (High Winds)

तेज हवाओं का प्रभाव भी पौधों पर बड़ा विनाशकारी पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि अक्टूबर में तेज हवा चले तो खेतों में खड़े ज्वार के पौधे गिर कर अनाज नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार शीत काल में ठंडी हवा और पाला भी पौधों को बड़ी हानि पहुँचाता है। ग्रीष्मकाल में तेज हवाएँ पौधे से जल की मात्रा को सोख लेती हैं इससे शीघ्र पौधे मुरझा जाते हैं। जब गेहूँ पकने को होते हैं यदि उस समय तेज गर्म हवा चल जाये तो उसका दाना सिकुड़ जाता है और सारी फसल छोटे दाने वाली हो जाती है। अतः फसलों को तेज हवा के झौंके से बचाने के लिए हवा रोकने (Wind-breaks) वाले पौधे लगाये जाने चाहिये। इन पौधों की कतारों से न केवल तेज हवाएँ ही रुक जायेंगी वरन् वायु द्वारा होने वाला भूमि का कटाव भी रुक सकेगा। वाष्पीकरण क्रिया में कमी होगी तथा पेड़ों द्वारा ईंधन और छाया भी मिल सकेगी।

जलवायु का भारत के आर्थिक जीवन पर प्रभाव
(Influence of Climate on the Economic Life of India)

भारत की जलवायु की कुछ विशेषताएँ हैं जिनका भारत के आर्थिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। शायद ही किसी देश में वर्षा जीवन पर इतना अधिक प्रभाव डालती है जितना भारत में क्योंकि ७०% जनता भरण-पोषण के लिये खेती पर निर्भर रहती है जो स्वयं दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पर आधारित है। वास्तव में "मानसून वह धुरी है जिस पर भारत का समस्त जीवन चक्र घूमता है[१] क्योंकि वर्षा का अभाव खेती को नष्ट ही नहीं कर देता अपितु किसान एवं देश की आर्थिक स्थिति को भी डाँवाडोल कर देता है"।

(१) जाड़ों में भी भारतवर्ष का तापक्रम बहुत नीचा नहीं होता वरन् प्रत्येक भाग में यथेष्ट गर्मी रहती है। इस कारण खेती के लिये लम्बा समय मिलता है।

---

१. "Monsoon may be said to be pivot upon which the whole of Indian life revolves", C. B. Mamoria, Geographic Environment in India, in Modern Review, October, 1955, pp. 279-281

अधिकांश भागों में पाला और कुहरा भी नहीं गिरता। इस कारण भारत जाड़ों में शीतोष्ण कटिबन्ध की फसलें उत्पन्न कर सकता है और गर्मियों में उष्ण कटिबन्ध तथा अर्ध-उष्ण कटिबन्ध की फसलें उत्पन्न की जा सकती हैं।

(२) ग्रीष्मकालीन तापक्रम ऊँचे होते हैं और अचानक बढ़ जाते हैं। अतः फसलें भी भारत में शीघ्र पक जाती हैं। शीघ्रता से पकने के कारण वे घटिया होती हैं। अतः भारत गुणात्मक-उत्पादक (qualitative) नहीं वरन् परिमाणात्मक (quantitative) उत्पादक देश है। यह बात सरदी और गर्मी दोनों की फसलों के लिये लागू होती है क्योंकि दोनों ही फसलों के पकने का समय गर्मियों में ही आता है।

(३) अधिकांश वर्षा जून, जुलाई और अगस्त के महीनों में होती है इससे ज्वार, बाजरा, मक्का आदि की फसलें शीघ्र तैयार हो जाती हैं। इन दिनों के गर्म और नम जलवायु के कारण पौधों की बढ़वार और उत्पत्ति अधिक होती है जिससे पशुओं को यथेष्ट चारा मिल जाता है।

(४) देश में वर्षा कुछ ही महीनों तक सीमित रहती है इस कारण वर्ष का शेष भाग सूखा रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि यहाँ घास के मैदान नहीं पाये जाते। जो कुछ भी घास वर्षा के दिनों में उगती है वह वर्षा के उपरान्त धूप की तेजी से जल जाती है। इस कारण भारत में चारे की कमी रहती है और जो कुछ भी चारा होता है वह घटिया होता है। इसलिये पशुओं को सूखे समय में जमा किया हुआ चारा खिलाना पड़ता है।

(५) भीषण गर्मी के उपरान्त वर्षा के आने से बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिये कुछ भागों में मलेरिया का भीषण प्रकोप होता है। जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ मलेरिया के कारण जनसंख्या की कार्य-क्षमता नष्ट हो जाती है। इसी तरह वर्षा काल में तथा अप्रैल में प्रवाहिका, हैजा, चेचक आदि बीमारियाँ भीषण रूप से फैलकर बच्चों की मृत्यु संख्या में वृद्धि करती हैं।

(६) गर्मी और नमी होने के कारण वर्षा के दिनों में बीमारियों की ही वृद्धि नहीं होती वरन् मनुष्य में आलस्य और पुरुषार्थ हीनता भी उत्पन्न होती है। इससे उत्पादन कार्य में बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु यह बुरा प्रभाव केवल उन्हीं प्रदेशों में दिखाई देता है जहाँ वर्षा अधिक होती है।

(७) भारत में वर्षा बहुत ही अनिश्चित है। किसी वर्ष वर्षा बहुत कम होती है और सूखा पड़ जाता है और फसलें नहीं होती तथा दुर्भिक्ष पड़ जाता है। दूसरे वर्ष वर्षा अधिक होने से नदियों में बाढ़ें आ जाती हैं उससे भी फसलों को हानि पहुँचती है। इस कारण भारतीय ग्रामीण निराशावादी और भाग्यवादी बन गया है। वर्षा की कमी के कारण ही भारत सरकार के वित्त विभाग का बजट 'मानसून का जूआ'[१] समझा जाता है।

(८) वर्षा केवल तीन महीनों में ही होती है और वह भी अनिश्चित। इस कारण जाड़े में फसलें उत्पन्न करने के लिये सिंचाई की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। यही कारण है कि भारतवर्ष की खेती सिंचाई पर बहुत कुछ निर्भर है और खेती के लिये सिंचाई का यहाँ इतना महत्व है कि बहुत प्राचीनकाल से ही भारत में सिंचाई के विभिन्न साधन व्यवहृत किये जारहे हैं।

१. Budget making in India is a gamble in rains

(९) जलवायु मानव जीवन को भी प्रभावित करती है । व्यक्ति अपने जीवन के लिये कितना संघर्ष करता है यह बात उसके चरित्र को प्रभावित करती है । फिर भारतीय मानव तो उष्ण कटिबन्ध का निवासी है फलत: वह शीघ्र ही परिपक्वावस्था (Mature) को पहुँच जाता है और नष्ट भी शीघ्र ही हो जाता है । एक औसत भारतीय की जीवन अवधि ४२ वर्ष है जो कि यूरोपीय देशों की तुलना में आधी से भी कम है । लड़कियाँ किशोरावस्था को शीघ्र ही प्रवेश कर जाती हैं इसके फलस्वरूप (उपवादों को छोड़कर) बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित है । एक साधारण भारतीय कल्पना की उड़ान में विश्व के सभी देशों को पीछे रख सकता है । वह कल्पना केन्द्र में बड़ी-बड़ी योजनाऐं एवं कार्यों की सफलता का अनुमान करता है किन्तु जहाँ वास्तविकता का प्रश्न आता है वहाँ वह शीघ्र ही शक्ति-ह्रास मानव के समान बन कर हिम्मत हार कर बैठ जाता है । इस निराशावादी दृष्टिकोण के कारण अधिक समय तक एक समान सुसंयत स्थिर विचार धारा बनाये रखना भारतीयों के बस का रोग नहीं है । इन्हीं सब कारणों के फलस्वरूप यह देखा गया है कि अधिकतर भारतीयों की अधिभौतिक भावनाऐं उसे भौतिकता के विरुद्ध उकसाने का कार्य करती है और वह अस्थिर एवं पूर्ण भाग्य-वादी बन जाता है ।

प्रकृति-दत्त सुविधाओं के कारण—जो कि गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदानों में पाई जाती है—इन प्रदेशों में. मानव शीघ्र ही परिपक्वावस्था को पहुँच जाता है । यहाँ के व्यक्ति चावल और मछली पर अपना जीवन पालन करते हैं और शारीरिक रूप से वे दुर्बल होते हैं (Modest) । इन भागों में घनी एवं मिश्रित खेती के कारण बहुत घनी जनसंख्या का भरण-पोषण बहुत ही सरलता से हो जाता है । उत्तर के जिन प्रदेशों में गर्मियाँ उष्ण एवं शुष्क बीतती हैं और सर्दियाँ आर्द्र एवं कठोर शीतयुक्त होती हैं वहाँ के निवासी बलिष्ट, शूरवीर एवं कठिनाइयों का सामना करने वाले होते हैं । ये अपना जीवन गेहूँ, दूध, मांस जैसी पौष्टिक वस्तुओं पर चलाते हैं ।

(१०) यहाँ का पहनाव भी प्राकृतिक एवं मानसिक विशेषताओं की भाँति प्रभावित होता है । भारत में अधिक गर्मी पड़ने तथा ग्रीष्म में ही वर्षा होने के फलस्वरूप ढीले एवं महीन कपड़े पहनना आवश्यक सा हो जाता है । एक धोती एवं ऊपरना (जो कि सफेद रंग का होता है जिससे ज्यादा से ज्यादा सूर्य की किरणें परावर्तित हो सके) भारतीयों का साधारण पहनाव है । पर यह दक्षिणी भारत में ज्यादा पहनी जाती है । फैशन एवं आधुनिकता के कारण धोती के किनारी भी लगा ली जाती है एवं कुरते को ऊपरने के स्थान पर पहना जा सकता है । राजपूत, जाट, गूजर लोग सिर पर साफा बांधते हैं जबकि अन्य लोग पगड़ी पहनते हैं । वस्त्र अधिकतर सूती ही पहने जाते हैं । यह इसलिए नहीं कि रुई के कपड़े अधिक सस्ते होते हैं या रूई भारत में ही पैदा होती है बल्कि इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति उष्ण एवं अर्द्धउष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में निवास करते हैं उन्हें गर्मी प्राप्त करने के लिये ऊनी कपड़ों की आवश्यकता नहीं रहती बल्कि सूती कपड़ों के द्वारा वे अपने शरीर में शीतलता को बनाये रखना चाहते हैं क्योंकि सूती कपड़ों से शरीर की गर्मी बराबर बाहर निकलती रहती है । उत्तरी भारत में विशेषकर लोग सूती कपड़ों में रुई का अस्तर लगाकर सर्दियों में पहनते हैं जिससे शरीर गरम रहता है । रेशमी कपड़ा भी हल्का होता है अतः वह हिन्दुओं में उत्सवों के अवसरों पर अधिक पहना जाता है—जैसे पीताम्बर, साड़ियाँ, ऊपरने, कुरते आदि ।

भारत के भिन्न-भिन्न भागों में वनस्पति एक समान नहीं मिलती है अतः वह भी अपना प्रभाव वस्त्रों पर डालती है। यहाँ के निवासी रंगीन छपी हुई साड़ियाँ एवं मोरकीन, जिन पर कि छोटे-छोटे पक्षियों के चित्र आदि हों, अधिक पहनते हैं। मारवाड़ी स्त्रियों के भारी लंहगे तथा सिंधियों के शलवार और कुर्ते तथा मुसलमानों के बुर्के एवं तंग पजामे तथा कुर्ते ही मुख्य वेष-भूषा है क्योंकि जिन भागों में ये रहते हैं वहाँ शुष्कता एवं गर्मी का साम्राज्य है अतएव धूल और गर्मियों से बचने के लिये ऐसे ही वस्त्र पहने जाते हैं जिससे अधिक सुविधा रह सके।

(११) उष्ण कटिबन्धीय देशों की भाँति भारत में भी धूप या रोशनी की अपेक्षा हवा की अधिक आवश्यकता रहती है। इसी कारण यहाँ के मकान शीतोष्ण कटिबन्धीय देशों की तुलना में भिन्न प्रकार के होते हैं। प्रत्येक मकान में आंगन और सहन होते हैं जिससे शीतल वायु निर्विरोध घरों के भीतरी भागों में पहुँच सके। अस्तु, साधारण मकानों में भी छज्जे, चौक, सहन, जालियाँ, गोखड़े आदि अनेक साधन पाये जाते हैं जिसके द्वारा गर्मी से बचा जा सके और शीतल वायु भीतरी भागों में प्रवेश कर सके। बड़े-बड़े प्रासादों में तो कमरों की छतें बहुत ऊँची रक्खी जाती हैं और ऊपर रोशनदान भी बनाये जाते हैं जिससे हवा अधिक गर्म न हो और हवा का आना-जाना बराबर जारी रहे। भारत में अधिकतर मकानों के दरवाजे पूर्व या दक्षिण में रखना शुभ माना जाता है क्योंकि पूर्व में प्रातःकालीन सूर्य की किरणें प्रवेश कर सकती हैं और दक्षिण में द० प० मानसून की शीतल वायु। भारत के पूर्वी एवं दक्षिणी भागों में छतें ढालू होती हैं जिससे वर्षा का अतिरिक्त पानी बह कर चला जाय किन्तु पश्चिमोत्तर भारत में छतें चौरस होती हैं और इनका ढाल आंगन की ओर होता है जिससे समस्त वर्षा का जल बह कर एक हौज में इकट्ठा हो सके।

अध्याय ९

भारत का भूतत्व
(Geology of India)

भारत के भौगोलिक अध्ययन में उसके भूतत्व एवं संरचना का सम्यक ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि देश के विभिन्न भागों में पाई जाने वाली चट्टानों का स्वरूप जाने बिना उनकी उपयोगिता का पता लगाना असम्भव सा होता है। कृषि का सम्बन्ध मिट्टी से होता है और मिट्टी का निर्माण उस देश में पाई जाने वाली चट्टानों से होता है। इन्हीं चट्टानों से देश के लिए विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ मिलते हैं जिनका देश के आर्थिक और औद्योगिक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। अतः जब तक भारत की चट्टानों के स्वरूप और उनसे सम्बन्धित भूतत्व और संरचना का ज्ञान नहीं हो जाता तब तक देश की आर्थिक क्षमता का ज्ञान भी अधूरा ही रह जाता है।

जिस प्रकार मानव इतिहास की लम्बी कहानी को अध्ययन की सुविधा के लिए विभिन्न कल्पों अथवा शकों में बांटते हैं—जैसे पाषाण युग (Stone Age), लोह युग (Iron Age) आदि, अथवा भारतीय इतिहास में वैदिक काल, मुस्लिम काल, बृटिश काल आदि —उसी प्रकार पृथ्वी की भू-पपड़ी जिन राशियों से संयुक्त है वे बड़े खंडों में विभक्त की गई हैं जो समूह (Groups) कहलाते हैं। इनके उप-भाग उप-समूह (Systems), समुदाय (Series) और उप-समुदाय (Stages) हैं। इनसे सम्बद्ध भूतात्विक कालों (Geological time) के भाग इस प्रकार हैं :- कल्प (Era), युग (Epoch), शक (Period) और काल (Age)। यह आवश्यक नहीं कि हरेक खंड के विभाग (Divisions) एक ही परिमाण के हों। वे शिलाओं के शिला-विज्ञान सम्बन्धी और अन्य विशेषताओं पर निर्भर हैं।

निम्न सारिणी में मुख्य भूतात्विक खंड दिये गये हैं :—

प्रमाणित भूतात्विक राशियाँ

कल्प (Eras)	युग (Epoch)	शक (Periods)	अवधि (Duration of Periods)	कुल अवधि (Period Started B C)	जीवन का स्वरूप (Forms of Life)
चतुर्थ जीव कल्प (Neozoic)	तुरीयक युग (Quarter-nary)	१ आधुनिक युग (Recent, or Holocene or Post-Glacial)	२०,००० वर्ष		मनुष्य का आगमन (Evolution of Man)
		२ प्लीस्टोसीन (Pleistocene or Glacial)	१ ०००,००० वर्ष	१० लाख वर्ष	बड़े स्तनपायी पशुओं का लोप (Extinction of Large mamals)
तृतीय जीव कल्प (Cenozoic)	प्रत्यग्र-जन्तुक युग (Tertiary)	१ प्लायोसीन (Pliocene)	६,०००,००० वर्ष	७० लाख वर्ष	बन्दरों का उदय (Anthropoid Apes)
		२ मायोसीन (Miocene)	१२,०००,००० वर्ष	१ करोड़ ९० लाख वर्ष	बड़े स्तनपोषी पशुओं का उदय (Development of Large mamals)
		३ ओलीगोसीन (Oligocene)	१६,०००,००० वर्ष	३½ करोड़ वर्ष	स्तनपोषियों की उन्नति और बाहुल्य (Rise of Mamals)
		४ इओसिन (Eocene)	२५,०००,००० वर्ष	६ करोड़ वर्ष	फूलों वाले पौधों का विकास
द्वितीय जीव कल्प (Mesozoic)	मध्य जीव युग (Secondary)	१ क्रिटैसियस (Cretacious)	६५,०००,००० वर्ष	१२½ करोड़	फूल वाले पौधों का विकास, चिड़ियों का प्रादुर्भाव
		२ जुरैसिक (Jurrasic)	३५,०००,००० वर्ष	१६ करोड़ वर्ष	स्थलीय और जलीय उरंगों का बाहुल्य
		३ ट्रायसिक (Triassic)	३५,०००,००० वर्ष	१९½ करोड़ वर्ष	भूमि पर रेंगने वाले पशुओं का विकास

प्रथम जीव कल्प (Paleozoic)	नवीन प्रारम्भिक जीव युग (Primary)	१ परमियन (Permian)	२५,०००,००० वर्ष	२२ करोड़ वर्ष	बड़े उभयगामियों का उदय (Large Amphibians)
		२ कारबोनीफरस (Carboniferous)	८५,०००,००० वर्ष	३० करोड़ ५० लाख वर्ष	प्रचुर वनस्पति और उभयगामियों का जन्म
		३ डैनोवियन (Denovian)	५०,०००,००० वर्ष	३५½ करोड़ वर्ष	मछलियों आदि का उदय
	प्राचीन प्रारंभिक जीव युग	१ सिल्यूरियन (Silurian)	४०,०००,००० वर्ष	३६½ करोड़ वर्ष	मछलियों तथा स्थूल पौधों का जन्म, मूंगा आदि
		२ ओरड़ोविशन (Ordovician)	८५,०००,००० वर्ष	४८ करोड़ वर्ष	समुद्री अपृष्ठ एवं चूपियों का उद्भव (Invertibrates)
		३ कैम्ब्रीयन (Cambrian)	७०,०००,००० वर्ष	५५ करोड़ वर्ष	निम्न जलकी वनस्पति और बिना रीढ़ वाले जन्तुओं का जन्म (Triobites)
उषः कल्प (Pre-Paleozoic or Eozoic)		१ प्रीकैम्ब्रीयन (Pre-Cambrian) या एलगोनकियन (Algonkian)	६५०,०००,००० वर्ष	१२० करोड़ वर्ष	जीव का विशेष चिह्न उपलब्ध नहीं
आद्यः कल्प या निर्जीव कल्प (Archaeon or Azoic)		१ आद्य कल्प (Archaeon)	६५०,०००,००० वर्ष	१८५ करोड़ वर्ष	जीवन का कोई चिह्न नहीं

उपरोक्त प्रमाणित राशियों के नाम पहले यूरोप में स्वीकृत थे अब संसार भर में उनका उपयोग होता है। भारतीय भूतत्व का युग-विभाजन यूरोपीय युग-विभाजन से कुछ भिन्न है। सबसे बड़ा भेद यह है कि भारत में यूरोप के कैम्ब्रीयन और उप: कल्प के बीच एक संक्रांति कल्प (Transition) भी माना जाता है जिसे पुराण कल्प (Purana Era) कहते है। डा० हालैंड, डा० कृष्णन और डा० वाडिया के भूतात्विक मतों को दृष्टिगत रखते हुए नीचे की तालिका में भारत के भूतात्विक विकास को बताया गया है :—

भारत की भूतात्विक राशियाँ

युग	उप-समूह	हिमालय पर्वत	उत्तर का मैदान	दक्षिणी पठार
अति प्राचीन युग	उप: कल्प (Archaean)	मलखाला, जुतोघ व चेल समुदाय; नीस व शिस्त की आधारभूत चट्टानें	आसाम की नीस एवं ग्रैनाइट चट्टानें, शिलाग सिरीज की चट्टानें	बुन्देलखण्डीय नीस चट्टानें, धारवाड़ व अरावली क्रम
पुराण युग (Purana Era)	प्रपुराकल्प (Algonkian)	मध्य हिमालय की शिमला स्लेट और देवबन क्रम; पूर्वी हिमालय का बक्सर क्रम; काश्मीर का डोगरा क्रम।	आसाम का मीजू क्रम	कड्डप्पा, विन्ध्या क्रम; रीवाँ, कैमूर, सेमरी और कर्नूल क्रम; तथा अलोर व सेवाना ग्रैनाइट चट्टानें
द्रविड़ युग (Dravidian Era)	१. कैम्ब्रियन	काश्मीर की कैम्ब्रियन चट्टानें, मध्य हिमालय की हेमन्त चट्टानों का उप-समूह		विन्ध्या समूह (१)
	२. आर्डोविशियन	स्पीती तथा काश्मीर की ओर्डोविशियन चट्टानें		
	३. सील्यूरियन	काश्मीर तथा स्पीती की सील्यूरियन चट्टानें		
	४. डैनोवियन	काश्मीर व स्पीती का मुठ-क्रम; जानसार की डैनोवियन चट्टानें		

	५. निम्न कारबोनीफरस	स्पीती की लियाक सोरोज, काश्मीर का चूना प्रस्तर		
	६. मध्य कारबोनीफरस	काश्मीर की शेल और कारबोनीफरस चट्टानें तथा स्पीती का पो क्रम		
	७. ऊपरी कारबोनीफरस	हिमालय की गोंडवाना चट्टानें	आसाम का सुबरनसीरी क्रम	तलचर क्रम की चट्टानें
आर्यंयुग (Aryan Era)	१. परमियन	काश्मीर का जीवन-क्रम; स्पीती की शेल चट्टानें तथा मध्य हिमालय की शेल और शिमला का क्रोल-क्रम		रानीगंज व बाराकर का दामुदा क्रम तथा उमरिया के जमाव
	२. ट्रायसिक	हिमालय के ट्रायसिक		गोंडवाना क्रम के पंचेत व महादेव समुदाय
	३. जुरासिक	बनिहाल की जुरासिक, गढ़वाल की ताल और स्पीती के शेल क्रम		ऊपरी गोंडवाना क्रम की कोटा, जबलपुर, राजमहल, उमरिया समूह और कुछ जुरासिक की चट्टानें, कच्छ की जुरासिक चट्टान
	४. क्रिटेशियस	बुर्जिल की ज्वालामुखी चट्टानें और चूना प्रस्तर, स्पीती की बालूशिलायें; उत्तरी हिमालय का सिकिम क्रम		द० पूर्वीतट की खटी चट्टानें; तिरुच्चिरापल्ली के लामेटा और बाग पात्र; आसाम की क्रिटैशियस, हिम्मतनगर की बालू शिलायें; उमिया के सामुद्रिक जमाव
	५. इओसीन	जम्मू के कोयला जमाव, भीतरी हिमालय की टर्शरी चट्टानें, बाहरी हिमालय की सबाथू और चरत क्रम	आसाम के बेरल समुदाय तथा जयन्तिया समूह	बीकानेर का लाकी क्रम; राजस्थान व सौराष्ट्र के चूना प्रस्तर

६. ओली-गोसीन	हिमालय में प्रविष्ट ग्रैनाइट चट्टानें		कच्छ की नारी तथा सौराष्ट्र के द्वारिका क्रम
७. मायोसीन	शिमला हिमालय की डागशाही तथा कसौली क्रम और शिवालिक क्रम	आसाम का तिपम क्रम व सुरमा क्रम	कच्छ का गज क्रम; पूर्वीतट की कड्डालोर बालू शिलायें; पुरी की मायोसीन चट्टानें
८. प्लायोसीन	हिमयुग के हिमनिक्षेप तथा काश्मीर के कारेवा	बांगर-कांप	नर्मदा व गोदावरी की पुरातन कांप तथा निचले भागों की लैटेराइट; पोरबन्दर के पत्थर तथा राजस्थान व कच्छ की बालू
९. प्लीस्टोसीन	शिवालिक क्रम	आसाम का दिहींग क्रम	ऊँचे स्थानों की लैटेराइट
१०. आधुनिक	नदी-कृत निक्षेप	खादर की कांप	डेल्टाओं की कांप, कर्नूल की गुफाओं के जमाव, मरुभूमि जमाव

ऊपर की तालिका में भारत में विद्यमान भूतात्विक राशियों का साधारण अनुक्रम दिया गया है। स्थान-स्थान पर शिला-विज्ञान और पहलू में बहुत कुछ भेद है अतः राशियों का पारस्परिक संबंध, मुख्यतः प्रायद्वीप में कठिन हो जाता है। भारत में कुछ ऐसी परिलक्षित असमानताएं हैं जो अन्यत्र उतनी स्पष्ट नहीं हैं। आद्यकल्प के ऊपर, जिनमें धारवाड़-समूह भी सम्मिलित है, फासिल रहित कड़प्पा और विन्ध्य उप-समूह हैं जो स्थूल रूप से अमेरिका के प्रपुराकल्प (Algonkian) के समरूप हैं। इन्हें डा० हालैंड ने **पुराण-समूह** (Purana System) का नाम दिया है। ये चट्टानें कैम्ब्रियन युग के पूर्व की शिलाभूत अवशेष-रहित (Unfossiliferous) स्लेट, क्वार्टजाइट्स, बालू और चूने के पत्थर के विस्तृत जमाव हैं जो मुख्यतः अरावली पर्वत, मद्रास के कडुप्पा क्षेत्र तथा विन्ध्याचल पर्वत के ढालों पर पाई जाती हैं। श्री हालैंड के अनुसार कैम्ब्रीयन समुदाय के आधार से तलचर समुदाय के आधार तक की राशियाँ **'द्राविड़ी समूह'** (Dravidian Group) की हैं। ऊपरी कारबनीफरस के

ऊपर के सम्पूर्ण स्तर **'आर्य समूह'** (Aryan Group) कहलाते हैं। इन दो समूहों को अलग करने वाली एक परिलक्षित तथा सार्वत्रिक असमानता (Universal Unconfirmity) है जो प्रायद्वीप और हिमालय पर्वत तथा बड़े मैदान में लक्षित है। यह असमानता उन महान हलचलों द्वारा हुई है जो दुनिया के कई भागों में **'हर्सीनियन क्रान्ति'** (Hercynian Revolution) की संज्ञा से ज्ञात है।

उषःकल्प समूह (Archean System)

उषःकल्प की चट्टानें पृथ्वी के धरातल पर सबसे पुरानी चट्टानें मानी जाती है। इन्हीं के ऊपर आगामी काल की अन्य चट्टानों और भूगर्भिक क्रियाओं का निर्माण हुआ है। विद्वानों का विचार है कि जब सबसे पहले पृथ्वी ठन्डी हुई तो इन्हीं चट्टानों का निर्माण हुआ। ये बड़ी कठोर चट्टानें होती हैं। सम्भवतः ये उतनी ही पुरानी हैं जितना धरातल पर मानव का उद्भव। ये चट्टानें नीस, ग्रैनाइट और शिस्ट नामक चट्टानों और रवेदार चट्टानों के अंशों की बनी हुई हैं। पृथ्वी के गर्भ में अत्यधिक गर्मी और धरातल के दबाव के कारण इनमें कई क्षेत्रों में रवे पड़ गये हैं। जिन परिस्थि-तियों में इन चट्टानों का निर्माण हुआ तथा जिन यांत्रिक अवस्थाओं का इन पर प्रभाव पड़ा उन सबके कारण इन चट्टानों के गुणों में बड़ी विषमता पाई जाती है।

इस प्रकार की चट्टानों के समूह प्रायद्वीपी भारत के लगभग ७५,००० हजार वर्ग मील क्षेत्र में फैले है। इनका विस्तार मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छोटा नागपुर का पठार और राजस्थान में हैं। उत्तर-पश्चिम में ये अरावली पर्वत के सहारे-सहारे फैली हैं। मुख्य हिमालय की समस्त लम्बाई में उसके गर्भ भागों में इन्हीं चट्टानों का आधिक्य है।

आद्य कल्प (Archean System)

धारवाड़ समूह—भारत में आद्य कल्प (Archean) की बनी हुई धारवाड़ समूह की चट्टानें (Dharwar Rocks) मानी जाती हैं। ये अत्यन्त ही रूपांतरित और स्तर-भ्रष्ट हुई हैं। इनमें अधिकांशतः अनुस्तरीय (Foliated) शिलाएँ शिस्ट, स्लेट, हार्नब्लैंड, क्वाटर्ज, रवेदार चूने के पत्थर, संगमरमर आदि—पाई जाती हैं। जबलपुर के निकट दो मील तक संगमरमर की चट्टानें नर्मदी की घाटी में पाई जाती हैं। इनका उपयोग उत्तम प्रकार के भवन-निर्माण कार्य में होता है। **धारवाड़ की चट्टानों में भारत का सर्व-श्रेष्ठ लोहा, सोना, मैंगनीज, हीरा आदि खनिज पाये जाते है।** इन्हीं चट्टानों में **फ्लूराइट, तांबा, क्रोमाइट, इल्मैनाइट, सीसा, सुरमा, वूलफ्राम, अभ्रक, कोबाल्ट, संखिया, एस्बस्टस, कोरंडम, धीया पत्थर, गार्नेट और टूर्मलीन** भी मिलते हैं। इस प्रकार की चट्टानों का जन्म मैसूर के धारवाड़ जिले में हुआ है। इस समय इस प्रकार की चट्टानें दक्षिणी भारत में कुमारी अंतरीप से लेकर हैदराबाद व पूर्वी घाटों से होती हुई उड़ीसा, मध्य प्रदेश और राजस्थान तक फैली हैं। ये आसाम तथा बाहरी-प्रायद्वीप (Extra Peninsula) के कई भागों में भी पाई जाती हैं—जैसे लद्दाख, जास्कर श्रेणी, कुमायूं, गढ़वाल हिमालय, दार्जिलिंग प्रदेश आदि में। इसी काल में अरावली पर्वत भी बना था। दक्षिणी भारत में धारवाड़ चट्टानें बलारी व मैसूर के अधिकांश भागों; छोटा नागपुर, जबलपुर और नागपुर के अतिरिक्त रीवाँ व बिहार में हजारीबाग में भी पाई जाती हैं। इन सब में कहीं भी शिलाभूत अवशेष (Fossils) नहीं मिलते। मैसूर में ये चट्टानें लम्बे संकड़े मोड़ों के रूप में मिलती हैं। इनमें

क्वार्ट्ज शिलाओं की अधिकता होने से मैसूर में कोलार और धारवाड़ की खानों से सोना प्राप्त किया जाता है।

धारवाड समूह की शिलाओ के निर्माण के पश्चात् बहुत समय तक कोई तल घटीयकरण न होकर तल-ध्वंस क्रिया चलती रही। इसके प्रभाव के तल में भारी अन्तर आने पर समुद्र का अतिक्रामथ कुछ क्षेत्रो मे हुआ विसमक्रमीय स्तर बना सकता था। इस घटना को कड्डपा समूह के स्तर अपने प्रथम स्तर को विषमक्रमीय रूप में दिखा कर प्रकट करते हैं। कड्डपा के इस घटना के दुहराने पर विन्ध्य समूह दूसरी विषमक्रमीय तह बना कर अपना निर्माण करता है।

कड्डपा समूह—कड्डपा समूह (Cuddapah System) की चट्टानों का नामकरण आंध्र के कड्डपा जिले के नाम पर हुआ है। इस समूह की चट्टानें आंध्र के कड्डपा जिले में एक विस्तृत क्षेत्र के अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में स्थल से घिरे समुद्र में निर्मित पाई जाती है। ये बीस हजार फीट से भी अधिक ऊँची हैं किन्तु इनमें भी शिलाभूत अवशेष प्राप्त नहीं होते। पेन्नार नदी की पापाघ्नी नदी की घाटी में इसकी खुली चट्टानों का स्तर दिखाई पड़ता है जिसमें पतले बालू का पत्थर, फिर शेल और स्लेट की तहें मिलती हैं। बीच-बीच में चूने का पत्थर भी दिखाई देता है। जहाँ ज्वालामुखी शिला उसमें घुस कर भीत्ति के रूप में घुसी मिलती हैं वहाँ चूने का पत्थर इसके ताप से रूपान्तरित हो कर संगमरमर के रूप में मिलता है।

मद्रास के सीडेड जिले, गोदावरी और कृष्णा की घाटी, मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़, रीवाँ, बिजावर, ग्वालियर आदि और महाराष्ट्र में कालड़गी और मैसूर के बेलगांव के बीच के प्रदेश में इस समूह की चट्टानों का प्रसार मिलता है। ये चट्टानें लगभग १४,००० वर्ग मील क्षेत्र में फैली हैं। राजस्थान में ये शिलायें अजमेर तथा पश्चिमी मेवाड़, अलवर, अजबगढ़ और एरिनपुरा में मिलती हैं। इन चट्टानों से कुछ उपयोगी खनिज मिलते हैं—जैसे **स्लेट, बालू पत्थर, पट्टीदार जास्पर, सीसा-धातु, बैराइट, एस्बस्टस और चूने का पत्थर** आदि।

विन्ध्य समूह (Vindhyan System)—विन्ध्य समूह की शिलायें कड्डपा शिलाओं के बाद बनी हैं। इन शिलाओं का नाम विन्ध्याचल के नाम पर पड़ा है। ये शिलायें पूर्व और पश्चिम की ओर बिहार के सहसाराम नामक स्थान से लेकर अरावली पर्वत के छोर पर स्थित चित्तौड़गढ़ तक फैली हैं। इनकी मोटाई १४,००० फीट तक है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग ४०,००० वर्गमील है। इसके समस्त खंड के स्तरों के क्रम विभाग किये गये हैं और स्थान के हिसाब से उनके नाम भी दिए गए हैं। इन स्तरों की विशेषताएं यह हैं कि इनमें किसी भी प्रकार के स्तर-क्षोभ, रूपान्तर स्तर-भ्रष्टता और मोड़ आदि नहीं मिलते। केवल पश्चिमी भाग की ओर अरावली के पास किसी कारण कुछ मोड़ और स्तर-भ्रष्टता दिखाई देती है। धरती का तल उठ कर विन्ध्य रूप में खड़ी होने वाली घटना दक्षिणी भारत के स्तर-क्षोभ की अन्तिम प्रधान घटना थी।

विन्ध्य समूह के निम्न खंड का खुला रूप करनूल, सोन की घाटी, छत्तीसगढ़, भीमानदी की घाटी में गुलबर्गा और बीजापुर जिलों में पाया जाता है। इसमें **चूने का पत्थर और शेल** पाया जाता है। अनुमानतः यह खंड समुद्र के गहरे पानी में बना है। किन्तु इस समूह का उर्ध्व खंड (जो कैमूर, रीवाँ, पन्ना, भंडेर आदि समुदायों के नाम से ज्ञात है) छिछले समुद्र में बना अनुमान किया जाता है क्योंकि इनकी चट्टानों

के स्तरो पर लहरो के हलकोरो के चिन्ह बने मिलते है। परित्यक्त शिला (Out-Crop) रूप मे हिमालय मे भी नैनीताल, शिमला आदि के पास विन्ध्य समूह के नमूने पाये जाते है जो शेल और चूने के पत्थर आदि रूपो से अपनी समानता प्रकट करते है। हिमालय की मुख्य पर्वत श्रेणी मे भारत की ओर के ढाल मे कही भी शिलाभूत अवशेष नही मिलते। लघु हिमालय श्रेणी मे भी अवशेषो का प्रभाव है। शिवालिक श्रेणी स्थल से घिरे समुद्र या झील मे निर्मित ज्ञात होती है जो प्रथम जीव कल्प (Paleozoic) के तो नहीं किंतु द्वितीय जीव कल्प (Mesozoic) या बाद की सृष्टि के कुछ अवशेष प्रकट करती है। विध्याचल भी लहरो के चिन्ह के अतिरिक्त बहुत सदिग्ध रूप के कुछ क्षुद्र जन्तुओ या वनस्पतियों के असतोषजनक शिलाभूत दिखा पाता है।



चित्र ७८—भारत का भूतत्व

विंध्य चट्टानों के समूह में शताब्दियों से हीरे निकाले जाते है। कैमूर, रीवाँ,

भंडेर समुदायों के कांग्लोमरेट के पात्रों मे तथा बंगनपल्ली की ग्रिट में हीरे प्राप्त होते है। गोलकुण्डा पुराने जमाने में हीरों का प्रसिद्ध बाजार था। सोन की घाटी, जबलपुर और भीमा की घाटी में प्राप्त चूना शिलाओं से चूना और सीमेंट प्राप्त किया जाता है। मकान बनाने तथा सजावट के लिए उत्तम श्रेणी के पत्थर और संगमरमर भी यहाँ मिलते हैं। **चीनी मिट्टी, अग्निजनित मिट्टी** (Fire Clay) और **वर्ण मिट्टी** (Ochres) भी मिलती है। बालू शिलाओं का भी इनमें आधिक्य है। वर्तमान व भूतकाल की कई इमारतों–जैसे आगरा, दिल्ली, लाहौर और जोधपुर के गढ़ और महल, फतहपुर सीकरी का लगभग पूरा भाग और सारनाथ, भार्हुत और साँची के बौद्ध स्तूपों में विंध्य की बालू शिलाओं का ही उपयोग हुआ है।

प्रथम जीव कल्प (Palaeozoic)

उमरिया के पास एक छोटे प्रदेश के सिवाय (जो निचले परमियन काल का है) प्रथम जीव-कल्प काल की समुद्री शिलाभूत अवशेष प्रायद्वीप में कहीं नही पाई जाती। ऐसी शिलायें बाहरी प्रायद्वीप में भली भाँति विकसित हुई हैं। कुमायू की उत्तरी सीमा पर स्थित घाटी की शिलायें प्रथम जीव-कल्प का दिग्दर्शन कराती है। इस क्षेत्र को छोड़ कर सारा देश कदाचित उस समय समुद्र के क्षेत्र से बाहर ही था। दक्षिणी भारत के पूर्वी तट को द्वितीय जीव-कल्प आरम्भ होने से लेकर आधुनिक कल्प तक समुद्री तलछटीय स्तर बना कर शिलाभूत अवशेष प्रस्तुत करने की साधारण एकांकी घटना को छोड़ कर, भारत के शेष भूगर्भिक इतिहास में कहीं बीच के काल में पश्चिम की ओर कुछ काल के लिए समुद्र का प्रकोप उत्तर की ओर से होकर सौराष्ट्र, कच्छ अथवा पश्चिमी राजस्थान की ओर फैलाव होने और फिर प्रतिगर्भित होकर अपना चिन्ह कुछ स्तर निर्माण रूप में छोड़ जाने के अतिरिक्त स्थल खंड के अतिरिक्त कुछ स्तर-भ्रष्टता रूप में नदियों की घाटियाँ बनी मिल जाती है जिनमें दामोदर, सोन, महानदी और गोदावरी का नाम लिया जा सकता है। दो स्तर भ्रष्टता के बीच में स्खलित भूमियों में बनी दरार घाटियाँ नर्मदा और ताप्ती घाटियों के रूप में मिलती हैं। इन स्तर भ्रष्टताओं और दरार घाटियों के बनने का समय प्रथम जीव युग का अंतिम भाग माना जाता है। इन घाटियों को उत्पन्न करने वाला प्राकृतिक प्रकोप उत्तर में कराकोरम रूप में महान् पर्वतमाला खड़ी करने वाला स्तर वह हलचल है जिसे हर्सीनियन हड़कम्प कहा जाता है। कोयले और लोहे की प्रसिद्ध खानें और विन्ध्य समूह के निकटवर्ती दक्षिणी पठार की उत्तरी भाग की नदियों की घाटियों के निर्माण में सहायक यह हलचल प्रसिद्ध है। पृथ्वी के सब भाग इस हलचल से प्रभावित हुए और इसके कारण भूमि व समुद्र का पुनर्वितरण हुआ। वह हलचल, उस समय द्रोणी (Geosyncline) के (जहाँ अब हिमालय प्रदेश स्थित है) फैलाव का भी जिम्मेदार था। यह नया समुद्र पश्चिमी भूमध्यसागर के क्षेत्रों से चीन तक फैला था। यह टैथिस महासागर (Tethys) कहलाता था। कदाचित दक्षिण की ओर के भूखंड की वज्र कठोरता ने इस हलचल का सामना किया और क्रांतिकारी भारी परिवर्तन का अवसर न देकर उन नदियों की घाटियों के स्थान पर कुछ स्तर-भ्रष्टता होने दी।

इस समय दैवयुग से जलवायु में एक घोर परिवर्तन ने एक भीषण तुषार युग उपस्थित किया। कदाचित अरावली की चोटियाँ आज के हिमालय का रूप धारण किये हुये उत्तर-दक्षिण फैली थीं। शीत के भीषण प्रकोप ने भयानक हिम को जन्म

दिया जो अरावली से निकलकर चारों ओर दूर तक फैलने लगी। इन हिम खंडों की रगड़ से कठोर पाषाण भी ध्वंसित हो गये। घाटियाँ चौरस तल वाली हो गईं। बड़े-बड़े खंड शिलाओं से अलग-अलग किए जाकर हिम नदियों के भारी दबाव और प्रभाव से नष्ट हो गये। इनके प्रभाव से बने घिसे हुए पथरीले ढोंके अपने निम्न तल में घसीटे जाने के कारण रेखाँकित चित्र बनाये अब भी नर्मदा नदी की घाटी में पाये जाते हैं।

गोंडवाना समूह (Gondwana System)—हिम नदियों के कारण पाषाणों का चूर्ण होकर घाटियों में उपजाऊ खण्ड बन गए। उनमें जल की राशि एकत्रित होकर आर्द्रता और दलदलीय प्रभाव दिखाने और छिछली झीलें बना सकने में समर्थ होने लगी। इनमें प्राचीन काल के वृक्ष आदि पैदा हुए और कालान्तर में उनके गिर जाने से निचले उथले जल में दबने लगे। वनस्पति का यही विनिष्ट रूप हमें कोयले के रूप में मिलता है। इस प्रकार की कोयले की तहों का निर्माण भारत की प्राचीन जाति गोंडों के प्रदेश से मध्य प्रदेश में आरम्भ हुआ। इसी कारण इन्हें गोंडवाना समूह (Gondwana System) की चट्टानें कहते हैं। इन चट्टानों के भारत में ८ मुख्य कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं :—दामोदर घाटी, बाराकर घाटी, महानदी घाटी, गोदावरी घाटी, राजमहल पहाड़ियाँ, उड़ीसा में तलचर, मध्य प्रदेश (जबलपुर), रीवाँ, परसोदा, महादेव पहाड़ियाँ, और सतपुड़ा श्रेणी। इनमें भारत का लगभग ९८.५% कोयला मिलता है।

गोंडवाना समूह की शिलाओं में बालू-पत्थर की शिलायें, अग्निजित मिट्टी, लोहा, कोयला आदि खनिज अधिक मात्रा में पाया जाता है।

प्रथम जीव युग दो छोटे-छोटे युगों में बाँटा गया है :—प्राचीन पुराजन्तुक और नवीन पुराजन्तुक युग। **प्राचीन पुराजन्तुक युग** में कैम्ब्रियन काल की चट्टानों में प्रथम बार जीवों के अवशेष मिलते हैं—जो बहुत ही निम्न श्रेणी के बिना रीढ़ की हड्डी वाले हैं। इस काल में काश्मीर की कैम्ब्रीयन चट्टानें और स्पीती की घाटी की हेमन्त चट्टानें बनीं। इनमें मिट्टी, स्लेट, चूना शिलायें, स्फटिकात्मक शिलायें, नील-मिट्टी आदि मिलती हैं।

आर्डोविशियन काल की चट्टानों में भी बिना रीढ़ वाले जीवों के अवशेष मिलते हैं किन्तु ये पूर्वकाल के जीवों की अपेक्षा अधिक विकसित हैं। इस काल में काश्मीर और स्पीती की आरडोविशियन चट्टानों का निर्माण हुआ जिनमें ग्रिट और चूना शिलाओं से युक्त बालू-शिलायें पाई जाती हैं।

सिल्यूरियन काल में ऐसे जीवों के अवशेष मिलते हैं जिनमें रीढ़ की हड्डी और दांत एवं आँखों का पूर्णतः विकास हो चुका था। इस काल में स्पीती और काश्मीर में लिड़ार घाटी में सिल्यूरियन उप-समूह की चट्टानों का निर्माण हुआ।

नवीन पुराजन्तुक युग में **डेवोनियन काल** की चट्टानें स्पीती और काश्मीर में पाई जाती हैं। ये समानता से फैली हैं और ये कठोर व सफेद स्पटिकात्मक शिलायें हैं। ये शिलायें कुमायूं में भी मिलती हैं।

कार्बोनिफरस युग की शिलायें स्पीती में लीपक और पो समुदायों में तथा काश्मीर में मिलती हैं। इनमें चूना, शिलाओं, शेल आदि का आधिक्य है जिनमें विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों आदि के अवशेष मिलते हैं।

परिमीयन काल में स्पीती में पो समुदाय के बाद इस प्रकार के जमाव मिलते हैं। इन जमावों का आरम्भ कांग्लोमरेट से हुआ है। काश्मीर में इस काल की चट्टानों का अच्छा विकास पीर-पंजाल में हुआ है। ये स्फटिक, ग्रेनाइट आदि शिलाओं के उपखंडों से युक्त हैं। शिमला-गढ़वाल में ये शिलाखंड चूना शिलाओं से बने हैं।

द्वितीय जीव कल्प (Mesozoic)

द्वितीय जीव कल्प को तीन भागों में बाँटा गया है :—(१) ट्रियासिक काल, (२) जूरैसिक काल और (३) क्रैटैसियम काल।

ट्रियासिक काल की शिलायें उत्तरी हिमालय प्रदेश के स्पीती, कुमायूं के बॉब-नाग, और पालपाल, पहाड़ियों पैनखंडा तथा नैपाल की सीमा के पास ब्यांस में विशेष रूप से विकसित हुई हैं। यहाँ की शिलायें चूना शिलायें हैं जिनमें शेल अन्तर्विष्ट हैं। इस काल की चट्टानों में जीवों के अवशेष बहुत कम प्राप्त होते हैं।

जूरैसिक उप-समूह का विकास हिमालय के तिब्बत प्रदेश और काश्मीर में स्पीती, प्रायद्वीप के कच्छ, राजस्थान और पूर्वी तट के कुछ भागों में हुआ है। स्पीती में शेल चट्टानें अधिक मिलती हैं जो भूरे या काले रंग की होती हैं और आसानी से चूर-चूर हो जाती हैं। इनमें शिलाभूत अवशेष पाये जाते हैं। ये हजारा व काश्मीर से नैपाल तक फैली हैं। **कच्छ** में ये शिलायें तीन भागों में पाई जाती हैं। उत्तर में कच्छ के रन के पचटम, करीर, बेला और छोरट द्वीपों के बीच में ; मध्य में लखपत के निकट और दक्षिण में कतरोल पहाड़ी और भुज के दक्षिण से होकर है। इनमें चूना-शिलायें, बालू शिलायें, शेल आदि मुख्य चट्टानें हैं। **राजस्थान** में जूरैसिक शिलायें बीकानेर, जैसलमेर आदि जिलों में पाई जाती हैं। इनसे भवन-निर्माण के लिए उत्तम प्रकार की चूना शिलायें मिलती हैं। पूर्वी तट पर गन्तूर जिले में ओंगोल के निकट ये शिलायें पाई जाती हैं।

क्रिटैसियस काल की चट्टानों का श्रेष्ट रूप भारत में विस्तृत रूप से देखने को मिलता है। हिमालय में एक विस्तृत प्रदेश इस उप-समूह के द्वारा आवृत है। इसमें भू-द्रोणीय पहलू (Geosynclinal facies) दृष्टिगोचर होते हैं। प्रायद्वीप के कुछ प्रदेशों के समुद्री अतिक्रमण ने नर्मदा घाटी, आसाम और मद्रास के तिरूचिरा-पल्ली—पांडिचेरी प्रदेश में इस काल के स्तरों को बिछाया है। इनमें से नर्मदा-प्रदेश भूमध्यसागरीय प्रदेश का साम्य दिखलाता है। अन्य दोनों स्तर हिन्द—प्रशान्त महा-सागरीय प्रदेश की राशियों से सम्बन्धित है। यहाँ सागर संगम संबंधी और नदी संबंधी जमाव भी हैं। ये या तो दकन ट्रैप के लावा के बहावों के नीचे फैले हैं या उनमें अन्तर्विष्ट हैं। इस काल का अन्त तीव्र आग्नेय क्रियाशीलता का एक काल था। बड़े परिमाण के लावा के बहावों ने प्रायद्वीप के एक विस्तृत प्रदेश को आवृत किया था। ये बहाव शायद उस स्थान के पश्चिम तक भी फैले थे जहाँ अब बम्बई का तट है।

बाहरी प्रायद्वीप के प्रदेशों में निचले और ऊपरी क्रिटैसियस समुदायों के बीच साधारणतया एक विसृंखलता है। यह खला उस काल में एक समुद्री प्रतिगमन (Marine Regression) को सूचित करती है। लेकिन प्रायद्वीपीय प्रदेशों में लगभग उसी काल में एक पूर्णांकित समुद्री अतिक्रमण (Marine Transgression) दृष्टि-गोचर होता है।

स्पीती प्रदेश में क्रिटैसियस शिलायें गऊमल, चिकिम तथा अन्य स्थानों में ; कुमायूं में जौहर तथा दार्जिलिंग के उत्तर में कम्पाजोंग के निकट दिखाई देती हैं। नर्मदा घाटी के बाघ पात्र (Bagh beds) में तथा सौराष्ट्र के बाधवन और मध्य प्रदेश के गवालियर में भी ये शिलायें दृष्टिगोचर होती हैं। आसाम में शिलांग पठार में समुद्री क्रिटैसियस शिलायें पाई जाती हैं। ये बालू शिलाओं से बनी हैं।

दकन ट्रैप (Deccan Trap)—प्रायद्वीप भारत के एक विस्तृत प्रदेश को आवृत करते हैं। इनका निर्माण काल ऊपरी क्रिटैसियस से इयोसीन काल तक माना जाता है। मध्य प्रदेश और नर्मदा घाटी के कुछ भागों में दकन ट्रैप के नीचे चूना-शिलाओं का एक समूह फैला है। इनके साथ बालूशिलायें और मिट्टियाँ भी पाई जाती हैं। ये शिलायें लामेटा पात्र (Lameta-beds) कहलाती हैं। जबलपुर के निकट लामेटा घाट में ये अच्छी तरह प्रदर्शित हैं। इनकी मोटाई २० से १०० फीट तक है। साधारणतः चूना शिलायें सिलिकामय और ग्रिटमय हैं। इनमें दानबसरट, विभिन्न प्रकार की मछलियों आदि के अवशेष पाये जाते हैं। इन पात्रों का जन्म सागर से हुआ है।

दकन ट्रैप बैसाल्टमय लावा के बहाव हैं। पश्चिमी तथा मध्य प्रदेश में इनका विस्तार २ लाख वर्गमील के लगभग है। बैसाल्टमय लावा प्रायः ट्रैप कहलाते हैं। इसका कारण यह है कि इन बहावों से सीढ़ी जैसी भू-आकृति उत्पन्न होती है। पठार के जैसे आकार को निर्मित करने की उनकी प्रवृत्ति के कारण वे **पठार बैसाल्ट** कहलाते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये बहाव अति तीव्र अति-ताप के साथ भूपपड़ी की कई दरारों (Fissures) से बड़े विस्फोट के साथ बाहर निकले। इस गर्मी ने लावा को एक विस्तृत प्रदेश में क्षैतिज चादरों के रूप में फैलने में समर्थ बनाया।

दकन ट्रैप बम्बई, सौराष्ट्र और मध्य प्रदेश में एक विस्तृत क्षेत्र में फैले हैं। बिहार, मद्रास और कच्छ में भी इनके कुछ भाग हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्तमान काल के बम्बई तट के पश्चिम में कुछ दूर तक दकन ट्रैप फैले थे किंतु यह भाग विभंगत हो गया और अब समुद्र में डूबा हुआ है। पश्चिमी तट के स्थल-निधाय का सीधापन और यहाँ के ट्रैप की मोटाई (७,००० फीट) दोनों ही इस मत का पोषण करते हैं।

दकन ट्रैप तीन भागों में बांटे गये हैं :—

(१) **ऊपरी ट्रैप** (Upper Traps)—१,५०० फीट तक मोटे हैं। ये बम्बई में पाये जाते हैं। यह ज्वालामुखी राख की अनगिनत तहों और मध्य-ट्रैपीय पात्रों से मुक्त हैं।

(२) **मध्य ट्रैप** (Middle Traps)—४,००० फीट तक मोटे हैं। मध्य प्रदेश में ऊपरी भाग में अनगिनत राख के पात्र (Ash-beds) लेकिन मध्य ट्रैपीय कम हैं।

(३) **निचले ट्रैप** (Lower Traps)—मध्य प्रदेश तथा पूर्व में ५०० फीट तक मोटे हैं। कई मध्य ट्रैपीय पात्र हैं लेकिन राख के पात्र कम हैं।

दकन ट्रैप के खनिजात्मक लक्षणों में आश्चर्य करने लायक एकरूपता है। ये डोलेरैट और बैसाल्ट की प्रकृति के हैं। इनका रंग गाढ़ा भूरा, गाढ़ा हरा-मिला भूरा आदि है। ट्रैप के शिला-चूर्णन से गहरे काले रंग की मिट्टी का जन्म हुआ है

जिसे कपास की काली मिट्टी (Regur) कहते हैं। इसका गुण यह है कि गीली होने पर वह फूल जाती है और अनगिनत बड़े दरारों के साथ सूख जाती है। ट्रैप से लैटे-राइट नामक मिट्टी भी (मानसूनी मौसम में) बनती है। इसमें अल्यूमीना, लोहा और मैंगनीज के आक्साइड समाहृत (Concentrated) होते हैं।

गोदावरी, छिंदवाड़ा, नागपुर और जबलपुर जिलों में नदी और तालावों के अवसादीय पात्र भी मिलते हैं। इनकी मोटाई १ या २ फीट तक होती है।

दकन ट्रैप भवन निर्माण और सड़क में लगाने के लिए बहुत अच्छे पत्थर प्रदान करते हैं। इस ट्रैप में मणिभ, अगेट तथा सिलिका के अन्य रूपों का उपयोग घटिया रत्नों के रूप में होता है। राजपिपला, कैम्बे और रत्नागिरि में इनको काट कर मणियों और आभूषण की वस्तुयें बनाई जाती हैं। बम्बई और मध्य प्रदेश के ट्रैप में बाक्साइट के बड़े जमाव पाये जाते हैं।

तृतीय जीव-कल्प (Cainozoic)

तृतीय जीव-कल्प को दो भागों में बाँटा गया है। प्रथम अंश अर्थात् तृतीयक (Tertiary) युग के पूर्वार्द्ध को इयोसीन और ओलीगोसीन नामक दो भागों में; तथा द्वितीय अंश अर्थात् उत्तरार्द्ध तृतीयक को मायोसीन और प्लायोसीन नामक दो भागों में बांटा गया है।

तृतीय जीव-कल्प में गोंडवाना भूमि का वर्तमान के महाद्वीपों में विभाजन हो गया। अंशत: भूखंडों के प्रवाहित होने से तथा अंशत: विभंग के फलस्वरूप समुद्र में भू-पपड़ी के कुछ भागों के डूब जाने से यह विभाजन हुआ।

उसी समय टैथिस सागर की द्रोणी बड़े पर्वतों को निर्माण करने वाली गतियों द्वारा भंजित हुई। उस समय जिन पर्वतों का निर्माण हुआ उनमें हिमालय, इरानी पहाड़, काकेशस, कार्पेथियन, आल्पस और पिरेनीज हैं। हिमालय के निर्माण में चार या पाँच उत्थानों के स्पष्ट काल देखे गये हैं। पहला उत्थान ऊपरी क्रिटैसियस का तथा दूसरा ऊपरी इयोसीन काल का है। नारी, गज तथा मुर्री समुदायों के जमाव के बाद मध्य मायोसीन काल में तीसरा उत्थान हुआ। इस उत्थान ने टैथिस सागर के अवशेषों को पूर्ण रूप से विलुप्त कर दिया। इस काल में हिमालय पर्वतों के दक्षिण में एक बड़ी द्रोणी का निर्माण हुआ। इसमें उत्तरवर्ती काल के शिवालिक अवसाद बिछाये गये। प्लायोसीन के अंत में चौथा उत्थान हुआ। यह और इसके बाद का हिम-युग दोनों मायोसीन और प्लायोसीन काल के सम्पन्न स्तनवर्गीय जीवों के नाश के उत्तरदायी थे। पिछले प्लायोसीन काल में अंतिम मुख्य उत्थान हुआ जिसके फलस्वरूप पीर-पंजाल ऊँचे पहाड़ों के रूप में ऊँचा उठ गया।

तृतीय जीव-कल्प की सब शिलायें समुद्री हैं। उत्तरी-पश्चिमी भारत में इन शिलाओं की प्रकृति समुद्री, मुर्री शिलाओं की सागर-संगम संबंधी और शिवालिक शिलाओं की नदीय है। इस कल्प में फूल लगने वाले पौधों का विकास हो गया था।

काश्मीर में पीर पंजाल के दक्षिणी भाग में तथा रियासी जम्मू में इयोसीन काल के स्तर मिलते हैं। इनमें शेल और चूना शिलायें मुख्य हैं। जम्मू की इयोसीन मेखला शिमला और गढ़वाल के हिमालय के पाद-पर्वतों के अन्दर से नैनीताल के आसपास तक चली गई है। यहाँ के जमाव तटीय प्रकृति के हैं और पूर्व की ओर

क्रमशः पतले होते जाते हैं। आसाम में हफलांग-डिसांग समुदाय की अवधि ऊपरी क्रिटेसियस से मध्य इयोसीन तक है। बरैल समुदाय ऊपरी इयोसीन और ओलिगोसीन का प्रातिनिध्य होता है। इसके ऊपरी भाग में उत्तर-पूर्वी आसाम की धनसीरी घाटी के पूर्व में कोयले की मुख्य परतें पाई जाती हैं। लीडो के पड़ौस में इसका सर्वोत्तम विकास हुआ है। इन शिलाओं में नजीरा, माकूम, लीड़ो, नामदांग और टिकाक कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं। इस समुदाय के मध्य भाग में कुछ तेल के श्रोत भी पाये जाते हैं।

राजस्थान के बीकानेर के पलाना के लिग्नाइट और मुल्तानी मिट्टी के निक्षेप भी इसी काल के हैं। गुजरात में सूरत और भड़ौंच तथा कच्छ में भी इयोसीन शिलायें पाई जाती हैं।

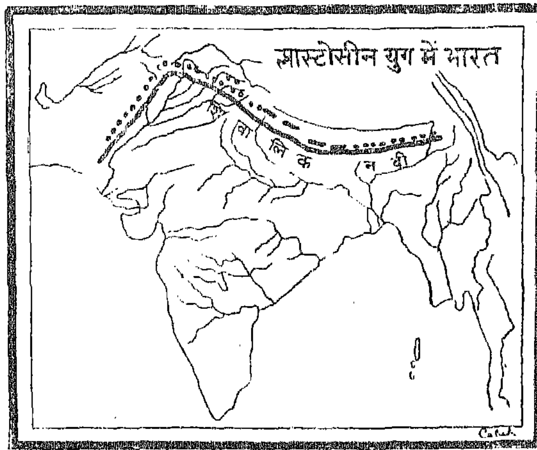
इयोसीन का अन्त पर्वत-निर्माण क्रिया का एक काल था। उस समय टेथीस अवसाद ऊपर को उठाये गये और मंजित किये गये। ओलीगोसीन काल में भी यह अवसाद जारी रहा। ये जमाव उथले जल की उत्पत्ति को सूचित करते हैं किंतु कुछ स्थानों में वे काफी मोटे हैं। दूसरा उत्थान मायोसीन काल में हुआ। तीसरा उत्थान मायो-प्लायोसीन काल में अवसाद के शिवालिक उपसमूह के रूप में ऊंचा उठ जाने से हुआ। शिवालिक स्तर और उनके तुल्य शिलायें हिमालय की सम्पूर्ण लम्बाई के पाद-प्रदेश और आसाम में पाई जाती हैं। जहां ये दिहिंग समुदाय कहलाती हैं। इन शिलाओं में रेती का अंश अधिक है जिससे स्पष्ट होता है कि ये नदियों द्वारा छिछले जल में बिछाई जाने से बनी हैं। इन चट्टानों में शिलाभूत अवशेष कम ही मिलते हैं। सौराष्ट्र और कच्छ में शिवालिक काल की चट्टानें पाई जाती हैं। इनमें कई स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं। केरल राज्य में कोल्लम के निकट समुद्र तट और कुछ कुओं में कुछ चूना-शिलायें पाई गई हैं जिनमें प्रवाल और मोलस्का प्राप्त हुए हैं।

चतुर्थ जीव-कल्प (Neozoic)

प्लैटोसीन काल—चतुर्थ जीव-कल्प का आरंभ एक ठंडे मौसम द्वारा अंकित है। भारत में हिमानियों के प्रमाण हिमालय प्रदेश में ही मिलते हैं। यहाँ हिमानियाँ बहुत निचली ऊँचाई को उतर आई थीं। इसके चिन्ह शिलापिंडों, खरोचों-दार पिंडों तथा मोरैनों (Moraines) में मिलते हैं। काश्मीर की करेवाँ राशि प्लैस्टोसीन काल की है। यह झेलम की घाटी और पीर-पंजाल के पक्षों में चपटे उत्तलों (Terraces) को बनाती है। ये श्रीनगर गुलमर्ग के बीच में पाये जाते हैं। इस राशि में बालू, मिट्टियाँ, कांप और शिलापिंड (Boulders) पाये जाते हैं। करेवां शिलायें लगभग ३,००० वर्गमील में फैली हैं और ५,००० फीट मोटी हैं। इससे स्पष्ट होता है कि काश्मीर की घाटी में इन अवसादों के निर्माण के बाद ये ऊँचे उठे हैं। ये एक बड़ी झील में जमा हुए माने जाते हैं। यह झील उस क्षेत्र में स्थित थी जो उत्तर में हिमालय-पर्वत श्रेणियों और दक्षिण में एक कूट के बीच में थी। निचली करेवाँ शिलाओं में चीड, ओक, बीच्, एल्डर, विल्लो, हॉली, दालचीनी आदि के अवशेष पाये जाते हैं। ये इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय का मौसम शीत-शीतोष्ण था। स्वच्छ जल के सीप, मछलियाँ और स्तनपोषी जीवों के अवशेष भी इनमें मिलते हैं।

झेलम की नतलज घाटी में पूर्ण विकसित नदी उत्तल दृष्टिगोचर होते हैं इनमें भी प्लैस्टोसीन स्तनपोषी जावों के अवशेष पाये जाते हैं। नर्मदा और ताप्ती नदियाँ उन स्थानों में बहती हैं जो प्लैस्टोसीन जमावों से आवृत हैं। इन जमावों की

मोटाई १०० फीट तक है। इनमें भी स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं। गोदावरी और कृष्णा नदियों की ऊपरी घाटी में प्राचीनतम कांप (Oldest alluviam) मिलती हैं जो कंकर, बालू और मिट्टियों से बनी हैं। ये कुछ प्लैस्टोसीन प्राणियों के अवशेषों से युक्त हैं।



चित्र ७६—प्लैस्टोसीन युग में भारत

प्रायद्वीप और बाहरी प्रायद्वीप के बीच एक विस्तृत कांप का मैदान फैला है जिसमें गङ्गा, सतलज एवं ब्रह्मपुत्रा और सिंध नदियों द्वारा लाई गई कांप बिछाई गई है। यह प्रदेश २½ लाख वर्गमील क्षेत्र से अधिक में फैला है। अरावली पहाड़ों की प्रगति रेखा दिल्ली के निकट जहाँ काँप प्रदेश का पार करती है, वहाँ वह प्रदेश बहुत संकरा है। राजमहल और गारो के बीच में जो द्रोणी है वह प्रायः छिछली है। इस द्रोणी की अधिकतम गहराई का अनुमान ६,०००-७,००० फीट का किया गया है। ये जमाव बालू और मिट्टी से बने हैं। प्राचीनतर कांप (Older Alluviam) का मैदान **बांगड़** (Bangar) कहलाता है इसका रंग काला है और इसमें कंकड़ नज़र आते हैं। नया काँप का मैदान, जो **खादिर** (Khadir) कहलाता है, बालू और कंकड़ों से युक्त है। इसमें भूमिगत जल के भंडार पाये जाते हैं। पुराना कांप मध्य से ऊपरी प्लैस्टोसीन और नया कांप ऊपरी प्लैस्टोसीन काल का बना है। प्राचीन कांप में स्तनपोषी जीवों के अवशेष मिलते हैं और नये कांप में जिन जीवों के अवशेष मिलते हैं वे प्रायः अब जीवित जातियों के से हैं।

प्रायद्वीप के तटीय भागों में बालू तट हैं। साधारणतः उनमें पिछले प्लैस्टोसीन और आधुनिक काल के सीप पाये जाते हैं। ऐसे जमाव उड़ीसा, मद्रास और सौराष्ट्र के तटों पर मिलते हैं। दक्षिणी पश्चिमी तटों में कई जलाशय मिलते हैं जो समुद्र से नीची मिट्टी के किनारों द्वारा अलग किए गए हैं। ये प्लैस्टोसीन और आधुनिक काल के जमावों से युक्त हैं। पूर्वीतट में चिल्का झील है जो उन अवसादों द्वारा क्रमशः जमी है जिन्हें महानदी लाती है। नदी के मुहानों को काट कर एक बालू-जिह्वा (Sand-spit) चली गई है इसमें सीप-जमाव है जो समुद्र तट से कई फीट ऊँचे उठे हैं।

राजस्थान के दक्षिण में कच्छ का एक ऐसा प्रदेश है जो प्लैस्टोसीन काल में समुद्र में डूबा था। वह धीरे-धीरे शुष्क भूमि में बदलता जा रहा है। पश्चिमी राजस्थान में जो विशाल मरुस्थल फैला है उसमें बालू की अधिकता है। साधारणतः तल-शिलाओं (Bed-rocks) की चोटियां बालू के नीचे दबी हैं। यह बालू हवा की गति द्वारा विलक्षण रूप वाले बालू-स्तूपों के रूप में एकत्रित है। मरूभूमि के जमाव मुख्यतः प्लैस्टोसीन और आधुनिक काल के हैं। ये कई हजार वर्षों से एकत्रित किए गए हैं।

आधुनिक काल (Recent Period)

आधुनिक काल में तटीय बालू का-स्तूप, नदियों के मुहाने की कांप मिट्टी के जमाव और मिट्टियाँ आदि बनी हैं।

भारत के पूर्वी तट पर कई भागों में बालुका-स्तूप मिलते हैं। हवाओं द्वारा निरन्तर इनका पुनर्विन्यास होता रहता है। ये धीरे-धीरे देश के अंदर की ओर बढ़ते हैं।

नदियों के मुहानों में नदियों द्वारा लाई गई कांप मिट्टी के विस्तृत जमाव पाये जाते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय प्रायद्वीप का अधिकतर भाग आद्यकल्प की शिलाओं से बना है। इनमें भिन्न-भिन्न उत्पत्ति तथा प्रकृति की नाइस, शिस्ट, आग्नेय और परिवर्तित शिलायें पाई जाती हैं। काल के अनुसार उनके बाद कड्डप्पा और विन्ध्य की शिलायें हैं। उनके बाद कोयले से युक्त गोंडवाना राशियों और द्वितीय तथा तृतीय जीव-कल्प समूह की शिलायें हैं। पश्चिमी तथा मध्य प्रदेश दकन ट्रैप के लावा-बहाव से आवृत हैं। शिलाभूत अवशेषों के अवसादीय उप-समूह (Fossilized Sediments) प्रायद्वीप के एक छोटे भाग में ही मिलते हैं।

बाहरी प्रायद्वीप (Extra-Peninsula) में प्रधानतः मुख्य हिमालय अक्ष के उत्तर की ओर सभी कालों के समुद्री अवसादों का प्रभावपूर्ण विकास दृष्टिगोचर होता है। महा-हिमालय व लघु-हिमालय में मुख्यतः शिलाभूत अवशेष रहित अवसाद और आग्नेय तथा परिवर्तित शिलायें मिलती हैं।

भारत के कुछ विशाल प्रदेशों का-उड़ीसा, आसाम और हिमालय के कुछ भागों का-भूतात्विक अध्ययन अभी भी अपूर्ण है।

अध्याय १०

भारत की खनिज सम्पत्ति

(Mineral Resources)

कुछ समय पूर्व तक लोगों का विश्वास था कि भारत में यद्यपि अनेक खनिज पदार्थ पाये जाते हैं किंतु उनको निकालने में लाभ होना पूर्ण रूप से संभव नहीं होगा। उनका विचार था कि "प्राचीन काल में जब अन्य देशों ने खनिज विद्या प्राप्त न की थी तब भारत अपनी निजी आवश्यकता खनिजों के छोटे छोटे कारखानें स्थापित कर पूरी करता रहा होगा, किंतु आधुनिक खनिजात्मक युग में पुराने ढंग से खनिज निकालना कदापि लाभदायक नहीं हो सकता।" किंतु यह विचार असत्य सिद्ध हुआ है। भूगर्भ-वेत्ताओं ने निरंतर अनुसंधान करके यह स्पष्टत: सिद्ध कर दिया है कि आधुनिक युग में जिन जिन खनिजों की आवश्यकता किसी सभ्य देश को हो सकती है, वे सब भारत में वर्तमान हैं। इस संबंध में प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री डा० बाल का कथन उल्लेखनीय है। वे कहते हैं, "भारत के भूगर्भ में विभिन्न प्रकार की खनिजों की नसें पाई जाती हैं। यदि विश्व के सभी देशों से भारत का व्यापारिक संबंध न होता अथवा यदि यहाँ निकाले गये खनिजों को विदेशी व्यापार की प्रतिस्पर्धा से रक्षा की जाती तो इसमें कोई संशय नहीं कि भारत अपने देश ही में प्राप्त हुए खनिज पदार्थों से सम्पूर्ण रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता।"[१] भारतीय औद्योगिक आयोग (Indian Industrial Commission) का भी यह मत था कि, "भारत के मुख्य आधार भूत उद्योगों (Basic Industry)—केवल उन उद्योगों को छोड़कर जिनमें वैनेडियम, निकल और मौलीबिडनम की आवश्यकता पड़ती है—के लिए भारत में खनिज सम्पत्ति पर्याप्त मात्रा में व्याप्त है।" सच तो यह है कि भारत में विभिन्न प्रकार के खनिजों का अस्तित्व है और यदि इनका ठीक तरह से उपभोग किया जाय तो यह देश औद्योगिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर बन सकता है। देश के विभाजन से भारत की खनिज सम्पत्ति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। अविभाजित भारत के लोहे, अभ्रक, टाइटैनियम आदि के भंडार भारत में ही रहे हैं किंतु क्रोमाइट, मुल्तानी मिट्टी, गंधक, मिट्टी का तेल, जिप्सम आदि के स्रोत पाकिस्तान को चले गये हैं।[२] खनिज तेल का २०% भाग, साधारण नमक का ⅚ उत्पादक क्षेत्र और प्रतिवर्ष १ लाख टन कोयला उत्पन्न करने वाली दर्शरी कोयले की खानें पाकिस्तान में चली गईं।

यदि हम रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका या जर्मनी से भारत की खनिज सम्पत्ति की तुलना करें तो अवश्य ही यह मानना पड़ेगा कि हम इस दृष्टि से बड़े दरिद्र हैं, किंतु अधिकांश खनिजों का हमारे यहाँ अभाव नहीं है। (१) भारत ५ खनिजों में निर्यातक मात्रा में धनी है, जब कि संयुक्त राज्य ६ और रूस ५ खनिजों में। (२) भारत संयुक्त राज्य की तुलना में ८ खनिजों में आत्म निर्भर है, जबकि रूस ५ में

१ V. Ball, Economic Geology of India, p. 15.
२ C. N. Vakil, Economic Consequences of Divided India, 1950, pp. 215-6.

और जर्मनी ७ खनिजों में आत्म निर्भर है। (३) लोहा, कोयला, मैंगनीज, मैगनेसाइट, अभ्रक, क्रोमाइट, बाक्साइट आदि खनिजों में भारत धनी है किंतु तांबा, टीन जस्ता, शीशा, जस्ता, गंधक और मिट्टी के तेल में दरिद्र है। इनकी मांग पूर्ति में भारत आत्मनिर्भर नहीं है। नीचे की तालिका में यह बताया गया है कि सं० रा० अमरीका, रूस, जर्मनी तथा भारत किन किन खनिज पदार्थों में आत्म-निर्भर हैं[१] :–

खनिज पदार्थों में राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता

खनिज	सं. रा. अमरीका	रूस	जर्मनी	भारत
सुरमा	— — C —	— — C —	— — — D	— — — D
एस्बस्टस	— — — D	A — — —	— — — D	— — C —
बाक्साइट	— — C —	— — C —	— — C —	A — — —
क्रोमाइट	— — C —	— B — —	— — — D	— B — —
कोयला	A — — —	— B — —	— B — —	— B — —
तांबा	A — — —	— — C —	— — C —	— — C —
औद्योगिक हीरे	— — — D	— — — D	— — — D	— — — D
ग्रैफाइट	— — C —	— B — —	— — — D	— — C —
लोहा	A — — —	— B — —	— — — D	A — — —
मैग्नेसाइट	— B — —	A — — —	A — — —	A — — —
मैंगनीज	— — — D	A — — —	— — — D	A — — —
पारा	— — C —	— — C —	— — — D	— — — D
अभ्रक	— — — D	— — — D	— — — D	A — — —
निकल	— — — D	— — — D	— — C —	— — — D
प्राकृतिक शोरा	— — — D	— — — D	— — — D	— — C —
मिट्टी का तेल	A — — —	A — — —	— — — D	— — C —
फास्फेट्स	A — — —	— B — —	— — C —	— — C —
प्लैटीनम	— — — D	A — — —	— — — D	— — — D
पोटाश	— B — —	— B — —	— — — D	— — — D
गंधक	A — — —	— — C —	— — — D	— — — D
टीन	— — — D	— — — D	— — — D	— — — D
टंगस्टन	— — C —	— — — D	— — — D	— — — D
वैनेडीयम	— B — —	— — — D	— — — D	— B — —
जस्ता	— B — —	— B — —	— — — D	— — C —
सीसा	— B — —	— — C —	— — C —	— — — D

A=खनिज जो निर्यात के लिए उपलब्ध हैं C=देश की मांग के लिए अपर्याप्त
B=देश की मांग के लिए पर्याप्त D=विदेशों पर निर्भर

रूस को छोड़कर विश्व में मैंगनीज उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान दूसरा है। अभ्रक, इलैमैनाइट, मोनाजाइट, और जिरकन में भारत का स्थान

१. C. B. Mamoria, Organisation and Financing of Industries in India, 1960, pp. 135-136.

विश्व में प्रमुख है। नीचे की तालिका में खनिजों का निहित भंडार जो भारत में है, बताया गया है :—[१]

	भारत के भंडार	
कोयला (सभी प्रकार का २,००० फीट की गहराई तक)	६६०,०००	लाख टन
लोहा (६० प्रतिशत धातु वाला)	२१०,०००	,,
मैंगनीज (४६ प्र. श. धातु वाला)	१,१२०	,,
बाक्साइट	२,५००	,,
तांबा	३०	,,
क्रोमाइट	१,३२०,०००	,,
चीनी मिट्टी	२.५	,,
गंधक	३००	,,
हरसौठ	७४०	,,
मौनेजाइट	२०	,,
इलैमैनाइट	२,५००	,,
कीयैनाइट	५००,००० से ७५०,०००	,,
सिलैमैनाइट	३५०,०००	,,

खनिज पदार्थों का प्रादेशिक वितरण (Regional Distribution of Minerals)

भारत में सतलज, गंगा और ब्रह्मपुत्र का मैदान नई चट्टानों से बना है जिसमें कई हजार फीट की गहराई तक चिकनी मिट्टी और बालू की तहें पाई जाती हैं अतः यहाँ कंकड़ को छोड़ और कोई खनिज नहीं मिलता, क्योंकि इन चट्टानों में ज्वालामुखी परिवर्तनों का प्रभाव अभी तक नहीं पहुँच पाया है किंतु भारत का दक्षिणी प्रायद्वीप अत्यन्त पुराना भाग है। दक्षिण की दो लाख वर्गमील भूमि समय-समय पर ज्वालामुखी के फूट निकलने से लावा की तहों से बनी है जो कहीं कहीं २,००० फीट तक मोटी है। किंतु इसमें भी खनिजों का अभाव है। प्रायद्वीप का आधे से अधिक भाग उन प्राचीन चट्टानों का बना हैं जो कुमारी अंतरीप से लगा कर गंगा के पास १,४००० मील तक फैली हुई हैं। इनमें बुन्देलखंड की चट्टानें सबसे पुरानी हैं। इसी तरह राजमहल की पहाड़ियाँ, दामोदर घाटी, उड़ीसा के मुहाल, छत्तीसगढ़, छोटा नागपुर और गोदावरी के पास सतपुड़ा श्रेणी ऐसे प्राचीन प्रदेश हैं जो गोंड़वाना विभाग में सम्मिलित हैं। इन भागों में बहुत पुरानी चट्टानें पाई जाती हैं इन्हीं में अधिकतर भारत के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। देश में बालू और चूने के पत्थर तो सर्वत्र ही मिलते हैं।

भारत में खनिज पदार्थों का वितरण बहुत ही असमान है। डा० डन (Dunn) का कहना है कि यदि एक रेखा दक्षिण में मंगलौर से कानपुर तक और वहाँ से हिमालय पर्वत तक खींची जाये तो जो भाग इसके पूर्व में हैं वे सभी खनिज पदार्थों में धनी और पश्चिम की ओर के भाग—राजस्थान में अभ्रक, नमक, सीसा, हरसौठ, पंजाब और काश्मीर में कोयला पाने वाले स्थानों को छोड़कर—खनिज पदार्थों में बिल्कुल ही निर्धन है।"

वैयक्तिक रूप से तो राज्यों में भी खनिज पदार्थों का वितरण बिल्कुल ही

१ Govt. of India, Geology in India, 1957, pp. 6-9.

असमान है। बिहार और छोटा नागपुर का पठार तो संसार में सबसे धनी भाग माने जाते हैं। जहाँ कोयला, लोहा, क्रोमाइट, तांबा, अभ्रक, फॉस्फेट्स, बाक्साइट, इलेमैनाइट, मैंगनीज आदि खूब निकाले जाते हैं। यह भाग खनिज पदार्थों का भण्डार कहा जाता है। बिहार के दो जिलों और उनसे संलग्न उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में उत्तम लोहे के ८०,००० लाख टन का जमाव है। यहाँ विश्व के सबसे अच्छे किस्म का अभ्रक (५०%) और मैंगनीज धातु भी मिलते हैं। खनिज पदार्थों में दूसरा धनी राज्य मध्य प्रदेश है जिनमें उत्तम किस्म का लोहा, मैग्नेसाइट, मैंगनीज, अभ्रक, चूना तथा लिगनाइट कोयला मिलता है। भारत में प्राप्त होने वाला सम्पूर्ण सोना मैसूर राज्य में मिलता है जहाँ चिकनी मिट्टी, क्रोम तथा लोहे की खानें भी हैं। केरल में काँच के लिए उत्तम श्रेणी की बालू, मोनेजाइट, जिरकन, गार्नेट पाया जाता है। मद्रास में लिग्नाइट कोयला, मैंगनीज, मैगनेसाइट अभ्रक, चूना पर्याप्त मात्रा में मिलता है। आंध्र में कोयला मिलता है। आसाम में मिट्टी का तेल और कोयला मिलता है। हिमालय पर्वत के दक्षिण पश्चिमी भाग में काश्मीर राज्य में कोयला, बाक्साइट और रत्न मिलते हैं। पश्चिमी बंगाल में निम्न कोटि के लोहे और तांबे के जमाव हैं किंतु दामोदर नदी की घाटी खनिज पदार्थों की दृष्टि से बहुत धनी है। यहाँ सम्पूर्ण भारत में उत्पन्न होने वाले तांबे का १००%, कियेनाइट का १००%, लोहा ९३%, कोयला ८०%, क्रोमाइट ७०%, अभ्रक ७०%, फायर क्ले ५०%, एस्बस्टस ४५%, चीनी मिट्टी ४५%, चूने का पत्थर २०%, और मैंगनीज १०%, और इमारती पत्थर १०% मिलता है। नैपाल में कोबाल्ट, निकल और तांबा तथा सिक्किम और भूटान में केवल तांबा प्राप्त होता है। इन पर्वतीय प्रदेशों को छोड़कर सम्पूर्ण हिमालय पर्वत खनिजों में निर्धन है। पंजाब, बम्बई, उत्तर प्रदेश भी खनिज पदार्थों से शून्य हैं किन्तु पिछले कुछ समय से राजस्थान में निकाले गये खनिज पदार्थों का महत्व बढ़ता जा रहा है। यहाँ अभ्रक, बेरीयम, एस्बस्टस, मैंगनीज, पन्ना, ताँबा, शीशा और जस्ता, गंधक, हरसौंठ, और मुल्तानी मिट्टी निकाले जाने लगे हैं।[१]

१९५७ में खनिज पदार्थों का सबसे अधिक उत्पादन बिहार राज्य से प्राप्त हुआ। यहाँ देश के कुल उत्पादन का ३५.५% (४४.६ करोड़ रुपये के मूल्य के) प्राप्त हुआ। खनिज उत्पादन की दृष्टि से बंगाल दूसरा (२५.८ करोड़); मध्य प्रदेश तीसरा (१४२ करोड़) और बम्बई चौथा (१२.१ करोड़) राज्य है, जैसा कि निम्न तालिका से प्रकट होगा :—[२]

राज्यानुसार खनिज पदार्थों का उत्पादन

राज्य	१९५७		१९५६		१९५५	
	रु० '०००	%	रु० '०००	%	रु० '०००	%
आन्ध्र प्रदेश	६५,३५५	५.२०	६५,७४४	८.२	६,५२,६६	६.२
आसाम	१६,१२१	१.२८	१३,४५१	१.२	१,२९,०६	१.२

१ D. N. Wadia, Geological and Geographical Distribution of India's Minerals, published by the Fourth Empire Mining and Metallurgical Congress, London, 1949.

२ Indian Bureau of Mines: Provisional Estimates of Mineral Production in India, 1956 (1957) p. 9 [illegible] p. 16

राज्य	१९५७		१९५६		१९५५	
	रु० '०००	%	रु० '०००	%	रु० '०००	%
बंगाल	२५८,५०४	२०.५९	१६७,०४८	१४.४	१६,८०,४७	१५.९
बिहार	४४६,३८०	३५.५५	३७३,०६३	३२.१	३६,७८,३९	३४.८
बम्बई	१२१,४५.३	९.६७	९२,०४०	७.९	८,५५,५५	८.१
दिल्ली	२९३	—	७५	—	५८	—
हिमाचल प्रदेश	२१२	—	१९५	—	२,४४	—
केरल	१५,८९०	१.२६	१८,५५८	१.६	१,३४,४४	१०.३
मध्य प्रदेश	१४२,१२६	११.३१	१३२,७१८	११.४	११,७४,४४	११.१
मद्रास	१५,५४७	१.२४	२०,४६४	१.७	१,४३,५०	१.४
मैसूर	७३,७०९	५.८७	९४,१९७	८.१	८,२७,४२	७.८
उड़ीसा	६९,०५१	५,५०	१०३,२५६	८.९	७,८६,०८	७.५
पंजाब	२,१६४	०.१७	१,५६३	०.१	२७,३०	०.३
राजस्थान	२७,३३०	२.१७	५०,२३९	४.३	४,५५,९७	४.३
उत्तर प्रदेश	२,४२५	१.१९	१,४२०	०.१	९,४५	०.१
योग	१,[illegible]५६,५६०	१००.००	११६४०३३	१००.०	१०५,५८,२७	१००.०

भारतीय खनिज पदार्थों की वर्तमान स्थिति और उत्पादन

वर्तमान युग में विश्व का कोई भी औद्योगिक देश ऐसा नहीं है जो सभी खनिज पदार्थों के उत्पादन में पूर्ण रूप से आत्म निर्भर कहा जा सके। देश के विस्तार और जनसंख्या को देखते हुए भारत की खनिज सम्पति कुछ विशेष अधिक नहीं है, फिर भी यहाँ कुछ महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ यथेष्ठ मात्रा में हैं जिन्हें भारत निर्यात कर सकता है। कुछ ऐसे खनिज पदार्थ भी हैं जो भारत की आन्तरिक मांग के लिये पर्याप्त हैं किंतु कुछ खनिज विशेषों के लिए भारत को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है।

डा० वाडिया (Wadia) ने भारत के खनिज पदार्थों को उनकी पर्याप्तता के अनुसार निम्न चार श्रेणियों में विभाजित किया है[1] :—

(१) वे खनिज पदार्थ जिनका निर्यात करके (Exportable Surplus) भारत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रभाव डालता है :—

१. लोहा
२. टाइटैनियम
३. अभ्रक
४. थोरीयम धातु

(२) वे खनिज जिनका भारत से निर्यात महत्वपूर्ण है :—

१. मैंगनीज
२. मैगनेसाइट
३. रिफ्रैक्टरी खनिज
४. बाक्साइट
५. घीया पत्थर
६. मोनेजाइट
७. ग्रैनाइट
८. बैरीलियम
९. कौरैंडम

---

१ D. N. Wadia, 'Mineral Outlook of India,' in Science & Culture, May, 1952, p. 517.

१०. प्राकृतिक घर्षण पदार्थ (Natural Abrasives)
११. सिलीका
१२. हरसौंठ

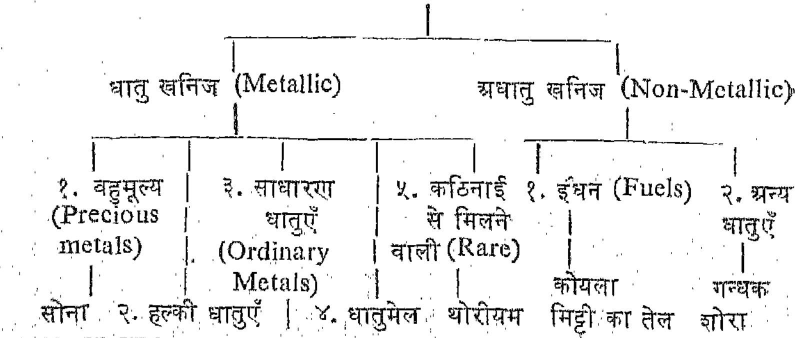
(३) वे खनिज पदार्थ जिनके उत्पादन में भारत आत्म निर्भर है :–

१. कोयला
२. कांच बनाने का बालू
३. सोना
४. अल्यूमीनियम
५. फैलस्फर
६. इमारती पत्थर
७. चूने का पत्थर व डोलोमाइट
८. संगमरमर
९. स्लेट
१०. सीमेंट बनाने की सामग्री
११. सुरमा
१२. तांबा
१३. सुहागा
१४. जिरकन
१५. औद्योगिक मिट्टियाँ
१६. बैराइट्स
१७. वैनेडियम
१८. पाइराइट
१९. शोरा
२०. फास्फेट
२१. क्रोमाइट
२२. तेजाब व संखिया
२३. बेरटीज
२४. फिटकरी
२५. नमक
२६. खनिज रंग (Mineral Pigments)

(४) वे खनिज पदार्थ जिनके लिये भारत को मुख्यतः विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है :–

१. चांदी
२. निकल
३. मिट्टी का तेल
४. जस्ता
५. सीसा
६. टिन
७. पारा
८. टंगस्टन
९. मौलीबिडनम
१०. ग्रेफाइट
११. एसफाल्ट
१२. पोटाश
१३. प्लैटीनम
१४. गंधक
१५. फ्लूराइड

हम खनिज पदार्थों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से करते हैं :–[1]



१ लेखक का आर्थिक और वाणिज्य भूगोल, पृ० ५३२.

चाँदी	(Light Metals)		(Ferro-	वैनेडियम	प्राकृतिक गैस	सल्फेट
प्लैटीनम		ताँबा	Alloys)	यूरेनियम	अणुविक शक्ति	फॉस्फेट
पैलेडियम	मैगनेशियम	टिन				चूने का पत्थर
	टाईटैनियम	सीसा	क्रोमीयम			संगमरमर
	अल्यूमीनियम	जस्ता	मैंगनीज			ग्रेनाइट
		लोहा	टंगस्टन			फैल्सपार
		राँगा	मोलीबिडेनम			डोलोमाइट
		पारा	सुरमा			मैगनेसाइट
			बैरीलियम			फायोलाइट
			निकल			अभ्रक
			सुरमा			एस्बस्टस
			कोबाल्ट			हरसौठ
						ग्रफाइट

निम्न तालिकाओं में भारत में खनिज पदार्थों के उत्पादन का मूल्य बताया गया है[1] :—

वर्ष	मूल्य (लाख रु०)	वर्ष	मूल्य (लाख रु०)
१६०१	६७०	१६४८	६,४००
१६११	१,१४०	१६५०	७,१६०
१६२१	३,२६०	१६५५	६,४३०
१६३१	२,३६०	१६५६	१०,७७०
१६३६	२,०२०	१६५७	१२,७२०
		१६५८	१३,१००

खनिज पदार्थों का उत्पादन, विभिन्न जातियों के अनुसार (१६४८—५७)
(लाख रुपयों में मूल्य)

वर्ष	कोयला	धातुऐं (Metallics) लोह धातु	अलोह धातु	योग	अधातुऐं (Non-Metallic)	भवन निर्माण की सामग्री	योग
१६४८	४५२१	२८६	६७६	६६०	११२६	३१६	६६२६
१६४६	४७५६	५७६	६८८	१२६७	१०६४	३०२	७४१६
१६५०	४६६८	१००७	७७४	१७८१	१४७७	४१५	८३४२
१६५१	५०४८	२००४	६५८	२६६२	२१५१	५८८	१०७४६
१६५२	५३६२	२५३३	८५७	३३६०	१६६७	३५५	१०८०४
१६५३	५२७७	३२५६	७७०	४०२६	१५७८	३६७	११२७८
१६५४	५३६१	२६५७	८६२	३१४६	१३०७	४०८	१०२५५
१६५५	५६०३	२१८५	६६४	३१७६	१४१४	३६३	१०५५८
१६५६	५७६०	२८७३	११४१	४०१४	१४७१	३६५	११६४०
१६५७	८१४०	१८५०	१०००	२८५०	११७०	४१८	१२५७०
१६५८	८६६०	१६४४	६६६	२६१४	१३२२	४४१	१३०६५

१. Provisional Estimate of Mineral Production in India, 1956 (1957)—Table, 2, p. 6; and Table 3, pp. 7–8; and for 1957 and 1958.

१९५८ में समस्त देश में कुल ३३०० खानें से भी अधिक थीं। इनमें लगे व्यक्तियों की संख्या ६४७,००० थी। विभिन्न प्रकार की खानों में श्रम की मात्रा इस प्रकार थी :–

कोयला	३५२,३२९	मैंगनीज	१०६,६४८
लोहा	३७,३०१	अभ्रक	३३,६७३
तांबा	४,७७०	इलमैनाइट	२,४१८
पैट्रोलियम	३,१४७		

इसके अतिरिक्त खनिज पदार्थों से संबंधित उद्योगों में २० लाख व्यक्ति और लगे हैं। खनिज पदार्थों से १९५६ में राष्ट्रीय आय का १००० करोड़ रुपये प्राप्त हुआ। भारत में मुख्य खनिजों की खानें इस प्रकार है :—

कोयला	८३२ खानें	कच्चा लोहा	२०० खानें
अभ्रक	८०० ,,	चूने का पत्थर	१५० ,,
मैंगनीज	७०० ,,		

भारत में खनिज उद्योग की विशेषताऐं एवं कठिनाइयाँ

भारत की सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय का १००० करोड़ खनिज उद्योग द्वारा प्राप्त होता है किंतु खनिजों का वितरण सम्पूर्ण देश में बड़ा असमान है, यद्यपि खनिज पदार्थों में देश सामान्यत: धनी कहा जा सकता है किंतु भारत में खनिज पदार्थों के निकालने में कई असुविधाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) यहाँ अधिकतर खनिज पदार्थ---मैंगनीज, अभ्रक, क्रोमाइट, मैगनेसाइट, कैनाइट और इलैमैनाइट---विदेशों को निर्यात करने को ही निकाले जाते हैं जिससे देश को आर्थिक हानि बहुत होती है।

(२) यद्यपि खानें बहुत हैं किंतु उनमें सुव्यवस्थित रूप से काम नहीं किया जाता। सबसे पहले ऊपरी भाग की खानें खोदी जाती हैं किन्तु ज्यों-ज्यों गहराई बढ़ती जाती है दूसरी खानें खोद ली जाती हैं इससे खनिज पदार्थ पूरी मात्रा में नहीं निकाले जाते। बहुत तो योंही व्यर्थ में नष्ट हो जाते हैं।

(३) जल मार्गों की न्यूनता के कारण अधिकतर खनिज-पदार्थों को ले जाने का कार्य रेलें ही करती हैं अत: व्यय बहुत होने के कारण वे मँहगे पड़ते हैं।

(४) नये भागों में खनिज-पदार्थों के सम्भावित क्षेत्रों का पर्य्यवेक्षण अभी तक पूरी तरह नहीं हो पाया है। कई भागों की भू-प्रकृति का अब तक पता नहीं लग पाया है। आसाम और उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों की तो पूरी प्रकार जांच भी नहीं हो पायी है। कई भागों में यद्यपि कुछ खनिजों के सुरक्षित भंडार होने का अनुमान अवश्य लगाया गया है किंतु विश्वसनीय तौर पर यह कहना कठिन है कि वे किस प्रकार के हैं और किस उपयोग के लिए उपयुक्त हो सकते हैं।

सौभाग्यवश अब राष्ट्रीय सरकार ने भारत के भिन्न-भिन्न भागों में पर्य्यवेक्षण शुरू किये हैं। इनका अनुमान है कि राजस्थान में अरावली पर्वत खनिज पदार्थों में बहुत ही धनी है। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण के तत्वाधान में पश्चिमी बंगाल के [illegible]पुर जिले में तांबा, उत्तर प्रदेश के गढ़वाल जिले में कोयला, हिमाचल प्रदेश की घाटी में जिप्सम, मद्रास और उड़ीसा में लोहा, उदयपुर में मैंगनीज, जैसलमेर, कच्छ,

पंजाब (ज्वालामुखी) तथा ब्रह्मपुत्र घाटी में मिट्टी का तेल, विहार के शाहाबाद जिले में गन्धक तथा मद्रास में लिग्नाइट कोयले के नये भण्डारों का पता लगाया गया है।

(५) खनिज पदार्थों के निकालने संबंधी नीति का अभाव, खनिजों के पूर्ण उपयोग करने के साधनों की कमी, खानों पर राज्य का अपूर्ण नियंत्रण, खनिजों की बिक्री संबंधी सुविधाओं का अभाव, शिक्षित और प्रशिक्षित श्रमिकों की कमी तथा आधुनिक यंत्रों का खनिज निकाने में अपर्याप्त प्रयोग आदि अन्य असुविधायें हैं।

अस्तु, भारत की खनिज सम्पत्ति का पूर्ण उपयोग होने के निमित्त निम्न उपाय काम में लाने चाहिए :—

(१) उचित अन्वेषण और निरीक्षण के उपरांत देश की खनिज सम्पत्ति का नियमित तथा आयोजित उपभोग होना चाहिए।

(२) देश की खनिज सम्पत्ति को पूरी तरह प्रयोग में लाने के लिए आयात-निर्यात दोनों पर ही भारी कर लगा देने चाहिए। इसी हेतु कच्ची मैंगनीज, क्रोमीयम, अभ्रक, टाइटैनियम, फास्फेट तथा अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टीयों का निर्यात सर्वथा रोक कर देश की खानों की उन्नति की जाये।

(३) खानें खोदना प्रकृति की सम्पत्ति का अपहरण करना है। एक बार भूगर्भ से निकाले जाने पर उतनी मात्रा में खनिज सदा के लिये समाप्त हो जाते हैं, इसीलिए खानें खोदना एक प्रकार की डकैती (Robber Economy) कहलाती है। जिस गति से खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं अथवा उनका अनियोजित उपयोग होता है उसे देखकर भूगर्भ शास्त्रियों का कहना है कि भविष्य में इन पदार्थों की कमी पड़ सकती है। अतः यह आवश्यक है कि इस सम्पत्ति का संरक्षण और उचित उपयोग किया जाय।

(४) खनिज पदार्थ—खाद्यान्न वस्तुऐं नहीं है अतः उनकी मांग में सदैव घटा-बढ़ी होती रहती है। इसी के अनुसार उनके उत्पादन की मात्रा में भी कमी या वृद्धि होती है। अस्तु, देश में ऐसे नये आधार भूत उद्योगों के विकास की नितान्त आवश्यकता है जिनमें खनिजों का प्रायः नियमित उपयोग होता रहे तथा खनिज व्यवसाय पनप सके।

(५) देश के विभिन्न भागों में जहाँ यातायात की असुविधा है वहाँ यातायात के विभिन्न साधनों की उन्नति कर नये क्षेत्रों का पर्य्यवेक्षण किया जाये और खनिज पदार्थों की संरक्षित राशि का यथोचित ज्ञान प्राप्त किया जाय।

(६) कुछ खनिजों के स्थानापन्न (Substitutes) निकाले जायें जिससे हमें विदेशों में आश्रित न रहना पड़े। इसके अतिरिक्त वर्तमान धातुओं के उपयोग की विभिन्न क्रियाएं ज्ञात की जायें।

(७) अनार्थिक खदानों को राज्य नियंत्रण द्वारा बंद कर दें और खनिज व्यवसाय कुशल और शिक्षित व्यक्तियों के हाथ में रहे।

खनिज पदर्थों का व्यापार :

जैसा कि ऊपर कहा गया है, भारत से खनिज पदार्थों का निर्यात और आयात दोनों ही होता है इससे देश को आर्थिक लाभ होता है। नीचे की तालिकाओं में खनिज पदार्थों का निर्यात आयात बताया गया है :—

भारत से खनिजों का निर्यात

क्रम संख्या	खनिज	इकाई	१९५५ मात्रा	१९५५ मूल्य (००० रु०)	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (००० रु०)
१	बाक्साइट धातु	टन	८७७६	६०९	९,६७१	५९१
२	एस्वस्टस	हं०	१०७९२	२९३	१,०५८	२५४
३	बैराइट	टन	२५७३	२९१	१७,९९४	२२१२
४	क्रोमाइट	टन	४८८००	५०४३	३३,३५८	४,१६७
५	खड़िया और चूना	ह०	४८५०	४७	९,४६४	२६
६	कोयला	टन	१५००३७७	४३८०२	१६,५२,०००	५२,०९३
७	कोक	टन	२५२३७	८८१	७८,१५६	४,२१८
८	ग्रैफाइट	ह०	२७	३	—	—
९	इलमैनाइट	टन	२४६१९६	१५०४६	३२०,०१४	२२,९०३
१०	कच्चे लोहे की धातु	टन	११९८४५७	५२८९५	२,२६२,०००	११९,९१६
११	कियैनाइट	टन	२७०७९	६५४९	२५,२७३	७,७७७
१२	मैंगनीज अयस	टन	८३७२८३	९७७०३	१,७०६,०००	३१६,३०८
१३	लोह-युक्त मैंगनीज	टन	५३०९६	२५२४	९,३१७	३,८४१
१४	अभ्रक	ह०	४१९४३८	७९२१७	४४९,७४२	८६,८४९
१५	मैंगनेसाइट	ह०	४३७५८०	३५२२	४५४,७३३	३,८५२
१६	सिलीमैनाइट	टन	३७४५	११९६	५,५८५	१,८०३
१७	नमक	टन	२०२८४०	३४३३	४०३,८७६	६,५८०
१८	शोरा	ह०	२२२८	११७	१११	९
१९	घीया पत्थर	टन	७८६९	१४३४	७,३६२	१,४३१
२०	पत्थर एवं संगमरमर	टन	१५२६	८७४	३१,१९१	९१७
२१	बहुमूल्य पत्थर तथा मोती		अप्राप्य	३७०२	अप्राप्य	३,८३१
२२	अन्य खनिज	टन	२६६९	२८६	१३०१	१३५
	योग			३१,९४,६७		६,४३,०१०

भारत में खनिज पदार्थों का आयात

क्रम संख्या	खनिज	इकाई	१९५५ मात्रा	१९५५ मूल्य (०००रु०)	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (००० रु०)
१	फास्फेट	टन	४०४३५	४९०८	१२८,११६	१७,३३४
२	एस्बस्टस	ह०	२५५४२१	१४९५५	३७६,५०६	२१,२२३
३	एसफाल्ट	टन	४०४१३३	५०४५४	५,६५५	१,४६६

क्रम संख्या	खनिज	इकाई	१९५५		१९५७	
			मात्रा	मूल्य (०००रु०)	मात्रा	मूल्य (००० रु०)
४	बैराइट	ह०	२१३७	५१	९८०	१९
५	सुहागा	ह०	६१००१	१६८५	८१ ९३१	२,५१०
६	चीनी मिट्टी	ह०	३००८३१	२५४४	५८,५९२	४८०
७	ग्रैफाइट	ह०	१३८३१	६४५	२३,७६३	६८१
८	सेलखड़ी	—	—	१	२७,६११	३७२
९	कच्चे लोहे की धातु	टन	१२७१	२५३	१ ४५४	३८१
१०	अभ्रक	ह०	३४०४	६१३	२,०५७	३०३
११	गंधक	टन	८३५८९	२१३४७	१०७,३९१	३२,१०९
१२	कोयला	टन	१६०	३	५०७	२७५
१३	कोक	टन	२०००	५५३	२६६	३२०
१४	बहुमूल्य पत्थर	—		९३०७	अप्राप्य	९,३२१
१५	अन्य खनिज	टन	६२१८	३२३७	७६३३	३६१३
	योग			११०,५५६		१०१,६९३

भारत में धातुओं का आयात

क्रम संख्या	धातु	इकाई	१९५५		१९५७	
			मात्रा	(मूल्य ०००)	मात्रा	(मूल्य ०००)
१	अल्यूमीनियम	टन	३२३९२३	४७४९४	४५३,७६४	८२,६५४
२	पीतल और कांसा	ह०	७३०२०	११२१८	१३८,७७०	२४,२०७
३	तांबा	ह०	३६९०९६	७८११४	९८५,३१२	१७७,२३१
४	फैरो-एलॉय	टन	११३२	१२२४	९०५	१,४१५
५	सोना	औन्स	२६६७	६९१	—	—
६	जर्मन-सिल्वर	ह०	२३८९६	३६९१	३९५	२१५
७	ढला लोहा	टन	३१६०	१५११	८३,९३४	३५,५७५
८	लोहे और इस्पात का सामान	टन	५६७८०५	४३३६५९	१,७३९,०२२	१,४६९,२८०
९	सीसा	ह०	२४०७८०	१८१३४	२८६,८३२	२२,२०८
१०	रांगा	ह०	३२१७	१२३५	१८,३५०	६,९९०
११	चांदी	औन्स	३९९	२	२,९२०	२५
१२	टिन	ह०	७३०६४	३५२७३	१२८,९१६	५०,३७५
१३	जस्ता	ह०	६७१६२४	४५३९२	१,०४६,८५१	७२,७९६
	योग			७५,९५,२८		१,९४२,९७१

खानों के विकास करने के लिए भारत में निम्न प्रमुख सरकारी संस्थाओं का सहयोग हैं :—

(१) भारतीय खान विभाग (Indian Bureau of Mines, Nagpur)
(२) भूगर्भ निरीक्षण विभाग (Geological Survey of India, Calcutta)
(३) राष्ट्रीय धातु प्रयोग शाला (National Metallurgical Institute)
(४) राष्ट्रीय इंधन अन्वेषण संस्था (National Fuel Research Institute)

इनके अतिरिक्त भारत सरकार ने चार क्षेत्रीय मण्डल खनिज विकास योजना के अन्तर्गत स्थापित किये हैं जो अजमेर, कलकत्ता, नागपुर व बंगलोर में हैं। इनके कार्य क्षेत्र इस प्रकार है :—

(१) **अजमेर तथा उत्तरी-पूर्वी मण्डल** :—जम्मू तथा काश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, देहली उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान।

(२) **कलकत्ता तथा पूर्वी मण्डल** :—पश्चिमी बंगाल, बिहार, आसाम, मनीपुर व त्रिपुरा, उड़ीसा व अंडमान द्वीप समूह।

(३) **नागपुर अथवा मध्य मण्डल** :—मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र व आन्ध्र।

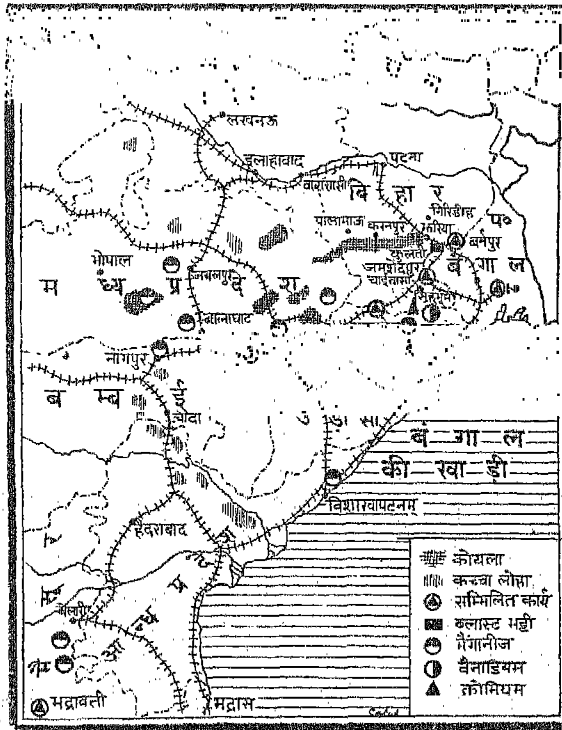
(४) **बंगलौर अथवा दक्षिण मण्डल** :—मैसूर, मद्रास व केरल।

अध्याय ११

धातु खनिज
(Metallic Minerals)

१. लोहा (Iron Ore)

लोहे की मुख्य खनिज ठोस काले या लाल गेरू का पत्थर **'हैमेटाइट'** (Hematite) होती है। इसका रंग लाल होता है। इसमें आक्सीजन और लोहे का सम्मिश्रण होता है। दूसरा खनिज काला चुम्बक पत्थर **"मैगनेटाइट"** (Magnetite) है। इसका रंग काले रंग का होता है। हैमेटाइट पत्थर जलज शिलाओं (Acqueous Rocks) के साथ अथवा परिवर्तित शिलाओं की तह में पाया जाता है तथा चुम्बक



चित्र ८०—प्रमुख धातुओं का क्षेत्र

पत्थर का जमाव लोहमय-आग्नेय शिलाओं (Igneous Rocks) के किनारे पाया जाता है अथवा ऐसी शिलाओं से नदी द्वारा पृथक होकर नदी पात्र में काले बालू के रूप में मिलता है। किंतु लोहा अधिकतर उपरोक्त दोनों ही खनिजों से भट्ठियों में गलाकर निकाला जाता है। इन भट्ठियों में लोहे की खनिज को चूने के पत्थर, मैंगनीज, डोलोमाइट तथा कोक के साथ मिलाकर उस समय डाला जाता है जबकि वह अग्नि

से तप्ती हुई हो। चूने का पत्थर लोहे की खनिज में से बालू और अन्य मैल को अपने चूने के अवयव से उसका सम्मेलन करा कर पृथक कर देने में सहायक होता है और कोक लोहे की खनिज में से आक्सीजन तत्व को खींच लेता है जिसके सम्मेलन से वह स्वयं जल जाता है। इसके जलने से और गरम गैसें बनती हैं जो फिर उन्हीं भट्टियों को गरम करने में काम आती है। इस प्रकार लोह-धातु पृथक रह जाती है।

लोहे के किस्म :

भारत में तीन प्रकार का लोहा मिलता है : (१) **हैमेटाइट लोहा**—जिसमें धातु का प्रतिशत ६० से ६९ तक होता है। इसमें धातु ठोस कणों अथवा चूर्ण के रूप में मिलती है। इस प्रकार का लोहा बिहार-उड़ीसा में सिंहभूम, क्योंझार, मयूरभंज जिलों ; मध्यप्रदेश में ड़ाली-राजहरा की पहाड़ियों, रावघाट और जबलपुर ; महाराष्ट्र में रत्नागिरी, लोहारा, पीपल गांव ; मैसूर में बाबाबूदन की पहाड़ियों और संदूर में मिलता है। इस प्रकार का लोहा मुख्यत: पहाड़ियों के ऊपरी भागों में मिलता है।

(२) **मैग्नेटाइट लोहा**—आग्नेय चट्टानों वाले प्रदेशों में विशेषत: द० पूर्वी सिंहभूम, मद्रास, आन्ध्र और मैसूर की खानों से मिलता है। हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले और उड़ीसा की पालामाऊ की खानों में भी यह मिलता है। इसमें धातु का अंश ७२ प्रतिशत तक होता है। इस प्रकार के लोहे के कितने जमाव है यह निश्चित रूप से स्पष्ट नहीं है किंतु अकेले कुमारधूबी की खानों में १० लाख टन कच्ची धातु होने का अनुमान है। इस धातु में टाइटैनियम, वैनेड़ियम और क्रोमीयम के अंश भी पाये जाते हैं।

(३) **लैटराइट लोहा**—मुख्यत: महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और मद्रास राज्यों से प्राप्त होता है किंतु अन्य प्रकार का लोहा सुविधा पूर्वक मिल जाने से इसको अधिक नहीं निकाला जाता।

उत्पादन क्षेत्र :

यद्यपि विश्व का केवल ३% लोहा ही भारत में मिलता है किंतु लोहा उत्पादन देशों में भारत का स्थान ८वां है।

भारत का प्रमुख लोहा-क्षेत्र बिहार राज्य के सिंहभूमि जिले में (कोम्पिलाई) पूर्वी रियासतों में होता हुआ उड़ीसा तक ३० मील की लम्बाई में चला गया है। इस क्षेत्र में अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है। मैदान के ऊपर १,५०० फीट तक तथा इससे भी अधिक ऊँची पहाड़ियों के रूप में उच्चकोटि का हैमेटाइट प्रकार का कच्चा लोहा पाया जाता है। यहाँ लोहा बहुधा सतह के निकट ही मिल जाता है, अत: उसे खोदने में अधिक व्यय नहीं पड़ता। अकुशल मजदूरों द्वारा लोहे के ये टुकड़े टुकड़े करके मोटर ठेलों में लाद दिये जाते हैं। इस लोहे की धातु में ७०% लोहा होता है। इस पेटी में लोहे का जमाव इतना अधिक है कि अनुमान किया जाता है कि इंगलैंड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के लोहे के कारखाने के समान ये ३०० वर्षों तक भारत के लोहे के कारखाने चलाने के लिये पर्याप्त हैं।[1] इस लोह-क्षेत्र में कच्चे लोहे का कुल जमाव २७,३७० लाख टन है। यह इस प्रकार है :—

सिंहभूम १०,४७० लाख टन ; क्योंनझार ९,८८० लाख टन ; बोनाई ६,८४० लाख टन; और मयूरभंज १८० लाख टन।

---

१. J. C. Brown : India's Mineral Wealth, p. 58.

बिहार में लोहा सिंहभूम जिले के 'कोल्हन' (Kolhan) और नोआमुंडी (Noamundi) व गुआ (Gua) लोहा क्षेत्र की पंसिराबुरू और बडाबुरू खानों से निकाला जाता है। यहाँ कच्चे लोहे में ६४% धातु रहती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पंसिराबुरू में १ करोड़ टन और बडाबुरू में १५ करोड़ टन लोहा भरा पड़ा हैं जिसमें लगभग ६४% लोहा है। ये खानें पूर्वी रेल से जुड़ी हैं अतः इसका अधिकांश उपयोग टाटा लोह कम्पनी द्वारा ही किया जाता है। कुछ लोहा भारतीय लोह कम्पनी द्वारा भी काम में लाया जाता है।

इन खानों के अतिरिक्त मयूरभंज राज्य में गुरुमहिसानी, ओकम्पाद और बादामपहाड़ में भी लोहे की महत्वपूर्ण खानें हैं। गुरुमहिसानी में धातु की तहें तीन समानान्तर और भिन्न पेटियों में मिलती हैं जो क्रमशः ७,०००; ५,५०० तथा ३,००० फीट लम्बी और ३०० से ७०० फीट तक चौड़ी है। यहाँ कच्ची धातु में लोहे का अंश ६४% से भी अधिक है। गुरुमहिसानी में खनिज का अनुमान ६० लाख टन; सुलेपात की पहाड़ी में २० लाख टन और बादामपहाड़ में ६० लाख टन खनिज का अनुमान लगाया गया है। ओकम्पाद (सुलेपात) में धातु का जमाव खोरकी नदी के पश्चिम में स्थित है। यहाँ सुलेपात पहाड़ी की धातु में लोह का अंश ६८% है। बादामपहाड़ में ३,००० फीट लम्बे और ५०० फीट चौड़े क्षेत्र में लोह मिलता है। इसमें धातु का अंश ५६ से ५८% तक पाया जाता है। ये तीनों क्षेत्र सम्पूर्ण भारत का $\frac{1}{3}$ भाग कच्चा लोहा उत्पन्न करते हैं। कोयले और डोलोमाइट के निकट ही मिलने के कारण इन खानों का उपयोग अधिक हो सका है।

उड़ीसा राज्य में बोनाई और कोमपिलाई पहाड़ियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यहाँ कच्चे लोहे में लगभग ६० प्रतिशत लोहा निकलता है।

मैसूर राज्य में बाबाबूदन की पहाड़ियों में भी उत्तम श्रेणी का लोहा भरा पड़ा है। इनका जमाव २५० से ६०० लाख टन के बीच में आँका गया है। मैसूर के भद्रावती लोहे के कारखानों में 'केमागुंडी' की खानों का लोहा काम में लाया जाता है। इसमें ६४% लोहे की मात्रा होती है। बलारी का संदूर क्षेत्र तथा महाराष्ट्र का उत्तरी कनारा क्षेत्र, चितलद्रुग और चिकमंगलौर में भी लोहा निकाला जाता है।

मद्रास में मैगनेटाइट प्रकार का लोहा पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा जमाव सलेम—तिरूचिरापल्ली में ३,०४० लाख टन कूंता गया है किन्तु कोयले की कमी के कारण यह अभी तक काम में नहीं लाया जा सका है। मद्रास में लोहे के मुख्य क्षेत्र—गोदामलाई, थालयमलाई, सिंगापट्टी, थिरतामलाई और नंजमलाई हैं। यहाँ धातु में ३५ से ४० प्रतिशत तक लोहा मिलता है। इनमें धातु के जमाव अजय मात्रा में होने का अनुमान है।

मध्य प्रदेश में द्रुग जिले में राजहारा पहाड़ियाँ तथा बस्तर राज्य, रायगढ़, सरगूजा, बिलासपुर, जबलपुर, मांडला, बालाघाट आदि जिलों में धाली पहाड़ियों में भी ठोस लोहे की पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। ये पहाड़ियाँ अपने चारों ओर की चौरस भूमि की सतह से कहीं २,४०० फीट ऊँची उठ गई हैं और २० मील तक लगातार टेढ़े-मेढ़े आकार में चली गई हैं। अमेरिकन विशेषज्ञों ने धाली और राजहारा को 'संसार का खनिज आश्चर्य' कहा है। यहाँ लगभग ७५ लाख टन लोहे के जमाव होने का अनुमान है। इनमें लोहे का भाग ६७% है।

आंध्र प्रदेश में लोहे का उत्पादन कृष्णा, कर्नूल, कडुप्पा और चित्तूर तथा वारंगल जिले में किया जाता है। अभी आंध्र-प्रदेश में दो नई खानों का पता लगा है जिसमें लगभग ३,९८० लाख टन के जमाव होने के अनुमान लगाए गए हैं। ये खानें क्रमशः गंतूर जिले में ओंगोल ग्रूप (कोनीजेड्डू, मरलापाडु और परनामिहा स्थानों में) और नैलोर जिले में कड्डूकर तालुका में स्थित हैं। ऐसा अनुमान है कि यहाँ कुल जमाव में से लगभग २९६० लाख टन में धातु का प्रतिशत ३३ से ३७ तक है और शेष में धातु का प्रतिशत २५ है। इन जमावों की कार्याविधि कई शताब्दियों तक की मानी गई है। ओंगोल-ग्रूप में लोहे के जमाव इस प्रकार अनुमानित किए गए हैं :—

१.	ओंगोल-स्तर	५५,००० टन
२.	कोनजेड्डू-मरलापाडु स्तर	२७८,७८४,००० टन
३.	तरनामिहा स्तर	१२,८९०,००० टन
४.	सनामपाड़ी स्तर	९९०,००० टन
	योग	२९२,१७९,००० टन

१९५८ में भूगर्भ विभाग द्वारा आंध्र प्रदेश में ३ लाख टन के नये जमाव ज्ञात किये गये हैं। ये जमाव कडुप्पा जिले में छवाली, पगाड़लापल्लै, राजमपेट, पैंड़लीमारी, मन्तमपली में हैं।

महाराष्ट्र राज्य में चांदा जिले में उत्तम श्रेणी के लोहे के पर्याप्त भंडार हैं जिसमें धातु का अंश ६१ से ६७ प्रतिशत तक है। यहाँ लोहा अधिकतर लोहारा और पीपल गांव में निकाला जाता हैं। लोहारा पहाड़ी ६०० गज लंबी और २०० गज चौड़ी है। पीपल गांव के लोहा-भंडार, अधिक बढ़िया श्रेणी के नहीं हैं। महाराष्ट्र में रत्नागिरी और गुजरात बड़ौदा और खांडेश्वर की खानों से भी लोहा निकाला जाता है।

पंजाब में लोहे का नया जमाव एक २½ मील लंबी पट्टी में पाया गया है जो पंजाब में महेन्द्रगढ़ जिले से होती हुई छपरा, अंतरी और बिहारीपुर तक चला गया है। इस पट्टी में २० लाख टन जमाव होने का अनुमान है। यह लोह खनिज इस्पात बनाने के योग्य तो है किन्तु प्रचुर मात्रा में नहीं हैं।

राजस्थान में थोड़ा लोहा जयपुर, सीकर, अलवर और झालावाड़ जिलों में भी मिलता है। अभी धनौरा धनचौली के समीप लोहे के क्षेत्रों का पता लगा है किंतु ये इतने पर्याप्त नहीं है कि इनसे कोई बड़ा कारखाना चलाया जा सके।

कुछ लोहा उत्तर प्रदेश के कुमायूं तथा जम्मू के रियासी जिले में भी पाया जाता है। नीचे की तालिका में लोहे का उत्पादन बताया गया है :—

भारत में कच्चे लोहे का उत्पादन

(००० टनों में)

राज्य	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७
आन्ध्र		३६२	४०२	—
बिहार		१,९२०	१,८४७	२,२४२
महाराष्ट्र		३५	१२७	१४३

राज्य	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७
मध्य प्रदेश		२१	३३	२२९
मैसूर		३६३	५४०	७८२
उड़ीसा		१,८८२	१,७७०	२,१४७
पंजाब		—	१४	—
राजस्थान		४५	१२२	—
भारत का योग	४,३०८		४,८९८	५,८२४

१९५८ में ६,०००,००० टन लोहे की अयस का उत्पादन हुआ जिसका मूल्य ५३, करोड़ रु० था १९५६ में उत्पादन की मात्रा ४,८९८,००० टन और मूल्य ३·९ करोड़ रुपया था।

लोहे के सुरक्षित भंडार (Reserves of Iron-Ore)

भूगर्भ शास्त्रियों का अनुमान है कि भारत में उत्तम किस्म के (६८% धातु वाले) लोहे के जमाव पर्याप्त मात्रा में हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रथम श्रेणी के लोहे के जमाव भारत में ३०,००० लाख टन के हैं जबकि इस श्रेणी के जमाव ब्रिटेन में २२,४५० लाख टन, सं० रा० अमरीका में ९८,८५० लाख टन, फ्रांस में ४३,३९० लाख टन और जर्मनी में १३,७४० लाख टन हैं। यद्यपि हमारे जमाव इन देशों की तुलना में कम हैं किन्तु हमारे यहाँ की धातु में गंधक का अंश ०·६ प्रतिशत से अधिक नहीं होता। अतएव ये जमाव उत्तरी अमरीका की मिनेसोटा, विसकोंसिन और मिशीगन की खानों से प्राप्त किए जाने वाले लोहे से अधिक उत्तम समझे जाते हैं। बिहार उड़ीसा के जमाव इतने अधिक हैं कि इनके द्वारा प्रतिवर्ष १५ लाख टन ढला लोहा लगभग १,००० वर्षों तक बनाया जा सकता है।[1]

निम्न तालिका में विश्व के प्रमुख देशों में लोहे के जमावों सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं[2] :—

देश	१० लाख मैट्रिक टन में	धातु का प्रतिशत
अल्जीरिया	४४	५५
ब्राजील	१०,८०७	६५
क्यूबा	५,४००	३६
कनाडा	७,०००	५५
चीन	१,२१५	४५
फ्रांसीसी प० अफ्रीका	२,६००	४७
फ्रांस	३,८७६	३५
भारत	१०,२७२	६५
जर्मनी	८४०	३०
स्वीडेन	१,६००	६४

१. Report of the Indian Tariff Board Regarding Grant of Protection to Iron and Steel Industry. p 91.
२. U. N. O., World Iron Ore Resources, 1950, p. 11.

देश	१० लाख मैट्रिक टन में	धातु का प्रतिशत
स्पेन	६३०	३५
सं० रा० अमरीका	२५,४८८	५०
इंगलैंड	९१८	३०
वैनेजुएला	९४०	५१

यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है कि भारत में हैमेटाइट अयस में जहाँ धातु का प्रतिशत ५५ से ७० तक है वहाँ इंगलैंड में केवल ३० से ३५; फ्रांस में ४०; बेलजियम में ३५; जर्मनी में ४०; सं० रा० अमरीका में ५० से ६०; स्वीडेन में ६० से ७० है।[1]

भारत में डा० फॉक्स के मतानुसार विभिन्न श्रेणियों के लोहे के जमाव इस प्रकार है :—

धातु का अंश	सुरक्षित भंडार (१० लाख टन)
६० प्रतिशत	३,३४१
४५·६%	३,०००
४५·६% से कम	१,५००
योग	७,८४१

भारत के भूगर्भ-विभाग के अनुसार देश में विभिन्न प्रकार के लोहे के अनुमानित (Probable) और संभावित (Potential) भंडार इस प्रकार है :—

लोहे के सुरक्षित भंडार (१० लाख टन में)

राज्य	अनुमानित (Prove & Indicated)	संभावित (Possible Reserves)
१. हैमेटाइट :		
बिहार-उड़ीसा (सिंहभूम, क्योंनझार सुरेन्द्रगढ़, और मयूरभंज राज्य)	२७,४३०	८०,०००
मध्य प्रदेश (धाली-राजहरा, बैलादीला, रावघाट जबलपुर)	१५,६४०	९५,०००
महाराष्ट्र (चांदा, रत्नगिरी)	४२०	
मैसूर (धारवाड़, बलारी, चिकमगलूर, चितलद्रुग, शिमोगा, तुमकुर जिले)	९,०४०	
आंध्र (कर्नूल, आदिलाबाद, करीमनगर, निजामाबाद, वारंगल)	४१०	—
काश्मीर	५०	—
राजस्थान	५०	३००
पंजाब (पटियाला)	२०	
उत्तर प्रदेश	१००	
योग-हैमेटाइट अयस	५३,१६०	१७६,३०००

१. P. J. Thomas, India's Basic Industries, 1947, p. 2.

२. मैगनेटाइट		
मद्रास (सलेम-तिरुचिरापल्ली)	३,०५०	१०,०००
आंध्र (गतूर-नैलोर)	३,८६०	३,८६०
मैसूर	२,१५०	५००
बिहार उड़ीसा	५०	—
हिमाचल प्रदेश	६००	६००
योग-मैगनेटाइट	९,७४०	१९,४९०
३ लिमोनाइट धातु		
बंगाल	५००	२,०००

संक्षेप में ये जमाव इस प्रकार है :—

हेमेटाइट धातु	५३,१६० (ला० टन)	१७६,३०० ला० टन
मेगनेटाइट ,,	९,७४० ,,	१९,४९० ,,
लिमोनाइट ,,	५,००० ,,	२०,००० ,,
योग	६७,९०० ,,	२१५,७९० ,,

इस अनुमानित मात्रा में से ६४,००० लाख टन के भंडार प्रमाणित है। लगभग सम्पूर्ण भारत में लोह की अयस (Oie) में लोहांश ६२% है। मैसूर के कुछ भंडारों की लोह अयस में लगभग ५५% लोहांश है। सब श्रेणियों में कुल लोहांश १२०,००० लाख टन अंकित किया गया है।

नियति—

भारत में कच्चे लोहे का निर्यात व्यापार कुछ ही समय पूर्व से आरम्भ हुआ है। नीचे की तालिका में निर्यात सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किए गए है :—

कच्चे लोहे का निर्यात

वर्ष	मात्रा (००० टनों में)	मूल्य (लाख रु० में)
१९५०-५१	८५	२२
१९५१-५२	२८०	१००
१९५२-५३	८११	३७१
१९५३-५४	१,२६२	५७९
१९५४-५५	१,००९	४२१
१९५५-५६	१,३६३	६२७
१९५६-५७	१,९८२	१,०३०
१९५७-५८	२,२१६	१,१८६

भारतीय कच्चे लोहे के प्रमुख ग्राहक जापान, पश्चिमी जर्मनी, चैकोस्लोवाकिया और बेल्जियम है। १९५६ में जर्मनी को ३६,९४८ टन ; जापान को १,०३७,५७८ टन ; बेल्जियम को ५,७१६ टन ; चैकोस्लोवाकिया को ४०५,४५३ टन और अन्य देशों को २०६,७३१ टन लोहा निर्यात किया गया।

२. मैंगनीज (Manganese)

मैंगनीज धातु प्राय: काले रंग की प्राकृतिक भस्मों के रूप में पाई जाती है।

भारत में इसकी मुख्य खनिज साइलोमेलेन (Silomelane) और ब्रोनाइट (Braunite) ही है। ये दोनों खनिज ठोस काले रंग की होती हैं किन्तु साइलोमेलेन कुछ नरम और रवा-हीन (amorphous) होती है और ब्रोनाइट कड़ी और रवेदार (crystalline)। इसके अतिरिक्त पाइरोलूसाइट (*Pyrolucite*) और वैड नामक खनिज भी कहीं-कहीं थोड़ी मात्रा में मिलती है। ये दोनों ही इतनी नरम होती है कि इनको छूने से ही अंगुली पर स्याही-सी लग जाती है। इनमें प्रथम ठोस और रवेदार तथा दूसरी रवा-हीन और काले काजल के समान होती है। यह अधिकतर परतदार चट्टानों में मिलती हैं।

इस धातु का मुख्य उपयोग सख्त और कड़ी फौलाद बनाने में होता है। इसके लिए लोहे और मैंगनीज का धातु मेल किया जाता है जिसे फैरो-मैंगनीज (Ferro-manganese) कहते है। इसी धातु से पोटेशियम परमैंगनेट नामक लवण प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग कांच का रंग उड़ाने, रोगन और वार्निशों को सुखाने, तथा विजली की बैटरियों में और आक्सीजन तथा क्लोरिन आदि गैसों और ब्लीचिंग पाउडर बनाने में भी किया जाता है। आजकल विजली, कांच और रासायनिक उद्योगों में भी इसका प्रयोग बढ़ गया है। वास्तव में इस धातु के इतने अधिक उपयोग होने लगे हैं कि इसे 'Jack of all-Trades' कहने लगे है।

उत्पादन क्षेत्र

मैंगनीज की खनिज का जमाव निम्न स्थानों में निम्न प्रकार की शिलाओं में पाया जाता है :—

(१) मैंगनीज-दार प्राचीन आग्नेय चट्टानों (Kodurites) में कहीं-कहीं इस धातु की खनिज निविष्ट हो गई है। इस प्रकार की खनिज आंध्र के गंजाम और विशाखापट्टनम से तथा उड़ीसा के कोरापुट जिलों में पाई जाती हैं। फास्फोरस और लोहे का अंश अयस में अधिक होने से धातु मध्यम श्रेणी की होती है।

(२) प्राचीन काल की परिवर्तित-जलज चट्टानों (Gondites) की तहों में मैंगनीज की खनिजें मिलती हैं। इन जलज चट्टानों में ताप और दवाव से मैंगनीज की खनिज कहीं-कहीं निविष्ट हो गई है। इस प्रकार के जमाव मध्य प्रदेश के बालाघाट, छिंदवाड़ा, सिऊनी जिले तथा झाबुआ में ; उड़ीसा की गंगपुर रियासत में और महाराष्ट्र के नामकोट, भंडारा, नागपुर, पंचमहल और छोटा उदयपुर में मिलते हैं।

(३) उपरोक्त परिवर्तित शिलाओं के ऊपर और उनसे उत्पन्न जो कहीं-कहीं लैटेराइट शिला मिलती है उसमें मैंगनीज की खनिज पाई जाती है। यह खनिज मैसूर राज्य में चितलद्रुग, शिमोगा, काडूर, संडूर, बलारी तथा तुमकर जिले में ; मध्य प्रदेश के जबलपुर और बिहार उड़ीसा के क्योंनझार, कोलहान और सिंघभूम जिले में तथा महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिलों में पाई जाती है। अयस में लोहे का अंश अधिक होने से धातु निम्न श्रेणी की होती है।

भारत में मैंगनीज का मुख्य उत्पादक मध्य प्रदेश है। यहाँ **बालाघाट** जिले में (कटेझिरिया, उकवा, भरवेली, नेत्रा, कांटगझिरी, बोटेझिरी, कोचेवाही, रामरामा, सेलआ, जाम, चिकपारा, तिरोड़ी, मिरगपुर, हटेडा, सुकली, सीतापाथर, और गर्रा स्थानों में) ; **छिंदवाड़ा** जिले में (गोवरी, वर्धाना, बुदकुम, गोटी, सीतापुर और मच्छी-धाना में), मांडला, बस्तर, बिलासपुर, जबलपुर, धार, झाबुआ और इन्दौर जिलों में मैंगनीज मिलता है।

मैंगनीज उत्पादन की दृष्टि से महाराष्ट्र का स्थान द्वितीय है। यहां नागपुर जिले में (सलाई, भंडारखोरी, गांगुडोह, मोनगॉव, चारगाँव, मन्सर. पारसोदा, रान्दरी, चोर वावली, सटक, बेलेडोंगरी, नगरधान, रामडोंगरी, वारेगॉव, लोहरोंगरी, कोडेगॉव, गुमगाव और किलापुर में); भंडारा जिले में (डोंगरी, कुरमुरा, सीता सोंगी, चिरवला असोलपानी, कांदेरिया, फीटला, और नवगॉव में); तथा पंचमहल, रत्नागिरी निजामाबाद, छोटा उदयपुर जिलों में और गुजरात में बडौदा मैंगनीज पाया जाता है।

उड़ीसा में मैंगनीज का उत्पादन क्योंझार और गंगपुर रियासत में बोनाई, क्योंझार, कोरापत, कालाहांडी, बोलंगिर, तालाक और गंगपुर की खानें उल्लेखनीय हैं।

बिहार राज्य में मैंगनीज सिंहभूम जिले में चैवासा में मिलता है।

आंध्र प्रदेश में विशाखापत्तनम और श्री काकुलम जिलों में ; मैसूर में चितलद्रुग, काडूर, शिमोगा, तुमकुर, बलारी, बेलगांव, उत्तरी कनारा और चिकमंगलौर में तथा राजस्थान में बांसवाडा और उदयपुर जिले में भी मैंगनीज निकाला जाता है।

नीचे की तालिका में मैंगनीज का उत्पादन बताया गया है :

मैंगनीज का उत्पादन

मैंगनीज का उत्पादन (००० टनों में)

राज्य	१९५४	१९५५	१९५६	१९५८
आंध्र	५८	११२	२२१	—
बिहार	३५	४९	४३	३५५
महाराष्ट्र	२७४	४१७	३५७	३०६
मध्य प्रदेश	६०८	३८९	७५	२७९
मैसूर	९०	२११	२२०	३३६
उड़ीसा	३४६	४०१	४३४	—
राजस्थान	२	६	५	—
भारत का योग	१,४१३	१,५८४	१,५८७	१,२५०

१९५६, १९५७ और १९५८ में मैंगनीज का उत्पादन इस प्रकार था :—

१९५६	१,६८७ हजार टन	१२·९७ करोड़ रु०
१९५७	१,६५४ ,,	१४·०५ ,,
१९५८	१,२५० ,,	११·२३ ,,

मैंगनीज के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में रूस के बाद दूसरा है जैसा कि निम्न आंकड़ों से ज्ञात होगा :—

देश	उत्पादन (००० मैट्रिक टनों में)		
	१९३५	१९५४	१९५६
रूस	—	२,५५०	५,३००

देश	उत्पादन (००० मैट्रिक टनों मे)		
	१९३५	१९५४	१९५६
भारत	३१३	८९७	१,६८७
घाना	२२८	४१२	६२७
द० अफ्रीका संघ	४८	३५१	६८४
क्यूबा	—	९३	२६३
सं० रा० अमरीका	१३	५७	२८९
ब्राजील	२९	४२	—
जापान	१७	७६	—
विश्व का योग	७५०	५,०५०	

भारत के मैंगनीज खनिज में धातु का अंश ४७ से ५२ प्रतिशत तक पाया जाता है जबकि रूस में यह अंश ४५%; घन्ना में ४१ से ५०%, और ब्राजील में ३१ से ५० तक हैं। वस्तुत: भारत की खनिज उत्तम प्रकार की है। यही नहीं, यहाँ इस खनिज के जमाव भी अधिक है जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

विश्व में ज्ञातव्य मैंगनीज के सुरक्षित भंडार
(१० लाख छोटे टनों में)

देश	उत्तम श्रेणी का (४५% धातु)	निम्न श्रेणी (औसत २५% धातु)
द० अफ्रीका संघ	५०	—
फ्रांसीसी मोरक्को	३०	२०
बैल्जियन कांगों	१०	२०
घाना	१०	२०
भारत	१,०००	२००
ब्राजील	५०	—
क्यूबा	४	८
अन्य क्षेत्र	१६	२७

भारत में मैंगनीज के सुरक्षित भंडार इस प्रकार हैं :—

मध्य प्रदेश	१० करोड़ टन ;	आंध्र-मैसूर,	२५ लाख टन
उड़ीसा	१ लाख टन ;	महाराष्ट्र	५० लाख टन

कुल संचित भंडार में से लगभग ११ करोड़ टन उच्च श्रेणी का है जिसमें ४५% तथा इससे अधिक मैंगनीज है।

देश में फैरोमैंगनीज उत्पन्न करने के ६ कारखानें हैं। मुख्य कारखाने मध्य प्रदेश में रामटेक, बिहार में जोदा और महाराष्ट्र में तुमसर नामक स्थानों पर स्थापित हैं। इनकी उत्पादन क्षमता ९३,००० टन है इनमें से ५ में उत्पादन हो रहा है।

भारत से मैंगनीज का निर्यात मुख्यतः फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, जापान और

ब्रिटेन को होता है। यह निर्यात विशाखापट्टनम, कलकत्ता और बम्बई बन्दरगाहों द्वारा होता है। नीचे की तालिका मे मैंगनीज का निर्यात बताया गया है :—

मैंगनीज का निर्यात

वर्ष	टनो में
१६५०	७२८,०००
१६५१	६५२,०००
१६५२	१,३६४,६००
१६५३	१,६५४,०००
१६५४	१,०६२,०००
१६५५	८३७,०००
१६५६	१,५११,०००
१६५७	१,७०६,०००

१६५७ में १७ लाख टन मैंगनीज का निर्यात किया गया जिसका मूल्य ३१·६ करोड़ रु० था।

३. क्रोमाइट (Chromite)

क्रोमियम की मुख्य खनिज क्रोमाइट है जो लोहे के चुम्बक पत्थर के समान काले रंग की होती है। क्रोमाइट लोहे और क्रोमियम की भस्मों का सम्मेलन है। इस खनिज का रंग मटियाला काला होता है। क्रोमाइट खनिज से धातु और क्रोमियम और लोहे का धातु-मेल **'फैरो-क्रोम'** (Ferro-Chrome) बिजली की भट्टियों मे शोध कर बनाया जाता है। क्रोमाइट की ईंटें धातु शोधने की भट्टियों में अग्नि-प्रतिरोधक होने के कारण व्यवहृत की जाती है। क्रोमाइट का उपयोग चमड़ा सिझोने और रंगने में भी किया जाता है।

इसका सबसे अधिक उत्पादन मैसूर राज्य में होता है। यहाँ यह खनिज शिमोगा, शिन्हुवाली, चितलद्रुग, हसन व मैसूर जिलों में पाया जाता है। देश का लगभग ६५% क्रोमाइट यहीं से प्राप्त होता है।

इसके बाद उड़ीसा का स्थान है। यहाँ क्योंझार, कटक, धनकेनाल आदि जिलों से देश के उत्पादन का लगभग ३१% प्राप्त होता है।

महाराष्ट्र में क्रोमाइट रत्नागिरी और सन्तवाड़ी; मद्रास में सलेम; आंध्र प्रदेश में कृष्णा और खम्मामेत; काश्मीर में लद्दाख जिले में भी क्रोमाइट निकाला जाता है। नीचे की तालिका में क्रोमाइट का उत्पादन बताया गया है :—

क्रोमाइट का उत्पादन

	१६५६		१६५५	
	मात्रा	मूल्य	मात्रा	मूल्य
मैसूर	४,२७६ टन	२·२ ला० रु०	१७,५६६ टन	५·८१ ला० रु०
उड़ीसा	४५,७४८ ,,	१२·८ ,,	७०,४७६ ,,	२०·३६ ,,
बिहार	२,६५६ ,,	२·४ ,,	१,३०१ ,,	१·११ ,,
योग	५२,६८६ टन	१७·५ ला० रु०	८६,३४६ टन	१७·३० लाख रु०

भारत में १९५६ में ५४,०२४ टन और १९५८ में ६०,४१७ टन क्रोमाइट का उत्पादन किया गया जिसका मूल्य क्रमशः १९·६६ ला० रु० और २७·१८ ला० रु० था।

प्रायः उत्पादन की सम्पूर्ण मात्रा मद्रास और कलकत्ता बन्दरगाहों द्वारा ब्रिटेन, नार्वे, स्वीडेन, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका को निर्यात कर दी जाती है। १९५७ में भारत से ३३,३५८ टन क्रोमाइट निर्यात किया गया जिसका मूल्य ४१·६ लाख रु० था।

भारत में सब प्रकार के क्रोमाइट के भंडार लगभग १३,२०,००० टन के हैं।

४. टंगस्टन (Tungsten) :

टंगस्टन की मुख्य खनिज 'वूलफ्रॉम' (Wolfram) है जो टंगस्टन और मैंगनीज की भस्मों का रासायनिक सम्मेलन है। इसी खनिज को बिजली की भट्टी में शोध कर धातु निकाली जाती है। वूलफ्रॉम का रंग काला होता है और यह एक ओर से अधिक चमकदार होता है। यह अन्य धातु की खनिजों से अधिक भारी होती है। वूलफ्रॉम बिल्लौर-पत्थर की धारियों में पाया जाता है। ये धारियाँ ग्रेनाइट नामक आग्नेय चट्टानों के पास की भूमि में पाई जाती है। कहीं-कहीं ऐसी धारियों के पास ही वूलफ्रॉम के कण नदियों की बालू में भी पाये जाते हैं।

यह धातु अथवा इसका और लोहे का धातु-मेल **"फैरो-टंगस्टन"** (Ferro-tungsten) विशेष प्रकार की फौलाद बनाने में काम आता है। प्रायः सब तेज चलने वाले और कांट-छांट करने वाले यंत्र इसी फौलाद के बने होते हैं। इसका उपयोग बिजली के लैम्प के तार बनाने में भी होता है।

भारत में यह बिहार राज्य के सिंहभूम जिले, बंगाल के बांकुड़ा, महाराष्ट्र के नागपुर, मध्यप्रदेश के अगरगाँव और राजस्थान के जोधपुर डिवीजन में डीगाना में मिलता है।

भारत में इसका उत्पादन इस प्रकार है—

वर्ष	मात्रा	मूल्य
१९५६	३० हंडरवेट	९,००० रु०
१९५७	२९ ,,	९,००० रु०

५. बेरिल (Beryl) :

जिन शिलाओं में अभ्रक पाया जाता है उन्हीं में थोड़ी मात्रा में बेरिल भी मिलता है। इसके रवे १ से ६ इंच लंबे होते हैं किंतु अधिकांश टुकड़े कई फीट के होते हैं। इसका उपयोग तांबा, अल्यूमीनियम, लोहा और निकल के साथ मिलाकर अन्य मिश्रण बनाने में किया जाता है। इसका उत्पादन बिहार राज्य की गया, हजारीबाग और कोडरमा की खानों में, राजस्थान में जोधपुर, उदयपुर और अजमेर जिलों में तथा आंध्र के नैलोर जिले से प्राप्त किया जाता है। यहाँ से लगभग ३०% उत्पादन का निर्यात कर दिया जाता है।

भारतीय भूगर्भ विभाग ने आंध्र प्रदेश में बैराइट (बेरियम-सल्फेट) की अनेक खानों का पता लगाया है। ये खाने मुख्यतः अनन्तपुर और कडुप्पा जिलों में है। अनुमान लगाया है कि तीन मुख्य खानों में ७,११,५०० टन बैराइट है। कोत्तपल्ली में ३०,००० टन, नेरिजमुपल्ली में ६,००० टन और मत्मुकोटा में ७५,००० टन बैराइट

की खानें कडुप्पा जिले के कडुप्पा और कमलपुरकं तालुकों में, करनूल जिले के धोन, नन्दपाल और करनूल तालुकों में तथा खम्ममेत जिले के वैलागमेटला और रुडियम-कोटा में भी पाई गई है। इसका अभी अनुमान नहीं लगाया गया है कि इन खानों में कितना बैराइट है।

६. मैगनेसाइट या भ्राजांगिज (Magnesite)

मैगनेसाइट धातु का उपयोग इस्पात उद्योग में प्रयोग में आने वाली मिट्टी में लगाने की ईंटें बनाने में होता है। इसका उपयोग तरल कार्बन-डाई-आक्साइड, सिमैंट, कांच, कृत्रिम पत्थर, ईंटें आदि बनाने और एपसम नमक, बम के खोल (Bomb-shell) और वायुयान बनाने में भी किया जाता है। उत्पादन का एक बड़ा भाग विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है।

भारत में मैगनेसाइट मद्रास में सलेम (चाक की पहाड़ियाँ), मैसूर में हृमन और मैसूर जिले (कड़ाकोला); गुजरात के ईड़र; राजस्थान के डूंगरपुर; उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा; बिहार के सिंघभूम जिले और केरल में पाया जाता है। उत्पादन का अधिकांश मद्रास और मैसूर के क्षेत्रों तक ही सीमित है। १०० फीट की गहराई तक सुरक्षित भंडारों का अनुमान १० करोड़ टन का लगाया गया है। यहाँ यह डोलोमाइट और सर्पेन्टाइन शिलाओं के क्षेत्र में मिलता है।

१९५७ में ८८,८८५ टन और १९५८ में ९९,०१४ टन मैगनेसाइट का उत्पादन किया गया जिसका मूल्य क्रमशः १७.९ लाख और १७.५० लाख था।

७. सिलमैनाइट या तन्त्विज (Sillimanite)

सिलमैनाइट धातु शिस्ट और नीस शिलाओं से प्राप्त किया जाता है। इसका उपयोग उष्णरोध कार्यों में किया जाता है। सिलमैनाइट के व्यापारिक महत्व के भंडार आसाम, मध्य प्रदेश (रीवां) मैसूर, केरल, महाराष्ट्र (भंडारा) जिले में है। आसाम की खासी पहाड़ियों में २० फीट की गहराई तक २.५ लाख टन के भंडारों का अनुमान है। मध्य प्रदेश के रीवाँ जिले में पिपरा में ३० फीट की गहराई तक १ लाख टन जमाव का अनुमान है।

१९५७ में ७,४१७ टन और १९५८ में १३,८४६ टन सिलमैनाइट का उत्पादन किया गया जिसका मूल्य, क्रमशः ४४४,००० रुपया और ७८४,००० रु० था।

८. कुरविन्द (Corundum)

यह खनिज परिवर्तित शिलाओं से प्राप्त किया जाता है। इसके उत्पादन के मुख्य क्षेत्र ये हैं :—

मैसूर में—मैसूर और हसन जिला
मद्रास में—द० कनारा और सलेम जिला
आंध्र में—अनन्तपुर, हैदराबाद जिला
आसाम में—खासी की पहाड़ियाँ
मध्य प्रदेश में—रीवां, और
महाराष्ट्र में—भंडारा जिला।

६. अणु-शक्ति वाले खनिज (Atomic Minerals)

भारत में न केवल कोयले और खनिज तेल के भंडार ही सीमित है वरन् वर्तमान गति से उपयोग में लाने पर भारत की जलशक्ति का भंडार भी आगामी कुछ वर्षों में समाप्त हो जाने की सम्भावना वैज्ञानिकों द्वारा प्रकट की गई है। अतः इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई है कि देश में अणु-शक्ति वाले खनिजों का पता लगा कर उनका उपयोग किया जाय। अनुमान लगाया गया है कि १ पौंड यूरेनियम के विश्लेषण से इतनी विद्युत शक्ति प्राप्त की जा सकती है जितनी २५ लाख पौंड कोयला जला कर। स्पष्ट है कि अणु-शक्ति वाले खनिजों द्वारा देश की शक्ति साधनों की समस्या हल की जा सकती है।

अणु-शक्ति के विकास में जिन खनिजो की आवश्यकता पड़ती है वे क्रमशः ये हैं :—

(१) यूरेनियम,
(२) थोरियम,
(३) बैरीलियम,
(४) जिरकन
(५) एंटीमनी,
(६) ग्रेफाइट,

१. यूरेनियम (Uranium)—

यह खनिज कई प्रकार की चट्टानों से प्राप्त की जाती है। भारत में यह खनिज गत ५० वर्षों से निकाला जाता था किन्तु इनमें द्वितीय युद्ध से पूर्व ही खनिज समाप्त हो गया था। सन् १९४९ में इस खनिज के दो नये क्षेत्रों का पता लगाया गया। पहला क्षेत्र विहार में सिंघभूम जिले के तांवा क्षेत्र से सम्बद्ध है। यहाँ यूरेनियम की पट्टी ६० मील लम्बी है। दूसरा क्षेत्र मध्य राजस्थान में है।

भारत में इस खनिज की प्राप्ति चार स्रोतों से होती है : (क) धारवाड़ और आर्कियन चट्टानों से निम्न श्रेणी की धातु प्राप्त की जाती है। जैसे विहार के सिंघभूम और मध्य राजस्थान में। इन चट्टानों में यूरेनियम की मात्रा ०.०३ से ०.१ प्रतिशत तक होती है। साधारणतः हल्की श्रेणी वाली धातु १ टन चट्टान में ½ से २½ पौंड तक मिलती है।

(ख) यूरेनियम (Complex Uranium)—पैगमेटाइट्स तथा अन्य चट्टानों से (नायोबेट्स, टैन्टोलेट्स, टाईटैनेट्स आदि से) प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार की चट्टानों में यूरेनियम की मात्रा अधिक होती है—१० से ३० प्रतिशत तक किन्तु ये चट्टानें अधिक नहीं मिलतीं। पैगमेटाइट्स चट्टानें उत्तरी विहार के अभ्रक क्षेत्र, मद्रास में नैलोर और मध्य राजस्थान के अभ्रक क्षेत्रों से सम्बद्ध पाई जाती है। केरल प्रदेश में भी ऐसी चट्टानें मिलती हैं।

(ग) केरल और मद्रास के तटीय भागों की मोनेजाइट (Monazite) नामक पीले रंग की बालू मिट्टी से भी यूरेनियम प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार की बालू मिट्टी कुमारी अंतरीप के तट के दोनों ओर १०० मील की लम्बाई तक पाई जाती है। यह मिट्टी समुद्रों की लहरों के प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप इकट्ठी हो जाती है। भारतीय मोनेजाइट विश्व की उत्तम श्रेणी की मोनेजाइट मानी जाती है। इसमें प्रायः

८ से १० प्रतिशत तक थोरियम आक्साइड और ०.२ से ०.४६% तक यूरेनियम मिलता है। इस खनिज के कण जिर्कन (Zircon) (जिरकोनिया की खनिज), चुम्बक पत्थर, इलमेनाइट (टाईटैनियम और लोहे की खनिज), गार्नेट और स्फटिक इत्यादि अन्य खनिजों के कणों के साथ बालू में मिलते हैं। केरल राज्य के तटीय भागों में मोनेजाइट के २० लाख टन के भंडार अनुमानित किए गये है।

(घ) यूरेनियम का अन्य स्रोत चेरालाइट (Cheralite) खनिज भी है। यह भी केरल की बालू में मिलता है। इसमें यूरेनियम की मात्रा ४ से ६% तथा थोरियम की मात्रा १९ से ३३% तक होती है। चेरालाइट से हजारों टन यूरेनियम प्राप्त हो सकता है।

२. थोरियम (Thorium)—

अणु-शक्ति के विकास के लिए दूसरा मुख्य खनिज थोरियम है जो मोनोजाइट से प्राप्त किया जाता है। केरल राज्य की बालू मिट्टी में मोनेजाइट ८ से १०.३% तक पाया जाता है जबकि ब्राजील व अन्य देशों के मोनाजाइट में ५ से ६% ही थोरियम पाया जाता है। यह नीलगिरी, हजारीबाग, मेवाड़, मद्रास तथा पश्चिमी तटों के ग्रेनाइट क्षेत्रों में रवों के रूप में भी प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त समुद्री रेत में भी पूर्वी और पश्चिमी तटों पर मोनेजाइट नामक बालू मिट्टी मे प्राप्त होता है। केरल राज्य में २० लाख टन मोनेजाइट के जमाव होने का अनुमान लगाया गया है। इसमें १५०,००० से १८०,००० टन थोरियम की मात्रा है। इलमेनाइट नामक बालू मिट्टी कई क्षेत्रों में पाई जाती है। इसका विस्तार कुमारी अंतरीप से लगा कर उत्तर में नर्मदा नदी की इस्चुरी तक पश्चिम में और महानदी के तट पर तिरूनलवैली तक पूर्वी तट पर है।

मोनेजाइट से सीरियम (Serium) प्राप्त किया जाता है जो सिगरेट लाइटर्स में चिनगारी पैदा करने वाले पदार्थ बनाने में काम आता है। ट्रेसर-बुलेट्स की पुंडियों, सर्च-लाइट, अणु बम शक्ति तथा बनावटी बैनजीन बनाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

३. बैरीलियम (Beryllium)

यह पदार्थ बेरील (Beryl) नामक खनिज से प्राप्त किया जाता है। यह देश के विभिन्न भागों में मिलने वाले पैगमेटाइट्स से मिलता है। ऐसे पैगमेटाइट्स अधिकांशत: अभ्रक क्षेत्रों में मिलते हैं। अत: राजस्थान, विहार, आंध्र तथा मद्रास में यह मिलता है। इसका वार्षिक उत्पादन १,००० टन का है। अब काश्मीर, सिकिम, आंध्र, मध्य प्रदेश और मद्रास के अन्य भागों में भी इस खनिज की खोज की जा रही है। भारत में मिलने वाले बैरील में बैरीलियम का प्रतिशत: ब्राजील, अर्जनटाइना, रोडेशिया, मैडेगास्कर और सं० रा० अमरीका की अपेक्षा अधिक है।

४. जिरकन (Zircon)

यह खनिज भी केरल राज्य की बालू मिट्टी से प्राप्त किया जाता है। इससे जिरकोनिया (Zirconia) निकाला जाता है जिसका उपयोग मिट्टी के बर्तन के उद्योग में, रेडियो-ट्यूबों में, गोला-बारूद बनाने में तथा बिजली के जोड़ लगाने आदि कार्यों में होता है। जिरकोनिया उच्च कोटि का ताप विक्रीकारक होता है।

५. एन्टीमनी (Antimony)

यह सफेद, रवेदार और सरलता से टूटने वाला पदार्थ है। यदि इसको रांगा, टिन या तांबे के साथ मिला कर मिश्रण-वाली धातु (alloy) बनाई जाये तो यह धातु को कड़ा बना देता है अतः इसका उपयोग बिजली की बैटरियों, नल, टाइप तथा गोला-बारूद में प्रयोग की जाने वाली धातुओं के साथ होता है। एन्टीमनी की सल्फाइड का उपयोग दियासलाई में और एन्टीमनी की आक्साइड का प्रयोग पिग्मैंट में होता है जो रंग-रोगन व्यवसाय में व्यवहृत किया जाता है।

यह पंजाब के कांगड़ा जिले में लाहोल (Lahaul) में मिलता है। मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में भी यह मिलता है।

६. ग्रैफाइट या लिखिज (Graphite)

यह अधिकतर नीस शिलाओं से प्राप्त होता है। इसका उपयोग पेंसिल का मसाला, रंग, रोगन, चिकनाई के तेल इत्यादि बनाने में होता है। यह ताप सोखने वाली धातु है अतः इससे धातु गलाने के पात्र भी बनाये जाते हैं।

इसके मुख्य उत्पादक क्षेत्र उड़ीसा में कालाहांडी, बोलनगिर, गंजाम और कोरापुट जिले में हैं। आंध्र में वारंगल, पश्चिमी गोदावरी, विशाखापट्टनम, खम्मामेत; बिहार में पालामाऊ जिले तथा मद्रास के तिरूनलवैली; राजस्थान के किशनगढ, अजमेर जिले; मैसूर के मैसूर जिले; उत्तर प्रदेश में अलमोडा और पंजाब में गुड़गांव जिले और मध्यप्रदेश के बेतूल जिले से भी ग्रैफाइट प्राप्त किया जाता है।

अध्याय १२

अधातु खनिज

(Non-Metallic Minerals)

१. अभ्रक (Mica) :

अभ्रक ग्रैनाइट नामक आग्नेय अथवा शिष्ट (Schist) और नीस (Gneiss) नामक परिवर्तित शिलाओं में सफेद या काले अभ्रक के छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में पाया जाता है। अभ्रक बड़े बड़े (Blocks or Books) टुकड़ों के रूप में भी निकाला जाता है जो साधारणत: १५ फीट लम्बे और १० फीट मोटे तक होते हैं। सफेद अभ्रक के टुकड़े धारियों के रूप में बनी हुई पैग्मैटाइट (Pegmatite) नामक आग्नेय चट्टानों में ही मिलते हैं। सफेद अभ्रक को रूबी-अभ्रक (Ruby Mica) और हल्का गुलाबीपन लिये अभ्रक को बायोटाइट अभ्रक (Biotite Mica) कहते हैं।

वर्तमान युग में अभ्रक का उपयोग अधिकतर बिजली के कारखानों में किया जाता है। प्राचीन काल से ही अभ्रक का उपयोग दवाइयाँ बनाने, सजावट करने और आभूषणों में जड़ने के लिए किया जाता रहा है। सफेद और गुलाबी रंग का अभ्रक अपनी स्वच्छता, लचक, तड़क और बिजली तथा गर्मी के लिए अचालकता तथा पारदर्शकता आदि गुणों के कारण छोटे-छोटे डायनमो (Dynamos), बिजली की मोटरों के कम्यूटेटर, बेतार के तार समुद्री विज्ञान, मोटर और हवाई यातायात, आदि में अधिक उपयोग में आता है। इसके अतिरिक्त अपनी स्वच्छता और पतली-पतली परतों में पृथक हो जाने की रुचि के कारण अभ्रक लालटेन की चिमनियों, नेत्र-रक्षक चश्मों, चूल्हों की भट्टियों के मुँह पर पोतने, मकानों की खिड़कियों, छतों डालने के सामान और सजावट के सुन्दर कागज तथा रूपरों में मिलाने के काम में लाया जाता है। यह अग्नि-प्रतिरोधक पदार्थों के समान बॉयलरों के ऊपर लगाने में भी काम आता है जिससे वे अधिक जल्दी ठंडे नहीं होते। अभ्रक को काटते समय जो चूरा बच जाता है उसे स्प्रिट में मिलाकर पतले-पतले परत बना लेते हैं। इस उद्योग को माइकेनाइट (Micanite) उद्योग कहते हैं। माइकेनाइट की चादरें किसी भी आकार और मोटाई की बन सकती है। भाप से गर्म करके दबा कर घुमाने से वे किसी भी वांछित आकार में ढाली जा सकती हैं। इन उपयोगों से अभ्रक का औद्योगिक महत्व स्पष्ट हो जाता है। युद्ध व सैनिक दृष्टिकोण से भी अभ्रक का महत्व अधिक है।

उत्पादन क्षेत्र

विश्व में अभ्रक उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान सर्व प्रमुख है। यहीं से विश्व के कुल उत्पादन का लगभग ८० प्रतिशत अच्छी किस्म का अभ्रक प्राप्त होता है। निम्न प्रकार के अभ्रक से तैयार किये गए माइकेनाइट का ६०% भाग भी भारत से ही प्राप्त होता है। वैसे तो भारत में अभ्रक बिहार, मद्रास, केरल, मैसूर, राजस्थान आदि राज्यों में मिलता है किन्तु व्यापारिक दृष्टि से प्रथम दो क्षेत्र ही मुख्य हैं। १९५७ में ६०९ हजार हंडरवेट और १९५८ में ६२६ हु० हंडरवेट निकाला गया जिसका मूल्य क्रमशः २३·१ लाख और २५·१ लाख रु० था।

बिहार में अभ्रक का क्षेत्र गया, हजारीबाग, मुंघेर और मानभूम जिलों में फैला है। यह क्षेत्र १२ मील से १६ मील चौड़ा और ६० से ८० मील लम्बा है। इसका क्षेत्रफल १,५०० वर्ग मील है। अधिकतर अभ्रक की खानें **कोडर्मा** (Kodarma), **दोमाचन्य, चाकल, धाब** तथा **तिसरी** इत्यादि स्थानों पर हैं। ये सब खानें कोडर्मा के जंगल में हैं। इस क्षेत्र से भारत का ८०% अभ्रक प्राप्त किया जाता है। इस क्षेत्र के अभ्रक को **'बंगाल अभ्रक'** (Bengal Mica or Ruby Mica), या माणिक-किस्म का अभ्रक अथवा **'बंगाल का लाल अभ्रक'** कहते हैं कारण कि यहाँ के अभ्रक के परतों के समूह का रंग फीका लाल होता है। यह अभ्रक उत्तम श्रेणी का होता है अत: इसका उपयोग विद्युत उद्योग में बहुत होता है। यह अभ्रक कलकत्ता से ही विदेशों को निर्यात किया जाता है।

अभ्रक का दूसरा प्रसिद्ध क्षेत्र आंध्र प्रदेश के नैलोर जिले में है। यह क्षेत्र भी ६० मील लम्बा और ८ से १० मील चौड़ा है। यहाँ की प्रसिद्ध खानें **कालीचेडू** और तेलाबाडू हैं। ये खानें गडूर, कवाली, रायपुर और आत्मकुर में हैं। यह अभ्रक हरे रंग का होता है। अत: यहाँ का अभ्रक बिहार के अभ्रक से हल्का होता है। इसे विद्युत अभ्रक या हरा अभ्रक (Green Mica) भी कहते है।

राजस्थान में अभ्रक शाहपुरा, टोंक, भीलवाड़ा, राजनगर, जयपुर और अजमेर जिलों में मिलता है। यहाँ का अभ्रक भी उत्तम किस्म का होता है। इसका रंग हल्का हरा और गुलाबी होता है। कुछ अभ्रक मैसूर में हसन, और केरल में नैय्यूर और पुन्नालूर में भी मिलता है।

नीचे की तालिका में अभ्रक का उत्पादन बताया गया है :—

	१९५५		१९५६	
	मात्रा (हंडरेडवेट)	मूल्य (०००) रु०	मात्रा (हंडरेडवेट)	मूल्य (००० रु०)
आंध्र	९६,१०६	१४०,३१	१०९,५८८	१५३,४२
बिहार	२८१,४३३	१३२,७९	२९२,९२३	१७७,९५
मध्य प्रदेश	—	—	९	१
मद्रास	६,००१	८७६	५,२३७	७३३
मैसूर	१००	१	४१	६
राजस्थान	१२१,३७४	१,३६९	१५२,८८७	१,७२५
योग	४६५,१०४	२९,५७०	५६०,६८५	३५६,०२

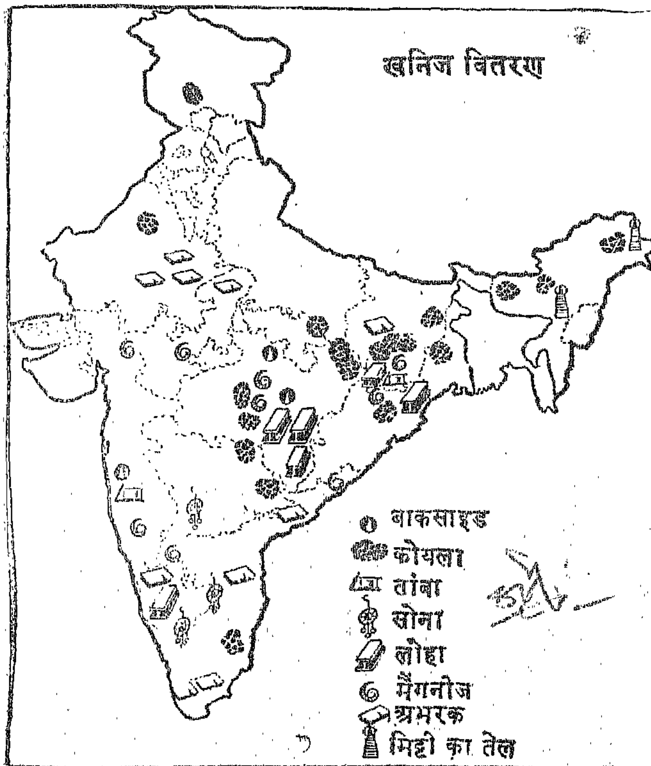
इन प्रदेशों में चट्टानों के अनियमित विन्यास के कारण अभ्रक के भंडार का यथोचित अनुमान लगाना कठिन है किन्तु ऐसा अवश्य अनुमान लगाया गया है कि अभी ऐसे भंडार हैं जिन्हें अभी तक छुआ भी नहीं गया है तथा उनसे वर्तमान उत्पादन की दर से अनेक दशाब्दियों तक अभ्रक प्राप्त होता रहेगा।

अभ्रक खनिज उत्पादन के आंकड़े अपूर्ण हैं। निम्न तालिका से अभ्रक का निर्यात प्रदर्शित होता है। निर्यात अंकों से अभ्रक उद्योग तथा व्यापार का ठीक ठीक पता लगता है :—

अभ्रक का निर्यात

१९४८-४९	३४०,००० हंडरेडवेट	५·९३ करोड़ रु०
१९५१-५२	४०७,००० ,,	१३·२१ ,,
१९५४	३३४,७९३ ,,	६·५८ ,,
१९५५	४१९,४३८ ,,	७·९२ ,,
१९५६	४२४,९५० ,,	८·७५ ,,
१९५७	४४९,७४२ ,,	८·६८ ,,

व्यापारिक दृष्टि से दो प्रकार का अभ्रक महत्वपूर्ण है : सामान्य या पोटाश अभ्रक और भ्राजाभ्रक (Magnesium Mica)। भारत के अधिकतर भंडारों से तो सामान्य अभ्रक ही प्राप्त होता है। केवल केरल में कुछ स्थानों से भ्राजाभ्रक अपेक्षाकृत कम मात्रा में प्राप्त होता है। भारत में अभ्रक की खानों में ३०,६३२ श्रमिक लगे हैं।



चित्र ८१—भारत में खनिज पदार्थों का उत्पादन

भारत में अभ्रक की मांग कम है अतः उत्पादन का अधिकांश निर्यात कर दिया जाता है। निर्यात अधिकतर कलकत्ता, बम्बई, विशाखापट्टनम और मद्रास के बन्दरगाहों

द्वारा होता है। कलकत्ते से ८० प्रतिशत, मद्रास से १४ प्रतिशत और बम्बई से १ प्रतिशत व्यापार होता है। इन बन्दरगाहों से निर्यात मुख्यतः इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमरीका को होता है। किन्तु जापान, जर्मनी, इटली, कनाडा, फ्रांस, नीदरलैंड्ज़, आस्ट्रेलिया, बेलजियम, चीन आदि भी हमारे यहाँ से अभ्रक आयात करते हैं।

२. नमक (Salt) :

भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार पृथ्वी के नीचे नमक के पर्त का मूल जल में है क्योंकि प्रारंभिक खोलों (Shells) में नमक का अंश नहीं पाया जाता है। कदाचित नमक का वृहत एवं गुप्त पर्त प्राचीन समुद्रों में उथल-पुथल होने से जम गया है और कालान्तर में भीषण आकस्मिक परिवर्तनों से ठोस नमक की चट्टानें पृथ्वी की धरातल पर आगईं। अनुमानतः ३५०,००० घन मील से अधिक भाग में नमक की चट्टानें विश्व के विभिन्न भागों में वर्तमान हैं। अनुमान लगाया गया है कि यदि समुद्र का सारा नमक निकाल लिया जाय तो १७० मील लंबा चौड़ा उतना ही ऊँचा नमक के एक विशाल पर्वत का निर्माण हो जायेगा।

नमक सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) और क्लोरीन गैस (Chlorine) का मिश्रण होता है। इसका उत्पति स्थान समुद्र अथवा खारी झीलों में होता है। नमक के उत्पादन का अधिकांश भाग-खाद, रासायनिक पदार्थ, कांच, प्लास्टिक, रंग, स्टार्च आदि उद्योगों में प्रयुक्त होता है। नमक का उपयोग मछलियाँ सुखाने, मांस जमाने, चमड़ा रंगने, सोडा बनाने, रंग को पक्का करने तथा ब्लीचिंग पाउडर बनाने में भी होता है। भोजन में भी बिना नमक के स्वाद व्यर्थ ही होता है।

उत्पादन की अवस्थायें :

नमक बनाने के लिए कुछ आदर्श अवस्थाओं की आवश्यकता पड़ती है जिनमें मुख्य ये हैं :—

(१) खारी जल मिलने की सुविधा—समुद्र तटीय भागों में या देश के आंतरिक क्षेत्रों में खारी पानी की झीलों या कुओं का सानिध्य आवश्यक है।

(२) वर्षा का अभाव तथा शुष्क ऋतु की अनुकूलता।

(३) वेगवती पवनों और कड़ी धूप का होना।

(४) अधिक वाष्पीभवन क्रिया जिसके द्वारा नमकीन जल की क्यारियों से जल वाष्प बन कर उड़ सके।

उपरोक्त अवस्थायें मुख्य चार क्षेत्रों में पाई जाती है :—

(१) गुजरात का सौराष्ट्र तट ;

(२) कोरोमंडल तट का दक्षिणी भाग अर्थात् कुमारी अंतरीप और नागापट्टम के बीच के क्षेत्र;

(३) उत्तरी आंध्र तट —नैलोर और गोपालपुर के मध्यवर्ती क्षेत्र;

(४) आंतरिक क्षेत्रों में सांभर, पचभद्रा आदि खारी जल की झीलें।

नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा कि नमक बनाने के लिए कौन-कौन सी जलवायु संबंधी अवस्थायें अनुकूल होती हैं :—

स्थान	वार्षिक वर्षा	वर्षा के दिनों की संख्या	औसत तापक्रम	औसत आर्द्रता	औसत वाष्पीकरण
द्वारिका	१३.५२ इंच	२०	७८°	७५	६८.१२
पंजाव	२७ इंच	३०	८२°	७५	८८.४०
गोपालपुर	४४.६६ इंच	६०	८०°	७५	८६.५८

उत्पादन क्षेत्र :

भारत में नमक तीन स्रोतों से प्राप्त किया जाता है :—

(१) समुद्र जल से;
(२) खारी झीलों और कुओं के जल से; तथा
(३) चट्टानों से ।

नीचे की तालिका में भारत में नमक का उत्पादन क्षेत्र और उत्पादन बताया गया है :—

राज्य	नमक के कारखानों की संख्या		१९५७ में लायसेंस प्राप्त काम करने वालों की संख्या (सरकारी कारखानों को छोड़ कर	उत्पादन क्षेत्र (एकड़ों में)		नमक का उत्पादन (लाख मनों में)	
	१९५६	१९५८		१९५६	१९५७	१९५७	१९५८ में अनुमानित
राजस्थान	४	४	९	७,६३७	७४,१६	९०.४	९२.००
गुजरात						२६४.०९	२४३.२०
सौराष्ट्र						३३०.५४	२८२.००
कच्छ	५५	७४	९२५	४६,८६८	४८०,५७	६३.७१	६२.७४
मद्रास						१५०.०६	१७०.६०
आंध्र						५६.०५	५५.८०
केरल	७५	७५	३,४०२	१७,११९	१७९,१८	१९.०७	.२०
उड़ीसा						१५.२५	१३.०३
पं० बंगाल	८	१०	४०	४,२४९	४३,८५	२.००	२.२०
बिना लाइसैंस के	—	—	—	४,४०५	५५,९२	७१.४२	७७.००
योग	१४१	१६४	४,३७७	८१,२८१	८३३.८६	९६३.९०	९९९.८९

(क) समुद्री नमक (Salt from Sea-water)

भारत में समुद्र के जल से नमक गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास और आंध्र के तटों पर बनाया जाता है । इन्हीं तटों से भारत के कुल उत्पादन का लगभग ३/४ भाग नमक का प्राप्त होता है ।

गुजरात—महाराष्ट्र

इन राज्यों में नमक बनाने के मुख्य क्षेत्र कच्छ की खाड़ी, सौराष्ट्र और सूरत में मंगलौर तक के तटीय प्रदेश हैं। खंभात की खाड़ी के पूर्व में बल्सर के निकट भोयन्दर, मंडप, ऊरन, धरसाना और छरवादा में सरकारी कारखाने हैं। इस क्षेत्र के अन्य कारखानें बम्बई शहर से ३० मील के भीतर स्थित हैं। नमक के कारखाने ऐसे स्थानों पर स्थापित किए गए हैं जो समुद्र के ज्वार भाटे के तल से नीचे हों। ऐसे स्थानों के चारों ओर एक पक्का मजबूत बांध बना दिया जाता है। इस घेरे में बाहरी तथा भीतरी जल भंडार होते हैं तथा नमक बनाने का बड़ा हौज होता है। ज्वारभाटा के समय पानी ऊँचा उठता है तो बाहरी जल भंडार भर जाता है। उसका पानी भीतरी भंडार में जाता है और यहाँ से यह जल हौजों में भेजा जाता है और सूर्य के ताप से सुखाया जाता है। जब इस जल में से चूने के सल्फेट और कार्बोनेट नामक लवणों का अवक्षेपन हो चुकता है तो शेष नमकीन जल को कढ़ाइयों में भर कर उसमें से नमक निकाला जाता है। यहाँ नमक बनाने के हौज मिट्टी से लिपे रहते हैं अत: यहाँ का नमक कुछ मटमैला होता है। इस तट पर नमक बनाने का काम जनवरी से जून तक होता है। कुछ उत्पत्ति का केवल २५% ही राज्य में खपता है, बाकी नमक मध्य प्रदेश और दकन में भेज दिया जाता है।

कच्छ की खाड़ी में जसदान, दहीगाम, वजाना, खारगोदा, उड्ड और कूदा नामक स्थानों पर भी नमक के कारखाने हैं। यहाँ की भूमि में से खारी जल १८ से ३० फीट तक नीचे और ६ फुट चौड़े कुएँ खोदकर निकाला जाता है। यहाँ नमक नवम्बर से अप्रैल तक बनाया जाता है। इन राज्यों की कुल नमक की उत्पत्ति का २० से २५% भाग कच्छ की खाड़ी से प्राप्त होता है। १९५८ में गुजरात-महाराष्ट्र से २.४३ लाख मन, सौराष्ट्र से २८८ लाख मन, और कच्छ की खाड़ी से ६३ लाख मन नमक प्राप्त किया गया।

मद्रास

पूर्वी तट पर मद्रास और आंध्र राज्य में समुद्र के तटीय भागों में नमक तैयार किया जाता है। कुल उत्पत्ति का ९०% सरकारी कारखानों और शेष गैर-सरकारी कारखानों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। सम्पूर्ण तट की १,६०० मील की लम्बाई तक नमक बनाया जाता है। यहाँ नमक बनाने का ढंग वही है जो गुजरात में है। उत्तर के जिलों में—गंजाम से कृष्णा जिले तक—नमक जनवरी-फरवरी से लेकर जून-जुलाई के अंत तक बनाया जाता है। बीच के जिलों—में कृष्णा जिले से चिंगलपुट तक—मार्च अप्रैल से अगस्त-सितम्बर तक नमक तैयार किया जाता है किन्तु धुर दक्षिण में —चिंगलपुट से मलाबार तट के भागों तक—नमक मार्च-अप्रैल से लगाकर अक्टूबर-नवम्बर तक तैयार किया जाता है। इस प्रकार मद्रास और आंध्र में गंजाम से लगाकर तूतीकोरन तक नमक तैयार किया जाता है। इस तट पर नमक बनाने वाले केन्द्र नानपदा, पेन्नूगुड्डरू, मद्रास, कड्डालोर, अदिरापटनम, तूतीकोरिन और नागपट्टम हैं। भारतीय नमक का लगभग ३० % भाग यहीं से प्राप्त होता हैं। मद्रास का उत्पादन ५५.८ लाख मन था। कुल उत्पत्ति का ८५% तो राज्य में ही व्यवहृत हो जाता है शेष मध्य प्रदेश, उड़ीसा, मैसूर और पश्चिमी बंगाल को निर्यात कर दिया जाता है।

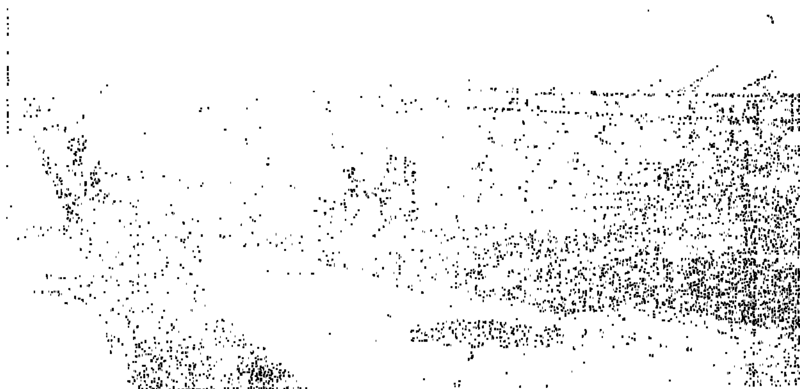
पश्चिमी बंगाल :

पश्चिमी बंगाल के तटीय भागों में समुद्री नमक बनाने के प्रयास किए गए हैं

किन्तु वहाँ के अस्वास्थ्यकर जलवायु, वर्षा की अधिकता, गंगा के ताजे पानी के सामुद्रिक खारी पानी से सम्मिश्रण होते रहने तथा तट के निकट के पानी में खारीपन कम होने के कारण और कोयले आदि के लाने की कठिनाइयों के कारण यहाँ नमक बनाने का व्यवसाय पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने पाया है। मिदनापुर के किनारों के निकट सूर्य-ताप द्वारा नमकीन पानी को सुखाकर नमक बनाने की काफी सम्भावनाएँ मौजूद हैं। यहाँ कोन्टाई तट पर नमक बनाया जाता है। बंगाल अपने उपभोग के लिए नमक अदन, पोर्ट सईद और लाल सागर के अन्य बन्दरगाहों तथा मद्रास से प्राप्त करता है।

(ख) खारी झीलों से प्राप्त नमक

झीलों तथा खारी पानी से नमक कच्छ के तट से पश्चिम राजस्थान तथा बहावलपुर राज्य में जो विस्तृत मरुभूमि फैली हुई है उसमें ही अधिक बनाया जाता है। राजस्थान में सांभर, डीडवाना, लूनकरनसर नामक खारी झीलें हैं। राजस्थान की खारी भूमि तथा झीलों के नमक की उत्पत्ति के विषय में भूगर्भ वेत्ताओं (श्री होलेंड और श्री क्रिस्त) का विचार है कि अरब सागर की ओर से कच्छ के रन पर होती हुई जो हवायें ग्रीष्म ऋतु में राजस्थान में चलती रहती हैं उनके साथ कच्छ की खाड़ी से नमक के छोटे-छोटे कण चले आते हैं। राजस्थान तक पहुँचते-पहुँचते इन हवाओं की चाल कम हो जाती है जिसके कारण ये नमक के कणों को आगे नहीं ले जा सकतीं और वे कण इस राज्य की मरुभूमि में गिर जाते हैं। यह असंख्य कण इस भाग की छोटी-छोटी नदियों—मेंढ़ा, रूपनगर, खारी और खंडेल—द्वारा बहा कर वर्षा ऋतु में साँभर जैसी झीलों में एकत्र कर दिया जाता है। यही कारण है कि यद्यपि साँभर झील छोटी-सी है किन्तु वर्षा ऋतु में इसका जल ९० वर्ग मील के क्षेत्र-



चित्र ८२—सांभर झील के निकट नमक का उत्पादन

फल में फैल जाता है। सांभर झील के तल की मिट्टी में कम से कम १२ फीट तक ५·२१% के हिसाब से नमक का अंश है। इस झील के नमक का परिमाण डा० क्राइस्ट द्वारा लगभग ५ करोड़ टन होने का कूता गया है। जब सांभर झील का पानी मार्च-अप्रैल में सूख जाता है तो झील की मिट्टी के ऊपर नमक जम जाता है। झील

में **झपोग** स्थान पर एक बहुत बड़ा बाँध बनाया गया है जिसमें पम्प द्वारा झील का पानी पहुँचा दिया जाता है। इस बड़े हौज से नमकीन पानी छोटे-छोटे हौजों और क्यारियों में पहुँचाया जाता है जहां पानी भाप बन कर उड़ जाता है और केवल नमक ही रह जाता है। डा० डनीक्लीफ (Dr. Dunnicliff) की गवेषणानुसार साँभर झील भारत में नमक का सबसे बड़ा स्रोत है। सन् १९५८ में राजस्थान में ९२ लाख मन नमक पैदा किया गया जिसमें से अधिकांश साँभर झील से ही प्राप्त हुआ। साँभर का नमक राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली और मध्य प्रदेश में खपता है।

इस झील के अतिरिक्त राजस्थान में कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ पृथ्वी के नीचे बहने वाला नमकीन जल निकाल कर उसे सुखा कर नमक बनाया जाता है पंचभद्रा में कई ३०० फीट लम्बे तथा १०-१२ फीट गहरे और ५०-६० फीट चौड़े कुएँ बना कर नमक बनाया जाता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि ३०० फीट लम्बे और ५० फुट चौड़े कुएँ के नमकीन पानी से प्रति वर्ष १५,००० मन अच्छी किस्म का नमक तैयार किया जा सकता है। डीडवाना की झील से भी लगभग इतना ही नमक प्राप्त किया जाता है। डा० डनीक्लीफ का अनुमान है कि यह क्षेत्र भारत के लिए कई वर्षों तक उम्दा नमक दे सकता है।

(ग) चट्टानी नमक (Rock-Salt)

पत्थर का नमक हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले में द्रांग और गूमा की खानों से निकाला जाता है किन्तु इसका रंग कुछ गहरा आसमानी-सा होता है और इसमें २५% अशुद्धि रहती है। अनुमान लगाया गया है कि इन खानों से यदि प्रतिवर्ष ६०,००० टन नमक निकाला जाये तो ये खानें १०० वर्ष तक के लिए पर्याप्त हैं।

उत्पादन एवं व्यापार, उपभोग आदि

भारत में प्रतिवर्ष लगभग १,००० लाख मन नमक का उत्पादन होता है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

नमक का उत्पादन

वर्ष	सरकारी उद्योग (लाख मन)	निजी उद्योग (लाख मन)	योग (लाख मन)
१९४७	१७०	५१७	६८७
१९५३	१५२	८६१	१,०१३
१९५४	१५१	७३९	८९०
१९५५	१४५	७४२	८८७
१९५६	—	—	—
१९५७	—	—	९६४
१९५८	—	—	९९९

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत नमक का उत्पादन १९५५-५६ में ८५,००० लाख मन से बढ़ा कर १००,००० मन किया जायेगा। द्रांग की खानों से उत्पादन १½ लाख मन से बढ़ कर ४ लाख मन हो जाएगा।

भारत में नमक का उपभोग अधिकतर घरेलू कार्यों में ही होता है। जबकि

इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमरीका में नमक के उत्पादन का ⅘ भाग उद्योग धन्धों के लिये होता है। स्वाभाविक है कि भारत में उद्योग धन्धों के विस्तार के साथ-साथ नमक की मांग भी बढ़ेगी। भारत में नमक का आंतरिक उपभोग निम्न प्रकार है :—

उपभोग	१९५३ (लाख	१९५४ मन)
मनुष्य, पशुओं तथा कृषि के लिए	५८६	६०९
निर्माणशालाओं में	५३	५५
उद्योग में	५१	५४
योग	६९०	७१८

इस समय पहाड़ी व सफेद पिसा हुआ नमक भारत अदन, पश्चिमी पाकिस्तान, ब्रिटेन, पूर्वी अफ्रीका और मिश्र से आयात करता है। अब हमारे यहाँ से नमक का निर्यात इंडोनेशिया, लंका, आस्ट्रेलिया, ब्रह्मा, पूर्वी पाकिस्तान, जापान, पूर्वी अफ्रीका और नेपाल आदि को भी किया जाता है।

नीचे की तालिका में नमक का व्यापार बताया गया है :—

नमक का निर्यात (लाख मनों में)

वर्ष	जापान	नैपाल	मालद्वीप मलाया आदि	इंडोनेशिया	योग
१९५५	५५.६५	११.०३	०.०	—	६६.७८
१९५६	७३.७२	७.२७	०.०४	२.६५	८३.६८
१९५७	८८.१०	७.८०	०.३६	२४.०३	११९.२९

यह निर्यात बम्बई, मद्रास और विशाखापट्टनम बन्दरगाहों द्वारा होता है।

३. हरसौठ, सेलखड़ी या चूर्ण शुल्बिज (Gypsum)—

यह एक खनिज पदार्थ की तहदार किस्म है जो अपने रवीले रूप में सैलेनाइट (Salenite) कहलाती है। यह खनिज विशेषतः ऊसर भूमि और सूखे भागों में बहुत होती है। इसका उपयोग खेतों में खाद देने में तथा चूना मिलाकर प्लास्टर-ऑफ-पेरिस, रंग, रोगन तथा रासायनिक पदार्थों में किया जाता है।

यह खनिज दो क्षेत्रों से प्राप्त होता है। भारत के कुल उत्पादन का लगभग ९०% अकेले राजस्थान से निकाला जाता है। यहाँ इसके प्रमुख उत्पादक जोधपुर डिवीजन में बाड़मेर, नागोर, मधुपुर तथा बीकानेर जिले में जमसर हैं। राजस्थान का हरसौठ बिहार के सिंद्री कारखानें को भेज दिया जाता है। राजस्थान में इसके जमाव ३० फीट की गहराई तक १,१७० लाख टन के माने गये हैं जिसमें से ३९० लाख टन जोधपुर और ७९० लाख टन बीकानेर डिवीजन में है।

दूसरा क्षेत्र मद्रास राज्य में है। यहाँ तिरूचिरापल्ली, कोयम्बटूर और रामनाथापुरम जिलों में हरसौठ निकाला जाता है।

इन दोनों क्षेत्रों के अतिरिक्त अब हरसौठ की प्राप्ति उत्तर प्रदेश (देहरादून,

गढ़वाल व टेहरी जिले) काश्मीर (ऊरी स्थान से) मध्य प्रदेश (रीवां जिला), शिमला की पहाड़ियों तथा सौराष्ट्र से भी की जाती है।

१९५६ में ८६८,००० टन और १९५७ में ९२२००० टन हरसौठ का उत्पादन किया गया जिसका मूल्य क्रमशः ५५.९ लाख रु० और ५६.७ ला० रु० था। १९५८ में यह ७६०,००० टन हुआ जिसका मूल्य ५२.२ लाख रुपया था। नीचे की तालिका में हरसौठ का उत्पादन बताया गया है :—

हरसौठ का उत्पादन

	१९५५		१९५६	
	मात्रा टन	मूल्य (००० रु०)	मात्रा टन	मूल्य (००० रु०)
मद्रास	५१,१४२	७६७	४७,६१६	६,९६
राजस्थान	६३७,६९६	३,७०५	९०१,९६७	४३,६०
उत्तर प्रदेश	१,०६७	९	—	—
योग	६८९,९०५	४४,८१	८४९,५८३	५०,५६

भारत में हरसौठ के जमाव १४४० लाख टन के अनुमान किए गए हैं। इसमें इसमें से राजस्थान में ११७० लाख टन; मद्रास में १६३ लाख टन; सौराष्ट्र में ४५ लाख टन; कच्छ में २१ लाख टन; हिमालय प्रदेश में ४ लाख टन और उत्तर प्रदेश में २ लाख टन; आंध्र में १० लाख टन हैं।

४. हीरा (Diamond)—

अत्यन्त प्राचीन समय से ही भारतवर्ष अपने हीरों के लिए प्रसिद्ध रहा है। अधिकांश बहुमूल्य हीरे भारतवर्ष में ही उत्पन्न हुए हैं। किन्तु तीन शताब्दियों से, विशेषकर जब से दक्षिणी अफ्रीका के किम्बरली प्रदेश में अति धनी व उपजाऊ हीरे की खानें मिली हैं भारत में उनका उत्पादन बहुत ही कम हो गया है।

रासायनिक संरचना में हीरक खनिज शुद्ध कार्बन का एक रूप है। यह बहुधा वर्णहीन होता है किन्तु कभी-कभी इसमे पीले-नीले अथवा काले प्रभृति रंग भी पाये जाते हैं। मूल्य अवर्ण हीरे का ही सबसे अधिक होता है। कठोरता में यह पदार्थ अद्वितीय है।

सघन रवेदार तथा गहरे रंग के हीरे 'बोर्ट' कहलाते है। काले रंग वाले 'बोर्ट' को कार्बोनाडो कहते हैं। इन जातियों में सुभाज्यता का नितान्त अभाव होता है तथा साधारण हीरों की अपेक्षा भंगुरता भी कम होती है। इस कारण से यह जातियाँ धर्षण पदार्थों के निर्माण में अति मूल्यवान होती है। अति कठोर बेधन यन्त्रों के अग्र भाग में इन्हें लगाया जाता है। हीरे की छोटी कनी कांच काटने में एवं इसका चूरा हीरे तथा अन्य मणियों को काटने तथा पालिश करने में काम आता है। धातुओं के तार खींचने में भी हीरे का प्रयोग किया जाता है।

प्राचीन काल में भारत के मध्यवर्ती प्रदेश से लेकर दक्षिण में पेनार नदी के बीच का प्रदेश हीरों के लिए प्रसिद्ध रहा है। हैदराबाद के निकट गोलकुण्डा में हीरों का बहुत बड़ा हाट लगा करता था और इसी से इस प्रदेश के रत्न 'गोलकुण्डा के हीरे' कहे जाते रहे हैं। देश के हीरकमय क्षेत्र ३ भागों में बांटे जा सकते हैं :—

(१) मध्य, (२) दक्षिणी तथा (३) पूर्वी।

इन सभी क्षेत्रों में हीरे केम्ब्रियन-पूर्व युग की फासिल-विहीन शिलाओं में पाये जाते है, जिन्हें उत्तर भारत में विन्ध्य तथा दक्षिणी भारत में कडुप्पा एवं कर्नूल शैल श्रेणी कहते है।

(१) मध्य भारतीय क्षेत्र उपज की दृष्टि से तीनों क्षेत्रों में सबसे अधिक मूल्यवान है। देश में प्राय: शत-प्रतिशत हीरे इसी क्षेत्र से प्राप्त होते हैं। अन्य क्षेत्रों में आजकल कोई नियमित रूप से उत्पादन नहीं होता, एवं कभी कभी एक दो हीरे मिल जाते है। यह क्षेत्र प्राय: ६० मील लम्बा और १० मील चौड़ा है तथा इसमें पन्ना, अजयगढ़, चरखारी, कछार, कोठी, पठार, चौबेपुर तथा बरौंधा के अंग सम्मिलित है। इस क्षेत्र की खानें तीन वर्गों में बाटी जा सकती है :—

(क) हीरकमय संपिण्डित शैल :—मध्य भारतीय क्षेत्र के हीरों के सबसे प्रधान स्रोत संपिण्डित शैल की स्तरें है जिन्हें स्थानीय लोग "मुड्ढा" कहते है। इसकी दो प्रधान स्तरें है, जिनमें से एक विध्य श्रेणी की कैमूर तथा रीवा पहाड़ियों के बीच स्थित है तथा दूसरी रीवा एवं भण्डेर की पहाड़ियों के बीच है। इनमें से कैमूर व रीवां प्रस्तर मालाओं के बीच वाला मुड्ढा अधिक उपजाऊ है। इसकी मोटाई प्राय: ५ फीट है, तथा इसमें विभिन्न जाति की स्फटिक पत्थर की बटियां तथा पिण्ड प्रचुर मात्रा में पाये जाते है जिनमें जैस्पर का बाहुल्य है। रीवां तथा भण्डेर प्रसार मालाओं के बीच वाले मुड्ढे में जैस्पर की मात्रा कम है तथा साधारण स्फटिक का बाहुल्य है।

(ख) हीरकमय अलूवियम तथा बजरी :—उप-अर्वाचीन एवं अर्वाचीन युगों में मुड्ढा तथा अन्य विन्ध्य शैल-श्रेणियों के चरण और टूटने से उत्पन्न (रेत मिट्टी) कांप तथा बजरी भी अनेक स्थानों पर हीरकमय पाई गई है।

(ग) हीरकमय अग्लोमरेट (अभिपिंड) शैल :—यह हीरों का एक प्राथमिक निक्षेप है, जो पन्ना से प्राय: १२ मील दक्षिण पश्चिम की दिशा में पाया जाता है।

(२) दक्षिणी क्षेत्र

हीरकमय प्रस्तर कडुप्पा, अनन्तपुर, कर्नूल, कृष्णा, गुण्टूर एवं गोदावरी जिलों में फैला हुआ है। इन जिलों में कर्नूल श्रेणी की चट्टानें पाई जाती हैं जिनका एक खण्ड बानगनापल्ली है जो हीरकमय है। स्थान-स्थान पर खोद कर इनमें से हीरे निकाले जाते हैं। इनसे उत्पन्न बजरी व मिट्टी (अलूवियम) भी हीरकमय होती हैं और इसी से इन जिलों की नदियों की घाटियों की मिट्टी व बजरी में बहुधा हीरे देखने में आते हैं।

कडुप्पा जिले में पैनार नदी के तट पर बेन्नूर व आसपास के स्थानों पर प्राचीन काल में हीरे की खानें रही हैं पर आजकल वहाँ उत्खनन नहीं होता। यहाँ की हीरकमय बजरी में स्फटिक, चर्ट व जैस्पर की बट्टियाँ पाई जाती हैं। इस बजरी के ऊपर काली मिट्टी की स्तरें हैं, जो ४ फीट से १२ फीट तक मोटी है। कर्नूल जिले में बानगनापल्ली में अनेकों प्राचीन खानें मिलती हैं। उत्खनन के मुख्य केन्द्र बानगनापल्ली, रामुलकोटा, लांगागोलार, धौनी एवं बिरेपल्ले रहे हैं। यहाँ संपिण्डित शैल की मोटाई ३ इंच से लेकर २४ इंच तक पाई गई है।

कृष्णा जिले में गोलापिल्ली बलुआ पत्थर के साहचर्य में हीरे पाये जाते हैं। इस शैल के टूटने-फूटने से बनी अलूवियम तथा बजरी में भी हीरे पाये जाते हैं और

इस जिले के अधिकांश हीरे की खानें अलूवियम तथा बजरी में स्थित है। मुख्य उत्पादन केन्द्रों में परतियाल और गोलापिल्ली है।

गुण्तूर जिले में कोल्लुर, मालावरम तथा माडगुला में हीरों की खुदाई होती रही है तथा गोदावरी जिले में भद्राचलम् के समीप नदी की बालू व बजरी में से हीरे निकाले जाते रहे हैं।

(३) पूर्वी क्षेत्र

यह क्षेत्र महानदी की घाटी में है तथा इसमें मुख्य उत्पादन केन्द्र सम्भलपुर व चांदा जिलों में है यद्यपि यहाँ नदी की बालू व बजरी अनेक स्थानों पर हीरकमय पाई गई है फिर भी स्थानीय विन्ध्य शैल श्रेणी व कर्नूल श्रेणी के किसी स्तर में हीरे नहीं पाये गये। नदी की पर्वतीय घाटी में शिलाओं के बीच यत्र-तत्र रुकावट पड़ जाने के कारण धार का वेग कुछ कम हो जाता है ऐसे स्थानों पर नदी में बहते हुये पदार्थ में से वे कण जो अधिक भारी होते हैं तल में बैठ जाते हैं। इस प्रकार बैठे हुये पदार्थ में हीरा सम्मिलित होता है। इन स्थानों की बजरी को धोने से हीरा व अन्य बहुमूल्य पदार्थ यथाशक्ति प्राप्त होता है। सम्बलपुर के पास हीराकुड नाम के स्थान पर, जहाँ आजकल एक विशाल बांध बनाया गया है, प्राचीन समय में कई हीरे प्राप्त हुये हैं जिनमें से सबसे बड़े रत्न का भार ६६·३ कैरट था। किन्तु आधुनिक समय में इस क्षेत्र में कहीं भी हीरे की खुदाई नहीं हुई है।

भारत में उत्पन्न कुछ प्रसिद्ध हीरे :

(१) **कोहनूर** :—भारतीय रत्नों में कोहनूर सम्भवत: सबसे अधिक प्रसिद्ध रहा है। कुछ लोगों का कथन है कि ईसा से २,००० वर्ष पूर्व यह आर्य राजाओं की सम्पत्ति थी किन्तु इसका प्रामाणिक इतिहास सन् १३०४ ई० से मिलता है, जब यह मुगल सम्राटों की शोभा बढ़ाता था। सन् १८५० ई० पंजाब के सिक्ख राजाओं से यह ईस्ट इन्डिया कम्पनी को मिला और फिर लार्ड डलहौजी ने इसे महारानी विक्टोरिया को भेंट में दिया। सम्राज्ञी विक्टोरिया को भेंट के समय इसका भार १८६ कैरट था। सन् १८६२ में इसे काट-छांट कर संवारने की चेष्टा की गयी। इससे इसका भार केवल १०६ कैरट रह गया। ऐसा विश्वास है कि यह हीरा दक्षिण में कोल्लूर की खान से प्राप्त हुआ था।

(२) **पिट हीरा** :—यद्यपि कोहनूर हीरे ने ख्याति अधिक प्राप्त की किन्तु सबसे सुन्दर, सुडौल व बड़ा हीरा 'पिट' है। इसका उपनाम 'रिजेन्ट' भी है। यह सन् १७०१ ई० में परतियाल की खान से प्राप्त हुआ था। उस समय उसका भार ४१० कैरट था। काट-छांट के बाद इसमें से १६३· कैरट भारत का एक रत्न बना जो ३० मिलीमीटर लम्बा, २५ मिलीमीटर चौड़ा तथा १६ मिलीमीटर मोटा है तथा जिसकी आकृति अंग्रेजी जौहरियों की भाषा में 'ब्रिलिएन्ट' है।

(३) **औरलोफ** :—तीसरा भारतीय हीरा 'औरलोफ' है। यह कावेरी नदी में श्री रंगमद्वीप पर बने हुए मन्दिर में ब्रह्मा जी की मूर्ति की एक आंख में लगा था। वहाँ से एक फ्रांसीसी सिपाही उसे चुरा ले गया तथा एक फ्रांसीसी जहाजी कप्तान के हाथ बेच दिया। इसका भार १९४·७ कैरट है। इसका वर्ण हल्का पीला है तथा द्युति अति दीप्त व उज्ज्वल है।

(४) **'महान मुगल'** :—इस नाम की मणि का इतिहास बहुत रहस्यमय है।

सन् १६५० में यह कौल्लूर की खान से प्राप्त हुआ था। इसका आदि भार ७८७·५ कैरट था। उस समय वेनिस का प्रसिद्ध कारीगर बोरगिर भारतवर्ष में ही था उसने इसे काट कर २४० कैरट भार की सुन्दर मणि का रूप दिया।

(५) होप :—यह हल्के रंग की आभा लिये हुये नीले रंग का हीरा है। यह भी कौल्लूर की खान से प्राप्त हुआ था। यह भी एक मन्दिर में था। फ्रांसीसी राजदूत टेवरनियर इसे यहाँ से ले गया था। इसे लुई चतुर्दश के हाथ बेच दिया। रंगीन हीरों में यह संसार भर में सबसे बड़ा है। इसका आदि भार ११२·२ कैरट था फिर ६६ कैरट हो गया और एक बार पुनः टूटने से ४४·२ कैरट मात्र रह गया।

(३) निजाम :—यह रत्न गोलकुण्डा में प्राप्त हुआ था। आदि में इसका भार २७७ कैरट का रत्न बनाया गया। यह हैदराबाद निजाम परिवार की सम्पत्ति है तथा उन्हीं के नाम पर इसका नाम रखा गया है।

अन्य प्रसिद्ध भारतीय हीरों के नाम ये हैं :—सान्सी (५३·५ कैरट), फ्लौरेन्टीन ब्रिलिएण्ड (१३९·५ कैरट), दरियायेनूर (१८६ कैपट) तथा पिगट (८२·५) कैरट)।

सन् १९२७ तक भारत में हीरे का उत्पादन नगण्य रहा। सन् १९२७ के बाद इसमें वृद्धि के लक्षण पाये गये। सबसे अधिक उत्पादन १९५० में हुआ जबकि उत्पादित हीरों का भार २,७६९ कैरट था जिनका मूल्य ४,१७,८५७ रु० प्राप्त हुआ। मूल्य की दृष्टि से सबसे अधिक उत्पादन १९५३ में हुआ था जब २,२०७ कैरट हीरों का उत्पादन हुआ जिनका मूल्य ५,६१,६१० रु० था।

नीचे की तालिका में हीरे का उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	उत्पादन	मूल्य (रु०)
१९३७	१,१७८ कैरट	५४,९७९
१९५३	२,२०७ कैरट	५६१,६२०
१९५४	१,९५५ कैरट	४७४,३२६
१९५५	१,७८७ कैरट	४०५,०००
१९५६	१,४९९ कैरट	३२७,०००
१९५७	१,७८७ कैरट	३२७,०००
१९५८	१,५३५ कैरट	३४३,०००

५. घीया पत्थर (Steatite or Soapstone or Potstone) या सेलखड़ी

टाल्क (Talc) नामक खनिज की एक अस्वच्छ किस्म है। टाल्क अभ्रक के समान परतोंदार तथा सफेद होता है किन्तु यह अभ्रक से बहुत नरम और चिकना होता है। यह खनिज अधिकांशतः मैग्नेशिया, सिलीका और जल का सम्मिश्रण होता है और मैग्नेशियमदार परिवर्तित चट्टानों में पाई जाती है। इसका उपयोग बर्तन, प्याले बनाने तथा सुन्दर खुदाई के कार्य के लिए और मेजों के ऊपरी भाग स्नानगृह और गैस के [illegible] में [illegible] है। [illegible] में कीड़ों से बचाने के लिए भी इसका उप[illegible] बनाने में भी उत्तम प्रकार की सेलखड़ी [illegible]

उत्पादक क्षेत्र :

सेलखड़ी के मुख्य जमाव राजस्थान में जैपुर डिवीजन में डोगेथा, गिसगढ़,

और भौरा-भंडारी नामक स्थानों पर है जो दौसा स्टेशन से बाहर भेजी जाती है। उदयपुर डिवीजन में यह रिखबदेव, भीलवाड़ा आदि जिलों में मिलती है।

गुजरात में ईडर में देवमौरी के पास सेलखरी मिलती है। यहाँ के जमाव २० लाख टन के आंके गए हैं। यहाँ सेलखरी की तह एक मील लम्बी और २०० फीट मोटी है।

मध्य प्रदेश में नर्मदा नदी की घाटी में गोवारी, लालपुर और थरवारा में सेलखरी मिलती है। भेराघाट और कपोंड़ से भी प्राप्त होती है।

उड़ीसा में मयूरभंज और सरायकेला रियासतों में तथा बिहार के सिंघभूम जिले में अच्छी सेलखड़ी मिलती है। अभी बिहार में टाल्क मैग्नेसाइट शिलाओं के ६० लाख टन के जमाव सिंघभूम जिले में पाथर-पहाड़ में पाये गये हैं। यह शिलायें १,८०० फीट लम्बे और ५६० फीट चौड़े क्षेत्र में है।

मद्रास राज्य में सेलखड़ी की प्राप्ति सलेम मैसूर में बलारी तथा आंध्र में कर्नूल और नैलोर जिले में होती है। उत्तर प्रदेश के हमीरपुर और झांसी जिलों में भी सेलखड़ी निकाली जाती है।

नीचे की तालिका में सेलखड़ी का उत्पादन बताया गया है :—

	१९५५		१९५६	
	मात्रा (टन)	मूल्य (०००रु०)	मात्रा(टन)	मूल्य(०००रु०)
आंध्र प्रदेश	१५९	१९	२,१६२	५३
बिहार	७,६०८	१२२	५,७८७	१५४
मध्य प्रदेश	८७०	२९	१,७९८	९२
मैसूर	१२९	३९	२०४	५९
उड़ीसा	६५	१	१८	—
राजस्थान	३३,५६२	१,२९८	३६,८८६	१,९८८
योग	४२,३९०	१,५०८	४४,८५५	२,३४७

१९५६ में ४६,८५५ टन और १९५७ में ३९,३२५ टन सेलखड़ी का उत्पादन हुआ जिसका वार्षिक मूल्य क्रमशः २४ लाख रु० और १७ लाख रु० था।

६. श्यामिज या काइनाइट (Kyanite)—

यह रत्न एल्यूमीनम और सिलीका का सम्मेलन होता है। इसकी स्वच्छ किस्म अपने सुन्दर आकाशीय नीले रंग के कारण रत्न मानी जाती है। यह खनिज प्रायः लंबे और चाकू के फल के समान रवों में मिलती है। यह खनिज भारत की परिवर्तित शिलाओं में पाई जाती है। इसकी मुख्य पेटी प्रायः ७० मील की लम्बाई में लाप्सू-बारू से लगाकर बिहार की खरसावाँ और सरायकेला रियासतों तक फैली है। यह डालभूमि तथा मयूरभंज राज्यों में भी फैली है। थोड़ा सा काइनाइट आंध्र में नैलोर जिले में; मैसूर में हसन जिले में और पंजाब में नारनौल के पास भी मिलता है। मध्य प्रदेश और राजस्थान में भी यह खनिज निकाला जा रहा है।

कायनाइट का उत्पादन

	१६५५		१६५६	
	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)
आंध्र प्रदेश	२०	१	२८६	१८
विहार	११,४८६	१,६६३	१६,८४६	४,७००
मैसूर	११	१	—	—
उड़ीसा	२२४	६	—	—
योग	११,७४१	१,६७१	२०,१३५	४,७१८

१६५६ में इसका उत्पादन २०,१३५ टन और १६५८ में २४,१७७ टन हुआ। इसका मूल्य क्रमशः ४७ लाख और ५५ लाख रु० था।

कायनाइट के भंडार विहार में ही सबसे अधिक है। अनुमान लगाया गया है कि केवल लैप्सूबारू में ही १० फीट की गहराई तक ७ लाख टन के संचित भंडार है।

उत्पादन का अंश मात्र ही देश में उष्ण रोध करने और कांच बनाने में उपयोग होता है। उत्पादन का अधिकतर भाग निर्यात कर दिया जाता है। १६५७ में २८,००० टन और १६५७ में २५,२७३ टन निर्यात किया गया जिसका मूल्य क्रमशः ६५ लाख रुपये और ७७ लाख रु० था।

७, एस्वस्टस (Asbestos)

एस्बस्टस दो प्रकार का होता है—एक जहर मोहरा (Serpentine) नामक खनिज की रेशेदार किस्म है और दूसरी एक प्रकार की हार्नब्लैंड (Hornblende) नामक खनिज की। एस्बस्टस मैग्नेशिया, सिलीका और जल का सम्मेलन होता है। यद्यपि दोनों प्रकार के एस्बस्टस में कुछ भी अंतर नहीं होता किन्तु पहले प्रकार की किस्म ही विश्व में अधिक मिलती है। यह आग्नेय शिलाओं में मिलता है।

इस खनिज की उपयोगिता उसके रेशों के चिमड़ेपन, लचीलेपन तथा उसके अग्नि-प्रतिरोधक गुण के कारण ही है। इसके रेशे रुई के समान काते और बंटे जा सकते हैं। इन रेशों से एस्बस्टस के मोटे कागज कपड़े और तख्ते तैयार किए जाते हैं। एस्बस्टस के कपड़े आग नहीं पकड़ते अतः ये प्रायः तेल या भक से जल उठने वाले अन्य पदार्थों के बक्सों में लगाने अथवा तख्ते बना कर रेल के डिब्बों और जहाजों में लगाने में काम आते हैं जिससे गर्मी के मौसम में ये तपने न पायें। एस्बस्टस के कागज अथवा चटाइयाँ बॉइलर और इंजिन इत्यादि को ढकने में काम आती है जिससे वे शीघ्र ठंडे न होने पावें। सीमेंट मिलाकर इसके खपरैल तथा छत-पाटने के तख्ते इत्यादि भी तैयार किए जाते हैं। बिजली घरों और तेजाब जैसे द्रवों को छानने में भी इसका प्रयोग होता है।

उत्पादक क्षेत्र :

एस्बस्टस का उत्पादन भारत में बिहार राज्य में सरायकेला और मयूरभंज में तथा मुंगेर जिले की परिवर्तित शिलाओं के क्षेत्र में होता है।

मैसूर राज्य में शिमोगा, कडूर, बंगलौर, हस्सन और मैसूर नामक जिलों में बहुत एस्बस्टस मिलता है। कहीं २ पर कई फीट लम्बी एस्बस्टस की लकड़ी मिलती है।

आंध्र के कडुपा जिले में (ब्रह्मनापाली और लोपटनूतुला) तथा करनूल जिले में मल्कापुरम और जोहरापुरम में अधिक एस्बस्टस निकाला जाता है।

गुजरात में ईडर और महाराष्ट्र में भंडारा; उत्तर प्रदेश में अलमोड़ा और मध्य प्रदेश में झाबुआ नामक जिलों में यह निकाला जाता है।

राजस्थान में उदयपुर डिवीजन में राजनगर में एस्बस्टस मिलता है।

सन् १६५६ में १,२३० टन और १६५८ में १,०६३ टन एस्बस्टस निकाला गया जिसका मूल्य क्रमशः ६·५ लाख रुपया और ३·१ लाख रु० था। भारत में इसके भंडार बहुत ही सीमित हैं। आंध्र राज्य के कडुपा जिले में व्यापारिक दृष्टि से उच्च श्रेणी का एस्बस्टस (Cresotile) पाया जाता है तथा इसके अनुमानित भंडार ६६० फीट की गहराई तक में २५०,००० टन तक हैं।

एस्बस्टस का उत्पादन इस प्रकार हैं :—

राज्य	१६५५		१६५६	
	मात्रा (टन)	मूल्य (०००)	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु)
राजस्थान	६७५	६७	४१८	४२
आंध्र	३२७	५२६	३८४	२८७
बिहार	१५५	३३	३६८	७७
मध्य प्रदेश	७०	४	४०	२
मैसूर	१५०	२५	२०	३
गुजरात + महाराष्ट्र	२०	३	—	—
योग	१,३६७	६५८	१,२३०	४११

अलोह-धातुयें :

अलोह धातुओं के अंतर्गत लोहे और इस्पात को छोड़कर अन्य सभी धातुएें आ जाती हैं किन्तु व्यवहार की दृष्टि से तांबा, सीसा, टीन जस्ते की साधारण किन्तु भारी धाराएें; तथा बाक्साइट, टाइटैनियम और मैग्नेशियम की महत्वपूर्ण हल्की धातुएें और सोना, चांदी आदि धातुएें सम्मिलित की जाती हैं।

१. तांबा (Copper)

तांबा प्रकृति में कई स्थानों पर अपने असली रूप में और कई स्थानों पर अन्य पदार्थों के साथ मिला पाया जाता है। यह अधिकतर आग्नेय (Igneous) और परतदार (sedimentary) चट्टानों की नसों से प्राप्त होता है। कच्चे खनिज में धातु का अंश ३ से ६ प्रतिशत तक होता है।[१] तांबा लाल भूरे रंग का होता है। शुद्ध तांबा बहुत लचीला होता है। तांबा बिजली का उत्तम संचालक (good conductor) है अतः यह कई प्रयोगों में लाया जाता है। इससे काट-पीट कर सरलता पूर्वक तार खींचे जा सकते हैं और किसी भी आकार का रूप दिया जा सकता है। इसके मुख्य गुण ये हैं—(i) यह सरलता से जोड़ा जा सकता है, (ii) कई प्रकार की

१ तांबे की कच्ची धातुएें ये हैं :—(१) मैलेसाइट (Malesite); (२) एज्युराइट (Azurite); (३) कूपराइट (Cuprite); (४) टैट्रा-हैडैराइट (Tetra-Hederite); और (५) चल्कोपाइराइट (Chelkopyrite)।

घिसावट को रोकता है, (iii) दूसरी धातुओं के साथ सरलता से मिश्रण किया जा सकता है तथा इसमें जंग नहीं लगता। इन्हीं गुणों के कारण तांबे का उपयोग बिजली के तार हल्के बल्ब, यांत्रिक शीत भंडार, टैलीविजन (Television), सामुद्रिक तार (Cable), शक्ति उत्पादक यंत्र (generators), रेडियो, टैलीफोन, रेलों के सिगनल-उपकरण, मोटरें, पानी के नल, और सिक्के बनाने में प्रयोग होता है। तांबा इंजिनों के अग्नि-सन्दूकों (fire-boxes), बोयलर तथा स्थिर यंत्रों के भाप के नलों और लकड़ी के जहाजों के मढ़ने में तांबे की कीलें, रिपटें (Rivets) और चादरें बनाने के लिए भी प्रयुक्त होता है। तांबे से पारिवारिक बरतन आदि बहुत बनाये जाते हैं। इसे अन्य धातुओं के साथ भी मिलाया जाता है। यथा[1]—

तांबा + जस्ता = पीतल (Brass)
तांबा + टिन = कांसा (Bell-metal)
तांबा + लोहा = जंग रहित स्पात (Stainless Steel)
तांबा + एल्यूमीनियम = ड्रूराल्यूमिन (Duralumine)
तांबा + निकल = मोनल धातु (Monal metal)
तांबा + टिन + सुरमा = बैबिट धातु (Babbit)
तांबा + कांसा = जर्मन-सिल्वर या गिलट चांदी (German Silver)
तांबा + सोना = नकली-सोना (Rolled-Gold)

उत्पादक क्षेत्र :

तांबे का उत्पादन इस समय मुख्यत: दो प्रदेशों से होता हैं सिंघभूम और नैलोर। किन्तु इनके अतिरिक्त अब तांबे की कई खोजें सिकिम, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, आदि राज्यों में भी की गई हैं। अनुमान किया जाता है कि हिमालय की बाहरी श्रेणी के कुल्लू, कांगडा, नैपाल, भूटान और सिक्किम प्रदेशों में भी तांबे के विस्तृत भंडार पाये जाते हैं किंतु यातायात की असुविधा के कारण तथा खपत के केन्द्रों से दूर होने से इनमें खान खोदने के उद्यम ने विशेष प्रगति नहीं की है। भारत में तांबे की अयस के भंडार ३३.७ करोड़ टन के अनुमानित किए गए हैं जिसमें औसतन २·५ प्रतिशत तांबा है।

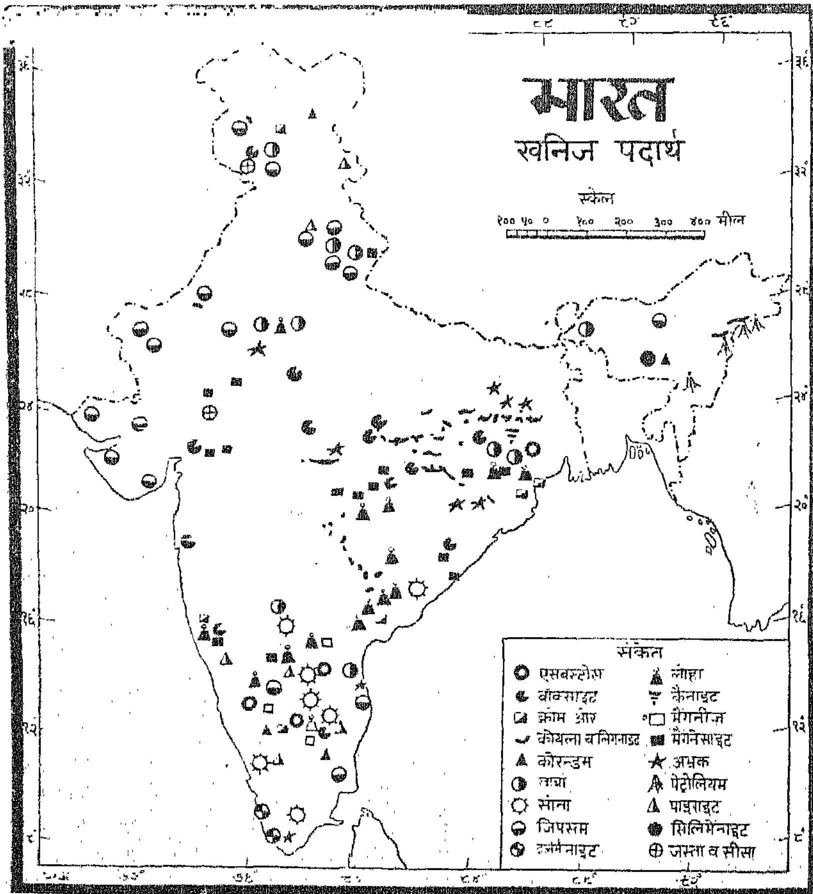
बिहार—

तांबे की महत्वपूर्ण खानें बिहार राज्य में सिंहभूम जिले में है। इनमें ३१ लाख टन तांबा होने का अनुमान है। इस खनिज में २.९% तांबा होता है। यहाँ तांबे का मुख्य क्षेत्र बिहार-उड़ीसा में सिंहभूम जिले में लगभग ८० मील लंबी पेटी में स्थित हैं जो कैरा, सेरोकोल, खरसांवा आदि भागों में होती हुई दक्षिण-पूर्व दिशा में चली गई है। यहाँ की मुख्य खनिज सोनामाखी (Copper-Pyrites) है। इसके साथ तांबा, लोहा और निकल के गंधकदार मिश्रण भी मिलते हैं। यहाँ खनिज परिवर्तित शिलाओं —ग्रैनाइट—की तहों में अनियमित रूप से मिलती है। तांबे की इन पट्टियों या रगों की औसत मौटाई ५ से ७ इंच तक है किंतु कुछ विशेष पट्टियाँ २ फीट तक मोटी हैं। अधिकतर खनिज के कण इस प्रकार बिखरे मिलते हैं कि उनका निकालना निरर्थक होता है। जहाँ तांबे की खानें निविष्ट हो गई हैं—जैसे मातीगरा और मोसाबानी में – वहाँ वे खानें स्थापित करके निकाली जा रही हैं। तांबे के इस क्षेत्र में अधिक लाभदायक और प्रसिद्ध खान मोसाबानी (Mosabani),

१ चतुर्भुज मामोरिया : आर्थिक और वाणिज्य भूगोल, १९५७, पृ० ५६८-५७०.

धोबानी (Dhobani) और राखा (Rakha) हैं। यहाँ तांबा निकालने का कार्य 'इंडियन कॉपर कॉरपोरेशन' (Indian Copper Corporation) कंपनी कर रही है। इस कंपनी की मुख्य खानें और कारखाना घाटशिला नामक स्थान के निकट हैं। यहाँ लगभग २,४०० फीट की गहराई पर कार्य हो रहा है। घाटशिला के निकट ही मौभंडार में कम्पनी का तांबे के खनिजों को शोधने के लिये कारखान है।

सिकम :—इस क्षेत्र की सबसे अच्छी खान रांगपो के निकट भोटांग में है जो कि निकटतम रेलवे लाइन से १६ मील दूर है। भोटांग की खान में तांबे के खनिज की परत १० से १५ फीट तक मोटी है जिसमें ३ से ४ प्रतिशत तक तांबा निकल सकता है। इसके अतिरिक्त डिक्चू, रोटोक, सिरवौंग, गिसनी, जुगूड्डम इत्यादि स्थानों पर भी तांबा निकलने की आशा है। चूंकि इन क्षेत्रों का अभी नियमित रूप से पर्यवेक्षण नहीं किया गया है इसलिये यह नहीं कह सकते कि यहाँ की स्थिति क्या है।



चित्र ८३—भारत के खनिज पदार्थ

उत्तर प्रदेश :—गढ़वाल जिले के धानपुर और पोखरी, अल्मोड़ा जिले में बागेश्वर और देहरादून जिले में काल्सी में भी तांबे की खानें हैं। परन्तु यहाँ भी कोई पर्यवेक्षण कार्य न होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि इनसे कितना तांबा निकल सकता है।

राजस्थान :—खेतड़ी नामक स्थान पर लगभग दस शताब्दियों से कुछ तांबा निकाला जाता है। यहाँ भी अब तक बरमा डालकर कोई परीक्षा नहीं की गई है। हाल में ही एक भूगर्भ पर्यवेक्षण से प्रकट हुआ है कि प्राचीन काल से ही, यहाँ तांबा निकाला जा रहा है जो कि कई स्थानों पर ३०० फीट की गहराई तक प्राप्त है। कई स्थानों पर अब भी हीरक थरमों द्वारा जाँच करने की आवश्यकता है। अलवर जिले के दरीबा नामक स्थान में भी तांबा पाया जाता है। यह स्थान राजगढ़ स्टेशन से लगभग २० मील दूर है। यहाँ भी बहुत प्राचीन काल से यह काम होता आया है। परन्तु नियमित रूप से खोज करने की यहाँ भी आवश्यकता है।

आन्ध्र प्रदेश :—इस राज्य में दो स्थानों पर नियमित रूप से खोज करने की आवश्यकता है। इनमें से एक स्थान अग्नीगुंठल है (जो गुन्टूर जिले में विनुकोंडा नगर से ६ मील उत्तर है) दूसरा स्थान गरी है जो करनूल जिले में है। यहाँ भी बरमा डालकर परीक्षा नहीं की गई है इसलिये यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि यहाँ कितना तांबा उपलब्ध है।

उत्पादन एवं व्यापार :

तांबा पैदा करने वाले देशों में भारत का स्थान तेरहवाँ है। सन् १९५३ में विश्व में तांबे की धातु का कुल उत्पादन ३०,६८,००० टन था जबकि भारत का उत्पादन इस वर्ष ३६०,३०८ टन हुआ। १९५५-५६ में कुल ७,४५५ टन तांबा प्राप्त हुआ। १९५६ में तांबे की अयस का उत्पादन ३८६,००० टन और १९५७ में ४०४,००० था जिसका मूल्य क्रमश: २८९ लाख और २६५ लाख रु० था। १९५८ में उत्पादन ४०५,००० टन और मूल्य २२६ लाख रुपया था।

तांबे के अयस का उत्पादन

	१९५५		१९५६	
	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)
मोसाबानी	२७०,७५०	१९७,५२	२९२,८०२	२१९,८३
बड़िया	८२,३०४	६०,०७	९०,४२८	६७,८९
सूरदा	—	—	२,९६६	२,०९
योग	३५३,०५४	२५७,५९	३८६,१९६	२८९,८१

हमारा वार्षिक उत्पादन ७,२०० से ७,४०० टन का है किन्तु हमारी आवश्यकता २५-३० हजार टन वार्षिक है। यह आवश्यकता इस प्रकार है :—

बिजली के तारों में	—	१२-१५ हजार टन
बर्तन उद्योग	....	८ ,,
सुरक्षा, रेलवे और अन्य आवश्यकतायें	५-७	,,

अस्तु, आवश्यकता पूर्ति के लिए हमें प्रति वर्ष संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा,

रोडेशिया, जापान पुर्तगाली पूर्वी अमरीका आदि देशों से तांबा आयात करना पड़ता है। १९५७ में ९८५,३१२ हंडरडवेट तांबा आयात किया गया जिसका मूल्य १८ करोड़ रु० था किन्तु सं० का० अमरीका, ब्रिटेन आदि देशों की तुलना में हमारी खपत बहुत कम है। सं० राज्य में प्रति व्यक्ति पीछे तांबे की खपत १८ पौंड है, ग्रेट ब्रिटेन में १६ पौंड किन्तु भारत में यह मात्रा केवल ४ औंस है।

नीचे की तालिका में तांबे का उत्पादन और आयात बताया गया है :—

वर्ष	उत्पादन (टनों में)	आयात मात्रा (टनों में)	मूल्य करोड़ में
१९५१-५२	७,०३९	६,७९८	१·९५
१९५२-५३	५,४४४	२०,५९०	७·६३
१९५३-५४	५,६४०	८,५३२	२·७१
१९५४-५५	७,१८१	२६,९७९	८·७४
१९५५-५६	७,४५५	१८,१२२	८·१७

२. सीसा (Lead)

सीसा प्रायः चांदी और जस्ते के साथ मिला हुआ पाया जाता है। यह मौलीबिडनम, वैनेडियम, तांबा, सोना और सुरमे के साथ भी मिला हुआ पाया जाता है। सीसा तीन प्रकार की कच्ची धातुओं से प्राप्त होता है जिनमें धातु का प्रतिशत ६८ से ८६ तक होता है।[1] सीसा प्रायः परतदार चट्टानों की नसों के रूप में पाया जाता है। लोहे के बाद सीसे का ही उपयोग अधिक होता है क्योंकि यह मुलायम और भारी धातु होती है जो ६२१° फा० ताप पर पिघलती है। इसे सरलता से दूसरी धातुओं के साथ मिलाया जा सकता है। यह बिजली का कुसंचालक है। इसका उपयोग रेल के एंजिन, मोटर कार, कारतूस, बैटरी, हवाई जहाज, टाइपराइटर, वाद्ययंत्र, मशीनें, छापे खाने के टाइप, बन्दूक की गोलियाँ, बिजली के तार, रंग-रोगन, संवाद-वाहक तार, तथा अन्य रासायनिक पदार्थों के बनाने में होता है। सीसे का सबसे अधिक उपयोग लोहे और इस्पात उद्योग में होता है।

उत्पादक क्षेत्र :

देश में सीसे का उत्पादन बहुत ही कम होता है। यद्यपि बिहार के हजारी बाग जिले में, राजस्थान के उदयपुर, जयपुर जिलों में, तथा मध्य प्रदेश के ग्वालियर, दत्तिया और दुर्ग जिलों में सीसे की खानें पाई जाती है तथापि व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक ढंग पर चलने वाली खानें केवल राजस्थान में उदयपुर से २५ मील दूर जावर स्थान में है। इसमें से सीसा निकालने का कार्य मेसर्स 'मैटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लि०' (Metal Corporation of India Ltd) करते है। खान से सीसा और जस्ता दोनों मिला हुआ निकलता है जिसे बाद में साफ करके अलग-अलग कर लिया जाता है। कच्ची अयस में धातु का अंश २ से ४% तक पाया जाता है। यद्यपि जावर में मोछिया मगरा, बरोड़ मगरा और जावर माला पहाड़ियों में सीसा और जस्ता पाया जाता है किन्तु कार्य अभी केवल मोछिया मगरा में ही किया जा रहा है। यहाँ के जमाव इस प्रकार हैं :—

---

१. ऐंग्साइट (Agesite)—धातु प्रतिशत ६८%; (२) कैरूसाइट (Cerrusite) ७७% और (३) गैलिना (Galena) ८८%।

'ए' ग्रेड की अयस ७००,००० टन जिसमें सीसा ५·२५% तथा जस्ता ७·२५ प्र०श०
'बी' ग्रेड की अयस २०,०००,००० ,, ,, १·६% ,, ३·८ ,,

इन दोनों किस्मों के अतिरिक्त लगभग ८० लाख टन निम्न श्रेणी के जमावों का भी अनुमान लगाया गया है जिनमें धातु की मात्रा ३ प्रतिशत तक है।

इस समय देश में लगभग २,४०० टन सीसा प्रतिवर्ष तैयार होता है जबकि सीसे की मांग १५,००० से १७,००० टन तक की होती है।

नीचे की तालिका में सीसे की माँग, उत्पादन और आयात बताया गया है :—

वर्ष	मांग (टन)	उत्पादन (टन)	आयात (टन)	(मूल्य करोड़ रुपये)
१९५१-५२	८,७०९	१,०००	७,७०९	१·७१
१९५२-५३	४,४६४	१,११४	३,३५०	०·६६
१९५३-५४	९,२६७	१,८४५	७,४२२	०·९६
१९५४-५५	१२,०५८	१,८८१	१०,१७७	१·४२
१९५५-५६	१५,४१७	२,१४३	१३,२७४	२·०७

भारत में सीसे का आयात मुख्यत: सं. रा. अमरीका, आस्ट्रेलिया, मैक्सिको और जापान से होता है।

३. जस्ता (Zinc)

जस्ता भी प्रकृति में शुद्ध रूप में नहीं मिलता। यह सीसे की भांति परतदार चट्टानों की नसों में मिलता है। जस्ता अधिक मात्रा में जस्ते की सल्फाइड (Zinc-Sulphide) से प्राप्त होता है किन्तु यह अन्य कच्ची धातुओं से भी—कैलमीन, जिंकाइट, विलेमाइट, हैमीमोरफाइट—प्राप्त होता है।

जस्ता अधिकतर लोहे को मोर्चे से बचाने के लिए पॉलिश करने के काम में आता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग रंग-रोगन बनाने, बिजली के शैल बनाने, बैटरियाँ बनाने, मोटर के पुर्जे बनाने, दवाइयाँ, बॉयलर की तख्तियाँ, फोटो-एनग्रेविंग आदि करने में होता है।[1]

सीसा और जस्ता की अयस और उसके कन्संट्रेट का उत्पादन—

	१९५५		१९५६	
	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)
अयस निकाली गई	५८,१०९	७२०	७९,६५९	१,०६३
अयस साफ की गई	४९,६००	६१५	७६,८८०	१,०२२
सीसा का कन्सन्ट्रेट	३,०६३	७६४	३,६०९	९७६
जस्ते का कन्सन्ट्रेट	४,८६५	१,६५०	६,८८०	२,३१६

उत्पादक क्षेत्र—

हमारे जस्ते के साधन भी सीमित है। अब तक व्यापारिक आधार पर चलने वाली सिर्फ एक खान है जो केवल राजस्थान में उदयपुर के निकट है। यहाँ जस्ता और

१. Case & Bergsmark, College Geography, 1956, p. 700.

सीसा मिला-जुला निकलता है और इसे भी 'मेटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया' निकालता है। देश में इस समय जस्ता तैयार नहीं किया जाता और जावर से निकलने वाला जस्ते का खनिज पदार्थ विदेशों को भेजा जाता है। इसके बाद जस्ते का पुनः आयात किया जाता है।

उत्पादन व व्यापार—

हमारे यहाँ प्रतिवर्ष खनिज जस्ता लगभग ६,००० टन निकलता है। इसमें ५० से ५४% तक जस्ता धातु होती है। मैटल कॉरपोरेशन अपने कारखाने में जस्ता तैयार करने की मशीनें लगा रहा है जो आशा है कि प्रतिदिन ५०० टन खनिज जस्ते को गलाकर जस्ता तैयार करेगी। १९५६-५७ में १२ हजार टन खनिज जस्ता निकालने की आशा है। हमारे देश में जस्ता तैयार न होने के कारण हमारी सभी आवश्यकता विदेशों से जस्ता मंगाकर पूरी की जाती है। नीचे की तालिका में हमने जस्ते का जो आयात किया है, उसके आँकड़े इस प्रकार है :—

वर्ष	आयत (टन)	मूल्य (करोड़ रुपयों में)
१९५१-५२	२१,०९१	७·३५
१९५२-५३	२३,०५७	४·५४
१९५३-५४	२९,७७९	३·५९
१९५४-५५	४४,४९३	५· ९
१९५५-५६	२९,०७१	४·१५

ऊपर के आँकड़ों से प्रगट होता है कि इस समय हमारी जस्ते की आवश्यकता लगभग ३५-४० हजार टन प्रतिवर्ष है। १९६०-६१ के अन्त तक इसके बढ़कर ५० हजार टन के हो जाने की आशा है। इसका कारण यह है कि इस्पात की चादरों पर जस्ता चढ़ाने के लिये इसकी अधिक परिमाण में आवश्यकता होगी।

जस्ते का महत्व बढ़ते जाने के कारण जस्ता विशेषज्ञों की एक समिति बनाई गई जिसका उद्देश्य जावर की खानों से निकलने वाले खनिज जस्ते को गलाने की भट्टी चालू करना था। इस समिति ने कहा है कि व्यापारिक आधार पर भट्टी चलाने के लिये कम से कम १ हजार टन खनिज पदार्थ प्रतिदिन के हिसाब से कई वर्षों के लिये प्रवन्ध कर लेना चाहिए। मैटल कारपोरेशन इन खानों का ऐसा विकास कर रहे हैं कि यहाँ से १ हजार टन खनिज जस्ता प्रतिदिन निकाला जासकेगा जिसकी सहायता से १०-१२ हजार टन खनिज पदार्थ गलाने वाली भट्टी चालू हो सकेगी। आशा है कि इस भट्टी में जस्ता तैयार करने का काम १९६०-६१ तक शुरू ही जायगा और उसी समय तक चम्बल नदी योजना से बिजली भी मिलने लगेगी। इस भट्टी के स्थापित हो जाने के बाद भी बहुत सा जस्ता मंगाना पड़ेगा। परन्तु इसके बाद देश में ही जस्ता तैयार करने का काम तभी हाथ में लिया जासकेगा जबकि जावर की खानों के निकट की अन्य पहाड़ियों में भी दूसरी नई खाने निकल आयेगी। जस्ता साफ करने का कारखना उदयपुर से ६ मील दूर उदयसागर के निकट लगाया जा रहा है।

४. टिन (Tin)

टिन कैसीटराइट (Cassiterite) नामक कच्ची धातु से प्राप्त होता है जो आग्नेय चट्टानों में पाई जाती है। साधारणतः टिन कठोर होता है। इससे साफ कर

शुद्ध धातु प्राप्त की जाती है। मानव जितनी धातुओं का प्रयोग करता है उसमें संभवतः टिन ही सबसे कोमल और सबसे उपयोगी धातु है। यह कोमल और पीट कर बढ़ाने योग्य होने के कारण अधिकतर चादरें, कनस्तर आदि बनानें और इस्पात पर रोगन करने के काम आता हैं। इसके हथियार, बरतन और औजार भी बनाये जाते हैं। कांसा बनाने के लिए इसके तांबे के साथ और सोल्डर (Solder) बनाने के लिए तांबे और सीसे के साथ तथा बैबिट धातु बनाने के लिए सुरमा के साथ मिलाया जाता है। इस धातु का अधिकाधिक उपयोग यातायात के साधनों और कई उद्योगों में होता है। सच तो यह है कि यह मानव के जन्म से मृत्यु तक उसका साथ देता है। (It accompanies man in every walk of life literally from craddle to the grave)[१].

टिन के क्षेत्र, उत्पादन एवं व्यापार :

भारत में टिन की खानों का पता बिहार के गया और हजारीबाग जिलों में लगा है। यहाँ नारंगों नामक स्थान पर बरमे डाल कर ६०० फीट की गहराई तक टिन का पता लगाया गया है किन्तु गहराई बढ़ने पर टिन का अंश कम होता जाता है अतः टिन निकालना आर्थिक रूप से लाभदायक नहीं हैं। चट्टाण्ड, सीमराताल, और चक्करबंधा स्थानों पर भी टिन की खानों का पता लगा है।

भारत में प्रतिवर्ष ४,००० टन टीन और १२,००० टन टिन की चादरों की मांग रहती है। यहाँ बिजली, टीन के डिब्बों और दवाई निर्माण उद्योग में टिन की सबसे अधिक खपत होती है अतः मलाया, सिंगापुर आदि देशों से टिन आयात किया जाता है।

नीचे की तालिका में टिन का आयात बताया गया है :—

वर्ष	आयात (मात्रा टन)	मूल्य (करोड़ रु०)
१९५१-५२	३,६५६	४.८९
१९५२-५३	२,०२८	२.४९
१९५३-५४	३,१४७	२.०९
१९५४-५५	३,९३५	३.८२
१९५५-५६	३,९२३	३.५८

५. बाक्साइट (Bauxite)

बाक्साइट धातु का महत्व इसलिये है कि इससे अल्यूमीनियम प्राप्त किया जाता है। बाक्साइट मिट्टी के रंग की होती है और प्रायः लाल या पीले लोहे के उज्जमय भस्म (Hydrated Oxide) के साथ मिली हुई पाई जाती है। लोहे का अंश कम होने पर ही बाक्साइट अल्यूमीनियम निकालने के उपयुक्त होती है वरना गेरु का अंश बहुत अधिक होने पर वह पत्थर लैटेराइट (Laterite) के नाम से पुकारा जाता है।

बाक्साइट में धातु का अंश ५० से ६५ प्रतिशत तक होता है। बाक्साइट का

१ Spurr and Wormser : Marketing of Metals and Minerals, 1925, pp. 161-182.

अधिकतर प्रयोग अल्यूमीनियम बनाने में तो होता है किन्तु इसके अतिरिक्त फिटकरी और धातु सोधने की ईटें व सीमेंट तैयार करने पत्थरों को काटने घिसने और उन पर पालिश करने वाले पदार्थों के बनाने में किया जाता है। इससे बरतन, फर्नीचर, तार आदि भी बनाये जाते हैं। यह धातु बहुत ही कोमल होती है अतः इससे सरलता पूर्वक दूसरी वस्तुएँ बनाई जाती है। यह गर्मी का उत्तम संचालक है। इसको सरलता पूर्वक तांबा और अन्य धातुओं से मिलाकर मिश्रण बनाया जाता है। इससे हवाई जहाज, विज्ञान के यंत्र, रोगन, जीवन-रक्षक नौकायें, चादरें, रेल के डिब्बे, बिजली के सामान तथा अस्त्र-शस्त्र आदि भी बनाये जाते हैं।

बाक्साइट की खानें बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, गुजरात, मद्रास, मैसूर और काश्मीर में पाई जाती है। इन सब में मिलाकर २५ करोड़ टन बाक्साइट होने का अनुमान है। प्रदेशों के अनुसार इसकी स्थिति इस प्रकार है :—

बिहार :—इस राज्य में बक्साइट की सबसे महत्वपूर्ण खानें रांची और पालामऊ जिलों में है। उच्चकोटि के खनिज में लगभग ५० प्रतिशत अलूमिनियम ऑक्साइड होता है। बागड़ू जिले में धातु की ५२ से ६० प्र० श० तक है। इस खनिज पदार्थ का अनुमान लगभग १ करोड़ टन है।

उड़ीसा :—कालाहंडी और सम्बलपुर जिलों में बाक्साइट की कुछ खानें है। समस्त राज्य में अलूमिनियम बनाने योग्य खनिज पदार्थ ४ लाख टन से भी कम उपलब्ध होने का अनुमान है। यहाँ बाक्साइट १५ फीट ऊँची और ४५०-५०० फीट लंबी पट्टी में मिलती है जिसमें धातु का प्रतिशत ६२५ तक है।

मध्य प्रदेश :—बिहार के बाद बाक्साइट की खानों की दृष्टि से मध्यप्रदेश अधिक सम्पन्न है। यहाँ सरगूजा, रायगढ़, बिलासपुर, बालाघाट, सिऊनी, मंडला, जशपुर, भोपाल, रीवाँ और कटनी क्षेत्रों में इसकी खानें है, जिनमें अलूमीनियम बनाने के उपयुक्त अच्छे खनिज पदार्थ का अनुमान लगभग ७० लाख टन है।

गुजरात :—बाक्साइट की सबसे महत्वपूर्ण खानें सौराष्ट्र के कोल्हापुर और हाल्हार जिलों में धांगरवाडी में है। यद्यपि इन क्षेत्रों की विस्तार से छानबीन नहीं की गई है तथापि अनुमान है कि यहाँ ८० लाख से १ करोड़ टन से अधिक बाक्साइट उपलब्ध हो सकता है जिसमें धातु की मात्रा ५५ से ६० प्रतिशत तक है। यहाँ खैरा जिले के कपदवंज, बम्बासडूंगरी, सूरत और राजपीपला आदि जिलों में भी बाक्साइट मिलता है।

महाराष्ट्र—यहाँ बाक्साइट पूना, उत्तरी सतारा, थाना और रत्नागिरी जिलों में मिलता है।

मद्रास :—सलेम जिले की शिवराय पहाड़ियों में बाक्साइट की महत्वपूर्ण खानें है। इनमें सब प्रकार के बाक्साइट का अनुमान लगभग ६०-७० लाख टन है। परन्तु अलुमीनियम बनाने के योग्य खनिज पदार्थ लगभग २० लाख टन ही होगा। यहाँ बाक्साइट ३०-४० फीट की मोटाई में मिलता है इसमें धातु का अंश ४५ से ६० प्रतिशत तक होता है।

मैसूर :—बाबा बूदन की पहाड़ियों में बाक्साइट की छोटी खानें है। इसके अतिरिक्त बेलगांव क्षेत्र में भी कुछ खाने है जिनमें लगभग ७ लाख टन बाक्साइट का अनुमान है।

काश्मीर :—अनुमान है कि पूंच और रियासी क्षेत्रों की खानों में लगभग

२० लाख टन बाक्साइट उपलब्ध है जिसमें धातु का प्रतिशत ७० तक है। परन्तु यह खनिज पदार्थ कास्टिक सोडा में आसानी से नहीं घुलता। इसलिये बेयर प्रणाली द्वारा इससे अलूमीनियम तैयार करना कठिन है। डा० वाडिया के अनुसार जम्मू की कोटली तहसील में १ से ५ फीट की मोटाई वाली पट्टी में बाक्साइट पाया जाता है इसके मुख्य क्षेत्र बन्दीली, धानवान, कमरोती, नेवाता, शीशेतार और पलाना गाँव हैं। यहाँ हजारों फीट बाक्साइट फरातल के निकट ही पाये जाने का अनुमान है। इनका जमाव ६ से ८ लाख टन का माना जाता है।

बाक्साइट की खानें देश में यत्र-तत्र बिखरी हुई है। भविष्य में और कई नई खानों के मिल जाने की संभावना है।

बाक्साइट का उत्पादन

राज्य	१९५५		१९५६	
	मात्रा (टनों में)	मूल्य (००० रु० में)	मात्रा (टनों में)	मूल्य (००० रु० में)
बिहार	१४,१७७	४७६	५७,६२३	५०२
गुजरात+महाराष्ट्र	१५,०४६	१२०	१४,५७६	१२०
मद्रास	२,०२०	६५	१,६०६	५०
मध्यप्रदेश	२२,९२९	१४०	१७,४२०	१४६
योग	८१,१७२	८०१	९१,२२५	८१६

भारत में सब प्रकार के बाक्साइट के जमाव २,५०० लाख टन है, जिसमें से लगभग ३५० लाख टन उच्च कोटि का बाक्साइट है।[1] इससे १५० साल तक ५०,००० टन अल्यूमीनियम का वार्षिक उत्पादन हो सकता है। भारत में बाक्साइट के ये जमाव इस प्रकार है:—

१. विश्व में बाक्साइट धातु के जमाव इस प्रकार से अनुमानित किए गए हैं:
(कुल जमाव १५,००० लाख टन)

भारत	२,५०० लाख टन	(धातु प्रतिशत ६०)
सं० राज्य अमरीका	५० लाख टन	(,, ,, ५०)
बृटिश गायना	६५ लाख टन	(,, ,, ६१)
जमेका	३१५ लाख टन	(,, ,, ५०)
सुरीनाम	५० लाख टन	(,, ,, ५९)
घाना	२३० लाख टन	(धातु प्रतिशत ५३)
ब्राजील	१५० लाख टन	(,, ,, ६१)
यूगोस्लाविया	१०० लाख टन	(,, ,, ६०)
फ्रांस	६० लाख टन	(,, ,, ६१)
यूनान	६० लाख टन	(,, ,, ५७)
फ्रांसीसी प० अफ्रीका	५० लाख टन	(,, ,, ६०)
अन्य	१२० लाख टन	(,, ,, ४७)

मध्य प्रदेश	१५१ लाख टन	मद्रास	२० लाख टन
पूर्वी रियासतें	८५.८ ,,	काश्मीर	१० ,,
बिहार	५२.३ ,,	भोपाल	२.५ ,,
गुजरात+महाराष्ट्र	३२.३ ,,		

१९५६ में ८१,२२५ टन और १९५७ में ८६,०६१ टन बाक्साइट का उत्पादन किया गया जिसका मूल्य क्रमश: ८१८,०००रु० और ९०६,००० रु० था।

उत्पादन और व्यापार

देश में इस समय दो कारखानें अल्युमीनियम का उत्पादन करते है। इनकी सम्मिलित उत्पादन क्षमता ७,५०० टन वार्षिक है। निम्न तालिका में अल्यूमीनियम की मांग, उत्पादन और आयात बताया गया है:—

वर्ष	कुल खपत (टन)	उत्पादन (टन)	आयात (मात्रा-टन)	आयात (मूल्य-करोड़ रु०)
१९५१-५२	१३,१८८	३,९०४	९,२८४	३.१७
१९५२-५३	९,६८९	३,६२०	६,०६९	२.४१
१९५३-५४	९,१०२	३,६४७	५,४५५	१.८१
१९५४-५५	१७,८५६	५,४७६	१२,३८०	३.६०
१९५५-५६	२३,१३२	७,३३३	१५,८०५	४.७७

इस समय विभिन्न रूपों में हमारी अलूमीनियम सम्बन्धी आवश्यकता का अनुमान लगभग २५ हजार टन वार्षिक है। द्वितीय योजना की अवधि समाप्त होने तक यह आवश्यकता बढ़कर ३५-४५ हजार टन तक हो जायेगी। इन आंकड़ों से प्रगट होता है कि हमारी आवश्यकता और उत्पादन क्षमता के बीच बहुत बड़ा अन्तर शेष है। इसलिये द्वितीय योजना के अन्त तक अलूमिनियम का उत्पादन लक्ष्य ३० हजार टन रखा गया है। उत्पादन क्षमता बढ़ाने के दो लाइसन्स दिये जा चुके हैं। इनमें से एक तो १० हजार टन की क्षमता वाला नया कारखाना लगाने के लिये है जो हीराकुण्ड में स्थापित होगा। दूसरा लाइसेन्स एक पुराने कारखाने के विस्तार करने के लिये दिया है जो इस समय ५ हजार टन वार्षिक उत्पादन करता है। इन लाइसेन्सों के फलस्वरूप हमारी उत्पादन क्षमता बढ़कर २० हजार टन हो जायगी।

अलूमीनियम उद्योग को आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर चलाने के उद्देश्य से एक विशेषज्ञ समिति बनाई गई थी। इसका उद्देश्य सरकार को यह सलाह देना था कि बाक्साइट गला कर अलूमीनियम तैयार करने के कारखाने किन स्थानों पर खोले जाने उपयुक्त होंगे और उनका आकार कम से कम कितना बड़ा होना चाहिये। इस समिति ने सिफारिश की है कि १०-१० हजार टन क्षमता के दो कारखाने शीघ्रातिशीघ्र स्थापित किये जाने चाहिये। इन कारखानों के लिये मैटूर और रिहेण्ड बांध क्षेत्र अत्यन्त उपयुक्त रहेंगे। इन कारखानों में विस्तार करके उनकी उत्पादन क्षमता को २० हजार टन तक किया जा सकेगा। आशा है कि १० हजार टन का एक कारखाना द्वितीय योजना अवधि में और दूसरी-तीसरी योजना के आरम्भ में काम चालू कर देगा।

६. सुरमा (Antimony) :

यद्यपि भारत में सुरमा बहुत ही कम मिलता है—केवल मैसूर में चितलद्रुग

और पंजाब में कांगड़ा जिले में सुरमा गला कर सुरमा धातु तैयार करने की पर्याप्त क्षमता हमारे यहाँ मौजूद है। इससे हमारी वर्तमान और भावी आवश्यकतायें पूर्ण हो सकती हैं परन्तु खनिज सुरमा हमें विदेशों से मंगाना पड़ता है। यह खनिज सुरमा अधिकांश में चितराल से आता था। देश के अन्य क्षेत्रों में इसकी खोज करने के लिये भारतीय भूगर्भ पर्यवेक्षण विभाग ने कार्य आरम्भ कर दिया है। इस समय देश में सुरमा धातु तैयार करने वाले कारखाने की उत्पादन क्षमता एक हजार टन वार्षिक है जो हमारी वर्तमान ६०० टन की मांग को पूरा करने के लिये काफी है। १९६०-६१ तक यह मांग बढ़ कर १००० टन तक होगी और वह भी इसी कारखाने से पूरी हो सकेगी। सुरमा धातु के आयात, उत्पादन और खपत सम्बन्धी आंकड़े इस प्रकार हैं :—

वर्ष	आयात (टन)	उत्पादन (टन)	खपत (टन)
१९५१	९२	३२८	३४०
१९५२	१२७	१८१	३०८
१९५३	४·२	१३०	१३४·२
१९५४	५४·७	५०८	५६२·७
१९५५	३०·१५	५०४	५३४·१५

इन आंकड़ों से प्रगट होता है कि हमारी मांग बराबर बढ़ती जा रही है। सुरमा धातु का प्रयोग मुख्यत: बिजली की संग्रह बैटरियों, ६ पाई के टाइप, धातुओं को कड़ा करने तथा रेल्वे और शस्त्रास्त्र के कारखानों में होता है। द्वितीय योजना में इन सभी का उत्पादन और भी बढ़ जाने के कारण सुरमा धातु की मांग भी १९६०-६१ तक बढ़ कर ८०० से १००० टन तक हो जाने की आशा है। सुरमा धातु तैयार करने के उद्योग को निर्बाध गति से चलाते रहने के लिये यह आवश्यक है कि या तो खनिज सुरमे के पर्याप्त साधन देश में ही खोज निकाले जायें अथवा चीन आदि अन्य देशों से इसका आयात करने का निश्चित प्रबन्ध कर लिया जाये।

अलोह धातुओं से निर्मित अर्द्ध माल :

अलोह धातुओं का जो अर्द्ध तैयार माल हमारे यहाँ तैयार होता है उसमें प्लेटें, चादरें, पत्तियाँ, वर्क, गोल चक्के, छड़ें, सलाखें, नल, नलियां आदि उल्लेखनीय है। यह अलूमिनियम, तांबा, पीतल, जस्ता और सीसे से तैयार की जाती है। तांबे में सीसा, टीन और सुरमा मिला कर भी अनेक प्रकार की वस्तुयें तैयार की जाती हैं। मिश्रित धातु बनाने के उद्योग की स्थापित क्षमता हमारे यहाँ इतनी है कि उससे हमारी समस्त मांग पूरी हो सकती है। तांबा और पीतल की चादरें तैयार करने के उद्योग की क्षमता तो बहुत है, परन्तु उतना काम न होने के कारण मशीनें बेकार पड़ी रहती हैं। द्वितीय महायुद्ध के बाद कुछ कारखाने ऐसे खुल गये जो कि केवल व्यापारी उद्योग में आने वाली चादरें अथवा घरेलू बर्तन ही तैयार करते हैं। युद्ध के बाद इन वस्तुओं की मांग घट गई। तांबा और पीतल के भाव चढ़ जाने के कारण उनके स्थान पर अलूमीनियम और स्टेनलैस स्टील के बर्तनों का चलन बढ़ गया। तांबे और पीतल के बर्तनों की मांग के कम हो जाने के फलस्वरूप इन्हें बनाने वाले

कारखाने का काम भी घट गया। इसलिये हमारे वर्तमान कारखानों के अधिक युक्ति-युक्त संगठन करना तथा उनमें और भी अन्य प्रकार की वस्तुयें बनाने का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है। ऐसी मशीनें लगाने की भी आवश्यकता है जिनके द्वारा उद्योगों में काम आने योग्य प्रतिमानित ढंग की चादरें तैयार की जा सकें। ये चादरें मोटर-गाड़ियों, बिजली का सामान, औद्योगिक मशीनें, बिजली की टार्चें इत्यादि बनाने के काम आती हैं।

७. सोना (Gold) :

सोना कभी भी खानों में शुद्ध रूप में नहीं मिलता। इसमें अधिकतर चांदी और अन्य धातुओं के अंश मिले रहते हैं। सोने की कच्ची धातु दो प्रकार से मिलती है—आग्नेय चट्टानों की नसों में और नदियों की बालू मिट्टी में। पहले प्रकार का सोना पठारी सोना (Vein-Deposit) कहलाता है। यह आग्नेय चट्टानों की नसों में पाया जाता है। इस प्रकार की नसें चट्टानों में अधिक गर्मी और अधिक दबाव के कारण बन जाती हैं। सोने के कण इन नसों में बिखरे हुए पाये जाते हैं अथवा स्वर्ण-मिश्रित बिल्लौर (Quartz) की धारियों में पाये जाते हैं। भारत के दक्षिणी पठार पर इसी प्रकार की चट्टानें मिलती हैं।

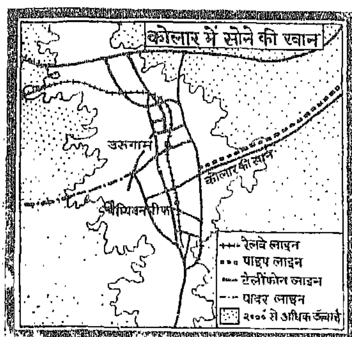
दूसरे प्रकार का सोना नदियों की कांप मिट्टी में मिला हुआ पाया जाता है। इस मिट्टी को चलनी से छान कर सोने के अंश प्राप्त किए जाते हैं किन्तु इस प्रकार प्राप्त किये गये सोने की मात्रा थोड़ी ही होती है। इस प्रकार से प्राप्त किया गया सोना मैदानी सोना (Placer Deposit) कहलाता है।

सोना अपने चमकीले रंग, सुन्दरता, टिकाऊपन और गलाने की सुविधा, भौतिक परिस्थितियों और कम मात्रा में पाये जाने के कारण बहुत प्राचीन काल से ही मानव के लिए आकर्षण की एक वस्तु रहा है। इसका अधिकांश प्रयोग सिक्से बनाने, धातु की ईंटें बनाने, आभूषण बनाने, पैन की निबें, चश्मों के फ्रेम, वर्क, भस्में तथा औषधियाँ बनाने में होता है।

उत्पादन क्षेत्र :

भारत के सोने के उत्पादन का लगभग ९८% सोना अकेले मैसूर राज्य की कोलार की खानों से मिलता है। यहाँ यह बिल्लौर पत्थर की खानों से प्राप्त होता है। बिल्लौर की धारियाँ अत्यन्त परिवर्तित शिलाओं को वेधती हुई दूर तक उत्तर-दक्षिण दिशा में चली गई हैं। इनकी धारियों की मोटाई सभी जगह एक सी नहीं है—कहीं मोटी और कहीं पतली होती हुई चली गई है। इन धारियों में मुख्य धारी एक ही है जिस पर चार स्थानों पर कार्य हो रहा है। यह धारी लगभग ४ फीट मोटी है कहीं कहीं यह २० फीट तक मोटी है और पृथ्वी तल पर ५ मील से अधिक दूर तक दिखाई पड़ती है। यहाँ की सबसे गहरी खानें चैम्पीयन रीफ (Champion Reef) और ओरेगाम रीफ (Ooregam Reef) हैं जिनमें ९,००० फीट की गहराई पर कार्य हो रहा है। पृथ्वी तल से इतने नीचे होने के कारण इन खानों की तह में तापक्रम १२९° फा० तक पहुँच जाता है अतः भीतर के पत्थर गर्मी के कारण हर समय तपते रहते हैं। इस गर्मी को कम करने के लिए खानों में बड़ी बड़ी नालियों (Shifts) में होकर बिजली के पंखों द्वारा वायु का संचार किया जाता है। यहाँ २५ मील दूर

शिवासमुद्रम से बिजली लाई जाती है। यहाँ चैम्पीयनरीफ, औरोगम रीफ, मैसूर गोल्ड माइनिंग और नंदीद्रुग गोल्ड माइनिंग कम्पनियाँ काम कर रही हैं। इस कार्य में लगभग २३,००० मनुष्य लगे हुए हैं।



चित्र ८४—मैसूर में कोलार की खान

यहाँ सन् १८८२ में सोना निकालना आरम्भ किया गया। उस वर्ष केवल ९ औंस सोने का उत्पादन हुआ (जिसका मूल्य केवल ३७ पौंड १३ शि० ५ पैंस था) जब कि १९०५ में ३,२७३, ४५७ पौंड की लागत का ५५६,५२७ औंस सोना प्राप्त किया गया। १९४३ में ५०,८३८,७८१ पौंड के मूल्य का २५३,१९२ औंस सोना निकाला गया। सन् १९५४ में २२०,२१३ औंस सोना इन खानों से प्राप्त हुआ। औसतन प्रति १ टन अयस से ५.५ पैनीवेट सोना प्राप्त होता है।

कोलार सोने के क्षेत्र में सोने के सुरक्षित भंडार इस प्रकार अनुमानित किये गये हैं :—

खदान	सुरक्षित भंडार (टनों में)	औसत ग्रेड (प्रतिटन अयस में धातु की मात्रा में)
मैसूर	२६१,२००	१२.३५
चैम्पीयन रीफ	५२७,४०९	११.४७
औरोगॉम	१५५,०२६	९.१५
नंदीद्रुग	३२२,५७०	१०.०६

बंगलौर से ६० मील पश्चिम में कुछ सोना बैलारी की खानों से भी प्राप्त किया जाता है। आंध्र के रायचूर जिले के हट्टी क्षेत्र से १९०३ से १९२० तक सोना निकाला जाता था। मैसूर के धारवाड़ जिले और उसके पास की सांगली रियासत में तथा आंध्र के अनन्तपुर जिले में वायनाड़ में भी सोना मिलता है। इन खानों से १८८० से १९०९ तक सोना निकाला गया। सलेम और चित्तूर जिलों में तथा बिहार के डालभूम और जशपुर जिलों में; उड़ीसा के गंगपुर, बमरा सिंहभूम, सम्बलपुर, कोरापुट जिलों में भी सोने के विस्तृत भंडारों का पता लगा है।[1]

भारत के अन्य भागों में नदियों द्वारा लाई गई कांप मिट्टी के साथ भी सोना मिला हुआ पाया जाता है। उड़ीसा का सिंहभूम प्रदेश, पंजाब का अम्बाला प्रदेश, उत्तर प्रदेश का बिजनौर जिला और आसाम में ब्रह्मपुत्र घाटी इस प्रकार के सोना प्राप्त करने के उल्लेखनीय क्षेत्र हैं। आसाम में 'स्वर्णसीरी' (Swarnsiri), बिहार-उड़ीसा की 'स्वर्णरेखा' (Swarnarekha) और उत्तर प्रदेश की 'सोना' (Sona) नदियों के बालू में सोना मिलता है। किन्तु इस प्रकार प्राप्त किए गए सोने की मात्रा अधिक नहीं होती। इसका मूल्य भी ३००-४०० पौंड से अधिक का नहीं होता है।

१. M. S. Krishnan, Geology of India and Burma, 1956, p. 164

उत्पादन एवं व्यापार—

विश्व के सोना उत्पादक देशों में भारत का स्थान प्राय: नगण्य-सा ही है। यहाँ विश्व के उत्पादन का केवल २ प्रतिशत सोना प्राप्त होता है। १९५४ में विश्व का कुल उत्पादन २७,७००,००० औंस था, जब कि भारत ने इस वर्ष २३९,१६८ औंस सोना ही प्राप्त किया गया। नीचे की तालिका में सोने का उत्पादन बताया गया है:—

मात्रा		१९५५	१९५६
अयस खोदा गया	टन	७१७,३०१	७७३,८७७
अयस साफ किया गया	टन	६६९,९८९	७७३,४१३
सोने की धातु प्राप्त की गई	औंस	२१०,८८०	२०९,२५१
सोने का मूल्य	००० रु०	५,३०,१४	५,७६,७३

१९५६ और १९५७ में सोने का मूल्य क्रमश: ५·७ करोड़ और ५·१ करोड़ रु० था। १९५८ में १७०,००० औंस सोना निकाला गया जिसका मूल्य ४·९ करोड़ रुपया था। भारत की सोने की मांग विशेषत: ब्रिटेन, अदन, कुवैत, हांगकांग और बैल्जियम से आयात कर पूरी की जाती है।

८. चाँदी (Silver)—

चाँदी प्रकृति में शुद्ध रूप में कम ही मिलती है। यह अधिकतर जस्ता, तांबा, सीसा अथवा सोने के साथ मिली हुई पाई जाती हैं। चाँदी मुख्यत: पाँच प्रकार की कच्ची धातुओं से प्राप्त की जाती है—अर्गेनटाइट (Argentite)–(८७%धातु), पायराजाइराईट (Pyrazirite)—६०%धातु अंश; स्टैफनाइट (Stefanite)—७०% धातु अंश; हार्नसिल्वर (Hornsilver)—७५%धातु अंश और प्रौस्टाइट (Prostite) ६५%धातु अंश।

चाँदी का सबसे अधिक उपयोग सिक्के ढालने, आभूषण बनाने, वर्तन, वर्क, औषधियाँ, फोटोग्राफिक सामग्री, आदि बनाने और जवाहिरात उद्योग में होता है।

उत्पादक क्षेत्र, उत्पादन एवं व्यापार—

भारत में चाँदी का उत्पादन बहुत ही कम होता है। यहाँ चाँदी उत्पादन क्षेत्र मैसूर में कोलार-क्षेत्र और बिहार में मानभूम तथा राजस्थान में जावर क्षेत्र माने जाते हैं। पहले मद्रास के आनन्तपुर जिले से भी काफ़ी चाँदी प्राप्त की जाती थी किन्तु अब इसका उत्पादन समाप्त प्राय: होगया है। नीचे की तालिका में चाँदी का उत्पादन बताया गया है:—

चाँदी का उत्पादन और मूल्य

	१९५५		१९५६	
	मात्रा (औंस)	मूल्य (००० रु०)	मात्रा (औंस)	मूल्य (००० रु०)
राजस्थान	१३८,५२१	५०७	८९,३२०	३६८
मैसूर	१५,४१४	६६	१५,२८४	७०
योग	१५३,९३५	७७३	१०४,६०४	४३८

१९५६ में १०५,००० औंस और १९५७ में १२६,०००, औंस चांदी का उत्पादन हुआ जिसका मूल्य क्रमशः ४·३ लाख और ६·० लाख रु० था।

भारत में बैलजियम, ग्रेट ब्रिटेन और पश्चिमी जर्मनी से चांदी का आयात किया जाता है। १९५७ में २,९२० औंस चांदी का आयात किया गया जिसका मूल्य २५,००० रु० था।

९. इल्मैनाइट (Illemenite)—

इल्मैनाइट की कच्ची धातु से टाइटैनियम धातु प्राप्त की जाती है जिसका उपयोग कई प्रकार की मिश्र-धातुओं और धूमपटों में किया जाता है। यह एक मुख्य रिफ्रैक्टरी पदार्थ है जिसका प्रयोग लोह और इस्पात उद्योग में अधिक होता है। इस पर न तो शीघ्र ही जलवायु का प्रभाव होता है और न जंग ही लगता है तथा यह सीसे की तरह विषाक्त भी नहीं होता। इसका उपयोग रोगन, ऊँची श्रेणी के एनेमल और लैकर-वेयर आदि बनाने में भी होता है।

यह खनिज भारत में अनेक स्थानों में मिलता है। बिहार की अभ्रक युक्त पैग्मैटाइट शिलाओं की छोटी छोटी धारियों में; किशनगढ़ में क्वार्ट्स शिलाओं में तथा राजस्थान के डिगाना क्षेत्र में वूलफाम की नसों के साथ पाया जाता है। बिहार में दक्षिण-पूर्व सिंहभूम और उससे संयुक्त मयूरभंज जिलों में इसके कई क्षेत्र हैं। किन्तु इसके प्रसिद्ध क्षेत्र केरल राज्य की तटीय बालू मिट्टी में हैं जहाँ यह अनेक नदियों और समुद्र की लहरों द्वारा जमा किया गया है। इसकी उत्पत्ति मुख्यतः इन भागों में पाई जाने वाली ग्रेनाइट युक्त नीस और चर्नोकाइटस् शिलाओं से होती है। रत्नागिरी, मद्रास के दक्षिणी जिलों और उड़ीसा तट तथा आंध्र के विशाखापट्टनम जिलों से भी यह प्राप्त किया जाता है। सबसे उत्तम प्रकार का इल्मैनाइट केरल के तटीय भागों की बालू से प्राप्त किया जाता है जहाँ यह मोनेजाइट, जिरकन, रुटाइल, सिलैमैनाइट और अन्य खनिजों के साथ मिला पाया जाता है।

विश्व में सबसे अधिक उत्पादन भारत के केरल राज्य में होता है। यह यहाँ तट के निकट फैली काली बालू मिट्टी में पाया जाता है। यह बालू पश्चिमी घाट के निकट निदाकारा से लगा कर कुमारी अंतरीप होती हुई पूर्वी घाट की ओर लीपूरम तक १०० मील की पट्टी में फैली है। यहाँ बालू ८ फीट मोटी तह में मिलती है इसमें इल्मैनाइट का अंश ५० से ७० प्रतिशत तक होता है। डा० वाडिया के अनुसार भारत में इल्मैनाइट के जमाव लगभग, २,५०० लाख टन के हैं।

नीचे की तालिका में इल्मैनाइट का उत्पादन बताया गया है।

	१९५५		१९५६	
	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)
केरल	२२७,९२७	१२०,००	३०९,३८२	१६५,००
मद्रास	२२,८४७	११,९०	२६,२०८	१३,१२
योग	२५०,७७४	१३१,९०	३३,५९०	१७८,१२

(१०) मैगनेसाइट (Magnesite)

इस खनिज से मैगनेशियम धातु बनती है। इसका उपयोग ऊँचा तापक्रम सहन

करने वाली (८००° सैंटीग्रेड) वस्तुयें बनाने में होता है। इसका उपयोग तरल कार-बोलिक एसिड गैस, टाइलें, कृत्रिम पत्थर, शीशी, चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने तथा बम के खोल बनाने में भी किया जाता है। मैगनेशियम के खिलौने भी बनाये जाते हैं तथा वायुयान निर्माण में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

मैगनेसाइट का उत्पादन भारत में दो क्षेत्रों से प्राप्त होता है। प्रथम क्षेत्र मद्रास राज्य में है। यहाँ यह सलेम जिले की डोलोमाइट और सर्पेन्टाइन चट्टानों से प्राप्त किया जाता है जो लगभग ४½ वर्ग मील क्षेत्र में फैली है। यहाँ यह १४० फीट ऊँची पहाड़ियों से खोद कर प्राप्त किया जाता है। यहाँ का मैगनेसाइट बड़े उत्तम प्रकार का है इसमें मैगनेशियम धातु का प्रतिशत ९६ से ९९ तक होता है। १०० फीट की गहराई तक ८२५ लाख टन के जमाव होने के अनुमान हैं। थोड़ा सा मैगनेसाइट कोयम्बटूर और तिरूचिरापल्ली जिलों से भी प्राप्त किया जाता है।

इसका दूसरा क्षेत्र मैसूर राज्य में दोदकन्या और दोदकट्टूर में है। यहाँ कई लाख टन खनिज होने का अनुमान लगाया गया है।

थोड़ा सा मैगनेसाइट केरल, आंध्र प्रदेश, जम्मू-काश्मीर, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश से भी प्राप्त किया जाता है। भारत में इस खनिज के जमावों का अनुमान १,००० लाख टन का है। यह १०० फुट की गहराई तक छिपे हैं।

नीचे की तालिका में इसका उत्पादन बताया गया है :—

	१९५५	
राज्य	मात्रा	मूल्य (००० रु०)
मद्रास	५७,५०९ टन	१२,५६
मैसूर	—	—
भारत का योग	५७,५०९ टन	१२,५६ रु०

१९५६ में ९१,७११ टन और १९५७ में ८८,८८५ टन मैग्नेसाइट उत्पादित किया गया जिसका मूल्य क्रमशः १८·४ लाख रु० और १७·९ लाख रु० था। १९५७ में ४½ लाख हंडरवेट का निर्यात किया गया जिसका मूल्य ३८ लाख रु० था।

(११) गंधक माक्षीक (Pyrites)

माक्षीक एक कच्चा पदार्थ है जिसका गन्धाम्ल (सलफ्यूरिक एसिड) बनाने में प्रयोग हो सकता है। भारत में इस खनिज का उत्पादन नहीं के बराबर ही होता है तथा आयतिक गंधक पर लगभग सम्पूर्णतः निर्भर है।

सन् १९५५ में मैसूर में ८०० टन माक्षीक का उत्पादन हुआ। सन् १९५५ के पश्चात् बिहार में बिल्कुल उत्पादन नहीं हुआ।

प्रकृति से गन्धक दो रूपों में पाया जाता है। शुद्ध रूप में तथा अशुद्ध रूप में यह माक्षीक (आयरन सल्फाइड) तथा अन्य धात्वीय गन्ध किलों (सलफाइड्स) के साथ पाया जाता है। अब तक की खोज से पता चला है कि काश्मीर के लद्दाख जिले में पूगा में कम से कम २००,००० तक शुद्ध गन्धक विद्यमान है। इन भंडारों के निकालने में मुख्य बाधा इस क्षेत्र में गन्धक को बाजार तक ले जाने के लिए आवागमन को साधनों की कमी है जिसके परिणामस्वरूप निकालने की कीमत बहुत अधिक बढ़ जाती है।

गन्धक के अन्य स्रोत जैसे कि आयो-माक्षीक तथा गंधकिल के भंडार बहुत विस्तृत हैं। यह भंडार अमजोर (शाहबाद, जिला बिहार), तारा देवी (शिमला की पहाड़ियों में), इनगालधल (चितलद्रुग, मैसूर), देवाला (वाइनाद, मद्रास), लाशतियाल (काश्मीर) तथा करवार (उत्तरी कनाडा, महाराष्ट्र) में पाये जाते हैं। आयो-माक्षीक (आयरन पाइराइट्स), रेवा आसाम, तन्दूर के गोंडवाना कोयले, कोथागुडुम तथा हैदराबाद में सास्ती के कोयले के भंडारों में पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। यह अनुमान किया गया है कि १०० टन कोयले के धोने से एक टन गन्धक प्राप्त हो सकता है।

ऊपर कहे गये भंडारों के केवल कुछ एक भागों का ही पूर्वेक्षण किया गया है। सब मिला कर इसके भंडार २० लाख टन के हैं। पूर्वेक्षित क्षेत्रों में अनुमानित भंडार निम्नलिखित हैं :—

अनुमानित भंडार	(,००० टनों में)
(१) अमजोर (बिहार)	५०
(२) देवाला	२०० (स्वर्ण पूर्ण) (ओरीफैरस)
(३) इनगालधल (मैसूर)	५००
(४) लाशतियाल (काश्मीर)	१५०
(५) तारादेवी (शिमला)	१५०

करवर के भंडार व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते। भारत में गंधक उत्पादन बहुत ही कम है। अतः विदेशों से १९५१ में १·२१ करोड़ रुपये के मूल्य का और १९५७ में ३·०३ करोड़ का गन्धक आयात किया गया। अयो-माक्षीक के भंडार तो भारत में प्रचुर हैं। परन्तु अभी इसका उत्पादन बिल्कुल नहीं होता। क्योंकि देश में इसका किसी भी कार्य में प्रयोग नहीं होता। द्वितीय महायुद्ध काल में तारादेवी भंडारों से खनन की हुई माक्षीक से आगरा में गन्धाम्ल (सल्फ्यूरिक एसिड) का उत्पादन किया जाता था। इस समय यह उद्योग गन्धक के आयात पर पूर्णतः निर्भर है। गन्धक के तेजाब का उपयोग खाद बनाने, पैट्रोलियम साफ करने, लोहे और इस्पात, रासायनिक उद्योग, रंग-रोगन, रेयन, सूती वस्त्र, विस्फोटक पदार्थ और सैल्यूलोज की फिल्में बनाने में किया जाता है। रबड़ के सामान को जोड़ने में, तेजाब से खराब न होने वाला सीमेंट बनाने और कीड़े मारने की दवा बनाने में भी गन्धक काम आता है।

(१२) कैलसाइट खनिज (Calcite)—

देश में सर्वोत्तम कैल्साइट गुजरात में मिलता है। यही नहीं संसार में जितनी प्रकार का कैलसाइट मिलता है, उनमें भी गुजरात के इस खनिज का अद्वितीय स्थान है। गुजरात में इसकी खानें विभिन्न दिशाओं में काफी दूर तक फैली हुई हैं और कैलसाइट प्रायः ३० से ४० फीट और कहीं उससे भी अधिक गहराई पर मिलता है। कैलसाइट के भण्डार नवानगर, पोरबन्दर, जूनागढ़ तथा अमरेली में हैं। सबसे बड़ी खानें अमरेली में हैं यहाँ पनाला पहाड़ी में लगभग ५८ हजार टन कैलसाइट है। जूनागढ़ में १५ फीट की गहराई में ही लगभग २८ हजार टन कैलसाइट है। भावनगर, गोंडल, मोरवी, पालीताना तथा बधवान में भी इसकी खानें हैं। इसके अलावा पत्थर के

कई अन्य भागों में भी कैलसाइट मिलता है। "जिओलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया" की प्रयोग शाला में नवानगर के कैलसाइट की जाँच करने पर पता लगा है कि इसमें मिलावट बिल्कुल नहीं होती और इसका उपयोग कैलशियम कारबाइड तथा रंग उड़ाने का पाऊडर तैयार करने, मिट्टी के बर्तनों पर चमक पैदा करने, कारखानों में काम आने वाला चूना बनाने तथा धातुओं को साफ करने में किया जा सकता है। इससे कई वस्तुओं में सफेदी लाई जा सकती है जैसे :—रबड़, सूती कपड़े, कागज, शीशे का सामान चीनी। इससे धातुओं पर बिना खरोंच के डर के पालिश भी की जा सकती है।

नवानगर तथा पोरबन्दर में इसका काफी व्यापार होने लगा है। इन स्थानों में कैलसाइट को पीसकर पाऊडर बनाया जाता है और उसे कलकत्ता, बम्बई तथा अन्य स्थानों को भेजा जाता है।

महायुद्ध के समय कैलसाइट का उद्योग बहुत उन्नत था। किंतु अब अनेक सस्ते खनिज पाऊडरों के कारण इसे उनसे काफी मुकाबला करना पड़ रहा है। इस समय कैलसाइट को खान से निकालने, साफ करने आदि में काफी खर्च पड़ जाता है। भूगर्भशास्त्रियों का कहना है कि इस उद्योग को बढ़ावा देना चाहिए और इतना उन्नत करना चाहिये कि कैलसाइट के उत्पादन की लागत कम हो जाय नहीं तो यह उद्योग ज्यादा दिन न टिक सकेगा। इसके अलावा कैलसाइट के अन्य रसायन बनाने के सम्बन्ध में भी अनुसंधान किया जाना चाहिये।

कैलसाइट का उत्पादन

	१९५५		१९५६	
	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)	मात्रा (टन)	मूल्य (००० रु०)
आंध्र	१४२	३	३,७२२	३३
गुजरात	२,४५२	११	१,४८०	१५
मैसूर	६	—	—	—
राजस्थान	—	—	—	—
योग	२,६००	१४	५,२०२	४८

इमारती पत्थर (Building Stones)—

सभी प्रकार के पत्थरों से अच्छी मजबूत इमारतें नहीं बन सकतीं। कई पत्थर तो लकड़ी से भी कम टिकाऊ होते हैं। इमारतें बनाने के लिए ग्रैनाइट (Granite) स्लेट, क्वार्टज, चरनोकाइट, रवेदार चूने के पत्थर अथवा आग्नेय शिलाएं बड़ी उत्तम रहती हैं। इन शिलाओं पर जल का प्रभाव धीरे-धीरे पड़ता है और इनमें जल प्रविष्ट भी बहुत कम होता है क्योंकि इनकी रंध्रविशिष्टता (porosity) बहुत कम है किंतु ये शिलाएं प्रायः परतहीन होती हैं और बड़ी कड़ी होती है जिससे इन्हें कांट-छांटने में बड़ी मेहनत पड़ती है।[1] जलज—चूने का पत्थर (Limestone) और संगमरमर

[1] नास और ग्रैनाइट शिलायें दक्षिणी भारत में विस्तृत रूप में पाई जाती हैं—राजस्थान, बुंदेलखंड, मध्यप्रदेश, बिहार, आंध्र, मैसूर, मद्रास राज्यों से इन शिलाओं से मन्दिर, भवन, दुर्ग आदि बनाने के लिए सुन्दर पत्थर प्राप्त होते हैं।

(marble) हल्के, सुन्दर और बहुत नरम होने के कारण अधिक प्रयोग में आते हैं किन्तु अन्य पत्थरों की तुलना में ये कम टिकाऊ होते हैं।

इमारती पत्थरों में सबसे अधिक प्रचलित **बालू का पत्थर** (Sandstone) है। यह पत्थर न तो ग्रैनाइट जैसा अधिक कड़ा और न चूने जैसा अधिक नरम और शीघ्र क्षय होने वाला ही होता है। इसके अतिरिक्त बालू का पत्थर तहदार भी होता है अतः इसकी पतली-पतली पट्टियाँ आसानी से बनाई जा सकती हैं। सबसे उत्तम बलुआ पत्थर वह गिना जाता है जिसमें बालू या रेत के अतिरिक्त अन्य पदार्थ बहुत कम हों। इनके अतिरिक्त इमारतों की छतों के पाटने में खपरैल की जगह स्लेट भी काम आती है। जलज मिट्टी की पतली तहदार पृथ्वीतल के नीचे पहुँचकर दबाव द्वारा परिवर्तित होकर स्लेट बन जाती है।

भारत में भिन्न-भिन्न स्थानों में जो पास में सबसे उपयुक्त पत्थर होता है उसी का उपयोग इमारतों में कर लिया जाता है। इस प्रकार मद्रास और मैसूर में **ग्रैनाइट** तथा **चारनोकाइट** (Charnokite) नामक स्थानीय आग्नेय शिलाएँ ही अधिकतर कार्य में लाई जाती हैं। मद्रास और आंध्र में इन शिलाओं से २५ से ३० फीट लंबे और १५ से ३० फीट चौड़े स्तम्भ प्राप्त होते हैं। इसका उपयोग महाबलीपुरम के मंदिर में विशेष रूप से किया गया है। भारत में अन्य दक्षिणी और मध्य भाग में प्रथम कल्प से भी पूर्व के स्लेट और चूने के पत्थर तथा द्वितीय कल्प के अन्त समय के ज्वालामुखी **बैसाल्ट** (Basalt) नामक काले पत्थर की ही इमारतें बनाई जाती हैं। मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में प्रथम कल्प के आरंभ में बने हुए विंध्याचल पर्वत के बालू और चूने के पत्थरों का इमारतों में बहुत प्रयोग होता है। इस पर्वत में बालू के लाल पत्थर का बड़ा भारी जमाव है जो इमारतों के लिए अति उत्तम प्रमाणित हुआ है। मिर्जापुर, चुनार, कटनी, इंदौर, ग्वालियर, बूंदी इत्यादि अनेकों स्थानों पर इस पत्थर की खानें हैं। बंगाल और उसके पास के कोयले के क्षेत्रों में गोंडवाना काल के बालू के पत्थरों की ही इमारतें बनाई जाती हैं। गुजरात में जूनागढ़ और पोरबन्दर के चूने का पत्थर तथा धारंगध्रा का बालू का पत्थर ही अधिक प्रचलित है। उड़ीसा और मध्य प्रदेश में **लैटराइट** नामक शिला भी इमारतों के काम में आती है। राजस्थान में पश्चिमी भागों में लाल इमारती पत्थर तथा दक्षिणी पूर्वी भागों में अरावली से प्राप्त पत्थर ही इमारतें बनाने में उपयुक्त होते हैं। चित्तौड़ जिले की मानपुरा, नीम्बाहेड़ा आदि स्थानों की पट्टियाँ मकानों की छतें बनाने में उपयुक्त और चौके फर्श पर जड़ने के लिए काम में आते हैं। इन शिलाओं के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब आदि प्रांतों में **कंकड़** नामक चूने का पदार्थ भी इमारतों में काम आता है। कंकड़ प्रायः प्राचीन कछार में जल द्वारा लाया जाकर एकत्रित किए हुए चूने के कड़ों से बना है। खपरैल के लिए **स्लेट** हिमालय पर्वत की कांगड़ा घाटी, अल्मोड़ा और गढ़वाल जिलों में तथा रेवाड़ी में भी पाई जाती है।

संगमरमर (Marbles) :

भारत में कई स्थानों पर उत्तम संगमरमर पत्थर भी प्राप्त होते हैं। निम्न स्थानों के संगमरमर तो जगत-प्रसिद्ध हैं :—

(१) जोधपुर डिवीजन के मकराना और उदयपुर डिवीजन के राजनगर जिले के दार्केती और सफेद, भूरे तथा हल्के गुलाबी तथा अन्य कई रंगों के संगमरमर पत्थर।

(२) अजमेर, किशनगढ़, जयपुर, अलवर, दान्ता और पटियाला इत्यादि क्षेत्रों के संगमरमर जो हल्के गुलाबी रंग का होता है।

(३) मध्य प्रदेश के जबलपुर का श्वेत और नृसिंहपुर, छिंदवाडा का रंगीन तथा बड़ौदा क्षेत्रों के मोतीपुरा नामक स्थान का हरा संगमरमर।

(४) जैसलमेर जिले और गवालियर के 'बाघ' नामक स्थान के चूने का लाल-पीला, छींटदार और हरा पत्थर।

विशाखापट्टनम, कोयम्बटूर, मदुराई, चितलद्रुग, कोरापुट तथा गंगपुर में अनेक रंगों वाले सुन्दर चूने के पत्थर प्राप्त होते हैं।

चूना और सीमैंट का पत्थर (Limestone & Cement-Stone)

साधारण चूने का सीमैंट बनाने के लिए मध्य प्रदेश और राजस्थान में चूने के परिवर्तित पत्थरों का तथा उत्तर प्रदेश में कंकड़ों का भारी जमाव है। भारत में अनेक स्थानों पर चूने का पत्थर स्वयं ही ऐसे रासायनिक संगठन का होता है कि उसमें मिट्टी बहुत कम मिलाने की आवश्यकता रह जाती है। उदाहरण के लिए गवालियर की कम्पनी सीमेंट के लिये स्थानीय चूने के पत्थर के साथ केवल १% ही मिट्टी मिलाती है। बूँदी की सीमैंट कम्पनी में तो मिट्टी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के मिट्टीदार चूने के पत्थर को ही आपस में मिलाकर उपयुक्त रासायनिक मिश्रण कर लिया जाता है। विंध्य पर्वत में उत्तम श्रेणी के पत्थरों का बड़ा भारी जमाव प्राय: रेलवे लाइन के पास ही पाया जाता है। इस कारण भारतीय सीमैंट के सब कारखाने प्राय: चूने की पत्थरों की खानों के पास ही खोले गये हैं। सीमेंट के लिए हरसोठ राजस्थान से मंगवाई जाती है।

भारतीय भूगर्भ विभाग ने उड़ीसा के गंगपुर क्षेत्र में चूने के पत्थर और डोलीमाइट की बड़ी-बड़ी खानों का पता लगाया है। बीरमित्रापुर और पागपोश, आमघाट तथा हाथीबाड़ी की खानों के अलावा, जिन्हें दो कम्पनियाँ खोद रही हैं, विभाग ने लनुकुटीली में २,४०० फीट लम्बी और २५० फीट चौड़ी पट्टी में सीमैंट के काम आने वाले चूने के पत्थर का विशाल भण्डार खोज निकाला है। यह स्थान गार-पोश स्टेशन से १० मील उत्तर में है। इस क्षेत्र में कई दिशाओं में चूने के पत्थर के भण्डार की लम्बी चौड़ी पट्टियाँ फैली हुई हैं। यहाँ अच्छे डोलोमाइट का अपार भण्डार है।

मद्रास राज्य में दक्षिणी अर्काट, तंजौर, तिरुचिरापल्ली, मदुराई, सलेम, कोयम्बटूर, रामनाथापुरम, तिरुनलवैली और रामेश्वर द्वीप में भी चूने के पत्थर की नयी खानों का पता लगाया गया है। इनमें कई लाख टन के जमाव होने का अनुमान है। रामानाथापुरम जिले में सत्तूर और अरुपूकोटाई तालुकों में ४३·६ लाख टन के जमाव और रामेश्वरम द्वीप में ५० लाख टन के जमाव अनुमानित किये गये हैं। दक्षिणी अर्काट में २० लाख टन के जमाव होने का अनुमान लगाया गया है।

काँच के लिये बालू (Glass Sand) :

साधारण काँच बनाने के लिए उत्तम और आदर्श बालू वह माना गया है जिसमें १०० प्रतिशत सिलीका हो और जिसके सब कण बराबर तथा कोणदार आकार के हों। बालू में सिलीका के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ जितना ही कम होता है

उतना ही बालू अधिक सफेद होता है और वह काँच के लिए उपयोगी होता है। बालू के सफेद जलज पत्थरों तथा स्फटिक शिलाओं को भी पीस कर काँच के उपयुक्त बालू बनाया जाता है किन्तु इसमें मेहनत और व्यय अधिक पड़ता है। यद्यपि भारत में काँच के लिये उपरोक्त आदर्श बालू कहीं पर नहीं मिला है परन्तु साधारण काँच के बालू की यहाँ कमी नहीं है। राजमहल पहाड़ में **मंगलहाट** तथा **पाथरघाटा** नामक स्थानों पर गोंडवाना काल का उत्तम श्रेणी का सफेद बालू का पत्थर मिलता है जिसको पीस कर काँच के लिए बालू बनाया जाता है। विंध्याचल पर्वत के **लोहगरा** तथा **बरगढ़** नामक स्थानों पर बालू का परिवर्तित जलज पत्थर मिलता है जिससे उत्तम बालू प्राप्त होता है जिसका प्रयोग उत्तर प्रदेश के कई काँच के कारखानों में हो रहा है। इन स्थानों के अतिरिक्त बरार, पूना, जबलपुर, इलाहाबाद इत्यादि स्थानों तथा जयपुर, बीकानेर, बूँदी और बड़ौदा इत्यादि क्षेत्रों में भी उत्तम श्रेणी के बालू अथवा बालू के लिये पत्थर मिलते हैं।

उपयोगी मिट्टियाँ (Clays)

मिट्टियाँ कई प्रकार की होती हैं। मिट्टी की उत्तमता इस बात में है कि वह *गीली होने पर मुलायम हो जाय ताकि इसको किसी भी शक्ल में परिवर्तित किया जा* सके। भारत में मुख्यत: तीन प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं—(१) अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी, (२) चीनी मिट्टी, (३) मुल्तानी मिट्टी। भारत में इन मिट्टियों का उत्पादन इस प्रकार है :—

मिट्टियों का उत्पादन
(००० टनों में)

किस्म	१९४४	१९५७
चीनी मिट्टी	४६	१८१
अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी	८७	१६४
अन्य साधारण मिट्टियाँ	६८३	—

(१) **अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी** (Fire-Clay)—जिन मिट्टियों में पोटाश अथवा सोडा का अंश बहुत कम होता है वे अग्नि प्रतिरोधक होती हैं। भारत में अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टी की तह बंगाल की राजमहल पहाड़ी के पश्चिमी भाग में तथा गोंडवाना काल के कोयले की भिन्न-भिन्न तहों के बीच में बहुत मिलती है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश में जबलपुर तथा अन्य स्थानों पर भी यह मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी अधिकतर भारतीय कारखानों की भट्टियों के लिए अग्नि प्रतिरोधक ईंटें तथा बालू की ईंटें बनाने के काम आती हैं। **रानीगंज** में बर्न कम्पनी का कारखाना, **कुमार धूबी** में बर्ड कम्पनी का तथा **कुल्टी** में मार्टिन कम्पनी का कारखाना अग्नि-प्रतिरोधक ईंटों के लिए प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश में जबलपुर और कटनी के कारखाने भी तैयार करते हैं।

(२) **चीनी मिट्टी** (China Clay or Kaolin)—सब मिट्टियों में बिल्कुल सफेद चीनी नामक मिट्टी अधिक मूल्यवान होती है। यह मिट्टी प्राय: ग्रेनाइट की फैलास्पार (Felspar) नामक खनिज के क्षय से उत्पन्न होती है। पोटाश और सोडा इस मिट्टी में न होने से यह अग्नि प्रतिरोधक भी होती है। इस प्रकार की मिट्टी भारत के कई भागों में पाई जाती है। सबसे उत्तम चीनी मिट्टी सिंहभूम जिले में

तथा राजमहल पहाड़ी में मिलती है। इनमें से प्रथम स्थान की मिट्टी कपड़ों के कारखानों के लिए भी उत्तम प्रमाणित हुई है। इसके अतिरिक्त विहार के भागलपुर, गया इत्यादि स्थानों में भी तथा मद्रास, मध्य प्रदेश और राजस्थान में चीनी मिट्टी मिलती है। यह मिट्टी अधिकतर चीनी के बर्तन बनाने, कपड़ों में भरने तथा सफेद बढ़िया कागज बनाने में काम आती है। चीनी मिट्टी के उत्तम श्रेणी के पदार्थ (Ceramics & Potteries) बनाने के कारखाने गवालियर, जबलपुर, कलकत्ता, दिल्ली, मैसूर आदि स्थानों में स्थित हैं।

(३) **मुल्तानी मिट्टी**—भारत में बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, जबलपुर, हैदराबाद और मैसूर प्रदेशों में बहुत मिलती है। इसका रंग सफेद, भूरा अथवा पीला होता है। इस मिट्टी के कण बहुत बारीक होते है अतः उनमें चिकनाई और रंग-कारक द्रव सोख लेने का गुण होता है। अतः इसका उपयोग ऊन से चिकनाई दूर करने तथा तैलों को स्वच्छ अथवा रंगहीन करने के लिए और कागज, साबुन और कपड़ों के कारखानों तथा सिर के बाल धोने के लिए किया जाता है।

मुल्तानी मिट्टी का उत्पादन

१९५५

	टन	रु०
मध्य प्रदेश		
जबलपुर	१३०	१,७७०
राजस्थान		
बीकानेर	८५३	६,६७१
जोधपुर	५०	१,७९३
गुजरात		
गोहीलवाड़	३००	३,०००
	१,३३३	१३,२३४

अध्याय १४

शक्ति के स्रोत

(Sources of Power)

शक्ति के साधनों में कोयले का महत्व सबसे अधिक है। देश में उपयोग में लाई गई व्यवसायिक शक्ति उत्पादन में ७५% कोयले, १३% तेल; १२% जलशक्ति का उपयोग होता है। १९५४ में भारत में शक्ति का उत्पादन ३७,९७०,००० टन था। जिसमें से २८,३४०,००० टन कोयले से; ५०९०,००० टन तेल से और ४,५००,००० टन जल विद्युत से प्राप्त की गई।



चित्र ८५—प्रमुख शक्ति के साधन

१. कोयला (Coal)

भारत में खानों से कोयले निकालने का प्रथम प्रयास १७७४ में दो अंग्रेजों (समर और हीटले) द्वारा रानीगंज में किया गया किन्तु इस प्रयास में विशेष सफलता नहीं मिली। इस दशा में और भी कई फुटकर प्रयास किए गए किंतु १८४३ तक जब कि बंगाल कोयला कंपनी की स्थापना हुई—कोई विशेष लाभ इस उद्योग में नहीं हुआ। १८५५ में ईस्ट इंडिया रेलवे और १८६५ में बाराकर क्षेत्र तक इसका विस्तार होने से कोयले उद्योग की तीव्र उन्नति हुई क्योंकि इस कोयले की मांग रेलों में अधिक थी। १८६८ में ५ लाख टन कोयला निकाला गया। १८५८ में कोयले का उत्पादन २१६,००० टन से बढ़कर १८७२ में ३२२,००० टन; १८७८-८० में ९८७,००० टन; १८९१-९५ में ४८,००,००० टन और १९०१-०५ में ११५,००,००० टन हो गया। १९वीं शताब्दी के अंत में झरिया कोल क्षेत्र का पता लग जाने से कोयले के उत्पादन में और भी वृद्धि हुई। इस समय तक कोयले की की मांग देश में कम थी अतः कुछ कोयला मलाया और लंका को भी निर्यात किया जाने लगा। १९२० में भारत में कोयले का उत्पादन १८० लाख टन; ११३५-३६ में २३० लाख टन; १९३९-४० में २८० लाख टन हुआ। द्वितीय महायुद्ध काल में युद्ध-कार्यों के लिए भारतीय कोयले की मांग में वृद्धि हुई अतः युद्धकाल में ३०० लाख टन कोयला निकाला गया। युद्ध के पश्चात् १९४४ में उत्पादन में ह्रास हुआ—उत्पादन की मात्रा २६० लाख टन थी। विभाजन के समय भारत के कोयले क्षेत्र भारत में ही रहे अतः इसके उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। १९४८ में २९८ लाख टन और १९४९ में ३१० लाख टन कोयला निकाला गया। नीचे की तालिका में भारत में १९४८ से १९५८ तक के कोयले की खुदाई, लदान, निर्यात आंतरिक उपभोग संबंधी आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं:—

कोयले की खुदाई और उपयोग

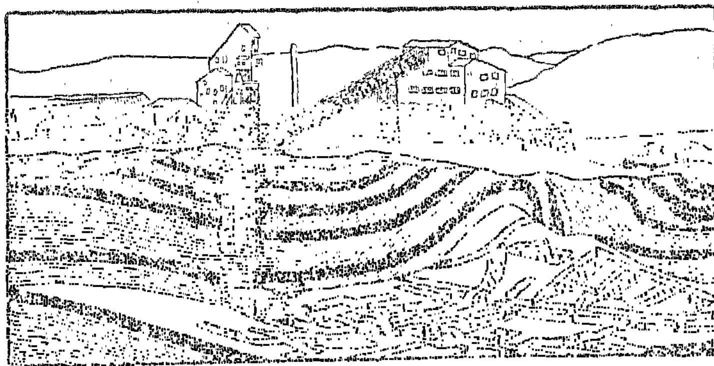
वर्ष	कुल खुदाई (००० टन)	कुल लदान (००० टन)	निर्यात (००० टन)	कुल आंतरिक उपभोग (००० टन)	विद्युत-शक्ति में उपभोग (००० टन)
१९४८	२९,८२०	२५,८५०	२,२२३	२३,६२७	१,९२०
१९४९	३१,४९०	२८,०५०	९००	२७,१५०	६,०६०
१९५०	३२,३००	२८,८२०	१,२५१	२६,५६९	२,२४५
१९५१	३४,४३०	२९,१२०	१,४००	२७७२०	२,३४०
१९५२	३६,२००	३०,८००	२,२००	२८,६००	२,५७०
१९५३	३५,८५०	३१,०५०	१,२००	२९,८५०	२,७८५
१९५४	३६,८८०	३१,९२०	९००	३१,०२०	२,६८०
१९५५	३८,४०९	३३,२८०	१,५७०	अप्राप्य	अप्राप्य
१९५६	३९,४३०	३४,९६०	१,७३०	,,	,,
१९५७	४४,२००	३८,८९५	१,६२५	३७,०९२	३,४६५
१९५८	४६,०६५	४१,०३८	—	३९,३२९	४,००७
१९५९-६०	६०,०००	५६,०००	१,०००	५५,०००	५,२००

कोयला उत्पादन में विश्व में भारत का स्थान ८वां है। १९५७ में भारत में ४४२ लाख टन कोयला निकाला गया जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में ४,६२५

लाख टन; रूस में ४,५६० लाख टन; ब्रिटेन में २,१६० लाख टन; जर्मनी और सार में २,०४६ लाख टन; चीन में १,२५० लाख टन कोयला उत्पादन किया गया। इन अंकों से ज्ञात होगा कि भारत में कोयले का उत्पादन ब्रिटेन का १/५ और सं० रा० अमरीका का केवल १/१८ है। १९५७ में विश्व में जितना कोयला निकाला गया उसका ३०% सं० रा० अमरीका में; १८% रूस में; १५% ब्रिटेन में; ९% पश्चिमी जर्मनी में; ३% जापान; २% भारत; २% चीन और शेष एशिया, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के देशों में निकाला गया। भारत में कोयले की ८३२ खानें हैं। जिनमें ३,४७,००० श्रमिक लगे हैं।

कोयला क्षेत्र :

भारत के कोयले का ९८.५ प्रतिशत गोंडवाना काल की शिलाओं में दक्षिण के पठार पर पाया जाता है। ये शिलायें अत्यन्त प्राचीन हैं और मुख्यत: बलुए पत्थर और शेल की बनी हैं। अनुमानत: ये शिलायें नदियों के मीठे जल में जमा होकर बनी हैं। गोंडवाना शिलायें दामोदर घाटी में अधिक विकसित हैं। इन्हें यहाँ 'दामूदा' मालाएं (Damuda Series) कहते हैं। रानीगंज और झरिया में ये शिलायें तीन भागों में विभक्त हैं। इनमें सबसे ऊपर और सबसे नीचे के भागों में ही कोयले की तहें पाई जाती हैं—ये क्रमश: 'रानीगंज और 'बाराकर' कहलाती हैं। इनके बीच में लोह-प्रस्तर होने से कोयला नहीं मिलता। रानीगंज क्षेत्र में कोयला 'रानीगंज और झरिया में 'बाराकर' चट्टानों में कोयला मिलता है।



चित्र ८६—कोयले की खानों का भीतरी दृश्य

गोंडवाना क्षेत्र के अंतर्गत निम्न क्षेत्र मुख्य हैं :—

(१) दामोदर घाटी में रानीगंज, झरिया क्षेत्र; बोकारो क्षेत्र

(२) दामोदर घाटी के उत्तर में गिरडीह क्षेत्र;

(३) बिहार में पालामाऊ जिले के पश्चिम में डाल्टनगंज और उत्तरी तथा दक्षिणी करनपुरा क्षेत्र;

(४) गोदावरी घाटी में सिंगरेनी, चन्दरपुर और बरोरा क्षेत्र;

(५) सतपुड़ा पर्वतों से संबंधित मोहपानी और पेंचघाटी क्षेत्र।

मोटे तौर पर गोंडवाना काल के क्षेत्र पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा से लगाकर मध्यप्रदेश और आंध्र प्रदेश तक फैले हैं। शेष १·५% कोयला तृतीय-कल्प की शिलाओं से प्राप्त होता है। इसे तृतीय कल्प का कोयला या टर्शरी कोयला (Tertiary Coal) कहते हैं। इसके मुख्य क्षेत्र आसाम में दिहांगनदी की घाटी में स्थित लखीमपुर के जिले में और राजस्थान में पलाना में है।

अस्तु, स्पष्ट है कि भारत के मुख्य क्षेत्र प्रायद्वीप में और दूसरे क्षेत्र प्रायद्वीप के बाहर हैं। यह बात विचारणीय है कि भूगर्भिक दृष्टि से भारतीय कोयले की उम्र यूरोप और अमरीका के कोयलों की अपेक्षा कम है। गोंड़वाना युग का कोयला २० करोड़ वर्ष पुराना और टर्शरी युग का कोयला ५ करोड़ वर्ष पुराना है।

भारत के कोयले की किस्म (Types of Coal) :—

रासायनिक सम्मिश्रण की दृष्टि से भारत में तीन प्रकार का कोयला प्राप्त होता है :—

(१) **भूरा कोयला** (Lignite)—इसका रंग भूरा होता है। यह कोयला जलने में अधिक धुआँ देता है और शुद्ध कोयले से अधिक हल्का होता है किंतु यह शीघ्र चूर-चूर हो जाता है। इसमें कार्बन का अंश ४५ से ५५ प्रतिशत; जल का अंश, ३० से ५५ प्रतिशत और वाष्पीय पदार्थ ३५ से ५० प्रतिशत तक होता है। इस प्रकार का कोयला राजस्थान में पलाना (बीकानेर डिवीजन) मद्रास के अर्काट जिले और काश्मीर के कारेवाँ में मिलता है।

(२) **बिटयूमीनस कोयला** (Bituminous Coal)—यह कोयला गोंड़वाना काल की कई शिलाओं में मिलता है। इसका रंग काला होता है और जलते समय इससे धुआँ भी कम उठती है। यह गर्म होकर फूल जाता है और लिगनाइट से भारी होता है तथा हवा में खुला पड़ा रहने पर उतना शीघ्र चूर-चूर भी नहीं होता। इसमें कार्बन का अंश ४५ से ६५ प्रतिशत; जल का अंश ३० प्रतिशत और वाष्पीय पदार्थ का अंश ३५ से ५० प्रतिशत तक होता है।

[illegible] श्रेणी का [illegible] तहों में [illegible] जल का [illegible]

उपयोग से ध्यान की दृष्टि से भारतीय कोयले को निम्न श्रेणियों में बांटा जाता है :—

(१) **धातु शोधन के उपयुक्त कोक बनाने योग्य कोयला**—इस प्रकार के कोयले से कोक बना कर धातु शोधन के उपयोग में लाया जाता है। ऐसा कोयला झरिया, बुकारो, रानीगंज और गिरडीह में मिलता है। अनुमानतः इन खानों में २०० करोड़ टन से कुछ ही अधिक कोकिंग कोयले का जमाव है जिसमें से छीजन आदि कट कर लगभग १४० करोड़ टन कोयला कोक बनाने के लिए उपलब्ध हो सकता है। इस कोयले में कार्बन की मात्रा अधिक और राख की मात्रा कम होती है।

(२) उत्तम श्रेणी का भाप बनाने योग्य कोयला—(High Grade Steam Coal)—इस एकार का कोयला उत्तम किस्म की भाप बनाने के काम में आता हैं। यह रानीगंज, बुकारो, करनपुरा, तलचर, मध्य प्रदेश और सिंगरेणी क्षेत्रों से प्राप्त होता है।

(३) निम्न श्रेणी की भाप बनाने वाला कोयला (Low Grade Steam Coal) यह भी बिहार-उड़ीसा की खानों से प्राप्त होता है।

(४) टर्शरी कोयला जो मुख्यत: आसाम से प्राप्त होता है।

(५) मद्रास में पाया जाने वाला लिगनाइट कोयला।

भारत के कोयला ग्रेडिंग बोर्ड (Coal Grading Board) ने भारतीय कोयले की, व्यापार की दृष्टि से निम्न श्रेणियाँ निर्धारित की हैं :—[1]

कोयला का वर्गीकरण

श्रेणी	निम्न वाष्पशील पदार्थ वाला	उच्च वाष्पशील पदार्थ वाला
चुनी हुई श्रेणी (Selected)	राख की मात्रा १३% तक (७,००० कैलोरीज से ऊपर)	राख की मात्रा ११% तक (६,८०० कैलोरीज से ऊपर)
प्रथम श्रेणी का (Grade I)	राख की मात्रा १३ से १५% तक (६,५०० कैलोरीज से ऊपर)	राख की मात्रा ११ से १३% तक (६,३०० कैलोरीज से ऊपर)
द्वितीय श्रेणी का (Grade II)	राख की मात्रा १५ से १८% तक (६,००० कैलोरीज से ऊपर)	राख की मात्रा १३ से १६% तक (६,००० कैलोरीज से ऊपर)
तृतीय श्रेणी का (Grade III)	ऊपर वाले से निम्न श्रेणी का	ऊपर वाले से निम्न श्रेणी का

यह बात ध्यान देने योग्य है कि विशेषता की दृष्टि से भारत का सर्वोत्तम कोयला भी सामान्यत: इंगलैंड के साधारण कोटि के कोयले से भी घटिया है। भारत के बुझे हुए कोयलों में भी फास्फोरस और राख की मात्रा अधिक रहती है। भारतीय कोयले में नमी का अंश भी काफी होता है।

रानीगंज और झरिया के कोयले में चमकदार और मैली तहें एक के बाद एक पाई जाती हैं। गिरड़ीह का कोयला साधारणत: मटमैला और काफी हद तक एक सार होता है। गोंडवाना कोयले का रासायनिक सम्मिश्रण इस प्रकार का है :—

स्थित कार्बन (Fixed Carban)	५० से ६७ प्र० श०
वाष्पशील पदार्थ (Volatile matter)	२३—३३ ,,
राख (Ash)	११—१६ ,,
नमी (Moisture)	१—७ ,,
फास्फोरस एवं गंधक	बहुत थोड़ी मात्रा में

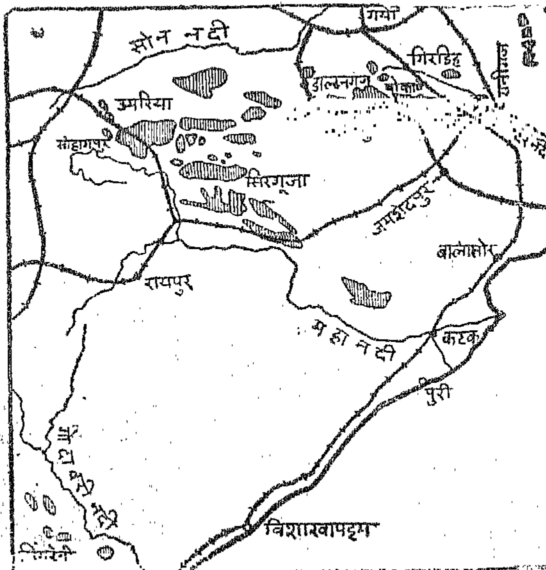
इसके विपरीत, टर्शरी कोयले की खानों से सामान्यत: गहरे रंग का चमकदार और भिन्न परतवाला कोयला पाया जाता है। इसमें गोंडवाना कोल-क्षेत्र की कोयले की तहों की अपेक्षा वाष्पशील पदार्थों की मात्रा अधिक होती है। टर्शरी कोयले का रासायनिक सम्मिश्रण इस प्रकार है :—

१. M. S. Krishnan, Geology of India & Burma, p. 316.

स्थित कार्बन	५३ से ५८ प्र० श०
वाष्पशील पदार्थ	३४—४४ ,,
राख	२—३ ,,
नमी	६ से कम ,,
गंधक	२ से कम ,,

बंगाल, बिहार और उड़ीसा के कोयले के क्षेत्र—

भारत की कुल उत्पत्ति का लगभग ६०% कोयला इन तीन राज्यों की खानों से प्राप्त होता है। यह सभी क्षेत्र दामोदर नदी की घाटी में फैले हैं। कलकत्ते से १२०-१५० मील उत्तर-पश्चिम की ओर दामोदर घाटी का सबसे पूर्व वाला रानीगंज का कोयला-क्षेत्र है। इसका क्षेत्रफल ६०० वर्ग मील है। इसका अधिकांश बर्दवान जिले में है किंतु इसकी सीमायें बांकुड़ा, मानभूम और संथाल परगने तक चली गई हैं। यहाँ कोयले की तहों का ढाल दक्षिण या दक्षिण-पूर्व की ओर है। यहाँ पर कोयला निकालने का प्रथम प्रयास कदाचित् १७७४ ई० में बाराकर नदी के किनारे किया गया था। रानीगंज क्षेत्र में यद्यपि कोयला **'बाराकर'** और **'रानीगंज'** दोनों श्रेणियों की शिलाओं में पाया जाता है किन्तु यहाँ रानीगंज श्रेणी का कोयला ही अधिक मिलता है। रानीगंज श्रेणी में कई अच्छी अच्छी कोयले की तहें हैं। बाराकर श्रेणी के कोयले में जल और वाष्पीय पदार्थो का अंश रानीगंज श्रेणी के कोयलों से कम और ठोस कार्बन अधिक मात्रा में होता है। रानीगंज श्रेणी की तह में थोड़ी-सी तह ही धातु सोधने योग्य कोक बनाने के लिए अच्छी है जिनमें **लिषारगढ़** तह



चित्र ८७—भारत के प्रमुख कोयला क्षेत्र

(Tishergarh Seam) १८ फीट मोटी और **संक्टोरिया** तह १० फीट मोटी उत्तम कोयले के लिए प्रसिद्ध है। केवल इन दोनों तहों में १,००० फीट की गहराई तक

१२ करोड़ टन से अधिक प्रथम श्रेणी का कोक बनाने वाला कोयला कूंता गया है और इसके अतिरिक्त २० करोड़ टन कोक न बनाने वाला किन्तु उत्तम कोयला और होगा। चूंकि दक्षिणी-पूर्वी प्रसार दामोदर के कच्छार से दब गए हैं अतः कोयले की चट्टानें बर्दवान और कलकत्ता की ओर कहाँ तक फैली हैं इसका अनुमान पूर्णतः नहीं लगाया जा सका है। रानीगंज क्षेत्र में अनुमानतः कुल कोयला ५६८ करोड़ टन १,००० फुट की गहराई तक होगा। यह क्षेत्र भारत के कोयले का ⅓ भाग उत्पन्न करता है। इस क्षेत्र को दक्षिणी-पूर्वी रेलवे जोड़ती है। इस क्षेत्र का कोयला रेलों और जहाजों के उपयोग में लाया जाता है।

बिहार के क्षेत्र :—

(१) **झरिया कोल क्षेत्र** (Jheria Coal fields)—रानीगंज क्षेत्र से ३० मील पश्चिम की ओर है। इस क्षेत्र का पता सन् १५८५ में लगा था। यह क्षेत्र २३ मील लम्बा (पूर्व-पश्चिम में) और १२ मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल १७५ वर्गमील है। इस क्षेत्र का कोयला 'बाराकर' और 'रानीगंज' दोनों श्रेणियों की जलज शिलाओं से मिलता है। 'बराकर' श्रेणी यहाँ पर लगभग ८४ वर्गमील में मिलती हैं और उनमें कोयले की बीस तहें (Seams) हैं। इन तहों की पृथक रूप से मोटाई कुछ फीट से २७ फीट तक है। कुल तहें मिल कर ३०० फीट के लगभग होंगी। 'रानीगंज' श्रेणी की शिलायें २१ वर्गमील में मिलती हैं। बाराकर श्रेणियों की मोटाई २,००० फीट और रानीगंज श्रेणियों की १,८४० फीट तक मानी गई हैं।[1] झरिया क्षेत्र की प्रायः सब तहों के कोयले से कोक बन सकता है परन्तु उत्तम कोक केवल ९ नम्बर से १८ १८ नम्बर तक की तहों से ही बनता है। झरिया क्षेत्र समस्त भारत का ५०% कोयला उत्पन्न करते हैं। दक्षिणी-पूर्वी रेलवे इस क्षेत्र को कलकत्ता से जोड़ती है। इस क्षेत्र के कोयले का उपयोग आसनसोल, कलकत्ता, जमशेदपुर और कुल्टी के कारखानों में किया जाता है।

(२) **गिरडीह क्षेत्र** (Girdih fields)—हजारीबाग जिले में है। इसका क्षेत्रफल केवल ११ वर्गमील है जिसमें कोयले वाली जलज शिलायें केवल ७ वर्गमील में ही मिलती हैं। ये कोयले की शिलायें 'बाराकर' श्रेणी की हैं परन्तु यहाँ के कोयले की मुख्य विशेषता यह है कि उससे अति उत्तम प्रकार का स्टीम-कोक (Steam Coke) तैयार होता है। यहाँ की प्रसिद्ध तहें **कडहरबाड़ी** (Kadharbari) **और पहाड़ी की सीम** कहलाती है। इस तह में ४ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान लगाया गया है। यह कोयला धातु शोधने में व्यवहृत होता है।

(३) **बुकारो क्षेत्र** (Bokaro fields)—झरिया के पश्चिम में है और दो भागों में बँटा है—पूर्वी बुकारो और पश्चिमी बुकारो। दोनों का क्षेत्रफल मिला कर २८० वर्गमील है। यह क्षेत्र ४० मील लम्बा और ३ मील चौड़ा है। यहाँ भी कोक बनाने योग्य उत्तम कोयला मिलता है। यहाँ ६ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान किया जाता है।

(४) **करनपुरा क्षेत्र** (Karanpura fields)—ऊपरी दामोदर की घाटी में बुकारो क्षेत्र से दो मील पश्चिम में यह क्षेत्र वर्तमान है। इस क्षेत्र के भी दो भाग हैं—उत्तरी और दक्षिणी करनपुरा जिनका क्षेत्रफल क्रमशः ४७५ और ७० वर्गमील

१. M. S. Krishnan : Geology of India & Burma, p. 321.

है। इस क्षेत्र की विशेषता यह है कि यहाँ पर कोयले की तह अधिक मोटी पाई जाती है। यहाँ ६० फीट मोटी तहें बहुत-सी हैं। इस क्षेत्र में भारत के कुल कोयले का २ प्रतिशत निकाला जाता है। यहाँ ६.५ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान है।

उड़ीसा के क्षेत्र —

उपर्युक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त उड़ीसा में **रामगढ़** (दामोदर घाटी), **रामपुर** (सम्बलपुर), तथा **पलामाऊ** के तीन क्षेत्र **औरंगा**, **हुटार** और **डाल्टनगंज** और उड़ीसा के **तलचर** इत्यादि प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। (१) औरंगा (Auranga) क्षेत्र का क्षेत्रफल ६७ वर्गमील है। यद्यपि यहाँ कोयले की तहें बहुत हैं किन्तु यह कोयला निम्न श्रेणी का है। (२) **हुटार क्षेत्र** का क्षेत्रफल ५७ वर्गमील है। यहाँ साधारण श्रेणी का बाराकर कोयला १२ फीट की तहों तक मिलता है। (३) **डाल्टनगंज क्षेत्र** का कोयला निकृष्ट श्रेणी का है। इसका क्षेत्रफल ३२ वर्गमील है। (४) उड़ीसा के **तलचर क्षेत्र** का क्षेत्रफल २०० वर्गमील है। यह ब्राह्मणी नदी की घाटी में है। यहाँ कोयले का जमाव १.८ करोड़ टन का कूँता गया है।

मध्य प्रदेश के कोयला-क्षेत्र (Coalfields in Madhya Pradesh)

भारत के इस भाग में कोयले का पता सन् १८२६ में ही लग चुका था। मध्य प्रदेश के मुख्य क्षेत्र उमरिया, सुहागपुर और सिंगरौली में हैं।

(१) **उमरिया** का क्षेत्रफल केवल ६ वर्गमील है। यहां कोयले में राख और वाष्प का अंश अधिक होता है। इस क्षेत्र में ८ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान है। यह क्षेत्र कटनी के निकट है।

(२) **सोहागपुर** क्षेत्र १,२०० वर्गमील में फैला है। यहाँ कोयले की कई तहें हैं।

(३) रीवाँ जिले में **सिंगरौली** क्षेत्र ६०० वर्गमील में फैला है। यहाँ कोयले की तहें ६ फीट से १८ फीट की मोटाई तक पाई जाती हैं। यद्यपि मध्य प्रदेश में कई स्थानों में कोयला पाया जाता है किन्तु कुछ क्षेत्र तो रेल इत्यादि से दूर हैं और बहुतों का कोयला विहार-उड़ीसा क्षेत्र के कोयले से निम्न श्रेणी का है। यहाँ के कोयले में नमी अधिक होती है।

(४) **पंचघाटी के कोयले के क्षेत्र** (Panch Valley Coalfields)—ये क्षेत्र छिंदवाड़ा जिले में सतपुड़ा पहाड़ के दक्षिण **तवा, कन्हान** और **पंच** नदियों की घाटियों में वर्तमान हैं। इन सबका क्षेत्रफल १०० वर्गमील है। यहाँ से मुख्य क्षेत्र **सिरगौरा, बरकोई, हिंगलदेवी, कन्हान** और **तवा** के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये क्षेत्र १६०५ से काम में आने लगे हैं। यहाँ कोयले की तहें ५ से १२ फीट तक मोटी हैं। कन्हान का कोयला कोक बनाने योग्य है।

(५) **मोहपानी क्षेत्र** (Mohpani Coalfields)—बम्बई के नृसिंहपुर जिले में इस प्रदेश का सबसे पुराना क्षेत्र है, जो नर्मदा घाटी के दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत के उत्तरी ढाल के तले में वर्तमान है। 'बाराकर' श्रेणी की शिलाओं में यहाँ पर कोयले की चार तहें हैं जिनमें से दो तो लगभग २० और २५ फीट मोटी हैं। यहाँ ४ करोड़ टन कोयले का जमाव होने का अनुमान है। बंगाल के साधारण कोयलों से यहां का कोयला कुछ निकृष्ट है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त बेतूल जिले में **शाहपुर** (Shahpura) इत्यादि क्षेत्र भी प्रसिद्ध हैं।

(६) **उत्तरी छत्तीसगढ़ तथा सरगुजा राज्य के क्षेत्र**—इन क्षेत्रों में रामकोला तातापानी, सिनहट, विश्रामपुर, बन्सर, लखनपुर, पंचबहनी और संबूरगढ़ इत्यादि छोटे-छोटे क्षेत्र सम्मिलित हैं। क्षेत्रफल में यद्यपि **रामकोला-तातापानी** (Ramkola-Tatapani) क्षेत्र ८०० वर्गमील है किन्तु गोंडवाना काल की कोयलादार शिलायें केवल १०० वर्गमील में ही पाई जाती हैं और यहाँ का कोयला भी अच्छा नहीं है। इस क्षेत्र के दक्षिण-पश्चिम में **झिलमिलो** क्षेत्र से अच्छा कोक बनाने योग्य कोयला मिलता है। यहाँ की तहें क्षैतिज (Horizontal) हैं जिससे कोयला निकालने में बहुत ही सुभीता रहता है इस क्षेत्र के दक्षिण और केन्द्रीय भाग में उत्तम कोयले का परिमाण अधिक है, किन्तु वे भाग रेलवे से दूर हैं।

(७) **दक्षिणी छत्तीसगढ़ और कोरिया के क्षेत्र**—छत्तीसगढ़ में कोरबा, मांड नदी की घाटी तथा रामपुर नामक स्थान में कोयला मिलता है। रामपुर का नाम **रायगढ़-हिंगिर** (Raigarh) क्षेत्र में भी है। यहाँ निम्न श्रेणी का कोयला मिलता है। यह क्षेत्र २०० वर्गमील में सम्बलपुर से २४ मील उत्तर में है। कोरिया क्षेत्र में अनेक स्थानों पर कोयला मिलता है। यहाँ पर **कुरासिया** (Kurasia)—क्षेत्रफल १८ वर्गमील—और **कोरियागढ़** आदि नये क्षेत्र हैं।

महाराष्ट्र के कोयला क्षेत्र :

(१) **वरधा घाटी के क्षेत्र** (Wardha Coalfields)—इन क्षेत्रों में बलारपुर, वरोरा, सस्ती और घुघस उल्लेखनीय हैं। परन्तु प्रथम दो ही अधिक महत्व के हैं :

(i) चांदा जिले में **बलारपुर** (Ballarpur) नामक क्षेत्र में कोयलेदार तहें ६२ फीट की गहराई तक मिलती हैं जिनमें केवल दो ही १७ और १४ फीट मोटी तहें अच्छे कोयले की हैं और इन्हीं से कोयला निकाला जा रहा है। यहाँ २० करोड़ टन कोयले का भंडार होने का अनुमान है। यहाँ का कोयला हवा में पड़ा रहने पर चूर-चूर होने लगता है और इस कोयले की तह में स्वयं जल उठने का भी डर रहता है।

(ii) के यवतमाल जिले में पिसगांव के निकट ७७ फीट की गहराई पर १३ से २७ फीट मोटी और राजपुर के निकट १६० फीट की गहराई पर १८ से ३० फीट की मोटी कोयले की तहें पाई जाती हैं यहाँ का कोयला हल्के किस्म का कोक न बनाने योग्य है। सम्पूर्ण जमाव २४ करोड़ टन का है। (iii) चांदा जिले में एक और क्षेत्र **वरोरा** (Warora) है जहाँ कोयले की दो तहें—ऊपरी तह २२ फीट मोटी और निचली तह १० फीट मोटी है। यहाँ १२० लाख टन कोयले का भंडार माना जाता है।

आंध्र प्रदेश के कोयला क्षेत्र (Coalfields in Andhra)

आंध्र में गोंडवाना काल की चट्टानें ३,८०० वर्गमील भूमि में फैली हैं। यहाँ सिंगरेनी (Singreni) नामक क्षेत्र अधिक प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में 'वराकर' श्रेणी की शिलायें ८ वर्गमील में पाई जाती हैं। यहाँ पर चार तहें हैं जिनमें सबसे बड़ी तह ३४ से ६७ फीट तक मोटी है। दक्षिण भारत में यह क्षेत्र पास है अतः यहाँ का कुल कोयला दक्षिणी भारत की रेलों और कारखानों में खप जाता है।

टर्शरी युग का कोयला (Cretaceous or Tertiary Coalfields)

सम्पूर्ण भारत का १.५% कोयला टर्शरी युग की चट्टानों से प्राप्त होता है। इसके मुख्य क्षेत्र राजस्थान और आसाम हैं। राजस्थान में बीकानेर के निकट में पलाना (Palana) नामक क्षेत्र से कोयला निकाला जाता है। यहाँ पर केवल एक ही तह

है, जिसकी मोटाई पृथ्वी तह पर केवल ६ फुट है, परन्तु नीचे कहीं-कहीं यह तह ३० फीट मोटी हो गई है। यहाँ का कोयला 'लिग्नाइट' वर्ग का है जिसमें उद्भिज रेशे (fossil-resin) दिखलाई पड़ते हैं। इसका उपयोग उत्तरी रेलवे में होता है।

आसाम राज्य में कोयला पूर्वी नागा पर्वत के उत्तर-पश्चिमी ढाल पर लखीमपुर तथा शिवसागर जिलों में पाया जाता है। यहाँ का सबसे बड़ा क्षेत्र **माकूम** है जो लगभग ५० मील लम्बा **नामदंगा लीडो** कोलक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र की तहों की मोटाई अधिकतर ५० फीट है। यहाँ ९ करोड़ टन कोयले होने का अनुमान लगाया गया है। यह उत्तम किस्म का गैस बनाने योग्य कोयला है किन्तु इसमें गंधक का अंश ज्यादा होता है।

इस क्षेत्र के अतिरिक्त **जयपुर** क्षेत्र है जो २५ मील की लम्बाई में फैला है और जहाँ कोयले का जमाव २ करोड़ टन है।

नजीरा क्षेत्र, **झांजी** और **देशोय** नामक क्षेत्र भी उल्लेखनीय हैं। यद्यपि यहाँ के कोयले में भी गंधक का अंश अधिक है किन्तु वैसे यह कोयला बड़ा उत्तम है जिससे कोक भी बन सकता है। आसाम का प्रायः सब कोयला रेलों, स्टीमरों और आसाम के चाय के कारखानों में ही काम आ जाता है! उत्तम प्रकार का कोयला मारघटा से ऊपर दिहांगघाटी में नामचिक में भी मिलता है।

नये क्षेत्र :

उपरोक्त कोयले के क्षेत्रों के अतिरिक्त अब कई नये कोयले के क्षेत्रों का पता लगा है। मध्य प्रदेश में रीवाँ, पथारकेरा और खोबरा में। इनमें खोबरा क्षेत्र सबसे मुख्य है। यह क्षेत्र २०० वर्गमील भूमि में फैला है और दो खंडों में बंटा है जिनमें से प्रत्येक में प्रति वर्गमील पीछे ६० लाख टन उत्तम श्रेणी के जमाव होने के अनुमान है।

नैपाल तराई क्षेत्र के शोहरतगढ़ और खाजावली में भी उत्तम श्रेणी के जमाव पाये गये हैं। उत्तर प्रदेश सरकार की सहायता से इस क्षेत्र की खुदाई की जा रही है।

आसाम में गारो पहाड़ियों में भी उत्तम श्रेणी के कोयले के जमावों का पता लगा है।

मद्रास में अब तक पाये जाने वाले लिगनाइट के सबसे बड़े भंडार मिले हैं। यहाँ अरकाट जिले में १६ वर्गमील क्षेत्र में ३२ फीट मोटी कोयले की तहें मिली हैं।

नीचे की तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों में कोयले का उत्पादन बताया गया है :—

कोयले का उत्पादन १९५५ और १९५६ में

राज्य	कुल उत्पादन का (००० टन)		मूल्य (लाख रु० में)	
	१९५५	१९५६	१९५५	१९५६
बिहार	१९,४२४	२०,०९०	२६,६९	३०,५६
पश्चिमी बंगाल	११,३३८	११,२९०	१६,७६	१८,२८
मध्य प्रदेश	३,७३९	४,८२९	५,६६	७७९
आंध्र	१,५४१	१,६९४	३,३१	३८७

राज्य	कुल उत्पादन का (००० टन)		मूल्य (लाख रु० में)	
	१९५५	१९५६	१९५५	१९५६
बम्बई	२७६	३३५	४२	५७
उड़ीसा	५५२	६०३	८३	९९
आसाम	५४३	५६७	१,२८	१४२
राजस्थान	२९	२६	५	५
योग	३८,२२६	३९,४३४	५६,०३	६,३५४

कोयला क्षेत्रों का उत्पादन

क्षेत्र	कुल उत्पादन		कुल उत्पादन का प्रतिशत	
	१९५५	१९५६	१९५५	१९५६
(i) गोंडवाना क्षेत्र : पश्चिमी बंगाल बिहार और उड़ीसा :				
बुकारो	२,४१५,३११	२,५०३,७८४	६.३१	७.३४
दार्जिलिंग	२३,२८४	३०,५१७	०.०६	०.०९
गिरीडीह	२२४,०६७	२८६,४३५	०.५९	०.०३
जयन्ती	८,८८२	११,१३२	०.०२	०.०३
झेरिया	१३,४६४,९२६	१४,०११,३२०	३४.३२	३५.५०
करनपुरा	१,०१४,७९४	१,१९७,५९८	२.६५	३.०३
पालामाऊ	१४६,३०५	—	०.३८	—
रामगढ़ (डाल्टनगंज तथा हुटार)	४८२,३८३	५३४,८२२	१.२६	१.३७
रामपुर (हिंगिर)	२९२,९६१	३१३,२६५	०.७७	
रानीगंज	१२,९७४,९०७	१२,७९७,३२१	३३.९४	
राजमहल	६,५९७	७,८४०	०.०२	
तलचर	२५९,४०९	२,८९,३१५	०.६८	०.७३
आंध्र प्रदेश :	१,५४०,५७१	१,६९४,०१९	४.०३	४.३०
महाराष्ट्र :				
बल्लारपुर	२२६,५७३	२९७,०१३	०.५९	०.७५
यवतमाल	५०,१२	१९,०९५	०.१३	०.०५
नागपुर	६०१	१८,७२५	०.००	०.०५
मध्य प्रदेश : कोरिया (सरगूजा)	१,४६३.३६१	१,५७५,२३३	३.८२	३.९९
पंचघाटी	१,९९६,८७४	२,१०८,१२०	५.२२	५.३४
रायगढ़	१,५७८	३,९९४	०.००	०.०१
रीवाँ	१,०६०,४५२	१,१४१,७३०	०.२८	२.८९
(ii) तृतीयक क्षेत्र :				
आसाम :				
खासी और जयन्ती की				

क्षेत्र	कुल उत्पादन १९५५	कुल उत्पादन १९५६	कुल उत्पादन का प्रतिशत १९५५	कुल उत्पादन का प्रतिशत १९५६
पहाड़ियाँ	१४९,०५७		०.३९	
लखीमपुर	३४४,७७३		१.९०	
नागा पहाड़ियाँ	१९,८२५	५६६,८००	०.०५	१.४३
शिवसागर	१९,४३२		०.०५	
मिकिर पहाड़ियाँ	९,८८०		०.०३	
राजस्थान :				
बीकानेर	२८,९४४	२५,६१८	०.०८	०.०६
योग : गोंडवाना क्षेत्र	३७,६५४,०४८	३८ ८४१,३७८	९८.५०	९८.५०
तृतीयक क्षेत्र	५७१,९११	५९२,४१८	१.५०	१.५०
महायोग	३८,२२५,९५९	३९,४३३ ७९६	१००.००	१००.००

उपभोग और व्यापार :

भारतीय कोयले की सबसे बड़ी मांग देश के ही उद्योग-धंधों में है। किन्तु ठन्डे देशों की भांति भारत में कोयला घरों को गरम करने आदि के लिए उपयोग में नहीं लाया जाता। प्रति व्यक्ति पीछे भारत में अन्य देशों की तुलना में कोयले की वार्षिक खपत बहुत कम है—केवल ०·०७ टन। ग्रेट ब्रिटेन में यह मात्रा ३·९ टन ; बेल्जियम में ३·९ टन ; सं० रा० अमरीका में ३·३ टन ; कनाडा में २·२ टन और जर्मनी में २ टन है।

भारत में जितना कोयला उपभोग में आता है उसका संभवत: ४०% उद्योगों में और लगभग ३३% रेलों में उपयोग होता है। १९५६ में कोयले का उपभोग इस प्रकार था :—

कोयले का उपभोग

	१९५४	१९५६	१९५८
रेलों में	११४·८ लाख टन	१३३·७ लाख टन	१४८·० लाख टन
उद्योगों में :—			
लोहे और इस्पात का उद्योग	३७·६ लाख टन	२३·१ लाख टन	४२·० ,,
सूती कपड़े का उद्योग	१७·६ लाख टन	१६·१ लाख टन	१८·० ,,
ईंटों का उद्योग	१६.८ लाख टन	२२·५ लाख टन	३१·० ,,
जूट का उद्योग	४·८ लाख टन	४·७ लाख टन	...
कागज का उद्योग	५·२ लाख टन	५·९ लाख टन	...
सीमेंट का उद्योग	१४·५ लाख टन	१७·६ लाख टन	२२·० ,,
इंजीनियरिंग उद्योग	२·४ लाख टन	३·५ लाख टन	...
घरेलू काम के लिए मुलायम कोक बनाने में	— लाख टन	१६·५ लाख टन	१९·३ ,,
बिजली उत्पादन में	२७·१ लाख टन	३१·१ लाख टन	३९·० ,,
जहाजों में तथा निर्यात में	२०·५ लाख टन	१८·० लाख टन	...

भारत से कोयले का निर्यात समीपवर्ती देशों को—विशेषत: लंका, ब्रह्मा, पाकिस्तान, सिंगापुर, हांगकांग, जापान, अदन, मौरीशस, पूर्वी अफ्रीका और मध्य पूर्व के देशों को होता है। इंग्लैंड में अधिक कोयला उत्पन्न होने तथा दक्षिणी अफ्रीका के कोयले से स्पर्धा होने से भारत के निर्यात व्यापार को धक्का लगा है। कोयले के निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए कोयला समिति (१९५४) ने सुझाव दिया है कि : (१) कोयला का व्यापार राज्य-सरकार के हाथ में नहीं रहना चाहिए। (२) ग्रेड के अनुसार कोयले के निर्यात पर जो प्रतिबन्ध लगे है उन्हें हटा दिया जाय; (३) कलकत्ता के बन्दरगाह पर निर्यात संबंधी सुविधाओं को सुधारा जाय। नीचे की तालिका में निर्यात-संबंधी आंकड़े दिए गए हैं :—

कोयले का निर्यात

वर्ष	मात्रा (००० टन)	मूल्य (करोड़ रु० में)
१९४७-४८	४·८	१·५
१९४९-५०	१२·०	१२·०
१९५१-५२	२८·०	९·५
१९५२-५३	२६·०	१०·०
१९५३-५४	११·८	४·१
१९५४-५५	१६·२	४·५
१९५५-५६	११·८	३·२

भारतीय कोयला उद्योग की विशेषतायें और दोष :

(१) यद्यपि भारत में कोयले का कुल उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहा है किन्तु कोयले की खानों के उद्योग की उत्पादन क्षमता बहुत कम है। अधिकांश खानें इतनी छोटी है कि उन्हें आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं माना जाता। १९५५ में सब मिला कर ७३४ खानें (Collieries) थीं इनमें से २५९ खानों का दैनिक उत्पादन ६०० टन से भी कम था ; २३६ खानों का दैनिक उत्पादन ६०० वे २,५०० टन का था। २०,००० या इससे अधिक टन का उत्पादन करने वाली केवल १९ खानें थीं। स्पष्ट है कि ३५% खानें अनार्थिक है।

(२) भारत में कोयले के क्षेत्रों का वितरण असमान है क्योंकि सम्पूर्ण उत्पत्ति का ९८·५% कोयला गोंडवाना क्षेत्र—बंगाल, बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश से—तथा केवल १·५% टर्शरी क्षेत्र के आसाम और राजस्थान से प्राप्त होता है। अत: प्रथम क्षेत्रों से कोयला औद्योगिक केन्द्रों तक ले जाने में व्यय अधिक हो जाता है। यही कारण है कि समुद्र तटीय भागों में कोयला विशेषत: अफ्रीका और इङ्गलैंड से आयात किया जाता है।

(३) भारत के कोयला-क्षेत्र नव्य-नदियों के प्रवाह-क्षेत्रों से दूर हैं अत: पश्चिमी देशों की भाँति हमारे यहाँ न तो नदियाँ ही और न नहरें ही कोयला ढोने के काम में आती हैं। परिणामत: सारा कोयला मालगाड़ियों के डिब्बों द्वारा ढोया जाता है जिससे व्यर्थ ही नष्ट हो जाने के कारण किराया भी काफी पड़ जाता है। १९५८ में कुल ४१० लाख टन कोयला डिब्बों में लादा गया जबकि उत्पादन ४६० लाख टन का हुआ था। बंगाल और बिहार उड़ीसा में प्रतिदिन लदान का औसत

३,२६२ डिब्बे था। यह देश में कोयले की आवश्यकता को देखते हुए बहुत ही कम है। अतः कोयले को खपत के स्थानों तक भेजने के लिए साधनों का पर्याप्त मात्रा में होना आवश्यक है जिससे कोयले को तुरन्त और सस्ते भाव से बेचा जा सके। इसके अतिरिक्त कोयले का यातायात व्यय कम करने की भी आवश्यकता है।

(४) भारत में कोयला निकालने के साधन बहुत ही पुराने हैं। अब भी कई खानों में मजदूरों द्वारा ही कोयला खोद कर निकाला जाता है। इसमें चूरा बहुत नष्ट हो जाता है। भारत में कोयला काटने की केवल ३७४ मशीनें हैं जिनके द्वारा प्रति महीने ६ लाख टन से भी कम कोयला जाता है तथा जो औसत मासिक उत्पादन का केवल १६½ प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त कोयला लादने की केवल ६ मशीनें हैं जिनसे प्रति महीने १८,५०० टन कोयला लादा जाता है और १६ ढोने वाली गाड़ियाँ (Corweyors) हैं जिनमें ४६,००० टन कोयला ढोया जाता है। भारतीय कोयला क्षेत्र समिति (१९४६) और कोयला उद्योग की वर्किंग कमेटी ने सुझाव दिया है कि कोयला उद्योग का शीघ्र ही मशीनीकरण कर दिया जाये जिससे प्रति महीने कम से कम १० हजार टन कोयला निकाला जा सके। इसी हेतु इस समिति का सुझाव है कि छोटी-छोटी खानों को मिलाकर एक बड़ी इकाई के रूप में संगठित किया जाय। तथा कोयले की खानों में प्रयुक्त होने वाली मशीनों का भी भारत में ही उत्पादन किया जाय।

कोयले का उत्पादन क्षेत्रीय आधार पर संगठित किया जाय जिससे उत्पादन और वितरण का अभिनवीकरण (rationalisation) किया जा सके और खानों से दूर के क्षेत्रों के विकास को प्रोत्साहन किया जा सके। अतएव आसाम को बहुत कुछ स्वावलम्बी बनाने के लिए वहाँ कोयले का उत्पादन बढ़ाया जाय, दक्षिणी भारत की रेलों और उद्योगों के लिए आंध्र में उत्पादन बढ़ाया जाय, सौराष्ट्र, कच्छ और पश्चिमी भारत की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मध्य प्रदेश और मद्रास में कोयले की खानों का विकास किया जाये।

अभी तक भारतीय खानों में मशीनों का उपयोग पूर्ण रूप से न होने के कारण कोयले का उत्पादन कम मात्रा में किया जाता है। भारत में प्रति मजदूर ८ घंटे की एक पारी (shift) में २.७ टन कोयले का उत्पादन करता है जबकि ब्रिटेन में ६.२६ टन; जर्मनी में ८.६६ टन और अमरीका में २१.६८ टन कोयले का उत्पादन होता है।

(५) भारत में अधिकांशतः घटिया किस्म का कोयला ही उपलब्ध होता है जिसमें कारबन का अंश कम होता है किन्तु राख, वाष्पीय अंश, और जल अधिक मात्रा में होता है। यह बात नीचे की तालिका से स्पष्ट होगी :—

कोयले की तहें	जल %	वाष्पीय अंश %	स्थिर कार्बन %	राख %
रानीगंज (घूसिक)	७.५	३४.८	५२.६	१२.६
रानीगंज (दिशेरगढ़)	२.५	३३.२	५४.२	६.८
झरिया, नं० १८	१.८	२८.८	५६.३	११.६
झरिया नं० ५—६	०.६	१४.१	६६.२	१६.८
गिरडीह, करहरबाड़ी	०.६	२२.५	६६.०	१०.६
आसाम	६.०	३४.०	५३.०	३.०

कोयले के सुरक्षित भंडार (Reserves of Coal)

भारत में कोयले के कितने भंडार सुरक्षित हैं इसके संबंध में निश्चयात्मक रूप से कहना असंभव है क्योंकि गोदावरी और महानदी के उत्तरी पश्चिमी छोरों के कोयला क्षेत्र पठार की गहरी पर्तों के नीचे दबे पड़े हैं। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि इस आवरण के नीचे कोयले की कितनी बड़ी राशि छिपी पड़ी है। इसी प्रकार भेरिया, रानीगंज और पूर्वी छोर गंगा नदी के कछार के नीचे दबे पड़े हैं। अतएव, भारत के सम्पूर्ण कोयला भंडार का अनुमान लगाना कठिन है फिर भी भारत के भूगर्भ विशारदों द्वारा समय-समय पर जो अनुमान लगाये गये हैं उनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत में निम्न श्रेणी का कोयला तो काफी परिमाण में मौजूद है किन्तु धातु-शोधन योग्य उत्तम कोयले के भण्डार बहुत कम हैं। डा० फरमर (Dr. L. L. Fermor) के मतानुसार भारत में कोयले का सम्पूर्ण जमाव ४,५२ १०० लाख टन है जिसमें से केवल १,७०,००० लाख टन कोयला कोक बनाने योग्य है बाकी कोक बनाने के अयोग्य है। दूसरे भूगर्भ विशारद डा० फाक्स (Dr. C. Fox) के मतानुसार सम्पूर्ण कार्य-योग्य कोयले का जमाव २०,००,०० लाख टन है जिसमें से ५,००,०० लाख टन अच्छे किस्म का और १,५०,००० लाख टन कोयला कोक बनाने के उपयुक्त है।[1] डॉ० फाक्स का मत है कि यदि वर्तमान परिमाण में ही यह कोयला निकाला जाता रहा तो अगले १०० वर्षों में ही यह जमाव समाप्त हो जायेगा। भारतीय कोल-क्षेत्र कमेटी (Indian Coalfield Committee) ने १९४६ में उच्च श्रेणी के कोकिंग भण्डारों को ७,००० से ७,५०० लाख टन के बीच में आंका है। इस कमेटी के मतानुसार यह परिमाण, यदि इसी प्रकार निकाला जाता रहा जैसा कि अब तक निकाला जा रहा है तो, आगामी ६५ वर्षों में ही समाप्त हो जावेगा। सबसे बाद के अनुमान के अनुसार भारत का कोयले का कुल भण्डार ६,००,००० लाख टन माना जाता है। जिसका वितरण इस प्रकार से है:—[2]

रानीगंज—भेरिया	२५६ ५०० लाख टन
वर्धा घाटी	१८० ००० ,,
सोन घाटी	१०० ००० ,,
छत्तीसगढ़ और महानदी	५०,००० ,,
सतपुड़ा प्रदेश	१०,००० ,,

---

१. डा० फाक्स के अनुसार अच्छे किस्म और कोकिंग कोयले के जमाव इस प्रकार हैं—

उत्तम कोयले के भण्डार
(Reserves of Good Quality Coal)

क्षेत्र	(दस लाख टनों में)
गिरडीह और जयन्तिका क्षेत्र	४०
रानीगंज, भेरिया, बुकारो और करनपुरा क्षेत्र	४,६००
सोन की घाटी के क्षेत्र	८०
तलचर क्षेत्र	२००
सतपुड़ा क्षेत्र	३०
बलारपुर, सींगरेणी	५०

२. देखिये National Planning Committee Report on "Power & Fuel" 1948.

गिरीडीह-देवघर	१,००० ,,
दार्जिलिंग और पूर्वी हिमालय	२,५०० ,,
योग	६००,००० ,,

इन जमावों में उत्तम श्रेणी का कोक बनाने योग्य कोयला केवल ५०,००० लाख ट. ही है। इनमें से रानीगंज में १८,००० लाख टन और भेरिया में १२,५०० लाख टन हैं।

भारत में सभी प्रकार के कोयले के भंडार एक फीट या उससे अधिक मोटी तहों में १,००० फीट की गहराई तक ६,००० करोड़ टन होने का अनुमान है। हाल की खोजों द्वारा ज्ञात हुआ है कि रानीगंज और भेरिया में पूर्व अनुमानित भंडारों से दुगुने भंडार होने की सम्भावना है। २,००० फीट की गहराई तक भारत में कोयले के सुरक्षित भंडार ६६०,००० लाख टन और कोक बनाने योग्य कोयले के २०,००० लाख टन से अधिक के हैं।[1]

धातुशोधन कोयला संरक्षण समिति (Metallurgical Coal Conservation Committee) के अनुसार धातुशोधन योग्य कोयले के क्षेत्र इस प्रकार हैं:—

(i) अछूते क्षेत्र :

चुनी हुई 'ए' और 'ब' श्रेणी	३२९६ लाख टन
ग्रेड १	३९५७ लाख टन
ग्रेड २	४९१ लाख टन

(ii) कार्यशील क्षेत्र :

चुनी हुई 'ए' श्रेणी	४०४० लाख टन
चुनी हुई 'ब' श्रेणी	५६७४ लाख टन
ग्रेड १	५१२९ लाख टन
ग्रेड १	५०४४ लाख टन

इन क्षेत्रों में चुनी हुई 'ए' श्रेणी का कोयला निम्न प्रकार निकाला जा सकता है:—

	कार्यशील क्षेत्र	अछूते क्षेत्र
बिना बालू भरने पर	३८५० लाख टन	१६४८ लाख टन
बालू भरने पर	७५१३ लाख टन	२६३७ लाख टन

इस समिति का अनुमान है कि खानों को बालू भरने से तथा कोयले को निकालने की प्रणालियों में सुधार करने से २,०० करोड़ टन कोकिंग कोयला प्राप्त किया जा सकता है किन्तु यदि निकालने में सावधानी न बरती गई तो इससे आधी ही मात्रा प्राप्त हो सकेगी।

कोयले की अन्य समिति (Working Party on Coal) के अनुसार भारत में कोक न बनाने योग्य कोयले के अनुमानित भंडार ३९६,५०२·५ लाख टन के हैं जिनमें से ३७,११३२·५ लाख टन गोंडवाना कोयला और २५,३७०·० लाख टन टर्शरी कोयला है।

---

१. Publication Division : Geology in India, 1957, p. 6.

विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में कोयले के भण्डार बहुत ही नगण्य है जैसा कि इन आँकड़ों से स्पष्ट होगा :—

			विश्व का प्रतिशत
संयुक्त राज्य अमरीका	२,२५४,०२७	दस लाख मैट्रिक टन	३६·६
रूस	१,२०० ०००	,,	२१·२
चीन	१,०११,०००	,,	१७·६
जर्मनी	३३६,२७४	,,	५·६
दक्षिणी अफ्रीका	२०५,३६५	,,	३·७
इङ्गलैंड	१७२,२००	,,	३·१
कनाडा	१६,६४४	,,	१·६
पोलैण्ड	८०,०१८	,,	१·४
भारत	६४,६७६	,,	१·३
विश्व का योग	५,६५१,६२०	दस लाख मैट्रिक टन	१००·०

अतएव, इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि देश के कोयले भण्डारों का समुचित रूप से संरक्षण किया जाए अन्यथा शीघ्र ही हमारे ये भण्डार समाप्त हो जायेंगे। इस सम्बन्ध में डा० फरमर का अनुमान है कि वर्तमान गति से निकाले जाने पर झेरिया का कोक-योग्य कोयला आगामी ४१ वर्षों में समाप्त हो जायेगा। यदि भारत में खान खोदने का सामान्य विकास होता रहा तो यह अवधि कम होकर केवल ३३ वर्ष ही रह जायेगी किन्तु यदि खानें खोदने के ढङ्गों में सुधार किया जाय और आग से बचाने के लिए बालू भरने (Sand-stowing) का उपाय अपनाया जाय तो यह आयु १०० वर्षों तक बढ़ सकती है। डा० चटर्जी के अनुसार वर्तमान गति से निकालने पर भारत के कोयला भण्डार निम्न वर्षों तक चल सकेंगे :—

	बालू भरने पर	बिना बालू भरे
कोक योग्य कोयला[1]	७५ वर्ष	५० वर्ष
कोक के अयोग्य कोयला	२०० ,,	१३५ ,,
निकृष्ट कोयला	४०० ,,	२८८ ,,

अतः भारतीय कोयले के भण्डारों का मितव्यय करने के लिए निम्न उपाय काम में लाने चाहिए :—

(१) रानीगंज, झेरिया, गिरडीह और करनपुरा क्षेत्रों का कोयला केवल धातु शोधन के लिए कोक-बनाने में प्रयुक्त किया जाय और अन्य स्थानों का कोयला (जिसमें वाष्पीय अंश और गन्धक अधिक है) मुख्यतः रासायनिक उप-प्राप्ति (by-products) उत्पन्न करने में ही किया जाय।

(२) कोयले को खानों से निकालने के लिए अधिक आधुनिक ढङ्गों का प्रयोग किया जाये जिससे कोयला निकालने में कोयले का कम से कम दुरुपयोग हो।

(३) कोयले की धुलाई को प्रोत्साहन दिया जाय जिससे उसमें राख का

१. यदि कोक-योग्य कोयले का प्रयोग केवल धातु के उद्योगों के लिए किया जाय तो इस प्रकार के कोयले वर्तमान उपयोग के अनुसार इसके भण्डारों की आयु २८५ वर्ष हो जायेगी।

अंश कम हो और पहले तथा दूसरे ग्रेड का धोया हुआ कोयला धातुशोधन के लिए उपयोग में लाया जा सके।

(४) कोयला निकालने के बाद जो खानें खाली हो गई हों उन्हें रेत आदि से भर दिया जाए जिससे शेष कोयला सुगमता से निकाला जा सके।

(५) बढ़िया कोयले का उत्पादन सीमित किया जाय।

(६) कोयले के द्वारा शक्ति का एक कण भी यदि प्राप्त हो तो उसे प्राप्त कर लिया जाय। अतः कोयले से मुलायम कोक बनाने की रीति को बदलना चाहिए। अभी साफ्ट कोक के उत्पादन में बड़ा अपव्यय होता है।

(७) भारतीय कोयले की खानों को पूर्ण रूप से व्यक्तिगत पूँजीपतियों के हाथों में न छोड़ा जाय क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य कोयला निकालने से धन कमाना है न कि देश की इस बहुमूल्य निधि का उचित रूप से उपयोग करना।

(८) नये कोयले के क्षेत्रों का पता लगाया जाय तथा घरों में उत्तम श्रेणी के कोयले के जलाने पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

(९) रासायनिक दृष्टि से भारतीय कोयला का विश्लेषण कर यह ज्ञात करना कि कौनसा कोयला किस काम में प्रयुक्त किया जा सकता है।

(१०) यदि कोक योग्य कोयले का उत्पादन देश की माँग से अधिक हो तो उसे विदेशों को निर्यात कर विदेशी-मुद्रा-अर्जित की जाये।

(११) यातायात और उद्योग-धन्धों में काम में आने वाली बिजली घटिया कोयले या उसके चूरे से ही बनाई जाय और अच्छे कोयले को बचा कर धातु शोधन के लिए रखा जाये।

द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अंतर्गत :

द्वितीय योजना के अन्त तक (१९६०–६१) कोयले का उत्पादन लक्ष्य ६०० लाख टन निश्चित किया गया है। १९५५ में कोयले का उत्पादन ३८० लाख टन था। २२० लाख टन का जो अतिरिक्त उत्पादन किया जायगा उसमें से १२० लाख टन सरकारी क्षेत्र से तथा १०० लाख टन निजी क्षेत्र के लिये रखा गया है। २२० लाख टन कोयले का यह उत्पादन इस प्रकार किया जायगा :—

कोयला क्षेत्र	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग
रानीगंज	—	५७.०	५७.०
भरिया	—	३२.५	३२.५
करनपुरा	२५.०	५.५	३०.५
कथारा	५.०	—	५.०
कोरबा	४०.०	—	४०.०
मध्य प्रदेश (झिलमिली और बिसरामपुर तथा कोरिया)	३०.०	५.०	३५.०
सिंगरैनी	१५.०	—	१५.०
वर्तमान राजकीय खानें	५.०	—	५.०
	१२०.०	१००.०	२२०.०

निजी क्षेत्रों में वर्तमान खानों तथा समीपवर्ती खानों की नई खानों से उत्पादन बढ़ाया जायगा जबकि सरकारी क्षेत्र में बिल्कुल नई खानों से बढ़ाया जायेगा। सरकारी क्षेत्र में १२० लाख टन कोयले का जो उत्पादन किया जाना है उनमें से १५ लाख टन सिंगरेनी की खानों से तथा ५ लाख टन वर्तमान सरकारी खानों से प्राप्त होने की आशा है। शेष १०० लाख टन का उत्पादन निम्नांकित खानों से करने का प्रस्ताव है :—

करनपुरा की खानें (बिहार)	२५.० लाख टन
कथारा (बिहार)	५.० ,,
कोरबा (मध्य प्रदेश)	४०.० ,,
झिलमिली, बिसरामपुर और कोरिया	३०.० ,,

इन खानों से निकलने वाले कोयले के निम्नांकित वर्ग होंगे :—

चुना हुआ (अ)	२४.० लाख टन
चुना हुआ (ब)	२१.० ,,
वर्ग प्रथम	३६.० ,,
वर्ग द्वितीय	९.० ,,
वर्ग तृतीय (ब)	१०.० ,,

इस समय निजी क्षेत्र में—जमदोबा, पश्चिम बुकारो और लोदना कोयला खानों में—कोयला धोने के तीन कारखाने हैं। वहाँ से टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी तथा भारतीय लोहा और इस्पात कम्पनी को धुला कोयला भेजा जाता है। सरकारी क्षेत्र में करगली में कोयला धोने का कारखाना बनाया गया है। यहाँ करगली और बुकारो का कोयला धोया जाता है। दुगड़ा, पाथरडीह और मौजूडीह में भी कारखाना बनाया जायेगा।

२. मिट्टी का तेल (Petroleum)

मिट्टी का तेल प्रायः मैदानों में साधारणतया नवीन पर्वतों के किनारे पाया जाता है क्योंकि यहां पृथ्वी के भीतरी भागों में उथल पुथल कम हुई है अतः ऊपर की छिद्रहीन चट्टानें टूटी नहीं और गैस तथा तेल सुरक्षित बने हैं। पुरानी चट्टानों के बने पठारी प्रदेशों में (जैसे दक्खन का पठार) मिट्टी का तेल नहीं पाया जाता। यह तेल पर्त्तदार चट्टानों में ही मिलता है, आग्नेय या परिवर्तित चट्टानों में नहीं। बालू और चूने के पत्थरों में तेल उसी तरह से विद्यमान रहता है जैसे स्पंज में पानी।

वैसे तो किसी भी समय की जलज शिलाओं (Acqueous Rocks) में तेल पाया जा सकता है किन्तु यह अधिकतर तृतीय कल्प की जलज शिलाओं से ही मिलता है क्योंकि यह शिलाएँ औरों से नई हैं जिससे पृथ्वी की आन्तरिक गर्मी तथा दबाव का प्रभाव इन पर अधिक नहीं पड़ा है अन्यथा मिट्टी का तेल गैस आदि के रूप में कभी का निकल गया होता। यह विश्वास किया जाता है कि तेल की उत्पत्ति वनस्पति और समुद्र के जीव जन्तुओं (Microscopic organism) के जो पुराने समय में डेल्टाओं, झीलों और समुद्रों में रहते थे—दब जाने से हुई है। जब जलज चट्टानें बन रही थीं तो उनमें बहुत से सामुद्रिक जीव जन्तु भी दब गये। दब जाने पर समय पाकर गर्मी और दबाव के प्रभाव से इन्हीं जीवजन्तुओं की चर्बी खनिज पदार्थों में मिलकर मिट्टी का तेल बन गई। मिट्टी का तेल प्रायः बालू, बालू के

पत्थर, चिकनी-मिट्टी के पत्थर और कहीं-कहीं छिद्रदार चूने के पत्थर में पाया जाता है। इन पत्थरों में भी यह छिद्रहीन पत्थरों की तहों के बीच में छिद्रदार पत्थरों (porous) में पाया जाता है। क्षितिज अथवा एक ओर की थोड़ी झुकी हुई जलज-शिलाओं की तहों का निर्माण कहीं-कहीं पृथ्वी की आन्तरिक हलचलों, खिचाव, तथा संकोचन के प्रभाव से जल की लहरों की बनावट के समान हो जाता है। इन झुकी हुई चट्टानों में ऊँचा उठा हुआ भाग उन्नतोदर (Anticline) और नीचा झुका हुआ नतोदर (Syncline) कहलाता हैं। मिट्टी का तेल इन्हीं ऊपर उठे हुए भागों में बन्द रहता है। ऐसे स्थानों को तेल-स्रोत (oil pool) कहते हैं।

तेल प्रायः नमकीन जल और गैसों के साथ मिला रहता है। सबसे नीचे जल रहता है उसके ऊपर नमकीन तेल और सबसे ऊपर गैस होती है। प्राकृतिक गैस के दबाव पर धरातल के नीचे वाले पानी के दबाव के कारण तेल की कुछ सीमित मात्रा कुछ समय के लिए झरनों या नालों के रूप में पृथ्वी के धरातल पर बहने लगती (overflow) है। किन्तु बाद में इसे पम्प करके निकाला जाता है। कभी-कभी मिट्टी का तेल फव्वारों के रूप में अपने आप भी भूमि के गर्भ से निकल कर बहने लगता है। किन्तु अधिकांश में इसे पम्पों द्वारा ही निकालना पड़ता है। मिट्टी के तेल के कुए साधारणतः ४ से ७ हजार फीट गहरे होते हैं।

इस तेल में कई प्रकार की अशुद्धियाँ मिली रहती हैं। अतः इसे नलों द्वारा साफ करने के लिए तेल-शोधन शालाओं (Refineries) में भेजा जाता है जहाँ से स्वच्छ कर कई वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं—क्रूड ऑयल, ईथर, पैट्रोल, बैंजिन, गैसोलीन, कैरोसीन, चिकना करने वाला तेल, मोम आदि। मिट्टी के तेल में कार्बन का अंश सबसे अधिक होता है। यह ८०%; हाईड्रोजन, १३% और आक्सीजन ७% होता है।

खनिज तेल की दृष्टि से भारत की स्थिति बड़ी ही दयनीय है क्योंकि यहाँ यह केवल आसाम राज्य में ही निकाला जाता है। भारत के तैल-स्रोत पूर्व-स्थित अराकान पर्वत श्रेणी की मोड़दार चट्टानों तक ही सीमित है। ये पर्वत-श्रेणियाँ पूरे आसाम से ब्रह्मा तक फैली हैं। तेल क्षेत्रों का यह सिलसिला इंडोनेशिया तक चला गया है। ये क्षेत्र प्राचीन-काल में टैथिस महासागर की पूर्वी खाड़ी के अवशेषों में स्थित हैं।

इन चट्टानों का क्षेत्रफल भारत में ४ लाख वर्गमील है। इन्हीं में संभावित तेल-क्षेत्रों का वितरण इस भांति अनुमान किया गया है :—

(१) आसाम क्षेत्र में ३०,००० वर्गमील में—जिसमें आसाम तेल कम्पनी को काम करने की सुविधा प्राप्त है।

(२) पश्चिमी बंगाल में ३०,००० वर्गमील क्षेत्र में जिसमें से १०,००० वर्ग मील में स्टैन्डर्ड वैकूम आइल कम्पनी को लाइसेंस दिया हुआ है। यही क्षेत्र सुन्दरबन और उड़ीसा के कुछ भागों तक विस्तृत है।

(३) पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और काश्मीर में ५०,००० वर्गमील क्षेत्र में।

(४) राजस्थान के ४६,५०० वर्गमील क्षेत्र में।

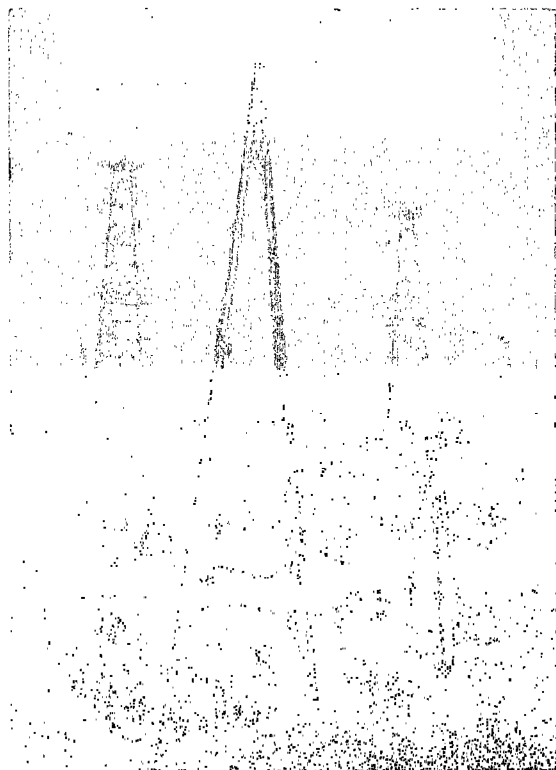
(५) गुजरात में खंभात-कच्छ में ६८,५०० वर्गमील में।

(६) गंगा की घाटी में १४२,००० वर्गमील क्षेत्र।

(७) मद्रास के तटवर्तीय भाग में १७,००० वर्गमील।

(८) आंध्र के ६,५०० वर्गमील, केरल प्रदेश के ६,००० वर्गमील और उपंड-मान, नीकोबार के ३,००० वर्गमील क्षेत्र में।

किन्तु इन संभावित क्षेत्रों में केवल आसाम को छोड़कर अन्यत्र तेल मिलने की निश्चित संभावना अभी तक नहीं हो पायी है। जम्मू तथा मन्डी जिले में सुन्दरनगर में और ज्वालामुखी के निकट तेल-मिश्रित बालू मिट्टी भी पाई गई है।



चित्र ८८—डिगबोई क्षेत्र में तेल के कुएँ

टर्शरी चट्टानों की पेटी, जो आसाम के उत्तर-पूर्वी कोने से १८० मील दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली है, में स्थान-स्थान पर खनिज तेल पाये जाने के चिन्ह उपलब्ध हुए हैं। इन चिन्हों के साथ-साथ हर जगह कोयला और कभी-कभी खारे जल के सोते भी मिलते हैं। आसाम में धरती की सिकुड़नों की श्रेणी दक्षिण की ओर

कछार तक फैली है जहाँ तेल के स्रोत भी मिलते हैं। इसी श्रेणी में एक ओर आराकान तट के तेल क्षेत्र और दूसरी ओर इरावदी घाटी के तेल क्षेत्र स्थित हैं।

आसाम के विभिन्न भागों में तेल पाया जाता है किन्तु खासी और जयन्तिया पहाड़ियों के दक्षिणी निचले भागों और उत्तरी-पूर्वी आसाम की कोयले वाली चट्टानों में (विशेषकर लखीमपुर जिले में) पाये जाने वाले क्षेत्र प्रमुख हैं। यहाँ का तेल 'शेल तेल' (Shale oil) है जो तेल से तर-बालू से प्राप्त किया जाता है। यहाँ तेल साधारणतः १,५०० से ३,५०० फीट की गहराई से प्राप्त किया जाता है। यहाँ का प्रसिद्ध तेल-क्षेत्र उत्तरी-पूर्वी आसाम से लगा कर सुरमा घाटी में होता हुआ रामरी और चेदूबा द्वीपों तक ८०० मील के घेरे में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में मुख्य तेल-क्षेत्र लखीमपुर जिले में डिगबोई के निकट है। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल २½ वर्गमील है। यहाँ तेल के कुए बप्पापांग, हंसापांग, पानीटोला तथा डिगबोई है। डिगबोई से भारत के उत्पादन का ९% तेल प्राप्त किया जाता है। इन तेल कूपों की मालिक आसाम तेल कं० (Assam Oil Co.) है। यह तेल नलों द्वारा डिगबोई की शोधन-शाला में ले जाया जाता है जिसकी तेल साफ करने की वार्षिक क्षमता ४·२ लाख टन की है।

सुरमाघाटी में हल्की श्रेणी का तेल बदारपुर, महीमपुर और पथारिया में पाया जाता है।

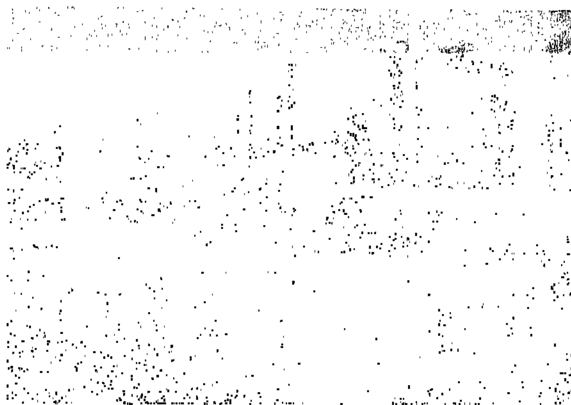


चित्र ८९—आसाम के तेल क्षेत्र

आसाम का तेल डिगबोई में साफ किया जाकर उससे पैट्रोल, जूट-चिकना करने का तेल, मशीन चिकनी करने का तेल, जलाने का निकृष्ट तेल, पराफीन मोम आदि प्राप्त किया जाता है। आसाम के कुओं से प्रतिदिन ५,००० डिब्बे (barrel) तेल प्राप्त होता है।

भारत में खनिज तेल का उत्पादन देश की मांग के अनुरूप बहुत ही कम होता है अतः प्रतिवर्ष लगभग ७५ करोड़ रुपये की कीमत का तेल एवं अन्य वस्तुएँ विदेशों से आयात करनी पड़ती है—विशेषतः ईरान, ईराक, अरब, इन्डोनेशिया, बहरीन

टापू संयुक्त राज्य अमरीका से। अतः भारत सरकार ने संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, रूमानिया और पश्चिमी जर्मनी के तेल-विशेषज्ञों की सहायता से देश में तेल-क्षेत्रों की



चित्र ९०—डिगबोई का तेल-शोधक कारखाना

जाँच करना आरम्भ किया है। इन विशेषज्ञों का विश्वास है कि पंजाब के ज्वालामुखी-क्षेत्र, राजस्थान के पश्चिमी भाग, गंगा की घाटी, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, खंभात, कच्छ और मद्रास, आंध्र तथा केरल के कुछ भागों में तेल-स्रोत निहित हैं। तेल क्षेत्रों की जाँच के निमित्त द्वितीय योजना में ३० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

उपर्युक्त जाँच के अनुसार आसाम में नहोरकटिया और हरिजन क्षेत्र से २६ लाख टन क्रूड तेल प्रतिवर्ष के हिसाब से आगामी २० वर्षों तक पर्याप्त तेल निकाला जा सकेगा। मोरन क्षेत्र में भी तेल के भंडार हैं किन्तु थोड़ी मात्रा में। यहाँ तीनों क्षेत्रों में तेल के कुए ९,००० से १२,००० फीट की गहराई तक खोदे गए हैं। पंजाब के ज्वालामुखी, नूरपुर, धर्मशाला और बिलासपुर में ८,००० फीट तक खुदाई की गई है इसमें तेल के स्रोत पाये गए हैं। राजस्थान में जैसलमेर जिले, गुजरात में खंभात और पश्चिमी बंगाल में बर्दवान में भी तेल के कुओं की खुदाई की जा रही है। इन क्षेत्रों के तेल में धनी होने का अनुमान है। गुजरात में बड़ौदा के आस-पास ८५ से २३० मीटर की गहराई तक १२ कुएं खोदे जा चुके हैं जिनमें ११वें में गैस और १२वें में तेल के साथ गैस मिली है। खंभात में लुनेज में २१९१ मीटर की गहराई तक खुदाई की जा चुकी है। यहाँ ६० मीटर की मोटाई में तेल मिले रेत की कई पर्तें पाई गई हैं। पंजाब में ज्वालामुखी में २३०७ मीटर तक और होशियारपुर में ३२१२ मीटर तक खुदाई की जा चुकी है।

भारत में १९५४ में ८२३ लाख गैलन पैट्रोलियम निकाला गया था और १९५५ में ६६७ लाख गैलन।

नीचे की तालिका में तेल का उपभोग बतलाया गया है :—

हवाई जहाजों में	१ लाख टन	भट्टों में तेल	७ लाख टन
मोटरों में	८ लाख टन	विद्युत् मन	३ लाख टन

कैरोसीन	१३ लाख टन	चिकना करने का तेल	२ लाख टन
डीजल इंजन	८ लाख टन	अन्य उपयोग में	३ लाख टन
		योग	४५ लाख टन

नीचे की तालिका में मिट्टी के तेल की वस्तुओं का आयात बताया गया है :—

वस्तुएँ	१९५०–५१		१९५४–५५	
	दस लाख गैलन	मूल्य लाख रु०	दस लाख गैलन	मूल्य लाख रु०
कैरोसीन	२२६.८	१,२६५	३१०.२	२,८६७
डीजल तेल	१३८.८	१,३९५	१९४.८	२,४९८
अन्य ईंधन तेल	१९८.२	१,१८०	१५१.७	१,९१५
चिकने तेल	४०.६	६९५	५६.३	८७०
मोटर-स्प्रिट	१६३.०	—	२१३.५	—
अन्य प्रकार के तेल	०.३	—	१.३	—
योग	७६६.८	—	९२७.३	—

प्रथम योजना के पूर्व भारत में तेल शोधनशाला केवल डिगबोई में ही थी



चित्र ८१—ट्राम्बे में तेल शोधन की भट्टी

थी किंतु प्रथम योजना काल में दो और द्वितीय योजना काल में एक शोधनशाला और स्थापित की गई है। बम्बई में ट्राम्बे में दो शोधनशालायें निर्मित की गई हैं—एक स्टैन्डर्ड वैकूम ग्रायल कं० (Stanvac) द्वारा जिसकी शोधन क्षमता १२ लाख टन क्रूड तेल साफ करने की है। इसमें १७ करोड़ रुपये का व्यय हुआ है। यह शाला अगस्त, १९५४ में कार्यान्वित की गई है। दूसरी शोधनशाला भी ट्राम्बे में ही है। यह बर्मा शैल कं० (Burma-Shell) द्वारा जनवरी १९५५ में आरंभ की गई। इस पर ३३ करोड़ रुपया लगा है और इसकी वार्षिक शोधन क्षमता २० लाख टन की है। तीसरी शोधनशाला विशाखापट्टनम में नवम्बर १९५७ में कैल्टैक्स कं० (Caltex) द्वारा आरंभ की गई। इसमें १२½ करोड़ रुपये खर्च हुए हैं और इसकी वार्षिक क्षमता ६.७ लाख टन की है। आसाम तेल कंपनी की डिगबोई शोधनशाला का विस्तार–एक नए गैसोलीन प्लान्ट और चिकने करने वाले तेल का प्लान्ट लगाने से—अब बढ़ कर ९.८ लाख टन हो गया है। इस विस्तार योजना में ५९ लाख रुपये लगे हैं। आसाम को छोड़कर अन्य तीन शोधन शालाओं की सम्मिलित वार्षिक क्षमता ४३ लाख टन की है।

अब एक और शोधनशाला बिहार में (बरौनी) जिसकी शोधन क्षमता ७½ लाख टन होगी) और एक आसाम में गोहाटी में बनाने का प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका है। इसकी शोधन क्षमता ५ लाख टन होगी। इसके अतिरिक्त तेल प्राप्ति के लिए होशियारपुर के निकट बासी कलाँ में; खंभात के निकट पालड़ी में; पंजाब में बाहल, सुल्तानपुर और आसाम में शिवसागर में अब शीघ्र ही तेल के कुओं की खुदाई की जाने वाली है।

अध्याय १५

शक्ति के स्रोत (क्रमशः)

३. जल शक्ति (Water Power)

किसी भी देश के आर्थिक और औद्योगिक विकास के लिए जल विद्युत शक्ति का महत्व बहुत अधिक है। भारत में जल-विद्युत् शक्ति का पहला कारखाना १८९७-९८ में दार्जिलिंग में स्थापित किया गया था। इसके शीघ्र ही बाद १८९९ में कलकत्ता में कोयले की तापशक्ति का कारखाना खोला गया। १९०३ में दक्षिणी भारत में मैसूर राज्य सरकार द्वारा कावेरी नदी के शिवासमुद्रम प्रपात पर एक जल-विद्युत शक्ति गृह स्थापित किया गया। इसकी उत्पादित शक्ति यहाँ से ९२ मील दूर कोलार की सोने की खानों को दी जाती है। प्रथम महायुद्ध काल में इस दिशा में कुछ और प्रगति की गई। १९१६-१८ के औद्योगिक आयोग की सिफारसों के अनुसार भारत की जल-सम्पत्ति का अनुमान लगाने हेतु श्री मीयर्स (Mears) की नियुक्ति भारत सरकार के जल-विद्युत सलाहकार के रूप में की गई। इन्होंने अनुमान लगाया कि भारत की कुल संभावित शक्ति ८० लाख किलोवाट की है किन्तु इस समय सरकार ने जलविद्युत शक्ति के विकास के लिए विशेष रुचि प्रदर्शित नहीं की। भारत में जल-विद्युत शक्ति का वास्तविक विकास श्री जमशेद जी टाटा के सुप्रयत्नों द्वारा ही हुआ। १९१५ में तत्कालीन बम्बई राज्य में टाटा जलविद्युत् शक्ति योजनाओं के अन्तर्गत टाटा जलविद्युत शक्तिगृह स्थापित किये गये। इसी के बाद मद्रास, पंजाब, केरल और उत्तर प्रदेश की सरकारों ने भी अपने यहाँ जलशक्ति के विकास की योजनायें कार्यान्वित कीं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् इस दिशा में अच्छी प्रगति हुई है।

१९२५ में जलविद्युत शक्ति की उत्पादन क्षमता केवल १६२,३४१ किलोवॉट थी, १९३५ में यह बढ़ कर ६००,४०२ किलोवॉट हो गई। १९५५ में यह २६,९४, ८१७ किलोवॉट थी। पिछले १० वर्षों में उत्पादन क्षमता में १३६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इन्हीं १० वर्षों में विद्युत शक्ति उत्पादन में १७८ प्रतिशत की वृद्धि हुई अर्थात् यह ४०,७३३ लाख किलोवॉट से बढ़ कर ११३,२१९ लाख किलोवॉट हो गई। १९५७-५८ में कुल उत्पादित बिजली की मात्रा ३,२२३ हजार किलोवॉट थी इसमें से १,२१४ हजार किलोवॉट बिजली जल से उत्पन्न की गई।[१] नीचे की तालिका में भारत के प्रमुख राज्यों में जलविद्युत् शक्ति की उत्पादन-क्षमता और वास्तविक उत्पादन बताया गया है :—[२]

---

१. India, 1959, p. 290.

२. Indian Information, 1st June, 1958.

जलविद्युत् शक्ति की उत्पादन क्षमता और उत्पादन
मार्च १९५८

राज्य	उत्पादन क्षमता (किलोवॉट घंटे)	शक्ति उत्पादन की गई (दस लाख किलोवॉट घंटे)
आंध्र	१९२,८७६	१०२·०
आसाम	१५,८८०	८·६
बिहार	२४४,४४१	३१२·१
गुजरात + महाराष्ट्र	८१०,१४६	२,२८३·७
मद्रास	२४९,६६६	८९९·३
मध्य प्रदेश	९४,४०७	१८६·८
उड़ीसा	१५६,७७२	११·८
पंजाब	१७४,४६३	२२०·९
उत्तर प्रदेश	३६७,७४०	६२०·९
प० बंगाल	५४०,७२३	१,४६२·३
जम्मू और काश्मीर	१२,८७५	२६·०
केरल	११३,७७७	२५०·१
मैसूर	१९०,४६४	६५९·९
सम्पूर्ण भारत का योग	३२,७६,८४१	७,५२१.७

भारत में जल की बिजली का उत्पादन निरंतर बढ़ रहा है। १९४८-४९ में जल-विद्युत् का उत्पादन ४६,८१० लाख किलोवॉट घंटे था, १९५१-५२ में यह ५९,४८० लाख कि० घंटे; १९५२-५३ में ६३,०१० लाख कि० घंटे; १९५३-५४ में ६६,६७० लाख कि० घंटे और १९५४-५५ में ७५,२२० लाख कि० घंटे और १९५७-५८ में ११३,२०० लाख कि० घंटे हो गया।

नीचे की तालिका मे भारत में सभी प्रकार की बिजली की प्रगति के सूचनांक (Index Numbers) दिए गए है :—

बिजली की प्रगति के सूचनांक
(१९३९=१००)

	१९४७	मार्च १९५८
संस्थापित क्षमता :	१२७·०	३०·१३
भाप से	१४२·१	३२६·१
तेल से	११२·५	२८३·४
जल से	१११·३	२७४·५
उत्पादन :	१६६·८	४६३·६
भाप से	१६७·०	५८२·३
तेल से	१४९·३	२६२·३
जल से	१६७·८	३८४·३
कोयले की खपत	१७२·९	४७९·०
तेल की खपत (इंधन के रूप में)	१४५·८	२२२·०

	१९४७	मार्च १९५८
बिजली का उपयोग :	१९५·०	४५७·४
घरेलू एवं निवास सम्बन्धी कार्यों में	२०६·५	६६३·५
व्यापारिक एवं छोटे इंजनों में	२३८·२	६९१·९
औद्योगिक	१९२·४	४५३·४
परिवहन	१२८·९	१९६·३
सिंचाई	१९४·७	८४४·७
सड़कों व सार्वजनिक स्थानों की रोशनी	१०७·०	३०१·४
जल-कल	१९४·२	३५६·६

जलविद्युत उत्पादन की दशायें :

जल विद्युत बनाने के लिए ऐसा स्थान चुना जाता है जहाँ स्वाभाविक जल प्रपात पाये जाते हैं अथवा जल प्रपात न होने पर वहाँ बांध आदि बना कर कृत्रिम जल प्रपात तैयार किए गए हों। प्रपात के जल की शक्ति द्वारा जल-चक्की (Turbine) चलाई जाती है जिसमें बिजली उत्पन्न करने वाला यंत्र (Dynamo) कार्य करता है और विद्युतशक्ति तैयार हो जाती है। इसे तारों द्वारा दूरस्थ स्थानों को ले जा सकता है।

जलशक्ति के विकास में निम्न भौगोलिक और आर्थिक दशाओं का होना आवश्यक है :—

(१) प्रपातों का होना

जिस स्थान पर जलशक्ति उत्पन्न की जाय वहाँ का धरातल ऊँचा-नीचा होना चाहिए। जब नदियाँ पर्वतीय प्रदेशों अथवा हिमानियों द्वारा प्रभावित क्षेत्रों पर होकर बहती है तो उनके मार्ग में झरने अथवा प्रपात बन जाते हैं। ग्लेशियर प्रभावित जल प्रदेश इस दृष्टि से बड़े लाभदायक होते हैं। सहायक नदियों की घाटियाँ खड़े ढाल वाली होने के कारण नदियों के मार्ग में बाधायें डालती हैं जिससे जलागार और जल प्रपातों की अधिकता पाई जाती है। जिस झरने का पानी जितनी ऊँचाई से गिरेगा उस स्थान पर उतने ही कम खर्चे और सुविधा से जलशक्ति के उत्पन्न होने की संभावना होगी। यदि थोड़े परिमाण का जल अधिक ऊँचाई से गिरता है तो शक्ति का उत्पादन भी बड़ी मात्रा में होगा और जहाँ अधिक परिमाण का जल कम ऊँचाई से गिरता है तो शक्ति भी उसी मात्रा में उत्पन्न होगी। भारत में उत्तर प्रदेश में गंगा नहर में हरिद्वार से अलीगढ़ तक १३ जल प्रपात पाये जाते हैं जिनमें से ११ पर—यथा बहादुराबाद, मुहम्मदपुर, सलवा, चितौड़ा, सुमेरा, बुलन्दशहर, पालरा, भोला आदि—जलशक्ति तैयार की जाती है। दक्षिणी भारत में पश्चिमी घाटों के जल प्रपातों तथा मध्यप्रदेश में **धुआंधार** जल प्रपात और मैसूर में **जिरसप्पा** प्रपात पर जल-विद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है।

(२) जल का निरन्तर प्राप्त होना

जलशक्ति के उत्पादन करने के लिए जल की मात्रा का निरन्तर और एकसी मात्रा में उपलब्ध होना भी आवश्यक है। अस्तु, जिन क्षेत्रों में वर्षा पर्याप्त और साल भर समान रूप से होती रहती है वहाँ नदियों में प्रवाहित जल की राशि भी निरन्तर

समान गति से प्राप्त होती रहती है तथा जिन स्थानों में वर्षा मौसमी होती है वहाँ कुछ महीनों में अधिक पानी प्राप्त होता है और नदियों में बाढ़ें आ जाती हैं। किन्तु शेष महीने नदियों में पानी की मात्रा कम रह जाती है और जलशक्ति के लिए जल की मात्रा पर्याप्त नहीं रहती। ऐसे स्थानों पर बांध आदि बनाकर वर्षा ऋतु के जल को रोका जाता है और इस जल को कृत्रिम रूप से झरने के रूप में ऊँचाई से गिराया जाता है।

नदियों में बाढ़ नहीं आनी चाहिए क्योंकि इससे शक्ति-यंत्रों को हानि पहुंचने की संभावना रहती है और यदि नदियों में पानी कम हो जाता है तो यंत्र ठीक प्रकार से बिजली नहीं बना सकते और उन्हें अनिवार्यत: बन्द कर देना पड़ता है। इसलिए प्राय: बाढ़ वाली नदियों के ऊपरी भागों में बांध अथवा झील बनाकर जल-राशि को रोक लिया जाता है जिससे जलशक्ति के लिए वर्ष भर ही पर्याप्त मात्रा में जल मिल सके।

(३) अन्य शक्ति के साधनों का अभाव

जलशक्ति के उत्पादन के लिए वे ही प्रदेश अनुकूल होते हैं जहाँ कोयला अथवा मिट्टी का तेल न तो पर्याप्त मात्रा में मिलता ही हो और न वह सस्ता ही हो। इसीलिये भारत के बड़े-बड़े महत्वपूर्ण जल-शक्ति उत्पादन केन्द्र उन्हीं क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ ये दोनों साधन मँहगे पड़ते हैं। जल-विद्युत की प्रारम्भिक लागत बहुत अधिक पड़ती है और उसमें लगी हुई पूँजी पर ब्याज आदि का व्यय भी अधिक हो जाता है अत: बिजली कुछ मँहगी पड़ती है। किन्तु एक बार जल-यंत्रों के चालू किये जाने पर उन्हें काम में लाना ही पड़ता है अत: जिन देशों में लिगनाइट कोयला अधिक पाया जाता है वहाँ जल से विद्युत शक्ति प्राप्त नहीं की जाती किन्तु दक्षिणी भारत में जलराशि की अधिकता से जल विद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है।

(४) खपत के केन्द्रों का निकट होना

चूंकि विद्युत शक्ति को उत्पादन के केन्द्रों से अधिक दूरी तक भेजने में काफी खर्चा पड़ता है अत: यथा सम्भव खपत के केन्द्र जलशक्ति पैदा करने वाले क्षेत्रों के निकट ही होने चाहिए। जलशक्ति तारों द्वारा दूरस्थ केन्द्रों को भेजी जाती है किन्तु ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती जाती है त्यों-त्यों शक्ति का क्षय होने लगता है। साधारणत: शक्ति संवाहन में १० से २०% तक विद्युत-शक्ति का ह्रास होता है :—

१०० मील की	दूरी पर	८ %
२००	,,	१० ,,
३००	,,	१३ ,,
४००	,,	१७ ,,
५००	,,	२१ ,,

अधिक दूरी तक तार लगाना और उनकी देखभाल करना बड़ा व्ययसाध्य हो जाता है। इस व्यय के कारण एक ऐसा बिन्दु आजाता है जहाँ से आगे शक्ति-संवाहन की लागत संवाहित शक्ति के मूल्य से बढ़ जाती है। अत: खपत के केन्द्र विद्युत उत्पादन के क्षेत्रों के निकट होना अनिवार्य है। इस दृष्टि से बम्बई और मद्रास, मैसूर तथा केरल की स्थिति बड़ी उत्तम है।

(५) जल-विद्युत उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली पुच्छल जलराशि (Tail-

water) का उपयोग सिंचाई के लिए किया जा सके तो थोड़े से ही अतिरिक्त व्यय से नहरें बनाकर सम्बन्धित क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है और जलशक्ति के उत्पादन का मूल्य भी घटाया जा सकता है।

(६) जल विद्युत उत्पादन के क्षेत्र ऐसे स्थानों पर स्थित होने चाहिए जहाँ मशीनें, आवश्यक भारी यंत्र एवं अन्य सामान सुगमतापूर्वक पहुँचाया जा सके।

विद्युत-शक्ति के क्षेत्र

जहाँ प्रकृति ने भारत को कोयले और मिट्टी के तेल की दृष्टि से निर्धन बनाया है वहाँ उसने भारत में जल-विद्युत को उत्पन्न करने के साधन उपलब्ध करके इस कमी को पूरा कर दिया है। अतः देश प्रायः दो भागों में बँट गया है—एक भाग वह है जिसमें जल-विद्युत-शक्ति का उत्पादन किया जा सकता है और दूसरे वे क्षेत्र हैं जिनमें कोयले की खानों के निकट होने के कारण कोयले से ही विद्युत शक्ति पैदा की जा सकती है। भारत में जल-विद्युत शक्ति के मुख्य क्षेत्र ये हैं :—

(१) संभावित जल-विद्युत शक्ति का सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र हिमालय पर्वत के नीचे पाकिस्तान के पश्चिमी भाग से लेकर पूर्व में आसाम तक फैला है। इस क्षेत्र में हिमाच्छादित भागों से निकल कर बहने वाली प्रमुख नदियों में वर्ष भर ही पानी भरा रहता है तथा नदियों के मार्ग में कई प्रपात होने के कारण उपयुक्त स्थानों पर जल रोक कर बाँध बनाये जा सकते हैं किन्तु इस प्रकार उत्पादित शक्ति अधिक दूर तक नहीं भेजी जा सकती।

(२) जल-विद्युत शक्ति का दूसरा विशाल क्षेत्र दक्षिणी प्रायद्वीप की पश्चिमी सीमा के सहारे महाराष्ट्र राज्य में होकर मद्रास तथा मैसूर और केरल तक फैला है। इस क्षेत्र में भारत की सबसे मुख्य-मुख्य जल-विद्युत योजनाएँ कार्य कर रही हैं।

(३) उपरोक्त दोनों क्षेत्रों के मध्य में मध्य प्रदेश में तीसरा विस्तृत जल-विद्युत शक्ति का क्षेत्र है जो सतपुड़ा, विन्ध्याचल, महादेव और मैकाल की पहाड़ियों के सहारे-सहारे पश्चिम से पूर्व की ओर चला गया है, किन्तु यह क्षेत्र अधिक धनी नहीं है।

इन तीन क्षेत्रों के अतिरिक्त भारत के कई क्षेत्रों में कोयले से भी विद्युत शक्ति पैदा की जाती है। ताप-शक्ति (Thermal power) का मुख्य क्षेत्र कलकत्ता से आरम्भ होकर पश्चिम में नागपुर तक फैला है। इसके अन्तर्गत गोंडवाना कोयले के क्षेत्र हैं।

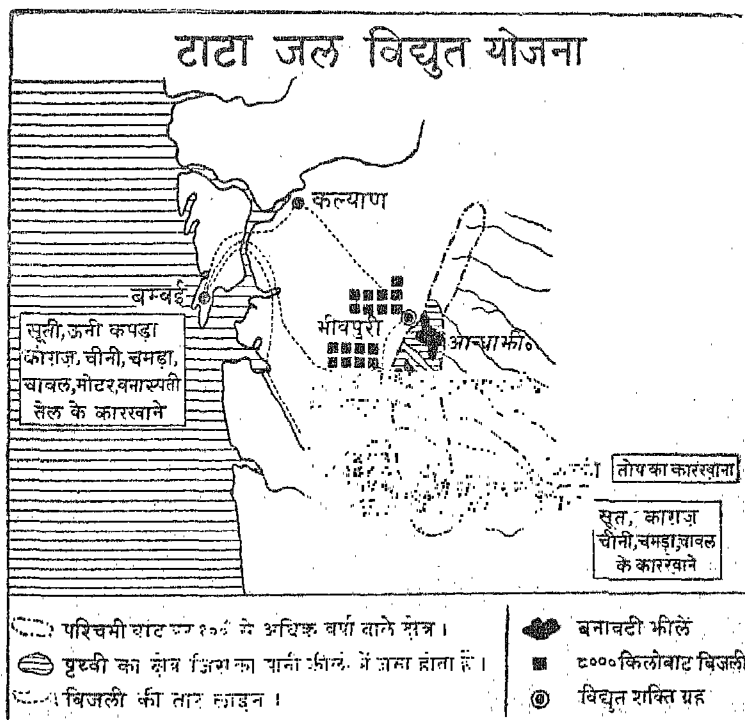
इस वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होगा कि भारत में संभावित जल-विद्युत शक्ति के प्रधान क्षेत्र पंजाब, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आसाम और बिहार हैं। जल-विद्युत शक्ति से रहित प्रमुख क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि हैं।

भारत में तीन प्रकार के जल-विद्युत उत्पन्न करने के कारखाने हैं : (१) वे कारखाने जो सरकार द्वारा स्थापित किए गए हैं और जो बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्रों को बिजली देते हैं यथा—उत्तर प्रदेश की ग्रिड योजना, पंजाब की मंडी योजना और मैसूर की सिवासमुद्रम योजना। (२) वे कारखाने जो मिश्रित पूँजीवाली कंपनियों द्वारा स्थापित किए गए हैं, यथा—टाटा जल-विद्युत शक्ति की तीनों योजनायें; (३) वे कारखाने जो असंख्य छोटी-मोटी निजी कम्पनियों द्वारा पहाड़ी स्थानों अथवा नगरों में रोशनी देने के लिए बिजली उत्पन्न करते हैं।

१९५८ में निजी कम्पनियों के अधिकार में ३४·४ प्रतिशत विद्युत उत्पादक कारखाने थे जो देश की कुल उत्पादन क्षमता का ३९·९ प्रतिशत पर अधिकार रखते थे। शेष कारखाने राज्यकीय सरकारों, शक्ति-निगमों और म्यूनिसिपैलिटियों के अधिकार में थे।

(क) पश्चिमी घाट के कारखाने (Hydro-electric Works of Bombay Deccan)—

भारत में सबसे महत्वपूर्ण जल-विद्युत उत्पन्न करने वाले कारखाने पश्चिमी घाट के समीप स्थित हैं। इन घाटों पर अत्यधिक वर्षा होती है। इस जल से बिजली उत्पन्न करने का विचार भारत के प्रसिद्ध व्यवसायी श्री जमशेद जी नशरवान जी ताता के मस्तिष्क की उपज थी। ताता ने देखा कि महाराष्ट्र की मिलें कोयले की खानों से बहुत दूर हैं इससे कोयला मिलों को बहुत मँहगा पड़ता है। अतः उन्होंने ताता जल-विद्युत शक्ति का कारखाना (Tata Hydro-electric Works) स्थापित किया। इस योजना के अनुसार सन् १९१५ में भोरघाट के ऊपर लोनावला, वलव्हान और शिरवता नामक तीन झीलें बाँध बना कर तैयार की गई। वर्षा का पानी इन झीलों में इकट्ठा किया जाता है और नहरों द्वारा लोनावला की झील तक लाया जाता है।



चित्र ९२—टाटा जल विद्युत योजना

यहाँ से पानी नली द्वारा १७२५ फीट की ऊँचाई से खोपोली शक्तिगृह के पास गिराया जाता है और वहां से ६४,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है। बिजली की

अधिक माँग होने के कारण कुंडले के निकट एक झील और बनाई गई और दोनों कारखानों में ६५,००० घोड़ों की शक्ति के बराबर बिजली उत्पन्न करके ७० मील दूर तारों द्वारा बम्बई के मिलों को भेजी जाती है।

महाराष्ट्र में बिजली की माँग इतनी अधिक थी कि ताता कम्पनी उसे पूरा नहीं कर सकती थी। इसलिए ताता कम्पनी ने **आँध्र घाटी जल-विद्युत योजना** का श्रीगणेश सन् १९२२ में किया। इस योजना के अनुसार लोनवाला के उत्तर में तोकरवाडी के पास आंध्र नदी पर १/३ मील लम्बा और १९२ फीट ऊँचा बाँध बना कर नदी का पानी रोका गया। यहाँ से एक लम्बी सुरंग (८७००′) द्वारा पानी भीवपुरी (Bhivpuri) के शक्तिगृह को ले जाया गया। यहाँ पानी १,७५० फीट की ऊँचाई से गिराया जाता है। इस शक्तिगृह की उत्पादन क्षमता ७२,००० किलोवाट है। यहाँ की बिजली बम्बई हारबर, ट्रामों और मध्य रेलवे के उपयोग में आती है। वास्तव में आंध्र घाटी योजना पहली योजना का विस्तार मात्र है।

ताता ने एक तीसरी कम्पनी (Tata Power Co.) सन् १९२७ में बना कर नीलामूला नदी को मुलसी नामक स्थान पर एक बड़ा बाँध बनाकर रोक दिया है। इस झील (नीलामूला) से १,७५० फीट की ऊँचाई से पानी भीरा (Bhira) के शक्तिगृह पर गिराया जाता है और उससे बिजली उत्पन्न की जाकर बम्बई की मिलों, पश्चिमी व मध्य रेलवे को दी जाती है। भीरा शक्तिगृह की उत्पादन क्षमता ११०,००० किलोवाट है।

उपर्युक्त तीनों योजनाएँ एक ही एकाई की भाँति काम कर रही हैं और इनकी सम्मिलित उत्पादन क्षमता ३,१०,००० से ३,१५,००० किलोवाट तक बिजली उत्पन्न करने की है। यह बिजली बम्बई नगर, निकटवर्ती स्थानों, थाना, कल्याण, पूना को जाती है। इस सम्मिलित योजना से बम्बई के लगभग १,००० वर्गमील को बिजली प्राप्त होती है। बम्बई की इन योजनाओं में १६ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है। इनसे सम्पूर्ण भारतीय उत्पादन का ⅓ प्राप्त होता है।

(ख) दक्षिण के जल-विद्युत उत्पन्न करने वाले कारखाने (Hydral works of Peninsular India)—

दक्षिण भारत कोयले की खानों से बहुत दूर पड़ता है और यहाँ के अधिकांश बड़े नगर समुद्र से भी दूर हैं। अतः यहाँ कोयले को मंगाने में बड़ा खर्च पड़ता था और इसीलिए यहाँ के उद्योग धंधे भी पूर्ण रूप से नहीं पनप सके। जबसे दक्षिणी भारत में—मद्रास और मैसूर राज्य में—जल-विद्युत उत्पन्न होने लगी है तब से यहाँ के उद्योग-धंधे चमक उठे हैं। दक्षिणी भारत में सब मिलाकर २·३ लाख किलोवाट बिजली तैयार की जाती है, अनुमान है कि यहाँ २० लाख किलोवाट बिजली तैयार हो सकती है। दक्षिणी भारत का आधा उत्पादन मद्रास और केरल राज्यों से प्राप्त होता है।

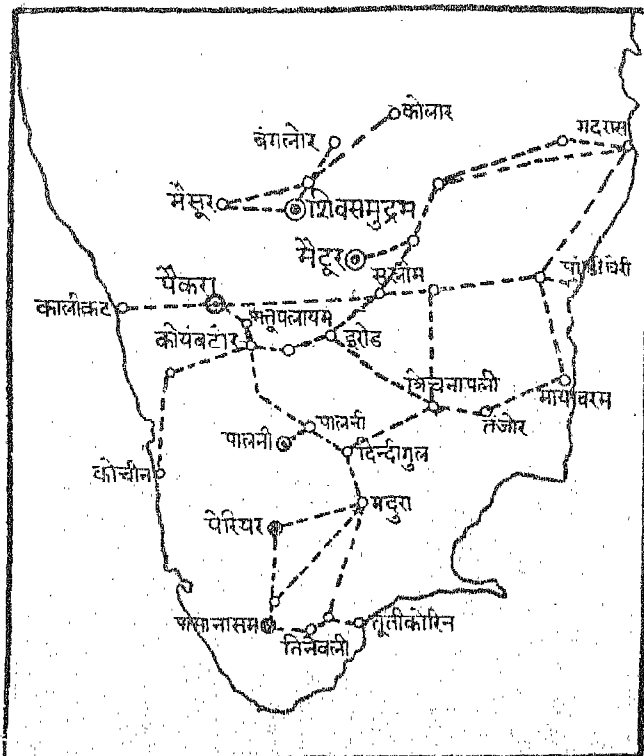
(१) मद्रास राज्य—

मद्रास राज्य में जल-विद्युत विकसित करने के उत्तम स्थान नीलगिरी और पालनी पर्वतों के मध्य में हैं। इस राज्य में अब तक तीन महत्वपूर्ण योजनायें विकसित की जा चुकी हैं—

(i) पायकारा योजना (Pyakara Project)

इस योजना के अन्तर्गत पायकारा नदी के आर-पार प्रमुख प्रपातों से ऊपर

की ओर १९३२ में एक बांध बनाया गया है जिसे ग्लेन मार्गन कहते हैं। इसके पानी को १,२०० फीट की ऊँचाई से गिरा कर बिजली उत्पन्न की जाती है। पायकारा की सहायक मुकुर्ती नदी पर भी १९३८ में एक बाँध बना कर अतिरिक्त पानी की व्यवस्था की गई है। पूरे विकसित रूप में इस योजना की अनुमानित उत्पादन क्षमता १००,००० किलोवाट होगी। अभी इसकी क्षमता ४४,००० किलोवाट ही है। विद्युतशक्ति पहले कोयम्बटूर जाती है और फिर वहाँ से उडुमलपेट, इरोड, मदुराई, तिरुपुर, सम्बाती, तिरुचिरापल्ली, विरुधनगर और कोयलपट्टी को बिजली की तार जाती है। इरोड और मदुराई की लाइनों को मैट्टूर और पापानसम प्रणालियों से क्रमशः जोड़ दिया गया है। पायकारा योजना के अन्तर्गत उत्पादित बिजली तामिल प्रदेश के छोटे-छोटे गांवों और नगरों को दी जाती है। इस योजना से कोयम्बटूर जिले का औद्योगिक विकास बहुत हो गया है। कोयम्बटूर के निकट मधुकराई में सिमेंट तथा नीलगिरी की चाय की फैक्ट्रियों, कृषि कार्यों और साधारण घरेलू कार्यों में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है।



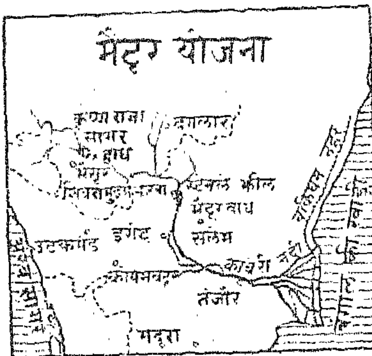
चित्र ९३—पायकारा योजना

(ii) मैट्टूर जल-विद्युत योजना (Mettur Project)

कावेरी नदी पर मैट्टूर प्रपात पर स्टेनले नामक १७६ फीट ऊँचा बाँध बनाया

गया है जो ९·३ लाख घनफीट पानी रोक लेता है। इस बाँध का अधिकतर जल सिंचाई के काम आता है। शेष को बिजली उत्पन्न करने में प्रयोग करते हैं। इससे जो विद्युत-शक्ति उत्पन्न होती है उसकी मात्रा में मैट्टूर बाँध के पानी की सतह के अनुसार घटा-बढ़ी होती रहती है। अतः पानी की कमी के समय मैट्टूर बाँध को अन्य स्थानों की बिजली की आवश्यकता पड़ जाती है। इस समस्या को पायकारा और मैट्टूर की लाइन में मिला कर हल कर लिया गया है। मैट्टूर बाँध से उत्पन्न की गई बिजली उत्तर में सिंगारपेट को और दक्षिण में इरोड को दी जाती है। इरोड पर मैट्टूर की बिजली को पाईकारा विद्युत के तारों में मिला दिया गया है। उत्तर में विद्युत लाइनें वैलोर, तिरूपुर, अम्बर, तिरुवन्नमलय, विल्लूपुरम तक फैली हुई हैं और दक्षिण में तिरूचिरापल्ली, तंजौर, नागापट्टम, चितूर, अरकोनम, काँजीवरम, चिंगलपुट आदि स्थानों तक जाती हैं। मैट्टूर प्रणाली को मद्रास तापीय गृह से सिंगारपेट और मद्रास के बीच एक लाइन से जोड़ दिया गया है। इस प्रकार दक्षिणी भारत में इन शक्ति-गृहों से बिजली ले जाने वाली लाइनों को जोड़ कर एक बड़ी लाइन का जाल-सा बिछा दिया गया है। मैट्टूर योजना से तिरूचिरापल्ली, सलेम और मैट्टूर के उद्योगों, दालमियानगर के सीमेंट के कारखानों और नागापट्टम के लोहे के रोलिंग मिल्स को शक्ति मिलती है। इस योजना से लगभग ५०,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है।

(iii) पापानासम योजना (Papanasam Project)



चित्र ९४—मैट्टूर योजना

तिरुनलवैली जिले में—पश्चिमी घाट के नीचे—ताम्रपर्णी नदी ३३० फीट की ऊँचाई से पापानासम प्रपात पर गिरती है। इस प्रपात से ६ मील ऊपर एक १७६ फीट ऊँचा बाँध बना कर ५५,००० लाख घनफीट पानी रोका गया है। यहाँ से बिजली तूतीकोरिन, कोयलपट्टी और मदुराई को भेजी जाती है और मदुराई पर इसे पायकारा योजना में जोड़ दिया गया है। इसकी उत्पादन क्षमता २१,००० किलोवाट है। यह योजना १९३८ में बनाई गई थी।

उपरोक्त तीनों योजनाएँ एक विद्युत शक्ति ग्रिड (Electric-Grid System) के रूप में सम्बन्धित हैं। दक्षिण में यह ग्रिड पूर्ण रूप से व्यवस्थित है और चितूर से तिरुनलवैली तक तथा चिंगलपुट से मलाबार तक के १२ जिलों के अधिकांश भागों को घेरे हुए है। इन जिलों के लगभग ५० नगरों और ११० गाँवों को बिजली मिलती है। इन तीनों शक्ति गृहों की सम्मिलित उत्पादन क्षमता १०४,००० किलोवाट है। इस ग्रिड से कपड़े की मिलों, सीमेंट के कारखानों, रासायनिक कार्यों, चाय की फैक्ट्रियों आदि को बिजली मिलती है।

(२) केरल राज्य

पल्लीवासल योजना

केरल राज्य में पल्लीवासल जल-विद्युत योजना १९४० में विकसित की गई

है। इसके अनुसार मदिरापूजा नदी का पानी ऊँचाई से गिरा कर मुनार पर शक्ति-गृह बनाया गया है। इसकी उत्पादन क्षमता ६,००० किलोवाट है। इसके अतिरिक्त मद्रास सरकार की पापानासम व्यवस्था से भी ३,००० किलोवाट बिजली मिल जाती है। इसके लिए कुंदरा और शेनकोट को इकहरी लाइन से जोड़ दिया गया है। इस राज्य में ७०% से अधिक बिजली औद्योगिक कार्यों में—अल्यूमीनियम, चाय, मिट्टी के बर्तन, कपड़े, कागज, प्लाईवुड, तेल और लकड़ी के मिलों तथा इंजीनियरिंग कारखानों आदि में—और शेष घरेलू व कृषि-सम्बन्धी कार्यों में व्यहृत होती है। यह बिजली तिरूचूर, अलवाय, कोट्टायाम, अलप्पी, क्विलन, त्रिवेंद्रम और शैनकोटल नगरों को दी जाती है।

(३) मैसूर में जल विद्युत

(i) **शिवासमुद्रम योजना**—मैसूर राज्य में कावेरी नदी पर शिवासमुद्रम्



चित्र ९५—शिवासमुद्रम जल प्रपात

जल-प्रपात के समीप शक्ति-गृह स्थापित किया गया है। भारत में सबसे पहले (१९०२ में) जल विद्युत मैसूर राज्य में ही उत्पन्न की गई है। शिवासमुद्रम् से उत्पन्न की गई बिजली ९२ मील दूर कोलार की सोने की खानों को दी गई है। इसके अतिरिक्त बिजली बंगलौर और मैसूर की ऊँची और रेशमी कपड़े के मिलों और अन्य २२५ नगरों और गांवों को भी दी गई। बिजली की माँग अधिक होने के कारण नदी के ऊपर की ओर कृष्ण राजसागर बाँध बनाकर कावेरी नदी के जल को रोक दिया गया है और इस प्रकार दोनों की सम्मिलित उत्पादक क्षमता ४२,००० किलोवाट होगई है।

(ii) कावेरी की सहायक नदी शिम्सा के प्रपात पर एक नया शक्ति गृह १९४० में बनाया गया है। इससे १७,२०० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है।

(iii) **महात्मा गाँधी जल विद्युत योजना या जोग-प्रपात शक्ति योजना** के अन्तर्गत शिरावती नदी के जोग (गिरस्सप्पा) प्रपातों का उपयोग किया गया है। यहाँ का बाँध प्रपात के करीब ३ मील ऊपर और शक्तिगृह प्रपात से २ मील नीचे हैं। इस योजना से ४८,७०० किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है। किन्तु अन्तिम स्थिति में बढ़कर इसकी उत्पादन क्षमता १२०,००० किलोवाट हो जायगी। शिम्सा, शिवासमुद्रम् और जोग प्रपातों की बिजली भद्रावती पर आकर मिल जाती है और मैसूर राज्य को बिजली देती है। इस योजना से मैसूर के २१० गांवों और कस्बों को बिजली दी जाती है।

उपरोक्त तीनों योजनाओं को जोड़कर मैसूर में जोग-कर्नाटक विद्युत् क्रम (Jog-Karnatak Electrie Grid) का निर्माण किया गया है। इससे हुगली, धारवाड़ और गंडक जिलों को बिजली दी जाती है।

(ग) उत्तरी भारत के कारखाने (Hydo-electric Works of Northern India) :

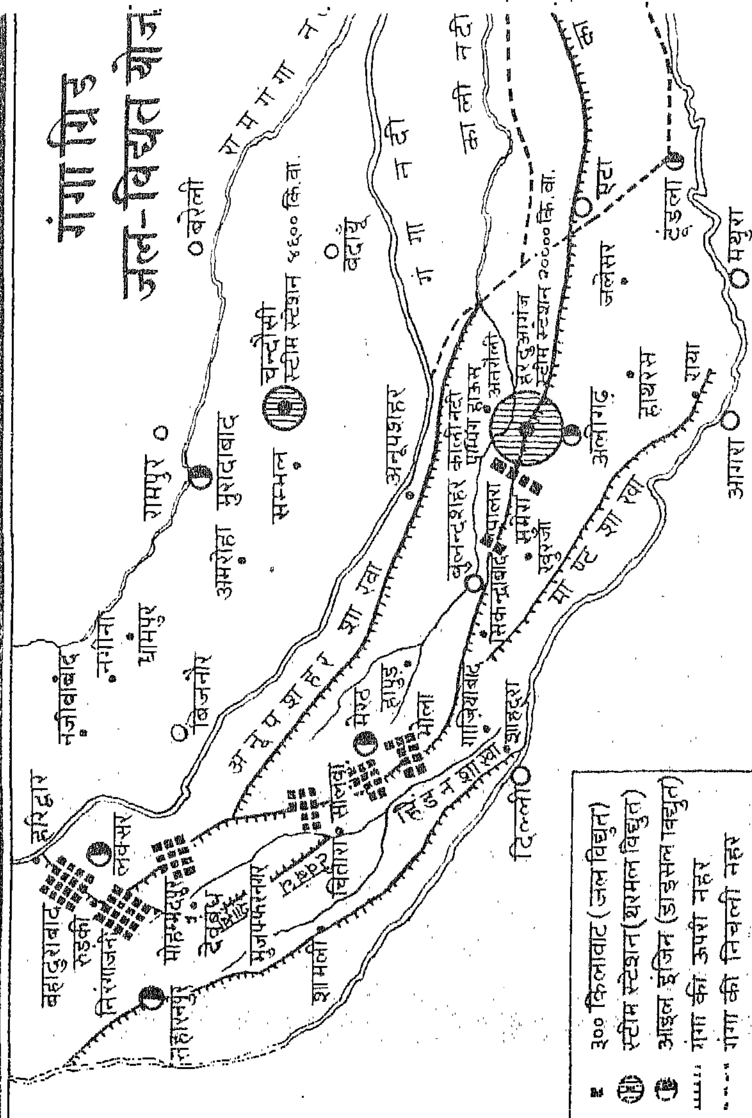
(१) **काश्मीर**—*काश्मीर राज्य में झेलम नदी पर श्रीनगर से ३४ मील उत्तर की* ओर बारामूला के निकट नदी का पानी विद्युत उत्पन्न करने में लिया जाता है जिसका शक्ति गृह मोहरा स्थान पर है। यहाँ लगभग १५,००० किलोवाट शक्ति प्राप्त होती है। यहाँ से बिजली की लाइनें बारामूला और श्रीनगर तक जाती हैं। यह बिजली झेलम नदी में झाम चलाने, श्रीनगर में रोशनी करने और रेशम के कारखाने चलाने में प्रयोग होती है। वुलर झील के निकटवर्ती दलदली भूमि के पानी को बहाकर कृषि योग्य भूमि प्राप्त करने में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है।

(२) सिंध घाटी जल विद्युत योजना—

झेलम की सहायक नदी सिंध पर मेंड़खल स्थान पर एक शक्तिगृह स्थापित किया गया है जिससे ६,००० किलोवाट जलविद्युत शक्ति उत्पन्न की जाती है। यह शक्ति श्रीनगर को दी जाती है।

(३) उत्तर प्रदेश :

उत्तर प्रदेश में ऊपरी गंगा की नहर से बिजली उत्पन्न करने की योजना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऊपरी गंगा की नहर पर हरिद्वार से अलीगढ़ तक १३ झरने हैं। इनमें से इस समय ११ झरनों पर शक्ति गृह बनाये गये हैं। १९३१ में सबसे पहला शक्ति गृह बहादुराबाद में स्थापित किया गया। इससे ४,४०० किलोवाट शक्ति प्राप्त



चित्र ६६— गंगा ग्रिड जल विद्युत योजना

होती है। शक्ति उत्पादन के लिए बहादुराबाद और सलेमपुर झरनों का उपयोग किया गया है। अब बहादुराबाद के निकट ही अन्य दो और झरनों के जल का उपयोग शक्ति उत्पादन में किया गया है। इनसे कुल मिलाकर २०,४०० किलोवाट शक्ति उत्पादन में शक्ति प्राप्त होती है। इससे गंगा नहर जल विद्युत क्रम के ५० प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। अन्य शक्ति गृह मुहम्मदपुर (सहारनपुर), भोला (गाजियाबाद), नीरगजनी (मुजफ्फरनगर), चितौड़ा (मुज्जफ्फरनगर), सालवा (मुजफ्फरनगर), पालरा (बुलन्दशहर), और सुमेरा (अलीगढ़) में है। इन शक्ति गृहों और भाप से बिजली पैदा करने वाले शक्ति गृहों (चन्दौसी और हरदुआगंज) को एक सूत्र में संगठित कर दिया गया है। इनकी सम्मिलित शक्ति लगभग ७५,००० किलोवाट है, जिसमें ३०,००० किलोवाट ताप विद्युत है।

इस विद्युत क्रम (Electric Grid) से उत्तर प्रदेश के १४ पश्चिमी जिलों—सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, एटा, अलीगढ़, आगरा, बिजनौर, मथुरा, मुरादाबाद, बरेली, बदायूँ, इटावा और मैनपुरी को दी जाती है जिससे ९३ नगरों को प्रकाश मिलता है। इसका उपयोग सिंचाई और कुटीर उद्योगों के लिए भी किया जाता है। इस क्रम से मेरठ और रुहेलखंड डिवीजनों में लगभग २५०० नल-कूप भी बनाये जाते हैं। विभिन्न शक्तिगृहों का उत्पादन इस प्रकार है :—

पाथरी, २०४००० किलोवाट; मुहम्मदपुर, ९३०० किलोवाट; नीरगजनी ४००० कि०; चितौड़ा ३००० कि०; सालवा ३००० कि०; भोला २७०० कि०; पालरा ६०० कि०; सुमेरा १२०० कि०; तथा हरदुआगंज तापविद्युत शक्ति गृह, २०,००० कि० और चन्दौसी, ९६०० किलोवाट; योग ७५,००० किलोवाट।

यह शक्ति उत्तर प्रदेश के लगभग १६०० वर्गमील क्षेत्र की सेवा करती है। इसकी लाइनें ५००० मील लम्बी हैं।

(४) हिमाचल प्रदेश

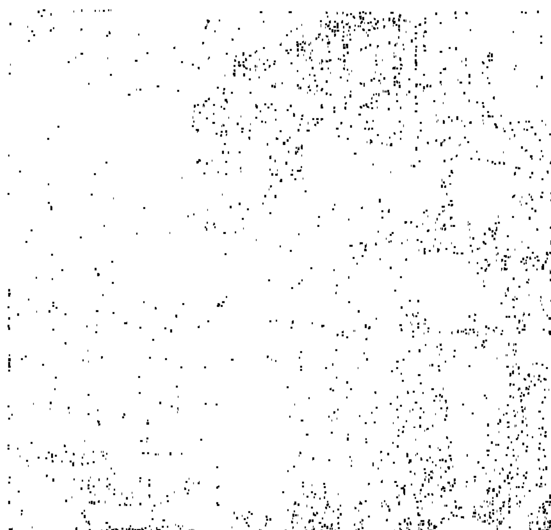
हिमाचल प्रदेश में **मंडी जलविद्युत योजना** प्रमुख है। यह तीन चरणों में समाप्त होगी, अभी तक प्रथम चरण समाप्त हुआ है।

प्रथम चरण के अन्तर्गत हिमालय प्रदेश में व्यास की सहायक नदी ऊहल पर एक बांध बना कर जल प्रवाह के मार्ग को मोड़ा गया है। इस जल को एक ९ फीट चौड़ी और लगभग १४,२१२ फीट लम्बी सुरंग में निकाल कर २०००, फीट की ऊंचाई से गिराया जाता है। जोगेन्द्रनगर के निकट इससे जलशक्ति उत्पादित की जाती है। इस शक्ति गृह से ५०,००० किलोवाट शक्ति प्राप्त की जा रही है। इसका उपयोग घरेलू कार्यों और उद्योग धंधों के लिए किया जाता है। कांगड़ा, पठानकोट, धारीवाल, अमृतसर, मोगा, जलंधर, लुधियाना शिमला, अम्बाला आदि नगरों को यही बिजली मिलती है। पाकिस्थान में मुगलपुरा की रेलवे-वर्कशॉप को भी यहीं से बिजली दी जाती है।

द्वितीय चरण में ऊहल नदी पर बांध बना कर एक कृत्रिम झरना बनाया जायेगा इससे ९०,००० किलोवाट शक्ति का उत्पादन होगा।

तृतीय चरण में ऊहल नदी पर स्थित शनान नामक स्थान पर संग्रहित जल को एक नहर द्वारा ले जाकर १,२०० फीट की ऊँचाई से गिरा कर विद्युत शक्ति उत्पन्न की जायेगी।

पूरी योजना की समाप्ति पर विद्युत् शक्ति मेरठ, दिल्ली, सहारनपुर तथा करनाल, पानीपत और रोहतक जिलों को भी शक्ति दी जायेगी ।



चित्र ९७—ऊहल नदी पर शक्ति गृह

(v) भारत के अधिकांश पहाड़ी भागों में भी जल विद्युत् उत्पन्न की जाती है क्योंकि वहां जल-प्रपात अधिक हैं और कोयला पहुँचाने की बड़ी असुविधा है । अत: जल से शक्ति उत्पन्न करना ही वहाँ आवश्यक और सुविधाजनक होता है । आसाम राज्य में शिलांग के निकट एक छोटा सा शक्तिगृह है जिससे कलिम्पोंग और कुरसोंग के चाय के बागों को शक्ति दी जाती है ।

भारत में जल-विद्युत विकास की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं :—

(१) यहाँ जल और कोयले दोनों से ही विद्युत शक्ति उत्पादित की जाती है जैसा कि निम्न आंकड़ों से प्रकट होगा[१] :—

वर्ष	कोयले से		तेल से		जल से		योग	
	हृ० कि०	प्र. श.	हृ० कि०	प्र. श.	हृ० कि०	प्र. श.	हृ० कि०	प्र. श.
१९४८	७८८	५६	१०७	७	५१६	३७	१,४११	१००
१९५१	१,०९८	६०	१६३	९	५७५	३१	१,८३५	१००
१९५५	१,५४७	६०	२०९	८	९३९	३२	२,६९५	१००
१९५६	१,५९६	५५	२२८	८	१,०६२	३७	२,८८६	१००
१९६०-६१	३,४५०	५८	३६०	६	२,१९०	३६	६,०००	१००

१. A.I.C.C. Economic Review, Jan. 5, 1957, Vol. VIII. No. 17, p. 179

किन्तु कोयले की अपेक्षा जल-विद्युत शक्ति का विकास कम हुआ है। शक्ति विकास की दृष्टि से भारत के विभिन्न क्षेत्रों की स्थिति इस प्रकार है[1] :—

(i) मैसूर, केरल, पंजाब, उड़ीसा, जम्मू-काश्मीर में मुख्यतः जल-विद्युत

(ii) बम्बई, मद्रास, आंध्र, उत्तर प्रदेश और आसाम में जल-विद्युत और ताप-विद्युत दोनों

(iii) बिहार-बंगाल। मध्य प्रदेश, राजस्थान कोयले से प्राप्त ताप-विद्युत्

(२) पिछली दशाब्दी में जल-विद्युत् योजनाओं का पूरा लाभ उठाने तथा शक्ति की क्षमता बढ़ाने के लिए विभिन्न योजनाओं को विद्युत क्रम (Electric Grids) में संगठित किया गया है। मुख्य विद्युत् क्रम ये हैं :—

(i) मद्रास राज्य में पायकरा-मैट्टूर और पापानासम क्रम।

(ii) मैसूर में जोग-कर्नाटक क्रम।

(iii) बम्बई में टाटा-जल विद्युत् योजनाओं का क्रम।

(iv) मद्रास और केरल में पायकरा-मैट्टूर-पापानासम से सम्बन्धित पल्लिवासल योजना क्रम।

(v) पंजाब और दिल्ली में भाखरा-नांगल एवं दिल्ली की ताप-विद्युत् योजना।

(vi) उत्तर प्रदेश की ऊपरी गंगा की नहर की जल-विद्युत् योजना क्रम।

(vii) बिहार की जल-विद्युत् शक्ति योजनाओं से दामोदर घाटी योजना की ताप शक्ति से सम्बन्धित क्रम।

(३) भारत में जल-विद्युत शक्ति का विकास अभी तक बड़े-बड़े नगरों और औद्योगिक केन्द्रों तक ही सीमित है। यह जानकर आश्चर्य होगा कि बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद, मद्रास और दिल्ली आदि ६ बड़े-बड़े नगरों में कुल विद्युत् शक्ति की उत्पादन क्षमता का ५१ प्रतिशत और वास्तविक उत्पादन का ५४ प्रतिशत पाया जाता है। कुछ योजनाओं द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भी जल-विद्युत दी जाती है। पंजाब, मद्रास, मैसूर, केरल और उत्तर प्रदेश इस दृष्टि से मुख्य हैं। नीचे की तालिका में भारत के गाँवों और नगरों में जलशक्ति के विकास को बताया गया है[2] :—

जनसंख्या	कुल नगरों और गाँवों की संख्या १९५१	नगरों और गाँवों की संख्या जिनमें जलविद्युत शक्ति प्राप्त है (मार्च १९५८ के अंत तक)	१९६१ तक दी जाने वाले नगरों और गाँवों की संख्या
१००,००० से अधिक	७३	७३	७३
५०,००० से १००,०००	११२	११२	१११
२०,००० से ५०,०००	४०१	३५४	४०१
१०,००० से १०,०००	८५६	} १०,१७३	८५६
५,००० से १०,०००	३,१०१		२,६५९
५,००० से कम	५,५६,५६५		१३,९००
योग	५,६१,१०७	१०,७१२	१८,०००

१. India, 1959, p. 291.

२. ३१ जुलाई, १९५८ तक भारत के ५,७३७ गाँवों में बिजली दी जा चुकी है।

(४) देश के विशाल क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से भारत में जल-विद्युत् शक्ति का प्रति-व्यक्ति पीछे उत्पादन अन्य देशों की तुलना बहुत ही कम है। भारत में शक्ति उत्पादन की मात्रा प्रति व्यक्ति पीछे केवल ३·५ किलोवाट घंटा है, जबकि नार्वे में यह मात्रा ७,२५० Kwh; कनाडा में ५,४५० Kwh; इंग्लैंड में २,००० Kwh; जापान में ८५० Kwh; रूस में ६६० Kwh; तथा विश्व का औसत ६७० Kwh है।

देश में जल-विद्युत शक्ति का उपभोग भी समान नहीं है। प्रति व्यक्ति पीछे यह केवल १७ Kwh है। दिल्ली में यह उपभोग की मात्रा ६६ Kwh है जब कि मैसूर में यह ५९ Kwh और बम्बई में ५५ Kwh और पश्चिमी बंगाल में ५४ Kwh है। सबसे कम उपभोग उड़ीसा में (०·५७ Kwh) और आसाम में (०·७४ Kwh) है। उत्तर प्रदेश में प्रति-व्यक्ति पीछे केवल ७·७४ Kwh शक्ति उपभोग में ली जाती है।

नीचे की तालिका में भारत में जल विद्युत का उपभोग बताया गया है :—

उपभोग के मद	उपभोग १० लाख कि० में १९५०	प्रतिशत	उपभोग १० लाख कि० में १९५६	प्रतिशत	उपभोग १० लाख कि० में १९६१	प्रतिशत
घरेलू उपयोग	५२५	१२·७	९३४·१	११·७४	१,४८०	९·०
व्यवसायिक उपयोग	३०९	७·४	५४५·९	६·८६	९८४	६·०
सार्वजनिक प्रकाश	६०	१·५	११७·८	१·४८	२५०	१·५
औद्योगिक उपयोग	२,६०९	६२·५	६०४५·४	७५·९५	१२,०००	७२·०
खेती में उपयोग	३०९	७·४	४४०	६·३	६५५	४·०
सिंचाई	१६२	३·९	२६०	३ ७	६५५	४·०
जल-विद्युत	१८१	४·४	३१६·२	३·९७	५७६	३·५
योग	४,१५६	१००·०	७,९५९·४	१००·००	१६,६००	१००·०

१९५३ में देश के बिजली तैयार करने के साधनों और उनसे कम खर्चे में बिजली तैयार करने के बारे में केन्द्रीय जल-विद्युत् आयोग ने जांच करायी। इस जाँच के लिए भारत को ६ भागों में बाँटा गया :

(१) पश्चिमी घाट की पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ—	३७ लाख किलोवाट की २६ योजनायें।
(२) दक्षिणी भारत की पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ—	६८ लाख किलोवाट की ३७ योजनायें।
(३) मध्य भारत की नदियाँ—	१ करोड़ २९ लाख ८० हजार किलोवाट की ५१ योजनायें।
(४) गंगा और उसकी सहायक नदियाँ—	१ करोड़ ३२ लाख ७० हजार किलोवाट की ३५ योजनायें।
(५) ब्रह्मपुत्रा का क्षेत्र—	अप्राप्य।
(६) सिंधु नदी प्रणाली भारतीय प्रदेश—	१ करोड़ किलोवाट।

इस प्रकार देश में जल-शक्ति की संभावित उत्पादन की मात्रा ४१० लाख किलोवाट है किन्तु इसमें से अभी केवल २% का ही उपयोग किया जा रहा है।

पंचवर्षीय योजनाओं में जलविद्युत शक्ति :

प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरम्भ होने के समय भारत में जल-विद्युत शक्ति की कुल क्षमता २३ लाख किलोवाट थी, यह योजनाकाल के अन्त में बढ़ कर ३४ लाख किलोवाट हो गई। अर्थात् ५ वर्षों में शक्ति की उत्पादन क्षमता में ४८ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस काल में निम्न प्रमुख योजनाएँ कार्यान्वित की गईं :—

नांगल	(पंजाब)	४८,००० किलोवाट
बोकारो	(बिहार)	१५०,००० ,,
खोला	(बम्बई)	५४,००० ,,
खपरखेड़ा	(मध्य प्रदेश)	३०,००० ,,
मोयार	(मद्रास)	३६,००० ,,
मद्रास-नगर विस्तार-योजना	(मद्रास)	३०,००० ,,
मच्छकुंड	(आंध्र-उड़ीसा)	३४,००० ,,
पाथरी	(उत्तर प्रदेश)	१३,६०० ,,
शारदा	(उत्तर प्रदेश)	२७,६०० ,,
सैंगुलम	(केरल)	४८,००० ,,
जाग	(मद्रास)	७२,००० ,,

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शक्ति उत्पादन क्षमता ३४ लाख किलोवाट से बढ़ा कर ६६ किलोवाट करने का प्रस्ताव रखा गया है। इस योजनाकाल में ४४ नई योजनाएँ सम्मिलित की गई हैं जिनमें से १० का निर्माण व्यय प्रत्येक का १० करोड़ रुपये से अधिक का होगा ; ४ का ५ से १० करोड़ रुपयों के बीच का ; १८ का १ से ५ करोड़ रुपये का ; १२ का १ करोड़ से कम। इन योजनाओं में से २५ जल-विद्युत की और १६ कोयले के ताप की योजनाएँ हैं। इनसे क्रमशः २२ लाख और १३ लाख किलोवाट शक्ति प्राप्त होगी।

मुख्य २ बड़ी योजनायें जो प्रथम योजना काल से ही चालू हैं इस प्रकार हैं :—

तुंगभद्रा, हीराकुंड (प्रथम चरण), कोयना पेरियर; उमतरू (प्रथम चरण); रिहान्द; दामोदर घाटी योजना तथा चम्बल योजना (प्रथम चरण)।

नई योजनाओं में मुख्य इस प्रकार हैं :—

तवा, ३०,००० किलोवाट		कुंडा	१८०,००० किलोवाट
पूर्णिया १०,००० ,,		माताटीला	१५,००० ,,
चम्बल (द्वितीय चरण)	१६,००० ,,	दुर्गापुर ताप-शक्ति योजना	१५०,००० ,,
उमतरू (,,)	५,००० ,,	भाद्रा	३३,००० ,,
श्रीवती	१४२,०००		

१९५७-५८ में इनमें से तुंगभद्रा (प्रथम चरण); रामगुंडम थर्मल स्टेशन (आंध्र); उमतरू (आसाम); हीराकुंड (प्रथम चरण) समाप्त हो चुकी हैं।

द्वितीय योजना के फलस्वरूप देश में शक्ति उत्पादन की क्षमता इस प्रकार होगी :—

	मार्च १९५१	मार्च १९५६	मार्च १९६१
		(दस लाख किलोवाट में)	
जलशक्ति	५·६	९·६	३०·६
कोयले की तापशक्ति	१०·०	१५·५	२६·५
तेल-शक्ति	१·५	२·१	३·९
	१७·१	२७·२	५९·४

शक्ति उत्पादन क्षमता में वृद्धि होने से शक्ति उपयोग की मात्रा में भी वृद्धि होगी। यह वृद्धि प्रति व्यक्ति के उपयोग में १९५१ में १४ यूनिट से १९५६ में २५ यूनिट और १९६१ में ५० यूनिट होगी।

दूसरी योजना में जो ३५ लाख किलोवाट बिजली पैदा होगी उसमें से १८ लाख किलोवाट बिजली उन योजनाओं में प्राप्त की जायेगी जो पहली योजना में आरम्भ की गई थी और दूसरी योजना में चल रही हैं। दूसरी योजना में नई योजनाओं से १७० ला० किलोवाट बिजली पैदा की जायेगी। द्वितीय योजना में बिजली पैदा करने का कार्यक्रम इस प्रकार है :—

स्थापित क्षमता मैगावाट

राज्य	प्रथम योजना के अंत तक	द्वितीय योजना के अंत तक
आंध्र	१०२९·८	२८६·३९
आसाम	४·७४	२४·२३
बिहार	२०४·४४	४११·०४
बम्बई	७००·८९	१,१२०·०९
जम्मू-काश्मीर	१२·३९	३१·९५
केरल	८६·४९	१९३·००
मध्य प्रदेश	८२·६४	२६५·३१
मद्रास	२५६·७०	५७८·७०
मैसूर	१८८·७०	२६४·२६
उड़ीसा	२१·००	२७७·७२
पंजाब	१२६·७६	६७६·७६
राजस्थान	४२·७६	११७·४७
उत्तर प्रदेश	२९५·००	६८३·८०
बंगाल	५०९·६५	६८१·८०
दिल्ली	५४·००	१०४·००
शेष राज्य	५·६५	११·८३
योग	२,६९४·२३	५,७२८·४३

१९५१ में कोयले से प्राप्त की गई बिजली और जलविद्युत् शक्ति का अनुपात ७६:२४ था। १९५६ में यह अनुपात: ७२:२८ और १९५८ में ७०:३० हो गया। द्वितीय योजना के अन्त में यह ६६:३४ होने का अनुमान है।

अध्याय १६

मिट्टियाँ और खाद
(Soils & Manures)

जिन चट्टानों से भूमि बनी है उन पर हवा, पानी और वनस्पति का प्रभाव लगातार पड़ता रहता है। हवा और पानी के प्रभाव से चट्टानों के बराबर टूट-टूट कर छोटे-छोटे टुकड़े होते रहते हैं। इन छोटे-छोटे टुकड़ों में वनस्पति का सड़ा-गला भाग (humus) भी मिलता रहता है। इस तरह चट्टानों के बारीक टुकड़ों को जिसमें सड़ी-गली वनस्पति मिली होती है हम 'मिट्टी' कहते हैं। मिट्टी की कई तहें होती हैं। सबसे ऊपरी तह बहुधा बारीक और मोटे कणों की बनी होती है। इससे ४-६ फीट की गहराई पर मिट्टी की दूसरी तह होती है जिसे **भीतरी मिट्टी** (Sub Soil) कहते हैं। यह बहुत ही बारीक कणों की बनी होती है। इसलिये इसमें पानी की मात्रा अधिक पाई जाती है। इसमें वनस्पति का सड़ा-गला भाग भी पर्याप्त मात्रा में मिला रहता है। भीतरी मिट्टी के नीचे मिट्टी की तीसरी तह मिलती है जो टूटी चट्टानों का वह भाग होता है जिसमें वनस्पति का कोई अंश नहीं मिला होता और जो चट्टानों के मोटे-मोटे टुकड़ों की बनी होती है। उपरोक्त दो तह से मनुष्य को काफी लाभ होता है।

वर्षा और वायु के कारण धरातल के ऊपर की मिट्टी के कण अपनी जगह बदला करते हैं। नदियों की घाटी में प्रायः इधर-उधर से बहकर या उड़ कर आई हुई मिट्टी ही ज्यादा पाई जाती है। ऐसी मिट्टी को लाई हुई मिट्टी (Transported soil) कहते हैं। इस मिट्टी में हल्के बारीक कणों की बहुतायत रहती है क्योंकि यह कई तरह की भूमि पर होकर आती है। अतः यह बहुत ही ऊपजाऊ होती है। इसके विपरीत कई स्थानों पर मिट्टी की ऊपरी तह अपने बनने के स्थान पर ही पड़ी रहती है। तापक्रम की विभिन्नता के कारण चट्टानों के बाहरी भाग फैलते और सिकुड़ते हैं। इस फैलने और सिकुड़ने से मिट्टी की तहें बन जाती हैं। इस प्रकार की मिट्टी स्थायी मिट्टी (Residual Loam) कहलाती है। यह मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं होती।

भारतीय मिट्टियों का मूलाधार (Foundations of Indian Soils) —

किसी स्थान की मिट्टी में वही गुण आता है जो उन चट्टानों में पाये जाते हैं जिनसे उसका जन्म हुआ है। अतः भारत के भूगर्भशास्त्रियों ने विभिन्न चट्टानों को ही भारतीय मिट्टियों का मूलाधार माना है। उनके अनुसार हमारी मिट्टियों का जन्म निम्न प्रकार की चट्टानों से हुआ है :—

(१) **अति प्राचीनकाल की रवेदार और परिवर्तित चट्टानें**—जो अधिकांशतः भारत के पठारी भाग पर पाई जाती हैं जैसे ग्रैनाइट, नीस, रवेदार शिष्ट आदि। इनमें लोहे और मैंगनीज के कण पर्याप्त मात्रा में मिले रहने से जो मिट्टी जलवायु सम्बन्धी कारणों से इन चट्टानों की टूट फूट से बनी है उनका रंग स्वतः ही लाल होता है।

(२) **कडुप्पा और विंध्या युग की चट्टानें**—यह चट्टानें भी बड़ी पुरानी हैं

अतः यह पूरी प्रकार पूर्ण हो चुकी है अतः इनसे बनने वाली मिट्टी में पूर्णावस्था को प्राप्त कर चुकी है।

(३) **गोंडवाना काल की चट्टानें**—यह भारतीय प्रायद्वीप में मुख्यतः नदियों की घाटियों और प्राचीन काल के पिछले जल अवशेषों में मिलती हैं जिनमें नदी द्वारा लाये गए पदार्थ, बालू आदि जम गए हैं इन चट्टानों से बनी मिट्टी अभी पूरी प्रकार परिपक्व नहीं हो पाई है।

(४) **दकन ट्रैप**—प्राचीन काल के ज्वालामुखी उद्गार के समय दक्षिणी पठार के एक बड़े भाग पर पृथ्वी के गर्भ से निकली हुई द्रव्य और ठोस वस्तुएँ के जम जाने से इस प्रकार की चट्टानें बनी हैं। इनमें लोहे और मैंगनीज के अंश अधिक पाये जाते हैं। फलतः इनसे जो मिट्टी बनी है वह काले रंग की तथा अधिक उपजाऊ होती है।

(५) प्रायद्वीप के बाहरी भागों में टर्शरी और मध्य-जीव युग में बनी चट्टानें मुख्यतः पहाड़ियों के ऊपरी भागों और नदियों की घाटियों में बिखरे रूप में मिलती हैं। इनसे अधिकतर चूना अथवा बालू मिली मिट्टीयाँ बनी हैं।

(६) जल अथवा वर्षा द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टियाँ जो अपने बनने के स्थान से काफी दूर पाई जाती हैं। सिंध गंगा के मैदान की खादर और बांगर मिट्टी, डेल्टाओं की कांप मिट्टी, लैटेराइट और मरुस्थलीय मिट्टी इसी प्रकार की हैं। उचित मात्रा में जल मिल जाने पर इनसे अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

मुख्य मिट्टियों के क्षेत्र :—

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था के सर्वेक्षण के अनुसार भारतवर्ष की मिट्टियों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है[1] :—

(१) कांप मिट्टी
(२) काली मिट्टी
(३) लाल, पीली मिट्टी
(४) लैटेराइट मिट्टी
(५) ऊसर व कलार मिट्टी
(६) हिमालय पर्वत की मिट्टियाँ

(१) **कांप मिट्टी** (Alluvial Soil) —यह मिट्टियाँ हिमालय की नदियों द्वारा लाई गई हैं। इसमें कंकड़ नहीं होते। यह सबसे अधिक उपजाऊ होती है। इस मिट्टी वाले प्रदेश का क्षेत्रफल तीन लाख वर्ग मील है। अधिकांश उत्तर राजस्थान, पंजाब, उत्तर-प्रदेश, दिल्ली, बिहार, बंगाल और आसाम के लखीमपुर, दरांग, शिवसागर, कामरूप, गोलपाड़ा जिलों में यह मिट्टी पाई जाती है। गोदावरी, कृष्णा नदियों के डेल्टा, मद्रास के पूर्वी तथा पश्चिमी तटीय मैदानों में भी यह मिट्टी मिलती है। इस मिट्टी की गहराई का अभी तक ठीक प्रकार से पता नहीं लग पाया है। खुदाई करने पर ज्ञात हुआ है कि १,६०० फीट की गहराई तक यह मिट्टी मिलती है। इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस और वनस्पति के अंश की कमी है परन्तु पोटाश और चूना

१. I. C. A. R, Bulletin No. 73. An All-India Soil Survey Scheme, 1953, p. 13.

काफी मात्रा में पाया जाता है। अधिकतर स्थानों में यह पीली दोमट मिट्टी होती है तथा कुछ स्थानों में बलुई व चिकनी मिट्टी होती है।

उत्तरी मैदान की मिट्टियाँ नदी की घाटी के भिन्न-भिन्न भागों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। जैसे भावर और तराई में यह **पुरातन कच्छार** (Older Alluviam) और मध्य की घाटी में **नवीन कच्छार** (Newer Alluviam) और डेल्टा में **नवीनतम कच्छार** (Newest Alluviam) मिट्टी है। पुरातन कच्छार मिट्टी—जिसे बांगर (Banger) भी कहते हैं—में मोटी बालू, चूना व पत्थर के टुकड़े और कंकड़ का अंश प्रधान होता है अतः यह कम उपजाऊ होती है। इसका रंग गहरा होता है। अतः यह कम उपजाऊ होती है। नवीन कच्छार में चिकनी मिट्टी की बहुतायत रहती है।

कांप मिट्टी कुछ हल्के रंग की होती है। इन मिट्टियों में अभी तक पूर्ण परिपक्वता नहीं आई है फिर भी यह उपजाऊ होती है। वर्षा की भिन्नता के कारण इस मिट्टी के गुणों में भी अन्तर पाया जाता है। जैसे अधिक वर्षा के कारण ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में चूना, मैगनेशियम और लोहा आदि क्षार पानी के साथ भूमि में भिद जाते हैं अतः मिट्टी बलुई हो जाती है किन्तु सिंध की घाटी में वर्षा की कमी के कारण ये क्षार भूमि पर ही रहते हैं। गंगा की घाटी में मध्यम मात्रा में क्षार मौजूद रहते हैं।

नदियों के डेल्टों में नदियों की घाटी की मिट्टी की अपेक्षा अधिक बारीक कण होते हैं। इसमें वनस्पति की मात्रा भी खूब होती है। यह मिट्टी बहुत ही उपजाऊ होती है। नदियों के किनारे-किनारे तो बालू की अधिकता रहती है।

कांप मिट्टी का विशेष गुण यह है कि मिट्टी हल्की और छिद्र युक्त होती है जिनमें कृषि कार्य सरलता से किया जा सकता है। इनमें जल सरलता से भिद जाता है किन्तु यह अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। पंजाब में जो कांप मिट्टी पाई जाती है उसमें दोमट से लगाकर बलुही दोमट मिलती है तथा मिट्टी की गहराई भी बहुत है निचले भागों में कंकड़ पत्थर भी मिलते हैं। सोडियम लवण के कारण यह मिट्टी साधारणतः क्षारयुक्त होती है। इसमें फास्फोरस और पोटाश अधिक किन्तु जीवांश और नेत्रजन कम होता है।

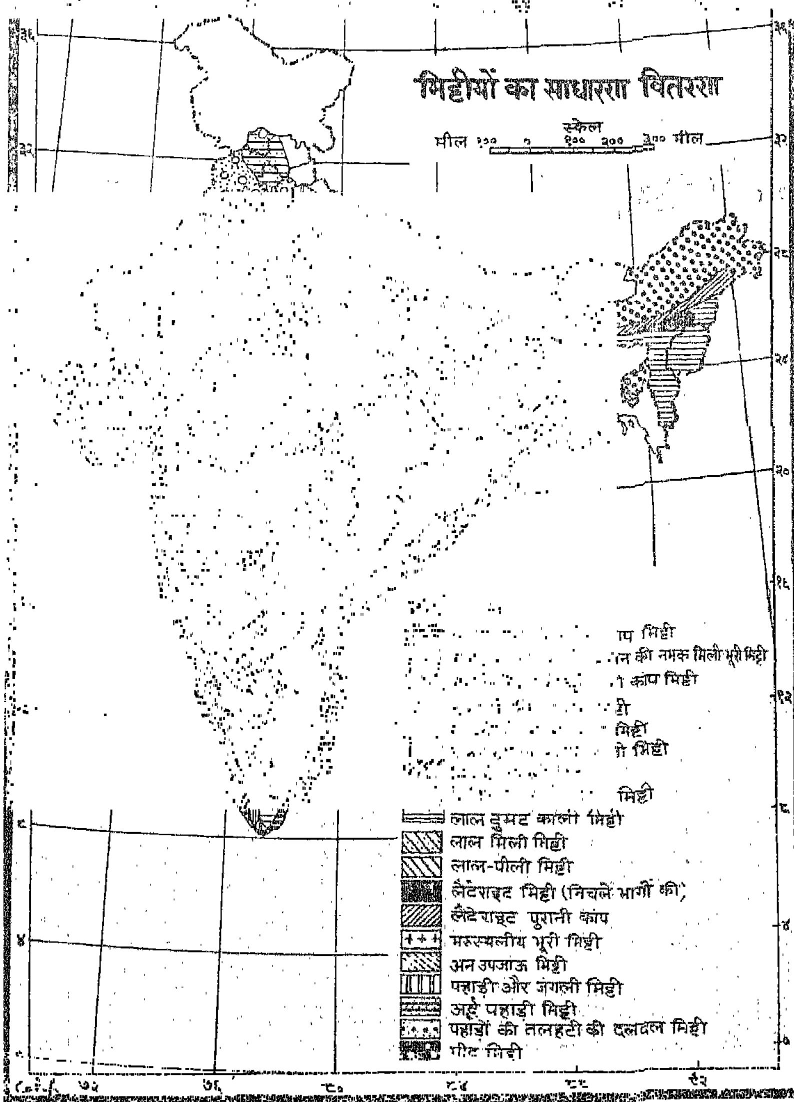
बिहार में गंगा के उत्तरी भाग में चिकनी, दोमट अथवा बलुही दोमट मिट्टी मिलती है जिसमें पोटाश पाया जाता है किन्तु गंगा के दक्षिणी भाग में मिट्टी भारी और बारीक कणों वाली होती है इसमें फास्फोरस कम मिलता है।

पश्चिमी बंगाल में राढ़ (Rahr) क्षेत्र में मुख्यतः पुरानी कांप मिट्टी मिलती है। इसमें [illegible] नहीं पाई जाती है।

मुहाने में जो कांप मिट्टी मिलती है वह ऊपरी भागों से बहाकर लाई गई है इसके जमाव डेल्टों तथा तटीय भागों में है। इसमें बालू और चिकनी मिट्टी के तहें समान रूप से पाई जाती हैं।

(२) **काली मिट्टी** (Black Cotton Soil or Regur)—यह गुजरात से अमरकंटक तथा बेलगांव से गुना तक फैली हुई है अर्थात् इस मिट्टी का क्षेत्र २,००,००० वर्ग मील भूमि में फैला है। बम्बई राज्य के अधिकांश भाग, पश्चिमी मध्य-प्रदेश, सौराष्ट्र, आंध्र, मद्रास के बलारी, कर्नूल, कडप्पा, सलेम, रामनाथपुरम, कोयम्बटूर

तथा तिरूनलवैली जिलों में यह मिट्टी अधिक पाई जाती है। यह मिट्टी प्राचीन काल में हुये ज्वालामुखी के उद्‌गार से निकले हुए लावा से बनी है। इसकी मुख्य विशेषता



चित्र ९८—भारत की मिट्टियां

यह है कि इसकी गहराई कई फुट तक होती है। इसमें रेत और चिकनी मिट्टी मिली

होती है। चिकनी मिट्टी के भाग में ६०% सिलीकेट, १५% लोहा और २५% अल्यूमिनियम होता है। वर्षा में यह मिट्टी बहुत फूल कर गोंद की तरह चिपचिपी हो जाती है किन्तु सूखने पर इतनी कड़ी हो जाती है कि सूर्य की किरणें जमीन के अन्दर का पानी भाप बनाकर उड़ा नहीं पातीं और धरातल पर बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जाती हैं। इस मिट्टी में खनिज पदार्थों की बहुतायत रहता है। यह मिट्टी कम वर्षा वाले स्थानों (२०" से ३०") में ही अधिक पाई जाती है। इसमें नमी बहुत देर तक ठहर सकती है। इस मिट्टी की सतह की गहराई १ फुट से ५० फीट तक मिलती है।

काली मिट्टी रूस और उत्तरी अमरीका के पश्चिमी भाग में भी पाई जाती है। रूस के यूक्रेन प्रांत में मिलने वाली काली मिट्टी से भारत की काली मिट्टी सर्वथा विभिन्न है क्योंकि यूक्रेन वाली काली मिट्टी का रंग उसमें मिली हुई सड़ी गली वनस्पति (Humus) के कारण होती है इसलिये यह हमारे देश की काली मिट्टी की तरह चिकनी नहीं है बल्कि भुरभुरी है। भारत की मिट्टी बड़ी उपजाऊ है। मालवा के कुछ मैदानों में—जहाँ यह मिट्टी पाई जाती है—लगभग २.००० वर्षों से बिना सिंचाई और खाद तथा भूमि को विश्राम [illegible] जाते हैं। इस मिट्टी में कपास, गेहूँ, अलसी और मोटे अनाज बहुत पैदा होते हैं। इस मिट्टी में चूना, पोटास, मैगनेशिया, एल्यूमीनियम तथा लोहा खूब होता है किन्तु फासफोरस तथा नाईट्रोजन और जीवांशों की कमी रहती है। साधारणतः ये मिट्टियाँ बड़ी उपजाऊ होती हैं विशेष कर निचले भागों में। पहाड़ी ढालों और ऊपरी भागों में यह बलुही और कम उपजाऊ होती है। पहाड़ियों और मैदानी क्षेत्रों के बीच में यह गहरे रंग की, अधिक गहरी और उपजाऊ होती है, जिनमें पहाड़ी नालों द्वारा लाई गई मिट्टी बिछाई जाती रहती है।

महाराष्ट्र में इस मिट्टी के क्षेत्र काफी विस्तृत हैं। यह दक्कन ट्रैप से बनी हैं। पहाड़ी ढालों पर यह हल्के रंग की, पतली तथा अन उपजाऊ और निचले भागों में गहरी तथा उपजाऊ होती है। नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटियों में यह २० फीट से भी अधिक गहरी पाई जाती है। भीतरी मिट्टी में चूने की मात्रा अधिक होती है। गुजरात के सूरत और भड़ौंच जिलों में भी यह मिट्टी पाई जाती है।

मध्य प्रदेश में नर्मदा की घाटी में गहरी और गहरे काले रंग की तथा छिछली काली मिट्टी मिलती है। इसमें कपास का उत्पादन अधिक होता है। मैसूर में काली मिट्टी में नमक के करण भी मिले रहते हैं।

(३) लाल मिट्टी [illegible] शुष्क और तर जलवायु के बारी-बारी से बदलने [illegible] नों और परिवर्तित चट्टानों के टूट-फूट के कारण बनती है। ताप्ती नदी की घाटी में पहाड़ियों के ढालों पर लगातार अधिक गर्मी पड़ने से चट्टानों के टूटने पर उनमें मिला हुआ लोहा मिट्टी में एक-सा फैला गया है जिससे इस मिट्टी का रंग लाल होगया है। कहीं-कहीं इनका रंग भूरा, चाकलेटी, पीला अथवा काला भी होगया है। जहाँ कहीं यह मिट्टी बहुत ही छोटे-छोटे टुकड़ों की बनी हुई है वहां यह काफी उपजाऊ है। लेकिन दूसरे भागों में मिट्टी की तहों में पानी न रुकने कारण यह प्रायः बंजर रह गई है।

इस प्रकार की मिट्टी मध्य प्रदेश के बुन्देलखंड से लगाकार ठेठ दक्षिण तक पाई जाती है। इसका क्षेत्र ८००,००० वर्ग मील में मद्रास, मैसूर, दक्षिणी पूर्वी महाराष्ट्र मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग, छोटा नागपुर, उड़ीसा, और बंगाल के दक्षिण संथाल

परगना और राजस्थान के आधे पूर्वी भाग तथा पूर्वी आंध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर, झांसी और हमीरपुर जिलों में फैला है। यह मिट्टी बहुत प्रकार की चट्टानों से बनी है। अतः यह गहराई और उर्वरा शक्ति में भी बहुत तरह की होती है। ये मिट्टियाँ अत्यन्त रंध्रयुक्त होती हैं और अत्यन्त बारीक तथा गहरी होने पर ही उपजाऊ होती हैं। अतः ऊँचे मैदानों में पाई जाने वाली लाल मिट्टी उपजाऊ नहीं होती। यहाँ पर यह हल्के रंग की, पथरीली और कम गहरी होती है। इस मिट्टी में पहाड़ी भागों में बाजरा आदि पैदा होता है किन्तु जो नीचे मैदानों में पाई जाती है वह उपजाऊ होती है। अतः इसमें कपास, गेहूँ, दालें, मोटे अनाज आदि पैदा किये जाते हैं। इसमें पोटास और चूना यथेष्ट होता है किन्तु नाइट्रोजन, फासफोरस और वनस्पति का अंश कम होता है।

(४) **लैटेराइट मिट्टी** (Laterite Soils)—यह मिट्टी विशेषकर मध्य-प्रदेश (गवालियर, पन्ना और रीवां जिले में) पूर्वी और पश्चिमी घाटों के समीप दक्षिणी महाराष्ट्र, मलाबार, राजमहल की पहाड़ियों, उड़ीसा तथा आसाम के कुछ भागों में पाई जाती है। चट्टानों का ठोसपन और कुछ गुम्बदाकार रचना इसकी विशेषताएँ हैं। यह मिट्टी भी कई प्रकार की होती है। पहाड़ियों पर पाई जाने वाली मिट्टी बहुत कम उपजाऊ होती है। इस मिट्टी में चूना, फासफोरस और पोटास कम होता है। किन्तु वनस्पति का अंश यथेष्ट होता है। इस मिट्टी का रंग कुछ ललाई लिये होता है। जहां-जहां यह मिट्टी पाई जाती है वहां किसी तरह की वनस्पति नहीं उगती। मद्रास के पहाड़ी भागों और निचले क्षेत्रों दोनों में ही लैटेराइट मिट्टी मिलती है जिसकी उत्पत्ति जलवायु और मौसमी कारणों से हुई मानी जाती है। इस प्रकार की मिट्टी अपने बनने के स्थान पर ही रहती है किन्तु नदियों द्वारा बहाकर अपने डेल्टाओं में भी जमा दी जाती है। निचले भागों में इस मिट्टी में चावल और ऊपरी भागों में रबड़, सिकोना, चाय, करवा आदि बोया जाता है।

कुर्ग में यह मिट्टी सारे जिले में बिखरी मिलती है। महाराष्ट्र में रत्नागिरी जिले में पाई जाती है। यहाँ इसका दाना बड़ा मोटा होता है। केरल राज्य में चौड़े समुद्री तट और पूर्वी भागों के बीच में इस प्रकार की मिट्टी मिलती है। पश्चिमी बंगाल में बसाल्ट और ग्रैनाइट पहाड़ियों के बीच-बीच में लैटेराइट मिट्टी पाई जाती है। उड़ीसा में पठार के ऊपरी भागों और घाटियों में मिलती है।

(५) **रेगिस्तानी मिट्टी** (Desert Soils)—गंगा के मैदान के दक्षिणी पश्चिमी भाग में थार का रेगिस्तान अर्थात् राजस्थान व दक्षिणी पंजाब का ऐसा क्षेत्र है जहाँ वर्षा बहुत कम होती है और हवा द्वारा उड़ाकर लाये हुए रेत के टीले बने रहते हैं। अतः इस प्रदेश की मिट्टी बड़ी अनुपजाऊ होती है क्योंकि इसमें जीवांशों की कमी होती है। जहाँ कहीं कुछ पानी प्राप्त हो जाता है खेती कर ली जाती है। बाजरा विशेष उपज है।

(६) **क्षारीय मिट्टी** (Alkaline Soils)—गंगा और सिंध के मैदान में कितने ही स्थानों पर (उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग, बिहार, प० पंजाब और राजस्थान में जहाँ वर्षा कम होती है) भूमि की ऊपरी सतह पर सफेद रंग का पर्त सा बिछ जाता है जिससे भूमि बेकार हो जाती है और कोई पैदावार नहीं हो सकती। इस प्रकार हजारों एकड़ जमीन बेकार हो चुकी है। इस भूमि को ऊसर या कल्लर या रेह भूमि कहकर पुकारते हैं।

बहते हुए पानी में अनेक नमक घुलते जाते हैं और निचले भागों में पहुँचकर जब यह पानी भूमि के नीचे सोख जाता है तो ये नमक भी उसके साथ नीचे चले जाते हैं। इस प्रकार जब इतना अधिक पानी सोख जाता है कि भूमि में पानी की निचली व ऊपरी सतह मिल जाती है जो भूमि के निचले भागों व ऊपरी सतह में सीधा सम्बन्ध हो जाता है। जब शुष्क ऋतु में वाष्पीकरण तीव्र होता है तो नीचे का नमकीन पानी छिद्रों में होकर ऊपर को खिचने लगता है इस प्रकार पानी तो भाप बनकर उड़ता रहता है किन्तु साथ में आये हुए नमक की पर्त सतह पर जमती रहती है यही जमा हुआ सफेद पदार्थ 'रेह' होता है। यह रेह नमकीन पदार्थ है। इसमें कैलशियम, सोडियम, तथा मैगनिशियम के नमक होते हैं। यही रेह वर्षा के जल से आस-पास की भूमि पर फैल जाती है और उसको बेकार कर देती है। ऐसा ही नहरी इलाकों में अत्यधिक सिचाई करने से हो जाता है। अधिक पानी के लोभ में किसान पानी को खूब भर देते हैं और जल में इस एकत्रीकरण (Waterlogging) से नमक जम जाता है इस तरह रेह के क्षेत्र बढ़ते जाते हैं और भूमि कृषि के अयोग्य बनती जाती है।

उत्तर प्रदेश में लगभग २१ लाख एकड़ और पंजाब में ५ लाख एकड़ भूमि क्षार फैल जाने से कृषि के अयोग्य हो गई है। साधारणतः प्रति वर्ष पंजाब में २५,००० एकड़ भूमि क्षार युक्त होती जाती है। नर्मदा, ताप्ती, माही और साबरमती के चौड़े मुहानों में भी नमक की पर्तें जम जाने से लगभग ६७ हजार वर्गमील भूमि बेकार हो गई है।[१]

(७) **हिमालय पर्वत पर पाई जाने वाली मिट्टियाँ**—हिमालय पर्वत पर पाई जाने वाली मिट्टियाँ नई ही हैं। अधिकांश यह मिट्टियाँ पतली, दलदली और छिद्रमय होती हैं। इनकी अधिक गहराई नदियों की घाटियों और पहाड़ी ढालों पर पाई जाती है। हिमालय के दक्षिणी ढाल अधिक सीधे होने के कारण उत्तरी ढालों की अपेक्षा मिट्टी इकट्ठी नहीं होने देते। हिमालय पर्वत की मिट्टी कई प्रकार की है। पहाड़ी ढालों के पेंदों में टरशियरी (Tertiary) पाई जाती है जो हल्की बालूमय और छिद्रमय होती है जिसमें वनस्पति का अंश कम होता है किन्तु पश्चिमी हिमालय के ढालों पर कुछ अच्छी बालू मिट्टी मिलती है। मध्य हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली मिट्टी वनस्पति के अंश की अधिकता के कारण बड़ी उपजाऊ है। इसी कारण अच्छी वर्षा होने पर द्वार और दून की घाटी तथा कांगड़ा जिले में अच्छी चाय पैदा होती है। हिमालय प्रदेश में दो प्रकार की मिट्टियाँ मुख्यतः पाई जाती हैं :—

(१) हिमालय के दक्षिण भाग में पथरीली मिट्टी अधिक पाई जाती है जिसे नदियों ने लाकर एकत्रित कर दिया है। इस मिट्टी का दाना बड़ा होता है तथा इसमें कंकड़ और पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े भी मिले रहते हैं किन्तु इस मिट्टी में वनस्पति का अंश कम होता है। अतः अच्छी पैदावार नहीं होती। घाटियों में जहाँ कहीं चिकनी और महीन मिट्टी मिलती है वहाँ चाय, आलू, आदि वस्तुएँ पैदा की जाती हैं।

(२) हिमालय प्रदेश में कई स्थानों पर चूने और डोलोमाइट चट्टानों से प्राप्त मिट्टी मिलती है [illegible] नैनीताल, मसूरी, चकराता आदि स्थानों के निकट। वर्षा [illegible] भाग बहकर चला जाता है, थोड़ा भाग भूमि पर ही

१. M. S. Randhawa, Agriculture & Animal Husbandry in India, p. 29.

रह जाता है जिससे भूमि अनुत्पादक और बीहड़ों वाली हो जाती है। ऐसी भूमि में केवल चीड़ और साल आदि के वृक्ष ही हो सकते हैं।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में पाई जाने वाली प्रायः सभी मिट्टियों में नाइट्रोजन की कमी है। यह बात नीचे की तालिका से और भी स्पष्ट हो जायगी[1] :—

मिट्टी	नेत्रजन (Nitrogen)	स्फुरिन अम्ल (Phosphoric Acid)	पोटास (Potash)	चूना (Lime)
१. कांप मिट्टी	०३ से ·०३	·०८ से ·१३	·३ से ·०७	३ से २·०
२. काली मिट्टी	·०२ से ·०५	·०२ से ·२	·८ से ·१५	१·० से ७·७
३. लाल मिट्टी	·०८ से ·०६	·००५ से ·०२	·१ से ·३५	१·० से भी कम
४. लैटेराइट मिट्टी	·०१ से ०·४	—	—	बिल्कुल नहीं

भूमि कटाव या क्षरण की समस्या (Problem of Soil Erosion)

भारत में भूमि सम्बन्धी प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है। हमारे देश की मिट्टियों की उर्वरा शक्ति प्रति वर्ष कम होती जा रही है। इसके साथ २ कई भागों की मिट्टियाँ बहते हुए पानी के जोर से कटकर समुद्र में चली जाती है। धरती के कटने या अपक्षरण (Soil erosion) की समस्या भारत जैसे अधिक वर्षा वाले देश में बड़ी विषम हो गई है। मिट्टी के कटाव को 'रेंगती हुई मृत्यु' कहा गया है। यह परिणाम भूमि तक ही सीमित नहीं है किन्तु उन्हें मनुष्यों को भी भुगतना पड़ता है क्योंकि भूमि के नष्ट होने से भूमि की पैदावार क्षीण होती जाती है। भूमि की सतह के ऊपर की ही वनस्पति जन्य तत्व, रासायनिक तत्व और भूमि की शक्ति को बढ़ाने वाले पदार्थ एकत्रित रहते है जिनसे पौधों को खुराक मिलती रहती है। यदि एक बार यह ऊपरी सतह नष्ट हो जाती है तो भूमि की उर्वरा शक्ति भी क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप वहाँ किसी प्रकार की वनस्पति पैदा होना असम्भव हो जाता है।

भूमि कटाव के प्रकार (Types of Soil Erosion)

भारत की उन सभी ढालू भूमियों पर जहाँ न तो जंगल हैं न घास के मैदान हैं और जहाँ कृषि-योग्य भूमि की ठीक प्रकार से मेढ़-बन्दी भी नहीं की जाती वहाँ की मिट्टी सदैव कटती रहती है। प्रत्येक स्थान पर मिट्टी का कटाव समान नहीं होता। यह कई बातों पर निर्भर है। जैसे—मिट्टी का गुण, भूमि की ढाल, वर्षा की मात्रा आदि। कठोर मिट्टी की अपेक्षा कोमल छोटे कण वाली मिट्टी अधिक ढाल और मूसलाधार वर्षा में शीघ्र कट कर बह जाती है।

मिट्टी का कटाव कई प्रकार का होता है। जब घनघोर वर्षा के कारण निर्जन पहाड़ियों की मिट्टी जल में घुल कर बह जाती है तो इसे भूमि का **धरातली कटाव** (Shteet erosion) कहते हैं। धरातली कटाव सभी ढालू भूमि की ऊपरी मूल्यवान मिट्टी को बहा देता है जिससे उसकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है।

जब पानी बहता है तो उसकी विभिन्न धारायें मिट्टी को कुछ गहराई तक काट देती हैं जिससे धरातल में कई फुट गहरे खड्ड बन जाते हैं। इस प्रकार के कटाव

१. Table reproduced from C. B. Mamoria's Agricultural Problems of India, Second edition, 1958, p. 82.

को नाले का कटाव (Gully erosion) कहते हैं। परन्तु नाले का कटाव प्रथम प्रकार के कटाव से अधिक हानिकारक होता है।

मरुभूमि में प्रचण्ड वायु द्वारा भी मिट्टी का कटाव होता रहता है। इसके द्वारा मिट्टी को काट कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाकर बिछा दी जाती है। इसे **वायु का कटाव** (Wind erosion) कहते हैं।

इन विभिन्न प्रकार के कटावों द्वारा भारतवर्ष की हजारों एकड़ भूमि नष्ट की जा चुकी है। भारत में तीनों ही प्रकार के कटाव मिलते हैं।

भूमि कटाव के कारण—भूमि के कटाव के कई कारण हैं:—

(१) इसका मुख्य कारण मानव की अज्ञानता है। अज्ञानतावश वह कई शताब्दियों से इस कार्य में प्रकृति की सहायता करता रहा है। अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताओं—लकड़ी, ईंधन आदि के लिये—की पूर्ति के लिये उसने निर्भयतापूर्वक वृक्षों को नष्ट किया है। जब किसी स्थान की वन सम्पत्ति नष्ट हो गई तो वर्षा के पानी को वहाँ की भूमि को काट कर उपजाऊ मिट्टी को बहा ले जाने में बड़ी सहायता मिली।

(२) इसी प्रकार जंगलों के समीप रहने वाली जातियों ने असाधारण संख्या में भेड़, बकरी आदि पशुओं को पाल कर जंगलों की वनस्पति को उन्हें बेफिक्री के साथ चारा चरा कर नष्ट कर दिया है।

(३) बहुत सी जंगली जातियों ने जंगलों को साफ कर कृषि के लिये भूमि प्राप्त कर ली है। इन साफ किये हुए जंगलों में झूमिंग कृषि प्रणाली (Jhuming) द्वारा खेती की जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत एक स्थान की भूमि को साफ करके उस पर खेती की जाती है और दो तीन वर्ष बाद जब वर्षा द्वारा उस भूमि की ऊपरी सतह धुल कर बह जाती है तो वह भूमि छोड़ दी जाती है और फिर दूसरे स्थानों के जंगलों को जलाकर नई भूमि पर खेती की जाती है। इस प्रकार प्रतिवर्ष बहुत से जंगल नष्ट हो जाते हैं। झूमिंग कृषि प्रणाली को भिन्न २ प्रान्तों में भिन्न २ नामों से जाना जाता है, यथा—आसाम में 'झूम' (Thum); मध्य प्रदेश में पोडू (Podu) या डाह्या (Dahya); हिमालय पर्वत में खील (Khil); पश्चिमी घाटों में कुमारी (Kumari) और राजस्थान में वालरा (Walra)[१]।

(४) कृषि के अवैज्ञानिक ढंगों से भूमि के कटाव में बड़ी सहायता मिलती है।

भारत में भूमि-क्षरण[२] (Soil Erosion in India)

भूमि क्षरण की विभीषिका ने भारत में काफी भयानक रूप धारण कर लिया है और वस्तुत: इसे भारतीय कृषि का पहली श्रेणी का शत्रु माना जाता है। हिसाब लगाया गया है कि प्रत्येक आंधी में उत्तर भारत में पहाड़ियों की तलहटी की जोती हुई भूमि में प्रति एकड़ १४ टन उपजाऊ मिट्टी का विनाश होता है। महाराष्ट्र के दक्षिणी क्षेत्र में ज्वार के खेतों की प्रति एकड़ १३३ टन बहुमूल्य मिट्टी एक ही आँधी से नष्ट हो जाती है। सर एच० ग्लोवर का अनुमान है कि भूमि क्षरण से भारत

१. Imperial Gazetteer of India, 1904, Vol. III p. 25.

२. This section in largely based on my book, Agriultural Problems of India, 1958. pp. 64-69.

में १५ करोड़ भूमि की क्षति हो रही है। श्री जे० रसेल का अनुमान है कि देश के विभिन्न भागों में प्रति एकड़ १ से लेकर ११५ टन तक धरती नष्ट हो रही है। एक अन्य अनुमान के अनुसार प्रति वर्ष वर्षा से भूमि की $\frac{१}{३०}$ इंच ऊपरी उपजाऊ मिट्टी नष्ट हो रही है। औसतन प्रतिवर्ष भूमि का २% भाग बहकर चला जाता है।

उत्तर-प्रदेश में बृजभूमि की वर्त्तमान स्थिति भूमि-क्षरण से होने वाले विनाश का सजीव प्रतीक है। "एक समय जहाँ दूध और घी की नदियाँ बहा करती थी वहाँ आज विश्व के इस सर्वाधिक उर्वर भू-भाग के मध्य में सैकड़ों वर्ग मील तक फैली हुई भूमि अतिशय पशु चारण के फलस्वरूप अपने प्राकृतिक आवरणों से वंचित होकर मरुस्थल होगई है।" उत्तर प्रदेश में लगभग ८० लाख एकड़ उबड़-खाबड़ भूमि और उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के बीच का मानव निर्मित मरुस्थल जो राज्य के दक्षिण-पश्चिमी जिलों को भी अपनी लपेट में लेना चाहता है और जिसके फल-स्वरूप पंजाब और उत्तर-प्रदेश की नहरों में कीचड़ जमा हो गया है, भूमि क्षरण का मुख्य स्थल है।

आगरा, मथुरा और इटावा के जिलों में दूर-दूर तक विस्तृत बंजर भूमि है। इटावा में ही १२०,००० एकड़ बंजर भूमि है। इस जिले में प्रति सैकंड ११ घनफीट मिट्टी बेकार होती है जो तीन मील प्रति घंटा की रफ्तार से बहने वाली १३ फीट चौड़ी और २ फुट गहरी जल धारा से कटने वाली मिट्टी के बराबर है। उत्तर प्रदेश में भूमि-क्षरण से ध्वस्त भूमि ५ लाख एकड़ से लेकर १० लाख एकड़ तक है।

अवध, बुन्देलखण्ड और आगरा के बंजर क्षेत्रों में परतवार भूमि-क्षरण (Sheet Erosion) गत २०० वर्षों से जारी है जिससे लगभग १ फुट गहराई तक की मिट्टी बहकर साफ होगई है। मध्य प्रदेश (ग्वालियर) में चम्बल तथा अन्य नदियों की लगातार बाढ़ से विशाल भूमिखण्ड अनुर्वर हो गया है। अनुमान लगाया गया है कि जमुना चम्बल घाटी में जो भूमि-क्षरण हुआ है वह गत १००० वर्षों से प्रति दूसरे दिन और रात में $\frac{१}{३}$ टन मिट्टी हटने के बराबर है। इस क्षेत्र में भूमि-क्षरण से प्रभावित भूमि ७० मील लम्बी और मध्य में १३ मील चौड़ी है। चम्बल नदी भूमि-क्षरण को सर्वाधिक प्रोत्साहित करने वाली मानी जाती है। इन क्षेत्रों पर दृष्टिपात करने से मालूम हो जाता है कि यह विशाल भूखण्ड अनेक नालों और खड्ढों में विभक्त हो गया है और इनमें से कुछ तो ऐसे हैं जिनमें पूरी की पूरी सेना समा जाय। यह तो निर्विवाद सत्य है कि इन खड्ढों और दूर-दूर तक विस्तृत नालों में भयानक डाकू दल विचरण करते हैं। इस भूमि पर खेती करने की बात तो दर किनार है। यह चारागाह के लिये भी अनुपयुक्त है। ये खड्ढ और नाले भूमि-क्षरण (Gully type of Soil Erosion) और तदजन्य विनाश के क्षेत्र जीते-जागते नमूने हैं।

गंगा और उसकी सहायक नदियों के मैदानी क्षेत्र भी इस विभिषिका से सर्वथा मुक्त न रह सके है। सच तो यह है कि ये नदियाँ धीरे-धीरे किन्तु क्रम से मैदानों में गहरे नाले बनाकर भूमि की उर्वर परत को बहा कर साफ करती रही है। इन भागों में नदी तट का भूमि-क्षरण सामान्यत: देखा जा सकता है। विद्वानों का मत है कि अकेली गंगा नदी प्रति वर्ष १० करोड़ मन मिट्टी लेजाकर बंगाल की खाड़ी में डालती है। दक्षिणी बंगाल में प्राय: सभी नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में भूमि-क्षरण का भीषण प्रकोप है जिसके फल स्वरूप न केवल कृषि-योग्य भूमि ही नष्ट हो रही है वरन् आबादी को भी पर्याप्त क्षति पहुँच रही है।

शिवालिक तथा हिमालय पर्वत माला में ये खड्ढे और नाले सैकड़ों फीट गहरे हैं और जहाँ कहीं भी भूमि-क्षरण के फल-स्वरूप दरारें पड़ गई हैं वहाँ के लोग अपने गाँव व घर छोड़ कर अन्यत्र भाग जाने के लिये बाध्य हुए हैं।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि महाराष्ट्र तथा दक्षिण में रुई उत्पादन करने वाली काली मिट्टी पानी की घातक क्रियाओं को बिल्कुल ही नहीं सहन कर सकती और कतिपय क्षेत्रों में अनुमानत: प्रतिवर्ष प्रति एकड़ १३३ टन मिट्टी की क्षति होती है।

निश्चित अंश तक परतदार भूमि-क्षरण (Sheet Erosion) और खड्ढों तथा नालों से होने वाले भूमि-क्षरण (Gully Erosion) के बाद ये क्षेत्र हवा से होने वाले भूमि-क्षरण के शिकार बन जाते हैं। इन क्षेत्रों की बढ़ती हुई खुश्की के फलस्वरूप हवा का वेग पेड़ों, झाड़ियों तथा घास के आवरण को नष्ट करता हुआ सारी भूमि को मरुभूमि बना देता है। मरुस्थल की प्रवृत्तियां दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान बाहरी भागों की ओर अबाध गति से बढ़ रही हैं। समस्या की गति को केन्द्रीय अधिकारी वर्ग ने अभी हाल ही में पूर्णत: अनुभव कर लिया है और दिल्ली, उत्तर-प्रदेश तथा पंजाब की सीमा पर रक्षात्मक वृक्षों की पट्टी लगाने का प्रयत्न आरम्भ किया गया है। राजस्थान और पाकिस्तान की सीमा के बीच में ५ मील चौड़ी और ४०० मील लम्बी वृक्षों की पेटी लगाई गई है।

हवा से होने वाला भूमि-क्षरण सामान्यत: राजस्थान (जोधपुर, बीकानेर, कोटा, जयपुर, भरतपुर, किशनगढ़) और पंजाब के क्षेत्रों में देखा जाता है। राजस्थान में इस प्रक्रिया से गत शताब्दी में प्रति वर्ग मील से लगभग ६ करोड़ मन उपजाऊ मिट्टी का विनाश हुआ है। इस मरुस्थल के अनेक क्षेत्रों में तेज हवा अक्सर जोते और बोये खेतों पर बालू की परत जमा देती है जिसके फलस्वरूप बीज अंकुरित नहीं होने पाता अथवा हल्की मिट्टी के उड़ जाने से नन्हें पौधे अरक्षित होकर नष्ट हो जाते हैं।

योजना कमीशन के सुझावों के अनुसार दिसम्बर १९५३ में केन्द्रीय भूमि संरक्षण बोर्ड स्थापित किया गया है। इस संस्था का विशेष उत्तरदायित्व है—भूमि संरक्षण के सम्बन्ध में खोज करने के कार्यों का संयोजन और निरीक्षण करना, घाटी और योजनाओं और प्रान्तीय भूमि संरक्षण योजनाओं को नई योजनायें बनाने में सहायता देना, तत्सम्बन्धी विशिष्ट शिक्षा देने का प्रबन्ध करना और नदी घाटी योजनाओं तथा प्रान्तीय भूमि संरक्षण योजनाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करने के प्रस्ताव और सुझाव देना।

भूमि-क्षरण की बुराइयाँ (Abuses of Soil Erosion)

(१) इससे भूमि की उर्वरता नष्ट होती है और उत्पादन कम होने लगता है। भूमि की सतह में कुछ इन्चों की गहराई तक उर्वर तथा अन्य पोषक तत्व रहते हैं। यही महत्वपूर्ण परत कट जाने से भूमि-क्षरण से उपजाऊ खेत भी बंजर हो जाते हैं।

(२) भूमि की ऊपरी परत की शक्ति क्षीण होने का एक दूसरा प्रभाव यह पड़ता है कि उसके नीचे की मिट्टी भी शक्तिहीन होने लगती है और पानी के बहाव के साथ उसमें कीचड़ आकर जम जाता है जिससे धरती पानी को ठीक से नहीं सोख

पाती। इसके परिणामस्वरूप नीचे की मिट्टी को उचित मात्रा में पानी नहीं पहुँच पाता और उसकी उर्वरता कम होने लगती है।

इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह पड़ता है कि धरती की उर्वरता कम होने के साथ पेड़ों की जड़ों को पर्याप्त खुराक नहीं मिलती और कुछ दिनों बाद उनके स्थान पर घास-पात का ही आवरण रह जाता है जो कि भूमि क्षरण की रोकथाम में उतने प्रभावकारी नहीं होते। इस प्रकार धरती के ऊपरी तथा उपजाऊ मिट्टी की क्षति से अनेक बुराइयाँ आने लगती हैं। कमजोर मिट्टी, भूमि में पानी सोखने की शक्ति के ह्रास, नीचे की मिट्टी की दुर्बलता और सुरक्षात्मक आवरण की कमी भूमि-रक्षण की शक्तियों का रास्ता आसान कर देती है।

(३) इससे केवल धरती की नमी ही कम नहीं हो जाती वरन् भूमि में पानी सोखने की शक्ति कम होने से जमीन के भीतरी साधनों के लिये भी पानी की कमी होने लगती है। फलतः नदियों तथा कुओं में भी पानी की सतह नीची पड़ जाती है। इस प्रकार पंजाब के होशियारपुर और जालन्धर के दोआब में तथा उत्तर प्रदेश के इटावा, आगरा, मथुरा, और जालौन जिले में कुओं के पानी की सतह नीची पड़ गई है। सन् १८७१ और १९३१ के बीच आगरा, मथुरा और इटावा के कुओं की संख्या में क्रमशः २५ प्रतिशत, ४० प्रतिशत और ७५ प्रतिशत की कमी हुई है।

(४) भूमि क्षरण से गड्ढे और नालियाँ बन जाते हैं और अच्छी भूमि भी बेकार होने लगती है। बहते हुए पानी से अगल बगल अनेक छोटे मोटे गड्ढे बन जाते हैं जो बाद में व्यापक होने लगते हैं और थोड़े ही दिनों में समस्त उपजाऊ भूमि बंजर हो जाती है। पंजाब का अटक जिला, यमुना और चम्बल के किनारे, दक्षिणी बम्बई, मद्रास, मध्य प्रदेश, छोटा नागपुर तथा उत्तर प्रदेश के देहरादून, सहारनपुर, जालौन, मथुरा और इटावा आदि जिलों में पानी और हवा की यह व्यापक विनाश लीला सर्वत्र देखी जा सकती है।

(५) भूमि क्षरण से धरती का सुरक्षात्मक आवरण तथा उसकी सोखने की शक्ति नष्ट होने के कारण पानी बड़े वेग से और बिना रोक टोक के नीचे की ओर पर्याप्त मात्रा में बहता है। फलतः बाढ़ें आती हैं। वास्तव में पूर्वी बिहार, बंगाल और आसाम में एक के बाद दूसरी बाढ़ का दोष पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार के पहाड़ी क्षेत्रों में भूमि-क्षरण के रोक-थाम के प्रश्न से सम्बन्धित है।

(६) भूमि क्षरण से भूमि की तह में नहरों तथा जलाशयों में तथा नदी के दोनों ओर बालू जमा हो जाता है। फलतः विशाल भूखण्ड कृषि के लिये अनुपयोगी हो जाते हैं, सिंचाई की सुविधाओं में कमी पड़ने लगती है और विनाशकारी बाढ़ का खतरा बना रहता है। पंजाब और उत्तर प्रदेश की नहरों में भूमि क्षरण के कारण बालू जमा हो गया है। इसे बराबर साफ करने की आवश्यकता है और इस कार्य में काफी खर्च पड़ने के साथ ही कृषि के लिये [illegible] हो जावेंगी। होशियारपुर (पंजाब) में शिवालिक पर्वतमाला [illegible] में ७५ वर्ग मील पर चो (cho) या खस (Khas) का जंगल लग गया और सन् १९२९ तक ७०० वर्ग मील अर्थात् ४.५ लाख एकड़ भूमि पर [illegible] छा गया।

(७) जल की क्रिया हवा की क्रिया के लिये मार्ग प्रशस्त कर देती है। पानी की क्रिया से जो भूमि-क्षरण होता है उससे उस क्षेत्र में खुश्की आ जाती है। इससे

हवा की क्रियाओं को और अधिक बल प्राप्त हो जाता है। लगातार तेज हवा और अन्धड़ से भूमि की हरियाली नष्ट होने लगती है और देखते ही देखते हरे भरे खेत रेगिस्तान नजर आने लगते हैं। इससे प्रभावित होकर उन क्षेत्रों के लोग अन्यत्र जाने के लिये बाध्य हो जाते हैं। इस प्रकार गरीब किसानों की खानाबदोश जाति तैयार हो जाती है। साथ ही इस प्रकार के अरक्षित प्रदेश में भूमि-क्षरण की शक्तियों को खुल कर खेलने का मौका मिल जाता है। विशेषज्ञों का कथन है कि कृषि योग्य भूमि तथा जंगलों के विनाश के फलस्वरूप पश्चिमोत्तर भागों (अब पाकिस्तान) के किसान जीविकापार्जन के लिये सशस्त्र सेना में भर्ती होने के लिये बाध्य हुए।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दक्षिणी पंजाब के कुछ भाग, बीकानेर, उत्तर प्रदेश के सीमान्त क्षेत्र और राजस्थान हवाओं की क्रिया से होने वाले भूमि-क्षरण से प्रभावित हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इन समस्त विरोधी शक्तियों के क्रमश: एक साथ मिल जाने से अथवा अवनति की शक्तियों के प्रहार से भूमि की शक्ति नष्ट हो जाती है और उसका ढाँचा मात्र रह जाता है। यही कारण है कि भूमि-क्षरण को 'क्रमिक मृत्यु' (Creeping Death) की संज्ञा दी गई है।

परतदार भूमि-क्षरण (Sheet Erosion), गड्ढों से होने वाले भूमि-क्षरण (Gully Erosion) नदियों के किनारों का भूमि-क्षरण (Bank Erosion) और हवा से होने वाले भूमि क्षरण (Wind Erosion) के संयुक्त प्रभावों का राष्ट्रीय योजना समिति (Notional Planning Committee) ने निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण दिया है[1] :—

(१) भीषण तथा आकस्मिक बाढ़ का प्रकोप।

(२) सूखे की लम्बी अवधि जिसका प्रभाव नहरों पर पड़ता है।

(३) पानी के अतिरिक्त स्रोतों पर प्रतिकूल प्रभाव जिससे कुओं तथा नालों की सतह नीची हो जाती है और सिंचाई में कठिनाई होती है।

(४) नदियों की तह में बालू का जम जाना जिससे नदी की धारा में परिवर्तन होता रहता है और नहरों तथा बन्दरगाहों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

(५) उच्च कोटि की भूमि नष्ट हो जाने से फसल की पैदावार नष्ट हो जाती है।

(६) गड्ढों से होने वाले भूमि-क्षरण तथा नदियों के किनारे के भूमि-क्षरण से खेती की भूमि में कमी पड़ने लगती है।

भूमि-क्षरण का नियंत्रण (Control of Soil Erosion)

"भूमि क्षरण" की शक्तियों पर दो तरफ से आक्रमण करने की आवश्यकता है। एक ओर यदि प्राकृतिक शक्तियों पर नियंत्रण किया जाय तो दूसरी ओर इस सम्बन्ध में मनुष्य के कार्यों की उचित देख रेख की जाय। इन दोनों में ही यह अधिक उचित होगा कि मानवीय क्रिया के नियंत्रण को प्राथमिकता दी जाय किन्तु प्राकृतिक शक्तियाँ ही भूमि-क्षरण का मूल कारण हैं इसलिये इनके नियंत्रण का महत्व घटाया नहीं जा सकता।

(१) जहाँ आवश्यक हो वहाँ रक्षात्मक सतह तैयार की जावे और जहाँ ऐसी

१. National Planning Committee Report on Soil Conservation Afforestation, pp. 74-75.

सतह पहले से हो वहाँ उसे और अधिक मजबूत बनाया जाय। इसके लिये निम्नलिखित उपाय हैं :—

(अ) वृक्षारोपण और चराई पर नियंत्रण—जैसा कि श्री के० एम० मुंशी ने वन महोत्सव का उद्घाटन करते हुए कहा था "भारत को अधिक वृक्ष लगाना चाहिये और कम बच्चे पैदा करना चाहिये।"

ईंधन के लिये वृक्षों की कटाई वैज्ञानिक तरीकों पर होनी चाहिये। पुराने वृक्षों के कटते ही उनके स्थान पर नये वृक्ष लगाये जाने चाहिये। भारत के अनेक भागों में यह प्रयोग हो रहा है और लकड़ी के ठेकेदारों को नये वृक्षों की रक्षा और पालन की जिम्मेदारी सौंप दी गई है। किन्तु अधिकतर क्षेत्रों में वृक्षों की धुआँधार कटाई की जा रही है। इस बुराई को दूर करने के लिये अखिल भारतीय आधार पर कोई योजना कार्यान्वित की जानी चाहिये।

(ब) जोते हुए क्षेत्रों के रक्षात्मक आवरण को बनाये रखने के लिये और उनके विकास के लिये फसल बोने का वैज्ञानिक तरीका—जैसे फसल का हेर-फेर, सुनियोजित परती (Fallowings) आदि काम में लाया जाना वांछनीय होगा। कुछ फसलें जैसे मूंगफली तथा ज़मीन पर फैलने वाली अन्य प्रकार की फसलें की अपेक्षा भूमि को अधिक सुरक्षित रखती हैं। इसलिये जहाँ भूमि-क्षरण है या उसका खतरा है वहाँ ये फसलें उगाई जावें।

२—बहते हुए पानी का वेग रोकना आवश्यक है क्योंकि पानी का वेग जितना ही अधिक होगा उतनी ही अधिक उपजाऊ मिट्टी बहेगी। इसके लिये सामान्यत: जिन उपायों का सुझाव दिया गया है वे हैं—मेंड़ बाँधना, किनारों को बाँधना, पहाड़ियों तथा ऊँची भूमि पर पतली खेती (Strip Cultivation)—तथा मैदान और चौरस क्षेत्र में टेढ़ी-मेढ़ी खेती (Contour Cultivation) की पद्धति। यह तरीका किसी केन्द्रीय योजना अभीसरण (Central Planning Agency) या सहकारी फर्मों के माध्यम से सहज ही प्रयोग में लाया जा सकता है।

३—बहते हुए पानी की मात्रा और भारीपन में कमी करना भी आवश्यक है। इसके लिये निम्नलिखित बातों की आवश्यकता है :—

(क) पहाड़ियों के ढाल पर अथवा ऊँचे नीचे (Undulating) क्षेत्र में बहते हुए पानी को संग्रह करने के लिये छोटे-छोटे तालाबों का बनवाना आवश्यक है।

(ख) बढ़ी हुई नदियों का अतिरिक्त पानी रोक रखने के लिये पानी के विशाल संग्राहलय तैयार कराये जाँय।

(ग) खेतों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर बाँध बनवाये जाँय तो एकत्रित पानी को अनेकों हिस्सों में बाँट देगें और इस प्रकार पानी का वेग कम हो जावेगा और उस भूमि खण्ड की उपजाऊ मिट्टी बहकर साफ न हो सकेगी।

४—जो मिट्टी पानी द्वारा कट गई है या बह जाती है उसे रोकना आवश्यक है। ढालू खेतों के छोर पर खाई खोद देने से यह बहुमूल्य मिट्टी वहाँ जमा हो जावेगी और वहाँ से आगे न बढ़ सकेगी।

"भूमि-क्षरण को नियंत्रित करने तथा उससे प्रभावित भूमि का उपजाऊ पन पुन: प्राप्त करने के उपाय निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किये जा सकते हैं :—

(१) भूमि के प्रयोग का नियमन—इसके अंतर्गत वे सभी उपाय आ जाते हैं जो भिन्न प्रकार की भूमि का प्रयोग उनकी उपयोगिता के आधार पर करने के लिये भूमि प्रयोग की वर्तमान प्रणाली में आवश्यक हेर-फेर करने के लिये काम में लाये जाते हैं अर्थात् जो भूमि जिस अन्न के लिये उपयोगी होती है उसका उपयोग उसी के लिये किया जाता है। जहाँ भूमि-क्षरण का प्रकोप अधिक हो उस भूमि की जुताई बन्द करके कुछ दिनों के लिये परती रख छोड़ना; अतिशय भूमि-क्षरण जंगलों और चरागाहों की चराई पर प्रतिबन्ध लगाना या बिल्कुल ही बन्द कर देना और वहाँ से हटने वाले किसानों को अन्यत्र स्थाई रूप से पुनर्वासित करना ये कतिपय हेर-फेर के उदाहरण हैं जो कि अत्यावश्यक हैं।

(२) वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा जंगलों का संरक्षण तथा और अधिक वृक्षा रोपण आवश्यक है।

(३) फार्मों की भूमि पर प्रयोग पद्धति की उन्नति। इसके अंतर्गत निम्नलिखित उपाय आते हैं :—किनारों को जोतना, ढालू भूमि के छोर पर (Strip Cropping) फसल का समुचित हेर-फेर आवश्यक खाद तथा कृत्रिम खादों का उपयोग, पलिहर तथा अन्य बिना जोती हुई भूमि की देख रेख।

४—इन्जीनियरिंग सम्बन्धी कार्य—इसके अंतर्गत बांधों और मेड़ों का निर्माण, अवरोधक नहर, अतिरिक्त पानी बहने के लिये नाले (Gully Plugging) आदि बनाना।

किसी क्षेत्र के भूमि संरक्षण सम्बन्धी व्यापक कार्यक्रम के अंतर्गत ये सभी चारों उपयोगों का प्रयोग आवश्यक है। यद्यपि क्षेत्र विशेष की स्थिति को देखते हुये इन उपायों के परस्पर सम्बन्धों में मिलता होगा।"[१]

खाद की समस्या (Manuring of Soils)

भूमि अथवा खेती पर आश्रित जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ हमारे देश में धरती पर अधिकाधिक शोषण होने लगा है। कभी कभी यह कहा जाता है कि भारत की धरती हीन और अनुर्वर है। किन्तु यह कथन सत्य से दूर है। सच तो यह है कि भारत की धरती अनुर्वर हो गई है। हमारे देश में बड़ी बड़ी नदियों की भूमि किसी समय अवश्य ही विश्व की अत्यन्त उर्वरा भूमि रही होगी। डेनमार्क और जर्मनी में (जिन्हें आज सर्वाधिक भूमि माना जाता है) आरम्भिक स्थिति में अधिकतर भू-भाग बंजर तथा रेतीला था और वहाँ वन्य घास पात के सिवा और कुछ नहीं उगता था।

धरती का क्षय रोक कर उसे पुनः उर्वर बनाने के लिये नाइट्रोजन युक्त खाद नितान्त आवश्यक है। धरती में नाइट्रोजन के अभाव की पूर्ती निम्नांकित उपायों से सहज ही की जा सकती है—(१) खेत में ही तैयार की गई खाद, (२) कम्पोस्ट खाद, (३) हरी खाद, (४) तेलहन की खली की खाद, (५) रासायनिक खाद और नकली तैयार की गई खाद, (६) फसल का हेर-फेर और (७) अन्य प्रकार की मिली जुली खाद।

(१) **खेत या फार्म की खाद** (farm-yard manure)—यह वह खाद है जो फार्म के पशुओं के मल-मूत्र और घास-पात को मिला कर तैयार की जाती है। अनुमानतः वर्तमान फार्मों या पशुओं के खाद से प्रतिवर्ष ८३५,००० टन नाइट्रोजन

१. The First Five Year Plan, pp. 298-99.

तैयार होता है। इसका २० प्रतिशत तो नष्ट हो जाता है, ४० प्रतिशत ईंधन के रूप में निकल जाता है और केवल ४० प्रतिशत का खाद के रूप में उपयोग होता है। डाक्टर बर्न्स का मत है कि भारत में प्रति वर्ष कम से कम २६ लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता है। इस प्रकार हमें बहुत बड़ी कमी पूरी करनी है। दूसरा मुख्य दोष यह है कि हमारे यहाँ पशुओं के मूत्र का प्रायः पूर्ण रूप से अपव्यय होता है क्योंकि इसे संग्रह करने का कोई सन्तोषजनक उपाय नहीं है।

गाँवों में खाद के अपव्यय के आंकड़े (प्रतिवर्ष १० लाख टन में)

शुष्क पदार्थ		नाइट्रोजन	फास्फरिक एसिड	पोटाश
१—लगभग १५ करोड़ पशुओं के मलमूत्र का कुल योग—				
गोबर	१३३·५	१·६५१	०·६६४	०·९९५
पेशाब	२६·५	३·३१९	०·०२०	४·९७९
रद्दी घास-पात	३४·८	०·१८७	०·०५६	०·२८६
योग	१९४·८	५·१६५	०·७४०	६·२६०
२—इस समय तैयार की जाने वाली १२,००० लाख टन खाद में पुनः प्राप्त—	१२०·०	०·८४	०·३६	६·७२

यह अनुमान लगाया गया है कि खेतों में तैयार की जाने वाली खाद में यदि उन्नति के सामान्य उपाय ही काम में लाये जायें तो खाद के परिमाण में ५० प्रतिशत और उसके नाइट्रोजन तत्व में १०० प्रतिशत वृद्धि की सम्भावना है। इससे धरती को सहज ही १० लाख टन अतिरिक्त नाइट्रोजन मिल सकेगा और भारत के खाद्य उत्पादन में प्रति वर्ष एक करोड़ टन की वृद्धि सम्भव हो सकेगी।

इस प्रकार की उन्नति के निम्नलिखित उपाय हैं :—

(१) किसान को खेत की खाद को समुचित ढंग से सुरक्षित रखने की शिक्षा दी जाय, (२) अन्य प्रकार की खादों उदाहरणार्थ कम्पोस्ट खाद, रासायनिक खाद, तिलहन की खली के खाद के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाय और (३) किसानों के लिये सस्ता ईंधन उपलब्ध किया जाय जिससे पशुओं का गोबर वह खाद के काम में ला सकें।

(२) कम्पोस्ट (Compost)—यह हर प्रकार के रद्दी सामानों जैसे कूड़ा-करकट, घास-पात, गोबर-मूत्र, झाड़-झंकाड़ और विशेष स्थिति में मैले को सड़ा कर तैयार किया जाता है। कृषि सम्बन्धी रायल कमीशन के कथनानुसार यह प्रक्रिया चीन में काफी प्रचलित है जहाँ हर प्रकार का कूड़ा-करकट कम्पोस्ट के रूप में पुनः धरती में ही मिल जाता है।

भारत में लगभग ५,००० नगर हैं जिनकी जनसंख्या लगभग १० करोड़ है। यदि इन नगरों का कचड़ा और मल आदि खाद में परिवर्तित कर दिया जाय तो

आसानी से लगभग १ करोड़ टन कम्पोस्ट तैयार हो सकता है। जबकि अभी केवल ७ लाख टन कम्पोस्ट तैयार होता है। खाद्य उत्पादन में प्रतिवर्ष लगभग १० लाख टन की अनुमानित वृद्धि होगी। यदि इसमें नाइट्रोजन और अमोनिया सल्फेट का वजन भी जोड़ लिया जाय तो जो नालियों के गंदले पानी पेशाब और कीचड़ आदि से तैयार किया जा सकता है तो खाद्य उत्पादन की वृद्धि की सम्भावनायें निश्चय ही अत्यधिक उज्ज्वल हो जायेंगी। अनुमान है कि नगरों के साधनों से १ करोड़ टन तथा गाँवों के साधनों से ५ करोड़ टन कम्पोस्ट तैयार हो सकता है।

इसी प्रकार भारत में कुल लगभग ५½ लाख गाँवों में से लगभग २७५,००० गाँवों में लगभग १०½ लाख टन कम्पोस्ट तैयार होता है इसलिये हमें दो करोड़ ७० लाख टन कम्पोस्ट के साधनों का उपयोग करना है।

कम्पोस्ट विकास की प्रगति

वर्ष	खाद उत्पादन केंद्रों की संख्या	कम्पोस्ट उत्पादन
१९४९-५०	—	१४·०४ लाख टन
१९५०-५१	१,०४८	१४·०३ ,, ,,
१९५१-५२	१,६९३	१,६९४ ,, ,,
१९५२-५३	१,७००	१७·९९ ,, ,,
१९५३-५४	१,७२९	१८·५० ,, ,,
१९५४-५५	१,८१३	२०·६० ,, ,,
१९५५-५६	—	२१·२० ,, ,,
१९५६-५७	२,२५०	२२·६० ,, ,,
१९५७-५८	—	२३·२० ,, ,,
१९५८-५९	—	२६·४० ,, ,,

(३) **दाल के पौधे और हरी खाद** (Leguminous crops)—चना या सनई की फसल जमीन के उपजाऊपन को बढ़ाने वाली होती है। सनई की फसल को तो खेत में ही जोत कर उसकी खाद बनाई जा सकती है। भारत में हरी खाद का प्रयोग बहुत कम होता है क्योंकि किसानों की मजबूरी उन्हें मजबूर कर देती है कि वे अपने खेतों को हरी खाद के लिये फसायें रखने के बजाय उसमें खाद्यान्नों का उत्पादन करें। अनुभव और प्रयोग बताता है कि हरी खाद से आगे की फसल को ५० प्रतिशत से लेकर ८० प्रतिशत तक नाइट्रोजन शक्ति प्राप्त होती है और इसका प्रभाव दो तीन वर्ष तक बना रहता है।

(४) **खली की खाद** (Oil-cakes)—अभी तक भारत के निर्यात व्यापार में तिलहन का प्रमुख स्थान रहा है। इस निर्यात के फल-स्वरूप नाइट्रोजन युक्त खली की व्यापक क्षति होती है। इसका उचित समाधान भारत में तेल पेरने के उद्योगों को अधिक से अधिक प्रोत्साहन करने में निहित है। इस समय बैलों को खिलाने के लिये तथा खाद के लिये खली काफी मँहगी पड़ती है। तेल के पेरने के उद्योग के अधिक से अधिक विकास से ही सामान्य कृषक के लिये खली सस्ती हो सकती है।

(५) **रासायनिक तथा कृत्रिम खाद** (Chemical or Artificial manures)—इसमें हर प्रकार की कृत्रिम खादें जैसे अमोनिया सल्फेट आदि आती हैं। इस प्रकार के खाद

के प्रयोग में दो कठिनाइयां हैं। पहली यह कि इस तरह की खाद काफी मँहगी पड़ती है और दूसरी यह कि यदि उचित उपाय न किया जाय तो इसके प्रयोग से जमीन को काफी नुकसान भी पहुँचता है। "कृत्रिम खाद का उपयोग वास्तविक खाद को उत्तेजित करने के लिये अथवा उसे पूरक के रूप में करना चाहिये।" वस्तुत: अनुभव यह रहा है कि लगातार केवल कृत्रिम खाद का ही प्रयोग करने से न केवल धरती की उर्वरा शक्ति का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है बल्कि उपज की गन्ध खाद्यान्न के मूल्य तथा अन्य बातों पर भी इसका घातक प्रभाव पड़ता है। फल और तरकारी वगैरह इस नकली खाद के प्रयोग से आकार में बड़े हो जाते हैं किन्तु उनमें जल का आधिक्य हो जाता है और वे अपेक्षा कृत जल्द सड़ने लग जाते हैं। अन्न तथा चारे में विटामिन तथा विकास और उन्नति के अन्य उपकरणों की कमी होने लगती है।

अभी तक रासायनिक खाद के सम्बन्ध में गुण तथा परिमाण दोनों ही दृष्टियों से प्राय: अभाव रहा है। किन्तु गत ५ वर्षों के बीच में इस क्षेत्र में काफी प्रगति की जा चुकी है। टाटा नगर में कोयले के अवशेष से अमोनिया सल्फेट तैयार किया जाता है। जहाँ तक कच्चे माल की समस्या है, यह ज्ञात हुआ कि मद्रास तथा उत्तर-भारत के कुछ भू-भाग से कच्चा नाइट्रोजन तथा राजस्थान के नमक क्षेत्रों से खड़िया मिट्टी पर्याप्त परिमाण में प्राप्त हो सकती है। केन्द्रीय सरकार ने बिहार के सिंद्री नामक स्थान में १३ करोड़ की लागत से खाद का एक बड़ा कारखाना खोला है जहाँ से १९५४-५५ में २·९ लाख और १९५५-५६ में ३·२ लाख टन अमोनिया सल्फेट प्राप्त हुआ। आशा की जाती है राजस्थान की खड़िया मिट्टी से दशकों (Decades) तक इस कारखानें की आवश्यकताओं की पूर्ती हो सकती है। इस कारखानों के अतिरिक्त भारत में ६ और कारखाने हैं जिनकी उत्पादक क्षमता ८०,००० टन प्रति वर्ष की है।

मुख्य रासायनिक खादें निम्न हैं :—

(क) **फासफेट**—फासफेट बिहार में हजारीबाग, मुंगेर व गया जिलों से प्राप्त होने वाली अभ्रक का अंश है। आग्नेय तथा परिवर्तित चट्टानों से भी फासफेट मिलती है। ऐसी चट्टानें त्रिचुरापल्ली व मसूरी के निकट हैं।

(ख) **पोटाशियम खाद**—पोटाशियम सलफेट, पोटाशियम क्लोराइट व पोटाशियम नाइट्रेट है। ये खादें पंजाब, बिहार, तथा उत्तर प्रदेश प्रान्त में होती हैं।

(ग) **कैलशियम खाद**-चूने का पत्थर (Lime Stone)—से, जो भारत में बहुतायत से मिलता है, प्राप्त होती है। यह बहुत सस्ती पड़ती है और यह भारत में शाहबाद (बिहार) कटनी, मध्य-प्रदेश तथा जोधपुर (राजस्थान) से प्राप्त होती है। में जयन्तिया व खासी पर्वतों से भी मिलती है। डोलोमाइट से मैगनेशियम के साथ कैलशियम भी मिलती है। डोलोमाइट मसूरी, देहरादून, नैनीताल तथा मध्य-प्रदेश से प्राप्त होती है। जिपसम काश्मीर, उत्तर प्रदेश (देहरादून), जोधपुर व सौराष्ट्र से प्राप्त होती हैं।

(घ) **नाइट्रोजन**—पोटाशियम नाइट्रेट भारत में उत्तर-प्रदेश, पंजाब तथा बिहार में बनाया जाता है। अमोनिया सलफेट टाटा के लोहे के कारखानें से प्राप्त होता है।

पिछले कुछ वर्षों से भारत में रासायनिक खादों का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है जैसा निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

अवधि	मात्रा (टनों में)	अवधि	मात्रा (टनों में)
१९५०-५१	३२६,०००	१९५४-५५	६५२,०००
१९५१-५२	३०५,०००	१९५५-५६	८००,०००
१९५२-५३	४७७,०००	१९५६-५७	८२८,०००
१९५३-५४	५३४,०००	१९५८-५९	९००,०००

(६) **अन्य प्रकार की खाद** (Other manures)—इस प्रकार की खाद में मछली और समुद्री घास आती है जिसका प्रयोग समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में होता है। इसके अतिरिक्त खाद के रूप में हड्डी का चूरा, धान की भूसी तथा अन्य ऐसे ही तत्वों का उपयोग होता है। फसल की अदला बदली (Rotation of Crops) परिहर (Fallowings) तथा बेमड़ की फसल भी खाद के रूप में प्रयुक्त होती है। इन सभी तरीकों का सीमित महत्व है क्योंकि इनका उपयोग स्थानीय है। इस प्रकार की खाद में उपयुक्त होने वाले पदार्थों की प्रायः कमी है। यद्यपि मछली और समुद्री घास खाद की अच्छी किस्में मानी जाती हैं पर इनका उपयोग समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में ही हो सकता है। इस प्रकार हड्डी का चूरा भी कुछ ही स्थानों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। यदि यह मिलें भी तो इसके उपयोग पर अधिकतर लोगों को आपत्ति होगी।

(७) **फसल का स्थानान्तरण या अदला बदली** (Rotation of Crops)—यह तरीका प्राचीन काल से प्रचलित है जबकि लोग एक के बाद दूसरी फसल पैदा करके धरती को प्राप्त होने वाली सहायता का महत्व अनुभव करते थे। भारतीय किसान इस तरीके को समझता है और कुछ हद तक इसका उपयोग भी करता है। फिर भी उन्नति का व्यापक क्षेत्र है और तत्सम्बन्धी ज्ञान के प्रसार तथा उचित मार्ग दर्शन कराने के लिये उचित प्रसार यंत्र की आवश्यकता है। इस तरीके के निम्नलिखित लाभ हैं :—

(१) इससे घास तथा फसल के कुछ रोगों के नियंत्रण में सहायता मिलती है और खाद तथा कृत्रिम खाद प्रभावकर होती है। इस प्रकार इन दोनों ही स्वास्थ्यकर तरीकों का इसमें समन्वय है।

(२) देखा गया है कि यह प्रक्रिया फार्म की खाद तथा अन्य नकली और रासायनिक खाद की तुलना में गेहूँ आदि प्रमुख अन्नों के उत्पादन और उन्नति के लिये ८५ प्रतिशत प्रभावकारी सिद्ध हुई हैं।

नीचे की तालिका में फसलों का हेर फेर दो वर्षीय और तीन-वर्षीय आधारों पर बताया गया है :—

दो-वर्षीय अदला-बदली	तीन-वर्षीय अदला-बदली	
१. चावल, दालें	१. गेहूँ, मकई, गन्ना	४. चावल, गन्ना
२. ज्वार या मकई, गेहूँ या चना	२. गन्ना, गेहूँ, कपास	५. गेहूँ, मकई, गन्ना

३. कपास या ज्वार मूंगफली या ज्वार	३. गेहूँ गेहूँ तोरिया

(८) **पशुओं से प्राप्त खादें**—बूचड़ खानों से प्राप्त जानवरों के लहू को खाद में परिवर्तित करने का कार्य उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास, पश्चिमी बंगाल और आंध्र राज्यों में सराहनीय प्रगति कर रहा है। उत्तर प्रदेश की चार म्युनिसिपेलिटियों अर्थात्, कानपुर, लखनऊ, हापुड़ और गोरखपुर में इस प्रकार का लगभग ४६० टन खाद बनता है। बम्बई राज्य में पूना शहर, पूना कन्टोनमेन्ट और बम्बई शहर में कई केन्द्रों द्वारा ३०० टन का उत्पादन हो रहा है। मद्रास राज्य के पाँच म्युनिसिपल क्षेत्र, हैदराबाद के कुछ म्युनिसिपल क्षेत्र तथा मद्रास और कलकत्ता शहरों के कोरपोरेशन भी इस प्रकार की खाद बनाने के प्रयत्न में लगे हैं।

अध्याय १७

भूमि का उपयोग और कृषि उद्योग

(Land Utilisation And Agriculture)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जिसकी लगभग २५ करोड़ जन संख्या प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। भारत का कुल क्षेत्रफल (जिसके सम्बन्ध में आंकड़े उपलब्ध हैं) ७१'६७ करोड़ एकड़ है और इसकी जनसंख्या ३६ करोड़ है, अस्तु, स्पष्ट है कि प्रत्येक निवासी के पीछे भूमि का औसत लगभग १'६ एकड़ आता है। नीचे की तालिका में भारत में भूमि का उपयोग बताया गया है :—

भूमि का उपयोग
(करोड़ एकड़ में)

	१९५० १९५१	१९५५ १९५६	१९५६ १९५७
कुल भौगोलिक क्षेत्रफल	८०'६३	८०'६३	८०'६३
कुल क्षेत्रफल (जिसके आंकड़े उपलब्ध हैं)	७०'२५	७१'६६	७१'६७
वन प्रदेश	१०'००	१२'५६	१२'५५
खेती के लिये अप्राप्य	११'७४	११'८४	११'७२
(क) गैर कृषि कार्यों में उपयोग में लाई जाने वाली भूमि	२'७७	३'२६	३'२६
(ख) बंजर और कृषि के अयोग्य भूमि	८'९७	८'५८	८'५२
अन्य खेती न की जाने वाली भूमि (पड़ती छोड़कर) :	१२'२२	९'७०	९'७०
(क) स्थायी चारागाह	१'६५	२'८४	२'९४
(ग) बागात और कुंजों के अंतर्गत	४'९०	१'३७	१'४०
(ख) कृषि योग्य बंजर	५'६७	५'४९	५'३६
पड़ती भूमि	६'९५	६'०४	५'८७
(क) वर्तमान पड़ती भूमि	२'६४	२'९६	२'९४
(ख) अन्य भूमि	४'३१	३'०८	२'९३
वास्तविक बोया गया क्षेत्रफल	२९'३४	३१'८२	३२'०७
कुल खेती किया गया क्षेत्रफल	३२'५९	३६'२६	३६'६६
एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्रफल	३'२५	४'४४	४'५९

इस तालिका से स्पष्ट है कि भारत में कुल खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल ३६·६ करोड़ एकड़ है, जिसमें से केवल ४·५ करोड़ एकड़ पर एक से अधिक बार फसलें पैदा की जाती हैं। वनों के अंतर्गत कुल वर्गीकृत भूमि का १८%; कृषि के लिये अप्राप्य भूमि १७%; पड़ती भूमि ८% तथा जिस भूमि पर खेती नहीं की जाती वह १३% है। इस प्रकार केवल ४४% भाग पर ही खेती की जाती है। देश के विभिन्न भागों में निश्चित मात्रा में वन-क्षेत्र रखने तथा बंजर भूमि को साफ करने में होने वाली कठिनाइयों के कारण नई भूमि पर कृषि कार्य करने में बड़ी बाधायें उपस्थित होती हैं। फलतः ज्यों-ज्यों जन संख्या में वृद्धि होती जाती है त्यों-त्यों प्रति व्यक्ति पीछे कृषि भूमि का भाग कम होता जाता है।

निम्न तालिका में विश्व के प्रमुख खेतीहर देशों में विभिन्न प्रकार की भूमि का प्रति व्यक्ति पीछे भाग बताया गया है :—

प्रति व्यक्ति पीछे भूमि का भाग (सैन्टस में)

देश	कुल क्षेत्रफल	खेतीहर भूमि (बंजर भूमि और बागात भूमि सहित)	स्थायी चारागाह	वनाच्छादित प्रदेश	अन्य भूमि-क्षेत्र
भारत	२२५	६७	—	२६	१०२
चीन	५०३	४८	१०३	४५	३०७
हिंद चीन	६४०	३७	---	४०६	१९७
जापान	१०९	१८	२	७४	१५
फ्रांस	३२२	१२३	७२	६५	६२
ईटली	१५६	८२	२७	३२	१५
इंग्लैंड	११९	३७	६०	७	१५
सं० रा० अमरीका	१,२६४	३०२	४३९	२४१	१०९
रूस	३,०४६	२८७	१६१	१,१७१	१,४२७

किसी भी देश में भूमि के उपयोग पर प्रभाव डालने वाली दशाओं को तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) प्रथम प्रकार की दशाओं को भौगोलिक दशायें कहा जाता है। इनके अंतर्गत वर्षा, तापक्रम, भूमि की प्रकृति, मिट्टी आदि तत्व सम्मिलित हैं। इनका सम्मिलित प्रभाव पौधों और फसलों के आरंभिक जीवन और बढ़वार पर पड़ता है। अनुकूल भौगोलिक दशाओं में कृषि उत्पादन सबसे उत्कृष्ट होता है।

(२) दूसरी प्रकार की दशायें आर्थिक दशायें कहलाती हैं। इनके अंतर्गत यातायात के साधनों की उपलब्धता, जनसंख्या का विस्तार और बाजारों की समीपता अथवा उत्पादन के लिए कृषक और मजदूरों का आधिक्य या न्यूनता आते हैं।

(३) सांस्कृतिक दशाओं के अंतर्गत कृषि व उद्योग-धन्धों संबंधी विकास नीति, स्थानीय मत, विचार धारायें, कृषि भूमि विभाजन की रीतियाँ आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

खेती के प्रकार (Systems of Cultivation)

देश की प्राकृतिक दशा, जलवायु तथा मिट्टी आदि में भिन्नता होने के कारण भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार की खेती होती है। खेती की निम्न मुख्य पद्धतियाँ यह हैं :—

(१) तर खेती (Wet Cultivation)—विशेषतः काँप मिट्टी के उन भागों में की जाती है जहाँ साधारणतया वर्षा ८० इंच से ऊपर होती है जैसे :—मध्य और पूर्व हिमालय-प्रदेश, दक्षिणी बंगाल, मलाबार तट आदि में। इन भागों में एक से अधिक बार भूमि से कृषि उत्पादन प्राप्त किया जाता है। यहाँ बिना सिंचाई के ही खेती द्वारा गन्ना, चावल, जूट आदि की फसलें उत्पन्न की जाती हैं।

(२) आर्द्र खेती (Humid Farming)—भारत में विशेष कर काँप मिट्टी और काली मिट्टी के प्रदेशों में की जाती है, जहाँ वर्षा ४०" से ८०" के बीच होती है। ऐसे भाग मध्यवर्ती गंगा का मैदान, दक्षिण और मध्य प्रदेश हैं जहाँ प्रायः दो फसलें पैदा की जाती हैं। कभी-कभी जायद फसलें भी उत्पन्न कर ली जाती हैं।

(३) सिंचाई द्वारा खेती (Irrigation Farming)—उन प्रदेशों में की जाती है जिनमें २०" से ४०" तक वर्षा हो जाती है। ऐसे भाग गंगा का पश्चिमी मैदान, उत्तरी मद्रास और दक्षिण भारत की नदियों के डेल्टा प्रदेश हैं। यहाँ सिंचाई के द्वारा गेहूँ, चाँवल, गन्ना आदि फसलें पैदा की जाती हैं। किन्हीं क्षेत्रों में दो और किन्हीं में एक फसल पैदा की जाती है।

(४) शुष्क खेती (Dry Farming)—भारत के उन भागों में जहाँ वर्षा २०" से भी कम होती है वहाँ ऐसी खेती की जाती है। ऐसे क्षेत्र पश्चिमी उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और गुजरात में हैं। इस खेती के लिए पहले खेत जोत लिया जाता है जिससे जितना जल बरसे वह भूमि में समा जाय। प्रातःकाल इन जोते हुए खेतों को छोटे-छोटे पत्थरों से ढक दिया जाता है अथवा पटला फेर दिया जाता है जिससे सूर्य की गर्मी के कारण पानी भाप बन कर न उड़ सके। संध्या समय पत्थर हटा दिये जाते हैं जिससे रात की ओस खेत में पड़ सके। इसी क्रिया को कुछ समय तक करते रहते हैं और जब मिट्टी काफी गीली हो जाती है तो उसमें ज्वार, बाजरा, चना, जौ, गेहूँ आदि अनाज बो दिये जाते हैं। इस प्रकार की खेती में २-३ सालों में एक ही फसल पैदा की जाती है।

(५) झूमिंग-प्रणाली द्वारा खेती (Jhuming)—आसाम, मध्य-प्रदेश व पश्चिमी घाट और राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी भाग में की जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत पहले भूमि को वन आदि जलाकर साफ कर लिया जाता है फिर पहली वर्षा के बाद उस राख युक्त मिट्टी में मोटे अनाज आदि बखेर कर बो दिये जाते हैं। इस प्रकार के खेतों से दो या तीन वर्षों तक फसलें प्राप्त की जा सकतीं हैं। उसके बाद फिर नई भूमि साफ कर ली जाती है। इस प्रकार की खेती को भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं :—आसाम में झूम (Jhoom), मध्य प्रदेश में डाह्या (Dahya), हिमालय में खील (Khil), पश्चिमी घाट में कुमारी (Kumari) और दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में वालरा (Valara) कहते हैं[१]।

(६) पहाड़ी खेती (Terrace Cultivation)—विशेषकर पहाड़ी ढालों पर

१. Imperial Gazeteer of India, Vol III, p. 25.

की जाती है। पहाड़ी निवासी ढालों को सीढ़ियों के आकार में काट कर छोटे-छोटे खेत बना लेते हैं और उसमें बड़े परिश्रम के साथ आलू, चावल अथवा चाय पैदा कर लेते हैं। इस प्रकार की खेती आसाम और हिमालय के पहाड़ी ढालों पर की जाती है।

फसलें (Crops)

भारत में फसलों का उत्पादन मुख्यत: जल वर्षा पर निर्भर करता है। अस्तु, देश में जल प्राप्त की मात्रा के अनुसार कहीं दो और कहीं तीन फसलें पैदा की जाती हैं। कुल खेती योग्य भूमि के केवल १२ प्रतिशत भाग पर ही दो बार खेती की जाती है यहाँ खेती का धंधा प्राय: जून में आरंभ हो जाता है। फसल बोने के समय की दृष्टि से उनको निम्न श्रेणियों में रखा जा सकता है :—

(१) खरीफ (Kharif) या वर्षा ऋतु की फसल

वर्षा के आरम्भ में मई से जुलाई तक बोयी जाती है और इसकी समाप्ति पर सितम्बर से अक्टूबर-नवम्बर तक काटी जाती है। इस फसल के लिये अधिक जल की आवश्यकता नहीं होती अत: वर्षा के जल से ही काम चल जाता है। खरीफ की मुख्य फसलें ज्वार, बाजरा, मक्का, चावल, रेंडी, तिल, मूंग, अरहर, उड़द, तम्बाकू, मूंगफली, जूट,गन्ना, और कपास आदि हैं।

(२) जायद खरीफ की फसल (Zaid Kharif)

यह फसल अगस्त से सितम्बर तक बोई जाती है तथा दिसम्बर से जनवरी तक काटी जाती है। इसके अंतर्गत कपास, चावल, ज्वार, सरसों, राई, तिलहन और तोरिया मुख्य फसलें हैं।

(३) रबी या शीत ऋतु की फसल (Rabi Crop)

यह फसल शीतकाल के आरम्भ में अक्टूबर से दिसम्बर तक बोई जाती है और ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ होने से कुछ पूर्व फरवरी से अप्रेल और कहीं-कहीं मई तक काटी जाती है। इस फसल के लिए जल की आवश्यकता कम होती है। साधारणत: फसल की १-२ बार सिंचाई की जाती है। इसकी मुख्य फसलें जौ, जई, आलू, गेहूँ, चना, अलसी, सरसों, मटर, तथा गांठदार सब्जियाँ—अरबी, रतालू, शकरकंद, चुकन्दर, आदि—हैं।

(४) जायद रबी की फसल (Zaid Rabi)

ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में फरवरी-मार्च में बोई जाती है और अप्रेल-मई तक काटी जाती है। सिंचाई के सहारे शाक-सब्जियाँ, खरबूजे, ककड़ियाँ, तरबूजे, चारा तथा ज्वार आदि पैदा किये जाते हैं।

नीचे की तालिका में मुख्य-मुख्य फसलों का उत्पादन काल बतलाया गया है—

फसल	ऋतु	पकने की अवधि
चावल	सर्दी	५½-६ महीने
	बसन्त	४-४½ ,,
	गर्मी	२-३ ,,
गेहूँ	रबी	५-५½ ,,

फसल	ऋतु	पकने की अवधि
ज्वार	खरीफ	४½-५½ ,,
	रबी	४½-५ ,,
	जायद खरीफ	२½ ,,
बाजरा	खरीफ	४½ ,,
मक्का	खरीफ	४-४½ ,,
रागी	खरीफ	३½ ,,
जौ	रबी	५-५½ ,,
चना	रबी	६ ,,
गन्ना	वार्षिक	१२-१५ ,,
तिल	खरीफ	३½-४ ,,
	रबी	५ ,,
मूंगफली	खरीफ	जल्दी से पकने वाली ४-४½ महीने; देरी से पकने वाली ४½-५ महीने
राई और सरसों	रबी	४-५ ,,
	जायद रबी	४ ,,
अलसी	रबी	५-५½ ,,
अण्डी	खरीफ	जल्दी ६ ,,; अन्य ८ ,,
कपास	खरीफ	जल्दी ६-७ ,,
		देरी ७-८ ,,
जूट	खरीफ	६-७ ,,

भारत में जितनी खेती होती है उसका प्रायः दो-तिहाई खरीफ की फसल और एक-तिहाई रबी की फसल होती है। बंगाल और मद्रास राज्यों में पर्याप्त गर्मी और दोनों ही ऋतुओं से प्राप्त होने वाली वर्षा के कारण खरीफ और रबी दोनों ही फसलों में लगभग एक सी ही उपजें बोई जाती हैं। महाराष्ट्र में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के कारण खरीफ फसल का महत्व अधिक है और उत्तरी-पूर्वी मानसून के कारण मद्रास में रबी की फसल का। उत्तरी भारत में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से वर्षा होने के कारण ग्रीष्म ऋतु में खरीफ और शीत ऋतु में रबी की फसलें बोई जाती हैं।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत के सभी भागों में खेती नहीं की जाती क्योंकि सभी जगह भूमि समान रूप से उपजाऊ नहीं है। खेती योग्य भूमि उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल और गुजरात-महाराष्ट्र तथा मद्रास के राज्यों तक ही सीमित है। इन राज्यों में वर्षा पर्याप्त होने के साथ-साथ मिट्टी उपजाऊ और भूमि समतल है। किन्तु निम्न भागों में कृषि करने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं :—

(१) पूर्वी महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में (काली मिट्टी वाले क्षेत्रों को छोड़ कर) अधिकांशतः भूमि अन उपजाऊ है।

(२) आसाम राज्य के कई भागों में पहाड़ी-धरातल, सघन वन प्रदेश और अस्वस्थ्यकर जलवायु के कारण खेती करना असम्भव है।

(३) राजस्थान में शुष्क जलवायु और वर्षा की कमी के कारण पश्चिमी भागों में खेती करना कठिन है।

(४) हिमालय और मैदान के बीच स्थित तराई ; पश्चिमी घाट के समानान्तर एक संकड़ी पट्टी और पूर्वी घाट के समानान्तर पट्टी जो मद्रास, उड़ीसा, आंध्र और मध्य प्रदेश में चौड़े क्षेत्र का रूप धारण कर लेती है। इन तीनों ही क्षेत्रों में वर्षा का औसत ५० से १००" तक होता है और भूमि भी उपजाऊ है किन्तु इन सभी भागों में सदैव मलेरिया का प्रकोप रहता है। ऐसी भूमि का उपयोग तभी हो सकता है जब मलेरिया पर नियन्त्रण किया जाय।

(५) दक्षिण में पश्चिमी घाट और समुद्र तट के बीच में और उत्तर में गोआ से दक्षिण में कोंकन तक सारे प्रदेश में वर्षा ६०" से ऊपर होती है, वन प्रदेशों का आधिक्य है किन्तु भूमि उपजाऊ है फिर भी वर्षा की अधिकता, अस्वास्थ्यप्रद जलवायु, मलेरिया का प्रकोप तथा मजदूरों की कमी और यातायात की असुविधाओं के कारण खाद्यान्न अधिक मात्रा में नहीं पैदा किये जाते। यदि इन असुविधाओं को दूर कर दिया जाय तो इनमें कृषि उत्पादन किया जा सकता है।

कृषि आदि-काल से ही भारत का प्रमुख उद्योग रहा है। आज भी भारत के प्रति १०० व्यक्तियों में से ६९ व्यक्ति कृषि कार्यों में संलग्न हैं और शेष व्यक्तियों में से १० उद्योगों, ६ वाणिज्य, २ यातायात और १२ अन्य प्रकार की सेवासम्बन्धी कार्यों में लगे हैं। निम्न तालिका से भारतीय जनसंख्या का व्यवसायिक विन्यास स्पष्ट हो जाता है :—

भारतीय जनसंख्या (१९५१)
३५६६ (लाख)

खेतीहर
(२,४९९ लाख या ६९·८%)

- भूमि जोतने वाले १,६७३ लाख (४६·९%)
- भूमि पर निर्भर पर खुद जुताई न करने वाले ३१६ (८·८%)
- खेती में लगे मजदूर और उनके आश्रित ४४८ लाख (१२·६%)
- भूमिका लगान खाने वाले जमींदार ५३ लाख (१·५%)

अन्य व्यवसायिक
(१,०७६ लाख या ३०·२%)

- खेती के अतिरिक्त अन्य उत्पादन क्रियाओं में संलग्न ३७७ लाख (१०·५%)
- व्यापारी २१३ लाख ६%
- यातायात संबंधी क्रियाओं में लगे व्यक्ति ५६ लाख (१·६%)
- अन्य नौकरी व पेशों में संलग्न ४३० लाख (१२·१%)

अस्तु, स्पष्ट होगा कि भारत की ६९.८% जनसंख्या खेती में लगी है। केवल ३०.८ प्रतिशत व्यक्ति ही अन्य व्यवसायों में लगे हैं। इससे भारत के आर्थिक जीवन में कृषि का महत्व स्पष्ट हो जाता है। इसके विपरीत अन्य देशों में जनसंख्या प्राथमिक धन्धों को छोड़ कर उद्योगों और व्यापार-व्यवसाय जैसे गौण धंधों में ही अधिक लगी है जबकि भारत आज भी प्राथमिक धंधों पर ही निर्भर है और हमारे उद्योग, व्यापार और व्यवसाय भी अपरिमित सीमा तक कृषि के ऊपर आश्रित हैं।

निम्न तालिका में उद्योगों में लगी हुई जनसंख्या के नवीनतम आँकड़े प्रस्तुत किए गये हैं। ये इस तथ्य का निर्देशन करते हैं कि संयुक्त राज्य अमरीका, इंगलैंड, कनाडा और जापान आदि देशों की तुलना में भारत में कृषि ही प्रमुख उद्योग है :—

व्यवसाय	सं. रा. अमरीका १९५०	इंगलैंड १९५०	कनाडा १९५१	जापान १९५०	भारत १९५१
खेती	१२.५	५.०	१९.४	४८.७	७१.९
उद्योग	३०.६	४३.१	२९.३	१७.३	९.७
निर्माण-कार्य	६.४	६.२	६.६	४.०	१.०
यातायात व संवाद-वहन	७.७	७.८	७.४	११.८	१.५
व्यापार	१९.०	१४.१	१६.५	५.१	५.१
सेवायें	२३.८	२३.८	२०.८	१३.२	१०.८
योग	१००.०	१००.०	१००.०	१००.०	१००.०

भारत के आर्थिक जीवन में खेती का महत्व

साधारणतः भारत की सम्पन्नता का मुख्य आधार कृषि है क्योंकि देश के लगभग ७० प्रतिशत निवासी अपनी जीविका के लिए प्राथमिक धंधों पर ही निर्भर हैं। कृषि एक उद्योग या व्यवसाय ही नहीं है वरन् यह जीवन का एक मार्ग है जिसने शताब्दियों तक यहाँ के निवासियों के विचारों, दृष्टि-कोण और संस्कृति को प्रभावित किया है। कृषि प्रधान देश होने के परिणामस्वरूप भारतीय सदैव से ही आत्म संतुष्ट, शांति प्रिय एवं उद्योगी हुए हैं।

राष्ट्रीय उत्पादन का लगभग आधा कृषि और तत्सम्बन्धी धंधों से प्राप्त होता है। १९५७-५८ में यह भाग ४९ हजार करोड़ रुपये या देश की कुल आय का ४५.५ प्रतिशत था। खनिज व उद्योग धंधों से १८ हजार करोड़ या १७.४ प्रतिशत और वाणिज्य व्यवसाय, यातायात एवं अन्य सेवाओं से ४० हजार करोड़ या ३७.१ प्रतिशत प्राप्त हुआ।[1] इससे हमें भारतीय अर्थ-व्यवस्था में कृषि के महत्व और कृषि तथा औद्योगिक विकास में सम्बन्ध का ज्ञान होता है।

भारतीय कृषि उत्पादन से देश के अधिकांश निर्यात वस्तुओं की प्राप्ति होती है। भारत की विदेशी व्यापार में जूट, तिलहन, लाख, चाय, तम्बाकू आदि वस्तुओं का प्राधान्य रहता है इनसे हमें विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

१. १९५०-५१ में यह प्रतिशत इस भांति था :— ४८.९; १७.५ और ३३.७।

कृषि से ही भारत के ३६ करोड़ व्यक्तियों को खाद्यान्न, और २६.२ करोड़ पशुओं को चारा आदि प्राप्त होता है। कृषि जन्य पदार्थ ही देश के विभिन्न उद्योगों के लिये कच्चा माल प्रस्तुत करते हैं। सूती वस्त्र, जूट, शक्कर, सिगरेट आदि के उद्योगों का विकास इसी कारण हो पाया है। वस्तुत: सच तो यह है कि सुधरी हुई कृषि उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति में निश्चितता लाती है। इससे कृषि की उपज की मांग बढ़ती है और कृषकों की क्रय: शक्ति में वृद्धि होती है।

विश्व के कृषि-प्रधान देशों में भारत का प्रमुख स्थान है। भारत ही विश्व में सबसे अधिक गन्ना पैदा करने वाला देश है। चावल, ज्वार, बाजरा, चाय, मूंगफली और तिलहन के उत्पादन में भी भारत का बड़ा हाथ है। भारत के सिवाय लाख तो कहीं और उत्पन्न ही नहीं किया जाता। कपास के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमरीका के बाद भारत का स्थान दूसरा है और इसी प्रकार तिलहन के उत्पादन में अर्जेनटाइना के बाद भारत का ही स्थान आता है। ज्वार-बाजरे के उत्पादन में चीन, अफ्रीका, और भारत का स्थान सबसे ऊँचा है। चावल और चाय के उत्पादन में भी भारत और चीन दो ही देश अग्रगण्य हैं। अत: कहा जा सकता है कि भारत के उद्योग, व्यापार और वाणिज्य खेती पर ही आश्रित हैं और इससे कृषि उद्यम का महत्व स्वंय सिद्ध है।

भारतीय कृषि की विशेषतायें

भारतीय कृषि की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं :—(१) यहाँ विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन होता है। (२) उपज में खाद्यान्नों का प्राधान्य होता है।

(१) यह निर्विवाद सत्य है कि यदि सम्पूर्ण विश्व में नहीं तो कम से कम एशिया महाद्वीप में तो इतनी विभिन्न उपज और कहीं नहीं होती जितनी भारत में। यहाँ उष्ण कटिबन्धीय उत्पादन —चावल, चाय, कहवा, गन्ना, जूट, मसाले, सिकोना, रबड़, केले आदि — अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय उपजें—तम्बाकू, नील, अफीम, कपास आदि और शीतोष्ण कटिबन्धीय उपजें—गेहूँ, मक्का, जौ, दालें, आलू, अलसी, सन तथा सेब आदि होते हैं।

उपज की विभिन्नता के अतिरिक्त भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की उपजों का एक प्रकार से विशिष्टीकरण होता है। उदाहरणार्थ **चावल** गंगा की घाटी, पंजाब के पहाड़ी क्षेत्र, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम, पश्चिमी तटीय मैदान तथा उड़ीसा और मद्रास के तटीय भागों में; **गेहूँ** पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं पूर्वी राजस्थान में; **गन्ना** गंगा की घाटी, मद्रास, मैसूर और आंध्र प्रदेश में; **तिलहन** राजस्थान, महाराष्ट्र, मद्रास, और पंजाब में; **कपास** मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर और पंजाब में; **चाय** आसाम, बंगाल और नीलगिरी की पहाड़ियों में; **कहवा** केरल, मैसूर और मद्रास में और **जूट** बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल में पैदा किया जाता है। इस विशिष्टीकरण का मुख्य कारण आवागमन तथा यातायात की सुविधाओं में वृद्धि और देश के औद्योगीकरण में विकास होना है।

(२) व्यवसायों के विकास के साथ साथ कच्चा माल अधिक पैदा किया जाने लगा है और खाद्यानों के उत्पादन का क्षेत्रफल कम हो गया है। भारत में जितनी भूमि बोई जाती है उसके लगभग ८० प्रतिशत भाग पर खाद्यान्न फसलें और २०% भाग पर व्यवसायिक फसलें पैदा की जाती हैं।

(३) भूमि पर बढ़ती हुई जनसंख्या का भार है जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति पीछे बोई गई भूमि का बहुत ही थोड़ा भाग पड़ता है—अर्थात् केवल ०·८ एकड़ जब कि सन्तुलित भोजन प्राप्ति के लिए प्रति व्यक्ति पीछे कम से कम एक एकड़ भूमि की आवश्यकता पड़ती है। नीचे दी गई तालिका में भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ भार बताया गया है :—

वर्ष	जनसंख्या (करोड़)	बोया गया क्षेत्रफल (करोड़ एकड़)	प्रति व्यक्ति का भाग (एकड़)
१९२१	२३	२०	०·९
१९३१	२६	२१	०·८
१९४१	२९	२१	०·७
१९५१	३५	२६	०·७
१९५४	३७	३३	०·९
१९५६	३९	३२	०·८

(४) यद्यपि भारत की भूमि बड़ी उपजाऊ है और जलवायु भी खेती के लिये अनुकूल है किन्तु फिर भी जहाँ खेती की दशा संतोषजनक नहीं है। यह बात इस तथ्य से प्रकट होती है कि यहाँ अन्य देशों की तुलना में प्रति एकड़ पैदावार बहुत ही कम है जैसा कि निम्न तालिका से ज्ञात होता है। यह कमी खेती के तरीकों में अन्तर और देशों की आर्थिक प्रगति की दशाओं में भिन्नता के कारण है।

प्रति एकड़ उपज (पौंड में) १९५५

देश	गेहूँ	चावल	कपास	जूट	गन्ना
संयुक्त राज्य अमरीका	१,२०१	३,०३०	३३९	१,२५८	४८,४३९
कनाडा	१,५१२	—	—	१,४९६	—
जापान	१,८६७	३,७५०	८९	—	—
आस्ट्रेलिया	९०५	—	—	—	—
फ्रांस	१८७२	—	—	—	—
भारत	६४०	१,२०९	७७	१,०१२	२९,४६७
थाईलैंड	—	१,५६५	—	—	—
मिश्र	२,०९१	४६२८	४६४	—	७८,३४१
इटली	१,५८६	४,५६८	—	१२,१४	—
इंडोनेशिया		१,९४५	—		—
चीन	७६६	२,३८७	२३४		३५,४३८
रूस	८३०	१,९१८	२८५		

देश के विभिन्न राज्यों में भी प्रति एकड़ पैदावार में भिन्नता पाई जाती है, फलतः खेती का उत्पादन बहुत कम है। नीचे की तालिका में प्रमुख फसलों का विभिन्न राज्यों में प्रति एकड़ उत्पादन दर्शाया गया है :—

प्रति एकड़ उत्पादन पौंड में (१९५७-५८)

राज्य	चावल	गेहूँ	गन्ना	तम्बाकू	कपास	जूट	मूंगफली
आंध्र	११९४	१३६	५१०४	६७४	५३	—	७१९
आसाम	८४४	३२०	२३०९	६५३	९२	१२५४	—
बिहार	४०३	४५८	१८९४	५७६	७८	६५२	—
बम्बई	७४६	३४४	६३२८	४८४	७६	—	४९६
केरल	१०२४	—	३५६४	—	१४९	—	१०८६
मध्य प्रदेश	४८५	३६८	२२९५	५७३	९२	—	५४८
मद्रास	१२५२	५६०	६२९४	१२६०	१३२	—	१०७३
मैसूर	१११०	२१७	५४०६	३९१	७५	—	६६०
उड़ीसा	४१५	५१७	३५६९	६११	३४	८८५	६५२
पंजाब	८४१	८९९	३०५७	५६०	२१२	—	७३६
राजस्थान	२९२	६९४	१९१६	४९८	१४६	—	४५६
उत्तर प्रदेश	५३१	६५५	२२६७	७४७	१२२	८७९	९८०
बंगाल	८७०	५०१	३२८३	५८७	—	९६४	—
सम्पूर्ण-भारत	७०४	५७८	२८४०	६१०	९२	९३२	६६२

भारत में प्रति एकड़ भूमि से कम उत्पादन प्राप्त होने के निम्न मुख्य कारण हैं :—

(१) **खेतों का छोटा और बिखरा होना**—भारतवर्ष में जन-संख्या की वृद्धि के कारण अधिकाधिक जन-संख्या खेती-बारी पर निर्भर है, क्योंकि यहाँ उद्योग धन्धों की उन्नति नहीं हुई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रत्येक किसान की भूमि बटते-बटते बहुत कम रह गई और वह थोड़ी सी भूमि भी एक चक में न हो कर छोटे-छोटे टुकड़ों में इधर-उधर बिखरी हुई है। भारत में औसत खेत ७·५ एकड़ का है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में १४५ एकड़, डेनमार्क में ४० एकड़, इङ्गलैण्ड में २० एकड़, जर्मनी में २१$\frac{५}{२}$ एकड़, फ्रान्स में २०$\frac{३}{२}$ एकड़, हालैण्ड में २६ एकड़ और बेल्जियम में १४$\frac{१}{२}$ एकड़ है। बंगाल में प्रति कुटुम्ब पीछे ४ एकड़ जमीन का औसत आता है तथा मद्रास में ४$\frac{१}{२}$ एकड़, मध्य-प्रदेश में १४ एकड़, उत्तर-प्रदेश में ५ एकड़, बिहार में ४ एकड़, उड़ीसा में ५ एकड़, महाराष्ट्र में ९ एकड़ और पंजाब में १० एकड़ है।

खेतों के छोटे होने के निम्न कारण हैं :—"जन-संख्या में वृद्धि किन्तु उद्योग-धन्धों में उसी अनुपात में वृद्धि न होना, संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली का अन्त और मनुष्यों में व्यक्तिक विचारों की उत्पत्ति होना तथा पिता की मृत्यु के बाद जमीन का उसके वारिसों में विभाजन आदि।" खेतों के छोटे होने के कारण खेतों की मेंढ़ बनाने में बहुत अधिक जमीन नष्ट हो जाती है। इन खेतों में कीमती मशीनें भी काम में नहीं लाई जा सकतीं और न [illegible] खाद ही दिया जा सकता है। खेतों के दूर-दूर होने के कारण किसान को एक खेत से दूसरे खेत [illegible] अधिक समय नष्ट करना पड़ता है। खेतों पर अधिक खर्च के [illegible] नहीं बनाये जा सकते। इन छोटे-छोटे खेतों के बीच बराबर दूसरे [illegible] आने के कारण

प्राय: लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। कभी-कभी पड़ोसियों के पशु फसलों को रौंद डालते हैं। इन्हीं सब कारणों से किसान अपने खेतों से अच्छी फसल के रूप में पूरा फायदा नहीं उठा सकता, अत: खेतों की फसल कम हो जाती है।

खेतों के छोटे होने के कारण किसानों की आय भी कम होती है। केन्द्रीय बैंक जाँच कमेटी के अनुसार—"भारतीय किसान की औसत आमदनी लगभग ४२ रुपये वर्ष है। इसके फलस्वरूप उसे अपनी जमीन और घर-बार बेचने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यही कारण है कि किसान अच्छी फसल होने पर भी ऋण-ग्रस्त रहते हैं।" सरकारी रिपोर्टों से पता लगता है कि सन् १९११ में किसानों पर कुल कर्जा ३०० करोड़ रुपया था, सन् १९२९ में यह ५३३ करोड़ हो गया, सन् १९३१ में बढ़कर ९०० करोड़ रुपया हो गया और सन् १९३७ में यह १,००० करोड़ तक बढ़ गया था। इस समय भारत का ग्रामीण ऋण १,८०० करोड़ रुपये का माना जाता है। इस प्रकार उसका कर्ज बराबर बढ़ता ही गया है। ऋण का बोझ लदा हुआ होने के कारण किसान जब कर्ज चुकाने में असमर्थ हो जाता है तो उसे साहूकार के यहाँ गुलामी की जिन्दगी बितानी पड़ती है। बम्बई, मद्रास, बिहार, उड़ीसा और आसाम में इस तरह की गुलामी प्रथा मौजूद है।

कर्ज बढ़ने का एक मुख्य कारण यह है कि भारत के किसानों को खेती के लिए वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है। कभी अत्यधिक वर्षा के कारण या बाढ़ आ जाने से खेती नष्ट हो जाती है तो कभी उसके बैल मर जाते हैं या अनाज की दर गिर जाने से उसे घाटा होता है। कभी-कभी उसे अपने बाल-बच्चों की शादी के लिए साहूकार से अधिक ब्याज पर रुपया कर्ज पर लेना पड़ता है। कभी त्यौहारों पर या मौत-गमीं के मौकों पर अपने पुरखों का श्राद्ध, कथा अथवा अन्य धार्मिक कार्यों के लिए भी उसे रुपयों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी हालत में उसे अपना खेत गिरवी रख कर कर्ज पर रुपया लेना पड़ता है। इस प्रकार किसान की गाढ़ी कमाई का रुपया जमींदार और साहूकार खा जाते हैं तथा कुछ वकीलों की जेबों में भी पहुँच जाता है, जैसे—जमींदार ८%, वकील आदि २%, साहूकार ५८%, रैयत ३२%।

जहाँ एक बार कर्ज लेना शुरू हुआ फिर यह पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता ही चला जाता है। सन् १९२६ के कृषि कमीशन के शब्दों में—"भारतीय किसान ऋण में जन्म लेता है और ऋण में ही मरता है तथा ऋण को भावी पीढ़ियों के लिए छोड़ जाता है। यह ऋण पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता ही रहता है।" गरीबी और ऋण-ग्रस्तता के कारण किसान अपने खेतों की भली प्रकार सेवा नहीं कर सकता और न वह खेतों की पैदावार बढ़ाने के लिए ही कुछ कर सकता है, जिससे खेतों की पैदावार दिन प्रति दिन कम होती जा रही है।

भारत में की जाने वाली खेती इस प्रकार की है कि किसानों को उससे अपने पेट भरने के लिए भी पर्याप्त नहीं मिलता। सच तो यह है कि भारतीय किसान खेती इसलिए नहीं करता कि उसे कुछ आर्थिक लाभ हो बल्कि इसलिए कि उसे पेट भर भोजन मिल सके। खेती से मिलने वाली आमदनी प्रति व्यक्ति बहुत कम है।

(२) खेतों को पर्याप्त वनस्पति खाद नहीं मिलती—भारत की भूमि की उर्वरा-शक्ति बिलकुल ही गिर गई है। इसका मुख्य कारण वनस्पति खाद की कमी है। कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिकों का मत है कि यहाँ की भूमि की उत्पादन शक्ति इतनी गिर गई है कि इससे अधिक अब गिर भी नहीं सकती। जब कोई फसल किसी भूमि

में बोई जाती है तो वह उस भूमि से कुछ निश्चित अंश खींच लेती है,जैसे—नाइट्रोजन या लवण आदि। भूमि में इन अंशों की कमी होने से उसकी उर्वरा-शक्ति कम हो जाती है, इसलिए इस क्षति को पूर्ति करने के लिए खाद की आवश्यकता होती है। जितनी पुरानी भूमि है उतना ही उसमें अधिक खाद देना आवश्यक होता है क्योंकि इससे भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। कभी-कभी तो उत्तम खाद से ५% उत्पत्ति में वृद्धि हो जाती है। गहरी खेती में तथा एक भूमि में एक ही वर्ष में कई फसलें उत्पन्न करने के लिए खाद देना आवश्यक हो जाता है। भारत में कई स्थानों में तो तीन फसलें पैदा की जाती हैं इसलिए ऐसी हालत में भी खाद डालना बहुत ही आवश्यक हो जाता है।

खाद कई प्रकार की होती है:—गोबर, मनुष्यों का मल-मूल, कम्पोस्ट, खली, रासायनिक खाद और हरी खाद। भारतवर्ष में इनमें से बहुतों की सुविधा हैं परन्तु उनका सदुपयोग ठीक से नहीं किया जाता है। गोबर की खाद एक बहुमूल्य खाद है परन्तु ईंधन की कमी के कारण किसान गोबर के कन्डे जला देते हैं क्योंकि पर्याप्त मात्रा में ईंधन नहीं मिलता। डा० वायलकर के अनुसार—"गोबर की कुल उत्पत्ति का ४०% खाद देने में, ४०% जलाने में और २०% अनुचित तरीके से नष्ट हो जाने में काम आता है।" साधारणतः पशुओं का मूत्र तो व्यर्थ ही चला जाता है, क्योंकि इसका खेती में प्रयोग किये जाने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया जाता है। मनुष्यों का मल-मूत्र खाद के लिए उपयोगी है परन्तु बहुधा किसान इसका उपयोग नहीं करना चाहते हैं। दूसरे प्रकार की खाद तिलहन की खली है, जिसका प्रयोग कीमती फसलों में किया जाता है, जैसे—गन्ना, चाय, तम्बाकू आदि, परन्तु भारतीय खेतों को खली नहीं मिलती। इसका कारण यह है कि तिलहन बाहर भेज दिया जाता है, परन्तु तिलहन का निर्यात देश की उपजाऊ शक्ति का निर्यात है। इसके अलावा कुछ फसलें ऐसी होती हैं जो भूमि के नाइट्रोजन आदि अंशों को स्वयं देती हैं, जैसे—उड़द, मूँग, मटर आदि। यदि फसलों को इस प्रकार हेर-फेर कर बोया जाय कि एक फसल से भूमि की उर्वरा शक्ति में जो कमी होगी, वह दूसरी से पूरी हो सकती है तो भूमि की उपजाऊ शक्ति कायम रह सकती है, परन्तु व्यावसायिक कृषि के कारण खेतों का पुराना हेर-फेर बदल दिया गया है। उत्तर-प्रदेश में गन्ना, बङ्गाल में जूट, गुजरात में कपास की ही खेती पर जोर दिया जाता है जिसमें भूमि की शक्ति अधिक खिच जाती है। खाद देने का तरीका भी ठीक नहीं है। खाद का खेत में ढेर कर दिया जाता है, जिससे वर्षा, हवा व धूप इसके ३३% अंश को नष्ट कर देती है, इसलिए अन्न और धन का अपव्यय होता है।

(३) खेती में स्थायी उन्नति की कमी—भूमि में स्थायी उन्नति का न होना एक बड़ी कमी है। उदाहरणार्थ, खेती की घेराबन्दी नहीं की जाती जिससे खेतों में जानवर, मवेशी तथा चोरों के जाने में रुकावट नहीं होती। खेतों की सीमा के सम्बन्ध में हमेशा झगड़ा हुआ करता है। खेतों में पुश्ते नहीं बनाये जाते इसलिए बरसात का पानी धीरे-धीरे खेतों को काटता रहता है। पश्चिमी बङ्गाल तथा उतर-प्रदेश में तो लाखों एकड़ भूमि नदियों के काटव के कारण नष्ट हो गई है। पानी के बहाव का भी ठीक प्रबन्ध नहीं होता है और किसी-किसी स्थान पर पानी रुक कर दलदल हो जाता है। खेतों पर इमारतें नहीं बनाई जातीं जिससे बहुत हानि होती है। हमारे देश में कम्पोस्ट खाद का बहुत कम उपयोग होता है।

(४) **खेती के पुराने तरीके**—किसान उन्हीं पुराने ढङ्ग में खेती करता है, जो उसके पूर्वज करते चले आये हैं और जो नये तरीके हैं उनको निर्धनता, अज्ञानता के कारण ग्रहण नहीं करता। खेत जोतने के लिए लकड़ी के हल का प्रयोग किया जाता है, जिसमें लोहे का फल लगा रहता है, इससे केवल ७″—८″ जमीन खुदती है। खेत बराबर करने के लिए लकड़ी का पटरा होता है तथा बीज या तो छिड़क दिये जाते हैं या जुताई के साथ-साथ डाल दिये जाते हैं। 'सीडड्रिल' या 'सीडहोक्स' यन्त्रों का प्रयोग बहुत कम होता है। निराई तथा गुड़ाई के लिए खुरपी ही काम में लाई जाती है। काटने में भी किसी मशीन का प्रयोग नहीं किया जाता, बल्कि हँसिया से फसल काटी जाती है। पशुओं द्वारा खलिहान माँड़ा जाता है और हवा में उड़ा कर भूसा अलग निकाला जाता है। थ्रेशर्स (Threshers), विन्नोवर (Winnower) आदि का प्रयोग नहीं किया जाता। इस प्रकार उसके सब यन्त्र पुराने हैं। नये यन्त्रों के प्रयोग से—जैसे—हल, पानी खींचने के पम्प आदि से—कार्य-कुशलता अधिक बढ़ सकती है।

(५) **उत्तम बीजों की कमी**—किसान उत्तम बीजों का प्रयोग नहीं करता और वह बहुधा उसको मिलता भी नहीं है। वह गाँवों के बनियों या महाजनों से बीज लेता है जो अच्छा नहीं मिलता जबकि अच्छी उपज के लिए अच्छा, मोटा तथा स्वस्थ बीज आवश्यक है। परन्तु भारत के कुछ ही राज्यों में प्रगतिशील बीजों का प्रयोग १५% से अधिक नहीं है।

(६) **पशुओं की दशा**—यद्यपि भारतीय कृषि में गाय और बैल का महत्व बहुत अधिक है उनके बिना खेतों की जुताई नहीं हो सकती, कुओं से सिंचाई नहीं हो सकती और न फसलों के भण्डार ही भरे जा सकते हैं और न हमारे भोजन के लिए दूध जैसा पौष्टिक पदार्थ ही मिल सकता है, किन्तु इतना सब होने पर भी हमारे यहाँ पशुओं की दशा अच्छी नहीं है। यद्यपि समस्त भारत में २९२ करोड़ पशु हैं किन्तु इनमें से आधे प्रायः गिरी हुई हालत में हैं जो खेती को किसी प्रकार की सहायता नहीं पहुँचा सकते।

पशुओं की इतनी खराब अवस्था होने का खास कारण चारागाहों की लापरवाही, दोषपूर्ण जनन (Defective Breeding) व किसानों की निर्धनता एवं अशिक्षा है। उदाहरण के लिए, उत्तर-प्रदेश में जंगलों को काट कर पहाड़ियों पर भी खेत बनाये गये हैं। चरागाहों के ठीक न होने से पशुओं की कमी होती जा रही है। इसके अलावा कृषि भी ऐसी की जाती है कि जिससे भूसा आदि अधिक नहीं मिलता ताकि पशुओं की वृद्धि हो सके। साधारणतया चरागाहों के लिए ५ महीने के लिए पशुओं की चराई हो सकती है। इसी तरह बङ्गाल में भी प्रायः सभी स्थानों पर रास्तों के किनारे, तलाबों के आस-पास, खेतों की मेड़ों पर ही ढोर अपनी गुजर कर सकते हैं—जमीन का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो कृषि के उपयोग में न लाया गया हो। फसल काटने के वक्त कुछ समय के लिए अवश्य उन्हें खाने को मिल जाता है किन्तु बाकी समय में उनका कुछ भी बन्दोबस्त नहीं होता। परिणामस्वरूप ढोरों का नाश होता जा रहा है।

चारे की कमी के कारण हमारे पशुओं की नस्ल भी बहुत खराब है। इसका कारण यह है कि हमारे शहरों व गाँवों में जो बेकार तथा खराब जाति के साँड़ घूमा करते हैं उनसे ही सन्तानोत्पत्ति होती है। फलस्वरूप नई नस्लें बिगड़ती जाती हैं।

इसके अतिरिक्त इसमें पशुओं की बीमारी भी सहायक होती है। इन्हीं सब कारणों से हमारे पशु खेती के लिए पूर्ण रूप से लाभदायक सिद्ध नहीं होते।

(७) **सहायक उद्योग-धन्धों की नितान्त कमी**—भारतीय कृषि की अन्य विशेषता, भोज्य-पदार्थों की कमी के अतिरिक्त, सहायक धन्धों की नितान्त कमी होना है। हमारे यहाँ ऐसे व्यक्ति अधिक हैं जो बिना जमीन के हैं और जो मेहनत मजदूरी करके पेट पालते हैं। उन्हें खेतों में काम साल के कुछ ही महीनों में, जब फसलें बोई और काटी जाती हैं, मिलता है। बाकी वर्ष के अन्य समय में वे बिलकुल बेकार रहते हैं क्योंकि कृषि के साथ-साथ चलने वाले धन्धों की बड़ी कमी है। नतीजा यह होता है कि यह समय ये बेकार मजदूर व्यर्थ आलस्य में खो देते हैं। फसल नष्ट हो जाने पर या ओले पड़ जाने या अकाल पड़ जाने पर तो इनकी हालत और बुरी हो जाती है क्योंकि खेतों में पूरे साल भर ही इनको यथेष्ट काम नहीं मिल सकता। डा० राधाकमल मुखर्जी के अनुसार—"उत्तरी भारत में केवल २०० दिन के लिये खेतों में काम मिल सकता है।" डा० स्लटर के मतानुसार—"साल भर में केवल ५ महीने ही मद्रासी काश्तकार खेती में लगे रहते हैं।" मेजर जैक के कथनानुसार—"बंगाल में जब किसान जूट नहीं बोता है तब वह ६ महीने फालतू रहता है किन्तु अगर वे जूट और चावल बो देते हैं तो उन्हें जुलाई और अगस्त में ६ सप्ताह के लिए और कार्य मिल जाता है।" श्री कीटिंग का कहना है—"दक्खिन बम्बई में १८०-१९० रोज के लिए खेतों में अधिक कार्य रहता है।" पंजाब में श्री कैलवर्ट के अनुसार—"साल भर में सिर्फ १५० दिन का ही काम रहता है"। शाही कृषि कमीशन (सन् १९२८) ने अनुमान लगाया है कि किसानों को साल भर में ४ महीने तक कोई काम नहीं रहता। वे इस समय को व्यर्थ ही शादियों, झगड़ों और आलस्य में गवाँ देते हैं। अतः भूमि पर और भी अधिक भार बढ़ जाता है। एक तो वैसे ही सबके लिए पर्याप्त मात्रा में अन्न पैदा नहीं होता फिर इन फालतू व्यक्तियों के लिए कहाँ से आये, अतः भोजन समस्या और भी विकट होती जा रही है।

(८) **फसल के रोग और शत्रु**—यदि खेत अच्छी तरह से न जोता जाय, बिना सड़ी हुई खाद डाली जावे या कम खाद डाली जावे, आवश्यकता से अधिक या कम पानी दिया जावे तो फसल निर्बल हो जाती है और उसमें कीड़े लग जाते हैं। उदाहरण के लिये, चावल में फूट रॉट (Foot rot) और ब्लास्ट (Blast) कीड़े, गन्ने में मोसेक (Mosaic) और रेड रॉट (Red rot), मकई में स्मट्स (Smuts), मूँगफली में विल्ट (Wilt) आदि इन कीड़ों के कारण फसल को बड़ा नुकसान होता है। एक जगह फसल में कीड़े लग जाने से अन्य स्थानों की फसल पर भी प्रभाव पड़ता है। ये कीड़े पौधों की जड़ों से मिलने वाले भोजन को खा जाते हैं जिससे पौधा अच्छी तरह नहीं बढ़ पाता। कई प्रकार के अन्य कीड़े, जैसे—टिड्डियाँ, घास टिड्डे (Grass Hoppers), छोटे-छोटे चींटे तथा दीमक आदि भी फसल को समूचा ही नष्ट कर देते हैं। यह अनुमान लगाया है कि कीड़े समस्त पृथ्वी की दस प्रतिशत फसलों को नष्ट कर देते हैं। केवल भारत में ही यह हानि सन् १९२१ में १३,६०,००,००० पौंड की कूती गई थी।

कहीं-कहीं बन्दर, सूअर, गीदड़, चूहे तथा जंगली जानवर भी खेतों को नुकसान हानि पहुँचाते हैं। शाही कमीशन ने अनुमान लगाया है कि महाराष्ट्र-गुजरात में इनके द्वारा प्रति वर्ष ७२० लाख रुपये का नुकसान होता है। उत्तर-प्रदेश और मध्य-प्रदेश में

तो यह नुकसान और भी अधिक होता है। परीक्षा से मालूम हुआ है कि एक चूहा साल में ६ पौंड अनाज नष्ट करता है और भारत में कुल ८० करोड़ चूहे माने जाते हैं, अतः उनसे होने वाला एक वर्ष का नुकसान २२ करोड़ रुपया है। फसलों के इन शत्रुओं से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि खेतों में बाड़ें लगाई जावें और गाँव वालों को बन्दूक देकर मरवाया जावे।

(९) प्राकृतिक कारण—भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है, अतः जिस वर्ष मानसून पूर्णतया ठीक समय पर नहीं आते तो हमारे कृषि का धन्धा बिलकुल रुक जाता है और कभी-कभी तो अकाल पड़ जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि "प्रति पाँच वर्ष के समय में एक वर्ष अच्छा, एक बुरा और तीन बिलकुल अनिश्चित होते हैं।" अतः हमारी फसलें कभी तो अच्छी हो जाती हैं और कभी औसत से भी कम होती है। जब कई बार अधिक वर्षा हो जाने या असामायिक वर्षा होने, ओले गिरने या बाढ़ आने के कारण भी फसल नष्ट हो जाती हैं तो ऐसी अवस्था में किसान के लिए अधिक ब्याज पर ऋण लेने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं होता।

(१०) भारत जैसे विशाल देश में खेती को पानी देने की समुचित व्यवस्था नहीं है। साधारण तौर पर भारतीय कृषि वर्षा पर निर्भर रहती है, अतः जिस समय मानसून ठीक समय तर नहीं आते तो तमाम कृषि-कार्यों में एक प्रकार से ताला पड़ जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रति ५ वर्ष में एक वर्ष अत्यन्त उत्तम और ४ अच्छे व बुरे रहते हैं। अच्छे वर्ष में पानी की विशेष आवश्यकता नहीं होती, किन्तु सूखे समय में सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है। भारत में १९% भूमि पर सिंचाई होती है किन्तु फिर भी यह मात्रा हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। अतः देश के विभिन्न भागों में ठीक समय पर फसलों को पानी न मिलने से प्रायः एक न एक फसल नष्ट होकर सूखा ही पड़ा रहता है। फलस्वरूप खाद्यान्नों की कमी हो जाती है।

(११) क्रय-विक्रय की असुविधायें—साधारणतया खेती के पैदावार से जो कुछ पैदा होता है, वह सब देश में ही खप जाता है क्योंकि अभी तक हमारे यहाँ खेती व्यावसायिक पैमाने पर नहीं होती। इसके अलावा हमारे यहाँ अन्य देशों की तरह मिश्रित खेती भी नहीं की जाती ताकि कई तरह की पैदावार मिल सकें। ऐसी हालत में यह सम्भव नहीं कि हमारे यहाँ से बड़ी मात्रा में खेती से उत्पन्न पदार्थ विदेशों को भेजे जा सकें। मोटे रूप में यह कहा जा सकता है कि हमारे यहाँ पैदा होने वाली चाय और काफी का तीन चौथाई भाग, कपास का दो तिहाई भाग, जूट का एक तिहाई भाग, अलसी का आधा भाग और मूंगफली का एक पाँचवा भाग विदेशों को निर्यात किए जाते हैं। आम तौर पर किसान लोग अपने खाने के लिये रख कर बाकी पदार्थों को अपने पुराने कर्ज चुकाने, लगान देने तथा अन्य आवश्यक कार्यों के लिये बेच देते हैं। यही अतिरिक्त पदार्थ नगर वासियों का भरण-पोषण करते हैं।

किन्तु खेद है कि भारत में कृषि का उद्योग ऐसे करोड़ों व्यक्तियों के हाथ में है जिन्हें न तो इस बात की शिक्षा ही मिली है कि अच्छे ढंग से और सुचारु रूप से विशेष लाभ के लिये किस प्रकार उत्पादन किया जाय और न वे अपनी दरिद्रता के कारण खेती सम्बन्धी वैज्ञानिक तरीकों और सूचनाओं तथा वस्तुओं के भाव-ताव सम्बन्धी बातों से ही परिचित हो पाते हैं। इसका फल यह होता है कि किसान के अज्ञान का लाभ व्यापारी उठाते हैं। हमारे देश के निर्यात व्यापार में इतने अधिक दलालों का हाथ रहता है कि वे किसान से मनमाना फायदा उठाते हैं। गरीब किसान

सम्बन्ध में कुछ और नहीं सीखना, परन्तु वैज्ञानिक खेती के लिए उसे कुछ नई आवश्यक बातें अवश्य सीखनी होंगी।

उत्तम बीज, खाद, हल, बैल गहरी जुताई और चकबन्दी के लाभ को वह न जानता हो यह बात नहीं है, किन्तु जिस निर्धनता और उपेक्षा के वातावरण में वह जीवन व्यतीत कर रहा है, उस पर रह कर वह खेती की उन्नति नहीं कर सकता। इन विषम परिस्थितियों के कारण वह निराशावादी और भाग्यवादी मनोवृत्ति का हो जाता है, किन्तु ऐसी दशा में जिस सहनशीलता और लगन का आज भी वह परिचय देता है, वह न केवल सराहनीय है, किन्तु इस बात का भी सूचक है कि पूर्ण सुविधाओं के प्राप्त होने पर वह उतना ही सफल कृषक हो सकता है जितना कि अन्य देशों का।

यह बात सर्व विदित है कि आज का किसान सर्वथा अपढ़ और अशिक्षित है तथा उसके खेती करने का ढंग अत्यन्त पुराना है। वह सफाई की ओर विशेष ध्यान नहीं देता, जिसके फलस्वरूप वह अनेक रोगों का शिकार हो जाता है तथा उनसे ग्रसित हो कर अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर लेता है, फलतः उसके कार्य करने की शक्ति में बहुत कमी आ जाती है।

उपरोक्त कारणों से देश में खाद्यान्नों का उत्पादन कम होने से भारी मात्रा में अन्न का आयात करना पड़ रहा है। मोटे तौर पर देश के २८% भाग में और १८% जन संख्या की वृद्धि से खाद्यान्नों की अधिकता है किन्तु ७२% भाग में और ८२% जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों का नितान्त अभाव है। इस कमी को पूरा करने के लिए देश के प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि में उत्पादन बढ़ाने के लिए निश्चित कार्यक्रम रखा गया जिसके फलस्वरूप देश में कृषि-जन्य पदार्थों के उत्पादन की निम्न प्रकार से प्रवृति रही है :—

कृषि—जन्य उत्पादन का सूचक अंक (१९५०-५१ से १९५८-५९ तक)
(१९४९-५०=१००)

वस्तु	कुल का प्रतिशत	१९५० १९५१	१९५१ १९५२	१९५२ १९५३	१९५३ १९५४	१९५४ १९५५	१९५५ १९५६	१९५६ १९५७	१९५८ १९५९
अन्न	६६·९	९०·१	९१·१	१०१·१	११९·४	११४·५	११३·५	११९·६	१२८·२
तिहलन	९·९	९८·५	९७·४	९१·९	१०३·७	१२१·७	१०९·२	११५·९	१३१·५
गन्ना	८·७	११३·७	११२·८	१०१·६	८९·५	११६·७	१२१·२	१३६·७	१४०·६
रूई	२·८	११०·७	११९·२	१२१·०	१५१·८	१६३·१	१५१·६	१७९·३	१७८·३
जूट	१·४	१०६·३	१५१·४	१४८·६	१००·०	९४·७	१३५·७	१३६·५	१६७·५
सभी-कृषि उत्पादन	१०·०	९५·६	९७·५	१०२·०	११४·३	११६·४	११५·९	१२३·०	१३१·०

१९४८-४९ में अनाजों का उत्पादन ४ करोड़ ३३ लाख टन था जो १९५०-५१ में घट कर ४ करोड़ १७ लाख टन रह गया। सबसे अधिक उत्पादन १९५३-५४ में हुआ जब ५ करोड़ ८३ लाख अन्न पैदा किया। इस प्रकार लगभग १½ करोड़ टन अन्न उत्पादन बढ़ा (अर्थात् लगभग ३५% वृद्धि हुई) किन्तु उसके बाद से ही अनाज का उत्पादन गिरने लगा। १९५४-५५ में ५ करोड़ ५७ लाख टन और १९५५-५६

अपने अपने खेतों और गिरी हुई आर्थिक अवस्था के कारण इतना अधिक उत्पन्न नहीं कर पाता कि वह बड़ी-बड़ी मंडियों में ले जाकर अच्छे भाव पर बेच सके। दलालों की अधिकता और माल बेचने में कई अस्वस्थ तरीकों आदि का प्रयोग होने के कारण गरीब किसान को अपने एक रुपये की फसल में से सिर्फ नौ आने ही मिल पाते हैं और बाकी रुपया दलालों, तुलावटियों, धर्मादा पल्लेदारों, म्यूनिसिपल-टैक्स आदि खर्चों में ही समाप्त हो जाता है। विशेषकर बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर-प्रदेश व पंजाब में अधिकतर माल इन दलालों की सहायता से बेचा जाता है। कभी-कभी तो गाँवों में ही बड़े-बड़े दुकानदारों के दलाल या आढ़तिये आ जाते हैं और किसानों को कर्ज देकर खड़ी की खड़ी फसल ही खरीद लेते हैं। कई बार महाजन किसानों को इस शर्त पर रुपया देते हैं कि फसल पकने पर उनको ही बेची जायगी। इस प्रकार के कार्यों में गरीब किसान को आर्थिक नुकसान बहुत होता है क्योंकि उसे अपनी फसल का पूरा एवजाना नहीं मिलता, किन्तु वह अपनी दरिद्रता से लाचार होता है। इन सबका मुख्य कारण माल बेचने की पूर्ण सुविधाओं का न होना है। बाजारों में कई प्रकार के बांट काम में लाये जाते हैं और कभी-कभी तो खरीदने और बेचने के बांट भी अलग-अलग होते हैं। इसके अलावा किसान से माल खरीदते समय कई प्रकार की कटौतियाँ की जाती हैं, जैसे—तुलाई, बिनाई, पल्लेदारी, धर्मादा, खाता, दलाली, आढ़त करना आदि। इनके अलावा चौकीदार, भंगी, मुनीम, भिश्ती आदि सभी को इसमें से कुछ न कुछ चुकाना पड़ता है। इन्हीं सब कारणों से किसानों को काफी हानि होती है और उसकी उपज का ४२·३ से ५७·७ प्रतिशत दलालों और आढ़तियों की जेब में चला जाता है।

(१२) किसान के पास सबसे बड़ी कमी पूँजी का न होना है इसलिए वह खेतों के लिए खाद नहीं खरीद सकता है और न पशुओं को खिला-पिला ही सकता है। सिंचाई के लिये पानी प्राप्त नहीं कर सकता है और न अधिक उपयोगी कीमती औजार ही खरीद सकता है। भारतीय किसान विस्तृत खेती (Extensive Cultivation) करता है। चीन और जापान के किसानों की तरह गहरी खेती (Intensive Cultivation) नहीं कर सकता। इन सब कारणों से भारत में खेती की औसत उपज कम है।

(१३) **भारतीय किसान साधक या बाधक**—भारत में खेती-बारी का धंधा पनप नहीं रहा है इसलिए इसकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। इसका मुख्य कारण बहुत से लोग जो वस्तु स्थिति से अनभिज्ञ हैं किसान को मानते हैं। भारतीय किसान को मूर्ख, अपने धन्धे के विषय में कुछ भी न जानने वाला और अत्यन्त रूढ़ि-वादी कहा जाता है। आरम्भ में कृषि-विभाग भी समझता था कि भारतीय किसान खेती करना नहीं जानता किन्तु सर्व-प्रथम कृषि विशेषज्ञ डा० वोयेलकर ने भारतीय किसान की प्रशंसा करते हुये कहा था—"भारतीय किसान खेती के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान रखता है और जिन विपरीत परिस्थितियों में उसे धन्धा चलाना पड़ रहा है, उनको देखते हुये वह श्रेष्ठ किसान है। भारत का किसान ब्रिटेन के किसान की बराबरी नहीं करता किन्तु वह उससे कुछ बातों में बढ़ जाता है। उनका कहना है कि उन्होंने भारत जैसा मेहनती और होशियार किसान नहीं देखा जो इतनी लगन और सावधानी से खेती करता हो।" क्रमशः अब तो कृषि-विभाग के अधिकारी भी इस बात को मानने लगे हैं कि भारतीय किसान को साधारणतः खेती-बारी के

में ५ करोड़ ४५ लाख टन ही अन्न पैदा हुआ। १९५६-५७ में उत्पादन में कुछ वृद्धि हुई। यह उत्पादन ५ करोड़ ७३ लाख टन था किन्तु १९५७-५८ में पुनः काफी ह्रास हो गया। उस वर्ष केवल ५ करोड़ २२ लाख टन अनाज पैदा हुआ। १९५४-५५ और १९५५-५६ में अनाज के उत्पादन में कमी होने का मुख्य कारण प्रतिकूल मौसम का होना था। किन्तु १९५६-५७ में उल्लेखनीय वृद्धि का सबसे बड़ा कारण विकास के वे विभिन्न कार्य हैं जो पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत किये गये थे—जैसे—कृषि करने की अच्छी विधियों का प्रयोग, उतनी ही खेती से घनी उपज प्राप्त करने के उपायों का प्रचार, सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार, खादों और उर्वरकों का अधिक प्रयोग, बढ़िया बीज तैयार करके बाटना और खेती की उत्तम विधियों का प्रचार। १९५७-५८ में उत्पादन में कमी का मूल कारण देश के अधिकांश भागों में (पूर्वी उत्तर प्रदेश, प० बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और राजस्थान) खरीफ फसलों के लिए ऋतु का प्रतिकूल होना था (विशेष कर धान के लिए)। इस वर्ष कृषि उत्पादन में बहुत कमी आ गई। १९५८-५९ में खाद्यान्नों का उत्पादन ७.३ करोड़ टन था।

नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का अनाज का उत्पादन और आयात बताया गया है :—

वर्ष	उत्पादन (लाख टन)	आयात की मात्रा (लाख टन)	आयात का मूल्य (करोड़ रुपये में)
१९४९-५०	४७४	३७.००	—
१९५०-५१	४३७	२१.००	—
१९५१-५२	४३८	४७.००	२२२.८१२
१९५२-५३	४९४	३९.९९	१६१.२८
१९५३-५४	५८२	१४.३६	७२.४८
१९५४-५५	५५७	१२.२७	६८.३७
१९५५-५६	५४५	४.३२	२९.००
१९५६-५७	५७३	२१.२६	१११.००
१९५७-५८	५२८	३६.९२	१६७.००
१९५८-५९	७३०	३२.००	१११.००

१ जनवरी १९५४ से ३१ जुलाई १९५८ तक लगभग १५७ करोड़ रु० की लागत का लगभग ५०.८ लाख टन अनाज अमरीका से आयात किया गया। १९५८ में अमरीका से P. L. Programme 480 और P. L. 665 के अन्तर्गत १६,८५,४०० टन गेहूँ, कनाडा से कोलम्बो योजना तथा भविष्य भुगतान योजना के अंतर्गत ६,३१,३०० टन गेहूँ और आस्ट्रेलिया से ५,६०० टन गेहूँ के आयात का प्रबन्ध किया गया। ३,३०,७०० टन चावल बर्मा से और ६,५०० टन चावल वियतनाम से मंगाने का भी प्रबन्ध किया गया है। P. L. 480 के अंतर्गत १,००,००० टन चारा और २५,००० टन कॉर्न मंगाने का भी प्रयत्न किया गया है। १९५८ में ३१.७ लाख टन खाद्यान्न आयात किया गया इसमें से २६.७ लाख टन और ३.९ लाख टन चावल था।

कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस प्रकार कार्यक्रम रखा गया :—

कृषि वस्तु	मात्रा	१९५५-५६ में उत्पादन	१९६०-६१ में उत्पादन	उत्पादन में प्रतिशत वृद्धि
अन्न	करोड़ टन	६५·०	८०·५	२४·६
तिलहन	,,	५·५	७·६	३७·०
गुड़	,,	५·८	७·८	३३·९
कपास	करोड़ गांठे	४·२	६·५	५५·६
जूट	,,	४·०	५·५	५८·१
अन्य फसलें कृषि-जन्य पदार्थ		—	—	२२·४

यदि यह लक्ष्य पूरे हो सकें तो देश में कृषि-उत्पादन में २२%; अनाजों में २५% और अन्य व्यापारिक फसलों में ३४% की वृद्धि हो जायगी। इस उत्पादन में निम्न कार्यक्रमों का योगदान इस प्रकार होगा :—

सिंचाई की बड़ी योजनाओं द्वारा	३०·२ लाख टन
सिंचाई की छोटी योजनाओं द्वारा	१८·९ ,, ,,
भूमि सुधार द्वारा	९·४ ,, ,,
खादों और उर्वर के द्वारा	३७·७ ,, ,,
उन्नत बीजों द्वारा	५.६ ,, ,,
कृषि के उन्नत तरीकों द्वारा	२४·७ ,, ,,

इस वृद्धि के फल स्वरूप द्वितीय योजना के अन्त में प्रत्येक व्यक्ति को १९·६ औंस अनाज मिल सकेगा। तथा चीनी का उपयोग १·४ औंस से बढ़कर १·७ औंस तक हो जायेगा। प्रौढ़ व्यक्तियों की प्रतिदिन खाद्य सामग्री की खपत २,२०० कैलोरीज से बढ़कर २,४५० कैलोरीज तक हो जायेगी।

मद	१९५६-५७		१९५७-५८	
	लक्ष्य	प्राप्ति	लक्ष्य	प्राप्ति
	(लाख टन)		(लाख टन)	
छोटी सिंचाई योजनाएँ	३·३	२·५	५·७	४·०
भूमि सुधार ,,	१·१	१·१	२·१	१·७
खाद और उर्वरक	३·५	२·७	९·१	७·७
उन्नज बीज	१·१	०·६	२·८	२·०
कृषि की उन्नत प्रणालियाँ	१·०	२·०	५·४	५·०
योग	१०·०	८·९	२५·१	२०·४

दूसरी योजना के पहले दो सालों में लगभग २ अरब ७८ करोड़ रुपयों का अनाज मंगाया गया। योजना के तीसरे वर्ष में विदेशों से अनाज मगाने के लिए १

अरब ११ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। १९५८-५९ के बजट में २० लाख टन गेहूँ और ५·३० लाख टन चावल खरीदने की व्यवस्था थी।

कृषि उत्पादन में वृद्धि के उपाय—देश में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए दो उपाय काम में लाये गये हैं :—

(१) प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि

खेती की प्रति एकड़ उपज में वृद्धि करने के लिए निम्न कार्य क्रम किये गये हैं :—

(क) देश के अधिकांश भागों में भूमि उपजाऊ होते हुए भी जल की कमी है अतः १९५७-५८ 'अधिक अन्य उपजाओ' कार्यक्रमों के अंतर्गत अनेक राज्यों में २८,१३७ कुएँ और ३२० तालाबों की मरम्मत एवं कइयों का पुनः निर्माण किया गया इससे लगभग १·७३ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की गई। नदियों, नालों और कुओं में १३ हजार से अधिक रेंहट लगाये गये इससे लगभग १·३८ लाख एकड़ भूमि सींची जा सकेगी। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा अनेक बांध नाले और रजबहे आदि बनवाये जा रहे हैं जिनसे लगभग १४·६० लाख एकड़ में सिंचाई होने का अनुमान है। १९५६-५७ में ६८०,००० एकड़; १९५७-५८ में ११,१०,००० एकड़ और १९५८-५९ में २०,३०,००० एकड़ भूमि पर अतिरिक्त सिंचाई की गई। सब मिलाकर इनसे लगभग २२ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होने लगी है।

इसके अतिरिक्त भारत और अमरीकी सहायता के सयुक्त कार्यक्रम के अंतर्गत २,६५० नलकूप लगाये जाने वाले थे। इनमें से दिसम्बर १९५८ तक बिजली लगाकर २,९५२ चालू किये गये हैं। उत्तर प्रदेश और पंजाब में ६०९ नलकूप और उत्तरी गुजरात में ४०० नलकूप लगाये गये हैं।

भूगर्भ-जल की खोज के अन्तर्गत तासी नदी के प्रवाह-स्थल, सौराष्ट और राजस्थान में ५१ स्थानों में बर्मा लगाकर देखा जा चुका है।

(ख) कृषि उत्पादन बढ़ाने में बढ़िया बीज बांटने और खाद का प्रयोग बड़े लाभदायक सिद्ध होते हैं। इस हेतु १९५६-५७ में ३४३ उत्तम बीज उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों की और १९५७-५८ में १२३२ केन्द्रों की स्थापना की गई। १९५८-५९ में १९३० केन्द्रों की स्थापना की जानी थी।[1] इनके द्वारा बढ़िया बीज तैयार कर कृषकों को बांटा जाता है।

कृषि का उत्पादन बढ़ाने के लिए कम्पोस्ट खाद का प्रयोग पर भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। यह तथ्य निम्न आंकड़ों से स्पष्ट होगा :—

वर्ष	कम्पोस्ट तैयार किया गया	कम्पोस्ट बांटा गया
१९५२-५३	१७·५ लाख टन	१४·० लाख टन
१९५३-५४	१८·३ ,,	१७·१ ,,
१९५४-५५	१८·८ ,,	१६·६ ,,

१. 'भारतीय समाचार' १ सितम्बर १९५९ के अंक में दी गई सूचना के अनुसार अब तक २,४९३ बीज उत्पन्न करने और बाँटने वाले केंद्र खोले जा चुके हैं। इनमें से आंध्र में २५९; आसाम में ९८; बिहार में ३७२, बम्बई में २९०; जम्मू काश्मीर में २८; केरल में ८, मध्य प्रदेश में ८४, मद्रास में १७५ (जिनमें से ५६ बंद हो चुके हैं) मैसूर में ४८, उड़ीसा में ६०, पंजाब में ११६, राजस्थान में १६४, उत्तर प्रदेश में ६७७ और बंगाल में ६७ हैं।

वर्ष	कम्पोस्ट तैयार किया गया	कम्पोस्ट बाँटा गया
१९५५-५६	२१·२० लाख टन	१७·९० लाख टन
१९५६-५७	२२·६० ,,	१९·१० ,,
१९५७-५८	२२·२० ,,	१९·२५ ,,
१९५८-५९	२६·४० (लक्ष्य)	—

बड़े-बड़े शहरों और कस्बों का गन्दा पानी तथा गाध खाद के रूप में काम में लाने के लिए भी कार्य-क्रम बनाये गये हैं जिनसे लगभग १५ करोड़ ३० लाख गैलन खाद का पानी प्रति घन्टा मिल सकेगा और उससे ३४ हजार एकड़ से अधिक भूमि की सिंचाई होकर लगभग ५६ हजार टन अतिरिक्त अन्न उत्पादन हो सकेगा सन् १९५८-५९ में खाद तैयार करने के दो कार्य-क्रम स्वीकृत किये गये :—

(i) राष्ट्रीय विस्तार और सामुदायिक विकास खण्डों में (६७६ में) खाद की पैदावार बढ़ाने का प्रयत्न किया जाये ।

(ii) बड़ी गाँव पञ्चायतों के क्षेत्र में (२०२३ में) मलमूत्र से कम्पोस्ट बनाया जाये । हरी खाद का प्रयोग बढ़ाने के भी उपाय किये जा रहे हैं ।

अमोनियम सल्फेट के रूप में भी नाइट्रोजन वाली खादों का प्रयोग बढ़ रहा है । सन् १९५६ में यह ६·७५ लाख टन और सन् १९५७ में ७ लाख टन और सन् १९५८-५९ में ९ लाख टन हो गया था । इसके अतिरिक्त ६४ हजर टन यूरिया, ३५ टन अमोनियम-सल्फेट-नाइट्रेट और ९ हजार टन कैल्शियम अमोनियम-नाइट्रेट भी वितरण के लिए उपलब्ध था । सन् १९५६ में १ लाख टन और सन् १९५७ में १·५ लाख टन सुपर-फोस्फेट बाँटा गया ।

(ग) जापानी विधि से धान की खेती करने का प्रचार भी चार वर्ष से निरन्तर किया जा रहा है । सन् १९५६-५७ में २३·७४ लाख एकड़ में इस विधि से खेती की गई । सन् १९५७-५८ में ३५ लाख एकड़ में और १९५८-५९ में ४० लाख एकड़ में । जापानी विधि से धान बोने पर प्रति एकड़ की औसत उपज १९·९ मन तक बढ़ती है जबकि स्थानीय विधि से औसत उपज केवल १३·३३ मन रहती है ।

घनी खाद देकर गन्ने की खेती में प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाया गया है । इससे पंजाब में उपज में १९%; उत्तर-प्रदेश में, २६%; मध्य-प्रदेश में; ३०%; मद्रास में ११ और बम्बई में २२% की वृद्धि हुई है । सन् १९५६-५७ में इस प्रकार से खेती १४ लाख एकड़ (लक्ष्य १५ लाख एकड़) और सन् १९५७-५८ में २० लाख एकड़ भूमि में की गई ।

पटसन या जूट की उपज बढ़ाने के लिए खेती में उर्वरकों का प्रयोग करने, बढ़िया बीजों का वितरण, खेती के तरीकों में सुधार करने के लिए ड्रिलों से बीज बोने और पहियेदार खुरपों से गुड़ाई-नलाई करने तथा पौधों को कृमियों से बचाने के लिए यन्त्रों से औषधियाँ छिड़कने पर बल दिया जा रहा है ।

तिलहन, लाख, सुपारी, नारियल, कपास और तम्बाकू के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए अनुसन्धान और खेती का विस्तार किया जा रहा है ।

(२) नवीन क्षेत्रों में कृषि की जाय

भारत में लगभग ८५० लाख एकड़ ऐसी भूमि है जिस पर किसी प्रकार खेती बारी नहीं हो रही है। इसका अधिकतर भाग किनारे या किनारे के समीप है और इसमें से कम से कम १०८ लाख एकड़ भूमि बिल्कुल अच्छी उपजाऊ और खेती योग्य है। कई स्थानों में मलेरिया मच्छरों के प्रकोप के कारण भी भूमि बेकार पड़ी है। इस प्रकार के क्षेत्र मुख्यत: तीन हैं (१) हिमालय की निकटवर्ती तराई; (२) पश्चिमी घाट के समानान्तर एक सकड़ी पट्टी; और (३) पूर्वी घाट के समानान्तर पट्टी जो मद्रास, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश और मध्य-प्रदेश में चोड़ी हो जाती है। इन तीनों ही क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा १००" तक होती है और भूमि भी उपजाऊ है किन्तु इन भागों में मलेरिया का प्रकोप सदा ही बना रहता है अत: यदि मच्छरों को नियन्त्रण में लाकर मलेरिया को रोका जा सके तो इन क्षेत्रों में धान की उपज बढ़ाई जा सकती है।

केन्द्रीय ट्रैक्टर सङ्गठन द्वारा सन् १९४८ से अब तक सब मिला कर लगभग १६ लाख एकड़ भूमि का उद्धार किया जा चुका है। इस सङ्गठन की जङ्गल साफ करने वाली शाखा ने आसाम में २,३८७ एकड़ भूमि और मध्य-प्रदेश में ३६,८८८एकड़ जङ्गलों को साफ किया है। बिहार में सन् १९५८ एकड़ भूमि को समतल किया गया अथवा उसमें सीढ़ी की भांति समतल कियारियां बनाई गईं। सन् १९५७-५८ में ५½ लाख एकड़ भूमि का उद्धार किया गया और सन् १९५८-५९ में ४·५८ लाख एकड़ भूमि कृषि योग्य बनाने का अनुमान था। खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाने में सबसे महत्वपूर्ण कार्य उत्तर प्रदेश की सरकार ने किया है। इसका स्थान एशिया में रूस के बाद दूसरा है। मेरठ जिले के गंगा-खादर क्षेत्र में ४७,००० एकड़ वनाच्छादित भूमि पर सफाई कर खेती की जारही है। तराई तथा काशीपुर के लगभग ५०,००० एकड़ क्षेत्रफल में, जहाँ पहले दलदल भूमि थी, खेती की जाती है। इसी प्रकार बरेली से ३८ मील दूर लालकुआँ स्थान पर हाथियों द्वारा खेती की जानी आरंभ की गई है।

मध्य-प्रदेश में कांस से घिरी भूमि को साफ करके खेती योग्य बना लिया गया है। इसी प्रकार आसाम सरकार १३,००० एकड़ वनाच्छादित भूमि को साफ करके खेती करने का प्रयत्न कर रही है। १९४९ तक यह प्रदेश नियंत्रित व संरक्षित वन प्रदेश था किन्तु अब प्राय: ७ मील लम्बे और ३ मील चौड़े प्रदेश की खेती योग्य बनाया जा रहा है। सम्पूर्ण प्रदेश पर फसल उगने के बाद आसाम न केवल खाद्यान्न उत्पादन में आत्म निर्भर ही होगा वरन् सीमान्त राज्यों को निर्यात भी कर सकेगा। मद्रास में लगभग २५०,००० एकड़ भूमि का पुनरुद्धार कर कृषि योग्य बना लिया गया है। बम्बई राज्य में भी वनों आदि को साफ कर १२५,००० एकड़ भूमि को खेती के योग्य बनाया जारहा है। प्रथम पंच वर्षीय योजना के अंतर्गत लगभग ६०·६ लाख एकड़ भूमि खेती के योग्य बनाई जा चुकी है। इसका वितरण इस प्रकार है—मध्य भारत, १४ लाख एकड़; उत्तर प्रदेश १० लाख एकड़; मध्य प्रदेश ९ लाख एकड़; बम्बई ५; उड़ीसा ५; पंजाब ५; भोपाल ५; विन्ध्य प्रदेश ५ और पूर्वी पंजाब के राज्य ५ लाख एकड़। इस नई भूमि पर गेहूं उत्पादन किया जा रहा है।

दूसरी योजना के अंतर्गत केंद्रीय और राज्य ट्रैक्टर संगठनों, आंशिक खेतिहरों और अन्य साधनों द्वारा १५ लाख एकड़ भूमि को फिर से खेती योग्य बनाने और २० लाख एकड़ भूमि से अधिक क्षेत्र में भूमि सुधार करने का प्रस्ताव है।

निम्न तालिका में बंजर भूमि का पुनरुद्धार बताया गया है :—

वर्ष	केंद्रीय ट्रैक्टर संगठन द्वारा (हजार एकड़ में)	राज्य ट्रैक्टर संगठन द्वारा	योग
१९४९-५०	७८	४८५	५६३
१९५१-५१	२८५	५०४	७८९
१९५१-५२	२५३	४२०	६७३
१९५२-५३	२६६	२५८	५२४
१९५३-५४	२८८	४२७	७१५
१९५४-५५	१८७	२२९	४१६

१९५८ में केन्द्रिय ट्रैक्टर संगठन द्वारा ३९,००० एकड़ कांस-युक्त भूमि का तथा ३,०० एकड़ वनाच्छादित भूमि का उद्धार किया गया और ४,००० एकड़ से अधिक भूमि समतल बनाई गई।

सरकार द्वारा उत्पादन वृद्धि में योग

देश को बाहर से कम से कम अनाज मंगाना पड़े इसके लिए सरकार तत्काल जो काम कर रही है उसे दो भागों में बांटा जा सकता है :—

(क) **पैदावार बढ़ाने के लिए**—निम्न कार्य किये जा रहे हैं :—

(१) कुएं खोदने और उनकी मरम्मत करने, तालाब जलाशय, छोटे बांध, नलकूप, कूलें आदि बनाने की छोटी योजनाएं।

(२) किसानों को रासायनिक खाद तथा अन्य उर्वरकों का वितरण।

(३) अच्छे बीजों का वितरण।

(४) मछली पालन की नई योजनाओं का विकास।

(५) मेड बांधने, बेकार भूमि को साफ करने और उसे खेती योग्य बनाने की योजनायें।

(६) पौधों की रक्षा और उन्हें रोग से बचाने की योजनायें।

(७) प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाने के लिए अधिक अन्न उगाओ योजनायें।

(८) रबी की फसल—गेहूँ, जौ, चना, और ज्वार बढ़ाने के लिए किसानों को खेती के अच्छे तरीके बताये जा रहे हैं। उन्हें समय पर अच्छे बीज, खाद और उर्वरक आदि दिया जा रहा है तथा गांवों के कार्य कर्ताओं और किसनों में सहयोग पैदाकर के उनमें प्रति एकड़ उपज बढ़ाने के लिए उत्साह भरा जा रहा है।

(ख) देश में पैदा होने वाले अनाज का अधिक से अधिक उपयोग करने के लिए यह कार्य किये जा रहे है :—

(१) इन क्षेत्रों को ध्यान में रखना जहाँ का भी अनाज पैदा होता है जिनसे सरकार वहां से अनाज लेकर उन स्थानों को भेज सके जहाँ बहुत कम अनाज होता है।

(२) जिन स्थानों में बहुत कम आनाज होता है और जहाँ अनाज की काफी

खपत हैं उन्हें ध्यान में रखना ताकि सरकार अपने गोदाम में वहाँ अनाज भेज सके। खाद्य-पदार्थों की मांग और पूर्ति में समन्वय लाने हेतु केन्द्रीय गोदाम कारपोरेशन ने ११ राज्यों में गोदाम का निर्माण किया है जिनमें वारंगल (आंध्र), अमरावती गोंदिया और सांगली (बम्बई), देवनगिरि और गड़ाग (मैसूर), बड़गड़ (उड़ीसा), मोगा (पंजाब) और चंदोसी (उत्तर प्रदेश) प्रमुख हैं।

(३) अधिक और कम अनाज पैदा करने वाले क्षेत्रों को मिला कर एक क्षेत्र बनाना जिससे वे मिलकर आत्म निर्भर हो सकें। गेहूँ के स्थानान्तरण की सुविधा उपलब्ध करने हेतु (१) पंजाब, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली; (२) उत्तर प्रदेश और (३) राजस्थान, मध्य प्रदेश और बम्बई (बम्बई शहर को छोड़कर) तीन गेहूँ क्षेत्र बनाये गये हैं।

इसी प्रकार आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर और केरल को मिलाकर एक चावल क्षेत्र का भी निर्माण किया गया है।

(४) खाद्य वितरण को सफल और सुगम बनाने के लिए देश भर में १९५८ में ५० हजार सस्ते अनाज की दूकानें खोली गई हैं।

अनाज की कमी को दूर करने के लिए निम्न उपाय काम में लाना भी लाभप्रद होगा :—

(१) जिन क्षेत्रों में अभी तक ज्वार, बाजरा आदि मोटे अनाज बोये गये हैं उनमें अब अधिक से अधिक मात्रा में गेहूँ और चावल आदि अनाज पैदा किये जाँय।

(२) बङ्गाल, उड़ीसा व दक्षिण भारत में, जहाँ किसानों और साधारण व्यक्तियों का भोजन चावल है, वहाँ कई प्रकार की दालें और फलियें पैदा की जानी चाहिये ताकि चावल खाने की आदत में कमी की जा सके।

(३) जिन भागों में अनाज की जगह कपास, जूट या गन्ना पैदा होने से अनाज की कमी पड़ गई है, वहाँ आबादी की वृद्धि का ध्यान रखते हुए इनकी जगह दालें, फलियाँ, मटर, तिलहन और पत्तीदार भाजियाँ बोई जाँय। क्योंकि अभी कई जगह विशेषकर उत्तर-प्रदेश में गन्ना, बङ्गाल में जूट और गुजरात तथा महाराष्ट्र में कपास अधिक बोई जाती है जिसके फलस्वरूप इन अनाजों की काफी कमी हो गई है।

(४) गाँठदार सब्जियों (Root Vegetables) की पैदावार में भी वृद्धि की जानी चाहिए क्योंकि आलू, मूली, चुकन्दर और प्याज आदि में कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा ही अधिक नहीं होती बल्कि ये लोहे और विटेमीन 'सी' में भी धनी होते हैं। इनसे भी कुछ हद तक भोजन की कमी को दूर करने में सहायता मिलेगी।

(५) कुछ नई फसलें जो एक से जलवायु और मिट्टी में पैदा हो सकती हैं, उन्हें भारत के उन भागों में भी पैदा करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये जहाँ उनके अनुकूल परिस्थिति हो। सोयाफली को भी पैदा करने की कोशिश की जावे क्योंकि इसमें 'ए', 'बी' और 'डी' विटेमिन होते हैं, जो प्रायः शाकाहारियों के भोजन में कम मात्रा में होते हैं। किसी भी दाल या तिलहन में इतनी अधिक चर्बी और प्रोटीन नहीं होता जितना की सोयाफली में होता है।

(६) अधिक फल पैदा करने से भी भोजन समस्या बहुत कुछ सुधर सकती है।

(७) मछलियों को ठीक तरह पाला जाय और उनकी पैदावार बढ़ाई जाय ताकि भोजन में उसका अधिक उपयोग किया जा सके।

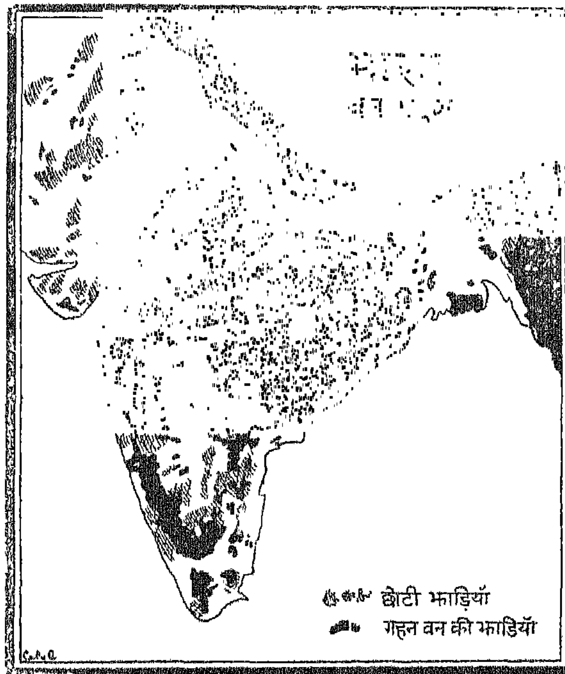
(८) दूध देने वाले पशुओं में सब प्रकार से वृद्धि की जाय।

संक्षेप में, कृषि का आधार सुदृढ़ करने के लिए उत्पादन की मात्रा में वृद्धि आवश्यक है और यह तभी हो सकता है जब हम अपनी ऐतिहासिक धारा को तान्त्रिक प्रगति की ओर मोड़ दें तथा सब मिलकर कृषि उद्योग के विकास पर ध्यान दें।

अध्याय १८

वन सम्पत्ति
(Forest Resources)

बहुत प्राचीन काल से ही भारत के भू-भाग पर विस्तृत वन-प्रदेशों का आधिपत्य रहा है। उस समय मानव जीवन की आर्थिक और सांस्कृतिक क्रियाएँ भारत की नदियो के तटवर्ती भागो और वन-प्रदेशों के निकटस्थ भागों में केन्द्रित थी। ऋग्वेद के अनुसार भारतीय वन-देवी की पूजा किया करते थे मनुसंहिता में बताया गया है कि वन-संपति को नष्ट करने वाले को कठोर दड दिया जाता था। अग्नि पुराण के अनुसार जो व्यक्ति वृक्षारोपण करता है उसे पूर्ण आशीर्वाद मिलता



चित्र ६६—वन प्रदेश

है। मतस्य पुराण में वनों का महत्व इस प्रकार व्यक्त किया गया है :—"१० कुएँ खोदने का पुण्य १ तालाब बनवाने के बराबर है और १० तालाबों के निर्माण का पुण्य १ झील बनवाने के बराबर है। १० झीलों को बनाने में उतना ही पुण्य होता है जितना एक गुणवान पुत्र प्राप्त करने में और १० गुणवान पुत्रों का यश उतना ही

होता है जितना एक वृक्ष लगाने का।" भारतीय सभ्यता के इतिहास में ऐसी कई घटनायें हैं जिनका सम्बन्ध वनों से माना जाता है। हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक ग्रंथ वेदों और रामायण तथा महाभारत में बड़े घने और अंधकारमय वन-प्रदेशों के प्रसंग मिलते है जो गंगा के मैदान में फैले हुए थे। इन जंगलों का बहुत बड़ा भाग अब खेती योग्य बना लिया गया है (सच तो यह है कि महाभारत जैसे विशाल ग्रंथ का निर्माण ही नैमीष्यारण्य के कुंजों में हुआ था)। देश के अधिकांश भागों में तपोवन फैले हुए थे जिनमें ऋषी-मुनी एवं वानप्रस्थ प्राप्त व्यक्ति ईश्वराधना करते थे। नंदनवन, दंडकारण्य, अशोक वन, वृन्दावन आदि ऐसे ही वन थे जिनमें भारत की कई धार्मिक घटनायें घटी हैं। चीनी यात्रियों के यात्रा सम्बन्धी लेखों से (जो ६०० वर्ष पूर्व लिखे गये थे) पता लगता है कि वर्तमान वृक्ष-विहीन पश्चिमी बंगाल और गोरखपुर के जिलो में कई मीलों तक अन्धकारमय उदासीन वन प्रदेशों के समूह खड़े थे। १६ वीं शताब्दी में मुगल सम्राट बावर यमुना के जंगलों में बाघ तथा अन्य वन्य-पशुओं का शिकार किया करता था जहाँ अब केवल झाड़ियों से आच्छादित निर्जन खादरी प्रदेश है।

वनों के नष्ट होने के कारण

(१) अंग्रेजी राज्य के स्थापित होने और जनसंख्या में क्रमशः तीव्र वृद्धि होने से लकड़ी का निर्माण-कार्यो और ईंधन के रूप में बढ़ गया। साथ ही कृषि के योग्य भूमि और चारागाहों की आवश्यकता भी बढ़ती गई। रेल की पटरियों के लिए और कारखानों के लिए विभिन्न प्रकार की लकड़ियों की मांग भी बढ़ी। फलतः इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वन-प्रदेशों पर प्रहार होने लगा। इसके परिणामस्वरूप १९वीं शताब्दी के मध्य भाग से ही वनों की न्यूता देश के लिए गंभीर समस्या वन गई।

(२) वर्तमान समय में भारतीय मैदानों में वन प्रदेश यत्र तत्र ही दृष्टिगोचर होते हैं। मैदानों में काफी मिट्टी होने के कारण पहाड़ों पर से आने वाली नदियाँ बड़े वेग के साथ मनमाने ढंग से टेढ़ी मेढ़ी बहती हैं। पहाड़ों पर अति वृष्टि के कारण इन नदियों का वेग यहाँ अधिक हो जाता है और ये अपने साथ-साथ चिकनी मिट्टी (Clay) और चीका (Silt) ले आती हैं। इस समय इनमें बड़े वेग से बाढ़ आती है। अतः बाढ़ के कारण पानी चारों ओर फैल जाता है। जब सदा हरे-भरे रहने वाले वनों में ऐसा होता है इन जंगलों में नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी और चीका जम जाती है और इसके कारण धीरे-धीरे वन नष्ट होने लगते हैं। इन वनों में इस मिट्टी के जम जाने के कारण बड़े-बड़े पेड़ और झाड़ियाँ मुरझा जाती हैं। जो पेड़ इस प्रभाव से बच भी जाते हैं उन्हें कीड़े शीघ्र ही नष्ट कर डालते हैं। इस क्रिया के कारण ही पहाड़ों के नीचे वाले मैदानों में बहुत से वन नष्ट हो गये हैं।

(३) कभी-कभी जब जंगलों में आग लग जाती है तब भी वन नष्ट हो जाते हैं। ठण्डी ऋतु में (Cool Weather) जंगलों में लगने वाली आग बड़ी विनाशकारी होता है क्योंकि इस समय वायुमण्डल सूखा होने के कारण बड़े वेग से हवा चलती है और जिससे शीघ्र ही समीपवर्ती जंगलों में भी आग फैल जाती है। ग्रीष्म ऋतु में घास भी सूख जाती है किन्तु शीघ्र ही वर्षा होने के कारण यह पुनः हरी भरी हो जाती है और इसलिये आग नहीं लग पाती।

(४) पहाड़ी स्थानों के वनों के नष्ट होने में मनुष्य का हाथ भी रहा है। आसाम में आदि निवासियों ने खेती के लिए जमीन साफ करने के लिए भूमिज्ञ की

क्रिया (Jhuming) से वनों को कई स्थानों पर साफ कर दिया है। भूमिङ्ग की क्रिया परिमित ऊँचाई के बीच में होती है। चूंकि ५,००० फीट से नीचे अधिक गर्मी और बीमारियों का डर रहता है इसलिए पहाड़ी लोग इस ऊँचाई से नीचे नहीं जाते और चूंकि ८,००० फीट पर फसलें आसानी से नहीं पक सकती अत: इन्हीं ऊँचाइयों के बीच भूमिङ्ग क्रिया होती है। इस कार्य के लिए सूर्य की गर्मी का लाभ उठाने के लिए पहाड़ों के पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी-पश्चिमी भागों को ही चुनते है। बड़े-बड़े पेड़ ठण्डी ऋतु में काट डाले जाते हे और गर्मी की ऋतु में भूमि के निचले भागों में आग लगादी जाती है जिससे आग की लपटें ऊँची उठती हैं और आग पहाड़ियों की तरफ बढ़ती जाती है। जब सब पेड़ जल जाते हैं तो बची हुई राख में ज्वार, बाजरा, चावल आदि भूमि में गाड़ दिये जाते हैं। फसल पकने के पहले वर्षा ऋतु में एक या दो बार खेतों को निराया जाता है। दो तीन साल तक उस खेत को इस तरह बोया जाता है और फिर जब भूमि की उर्वरा-शक्ति नष्ट हो जाती है तो ये खेत खाली छोड़ दिये जाते हैं। यहाँ अब छोटी-छोटी झाड़ियाँ उग आती हैं। जङ्गली लोग अब दूसरी जगह भूमिङ्ग की क्रिया से भूमि साफ कर लेते हैं। इस प्रकार उसी स्थान पर पुन: जङ्गलों का उगना असम्भव सा हो जाता है।

सामान्य वनस्पति

भारत का अधिकांश भाग उष्ण कटिबन्ध में स्थिति है। कुछ भाग समुद्र तट से अधिक ऊँचे होने के कारण शीत कटिबन्ध में गिने जा सकते हैं। इन दोनों ही भागों के मध्य में शीतोष्ण कटिबन्ध के भाग है। कुछ भागों में वर्षा औसत से भी अधिक हो जाती है किन्तु कुछ भाग प्राय: निर्जल ही रहते हैं। भमि और जलवायु की असमानता के कारण हमें यहाँ विभिन्न प्रकार की वनस्पति मिलती है। वर्षा की मात्रा और उसका वितरण ही किसी देश में पाई जाने वाली वनस्पति का निर्णय करता है। प्राकृतिक वनस्पति झाड़ियों, घास के मैदानों अथवा जङ्गलों का रूप लेती हैं। जहां ८०" से अधिक वर्षा होती है वहाँ सदैव हरे-भरे रहने वाले चौड़ी पत्ती के जङ्गल होते हैं ये वन विषुवत रेखीय वनों के अनुरूप होते हैं। इनमें लतायें, गुल्म, झाड़ियाँ आदि अधिक ४०" से ८०" वर्षा वाले भागों में मानसूनी वन होते हैं जिनकी चौड़ी पत्तियां ग्रीष्म में सूख जाती हैं। किन्तु वर्षा के अच्छी तरह आरम्भ होने से ही कुछ पहले इनमें फूल आ जाते हैं और पत्तियां निकल आती हैं। ये वन अधिक खुले होते हैं। केवल बांस के पेड़ों के नीचे ही घनी बढ़वार हो सकती है। इन वनों में मुख्यत: साल, सागवान, रोजवुड़, पाइन आदि वृक्ष अधिक होते हैं। २०" से ४०" वर्षा के भागों में कटीले वृक्ष पाये जाते हैं क्योंकि यहां भूमि इतनी सूखी होती है कि इसमें यथेष्ट जङ्गलों की उत्पत्ति नहीं होती। कटीली झाड़ियां भूमि पर दूर-दूर उगती हैं। बीच की भूमि वर्ष के आधे भाग में खाली रहती है तथा वर्षा ऋतु में हरी घास और जड़ी बूटियों से ढक जाती है। यहाँ बबूल, खेजड़ा, प्रोसोपिस आदि झाड़ियां अधिक उगती हैं। और २०" से कम वर्षा के राज्य में अर्द्ध रेगिस्तानी वनस्पति मिलती है।

हिमालय के हिम-मंडित भाग से लेकर कुमारी अंतरीप तक और राजस्थान के मरुस्थल से लेकर आसाम की पहाड़ियों की पूर्वी सीमा तक असंख्य प्रकार की वनस्पति पाई जाती है जो स्थानीय जलवायु, मिट्टी, भूमि की ऊंचाई-नीचाई तथा अन्य कारणों पर निर्भर होती है। वनस्पति के दृष्टिकोण से भारत के अधिकांश भाग

को गंगा सतलज के मैदान सहित अयन-वृतीय क्षेत्र में समझना चाहिए, किन्तु जहाँ जहाँ पर्वतीय प्रदेश हैं—जैसे दक्षिण में नीलगिरी और उत्तर में आसाम की पहाड़ियाँ और हिमालय—वहाँ अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय (Sub-tropical), सम-शीतोष्ण और उत्तर में आल्पस प्रकार के विभाग हैं वहाँ उसी प्रकार के वन पाये जाते है।

ऊंचाई के अतिरिक्त वनस्पति पर वर्षा का भी प्रभाव पड़ता है। वनों का अन्य वर्गीकरण स्थानीय स्थितियों के अनुसार भी होता है जैसे तटीय बालू मिट्टी के भागों में तटीय जंगल (Littoral), नदियों के बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में बाढ़-प्रदेश के जंगल (Inundational forests) और नदियों के जल-प्रदेशों में दलदल (Marshes or Swamps) जंगल इत्यादि।

संक्षेप में, भारत की भौगोलिक स्थिति, भौतिक अवस्थाओं और जलवायु में भिन्नता होने से कई प्रकार की वनस्पतियाँ यहाँ मिलती हैं। मलाया, चीन, जापान, साइबेरिया, अरब, अफ्रीका और यूरोपीय देशों से लाकर लगाये गये वृक्षों के कारण भी यह विभिन्नता पाई जाती है। इन सबमें मलाया देश की वनस्पति का आधिक्य पाया जाता है विशेषत: पश्चिमी घाटों और अधिक वर्षा वाले भागों में। यूरोपीय वनस्पति तत्व पश्चिमी हिमालय पर; चीनी तथा जापानी वनस्पति हिमालय के शीतोष्ण भागों में; तिब्बती और साइबेरिया तुल्य वनस्पति हिमालय के अनेक भागों में और अफ्रीका की वनस्पति सदा बहार वन प्रदेशों में मिलती है।

वन-प्रदेशों का वितरण

सम्पूर्ण देश में वन-प्रदेशों का विस्तार समान नहीं है। सम्पूर्ण क्षेत्रफल के केवल २२·३ प्रतिशत भाग में वन फैले हुये हैं। किन्तु वनों का विस्तार सभी जगह समान नहीं है। उदाहरण के लिये पश्चिमी बंगाल के जंगलों का क्षेत्रफल सम्पूर्ण क्षेत्रफल का ४·७ प्रतिशत है। जबकि उत्तर प्रदेश में ११·१ प्रतिशत, उड़ीसा में २१·१ प्रतिशत, मद्रास में १२·५ प्रतिशत, पंजाब में २६·६ प्रतिशत, मध्य प्रदेश में ३०·९ प्रतिशत, बिहार में २१·४ और बम्बई में १२·३ प्रतिशत तथा आसाम में २२·२ प्रतिशत, और अंडमान में ७३·५ प्रतिशत, भूमि में जंगल पाये जाते हैं। नीचे की तालिका में भारत में वन प्रदेशों का विस्तार बताया गया है :—

राज्य	भौगोलिक क्षेत्रफल (हजार एकड़ों में)	वन-प्रदेश हजार एकड़ों में	भौगोलिक क्षेत्रफल के अनुपात में वन-क्षेत्रफल का प्रतिशत
आंध्र	६७,६४८	१३,९९२	१९·४
आसाम	५४,४४०	१२,०४२	२२·२
बिहार	४५,९५२	९,६७६	२१·४
गुजरात+महाराष्ट्र	१२२,०२८	१५,९४६	१·२३
जम्मू-काश्मीर	५४,९५१	१,३९८	—
केरल	९,५६०	२,४३३	२२·२
मध्य प्रदेश	१०९,६२२	३३,४८९	३०·९
मद्रास	३२,१११	४,४८८	१२·५
मैसूर	४७,९११	६,२८८	१·२९

राज्य	भौगोलिक क्षेत्रफल (हजार एकड़ों में)	वन-प्रदेश हजार एकड़ों में	भौगोलिक क्षेत्रफल के अनुपात में वन-क्षेत्रफल का प्रतिशत
उडीसा	३८,५६०	८,७९९	२१·१
पंजाब	३०,११९	८४३	२६·६
राजस्थान	८४,५४३	३,४७८	४·५
उत्तर प्रदेश	७२,५९१	८,७१३	११·१
पश्चिमी बंगाल	२१,६८६	१,९१६	४·७
दिल्ली	३६७	४	—
हिमाचल प्रदेश	६,९९०	४००	—
मनीपुर	५,५२२	३७	—
त्रिपुरा	२,५७४	१,५७३	६०
अंडमान-नीकोबार	२,०५८	३९	—
योग	८०६,२७०	१२५,५५४	२२·३

भारत के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में २०·६ प्रतिशत भाग पर; उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में १०·७ प्रतिशत; मध्यवर्ती क्षेत्र में २९·९ प्रतिशत और दक्षिणी क्षेत्र पर १८·८ प्रतिशत भाग पर वन प्रदेश फैले हैं।

सम्पूर्ण देश के जंगलों का केवल ८० प्रतिशत (२२९९४९ वर्ग मील) ही काम में आने लायक लकड़ियाँ प्रदान करता है शेष २०% (५०,१४७ वर्गमील) अप्राप्य है। विश्व के अन्य देशों की तुलना में हमारे यहाँ बहुत ही कम जंगल पाये जाते है। अन्य देशों में तो न्यून से न्यून भी २० से २५ प्रतिशत भूमि पर जंगल हैं। स्वीडेन में ५६ प्रतिशत; रूस में ३३·९ प्रतिशत; नार्वे में २१ प्रतिशत; कनाडा में ३३ प्रतिशत; संयुक्त राज्य अमेरिका में ३२·८ प्रतिशत; फिनलैण्ड में ७०·९ प्रतिशत; और इंगलैण्ड में ६·५ प्रतिशत; फ्रांस में २०·७%; जापान में ६१·८%; इन्डोनेशिया में ६३·५% और थाईलैण्ड में ७७·२% भूमि पर वन फैले हुये हैं। स्पष्ट है कि हमारे यहाँ देश की आवश्यकता के अनुरूप वन प्रदेशों का विस्तार बहुत ही कम है। १९५२ की राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश की कम से कम ३३% भूमि पर वन-क्षेत्र होना अनिवार्य है। इस क्षेत्र का वितरण हिमालय पर्वत, दकन के पठार और अन्य पहाड़ी या पठारी क्षेत्रों की ६० प्रतिशत भूमि पर और मैदानों की २० प्रतिशत भूमि पर होना चाहिए। जनसंख्या के बढ़ते हुए भार और ईंधन की मांग के कारण नदी-तटों तथा अन्य अनउपाऊ क्षेत्रों में भी वन प्रदेशों का होना आवश्यक माना गया है।

नीचे का तालिका में वन प्रदेशों का वर्गीकरण बताया गया है[1] :—

	१९४९-५०	(वर्ग मील)	१९५५-५६	
व्यवसायिक दृष्टि से :		२६५,९३२		२६८,७०१
व्यापारिक वन क्षेत्र	२११,५७९		२१५,१३९	
अप्राप्य वन क्षेत्र	५४,३५३		५३,५६२	

१. India, 1960, p. 254; विस्तृत तालिका इस अध्याय के परिशिष्ट में देखिये।

	१९४९-५०	(वर्ग मील)	१९५५-५६	
वैधानिक दृष्टि से :		२६५,९३२		२६८,७०१
सुरक्षित वन	१२३,६६५		१३८,७९१	
रक्षित वन	३७,९४४		६४,९११	
स्वतंत्र वन	१०४,३२३		६४,९९९	
लकड़ियों की दृष्टि से :		२६५,९३२		२६८,७०१
कोणधारी वन	१३,९८३		९,७३६	
चौड़ी पत्ती वाले वन	२५१,९४९		२५८,९६५	

वनों के संरक्षण के लिये सरकार के जंगल-विभाग ने उनको तीन भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बांट रखा है :—

(१) जो जंगल जलवायु की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं उन्हें **सुरक्षित वन** (Reserved forest) कहते हैं। इन वनों का क्षेत्रफल १३८,७९१ वर्ग मील है। इनमें से न तो लकड़ियाँ ही काटी जाती हैं और न पशु ही चराने दिये जाते हैं।

(२) दूसरे प्रकार के वनों को **संरक्षित वन** (Protected forest) कहते हैं। इनमें मनुष्यों को अपने पशुओं को चराने तथा लकड़ी काटने की सुविधा तो दी जाती है किन्तु उन पर कड़ी देख भाल की जाती है। जिससे जंगलों को नुकसान न पहुँचे। इस प्रकार के वनों का क्षेत्रफल ६४,९११ वर्ग मील है।

(३) शेष जंगलों को **स्वतन्त्र वन** या अवर्गीकृत वन (Unclassed forest) कहते हैं। इनमें लकड़ी काटने और पशुओं के चराने पर रोक थाम नहीं है। सरकार इसके लिये कुछ शुल्क लेती है। इन वनों का क्षेत्रफल ६४,९९९ वर्ग मील है।

वनों का आर्थिक महत्व (Importance of Forests in National Economy)

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में वनों का महत्व बहुत अधिक है जैसा कि निम्न बातों से स्पष्ट होगा :—

(१) वनों का भारत के आर्थिक जीवन में बड़ा स्थान है। देश की राष्ट्रीय आय का लगभग ५०% कृषि उद्योग से (रु० ५,२९० करोड़) प्राप्त होता है। इसमें से ७० करोड़ रुपये या ०.७% वन सम्पति द्वारा मिलता है।

(२) भारतीय वन, चारागाहों के अभाव में, बहुत बड़ी मात्रा में पशुओं को चरने की सुविधा प्रदान करते हैं जैसा कि निम्न तालिका से प्रकट होगा :—

पशु जो वनों में चरते हैं	१९४९-५०	१९५५-५६
भैंस	३,१९९,४९८	३,५६३,५६८
गाय-बैल	१५,१११,६७८	१५,९९१,७८३
भेड़-बकरियाँ	९,१२९,४०१	७,४५०,४४४
ऊंट	१३८,०१७	४२,३६८
अन्य पशु	४१७,९२१	२३२,९७२
योग	२७,९९६,५१५	२७,२८१,१३५

पशुओं की चराई के अतिरिक्त वन प्रदेश अनेक प्रकार की कंद-मूल, फल आदि भी प्रदान करते हैं जिन पर गरीबों की जीविका निर्भर करती है।

(३) वन लगभग ४ लाख व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से दैनिक व्यवसाय देते हैं। ये लोग लकड़ी काटने, लकड़ी चीरने, गाड़ियाँ ढोने, तथा गौण--उपजें एकत्रित करने में लगे हैं।

		१९४९-५०	१९५५-५६
१.	वनों की व्यवस्था करने में	१६०,५८६	६२,०२१
२.	वन सम्पति एकत्रित करने में	३९७,४५३	२६८,८९०
३.	वन-उद्योगों में	११२,०६४	५३,५६५
	योग	५७०,१०३	३८४,४७६

(४) वनों से सरकार को काफी आय होती है। १९४९-५० में सरकार को वनों से शुल्क के रूप में ११.२ करोड़ रुपये प्राप्त हुए और १९५५-५६ में १७.४ करोड़ रुपये।

(५) वनों से जो गौण उपज प्राप्त होती है उसका मूल्य १९४९-५० में ५.७ करोड़ और १९५५-५६ में ८.० करोड़ रुपया था। इसके अतिरिक्त इन वर्षों में १७.२ करोड़ और २४.५ करोड़ रुपये की लकड़ी भी वनों से प्राप्त की गई।

प्रत्यक्ष लाभों की अपेक्षा वनों से होने वाले अप्रत्यक्ष लाभ भी बहुत होते हैं यथा :—

(१) वनों से बहुत-सी नमी निकलती रहती है जिससे वायुमंडल का तापक्रम गिर जाता है और जलवायु में लाभदायक परिवर्तन हो जाता है। यही नहीं जब वाष्पयुक्त बादल वनों के ऊपर होकर निकलते हैं और ठंडे वायुमंडल को छूते हैं तो समस्त वाष्प वर्षा के रूप में निकटवर्ती प्रदेशों में गिर जाती है। अतः जहाँ वनों का विस्तार अधिक होता है, वर्षा की मात्रा में भी वृद्धि होती जाती है। उदाहरण के लिये, उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में जंगलों के नष्ट हो जाने से वर्षा की मात्रा में बड़ी न्यूनता आगई थी किन्तु जबसे वहाँ वृक्षारोपण आरम्भ किया गया है वर्षा की मात्रा में अधिकता आ गई है। वन किसी प्रदेश के तापक्रम को समान बनाये रखते हैं। वन जलवायु के मध्यस्थ और वर्षा के संचालक कहे जाते हैं।

(२) वन वर्षा के पानी को स्पंज की भाँति चूस लेते हैं अतः निम्न पड़ौसी प्रदेशों में बाढ़ का अधिक भय नहीं रहता और पानी का बहाव धीमा होने के कारण समीपवर्ती भूमि का कटाव भी नहीं होता। वास्तव में वनस्पति से युक्त भूमि एक कम्बल की तरह काम करती है और निर्जन भूमि अपने पर गिरे वर्षा-जल को बड़ी तीव्र गति के साथ बहा देती है। छोटा नागपुर के पठार, हिमालय की तलहटी के वनों तथा उड़ीसा के जंगलों के अनुचित रूप से काटे जाने के कारण ही आज यमुना, चम्बल, आदि नदियों में बाढ़ के कारण अगणित भूमि क्षेत्रों की उत्पादन शक्ति का ह्रास हो रहा है। घाघरा, गंडक, कोसी, सोन, स्वर्ण रेखा, अजंजा, दामोदर, तिस्ता, ब्रह्मपुत्र, महानदी और गोदावरी आदि सभी नदियों में उनके निकास क्षेत्रों की वनस्पति के नष्ट हो जाने से प्रति वर्ष भयंकर बाढ़ें आती हैं।

(३) वन प्रदेश वायु प्रभाव की तेजी को रोक देते हैं या कम कर देते हैं और इस प्रकार वे बहुत से भागों को शीत अथवा तेज बालू की आँधियों के भय से मुक्त कर देते हैं। थार के रेगिस्तान की बालू अपने किनारों पर वनस्पति न होने के कारण ही प्रति वर्ष करोड़ों टन की मात्रा में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिलों की ओर बढ़ती जा रही है। अनुमान है कि थार का मरुस्थल प्रति वर्ष १/२ मील की गति से बढ़ रहा है। अस्तु, इसके किनारे-किनारे ५ मील लम्बी वृक्षों की कतारें लगाई जा रही हैं जिससे मरुस्थल का बढ़ना रुक सकेगा।

(४) वे वर्षा के पानी को जमीन में रोक देते हैं और धीरे-धीरे बहने देते हैं इससे मैदानी भाग के कुओं का जल जल-तल (Water level) से अधिक नीचे नहीं पहुँचने पाता। पंजाब के होशियारपुर और जलंधर जिलों और उत्तर प्रदेश के आगरा, मथुरा, इटावा और जालौन आदि जिलों के कुओं का जल-तल बहुत ही नीचा है क्योंकि इनके निकटवर्ती स्थानों के वनों को बड़ी ही मूर्खता से नष्ट किया गया है।

(५) वनों के वृक्षों से जो पत्तियाँ आदि सूख-मुख कर गिरती हैं वह धीरे-धीरे सड़-गल कर मिट्टी में मिल जाती हैं और उसको अधिक उपजाऊ बना देती हैं।

(६) वन सुन्दर एवं मनमोहक दृश्य उपस्थित करते हैं और देश के प्राकृतिक सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। अतएव वे देशवासियों में सौन्दर्य-भावना जागृत करते हैं और उन्हें सौन्दर्य एवं प्रकृति प्रेमी बनाते हैं।

(७) घने वनों में कई प्रकार के कीड़े-मकोड़े तथा छोटे-छोटे असंख्य जीव-जन्तु रहते हैं जिन पर बड़े-बड़े पक्षी अपना निर्वाह करते हैं। भारतीय वनों में कई प्रकार के शाकाहारी---यथा बारहसिंघा, हिरन, सांभर, बैल, सूअर---तथा मांसाहारी जीव---तेंदुआ, रीछ, शेर आदि रहते हैं जिनका शिकार कर बहुत से व्यक्ति अपना पेट पालते हैं। सघन वनों में अब भी कई जंगली जातियाँ निवास करती हैं जैसे गोंड, भील, संथाल आदि।

इस प्रकार वन सम्पदा किसी देश की आर्थिक उन्नति के लिये सब प्रकार से लाभदायक होती है। श्री चटरबक के शब्दों में "वन राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं आधुनिक सभ्यता को इनकी बड़ी आवश्यकता है। ये केवल जलाने की लकड़ी ही नहीं देते प्रत्युत हमारे उद्योग धन्धों के लिये कच्चा माल और पशुओं के लिये चारा भी प्रदान करते हैं। किन्तु इनका अप्रत्यक्ष महत्व सबसे अधिक है।"

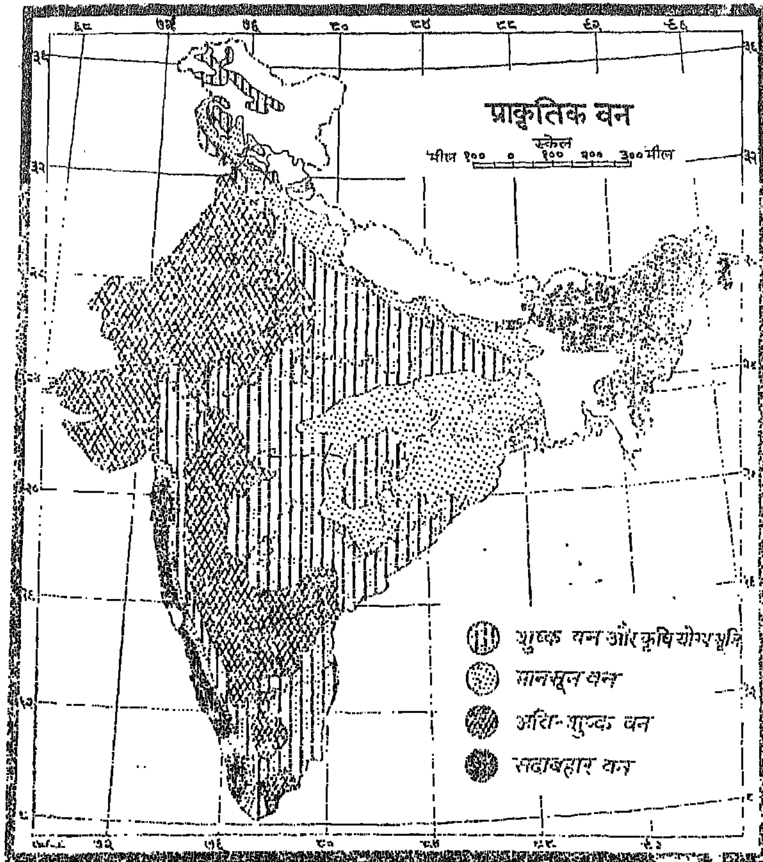
भारत में पाई जाने वाली वनस्पति

भारत में पाई जाने वाली प्राकृतिक वनस्पति को हम निम्न भागों में बाँट सकते हैं :—

(१) सदा हरे रहने वाले जंगल—(Tropical Wet Evergreen Forests)—

यह उन भागों में पाये जाते हैं जहां वर्षा प्रतिशत ८० इंच तक होती है। ये भाग क्रमशः दक्षिण में पश्चिमी घाट के ढाल पर महाराष्ट्र से लगा कर उत्तरी व दक्षिणी कनारा; तिरुनलवेली, मैसूर, कोयम्बटूर, केरल और अंडमान तक फैले हैं और उत्तर में सम्पूर्ण उत्तरी-पूर्वी भारत में बंगाल से लगाकर पूर्वी और दक्षिणी भागों में, जहाँ १००" तक वर्षा होती है, इस प्रकार के वन पाये जाते हैं। यहां के वन सदा हरे-भरे रहते हैं और इनके पेड़ों की ऊंचाई भी १५० फीट से भी अधिक होती है।

इन वृक्षों की लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है इसको काटना बड़ा कठिन होता है। तरह-तरह की बेलों गुल्मों और झाड़ियों तथा छोटे-छोटे पौधों की अधिकता से ये वन प्रायः दुर्गम होते हैं। यद्यपि इन जंगलों में कई प्रकार की बहुमूल्य लकड़ियां मिलती हैं किन्तु यातायात के साधनों की कठिनाई के कारण व्यवसाय की दृष्टि से उनका महत्व अधिक नहीं है। इन वनों में अधिकतर रबड़, महोगनी, एबोनी, लौह काष्ठ, जंगली आम, तून, ताड़ और बांस और कई प्रकार की लतायें अधिक उगती हैं।



चित्र १००—प्राकृतिक वनस्पति

(२) उष्ण कटिबन्धीय तर पतझड़ वाले वन या मानसूनी जंगल— (Tropical Moist Deciduous or Monsoon Forests)—

ये जंगल अधिकतर उन भागों में पाये जाते हैं जहां वर्षा प्रायः ४० इंच से ८० इंच तक होती है। ग्रीष्म ऋतु के आते ही इन जंगलों के पेड़ों की पत्तियां झड़ जाती

हैं जिससे इनकी नमी भाप बनकर उड़ सके। इन भागों में ऊंचे (१०० से १२० फीट) और मजबूत पेड़ों के लिये तो काफी पानी बरस जाता है किन्तु वर्षा की इतनी अधिकता नहीं होती कि वह दुर्गम हो जावें। इस प्रकार के वन पूर्वी पंजाब से आसाम तक हिमालय के बाहरी व निचले ढालों पर मिलते हैं और उत्तर की इसी सीमा से लेकर उत्तर प्रदेश, विहार उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल और दक्षिण में पश्चिमी घाट के पूर्व लगा कर मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर, और केरल के सूखे भागों में कुमारी अन्तरीप तक मिलते हैं। इन जंगलों में बहुमूल्य लकड़ियां जैसे टीक, साल साखू, सागवान, लाल चन्दन आदि होती हैं। यहां शहतूत, बांस, कत्था और पैड्डक, आंवला के भी वृक्ष पाये जाते हैं। इन जंगलों में सागौन के जंगल जो मध्य प्रदेश में बांदा, उत्तरी कनारा, वैनाड़ और अनामलाई की पहाड़ियों पर मिलते हैं—मुख्य हैं। व्यावसायिक दृष्टि से ये जंगल बड़े लाभदायक हैं। ये जंगल अधिकतर सरकार द्वारा सुरक्षित रखे गये हैं ताकि उनका बेकार प्रयोग न किया जा सके।

३. उष्ण कटिबन्धीय सूखे पतझड़ वन (Tropical Dry Deciduous forests)

ज्यों २ वर्षा की कमी होती है वनस्पति में भी विभिन्नता आती जाती है। इस प्रकार के वनों में वृक्षों की ऊँचाई साधारणतः ५० से ७५ फीट तक होती है इनमें कई प्रकार के वृक्ष होते हैं जो सभी ग्रीष्म ऋतु में अपनी पत्तियाँ झाड़ देते हैं। इन वृक्षों के नीचे अधिक गहरे झाड़-झंखाड़ नहीं होते किन्तु वृक्षों के नीचे पर्याप्त सूर्य प्रकाश पहुँचता रहता है, अतः घास बहुतायत से उत्पन्न हो जाता है। बांस अधिक पैदा होता है किन्तु बेंत, ताड़ तथा लताओं का अभाव सा होता है। इस प्रकार के वन दक्षिणी भारत में सम्पूर्ण प्रायद्वीप पर विशेषतः मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र, मैसूर और मद्रास में फैले हैं।

किन्तु उत्तरी भारत के ये वन दक्षिणी भारत की अपेक्षा उतने ऊँचे नहीं होते हैं—मुख्यतः ५० फीट। ये वन सूखी ऋतु में सूख जाते हैं किन्तु मानसून काल में पुनः हरे-भरे हो जाते हैं। घास भी पाई जाती है किन्तु वह गर्मी में सूख जाती है। बांस साल, पैड्डला आदि यहाँ के मुख्य वृक्ष हैं। उत्तरी भारत में इस प्रकार के वन उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा पंजाब आदि में पाये जाते हैं।

४. उष्ण कटिबन्धीय कंटीले वन (Tropical Thorn forests)

जिन भागों में वर्षा की मात्रा ३० इंच से कम होती है वहाँ जल के अभाव में न तो अधिक ऊँचे वृक्ष ही पाये जाते हैं और न ये हरे भरे ही होते हैं। इन वृक्षों की साधारणतः ऊँचाई २० से ३० फीट तक होती है। यहाँ विशेषतः ऐसे वृक्षों अथवा झाड़ियाँ की अधिकता होती है जिनमें जल के अभाव को पूरा करने के विभिन्न साधन होते हैं। कुछ वृक्षों की जड़ें बहुत लम्बी और मोटी होती हैं जिससे वे मिट्टी की निम्नतम गहराई से भूतल का भीतरी जल चूस सकें और उन्हें अपने मोटे भागों में संचित रख सकें। कुछ वृक्षों की पत्तियाँ और तने बहुत मोटे होते हैं जिनसे उनका पानी बाहर न मिल सके। कईयों पर पत्तियाँ बिल्कुल नहीं या बहुत कम होती हैं किन्तु कांटे ज्यादा होते हैं। इन कांटों के कारण सूर्य की तेज किरणें कांटों की नोंक द्वारा पानी की बहुत ही कम मात्रा को हवा में उड़ा पाती है तथा इन कांटों के कारण वह पशुओं से खाये जाने से भी बच जाते हैं। इन वनों में अधिकतर नागफनी, रामबांस, खेजड़ा, बबूल, कीकर, कैर, खजूर आदि वृक्ष पाये जाते हैं। घास का प्रायः अभाव होता है।

उत्तरी भारत में इस प्रकार के वन प्रदेश पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ मिट्टी अनउपजाऊ और वर्षा १० से ३० इंच के बीच होती है। दक्षिणी भारत में पठार के शुष्क भागों में—मैसूर, आंध्र, मद्रास, महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश में भी इस प्रकार के वन मिलते हैं।



चित्र १०१—पश्चिमी राजस्थान में मरुस्थलीय वनस्पति

५. उष्ण कटिबन्धीय पहाड़ी वन (Montane Sub-Tropical forests)

ये वन उष्ण कटिबन्धीय हरे भरे वनों से मिलते जुलते हैं किन्तु इनमें न तो उनकी तरह इतना घनापन ही है और न ये उतने ऊँचे ही होते हैं। कुछ भागों में तो ये ५० फीट या उससे भी कम ऊँचे होते हैं इस प्रकार के वन दक्षिणी भारत में ३,००० से ५,००० फीट की ऊँचाई तक मिलते हैं। इनका सबसे अधिक विस्तार नीलगिरी, अनामलाय और पालनी की पहाड़ियों तथा उनके निकटवर्ती भागों में और महाराष्ट्र में महाबलेश्वर तथा मध्य प्रदेश में पचमढ़ी में हैं। यहाँ के मुख्य वृक्ष यूजिनिया (Eugenia), सिनैमोमम (Cinnamomum) आदि हैं।

उत्तरी भारत में इस प्रकार के वन पूर्वी हिमालय तथा आसाम की पहाड़ियों पर ३ से ६ हजार फीट की ऊँचाई पर मिलते हैं। इनमें मुख्यतः बलूत, चैस्टनट, बेतूला, एलनस आदि वृक्ष पाये जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में यहाँ के वृक्ष १५० फीट तक ऊँचे हो जाते हैं जिनके नीचे सदैव झाड़ियों का प्रावल्य होता है।

(६) शीतोष्ण पहाड़ी वन (Montane Temperate Forests)

इस प्रकार के वनों में वृक्ष ४० से ६० फीट ऊँचे तथा मोटे तने वाले होते हैं जिनके नीचे गहरी झाड़ियाँ आदि होती हैं। इन वृक्षों की पत्तियाँ घनी और सदाबहार होती हैं। इनकी टहनियों पर भी काई, लतायें आदि लिपटी रहती हैं। यह अनामलाय

पालनी तथा नीलगिरी पहाड़ियों के अधिक ऊँचे भागों में पाये जाते हैं। यूजेनिया, मिचेलिया और रोडेनड्रोन्स मुख्य वृक्ष हैं।

उत्तरी भारत में इस प्रकार के वन प्रदेश पूर्वी हिमालय और आसाम की पहाड़ियों पर ६,००० से ६,५०० फीट की ऊँचाई तक मिलते हैं। इनके मुख्य वृक्ष चीड़, बलूत और चैस्टनट हैं।

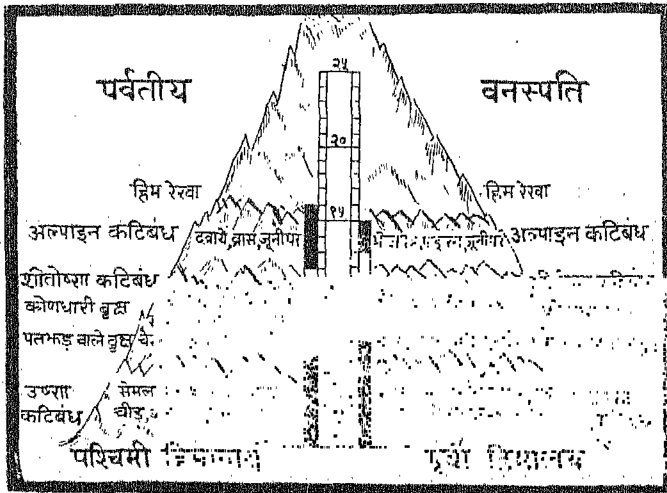
(७) हिमालय की वनस्पति (Alpine Forests)

पहाड़ों की ऊँचाई के अनुसार ही उनकी वनस्पति होती है। हिमालय के पूर्वी भागों में (जहाँ वर्षा घनी होती है) पश्चिमी भागों की अपेक्षा घने और विविध प्रकार के वन पाये जाते हैं। अस्तु, हिमालय के वन प्रदेशों को मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है :—

(क) पूर्वी हिमालय के वन

(i) **अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय वन**—इनके अंतर्गत तराई से लेकर हिमालय की ५,००० फीट की ऊँचाई तक उगने वाले वन सम्मिलित हैं। इन वनों में साल के पतझड़ वाले वृक्ष और चिलौनी, दिलेनिया, अमूरा और सिनेमन के वृक्ष मिलते हैं। इनके अतिरिक्त शीशम, खैर, सेमल, लेंदी तथा चंदन भी खूब पैदा होते हैं। सवाना प्रकार की लम्बी घास भी इन वनों में उगती है। बांस के झाड़ तथा लताओं के कारण ये वन और भी घने हो गये हैं।

(ii) **शीतोष्ण कटिबन्धीय वन**—इनके अंतर्गत पूर्वी हिमालय में शीतोष्ण वनों के ओक, बर्च, मैपिल, आल्डर तथा लोरेल के चौड़े पत्तियों वाले वृक्ष ५,००० फीट से ६,००० फीट की ऊँचाई तक मिलते हैं। ६,००० फीट से १२,००० फीट की ऊँचाई तक शीतशीतोष्ण के सिलोफर, चीड, स्प्रूस, देवदार आदि नुकीली पत्ती वाले वृक्ष मिलते हैं।



चित्र १०२—पश्चिमी और पूर्वी हिमालय की वनस्पति

(iii) **पर्वतीय वन**—१२,००० फीट से १६,००० फीट के बीच में मिलते हैं।

इनमें सिलवर फर, बर्च और जूनीपर, भोजपत्र, रोडोडेन्ड्रन्स तथा लिचन पैदा होती है।

१६,००० फीट से प्रायः १६,००० फीट तक छोटी छोटी घास तथा सुन्दर पुष्पों के पौधे मिलते हैं।

१६,००० फीट से ऊँचाई पर केवल वर्फ जमी रहती है।

(ख) पश्चिमी हिमालय के वन

(i) **अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय वन**—समुद्रतल के धरातल से ५,००० फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। इनमें साल, ढाक, सेमल, आंवला, शीशम, गूलर, जामुन, बेर आदि अधिक पाये जाते हैं।

(ii) **शीतोष्ण कटिबन्धीय वन**—इनमें चौड़ी पत्ती तथा नुकीली पत्ती वाले वृक्ष मिश्रित रूप में मिलते हैं। इनका विस्तार ५,००० फीट से १२,००० फीट तक है। निचले भागों में वर्षा की कमी और शीत की अधिकता के कारण चीड़, देवदार, ब्लूपाइन के वृक्ष तथा एल्डर, एल्म, बर्च, पोपलर और ओक आदि वृक्ष मिलते हैं। ८,००० से अधिक ऊँचाई पर ब्लूपाइन और सिल्वर फर के वृक्ष पाये जाते हैं।

(iii) **पर्वतीय वन**—साधारणतः १२,००० फीट से १५,००० फीट की ऊँचाई तक मिलते हैं। जूनीपर, सिल्वर फर और बर्च अधिक मिलते हैं।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि हिमालय पर ऊँचाई के साथ-साथ वनस्पति की किस्म में भी अन्तर पड़ता जाता है। निचले भागों में चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों की बहुलता होती है जो साधारणतः २० से ३० फीट ऊँचे होते हैं। ये वृक्ष काफी खुले होते हैं। ऊँचे भागों में नुकीली पत्ती वाले वृक्ष ६० से अधिक फीट ऊँचे मिलते हैं। बसंत ऋतु में इन प्रदेशों में प्रिमूला और मैकोनोपिस आदि किस्मों के फूल बहुतायत से होते हैं तथा ग्रीष्म ऋतु में उत्तम घास भी पाई जाती है।

(८) ज्वार प्रदेश के वन (Tidal Forests)

इस प्रकार के वन उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ समुद्रतट पर बार-बार



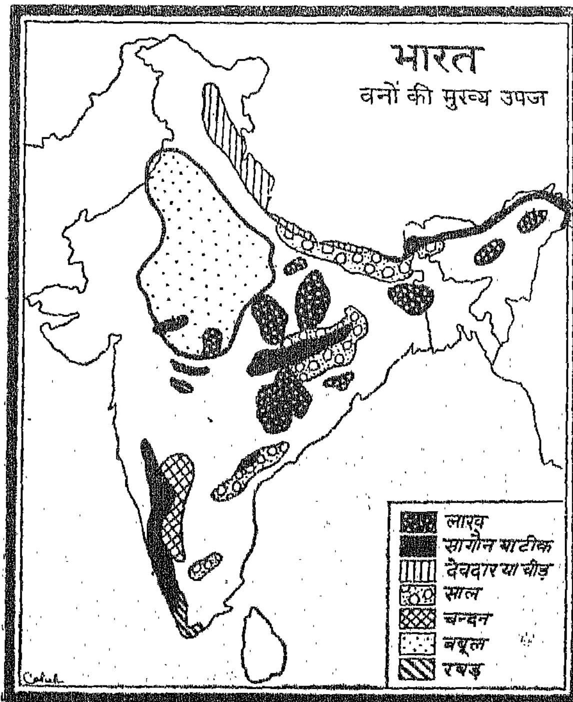
चित्र १०३—गंगा के डेल्टा में सुन्दर वन

ज्वार भाटा आने के कारण जल फैल जाता है। यहाँ की मिट्टी भी दलदलमय होती है। अस्तु, यहाँ मुख्यतः ऐसी वनस्पति पैदा होती है जिसकी जड़ें सदैव नमकीन पानी

में डूबी रहती हैं। इनसे शाखायें निकल कर चारों ओर फैल जाती हैं। ये वृक्ष सदा हरे भरे रहते हैं और संभवत: १०० फीट ऊँचे होते हैं। इनमें मुख्यत: हेरीटीरिया, सरलोप्स, रीजोफोरा, सोनेरीटा, फोनिक्स आदि किस्म की वनस्पति पाई जाती है। इस प्रकार के वन मुख्यत: गंगा के डेल्टा के सुन्दर वन, मद्रास और आंध्र के उत्तरी तट के जिलों, महानदी, कृष्णा, गोदावरी आदि नदियों के डेल्टों में मिलते हैं। सुन्दरवन में सुन्दरी नामक वृक्ष की बहुतायत होती है। यहाँ ताड़ तथा नारियल के वृक्ष और केवड़ा भी मिलते हैं।

(६) नदी तट के वन (Riverine Forests)

वर्षाऋतु में नदियों की बाढ़ का जल नदियों के दोनों ओर बहुत दूर तक फैल जाता है। इस सीमा तक वहाँ वृक्ष उग आते हैं क्योंकि बाढ़ की मिट्टी उपजाऊ होती है। इन वृक्षों में जो नदी तटों के निकट होते हैं वह अपनी लम्बी-लम्बी जड़ों द्वारा नदी के जल को खींचकर बड़े ऊँचे और मजबूत बन जाते हैं किन्तु जो वृक्ष नदी तट से दूर होते हैं वे प्राय: छोटे और कमजोर रह जाते हैं। इन वृक्षों में मुख्य बबूल, शीशम, जामुन, इमली, खैर आदि होते हैं। ऐसे वन पंजाब से लगाकर आसाम तक मिलते हैं किन्तु चूंकि नदी तट की भूमि में खेती अधिक की जाती है अत: ये वन कम घने ही होते हैं। इन्हीं से किसानों को ईंधन उपलब्ध होता है।



चित्र १०४—भारत-वनों की मुख्य उपज

भारतीय वनों से प्राप्त होने वाली वस्तुए

भारतीय वन देश के लिए अमूल्य निधी माने जाते हैं क्योंकि इनसे हमें न केवल ईंधन और अन्य कार्यों के लिए लकड़ियाँ ही मिलती हैं वरन् ये देश के उद्योग धंधों के लिए असंख्य कच्चे माल भी देते हैं। इनसे होने वाले अप्रत्यक्ष लाभ भी बहुत अधिक हैं। वनों से प्राप्त होने वाली वस्तुओं को मुख्यत: दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है :—

(१) मुख्य पदार्थ (Major Produce)

(२) गौण पदार्थ (Minor Produce)

(१)मुख्य पदार्थ (Major Produce)

भारतीय वन कई प्रकार की लकड़ियों में धनी हैं इन वनों से हमें सागवान, साल, देवदार, शीशम, चीड़, बबूल, चन्दन आदि की मजबूत और टिकाऊ लकड़ियाँ मिलती हैं। नीचे की तालिका में भारतीय वनों से प्राप्त होने वाली मुख्य प्रकार की लकड़ियों का उत्पादन और मूल्य बताया गया है :—

लकड़ियाँ	१९४९-५० मात्रा (००० घ० फी०)	१९४९-५० मूल्य (००० रु०)	१९५१-५२ मात्रा (००० घ० फी०)	१९५१-५२ मूल्य (००० रु०)	१९५४-५५ मात्रा (००० घ० फी०)	१९५४-५५ मूल्य (००० रु०)	१९५५-५६ मात्रा (००० घ० फी०)	१९५५-५६ मूल्य (००० रु०)
१. टिम्बर (कोणधारी +चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों से)	११०,९९१	१२८,०६६	९९,५७७	१४३,५४२	१०७,०५४	१५८,२८०	११९,८८७	१६३,२११
२. राउंडवुड (Round wood)	२२,८२२	१००,३९	४०,५७८	८,६३४	२४,१५०	१४२,०७	२५,४३७	२०,६२६
३. लुग्दी और दियासलाई की लकड़ी	९५	*	४६१	२५९	१२,२८	१,३८७	१,४८१	३.२८९
४. कोयले की लकड़ी (Char Coal wood)	२८,५७१	१,३९९	१९,४२६	६९५	६७,२१२	७.२१९	५५,६६१	२,००४
५. ईंधन (Fire wood)	३७२,०४९	३२,१४४	३५८,७४२	४४,४३१	३०८.३४६	३५६,९१	३२६.०५७	५५,४९८

नीचे की तालिका मे पिछले कुछ वर्षो की लकडियों का उत्पादन व मूल्य बताया गया है —

वर्ष	मात्रा (हजार वर्ग फीट में)	मात्रा (हजार रुपयों में)
१९४९-५०	५,३४,५२८	१,७१,६४८
१९५०-५१	५,५७,५८८	१९०,८०७
१९५१-५२	५,१८,७८४	१९७,६०१
१९५२-५३	४८८,३२४	१७४,८३८
१९५३-५४	४३७,२४०	१७४,५५८
१९५४-५५	५०८,००१	२१६,७८४
१९५५-५६	५२८,५०३	२४,४६,२८

भारतीय वनों के वृक्षों की सैकड़ों किस्में आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है जिनमें से कुछ यहाँ दी जाती हैं :—

(क) हिमालय वन प्रदेश की लकड़ियाँ

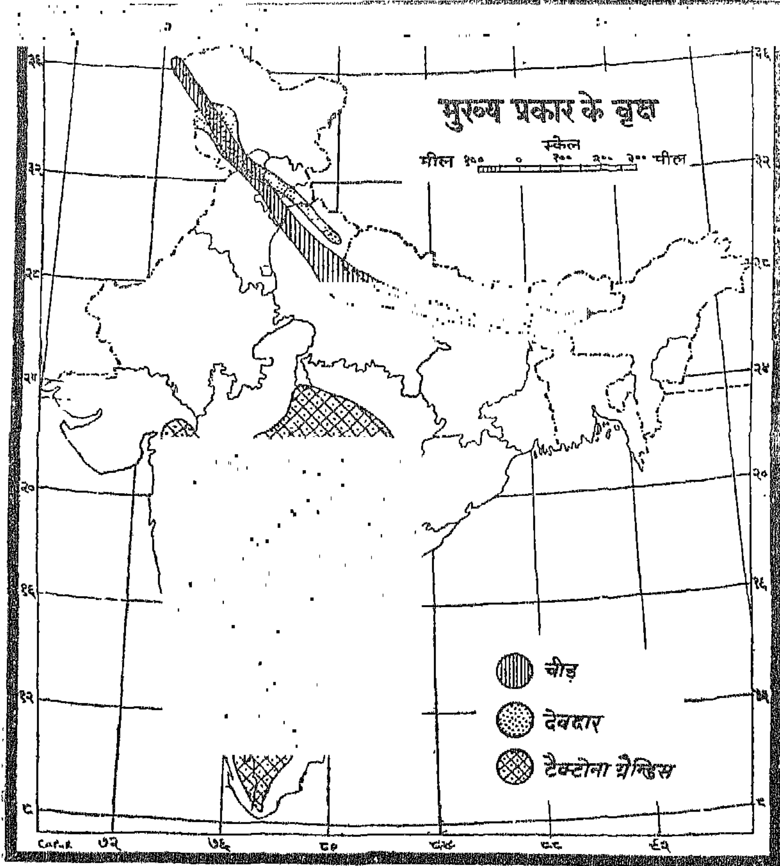
(१) **श्वेत सनोबर** (Silver fir) प्राय: ७५०० से १०,००० फीट की ऊंचाई तक पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से झेलम तक और चित्राल से नैपाल तक मिलती है। नुकीली पत्ती का यह सदा हरा भरा रहने वाला वृक्ष होता है। यह २०० फीट तक ऊँचा और २० से २५ फीट तक मोटा होता है। इसकी लकडी सफेद और नर्म होती है किंतु टिकाऊ नहीं होती। अत: इसका प्रयोग हल्के सन्दूक, पेकिंग, तख्तों, दियासलाई तथा कागज की लुब्दी अथवा फर्श में तख्ता बन्दी करने में होता है। इनकी मात्रा बहुत अधिक है किन्तु ये अधिकतर ऊंचाई पर होने से अप्राप्य हैं।

(२) **देवदार** (Deodar) का पेड़ स्वाभाविकतया ९०′ से १२०′ तक ऊँचा और ३० फीट मोटा होता है। यह सदाबहार तथा नुकीली पत्ती वाला होता है। यह हिमालय में काश्मीर और चम्बा राज्य में ५,५०० फीट से ८,००० फीट की ऊँचाई तक गढ़वाल के पश्चिम से जौनसार बावर तथा पंजाब की पहाड़ियों में पाया जाता है। इसका क्षेत्रफल २,००० वर्गमील है। इसकी लकड़ी साधारणतया कठोर, कुछ भूरी पीली और टिकाऊ होती है। यह सभी प्रकार के निर्माण कार्यों विशेषकर रेल के स्लीपरों के बनाने—में प्रयुक्त होती है क्योंकि यह टिकाऊ होती है। लकड़ी से एक प्रकार का सुगन्धित तेल भी निकाला जाता है।

(३) **चीड़** (Chir) का वृक्ष ३,००० से ६,००० फीट की ऊँचाई पर काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा नैपाल में बाहरी हिमालय के उत्तरी ढालों पर ३,००० वर्ग मील क्षेत्र में पाया जाता है। इसकी ऊँचाई ६० से १०० फीट तक होती है तथा वृक्ष नुकीली पत्तियों और सदा हराभरा रहने वाला होता है। इसकी लकड़ी का उपयोग चाय तथा साबुन की पेटियां और नाव बनाने में होता है। लकड़ी से तारपीन का तेल और बिरोजा प्राप्त किया जाता है। इसकी लकड़ी कुछ अधिक ललाई लिये हुये और कठोर होती है।

(४) **नीली पाइन** (Blue Pine) का वृक्ष ६,००० से १२,००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसके वन अधिकतर पंजाब में पाये जाते हैं। इसकी

लकड़ी साधारण कठोर और अच्छी होती है तथा रंग हल्का लाल होता है। इसका पेड़ १०० फीट से १५० फीट ऊँचा और ६ से १२ फीट मोटा है। यह साज-सामान, बढ़िया बिरोजा और तारपीन का तेल, स्लीपर आदि बनाने के काम आती है।



चित्र १०५—चीड़ एवं देवदार के वृक्षों के क्षेत्र

(५) स्प्रूस (Spruce) लकड़ी प्रायः ७,००० से १२,००० फीट की ऊँचाई तक मिलती है। इसकी लकड़ी सफेद और बहुत कोमल होती है। उत्तरी भारत में यह लकड़ी काश्मीर हिमालय में मिलती है। इसका प्रयोग मकानों की छतों और फर्श में तख्ताबंदी करने और सस्ते फर्नीचर बनाने में होता है। इसका पेड़ २०० फीट से भी अधिक ऊंचा और ३० फीट तक मोटा होता है।

(ख) मानसूनी वनों से प्राप्त होने वाली मुख्य लकड़ियाँ ये हैं :—

(१) सागौन (Teak) मद्रास, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और पश्चिमी घाट तथा उड़ीसा से आती है विशेष कर महाराष्ट्र के उत्तरी कनारा और खानदेश तथा मध्य प्रदेश

के होशंगाबाद व चांदा जिले से। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और सुन्दर होती है तथा टिकाऊ होने के कारण इससे रेलगाड़ी के डिब्बे, फर्नीचर और जहाज आदि बनाये जाते है।

(२) **साल** (Sal) के वन पंजाब के कांगड़ा से लेकर आसाम के नवगांव तक हिमालय के निचले ढालों एवं तराई के भागों में विस्तृत है। उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम, छोटा नागपुर, मध्य प्रदेश, उत्तरी मद्रास और उड़ीसा में भी ये वन फैले है। यह भूरे रंग की कठोर और टिकाऊ लकड़ी होती है किन्तु यह खुरदरी और टेढे रेशे वाली होने से चिकनी देर में होती है। इसके वन ३,००० वर्ग मील में फैले है। इसका प्रयोग रेल के डिब्बे, लकड़ी की पेटियां, तम्बू, पुल बनाने और घरेलू कामों में होता है। साल से गंधा, बिरोजा और धूप भी प्राप्त किया जाता है।

(३) **शीशम** (Sisoo) मुख्यत: उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा मद्रास के शुष्क भागों से प्राप्त होती है। कुछ सीमित परिमाण में यह बंगाल, आसाम, और मध्य प्रदेश से भी आती है। यह लकड़ी भूरे रंग की होती है अत: साधारणतया कठोर होती है। इसका उपयोग मकान, फर्श तथा फर्नीचर बनाने, सन्दूक और रेल के डिब्बे बनाने में होता है।

(४) **अर्जुन** (Arjun) लकडी सागवान से अधिक कठोर और भारी होती है यह आसानी से चीरी फाड़ी जा सकती है। अतएव इसका अधिकतर प्रयोग. बैलगाड़ी, नावें और खेती के औजार बनाने में किया जाता है। यह प्राय: सभी जगह बहुतायत से मिलती है।

(५) **हल्दू** (Haldu) साधारणतया मजबूत और कड़ी लकड़ी होती है लेकिन यह आसानी से काटी जा सकती है। इसका रंग बहुत हल्का होता है। यह अधिकतर खिलोने और कंघे बनाने तथा खुदाई करने के काम में ली जाती है। यह लकड़ी प्राय: सर्वत्र ही प्राप्त होती है।

(६) **पलास** (Palas) या ढाक के वृक्ष अधिकतर छोटा नागपुर और द० पू० राजस्थान के अधिकांश भागों में पाये जाते है इनकी पत्तियो पर लाख के कीड़े पाले जाते हैं।

(७) **कुसुम** (Kusum) की लकड़ी बहुत कठोर, भारी और मजबूत होती है। अत: इसका प्रयोग औजारों के दस्ते और पहिये आदि बनाने के काम में होता है। इस पर भी लाख के कीड़े पाले जाते है।

(८) (**आबनूस**) (Ebony) लकड़ी बहुत काले रंग की किन्तु मजबूत, कठोर और टिकाऊ होती है। यह जंगलों में बहुत पाई जाती है इसका अधिकतर प्रयोग फर्नीचर, छड़ियाँ और छतरियों के दस्ते बनाने में होता है। इस पर खुदाई का काम भी अच्छा होता है।

(९) **महुआ** (Mahua) अधिकतर छोटा नागपुर के पठार, मध्य प्रदेश तथा द० पू० राजस्थान में बहुत होता है। यह लकड़ी बहुत मजबूत होती है इसलिये इसके काटने में बड़ी कठिनाई होती है। इसका कच्चा फल पकाया जाता है और तेल निकाला जाता है। पके फल से देशी शराब बनाई जाती हैं।

(१०) **हर्र और बहेड़ा** (Myrabolans) दोनों ही मानसून वनों में बहुत

मिलती है। हर्ड दवाई व रंगाई के काम में आती है तथा बहेड़ा बहुत मजबूत होने के कारण पेटियां सामान भरने के डिब्बे आदि बनाने के काम में आती है।

(११) **लारेल** (Laurel) लकड़ी बहुत भारी कड़ी, और टिकाऊ होती है। इसलिये यह अधिकतर गाड़ियाँ, खम्बे, खेती के औजार, रेल के डिब्बों की फर्श और स्लीपरों आदि के बनाने के काम में आती है। नुकीले वनों में ये बहुत पाई जाती है।

(१२) **अंजन** (Anjan) लकड़ी बहुत ही कठोर, भारी और मजबूत होती है इसका प्रयोग गाड़ियों के पहिये, हल और मकानों के फर्श बनाने में होता है। यह बहुत कम पाई जाती है।

(१३) **कंजू** (Kanju) लकड़ी न तो इतनी मजबूत और टिकाऊ ही होती है जितनी सागवान। किन्तु उत्तरी भारत में विशेष कर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बहुत मिलती है। यह अधिकतर सस्ता फर्नीचर, पेटियां, दियासलाई की डिब्बयाँ और स्लेटों के चौखटे बनाने के काम में आती है।

(१४) **जारूल** (Jarul) **और सिड** (Sidhu) लकड़ियां उत्तरी पूर्वी भारत विशेष कर बंगाल और बिहार में बहुत होती है। यह काफी मजबूत और टिकाऊ होती है। इनका प्रयोग रेल के डिब्बे, मकान, नावें और खम्भे बनाने में होता है।

(१५) **शहतूत** (Mulberry) की लकड़ी बहुत ही मुलायम और टिकाऊ होती है। इसलिये इससे खेल का समान जैसे हाकी, टेनिस रेकेट, क्रीकेट के बल्ले आदि बहुत बनाये जाते हैं।

(ग) सदा हरे भरे रहने वाले जंगलों में भी कई प्रकार की लड़कियाँ भी पाई जाती है। जिनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) **चपलास** (Chaplash)—लकड़ी साधारणतया मजबूत और टिकाऊ होती है। यह अधिकतर उत्तरी पूर्वी भारत में होती है। इससे फर्नीचर, जहाज और सामान भरने की पेटियाँ आदि बनाई जाती है। इस लकड़ी की एक किस्म एनी (Aine) है जो अधिकतर दक्षिणी भारत में मिलती है। यह सागवान की भाँति मजबूत होती है।

(२) **तून** (Toon)—यद्यपि यह लकड़ी अधिक मजबूत नहीं होती लेकिन काफी टिकाऊ होती है। यह अधिकतर हिमालय पर्वत के निचले ढालों पर मिलती है। फर्नीचर, घरेलू सामान, चाय की पेटियाँ, खिलौने आदि बनाने के काम ये आती है।

(३) **रोजवुड** (Rose wood)—फर्नीचर, पेटियाँ, पहिये, डिब्बे और फर्श बनाने के काम में आने वाली लकड़ियों में सबसे अच्छी मानी जाती है। इस प्रकार की लकड़ियाँ पश्चिमी घाट, महाराष्ट्र, मद्रास और केरल में मिलती है।

(४) **गुरजन** (Gurjan)—लकड़ी बहुत मजबूत होती हैं लेकिन अधिक टिकाऊ नहीं होती। यह अधिकतर बंगाल, आसाम और अंडमान द्वीप में मिलती है। इसका प्रयोग रेल के स्लीपर बनाने और अन्य साधारण कार्यों में होता है।

(५) **तलसुर** (Telsur)—यह लकड़ी बहुत मजबूत कड़ी और टिकाऊ होती है। निकृष्ट से निकृष्ट जलवायु में भी यह जल्दी नष्ट नहीं होती इसीलिये इसका प्रयोग अधिकतर पुल बनाने, जहाज, नावों के मस्तूल तथा गाड़ियां बनाने के काम में होता है। यह बंगाल, महाराष्ट्र, केरल और अंडमान द्वीप में पाई जाती है।

(६) नाहर (Nahar) लकड़ी यद्यपि बहुत मजबूत और कठोर होती है किन्तु इसको काटने में बड़ी कठिनाई होती है। आसाम और पश्चिमी समुद्र तट पर बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है। इससे भी लट्ठे, नावें और रेल के स्लीपर बनाये जाते हैं।

(घ) शुष्क वनों से प्राप्त होने वाली लकड़ियाँ

शुष्क वनों से निम्न प्रकार की लकड़ियाँ मिलती हैं :—

(१) बबूल (Acacia)

बबूल या कीकर भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में उपजता है। यह कहीं कांटेदार झाड़ियों के रूप में तो कहीं वृक्षों के रूप में उगता है।

बबूल वृक्ष की जाति बड़ी विशाल है। इसे अंग्रेजी में अकेसिया (Acacia) कहते हैं। इसके अन्तर्गत ४३० किस्म के वृक्ष होते हैं जिनमें से भारत में केवल २२ किस्म के वृक्ष पाये जाते हैं। ये अधिकांश मैदानों में होते हैं। दो किस्में ५,००० फीट की ऊँचाई तक होती है। भारतीय बबूल जाति की प्रत्येक किस्म का कुछ न कुछ व्यापारिक महत्व है। परन्तु इसमें तीन किस्में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ये हैं : (१) बबूल (Acacia Arabica)। (२) कत्था (Acacia Catechu) और (३) कुमटा (Acacia Senegal)। इन वृक्षों की छाल और गोंद बड़े काम की होती है।

सूखी से लेकर हल्की नमी वाली जलवायु तक में यह अच्छी तरह उपजता है। इसी कारण यह समुद्र तट के निकट नहीं होता। बंगाल, बिहार और उत्तर-प्रदेश के तराई वाले क्षेत्रों में भी यह नहीं उपजता। इसके विशेष क्षेत्र उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश और महाराष्ट्र है। पंजाब, बंगाल और मद्रास क्षेत्र इसके अनुकूल न होने पर भी ये वहाँ उपजता है।

बबूल की अनेक किस्में होती है पर इनमें तीन अत्यन्त प्रसिद्ध हैं :—

(१) **तेलिया बबूल**—इसे गोड़ी और तेली भी कहते हैं। यही साधारणतया: सर्वत्र दिखाई देता है। यह एक साधारण आकार का वृक्ष होता है जिसका छोटा सा तना और मुलायम पत्तियाँ होती है।

(२) **कौडिया बबूल**—इसका तना और भी छोटा और छाल अधिक खुरदरी होती है। यह अधिकांशतः बरार और खानदेश में उपजता है। इसकी लकड़ी जलाने के काम आती है।

(३) **रामकांटा**—इसकी डालियाँ ब्रुश की तरह फैली होती है। यह पंजाब, सिन्ध, राजस्थान और दक्षिण में उगता है। इसका नाम रामकांटा या रामकांटी होने के कारण बरार में लोग इसे जलाने के काम नहीं लाते।

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बबूल का आकार भी भिन्न-भिन्न होता है। कहीं-कहीं यह ५०-६० फीट तक ऊँचा और इसके तने की मोटाई ५ से १० फीट तक होती है। पंजाब में इसकी मोटाई १२ वर्षों में २॥ फीट तक होती है परन्तु हैदराबाद सिन्ध में यह १५ वर्षों में भी केवल १॥ फीट ही होता है। उपजने के बाद बबूल के छोटे पौधों को प्रचुर प्रकाश, नमी, पोली मिट्टी और घास पात से साफ भूमि की आवश्यकता होती है। अनुकूल वातावरण में पौधे एक दो वर्ष में ५-६ फीट तक ऊँचे

हो जाते हैं। बरार में १० वर्ष के पश्चात इनकी छटाई करने की आवश्यकता होती है।

बबूल को दो प्रकार के कीड़ों से हानि पहुँचती है। इनमें से एक तो जड़ को खोखला कर देता है और दूसरा छाल को नष्ट कर देता है।

बबूल के वृक्ष की छाल सबसे महत्वपूर्ण वस्तु होती है। भारत में इसे चमड़ा कमाने के काम में लाया जाता है। पंजाब से बंगाल तक के चमड़ा कमाने वाले कारखाने इसका उपयोग करते हैं। कानपुर के कारखानों में इसकी सबसे अधिक खपत होती है।

बबूल की छाल से कमाया हुआ चमड़ा मजबूत और टिकाऊ होता है परन्तु वह सख्त और गहरे रंग का होता है। इसलिये बबूल की छाल भारी चमड़े के लिये तो अच्छी सिद्ध होती है परन्तु मुलायम चमड़ों के लिये उपर्युक्त नहीं होती।

बबूल की छाल में खांचा कर देने से जो रस बहता है वही जमकर गोंद बन जाता है। यह रस मार्च से मई तक विशेषत: निकलता है। इसका औसत कुछ छटांक ही होता है परन्तु किसी-किसी पेड़ से एक सेर तक गोंद निकल जाता है। पेड़ के पुराने होते जाने पर गोंद भी कम निकलने लगता है। गोंद का रंग हल्के पीले से लेकर एक ओर भूरा तक और दूसरी ओर एकदम काला तक होता है। पानी में यह घुल जाता है। काले रंग के गोंद में टेनीन होती है और वह पानी में कम घुलता है।

अच्छी किस्म का बबूल का गोंद कपड़े की छपाई और रंगाई में काम आता है। कागज बनाने में भी यह प्रयुक्त होता है। घी में भूनकर उसे खाया जाता है परन्तु अंग्रेजी ढंग की मिठाइयाँ बनाने के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं होता है। देशी दवाइयों में अनेक प्रकार से यह काम में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त दियासलाइयां, स्याही, रंग और रंगलेप बनाने के लिये यह बड़े काम का प्रमाणित हुआ है।

इस समय देश में मुख्यत: तीन प्रकार के गोंद का व्यापार होता है :—

(१) **शुद्ध अरबी गोंद**—यह अधिकांश में अरब और अफ्रीका से आता है।

(२) **पूर्वी भारतीय गोंद**—यह भी अदन और लाल सागर के अन्य बन्दरगाहों से आता है। महाराष्ट्र में इसे चुन कर और साफ करके पैक किया जाता है और यूरोप तथा अमेरिका को निर्यात कर दिया जाता है।

(३) **शुद्ध भारतीय गोंद**—यह अधिकांश में भारत में ही निकलता है और इसमें बबूल तथा अन्य पेड़ों के गोंद मिले होते हैं।

बबूल की लकड़ी मजबूत और चीचड़ होती है। सूखने पर इसका भार ५१ पौंड प्रति घनफीट होता है। सागौन से यह दुगनी कठोर होती है। इसके भीतरी भाग में जल्दी ही घुन नहीं लगता। परन्तु बाहरी भाग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। देहातों में गाड़ियां और खेती के औजार बनाने में यह बहुत प्रयुक्त होती है। तेल और गन्ना पेरने के कोल्हू, कुएं से पानी निकालने के रेंहट, तम्बुओं के खूंटे, नावों के डांड आदि भी इससे बनाये जाते है। हथोड़ों के बेंट भी इसके अच्छे बनते है।

बबूल से कुछ अन्य कार्य भी लिये जाते है। छाल, पत्तियों और सीगारियों को पका कर सूती तथा रेशमी कपड़ा रंगा जाता है। कुछ अन्य रासायनिक पदार्थों को इनमें मिलाकर काले, कत्थई अथवा खाकी रंग तैयार हो जाते है। इसके कांटे मछली

मारने के काम आते हैं और गत महायुद्ध में आलपीनों का अभाव हो जाने पर इन कांटों का उनके स्थान पर प्रयोग किया गया था। बबूल की छांह से खेती को हानि नहीं पहुँचती है। अतः इसे खेतों के निकट उगाने में सुविधा रहती है।

(२) कत्था

कत्था खैर वृक्ष की भीतरी कठोर लकड़ी से निकाला जाता है। खैर का वृक्ष अधिक बड़ा नहीं होता। उपयुक्त धरती आदि प्राप्त हो जाने पर इसके गोल तने का घेरा ५ फीट तक और ऊँचाई २० फीट तक हो जाती है। सामान्यतः इसके तने का घेरा २–३ फुट और ऊँचाई ८–१० फीट होती है। इसकी गहरी भूरी कत्थई छाल लगभग १/२ इंच मोटी होती है। यह लम्बी पट्टियों के रूप में उतरा करती है।

खैर का वृक्ष सिंधु नदी से लेकर आसाम तक और नीचे समस्त भारतीय प्रायद्वीप में पाया जाता है। शुष्क भू-भागों में यह वृक्ष बहुतायत से होता है। ब्रह्मा से निचले पहाड़ी जंगलों में भी यह पर्याप्त संख्या में पाया जाता है।

खैर की तीन प्रमुख किस्में हैं। इनमें से एक मुख्यतः पंजाब, गढ़वाल, कुमायूँ और बिहार, उत्तरी कन्नड़, गंजाम में पायी जाती है। उत्तरी भारत में खैर की इसी किस्म से कत्था निकाला जाता है।

दूसरी किस्म का खैर अधिकतर सिक्कम की तराई, आसाम, ब्रह्मा और किसी हद तक मैसूर और नीलगिरि की पहाड़ियों में पाया जाता है और तीसरी किस्म भारतीय प्रायद्वीप और ब्रह्मा के ऊपरी भाग में अधिक पैदा होती है। दक्षिणी भारत में इसी तीसरी प्रकार के खैर से कच तैयार किया जाता है।

हमारे देश में प्रायः दो प्रकार का कत्था देखने में आता है। इनमें से एक का रंग गहरा होता है और यह बाजार में छोटे बड़े टुकड़ों अथवा वर्गाकार खण्डों के रूप में बिकता है। इस को प्रायः 'कत्था' कह कर पुकारा जाता है। दूसरे प्रकार का कत्था अपेक्षाकृत गहरे रंग का होता है। और प्रायः टुकड़ों, छोटे घनाकार खण्डों या सिल्लियों के रूप में दिखाई देता है। इसका नाम 'कच' है। कच केवल उद्योगों में काम आता है। इसका उपयोग रंगाई के लिये भी किया जाता है और संरक्षक तत्व (Preserving Agent) के रूप में भी। इसमें टैनीन की मात्रा पर्याप्त होती है।

कत्था खैर वृक्ष के तने की भीतरी कठोर लकड़ी को पानी में उबाल कर निकाला जाता है। वृक्षों से प्राप्त होने वाली कत्थे और कच की मात्रा उनकी आयु और गहराई पर निर्भर करती है। अतः कत्था निकालने के लिये प्रायः वे ही वृक्ष अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं जिनकी आयु २०–३० वर्ष की हो चुकी हो और जिनके तने की मोटाई लगभग २ फुट हो। छोटे वृक्षों के तने २-३ फुट लम्बे टुकड़ों के रूप में काट लिये जाते हैं। फिर छाल और उसके नीचे की कच्ची लकड़ी छील कर अलग कर देते हैं। इसका प्रयोग ईंधन के तौर पर होता है। इसके भीतर से निकलने वाली पक्की और लाल रंग की लकड़ी को छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त कर लिया जाता है। इस काम के लिये कुल्हाड़ी या किसी तेज धार वाले औजार का प्रयोग ठीक रहता है।

भारत में खैर से कत्था निकालने का कार्य अत्यन्त प्राचीन काल से होता रहा है। देश के कुछ भागों, उदाहरणार्थ उड़ीसा और गुजरात में तो कुछ जाति विशेष के लोग पीढ़ियों से यही कार्य कर रहे हैं। कत्थे का अधिकांश उत्पादन अब भी

ग्रामीणों के छोटे-छोटे दलों द्वारा और लगभग पुराने तरीकों से ही किया जा रहा है।

कत्था पान का अनिवार्य अंग है परन्तु इसके कुछ अन्य उपयोग भी है। अनेक रोगों उदाहरणार्थ गला, मुंह, मसूढ़ों के ढीले पढ़ जाने और खांसी तथा दस्तों आदि में इसका प्रयोग दवाई के तौर पर भी किया जाता है। फोड़े पर भी इसे लगाते है। काला कत्था, टिंचर और चूर्ण के रूप में बरता जाता है।

कच्च का प्रयोग मुख्यत: रुई और रेशम की रंगाई और कपड़ों की छपाई के लिये किया जाता है। साधारण परिमाण में इसका प्रयोग मछली पकड़ने के जालों, नावों के पालों और डाक के थैलों आदि को रंगने के लिये किया जाता है। कच दूसरे रंगों के साथ मिलाकर भी इस्तेमाल किया जाता है। कच से रंगे जाने वाले पालों का रंग पक्का होता है और समुद्री पानी का भी उन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। कच से रंगे कपड़े पर फफूंद भी कम लगती है। पटसन को यदि कच और पोटेशियम बाइक्रोमेट में भिगो लिया जाय तो वह आसानी से सड़ता नहीं। कच्च का उपयोग कागज, लुग्दी और कागज की रंगाई के लिये किया जा सकता है। नवीन अन्वेषणों से यह सिद्ध हुआ है कि कत्थे में से निकली गयी ऐकाकौटेचीन मूंगफली के तेल को बिगड़ने से रोकने के लिये काम में लायी जा सकती है।

खैर की लकड़ी भी बहुत अच्छी और कीमती होती है। यह मजबूत भी होती है और टिकाऊ भी। इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि पुराने मन्दरों में यह लकड़ी शताब्दियों तक टिकी रही है। इसमें दीमक नहीं लगती। पुरानी अथवा सूखी हुई खैर की लकड़ी को काटना अपेक्षाकृत कठिन होता है। इस लकड़ी पर पालिश बहुत अच्छी तरह हो जाती है। मकानों के खम्भों, तेल अथवा गन्ने का रस निकालने वाले यन्त्रों, हलों और नौकाओं आदि के निर्माण के लिये यह लकड़ी विशेषत: उपयुक्त सिद्ध होती है। औजारों के दस्ते भी इस लकड़ी से बहुत अच्छे बनाये जा सकते हैं। इसका प्रयोग ईंधन के रूप में भी किया जाता है। इस लकड़ी से प्राप्त होने वाला कोयला बहुत अच्छी किस्म का होता है। यह लकड़ी बंगाल, आसाम और दक्कन में बहुतायत से पाई जाती है।

भारत में कत्थे का उत्पादन अधिकतर छोटे पैमाने पर ही किया जाता है। परन्तु बरेली में इसका एक बहुत बड़ा कारखाना भी है। यहां कत्था और कच्च बहुत बड़े पैमाने पर तैयार किये जाते हैं। यहां उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं में मशीनों का प्रयोग होता है। गवालियर में प्रतिवर्ष लगभग ४०० टन कत्था तैयार होता है। कत्था उत्पादन के अन्य प्रमुख केन्द्र उड़ीसा, बरार और गुजरात है।

(३) रीठा

रीठे की कांटेदार बेल होती है जो पास की झाड़ियों आदि पर चढ़ती है। यह भारत के उन जंगलों में होती है जो उष्ण कटिबंध में पड़ते हैं। यह विशेष रूप से दक्षिण में होता है। रीठे की एक बौंडी में ६ से लेकर १० रीठे तक होते है। जब रीठा सूख जाता है तो इसके ऊपरी भाग का रंग बादामी हो जाता है और कुछ सिकुड़ने पड़ जाती है। इसका उपयोग बाल धोने में किया जाता है।

(४) कुमरा

बबूल वंश का तीसरा महत्वपूर्ण वृक्ष कुमरा है। इसका पेड़ कांटेदार होता है,

लेकिन ऊँचाई में १० फीट से लेकर १५ फीट तक ही होता है। पेड़ की गोटाई भी १ फुट से लेकर २ फुट तक ही होती है। इसकी छाल नरम तथा रंग में पीली सी होती है। इसके सफेद फूलों में खुशबू भी होती है।

कुमरा गुजरात के शुष्क पहाड़ी भागों, दक्षिणी पूर्वी पंजाब, अरावली की उत्तरी पहाड़ियों तथा राजस्थान के कुछ भागों में उगता है। सूडान और मध्य-अफ्रीका में यह बहुतायत से पाया जाता है। यह वृक्ष विपरीत जलवायु में भी पैदा हो सकता है।

कुमरा से ही असली गोंद निकलता है। भारत में अन्य जातियों के बबूलों के गोंदों को इसके गोंद में मिलाया जाता है। इस गोंद को अधिकतर दवाओं के काम में लाया जाता है।

बकरियां और ऊँट उसकी पत्तियां बड़े ही आनन्द से खाते है। इसके तने की लकड़ी से बुनकरों के शटल बनाये जाते है। इसकी लकड़ी जलाने के लिये भी बड़ी अच्छी होती है।

(५) कीकर

सफेद कीकर का वृक्ष ८-१० फीट ऊँचा तथा ३ इंच मोटा हुआ करता है। यह पेड़ शुष्क प्रदेशों में खूब होता है। भारत में यह पंजाब के मैदानों में तथा दक्षिणी प्रायद्वीप के शुष्क इलाकों में पाया जाता है। इसका एक इंची कांटा सीधा, सफेद रंग का और बड़ा मजबूत होता है। इसकी छाल ऊपर से बादामी और सफेद रंग की होती है। अन्दर से इसका रंग हल्का लाल होता है।

इसकी लकड़ी भारी तथा टेढ़ी-मेढ़ी होती है। लकड़ी का ऊपरी भाग पीले रंग से लेकर सफेद रंग तक का होता है और भीतरी भाग ईंट की तरह लाल। यह लकड़ी बहुत अधिक नहीं चलती है क्योंकि इसके ऊपरी भाग में घुन जल्दी लग जाता है। जब यह लकड़ी सूख जाती है तो इसे चीरना बहुत कठिन होता है। लकड़ी का भीतरी भाग या पक्की लकड़ी बड़ी मजबूत तथा सख्त होती है। यह सामान्यत: खेती के औजार बनाने में, तेल पेरने के कोल्हुओं में, गाड़ियां बनाने तथा गाड़ी के पहिये बनाने में अधिक काम आती है।

इसकी छाल का चमड़ा कमाने में प्रयोग किया जाता है। देहरादून की सफेद कीकर की छाल में ६ प्रतिशत और मैसूर के पेड़ की छाल में २१ प्रतिशत टैनीन होता है। इसे पीटने से एक प्रकार का रेशा निकलता है जिसे मछली पकड़ने का जाल बनाने और घटिया किस्म के रस्से बनाने के काम में लाया जाता है। कहते हैं कि चीनी और ताड़ी से शराब बनाते समय सफाई के लिये इसे प्रयोग किया जाता है। इसलिये इसे 'शराब की कीकर' भी कहा जाता है।

इसका गोंद देशी दवाइयों में प्रयोग किया जाता है। सींगरियां तथा बीजों को खाया जाता है और अन्न के अकाल में सफेद कीकर की छाल पीस कर आटे में मिलायी जाती है।

(२) गौण उपजें (Minor Products)

अन्य उपयोगी वस्तुयें जो वनों से प्राप्त होती हैं वे बबूल, लाख, तेल, कई प्रकार के रेशे, गोंद, राल तथा अन्य वस्तुयें हैं जो प्राय: भारत के सभी भागों में

उपलब्ध होती है। नीचे की तालिका में वनों से प्राप्त होने वाली गौण उपज का ब्यौरा दिया गया है :—

वर्ष	मूल्य (हजार रुपयों में)
१९४९-५०	५६,७९१
१९५०-५१	६९,२४२
१९५१-५२	७०,५८८
१९५२-५३	५९,४०१
१९५३-५४	६३,०७७
१९५४-५५	७७,३८७
१९५५-५६	८०,१७४

नीचे की तालिका में मुख्य गौण उपजों का उत्पादन मूल्य बताया गया है :—

गौण उपज	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५४-५५	१९५५-५६
		(लाख रुपयों में)					
बांस और बेंत	००·३	१५२·०	१२४·९	८८·४	९४·९	१३२·३	१३७·७
रेशे आदि	०·४५	०·५२	०·४२	०·४९	१·२८	०·५२	०·४३
गोंद और बेरजा	१३३·७	४१·९	७४·८	७६·७	७८·९	९१·२	१०१·४
अन्य गौण उपजें	४३७·३	४९८·०	५०५·८	४२८·३	४५५·५	५४५·६	५६२·१
योग	५६७·९	६९२·४	७०२·८	५९४·०	६३०·७	७७९.७	८०१ ७

(१) लाख (Shellac)—

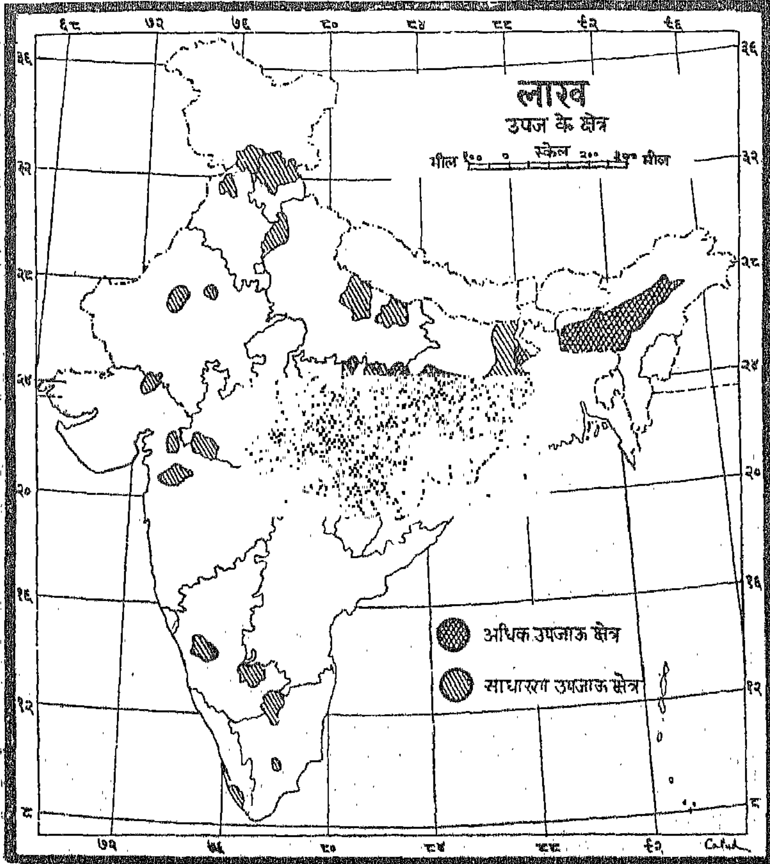
भारत ही संसार में एक ऐसा देश है जो लाख उत्पन्न करता है। लैसीफर लक्का (Laccifer Lacca) नामक खटमल की जाति के कीड़े कुछ पेड़ों के रस को चूस कर लाख बनाते हैं। ये कीड़े अधिकतर पलास, कुसुम, बरगद, सिरस, खैर, घोंट, सीसू, क्रोटन, पीपल, बबूल, गूलर और फलास आदि की नरम डालों के रस चूस कर एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ निकालते हैं इसे ही लाख कहते हैं। ये वृक्ष विशेषत: बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, मध्य भारत व उत्तर प्रदेश में पैदा होते हैं। लाख का कीड़ा प्रधानत: समुद्रतल से १,००० फीट ऊँचे भागों में जहाँ साधारण तापक्रम और ६०" से कम वर्षा होती है। बहुत से स्थानों पर तो लाख पेड़ों पर जंगली अवस्था में पाई जाती है। लेकिन जिन स्थानों में लाख का कीड़ा बिना पाले हुये अवस्था में मिलता है वही स्थान लाख के लिये अनुकूल समझा जाता है। अधिकतर लाख को उत्पन्न करना पड़ता है। लाख पैदा करने के लिये ऊपर के पेड़ों में छोटी-छोटी लकड़ियाँ बांध दी जाती हैं जिनमें लाख के कीड़ों के बीज होते हैं। ये कीड़े धीरे-धीरे सारे पेड़ पर फैल जाते हैं। जून, जुलाई, अक्तूबर और नवम्बर के महीनों में नये पेड़ों पर लाख का कीड़ा फैलाया जाता है। यह उन पेड़ों का रस चूस कर लाख बनाना आरम्भ कर देता है। फसल छ: महीने के पश्चात् इकट्ठी कर ली जाती है। इस लाख को पीस कर चलनियों से छाना जाता है उस लाख को कई बार धोकर शुद्ध लाख (Shellac), दाना लाख (Seed Lack) या बटन लाख (Button Lac) प्राप्त की जाती है।

भारत में लाख उत्पादन के महत्वपूर्ण क्षेत्र निम्नलिखित हैं :—

(i) **बिहार**—छोटा नागपुर डिवीजन (जहाँ भारत में उत्पादित कुल लाख के ५०% भाग से अधिक का उत्पादन होता है); संथाल परगने और गया के जिले।

(ii) **मध्य प्रदेश**—बिलासपुर, भंडारा, रायपुर, बालाघाट, छिंदवाड़ा, जबलपुर, सरगूजा, मांडला, रायगढ़, उमरिया, शेहडोल और होशंगाबाद जिले।

(iii) **पश्चिमी बंगाल**—मुर्शिदाबाद, मालदा और बांकुड़ा के जिले।



चित्र १०६—लाख की उपज के क्षेत्र

(iv) **आसाम**—खासी और जैंतिया की पहाड़ियाँ, गारो की पहाड़ियाँ, नौगाँव, कामरूप और शिवसागर के वन्य जिले।

(v) **उड़ीसा**—सम्बलपुर, मयूरभंज, बोलंगिर, ढेंकेनल और क्योंझार जिले।

(vi) गुजरात—पंच महल और बड़ौदा जिले ।
(vii) उत्तर प्रदेश—मिरजापुर और डुढ़ी ।

लाख की फसलें (Lac Crops)—

एक वर्ष में लाख की चार फसलें प्राप्त हो जाती हैं । ये फसलें वर्ष के जिन महीनों में काटी जाती हैं उन्हीं के अनुसार इनको भी सम्बोधित किया जाता है । **'रंगीनी'** अंशु (Strain) बेर और पलास के वृक्षों से प्राप्त होने वाली फसलों को **'बैसाखी'** और **'कतकी'** ; 'कुसुम' वृक्षों पर 'कुसुम' अंशु से प्राप्त होने वाली फसलें **'अगहनी'** और **'जेठवी'** के नाम से पुकारी जाती हैं ।

इन सबमें 'बैसाखी' फसल सबसे बड़ी होती है । व्यवसायिक दृष्टि से इसी का महत्व अधिक होता है । भारत के कुल उत्पादन में 'रंगीनी' फसलों—अर्थात् 'बैसाखी' और 'कतकी' का भाग क्रमश: ६२ और २३%है तथा 'कुसुम' फसलों—'जेठवी' और अगहनी–का भाग १५% होता है ।

'बैसाखी' फसल का ६३% भाग बिहार ; १६% मध्य प्रदेश और शेष अन्य राज्यों से प्राप्त होता है ।

'कतकी' फसल के कुल उत्पादन में बिहार और मध्य प्रदेश का भाग क्रमश: ४२ और ३४% होता है । शेष अन्य राज्यों से प्राप्त होता है ।

'जेठवी' फसल का ७०% बिहार; १८% मध्य प्रदेश और शेष अन्य राज्यों से मिलता है ।

'अगहनी' फसल का ७५% भाग बिहार और १५% भाग मध्य प्रदेश तथा शेष अन्य राज्यों से मिलता है ।

पिछले २५ वर्षों में लाख का वार्षिक उत्पादन भिन्न-भिन्न रहा है । औसत वार्षिक उत्पादन ११,४७,००० मन रहा है । निम्न तालिका में प्रमुख लाख-उत्पादक राज्यों की चारों फसलों में से प्रत्येक का औसत उत्पादन बताया गया है :—

लाख उत्पादन (मनों में) (१९३०–५५)

राज्य	बैसाखी	जेठवी	कतकी	कुसुम	योग
बिहार	४५६,०००	३२,०००	११२,०००	९३,०००	६,९३,०००
मध्यप्रदेश	१८१,०००	८,०००	८९,०००	१८,०००	२,९६,०००
पश्चिमी बंगाल	४८,०००	—	१५,०००	—	६३,०००
आसाम	—	—	२४,०००	—	२४,०००
अन्य राज्य	२९,०००	५,०००	२५,०००	१२,०००	७१,०००
योग	७,१४,०००	४५,०००	२,६५,०००	१,२३,०००	११,४७,०००

पिछले तीन सालों में लाख का उत्पादन इस प्रकार रहा है : १९५५-५६ में १२.४८ लाख मन ; १९५६-५७ में १३.१५ लाख मन और १९५७-५८ में १२.४० लाख मन ।

लाख के उत्पादन का अधिकांश भाग निर्यात कर दिया जाता है—लगभग ९५ प्रतिशत भाग । यह निर्यात मुख्यत: अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, हांगकांग, इटली,

फ्रांस, जापान, चीन, स्वीडेन, ब्राजील, अर्जेनटाइना और रूस को होता है। भारत विदेशों से—विशेषत: थाइलैंड, और मलाया से—लाख का आयात भी करता है उससे चपड़ा या बटन लाख बनाकर पुन: निर्यात कर देता है। भारत से लाख का निर्यात मुख्यत: दाना लाख, और चपड़े के रूप में होता है किंतु कच्ची लाख, कीरी लाख और रद्दी लाख का भी निर्यात किया जाता है।

विभिन्न प्रकार के लाख का निर्यात निम्न तालिका में बताया गया है :—

अवधि	चपड़ा और बटन लाख	दाना लाख ('००० हंडरवेट में)	कच्ची लाख	अन्य	योग मात्रा
१९३१-३६	३८१	११८	७	३१	५३७
१९३६-४१	४४२	२२५	२	३०	६९९
१९४१-४६	३१४	१५	—	१०	४३९
१९४६-५१	३५८	१६४	१	४२	५६५
१९५१-५६	३४९	१९५	४	५५	६०३

भारत में लाख का उपयोग लेपन उद्योग (Coating industry) में बहुत अधिक होता है। इस क्षेत्र में यह प्राय: सजावट अथवा सुरक्षित रखने के लिए विविध प्रकार की वार्निशों और सुनहरी वार्निशों आदि पदार्थों के रूप में प्रयोग किया जाता है। जिन उद्योगों में लाख का प्रयोग अधिक होता है इनमें से कुछ मुख्य ये हैं :— चमकदार कागज, दवाइयाँ, छापने की स्याहीयाँ, जलरीक स्याहियाँ, नाखूनों पर लगाने का पालिश, डेंटल-प्लेट ; आतिशबाजी और युद्ध-सामग्री, फोटो अंकित करना, चूड़ियाँ, जवाहरात की जड़ाई, बरतनों आदि पर लेप करना, चिकनाई रोक कागज, शीशे के लिए लेप, मोम की रंगीन पेंसिलें बनाना, ऐनकों के फ्रेम, ग्रामोफोन–रेकार्ड, चपड़ी, मोमजामा, बिजली निरोधक कपड़ा, मुहर लगाने का चपड़ा, माइकेनाइट उद्योग आदि।

(२) चमड़ा कमाने के पदार्थ (Tanning materials)—

भारतीय वनों में ऐसे बहुत से वृक्ष हैं जिनकी छाल या फल चमड़ा कमाने के काम आते हैं। हर्ड, बहेड़ा और आंवला इनमें मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त आंवल, टीमरू, बंबूल, तुरवद (Turwad), मैंग्रोव (Mangrove) कच्छ यथा (Gambier) वृक्षों की छाल, चमड़ा कमाने के लिये विशेष उपयोगी है।

(३) वैटल—

यह वृक्ष पहले दक्षिणी आस्ट्रेलिया तथा तस्मानिया में होता था। भारत में १८४० में इसे लगाया गया था। इस समय यहां ईंधन की कमी थी, उसी की पूर्ति के लिये इसे लगाया गया था। यह ५,००० से लेकर ७,००० फीट की ऊँचाई वाले स्थानों में ही उगता है जहां कि सारे साल में कम से कम ६०" वर्षा अवश्य हो। यह नीलगिरी पर्वत पर तथा केरल में पैदा होता है। इसकी छाल में ३५ प्रतिशत टैनीन होता है। इसमें चमड़ा कमाने के वे सब गुण विद्यमान हैं जो आयात की हुई छाल में होते हैं।

(४) कागज की लुब्दी (Paper pulp)—

कागज बनाने के लिये प्रयोग की जाने वाली लुब्दी भिन्न-भिन्न प्रकार की

नरम लकड़ियों (स्प्रूस, चीड़ आदि), घासों—सबाई (Sabai), भावर (Bhabbar), बैब (Baib) और हाथी घास (Elephant Grass) तथा अन्य वन पदार्थों से तैयार की जाती है। हाथी घास विशेष कर बंगाल, आसाम और उत्तर प्रदेश में, और अन्य उपरोक्त घास छोटा नागपुर, उड़ीसा, नैपाल, उत्तर-प्रदेश और तराई में मिलती है।

(५) दियासलाई की लकड़ी—

दियासलाई बनाने के लिये सेमल, मुरकत, धूप, पपीता, आम, सुन्दरी, सलाई आदि वृक्षों की लकड़ी काम में ली जाती है। ये वृक्ष उत्तर भारत के वनों में बहुत पाये जाते हैं।

(६) गोंद की राल (Gum resin)—

यह उन वृक्षों से प्राप्त होती है जो सभी शुष्क उष्ण-कटिबन्धीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसका वृक्ष बिहार, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, आसाम आदि में खूब होता है।

(७) घासें (Grasses)—

भारत के कई भागों में सुगन्धित घासें पाई जाती हैं। इनसे दवाइयों के काम का तेल प्राप्त किया जाता है।

(क) **रोशा तेल की घास** (Rosha Oil Grass)—महाराष्ट्र दक्षिणी भारत *और मध्य प्रदेश के शुष्क भागों व गर्म प्रदेशीय भागों में बड़े महत्व की होती है।* इससे खुशबूदार तेल (Palm-Rosha oil) बनाया जाता है।

(ख) अगिनघास (Lemon Grass)—सुगंधित द्रव्यों को तैयार करने में अगिन-घास तेल काम में लाया जाता है। यह तेल केरल में बनाया जाता है। भारत में इस तेल का अनुमानित वार्षिक उत्पादन ८०० टन से कुछ अधिक ही है, जिसकी कीमत लगभग २ करोड़ रु० बैठती है। भारत में उत्पादित यह समस्त तेल आजकल मुख्य रूप से अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस को निर्यात किया जाता है। कुछ तेल जर्मनी को भी जाता है। इसका उपयोग विटामिन "ए" बनाने में भी होने लगा है। कभी-कभी मच्छड़ निरोधक लेप (क्रीम) और दर्द का मलहम भी तैयार किया जाता है। अगिनघास भारत में नैसर्गिक रूप से पैदा होती है। गर्म जलवायु के देशों में इस प्रकार की लगभग ८० घासें पायी जाती हैं। भारत में अगिनघास की खेती अधिकतर केरल के उत्तरी तालुकों में की जाती है वहाँ इसे "इंचीपुल" कहते हैं। मालाबार जिले के वायनाड और कोभीकोड तालुओं में भी इसे उगने में सफलता मिली है। इसकी ताजा पत्तियों का अर्क खींच कर तेल बनाया जाता है।

भारत में लगभग ४०,००० एकड़ जमीन में अगिनघास उपजाई जाती है, जिसका ६० प्रतिशत केरल में है। पश्चिमी तटवर्ती प्रदेशों की जमीन और जलवायु भी इसी अनुकूल है। इससे भविष्य की उपज बढ़ने की आशा है।

अगिनघास दो तरह की होती है—एक लाल डंठल की और दूसरी उजले डंठल की। लेकिन लाल डंठल वाली अगिनघास से ही अच्छा तेल निकलता है। अगिनघास का अर्क ८ से १८ घनफुट के तांबे के देशी भभकों से निकाला जाता है। इस समय अगिनघास के बागानों में करीब २५०० भभके लगे हैं।

केरल सरकार ने आदाक्कली में गवेषणशाला की भी स्थापना की है जहाँ अगिनघास के तेल का उपज और उसके तेल निकालने से सम्बन्धित समस्याओं पर गवेषणा होगी।

भारतीय वनों के पिछड़े होने के कारण—

यद्यपि भारतवर्ष वनों की दृष्टि से धनी देश है—यहाँ बहुमूल्य लकड़ी उत्पन्न होती है—किन्तु अभी तक भारत में अन्य देशों की तरह वनों से प्राप्त सम्पत्ति का पूर्ण उपयोग नहीं किया जा सका है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) किसी भी देश की सर्वांगीण उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि कुल भूमि के कम से कम चौथाई भाग में वन अवश्य हों किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, हमारे देश में वनों का विस्तार न तो समान ही है और न पर्याप्त ही। सम्पूर्ण देश के केवल २२·३% भाग ही वन प्रदेश हैं। प्रति व्यक्ति पीछे भारत में वनों का क्षेत्रफल केवल ०·२ हैक्टेअर है। जबकि यह क्षेत्रफल रूस में ३·५ हैक्टेअर; और संयुक्त राज्य में १·८ हैक्टेअर है। यही नहीं प्रति एकड़ वार्षिक उत्पादन भी बहुत ही कम है, फ्रांस में ५६·८ घन फीट; जापान में ३७ घन फीट; संयुक्त राज्य अमरीका में १८ घन फीट और भारत में केवल २·५ घन फीट है।[1]

(२) भारतवर्ष के अधिकांश जंगल अधिक ऊँचाई पर स्थित है जहाँ पहुँचना कठिन है फिर वहाँ से लकड़ी काट कर लाना तो और भी असम्भव है। हिमालय के पूर्वी वन और पश्चिमी घाट के कई भाग के वन तो अभी छुए भी नहीं गये हैं। भारत के २०% वन अप्राप्य है। सम्पूर्ण वन प्रदेश के क्षेत्रफल में से ५०,६४७ वर्गमील के वन अप्राप्य हैं।

(३) आवागमन के साधनों की बड़ी कमी है। ऊँचे और सघन वनों की लकड़ी को मैदान में लाने के लिये नदियों, सड़कों, ट्रामों, तार के रास्ते तथा लकड़ी के शहतीरों को खींचने वाले छोटे २ एन्जिनों का अन्य देशों में खूब प्रयोग किया जाता है किन्तु भारत में लकड़ी को पहाड़ से मैदान में लाने की सुविधा बहुत कम है क्योंकि पश्चिमी देशों की भांति न तो यहां नदियाँ ही लट्ठों के बहाने के काम में ली जाती है और न मशीन ही इस काम में ली जाती हैं। हमारे यहाँ अधिकतर मजदूर या हाथी आदि जानवर ही लकड़ियां ढोने के काम में लिये जाते हैं।

भारत में आसाम में गोलपारा (Goalpara) जिले में, पंजाब में चंगामंगा (Changa Manga) जिले में और केरल राज्य में इस काम के लिये ट्राम का प्रयोग किया जाता है। केरल, सतलज नदी और सुन्दर वन में नदियों का प्रयोग लट्ठे ले जाने के लिये किया जाता है। अधिकतर नदियों में लकड़ियां बाढ़ के समय में ही बहाई जाती है जबकि उनमें पर्याप्त जल होता है। भारत में सबसे बड़ा टिम्बर का मुख्य बाजार झेलम पर है जहाँ प्रतिवर्ष काश्मीर के पहाड़ों से लगभग ८० लाख घनफुट लकड़ी झेलम द्वारा आती है। तार के रास्ते (Rope Ways) अधिकतर चेरापूँजी के निकट बनाये गये हैं।

(४) देश के वनों का कम उपयोग होने का एक कारण यह भी है कि पाश्चात्य औद्योगिक देशों की तरह भारत में टिम्बर की मांग अधिक नहीं है। यूरोप और अमेरिका आदि देशों में तो तमाम मकान के मकान ही फर्श से लगाकर छतों तक पूरे ही लकड़ियों के बनाये जाते हैं। लेकिन चूंकि हमारे देश की जलवायु गर्म है इसलिये यदि मकानों इत्यादि में लकड़ी का प्रयोग किया जावे तो गर्मी के कारण लकड़ी के तख्तों के तड़क जाने का डर रहता है और फिर कई तरह के कीड़े इत्यादि

१. India, 1960, p. 254.

भी भारत में लकड़ी को बहुत ज्यादा हानि पहुँचाते हैं। अतः साधारणतया मकान बनाने में लकड़ी का प्रयोग नहीं किया जाता है।

(५) देश में लोगों के रहन सहन का दर्जा बहुत ही नीचा है। अतः हमारे यहाँ उत्तम लकड़ी की आवश्यकता भी अभी तक नहीं हुई है। यहाँ के निवासी बहुत ही कम फर्नीचर काम में लाते हैं। अशिक्षा के कारण लकड़ी का प्रयोग कागज बनाने में भी कम होता है। जहाँ कनाडा में २५० घन फीट लकड़ी का उपयोग प्रति व्यक्ति पीछे होता है वहाँ फिनलैण्ड में २९९ घन फीट; सं० रा० अमेरिका में २०० घ० फी०; स्वीडन में १२९ घन फीट; नार्वे में ११८ घन फीट; रूस में ६६ घनफीट; जर्मनी में २७ घन फीट; फ्रास में २६ घन फीट; और इंगलैण्ड में १५ घनफीट लकड़ी प्रति व्यक्ति के काम आती है किन्तु भारत में केवल १.५ घन फीट लकड़ी ही।

(६) भारत में एक ही प्रकार के वृक्ष एक ही क्षेत्र में इकट्ठे नहीं मिलते बल्कि एक ही प्रकार के वृक्ष काफी छितराये हुए मिलते हैं अतः किसी विशेष प्रकार की लकड़ी को एकत्रित करने में समय भी अधिक लगता है और खर्चा भी खूब पड़ता है।

(६) हमारे यहाँ लकड़ी काटने के तरीके भी पुराने ही हैं। इससे बहुत सी लकड़ी तो व्यर्थ में ही नष्ट हो जाती है।

भारत की वन नीति (Forest Policy of India)

देश के काफी भू भाग में स्थायी वनों की आवश्यकता है। ये वन देश के विभिन्न भागों में समुचित रूप से फैले हुए होने चाहिए और अनाधिकार प्रवेश, दुरुपयोग तथा अति-उपयोग से उनकी रक्षा की जानी चाहिए। इसी हेतु १९५२ में भारत सरकार ने राष्ट्रीय वन-नीति घोषित की। इस नीति के अनुसार भूमि के ३३ प्रतिशत भाग में वन होने चाहिए। वन संबंधी नीति के दो उद्देश्य हैं :—एक ओर तो वन साधनों के दीर्घकालीन विकास की व्यवस्था करना और दूसरी ओर निकट भविष्य में इमारती लकड़ी तथा ईंधन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करना। इस नीति के अनुसार भारतीय वनों को निम्न चार भागों में बांटा गया है :—

(१) **संरक्षित वन** (Protection Forests)—ये ऐसे वन हैं जिनका विकास राष्ट्र की भौतिक अथवा जलवायु संबंधी आवश्यकताओं के लिए आवश्यक है। इस हेतु पहाड़ी क्षेत्रों, नदी घाटियों, तटीय भागों पर न केवल वृक्षारोपण किया जाय वरन् इन स्थानों में उपलब्ध वर्तमान वनों की रक्षा की जाय।

(२) **राष्ट्रीय वन** (National Forests)—ये वन देश की सुरक्षा, यातायात, उद्योग तथा सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं। इस संबंध में इस बात पर जोर दिया जाता है कि वर्तमान क्षेत्रों के टिम्बर-क्षेत्रों में खेती न करने दी जाय और न ही उनका अविचारपूर्ण विदोहन किया जाय।

(३) **ग्राम्य वन** (Village Forests)—इन वनों का महत्व गांवों और निकटवर्ती नगरों के लिए सस्ते ईंधन की उपलब्धि करना है जिससे कंडे आदि का ईंधन के रूप में प्रयोग रोका जाकर खेतों में खाद के रूप में व्यवहृत किया जा सके। इन्हीं वनों से कृषि-यंत्रों के लिए तथा अन्य कार्यों के लिए सीमित मात्रा में लकड़ी मिलती है।

(४) **वृक्ष वन** (Tree lands)—इन वनों की आवश्यकता भी देश की भौतिक अवस्था के लिए होती है।

इन नीति के अनुसार ही जुलाई १९५२ में भारत सरकार ने वन महोत्सव (Van-Mahotsava) मनाना आरंभ किया है। अब तक लगभग १५ करोड़ वृक्ष रोपे जा चुके हैं जिनमें से केवल ६०% ही पनप पाये हैं, शेष नष्ट हो गये। अब यह महोत्सव देश व्यापी आंदोलन के रूप में हो गया है अत: प्रति वर्ष जुलाई-अगस्त मास में वृक्षा-रोपण सप्ताह मनाया जाता है। वन-महोत्सव आंदोलन का मूल आधार "वृक्ष के अर्थ जल हैं, जल का अर्थ रोटी है और रोटी ही जीवन है" (Trees mean water, water mean bread and bread in life) श्री मुंशी का यह कथन है। अनुमान लगाया गया है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति वर्ष भर में दो वृक्ष बोये तो सारे भारत में ५ वर्ष की अवधि में २९७ करोड़ नये वृक्ष पैदा हो सकते हैं।

प्रथम पंच वर्षीय योजना में विभिन्न राज्यों में निम्न कार्य किये गये :—

(१) लगभग ७५,००० एकड़ भूमि में नये वन लगाए गए।

(२) लगभग ३,००० मील लंबी सड़कों का निर्माण और सुधार किया गया।

(३) लगभग २ करोड़ एकड़ वनों को निजी अधिकार से निकाल कर सरकारी अधिकार और नियंत्रण में लिया गया।

(४) वन प्रबन्ध की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

द्वितीय पंच वर्षीय योजना में वनों के विकास के लिए कई योजनायें बनाई गई। द्वितीय योजना के अन्तर्गत निम्न कार्यक्रम रखा गया :—

(१) ३८०,००० एकड़ भूमि के ऐसे वनों की पुनर्व्यवस्था करना जिनकी हालत बहुत खराब होगई थी और जो पिछले कुछ ही वर्षों से सरकार के नियंत्रण में आये हैं।

(२) नहर की पटरियों, सड़कों के किनारे तथा बंजर भूमि पर वृक्षारोपण करना। बाढ़ अथवा रेगिस्तान के विस्तार को रोकने के लिये पेड़ लगाना।

(३) वनों की ५० हजार एकड़ भूमि में टीक जैसी व्यापारिक महत्व की इमारती लकड़ी के बागान लगाना।

(४) ५० हजार एकड़ भूमि पर दियासलाई की लकड़ी के बागान तथा १३ हजार एकड़ भूमि पर वाटल और सरपत (Blue-gum) के वृक्ष लगाना।

(५) दो हजार एकड़ भूमि में ऐसे वृक्ष लगाना जिनका उपयोग औषधियाँ बनाने में होता है।

(६) शहतीरों को काटने के नये उपाय अपना कर इमारती लकड़ी प्राप्त करना।

(७) जंगलों में ७,४०० मील लंबी सड़कें बनाना या उनका सुधार करना।

(८) उत्पादन की वृद्धि के लिए आवश्यक तरीकों का प्रयोग और वनों से मिलने वाली उपज को सुलभ करना।

द्वितीय योजना में ३० लाख एकड़ से अधिक ऐसी भूमि में उर्वर भूमि संरक्षण (Soil Conservation) के कार्यक्रम पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, जहाँ भूमि अधिक कट गई है (इसमें २० लाख एकड़ कृषि-भूमि भी शामिल है)। २५०,००० एकड़ इलाके में रेत के उड़ने वाले टीलों को वश में करने वाले उपाय किये जायेंगे।

महत्वपूर्ण नदी-घाटियों में ३३०,००० एकड़ भूमि में ; पहाड़ी प्रदेशों में १७०,००० एकड़ से अधिक भूमि में; १५०,००० एकड़ से अधिक बीहड़ भूमि में और १०,००० एकड़ से ऊपर परती भूमि में आग फैलने से रोकने और भूमि का अपक्षरण रोकने के उपाय काम में लाये जायेंगे। जोधपुर में एक मरुस्थल वृक्षारोपण अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया गया है। इसके अंतर्गत राजस्थान की पश्चिमी सीमा के किनारे तक ७ किलोमीटर चौड़ी और ५५ किलोमीटर लंबी वृक्षों की पट्टी लगाई जा रही है तथा राजस्थान में वन-क्षेत्रों में ५०% की वृद्धि की जा रही है। भविष्य में वनों का विकास निम्न उपायों द्वारा किया जा सकता है :—

(१) सुरक्षित वन-क्षेत्रों का विस्तार किया जाय।

(२) सरकारी तथा व्यक्तिगत बंजर पड़ी भूमि पर जंगल लगाये जायें।

(३) युद्ध काल में तथा युद्धोत्तर काल में जिन वनों का निर्दयतापूर्वक विदोहन हुआ है उनकी रक्षा की जाय।

(४) जिन क्षेत्रों में भूमि का अपक्षरण हुआ है वहाँ अधिक मात्रा में वृक्षारोपण किया जाय।

(५) वन-प्रदेशों से संबंधित यातायात के साधनों का शीघ्र विकास किया जाय।

(६) गांवों तथा कस्बों के निकटवर्ती भागों में नये जंगल लगाकर ईंधन की समस्या हल की जाय।

(७) लकड़ियों को सुरक्षित रखने में रासायनिक पदार्थों तथा विधियों का प्रयोग बढ़ाया जाय।

(८) वन-सम्बन्धी अनुसंधान कार्य की गति में वृद्धि की जाए तथा जंगली-जीव जन्तुओं की सुरक्षा की जाए।

भारत में वन क्षेत्र, १९५६-५७ (वर्गमील में)[1]

राज्य	सम्पूर्ण वन क्षेत्र	वैधानिक दृष्टि से वन क्षेत्र			आधिपत्य की दृष्टि से वन क्षेत्र				वनों के प्रकार	
		संरक्षित	संरक्षित	अवर्गीकृत	वन विभाग	नागरिक संस्थायें	निगम आदि	निजी	कोण-धारी	चौड़ी पत्ती के
आंध्र प्रदेश	२५,३८८	१७,७८५	५,२४५	२,३५८	२५,३८८	—	—	—	—	२५,३८८
आसाम	१७,६६४	६,३६८	११०	११,१८६	६,४७८	११,१८६	—	—	५	१७,६५९
बिहार	१२,९६१	१,४८८	१०,०४६	१,४२७	११,७७७	१०२	—	१,०८२	—	१२,९६१
बम्बई	३२,६५५	१७,८७०	७,१६८	७,६१७	२७,७३४	२,६८८	४	२,२२९	—	३२,६५५
जम्मू और काश्मीर	११,०५७	१०,१७१	७५४	१३२	११,०५७	—	—	—	३,०९५	७,९६२
केरल	४,४२२	३,४१३	१,००९	—	३,७०८	—	—	७१४	१	४,४२१
मध्य प्रदेश	६५,९९२	३०,४३८	२२,५१७	१२,९६७	६४,७४७	१,१४६	१८	११	—	६५,९९२
मद्रास	८,२२६	६,७३५	१,४९१	—	८,२२६	—	—	—	—	४,२२६
मैसूर	१३,८७०	९,०२७	२,६००	२,०९३	११,४७९	१,६९३	८९	६०९	—	१३,८७०
उड़ीसा	२४,५८५	८,६८१	१५,९००	४	१७ ५०६	७,०००	—	७९	—	२४,५८२
पंजाब	५,३७१	२४७	४,७९२	३३२	३,७९९	—	२	१,५७०	१,७६४	३,६०७
राजस्थान	१६,९४४	२,३१०	११,०००	३,६८४	१६,९९४	—	—	—	—	१६,९९४
उत्तर प्रदेश	१५,२८७	९.९०९	१,२४८	४,१३०	१३,०५४	१,८०३	३८	३९२	२,१८०	१३.१०७
पश्चिमी बंगाल	५,९१९	२,७६९	१,२६६	१,८८४	१५,७८४	८०	२७	१००	२६	५,८९३
दिल्ली	९	३	४	२	५	—	४	—	—	९
हिमाचल प्रदेश	४,०३०	६२७	२,९५२	४४१	३,५८७	२०	२	४२१	२,५३१	१,४९९
मनीपुर	२,३२५	३८८	८५७	१,०८०	१,२४५	१,०८०	—	—	३५०	१,९७५
त्रिपुरा	३,४५८	१,०२०	२,४३८	—	३,४५८	—	—	—	—	३,४५८
अण्डमान निकोबार द्वीप	२,५००	१,४९८	५५५	४४७	२,५००	—	—	—	—	२,५००
भारत का योग	२७२,६४३	१३०,८२७	९२,०३२	४९,७८४	२३८,५२६	२६,७२६	१८४	७,२०७	९,९५२	२६२,६९१

१. Agricultural Situation in India, Vol XIV. No. 11. Feb., 1960. p. 1311.

अध्याय १६

पशु धन
(Cattle Wealth)

किसी देश की आर्थिक व्यवस्था में पशुओं का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण होता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में पशुओं का कितना महत्व है यह डा० डार्लिंग के शब्दों से स्पष्ट होगा। वे कहते है, "इनके बिना खेत बिना जुते-बोये पड़े रहते हैं, खलिहान खद्यान्नों में अभाव में खाली पड़े रहते है तथा एक शाकाहारी देश में इससे अधिक दुखदायी बात क्या हो सकती है, कि यहाँ पशुओं के अभाव में घी, दूध आदि पौष्टिक पदार्थोंका उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा ही निम्न है।"

भारत मे पशुओं द्वारा निम्न उद्देश्यों और लाभों की पूर्ति होती हैं :—

(१) कृषि कार्यो में सहायता देने के लिए, हल खींचने, दांय चलाने, गन्ने की चरखियाँ फेरने तथा कुओं से पानी खींचने और बोझा ढोने के लिए बैलों तथा अन्य पशुओं का उपयोग किया जाता है।

(२) पशुओं से ही जीवनदायक दूध प्राप्त होता है। यद्यपि भारत में पशुओं की संख्या अधिक है किन्तु उनके द्वारा प्राप्त होने वाली दूध की मात्रा बहुत ही अपर्याप्त है। साधारणतः पशुओं की दूध देने की सामर्थ्य कुछ छटांक से लेकर १० सेर तक ही सीमित है, जबकि न्यूजीलैंड व आस्ट्रेलिया की गायें दिन भर में ३०-४० सेर तक दूध देती हैं। इसी कारण भारत की गायों को 'Tea-Cup Cows' कहा जाता है। प्रति वर्ष देश में लगभग ५२ से ६० करोड़ मन तक दूध की प्राप्ति होती है।

(३) पशुओं से खेतों के लिए गोबर की खाद प्राप्त होती है तथा हड्डी और खून की खाद भी महत्वपूर्ण है। ये खादें भूमि की उर्वरता को निरन्तर बनाये रखती हैं। पशुओं से चमड़ा और खालें (विशेषकर कसाईघर में काटे गये पशुओं से) प्राप्त किये जाते हैं। प्रतिवर्ष ५० लाख भैंस की खालें, २१० लाख बकरी, १६० लाख भेड़ और १६० लाख गाय की खालें प्राप्त होती हैं।

भारतीय आर्थिक जगत में पशुओं की देन का वास्तविक महत्व निम्न आंकड़ों से स्पष्ट होगा :—

भारत में पशुओं से मिलने वाले पदार्थ[१]

पदार्थ	मात्रा
दूध :	
गाय का दूध	२०.७ करोड़ मन
भैंस का दूध	२५.४ ,,
बकरी का दूध	१.७ ,,

१. M. S. Randhawa, Agriculture & Animal Husbandry in India, 1958, p. 346.

पदार्थ	मात्रा
घी	१·१ करोड़ मन
मक्खन	२० लाख ,,
मांस	४·६ ला० टन
अंडे	१४१ करोड़
चमड़ा :	
गाय-बैल	१·६ करोड़
भैंस	·५ करोड़
खालें :	
बकरी	२·१ करोड़ पौंड
गाय	१·६ ,, ,,
ऊन :	६·५ करोड़ पौंड

पशुओं से होने वाले प्रत्येक प्रकार के लाभ का मूल्य इस प्रकार आंका गया है[१]—

दूध एवं दूध से बनी वस्तुयें............८०० करोड़ रुपये
जोताई तथा अन्य कृषि कार्य........१२०० ,,
कृषि उपज का यातायात............३०० ,,
मांस ....१२० करोड़ रुपये
चमड़ा और खालें ५० ,,
गोबर १००० ,,
योग ३,४७० करोड़ रुपये

भारत में मिलने वाले पशुओं को दो भागों में बांटा जा सकता है। जिन भागों में वन प्रदेश हैं वहाँ अधिकांशत: जंगली पशु ही मिलते हैं, किन्तु जहाँ कृषि के लिए भूमि साफ कर ली गई है वहाँ पालतू पशु ही पाये जाते हैं।

जंगली पशु (Wild Animals)

जंगली पशु अधिकांशत: या तो घने जंगलों अथवा जंगलों के किनारे रहते हैं जहां वे अन्य घास खाने वाले पशुओं का शिकार करके अपना पेट पालते हैं। जंगली पशुओं में सिंह, बाघ, चीते, तेंदुए अथवा रीछ मुख्य हैं। बाघ अधिकतर बंगाल, सौराष्ट्र, तराई और राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी वनों के ढके हुए भागों में खूब मिलते हैं। रीछ बहुधा हिमालय के पहाड़ी भागों तथा तराई में अधिक मिलते हैं। इन वनों में चीते और तेंदुए भी मिलते हैं। **सियार और लोमड़ी** भारत के प्रत्येक भाग में मिलती है। **जंगली कुत्ता** नीलगिरी के पहाड़ों पर अधिक मिलता है। हाथी जंगली दशा में आसाम, केरल और मैसूर में पाया जाता है। **बन्दर** भी समस्त भारत में मिलते हैं। भारत में पाये जाने वाले सींगदार जंगली पशुओं में **बीसन** और जंगली भैंसें मुख्य हैं। ये दक्षिणी भारत, मध्य प्रदेश और आसाम में पाये जाते हैं। **इबैक्स** नामक पहाड़ी बकरी विशेष कर काश्मीर और दक्षिणी भारत की पहाड़ियों पर पाई जाती है।

१. N. S. Srinivasan, Cattle Wealth in India, 1953.

याक हिमालय के ऊंचे भागों में और हिरण भारत के अधिकांश भागो में पाये जाते है। गैंडे, ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी और सुन्दर वन मे मिलते है। कच्छ के मरुस्थल में जगली गधे मिलते है।

पालतू पशु (Domesticated Animals)

पालतू पशुओं मे गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड और घोडे आदि मुख्य हैं। भारत में पशुओं की सख्या ३० करोड के लगभग है।

भारत में पालतु पशुओं की संख्या (लाख में)

पालतू पशु	१९४५	१९५१	१९५६
गाय-बैल	१३६७	१५५२	१५८७
भैंस	४०७	४३४	४४९
भेड	३७७	३९०	३९२
बकरी	४६३	४७१	५५४
घोडे और टट्टू	१४	१५	१५
खच्चर	·४५	·६०	·४०
गदहे	११,	१२	११
ऊंट	७,	६	७
सूअर	३७	४४	४९
कुल पशु	२,६८४	२,९२६	३,०६५
मुर्गियाँ	५४७	७३५	९५७

सन् १९५१ से १९५६ के बीच पशुओं की सख्या में लगभग ५% की वृद्धि हुई है।

विश्व में मुख्य पशुओं का वितरण इस प्रकार है (१९५६) :—

चौपाये	८६६,५०० हजार	घोडे	७५,३०० हजार
भेड	८५५,००० ,,	खच्चर	१५,६०० ,,
सूअर	३४८,००० ,,	गदहे	३५,३०० ,,

इससे ज्ञात होगा कि पशुओं में सबसे अधिक संख्या चौपायों की है, जिनके द्वारा मानव को भोज्य पदार्थ मिलता है और जिनके द्वारा कृषि कार्य एवं माल ढोने में मदद मिलती है।

चौपाया का वितरण मुख्य देशों में इस प्रकार है :—

चौपायों का वितरण (हजार मे)

देश	१९४८-५२	१९५४	१९५६
फ्रांस	१५,०६५	१६,८८९	१७,५७२
जर्मनी	१४,१४०	१५,४४२	१५,३१२
इंग्लैंड	१०,२७७	१०,९०७	१०,९०७
रूस	५५,१८०	६३,०००	७०,४००

देश	१९४८-५२	१९५४	१९५६
सं० रा० अमरीका	५०,३६७	६४,७८७	६६,८०४
ब्राजील	५१,२६५	५७,६२६	६३,६०८
भारत	१४०,८२८		१५८,७००
विश्व का योग	७४३,०००	८१३,०००	८६६,५००

भारत में विश्व में पाये जाने वाले चौपायों का लगभग $\frac{1}{5}$ से कुछ ही कम भाग है।

यदि एक वर्गमील के क्षेत्र में पशु-संख्या के घनत्व को नापा जाय तो भारत का स्थान डेनमार्क के पश्चात आता है। डेनमार्क में प्रतिवर्ग मील में १९२ पशु पाये जाते है जबकि भारत में प्रति वर्ग मील में ११५; आस्ट्रीया में ६८; आस्ट्रेलिया में ५; कनाडा में ३; अर्जेनटाइना में ३२; फ्रांस में ६७; न्यूजीलैंड में १५ और संयुक्त राज्य अमेरिका में २८ पशु रहते हैं।

भारत के पशु पालन क्षेत्र

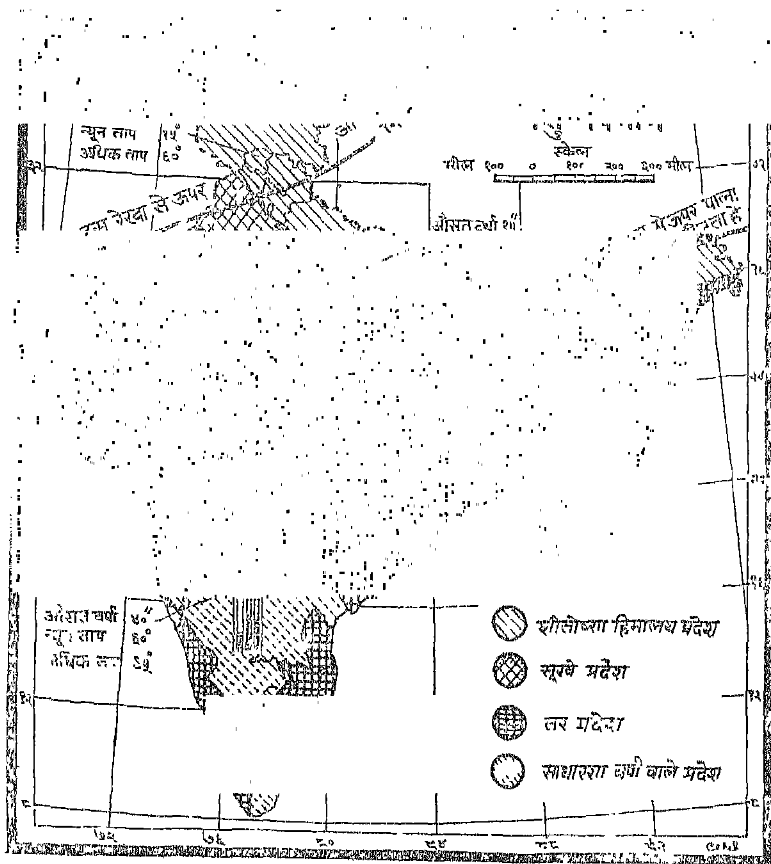
शुष्क जलवायु में जहाँ चरने की अधिक सुविधाएं होती हैं पशु अधिक संख्या में पाले जाते हैं। भारत की प्रमुख पशु-पट्टी भारतीय मरुस्थल के चारों ओर—जहाँ वर्षा की मात्रा में अपेक्षतया कमी होती है—फैली हुई है। भारत में पशु-पालन के यह क्षेत्र अन्य देशों की स्थिति के बिल्कुल समान ही हैं जहाँ पशु-पालन उन घास के मैदानों में होता है जो या तो मरुस्थलों की बाहरी सीमा पर स्थित हैं अथवा उन शुष्क भागों में है जहाँ प्रतिकूल प्राकृतिक रचना के कारण कृषि का विकास कठिन है। भारत के मुख्य पशु-पालन क्षेत्र पंजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, पश्चिमी उत्तर प्रदेश हैं। इन भागों में वर्षा की इतनी अधिक मात्रा नहीं होती कि उत्तम घास पैदा हो सके अत: चरवाहे अपने पशुओं के लिए खेतों में ऐसी फसलें उगाते हैं जिनके डंठल पशुओं की चराई में काम आ सकें। किंतु जिन भागों में वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती है अथवा जहाँ सिंचाई के उत्तम साधन उपस्थित हैं वहाँ उत्तम पशु-पालन नहीं किया जाता। अत: आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, केरल और मद्रास में उत्तम श्रेणी के पशु नहीं पाये जाते। इन भागों के पशु दुबले-पतले, रोगी और कम दूध देने वाले होते है। यही कारण है कि अधिक आर्द्र भागों में शुष्क भागों की अपेक्षा उतना ही दूध प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक पशु पालने पड़ते हैं।

मिट्टी की प्रकृति, तापक्रम एवं वर्षा के अनुसार भारत के निम्न पशु विभाग किए गए हैं :—

(१) **हिमालय प्रदेशीय विभाग**—इसके अन्तर्गत भूटान, नैपाल, उत्तर प्रदेश के कुमायूं, गढ़वाल, जिले तथा पंजाब की शिमला रियासतें, कांगड़ा एवं कूलू की घाटी और जम्मू तथा काश्मीर सम्मिलित किये जाते हैं। इस प्रदेश में भेड़ बकरियाँ ही मुख्य पालतू पशु हैं और इनसे ऊन प्राप्त करना मुख्य उद्योग है। इन भागों का ऊन श्वेत और उत्तम किस्म का होता है। शहद की मक्खियाँ पालने का धंधा भी किया जाता है।

(२) **उत्तरी शुष्क विभाग**—पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश,

मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग इसमें सम्मिलित होते है। यहाँ मुख्यतः ऊंट, घोड़े तथा गदहे अधिक मिलते है। शुष्क भाग होने के कारण यहाँ गेहूँ का उत्पादन सिंचाई के सहारे किया जाता है। इस भाग मे दूध देने वाले पशुओ की उत्तम नस्ले पाई जाती है। जिनके लिए अधिकाश भागो मे चारा पैदा किया जाता है।



चित्र १०७—भारत के पशु-विभाग

(३) **पूर्वी और पश्चिमी तर विभाग**—इस विभाग में बिहार, बंगाल, उड़ीसा, आसाम, पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूर्वी मद्रास, केरल राज्य, पश्चिमी समुद्र तटीय पट्टी तथा आंध्र प्रदेश सम्मिलित किये जाते है। इन भागों में वर्षा ५०" से अधिक होती है अतः चारे के अन्तर्गत बहुत ही कम भूमि बोई जाती है। चावल इन भागों की मुख्य उपज हैं। इसी के डंठल पशुओं को खिलाये जाते हैं। इसमें पोषक तत्त्व अधिक नहीं होते अतः इन भागो के पशु भी छोटे, दुबले-पतले और कम दूध देने वाले होते है। भैंस और भैंसे दोनों ही अधिक पाले जाते हैं जिनसे दूध लेने और खेती में काम करने को प्रयुक्त किया जाता है।

(४) **मध्यम वर्षा वाला विभाग**—इसके अंतर्गत काली मिट्टी के प्रदेश—मध्य प्रदेश, आंध्र के पश्चिमी भाग, मैसूर, पूर्वी महाराष्ट्र, पश्चिमी मद्रास और दक्षिणी उत्तर प्रदेश—सम्मिलित हैं। यहाँ वर्षा ५०" से कम होती है। ज्वार, बाजरा, रागी आदि मोटे अनाज यहाँ की मुख्य फसलें हैं। इस विभाग में भारत में सबसे अधिक भेड़ें पाली जाती हैं किन्तु इनका ऊन अच्छे किस्म का नहीं होता।

५० और ६० प्रतिशत के बीच में चौपाये उत्तरी भारत में पाये जाते हैं। इनमें से १५.४ (२१४ लाख) तो अकेले उत्तर प्रदेश में ही है। मद्रास में ११.८ (१६५ लाख) तथा मध्य प्रदेश में १३६ लाख; बिहार में ११४ लाख; बम्बई में १०३ लाख और राजस्थान में ८६ लाख चौपाये मिलते हैं। पशुओं का सबसे अधिक घनत्व राजस्थान में है। यहाँ प्रति १०० एकड़ बोये गये क्षेत्रफल में ८८ पशु मिलते है जबकि काश्मीर में इतने ही क्षेत्र में ८१; आंध्र में ३२; बम्बई में ३०; पंजाब में २८; उत्तर प्रदेश में ८५; बिहार में ८०; उड़ीसा में ८३; मद्रास में ७१ और मध्य प्रदेश में ५४ पशु पाले जाते है। इनकी तुलना में प्रति १०० एकड़ कृषि योग्य भूमि पर पशुओं का घनत्व हॉलैंड में ३८; मिश्र में २५; चीन में १५ और जापान में केवल ६ है।

भारत में ६४६ लाख बैल हैं जो विशेष कर खेती करने में सहायता देते हैं। साधारणतया जिन भागों में गन्ना, कपास अथवा गेहूं बोया जाता है अथवा जहाँ की भूमि भारी होती है वहाँ बैलों का विस्तार उन भागों की अपेक्षा जहाँ कृषि योग्य भूमि की न्यूनता अथवा मिट्टी उर्वरा नहीं होती अथवा जहाँ, चाय, जूट, कॉफी या चावल आदि फसलें उत्पन्न की जाती हैं—अधिक होता है। सबसे अधिक बैल उत्तर प्रदेश में ४७.७%; बिहार में ४३.७%; बम्बई में ४३.०%; सौराष्ट्र में ४०.६% तथा पंजाब में ४०.५% पाये जाते है। इनके विपरीत राजस्थान में केवल २८.४%; हिमालय प्रदेश में २६.१%; काश्मीर में ३२.१% तथा आसाम और मैसूर में ३३% और ३२.७% ही बैल है।

सम्पूर्ण भारत में पशुओं का लगभग ३०.१% दुधारु गायें हैं (४६६ लाख) जिनमें उत्तर प्रदेश में ५५ लाख; मध्य प्रदेश में ४६ लाख; मद्रास में ५० लाख और राजस्थान में २६ लाख दुधारू गायें हैं। सम्पूर्ण पशु सम्पत्ति का २.१% (२६ लाख) भाग निर्बल और अयोग्य पशुओं का है।

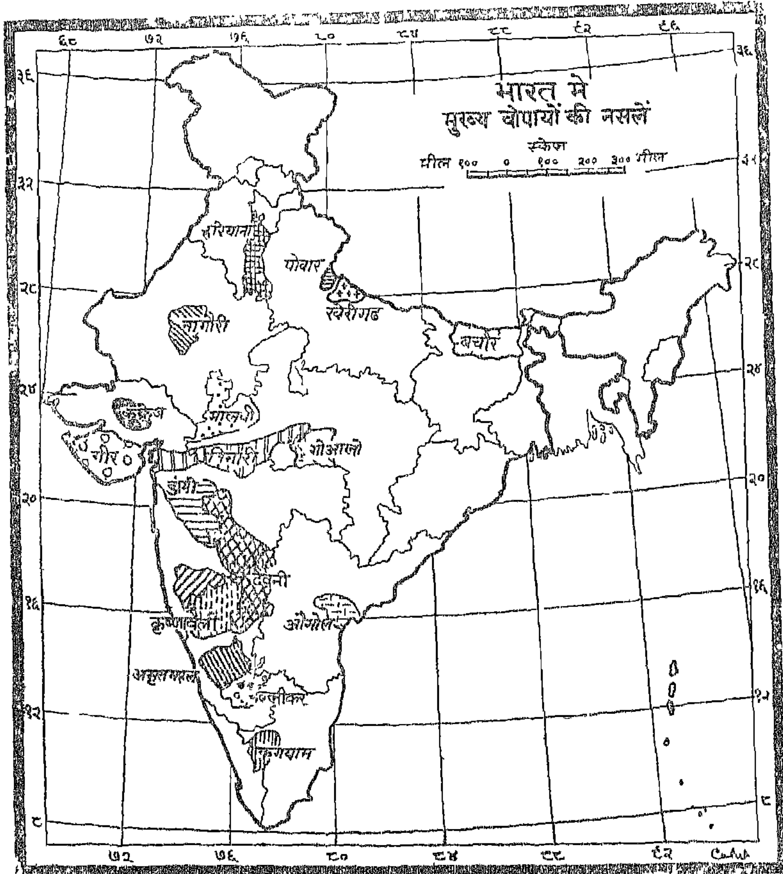
चौपायों की नस्लें

भारत में चौपायों की नस्ल तीन प्रकार की पाई जाती है :—

(१) **दूध देने वाली नस्लें** (Milch Breeds)—इस प्रकार की नस्ल से दूध अधिक मिलता है तथा बैलों से साधारण ढोने का काम लिया जा सकता है। इस नस्ल वाले पशु हृष्ट-पुष्ट होते हैं इनके सींग घुमावदार होते हैं। इस प्रकार की नस्ल वाली मुख्य गायें **गिर, साहीवाल, सिंधी** और **देवनी** हैं। पंजाब की **हांसी** और और **हरियाना** तथा **गिर** नस्लों से दुग्धकाल में २,००० पौंड, **सिंधी** से २,५०० पौंड और साहीवाल तथा **मुर्रा** से ३,००० पौंड दूध तक प्राप्त होता है। दिल्ली की **मुर्रा**, सौराष्ट्र की **जाफराबादी**, गुजरात की **महसाना** और पंजाब की **रोहतक** भैंसे भी अधिक दूध देती हैं।

(२) **सामान्य उपयोग वाली नस्लें** (General Utility Breeds)—इस प्रकार की नस्लों में गायें अच्छा दूध देने वाली और बैल बोझा ढोने योग्य होते हैं। इसमें दो प्रकार के चौपाये मुख्य हैं : (१) एक वे जिनके सींग छोटे होते हैं तथा रंग सफेद

या भूरा होता है—जैसे हरियाना, ओंगोल, गोओलो, कृष्णा-वाटी नस्ल आदि, (२) दूसर प्रकार के वे जिनका रंग भूरा होता है, शरीर हृष्ट-पुष्ट और पेशानी चौड़ी होती है—जैसे थारपारकार और काकरेज।

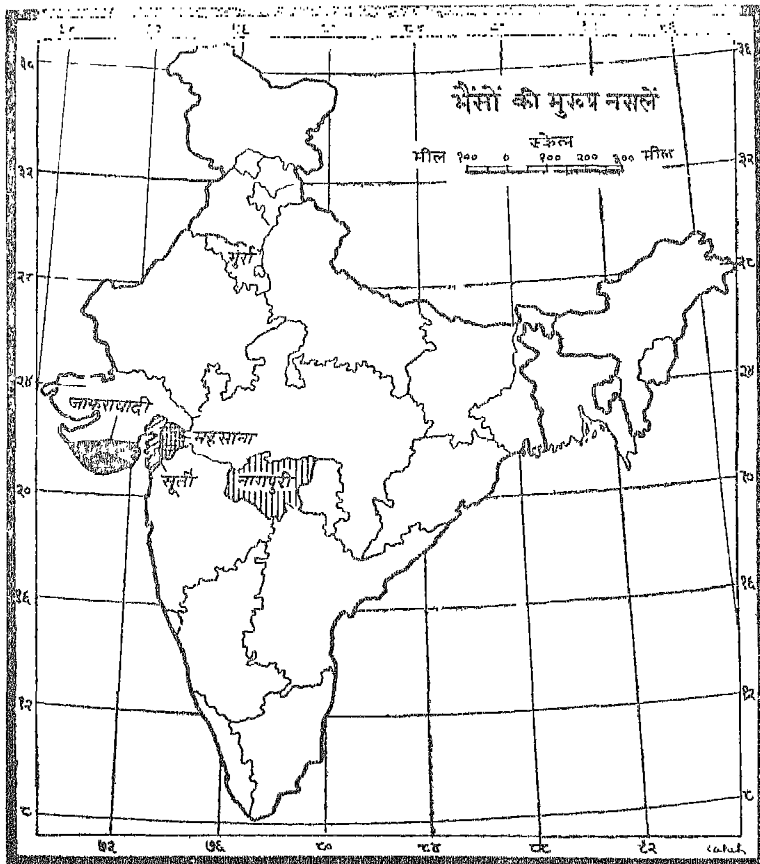


चित्र १०८—भारत मे मुख्य चोपायो की नस्ल

(३) **बोझा ढोने वाली नस्ले** (Draught Breeds)—इस प्रकार की नस्ल मे गाये बहुत ही कम दूध देने वाली होती है किन्तु बैल बोझा ढोने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त होते है। इनमे मुख्य नागोरी, बचौर, कनकथा, मालवी, खेरीगढ, हल्लीकार, कंग्याम, अमृतमहल, खिलारी, पंवार और सीरी है।

इनके अतिरिक्त भारत में अनेक प्रकार की भैंसो की नस्लें भी मिलती है, जैसे मुर्रा, महसाना, नीली, सूरती, पढारपुरी, तैलंगाना, एलिचपुरी, परलाकीमेदी, रावी और जाफराबादी। ये नस्ल अधिक दूध देने वाली होती है। जाफराबादी भैंस से

एक ही दुग्धकाल में कभी-कभी १० हजार पौंड तक दूध मिलता है जबकि साधारण नस्ल की भैंस ५ हजार पौंड तक ही दूध देती है।



चित्र १०९—भैंसों की मुख्य नस्लें

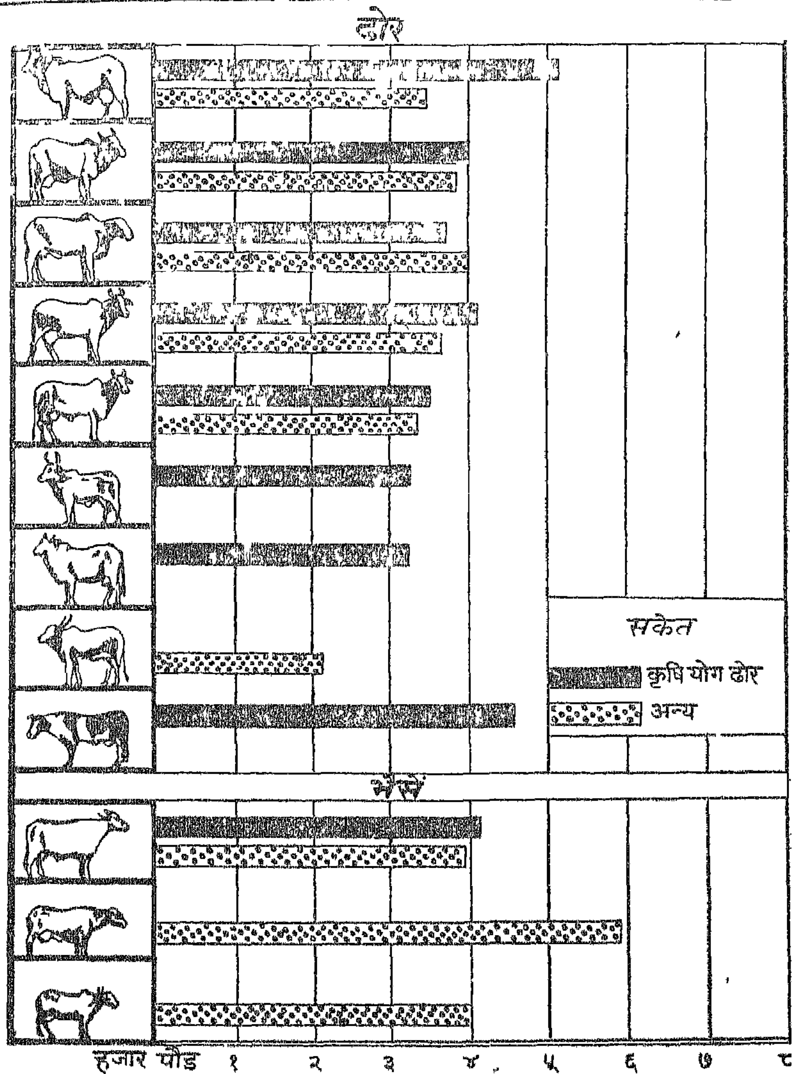
भारत में सबसे अधिक भैंस उत्तर प्रदेश २१% (८९ लाख), मद्रास १५% (६३ लाख) और बम्बई ९% में पाई जाती है। भैंस पालने वाले अन्य राज्य राजस्थान, बिहार और आंध्र है।

नीचे की तालिका में भारत में मिलने वाली मुख्य नस्लें बताई गई है :—

राज्य	गाय	भैंस
आंध्र—मद्रास मैसूर	देवनी (उत्तर-पश्चिमी आंध्र), ओंगोल (ओंगोल क्षेत्र, नेलोर तथा गंतूर जिले)	टोडा, तेलगाना, परलाकीमेडी, एलिचपुरी

राज्य	गाय	भैंस
	कृष्णावैली (कृष्णा-घाटी और पश्चिमी आंध्र में) **हलीकर** (मैसूर के हसन, जन्कर और मैसूर जिले में) **अमृतमहल** (मैसूर) **कांग्याम** (मद्रास के कोयम्बट्टूर जिले में) **बरगूर** (कोयम्बट्टूर के बरगूर तालुक में)	
गुजरात-महाराष्ट्र	**गिर** (सौराष्ट्र) **डांगी** (आकोला ताल्लुक, सोनकद ताल्लुक, नासिक, थाना, कोलाबा जिले तथा डांग जिला)	**जाफराबादी** (द० सौराष्ट्र) **सूरती** (गुजरात के चारोतर-क्षेत्र, खैरा, बड़ोदा और नाड़ियाद जिले), महसाना (बड़ौदा)
	गोआलो (नागपुर जिला) **कंकरेज** (कच्छ के रन के दक्षिण-पूर्व से लगाकर दक्षिण में धोलका (अहमदनगर) और पूर्व में दीसा से राधानपुर तक) **खिलारी** (शोलापुर, सतारा जिला, सतपुड़ा श्रेणी एवं दक्षिणी महाराष्ट्र के भाग)	**नागपुरी** (नागपुर, वर्धा)
मध्य प्रदेश	**गोली, मालवी** (मालवा के पठार के सूखे भागों में तथा आंध्र के उत्तर-पूर्वी भागों में); **निमारी** (निमाड़ और खारगाँव जिले में)	**भदवारी** (गवालियर) **नागपुरी**
उत्तर प्रदेश	**मेवाती** (मथुरा की कोसी तहसील में); **पोंवार** (पीलीभीत और लखीमपुर खेरी जिले); **कन्कथा** (बांदा जिला), **खैरीगढ़** (खैरीगढ़ परगना)	**भदवारी** (आगरा, इटावा जिले)
पंजाब—दिल्ली	**हरियाना** (रोहतक, हिस्सार, गुड़गांव, कर्नाल जिले, दिल्ली, जिंद, नाभा, पटियाला), **शाहीवाल** (द० पंजाब)	**मुर्रा** (रोहतक, हिसार, गुड़गाँव, पटियाला नाभा जिंद जिले) **नीली** (फीरोजपुर)
	नागोरी (उत्तर-पूर्व जोधपुर जिला) **हरियाना** (जयपुर, जोधपुर, लोहारू,) अलवर, भरतपुर जिले), **मेवाती** (अलवर, भरतपुर) **रथ** (अलवर, दक्षिणी राजस्थान) **थारपरकार** ।	

राज्य	गाय	भैंस
बिहार	बचौर (बचौर परगना, दरभंगा, सीतामढी, मुजफ्फरपुर, चम्पारन जिला)।	



चित्र ११०—विभिन्न नस्लो का दूध उत्पादन

उपरोक्त चित्र मे (ऊपर से नीचे) मुख्य नस्लो के नाम क्रमश इस प्रकार है :

साहीवाल, लालसिंधी, गिर, थारपरकर, हरियाना, ककरेज, ओंगोल, अमृत महल, मिश्रित नस्ल, मुर्रा, नीली और उत्तम भैंस।

घी दूध आदि (Dairy Products)

भारतीय पशु बहुत ही कम दूध देते हैं। भारत में दूध की वार्षिक उत्पत्ति ५२ करोड़ मन है। इसमें से २४ करोड़ मन गाय का; २७ करोड़ मन भैंस का और शेष बकरी का दूध होता है। यह अनुमान लगाया गया है कि दूध पैदा करने वाले देशों में भारत का दूसरा स्थान है। भारत में ब्रिटेन का चार गुना, डेनमार्क का ५ गुना, आस्ट्रेलिया का ६ गुना तथा न्यूजीलैंड का ७ गुना दूध प्राप्त किया जाता है। किन्तु देश की जनसंख्या के लिये यह मात्रा भी बहुत कम है। यहाँ प्रति व्यक्ति पीछे ५५ औंस दूध प्रयोग में आता है। जबकि न्यूजीलैण्ड में प्रति व्यक्ति दूध का उपयोग ५६ औंस; आस्ट्रेलिया में ४५ औंस; नार्वे में ४३ औंस; डेनमार्क में ४० औंस; इंगलैण्ड में ३० औंस; कनाडा में ३५ औं०; सं० रा० अमरीका में ३३ औं०; जर्मनी में ३५ औं०; फ्रांस में ३० औं०; स्वीजरलैण्ड में २९ औं० तथा हालैण्ड और बेल्जियम में २५ औं० है।

भारत के विभिन्न राज्यों में तो दूध का उपयोग तो और भी कम है। उदाहरण के लिये आसाम में १·२ औं०; मद्रास में २·४४ औं०; बंगाल में २·६४ औं०; बम्बई में ३·०१ औं०; उत्तर प्रदेश में ६·९७ औं०; मध्य प्रदेश में ४·४ औं०; बिहार में ४·३९ औं०; उड़ीसा में २·४६ औं०; पंजाब में १३·६५ औं०; राजस्थान में ९·० औं०; केरल में १·३ औं० और मैसूर में ३ औंस दूध प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपयोग में आता है। भारत में दूध का उपयोग बहुत ही कम है। बड़े दुख का विषय है कि सबसे अधिक पशु भारत में मिलते हैं किन्तु दूध देने वाले पशुओं की दूध देने की क्षमता बहुत ही कम है। भारतीय गाय और भैंस की दुग्ध उत्पत्ति क्रमशः ४१३ पौं० और ११०१ पौं० प्रतिवर्ष है। इस संख्या की तुलना में प्रति वर्ष प्रति पशु पीछे डेनमार्क में ६०६३ पौं०; इङ्गलैण्ड और वेल्स में ६२२ पौं०; आस्ट्रेलिया में ३९२४ पौं०; जर्मनी में ५३०५ पौं०; कनाडा में ४४९७ पौं०; हालैंड में ७७५५ पौं०; स्वीटजरलैंड में ६०१३ पौं०; न्यूजीलैंड में ५६२२ पौं०; सं० रा० अमरीका में ५०२६ पौं०; जापान में ५८५७ पौं०; मिश्र में ४४९७ पौं०; स्वीडन में ५७५४ पौं०; तथा फ्रांस में ३५३७ पौंड दूध उत्पन्न होता है।

नीचे की तालिका में भारत में दूध और दूध की वस्तुओं का उत्पादन बताया गया है :—

भारत में दूध और दूध की वस्तुओं का उत्पादन (१९५६)—हजार मनों में

राज्य	दूध का उत्पादन	घी	मक्खन	दही	खोआ	बर्फ की मलाई	मलाई	अन्य पदार्थ
आंध्र	५३२३६	१४२१	२३	५८२३	६४	६७	११	—
आसाम	३४३२	४४	१०	१५८	६९	—	—	—
बिहार	५८२६०	१०९५	१५७	६१२१	१७५	—	—	—
गुजरात + महाराष्ट्र	४७६८४	१३८४	१६८	३१८०	१६२	३५५	१४	—
जम्मू-कश्मीर	३७११	७८	१	४४३	५	—	—	—
केरल	५४९१	९१	२	५१८	३	—	१	—
मध्य प्रदेश	३५१२७	९४६	७६	२०८७	१९६	३७	७	—
मद्रास	२२४८८	३६२	८	२८४८	११	२८	२	—
मैसूर	२०१३२	४२२	१५५	१४७२	१३१	९८	१०	—
उड़ीसा	७४७२	१४९	....	७६	९	—	४	—
पंजाब	६५९७९	१३४३	१०२२	५२७१	१४२	५७७	७६	—
राजस्थान	३६०४६	१५०६	१३३	१०८६	१२८	—	२२	—
उत्तर प्रदेश	१४४५८२	२५२१	३६२	११०६१	३७५९	१५१८	२१६	—
पश्चिमी बंगाल	१९४३५	८०	५३	८०६	६९	९६	१०	३९८
दिल्ली	२०९१	१६	२	६२	८	१४	—	—
हिमाचल प्रदेश	२३७७	९९	२	४०	९	—	—	—
भारत का योग	५२८२५७	११५६८	२१७५	४१३१२	४९५६	२७९८	३७५	३९८

भारत में सबसे अधिक दूध का उत्पादान उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, आंध्र, गुजरात और मध्य प्रदेश में होता है। भारत में जितना दूध उत्पन्न होता है उसका ⅓ भाग ताजा दूध के रूप में; ५२% घी तथा १८% खोआ, रबड़ी, मक्खन, दही, मलाई आदि बनाने में काम में लिया जाता है।

घी उत्पन्न करने वाले मुख्य राज्य उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आंध्र, गुजरात, पंजाब और बिहार हैं। अनुमानतः समस्त घी की उत्पत्ति का ¾ उत्तरी और पश्चिमी भारत में तथा ¼ शेष भारत में होता है। कुल उत्पादन का ३० प्र० श० गाँवों में ही खप जाता है, केवल ७० प्रतिशत घी नगरों के लिये प्राप्त होता है। भारत में प्रति वर्ग मील ९ मन घी, गांव में २१ मन और प्रति १०० मनुष्यों के पीछे ३½ मन घी उत्पन्न होता है। घी का निर्यात ब्रह्मा, मलाया, पूर्वी अफ्रीका आदि देशों को किया जाता है। घी का आयात नेपाल और पाकिस्तान से होता है।

बड़े पैमाने पर काम करने वाली दुग्धशालाएँ अभी बहुत ही सीमित हैं। अलीगढ़ की 'कैवेन्टर्स' (Kaventers), आगरा की 'राधास्वामी संस्था', आनन्द की *'पोलसन' (Polson)*, मैसूर की *'रायनकेरा' प्रमुख दुग्धशालाएं हैं। अन्य दुग्ध*-शालाएं उटकमंड, आगरा, मेरठ, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर और वाराणसी में हैं। दिल्ली में केन्द्रीय डेयरी; कलकत्ता के निकट हरिंगघट्टा; मद्रास के निकट माधवरम और बम्बई के निकट आरे में नई डेयरियाँ हैं। अन्य नई डेयरियाँ अब अगरतला, भोपाल, कोयम्बटूर, गया, त्रिवेन्द्रम, चंडीगढ़, पटना, जयपुर, हिस्सार, लखनऊ, आगरा, नैलोर, कटक और श्रीनगर में खोली जा रही हैं।

पशुओं की अवनति के कारण :—

भारत में पशुओं की हीन अवस्था और निम्न मात्रा में दुग्ध उत्पादान के निम्न कारण हैं :—

(१) भूमि पर पशुओं का भार बहुत अधिक है इससे उनके लिए जनसंख्या के भार से बची निकृष्ट भूमि से आवश्यक चारा प्राप्त नहीं होता। उष्ण-कटिबन्धीय जलवायु के कारण गोचारण भूमियाँ अविकसित हैं। प्रति १०० एकड़ बोई गई भूमि पर यहाँ १०० पशु पाले जाते हैं जबकि हालैंड और मिश्र की प्रति १०० एकड़ जोती बोई गई भूमि पर क्रमशः ३८ और २५ पशु ही पाले जाते हैं। उचित चारे का प्रबन्ध न होने पर दूध देने वाले और हल खींचने वाले पशुओं की शक्ति में ह्रास होता जाता है। कुछ गायों की जनन-शक्ति चारे के अभाव में कम हो जाती है।

(२) पशुओं को उचित मात्रा में पौष्टिक भोजन नहीं मिलता। साधारणतः मकई, जई और जौ आदि अन्न निर्धन कृषकों का मुख्य भोजन है अतः पशुओं को केवल सूखी फसलों के डंठलों से प्राप्त कुट्टी और भूसे पर ही निर्भर रहना पड़ता है। मार्च से जून तक चारे का भी अभाव हो जाता है। पशुओं के लिए केवल ४% बोई जाने वाली भूमि पर चरी, बरसीम, रजका आदि बोया जाता है जबकि, इङ्गलैंड में २५% तथा मिश्र में १६% बोई जाने वाली भूमि पर पशुओं के लिये चारा अथवा अन्न उत्पन्न किया जाता है।

(३) निर्धन और अशिक्षित किसान वैज्ञानिक रीति द्वारा पशु-पालन क्रिया से अनभिज्ञ हैं। चारे की कमी के कारण उत्तम और निकृष्ट सभी प्रकार के पशुओं को एक ही चरागाह में चराया जाता है इससे निम्न श्रेणी के सांड़ों के सम्पर्क में आने के कारण

गायें दुर्बल तथा निकृष्ट श्रेणी के ही बछड़ों या गायों को जन्म देती हैं। इससे निरन्तर पशुओं की जाति बिगड़ती जा रही है। न केवल उत्तम सांड़ों की ही कमी है वरन् कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों का भी अभी तक अभाव है।

(४) गायों और भैंसों को एक ही साथ चराये जाने, गन्दा पानी पीने और सड़ी गली वस्तुओं को खाने और गन्दे तथा अँधेरे कमरों में रहने के कारण वे अनेक रोगों से पीड़ित रहती हैं। वर्षा के दिनों में इनमें पर और मुँह की बीमारियाँ हो जाती हैं। ये रोग संक्रामक होते हैं जो एक पशु से शीघ्र ही दूसरे को फैलते हैं। इससे बड़ी संख्या में पशुओं का विनाश हो जाता है।

पशु सुधार के उपाय :—

अत: पशु सुधार के लिए पहला कदम यह होना चाहिये कि चारे के उत्पादन में यथाशक्ति वृद्धि की जाय और वर्तमान उत्पादन की उचित सुरक्षा से गायों के लिये काफी चारा प्राप्त किया जाय। चारे की कमी सम्बन्धी समस्या को हल करने के लिए हमें अन्य समस्त साधनों का उपयोग करना चाहिये। ये साधन निम्नलिखित हैं : —

१. वर्षा काल में उत्पन्न होने वाली सूखी घास तैयार करने का काम देश भर में आरम्भ किया जाय। (२) जंगल विभाग की आधीनता में बहुत-सी घास उत्पन्न होती है जिससे पशुओं के काम आने लायक घास का चारा बनाया जा सकता है। (३) ऐसी फसलें बोई जांय जिससे सिर्फ पोषक तत्व वाला चारा ही न मिले बल्कि बोई जाने वाली भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढ़े। ऐसी फसलें मटर और बरसीम घास है। घास पत्ते जो सबसे ज्यादा पौष्टिक हों और जिनका प्रति एकड़ उत्पादन भी काफी हो लगाये जांय जिससे किसान को उतनी ही जमीन से अधिक चारा मिल सके और रुपया देने वाली फसल के लिये भी काफी जमीन रह जाये। (४) तिलों की खली भी पशुओं को खिलाई जा सकती है। (५) भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधानशाला (Veterinary Research Institute) के प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि आम की गुठली की गिरी, मूँज, काँस, जामुन की गुठली, बबूल की फली, मूँगफली के छिलके आदि में पोषक तत्व अच्छी मात्रा में होते हैं और उन्हें पशुओं को खिलाया जा सकता है। (६) धान में पोषक तत्वों की जो कमी होती है उसे हड्डी की भस्म मिलाकर पूरा किया जा सकता है। (७) यदि मिली जुली खेती (Mixed farming) की जा सके तो पशुओं के चारे का प्रबन्ध भली भाँति किया जा सकता है। (८) यदि चारे से छिलके उतार लिये जाँय तो ३० प्रतिशत व्यर्थ जाने वाले चारे को बचाया जा सकता है। (९) ऐसे पेड़ों को लगाया जाय जिनकी पत्ती व छाल पशुओं को खिलाई जासके; और (१०) देश में मछली मारने के उद्योग का विकास किया जाय ताकि पशुओं को मछली से तैयार किया हुआ पोषक खाद्य दिया जा सके।

२. अभी चलने वाले अविचारपूर्ण संयोग (matting) के कारण हमारे पशुओं की नस्ल बहुत गिर गई है। कुछ एक गिरोह की चुनी हुई गायों में, जहाँ साँडों का चुनाव अच्छा हुआ है और संयोग व्यवस्थित रूप से कराया गया है, यह पाया गया है कि दूध का उत्पादन २५ वर्ष में ही चौगुना हो गया है। मामूली ग्रामीण गायों का उत्तरोत्तर उच्च कोटि के साँडों से संयोग कराकर ही स्थायीरूप से नस्ल सुधारी जा सकती है, यद्यपि ऐसा करने में समय काफी लगेगा।

पशु धन में सुधार करने के लिए वैज्ञानिक ढंग पर पशुपालन होना आवश्यक है। कितने ही सरकारी फार्मों पर विभिन्न नस्ल के साँड तैयार किये जाते हैं और

फिर उन्हें नस्ल सुधारने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में वितरित कर दिया जाता है। प्रजनन के लिए प्रतिवर्ष लगभग १,०००,००० साँड उपलब्ध होते हैं परन्तु यह संख्या देश की आवश्यकता का एक बहुत ही थोड़ा भाग पूरा करते हैं। इसलिए नस्ल की सुधार के लिए ये उपाय किये जा सकते हैं :—(क) फार्म से प्राप्त साँडों को एक विशेष क्षेत्र में इकट्ठा किया जाय, (ख) ऐसी नस्लों का विकास करने का प्रयत्न किया जाय जिससे दुधारू गायों के साथ सबल बैल भी प्राप्त हो सकें। (ग) कृत्रिम ढङ्ग से गर्भाधान (artificial insemination)—विदेशों में यह प्रणाली सफल हुई हैं और भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधानशाला में हुए प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हुई है कि उसे भारतीय परिस्थितियों में सफलता मिल सकती है।

३. चराई और नस्ल सुधार के अतिरिक्त अच्छी व्यवस्था भी किसी पशु उन्नति के कार्य में प्रधान कार्य होना चाहिये। गाय एक जीती जागती मशीन है और उससे अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिये उसकी आवश्यकताओं पर सतत ध्यान देना आवश्यक है। बिमार गाय न तो अच्छा दूध ही दे सकती है और न अच्छे बैल ही। अतः उन्हें स्वास्थ्य रखने के लिए रहने की उचित व्यवस्था, परिश्रम और ताजे पानी की आवश्यकता होती है। हमारे गांव इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए बिल्कुल ही साधनहीन हैं।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत कार्यक्रम :—

पशुओं की दशा सुधारने के लिये सरकार की निम्नलिखित मुख्य योजनायें हैं :—

(१) **गो-सदन** :—बूढ़ी, अशक्त, दुर्बल और बेकार मवेशी को अच्छी नस्ल के पशुओं से अलग रखने की योजना है। जिसका मुख्य उद्देश्य एक ओर भारतीय जनता की इस माँग पर ध्यान देना है कि कसाई घर (Slaughter houses) बन्द किऐ जायें और। दूसरी ओर व्यर्थ पशुओं के द्वारा चारे और कृषि तथा नस्ल की हानि को रोकना। प्रथम पंचवर्षीय योजना-काल में लगभग ३२०,००० मवेशी के लिए ९७ लाख रुपये की लागत से १६० गो-सदन स्थापित करने का प्रस्ताव था और यह कि प्रत्येक केन्द्र पर नर (male) पशुओं को बधिया (Costerate) किया जाय। प्रथम योजना काल के अन्त (१९५६) तक कुल लगभग आठ हजार मवेशियों के लिए २२ गो-सदन ही स्थापित हो सके। द्वितीय योजना-काल में लगभग ३० हजार मवेशियों के लिये ५० गो-सदन स्थापित करने का प्रस्ताव है। अब तक २७ गोसदन खोले जा चुके हैं।

(२) **गोशालाऐं** :—द्वितीय योजना में यह प्रस्ताव है कि भारत की लगभग ३,००० गोशालाओं में से लगभग ३५० गोशालायें चुनी जांय जहाँ पशुओं की दशा सुधारी जाय। इन गोशालाओं के व्यर्थ और अनुत्पादक मवेशी को गो-सदनों में भेज दिया जाय। सरकार इन गोशालाओं में अच्छी नस्ल के पशु भी रखेगी, परन्तु यह आवश्यक कर दिया गया है कि संख्या में इतने ही अच्छी नस्ल के पशु गो-शालायें स्वयं रखें। १९५९-६० के अंत तक १९३ गोशालाओं का सुधार किया जा चुका है।

(३) **ग्राम-केन्द्र योजना** (Key Village Scheme) :—प्रत्येक ग्राम-केन्द्र के अन्तर्गत तीन या चार गाँवों की तीन साल से अधिक अवस्था वाली लगभग ५०० गायें सम्मिलित की जाती हैं। इस योजना का मुख्य उद्देश्य नस्ल सुधार करना है। इस

योजना के द्वारा निर्धारित चुने हुये ग्रामों में नस्ल का कार्य चुने हुए सांड़ों द्वारा कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों द्वारा किया जाता है। अन्य बैलों को बधिया कर दिया जाता है या हटा दिया जाता है। कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र लगभग ५००० गांवों के लिये काफी होता है। नस्ल सुधारने के अतिरिक्त ग्राम केन्द्र योजना बछड़ों के पालन, चारे की व्यवस्था तथा पशुओं से मिलने वाले पदार्थों की बिक्री का सहकारी ढङ्ग पर प्रबन्ध करती है। प्रथम योजना काल (१९५१-५६) में ६०० ग्राम केन्द्रों और १५० कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों की स्थापना हुई। द्वितीय योजना में १२५८ ग्राम केन्द्र, २४५ कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र और २५४ विस्तार केन्द्र स्थापित होंगे। इस योजना के द्वारा लगभग २२,००० अच्छी कोटि के सांड ९५०,००० अच्छे बैल और १० लाख अच्छी गायें प्राप्त हो सकेंगी। १९५९-६० के अंत तक १०३ वर्तमान गर्भाधान केन्द्रों का विस्तार किया जा चुका है और १९१ नये गर्भाधान केंद्र तथा ४५ विस्तार केंद्र स्थापित हो चुके हैं।

(३) **पशुओं की बिमारियों की रोक** :—प्रथम योजना काल में पशुओं की बिमारियों को रोकने के लिये सन् १९५१ में पशु चिकित्सालयों की संख्या २००० थी सन् १९५६ में २६५० हो गई। द्वितीय योजना के अन्त (१९६१) तक १९०० पशु-चिकित्सालय और बढ़ाये जायेंगे।

बकरियाँ (Goats)

बकरी गरीब की गाय समझी जाती है। इससे दूध, चमड़ा और बाल मिलते हैं। इसका दूध स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा लाभदायक माना जाता है। भारत में ५.६ करोड़ बकरियाँ पाई जाती हैं जिनसे लगभग १६०,००० टन मांस की प्राप्ति होती है। इनसे प्रति वर्ष लगभग २.२ करोड़ खालें और ७० लाख पौंड वस्त्र प्राप्त होते हैं, जिनका मूल्य ६.९ करोड़ और ७२ लाख करोड़ रुपया अनुमानित किया गया है।[1]

बकरियाँ भारत में सभी क्षेत्रों में पाई जाती हैं किन्तु इनका पालन विशेषतः दो क्षेत्रों में होता है :—

पहला क्षेत्र सौराष्ट्र और गुजरात से आरम्भ होकर पूर्वी राजस्थान होता हुआ पंजाब तक फैला है। पूर्वी राजस्थान से यही क्षेत्र पूर्वी उत्तर-प्रदेश और उत्तरी बिहार में होता हुआ बंगाल तक चला गया है।

दूसरा क्षेत्र महाराष्ट्र, आन्ध्र, मैसूर, और मद्रास राज्यों में फैला है।

भारत में बकरियों की कई उत्तम नस्लें मिलती हैं जिनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) **हिमालयी बकरी** (Himalayan Goat) :—इसके बाल सफेद होते हैं। यह मुख्यतः पश्चिमी क्षेत्र में हिमालय प्रदेश, पंजाब और काश्मीर के राज्यों में भार-वहन करने और दूध के लिए पाली जाती हैं। हल्की किस्म का पश्मीना ऊन इन्हीं से प्राप्त होता है। विभिन्न स्थानीय भागों में इन्हें **चम्बा, गड्डी** और **काश्मीरी** नामों से पुकारते हैं। इन बकरियों पर बाल अधिक और मुलायम होते हैं। औसतन एक बकरी से ३ औंस तक बाल मिल जाते हैं। हिमालय से दूर पश्चिमी मैदान में अन्य नस्लों की बकरियाँ भी मिलती हैं जिनमें मुख्य **मारवाड़ी** और **महसाना** नस्ल हैं।

(२) **जमुनापारी** (Jamunapari) :—इस नस्ल की बकरियों का मुख्य आवास क्षेत्र जमुना, गंगा और चम्बल नदियों के बीच की भूमि है। इनसे भी भार ढोने और

1. M. S. Randhawa, Op. Cit; p. 311

दूध प्राप्त करने का काम लिया जाता है। इनका रंग सफेद तथा भूरा होता है और इनके कान साधारणतः १० से १२ इंच लम्बे होते हैं। इनसे दुग्धकाल में साधारणतः ८०० से १२०० पौंड तक दूध मिलता है।

(३) बड़बबारी (Barwari) :—इस प्रकार की नस्ल के बाल छोटे और सफेद या ललाई लिए हुए होते हैं। दिल्ली, गुड़गाँव और करनाल जिलों में मुख्यतः पाई जाती है। अनुकूल परिस्थितियों में इनसे २ से ३ पौंड दूध प्रति दिन मिल जाता है।

भेड़ और बकरी

एक विंदु = ३०००० ढोर

चित्र १११—भेड़-बकरियों का वितरण

सूरती (बम्बई), बङ्गाली (बंगाल), कोची (आन्ध्र), मालबारी (केरल) कच्छी (कच्छ), छापर (राजस्थान) आदि अन्य मुख्य नस्लें हैं।

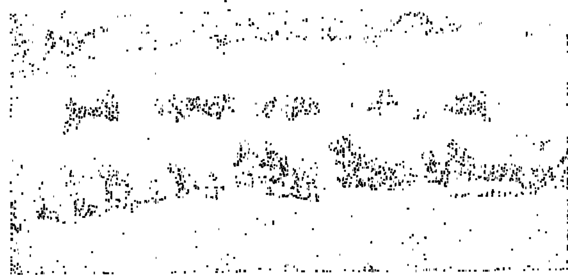
भेड़ें (Sheep)

भारत में भेड़ों का विस्तृत क्षेत्र २५ से ४० इंच वर्षा वाले पहाड़ी भागों में है जहाँ उत्तम चरागाह पाये जाते हैं। भारत में लगभग ३·९ करोड़ भेड़ें हैं। ये अधिकतर शीतल और सूखे स्थानों में मिलती हैं। गर्म और नम भागों में इनकी संख्या बहुत ही कम है क्योंकि इस जलवायु में इनको खुर का रोग (Foot-disease) हो जाता है और यद्यपि इनकी ऊन अच्छी होती है किन्तु मांस की दृष्टि से इनका कोई स्थान नहीं होता। भेड़ों को दो दृष्टि से पाला जाता है : (१) उनसे बढ़िया किस्म का ऊन प्राप्त किया जाता है। औसतन एक भेड़ से १½ पौंड ऊन प्रति वर्ष मिल जाता है। ऊन का उत्पादन देश में लगभग ६·५ करोड़ पौंड प्रति वर्ष का होता है। किन्तु, इसमें से अधिकांश ऊन मोटा और खुरदरा तथा रंगीन ही है। इसके निर्यात से प्रति वर्ष लगभग १० करोड़ रुपये की प्राप्ति होती है।

(२) भेड़ें मांस के लिए भी पाली जाती हैं किन्तु इसकी मात्रा बहुत ही कम होती है। भेड़ों के मांस की वार्षिक प्रप्ति ९० करोड़ पौंड है।

उत्तरी भारत की भेड़ें दक्षिणी भारत की भेडों की अपेक्षा अधिक अच्छी और सफेद बालों वाली होती है। दक्षिण की भेड़ों का रंग गहरा होता है। दोनों ही क्षेत्रों की ऊन छोटे रेशेवाली होती हैं।

भेड़ें पालने वाले मुख्य क्षेत्र पंजाब में लुधियाना, अमृतसर, अम्बाला, हिस्सार और पटियाला जिले; ऊत्तर-प्रदेश में गढ़वाल, अलमोड़ा और नैनीताल जिले; मद्रास में कर्नूल और कोयम्वट्टूर जिले; मैसूर में बलारी; महाराष्ट्र में खानदेश; सौराष्ट्र एवं गुजरात क्षेत्र और राजस्थान में जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर जिले है।



चित्र ११२—दक्षिणी भारत में नीलगिरी भेड़ों का एक रेवड़

भारत में भेड़ों की कई नस्लें पाई जाती हैं, किन्तु उत्तम नस्लें काश्मीर, उत्तर-प्रदेश और पंजाब राज्य से प्राप्त होती हैं। हिमालय के पर्वतीय ढालों पर ९,००० से १२,००० फीट की ऊँचाई तक चरागाह पाये जाते हैं। ग्रीष्मकाल में गड़रिये भेड़ों को यहाँ चराने के लिए ले जाते हैं किन्तु शीतकाल के प्रारम्भ होते ही पुनः घाटियों में लौट आते हैं। जो भेड़ें निचले ढालों पर ही चरती है उनका ऊन खुरदरा होता है। उत्तम प्रकार का ऊन उन भेड़ों से प्राप्त किया जाता है जो शुष्क और ऊंचे भागों में पाली जाती हैं। हिमालय के पूर्वी जिलों में—चम्बा, कुलू और काश्मीर की

घाटी में—उमदा बालों वाली भेड़ें पाली जाती है। काश्मीर की गुरेज तहसील में गुरेज नस्ल की भेड़ें पाली जाती हैं। ये बिना सींग वाली होती है। इन पर ऊन की मात्रा भी अधिक होती हैं। यह ऊन बिलकुल सफेद होता है। औसतन एक भेड़ से वर्ष भर में ४ से ६ पौंड ऊन मिल जाता है। काश्मीर की ही करणा तहसील में ४ से १५ हजार फीट की ऊंचाई पर करणा नस्ल मिलती है, जिसके सींग घुमावदार, चेहरा लम्बा और नाक उभरी हुई होती है। काश्मीर हिमालय के निचले ढालों पर '**भकरावाल**' नस्ल मिलती है। इसके बाल छोटे और खुरदरे होते हैं। जम्मू जिले की किश्तर और भादरवाह तहसीलों में **गड्डी** या **भादरवाह** नस्ल पाई जाती है। इस प्रकार की भेड़ें कुलू और कांगड़ा घाटी में भी मिलती हैं। इनके बाल सफेद और भरे तथा चमकीले होते हैं। इनका उपयोग शाल और कम्बल बनाने में किया जाता है।

हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी भागों में **रामपुर-बुशायर** नस्ल मिलती है जो गर्मियों में तिब्बत की ओर चली जाती है और सर्दियों में जमुना, टोंस और सतलज नदियों की घाटी की ओर लौट आती हैं। प्रति भेड़ से ३ से ४ पौंड तक ऊन प्राप्त होता है।

भारत के पश्चिमी शुष्क क्षेत्रों में ऐसी भेड़ें अधिक पाली जाती हैं जिनके बालों का उपयोग गलीचे आदि बनाने के काम आता है। राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश की भेड़ें अधिक गर्मी और कठोर शीत को सह सकती हैं तथा ये छोटी घास पर ही निर्भर रह जाती हैं।

पश्चिमी भारत में भेड़ों की मुख्य मुख्य जातियां ये है :—

(१) **बीकानेरी** (Bikaneri)—जो बीकानेर के सूखे भागों में और पंजाब के रोहतक, लुधियाना, गुड़गाँव, फिरोजपुर और अम्बाला जिले में पाई जाती है। ये भेड़ें बहुत तन्दुरुस्त होती हैं। इनका ऊन लम्बा और खुरदरा होता है। प्रति भेड़ से ४ से ९ पौंड तक ऊन मिलता है। यह ऊन अधिकतर गलीचे बनाने के काम में आता है। यह ऊन बड़ी मात्रा में इङ्गलैंड और उत्तरी अमेरिका को भेज दिया जाता है।

(२) **लोही** (Lohi)—यह अधिकतर राजस्थान के दक्षिणी जिलों और अमृतसर जिले में पाई जाती है। इसके ऊन से मोटे कपड़े और कम्बल बनाये जाते हैं जिनका प्रयोग अधिकतर किसान लोग करते हैं।

(३) **मारवाड़ी** (Marwari)—राजस्थान के जोधपुर डिवीजन में काले मुँह वाली भेड़ें पाई जाती हैं जिनके बाल सफेद और मिश्रित रंग के होते हैं। इस प्रकार की भेड़ें मुख्यतः पाली और बाढ़मेर जिलों में मिलती हैं। प्रति भेड़ पीछे २ से ४ पौंड हल्के किस्म की ऊन की प्राप्ति होती है।

(४) **कच्छी** (Kutchi)—कच्छ के मरुस्थल तथा उत्तरी गुजरात में भूरे बालों वाली भेड़ें मिलती हैं जिनसे मांस, दूध और ऊन तीनों ही वस्तुयें प्राप्त होती हैं तथा जो बोझा ढोने में भी अच्छी होती हैं।

दक्षिणी भारत में मुख्यतः दो प्रकार की भेड़ें पाई जाती हैं : एक वे जिनसे केवल ऊन प्राप्त होता है और दूसरी वे जिनसे मांस मिलता है।

(५) **दक्षिणी ऊन** (Deccanise)—अधिकतर महाराष्ट्र राज्य में होता है। यह घटिया दर्जे का और काले रंग का होता है। प्रति भेड़ से लगभग १ पौंड ऊन मिलता है।

(६) नैलोर किस्म (Nellore Breed)—लगभग समस्त मद्रास में पाई जाती है। इस तरह की नस्ल से अधिक मांस मिलता है किन्तु ऊन बहुत कम होती है।

भारत की भेड़ों की नस्लें उतनी अच्छी नहीं होतीं जितनी की आस्ट्रेलिया के भेड़ों की। यहाँ पर साल में एक भेड़ से सिर्फ दो पौंड ऊन ही मिल सकती है जबकि आस्ट्रेलिया में प्रति भेड़ ७½ पौंड ऊन प्रति वर्ष देती है। भारत में प्रति वर्ष कुल ऊन लगभग ६·५ करोड़ पौंड होती है।

नीचे की तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों में ऊन का उत्पादन बताया गया है :—

१९५६ में ऊन का उत्पादन (१,००० पौंड में)

राज्य	वयस्क भेड़ों से	मेमनों से	खींच कर उतारा गया ऊन	योग
आन्ध्र	४२५७	३४४	५८०	५१८१
आसाम	—	—	—	—
बिहार	४७९	२६	२२	५२७
गुजरात+महाराष्ट्र	६९२३	४९५	१७६	७५९५
जम्मू कश्मीर	१४८१	२४८	५०	१७७९
केरल	—	—	२	२
मध्य प्रदेश	१३०३	९१	५९	१४५३
मद्रास	८८६	१४५	३०३२	४०६३
मैसूर	४०४२	३२१	१९९	४५६२
उड़ीसा	—	—	१	१
पंजाब	३५००	२६१	१८५	३९४६
राजस्थान	२६९७१	२३३६	१०९	२९४१६
उत्तर प्रदेश	३८८८	२४६	८	४१४२
पश्चिमी बंगाल	४१०	७१	५१४	९९५
हिमाचल प्रदेश	११६५	१०३	४	१२७२
अन्य*	१०	६	१००	११५
योग (भारत)	५५३१५	४६९२	५०४१	६५०५०

भारतवर्ष में फारस, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, आस्ट्रेलिया तथा नेपाल से भी ऊन आता है। आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त और सब देशों से खुश्की के रास्तों से भी ऊन आता है। आस्ट्रेलिया का ऊन उत्तम प्रकार का होता है। अतएव इसकी माँग भारतवर्ष के ऊनी कपड़ों के मिलों में अधिक होती है। तिब्बत से भी ऊँचे प्रकार की पश्मी (Pashmi) ऊन आती है जो कि दार्जिलिंग के निकट कलिंगपोंग तथा उत्तरप्रदेश के तनकपुर में इकट्ठी की जाती है।

* अन्डमान निकोबार, लक्केडिव, मिनीकोय, अमीनद्वीवी द्वीप, दिल्ली, मनीपुरा व त्रिपुरा राज्य

भारत में विभिन्न देशों से ऊन का आयात

(हजार पौंड में)

		१९५८	१९५७
कच्ची ऊन (Raw wool)			
आस्ट्रेलिया		१६१०	१३४६
न्यूजीलैण्ड		१३०८	१४५९
ब्रिटेन		६९	२५९
अन्य देश		२९	२१
	योग	३०१६	३०८५
वूल-टॉप्स (Wool tops)			
ब्रिटेन		११,१५६	११,३२३
आस्ट्रेलिया		४,४७४	४,०८९
अन्य देश		२६९	२१
	योग	१५,८९९	१६,२६६
ऊनी सूत (Wool yarn)			
इटली		२,९०६	४,१६९
ब्रिटेन		५२	१९०
जापान		३६	८१
अन्य देश		१७	१०१
	योग	३,०११	४,५४१

भारत से ऊन का निर्यात मुख्यतः ब्रिटेन, रूस, संयुक्तराज्य, बेल्जियम, फ्रांस, प० जर्मनी, नीदरलैण्ड आदि देशों को किया जाता है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

भारत से ऊन का विभिन्न देशों को निर्यात

(हजार पौंड में)

	१९५८	१९५७	११५६
ब्रिटेन	१२,९२५	१६,३९९	१५,४२४
सोवियत रूस	८,९६५	५,६९०	४,३५६
संयुक्तराज्य अमेरिका	७,२३२	८,९१६	११,०२३
बेल्जियम	१,३६१	१,७४४	१,३७२
फ्रांस	१,२२२	२,११०	८३७
प० जर्मनी	६१८	१,२७२	७५१
नीदरलैण्ड	५१०	५७३	५३२
अन्य देश	१,११३	१,१०४	७८२
योग	३३,९४५	३७,८०८	३५,०७७

रेशम के कीड़े पालना (Sericulture)

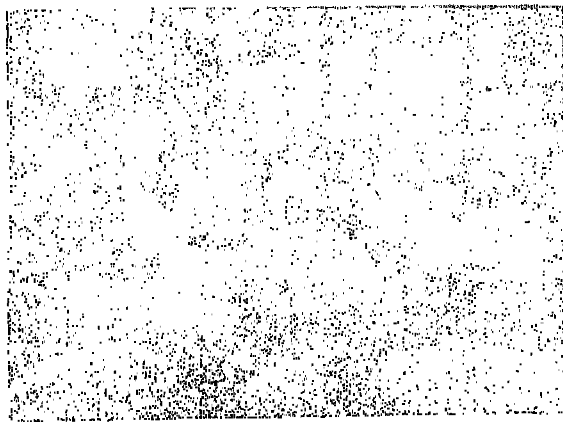
भारत में रेशम का कीड़ा भी पाला जाता है। ये कीड़े कई प्रकार के होते हैं। भारत में ये प्राय: चार प्रकार के पाये जाते हैं। शहतूत की पत्तियों पर पाले जाने वाला कीड़ा; टसर; एण्डी और मूँगा है।

टसर रेशम का कीड़ा (Silk Warm) महुआ, साल, आसन, बेर, कुसुम इत्यादि पेड़ों पर रहता है। यह हिमालय पर्वत के निचले ढालों तथा दक्षिणी प्रायद्वीप और छोटा नागपुर के जंगलों में पाया जाता है।

मूंगा ऊपरी आसाम, काश्मीर तथा नीलगिरी की पहाड़ियों पर लारेल और शहतूत की पत्तियों पर पाले जाते हैं।

अण्डी अधिकतर रेंडी के पत्तों पर पाला जाता है। चूँकि यह कीड़ा दूसरे प्रकार के कीड़ों की अपेक्षा अधिक मजबूत होता है और इसे बीमारी कम लगती हैं इसलिए यह मैदानों में भी खूब पाला जा सकता है। शहतूत के कीड़े का रेशम गहरा पीला, अण्डी का रेशम सफेद तथा मूँगे का रेशम हल्का पीला होता है।

रेशम के कीड़े ६५° फा० से लगा कर ७५° फा० तक की गर्मी में सरलता से पैदा हो सकते हैं अर्थात् इस दृष्टि से सम्पूर्ण भारत में ही किसी न किसी मौसम में रेशम के कीड़े पाले जा सकते हैं। बंगाल, बिहार तथा उत्तर-प्रदेश के कुछ भागों में और मद्रास के समुद्रतटीय जिलों में तो यह साल भर ही (अधिक गर्मी की ऋतु को छोड़ कर) पाले जा सकते हैं। जिन वृक्षों की पत्तियों पर ये पाले जाते हैं वे प्राय: प्रत्येक कटिबन्धों तथा मिट्टियों में उग सकते हैं।



चित्र ११३—काश्मीर में रेशम के कोये तैयार किये जा रहे हैं।

रेशम के कीड़ों को दो प्रकार से पाला जाता है। पहला बाहर पेड़ों पर तथा दूसरे मकानों के भीतर। बाहर पेड़ों पर जब बीज पालना होता है तो रेशम के कीड़ों का बीज व्यापारियों से खरीद लिया जाता है। रेशम का कीड़ा जब सो जाता है और चारों ओर एक रेशम की झिल्ली (Cocoon) पैदा कर लेता है उसे मौथ (Moth) या रेशम के कीड़ा का बीज कहते हैं। वह बीज मौसिम आने पर अपनी झिल्ली से बाहर निकल जाता है और थोड़े ही समय में उससे हजारों कीड़ों के अंडे पैदा हो जाते हैं।

इन अंडों को पत्तियों में रख देते हैं। नवें दिन जब इन अंडों से बच्चे उत्पन्न होते हैं तो उन्हें शहतूत की पत्तियों पर रख दिया जाता है। इन कीड़ों को पालने वाले इनकी बड़ी रक्षा करते हैं अन्यथा चिड़ियाँ और चींटियाँ इन कीड़ों को खा जाती हैं। पेड़ों के तनों को सदैव साफ रखना पड़ता है ताकि इन पर और कोई कीड़े इत्यादि न चढ़ सके। जब ये कीड़े एक पेड़ की पत्तियाँ खा लेते हैं तो उन पेड़ों की डालियों को काट कर—जिन पर की कीड़े होते हैं—डालियों को नये पेड़ों पर बाँध दिया जाता है जिससे इन डालियों के कीड़े नये पत्तों पर रेंग कर पहुँच सकें। इन्हें एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर बदलने की क्रिया तब तक करते रहते हैं जब तक कि रेशम का कीड़ा कूकून नहीं बना लेता है—रेशम में कीड़े कुछ बड़े होने पर अपने चारों ओर अपने ही मुँह से निकाला हुआ धागा लपेटने लगता है।

किन्तु जब रेशम के कीड़े को कमरे में पाला जाता है तो मौथ को प्रायः बाँस की चटाइयों पर रखा जाता है। बाहर पाले जाने वाले कीड़ों की भांति ये कीड़े अपनी झिल्ली से ९-१० दिन के पश्चात् बाहर आते हैं और ८-९ दिन के पश्चात् ही हजारों अण्डे उत्पन्न कर देते हैं तब इन कीड़ों को शहतूत के पत्तों पर रख देते हैं। कीड़े पालने वालों को इस बात का अधिक ध्यान रखना पड़ता है कि खाई हुई पत्तियों को वे वहाँ से हटा लें और उनके स्थान पर नई पत्तियों को रख दें। जिन मकानों में ये कीड़े पाले जाते हैं वहाँ रोशनी तथा हवा का भी अच्छा प्रबन्ध होना आवश्यक है अन्यथा कीड़ों को बीमारी लग जाने का भय रहता है। जब रेशम के कीड़े रेशम उगलने लगते हैं तो वे बड़े बेचैन हो जाते हैं अस्तु इन कीड़ों को वहाँ से हटा कर पर्दे पर रख दिये जाते हैं। जब कूकून तैयार हो जाते हैं तब इन्हें इकट्ठा करके बेच दिया जाता है।

भारत में रेशम के कीड़े अधिकतर तीन भागों में पाले जाते हैं : (१) मैसूर के पठार का दक्षिणी भाग और मद्रास का कोयम्बटूर जिला, (२) पश्चिमी बंगाल के मालदा, मुर्शिदाबाद, बीरभूम जिला, और (३) पंजाब के कुछ जिले और काश्मीर तथा जम्मू में।

इन क्षेत्रों के अतिरिक्त टसर कीड़ा छोटा नागपुर, उड़ीसा तथा मध्य-प्रदेश में तथा मूंगा और एण्डी कीड़े आसाम में पाले जाते हैं। इन कीड़ों से रेशम प्राप्त किया जाता है। सबसे अच्छा रेशम काश्मीर और आसाम में होता है।

भारत के प्रमुख कच्चा रेशम उत्पादक क्षेत्र

क्षेत्र	कच्चा रेशम प्राप्त किया गया (पौंड में)	क्षेत्र	कच्चा रेशम प्राप्त किया गया (पौंड में)
(i) शहतूत का रेशम		(ii) टसर रेशम	
पश्चिमी बंगाल	१,०००,०००	बिहार-उड़ीसा	२४०,०००
मैसूर	७४०,०००	मध्य प्रदेश	१६०,०००
काश्मीर	२३२,०००	उत्तर प्रदेश	१,०००
मद्रास	९०,०००	योग	४०१,०००
आसाम	६,४००	(iii) अन्य रेशम	
पंजाब	१,०००	आसाम मूंगा	१००,०००
योग	२०,६९,४००	आसाम एंडी	५०,०००
		बृहत् योग	२६,२०,४००

नीचे की तालिका में कुछ वर्षों का उत्पादन बताया गया है :—

कच्चे रेशम और रेशम के सूत का उत्पादन
(१,००० पौंड में)

वर्ष	शहतूत का रेशम	अन्य प्रकार का रेशम	रेशम का सूत
१६५१	१,६२५	७८७	१६३
१६५२	१,७५५	८०३	८०
१६५३	१,८६६	५६५	१०१
१६५४	२,३६८	८०६	१११
१६५५	२,४३१	६४८	१०७

अध्याय १०

मत्स्य पालन

(Pisciculture)

भारत जैसे विशाल देश में—जहाँ विस्तृत समुद्री किनारे, वर्ष भर पानी से भरी हुई नदियाँ और सिंचाई की नहरें तथा वर्षा-जल से पूर्ण असंख्य तालाब और झीलें हैं—मछलियाँ पकड़ने के लिए विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। भारत के विभिन्न भागों में कई प्रकार की मछलियाँ पकड़ीं जाती हैं। अब तक भारतीय समुद्रों में १,८०० प्रकार की मछलियाँ ज्ञात हो चुकी हैं किन्तु कुछ ही किस्मों की मछलियाँ यहाँ पर्याप्त परिमाण में पकड़ी जाती हैं। भारत में मछलियाँ पकड़ने के मुख्य क्षेत्र समुद्र तटीय सीमायें हैं। इनके अतिरिक्त नदियों के मुहाने, नदियाँ, सिंचाई की नहरें, बाढ़वर्ती क्षेत्र, झीलें आदि भी मछली पकड़ने के मुख्य क्षेत्र हैं। भारत की समुद्रतटीय रेखा लगभग ३,५३५ मील लम्बी है और उस समुद्र का क्षेत्रफल जो ६०० फीट गहरा है लगभग १,१५,००० वर्गमील है किन्तु इस क्षेत्रफल का बहुत थोड़ा भाग ही काम में आता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि अभी तक तट से ५–१० मील के क्षेत्र तक ही मछलियाँ पकड़ने के केन्द्र सीमित हैं। सम्पूर्ण समुद्री मछलियों के केवल ५–६%क्षेत्रफल में ही मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। नदियों के मुहाने और नदियों में भी मछली पकड़ने का काम किया जाता है। इनसे देश के भीतर काफी परिमाण में मछलियों की पूर्ति हो जाती है।

समुद्र, नदियों और झीलों आदि से पकड़ी जाने वाली मछलियों से भारत को प्रतिवर्ष लगभग ६० करोड़ रुपये की आय होती है। देश के लम्बे समुद्रतट पर लगभग ७३,४०० नावें मछली पकड़ने में व्यस्त रहती हैं और इनसे लगभग १० लाख मछुए जीविका कमाते हैं। मछलियों का वार्षिक उत्पादन १२ लाख मैट्रिक टन अनुमानित किया गया है जिसमें से ७१% समुद्र की और २९% ताजे पानी की मछलियाँ होती हैं। पौष्टिक विज्ञान के अनुसार प्रति दिन ३ औंस मछली के उपभोग की मात्रा से भारत को प्रतिवर्ष ४५·५ मैट्रिक टन की आवश्यकता होती है किन्तु उत्पादन इससे बहुत ही कम होता है। औसत भारतीय मछुआ प्रति वर्ष केवल २,५०० पौंड मछलियाँ ही पकड़ पाता है जबकि अन्य देशों में यह पकड़ ८०,००० पौंड तक की होती है।

नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का मछली उत्पादन बताया गया है:—

मछली उत्पादन (हजार टनों में)

वर्ष	समुद्री मछली	ताजे पानी की मछली	योग
१९४८	३७१	१५१	५२२
१९४९	३८१	१५६	५३७
१९५०	५७१	२३३	८०४
१९५१	५२५	२१५	७४०

वर्ष	समुद्री मछली	ताजे पानी की मछली	योग
१९५२	५२०	२१२	७३२
१९५३	५७२	२३४	८०६
१९५४	५७९	२३६	८१५
१९५५	५८६	२४०	८२६
१९५६	७०७	२८९	९९६
१९५७	८६२	६५२	१,२१४
१९५८			

भारत में मछली खाने वाली जनसंख्या सीमित है। इन मछली खानेवालों में में अधिकांश लोग निम्न जाति के हैं किन्तु बंगाल, उड़ीसा आदि के निवासी चावल के साथ मछली खाते हैं। भारत में प्रति व्यक्ति मछली का उपभोग केवल ३·९ पौंड है। इसकी तुलना में जापान में ९० पौंड, ब्रह्मा में ७० पौंड, सं० रा० अमेरिका में ४० पौंड और लंका में १६ पौंड मछली का उपभोग प्रति व्यक्ति पीछे होता है। भारत के विभिन्न राज्यों में भी उपभोग की इस मात्रा में विषमता पाई जाती है। इसके मुख्य कारण विभिन्न राज्यों में मछलियों का असमान उत्पादन, निवासियों के भोजन में विभिन्नता होना और आर्थिक स्थिति है। सौराष्ट्र और पंजाब में इसका उपभोग बहुत ही कम है। राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में मछलियाँ केवल नदी के निकटवर्ती भागों में ही पकड़ी और खाई जाती हैं। बिहार, पश्चिमी बंगाल, केरल और आसाम में सबसे अधिक मछलियाँ खाई जाती हैं। केरल में २१ पौंड, मद्रास में १२ पौंड, बंगाल में ६·७३ पौंड, आसाम में ३·४० पौंड बिहार में २·० पौंड और पंजाब में ०·०९ पौंड मछली का ही उपभोग होता है।

देश के भीतरी भागों में ताजा मछलियों और तटीय भागों में ताजा और सुखाई हुई दोनों ही प्रकार की मछलियों की माँग रहती है। उत्पादन का केवल ४३% ही ताजी मछलियों के रूप में काम में लाया जाता है। और आधे के लगभग सुखाकर काम में लाया जाता है। उत्पादन का लगभग ९२% खाने के काम में और शेष ८% औद्योगिक वस्तुयें प्राप्त करने में होता है। भारत से प्रतिवर्ष लगभग ३·६ लाख हण्डरवेट सूखी मछलियाँ निर्यात की जाती हैं जिनका मूल्य ३·७ करोड़ होता है। यह निर्यात लंका, सिंगापुर, मलाया, मारीशस, हांगकांग, ब्रह्मा, और सुदूरपूर्व के देशोंमें होता है।

मछलियों से प्राप्त गौण उपजों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दवाइयाँ हैं क्योंकि इनमें A, B और D विटामिन रहते हैं। मछलियों से तेल निकालने का कार्य व्यापारिक पैमाने पर बम्बई, मद्रास और केरल राज्य में होता है। यह तेल अधिकतर सारडीन और शार्क मछलियों से प्राप्त किया जाता है। इस तेल का उपयोग औषधि के रूप में, चमड़े को मुलायम करने में, इस्पात को चमकाने में, साबुन बनाने में तथा रोगन बनाने और जमाकर खाने में किया जाता है। नमक में भिगोकर धूप में सुखाने के बाद मछलियों को डिब्बे में बन्द कर निर्यात किया जाता है। मछलियों से बची हुई व्यर्थ वस्तुओं से खाद भी बनाई जाती है। ज्यू-फिश, सैमन, कैट-फिश आदि से 'आइसिंग ग्लास' (Icinglass) भी बनाया जाता है जिसका उपयोग शराब को शुद्ध करने में होता है। मछलियों के टुकड़े पशुओं और मुर्गियों आदि को भी खिलाये जाते हैं।

यद्यपि भारत के निकटवर्ती समुद्रों में १,८०० से भी अधिक किस्म की मछलियाँ पाई जाती हैं किन्तु इनमें से कुछ ही प्रकार की मछलियों को अभी तक पकड़ा गया है। मत्स्य विज्ञान के विद्वानों ने समुद्री मछलियों को १४ और ताजे पानी की मछलियों को ६ मुख्य भागों में वर्गीकृत किया है।

समुद्री मछलियों के अन्तर्गत सारड़ाइन, हेरिंग, ऐंकावी (Anchovies) तथा शेड (Shade) आदि मछलियों का स्थान प्रथम है। मैकरेल, हॉर्स मैकरेल तथा पर्च (Perches) का स्थान द्वितीय है। ५५% उपरोक्त दोनों प्रकार की मछलियाँ होती हैं तथा ४५% में ज्यू-फिश (Jew fish), कैट फिश (Cat-fish), भारतीय सैमन (Indian Salmon), बॉम्बे डक (Bombay Duck), मुलेट्स (Mullets), फाम्फ्रेट्स (Pomfrets), चाँदी के पेट वाली (Silver-bellies), रिबन फिश (Ribbon fish), शैल-मछली (Shell-fish), ईल (Eels) और दोराब (Dorab) आदि हैं। इन मछलियों को पकड़ने के लिए ड्रिफ्ट नेट (Drift-net), कास्ट नैट (Cast net) तथा स्थिर-जाल (Stationary net) आदि का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की मछलियाँ समुद्र तटीय भागों में से ५ से ७ मील के घेरे में ही पकड़ी जाती हैं।

ताजे पानी की मछलियों में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान कार्प (Carp) नामक मछली का है। कुल पकड़ी जाने वाली मछलियों की एक तिहाई इसी प्रकार की होती है। इनके अन्तर्गत रोहू, कतला, कालबासू, सौर, मशीर, बचुवा, चिल्वा, बारिल, मुराल और झींगल आदि मछलियाँ मुख्य हैं। कार्प के अतिरिक्त ताजे पानी में कैट-फिश, लाइव-फिश (Live-fish), प्रॉन (Prawn), मुलेट्स, फैदर-बैक (Feather Backs), पर्च, लोच (Loaches), ईल, हैरिंग और एन्कोवी मछलियाँ भी खूब पकड़ी जाती हैं। ये मछलियाँ नदियों, झीलों, तालाबों, बाँधों और नहरों में पकड़ी जाती हैं।

मछली उत्पादक क्षेत्र (Fishing Areas)—

भारत में मछली पकड़ने वाले क्षेत्रों को निम्न रूप में बाँटा जा सकता है :—

(१) समुद्री मछलियों के क्षेत्र,

(२) देश के भीतरी भागों में मछली पकड़ने के क्षेत्र,

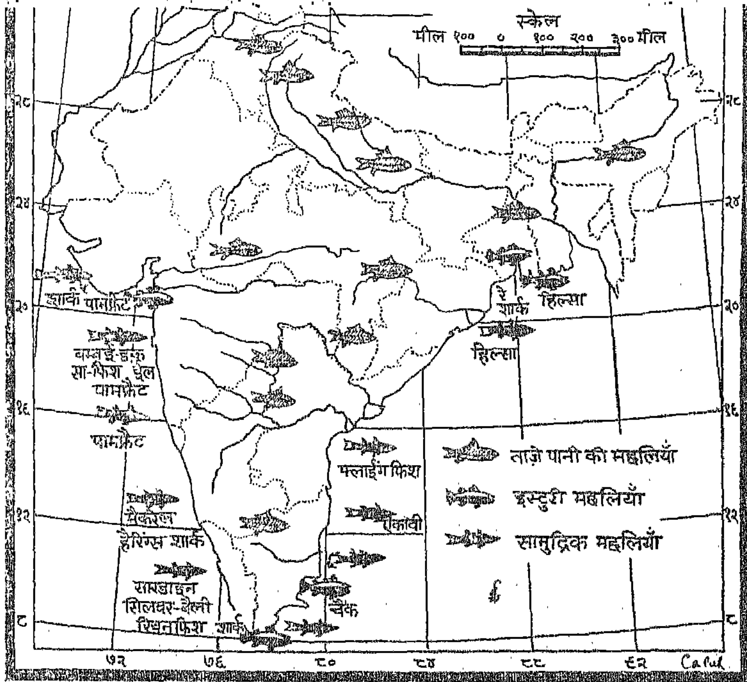
(३) नदियों के मुहाने के क्षेत्र और

(४) मोती देने वाली मछलियों के क्षेत्र।

(१) समुद्री मछलियाँ (Sea Fisheries)—

समुद्री मछलियों का उत्पादन ताजे पानी की मछलियों के उत्पादन से लगभग २½ गुना है किंतु मूल्य की दृष्टि से ताजे पानी की मछलियाँ अधिक महत्त्व की हैं। समुद्र की मछलियों का उतना मूल्य नहीं मिलता जितना ताजे पानी की मछलियों का क्योंकि मछली खपत करने वाले केन्द्रों और समुद्रतट के अधिकाँश मछली पकड़ने वाले क्षेत्रों के बीच में काफी दूरी रहती है इस कारण पकड़ी हुई मछलियाँ शीघ्र और कम खर्च में भीतरी भागों में नहीं पहुँच पातीं। इसके विपरीत ताजे पानी की मछलियां देश के भीतर हजारों छोटे छोटे मछली केन्द्रों में सीमित संख्या में ही पकड़ी जाती हैं तथा किसी भी एक केन्द्र में लाई हुई मछलियाँ आसानी से खप जाती हैं।

समुद्री मछलियाँ पकड़ने के मुख्य क्षेत्र तटीय रेखा से ५ से १० मील की सीमा तक ही सीमित हैं। समुद्री मछली के प्रमुख क्षेत्र गुजरात और सौराष्ट्र के तटीय भागों



चित्र ११४—भारत में प्रमुख व्यापारिक मछलियों के क्षेत्र

में गुजरात, कनारा और मलाबार तट व कोरोमंडल तट और मनार की खाड़ी हैं। पूर्वी और पश्चिमी किनारों पर पकड़ी जाने वाली मुख्य मछलियाँ—प्रॉन, ज्यू मछली, मैकरेल, मुलेट्स, सैमन, पॉमफ्रेट, सीर, सारडाइन, रे, उड़नी मछली, चपटी मछली हेरिंग और शार्क हैं। ये सभी मछलियाँ खाने के काम आती हैं। ये मछलियाँ सीमित मात्रा में ही पकड़ी जाती हैं क्योंकि गाँवों आदि में इनकी माँग बहुत ही कम है। नीचे की तालिका में समुद्री मछलियों का वार्षिक उत्पादन दिया गया है :—

समुद्री मछलियों का वार्षिक उत्पादन[1]

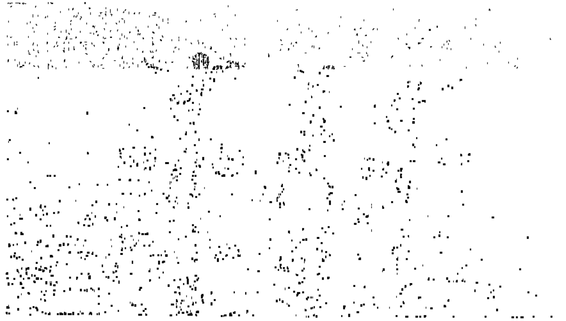
क्षेत्र	कुल उत्पादन (००० मन में)	कुल का प्रतिशत
(१) गुजरात :		
सौराष्ट्र	९९·८	०·९९
गुजरात	१०७·७	१·०७
(२) महाराष्ट्र :		
उत्तरी थाना क्षेत्र	१९३·९	१.९३
दक्षिणी थाना क्षेत्र	३८०·६	३·७८
रत्नागिरी तट	३५४·३	३·५२
उत्तरी कनारा तट	४९०·९	४·९०
(३) मद्रास:		
(१) पश्चिमी तट		५०·७
दक्षिणी कनारा तट	१६०४·०	१५·९२
मलाबार तट	२२६६·६	२२·४६
(२) पूर्वी तट		३१·९
दक्षिणी तट	१८२·४	१·८१
मध्यवर्ती तट	२७०·४	२·६७
उत्तरी तट	५४६·७	५·४१
(४) कोचीन	३०८·४	३·०६
(५) ट्रावनकोर	२४२३·०	२४·३
(६) उड़ीसा तट	३०३·०	३·२०
(७) बंगाल तट	५७७·२	५·७

इस तालिका से विदित होता है कि सभी क्षेत्र एक समान उत्पादक नहीं हैं। पश्चिमी समुद्रतट लगभग १,१५० मील लम्बा है किन्तु यहाँ कुल उत्पादन की ६६% मछलियाँ पकड़ी जाती हैं जबकि बंगाल की खाड़ी का तट जो १,७७० मील से भी अधिक है, सम्पूर्ण भारत की केवल $\frac{1}{3}$ ही मछलियाँ पकड़ता है। पश्चिमीतट पर ही कनारा और मलाबार के जिलों में कुल भारत की जोड़ का १।४ मछली पकड़ी जाती है।

भारत के समुद्रों में मछली पकड़ने का उद्योग सामयिक है। मानसून के दिनों में यह काम कम हो जाता है। समुद्र में तेज वायु और नदियों तथा तालाबों में पानी का तेज-प्रवाह व अधिकता के कारण मानसून के दिनों में मछली पकड़ने में रुकावट पड़ती है। भारत के समुद्र में मछलियाँ केवल तट के निकट ही पकड़ी जाती हैं। जब समुद्र का वातावरण शांत होता है तभी मछुए अपनी नावें समुद्रों में उतारते हैं। पश्चिमी समुद्र तट के सभी मछली पकड़ने के केन्द्रों पर दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के अन्त होने के साथ ही मछली पकड़ने का मौसम आरम्भ हो जाता है। यह मौसम किन्हीं वर्षों में अक्टूबर महीने में और किन्हीं वर्षों में नवम्बर में अपनी पूर्ण अवस्था तक पहुँच जाता है। फरवरी के महीने में इसमें कमी होने लगती है। मद्रास के पूर्वी

[1] Overseas Economic Survey : India by Rowland (1949) और Report on the Marketing of fish in the Indian Union, 1951.

तट पर परिस्थितियाँ थोड़ी भिन्न हैं क्योंकि यह भाग दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के मार्ग में नहीं पड़ता। अतः यहाँ वर्ष भर ही थोड़ी-बहुत मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मई-जून में जब पश्चिमी तट पर बहुत कम मछलियाँ मिलती हैं तब भी यहाँ काफी परिमाण में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।



चित्र ११५—पूर्वी तट पर उड़ीसा तट में मछुए मछलियाँ ले जाते हुए

समुद्री मछली पकड़ने में मद्रास और आंध्र राज्य का स्थान मुख्य है। इनकी तटीय रेखा १,२५० मील लम्बी है और पूर्वी समुद्र तट के निकट लगभग ४० हजार वर्गमील क्षेत्र में मछलियां पकड़ी जाती हैं। यहाँ मुख्य क्षेत्र समुद्रतट से ३ मील तक ही सीमित है जिनमें मद्रासी मछुए ज्यूफिश, रिबनफिश, मैकरेल, कैट-फिश तथा सारडाइन मछलियाँ अपने पुराने ढंग की नावों में पकड़ते हैं। मद्रास में पूर्वी तट पर गंजाम, गोपालपुर, विशाखापट्टनम, कोकोनाडा, मसुलीपट्टम, नैलोर, पांडिचेरी, मद्रास और नागापट्टम में असंख्य मछुए मछली पकड़ने का व्यवसाय करते हैं।

समुद्री मछली पकड़ने में महाराष्ट्र का स्थान दूसरा है। इसका मुख्य कारण तट का अधिक कटा-फटा होना तथा मौसम का साल के आधे भाग में शान्त रहना और तट के निकटवर्ती भागों में जल का छिछला होना है। महाराष्ट्र में रत्नागिरी के मछुए प्रति वर्ष बहुत मछलियाँ पकड़ते हैं जिनमें मुख्य **सोल, पामफ्रैट, भारतीय सेमन, शार्क, ज्यूफश, पर्चेस** आदि मुख्य हैं।

गुजरात में कच्छ और सौराष्ट्र के समुद्री किनारों पर भी असंख्य मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। किनारे के निकट बहुत दूर तक मछली पकड़ने वाली नावें विशेषकर सूरत और बेसीन के बीच में मछलियाँ पकड़ती रहती हैं।

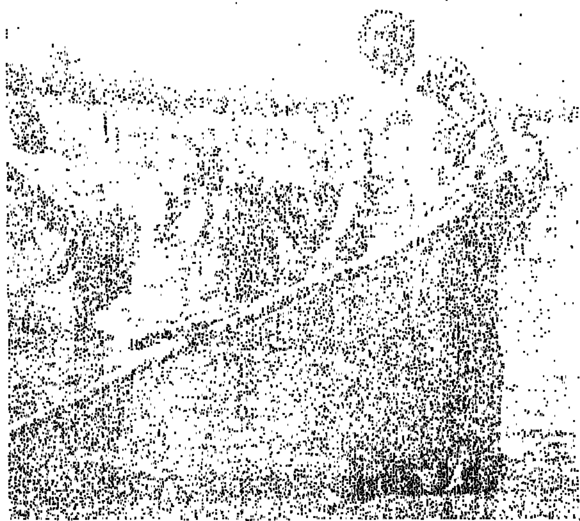
टाटा कम्पनी ने इर्नाकुलम में एक कारखाना खोला है जहाँ मछलियों का तेल निकाला जाता है तथा डिब्बों में बन्द किया जाता है। चौंदिया (कनारा जिले में) और मलवान (रत्नागिरी जिले में) नामक स्थानों में बर्फ की दो फैक्टरियां भी खोली गई हैं जिनमें मछलियों को डिब्बों में दबा कर बम्बई भेजा जाता है। बम्बई सरकार ने मछलियाँ लाने के लिए असंख्य मोटर-बोटें भी चलाई हैं।

केरल के समुद्री किनारों के निकट २०० मील की लम्बाई में ४,००० वर्ग मील क्षेत्र में मछलियां खूब पकड़ी जाती हैं किन्तु मानसून के समय समुद्र के पानी में तूफान आ जाने के कारण मछली पकड़ने वाले जहाजों को बड़ी हानि उठानी

पड़ती है । यहाँ सोर, टनी, पौमफ्रेट और मैकरेल मछलियाँ पकड़ी जाती हैं । यहाँ के मुख्य केन्द्र कोजीखोड़ और मंगलोर हैं ।

(२) ताजे पानी की मछलियाँ (Fresh-water or Riverine Fisheries)

समुद्री मछलियों के बाद ताजे पानी की मछलियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं । ताजे पानी की मछलियाँ देश के भीतरी भागों में पाये जाने वाली असंख्य नदियों, नहरों, सिंचाई के नालों, तालाब तथा पोखरों में पकड़ी जाती हैं । उत्तर प्रदेश की गंगा नदी और उसकी सहायक नदियों में, बिहार तथा बंगाल में, ब्रह्मपुत्र नदी में आसाम में तथा महानदी, ताप्ती, नर्मदा, कृष्णा और कावेरी नदियों में मछलियों की अधिकता है । ताजे पानी में मछली पकड़ने के कार्य में मौसमी दशा का काफी प्रभाव पड़ता है । उत्तरी भारत की बड़ी नदियों में वर्षा काल में सामान्यतः मछलियाँ पकड़ने का कार्य अधिक नहीं होता । इन नदियों में जब बाढ़ आना बन्द हो जाता है तो अक्टूबर से मछली पकड़ने का मौसम शुरू हो जाता है । गर्मी के महीनों में मैदानों में मछलियों की माँग कम रहती है । अतः ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में पंजाब के कुछ भागों, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में मछली पकड़ने का धंधा सामान्यतः कमजोर पड़ जाता है । तालाबों में जब पानी की सतह नीची हो जाती है उस समय उनमें मछलियाँ अच्छी तरह पकड़ी जाती हैं । मद्रास, आंध्र, मध्य प्रदेश और बंगाल में तो तालाबों और झीलों में ही अधिकाँश मछलियाँ प्राप्त की जाती हैं । इन भागों में अप्रैल से जुलाई तक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं । ताजे जल में पकड़ी जाने वाली मुख्य मछलियाँ कैट-फिश, सॉ-फिश, हैरिंग और मैकरेल हैं ।



चित्र ११६—तालाब में मछली पकड़ने का दृश्य

राज्यों में उत्पादन और मूल्य दोनों की दृष्टि से बंगाल सबसे मुख्य है । बंगाल का मछली उत्पादन २६% और मूल्य ३६% है । बिहार इस दृष्टि से दूसरा

और आसाम तीसरा मुख्य राज्य है। ये तीनों राज्य मिल कर कुल ताजा पानी की मछलियों का ७२% बाजार में भेजते हैं। मद्रास, जो समुद्र की मछलियों के उत्पादन में सबसे आगे है, ताजे पानी की मछलियों का केवल ५% ही उत्पादन करता है। इन सब राज्यों में ताजे पानी की मछलियों का अधिक उत्पादन वहाँ मिलने वाले बड़े नदमुखों, झीलों और बाढ़-क्षेत्रों तथा भारी वर्षा होने के कारण है।

ताजे पानी की मछली पकड़ने में बंगाल सबसे मुख्य है जहाँ लगभग ९६ हजार व्यक्ति मछलियाँ पकड़ कर ही अपना जीवन चलाते हैं। बंगाल में असंख्य नदी-नालों के कारण **रोहू, हिल्सा, कटला, पॉमफ्रैंदस, बंदा, तापसी, रिबन, स्केट** आदि मछलियाँ बहुत पकड़ी जाती हैं किन्तु मानसून के दिनों में मछलियाँ मौसम खराब होने के कारण कम पकड़ी जाती हैं। तालावों में भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। कुछ समय से बंगाल में ताजे पानी की मछलियों के उत्पादन में क्रमशः ह्रास होता जा रहा है इसके कई कारण हैं :—

(१) कई नदियों पर बाँध बना दिये गये हैं इसलिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाली मछलियाँ अपने निवास स्थान से चल कर बाँधों से रुक जाती हैं अतः उनके मार्ग में बाधा आ जाने के कारण वे आगे नहीं बढ़ पातीं।

(२) मछलियाँ अधिकतर मीठे पानी में ही रहती हैं किन्तु कई नदियों का पानी क्रमशः खारा होता जा रहा है अतः मछलियों की संख्या में कमी होती जा रही है।

(३) जनसंख्या बढ़ते रहने के कारण कई झीलों, तालावों अथवा बाढ़-ग्रस्त मछली पकडने वाले क्षेत्रों की भूमि को सुखाकर खेती के काम में ले लिया गया है।

(४) अपरिपक्व और छोटी-छोटी मछलियों के झुण्डों को अधिक संख्या में पकड़ा जाता है अतः भविष्य में बड़ी मछलियों की मात्रा कम हो जाती है।

(५) यहाँ के मछुए अधिकतर कृषक होते हैं जो थोड़े समय के लिये ही मछली पकड़ने का धंधा करते हैं। अतः वे इस धंधे को बढ़ाने में पूर्ण रुचि नहीं लेते।

(६) प्रायः मछुए जमींदारों से तालाब या झील लगान पर ले लेते हैं और फिर मछलियों को पकड़ कर व्यापारियों के हाथ बेच देते हैं। इस स्थिति में जमींदार भी इस धंधे को उन्नतिशील बनाने में प्रयत्नशील नहीं रहते।

केरल राज्य में किनारे से लगा कर त्रिवेन्द्रम के बीच में ३० मील लम्बी और १० मील चौड़ी एक झील में **प्रॉन** मछलियाँ अधिक पकड़ी जाती हैं। आँध्र-मद्रास राज्य में गोदावरी, कृष्णा और कावेरी आदि नदियों और तालावों में भी मछलियाँ अधिक पकड़ी जाती हैं। उत्तर प्रदेश में गंगा, जमुना, सारदा, घाघरा, ताप्ती और वेतवा नदियों में **कटला, रोहू, हिल्सा, कालाबाँस, मुरेल** तथा **प्रॉन** आदि मछलियाँ खूब पकड़ी जाती हैं।

(३) नदियों के मुहानों में पकड़ी जाने वाली मछलियाँ (Estuarine Fisheries)

पुरी से हुगली के मुहाने तक महानदी, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के चौड़े मुख में **कॉक-अप, हिल्सा, पॉमफ्रैट, प्रॉन, कटला, रोहू** और **कैटफिश** बहुत पकड़ी जाती हैं। सबसे अधिक मछलियाँ बंगाल के डेल्टा में पकड़ी जाती हैं यहाँ मछली

पकड़ने का क्षेत्र ५,८०० वर्गमील में फैला है जिसमें अधिकाँश भाग में दलदल घने जंगल तथा नदियों और नालों का प्राचुर्य है। किन्तु गमनागमन के साधनों की कमी होने के कारण पकड़ी गई मछलियाँ ताजे रूप में नहीं पहुँचाई जा सकती अतः बहुत-सी मछलियाँ तो सड़कर ही नष्ट हो जातीं हैं। इसके अतिरिक्त मछली पकड़ने वाली नावें पुराने ढङ्ग की होती हैं जो खुले समुद्रों में अथवा सुन्दरवन में नहीं जा सकती।

(४) मोती देने वाली मछलियाँ (Pearl Fisheries))

भारतीय राष्ट्रीय योजना समिति के अनुसार मनार की खाड़ी सौराष्ट्र के समुद्री किनारे तथा कच्छ की खाड़ी में **ओइस्टर** मछलियों की अधिकता है जिनसे उत्तम बहुमूल्य मोती प्राप्त किए जा सकते हैं। मद्रास राज्य में कुमारी द्वीप (पानबन) में ओइस्टर मछलियाँ पाली जाती हैं। इसी प्रकार की कुछ मछलियाँ बम्बई राज्य में कच्छ की खाड़ी तथा सौराष्ट्र के तटीय भागों में भी मिलती हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि भारतीय समुद्रों, नदियों और तालाबों तथा झीलों में सैकड़ों किस्म की खाद्य मछलियाँ भरी पड़ी हैं किन्तु अभी तक इन साधनों का केवल ५–६% ही उपयोग में लाया जा सका है इस स्थिति के कई कारण हैं :—

(१) हिन्दुओं में ऊँचे वर्ण के लोग इस धंधे से घृणा करते हैं केवल निम्न श्रेणी के लोग ही मछली पकड़ने का व्यवसाय करते हैं जो अधिकाँशतः अशिक्षित और दरिद्र हैं। वे पुराने ढङ्गों द्वारा ही मछलियाँ पकड़ते हैं। ये कंटिये तथा जाल की सहायता से छोटी-छोटी नावों में बैठकर मछली मारते हैं जिससे गहरे जल की बड़ी मछलियाँ नहीं मारी जा सकतीं। मछली पकड़ने के आधुनिक ढङ्गों से वे अभी तक अपरिचित हैं। मामूली प्रयत्नों को छोड़कर नए साधन अभी काम में नहीं लाये जाते।

(२) मछुए लोग प्रायः छोटी-छोटी नवजात मछलियों को भी पकड़ लेते हैं इस कारण इनकी उत्पत्ति में कमी होती जा रही है।

(३) कई मछुए तो मछलियाँ पकड़ने के साथ-साथ खेती भी करते हैं अतः मछली पकड़ने में वे पूर्ण रुचि नहीं लेते। इसके अतिरिक्त अधिकाँश मछुए महाजनों के कर्जदार होते हैं अतः पकड़ी गई मछलियाँ उन्हीं के सुपुर्द कर देनी पड़ती हैं वही लोग व्यापार करते हैं। इस आय का थोड़ा-सा भाग मछुओं को मिल पाता है।

(४) आवागमन के साधनों विशेषकर शीत भण्डारों की पूर्ण उन्नति नहीं हो पायी है अतः मछलियाँ काफी परिमाण में नष्ट हो जाती हैं। केवल बम्बई और मद्रास को छोड़कर मछलियों को डिब्बों में दबाने और बर्फ में रखने के कारखाने नहीं हैं।

(५) प्रति वर्ष इतनी अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं कि कुछ भागों में तो अब मछलियों की संख्या कम होती जा रही है।

(६) बंगाल की कई नदियों तथा मद्रास में कई तालाबों में रेती भरती जा रही है। इस कारण वहाँ मछलियों की उत्पत्ति भी कम होती जा रही है।

(७) कई नालों और तालाबों का पानी दूषित कर दिया जाता है जिससे मछलियाँ वहाँ रहने ही नहीं पाती। बंगाल के कई तालाबों में जूट धोने के कारण पानी मछलियों के लिए जहरीला हो जाता है।

(८) भारत में मछली पकड़ने के क्षेत्रों की उन्नति में सबसे बड़ी कठिनाई यह पड़ती है कि यहाँ ये क्षेत्र शीत कटिबन्धों की भांति एक ही स्थान पर न होकर समुद्र में दूर-दूर तक विखरे हैं। इससे एक स्थान की मछली मार लेने के बाद दूसरे स्थान तक नावों द्वारा जाने में अधिक समय लग जाता है।

(९) भारत की नदियों द्वारा समुद्र में मछलियों के लिए भोज्य पदार्थ नहीं पहुँच पाते और न ही समुद्र में प्लैंक्टन अधिक मात्रा में मिलता है। इसके अतिरिक्त भारत के समुद्रतट मछलियों के लिये अधिक उपयुक्त नहीं हैं। मछलियों के लिये उपयुक्त स्थान उथले, ठन्डे और कटे हुए सुरक्षित तट समझे जाते हैं किन्तु ऐसे स्थानों का यहाँ अभाव है।

(१०) पशुओं को मछलियाँ खिलाने तथा मछलियों की खाद का प्रयोग करना, मछलियों से तेल और चमड़ा प्राप्त करने आदि बातों की ओर भी बहुत अधिक उदासीनता रही है।

इन्हीं सब कारणों से अभी तक भारत में मछली पकड़ने के व्यवसाय में पूर्ण उन्नति नहीं हो सकी है।

मत्स्य उद्योग का विकास :

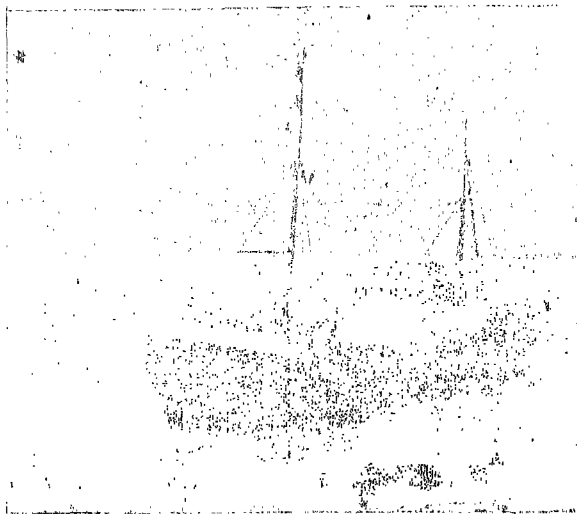
पिछले कुछ वर्षों से मछली पकड़ने के व्यवसाय को उन्नत करने के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा कई प्रयत्न किये गए हैं। प्रथम पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत इस कार्य के लिये ५$\frac{1}{2}$ करोड़ रुपये रखे गये थे। द्वितीय योजना में १२ करोड़ रुपये की राशि निर्धारित की गई है। इसमें से लगभग एक तिहाई सामुद्रिक एवं आन्तरिक मछलियों से सम्बन्धित गवेषणा करने, मछली पकड़ने वाले बन्दरगाहों का विकास करने, प्रशिक्षण की सुविधायें देने और मछलियों के नये क्षेत्रों की खोज करने, उनके उत्पादन, संरक्षण, भंडार, विपणन और यातायात सम्बन्धी कार्यों के लिये है। द्वितीय योजना काल में मछलियों के उत्पादन में ३३% की वृद्धि होगी—अर्थात् यह ११ लाख टन से बढ़ कर लगभग १४ लाख टन हो जायेगा। योजनाकाल में भारत को मछली उत्पादन के सम्बन्ध में तांत्रिक सहायता Indo-U.S.A. Technical Mission Programme, Indo-Norwegian Fisheries Community Development Programme और F.A.O. प्रभृति संस्थाओं के अन्तर्गत मिली है।

सरकार ने इस व्यवसाय के लिये निम्न कार्य किये हैं :—

(१) मछली पकड़ने के लिये नये प्रकार की मोटर नावों को दिया गया है। भारत के तटीय भागों में इस समय ८०० मोटर चालित नावों से मछलियाँ पकड़ी जा रही हैं। गुजरात में देशी नावों में इंजिन लगाये जा रहे हैं। बेसीन से सूरत तक ऐसी नावें प्रचलित हैं जो बहुत सुन्दर हैं और जिनमें कई दिनों तक मछलियाँ रखी जा सकती हैं। केरल और आंध्र में भी कई तरह की नावें बनाई गई हैं।

(२) मछुओं को मछली पकड़ने के अच्छे तरीके सिखाने के लिए कई स्थानों पर प्रशिक्षण-केन्द्र स्थापित किये गये हैं। ये केन्द्र बम्बई के निकट सतपाति, गुजरात में वेरावल, केरल में कोचीन और मद्रास में तुतुकुड़ि में स्थापित किये गये हैं। गुजरात के गहरे समुद्र में मछली पकड़ना सिखाने वाले केन्द्र में इस धन्धे के आधुनिक तरीके सिखाये जाते हैं। कलकत्ता में केन्द्रीय मछली गवेषणा केन्द्र में नदियों और झीलों या तालाबों में अधिक मछली पैदा करना सिखाया जाता है। पंजाब में मछली पकड़ने

और उनकी बिक्री के लिए विशेष रूप से प्रबन्ध किया जाता है। अमृतसर, जालन्धर लुधियाना, फिरोजपुर, अम्बाला, शिमला, करनाल और पानीपत में मछलियों की सरकारी दुकानें खोली गई हैं।



चित्र ११७—मछली पकड़ने वाला आधुनिक ट्रालर

(३) मछलियों को सुरक्षित रखने के लिए शीत भंडार बम्बई, मद्रास, मंगलौर, कोजीखोड़, कलकत्ता, कोचीन, क्विलोन, तिरूअनन्तपुरम आदि स्थानों में स्थापित किये गये हैं। विशाखापट्टनम, तुतुकुडि और जामनगर में भी ऐसे गोदामों की व्यवस्था की गई है। महाराष्ट्र में मालवन, रत्नागिरी, चेंदिया, पूना और अकोला में बर्फ की फैक्ट्रियाँ भी स्थापित की गई हैं। रत्नागिरी और कनारा जिलों में मछलियों में मसाला लगाने के लिए उपयुक्त स्थान बनाये गये हैं।

(४) उन्नति के नये साधनों की खोज के लिये भारत सरकार ने मछली अनुसंधान शालायें (Fisheries Research Station) स्थापित की हैं। ताजे पानी की मछलियों के लिए कलकत्ता में बैरकपुर में और समुद्री मछलियों के लिये मद्रास में मंडापम में और बम्बई में अनुसंधान शालायें खोली गई हैं। मंडापम शाला की शाखायें कोजीखोड़, करवार, कांडला, क्विलोन, बम्बई, कोचीन, मद्रास, मंगलौर, वाल्टेयर, काकीनाड़ा और विजयनगरम में हैं जहाँ सारडीन, मैकरेल, प्रॉन, शैल और पेंदेवाली मछलियों के सम्बन्ध में गवेषणा की जाती है। बम्बई की अनुसंधान शाला इस बात पर गवेषणा कर रही है कि तटीय भागों में किस प्रकार की आधुनिक ढंगों की शक्ति-चालित नावों का उपयोग किया जा सकता है, मछलियाँ पकड़ने के क्षेत्रों का पता लगाना, तथा उनके सुरक्षित रखने के ढंगों पर विचार आदि करना है।

(५) मछुओं की दशा सुधारने के लिये बम्बई, केरल, मद्रास और उड़ीसा में लगभग ८०० सहकारी समितियाँ स्थापित की गई हैं जिनका काम अपने सदस्यों की पकड़ी हुई मछलियों को बेचना और मछुओं को लाभ वितरण करना है।

और कहवा, इलायची, टैपीओका, और कालीमिर्च अधिक पैदा की जाती हैं। चावल यहाँ की मुख्य फसल है।

(५) दक्षिण के मोटा अनाज उत्पादक प्रदेश (Southern Millets Region)

इस प्रदेश में दक्षिणी उत्तर प्रदेश का झांसी डिवीजन, मध्य प्रदेश, आंध्र और मद्रास के पश्चिमी भाग, पूर्वी महाराष्ट्र और मैसूर का पूर्वी भाग है। यहाँ वर्षा २० से ४०" तक होती है। यह भाग साधारणतः अकाल का क्षेत्र माना जाता है। इसकी मिट्टी काली और लैटेराइट है। इसमें ज्वार-बाजरा, कपास, मूंगफली आदि का उत्पादन अधिक किया जाता है।

प्रमुख फसलें (Chief Crops)

भारत उष्ण और समशीतोष्ण दोनों कटिबन्धों में स्थित है अतः जहाँ एक ओर चावल, गन्ने तथा केले जैसी उष्ण कटिबन्धीय फसलें पैदा होती हैं, वहाँ दूसरे भागों में कपास, गेहूँ, तथा तम्बाकू जैसी समशीतोष्ण कटिबन्धीय वस्तुयें भी उत्पन्न की जाती हैं। इसके अतिरिक्त भारत की भौतिक अवस्था, जलवायु और मिट्टी आदि की विभिन्नता के कारण यहाँ अनेक प्रकार की फसलें उत्पन्न की जाती हैं। इन फसलों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :—

१. **खाद्यान्न**—(i) चावल, (ii) गेहूँ, (iii) जौ, (iv) मोटे अनाज, (v) मकई और (vi) विभिन्न प्रकार की दालें।

२. **पेय पदार्थ**—(i) चाय, (ii) कहवा, (iii) तम्बाकू, (iv) अफीम आदि।

३. **व्यवसायिक फसलें**—(i) गन्ना, (ii) तिलहन (तिल, मूंगफली, अलसी, राई, सरसों, एंडी), (iii) मसाले (कालीमिर्च, जावित्री, जायफल, अदरक, हल्दी, धनिया, लौंग, इलायची), (iv) सुपारी, (v) काजू, (vi) रबड़।

४. **रेशेदार पदार्थ**—कपास, जूट, मैस्टा, सनई।

५. **फल और तरकारियाँ**।

खाद्यान्न (Food Crops)

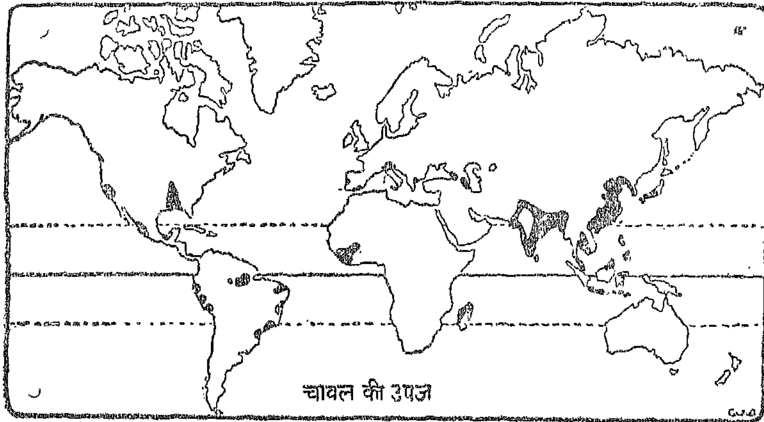
(१) चावल (Rice)

चावल भारत के लगभग तीन-चौथाई मनुष्यों का भोज्य पदार्थ हैं। यहाँ इसकी खेती ईसा के ३,००० वर्ष पूर्व से हो रही है। हिन्दुओं के मांगलिक और धार्मिक अवसरों पर इसका उपयोग इस तथ्य को सिद्ध करता है कि चावल की खेती अति प्राचीनकाल से ही की जा रही है। विश्व में भी चावल का उत्पादन सबसे अधिक किया जाता है क्योंकि संसार के निवासियों में प्रत्येक ५ में से ४ प्रधानतः चावल पर ही निर्भर रहते हैं। विश्व के उत्पादन का २१% चावल भारत से प्राप्त होता है। ३१% चीन से, १८% पाकिस्तान, ८% जापान, ६% इण्डोनेशिया, ४% थाइलैंड, ३% ब्रह्मा और १% संयुक्त राज्य से प्राप्त किया जाता है। शेष इटली, मिश्र, स्पेन, आदि देशों से।

भौगोलिक दशायें

(१) चावल उष्ण कटिबंधीय पौधा है अतः इसे ऊँचे तापक्रम की आव-

श्यकता होती है। साधारणत: पौधे के जमने के लिए कम से कम ५०° से ५५° फा० तक का तापक्रम, फसल पकने के लिए अधिक से अधिक १०४° फा० या औसतन ८६° से ९५° फा० का तापक्रम ठीक माना गया है इसको प्रचुर मात्रा में सूर्य प्रकाश की भी आवश्यकता होती है। अधिक लम्बा मेघाच्छिदन मौसम इसके लिए हानिकारक होता है। तेज हवा भी पौधे को गिरा कर नष्ट कर देती है।



चित्र ११९—चावल उत्पादक क्षेत्र

(२) चावल को जमने के लिए इसके खेतों में एक विशेष समय के लिये पानी का भरा रहना अच्छा रहता है अत: भूमि समतल होनी चाहिए। प्रारम्भिक अवस्था में खेत में ६" की ऊँचाई तक पानी भरा रहना चाहिए। पानी की यह मात्रा खेतों में ७५ दिनों तक रहे तो अच्छा है। चावल की खेती अधिकतर नदियों के डेल्टों में, समुद्री किनारे के नीचे तटीय प्रदेशों में और ऐसे प्रदेशों में जहाँ मानसून के समय बाढ़ें आया करती हैं की जाती है। अगर चावल को पानी पर्याप्त मात्रा में मिल सकता हो और गर्मी भी अधिक पड़ती हो तो चावल की खेती करने के लिये पहाड़ों की ढालू जमीन को समतल बना कर सीढ़ीनुमा बना ली जाती है और किनारे पर मेंढ़ या बाँध बनाकर वर्षा का पानी खेतों में भर लिया जाता है अथवा पास के किसी नाले से पानी लेकर खेतों में भर दिया जाता है। साधारणत: चावल के लिए ४५" से ९५" तक की वर्षा की आवश्यकता पड़ती है। मलाबार तट, गंगा के डेल्टा, हिमालय की तराई आदि भागों में वर्षा अधिक होने से जल की कमी नहीं पड़ती किंतु अनेक भागों में उपयुक्त अवस्था में मिलने पर सिंचाई का सहारा भी लिया जाता है। भारत की वार्षिक वर्षा के वितरण के मानचित्र से धान के क्षेत्रों की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि ज्यों-ज्यों समुद्री तटीय भागों से देश के भीतर की ओर बढ़ते हैं वर्षा की कमी के साथ-साथ चावल का महत्व भी कम होता जाता है। बंगाल और आसाम के बाहर पंजाब, उत्तरप्रदेश और दक्षिण में पूर्वीय तटीय भागों में डेल्टाओं में सिंचाई द्वारा चावल पैदा किया जाता है।

(३) चावल के लिये उपजाऊ चिकनी या कछारी अथवा दोमट मिट्टी की

आवश्यकता होती है जिससे धान की जड़ें बँधी रहें और पौधा खड़ा रह सके। चावल भूमि की उपजाऊ शक्ति को नष्ट कर देता है अतः इसमें खाद देना आवश्यक हो जाता है। हरी खाद (ढैंचा, गंवार आदि), हड्डियों की खाद, अमोनियम सल्फेट, सुपरफास्फेट आदि खाद देकर चावल की प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाई जाती है। एक एकड़ में २० पौंड नेत्रजन या १०० पौंड अमोनियमम सल्फेट देने पर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है। यह खाद साधारणतः बुवाई के पहले और अंकुर निकलने के समय दिया जाता है।

(४) चावल को बोने के लिये अधिक मात्रा में मजदूरों की आवश्यकता होती है क्योंकि क्यारियों से निकाल कर खेतों में पौधों को एक-एक कर रोपना पड़ता है।

भारत में चावल को तीन प्रकार से बोया जाता है—छिटक कर, हल द्वारा बोकर या पौधों को दुबारा लगा कर।

जहाँ भूमि ऊँची-नीची होती है और नमी की मात्रा तथा मजदूरों की कमी होती है वहाँ चावल छिटक कर बोया जाता है। इस ढंग द्वारा फसल मानसून के आरम्भ होते ही बो दी जाती है। इसमें अधिक बीज की आवश्यकता पड़ती है तथा उत्पादन भी अधिक नहीं होता।

हल चला कर चावल की खेती दक्षिणी प्रायद्वीप के अधिकांश भागों में की जाती है। इसके अनुसार जुताई करते समय दाना बोते जाते हैं।

पौधा लगाकर चावल की खेती के अनुसार पहले बीजों को छोटी-छोटी क्यारियों में बो देते हैं जब ४-५ सप्ताह में पौधे बड़े हो जाते हैं तो उन्हें हाथों से उखाड़ कर पहले से ठीक किये गये खेतों में एक-एक कर ४-६ इकट्ठे करके रोप दिए जाते हैं। साधारणतः ये पौधे ६ से ९ इंच की दूरी पर लगा दिये जाते हैं। इन पौधों को तब तक पानी से भरा रखते हैं जब तक कि धान पकने पर न आए। ऐसी खेती में अधिक मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है किंतु उत्पादन अधिक होता है।

भारत में जापानी विधि से चावल पैदा करने का पहला प्रयास १९५३ में आरम्भ किया गया। जापानी कृषि प्रणाली के अनुसार सर्व प्रथम बीज को पानी में डाल दिया जाता है और कम्पोस्ट खाद डाल कर खेत में चार फीट चौड़ी क्यारियाँ बना ली जाती हैं। प्रति एकड़ १५० मन से २०० मन तक कम्पोस्ट खाद प्रयुक्त होती है और १·५ सेर से ३ सेर बीज प्रति एकड़ बोया जाता है। अमोनियम सल्फेट की खाद के प्रयोग द्वारा भूमि को अधिकाधिक उर्वर बनाया जाता है। इसके अभाव में हड्डी के चूरे की खाद भी प्रयोग में लायी जा सकती है। २८ या ३० दिन के बाद इस बेहन को एक-एक करके ९″ × ६″ की दूरी पर रोप दिया जाता है। प्रत्येक पंक्ति एक दूसरी से ९″ की दूरी पर तथा प्रत्येक पौधा एक दूसरे से ६″ की दूरी पर रहता है। जापान में पंक्तियों के बीच दूसरे प्रकार की फसलें तैयार की जाती हैं, अतः इस प्रकार की कृषि को अर्न्तकृषि (Interculture) कहते हैं। रोपने के १५ या २० दिन बाद निराई की जाती है जिससे पौधा स्वतन्त्रता पूर्वक विकास कर सके।

इस प्रणाली के अन्तर्गत १९५२-५३ में ४ लाख एकड़ भूमि पर चावल की खेती की गई। १९५३-५४ में १३ लाख एकड़ भूमि पर; १९५५-५६ में २१ लाख

एकड़; १९५६-५७ में २३·७ लाख एकड़ ; १९५७-५८ में ३५ लाख एकड़ और १९५८-५९ में ४० लाख एकड़ भूमि पर जापानी विधि से चावल की खेती की गई। इस विधि से धान बोने पर प्रति एकड़ औसत उपज १९·९ मन तक बैठती है जब कि स्थानीय विधि से औसत उपज केवल १३·३ मन ही रहती है।

भारत में चावल की फसल शीतकाल की फसल है। यहाँ इसकी बुवाई अप्रेल से अगस्त तक होती है और नवम्बर से जनवरी तक इसको काट लिया जाता है। किन्तु आसाम, बिहार, बंगाल, उड़ीसा और मद्रास आदि राज्यों में शीतकाल के अतिरिक्त पतझड़ और ग्रीष्म ऋतुओं में भी फसल प्राप्त की जाती है। नीचे की तालिका में विभिन्न राज्यों में चावल के बोने और काटने का समय बताया गया है :—

भारत के विभिन्न राज्यों में चावल काटने बोने का समय

प्रदेश	जाड़े की फसल		सितम्बर-अक्तूबर की फसल		गर्मी की फसल	
	बोना	काटना	बोना	काटना	बोना	काटना
बङ्गाल	मई-जुलाई	अक्तूबर-जनवरी	मार्च-जुलाई	जून-सितम्बर	अक्तूबर-जनवरी	फरवरी-अप्रैल
बिहार	जून-अगस्त	नवम्बर-दिसम्बर	मई-जुलाई	अगस्त-अक्तूबर	सितम्बर-नवम्बर	फरवरी-मार्च
मद्रास	जून-अक्तूबर	दिसम्बर-मार्च	—	—	दिसम्बर-मार्च	अप्रैल-मई
पंजाब	मार्च-अगस्त	सितम्बर-नवम्बर	—	—	—	—
उत्तर प्रदेश	जून-अगस्त	सितम्बर-दिसम्बर	—	—	—	—
काश्मीर	—	—	अप्रैल-मई	सितम्बर-अक्तूबर	—	—
मैसूर	जून-जुलाई	नवम्बर-दिसम्बर	—	—	फरवरी	अप्रैल-मई
मध्य प्रदेश	जून-जुलाई	नवम्बर	जून-जुलाई	अक्तूबर	—	—
केरल	सितम्बर-अक्तूबर	जनवरी-फरवरी	अप्रैल-मई	सितम्बर-अक्तूबर	जनवरी-फरवरी	अप्रैल-मई
आंध्र	जून-जुलाई	नवम्बर-दिसम्बर	—	—	नवम्बर-जनवरी	अप्रैल-मई

भारत में चावल की जो तीन फसलें पैदा की जाती है उनमें से अधिक महत्व शीतकाल की फसल का ही है क्योंकि इसी से ९०% उत्पादन मिलता है। पतझड़ की फसल में केवल १०%। ग्रीष्म की फसल का महत्व नगण्य है। इन तीन फसलों का साधारण बोने और काटने का समय इस प्रकार है :—

	फसल	बोने का समय	काटने का समय
१.	**औस** (पतझड़ की फसल)	अप्रेल—जुलाई	अगस्त—दिसम्बर
२.	**अमन** (शीत की फसल)	अप्रेल—अगस्त	अक्टूबर-जनवरी
३.	**बोड़ो** (ग्रीष्म की फसल)	सितम्बर—फरवरी	मार्च—जून

औस (Aus) की फसल ऊँची भूमि पर बोई जाती है। अप्रेल और मई से जुलाई तक ऊँचाई पर स्थित सूखे भागों में धान के बीज बो दिए जाते हैं। वर्षा होने पर लगभग १½ फीट तक पानी भरा रखा जाता है। अगस्त से दिसम्बर तक इसकी कटाई हो जाती है। इस फसल का प्रति एकड़ उत्पादन कम होता है।

अमन (Aman) की फसल अप्रेल से अगस्त तक वर्षा होने पर बो दी जाती है और जल की ऊँचाई के साथ-साथ यह बढ़ती जाती है। अक्टूबर से जनवरी तक इसकी कटाई होती रहती है। यही फसल सबसे मुख्य होती है।

बोड़ो (Boro) वर्षा के अन्त में बीजों को गढ्डों में बो दिया जाता है। मार्च में जब तापक्रम ऊँचा होने लगता है तो फसल पक जाती है। इसे मार्च से जून तक काटा जाता है। इसका महत्व केवल नाम मात्र का ही है।

औस को छिटक कर, **बोडो** को पौध लगा कर और **अमन** को दोनों ही ढंगों से बोया जाता है।

प्रति एकड़ उपज

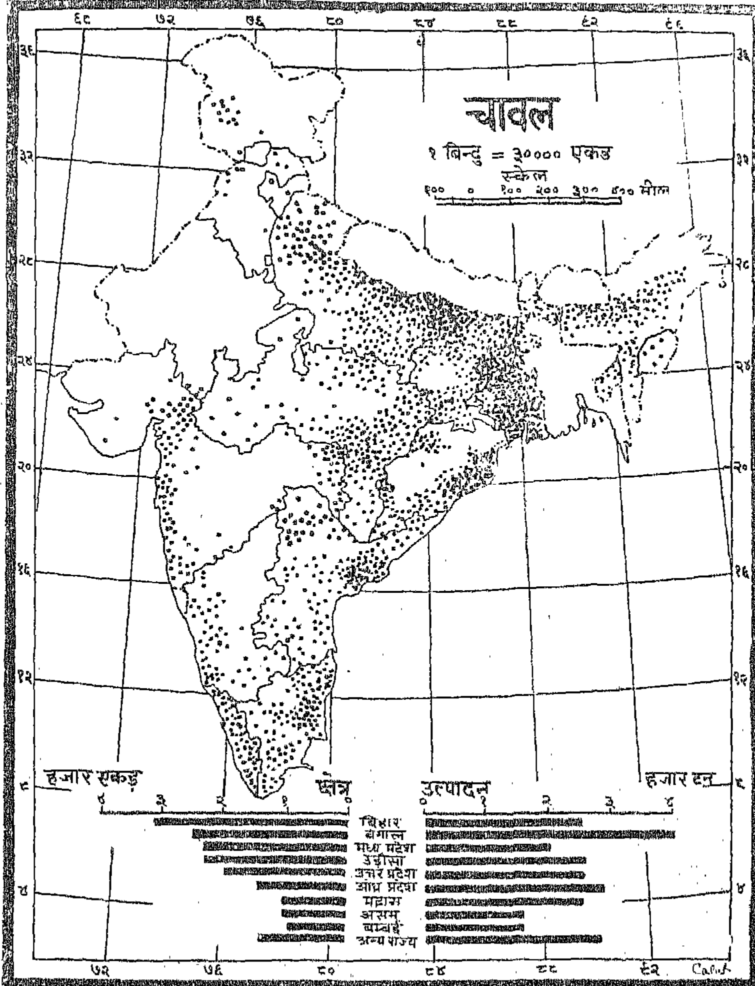
क्षेत्र एवं उत्पादन की दृष्टि से भारत का स्थान द्वितीय है किन्तु प्रति एकड़ उत्पादन बहुत ही कम है। इसका मुख्य कारण घनघोर वर्षा से भूमि के ऊपरी तल से खनिज लवण और वनस्पति के अंशों का बह जाना है। धान (Paddy) का प्रति एकड़ उत्पादन भारत में १,२०९ पौंड है जब कि संयुक्त राज्य में ३,०३० पौंड; मिश्र में ४,६२८ पौंड; जापान में ३,७५० पौंड; चीन में २,३८७ पौंड; ब्रह्मा में १,४२० पौंड; इण्डोनेशिया में १,९४५ पौंड; थाईलैंड में १,५६५ पौंड और रूस में १,९२८ पौंड है।

भारत में भिन्न-भिन्न स्थानों की वर्षा सिंचाई, मिट्टी और बोने तथा काटने के समय के अनुसार प्रति एकड़ पैदावार में भिन्नता पाई जाती है। पतझड़ की अपेक्षा शीतकाल की फसल का प्रति एकड़ उत्पादन अधिक होता है। इसी प्रकार **'जापानी चावल** (Japanica) का उत्पादन 'भारतीय चावल' (Indica) की अपेक्षा अधिक होता है। जापानी प्रणाली से पैदा किये जाने वाले चावल का उत्पादन प्रति एकड़ १९·९ मन तक का होता है जब कि साधारण रीति से बोने पर यह उत्पादन केवल १५ मन तक का होता है।

धान का उत्पादक क्षेत्र आदि

भारत में बोई गई सभी फसलों के अंतर्गत सबसे अधिक क्षेत्रफल चावल का

है। कुल बोयी गई भूमि के १५% भाग पर तथा खाद्यानों के अंतर्गत बोयी गई भूमि के ३०% भाग पर धान की खेती की जाती है। आंध्र, आसाम, बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल का मिल कर कुल क्षेत्रफल के ६०% से कुछ अधिक भाग पर चावल पैदा करते हैं।



चित्र १२०—प्रमुख चावल उत्पादक क्षेत्र

बंगाल भारत का प्रमुख चावल उत्पादन करने वाला राज्य है। यहाँ भूमि के अधिक उपजाऊ होने से खाद अधिक देने की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु कभी-कभी फसल को बाढ़ से हानि उठानी पड़ती है। किन्तु अब शीघ्र पैदा होने वाली

किस्में बोकर—विशेषकर 'इन्द्रसेल' और धोरेल'—इस हानि से बचने का उपाय किया जाता है। यहाँ प्रत्येक जिले में ६० प्रतिशत से अधिक भूमि पर चावल बोया जाता है। यहाँ के मुख्य चावल उत्पादक जिले जलपाईगुरी, बांकुड़ा, मिदनापुर, दिनाजपुर, बर्दवान और दार्जिलिंग हैं। बंगाल में चावल की तीन फसलें पैदा की जाती हैं।

आंध्र और मद्रास में चावल का उत्पादन पश्चिमी गोदावरी, चिंगलपुट, तंजौर, कनारा, कृष्णा, कर्नूल आदि जिलों में होता है। विषुवत् रेखा के निकट होने और समुद्र के समीप होने के कारण तापक्रम ऊँचा किन्तु वर्ष भर सम रहता है। अतः वर्ष में तीन फसलें तक पैदा की जाती हैं।

आसाम में धान की खेती ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदी की घाटियों में तथा पहाड़ी ढालों पर की जाती है। गोलपाड़ा, कामरूप आदि जिले प्रमुख उत्पादक हैं।

बिहार में वर्ष में चावल की तीन फसलें पैदा की जाती हैं किन्तु मानसूनी वर्षा की अनिश्चितता के कारण सिंचाई का आश्रय लेना पड़ता है। यहाँ गया, मुंगेर, भागलपुर और पूर्णिया जिले में धान पैदा किया जाता है।

उत्तर प्रदेश में धान के दो मुख्य क्षेत्र हैं। हिमालय की तराई में जहाँ उपजाऊ भूमि, वर्षा की अधिकता एवं अनुकूल तापक्रम के कारण धान बोया जाता है। लघु एवं मध्यवर्ती हिमालय की सीमाओं पर पहाड़ी ढालों पर चौरस खेतों में जल रोक कर धान बोया जाता है। देहरादून, पीलीभीत, सहारनपुर, गोरखपुर आदि मुख्य उत्पादक जिले हैं।

मैसूर में पूर्वोत्तर और वैंगाना नदी की घाटी में तथा मध्य प्रदेश में ताप्ती की घाटी में धान बोया जाता है।

महाराष्ट्र में पठारी एवं मैदानी धान की खेती पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल और समुद्र के तटीय भागों में रत्नागिरी, कनारा तथा कोंकन तट पर और केरल में मलाबार तट पर चावल पैदा किया जाता है।

नीचे की तालिका में चावल का क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

भारत में चावल के अन्तर्गत क्षेत्र एवं उत्पादन (१९५८-५९)

राज्य	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र	७,२३७	३,६१६
आसाम	४,४२२	१,६५०
बिहार	१२,९३३	४,२०२
गुजरात + महाराष्ट्र	४,१८०	१,७०९
जम्मू-काश्मीर	५०४	२३६
केरल	१,९१५	८८१
मध्य प्रदेश	९,८३४	३,२६४
मद्रास	५,७१२	३,२९८
मैसूर	२,३४२	१,११०

राज्य	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
उड़ीसा	९,८१४	२,०३६
पंजाब	८५६	८१६
उत्तर प्रदेश	१०,९७४	२,९७६
प० बंगाल	१०,५३२	४,०५३
मनीपुर	४१२	११३
त्रिपुरा	४०३	१३१
भारत का योग	८१,५९०	२९,७२१

भारत में चावल खाने वालों की संख्या इतनी अधिक है कि स्थानीय उपज के अतिरिक्त कई लाख टन चावल विदेशों से आयात किया जाता है १९४८ में ८,६७,००० टन और १९५९ में २,०९,००० चावल आयात किया गया। यह आयात ब्रह्मा, लङ्का, थाईलैंड, चीन और इंडोनेशिया से होता है। बंगाल, केरल, मद्रास और आंध्र अन्य राज्यों से चावल का आयात करते हैं।

देश में नई बहुमुखी योजनाओं की समाप्ति पर लगभग ५०% उत्पादन में और वृद्धि होने की आशा है। द्वितीय योजना में चावल के उत्पादन में ३० से ४० लाख टन की वृद्धि होने का अनुमान है।

(२) गेहूँ (Wheat)

गेहूँ खाद्यान्नों में प्रमुख माना जाता है। मोहनजोदड़ों में की गई खुदाई में जो गेहूँ के दाने मिले हैं उनसे एतिहासज्ञों का मत है कि भारत ही सम्भवत: गेहूँ का आदि स्थान रहा है। यहाँ इसकी खेती बहुत ही प्राचीन काल से की जाती है।

विश्व के उत्पादन का केवल ३·५% गेहूँ ही भारत से प्राप्त होता है। विश्व के उत्पादन का २१% रूस, १६% सं० रा० अमरीका, १२% चीन, ७% कनाडा, ४% फ्राँस और ४% इटली से प्राप्त होता।

भौगोलिक अवस्थायें

गेहूँ के लिए निम्न भौगोलिक अवस्थाओं की आवश्यकता होती है :—

(१) गेहूँ के पकने के लिए अधिक गर्मी की आवश्यकता पड़ती है। जाड़े के आरम्भ में बोने के समय तापक्रम ५०° से ६०° फा० तक और पकने के समय ७०° से ८०° फा० तक का तापक्रम साधारणत: उपयुक्त माना जाता है।

(२) गेहूँ को बोने के समय जल की आवश्यकता होती है किन्तु आसाम, बंगाल, पश्चिमी तटीय भागों में अधिक वर्षा के कारण फसल नहीं बोई जाती। पंजाब और उत्तर-प्रदेश के शुष्क भागों में ३०" से कम वर्षा होने पर भी सिंचाई की सहायता से गेहूँ बोया जाता है। अत: यह ५" ४५" तक के वर्षा वाले भागों में उत्पन्न किया जाता है।

दाने पकने के कुछ पहले साधारण वर्षा होना आवश्यक है इससे पौधा शीघ्र बढ़ता है। बुवाई के १५ दिन बाद और पकने के १५ दिन पूर्व यदि चक्रवातीय वर्षा हो जाती है तो गेहूँ की फसल के लिए लाभदायक होती है।

(३) इसके लिये ऐसी मिट्टी चाहिये जो उपजाऊ तो हो किन्तु अधिक नम न हो। हल्की दोमट या गाढ़े रंग की मटियार भूमि इसके लिए अच्छी रहती है। काली मिट्टी में भी यह पैदा किया जाता है।

(४) यह शीतल और नम जलवायु में बढ़ता है और गर्म तथा शुष्क जलवायु में सबसे अच्छा पकता है। इसलिये गेहूँ के अधिकतर खेत सतलज-गंगा के मैदान के शुष्कतर और उच्चतर भागों में पाये जाते हैं। पाला इसकी खेती के लिये हानिकर है। फसल पकने के समय उच्च तापक्रम, तेज और चमकीली धूप, स्वच्छ आकाश की आवश्यकता होती है।

(५) गेहूँ के खेतों को जोतने, बोने, काटने और दानों को भूसे के अलग करने में काफी परिश्रम की आवश्यकता होती है इसलिये जहाँ मजदूरी सस्ती और आसानी से मिल सकती है वहाँ गेहूँ अधिक मात्रा में बोया जाता है।

साधारण तौर से गेहूँ को पकने में ३ से ६ महीने लगते हैं। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में गेहूँ थोड़े ही समय में पक जाते हैं क्योंकि गेहूँ को पकने के लिये जितनी गर्मी की आवश्यकता होती है वह थोड़े ही समय में प्राप्त हो जाती है। दक्षिण के प्रदेशों में गेहूँ दिसम्बर से ही कटने प्रारम्भ हो जाते हैं लेकिन मध्य प्रदेश में ये साधारण तौर पर मार्च में काटे जाते हैं और पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पंजाब के प्रदेशों में गेहूँ अप्रैल के अन्त तक काटे जाते हैं। उत्तरी भारत में गेहूँ की फसल अक्टूबर के अन्त या नवम्बर के अन्त में बोई जाती है। दक्षिणी प्रायद्वीप में सितम्बर या अक्टूबर के मध्य में बोया जाता है।

नीचे की तालिका में प्रमुख राज्यों में गेहूँ की बुवाई और कटाई का समय बताया गया है :—

राज्य	बोने का समय	कटाई का समय
बिहार	अक्टूबर-नवम्बर	मार्च-अप्रैल
गुजरात+महाराष्ट्र	,,	मार्च
मध्य प्रदेश	,,	फरवरी-मार्च
पंजाब	अक्टूबर-दिसम्बर	मार्च-मई
उत्तर प्रदेश	अक्टूबर	मार्च-अप्रैल
काश्मीर	अक्टूबर-नवम्बर	अप्रैल-मई
मैसूर	अक्टूबर	फरवरी
राजस्थान	अक्टूबर-नवम्बर	मार्च-अप्रैल

भारतवर्ष में प्रति १० व्यक्तियों के पीछे एक एकड़ से भी कम गेहूँ बोया जाता है जबकि कनाडा और आस्ट्रेलिया में प्रति व्यक्ति २½ एकड़ तक जमीन में गेहूँ बोया जाता है। यूरोपीय देशों—फ्रांस और इटली—में प्रति तीन व्यक्तियों के लिये एक एकड़ और संयुक्त-राष्ट्र में प्रति चार व्यक्तियों के लिये एक एकड़ गेहूँ बोया जाता है।

भारत की औसत पैदावार ६४० पौंड प्रति एकड़ है। साधारण तौर पर फसल को पानी मिलने के परिमाण के अनुसार प्रति एकड़ पैदावार में अन्तर पाया जाता है। जैसे उन प्रदेशों में जहाँ सिंचाई का प्रबन्ध है वहाँ प्रति एकड़ पैदावार अधिक होती है तथा जहाँ उपज वर्षा पर निर्भर रहती है वहाँ पैदावार कम होती है।

भारत की तुलना में पाकिस्तान में प्रति एकड़ पीछे ६५६ पौंड, चीन में ७६६ पौंड, जापान में १,८६७ पौंड, मिश्र २,०६१ पौंड, इङ्गलैंड २,६५३ पौंड, फ्रांस १,८७२ पौंड, बेल्जियम में २,७७३ पौंड, इटली में १,५८६ पौंड, कनाडा में १,५०० पौंड, संयुक्त राज्य में १,२०० पौंड, रूस में ८३० पौंड और आस्ट्रेलिया में ६७५ पौंड गेहूँ पैदा होता है। इससे स्पष्ट है कि दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में प्रति एकड़ पैदावार की औसत बहुत कम है क्योंकि भारत के किसान गरीब, पुराने विचारों के और अशिक्षित हैं जिससे वे अपनी तथा खेतों की दशा सुधारने में असमर्थ हैं जबकि दूसरे देशों में खेती मशीनों से होती है, उनको अच्छे बीज मिलते हैं तथा उसके अनाज को सुरक्षित करने के लिये अच्छे गोदाम बने हुए हैं जिससे वे प्रति एकड़ अधिक पैदावार कर सकते हैं।

गेहूँ की किस्में :—भारत में प्राय: दो प्रकार का गेहूँ उत्पन्न होता है। प्रथम प्रकार के गेहूँ को साधारण रोटी का गेहूँ (Common Bread Wheat) कहते हैं। यह देखने में चमकीला, सुडौल तथा पीसने में मुलायम होता है और इसका रंग सफेद होता है। इस प्रकार का गेहूँ भारत के उत्तरी मैदान में होता है। दूसरे प्रकार का गेहूँ, जिसे मैकरानी गेहूँ (Macroni Wheat) कहते हैं, अपेक्षाकृत कठोर, रंग में लाल और छोटे दाने वाला होता है। मैकरानी गेहूँ सिंचाई के जल के स्थान पर वर्षा के जल का अपेक्षित होता है और इसीलिए यह मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र के काली मिट्टी के क्षेत्र, आंध्र प्रदेश, मैसूर तथा मद्रास आदि राज्यों में अधिकतर उगाया जाता है।

गेहूँ की कृषि की विशेषतायें

(१) गेहूँ समशीतोष्ण कटिबन्ध का प्रधान अन्न है किन्तु अनुकूल प्रकार की मिट्टी मिलने पर कर्क एवं मकर रेखाओं के समीवर्ती उष्ण कटिबन्ध के क्षेत्रों में भी सरलता पूर्वक उगाया जा सकता है। भारत में गेहूँ की कृषि दोनों कटिबन्धों में होती है किन्तु अधिक तापक्रम के कारण दक्षिणी भारत का गेहूँ उत्तरी भारत के गेहूँ से पहले पकता है।

(२) भारत में गेहूँ की कृषि अक्टूबर के अन्त में प्रारम्भ हो जाती है और फरवरी तक एक या दो बार सींच दी जाती है। किन्तु मार्च महीने में तापक्रम के सहसा बढ़ जाने और पछुवा हवा के झकोरों के कारण दाने शीघ्र पक कर सूख जाते हैं। यही कारण है कि भारत का गेहूँ उच्च कोटि का नहीं होता।

(३) भारत में गेहूँ की फसल उस समय पकती है जब विश्व के अन्य देशों के गेहूँ की फसल हरी भरी रहती है। संसार की मंडियों का गेहूँ इस समय तक समाप्त रहता है। ऐसी दशा में भारतीय गेहूँ विदेशी बाजार में प्रवेश कर सकता है।

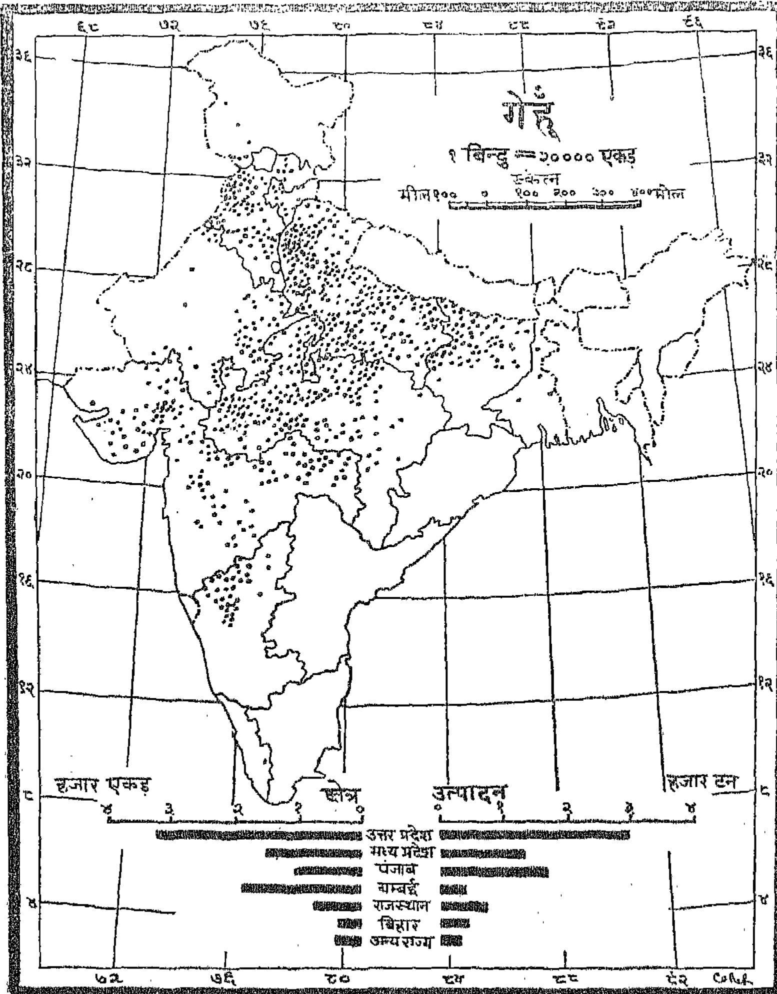
(४) इस देश में गेहूँ की कृषि की एक और विशेषता यह है कि इसे बहुधा विनष्टकारी रोगों (गेरुई, हरदा) तथा ओले और झंझावातों द्वारा बहुत क्षति पहुँचती है।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में खाद्यानों के अन्तर्गत बोई गई भूमि के १०% भाग पर गेहूँ बोया जाता है। यह अधिकांशत: उत्तरी और मध्य भारत की मुख्य फसल है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और विहार मिल कर कुल उत्पादन क्षेत्र के ६०% भाग में गेहूँ पैदा करते हैं।

उत्तर प्रदेश भारत का ४० प्रतिशत गेहूँ अकेले उत्पन्न करता है। दक्षिण के

पहाड़ी एवं पठारी भूमि को छोड़कर उत्तर प्रदेश में सर्वत्र गेहूँ की कृषि होती है। मेरठ, बुलन्दशहर, देहरादून, सहारनपुर, आगरा, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद, इटावा, फर्रुखाबाद, कानपुर, फतेहपुर आदि जिलों की लगभग एक तिहाई कृषि योग्य भूमि पर केवल गेहूँ की कृषि होती है। सिंचाई का प्रबन्ध गंगा, यमुना तथा शारदा नदियों



चित्र १२१—प्रमुख गेहूँ उत्पादक क्षेत्र

से निकलने वाली नहरों से होता है। इन जिलों की जलवायु शुष्क तथा गेहूँ के उत्पादन के लिये सर्वथा अनुकूल है अतः इन जिलों की प्रति एकड़ उपज अधिक है। बुलन्दशहर का उत्पादन प्रति एकड़ १,३०० पौंड है जब कि जलन्धर में वह केवल

१,२५० पौंड है। उत्तर प्रदेश के पूर्व और पूर्वोत्तर में वर्षा की अधिकता के कारण गेहूँ की कृषि का महत्त्व कम है और धान तथा गन्ने की फसलों की प्रधानता है। गोरखपुर की कृषि योग्य भूमि के केवल ⅙ क्षेत्र में ही गेहूँ का उत्पादन होता है। घाघरा नदी के पूर्व में स्थित क्षेत्र गेहूँ का द्वितीय महत्त्वपूर्ण उत्पादक क्षेत्र है। गंगा यमुना के कछारों में तो गेहूँ बिना सींचे ही पैदा होता है। कछार की उर्वरा मिट्टी में गेहूँ के पौधे मजबूत होते हैं और जाड़े की वर्षा के कारण उनका प्रति एकड़ उत्पादन बहुत बढ़ जाता है।

उर्वरा मिट्टी, शीतल शुष्क जलवायु, चक्रवातीय जाड़े की वर्षा, नहरों का अधिकाधिक प्रसार तथा नदियों की कछारी दोमट मिट्टी आदि सुविधाओं के कारण पंजाब भारत के गेहूँ का भण्डार माना जाता था। विभाजन के पश्चात अमृतसर, लुधियाना, जलंधर तथा फिरोजपुर आदि जिले पंजाब के प्रसिद्ध गेहूँ उत्पन्न करने वाले प्रदेश हैं जहाँ नहरों की सहायता से सिंचाई का समुचित प्रबन्ध है। दक्षिणी-पूर्वी पंजाब के जिलों की जलवायु अधिक शुष्क है और सिंचाई के साधनों का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ है फिर भी रोहतक और हिसार तथा गुड़गाँव में गेहूँ की कृषि सिंचन-साधनों की सहायता से की जाती है। भाकरा-नंगल योजना की सहायता से गेहूँ के क्षेत्र को दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ाया जायगा।

मध्य प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में सिंचाई द्वारा गेहूँ पैदा किया जाता है। होशंगाबाद, सागर और जबलपुर मुख्य उत्पादक जिले हैं।

गुजरात राज्य में अहमदाबाद, नासिक, भड़ौंच तथा महाराष्ट्र में खानदेश, बेलगाँव और बीजापुर जिले में गेहूँ बोया जाता है।

बंगाल और बिहार की जलवायु गेहूँ के उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं है। अतः बहुत ही थोड़े क्षेत्र में गेहूँ बोया जाता है। बंगाल में नादिया, मुर्शिदाबाद और वीरभूमि जिले में थोड़ा गेहूँ पैदा किया जाता है।

गेहूँ के मुख्य उत्पादक क्षेत्रों का क्षेत्रफल और उत्पादन निम्न तालिका में बताया गया है :—

भारत में गेहूँ का क्षेत्र और उत्पादन (१९५८-५९)

राज्य	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
बिहार	१,४५९	३९८
गुजरात + महाराष्ट्र	२,१८५	७२५
जम्मू-काश्मीर	३८४	१०१
मध्य प्रदेश	६,७९२	१,८९७
मैसूर	७४४	७६
मद्रास	४	१
पंजाब	५,३१५	२,२७५
राजस्थान	२,९३२	१,०३२
उत्तर प्रदेश	९,५८५	३,०४७
दिल्ली	५४	१७
हिमाचल प्रदेश	३४०	९३
भारत का योग	३०,९६६	९,६९४

भारत में जितना गेहूँ पैदा होता है उसका ४५ प्रतिशत देहातों में ही खप जाता है तथा ५५ प्रतिशत खुले बाजारों में लाया जाता है।

पहले भारतवर्ष बहुत बड़ी मात्रा में गेहूँ निर्यात करता था लेकिन क्रमशः इसकी जनसंख्या में वृद्धि होने तथा विदेशों में गेहूँ पैदा करने वाले क्षेत्रों की वृद्धि होने से सन् १९४२ से भारत से गेहूँ का निर्यात बन्द हो गया है। सन् १९४७ में भारत विभाजन से पश्चिमी पंजाब का गेहूँ पैदा करने वाला देश पाकिस्तान के अन्तर्गत चला गया जिससे इस कमी को पूरा करने के लिये आजकल प्रतिवर्ष बहुत-सा गेहूँ विदेशों से मँगवाना पड़ता है। १९४८ में विदेशों से १,३११,००० टन गेहूँ का आयात किया गया और १९५९ में ३,४९७,००० टन का। यह आयात मुख्यतः अर्जेनटाइना, रूस, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया से किया जाता है।

(३) मोटे अनाज या मिलेट्स (Millets)

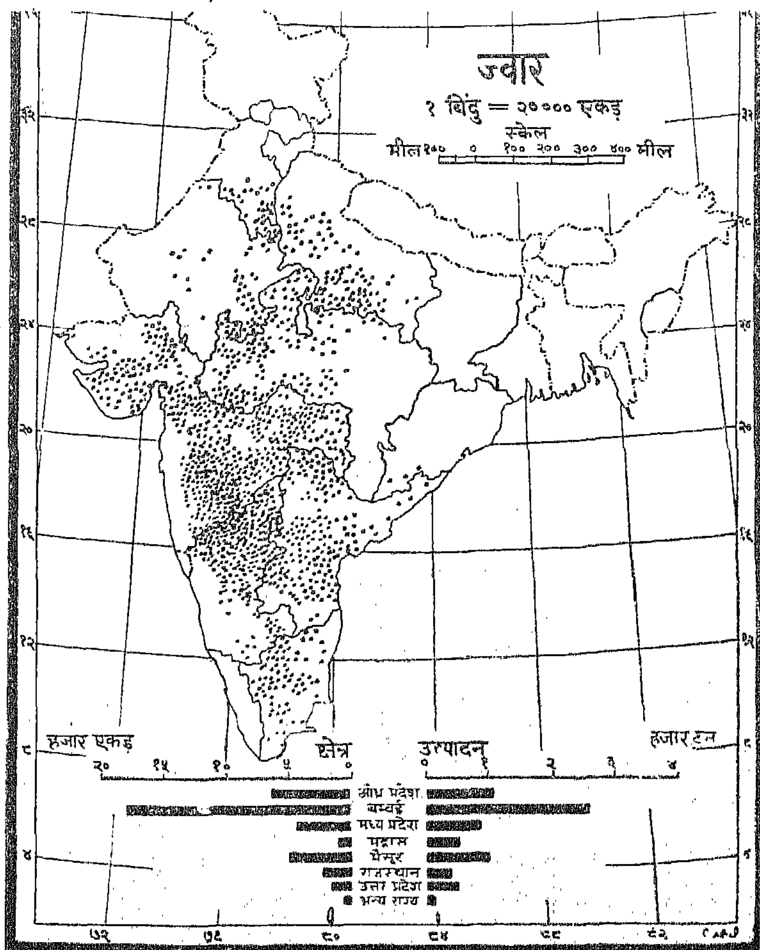
मिलेट्स के अन्तर्गत कई प्रकार के मोटे अनाज सम्मिलित किये जाते हैं जिनका उपयोग मुख्यतः खाने में और जिनके डंठलों का उपयोग पशुओं द्वारा खाने में किया जाता है। मोटे अनाज कई जातियों और श्रेणियों के होते हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की भौतिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। मुख्य मोटे अनाजों में ज्वार, बाजरा, कोरा या कांगनी, कोदों, कुटकी, चीना और सांवक आदि अनाज सम्मिलित किये जाते हैं। ये अनाज प्रायः भारत के सभी राज्यों में पैदा किये जाते हैं। इनका उपयोग और उत्पादन देश में प्रागैतिहासिक काल से होता रहा है। ये ऐसी परिस्थितियों में भी पैदा किये जाते हैं जिनमें अनाज पैदा नहीं होते। इनके पकने में साधारणतः ३ से ४ महीने लगते हैं और इनसे पौष्टिक पदार्थ भी कम मात्रा में ही मिलते हैं। ये अधिकांशतः सूखे भागों में सिंचाई के सहारे पैदा किये जाते हैं।

भारत में मोटे अनाजों (Millets) का क्षेत्र और उत्पादन

राज्य	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र	२,५३९	३८०
बिहार	६७५	१०६
गुजरात + महाराष्ट्र	९३५	२२४
मध्य प्रदेश	३,५५०	४०९
मद्रास	१,२७३	३८५
मैसूर	१,०६८	१४०
उड़ीसा	१११	१२
पंजाब	१६	२
राजस्थान	२१०	३६
उत्तर प्रदेश	१,६२२	३२२
प० बंगाल	२५	५
हिमाचल प्रदेश	६२	८
भारत का योग	१२,१५६	२,०४२

(क) ज्वार (Jowar)

ज्वार को यूरोप में सरघम (Sargham) भी कहते हैं। यह भारत के गरीब किसानों का जो मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र और पश्चिमी राजस्थान में रहते हैं प्रधान खाद्यान्न है। यह गर्म और सूखे भागों में जहाँ कहीं साधारण वर्षा (२५" से २६") हो जाती है वहाँ बिना सिंचाई के भी पैदा किया जा सकता है। यह उन कम वर्षा वाले भागों में भी पैदा हो सकती है जहाँ सूखी खेती की जाती है अथवा जहाँ फसल के आरंभ में ही भूमि को पानी मिल जाता है। इसके लिए उपजाऊ कांप या चिकनी मिट्टी की आवश्यकता होती है।



चित्र १२२—प्रमुख ज्वार उत्पादक क्षेत्र

ज्वार की फसल भारत के अधिकांश राज्यों में खरीफ की फसल है। यह मानसूनी वर्षा के बाद जुलाई के महीने में बो दिया जाता है और नवम्बर के अन्त तक पक जाता है। ज्वार का पौधा खेतों में अकेला पाया जाता है। बहुधा इसके साथ अरहर उगाई जाती है। ज्वार का पौधा बहुधा ६ फीट से १० फीट ऊँचा होता है। कहीं-कहीं खेतों से ज्वार के भुट्टे तोड़ लिये जाते हैं और डंठल अरहर के साथ खड़ा छोड़ दिया जाता है। दक्षिणी भारत में महाराष्ट्र, मद्रास, आंध्र, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में ज्वार रबी की फसल के साथ बोई जाती है। यह सितम्बर से नवम्बर तक बोयी जाती है और जनवरी से मार्च तक काट ली जाती है।

यह खाद्य-पदार्थ और ढोरों के चारे की दृष्टि से अधिक महत्व रखती है। स्थान स्थान पर वर्षा की मात्रा, अतिरिक्त पानी की पूर्ति और खाद की मात्रा के अनुसार ज्वार की प्रति एकड़ उपज भिन्न-भिन्न होती है। बिना सिचाई किये हुए खेतों में ३०० से ४०० पौं० प्रति एकड़ ज्वार होती है किन्तु सिंचाई करने पर १,२०० से १,५०० पौंड तक एक एकड़ में ज्वार पैदा हो जाती है और चारा प्रति एकड़ १,००० से ३,००० पौंड तक हो जाता है।

उत्पादक क्षेत्र

ज्वार के मुख्य उत्पादक क्षेत्र आंध्र, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मद्रास, उत्तर प्रदेश, पंजाब, मैसूर और राजस्थान राज्य हैं। ये सब मिलाकर ज्वार के अन्तर्गत लगभग ९९% क्षेत्र पर खेती करते हैं। महाराष्ट्र राज्य में बेलगाँव, पूना और शोलापुर जिले इसके मुख्य उत्पादक हैं जहाँ कृषि योग्य भूमि के ६०% भाग पर इसकी खेती की जाती है। नीचे की तालिका में ज्वार के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

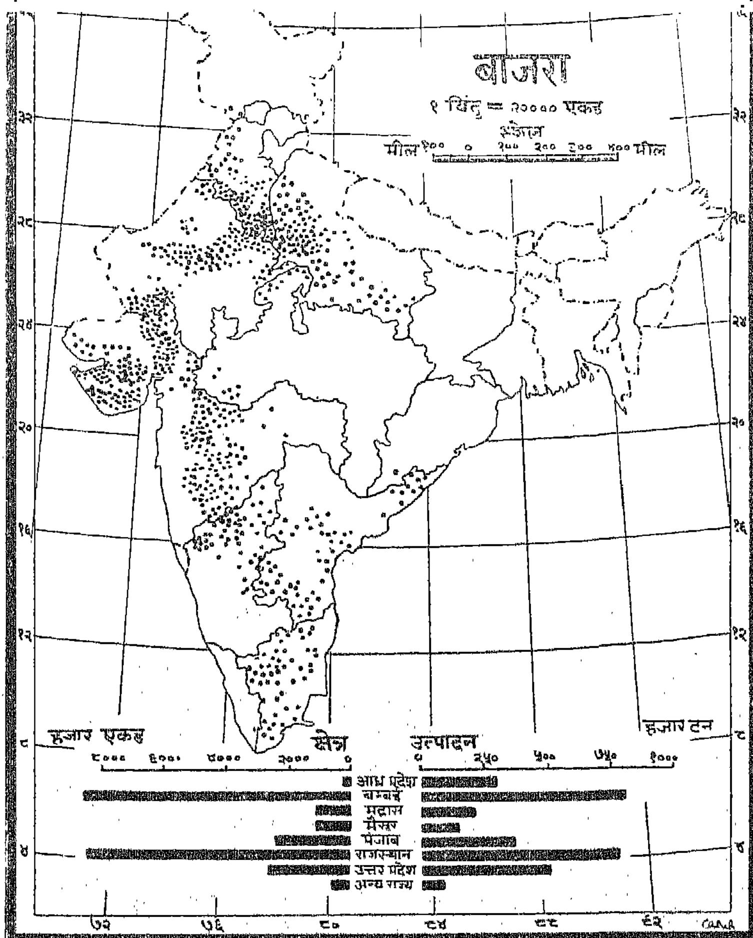
भारत में ज्वार का क्षेत्र और उत्पादन (१९५८-५९)

राज्य	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र	५,९४१	१,२०५
गुजरात+महाराष्ट्र	१७,९६८	३,६५४
मध्य प्रदेश	४,७६८	१,२१२
मद्रास	१,७४३	५१६
मैसूर	६,७१७	१,०९७
उड़ीसा	१७	३
पंजाब	७६०	५३
राजस्थान	२,६९१	३३०
उत्तर प्रदेश	२,२५६	९१३
दिल्ली	२९	३
भारत का योग	४२,९०८	८,९८९

(ख) बाजरा (Bajra)

बाजरे के लिये ज्वार से भी अधिक शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। यह १७″ से २०″ तक वर्षा वाली बलुही भूमि में अधिक उत्पन्न होता है। अतः जहाँ

सिंचाई के साधन भी प्राप्त न हों वहाँ भी बाजरा पैदा किया जाता है। कम उपजाऊ भूमि में विना खाद डाले ही बाजरा पैदा किया जाता है। यदि वर्षा हल्की फुहार के रूप में होती रहे तो निकृष्ट भूमि में भी बाजरे का उत्पादन हो सकता है। इसीलिए बाजरे की कृषि भारत में ८०° देशान्तर के पश्चिम में स्थित अल्प उपजाऊ भूमि में अधिक होती है। यह सामान्यतः अन्य खाद्यान्नों के साथ मिला कर बोया जाता है।



चित्र १२३—बाजरा के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

यह मई से सितम्बर तक बोया जाता है और सितम्बर से फरवरी तक काट लिया जाता है।

बाजरे का उत्पादन प्रति एकड़ ज्वार की तुलना में बहुत ही अधिक है। सिंचित क्षेत्रों का उत्पादन १,२०० पौंड से २,००० पौंड तक रहता है किन्तु असिंचित क्षेत्रों में यह १,००० पौंड से नीचे रहता है।

इसके मुख्य उत्पादक राज्य आंध्र प्रदेश, मद्रास, गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मैसूर और राजस्थान हैं। इनमें बाजरे के अन्तर्गत ६६% क्षेत्र पाया जाता है।

नीचे की तालिका में बाजरे का क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

भारत में बाजरा का क्षेत्र और उत्पादन (१९५८-५९)

राज्य	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र	१,५७२	३३८
बिहार	१७	२
गुजरात+महाराष्ट्र	८,४६१	१,१३१
जम्मू-काश्मीर	३५	५०
मध्य प्रदेश	४३१	७८
मद्रास	१,२१९	३०२
मैसूर	१,१२३	११३
पंजाब	२,४३१	२७८
राजस्थान	९,८९०	९७२
उत्तर प्रदेश	२,६६७	५५८
भारत का योग	२७,९०५	३,७९१

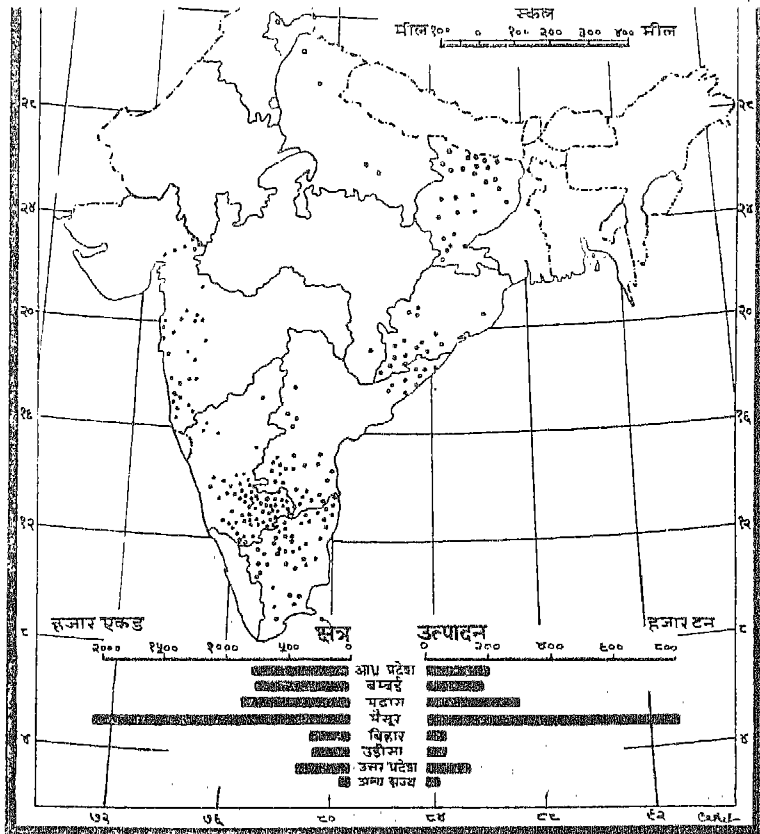
बाजरा गरीब देहातियों का मुख्य खाद्यान्न है। अतः अधिकांश उत्पादन उपभोग में आ जाता है। केवल २५% का निर्यात सूडान, अरब, नीदरलैंड्स, पूर्वी अफ्रीका, जर्मनी और अदन को किया जाता है।

(ग) रागी (Ragi)

रागी सब अनाजों में सबसे अधिक सूखा सहन करने वाला अनाज है जो शुष्क खेती की प्रणाली द्वारा पैदा किया जाता है। यह बहुत ही कम वर्षा वाले भागों में पैदा किया जाता है। इसके दाने में पौष्टिक तत्व अधिक होने से शारीरिक कार्य करने वालों का यह मुख्य खाद्यान्न है। सिंचाई के सहारे भी इसका उत्पादन किया जा सकता है। इस अनाज को ५० वर्षों से भी अधिक समय तक के लिए इकट्ठा कर रखा जा सकता है क्योंकि यह कीटाणुओं और रोगों द्वारा प्रभावित नहीं होता। इसका भूसा और डंठल पशुओं को खिलाये जाते हैं।

रागी खरीफ की फसल है। यह मई से अगस्त तक बोयी जाती है और सितम्बर से फरवरी तक काट ली जाती है। इसका प्रति एकड़ उत्पादन ६०० से ७०० पौंड तक का है।

इसके मुख्य उत्पादक आंध्र प्रदेश, मैसूर और मद्रास राज्य है, जहाँ कुल उत्पादन क्षेत्र का लगभग ६६% पाया जाता है। शेष बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में पाया जाता है।



चित्र १२४—प्रमुख रागी उत्पादक क्षेत्र

रागी उत्पादक क्षेत्रफल व उत्पादन (१९५८,५९)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	उपज प्रति एकड़ (पौंड में)
उड़ीसा	१६९	२७	४३६
मसूर	२,३१५	६६३	६७२
मद्रास	८५७	३२५	८५९

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	उपज प्रति एकड़ (पौंड में)
उत्तर प्रदेश	४८५	६६	४२१
महाराष्ट्र	७१७	२२२	६५३
बिहार	४६३	६४	४०२
आंध्र प्रदेश	७६४	२७०	७५३
भारत का योग	५,६३०	१,७२२	६५२

(घ) छोटे अनाज (Small Millets)

छोटे अनाजों के अन्तर्गत अनेक प्रकार के अनाज सम्मिलित किये जाते हैं। ये इस प्रकार हैं :—

राज्य	अनाज
गुजरात+महाराष्ट्र	कोदरा, बारी, सावा, बौटी, बादर्गी
मध्य प्रदेश	कोदों, कुटकी, राला, सावा, राजगिरा
आंध्र/मद्रास	कोरा, वरागु, क्षमाई
उत्तर-प्रदेश/राजस्थान	कोदों, कुटकी, ककू, सावा, चीना
मैसूर	नवाने, सवा, हराका, वरागू

ये अनाज खरीफ और रबी दोनों की फसल हैं। इनके मुख्य उत्पादक आंध्र प्रदेश, मद्रास, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मैसूर और मध्य प्रदेश हैं। इनका प्रति एकड़ उत्पादन ३०० से ४०० पौंड का होता है। ये अधिकतर निम्न श्रेणी की भूमि में बोये जाते हैं जहाँ जल की मात्रा पर्याप्त नहीं होती।

(४) जौ (Barley)

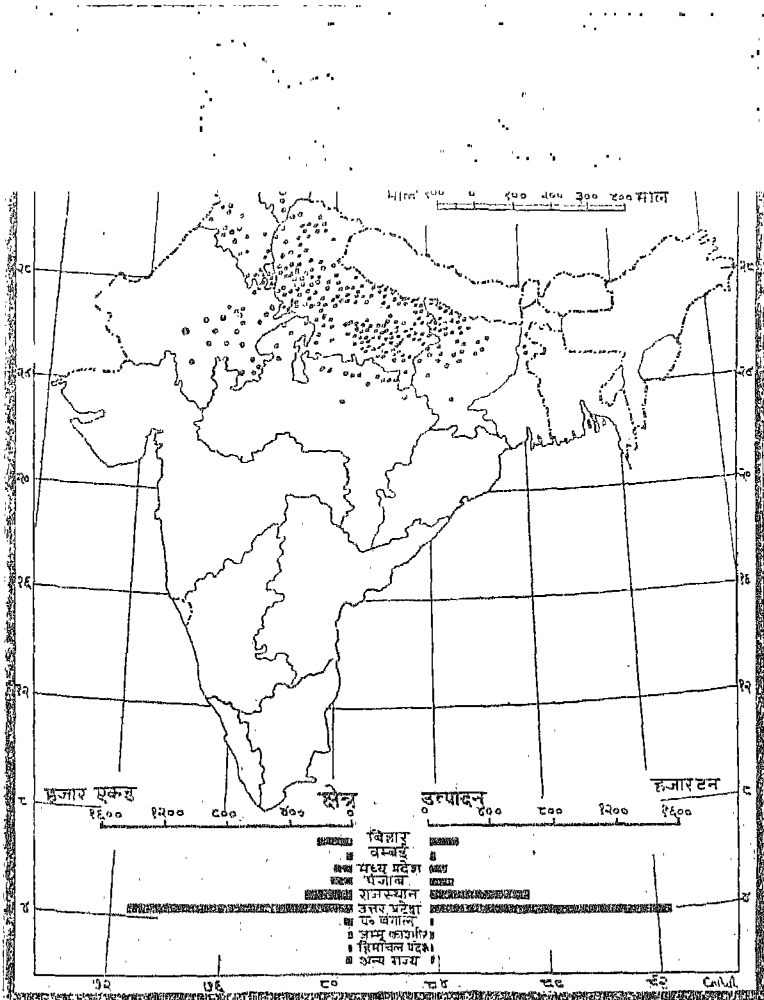
जौ भारत का महत्वपूर्ण खाद्यान्न है। इसका उपयोग अधिकतर खाने के लिये किया जाता है। गेहूँ की अपेक्षा इसे कम देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। अतः यह सभी भागों में गेहूँ के साथ साथ ही वो दिया जाता है।

भौगोलिक अवस्थायें

जौ का पौधा प्रायः शुष्क और बालू मिश्रित काँप मिट्टी में उगता है। जौ के उत्पादन के लिये गेहूँ की भाँति उपजाऊ दोमट या मटियार मिट्टी की आवश्यकता नहीं पड़ती। गेहूँ की अपेक्षा जौ अधिक शीत एवं नमी सहन कर सकता है। इसीलिए जौ की कृषि उत्तरी ध्रुववृत्त तक संभव है। जौ का पौधा शुष्क जलवायु में भी पूर्ण-रूप से विकसित हो सकता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं पंजाब की शुष्क एवं सिंचाई के साधनों से रहित भूमि में भी जौ की कृषि सफलतापूर्वक की जाती है। जौ के पौधे को कम तापक्रम की आवश्यकता होती है अन्यथा न तो इसका बीज अच्छी तरह से उग सकता है और न अच्छी तरह से पक ही सकता है। साधारणतया जौ को उत्तर प्रदेश में गेहूँ के बाद बोया तथा गेहूँ के पहले ही काटा जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जौ का पौधा अक्टूबर या नवम्बर की जाड़े वाली रातों में प्रफुल्लता के साथ उगता और विकसित होता है किन्तु यह मार्च महीने का सहसा ऊँचा उठता हुआ तापक्रम और शुष्क पछुवा हवा के झोकों को सहन नहीं कर सकता। अधिक गर्मी पाने

से जौ का दाना सूख कर पतला पड़ जाता है और आटे की अपेक्षा भूसी का अनुपात बढ़ जाता है।

भारत में जौ रबी का फसल है। यह अक्टूबर-नवम्बर में बोया जाता है और मार्च के अन्त में काट लिया जाता है। पंजाब में जौ जनवरी के आरम्भ तक बोया जाता है। सामान्यतः जौ मार्च के अन्तिम सप्ताह में पकना शुरू होता है और मध्य



चित्र १२५—जौ के उत्पादक क्षेत्र

अप्रैल तक पूरी तरह पक जाता है। बिहार और पूर्वी उत्तर-प्रदेश में पूर्वी पंजाब की अपेक्षा जौ कुछ सप्ताह पहले पक जाता है। गेहूँ की तुलना में जौ को पकने के लिये

कुछ कम समय चाहिए। भारत में भूमि कम उपजाऊ होने के कारण अथवा अधिक ठंड पड़ने के कारण अथवा सिंचाई की सुविधा के अभाव में गेहूँ के स्थान पर जौ बो दिया जाता है। वैसे जौ और गेहूँ की पैदावार का क्षेत्र एक ही है।

भारत में जौ की प्रति एकड़ उतज मुख्यत: भूमि बोने के समय पानी का पर्याप्त मात्रा में मिलना और बीज की जाति पर निर्भर है। सिंचाई की हुई भूमि में प्रति एकड़ उपज बिना सिंचाई किए हुये भागों से अधिक होती है। उदाहरण के लिए सिंचाई किए गये भागों में राजस्थान में १,७३६ पौंड; दिल्ली में १,०७६ पौंड और उत्तर-प्रदेश में १,१०० पौंड प्रति एकड़ जौ पैदा किया जाता है जबकि इन्हीं स्थानों में बिना सिंचाई के सहारे केवल ७५० पौंड; ७०७ पौंड और ७५० पौंड होती है। संपूर्ण भारत की प्रति एकड़ जौ की औसत उपज केवल ६४० पौंड है जबकि विश्व के कई देशों में इससे भी अधिक उपज होती है।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में जौ का उत्पादन दो क्षेत्रों में होता है। पहला क्षेत्र इलाहाबाद के पूर्व से लेकर पश्चिमी बंगाल तक और दूसरा क्षेत्र इलाहाबाद के पश्चिम से पंजाब तक विस्तृत है। जौ का सबसे अधिक उत्पादन उत्तर प्रदेश में है, जहाँ कुल जौ के क्षेत्रफल का ६०% पाया जाता है। यहाँ मुख्य उत्पादक जिले वाराणसी, आजमगढ़, जौनपुर, बलिया, गाजीपुर, गढ़वाल, गोरखपुर, इलाहाबाद और प्रतापगढ़ हैं। बिहार भारत के ५% क्षेत्र में जौ पैदा करता है। यहाँ चम्पारन, सारन और मुज्जफरपुर मुख्य उत्पादक जिले हैं।

नीचे की तालिका में जौ का क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

भारत में जौ का क्षेत्र और उत्पादन (१६५८-५९)

राज्य	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
बिहार	६५३	२१६
गुजरात+महाराष्ट्र	२६	६
जम्मू-काश्मीर	४१	११
मध्य प्रदेश	४२७	१७१
पंजाब	५८४	२००
राजस्थान	१,३३२	६०२
उत्तर प्रदेश	४,५८४	१,३८६
प० बंगाल	१०८	२६
हिमाचल प्रदेश	७७	१४
भारत का योग	८,१६४	२,६४०

भारत में उत्पादित जौ का उपयोग देश में ही हो जाने के कारण इसका निर्यात बिल्कुल नहीं होता,

(५) मकई (Maize)

मकई भी भारत के शुष्क भागों का मुख्य खाद्यान्न है। इसे कई फसलों के

साथ मिलाकर बोया जाता है। विश्व की केवल १·४% मकई भारत में पैदा की जाती है। इसके मुख्य उत्पादक संयुक्तराज्य अमरीका, ६४%; चीन ५%; ब्राजील ४%; रूस ३%; मंचूरिया ३% और यूगोस्लाविया तथा मैक्सिको २–२% हैं।

चित्र १२६—मक्का के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

मकई के लिए गर्म रात और गर्म दिन की आवश्यकता होती है। अतः मकई गर्म अयन वृत्तीय क्षेत्रों में या लम्बी गर्मी की ऋतु होने वाले प्रदेशों में अच्छी नहीं होती। साधारणतया मकई के लिए ४½ से ६ महीने लम्बी गर्मी का मौसम—जिसमें पाला या सर्दी न हो और दिन व रात में समान रूप से गर्मी रहे—होना जरूरी है।

इसके साथ ही साथ खुला हुआ आकाश और अच्छी वर्षा यदि कुछ समय के बाद होती रहे—जिसमें पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक नमी तो पहुँचती रहे किन्तु मिट्टी अधिक गीली न हो—तो ऐसी जलवायु मकई के लिये आदर्श होती है। पकने के समय ७५° फा० से ८०° फा० तक तापक्रम होना चाहिए।

यह २० से ४०" वर्षा वाले भागों में अच्छी पैदा की जाती है। इसके लिए नेत्रजन युक्त मिट्टी अच्छी रहती है।

यह मई से जुलाई तक बोई जाती है और अगस्त से नवम्बर तक काट ली जाती है।

मकई की उपज काफी अधिक होती है। प्रति एकड़ में १,००० पौंड दाना तथा २०,००० पौंड तक चारा हो जाता है। भारत में इसकी औसत उपज प्रति एकड़ केवल ८०० से १,००० पौंड तक है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति एकड़ के पीछे २,४६२ पौंड; बेल्जियम में ४,२७३ पौंड; इटली में २,१४३ पौंड; मिश्र में १,९८७ पौंड; जापान में १,७८४ पौंड; अर्जेनटाइना १,५४१ पौंड और चीन में १,१६९ पौंड मकई पैदा की जाती है।

भारत में मकई का प्रति एकड़ उत्पादन विश्व के अन्य देशों के समक्ष बहुत ही कम है। बोते समय उच्च तापक्रम का होना, अति वृष्टि, अनावृष्टि वर्षा-काल में बहुत दिनों तक वृष्टि का न होना, सिंचाई के साधनों का अभाव, रसायनिक एवं अन्य प्रकार की नाइट्रोजन वाली खादों का कम प्रयोग तथा वैज्ञानिक प्रणालियों के तिरस्कार आदि के कारण भारत के प्रति एकड़ में ७३२ पौंड मकई की औसत उपज होती है।

मकई उत्पादक मुख्य राज्य आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, पंजाब, जम्मू-काश्मीर, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश हैं। यहाँ मकई के अन्तर्गत क्षेत्रफल का ९५% पाया जाता है। शेष मकई-क्षेत्र उड़ीसा और बंगाल में है।

भारत में मकई का क्षेत्र और उत्पादन (१९५८-५९)

राज्य	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र	४७३	१०९
बिहार	१,७८९	४३८
गुजरात	५०३	२४९
मध्य प्रदेश	१,११२	२२१
पंजाब	१,२५६	५०७
राजस्थान	१,४३३	५३२
उत्तर प्रदेश	२,७०२	६२०
हिमाचल प्रदेश	२७९	५८
भारत का योग	१०,३१४	२,९९०

भारत में मकई का उत्पादन विशेषतः खाने में किया जाता है। अब इससे स्टार्च और ग्लूकोज भी बनाया जाने लगा है। इसका निर्यात व्यापार बहुत ही थोड़ा है।

(६) दालें (Pulses)

दालें भारत की मुख्य पैदावार हैं। इनके अन्तर्गत कृषि योग्य भूमि का लगभग एक—सातवां भाग है। दालों का भारतीयों के भोजन में विशेष स्थान है। माँस और मछली के स्थान पर या उसमें योग देने के लिये भारतीयों के भोजन में दाल प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। दालें वायु से नेत्रजन खींच लेती हैं और उसे मिट्टी को प्रदान कर उसे उर्वरा बना देती हैं। इनकी जड़ों में कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है जो मिट्टी में नेत्रजन का निर्माण करते हैं। जौ, गेहूँ तथा गन्ने की फसल काटने के बाद उन खेतों में दालें बोई जाती हैं उससे फसलों के हेर-फेर द्वारा बिना खाद पाये ही भूमि उपजाऊ हो जाती है। इसके अतिरिक्त दाल के पौधों को भी खेतों में जोत दिया जाता है इससे हरी खाद दूसरी फसलों को मिल जाता है। कुछ दालों को पशुओं को भी खिलाया जाता है।

दालों के अन्तर्गत चना, अरहर, मूंग, उर्द, मटर, मसूर, लोबिया आदि का विशेष महत्व है। इनकी खेती रबी तथा खरीफ दोनों ही फसलों में की जाती है। अरहर, चना, मटर और मसूर गेहूँ, जौ आदि रबी की फसल के साथ मार्च अप्रैल में तैयार हो जाते हैं और अरहर, मूंग, उर्द आदि की फसल खरीफ की फसल है जो जुलाई में बोई जाकर शीतकाल में काटी जाती है। मुख्य प्रकार की दालों का क्षेत्रफल और उत्पदन निम्न प्रकार है :—

दालों का क्षेत्रफल और उत्पादन (प्रतिशत में) (१९५७--५८)

दालें	क्षेत्रफल	उत्पादन
चना	३७·०	४४·४
अरहर	१३·०	१८·८
उर्द	६·६	३·६
मूंग	५·६	३·६
मसूर	२·४	२·३
कुल्थी	५·७	२·२
मटर	५·०	७·२
लाख या खेसारी	३·८	२·८
मोंठ	०·९	०·५
अन्य प्रकार की दालें	२०·०	१६·०
योग	१००·०	१००·०

(क) चना (Gram or Bengal Gram)

दालों में चने का महत्व सबसे अधिक है। इसका पौधा साधारण रूप से १ फुट से छोटा होता है किन्तु नदियों की कछारी और उपजाऊ भूमि में यह १½ फुट से भी अधिक बढ़ जाता है।

चने के लिए हल्की बलुही मिट्टी और ऊँचे तापक्रम की आवश्यकता होती है। चने की पैदावार हल्की, ऊँची और भली भाँति सूखी हुई भूमि में अच्छी होती है। पाला पड़ जाने से इसका फूल नष्ट हो जाता है जिससे इसका दाना सूख जाता है।

चने के बोते समय मिट्टी में नमी होना जरूरी है लेकिन बाद की वर्षा की कमी इसे हानि नहीं पहुँचाती। जहाँ पानी की कमी के कारण गेहूँ या जौ पैदा नहीं हो सकता

चित्र १२७—चने के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

वहाँ चना उत्पन्न किया जा सकता है। चना जाड़े की उपज है। फसल बढ़ने में ४ से ६ महीने लग जाते हैं। उत्तर भारत में नवबंर से अप्रैल तक तथा मध्य भारत और दक्षिण भारत में नवम्बर से फरवरी तक फसल पक जाती है।

भारतवर्ष में चने की खेती गंगा तथा सतलज नदियों की ऊपरी घाटी और उससे लगे हुए मध्य प्रदेश तक ही सीमित है। समस्त चने के क्षेत्रफल का ९० प्रति-

गत गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार और पंजाब में है। चने का सबसे घना क्षेत्र उत्तर-प्रदेश (आगरा और मिर्जापुर के बीच में); पंजाब, मध्यवर्ती बिहार, दक्षिणी मैसूर और उत्तर-पूर्वी मध्य-प्रदेश है।

भारत के जिन भागों में सिंचाई के साधन प्राप्त हैं वहाँ प्रति एकड़ उपज अधिक होती है बनिस्पत उन भागों के जहाँ सिंचाई नहीं की जाती है। देखिये नीचे दी गयी तालिका :—

राज्य	औसत उपज प्रति एकड़ (पौंड में)	सिंचित क्षेत्रों की उपज प्रति एकड़ (पौंड में)	असिंचित क्षेत्रों की प्रति एकड़ उपज (पौंड में)
गुजरात+महाराष्ट्र	३६०	१,१५३	३०७
मध्य प्रदेश	४०१	—	—
बिहार	७३४	—	—
उत्तर प्रदेश	६२२	९००	७५०

गंगा नदी की घाटी में प्रति एकड़ औसत उपज दक्षिणी भारत की अपेक्षा अधिक होती है। चने की औसत उपज ४०० से ६०० पौंड तक होती है।

भारत में चने का क्षेत्र और उत्पादन (१९५८-५९)

राज्य	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र	२९०	३३
बिहार	१,३६३	२६५
गुजरात+महाराष्ट्र	१,४०९	१९७
मध्य प्रदेश	३,८१५	९५०
पंजाब	६,३८३	२,३६८
राजस्थान	३,८४२	१,१२२
उत्तर प्रदेश	६,७१६	१,७५४
पश्चिमी बंगाल	४७७	१०९
भारत का योग	२४,८४०	६,८२६

अरहर (Pigeon Pea or Red Gram)

इसका उत्पादन देश के सभी भागों में होता है किन्तु इसका उपभोग गुजरात और दक्षिण भारत में अधिक होता है। यह ज्वार, बाजरा, रागी आदि अन्य अनाजों के साथ बोया जाता है। यह मई से जुलाई तक बोया जाता है तथा ६ से ८ महीने में पककर तैयार हो जाता है अर्थात दिसम्बर से मार्च तक।

उत्तर प्रदेश, मैसूर, बिहार, आंध्र, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश अरहर के मुख्य उत्पादक हैं। इन राज्यों में अरहर के अन्तर्गत क्षेत्रफल ९५% पाया जाता है। अरहर का प्रति एकड़ उत्पादन ६०० से ७०० पौंड तक है।

अन्य प्रकार की दालों का उत्पादन देश भर में होता है। आंध्र, बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश और राजस्थान मुख्य उत्पादक राज्य हैं।

नीचे की तालिका में मुख्य प्रकार की दालों के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

दालों का क्षेत्रफल और उत्पादन (१६५८—५६)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० टन)	
	चना	तूअर	चना	तूअर
आंध्र प्रदेश	२६०	३६०	३३	४१
बिहार	१,३६३	४६३	२६५	१२४
बम्बई	१,४०६	१,५३५	१६७	४००
केरल	—	२२	—	४
मध्य प्रदेश	३,८१५	६२६	६०५	३०६
मद्रास	८	१३७	२	१६
मैसूर	३८८	६०६	५६	७०
उड़ीसा	५०	३६	५	८
पंजाब	६,३८३	—	२,३६८	—
राजस्थान	६,८४२	४२	१,१२२	४
उत्तर प्रदेश	६,७१६	१,५८४	१,७५४	६५१
बंगाल	४७७	१०६	१०६	३०
भारत का योग	२४,८४०	५,८६०	६,८२६	१,६६२

अध्याय २२

कृषि उत्पादन (क्रमशः)

व्यवसायिक और मुद्रादायिनी फसलें

(Commercial and Cash Crops)

भारत में अनेक प्रकार की व्यवसायिक फसलें पैदा की जाती हैं जिससे कृषक को मुद्रा की प्राप्ति होती है। इस प्रकार की फसलों के अन्तर्गत हम इस अध्याय में निम्न फसलों का विस्तृत विवेचन करेंगे :—

(i) गन्ना
(ii) तिलहन
(iii) मसाले
(iv) सुपारी
(v) काजू
(vi) रबड़

(i) गन्ना (Sugarcane)

भारत गन्ने का जन्म स्थान माना जाता है जहाँ आज भी विश्व के गन्ने के क्षेत्र का लगभग ३७% क्षेत्र पाया जाता है, किन्तु वैज्ञानिक ढङ्गों से क्यूबा भारत की अपेक्षा अधिक गन्ना पैदा करता है अतः उत्पादन की दृष्टि से भारत का स्थान द्वितीय है। गन्ने के मुख्य उत्पादक इन दोनों देशों के अतिरिक्त पाकिस्तान, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, फिलीपाइन्स, पोर्टोरीको, हवाई द्वीप, मैक्सिको, डोमिनिकन रिपब्लिक, इण्डोनेशिया, तैवाँ, मारीशस, पीरू, दक्षिणी अमरीका, बृटिश, पश्चिमी द्वीप समूह और संयुक्त राज्य अमरीका हैं।

गन्ना मुख्यतः अयन वृतीय पौधा है किन्तु इसकी खेती अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धों में भी की जाती है।

गन्ने की फसल को तैयार होने में लगभग १ वर्ष लग जाता है। इसके लिए पौधे की वृद्धि के समय तापक्रम ८०° फा० होना आवश्यक है। अत्यधिक सर्दी और पाला फसल के लिए हानिकर होता है। साधारणतः इसके लिए लम्बी और तापयुक्त गर्मियाँ अधिक लाभदायक रहती हैं। यह ३०″ से ४०″ वर्षा वाले भागों में भली प्रकार पैदा किया जा सकता है। कई क्षेत्रों में तो २५″ से १००″ की की वर्षा वाले भागों में भी यह पैदा होता है। यदि वर्षा की मात्रा कम होती है तो पौधे को सिंचाई के सहारे पैदा किया जाता है। गर्मी में पौधे को कम से कम चार बार सींचने और गोड़ने से एक-एक पौधे में कई अंकुर निकल आते हैं और वह भूमि में भली प्रकार जम जाता है।

गन्ने के लिए उपजाऊ दोमट मिट्टी अथवा नमी से पूर्ण भूमि विशेषतः गहरी और चिकनी दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। दक्षिण की लावा युक्त भूमि में भी गन्ना पैदा किया जाता है। गन्ने के पौधे को पर्याप्त खाद की आवश्यकता होती है। अतः साधारणतः गन्ना तीन वर्षीय हेर-फेर के साथ बोया जाता है। गोबर, कम्पोस्ट, अथवा

अन्य प्रकार के प्राणिज खादों और सनई, ढैंचा आदि हरी खाद का भी खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। दक्षिणी भारत में २०१ से ३०० पौंड नेत्रजन और उत्तरी भारत में १०० से १५० पौंड नेत्रजन का खाद दिया जाता है।

गन्ना एक प्रकार की घास का विकसित रूप है जिसकी पत्तियाँ कांस और सरपत से मिलती जुलती हैं। यह साधारणतः मध्य जनवरी से मध्य अप्रैल तक लगाया जाता है तथा आगामी फरवरी-मर्च में काट लिया जाता है। गुजरात-महाराष्ट्र और मैसूर में अदशाली (Adsali) फसल जून से जुलाई तक बोई जाती है और नई पौध जनवरी में बोई जाती है। मद्रास में पौध रखने का समय मार्च से सितम्बर तक होता है। एक बार का बोया पौधा तीन वर्षों तक अच्छी फसल देता है। उपजाऊ भूमि अच्छी सिंचाई और तेज गर्मी मिलने पर गन्ने का पौधा काफी ऊँचा बढ़ जाता है। कभी-कभी तो यह २५ फीट तक ऊँचा हो जाता है।

भारत में जलवायु सम्बन्धी विभिन्नताओं के कारण उत्तरी भारत में पतला और दक्षिणी भारत में मोटा गन्ना उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त ज्यों-ज्यों बंगाल से पंजाब की ओर बढ़ते हैं त्यों-त्यों गन्ने में रेशे को अंश बढ़ता जाता है और मीठास की मात्रा कम होती जाती है। भारत में गन्ने में रस की मात्रा तथा गन्ने की प्रति एकड़ औसत पैदा अन्य देशों की तुलना में बहुत ही कम होती है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—[1]

गन्ने में रस की मात्रा और प्रति एकड़ उपज

देश	रस की मात्रा का प्रतिशत	प्रति एकड़ उत्पादन (टनों में)	प्रति एकड़ गन्ने के क्षेत्र से शक्कर की प्राप्ति
क्यूबा	१२·२५	१७·१२	२·०६
लूसियाना	८·०६	१६·८४	१·६०
पोर्टोरीको	१२·२३	२४·१६	२·६५
हवाई	१४·४६	६२·०५	६·४८
मैक्सिको	६·२०	१६·५४	१·८१
मार्टीनीक	८·१३	१७·६३	१·४५
अर्जेनटाइना	६·८६	१३·०५	१·२६
पीरू	१२·३३	४१·१४	५·०७
मिश्र	६·६७	३०·४२	३-०३
मारीशस	१२·०८	१६·६३	२·३७
द० अफ्रीका	१०·६०	२२·३६	३·४३
रियूनीयन	१०·६३	१३·२०	१·३६
जावा	११·४६	५६·२०	६·४४
फिलीपाइन्स	८·४५	२७·०८	२·२८
जापान और फारमोसा	१२·६३	२८·२७	२·६५
आस्ट्रेलिया	१४·३३	२१·३४	३·०६
भारत	६·५०	१४·७०	१·३६

1. Indian Sugar, Annual Number, March 1959, p. 838.

भारत में प्रति एकड़ उत्पादन कम होने के मुख्य कारण ये हैं :—

(१) गन्ने का प्रति एकड़ उत्पादन दक्षिणी भारत में अधिक है किन्तु ८० प्रतिशत गन्ने का क्षेत्र उत्तरी भारत में स्थित है। अधिक शीतलता, वर्षा तथा मार्च में सहसा ऊँचा उठ जाने वाला तापक्रम गन्ने के लिए अनुपयुक्त वातावरण उपस्थित कर देता है। उत्तरी भारत में गन्ने के पेरने का समय भी दक्षिणी भारत की अपेक्षा कम है।

(२) इस देश के खेत छोटे-छोटे हिस्सों में बँटे हैं। बड़े फार्मों की संख्या नगण्य है। खेतों की जोताई और सिचाई के पुराने प्रकार के लकड़ी के हल तथा पुरवट जैसी वस्तु का उपयोग होता है। गोड़ाई कुदाल और फावड़े से की जाती है। रसायनिक खादों का तथा फसलों के हेर-फेर आदि का कम उपयोग होता है। ये सब बातें उपज को सीमित करती हैं।

(३) सिंचाई के साधनों का पूर्ण विकास अभी नहीं हुआ है। नहरों द्वारा सिंचाई मँहगी पड़ती है और कुओं द्वारा एक एकड़ गन्ने को सींचने में एक सप्ताह तक लग जाता है। परिणाम स्वरूप गन्ने को उतना पानी नहीं प्राप्त होता जितना उसके लिए आवश्यक है।

(४) भारत में कोयम्बटूर का गन्ना ही अधिकतर बोया जाता है। यह गन्ना दो वर्ष तक ही अच्छा उत्पादन देता है। तीसरे वर्ष गन्ने की नवीन फसल बोनी पड़ती है। इसके विपरीत क्यूबा में १० वर्ष तक एक ही बार बोई गई फसल से निरन्तर गन्ना प्राप्त होता रहता है।

(५) रेड राट (Red Rot) गन्ने का सबसे भयङ्कर रोग है जो भारत भर में फैल गया है। इसके कारण गन्ने की पत्ती सूखकर लाल हो जाती है और जड़ में कीड़े लग जाते हैं जिससे पौधा सूख जाता है। यह छूत की बीमारी है और एक पौधे में होने से मीलों तक अपना आतंक फैला देती है।

अब पिछले कई वर्षों से भारत में गन्ने की किस्म को उन्नत करने के सफल प्रयास किये गये हैं। कोयम्बटूर के अनुसन्धान केन्द्र में गन्ने को ज्वार के पौधे से कलम करके तैयार किया गया है। उत्तम कोटि का होने के कारण उसकी खेती का क्षेत्रफल बढ़ रहा है। बम्बई में उत्तम श्रेणी का गन्ना बोने से प्रति एकड़ पीछे १२२ टन तक गन्ना प्राप्त किया गया है। उत्तरी भारत में प्रति एकड़ गन्ने का उत्पादन ३०० से ४०० मन का और दक्षिणी भारत में ६०० मन तक होता है किन्तु उत्तम कोटि के बीज से उत्तरी भारत में १,५०० मन और दक्षिणी भारत में २,५०० मन तक गन्ना प्राप्त किया गया है।

उत्तर-प्रदेश, बिहार, पंजाब आदि में गन्ने की उत्तम श्रेणी की किस्में—Co. 312; Co. 313; Co. 419; Co. 421; Co. 453; Co. 527; Co. 5.321; B.O. 10 और B.O. 11—पैदा की जाती हैं।

उत्पादक क्षेत्र

यद्यपि गन्ने की खेती के लिये उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत भौगोलिक सुविधाओं की दृष्टि से अधिक अनुकूल है तथापि अधिक गन्ना उत्तरी भारत में ही उपजाया जाता है। अकेला उत्तर प्रदेश देश की उपज का ५०%, पंजाब

१५%, तथा बिहार १२% पैदा करता है। ये तीनों राज्य मिल कर भारत का लगभग ८० प्रतिशत गन्ना उत्पन्न करते हैं।

गन्ने का क्षेत्रफल और उत्पादन (१९५७-५८)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	प्रति एकड़ उपज (पौंड में)
आंध्र	१७६	४,६०७	५,१०४
आसाम	६५	६७३	२,३०९
बिहार	३७६	३,१८३	१,८९४
बम्बई	२७०	७,३२५	६,३३८
केरल	२२	३४८	३,५६४
मध्य प्रदेश	१२२	१,२४५	२,२९५
मद्रास	१२१	३,१०४	६,२९४
मैसूर	१३३	३,२०७	५,४०६
उड़ीसा	५९	९४२	३,५६९
पंजाब	४९४	६,७४२	३,०५७
राजस्थान	८३	७१५	१,९१६
उत्तर प्रदेश	३,०१७	३०,५४२	२,२६७
पश्चिमी बंगाल	५८	८४३	३,२८३
जम्मू-काश्मीर	३	९	७४७
दिल्ली	११	७०	१,४२६
हिमाचल प्रदेश	४	१९	१,१२०
त्रिपुरा	७	२७	२,५६०
भारत का योग	५,०२१	६३,९५४	२,४४०

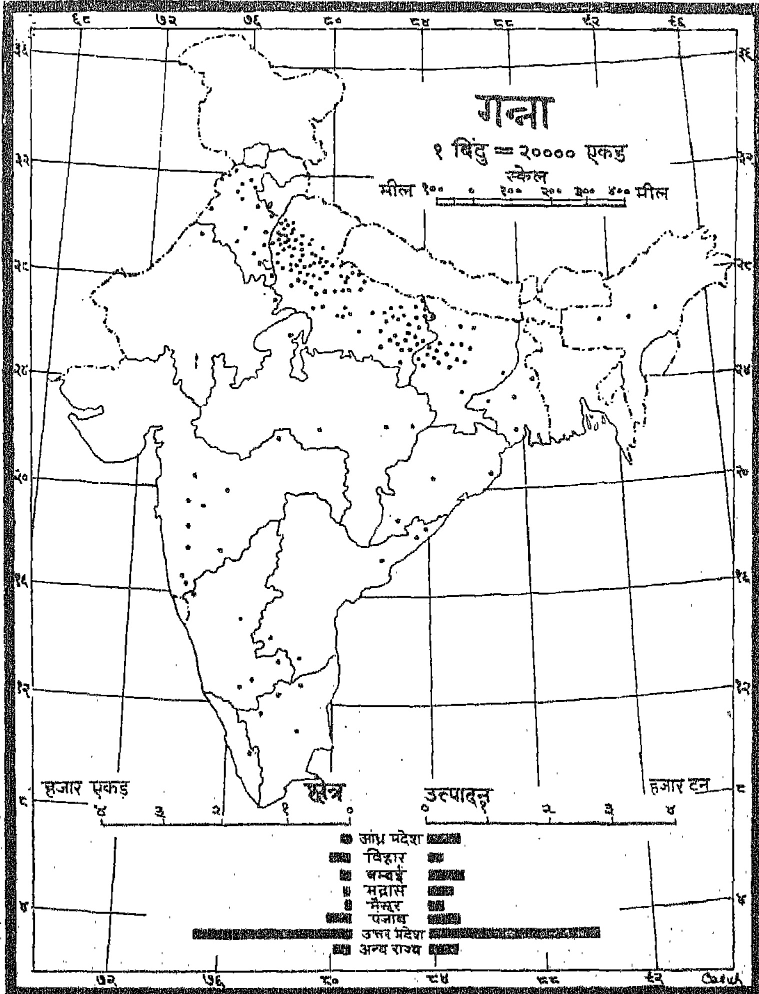
गंगा की घाटी में ही गन्ना अधिक पैदा किया जाता है इसके कई कारण हैं—(१) यहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ के समय खेतों में कछारी मिट्टी फैल जाती है। (२) पानी कम गहराई पर ही मिल जाता है जिससे सिंचाई आसानी से हो जाती है। (३) समतल मैदान होने के कारण खेती सरलतापूर्वक की जा सकती है। (४) पाले का अभाव रहता है। (५) ४०″ तक वर्षा हो जाती है तथा सिंचाई के उत्तम साधन उपलब्ध हैं। (६) तापक्रम लगभग ८०° फा० तक रहता है। (७) घनी जनसंख्या होने के कारण मजदूर सस्ते और आसानी से मिल जाते हैं।

गन्ने के क्षेत्र एवं उत्पादन की दृष्टि से भारत में उत्तर प्रदेश का स्थान सर्वप्रथम है। भारतीय क्षेत्र का लगभग ⅗ हिस्सा केवल उत्तर प्रदेश में स्थित है। यहाँ गन्ने की दो प्रमुख पेटियाँ हैं। पहली पेटी तराई प्रदेश से संबद्ध है और रामपुर से प्रारम्भ होकर बरेली, पीलीभीत, सीतापुर, खीरी, लखीमपुर, गोंडा, फैजाबाद, आजमगढ़, जौनपुर, बलिया, देवरिया, गोरखपुर होती हुई बिहार के सारन, चम्पारन तक फैली है। इस पेटी ता केन्द्र गोरखपुर-देवरिया कहा जा सकता है जहाँ कई चीनी की मिलें हैं।

दूसरी पेटी गंगा-यमुना नदियों के दोआब में स्थित है। यह मेरठ से इलाहा-

बाद तक विस्तृत है। इस पेटी का केन्द्र मेरठ में है। मेरठ का गन्ना उत्तम कोटि का ऊँचा, मोटा तथा रस वाला होता है। मेरठ की प्रति एकड़ उपज ७०० मन से भी अधिक होती है।

आन्ध्र में गन्ने की कृषि गोदावरी तथा कृष्णा के डेल्टे में होती है क्योंकि इस प्रदेश में उपरोक्त नदियों के डेल्टे में नहरों द्वारा सिंचाई करने की सुविधा प्राप्त है। यहाँ की भूमि बड़ी उर्वर है।



चित्र १२८—प्रमुख गन्ना उत्पादक क्षेत्र

मद्रास में कोयम्बटूर एवं मदुराई जिलों में गन्ने की कृषि विशेष रूप से

होती है। कोयंबटूर में गन्ने की अनुसंधानशाला भी है जिससे कृषि में सहायता मिलती है।

महाराष्ट्र राज्य के गन्ने का क्षेत्र राज्य के पूर्वी भाग में नासिक के दक्षिण में स्थित है। अहमदनगर, नासिक, पूना और शोलापुर जिले प्रमुख उत्पादक हैं। यहाँ गन्ने की सिचाई के लिये बड़ी बड़ी योजनायें बनाई गई हैं। तापक्रम वर्ष भर सम रहता है जिससे गन्ने में रस अधिक निकलता है और वर्ष भर मिलों को गन्ना मिलता रहता है। इन्हीं सब कारणों से अहमदनगर के निकट गन्ना पेरने की बड़ी बड़ी मिलें स्थापित हो गई हैं।

पंजाब भारत का चतुर्थ महत्वपूर्ण गन्ना उत्पादक राज्य है जहाँ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिलों की भाँति सिचाई की सहायता से गन्ना उत्पन्न किया जाता है। यहाँ के प्रमुख गन्ना उत्पादक जिले रोहतक, जालंधर एवं अमृतसर आदि हैं जहाँ ८ प्रतिशत भारतीय गन्ने का उत्पादन होता है।

गन्ने के उत्पादन में असम को छोड़ कर पश्चिमी बंगाल प्रायः सभी राज्यों से पीछे है। इस राज्य में जूट की खेती ने गन्ने की खेती को संकुचित कर दिया है। दोनों मुद्रादायिनी फसल हैं पर बंगाल की अतिवृष्टि जूट की अपेक्षा गन्ने के लिए कम उपयोगी है। फिर भी बर्दवान, वीरभूमि, हुगली, मुर्शिदाबाद, चौबीस परगना और नदिया आदि जिलों की ½ प्रतिशत से १ प्रतिशत कृषि योग्य भूमि पर गन्ने की खेती की जाती है।

बिहार के गन्ने का क्षेत्र उत्तर प्रदेश की तराई वाली पेटी से सम्बद्ध है। प्रधान गन्ना उत्पादक जिले चम्पारन, सारन, शाहाबाद, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पुर्णिया और भागलपुर आदि हैं जहाँ कृषि योग्य भूमि के ५ प्रतिशत से लेकर १० प्रतिशत क्षेत्र में केवल गन्ने की खेती होती है।

नीचे की तालिका में कुछ वर्षों का गन्ने के अंतर्गत क्षेत्रफल, उत्पादन एवं प्रति एकड़ उपज बताई गई है :—

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	प्रति एकड़ उपज (टन)
१९३०-३१	२९,०५	३५७,८०	१२·३२
१९३८-३९	२६,६३	३६०,६६	१३·५४
१९४६-४७	३५,२८	४९७,६९	१४·११
१९५१-५२	४७,९२	६०६,८०	१२·६७
१९५३-५४	३४,९८	४३६,७३	१२·५४
१९५४-५५	३९,९४	५६९,२३	१४·२५
१९५५-५६	४५,६५	५९३,१७	१२·९८
१९५६-५७	५०,५७	६६९,९८	१३·२४
१९५७-५८	५०,२१	६३९,५४	१२·७३
१९५८-५९	४८,३६	७०९,१५	१४·७५

भारत में जितना गन्ना पैदा होता है उसका ५१% गुड़ बनाने में; ३०% सफेद चीनी बनाने में और शेष चूसने तथा बीज के रूप काम में लाया जाता है।

(ii) तिलहन (Oilseeds)

तिलहन के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में प्रमुख है। यहाँ विश्व की ३/५ मूंगफली, १/४ तिल, १/५ रेंडी और १/६ सरसों और अलसी उत्पन्न की जाती है। तिलहन के अन्तर्गत दो प्रकार के बीज सम्मिलित किए जाते हैं। एक वे जिनका दाना छोटा होता है जैसे, अलसी, सरसों, राई और तिल। दूसरे वे जिनका दाना बड़ा होता है जैसे, मूंगफली, रेंडी, बिनौला और नारियल आदि। छोटे दाने वाले तिलहन अधिकांशतः उत्तरी भारत में और बड़े दाने वाले दक्षिणी भारत में होते हैं।

तिलहनों को भोज्य और अभोज्य होने की दृष्टि से भी दो भागों में बांटा जा सकता है। मूंगफली, सरसों, राई और तिल भोज्य हैं तथा अलसी, रेंडी, बिनौले आदि अभोज्य। इन सभी प्रकार के तिलहनों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी, वर्षा एवं ताप की आवश्यकता होती है। अतः ये भारत के सभी राज्यों में न्यूनाधिक मात्रा में पैदा किये जाते हैं।

भारत में विभिन्न प्रकार के तिलहनों का क्षेत्र और उत्पादन[1]
(१९५८-५९) क्षेत्र=००० एकड़
उत्पादन=००० टन

राज्य	मूंगफली		रेंडी		तिल		राई और सरसों		अलसी		तिलहनों का योग	
	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन
आंध्र	२,६४९	१,००३	६६५	४७	६१९	५५	४	(b)	७५	६	४,००४	१,११०
आसाम	—	—	६	१	१९	४	२९५	५६	२	(b)	३१५	६५
विहार	—	—	२६	९	६७	६	२०८	३४	२५८	२९	५५९	७८
वम्बई	६,०६९	१,७६२	२८७	३९	६१९	५४	१०९	२२	५९४	५६	७,६७८	१,९२४
जम्मू-काशमीर	—	—	—	—	—	—	४३	१०	१९	४	६२	१४
केरल	३५	१६	—	—	४९	६	—	—	—	—	८४	२२
मध्य प्रदेश	९५०	३०५	१५	२	८३८	६८	३६०	५३	२९३	१२४	३,४६०	५५२
मद्रास	१,८८६	९०८	३३	६	२८७	३७	२	(b)	(a)	(b)	२,२०८	९५०
मैसूर	२,०३६	५६९	१००	९	१७३	१५	७	१	१२६	१०	२,४४२	६०४
उड़ीसा	५४	१४	५१	४	२४०	२०	१२७	२१	३५	३	५०७	६२
पंजाव	१५३	५२	—	—	५३	५	८९७	१६७	२७	२	१,१३०	२२०
राजस्थान	१६७	१६	३	१	१,२०७	११४	७२०	७८	२९८	२७	२,३९५	२६६
उत्तर प्रदेश	४७८	१४१	७	२	१,१४०	१०६	३,२६२	५८३	८९२	१५९	५,७७९	९९१
प० बंगाल	—	—	—	—	१२	२	२००	४२	९५	११	३४७	५५
हिमाचल प्रदेश	(a)	(b)	—	—	२	(b)	८	१	२	(b)	२१	१
त्रिपुरा	—	—	—	—	७	१	९	१	—	—	१३	२
भारत का योग	१४,४८१	४,८१६	१,१९३	१११	५,३३२	४९३	६,२८८	१,०६९	३,७०८	४३०	३१,००२	६,९१९

(a) ५०० एकड़ से कम (b) ५०० टन से कम

1. Agricultural Situation in India, Vol XIV, No. 5, Aug. 59, p. 615.

(१) मूंगफली (Groundnut, Peanut or Monkeynut)

इसका आदिस्थान ब्राजील है यहीं से यह विश्व के अन्य देशों में पहुँचाई गई। मूंगफली के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में सर्व प्रथम है। विश्व के उत्पादन का लगभग ३२% भारत से ही प्राप्त होता है। अन्य उत्पादक चीन (२६%), संयुक्त राज्य अमेरिका (६%), फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका (७%), नाईजीरिया (६%) और इन्डोनेशिया ३%) है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें

यद्यपि यह उष्ण कटिबन्धीय पौधा है किन्तु यदि गर्मियाँ अच्छी रहें तो इसकी खेती अर्द्ध-उष्णकटिबन्धीय भागों में भी की जा सकती है। इसे सिंचाई के सहारे तथा वर्षा के सहारे भी बोया जाता है। साधारणत: इसे ३०" से ३५" तक की वर्षा पर्याप्त होती है। इससे कम वर्षा होने पर सिंचाई का सहारा लिया जाता है। यह ५० से ५५" वर्षा वाले भागों में भी पैदा की जा सकती है।

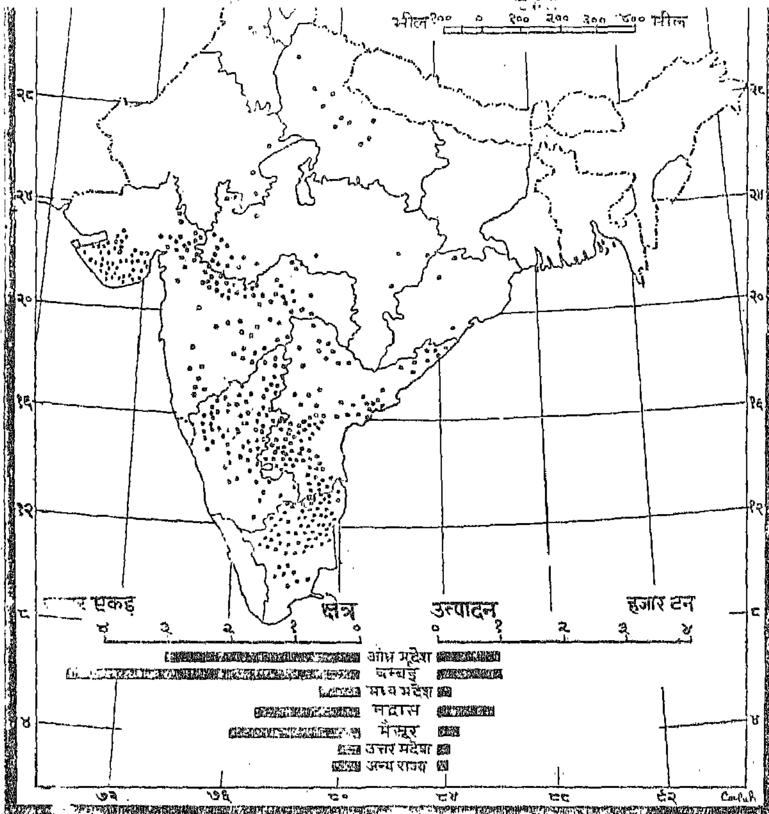
यह साधारणत: शुष्क भूमि की फसल है। इसके पकने में ५ महीने तक लगते हैं। यद्यपि अब ऐसी किस्म भी पैदा की जाने लगी है जो ९० से १०० दिनों में ही पक जाती है। इसे ज्वार, बाजरा, रेंडी, अरहर अथवा कपास के साथ मिलाकर भी बोया जाता है।

मूंगफली का पौधा इतना मुलायम होता है कि अधिक शीतल प्रदेशों में इसका उगना असम्भव है। साधारणतया इसे ७०° फा० से ८०° फा० तक के तापक्रम की आवश्यकता होती है। पाला फसल के लिये हानिकर है।

यह हल्की मिट्टी में जिनमें खाद पड़ा हो और जीवांश मिले हों अच्छी पैदा होती है। भारत में इसकी फसल महाराष्ट्र, गुजरात और मद्रास राज्यों के काली मिट्टी और दक्षिण के पठार के लाल मिट्टी के क्षेत्र में भी होती है। गंगा की कछारी बालू मिट्टी में भी यह बोई जाती है। हल्की बलुही मिट्टी में कठोर चिकनी मिट्टी की अपेक्षा अधिक फलियाँ लगती हैं।

मूंगफली प्राय: खरीफ की फसल है जो मई से लेकर अगस्त तक बोई तथा नवम्बर से जनवरी तक खोदी जाती है। मद्रास राज्य में मूंगफली खरीफ तथा रबी दोनों ही फसलों में होती है। दूसरी फसल की बोवाई फरवरी और मार्च के महीने में होती है और जून जुलाई तक खोदी जाती है। यद्यपि मूंगफली का ८० प्रतिशत उत्पादन दक्षिणी भारत में ही होता है किन्तु प्रति एकड़ उत्पादन उत्तरी भारत की अपेक्षा कम है। भारत में मूंगफली की कृषि का महत्व केवल मुद्रादायनी फसल के रूप में ही नहीं है किन्तु खाद की दृष्टि से भी है। जिस खेत में मूंगफली की कृषि होती है उसकी मिट्टी कीटाणुओं (बैक्टीरिया) से भर जाती है जो नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ा देते हैं। मैसूर में मूंगफली की खेती रागी के साथ हेर-फेर करके की जाती है। इससे दोनों की फसल लगभग दूनी हो जाती है। मूंगफली की फसल तैयार होने में ६ महीने से भी अधिक समय लगता है अत: अब अन्तर्कृषि प्रणाली (Inter-culture) द्वारा मूंगफली उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है। मूंगफली की कृषि का प्रादेशिक वितरण उतना ही अवैज्ञानिक है जितना गन्ने का। मूंगफली का ८० प्रतिशत उत्पादन दक्षिणी भारत में होता है जबकि उत्तरी भारत की जलवायु इसके लिये अधिक अनुकूल है और गन्नों का ८० प्रतिशत उत्पादन उत्तरी भारत में होता है जबकि दक्षिणी भारत की जलवायु इसके लिये अधिक अनुकूल है।

परिणामस्वरूप गन्ने तथा मूंगफली दोनों ही की प्रति एकड़ उपज अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है।



चित्र १२६—मूंगफली के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

इसकी प्रति एकड़ उपज कई बातों पर निर्भर रहती है विशेषकर मिट्टी, मौसम और बोने के तरीकों पर। मूंगफली की जमीन में फैल जाने वाली फसल से प्रति एकड़, अधिक उपज प्राप्त होती है बनिस्बत झुंड में फैलने वाली फसल के। सिंचाई करने पर फसल की उपज और भी अच्छी होती है। भारत में सिंचाई की गई फसल से प्रति एकड़ २,००० पौंड उपज प्राप्त की जाती है जबकि केवल वर्षा पर ही निर्भर रहने वाली फसल से केवल १,२०० पौंड ही मिलता है। भारत

में मूंगफली की प्रति एकड़ उपज ६०२ पौंड है जबकि सैनीगाल में ७६५ पौंड; दक्षिणी अफ्रीका में ४६१ पौंड; चीन में १,६६८ पौंड; मौरीशस में २,२३० पौंड; अर्जेनटाइना में १,१०० पौंड; संयुक्त राज्य अमेरिका में ७५८ पौंड; और इटली में १,६६५ पौंड प्रति एकड़ होती है।

भारत में व्यावसायिक दृष्टि से चार किस्म की मूंगफाली पैदा की जाती है :—

(i) **कोरोमन्डल या मारीशस** (Coromandal or Mauritius)—यह मुख्यत: बम्बई और मद्रास राज्यों में पैदा की जाती है। इसका पौधा अधिक फैलता है तथा इसके पकने में लगभग ४½ महीने लगते हैं। छिलकों में ७७% मूंगफली प्राप्त होती है जिसमें तेल की मात्रा ४० से ५०% तक होती है।

(ii) **बम्बई बोल्ड किस्म** (Bombay Bold)—यह किस्म महाराष्ट्र के शोलापुर, बरसी, लट्टूर, गुलबर्गा, कोल्हापुर जिलों और गुजरात में कराद गुजरात और सौराष्ट्र में पैदा की जाती है। इसके फल बड़े होते हैं। फल में तेल की मात्रा ४३ से ४७% तक होती है।

(iii) **स्पेनिश या खानदेश किस्म** (Spanish or Khandesh)—यह महाराष्ट्र राज्य के खानदेश, मध्यप्रदेश तथा मद्रास के कोयम्बट्टूर और पांडिचेरी जिलों में बोई जाती है। फल अधिकतर गुच्छों के रूप में लगते हैं। फसल ३½ महीने में ही तैयार हो जाती है। छिलकों से ७८% तक मूंगफली मिलती है जिसमे तेल की मात्रा ५० से ५४ प्रतिशत तक होती है।

(iv) **लाल नैटाल** (Red Natal or Lal Boria)—यह अधिकतर सौराष्ट्र, गुजरात, कोल्हापुर, कराद, बरार और मध्य प्रदेश में पैदा की जाती है। यह तीन महीने में ही पक जाती है तथा इसमें तेल का अंश ४६ से ५१ प्रतिशत तक होता है।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में मूंगफली के मुख्य उत्पादक आंध्र, मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र और मैसूर राज्य हैं जिनमें कुल क्षेत्रफल का ६०% पाया जाता है। राजस्थान, मध्य प्रदेश, और उत्तर प्रदेश अन्य उत्पादक हैं।

नीचे की तालिका में मूंगफली के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया हैं :—

मूंगफली का क्षेत्रफल और उत्पादन (१९५७—५८)

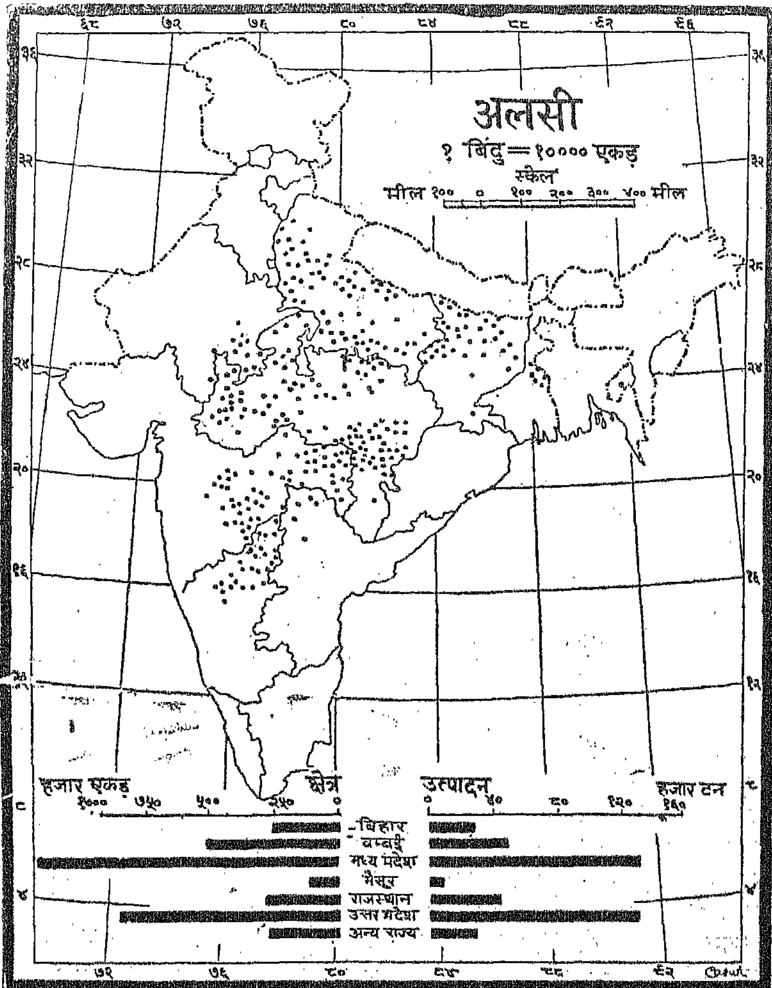
राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	प्रति एकड़ पैदावार (पौंड में)
मद्रास	१,७६५	८६०	१,०७३
मैसूर	२,१५४	६३५	६६०
आंध्र	३,१०१	६६५	७१६
बम्बई	५,७१३	१,२६५	४६६
मध्य प्रदेश	८१४	१६६	५४८
उत्तर प्रदेश	४७३	२०७	६८०
राजस्थान	१७२	३५	४५६
बिहार	—	—	—
भारत का योग	१४,४५७	४२७१	६६२

१९५२–५३ में ११८·४ लाख एकड़ भूमि पर मूंगफली बोई गई जिसका उत्पादन २८·८ लाख टन था। १९५८–५९ में यह क्षेत्रफल १४४·८ लाख एकड़ और उत्पादन ४८·७ लाख टन था।

भारत से मूंगफली का निर्यात मुख्यत: कनाडा, बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, इटली और इंगलैंड को किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों से अब मूंगफली के तेल का भी निर्यात किया जाने लगा है।

(२) अलसी (Linseed)

अलसी दो कार्यों के लिए पैदा की जाती है। भारत में इसका उत्पादन



चित्र १२०—अलसी के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

विशेषतः बीजों के लिए किया जाता है जिससे तेल प्राप्त होता है, जबकि शीतोष्ण देशों में अलसी के पौधे से रेशे प्राप्त किये जाते हैं जिनसे लिनेन वस्त्र बुना जाता है। तैल का उपयोग रंग-रोगन बनाने में किया जाता है।

अलसी या तीसी उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान चौथा है। यहाँ से कुल उत्पादन का १२% प्राप्त होता है, जबकि सं० रा० अमरीका से ३०%; रूस से १८%; अर्जेनटाइना से १३%; कनाडा से १०% और यूरुग्वे से ३% प्राप्त होता है।

जलवायु संबंधी दशायें

अलसी के लिए ठन्डे जलवायु की आवश्यकता होती है अतः जिन स्थानों में गेहूँ की पैदावार हो सकती है वहाँ अलसी भी आसानी से हो सकती है। अलसी सभी प्रकार की मिट्टी में हो सकती है बशर्ते कि वहाँ काफी नमी हो इसके लिये ३०" से ७०" तक की वर्षा काफी होती है।

भारत में प्रायद्वीपीय एवं मैदानी दो प्रकार की अलसी उत्पन्न की जाती है। प्रथम प्रकार की अलसी को गहरी काली मिट्टी की आवश्यकता होती है जो कुछ समय तक नमी संचित रख सके। दूसरे प्रकार की अलसी कछारी मिट्टी में पैदा की जाती है।

इसकी खेती पंजाब से लगा कर बंगाल तक भिन्न भिन्न जलवायु में होती है। भिन्न भिन्न प्रकार की मिट्टी एवं जलवायु में उत्पन्न होने वाली अलसी की बोवाई और कटाई भी भिन्न भिन्न समय में होती है। प्रायः वर्षा के समाप्त होते ही अक्टूबर से दिसम्बर तक अलसी बोई जाने लगती है और फरवरी से अप्रैल तक काटी जाती है। अलसी की कृषि रबी की फसलों के साथ साथ होती है अतः अन्य फसलों के साथ साथ यह भी सींची जाती है अथवा बिना सींचे भी उत्पन्न की जा सकती है। अलसी का अधिक से अधिक प्रति एकड़ उत्पादन भारत में ५०० से ६०० पौंड तक होता है किन्तु प्रति एकड़ उपज का औसत केवल २५० पौंड है।

भारत में दो प्रकार की अलसी बोई जाती है—बड़े दाने की बादामी रंग की और छोटे दाने की पीले रंग की।

उत्पादक क्षेत्र

अलसी के मुख्य उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और बम्बई हैं। कुल क्षेत्रफल का लगभग ९०% इन राज्यों में हैं। मैसूर और आंध्र प्रदेश में भी यह पैदा की जाती है।

अलसी का क्षेत्रफल और उत्पादन (१९५७-५८)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	प्रति एकड़ उपज (पौंड में)
आंध्र प्रदेश	७८	५	१४४
बिहार	१३९	११	१७७
बम्बई	६०२	५३	१९७
मद्रास	—	—	—
मैसूर	१२०	९	१६८

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	प्रति एकड़ उपज (पौंड में)
मध्य प्रदेश	१,२४२	७७	१३९
उत्तर प्रदेश	७६४	८०	२३५
राजस्थान	२३८	२१	१९८
भारत का योग	३,३१८	२७१	१८३

१९५२-५३ में ३३·६ लाख एकड़ भूमि पर और १९५८-५९ में ३७·१ लाख भूमि पर अलसी बोई गई। इसका उत्पादन क्रमशः ३·६ लाख टन और ४·३ लाख टन हुआ।

अलसी का निर्यात पहले इंगलैंड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, हालैंड और इटली आदि देशों को किया जाता था किंतु अब तेल पेरने वाली मशीनों के प्रचार से तेल अधिक और अलसी कम मात्रा में भेजी जाती है।

(३) तिल (Sesamum, Til or Gingelli)

तिल की मातृभूमि दक्षिणी तथा दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका बताई जाती है किन्तु वैदिक यज्ञों में तिल का वर्णन आया है अतएव संभवतः यह यहीं का पौधा रहा होगा। प्रारम्भ में इसकी खेती कहीं भी की जाती रही हो किन्तु आज भारत तिल का दूसरा बड़ा उत्पादक है। अन्य उत्पादक सूडान, मैक्सिको, बर्मा, पाकिस्तान और टर्की हैं।

जलवायु संबंधी दशायें और उत्पादक क्षेत्र

तिल की पैदावार भारत में ठन्डे भागों में खरीफ की फसल और गर्म भागों में रबी की फसल की भांति की जाती है। पहले भागों में यह मई से अगस्त तक बोया जाता है और अगस्त से दिसम्बर तक काटा जाता है। दूसरे भागों में अक्टूबर से जनवरी तक बोया जाता है और मई से जुलाई तक काट लिया जाता है।

इसकी खेती अनेक प्रकार की जलवायु में की जाती है। यह मैदानों में पैदा होता है तथा ४,००० फीट की ऊँचाई तक भी बोया जाता है। इसके लिए ७०° फा० या इससे कुछ अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है। २०″ तक की वर्षा इसके लिए पर्याप्त होती है।

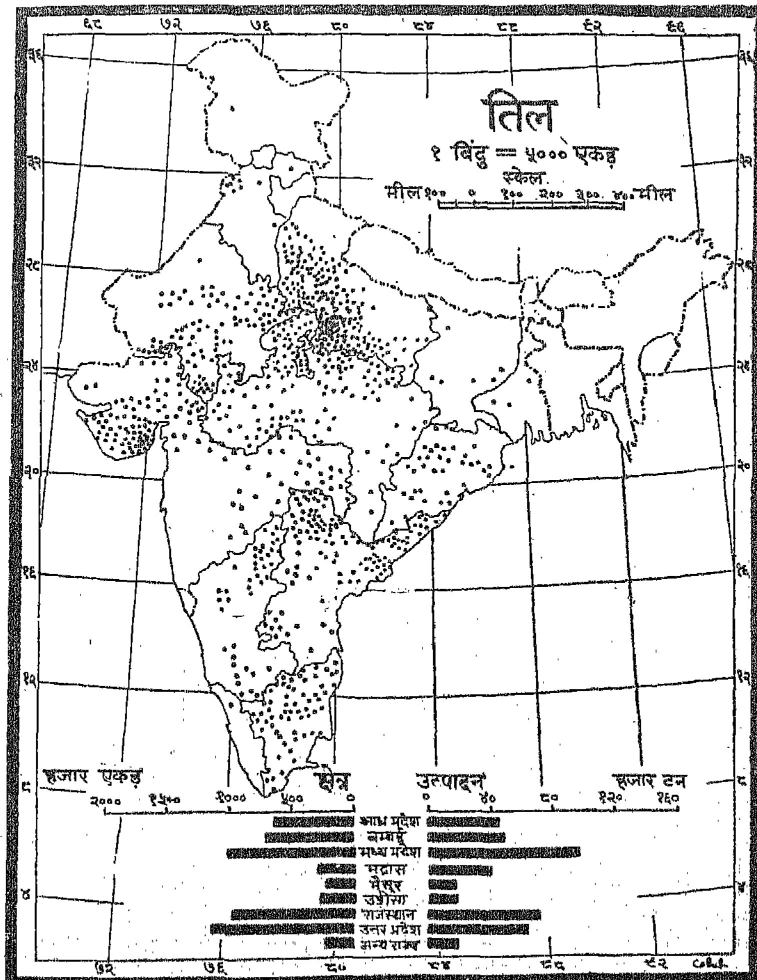
तिल के लिए हल्की बलुही मिट्टी की आवश्यकता होती है जिसमें पानी रुके नहीं। जब खेत में पानी रुक जाता है तो पौधा नष्ट हो जाता है। इसकी खेती निकृष्ट एवं अनउपजाऊ खेतीहर भूमि में भी की जाती है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और मद्रास इसके मुख्य उत्पादक हैं। इन राज्यों में तिल के अन्तर्गत ९०% क्षेत्र पाया जाता है।

तिल का क्षेत्रफल और उत्पादन (सन् १९५८-५९)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	प्रति एकड़ उपज (पौंड में १९५७-५८)
उत्तर-प्रदेश	१,१४०	१०६	१२२
मध्य-प्रदेश	८३८	६८	१२३
राजस्थान	१,२०७	११४	१०८

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	प्रति एकड़ उपज (पौंड में १९५७-५८)
बम्बई	६१९	५४	१८२
पंजाब	५३	५	१७२
मद्रास	२८७	३७	२८५
मैसूर,	१७३	१५	१९६
आंध्र-प्रदेश,	६१९	५५	१७६
भारत का योग	५,३३२	४९३	१५४



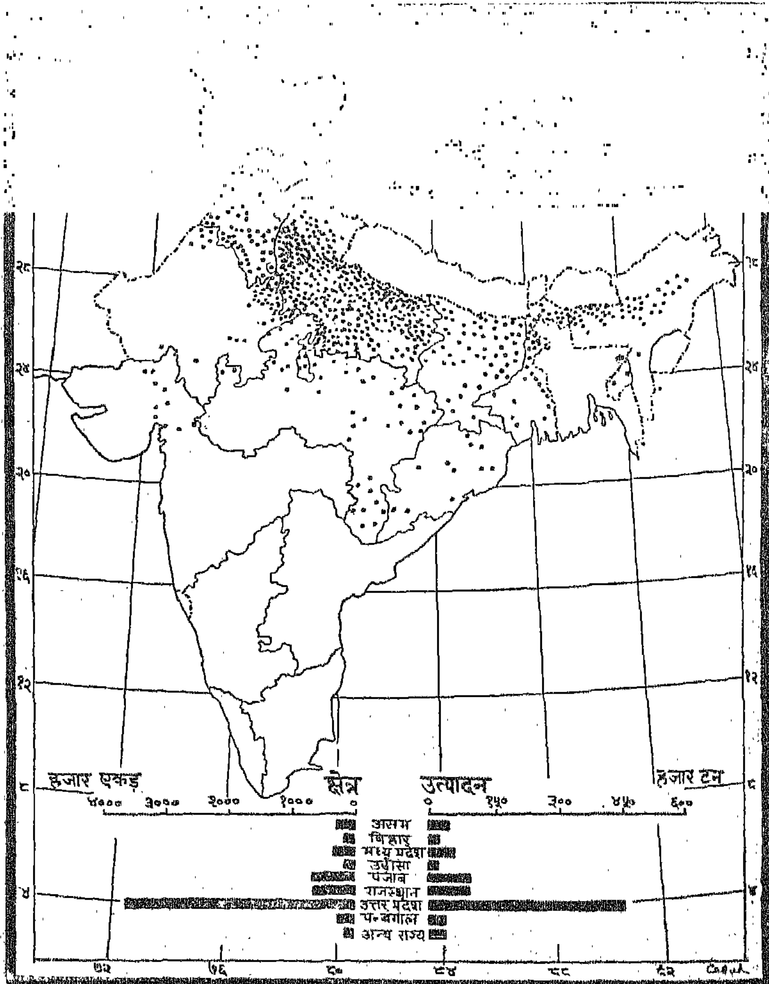
चित्र १३१—तिल के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

सन् १९५२-५३ में तिल का क्षेत्रफल ५८·७ लाख एकड़ और उत्पादन ४·६ लाख टन था। १९५८-५९ में यह क्रमशः ५३·३ लाख एकड़ और ४·९ लाख टन रहा।

पिछले कुछ वर्षों से तिल का निर्यात व्यापार नगण्य सा ही है। तिल का तेल ही अधिक निर्यात किया जाता है। इसके मुख्य खरीदार इङ्गलैंड, मारीशस, अरब, लङ्का, फ्रांस, बेल्जियम, मिश्र, जर्मनी और इटली हैं।

(८) सरसों और राई (Rapeseed and Mustard)

सरसों और राई दोनों ही तेल-बीज गेहूं और जौ आदि फसलों के साथ मिलाकर



चित्र १३२—सरसों के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र

बो दिये जाते हैं। अतः इनके लिए भी वैसा ही जलवायु और मिट्टी की आवश्यकता होती है जैसी गेहूँ या जौ के लिए। किन्तु पानी की अधिकता पौधों को नष्ट कर देती है। यह अगस्त से अक्टूबर तक बोई जाती है और जनवरी से अप्रैल तक काट ली जाती है। यह अधिकतर गेहूँ, जौ, चना तथा मटर के साथ बोई जाती है।

भारत में ये दोनों ही उत्तरी भारत में अधिक पैदा किये जाते हैं। इनके मुख्य उत्पादक उत्तर-प्रदेश, बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, पंजाब आदि हैं।

भारत की उपज का अधिकांश भाग बेल्जियम, इटली, फ्रांस, और इङ्गलैंड को निर्यात किया जाता है। देश में इसका उपयोग तेल बनाने में तथा इसकी खली पशुओं को खिलाने में काम में लाई जाती है।

सन् १९५२-५३ में ५२·० लाख एकड़ भूमि पर और १९५८-५९ में ६२·८ लाख एकड़ भूमि पर सरसों और राई बोई गई। इसका उत्पादन क्रमशः ८·४ लाख टन और १०·६ लाख टन था।

(५) रेंडी (*Castor seed*)

इसका आदि स्थान भारत और उत्तरी अफ्रीका माना जाता है किन्तु अब यह विश्व के अधिकांश भागों में पैदा की जाती है। सबसे अधिक उत्पादन ब्राजील से प्राप्त होता है—३९%। भारत से २७% रेंडी प्राप्त होती है। अन्य उत्पादक देश पूर्वी अफ्रीका, थाईलैंड, दक्षिणी अफ्रीका आदि हैं।

रेंडी की कृषि मैदानों तथा पठारों पर समान रूप से होती है। रेंडी का पौधा १० फीट से २० फीट तक ऊँचा होता है और नर्म स्थानों की अपेक्षा गर्म स्थानों में सरलता से उगता है। यह पौधा शुष्क जलवायु में भी हरा भरा रहता है किन्तु पानी से डूबे हुये स्थान में पीला होकर गल जाता है। अतः इसके पौधे के लिए शुष्क बलूही या काँप मिट्टी के क्षेत्र की आवश्यकता होती है। पाला पड़ने से रेंडी के पेड़ की पत्तियाँ सूख जाती हैं और फसल को बड़ी क्षति पहुँचती है।

रेंडी की कृषि बहुधा ज्वार, बाजरे, अरहर तथा कपास आदि के साथ-साथ की जाती है। बम्बई में ४/५ तथा मद्रास की १/३ रेंडी की कृषि स्वतन्त्र रूप में होती है। रेंडी को रबी और खरीफ दोनों फसलों में उगाया जाता है। गर्म जलवायु वाले राज्यों में रेंडी का पेड़ एक बार बोये जाने पर कई वर्ष तक रेंडी उत्पन्न करता रहता है किन्तु ऊँचे और शीतल क्षेत्रों में यह प्रति वर्ष बोया जाता है। साधारणतया जुलाई के महीने में पहला पानी पड़ने पर रेंडी बो दी जाती है और दिसम्बर से मार्च तक में काटी जाती है। पर सौराष्ट्र और कच्छ आदि में इसे अगस्त और सितम्बर में बोते हैं।

भारत में इसके मुख्य उत्पादक आंध्र-प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर और उड़ीसा हैं। कुछ रेंडी मध्य-प्रदेश, बिहार तथा उत्तर-प्रदेश में भी पैदा की जाती है।

सन् १९५२-५३ में रेंडी का उत्पादन क्षेत्र १३·२ लाख एकड़ और उत्पादन १·० लाख टन था। १९५८-५९ में यह क्रमशः ११·९ लाख एकड़ और उत्पादन १·१ लाख टन था।

भारत में रेंडी का उपयोग तेल निकालने में किया जाता है। जो मशीनों को चिकना करने में उपयुक्त है। इसकी खली पशुओं को खिलाई जाती है तथा खेतों में खाद के रूप में प्रयुक्त होती है।

भारत से रेंडी के तेल का निर्यात मुख्यत: बेल्जियम, फ्रांस, इटली, सं० राज्य अमरीका, हौलैंड, स्पेन, आदि देशों को निर्यात किया जाता है।

(६) बिनौला (Cotton-seed)

बिनौला कपास के बीज को कहते हैं। यह केवल पशु को ही नहीं खिलाया जाता वरन् इससे वनस्पति घी भी बनाया जाता है। पशुओं से कम दूध प्राप्त होने के परिणामस्वरूप घृत का प्रयोग संकुचित है और रसोई के कार्यों में वनस्पति घी का प्रयोग अधिक होता है।

बिनौले के लिए जिन भौगोलिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है उसका वर्णन आगामी पृष्ठों में कपास के प्रकरण के अन्तर्गत किया जायगा। बिनौले का अधिकतर उत्पादन दक्षिण भारत की काली मिट्टी एवं मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में स्थित है। प्रतिवर्ष लगभग २० लाख टन बिनौले का उत्पादन होता है जिससे तेल प्राप्त किया जाता है। भारत के बिनौले में १८ प्रतिशत से १९ प्रतिशत तेल की मात्रा रहती है। तेल निकलने के बाद खली का उपयोग पशुओं को खिलाने तथा खाद के रूप में होता है।

(७) महुवा

जुलाई अगस्त में महुवा के पक जाने पर उससे घुंडिया प्राप्त होती हैं। इन घुंडियों को बरसाती धूप में खूब सुखा लिया जाता है। इसमें पर्याप्त मात्रा में, कभी-कभी ३३ प्रतिशत से भी अधिक तेल निकलता है। यह तेल भोज्य होता है और इससे अनेक प्रकार की खाद्य सामग्री, मिठाई आदि बनाई जाती है। महुवे के लिए अधिक तापक्रम और साधारण वर्षा किन्तु बलुही भूमि की आवश्यकता पड़ती है। समस्त प्रायद्वीपीय भाग और उत्तर में मैदानी भाग में महुवे के पेड़ उगे हुए हैं जिनसे प्रति वर्ष लाखों टन घुन्डी मिलती है। लगभग सभी तेल की खपत देश में ही हो जाती है।

(८) नारियल (Coconut)

उष्ण कटिबन्धीय ताड़ों में सबसे अधिक महत्व नारियल के वृक्ष हैं। इसका आर्थिक उपयोग सबसे अधिक है। इसके वृक्ष से खोपरा, नारियल का तेल, नारियल के तेल की खली, जटायें आदि प्राप्त होती हैं। तने से साही लकड़ी मिलती है जो बड़ी कड़ी होती है और इमारती कामों में प्रयुक्त की जाती है। खोखले तने देशी नाव बनाने के काम में आते हैं। फूलों से ताड़ी (toddy) निकाली जाती है जिससे गुड़, शक्कर, सिरका (Vinegar) तथा अन्य पेय पदार्थ बनाये जाते हैं। इसकी पत्तियाँ छतें छाने के काम आती हैं और जटा से रस्से, चटाइयाँ, दरी और ब्रुश आदि बनते हैं। खोपरा की लकड़ी से बटन, प्याले और चम्मच आदि बनाये जाते हैं। इतने अधिक उपयोग होने के कारण ही इसके वृक्ष को 'कल्प वृक्ष' (Wish-granting tree) कहा जाता है।

यद्यपि निश्चित आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं किन्तु अनुमानतः समस्त विश्व में लगभग ८४ लाख एकड़ भूमि पर नारियल का वृक्ष पाया जाता है। इसके मुख्य उत्पादक फिलीपाइन्स, भारत, इंडोनेशिया, मलाया, लंका, और बृटिश दक्षिणी द्वीप समूह हैं। नीचे की तालिका में इसके उत्पादन संबंधी आंकड़े दिये गये हैं :—

राज्य	क्षेत्रफल (लाख एकड़)	उत्पादन (लाख मे)
फिलीपाइन्स	२४	३६,६७०
भारत	१५	३५,४००
इंडोनेशिया	१५	३२,०००
लंका	११	१८,७७०
मलाया	६	८,५००
बृटिश दक्षिणी-समुद्र के द्वीप	६	७,५००
अन्य देश	७	६,०००
विश्व का योग	८४	१५१,१४०

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि भारत का स्थान नारियल उत्पादन में दूसरा है।

जलवायु संबंधी दशायें

नारियल का वृक्ष उष्ण कटिबन्धीय जलवायु क्षेत्रों में ही पैदा होता है जहाँ अधिक वर्षा और पर्याप्त तापक्रम रहते हैं। साधारणत: तापक्रम ७०° से ८०° फा० तक और वर्षा ६०" से अधिक होनी चाहिये। यह अधिकतर समुद्र तटों पर और नदियों के डेल्टों में काँप भूमि में पैदा किया जाता है। यद्यपि इसे समुद्री हवा की आवश्यकता रहती है किन्तु यह समुद्र से दूर वाले स्थानों में भी पैदा किया जाता है।

भारत में इसकी कई किस्में पैदा की जाती हैं जिनमें मुख्य ये हैं :—

(१) **पश्चिमी तट** (West Coast)—इस किस्म का उत्पादन भारत के सभी तटीय भागों में होता है। इसका व्यवसायिक महत्व भी अधिक है। यह तटीय बालू मिट्टी से लगा कर भीतरी भागों में और ३,००० फीट की ऊँचाई तक भी पैदा किया जाता है। यह किस्म भारत में बहुत समय से पैदा की जा रही है तथा इसे इसी देश की उपज माना जाता है। यह काफी समय तक फल देती है और इसका उपयोग बहुमुखी है। इसके फल मध्यम आकार के होते हैं तथा रंग हरे से लेकर पीला तथा नारंगी तक होता है। यह वृक्ष ६ से ८ साल में फल देना आरम्भ करता है और लगभग ८० वर्षों तक फल देता रहता है। किन्तु यदि जलवायु संबंधी दशायें अनुकूल नहीं होती तो पहली बार का फल भी १०-१५ वर्षों बाद आता है। प्रति नारियल पीछे लगभग ५ औंस खोपरा मिलता है जिसमें तेल का अंश ७२ प्रतिशत होता है।

(२) **छोटी या बौनी किस्म** (Dwarf or Short Variety)—इस किस्म का वृक्ष छोटा होता है तथा फल का रंग हरा, नारंगी या पीला होता है किन्तु इससे फल शीघ्र मिलने लगता है। इस किस्म को **निकोबार या अंडमान** किस्म भी कहते हैं। लगभग ३-३½ वर्ष बाद ही फल मिलना आरम्भ हो जाता है और एक एक वृक्ष पर नारियल के झुंड के झुंड लगते हैं। फल का आकार छोटा तथा गोल होता है। इसको अधिकतर कच्चे रूप में ही काम में लाते हैं। इससे बड़ा स्वादिष्ट और स्फूर्तिदायक पेय प्राप्त होता है। प्रति नारियल से केवल ३ औंस खोपरा मिलता है अतः व्यवसायिक जगत में इसका महत्व अधिक नहीं है।

(३) **न्यू गिनी किस्म** (New Guinea)—इस किस्म का फल बड़ा और अंडाकार होता है तथा रंग हरे से भूरा। इसमें कच्ची अवस्था में जल अधिक होता है। पश्चिमी तट पर इस किस्म से औसतन प्रति वृक्ष पीछे ६५ नारियल मिलते हैं और प्रति नारियल पीछे ८ औंस खोपरा प्राप्त होता है, जिसमें तेल का अंश ६६ प्रतिशत तक होता है।

(४) **कोचीन-चीन** (Cochin-China)—इस किस्म का फल भी बड़ा और आकार गोल होता है। प्रति वृक्ष पीछे लगभग ८६ फल मिलते हैं और प्रति फल में लगभग ८ औंस खोपरा प्राप्त होता है जिसमें तेल का अंश ५६ प्रतिशत होता है।

(५) **जावा किस्म** (Java)—इसका वृक्ष लम्बा तथा तना बड़ा मजबूत होता है। नारियल का आकार मध्यम से लेकर बड़ा तक होता है। इसका गोला गोल और कुछ लम्बा होता है। प्रति वृक्ष पीछे लगभग ९५ फल प्राप्त होते हैं। प्रति फल पीछे ७ औंस खोपरा और तेल का अंश ६६ प्रतिशत तक होता है।

(६) **स्याम** (Siam) —यह किस्म भी बड़ी अच्छी होती है। फलों का रङ्ग हरे और आकार मध्यम होता है। फल में मीठा जल मिलता है। प्रति वृक्ष पीछे ८० फल मिल जाते हैं। प्रति फल को ८ औंस तक खोपरा प्राप्त होता है, जिसमें तेल का अंश ७४ प्र० श० तक होता है।

(७) **लक्कद्वीप** (Laccadive) —इसके फल मध्यम आकार के होते हैं और एक वृक्ष से लगभग १२४ फल तक मिल जाते किन्तु प्रति फल पीछे खोपटे का प्रतिशत ५ औंस ही होता है। फिर भी तेल का अंश ७२ प्र० श० तक पाया जाता है।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में सबसे अधिक नारियल केरल, मद्रास, आंध्र प्रदेश, मैसूर, महाराष्ट्र, पश्चिमी बङ्गाल, उड़ीसा और आसाम में पैदा होते हैं।

नारियल के क्षेत्र और उत्पादन (१९५०-५१ से १९५४-५५)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (हजार में)
केरल	१,०५३	२,४३५;६९६
मद्रास	१२९	३१९,४६६
आन्ध्र प्रदेश	८३	२९७,९८५
मैसूर	२२९	३८९,५७२
महाराष्ट्र	१९	२८,८१०
पश्चिमी बङ्गाल	१७	२२,२९५
उड़ीसा	११	३३,०४९
आसाम	२	१२,७८९
अन्य राज्य	१	३३७
भारत का योग	१,५५४	३,५४०,००८

मद्रास और आंध्र की तीन चौथाई उपज पूर्वी गोदावरी और कावेरी डेल्टा

से प्राप्त होती है। केरल में मध्यवर्ती तथा तटीय भागों की निम्न भूमि में मलाबार जिले से नारियल पैदा होते हैं। मैसूर के तुमकुर, हसन, मैसूर, चितलद्रुग और कादूर जिलों में, उड़ीसा के पुरी और कटक जिलों में और महाराष्ट्र के कनारा तथा रत्नागिरी जिलों में नारियल पैदा किया जाता है। बङ्गाल में इसका उत्पादन निम्न भागों में चावल के खेतों के बीच-बीच में सभी जगह किया जाता है।

पिछले कुछ वर्षों से नारियल के अन्तर्गत क्षेत्र और उसका उत्पादन इस प्रकार रहा है :—

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन
१९५२–५३	१,६०८	४४,६८० लाख
१९५३–५४	१,६३८	४६,४९० ,,
१९५४–५५	१,६५६	४६,१४० ,,
१९५५–५६	१,५८०	४२,९७० ,,
१९५६–५७	१,५८३	४२,१७० ,,

भारत से खोपरा और खोपरा के तेल का निर्यात मुख्यतः फ्रांस, जर्मनी, इंगलैंड, स० रा० अमरीका आदि देशों को किया जाता है।

(iii) मसाले (Spices)

उष्णकटिबन्धीय भारत में अनेक प्रकार के गर्म मसाले पैदा किये जाते हैं, जहाँ वर्ष भर उच्च तापक्रम और भारी वर्षा होती है। मुख्य मसाले ये हैं :—

१. काली मिर्च
२. लाल मिर्च
३. अदरक
४. दाल चीनी
५. जावित्री-जायफल
६. लौंग
७. इलायची
८. हल्दी

भारत में मसालों के उत्पादन का क्षेत्र (१९५६–५७)[1]—(हजार एकड़ों में)

राज्य	काली मिर्च	लाल मिर्च	सौंठ	हल्दी	इलायची	सुपारी	अन्य मसाले	योग
आंध्र प्रदेश	—	४४१	२	५६	—	(a)	२७१	७७०
आसाम	(a)	७	३	५	—	४३	१	५९
बिहार	—	५९	—	—	—	—	१८	७६
बम्बई	(a)	४११	३	२१	(a)	५	१७९	६१९
जम्मू काश्मीर	(a)	२	(a)	(a)	—	—	२	४
केरल	२१५	७	२५	१२	७०	१२१	१०५	५५५
मध्य प्रदेश	(a)	१००	३	१	—	(a)	१८६	२९०
मद्रास	१	१४६	१	२३	१४	४	९४	२८३
मैसूर	६	६५	३	३	५०	७१	८०	४७९
उड़ीसा	—	३९	२	१०९	(a)	(a)	३	१५२

१. Agriculture Situation in India, Vol. XIV No. 6., 1959, p. 733.

राज्य	काली मिर्च	लाल मिर्च	सौंठ	हल्दी	इलायची	सुपारी	अन्य मसाले	योग
पंजाब	(a)	५६	१	(a)	—	—	६	६६
राजस्थान	—	२५३	(a)	१	—	—	२४६	३०३
उत्तर प्रदेश	—	३६	(a)	(a)	—	—	६६	१३२
पश्चिमी बंगाल	—	१६	२	—	—	—	६	२६
दिल्ली	—	१	—	—	—	—	१	२
हिमाचल प्रदेश	—	१	३	(a)	—	—	(a)	४
योग	२२२	१,६४५	४६	२३१	१३४	२४४	१,३०३	३,८२७

(a=५०० एकड़ से कम)

(१) काली मिर्च (Pepper)

यह एक लता का बीज है। इसका जन्म स्थान केरल के वन प्रदेश माने जाते हैं। भारत में इसका उत्पादन अति प्राचीन काल से होता रहा है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें

काली मिर्च की लता सदाबहार लता है जो एक बार लगने पर लगभग २५ से ३० वर्षों तक जीवित रहती है। कहीं-कहीं इसकी लता ६० वर्ष तक भी जीवित रहती है। इसका उत्पादन समुद्र तल के धरातल से लगाकर ३,५०० फीट की ऊँचाई तक होता है। यह अधिकतर चिकनी दोमट मिट्टी में अच्छी पैदा होती है किन्तु लाल दोमट और बलुही दोमट में भी यह पैदा की जाती है।

इसके पौधे को सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह अधिकतः आर्द्र और तर जलवायु में पनपता है। इसके लिये न्यूनतम तापक्रम ५०° फा० और अधिकतम तापक्रम १०४° फा० तक पर्याप्त होता है। वर्षा का औसत ८०″ होना आवश्यक है। ५०″ से कम वर्षा वाले भागों में यह पैदा नहीं की जा सकती।

इसकी लता साधारणतः ३० फीट तक ऊँची बढ़ जाती है किन्तु फल को सुविधापूर्वक तोड़ने के उद्देश्य से इसे २० फीट से अधिक ऊँचा नहीं बढ़ने दिया जाता। सहारे के लिये सुपारी, मुरूकू आदि के वृक्ष लगाये जाते हैं। लता में जुलाई के मध्य से फूल आने लगते हैं तथा फल जनवरी से मार्च तक पक कर तैयार हो जाते हैं। पकने पर फलों का रंग भूरा हो जाता है। तीन वर्ष बाद फल मिलने लगता है किन्तु पहले वर्ष की फसल अच्छी नहीं होती। छठे वर्ष बाद अच्छी फसल मिलने लगती है और अधिकतम उत्पादन ७वें वर्ष से आरम्भ होता है।

यह मिर्च दो प्रकार की होती है—काली और सफेद। गुच्छियाँ साधारणतः जब हरी होती हैं उन्हें तोड़ लिया जाता है और इनमें पक्के फलों को अलग कर ७-८ दिन तक पानी में डाल देते हैं जब इनका गूदा मुलायम पड़ जाता है तो उसे मसल डालते हैं जिससे उसके भीतर से गुठलियाँ निकल आती हैं। यही सूखने पर सफेद मिर्च कहलाती है। काली मिर्च बनाने के लिये सब प्रकार की गुच्छियों का ढेर लगा दिया जाता है और इन्हें सूखने के लिये ५—६ दिनों तक पड़ा रहने दिया जाता है। जब यह सूख कर कड़ी और काली पड़ जाती है तो यह मुरझा जाती है इन्हीं को काली मिर्च कहते हैं।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में इसका सबसे अधिक उत्पादन केरल, मद्रास और मैसूर राज्यों में होता है। कुछ काली मिर्च बम्बई में भी पैदा की जाती है।

राज्य	क्षेत्रफल (१९५६—५७)	उत्पादन (१९५६—५७)
केरल	२,१४९ एकड़	२६८,०० टन
मद्रास	४ ,,	१००,०० टन से कम
मैसूर	१८३ ,,	४८,०० टन
भारत का योग	२,३३६ ,,	३१६,०० टन

नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का काली मिर्च के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
१९५२-५३	२०२	२३
१९५३-५४	२०८	२४
१९५४-५५	२१२	२६
१९५५-५६	२२०	८
१९५६-५७	२२१	२७
१९५७-५८	२६९	२६
१९५८-५९	२३०	२५·५
१९५९-६०	२३२	२५·४

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत से काली मिर्च का निर्यात लगभग ९०० टन का होता था। अब यह १५,००० टन का है। यह निर्यात मुख्यतः संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, मैक्सिको, क्यूबा, कोलम्बिया, ग्वाटेमाला, हैटी आदि देशों को होता है। इंगलैंड, इटली, रूस, मिश्र और अदन में इसका निर्यात होने की अधिक सम्भावनायें हैं।

(२) लाल मिर्च (Chillies)

भारत में लाल मिर्च का सम्भवतः मशालों के अन्तर्गत सबसे अधिक उपयोग होता है। यह दक्षिणी अमरीका (विशेषतः ब्राजील) का पौधा है जहाँ से यह पुर्तगालियों द्वारा भारत में लाया गया। इसके अन्य उत्पादक दक्षिणी अमरीका के विभिन्न राज्य अफ्रीका और स्पेन तथा एशिया के देश हैं।

जलवायु सम्बन्धी दशायें और उत्पादक क्षेत्र

इसका उत्पादन खेतों में उष्ण और अर्द्ध-कटिबन्धीय जलवायु में सरलता से किया जाता है। समुद्र के धरातल से लगाकर ५,००० फीट तक उन क्षेत्रों में यह पैदा की जाती है जिनमें वर्षा की मात्रा २५" से ५०" तक होती है। अधिक वर्षा होने पर पत्तियाँ और फल नष्ट हो जाते हैं। इसका पौधा जून और फरवरी दोनों ही महीनों में लगाया जाता है। कम वर्षा वाले भागों में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

मिर्चों के लिए भारी दोमट मिट्टी, जिसमें कंकड़ पत्थर न हों तथा जहाँ पानी

जमा न रह सके, अच्छी होती है। बलुही अथवा हल्की कछार मिट्टी में सिंचाई और खाद के सहारे अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

जून अथवा जुलाई के प्रथम सप्ताह में इसका बीज नर्सरी में लगाया जाता है और जब पौधा ४०-५० दिन का हो जाता है अन्य क्यारियों में रोप दिया जाता है। इसके १ महीने बाद ही फूल आने लग जाते हैं और नवम्बर से इसकी चुनाई आरम्भ हो जाती है। फिर इन्हें धूप में सुखा देते हैं। पूरी तरह सूखने में लगभग १५ दिन लगते हैं। प्रति एकड़ पीछे २५० पौंड सूखी मिर्ची मिलती है किन्तु सिंचित भागों में प्रति एकड़ १,५०० से २,५०० पौंड तक मिर्ची मिल जाती है।

लाल मिर्ची भारत के सभी भागों में पैदा की जाती है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

लाल मिर्ची का क्षेत्रफल और उत्पादन (१९५८-५९)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र	३७४	९५
आसाम	११	३
बिहार	८४	७२
गुजरात + महाराष्ट्र	६५३	५८
केरल	८	२
मध्य प्रदेश	१००	१५
मद्रास	१५२	७६
मैसूर	२४५	२३
उड़ीसा	१६	२
पंजाब	६०	१८
राजस्थान	४८	११
उत्तर प्रदेश	८	१
बंगाल	१६	६
दिल्ली	१	१
भारत का योग	१,४७९	३३२

पिछले कुछ वर्षों का उत्पादन इस प्रकार है :—

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
१९५२-५३	१,२३५	२८३
१९५३-५४	१,३३६	३०३
१९५४-५५	१,५८८	३८१
१९५५-५६	१,४९३	३५५
१९५६-५७	१,४७६	३४२
१९५७-५८	१,५३४	३५५
१९५८-५९	१,४७९	३३२

(३) सोंठ (Ginger)

व्यापार क्षेत्र में जिसे सोंठ कहा जाता है वह एक पौधे के हरे भूमिगत तत्वों या मूलों को सुखा कर तैयार किया जाता है। यह पौधा उष्ण कटिबन्ध के देशों में बहुत अधिक उगाया जाता है। इन देशों की वार्षिक पैदावार का अधिकांश अदरक के रूप में वहीं खप जाता है और थोड़ा सा भाग ही व्यापार के लिए सुखा कर सोंठ बनाया जाता है। अदरक पैदा करने वाले मुख्य देश जमेका (प० हिन्द द्वीप समूह) सियरालियोन (वि० प० अफ्रीका) और भारत हैं। जमेका में इसका वार्षिक औसत उत्पादन १,००० से १,५०० टन तक तथा सियरालियोन में १,५०० से २,५०० टन तक का होता है। भारत का वार्षिक उत्पादन १०,००० से १५,००० टन का होने से यही विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक है। सभी देशों को मिला कर इसका औसत उत्पादन १२,५०० टन से १४,००० टन का होता है।

जलवायु संबंधी दशायें और उत्पादक क्षेत्र

अदरक या सोंठ मुख्यत: अधिक वर्षा वाले भागों में पैदा किया जाता है। यह बलुही अथवा चिकनी दोमट मिट्टी में या लाल दोमट मिट्टी में अच्छी पैदा होती है। इसकी खेती समुद्र तल से लगा कर ३,००० फुट तक (जैसे मैसूर में) और हिमालय के ढालों पर ५,००० फुट तक होती है। इसके लिए पश्चिमी घाट के ढाल सर्वोत्तम माने जाते हैं। यह अधिक गर्मी और तरी चाहने वाला पौधा है।

इसका पौधा बारहमासी होता है। इसे पकने में ९ से १० महीने तक लगते हैं। यह मई के अन्त में बोया जाता है और दिसम्बर-जनवरी तक तैयार हो जाती है।

इसका सबसे अधिक उत्पादन केरल राज्य में होता है। यहाँ वाईकम, मुवत्तू-फूजा, थोडूफूजा, मीनाछिल, थालापिली और कुनाथुनाड़ जिले प्रमुख उत्पादक हैं। पश्चिमी तट पर मलाबार जिले में इरनाद ताल्लुके में भी अधिक उत्पादन किया जाता है। उत्तर प्रदेश, (कुमायूं), बंगाल, बम्बई, और आंध्र अन्य उत्पादक राज्य हैं। केरल में अदरक से सोंठ बनाई जाती है।

अदरक का उत्पादन (१९५८-५९)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)
आंध्र	१७	५
बम्बई	१३	५
हिमाचल प्रदेश	३०	५
मद्रास	१२	४
मध्य प्रदेश	३०	१६
मैसूर	९	५
केरल	२२०	७७
उड़ीसा	१६	६
पंजाब	६	२
बंगाल	१६	७
भारत का योग	३७४	१३४

भारत में गत कुछ वर्षों में सौंठ की खेती का क्षेत्रफल और उत्पादन इस प्रकार रहा है।

वर्ष	क्षेत्रफल (एकड़)	उत्पादन (टन)
१९५२-५३	४६,०००	१९,०००
१९५३-५४	३५,०००	१३,८००
१९५४-५५	३५,०००	१४,०००
१९५५-५६	३७,०००	१४,९००
१९५६-५७	४०,०००	१५,०००
१९५७-५८	३९,०००	१४,०००
१९५८-५९	३५,७००	१२,३००
१९५९-६०	३७,०००	१३,४००

ऊपर दिये हुये आँकड़ों से पता चलता है कि क्षेत्रफल और उत्पादन दोनों बढ़ते रहे हैं। भारत में पैदा हुई सौंठ मुख्यत: अदन, अरब, मिस्र, ईरान, अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों को भेजी जाती है। पश्चिमी द्वीपों तथा बि० प० अफ्रीका में पैदा होने वाली सौंठ सामान्यत: ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा तथा अन्य पश्चिमी देशों को भेजी जाती है। ब्रि० प० अफ्रीका और पश्चिमी द्वीपों में पैदा होने वाली सौंठ की किस्म अच्छी होती है। उनके रेशे कम होते हैं और कीमत में २० से ३० प्रतिशत तक सस्ती होती है।

पिछले कुछ वर्षों में भारत से सौंठ का कुल निर्यात इस प्रकार रहा :—

वर्ष	परिमाण (हण्डरवेट)	मूल्य (रु०)
१९५४	५०,०००	५१,००,०००
१९५५	५५,०००	७७,००,०००
१९५६	१२७,०००	१,४४,००,०००
१९५७ (जन० अक्टू०)	१७८,०००	१,१२,००,०००

(४) दालचीनी (Cinnamon)

यह एक पेड़ की छाल होती है जिसका उपयोग सुखाकर भोजन को सुगंधित करने, दवाई तथा तेल निकालने में किया जाता है। इसका पौधा लंका और दक्षिणी भारत, ब्रह्मा तथा मलाया प्रायद्वीप का आदि-पौधा है। इस समय इसका सबसे अधिक उत्पादन लंका, भारत, जमेका, सेयीन, साईचेलीस और ब्राजील में होता है किन्तु भारत की अपेक्षा लंका की दालचीनी अधिक उत्तम मानी जाती है।

इसका पौधा अधिकतर कांप बलुही मिट्टी में आर्द्र-गर्म भागों में पैदा होता है जहाँ वर्षा लगभग ८०" तक होती है। नीलगिरि पहाड़ियों के ढालों पर यह २,५०० फीट तक पैदा किया जाता है। इसको रोप कर लगाया जाता है। यह रोपण अक्टूबर से नवम्बर तक होता है। वर्षा ऋतु में वृक्ष से छाल प्राप्त की जाती है। वृक्ष से ३—४ वर्ष बाद पहली बार छाल प्राप्त की जाती है और प्रति एकड़ में ५० से ६० पौंड तक छाल मिल जाती है। १० वर्ष के बाद तो इस वृक्ष का इतना विकास हो जाता है कि प्रति एकड़ से १५० से २०० पौंड तक दालचीनी मिलती है।

भारत में इसका उत्पादन ७०० एकड़ में होता है। यह उत्पादन मलावार और नीलगिरि की पहाडियों से होता है। तेलीचेरी में 'ब्राउन उद्यान' २५० एकड़ बड़ा है।

(५) जायफल (Nutmeg) और जाविश्री (Mace)

इसका आदि-स्थान मल्लक्का द्वीप माने जाते हैं तथा इसका अधिकतम उत्पादन बन्दा द्वीप, अम्बोया, गिलोलो और पश्चिमी न्यू गिनी में होता है। भारत में में यह १८वीं शताब्दी में लाया गया किन्तु तब से अभी तक इसके उत्पादन में विशेष प्रगति नहीं हुई है।

जायफल एक पेड़ विशेष (Myristica fragrans) का फल होता है। पक जाने पर फल फूट जाता है। इस फल के ऊपर छिलका होता है यही जाविश्री होती है। इसे हटाकर भीतर का भाग निकाल लिया जाता है। सूख जाने पर यह निटक जाता है और तब बीज (जायफल) निकाल लेते हैं। इसका उत्पादन आर्द्र और तर भागों में ही अधिक किया जाता है। इसकी खेती समुद्र के धरातल से लगभग २,५०० फीट तक की जाती है, जहाँ वर्षा की वार्षिक मात्रा ६० से १२०″ तक होती है तथा वार्षिक औसत तापक्रम ५०° से १००° फा० तक। लैटेराइट तथा पीली दुमट और चिकनी मिट्टी इसके लिए बड़ी उपयुक्त होती है। अधिक नमी या अधिक सूखा दोनों ही इसके लिए हानिकर हैं। इसको प्रति वृक्ष पीछे ५० से १०० पौंड पशुओं के मल-मूत्र का खाद दिया जाता है। वृक्ष ८ से १० वर्षों बाद फल देना आरम्भ करता है तथा १०० वर्षों तक फल देता रहता है। फल को पकने में ६ महीने तक लगते हैं। इनकी चुनाई मुख्यत: जून से अक्टूबर तक की जाती है। नीलगिरी में प्रति मादा वृक्ष पीछे २० पौंड जायफल और १ पौंड जाविश्री (mace) प्राप्त होती है। इसका उपयोग मसाले और औषधि के रूप में किया जाता है।

भारत में इसका उत्पादन मुख्यत: दक्षिणी भारत तक ही सीमित है। यहाँ केरल राज्य के तटीय क्षेत्रों में तथा नीलगीरि और तेनकासी पहाड़ियों में पैदा किया जाता है। कुछ उत्पादन मैसूर और बङ्गाल से भी प्राप्त होता है किन्तु इसका क्षेत्र ३०० एकड़ से अधिक नहीं है।

(६) लौंग (Cloves)

यह एक वृक्ष (Eugenia Caryophyllanta) के सूखे फल हैं जो मल्लक्का द्वीपों का आदि-वृक्ष है। अब इसका उत्पादन जंजीबार, मसाले के द्वीपों (Spice Islands), पश्चिमी द्वीप समूह, मस्करीन द्वीपों, सुमात्रा, जावा, लङ्का और मैलेगासी (मैड़ेगास्कर) तथा भारत में किया जाने लगा है।

इसे नम तथा गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। भारत में इसका उत्पादन समुद्रतटीय भागों से लेकर ६,००० फीट की ऊँचाई तक किया जाता है जहाँ वार्षिक वर्षा ६० से १००″ तक होती है। यह गहरी दुमट अथवा गहरी पीली मिट्टी में अधिक अच्छा पैदा होता है। भारत के तटीय भागों में इसकी खेती बलूही भूमि में और केरल में लैटेराइट मिट्टी में की जाती है। जड़ों में पानी जमा हो जाने से यह नष्ट हो जाता है। पौधे में घास-फूस, नदी की चीका मिट्टी और अमोनियम सल्फेट का भी खाद दिया जाता है।

लौंग के बीजों को पहले नर्सरी में बोया जाता है जब पौधे लगभग ९″ बड़े

हो जाते हैं तो उन्हें अन्यत्र रोपा जाता है। लगभग ४-५ वर्ष बाद पौधे में फूल आने लगते हैं। अनउपजाऊ भूमि में फूल ६ से ४ वर्ष बाद तक आते हैं। नीलगिरि पहाड़ियों में दिसम्बर-जनवरी में फूल खिलने लगते हैं तथा अप्रैल तक फल तैयार हो जाते हैं। तेनकसी पहाड़ियों में फूलों का खिलना लगभग ३० से ५० दिन बाद होता है तटीय भागों में ये सितम्बर में फूलते हैं और दिसम्बर जनवरी तक फल पक जाता है। औसत एक वृक्ष से प्रति वर्ष ५ पौंड सूखे लौंग प्राप्त होते हैं। यदि १ एकड़ भूमि में १०० वृक्षों का औसत माना जाये तो प्रति एकड़ पीछे ३७५ पौंड तक सूखे लौंग प्राप्त होते हैं। फलों को तोड़ने के बाद उन्हें सूखने के लिए या तो धूप में डाल देते हैं अथवा आग पर जस्ते की बड़ी-बड़ी रकेबियों में इन्हें भूना जाता है। प्रथम क्रिया से लौंग ४-५ दिन में और दूसरी क्रिया से लगभग ४ घण्टे में ही सूख जाते हैं। लौंग का उपयोग मसाले के रूप में तथा तेल निकालने में किया जाता है।

भारत में लौंग की खेती भी दक्षिणी भारत तक ही सीमित है जहाँ इसकी खेती लगभग ८०० एकड़ भूमि पर की जाती है। मद्रास राज्य में नीलगिरि तथा तेंकसी की पहाड़ियों और कन्याकुमारी जिले में तथा केरल राज्य के कोट्टायम और क्विलोन जिले में इसका उत्पादन किया जाता है।

(७) इलाइची (Cardamoms)

इसका फल तिकोने आकार का एक कैप्सूल (Capusle) की भाँति होता है जिसमें १० से १५ काले छोटे-छोटे बीज होते हैं। छिलका उतारने पर इन्हीं बीजों का उपयोग पान के साथ खाने में, मसाले में तथा बिस्कुट और डबल रोटियों में तथा मद्य और औषधि बनाने में किया जाता है।

विश्व में इसका उत्पादन भारत, लङ्का, इंडोचीन, सिकिम, मध्य अमरीका, जावा तथा नैपाल में किया जाता है किन्तु विश्व के बाजारों में भारतीय इलाइची का भाग अधिक रहता है। युद्ध के पूर्व भारत का निर्यात ७१६ टन; युद्ध के पश्चात् काल में ९१७ टन और १९५८ में १,००० टन का हुआ। यह अधिकतर स्वीडेन, सऊदी अरब, कुवेत, संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन आदि देशों को होता है।

इसका उत्पादन भारत में विशेषत: पश्चिमी घाटों के अनेक भागों में जंगली और पौधा लगाकर दोनों ही अवस्था में होता है। यह २,५०० से ५,००० फीट तक की ऊँचाई पर भी पैदा की जाती है। इसके लिए ऊँचे तापक्रम—५०° से ९५° फा० तक और अधिक वर्षा ६०″ तक—जो नियमित रूप से होती रहे—विशेष उपयुक्त है। इसे धूप से बचाने के लिये अन्य वृक्षों का सहारा लिया जाता है।

इसका वृक्ष बड़ा लम्बा होता है जिसके कई टहनियाँ फूटती रहती हैं। साधारणत: इसे फरवरी–मार्च में बोया जाता है और प्राय: अगस्त से सितम्बर तक फली की चुनाई आरम्भ होकर जनवरी से अप्रैल तक चलती रहती है। प्राय: तीसरे वर्ष से फल मिलता रहता है किन्तु चूँकि सभी फल एक साथ नहीं फलते अत: इसकी चुनाई काफी समय तक चलती रहती है। ३० से ४० दिन के अन्तर पर फल चुने जाते हैं और पूर्णत: चुनाई ६ बार में समाप्त हो पाती है। पहली चुनाई से औसतन प्रति एकड़ पीछे २० पौंड तक इलायची मिलती है किन्तु चौथी वर्ष की चुनाई के बाद ३० से ४० पौंड और पांचवे वर्ष के बाद ६० से ७० पौंड तक फल मिलने लगते हैं। फलों को तोड़कर धूप में या विशेष प्रकार से बनाये गये सुखाने के कमरों में कृत्रिम आँच द्वारा इन्हें सुखाया जाता है।

इलायची के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन इस प्रकार अनुमानित किया गया है :—

राज्य	क्षेत्रफल	उत्पादन	प्रतिशत भाग
केरल	५५,७३८	८००	५५·८
मैसूर	३६,२०६	५५०	३८·१
मद्रास	१५,८०८	७५	५·३
महाराष्ट्र	६१६	८	०·६

भारत में इसका सबसे अधिक उत्पादन केरल राज्य में होता है। यहाँ इसके उद्यान इलायची की पहाड़ियों में ५० से २०० एकड़ के पाये जाते हैं। मैसूर राज्य में हसन जिले के मुंजराबाद तालुक में भी इलायची पैदा होती है। कुर्ग जिले में इसका उत्पादन वृक्षों को साफ कर पहाड़ी ढालों पर किया जाता है। अन्य उत्पादक मलाबार तट व जिला, नीलगिरि और उत्तरी कनारा तथा मदुराई जिले हैं।

इलायची का वार्षिक उत्पादन १,४०० से १,४५० टन तक का होता है।

(८) हल्दी (Turmeric)

हल्दी उष्ण कटिबन्ध में पैदा होने वाली वस्तु है। यह भारत, हिन्द चीन, पूर्वी द्वीप समूह से लगाकर चीन में पैदा की जाती है।

इसका उत्पादन समुद्र तल से लगाकर ४,००० फीट की ऊँचाई तक किया जाता है। पश्चिमी और पूर्वी घाट में यह जंगली अवस्था में पैदा होती है। यह चिकनी दुमट अथवा बलुही मिट्टी में अच्छी पनपती है किन्तु नमकीन मिट्टी या जड़ों में पानी भर जाने से पौधा नष्ट हो जाता है। यह सिंचाई के सहारे भी बोई जाती है। पश्चिमी तट पर वर्षा के साथ ही इसका उत्पादन किया जाता है।

हल्दी की ऐसी कोई किस्म नहीं है जो अपने आप पहचानी जा सके फिर भी जिन इलाकों में पैदा होती है, उसके आधार पर व्यापारियों ने इसके कुछ नाम रख लिये हैं। व्यापारियों में हल्दी की किस्मों के दो नाम चलते हैं—एक गठीली (Bulb) और दूसरी लम्बी (Finger)। उड़ीसा में पैदा होने वाली ७५% हल्दी तथा मद्रास में होने वाली २०% हल्दी 'लम्बी' किस्म की होती है। शेष हल्दी 'गठिया' किस्म की होती है। लंबी हल्दी अच्छी समझी जाती है इसलिए इसके दाम अधिक मिलते हैं।

हल्दी के मुख्य उत्पादक आंध्र प्रदेश और उड़ीसा राज्यों के पूर्वी तट हैं। आंध्र में इसका सबसे अधिक उत्पादन गंटूर जिले में और कडुप्पा, कृष्णा तथा पूर्वी और पश्चिमी गोदावरी जिलों में किया जाता है। मद्रास राज्य के सलेम, कोयम्बटूर और तिरूचिरापल्ली जिलों में भी इसका उत्पादन होता है।

उड़ीसा राज्य में गंजाम, फूलबानी और कोरापुट जिले में तथा महाराष्ट्र में थाना, खानदेश, सांगली और कोल्हापुर इलाकों में भी हल्दी पैदा होती है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, मैसूर, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान और पंजाब अन्य उत्पादक राज्य हैं।

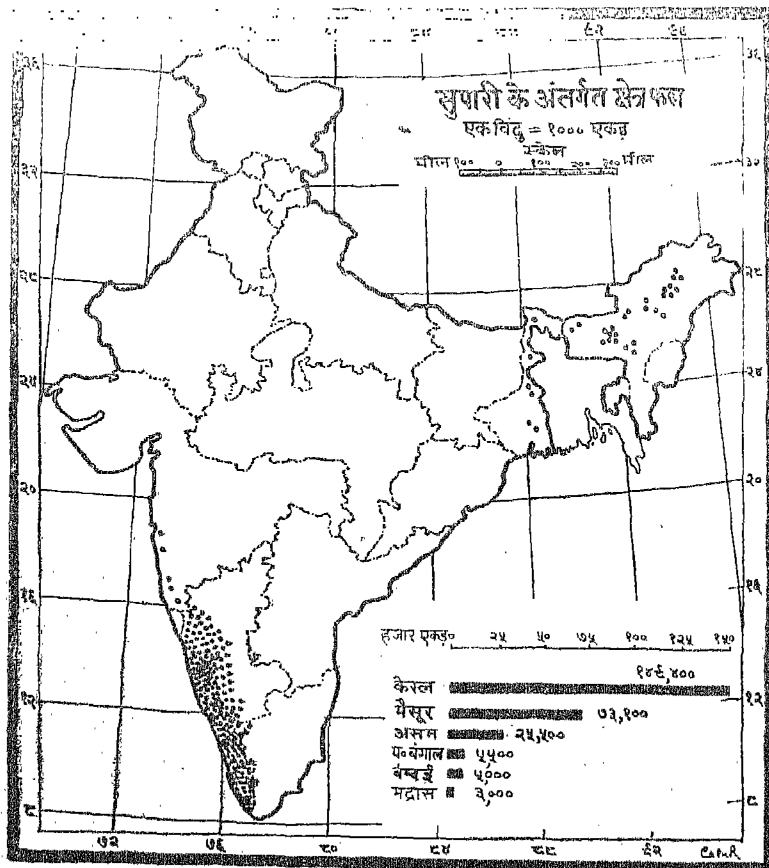
इसका उत्पादन अनुमानतः १३६,१६६ टन और क्षेत्रफल १५५,०३० एकड़

(१९५५-५६) था। देश के उत्पादन का १०% से भी कम निर्यात किया जाता है। यह निर्यात लंका, ईरान, अरब, अदन, संयुक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन को होता है।

हल्दी का उपयोग पीला रंग बनाने में, रंग लेपों में तथा मसाले के रूप में होता है।

(iv) सुपारी (Arecanut)

यह भी उष्ण कटिबन्धीय पौधा है जो अधिकांशतः दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों—भारत, पाकिस्तान, लंका, मलाया और फिलीपाइन्स में होती है।



चित्र १३३—सुपारी उत्पादक क्षेत्र

जलवायु संबंधी अवस्थायें

सुपारी का वृक्ष ताड़ की भांति ६० फीट से भी अधिक लम्बा होता है। इसका उत्पादन समुद्र तट से लगा कर ३,००० फीट की ऊँचाई तक किया जाता है

किन्तु अधिक ऊँचाई पर उत्पादन अधिक प्राप्त नहीं होता। कुर्ग जिले और वाइनाड जिले में अधिक ऊँचाई पर होने के कारण फल अधिक कठोर नहीं होता क्योंकि तापक्रम पकने के समय अधिक ऊँचे नहीं रहते। यह ६०° फा० से १००° फा० के तापक्रम में अच्छी पनपती है। इसके अधिक लिये वर्षा, नमी और शीत वायु मंडल की आवश्यकता होती है। केरल के कई भागों में यह केवल वर्षा के सहारे ही पैदा की जाती है, अन्य भागों में दिसम्बर से मई तक इसकी सिंचाई की जाती है। ८० से १५०" की वर्षा इसके लिए उपयुक्त मानी जाती है।

सुपारी का वृक्ष कई प्रकार की मिट्टियों में पैदा किया जाता है—लैटेराइट, लाल दुमट मिट्टी तथा कछारी मिट्टी में किंतु अधिकांशतः उत्पादन लैटेराइट मिट्टी के क्षेत्रों में किया जाता है। इसके पौधों की जड़ों में जल न भरा रहना चाहिए तथा जल का बहाव होना आवश्यक है।

सुपारी को पहले ४-४ इंच की दूरी पर क्यारियों में बोते हैं फिर ४० से ६० दिन बाद इसमें अंकुर निकल आते हैं और जब पौधे में दो-दो पत्तियाँ निकल आती हैं तो इन्हें अन्यत्र लगा देते हैं। दक्षिणी भागों में अक्टूबर से दिसम्बर तक तथा पौधों का रोपण मई-जून से सितम्बर-अक्टूबर तक किया जाता है। ८ वर्ष के बाद सुपारी मिलने लग जाती है। सुपारी कई आकार और आकृतियों की होती है—गोल, लम्बी या चपटी। ये वृक्ष पर गुच्छों के रूप में लगती हैं। साधारणतः एक गुच्छे पर १५० से ५५० सुपारियाँ तक लगती हैं। इनका रंग कच्ची अवस्था में हरा और पक जाने पर भूरा हो जाता है। दक्षिणी और उत्तरी कनारा तथा केरल के कुछ भागों में इन्हें सुखा कर सुपारी बनाई जाती है। ये अक्टूबर से मार्च तक तोड़ी जाती हैं। सिंचित भागों में सुपारी की उपज वर्षा से पैदा किए जाने वाले पौधे की अपेक्षा अधिक होती है। प्रारम्भिक अवस्था में एक एकड़ से ६०० से ८०० पौंड सुपारी और पूरी पक जाने पर १,४०० से १,५०० पौंड तक प्राप्त की जाती है।

उत्पादक क्षेत्र

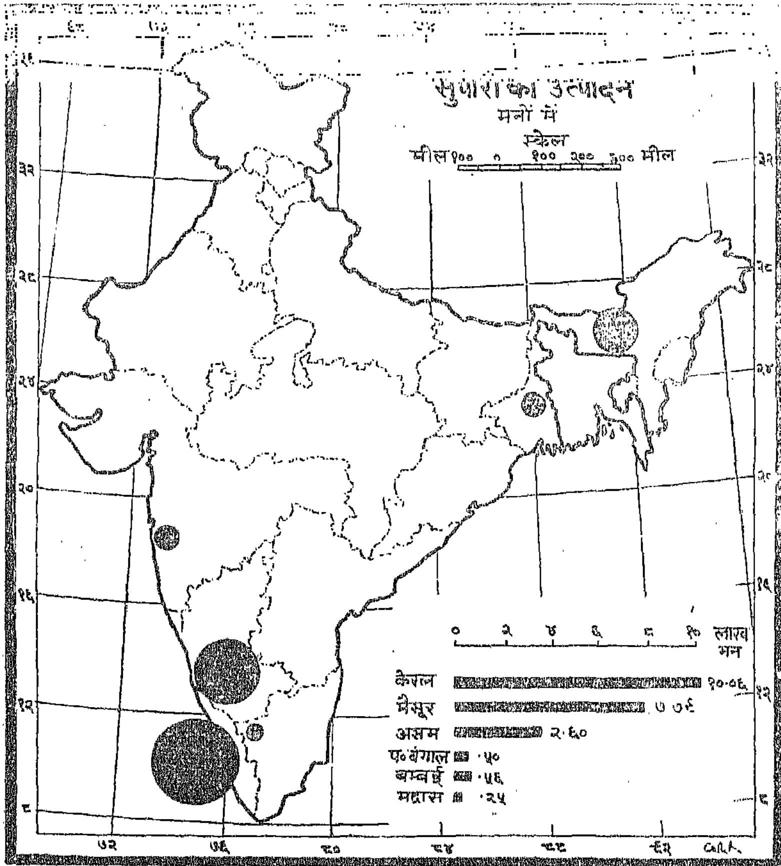
सुपारी का उत्पादन क्षेत्र दक्षिणी भारत में अधिक वर्षा वाले भागों तक सीमित है। दक्षिणी और उत्तरी कनारा जिले, कुर्ग, मैसूर के मालनद जिले, बंगाल और आसाम इसके मुख्य उत्पादक हैं।

१९५६ में सुपारी का उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (एकड़)	उत्पादन (लाख मन)
केरल	१४९,४००	१०'०६
मैसूर	७३,१००	७'७९
आसाम	२५,५००	२'६०
पश्चिमी बंगाल	५,५००	०'५०
महाराष्ट्र	५,०००	०'५६
मद्रास	३,०००	०'२५
भारत का योग	२६१,५००	२१'७६

भारत में सुपारी का उत्पादन मांग से कम रहता है अतः बड़ी मात्रा में इसका

आयात लंका, मलाया और सिंगापुर से किया जाता है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—



चित्र १३४—भारत में सुपारी का उत्पादन

सुपारी का आयात

वर्ष	मात्रा (लाख मन)	(मूल्य करोड़ रुपये)
१९५०	१२·१०	३·१३
१९५१	१३·८१	५·३६
१९५२	११·०४	४·०६
१९५३	९·३८	३·००
१९५४	८·३५	२·२८
१९५५	१०·४१	३·८०
१९५६	११·३४	५·५७

भारत से थोड़ी मात्रा में सुपारी का निर्यात हांगकांग, पश्चिमी पाकिस्तान, उत्तरी और दक्षिणी रोडेशिया, सौऊदी अरब और फीजी द्वीप को भी किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों का निर्यात व्यापार इस भांति है :—

वर्ष	मात्रा (मन)	मूल्य (रुपये)
१९५४	३,४८६	५,५१,०२३
१९५५	३,४६७	५,७६,१९२
१९५६	३,९३६	६,७६,३२२

(v) काजू (Cashewnut)

काजू का उत्पादन विश्व में केवल ब्राजील, पूर्वी अफ्रीका और भारत में होता है। इसका पौधा भारत में १६वीं शताब्दी में भूमि का कटाव रोकने के लिए ब्राजील से लाकर लगाया गया। धीरे-धीरे यहाँ की जलवायु इसके उपयुक्त होने के कारण इसका विकास तेजी से होता गया। इस समय इसकी खेती यद्यपि पूर्वी अफ्रीका और ब्राजील में भी होती है किन्तु विश्व की ९०% माँग भारत से ही पूरी होती है और शेष ब्राजील से।

जलवायु संबंधी दशायें

इसका पौधा उष्ण और अर्द्ध—उष्ण कटिबन्धीय जलवायु के क्षेत्रों में अच्छा पनपता है। उद्यानों में यह २० से २५ फीट ऊँचा होता है, किन्तु जंगली अवस्था में इससे भी अधिक ऊँचा बढ़ जाता है। इसमें जड़ों का विकास अधिक होने के कारण यह कम उपजाऊ अथवा चट्टानी भूमि में भी पैदा हो जाता है। साधारणतः लैटेराइट मिट्टी में, जहाँ १२०″ से अधिक वर्षा होती है, यह पैदा किया जाता है जैसे पश्चिमी तट पर किन्तु ३५″ से कम वर्षा वाले भागों में भी इसकी खेती समान रूप से की जाती है जैसे पूर्वी तट पर मद्रास में। यह सूखा सह सकता है किन्तु पाला इसके लिए हानिकर है।

इसका वृक्ष दक्षिणी भारत में उद्यानों में आम, नारियल, सुपारी आदि वृक्षों के साथ अथवा अन्य क्षेत्रों में घरों के कोनों पर लगाया जाता है। पौधों से साधारणतः ३-४ वर्ष बाद फल मिलने लगता है। १०वें वर्ष तक उपज निम्न श्रेणी की रहती है किन्तु इसके बाद अच्छी होने लगती है। अधिकतम उपज ७ से १० वर्ष के बीच के काल में प्राप्त होती है। फलोत्पादन ३५ से ४० वर्षों तक होता रहता है। पौधे में दिसम्बर से जनवरी तक फूल आने लगते हैं। इस समय साधारण वर्षा इसके लिए लाभदायक सिद्ध होती है किन्तु लम्बे समय तक मेघाच्छन्न अवस्था उपज को गिरा देती है। उद्यानों में यदि वृक्ष पास-पास लगाये जाते हैं तो प्रति वृक्ष पीछे १ पौंड सूखा काजू प्राप्त होता है किंतु यदि एक एकड़ में केवल ६० से ७० वृक्ष तक हों तो प्रति वृक्ष पीछे ४० से ५० पौंड तक काजू मिल जाता है। केरल में कोट्टारकारा तथा क्विलोन जिलों में प्रति एकड़ में ५० से २०० वृक्ष लगाये जाते हैं किंतु त्रिचूर के कई भागों में १,००० से भी अधिक। मैसूर राज्य के वन प्रदेश में ७५ से १०० वृक्ष तक पाये जाते हैं। औसतन प्रति वृक्ष पीछे पश्चिमी तट पर २० पौंड तक काजू मिल जाता है और पूर्वी तट पर कुछ अधिक।

उत्पादक क्षेत्र

काजू का उत्पादन पश्चिमी समुद्र तट पर कन्या कुमारी से महाराष्ट्र तक तथा

पूर्वी तट पर बरहामपुर तक होता है। इसका सबसे अधिक उत्पादन मलाबार और दक्षिणी कनारा जिलों में होता है। केरल राज्य में चीरेनकाल, कोट्टाराका, कुनाथुनाद, त्रिचूर, कीलीमन्नूर और कुनामकुलम जिलों में इसका सबसे अधिक उत्पादन होता है। महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले, आंध्र के पूर्वी गोदावरी, विशाखापट्टनम, मद्रास के दक्षिणी अर्काट, तिरुचिरापल्ली और तंजौर जिलों में भी काजू पैदा की जाती है। कुछ काजू मैसूर और कुर्ग में बोया जाता है।

कच्चे काजू का वार्षिक उत्पादन लगभग ६०,००० टन होता है। काजू को तोड़कर उससे छिलका अलग किया जाता है फिर उसे भून कर तैयार करते हैं। भारत में १५० काजू के कारखाने हैं जिनमें ७० हजार टन काजू प्रतिवर्ष फोड़ा जा सकता है किन्तु हम इतना जुटा नहीं पाते अतः विवशतः ब्रिटिश, पूर्वी अफ्रीका से काजू मँगाना पड़ता है। भारत से काजू का निर्यात मुख्यतः १२ करोड़ रुपये की लागत का होता है। यह निर्यात इंगलैण्ड, कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका को होता है।

काजू का उपयोग खाने के लिये अधिक होता है। कड़े छिलके से तेल निकाला जाता है जो रंग-रोगन बनाने में काम में लाया जाता है।

इस समय केरल में कोट्टारकारा; आंध्र में वापताला और महाराष्ट्र में रत्नागिरि में क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र चल रहे हैं। इन केन्द्रों में वैज्ञानिक ढंग से काजू पैदा करने के कई ढंग निकाले गये हैं। उदाहरणार्थ, ३″ गहराई में बीज डालने से पौधा जल्दी बढ़ता है, पौधों के बीच में कम से कम २०—२० फीट का फासला होना चाहिए। काजू के पौधे को कीट-व्याधियों और रोगों से बचाने के तरीके भी निकाले गये हैं।

(vi) रबड़ (Rubber)

रबड़ उष्ण कटिबन्ध की उपज है। यह अनेक प्रकार के वृक्षों से प्राप्त दूध से बनाया जाता है, जिसमें मुख्य पारा-रबर (Para Rubber or Hevea Brasiliensies) मुख्य है। इस वृक्ष का जन्म स्थान ब्राजील है किन्तु अब इसकी खेती भारत, लंका, मलाया, सिंगापुर, इंडोनेशिया, दक्षिणी समुद्री द्वीपों, पश्चिमी अफ्रीका, उत्तरी अमरीका, वेनेजुएला, इक्वेडोर, कोलम्बिया और पश्चिमी द्वीप समूहों में भी की जाती है।

भारत में इसकी खेती का श्रेय भारत मन्त्री सैलिसबरी के लार्ड को है जिन्होंने १९०० में इसका पौधा भारत में लगवाया। १९०३ में केरल राज्य में पेरियर नदी के निकटवर्ती भूमि में रबड़ का पौधा लगाया गया। १९२९ तक काफी विकास हुआ उसके बाद विश्व व्यापी आर्थिक मन्दी के कारण उत्पादन में कुछ कमी हो गई किन्तु द्वितीय युद्ध-काल में पुनः इसका विकास हुआ। अब भारत में विश्व के उत्पादन का लगभग १ प्रतिशत रबड़ प्राप्त किया जाता है।

जलवायु सम्बन्धी दशायें

पारा रबड़ समुद्र के धरातल से १,००० फीट की ऊँचाई तक उगाया जाता है। रबड़ के वृक्ष के लिये ८० इंच से अधिक वर्षा और ९०° फा० तक के औसत तापक्रम की आवश्यकता रहती है। वर्षा यदि समान रूप से होती रहे तो १२०″ तक के क्षेत्रों में यह पैदा किया जा सकता है। किन्तु अधिक तापक्रम और शुष्क

दशाओं में उपज में कमी हो जाती है। अतः भारत में इसकी खेती केरल, मद्रास, मैसूर आदि राज्यों में ही मुख्यतः की जाती है।

रबड़ का पौधा भिन्न-भिन्न गुणों वाली मिट्टी में सरलतापूर्वक उग सकता है। दक्षिणी भारत की लाल, लैटेराइट, चिकनी मिट्टी तथा दुमट और वन प्रदेशों की मिट्टी में भी इसका पौधा सरलता से उगता है। रबड़ के उत्पादन में वृक्षों की देख-रेख के लिये अधिक मानव श्रम की आवश्यकता पड़ती है।

भारत में रबड़ के पौधे रोपे जाते हैं अथवा कलम करके लगाये जाते हैं। कलमी पौधों के लिये सुमात्रा से अवोर (Avors), जावा से बोजोंग (Bodjong), तिरांदजी (Tirandji) तथा जासिंगा (Dsasinga), मलाया से पारंग बेसर (Prang Besar), सबरंग (Sabrang), रुबाना (Rubana) आदि किस्मों को मँगवा कर उपयोग किया जाता है। कलमी पौधे से बीज-पौधे की अपेक्षा चौगुना दूध मिलता है। साधारण बीज-पौधे से प्रति एकड़ पीछे ३०० पौंड तथा कलमी पौधे से ७०० से ८०० पौंड तक दूध प्रतिवर्ष मिलता है।

रबड़ का पौधा जब लगभग १½–२ फुट ऊँचा हो जाता है तो उसे हटाकर उद्यानों में साधारणतः प्रति एकड़ में १९० वृक्षों के हिसाब से लगा दिया जाता है जहाँ वह प्रति वर्ष ४ से ६ फीट तक बढ़ता है। बढ़ने का यह क्रम चार-पाँच वर्ष तक सीमित होता है। साधारणतः २ या ३ वर्ष बीतने पर पौधे से दूध निकलने लगता है किन्तु कहीं-कहीं ७ से ८ वर्ष बाद दूध मिलने लगता है। वृक्ष से दूध निकालने का कार्य वर्ष में २०० से ३०० दिन तक किया जाता है। केवल जनवरी से फरवरी तक यह कार्य ४ से ६ सप्ताह तक के लिये रोक दिया जाता है क्योंकि उपज इस समय सबसे कम होती है। दूध निकालने के लिये रबड़ के पौधे को गोलाई में काटा जाता है।

उत्पादक क्षेत्र

भारत में रबड़ के मुख्य उत्पादक केरल, मद्रास और मैसूर राज्य हैं :—

रबड़ के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन (१९५६)

राज्य	क्षेत्रफल	उत्पादन
केरल	२१९,६२४	२१,३१९
मद्रास	१०,३४६	१,७२३
मैसूर	३,९००	३६७
अंडमान	४२२	३५
आसाम	५०	—
पश्चिमी बंगाल	९	—
भारत का योग	२३४,३५१	२३,४४४

सम्पूर्ण देश में १९५५ में १४,४१७ रबड़ के उद्यान (Estates) थे जिनमें ५७,८१२ व्यक्ति लगे थे। भारत में रबड़ का औसत उत्पादन ३२ लाख पौंड रहता है। नीचे की तालिका में रबड़ का उत्पादन, उसका उपभोग और आयात बताया गया है :—

रबड़ का उत्पादन, उपभोग और आयात (टनों में)

वर्ष	उत्पादन	उपभोग	आयात
१६५०	१५,५६६	१७,७३५	१,०८२
१६५१	१७,४४८	२२,४२७	६,६२१
१६५२	२१,८६३	२१,०६१	३,८५१
१६५३	२१,१३६	२२,३७३	२७२
१६५४	२१,४६३	२५,४८७	३,३७१
१६५५	२२,४८२	२७,५४३	३,८३६
१६५६	२३,४४४	२८ ६६६	६,४३३
१६५७	२३,७६७	३१,७३५	६,६७७
१६५८	२४,३३८	३४,७५६	११,८७८

द्वितीय योजना के अंत तक रबड़ की मांग ४०,००० टन तक हो जाने की संभावना व्यक्त की गई है। अतः १६५७ से आगामी १० वर्षों में ७०,००० एकड़ पर रबड़ के अतिरिक्त बाग लगायेंगे जायेंगे जिससे १६७४ तक ३६,६०० टन रबड़ प्राप्त हो सके। किन्तु फिर भी काफी समय तक हमें १५ से २० हजार टन रबड़ के लिये विदेशों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

भारत से कुछ रबड़ का निर्यात इंगलैण्ड, लंका, हालैंड, स्ट्रेट्स सैटलमैंट्स तथा जर्मनी को किया जाता है। भारत में रबड़ का विनिमय और उत्पादन भारतीय रबड़ बोर्ड के अन्तर्गत किया जाता है।

अध्याय १३

कृषि उत्पादन (क्रमशः)

पेय और मादक पदार्थ
(Beverages & Stimulants)

इन पदार्थों के अन्तर्गत चाय, कहवा, तम्बाकू, अफीम और भाँग आदि सम्मिलित किये जाते हैं।

चाय (Tea)

चाय आरंभ में चीन में पैदा की जाती थी। भारत में इसकी कृषि १८३४ में लार्ड बैंटिंग के प्रयास से आरंभ की गई। चीन से चाय का पौधा मंगवाया गया और आसाम की पहाड़ियों पर लगाया गया। तीन वर्ष बाद चीन से चाय के कुछ विशेषज्ञ बुलाये गये और आसाम के उद्यानों की चाय ब्रिटेन को भेजी गई जहाँ वह ऊँचे मूल्य में बिकी। फलतः चाय की कृषि बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई और अंग्रेज पूँजीपतियों ने आसाम में अधिकाधिक चाय के उद्योग लगाने आरंभ किये। 'आसाम कम्पनी' की स्थापना होने पर भारत सरकार ने उसे अपने सब उद्यान दे दिये। 'चीनी' चाय तथा देशी चाय के सम्मिश्रण से 'वर्णशंकर' पौधा तैयार किया गया। इससे उत्तम श्रेणी की चाय मिलने लगी जो विदेशों में ऊंचे भाव पर बिकती है।

चाय पैदा करने में भारत का स्थान दूसरा है। पहले स्थान चीन का माना जाता है किन्तु उसके विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं है। वस्तुतः भारत ही विश्व में प्रमुख उत्पादक और निर्यातक देश हैं। नीचे की तालिका में प्रमुख देशों में चाय का उत्पादन बताया गया है :—

देश	१९३८	१९४७	१९५२	१९५७	१९५८	१९५९
			(दस लाख पौंड)			
भारत	४४७	५५९	६२०	६७९	७१४	७१५
पाकिस्तान	—	४२	५१	४६	५४	५२
लंका	२४७	२९९	३१७	३९८	४१३	४२०
इंडोनेशिया	१७८	३	८१	१०३	१०२	१५३
पूर्वी अफ्रीका	२४	३६	४५	६९	७८	९३
विश्व का योग	८९६	९३६	१,११४	१,१९५	१,३६१	१,६७१

भौगोलिक दशायें :

चाय का उत्पादन भारत में १०° उत्तरी अक्षांस से लगाकर ३३° उत्तरी अक्षांसों तक होता है। साधारणतः यह प्रमुख क्षेत्र २३° से लगा कर ३२° अक्षांसों के बीच में स्थित है। पंजाब में हिमालय प्रदेश के उद्यान ३३° उत्तरी अक्षांस और दक्षिण में १०° से १३° उत्तरी अक्षांसों में स्थित हैं।[1] वस्तुतः चाय उष्ण कटिबन्धीय जलवायु अवस्थाओं में अच्छी पनपती है।

---

१. विश्व में चाय की खेती अर्जेनटाइना में ३३° दक्षिणी अक्षांस से लगा कर उत्तर में सोवियत ट्रांस काकेशिया में ४२° उत्तरी अक्षांसों के बीच में होती है।

(१) चाय उत्पादन के लिए आर्द्र जलवायु उपयुक्त माना जाता है। वर्षा के के किसी भी भाग में इसका पौधा सूखा नहीं सह सकता। वर्षा का समान रूप से वितरण पौधे के लिये उपयुक्त है। यदि वर्षा बसंत एवं शीत ऋतु में हो जाय तो चाय की पत्तियों को वर्ष में ४-५ बार तक तोड़ा जा सकता है। साधारणतः वर्षा का औसत ६०″ होना चाहिए। आसाम के पहाड़ी भागों में यह ५०″ से १५०″ तक वर्षा वाले क्षेत्रों में और द्वार और दार्जिलिंग में १००″ से २००″ तक वर्षा होती है। दक्षिणी भारत के चाय क्षेत्रों में तो इससे भी अधिक वर्षा होती है। चाय के पौधे के विकास के लिए जड़ों में पानी का एकत्रित होना हानिकारक होता है। इसीलिए चाय के उद्यान समुद्रतल से २,००० से ६,००० फीट ऊँचे पहाड़ों की ढाल पर भी मिलते हैं। हिमालय का दक्षिणी ढाल सूर्योन्मुखी है और अधिक ताप एवं जलवृष्टि दोनों ही प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त यह ढाल हिमालय के कारण ध्रुवों की शीतल हवाओं से भी सुरक्षित रहता है।

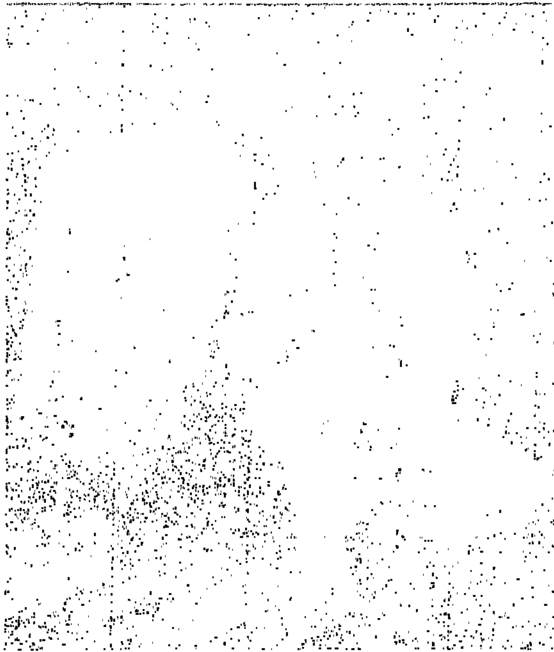
(२) चाय छाया-प्रिय पौधा है जो हल्की छाया में बड़ी तीव्र गति से बढ़ता है। मासिक तापक्रम ७०° से ६०° फा० के बीच में उपयुक्त माने गए हैं। जब अधिकतम तापक्रम छाया में ७५° फा० से नीचे गिर जाते हैं या औसत न्यूनतम तापक्रम ६५° से नीचे हो जाते हैं तो उसकी वृद्धि रुक जाती है। आसाम में तो ६८° फा० तापक्रम वाले भागों में भी छाया में चाय का उत्पादन किया जाता है। ठंडी हवा और ओले चाय के लिए हानिकारक होते हैं।

(३) चाय का उत्पादन पहाड़ों के ढालों पर या समतल भूमि पर भी किया जा सकता है यदि वर्षा का अतिरिक्त जल बह कर चला जा सके। भारत के कुछ सर्वोत्तम चाय के उद्यान आसाम में समुद्रतल के धरातल से ५० से ४०० फीट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। साधारणतः मिट्टी गहरी और गंधक वाली होनी चाहिए। बहुधा जंगलों को साफ की गई भूमि चाय के लिए अच्छी मानी जाती है। उपजाऊ मुलायम, बलुही मिट्टी भी चाय अच्छी पैदा करती है। यदि उसमें प्राणिज अथवा रासायनिक तत्वों का आधिक्य हो। आसाम के उद्यानों में चाय की झाड़ियों को छांटने से जो टहनियाँ गिरती हैं उन्हें भी भूमि में गाड़ दिया जाता है इससे मिट्टी को प्रति वर्ष वनस्पति-तत्व उपलब्ध होते रहते हैं। दार्जिलिंग की चाय इसीलिये सुगंधित होती है कि वहाँ की मिट्टी में पोटाश और फास्फोरस अधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं। प्रति एकड़ भूमि से एक बार में १,००० पौंड चाय की फसल लगभग ५५ पौंड नेत्रजन ले लेती है अतः मिट्टी अनउपजाऊ हो जाती है इसके लिए अमोनियम सल्फेट, हड्डी का खाद अथवा हरी खाद का उपयोग किया जाता है।

(४) चाय की चुनाई के लिए सस्ते और अधिक मात्रा में मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि चाय की पत्तियाँ एक-एक कर तोड़ी जाती हैं जिससे कोमल पत्तियाँ नष्ट न हों। अपनी कोमल उंगलियों के कारण ही चाय के उद्यानों में स्त्री मजदूरों द्वारा पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं। अब पत्तियाँ तोड़ने के लिए डायनमों से चलने वाली मशीनों का भी प्रचलन किया गया है।

चाय के बीज पहले क्यारियों में बिखेर कर बोये जाते हैं। बुवाई अक्टूबर से मार्च तक चलती है। जब पौधे साधारणतः ६″ बड़े हो जाते हैं उन्हें अन्य स्थानों में रोप दिया जाता है। प्रति १ मन बीज का पौधा ३ से ५ एकड़ क्षेत्र के लिये पर्याप्त होता है। समतल भूमि पर चाय का पौधा चतुष्कोण अथवा वर्ग के आकार की

बथारियों में और ऊँचे भागों में कन्टूर के समानान्तर लगाया जाता है। पौधे को तेज हवा और धूप से बचाने के लिए दालों वाले पौधे भी लगाये जाते हैं।



चित्र १३५—आसाम में चाय तोड़ने वाली

चाय की झाड़ी ५ से ६ फीट से अधिक नहीं बढ़ने दी जाती इससे पत्तियाँ चुनने में बड़ी आसानी रहती है। साधारणतः ३ साल के बाद पत्तियाँ चुनी जाती हैं और ४० वर्षों तक पौधे से पत्तियाँ प्राप्त होती रहती हैं। प्रति वर्ष गर्मी, वर्षा और शरद ऋतु में तीन बार पत्तियाँ चुनी जाती हैं। प्रथम बार अप्रेल-मई में, दूसरी बार जुलाई अगस्त में और तीसरी बार अक्टूबर-नवम्बर में। यदि शीतकाल एवं बसंत ऋतु में वर्षा हो जाये तो पत्तियों की चुनाई संभव हो जाती है। ऊपरी भाग की चाय तनों की अपेक्षा अच्छी होती है। एक झाड़ी से एक बार में लगभग २ पौंड हरी पत्तियाँ मिल जाती हैं और प्रति एकड़ पीछे लगभग १०४० पौंड। उत्तम मिट्टी और उत्पादन कला में वृद्धि होने से एक झाड़ी से ४½ पौंड अथवा एक एकड़ भूमि से २,५०० पौंड तक चाय की पत्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। भिन्न भिन्न जाति की झाड़ियों की पत्तियाँ भिन्न भिन्न लम्बाई की होती हैं। लुशाई और कछार की पत्ती १ फुट लम्बी तथा आसाम की केवल ६" ही लम्बी होती है। जंगली अवस्था में इसकी पत्तियाँ १०-१२ फीट लम्बी हो जाती हैं।

भारत के चाय उत्पादक क्षेत्र एक दूसरे से दूर दूर हैं। उनकी मिट्टी तथा जलवायु भी एक दूसरे से भिन्न है अतः चाय की किस्मों में भी अन्तर होता है।

आसाम की चाय अपनी तेज सुगन्ध और रंग के लिए प्रसिद्ध है परन्तु पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग क्षेत्र में पैदा होने वाली चाय बहुत सुस्वादु होती है। दक्षिण भारत (विशेषतः नीलगिरि क्षेत्र) में पैदा होने वाले चाय अपने रंग और सुगन्ध के लिए प्रसिद्ध हैं। परन्तु दार्जिलिंग की चाय न केवल भारत में ही वरन् विश्व भर में श्रेष्ठ मानी जाती है।

भारत में कई प्रकार की चायें प्राप्त की जाती हैं जैसे काली चाय, हरी चाय, कोलोंग चाय (Colong Tea), इंटों वाली चाय (Brick Tea) तथा लेट-पेट-चाय (Let-pet Tea)। इनमें से वाणिज्य में मुख्यतः काली चाय का ही अधिक महत्व है। हरी चाय बहुत ही थोड़ी मात्रा में प्राप्त की जाती है। शेष प्रकार की चायें केवल परीक्षण रूप में ही पैदा की जाती हैं।

चाय को पीने योग्य बनाने के पूर्व उसको साफ किया जाता है। इसके अंतर्गत अनेक क्रियायें आती हैं जैसे पत्तियों को खमीर उठाने के लिए सुखाना, उनको बेलनों में दबा कर मोड़ना तथा फिर भून कर डिब्बों में बन्द करना। यह सब कार्य कुशल मजदूरों द्वारा फैक्ट्रियों में ही किया जाता है जो चाय उद्यानों के निकट ही स्थित होती है। जब चाय भून कर तैयार हो जाती है तो उसे अलग अलग श्रेणियों में विभाजित किया जाता है और इनके वाणिज्यिक प्रमाण रखे जाते हैं जैसे पत्ती वाली चाय (Leaf grade)—औरेंज पीको, पीको, पीको सूचोंग आदि—तथा चूरा चाय (Broken Tea) जैसे ओरेंज पीको चूरा, पीको चूरा, पीको सूचोंग चूरा तथा फैनिंग्स आदि। चाय छांटने के बाद जो निकृष्ट श्रेणी का चूरा बच जाता है उससे कैफीन (Caffein) नामक मादक पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं। हरी चाय बनाने के लिए खमीर उठाने की क्रिया नहीं की जाती वरन् उन्हें सुखा कर दबा देते हैं और फिर विभिन्न श्रेणियों की चाय छांट ली जाती है। हरी चाय की मुख्य किस्में Young Hyson, Twankey, Fannings or Soumee हैं।

भारत के विभिन्न भागों में चाय का प्रति एकड़ उत्पादन इस प्रकार है :—

चाय का प्रति एकड़ उत्पादन (पौंड में)

राज्य	१९५०	१९५६
आसाम	८५०	९४६
पंजाब	१९९	२४३
मैसूर	३८०	७१४
मद्रास	५७१	७७१

उत्पादक क्षेत्र :

भारत में निम्नलिखित जलवायु क्षेत्रों में चाय का उत्पादन किया जाता है :—

(१) **उष्ण जलवायु की चाय**—इस क्षेत्र के अंतर्गत नीलगिरि की पहाड़ियाँ, मद्रास तथा उड़ीसा का पहाड़ी ढाल तथा हिमालय का दक्षिणी ढाल आता है। यहाँ जो चाय उगाई जाती है वह उष्ण जलवायु वाली चाय कही जाती है।

(२) **शीतल जलवायु की चाय**—यह चाय हिमालय की पहाड़ियों के ऊपरी टीलों पर होती है। साधारणतया यह क्षेत्र ४,०००′ से ६,०००′ तक की ऊंचाई पर है।

(३) शीतोष्ण जलवायु की चाय—यह चाय ढालों के ऊपरी एवं निचले हिस्सों की मध्यवर्ती भूमि पर उत्पन्न की जाती है।

भारत में चाय का उत्पादन उत्तरी भारत में ब्रह्मपुत्र और सुरमा घाटी में, उत्तरी बंगाल, उत्तर प्रदेश और बिहार में तथा दक्षिणी भारत में पश्चिमी तटीय पहाड़ी प्रदेशों में होता है।

सारे देश में ६,००० चाय के उद्यान हैं जिनमें से २० प्रतिशत पंजाब और ११ प्रतिशत आसाम में हैं किंतु पंजाब में उद्यान का औसत क्षेत्रफल केवल ४ एकड़ ही है जबकि आसाम में यह ४०० एकड़ तक है। नीचे की तालिका में भारत में चाय के उद्यानों का वितरण बताया गया है :—

चाय के उद्यान

उत्तरी भारत		दक्षिणी भारत	
आसाम	७८४	मद्रास, मैसूर, केरल	४,०५६
बंगाल	३०२		
हिमाचल प्रदेश	२२६		
पंजाब	१,१२६		
उत्तर प्रदेश	४६	योग	६,६०१
त्रिपुरा	५५		
बिहार	४		

भारत के चाय के उत्पादन का ७५% आसाम, बंगाल तथा पंजाब आदि राज्यों से प्राप्त होता है और शेष २५% दक्षिणी भारत से।

नीचे की तालिका में चाय का क्षेत्रफल एवं उत्पादन बताया गया है :—

भारत में चाय का उत्पादन (१९५५ से १९५७)[1]

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)			उत्पादन (००० पौंड)		
	१९५५	१९५६	१९५७	१९५५	१९५६	१९५७
आसाम	३८६	३८४	३८९	३३५,५२४	३६६,११४	३७०,७९४
बिहार	१	१	१	१७१	३०७	३०७
मद्रास	६८	७२	७३	४४,८९२	७३,१८७	५६,०१३
पंजाब	९	९	९	२,०३६	२,४२६	२,४३४
उत्तर प्रदेश	६	६	५	२,०९८	१,९३८	१,६२४
पश्चिमी बंगाल	१९५	१९४	१९४	१६६,२२६	१६६,९६३	१६६,७१७
मैसूर	५	५	४	२,५८१	२,६०३	५,२९९
केरल	९७	९७	९९	६९,०३१	६७,७३२	७६,५५२
हिमाचल प्रदेश	२	२	२	१९७	२३७	१६३
त्रिपुरा	११	११	१२	४,९१३	४,९९२	४,८३५
भारत का योग	७८०	७८१	७८८	६२७,६६९	६८६,४९९	६८४,७३८

१. Agricultural Situation in India, Vol. XIV No. 11, Feb, 1960.

असम में चाय का एक क्षेत्र ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में स्थित है। विश्वनाथ तथा तेजपुर के जिलों की लाल कछारी मिट्टी चाय के उद्यानों से ढकी है। यह क्षेत्र दरांग, शिवसागर तथा लखीमपुर जिले तक विस्तृत है। उद्यान ढालू पठारी पर है, अतः पौधे की जड़ में पानी एकत्रित नहीं हो पाता। असम का द्वितीय चाय उत्पादन क्षेत्र सूरमा नदी की घाटी है। गर्त की भूमि के ऊपर उभड़ आने के कारण उसका जल बह गया है और मिट्टी में खनिज तत्वों का आधिक्य है। यह क्षेत्र रेल तथा जल मार्ग द्वारा कलकत्ता और चिटगाँव से संबद्ध है।

पश्चिमी बंगाल में चाय के उद्यान दार्जिलिंग तथा जलपाइगुड़ी जिले में लगे हैं। इस क्षेत्र में उत्तम प्रकार की सुगन्धित चाय उत्पन्न होती है। ये दोनों जिले मिल कर भारत की २५% से २७% तक चाय का उत्पादन करते हैं।

विहार की चाय निम्न कोटि की होती है और यहाँ के प्रमुख चाय उत्पादक जिले पूर्णिया, राँची, और हजारीबाग हैं।

उत्तर प्रदेश में देहरादून, गढ़वाल तथा अलमोड़ा की पहाड़ियों पर चाय का उत्पादन होता है। यह क्षेत्र विहार के क्षेत्र का डेढ़ गुना है।

पंजाब के चाय का उत्पादन-क्षेत्र कांगड़ा जिले में स्थित है। यहाँ से भारत की लगभग ⅔ हरी चाय उत्पन्न होती है। विहार, उत्तर प्रदेश, तथा पंजाब तीनों में मिल कर भारत के कुल उत्पादन क्षेत्र का लगभग ५० प्रतिशत क्षेत्र स्थित है।

दक्षिणी भारत में चाय का सबसे अधिक उत्पादन मद्रास के वायनाद, नीलगिरी और कोयम्बटूर जिले, केरल राज्य के मलाबार तट तथा मैसूर और महाराष्ट्र राज्यों में होता है।

उत्पादन एवं व्यापार :

भारतीय चाय उद्योग में लगभग १० लाख व्यक्ति लगे हैं और ११३·०६ करोड़ रुपये की पूंजी विनियोजित है। इसमें से ६४·२ प्रतिशत अंगरेज कम्पनियों के अधिकार में हैं (जिनमें 'लिप्टन' और 'ब्रुकबांड' विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं) और ३५·८ प्रतिशत भारतीय पूंजी है। प्रति वर्ष इस उद्योग से १२५ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है तथा सरकार को कर के रूप में ३५ से ४० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष मिलते हैं।

नीचे की तालिका में चाय का क्षेत्रफल एवं उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (हजार पौंड)
१९१०	५६४	२६३,०००
१९४७	७६६	५६१,७४०
१९५०	७७७	६०७,३१८
१९५४	७७९	६५१,४७८
१९५५	७९१	६७८,३७१
१९५६	७९२	६८०,६१०
१९५७	७९२	६७५,६३१
१९५८	७९२	७१३,५००

विदेशी बाजारों में भारतीय चाय की बड़ी मांग है। वास्तव में भारतीय चाय का दो-तिहाई विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। भारतीय चाय के मुख्य खरीदार ब्रिटेन, अमरीका, रूस, आयर, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैंड्स, आस्ट्रेलिया, मिश्र, टर्की और पश्चिमी एशिया के अन्य प्रमुख देश हैं। ब्रिटेन सदा से ही भारतीय चाय का सबसे बड़ा खरीदार रहा है, यहाँ से ७० प्रतिशत चाय जाती है। निम्न तालिका में भारत से विश्व के प्रमुख देशों को चाय का जो निर्यात हुआ है उसके आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—

भारत से चाय का निर्यात (लाख पौंड में)

	१९५५	१९५६	१९५७	१९५८
ब्रिटेन	२,५१०	३,६५०	३,०२०	३,३१०
अमरीका	२४०	२८०	२३०	२५०
आयर	१८०	१७०	१९०	—
कनाडा	१६०	२३०	१७०	१९०
मिश्र	१३०	२३०	१७०	२६०
रूस	—	१४०	१६०	२५०
ईरान	११०	८०	१००	११०
आस्ट्रेलिया	६०	९०	८०	८५
तुर्की	३०	६०	७०	—
पश्चिमी जर्मनी	३०	६०	४०	—
भारत की चाय का निर्यात योग	३,६७०	५,२३०	४,४३०	५,०६०

१९५६ में चाय का सबसे अधिक निर्यात हुआ इससे देश को १४२·३ करोड़ की मुद्रा प्राप्त हुई। १९५७ में निर्यात का मूल्य १२३·४ करोड़ और १९५८ में १३६·५ करोड़ और १९५५ में १२६·३ करोड़ था। चाय का निर्यात कलकत्ता, मद्रास, कोजीखोड़ और बम्बई बन्दरगाहों द्वारा होता है। भारत के कुल उत्पादन का लगभग ७५ प्रतिशत निर्यात कर दिया जाता है। देश में २० से २५ प्रतिशत ही चाय खपती है। १९३८ में जहाँ लगभग ९३२ लाख पौंड चाय की खपत हुई वहाँ १९४८ में १,५८३ लाख पौंड, १९५२ में २,३४३ लाख पौंड और १९५८ में लगभग २,३५० लाख पौंड चाय की खपत हुई। खपत में वृद्धि होने का मुख्य कारण **'भारतीय चाय विपणन समिति'** की बिक्री योजनाओं का कार्यान्वित किया जाना है। फिर भी भारत में चाय की खपत प्रति व्यक्ति पीछे बहुत ही कम है। सं० राज्य अमरीका में ·७ पौंड चाय प्रति व्यक्ति पीछे पीजाती है, इंग्लैंड में ९·९ पौंड, नीदरलैंड्स में ७·७ पौंड, आस्ट्रेलिया में ८·६ पौंड और भारत में केवल ·५ पौंड है।

१९३३ में भारत, जावा तथा लंका के बीच एक समझौता हुआ था जिसमें प्रत्येक देश का निर्यात निश्चय कर दिया गया था। उस समझौते के अनुसार भारत ३,८०० लाख पौंड से अधिक चाय बाहर नहीं भेज सकता था। पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के कारण चाय का मूल्य बहुत न गिर जाये इसलिए यह अन्तर्राष्ट्रीय चाय समझौता हुआ था। द्वितीय महायुद्ध में भारतीय चाय की मांग देश और विदेश दोनों ही में

बढ़ गई। १९४८ में फिर जो अन्तर्राष्ट्रीय चाय समझौता हुआ उसके अनुसार भारत का निर्यात कोटा ४,३५० लाख पौंड निश्चित हुआ। १९५०-५१ में यह कोटा बढ़ा कर १४,५२० लाख पौंड कर दिया गया। किन्तु फिर भी भारतीय चाय उद्योग का संकट बना ही रहा। उस पर यहाँ की चाय कम्पनियों ने आपस में मिल कर चाय के उत्पादन को घटाने का निश्चय किया और १९५३-५४ में ८ प्रतिशत क्षेत्र कम कर दिया गया और उत्पादन में ५०० लाख पौंड की कमी हो गई। यह समझौता मार्च, १९५५ में समाप्त हो गया। अब भारत से चाय का निर्यात कोटा 'चाय-बोर्ड की लायसेंस समिति' द्वारा तय किया जाता है।

(२) कहवा (Coffee) :

कहवा भी चाय की तरह ही एक झाड़ी का फल होता है जिसका मूल-स्थान अफ्रीका और एशिया के उष्णकटिबन्धीय प्रदेश हैं। किंतु अब इसका उत्पादन विश्व के अन्य देशों में २५° उत्तरी से २५° दक्षिणी अक्षांशों के बीच किया जाता है। भारत में इसका उत्पादन १८३० से आरम्भ किया गया जब इसके उद्यान मैसूर में लगाये गये। १८९६ में कहवा के उद्यानों का क्षेत्रफल ३,०४,००० एकड़ था किंतु १९२० में इसकी पत्तियों में रोग लग जाने से इसके क्षेत्रफल में काफी कमी हो गई। तब से अभी तक कहवा का क्षेत्रफल १८९६ के बराबर नहीं हो सका है। विश्व के उत्पादन का केवल २ प्रतिशत कहवा भारत से प्राप्त होता है किंतु इसका स्वाद उत्तम होने के कारण विश्व के बाजारों में इसका मूल्य अधिक मिलता है। भारतीय कहवा को 'Mild Coffee' कहा जाता है।

भौगोलिक दशायें :

कहवा का पौधा बड़ा ही नाजुक होता है। यह गर्म और आर्द्र जलवायु में अच्छा पनपता है किंतु इसके फलों के पकने के लिये शुष्क मौसम की आवश्यकता होती है। यह पाला नहीं सह सकता और न ही अधिक गर्मी। अतः इसका उत्पादन उन क्षेत्रों तक ही सीमित है जहाँ औसत वार्षिक तापक्रम ७०° फा० से अधिक नहीं बढ़ता। साधारणतः तापक्रम ५०° से ८०° फा० तक का ठीक रहता है। कहवा अधिक तेज धूप को भी नहीं सह सकता अतः इसके आसपास छायादार वृक्ष—जैसे केला, सिंकोना, रबड़, सिल्वर-ओक आदि लगाये जाते हैं।

इसके लिए ६०" से ८०" तक की वर्षा पर्याप्त मानी गई है। यदि वर्षा का वितरण समान रूप हो तो यह १३०" तक की वर्षा वाले क्षेत्रों में भी पैदा किया जा सकता है। किंतु अधिक समय तक सूखा पड़ने से इसकी पैदावार कम हो जाती है। पहाड़ी ढालों पर, जहाँ वर्षा का अतिरिक्त जल बह कर चला जाता है, इसकी पैदावार की जाती है। साधारणतः ६,००० फीट की ऊँचाई तक यह पैदा किया जाता है। दक्षिण भारत में कहवा के उद्यान साधारणतः घाटियों के पार्श्ववर्ती भाग में तथा पश्चिमी घाट पर पाये जाते हैं। वर्षाकाल में चलने वाली तेज हवाओं से पौधे का बचाव हो जाता है। कहवा अधिकतर वनों को साफ की गई भूमि में अच्छा पैदा होता है जहाँ भूमि में अधिक उपजाऊ तत्त्व मिलते हैं।

कहवा के लिए दोमट मिट्टी अथवा ज्वालामुखी के उद्गार से निकली हुई लावा मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है जिसमें क्रमशः वनस्पति और लोहे के अंश मिले रहते हैं।

कहवा का बीज पहले छोटी-छोटी क्यारियों में बोया जाता है। यह जनवरी से मार्च तक बोया जाता है और जब पौधा ८ से १२ सप्ताह का हो जाता है तो उसे नर्सरी में लगा देते हैं वहाँ १८ महीने का होने पर पुन: अन्य क्यारियों में लगाया जाता है। तीन वर्ष बाद पौधे से फल मिलने लगता है और ३० से ५० वर्षों तक मिलता रहता है। फल अधिकतर अक्टूबर से जनवरी तक चुने जाते हैं। दक्षिणी भारत में वर्षा की प्रथम बौछारों के बाद फूल आने आरम्भ होते हैं और फल लगभग ८—९ महीने में पक कर तैयार हो जाता है तथा इसे अक्टूबर-नवम्बर में चुन लेते हैं। मैसूर में फरवरी तक पौधे से ३-४ बार फल चुन लेते हैं जबकि नीलगिरि में मई से जून तक कई बार फल चुने जाते हैं। एक वृक्ष से औसतन १/२ से १ पौंड तैयार किया गया कहवा मिलता है अथवा प्रति एकड़ पीछे १,००० से १,२०० पौंड तक।

भारत में प्रति एकड़ कहवा की पैदावार अन्य देशों की तुलना में बहुत ही कम है। कहवा की उपज ऊँचाई, आकार, वर्षा का समय, छाया, छँटाव, खाद आदि बातों पर निर्भर करती है। विदेशों में प्रति एकड़ पीछे उत्पादन ब्राजील में ३६६ पौंड, कोलंबिया में ५६२ पौंड, इण्डोनेशिया में ४७३ पौंड, साल्वाडोर में ५५३ पौंड, केनिया में ४७३ पौंड, वेनेजुएला में ५१७ पौंड तथा भारत में केवल १९६ पौंड होता है।

कहवे के फल को तोड़ कर दो ढंग से तैयार किया जाता है। पहले ऊपर का छिलका उतार कर उसमें से बीज निकाले जाते हैं। पहले ढंग के अनुसार धूप में इन फलों को सुखाया जाता है लगभग २ से ३ सप्ताह तक और फिर इनको मशीन से साफ कर बीज निकाले जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त किए गए कहवा को 'चेरी' (Cherry) कहते हैं। दूसरे ढंग के अनुसार फलों को इकट्ठा कर उनका गूदा निकाल लेते हैं फिर बड़े-बड़े हौजों में उसे साफ कर बीज निकाले जाते हैं। इनको धूप में सुखा कर 'पार्चमैंट' (Parchment) कहवा प्राप्त किया जाता है।

भारत में मुख्यत: दो प्रकार का कहवा पैदा किया जाता है : (१) 'अरेबिका कहवा' (Coffee Arabica) और (२) 'रोबस्टा कहवा' (Coffee Robusta)। पहले प्रकार का कहवा उच्च कोटि का होता है तथा अधिक क्षेत्रफल में बोया जाता है किन्तु इसमें कीड़े और रोग अधिक लग जाते हैं। अरब कहवा की मुख्य किस्में चिक (chick), कुर्ग (coorgs), केंट (Kent) और मारगोपाइप (Margopipe), बोरबन (Bourbon), अमरीलो (Amarillo) तथा ब्लू माउन्टेन (Blue mountain) आदि हैं। रोबेस्टा कहवा आजकल अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। इसको रोगों और कीड़ों-मकोड़ों का भय कम रहता है। इसकी प्रति एकड़ पैदावार भी अधिक होती है। मैसूर और केरल राज्यों में इसे केले, आम, नारंगी तथा काली मिर्चों के साथ पैदा किया जाता है।

उत्पादक क्षेत्र :

भारत में विश्व के उत्पादन का केवल २% कहवा पैदा किया जाता है किंतु अच्छी जाति का होने के कारण इसका महत्व अधिक है।

१९५५-५६ में समस्त देश में कहवा के १३,४४३ उद्यान थे जिनमें लगभग २२२,७९३ मनुष्य लगे थे। इन उद्यानों में से दक्षिणी भारत में ७,००० उद्यान हैं। मैसूर में सम्पूर्ण भारत के कहवा के क्षेत्रफल का लगभग ३७%, मद्रास में ३०% और केरल राज्य में ३३% है। कहवा के अन्तर्गत ७०% क्षेत्र अंग्रेजों के और ३०% भारतीय के अधिकार में हैं।

मैसूर में लगभग ४,६०० उद्यान हैं। यहाँ कहवा अधिकतर दक्षिणी और दक्षिणी पश्चिमी भाग में कादूर, शिमोगा, हसन और मैसूर जिलों में पैदा होता है जो साधारणत: ४,००० फीट ऊँचे हैं और जहाँ औसत वर्षा ५०" होती है।

मद्रास राज्य में सम्पूर्ण दक्षिण-पश्चिम में उत्तरी अर्काट जिले से लगा कर तिरूनलवैली तक यह बोया जाता है। नीलगिरि पर्वत प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं।

महाराष्ट्र राज्य में सतारा जिले में, केरल में कुर्ग और आंध्र में विशाखापट्टनम जिले में भी कहवा पैदा किया जाता है।

नीचे की तालिका में कहवा के अंतर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

कहवा के क्षेत्र और उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़) १९५५-५६	उत्पादन (००० पौंड) १९५५-५६
मैसूर (कुर्ग सहित)	१४५	२३,७६०
मद्रास	१०४	९,६५१
केरल	५	५१९
अन्य राज्य	—	३०५
भारत का योग	२५४	३४,२३५

उत्पादन एवं व्यापार :

कहवा उद्योग में सब मिला कर लगभग २¼ लाख मनुष्य लगे हैं। कहवा के उद्यानों में लगभग २५ करोड़ रुपयों की पूंजी लगी है और उपज का वार्षिक मूल्य १२ करोड़ का होता है। इसके निर्यात से लगभग ५ से ७ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

उत्पादन का लगभग ५०% देश में ही खप जाता है। कुछ वर्षों पूर्व कहवा का उपभोग १९४७ में लगभग १५,००० टन प्रति वर्ष का था १९५८ में यह २९,००० टन का हो गया। भारत में कहवा की खपत दक्षिण भारत में ही अधिक होती है। देश में कहवा की खपत बढ़ाने के लिए 'भारतीय कहवा बोर्ड' सतत प्रयत्नशील है।

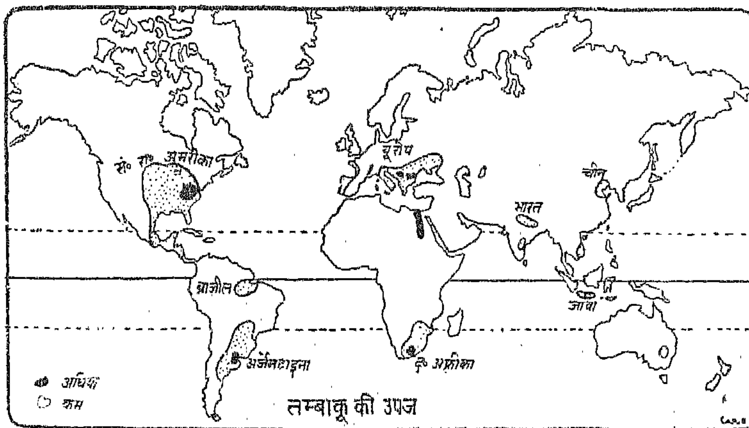
नीचे की तालिका में कहवा उत्पादन और निर्यात बताया गया है :—

वर्ष	कहवा चुना गया (टन)	निर्यात (टन)	मूल्य (लाख रु० में)
१९५०-५१	१८,८९३	३०५	२१·०
१९५१-५२	२१,५७६	२,२३५	२७१·६
१९५२-५३	२३,९४३	३,०४८	१२४·३
१९५३-५४	३०,०२९	९,७६७	६१०·५
१९५४-५५	२५,४२७	३,५९२	१७३·६
१९५५-५६	३५,०२८	८,०८२	५५३·२
१९५६-५७	४२,६७४	१५,४७२	८४१·०
१९५७-५८	४४,४००	१४,२८१	६२४·०

कहवे का निर्यात मुख्यतः इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैंड्स, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया और ईराक को किया जाता है। निर्यात का लगभग ७६% मंगलौर, ११% तैलीचेरी, १०% कोजीखोड़ और ३% मद्रास के बन्दरगाह से जाता है। पिछले कुछ समय से ब्राजील से स्पर्धा होने से भारत के निर्यात में काफी कमी आ गई है।

(३) तम्बाकू (Tobacco)

भारत में तम्बाकू का पौधा पुर्तगालियों द्वारा सन् १५०८ में लाया गया और तब से इसकी खेती का क्षेत्र भारत के लगभग सभी भागों में फैल गया है। भारत विश्व के उत्पादन का लगभग ७ प्रतिशत तम्बाकू उत्पन्न करता है जबकि संयुक्त राज्य अमरीका २८ प्रतिशत, चीन १७ प्रतिशत और रूस ७ प्रतिशत। भारत में लगभग १०½ लाख एकड़ क्षेत्र में ६० करोड़ पौंड तम्बाकू का पत्ता पैदा किया जाता है। यह क्षेत्रफल कुल बोये गये क्षेत्रफल का लगभग ०·३५ प्रतिशत है। राष्ट्र के लिये आर्थिक दृष्टि से तम्बाकू का महत्व अधिक है। इससे आबकारी कर के रूप में सरकार को लगभग ३५ करोड़ रुपये और निर्यात से ६५ करोड़ की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। अनुमान है कि लगभग १६ लाख तम्बाकू उगाने वाले और लगभग ६ लाख सुखाने वाले हैं। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि तम्बाकू उद्योग से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लगभग ३० लाख लोगों की जीविका चलती है।



चित्र १३६—तम्बाकू उत्पादक क्षेत्र

जलवायु सम्बन्धी दशायें :

तम्बाकू की पैदावार का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। यह उष्ण कटिबन्धीय, अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय और शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु की दशाओं में पैदा की जाती है। इसका उत्पादन समुद्र के धरातल से लेकर ४,००० फीट की ऊँचाई तक भी किया जा सकता है। इसके पूर्ण विकास के लिए तापक्रम ६०° फा० से १०५° फा० तक का ठीक रहता है। यदि वर्षा वाली भूमि में बोया जाय तो साधारणतः इसे २०″ से ४०″ की वर्षा पर्याप्त होती है। इससे अधिकतर वर्षा वाले भागों में इसकी खेती

नहीं की जा सकती। पत्तियों के पकने के समय वर्षा हो जाने से उसकी किस्म बिगड़ जाती है। पकने के समय स्वच्छ और तेज धूप तथा वर्षा रहित मौसम होना आवश्यक है। इसकी जड़ों में पानी नहीं जमना चाहिये इसीलिए तम्बाकू की कृषि नदी की ढालू घाटी और पठार पर अधिक होती है।

तम्बाकू के लिए बलुही, दोमट अथवा मिश्रित कछारी मिट्टी उपयुक्त रहती है। मिट्टी में से तम्बाकू उपजाऊ तत्वों को बहुत जल्दी खींच लेता है अत: पोटाश, फास्फोरिक एसिड और लोहांश के रूप में खाद की आवश्यकता पड़ती है।

तम्बाकू जाड़े में पैदा होता है। इसका पौधा जब ६-८ हफ्तों में बड़ा हो जाता है तो पौधों को १½-२ फुट की दूरी पर दूसरी क्यारियों में रोप दिया जाता है। जहाँ सिंचाई की सुविधायें प्राप्त हैं वहाँ दो फसलें भी प्राप्त की जाती हैं। पहली फसल जनवरी से जून तक तथा दूसरी अक्टूबर से मार्च तक। साधारणतः इसकी फसल जुलाई से अक्टूबर तक बोई जाती है और फरवरी से मई तक काटी जाती है।

तम्बाकू की पौध लगाने, काटने, पत्तियों के सुखाने और तैयार करने में सस्ती मजदूरी की आवश्यकता पड़ती है।

तम्बाकू की किस्म मिट्टी, अपने रंग, वजन और खाद पर निर्भर करती है। मौसम में हल्के परिवर्तन व पत्तियों की छंटनी और सफाई का भी इसकी किस्म पर प्रभाव पड़ता है। वस्तुत: कहा जा सकता है कि ठण्डी, नम, ग्रीष्म ऋतु व हल्की नरम भूमि होने पर पत्तियाँ अच्छे रेशे वाली और कम तेज होती हैं। किंतु जब भूमि कठोर और तापक्रम ऊंचा रहता है तो पत्तियाँ मोटी और तेज स्वाद वाली होती हैं।

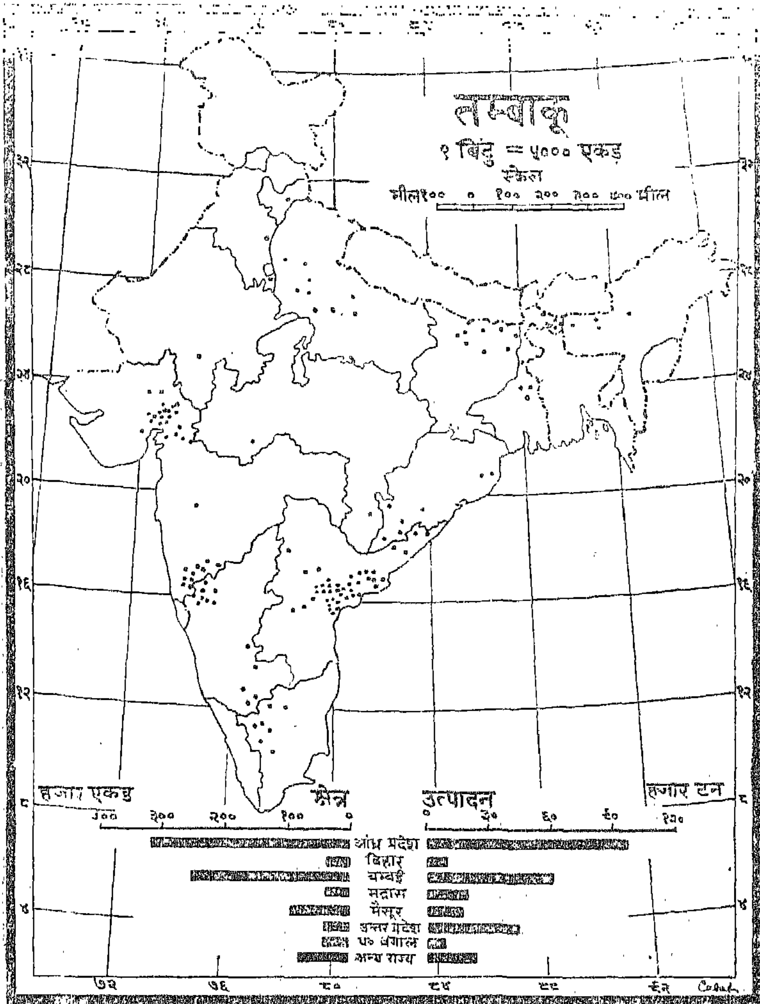
यद्यपि भारत में लगभग ६० किस्म की तम्बाकू बोई जाती है किंतु दो उनमें मुख्य हैं : 'निकोटिना टुबैकम' (Nicotina Tobacum) और 'निकोटिना रस्टिका' (Nicotina Rustica)। भारत में सबसे अधिक क्षेत्रफल प्रथम किस्म के अन्तर्गत है। चूँकि 'रस्टिका' तम्बाकू को ठण्डे जलवायु की आवश्यकता होती है अत: यह मुख्यत: उत्तरी और उत्तर-पूर्वी भारत में पैदा की जाती है। इसका पौधा छोटा और पत्तियाँ भी छोटी होती हैं। इसका उपयोग हुक्का, खाने और सुंघनी बनाने में होता है। 'टुबैकम' सारे ही भारत में बोई जाती है। इसमें फूल गुलाबी रंग के होते हैं। इसके पौधे लम्बे तथा पत्तियाँ बड़ी होती हैं। सिगरेट, सिगार, चिरूट, बीड़ी, हुक्का तथा खाने और सूंघनी बनाने में इसी का प्रयोग अधिक किया जाता है।

उत्पादक क्षेत्र :

भारत में तम्बाकू का उत्पादन मुख्यतः आंध्र, महाराष्ट्र और मैसूर राज्यों में होता है। इन तीनों राज्यों में कुल क्षेत्र का लगभग ७४% है। अन्य राज्य आसाम, बिहार, उत्तर प्रदेश, मद्रास और पश्चिमी बंगाल हैं।

(१) **गंतूर प्रदेश**—इसमें आंध्र राज्य के गंतूर, कृष्णा, पूर्वी गोदावरी तथा पश्चिमी गोदावरी जिले सम्मिलित हैं किंतु २/३ से भी अधिक क्षेत्र गंतूर जिले में हैं। इस क्षेत्र की मिट्टी काले रंग की है जिसमें चूने की मात्रा अधिक है। पूर्वी तट पर सिंचाई की भी सुविधा है। इस प्रदेश में अधिकतर गर्म हवा में सिझाये गये तथा सूर्य की धूप से सिझाये गये विभिन्न प्रकार के वर्जिनिया तम्बाकू (Virginia) तथा 'नाटू' (Natu), 'थोक आकू' और 'करा आकू' नाम की देशी तम्बाकू पैदा किये जाते हैं। लंका नामक जिला विशेष का तम्बाकू तो पूर्वी गोदावरी और कृष्णा

जिले में उगाया जाता है। यह मुख्यत: चुरुट और सिगार बनाने में प्रयोग में लाई जाती है।



चित्र १३७—प्रमुख तम्बाकू उत्पादक क्षेत्र

(२) **उत्तरी-बिहार और बंगाल प्रदेश**—इसमें बिहार के मुजफ्फरपुर, दरभङ्गा, मुंघेर और पूर्णिया जिले तथा पश्चिमी बं[illegible] मालदा, हुगली, कूचबिहार और बरहामपुर जिले सम्मिलित हैं। [illegible] की उपजाऊ मिट्टी इसकी कृषि के लिए आदर्श है। यहाँ हुक्का के उपयोगी 'एन टुबेकम' 'एन रस्टिका' की विविध किस्में—विलायती, मोतीहारी और जाति—पैदा की जाती है।

(३) चरोत्तर क्षेत्र—इसमें गुजरात राज्य के खैरा जिले के ग्रानन्द, बोरसद, पेटलाद, नाड़ियाद तालुक सम्मिलित है। इस प्रदेश में विविध किस्मों के—'निकोटिना रस्टिका' और 'वर्जिनिया टुबैकम' बोया जाता है।

(४) निपानी क्षेत्र—इसमें महाराष्ट्र के कोल्हापुर, सांगली, मिराज, बेलगांव और सतारा जिलों में मुख्यत: बीड़ी का तम्बाकू उगाया जाता है। यहाँ गहरी काली और गहरे लाल रङ्ग की मिट्टी में तम्बाकू पैदा किया जाता है।

(५) उत्तर प्रदेश और पंजाब प्रदेश—उत्तर प्रदेश के बनारस, मेरठ, बुलन्दशहर, मैनपुरी, सहारनपुर और फरुखाबाद जिले और पंजाब के ग्रमृतसर, जालन्धर, गुरुदासपुर तथा फिरोजपुर जिले तम्बाकू के मुख्य उत्पादक हैं। यहाँ हुक्का के लिये तथा खाने के लिये बढ़िया किस्म की 'कलकत्तिया' तम्बाकू उगाया जाता है।

(६) दक्षिणी मद्रास प्रदेश—इसमें मद्रास राज्य के मदुराई, कोयम्बतूर, डिंडीगल, तिरुचिरापल्ली जिले सम्मिलित हैं। इसमें तम्बाकू, सिगार और चुरूट में भरने वाला तम्बाकू उगाया जाता है।

नीचे की तालिका में तम्बाकू के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

तम्बाकू के क्षेत्र और उत्पादन (१९५७–५८)

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० टन)	उपज प्रति एकड़ (पौंड में)
आंध्र प्रदेश	३६२	१०९	६७४
गुजरात+महाराष्ट्र	२३६	५१	४८४
बिहार	३५	९	५७६
आसाम	२४	७	६५३
मैसूर	१०३	१८	३९१
मद्रास	४९	२७	१,२६०
उत्तर प्रदेश	३३	११	७४७
बंगाल	४२	११	५८७
पंजाब	४	१	५६०
मध्य प्रदेश	१२	२	५७३
भारत का योग	९२६	२५२	६१०

उत्पादन एवं व्यापार :

भारत में १९५२-५३ में ८९६ हजार एकड़ भूमि पर तम्बाकू बोया गया और १९५७-५८ में ९२६ हजार एकड़ में तथा १९५८-५९ में ८९६ हजार एकड़ में। इन वर्षों में इसका उत्पादन क्रमश: २४१ हजार टन ; २५२ हजार टन और २६३ हजार टन था।

देश में खपत की दृष्टि से कच्चे तम्बाकू का परिमाण इस प्रकार है :—

किस्म	परिमाण (१० लाख पौंड में) १९५४-५५
गर्म हवा से सिझाया गया वर्जिनिया	२९·९
बीड़ी	१२२·०
खाने वाला	१६६·९
सिगार और चुरुट	४३·३
हुक्का	११६·२
सूंघनी	९·७
कृषि-प्रयोजन	६६·४
नस्य	६·५
डंठल	२८·५
अन्य जाति का तम्बाकू	२·५
योग	५९४·८

भारत में तम्बाकू के तैयार माल क्रमशः सिगरेट, सिगार, बीड़ी, सूँघनी, खानी तम्बाकू और हुक्का तम्बाकू हैं। केवल सिगरेट और सिगार को छोड़ कर सभी वस्तुयें कुटीर उद्योगों के अन्तर्गत बनाई जाती हैं।

अनुमानतः द्वितीय महायुद्ध से पहले सिगरेटों का वार्षिक उत्पादन लगभग ७५० करोड़ का था। १९५१ में यह २,१४४·८ करोड़, १९५८ में २,९९३·५ करोड़ और १९५९ में ३२७४·३ करोड़ हो गया। सिगरेट के कारखाने बम्बई, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, मैसूर और बिहार में हैं।

सिगार व चुरुट के कारखाने अधिकतर मद्रास (डिंडीगल) में ही केन्द्रित हैं। बीड़ी, खानी तम्बाकू और सूंघनी का उद्योग मुख्यतः मध्य प्रदेश (काम्पटी), महाराष्ट्र, बिहार और राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में है।

भारत से तम्बाकू का निर्यात मुख्यतः लंका, चीन, अदन, हांगकांग, जापान, पाकिस्तान, ब्रिटेन और मिश्र को किया जाता है। कुछ तम्बाकू विदेशों से भी आयात किया जाता है। १९५८ में १४·७ करोड़ रुपये की अनिर्मित तम्बाकू और १·५९ करोड़ रु० की निर्मित तम्बाकू का निर्यात किया गया। १९५९ में यह निर्यात क्रमशः १२·९ और ·९८ करोड़ रुपये का हुआ। आयात का लगभग ५०% संयुक्त राज्य से आता है। मुख्यतः वर्जिनिया तम्बाकू की पत्ती उत्तम किस्म के सिगरेटों में सम्मिश्रण कार्य के लिये आयात की जाती है। १९५८ में १३९·५६ लाख और १९५९ में १३८·७७ लाख रुपये के मूल्य की कच्ची व तैयार तम्बाकू का आयात किया गया।

सिगरेट और नाटू तम्बाकू पर अनुसंधान करने के लिए आंध्र प्रदेश के गंतूर में सिगरेट तम्बाकू अनुसंधान उपकेन्द्र की स्थापना की गई है। मद्रास में वेडसंदूर में सिगार और चुरुट अनुसंधान केन्द्र स्थापित हैं। बिहार में पूसा में हुक्का व खानी तम्बाकू के लिए, पश्चिमी बंगाल के दीनहाटी में रैपर व हुक्का तम्बाकू अनुसंधान केन्द्र हैं। मैसूर में तम्बाकू के उत्पादन गुण की वृद्धि पर अनुसंधान के लिए हुणसूर में और राजमहेन्द्री में सभी किस्मों पर बुनियादी व व्यावहारिक अनुसंधान के लिए तम्बाकू अनुसंधान केन्द्र हैं।

अफीम (Opium) :

अफीम पोस्ते की डोडी से निकाला गया सूखा रस है। इसकी पैदावार के लिये अधिक उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। ठंडी या गरम जलवायु में जहाँ २५ इंच से ५० इंच तक वर्षा होती है अफीम की खेती की जाती है। यह अक्टूबर के महीने में बोई जाती है और मार्च में अफीम इकट्ठी की जाती है। अफीम की खेती सरकार की निगरानी में ही की जाती है। जबसे चीन को अफीम का भेजा जाना बन्द हुआ है तभी से भारत में भी इसकी खेती कम होने लगी है।

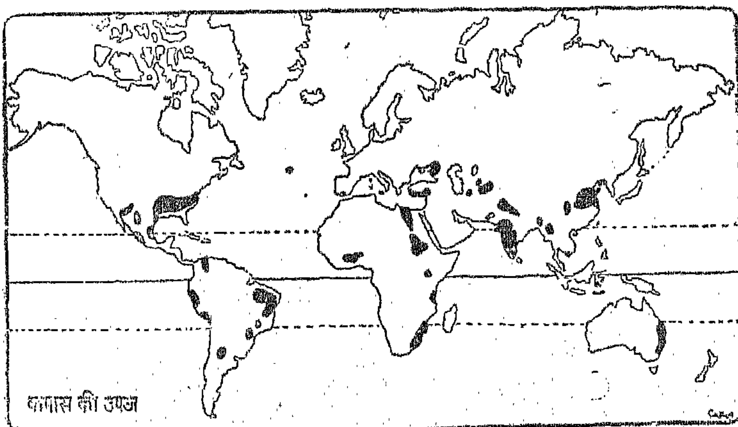
इस समय यह मध्य प्रदेश के ग्वालियर और मालवा प्रदेश ; उत्तर प्रदेश के बनारस और गाजीपुर जिलों में तथा राजस्थान के उदयपुर जिले में पैदा की जाती है। थोड़ी सी अफीम बिहार और बंगाल में भी उत्पन्न की जाती है।

१९५५-५६ में ६४ हजार एकड़ भूमि पर १०,००० मन अफीम पैदा की गई।

अध्याय २४

कृषि उत्पादन (क्रमशः)
रेशेदार पौधे
(Fibrous crops)

रेशेदार पौधों के उत्पादन में भारत का स्थान महत्वपूर्ण है। यहाँ अति प्राचीन काल से ही इन पौधों का उत्पादन किया जा रहा है। यह बड़ी ही आश्चर्य-जनक बात है कि पूर्व के तीन बड़े देशों ने तीन मुख्य रेशेदार पौधों को जन्म दिया है। चीन ने रेशम को, मिश्र ने सन को और भारत ने कपास को। भारत में उत्पादन और व्यापारिक उपयोग की दृष्टि से कपास का महत्व ईसा के ५०० वर्ष पूर्व से ही रहा है जैसा कि हेरोडोट्स (Herodotus) नामक यूनानी विद्वान के वर्णन से स्पष्ट होता है। उनका कथन है कि "भारत में कुछ जंगली पेड़ों पर श्वेत-ऊन प्राप्त होती है जो सुन्दरता में भेड़ों से प्राप्त होने वाली ऊन से भी अच्छी होती है। भारतवासी इसी के वस्त्र पहनते हैं। भारत में कपास के उत्पादन का उदाहरण ईसा से ८०० वर्ष पूर्व तक पाया जाता है। यह संभवत: भारत की ही उपज है जहाँ पूर्व ऐतिहासिक काल से ही इसकी खेती की जा रही है। यहीं से ३२७ ई० पूर्व के लगभग यूनान में इस पौधे का प्रचार हुआ। यहीं से यह पौधा चीन और विश्व के अन्य देशों को ले जाया गया। आज भी कपास के उत्पादन में भारत का स्थान मुख्य है। संयुक्त राज्य अमरीका से कपास के कुल उत्पादन का ४४%, रूस से ६%, चीन से ८%, भारत से ८%, ब्राजील तथा मिश्र प्रत्येक से ५-५ प्रतिशत, मैक्सिको और पाकिस्तान प्रत्येक से ४ प्रतिशत और अर्जेनटाइना तथा टर्की से २-२ प्रतिशत प्राप्त होता है।



चित्र १३८—मुख्य कपास उत्पादक देश

जलवायु सम्बन्धी दशायें :

कपास उष्ण और सम-शीतोष्ण कटिबन्ध का पौधा है जो ४०° उत्तरी अक्षांस से ३०° दक्षिणी अक्षांस के बीच पैदा किया जाता है। भारत में इसका उत्पादन समुद्रतल के धरातल पर लगभग ३,००० फीट की ऊँचाई तक होता है। इसकी खेती मुख्यत: समतल मैदानों और कुछ पठारी भागों तक ही सीमित है। इसके पौधे के लिए उच्च तापक्रम की—साधारणत: ७०° से ८५° फा० तक—आवश्यकता पड़ती है किन्तु यह १०५° फा० तक की गर्मी में पैदा किया जा सकता है। पाला अथवा ओला इसकी फसल को हानि पहुँचाते हैं। अत: इसे २०० दिन पाला-रहित ऋतु चाहिए। इससे कम समय में न तो पौधे का पूर्णत: विकास ही होता है और न बड़े-बड़े फूल ही आते हैं। बोंडियाँ (Bolls) खिलने के समय स्वच्छ आकाश, तेज और चमकदार धूप होनी आवश्यक है जिससे रेशे में पर्याप्त चमक आ सके और बोंडियाँ पूरी तरह खिल सकें।

कपास के लिए साधारणत: २०″ से ४०″ तक की वर्षा पर्याप्त होती है। यह मात्रा थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर से प्राप्त होनी चाहिए। ४०″ से अधिक वर्षा वाले भागों में इसकी खेती नहीं हो सकती। जहाँ वर्षा २०″ से कम होती है वहाँ सिंचाई के सहारे कपास पैदा किया जाता है। यदि वर्षा दोनों ही मानसून-काल में आती हैं तो दो फसलें प्राप्त की जा सकती हैं अन्यथा एक ही।

कपास विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में पैदा किया जा सकता है किन्तु आर्द्रता पूर्ण चिकनी और काली मिट्टी अधिक लाभप्रद मानी जाती हैं क्योंकि पौधे की जड़ पानी में न डूबे तब भी उसे अधिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से दक्षिणी भारत की काली मिट्टी इसके लिए बड़ी उपयोगी है। भारत में इस प्रकार की मिट्टी के क्षेत्र गुजरात राज्य के भड़ौंच, सूरत व दक्षिणी सौराष्ट्र में मिलते हैं।

कपास की बौंडियाँ चुनने के लिए सस्ते मजदूरों की भी आवश्यकता पड़ती है ज्यों ज्यों पौध पर फूल निकल कर बड़े होते जायें त्यों त्यों ही उनका चुन लेना आवश्यक होता है अन्यथा देरी होने पर फूल खराब होकर गिरने लगते हैं और कपास की किस्म बिगड़ जाती है।

कपास की जलवायु की दृष्टि से दक्षिणी भारत की जलवायु उत्तरी भारत की अपेक्षा अधिक अनुकूल है क्योंकि जाड़े में उत्तरी भारत का तापमान कम हो जाता है और भूमध्य सागरीय चक्रवातों के आगमन से बादल छाये रहते हैं तथा बौंडियों को प्रस्फुटित होने के लिये पर्याप्त मात्रा में ताप एवं चमकदार धूप नहीं मिल पाती। कभी कभी जाड़े में वर्षा भी हो जाती है अथवा बर्फ गिर जाता है इससे फसल को क्षति पहुँचती है।

कपास का पौधा प्राकृतिक रूप से १० से ५० फीट तक ऊँचा बढ़ जाता है किन्तु प्रति वर्ष उत्पादन होने के कारण यह अधिक से अधिक २ से ५ फुट तक ही बढ़ पाता है। भारत में यह अधिकतर कई अनाजों—रागी, ज्वार, बाजरा अथवा चावल—दालों—तूर, उड़द, मूंग, आदि और तिलहनों—मूंगफली, तिल, अथवा रेंड़ी के साथ बोया जाता है। साधारणत: इसकी बुवाई मार्च से अगस्त और चुनाई सितम्बर से अप्रेल तक की जाती है। दक्षिणी भारत में कपास की दो फसलें बोई जाती हैं। पहली फसल ग्रीष्म ऋतु के मानसून आरम्भ होने पर और दूसरी उसके अन्त

पर बोई जाती है। कपास चुनने का मौसम प्राय: नवम्बर से फरवरी तक चलता है। पहली फसल से जनवरी तक और दूसरी से अप्रैल तक कपास मिलती है। गुजरात में अहमदाबाद, सूरत, भड़ौंच तथा महाराष्ट्र में कर्नाटक और खानदेश में कपास बोई जाती है। भड़ौंच में मिट्टी गहरी होने के कारण नमी अधिक रहती है। यहाँ कपास मानसून के आरम्भ होने पर बोई जाती है और अक्टूबर से मार्च अप्रैल तक इसकी चुनाई की जाती है। कर्नाटक और खानदेश में मानसून के कारण फसल को कुछ देरी से बोया जाता है। यह अगस्त के अन्त तक चुनी जाती है। मध्य प्रदेश में वर्षा आरम्भ होते ही फसल बो दी जाती है और नवम्बर से मार्च तक चुनाई होती रहती है। मद्रास में दो फसलें बोई जाती हैं। एक दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पर निर्भर रहती है वह मई से जुलाई तक बोई जाती है और दूसरी उत्तरी पूर्वी मानसून पर जो सितम्बर से नवम्बर तक बोई जाती है। तिरूनलवैली में दोनों फसलें एक ही मौसम में बोई जाती हैं। प्रायद्वीप के बाहर कपास की खेती सिंचाई के सहारे मार्च से अगस्त तक की जाती है। पंजाब में कपास की बुवाई अप्रैल में होती है और चुनाई अक्टूबर में आरम्भ हो जाती है। जहाँ उत्तरी भारत में कपास का पौधा ६ महीने में तैयार होता है वहाँ दक्षिणी भारत में इसके उगने में ८ महीने लगते हैं।

भारत में तीन जाति की कपास पैदा की जाती है :—

प्रथम जाति की कपास (Gossypium Arboreum) भारत की ही उपज मानी जाती है। इस जाति की कपास खुरदरी और छोटे रेशेवाली होती है यद्यपि कुछ मध्यम रेशेवाली भी होती है। इसका उत्पादन देश के सभी कपास उत्पादक राज्यों में किया जाता है।

दूसरे जाति की कपास (Gossypium Herbaceum) भारत में मध्य पूर्व के देशों से लाकर लगाई गई है। यह कपास प्रथम जाति की अपेक्षा अधिक अच्छी और लम्बी होती है। इसके उत्पादक क्षेत्र गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास, आंध्र प्रदेश और मैसूर हैं।

तीसरे जाति की कपास (Gossypium Hirsutum) भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में बोई जाने लगी। इसका धागा मध्यम से लम्बा तक और उत्तम श्रेणी का होता है। इस प्रकार की कपास का उत्पादन पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान के बीकानेर डिवीजन, मध्य प्रदेश के कुछ भागों में, आंध्र, मैसूर और महाराष्ट्र तथा मद्रास में होता है।

व्यापारिक दृष्टिकोण से भारत में मुख्यत: १४ किस्मों की कपास पैदा की जाती है। इनकी अच्छाई या बुराई, उनकी मजबूती, धागे, सूक्ष्मता, रंग, चमक और ओटाई की प्रतिशतता पर निर्भर करती है। ये किस्में इस प्रकार हैं :—

(१) **बंगाल की कपास** (Bengal Cotton)—छोटे रेशे वाली होती है। इसके मुख्य क्षेत्र राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब और दिल्ली राज्य हैं। यह कपास भारत के प्रायः सभी भागों में होती है। इसका धागा १७/३२″ होता है।

(२) **अमेरिकन कपास** (American Cotton)—भारत में केवल महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास में ही पैदा की जाती है। यह लम्बे रेशे वाली (१″ से अधिक) उम्दा किस्म की कपास होती है।

(३) **धौलेरा** (Dholleras)—कपास मुख्यत: उत्तरी गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ

और पश्चिमी भारत में उत्पन्न की जाती है। इसके रेशे की लम्बाई ६/१६" से ३१/३२" तक होती है।

(४) उमरा (Oamras)—कपास विशेषत: मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के खानदेश, विदर्भ और औरंगाबाद डिवीजनों में उत्पन्न होती है। इसका धागा भी बहुत छोटा होता है।

(५) भड़ौंच कपास (Broach)—की खेती गुजरात राज्य के भड़ौंच, खैरा, पंचमहल, साबरकांटा और बड़ौदा में की जाती है। इसका रेशा भी छोटा होता है।

(६) सूरती कपास—भड़ौंच की ही एक उपजाति है। यह मुख्यत: सूरत और भड़ौंच जिलों में बोई जाती है।

(७) कम्पटा (Kumpta)—कपास दक्षिण में मैसूर, आंध्र, उत्तरी-पूर्वी मद्रास तथा मध्य महाराष्ट्र राज्य में उत्पन्न होने वाली छोटे रेशे वाली कपास है जिसका रेशा ११/१६" से २७/३२" तक होता है।

(८) जयवन्त (Jaywant)—नाम के नए बीज द्वारा इसमें उन्नति की गई है।

(९) कम्बोडिया (Kambodias)—कपास दक्षिणी मद्रास में अधिक उत्पन्न की जाती है। यह तीन प्रकार की होती है—लम्बे रेशे वाली, मध्यम रेशे वाली और छोटे रेशे वाली। यह उत्तम किस्म की होती है। इसकी खेती कोयम्बटूर, तिरूनलवैली, मदुराई और रामनाथापुरम जिले में की जाती है।

(१०) कोमिल्ला (comillas)—छोटे रेशे वाली कपास होती है जो आसाम तथा त्रिपुरा के पहाड़ी भागों में पैदा की जाती है।

(११) दक्षिणी कपास (Southerns)—मैसूर और आंध्र प्रदेश में पैदा की जाती है।

(१२) तिरूनलवैली (Tinnevellis)—कपास मद्रास राज्य के कोयम्बटूर, मदुराई, रामनाथापुरम और तिरूनलवैली जिलों में पैदा की जाती है।

(१३) मद्रास यूगैण्डा (Madras Yuganda)—यह कपास भी मुख्यत: मद्रास राज्य में ही पैदा की जाती है। मदुराई, सलेम, रामनाथापुरम, कोयम्बटूर, तिरूनलवैली, चिंगलपुट और दक्षिणी अर्काट जिले इसके मुख्य उत्पादक जिले हैं।

(१४) सलेम (Salems)—कपास मद्रास के तिरुचिरापल्ली और कोयम्बटूर जिलों में पैदा की जाती है।

नीचे की तालिका में विभिन्न किस्मों की कपास का उत्पादन क्षेत्र और उत्पादन बताया गया है :—

कपास की किस्म	क्षेत्रफल (००० एकड़ में) १९५९–६०	उपज (००० गाँठों में) १९५७–५८
बंगाल	१,०५२	४६१
अमरीकन	३,४१४	१,३२७
जरीला (विनार और १९७/३ सहित)	३,६१४	८१०

कपास किस्म	क्षेत्रफल (००० एकड़ में) १९५९–६०	उपज (००० गाँठों में) १९५७–५८
एच० ४२० (वीरम महिन)	३८७	१५०
ऊमरा	१,१६५	२६४
हैदराबाद-गारोनी	१,९५०	२२४
मालवी	१,०५७	२३६
भड़ौंच-विजय	१,४७५	३४९
सूरती-सुयोग	७२९	१६२
धोलेरा	१,६३८	३७६
दक्षिणी	१,६३१	३७८
कोमिला	५३	१६
योग	१७,१६५	४,७५३

पिछले कई वर्षों से भारत में दो किस्मों को मिलाकर नई और अच्छी किस्म तैयार करने की ओर प्रयास किये गये हैं। इसमें काफी सीमा तक सफलता मिली है। भारतीय केन्द्रीय कपास समिति इस ओर काफी प्रयत्नशील रही है और इसने जिन नई किस्मों को निकाला है उनमें मुख्य ये हैं :—

किस्म	धागे की लम्बाई (इंचों में)	ओटाई का प्रतिशत	क्षेत्र जिनमें उत्पादन सफलता पूर्वक किया जा सकता है।
कल्याण	२६/३२ से २७/३२	४० से ४३	गुजरात के महसाना और अहमदाबाद जिले
विजय	२६/३२ से २८/३२	३७ से ४०	नर्मदा के उत्तर में भड़ौंच, खैरा, साबरकाँटा और पंचमहल जिले।
विजलपा	२९/३२	३६·५	महाराष्ट्र के पश्चिमी खानदेश जिले में नवापुर तालक तथा सूरत क्षेत्र।
विरनार	२८/३२	३८ से ४१	महाराष्ट्र के खानदेश और बुल्ढ़ाना जिला।
जरीला	२६/३२	३५ से ३६	मध्यप्रदेश तथा विदर्भ और औरङ्गाबाद जिला।
जयधर	२८/३२ से २९/३२	३३ से ३४	मैसूर के काम्पटा-धारवाड़ क्षेत्र, रायचूर और चितलद्रुग जिले।
लक्ष्मी	२९/३२ से ३०/३२	३४ से ३५	मैसूर के धारवाड़, बल्लारी, चितलद्रुग, रायचूर और शिमोगा जिले एवं आंध्र प्रदेश।
प्रताप	२६/३२	३२ से ३३	गुजरात के गोहिलवाड़, अहमदाबाद और अमरेली जिला।
Co-2	३०/३२	३४ से ३५	मद्रास के कोयबम्टूर, सलेम, मदुराई, तिरुचिरापल्ली, रामनाथापुरम और तिरूनलवैली जिले।

किस्म	धागे की लम्बाई (इंचों में)	ओटाई का प्रतिशत	क्षेत्र जिनमें उत्पादन सफलता पूर्वक किया जा सकता है।
पश्चिमी १.	२४/३२ से २६/३२	३०	आंध्र के कडुप्पा, अनन्तपुर और कर्नूल जिले तथा मद्रास का बलारी जिला।
C-I और C-2	२२/३२ से २६/३२	२८ से ३०	आंध्र के गंतूर एवं निकटवर्ती जिलों में
३१६-F.	२८/३२ से ३०/३२	३२ से ३३	पंजाब के हिसार, रोहतक, कर्नाल, गुड़गाँव, पटियाला, संगरूर और भटिंडा जिले, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान के गंगा नहर जिले और मद्रास के तंजौर डेल्टा में।
३२०-F.	२८/३२	३३ से ३४	पंजाब के फिरोजपुर, जलंधर, अमृतसर, लुधियाना जिले तथा राजस्थान के गंगा नगर जिले में।
H ४२०	२८/२३	३२ से ३३	मध्यप्रदेश के निमाड़ और महाराष्ट्र के विदर्भ डिवीजन में।
गारोनी-६	२८/३२ से २०/३२	३१ से ३२	महाराष्ट्र के नांदेड एवं प्रभानी जिले, आँध्र के आदिलाबाद और मैसूर का बीदर जिला।
३५/१	१२/३२ से २६/३२	३४ से ३५	पश्चिमी और मध्य उत्तर प्रदेश।
एम. ए. बी.	१$\frac{५}{१६}$	,,	मैसूर के हसन, मैसूर, शिमोगा, चितलद्रुग, बलारी और चिकमगलूर जिलों में
मालवी ६	२२/३२ से २४/३२	,,	मध्यप्रदेश के मालवा पठार पर
इंदौर-१	२४/३२ से २६/३२	३१ से ३२	राजस्थान के उदयपुर डिवीजन में
C-५२०	३/४	३५ से ३६	राजस्थान के अजमेर डिवीजन में

उत्पादक क्षेत्र :

कपास के उत्पादन की दृष्टि से दक्षिण की काली मिट्टी का प्रदेश बड़ा महत्वपूर्ण है। गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश मिल कर देश के उत्पादन का लगभग ५०% कपास उत्पन्न करते हैं। अन्य मुख्य उत्पादक मद्रास, आंध्र, पंजाब, राजस्थान आदि हैं।

कपास के अन्तर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़) (१९५७–५८)	उत्पादन (००० गांठ)	उपज प्रति एकड़ (पौंड में)
आंध्र प्रदेश	९३३	१२७	५३
आसाम	३४	८	९२
बिहार	५	१	७८
गुजरात+महाराष्ट्र	१०,९८८	२१३	७६

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़) (१९५७–५८)	उत्पादन (००० गांठ)	उपज प्रति एकड़ (पौंड में)
केरल	२१	८	१४९
मध्य प्रदेश	१,९८२	४६४	९२
मद्रास	१,१६५	३९२	१३२
मैसूर	२,६८४	५१२	७५
उड़ीसा	२३	२	३४
पंजाब	१,५२२	८२५	२१२
राजस्थान	५७८	२१५	१४६
उत्तर प्रदेश	१९६	६१	१२२
पश्चिमी बंगाल	—	—	—
दिल्ली	१	—	—
हिमाचल प्रदेश	१	—	—
त्रिपुरा	१९	८	१६५
भारत का योग	२०,१५८	४,७५३	९२

भारत में कपास का प्रति एकड़ उत्पादन ९० से १०० पौंड तक है। १९५७–५८ में यह ९२ पौंड था। पाकिस्तान में प्रति एकड़ पीछे १९६ पौंड; चीन में २३४ पौंड; टर्की में २१४ पौंड; मिश्र में ४६४ पौंड; संयुक्त राज्य अमरीका में ६३९ पौंड; मैक्सिको में ३७५ पौंड और रूस में २८५ पौंड है। इन देशों की तुलना में भारत में प्रति एकड़ उत्पादन कम का मुख्य कारण उत्तम बीज का अभाव, फसलों का हेर-फेर न करना, सिंचाई की अपर्याप्त सुविधायें और कपास के क्षेत्र का काली मिट्टी के प्रदेश में केन्द्रित होना आदि है।

गुजरात में अधिक वर्षा के कारण डामन से दक्षिण की ओर समुद्र तट पर कपास नहीं होती। यहाँ केवल उत्तरी भाग में ही बड़ौदा, खानदेश, नासिक, अहमदनगर और दक्षिण-पश्चिम में महाराष्ट्र में बीजापुर, धारवाड़ और सांगली जिलों में कपास पैदा की जाती है।

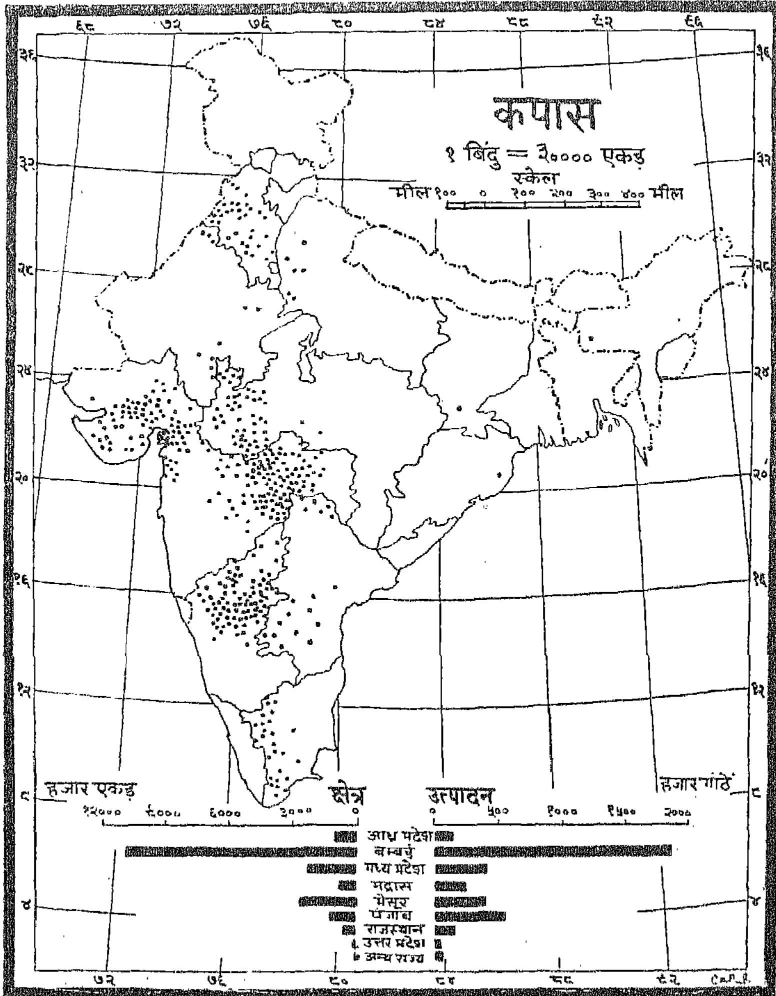
मध्य प्रदेश में आंध्र और महाराष्ट्र की सीमा के निकट बुलढाना, अकोला अमरावती, यवतमाल, वर्धा, इंदौर, ग्वालियर मुख्य हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पूर्व की ओर रायपुर के जिले में भी कपास होती है।

मद्रास, आंध्र और मैसूर राज्यों की सीमाओं के बीच के भाग में विशेषकर तिरूनलवैली, रामनाथापुरम, मदुराई और कोयम्बटूर जिलों में कपास पैदा की जाती है।

थोड़ी कपास उत्तर भारत में पंजाब, उत्तर प्रदेश, द० पू० राजस्थान में भी होती है।

भारत में दो तरह की कपास के क्षेत्र हैं। (१) वे जो लम्बे रेशे वाली कपास (१ इंच) पैदा करते हैं। ऐसे भाग गुजरात, सौराष्ट्र के कुछ भाग, दक्षिणी महाराष्ट्र और मद्रास हैं। (२) अधिकतर छोटे रेशे वाली देशी कपास (⅞ इंच से कम पैदा

की जाती है। यह उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र में, खानदेश, व राजस्थान आदि राज्यों में होती है। मध्यम श्रेणी की कपास (जिसमें रेशे की लम्बाई $\frac{7}{8}$ इंच से $\frac{11}{16}$ इंच तक होती है) भी भारत के कई भागों में उगाई जाती है।



चित्र १३९—प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र

१९५७-५८ में कपास के अंतर्गत २०१ लाख एकड़ भूमि पर कपास पैदा की गई। इसमें से ८० लाख एकड़ भूमि पर लम्बे रेशे वाली (७/८" से १" तक); ८८ लाख एकड़ भूमि पर मध्यम रेशे वाली (११/१६" से ७/८" तक) और ३३ लाख एकड़ भूमि पर छोटे रेशे वाली (११/१६" से कम) कपास पैदा की गई। अर्थात्

कपास के अंतर्गत भूमि का ४० प्रतिशत लम्बे रेशे; ४५ प्रतिशत मध्यम रेशे और १५ प्रतिशत छोटे रेशे वाली कपास के अंतर्गत था ।

नीचे की तालिका में विभिन्न प्रकार की कपास के अंतर्गत क्षेत्रफल और उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	छोटे रेशे वाली		मध्यम रेशे वाली		लम्बे रेशे वाली		कुल योग	
	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पा० (००० गांठ)	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पा० (००० गांठ)	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पा० (००० गांठ)	क्षेत्र (००० एकड़)	उत्पा० (००० गांठ)
१९४९-५०		७४६		१,३३२		५५०		२,६२८
१९५१-५२		९९२		१,२२३		९१९		३,१३४
१९५३-५४		९४२		१.६२३		१,३६५		३,९३५
१९५४-५५		८२५		१,८८६		१,५८७		४,२९८
१९५६-५७	३,३५८	७६७	८,४८९	१,९५०	८,०४६	२,०१८	१०,८६३	४,७३५
१९५७-५८	३,३१७	८४५	८,८३२	१,९२६	८,००९	१,९८२	२०,१५८	४,७५३

भारत के विभाजन के पूर्व कपास पैदा करने में भारत का स्थान दूसरा था और यहाँ से काफी मात्रा में कपास का निर्यात किया जाता था किन्तु विभाजन के पश्चात् से भारत कपास का मुख्य आयातक बन गया है क्योंकि प्रमुख कपास उत्पादक क्षेत्र पाकिस्तान को चले गये । फिर भी भारत की छोटे रेशेवाली खुरदरी कपास की मांग संयुक्त राज्य अमरीका और जापान में होती है । जहाँ ऊन के साथ मिला कर मोटे कम्बल और मोटे वस्त्र बनाये जाते हैं । थोड़ी मात्रा में रुई का निर्यात इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, हालैंड, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया को भी किया जाता है । लम्बे रेशे वाली रुई का आयात भारत में पाकिस्तान, मिश्र, संयुक्त राज्य अमरीका आदि देशों से किया जाता है । द्वितीय योजना के अंतर्गत कपास के उत्पादन में ५६ प्रतिशत वृद्धि होने का आयोजन है अर्थात् गांठों का उत्पादन ४२ लाख से बढ़ कर ६५ लाख होगा । तृतीय योजना में कपास का उत्पादन ५४ लाख गांठों से बढ़ कर ७२ लाख गांठें होगा अर्थात् उत्पादन में ३३% की वृद्धि होगी ।

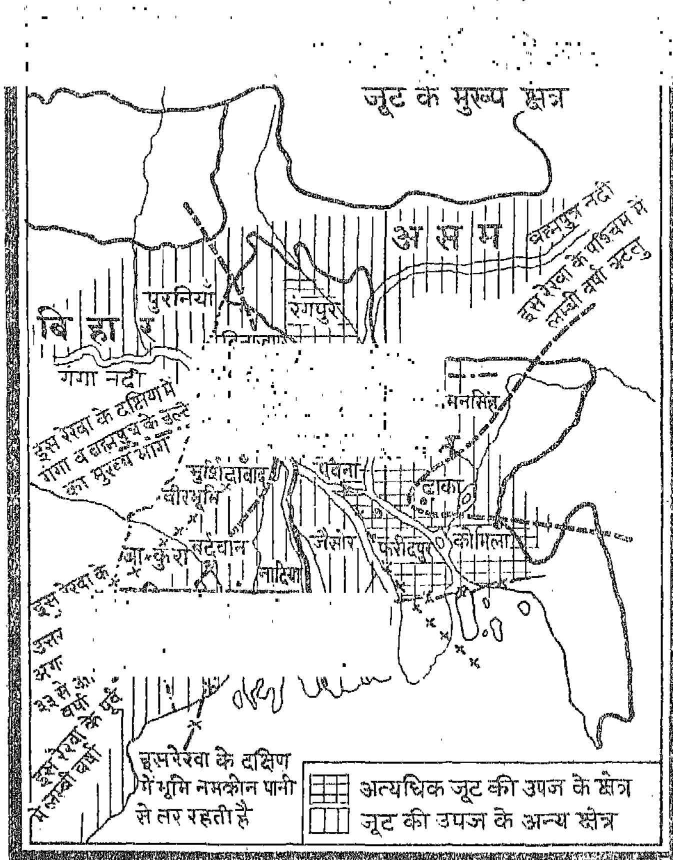
नीचे की तालिका में कपास का निर्यात और आयात व्यापार बताया गया है :—

कपास का निर्यात और आयात (लाख रुपयों में)

वर्ष	निर्यात	आयात
१९५२	१,५१२	११,५४४
१९५३	१,१००	४,९८५
१९५४	८५२	५,७५३
१९५५	२,५१७	५,३५०
१९५६	१,७५५	५,३५९
१९५७	१,८६६	४,८६२
१९५८	२,१२०	३,०६६
१९५९	१,१२१	—

जूट (Jute) :

विश्व में जूट उत्पन्न करने वाले देशों में अविभाजित भारत का स्थान सबसे आगे था किन्तु विभाजन के फलस्वरूप इस परिस्थिति में अन्तर पड़ गया। जूट पैदा करने वाले पावना, बोगरा, माइमेनसिंह, ढाका और फरीदपुर जिले पाकिस्तान को चले गये। अब विश्व के उत्पादन का ३८ प्रतिशत भारत और ५२ प्रतिशत पाकिस्तान से प्राप्त होता है।



चित्र १४०—जूट उत्पादक क्षेत्र

जलवायु संबंधी दशायें :

जूट की खेती के लिए अधिक जल और तापक्रम की आवश्यकता होती है। साधारणतः तापक्रम ८०° फा० तक का उपयुक्त रहता है। अंकुर निकलने के दो या तीन महीने बाद पौधे को अधिक जल की आवश्यकता पड़ती है अतः इसकी खेती ४०" से ८०" या उससे भी अधिक वर्षा वाले भागों में होती है। जूट की खेती से

भूमि बहुत जल्दी ही कमजोर हो जाती है इस कारण जूट की खेती उन्हीं स्थानों की जाती है जहाँ हर साल नदियाँ उपजाऊ मिट्टी लाकर बिछा देती हैं। बंगाल डेल्टा में प्रतिवर्ष करोड़ों टन मिट्टी बाढ़ के समय भूमि पर फैल जाती है इसी में अधि जूट पैदा किया जाता है। सर्वोत्कृष्ट जूट दुमट मिट्टियों में होता है। कांप मिट्टी भी यह पैदा किया जाता है किन्तु उसमें एकरूपता नहीं रहती।

जूट के पौधे से रेशा प्राप्त करने के लिये उसको कई सप्ताह तक पानी भिगो कर रखना पड़ता है अत: उत्तम और मीठे पानी की भी आवश्यकता होती है जूट के डंठल को खेत से काट कर तालाब और झील के स्थिर जल में गाड़ दिा जाता है। जब वह २०-२५ दिन तक सड़ चुकता है तो उसे पीट पीट कर धोा जाता है और फिर डंठल को सुखा कर उससे रेशे को अलग कर लेते हैं।

जूट के लिये सस्ते मजदूरों की भी आवश्यकता होती है क्योंकि तैयार पौध को काटने तथा बंडल बनाने के लिये अधिक मजदूर चाहिए।

जूट की पैदावार पश्चिमी बंगाल, आसाम आदि राज्यों तक ही सीमित ह क्योंकि यहाँ गंगा द्वारा लाई हुई उपजाऊ मिट्टी मिलती है और बाढ़ के साथ बदल रहने से इसकी उपजाऊ शक्ति का ह्रास नहीं होता। बिना खाद दिये इन राज्यों जूट की खेती की जाती है।

जूट का पौधा साधारणत: १० से १२ फीट ऊँचा होता है। इसकी खेती उ उभरी हुई भूमि पर होती है जो नदियों के पुराने या नये कगारों के कारण बन जात है। गर्तों में धान और जूट को बारी बारी से बोते हैं। जूट मार्च से मई तक बोय जाता है और जुलाई से सितम्बर तक काट लिया जाता है। पश्चिमी बंगाल में भूि के ऊँचे-नीचे होने पर ही जूट के बोने का समय निर्भर रहता है। निम्न भूमियों बाढ़ें आती हैं अत: वहाँ उच्च भूमियों की अपेक्षा जल्दी ही बोआई कर दी जाती है निम्न भूमियों पर फरवरी से मार्च तक तथा उच्च भूमियों पर मार्च से जून तक जू की बोआई की जाती है। जो फसल सबसे पहले बोई जाती है उसी को पहले काट जाता है। समस्त फसलों के लिए कटाई का मौसम अगस्त से सितम्बर के अन्त त रहता है।

भारत में दो प्रकार की जूट पैदा की जाती है। चीनी जूट (Chinese Jute नदियों के उभरे हुए किनारों (chars) या नदी के द्वीपों में बोया जाता है। देशी जू (Indian Jute) मुख्य रूप से नीची भूमियों (Bils) में बोया जाता है। भारत अनेक भागों में ये दोनों प्रकार के जूट साथ-साथ उगते हैं। प्रथम प्रकार का जू सफेदी लिए और चमकीला तथा अच्छा होता है। जूट का प्रति एकड़ उत्पादन ९०० से १,००० पौंड तक होता है।

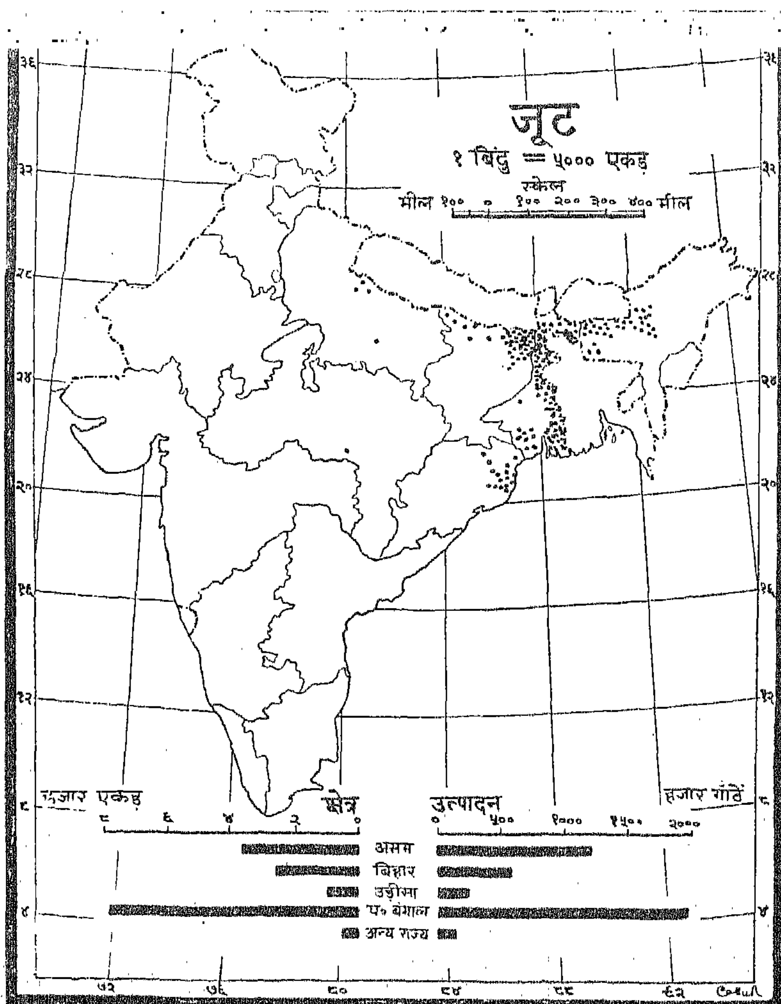
उत्पादक क्षेत्र :

जूट के क्षेत्र मुख्यत: पश्चिमी बंगाल, आसाम और बिहार में है। ये तीन राज्य मिल कर कुल जूट क्षेत्रफल के ९० प्रतिशत पर जूट बोते हैं। जूट की खेत दक्षिण की ओर गंगा के मुहाने के पास कम होती है क्योंकि यहाँ भूमि इतनी नीची कि जूट के लिए अनुपयुक्त है। पश्चिम में दक्षिण के पठार की ओर भी, जहाँ पथ रीली भूमि अधिक है, जूट की खेती कम होती है।

नीचे की तालिका में जूट का क्षेत्र और उत्पादन बताया गया है :—

भारत में जूट के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (०००एकड़)		उत्पादन (००० गांठें)	
	१९५८–५९	१९५९–६०	१९५८–५९	१९५९–६०
आसाम	३२३	३३४	९८९	१,११४
बिहार	४५५	४२२	१,२४३	९३०



चित्र १४१—जूट उत्पादन क्षेत्र

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़)		उत्पादन (००० गांठें)	
	१९५८–५९	१९५९–६०	१९५८–५९	१९५९–६०
उड़ीसा	९९	७५	१७७	१८८
उत्तर प्रदेश	३६	३२	९५	८९
प० बंगाल	८७६	८२४	२,५९६	२,१७०
त्रिपुरा	३२	२०	५८	५७
भारत का योग	१,८११	१,७०७	५,१५८	४,५४८

बिहार की ऊँची उपज का मूल कारण कोसी तथा गंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा संचित नवीन उर्वर भूमि और जलवायु सम्बन्धी सुविधा है। इस राज्य का सबसे बड़ा जूट उत्पादक जिला पुर्णिया है जो बिहार का ६०% जूट उत्पन्न करता है। कूच बिहार में विशाल उर्वर मैदान तथा असम में ब्रह्मपुत्र घाटी जूट के उत्तम उत्पादक क्षेत्र हैं। बंगाल में हुगली, बर्दवान, दिनाजपुर, बीरभूमि तथा मालदा आदि जिलों की डेल्टीय भूमि में जूट की कृषि केन्द्रित है। उड़ीसा की ९० प्रतिशत से भी अधिक जूट उत्पन्न करने वाली भूमि महानदी के डेल्टे (कटक जिले) में स्थित है। गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी के डेल्टों में भी जूट की कृषि की जाती है किन्तु प्रति एकड़ औसत उत्पत्ति कम है। उत्तर प्रदेश के तराई वाले क्षेत्र में कृषि के विस्तार की संभावनायें हैं।

भारतीय जूट अनुसंधानशाला (चिनसुरा) ने विभिन्न राज्यों में निम्न प्रकार से जूट की कृषि की व्यवस्था रक्खी है :—

पश्चिमी बंगाल	१००,०००	एकड़
बिहार	५०,०००	,,
उड़ीसा	५०,०००	,,
असम	५०,०००	,,
केरल	५०,०००	,,
मद्रास	२०,०००	,,
कूच बिहार	५,०००	,,
त्रिपुरा	५,०००	,,
कुल	३३०,०००	,,

इस योजना के अनुसार भारत के जूट का क्षेत्र ३·३ लाख एकड़ हो जायेगा। इधर उत्तर प्रदेश की शारदा, सरयू और चौका नदी की तराई में १५,००० एकड़ भूमि पर जूट का उत्पादन प्रारम्भ किया जा रहा है जहाँ से उत्तर प्रदेश की लगभग तीनों मिलों को कच्चा माल प्राप्त होगा। कृषि अनुसंधानशाला ने जूट के पौधे को क्यारियों में लगाकर नवीन पद्धति से जूट की खेती करने की प्रणाली की खोज की है। क्यारियाँ लगभग एक फीट की दूरी पर रहेंगी और पौधे ३" या ४" के अन्तर पर पंक्ति में लगाये जायेंगे। इससे निराई और गोड़ाई थोड़े श्रम में हो जायेगी। इस प्रकार की कृषि से प्रति एकड़ उत्पादन निःसंदेह बढ़ेगा।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत जूट का उत्पादन ५८% से बढ़ने की सम्भावना है अर्थात् यह ४० लाख गाँठों से बढ़कर ५५ लाख गाँठों तक हो जायेगा। तीसरी योजना में उत्पादन में १८ प्रतिशत की वृद्धि होने की आशा है अर्थात् यह ५५ लाख गांठों से बढ़ कर ६५ लाख गांठें हो जायेगा।

जूट का उत्पादन क्षेत्र एवं उत्पादन

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० गाँठों में)
१९४८–४९	८,००	२०,००
१९५२–५३	१८,१३	४५,९२
१९५३–५४	१२,२८	३९,०१
१९५४–५५	१२,४३	२९,२९
१९५५–५६	१७,३९	४१,९८
१९५६–५७	१९,०८	४२,८८
१९५७–५८	१७,५४	४०,८८
१९५८–५९	१८,११	५१,५८

विभाजन के बाद से भारत में कच्चे जूट का अभाव हो गया है। यह अभाव पाकिस्तान से जूट का आयात करके पूरा किया जाता है। नीचे जूट के आयात सम्बन्धी आंकड़े दिये गये हैं :—

जूट का आयात (लाख रुपयों में)

वर्ष	आयात का मूल्य
१९५२	२,३५०
१९५३	१,४१२
१९५४	१,२३४
१९५५	१,७४२
१९५६	१,३८२
१९५७	७२०
१९५८	३३९

(३) मैस्टा (Mesta)

भारत में जूट की कमी को पूरा करने के उद्देश्य से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जूट के समान ही रेशा पैदा करने वाले पौधे मैस्टा का उत्पादन बढ़ाया गया है। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में इसे कई नामों से पुकारा जाता है, जैसे महाराष्ट्र और मेवाड़ में **अम्बाड़ी** (Ambadi), आँध्र में **बिमली** (Bimli), बिहार में **चन्ना** (Channa), बम्बई में **बम्बई पटुआ** (Bombay Hemp) आदि। भारत के बाहर इसे कैनाफ, रोजेला आदि कहते हैं।

मैस्टा का उत्पादन ऐसी भूमि पर किया जाता है जो पूर्णत: जूट की पैदावार के उपयुक्त नहीं है। यह सूखे भागों में भी पैदा किया जा सकता है। इसका पौधा ८ से १२ फीट तक ऊँचा होता है और बोने के १०० से १८० दिन बाद काटने लायक हो जाता है। आँध्र, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में यह अकेला ही बोया जाता है किंतु अन्य राज्यों में इसे रागी, मोटे अनाज, दालें, चावल और कपास के साथ भी बोया जाता है। इसके लिए जूट जैसी जलवायु चाहिए। पौधे से रेशा प्राप्त करने के लिये इसे भी कई दिनों तक जल में सड़ाया जाता है।

मैस्टा का उत्पादन आँध्र और बंगाल में अधिक होता है। ये दोनों राज्य मिलकर कुल उत्पादन का लगभग ७६% पैदा करते हैं। अन्य उत्पादक राज्य आसाम, बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा और पंजाब हैं।

मैस्टा का उत्पादन क्षेत्र और उत्पादन

राज्य	क्षेत्रफल (००० एकड़) १९५५–५६	उत्पादन (००० गाँठों में) १९५५–५६
आँध्र	१२३	२७०
आसाम	५	६
बिहार	२४	३५
महाराष्ट्र	११४	१०६
मध्य प्रदेश	२५	२१
मद्रास	१	२
मैसूर	६३	५४
उड़ीसा	२३	५४
बंगाल	१६३	६१२
पंजाब	१	२
भारत का योग	५७२	१,१५६

मैस्टा का प्रति एकड़ उत्पादन ३५० से १,२५० पौंड तक होता है। पिछले कुछ वर्षों का उत्पादन इस प्रकार रहा है :—

वर्ष	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उत्पादन (००० गांठें)
१९५२–५३	४८४	६८२
१९५३–५४	४६३	६५०
१९५४–५५	४३८	६०१
१९५५–५६	५७१	१,१५३
१९५६–५७	७३३	१,४७८
१९५७–५८	७२६	१,२११
१९५८–५९	८५१	१,५८१

(४) सन या सनई (Flex)

सनई एक रेशेदार पौधा होता है जिसके रेशे सफेद और चमकीले होते हैं। सन प्राप्त करने के लिये इसके पौधे को भी सड़ा कर धोया जाता है। इसके लिए उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नहीं होती। इसकी विशेषता यह है कि जहाँ जूट पैदा नहीं होता वहाँ यह उत्पन्न हो सकता है। साधारणतः इसके लिये २०″ तक की वर्षा और ६०° से ६५° फा० तक का तापक्रम चाहिए।

भारत में उत्पन्न होने वाली सनई उत्तम प्रकार की नहीं होती क्योंकि भारतीय सनई का बीज अच्छा नहीं होता। उत्तम प्रकार का सन एवं बीज एक ही पौधे से नहीं प्राप्त होता है। भारत में सनई के बीजों की तरफ अधिक ध्यान दिया जाता है रेशे की तरफ कम। क्योंकि यहाँ की जलवायु गरम है। गरम जलवायु में यदि इसे रेशे के लिए पैदा किया जाय तो इसका धागा निकम्मा रहता है।

भारत में प्रतिवर्ष १ लाख २० हजार टन सनई पैदा होती है। हमारे यहाँ

इसके रेशे से मोटे रस्से, रस्सियाँ, डोरी, मछली पकड़ने के जाल, चटाई और बोरियाँ आदि बनाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त भारत इसे इंगलैंड, अमेरिका, फ्रांस और इटली आदि देशों को भी भेजता है। सनई का रेशा तीन तरह का होता है—सफेद, गंजाम या हरा और देवगढी। सबसे अधिक उपज सफेद रेशे वाली सनई की होती है। कुल उपज का लगभग २६ प्रतिशत भाग सफेद रेशे वाली सनई का होता है। सफेद सनई व्यापार की दृष्टि से चार श्रेणियों की होती है—बनारस, छपरा, बंगाल और गोपालपुर। मुख्यत: यह विहार, प० बंगाल, उत्तर प्रदेश के पूर्वी और मध्य जिलों तथा उड़ीसा के कुछ भागों में उगाई जाती है। इससे लगभग ५० प्रतिशत बनारसी किस्म की होती है, गंजाम या हरी किस्म की सनई मुख्यत: मध्यप्रदेश, पंजाब, उत्तरप्रदेश के पीलीभीत और मुरादाबाद जिलों तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों तथा उड़ीसा और मैसूर राज्यों में उगाई जाती है। इस किस्म की उपज कुल उपज का ४३ प्रतिशत देवगढी किस्म महाराष्ट्र राज्य के केवल रत्नागिरी जिले में उगाई जाती है। इसकी उपज कुल उपज की केवल एक प्रतिशत होती है।

आढ़त बाजारों से प्राप्त सनई के रेशे की विभिन्न केन्द्रों में साफ करके वर्गीकरण किया जाता है और बाजार में भेजने के लिये गाँठों में पैक किया जाता है। उत्तर प्रदेश में वाराणसी के पास शिवपुर, आंध्र प्रदेश में बिजयानगरम् और मुनीपटन तथा कलकत्ता और बम्बई इस काम के केन्द्र हैं। शिवपुर केन्द्र सबसे बड़ा केन्द्र है जहाँ बनारस और छपरा किस्म की सनई बाजार के लिये तैयार की जाती है। थोड़ी बहुत मात्रा में गंजाम किस्म की सनई भी यहाँ आती है। भारत सनई का सबसे अधिक निर्यात इंगलैंड को करता है। इसके अतिरिक्त अमेरिका, फ्रांस और इटली भारत से सनई खरीदते हैं।

(५) पटुआ या हैम्प (Hemp)

भारत में इसकी तीन किस्में होती हैं—सीसल हेम्प, सन हेम्प और भारतीय हेम्प। इनमें सबसे अच्छी सन हेम्प होती है। यह महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा आंध्र में गोदावरी और कृष्णा जिले तथा मद्रास में तिरूनलवैली जिलों में होता है। इसका अधिकतर भाग संयुक्त राज्य, बेल्जियम, इटली फ्राँस और जर्मनी को निर्यात कर दिया जाता है।

यह भारत में अधिकतर भाँग, गाँजा और चरस के रूप में काम में लाई जाती है। रेशों के लिये इसका उपयोग भारत में कम होता है रेशों के लिये इसकी पैदावार दक्षिण-पश्चिमी हिमालय के भागों में (नैपाल, शिमला, काश्मीर, कुमायूँ और काँगड़ा) होती है। सिसल हैम्प का अभी तक व्यवसायिक उपयोग कम हुआ है। यह सिलहट (आसाम), तिरहुत (विहार), महाराष्ट्र और दक्षिणी भारत में उगाई जाती है।

(६) मूंज

मूंज सरपत को कूट कर रेशे निकालने से बनता है। मूँज रस्सी और अन्य घरेलू वस्तुओं के बनाने में काम आता है। सरपत से किसान अपनी झोंपड़ी के लिए छाजन बनाता है। सरपत नदी-नालों की नीची भूमि में होता है। इसका बीज नहीं बोया जाता। कृषक अपने खेत की मेंड़ पर एक बार इसकी जड़ को लगा देता है; पानी बरसने पर यह स्वत: उगती रहती है।

अध्याय २५

फलोत्पादन

(Horticulture)

भारत में अनेक प्रकार की भूमि तथा जलवायु मिलने के कारण यहाँ न केवल उष्ण कटिबंधीय फल ही पैदा किये जाते हैं वरन् शीतोष्ण कटिबंधीय फलों का उत्पादन भी काफी मात्रा में किया जाता है। फलों के अंतर्गत लगभग ३० लाख एकड़ भूमि और सब्जियों के अंतर्गत १० लाख एकड़ भूमि काम में लाई जाती है। इससे ६० लाख टन सब्जियों का और ४० लाख टन फलों की प्राप्ति होती है। अर्थात् प्रति व्यक्ति पीछे फलों और सब्जियों का दैनिक उपयोग क्रमश: १·५ औंस और १·३ औंस होता है जबकि स्वास्थ्य की दृष्टि से इनका उपभोग क्रमश: ३ औंस और १० औंस का होना अनिवार्य है। स्पष्ट है कि इनका उत्पादन देश की मांग के अनुरूप नहीं है।

फलों के उत्पादन के लिए उपजाऊ भूमि और गर्म-तर जलवायु की आवश्यकता पड़ती है। भारत के कुछ भाग फलों के उत्पादन के लिये विशेषरूप से उपयुक्त हैं। पंजाब की कुलू और कांगड़ा की घाटियाँ, काश्मीर और श्रीनगर की घाटी, आसाम के पहाड़ी भाग, मद्रास की नीलगिरि और अनामलाय की पहाड़ियाँ, बंबई के कोंकन तट फलों के मुख्य उत्पादक प्रदेश हैं। मोटे तौर पर उत्तरी भारत में शीतोष्ण-कटिबंध के फल—नारंगी, अंगूर, सेब, नासपाती, बेर, अनार आदि खूब पैदा किये जाते हैं। सभी भागों में लम्बी सर्दी की ऋतु, साधारण वर्षा और ढलुआँ भूमि पाये जाने के कारण फलों का उत्पादन विशेष रूप से किया जाता है। दक्षिणी भारत में मुख्यत: उष्ण कटिबंधीय फल—केले, आम, अनन्नास आदि पैदा किये जाते हैं।

फलों के उत्पादन की दृष्टि से भारत के निम्न भाग किये जा सकते हैं :—

(१) हिमालय के शीतोष्ण प्रदेश (Himalayan Temperate Region)

इस प्रदेश के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश, पंजाब, कुमायूँ की पहाड़ियाँ, कुलू, कांगड़ा और श्रीनगर की घाटियाँ सम्मिलित किये जाते हैं। यहाँ वर्षा फलों के उत्पादन के लिए पर्याप्त मात्रा में ही जाती है किन्तु निचले ढालों पर ग्रीष्म ऋतु में सिंचाई की जाती है। इन प्रदेशों में पैदा किये जाने वाले अधिकांश फल इंगलैंड, संयुक्त राज्य अमरीका आदि देशों से लाकर लगाये गये हैं। खेतों के किनारों पर तथा बीच में अनेक प्रकार के फल पैदा किये जाते हैं विशेषत: दाखें, सेब, नासपाती, चैरी, शफ्तालू, बेर, अंगूर आदि। उष्ण शीतोष्ण कटिबंधीय दशाओं के अंतर्गत ३,५०० से ४,००० फीट की ऊंचाई तक कठोर फल (Stone fruits)—शफ्तालू, अखरोट, बेर, पिस्ते और एप्रीकॉट तथा [illegible] (P[illegible]e fruits)—सेब, नासपाती तथा अंगूर पैदा किये जाते हैं [illegible] लुकाट तथा नीबू आदि पैदा किये जाते हैं।

(२) उत्तरी शुष्क प्रदेश (Northern Dry Region)

इस प्रदेश में पंजाब के मैदानी भाग, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिले तथा राजस्थान और मध्य प्रदेश के पश्चिमी जिले सम्मिलित किये जाते हैं। पहाड़ी भागों में १,५०० से २,००० फीट की ऊँचाई तक बड़ी कठोर ठण्ड पड़ती है किंतु सम्पूर्ण प्रदेश में फलों के उत्पादन के लिए तापक्रम बड़े अनुकूल रहते हैं। वर्षा का औसत २०″ से २५″ तक रहता है। मरुस्थलीय भागों में सिंचाई भी की जाती है। जलवायु संबंधी दशाओं की विभिन्नता के कारण यहाँ अर्द्ध-उष्ण कटिबन्ध के सभी फल पैदा किये जाते हैं। रसदार फल खजूर, अंजीर, अमरूद, अंगूर, लुकाट, लीची, आम, जैतून, पपीता, फालसा, अनार, नासपाती, शफ्तालू, बादाम, बेर, फालसा (Jujube), Passion fruit, Pecan और सपोटा (Sapota) आदि खूब पैदा किये जाते हैं। इनमें से अधिकांश फल पंजाब, हिमालय प्रदेश और उत्तर प्रदेश के पहाड़ी भागों में पैदा किये जाते हैं। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर और देहरादून जिलों में बेर, लुकाट, रसदार फल, लीची, आम, फालसा, पपीता, केला, अमरूद आदि अधिक पैदा किये जाते हैं। पंजाब के हिस्सार और फिरोजपुर जिलों तथा उत्तरी राजस्थान में अंगूर पैदा होते हैं। पश्चिमी राजस्थान में अरबी खजूर पैदा होता है। केले दिल्ली के दक्षिणी भाग में तथा नारंगियाँ (माल्टा) पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तरी राजस्थान में और संतरे मध्य प्रदेश में अधिक पैदा किये जाते हैं।

(३) पूर्वोत्तर प्रदेश (Eastern Wet Region)

आसाम के दक्षिणी भाग, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी मध्य प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तर-पूर्वी आंध्र प्रदेश इसमें सम्मिलित किये जाते हैं। इन भागों की मिट्टी लाल तथा पीली दुमट, बलुही दुमट और मुख्यत: काँप है। वर्षा की मात्रा ३०″ से ७५″ तक होती हैं और सर्दी के तापक्रम ७०° फा० तथा गर्मी के ६०° फा० तक रहते हैं कई भागों में गर्म हवायें चलती हैं। इस प्रदेश के मुख्य फल आम, रसदार फल, केला, अमरूद, काजू, अनन्नास, लीची, पपीता, चीकू, शरीफा, और नासपाती हैं।

(४) दक्षिणी प्रदेश (Southern Region)

इस प्रदेश के अंतर्गत मध्य प्रदेश के दक्षिणी जिले, पश्चिमी आंध्र प्रदेश और मद्रास, मैसूर के पूर्वी भाग, तथा महाराष्ट्र आदि सम्मिलित किये गये हैं। यहाँ की मिट्टी काली है। कई भागों में लाल या पीली दुमट मिट्टी भी मिलती है। वर्षा की मात्रा २०″ से ५०″ तक होती है किन्तु महाराष्ट्र में यह ७५″ से १५०″ तक हो जाती है। इस प्रदेश के मुख्य फल आम, नारंगी, नीबू, अंगूर, अमरूद, केला, अंजीर, अनन्नास, शरीफा, अनार, काजू, सँपोटा और कटहल है।

(५) तटीय तट प्रदेश (Coastal Wet Region)

इस भाग के अंतर्गत दक्षिणी भारत के पार्श्ववर्ती पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तटीय भाग हैं। इनकी मिट्टी काँप है जो बड़ी उपजाऊ है। तापक्रम तथा वर्षा साल भर ही ऊँचे और अधिक रहते हैं। आम, अनन्नास, काजू, नारंगी, केला, सेब, नासपाती, कटहल और पपीता यहाँ के मुख्य फल हैं।

कुछ मुख्य फल (Chief Fruits)

(१) **अंगूर** (Grapes)—अंगूर बहुत स्वादिष्ट फल है। इसकी पैदावार के

लिए काफी धूप होनी चाहिए अर्थात् लम्बी गर्मी की ऋतु जिसमें सितम्बर में तापक्रम ६०° फा० तक रहता हो इसके लिए अधिक उपयुक्त है। अंगूर की जड़ें बहुत लम्बी होती हैं जिनसे लताओं को बहुत गहराई से जल मिल जाता है अतः अंगूर प्रायः ऐसे भागों में पैदा किए जाते हैं जहाँ गरमी में बिल्कुल वर्षा न होती हो। इसके लिए गर्म भुरभुरी मिट्टी अच्छी रहती है। चूने के पत्थर और खड़िया वाली भूमि इसकी पैदावार के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। पाला इसके लिए हानिकारक है क्योंकि इससे अंगूरों के गुच्छे नष्ट हो जाते हैं।

भारत में सबसे अधिक अंगूर महाराष्ट्र, मद्रास और मैसूर में होते हैं। देश में अंगूरों के अन्तर्गत लगभग १,५०० एकड़ भूमि है। बम्बई में नासिक जिला; काश्मीर में श्रीनगर तथा मद्रास के मदुराई और सलेम जिले, आंध्र के औरंगाबाद, हैदराबाद और अनन्तपुर जिले अंगूर के मुख्य उत्पादक हैं।

अंगूरों की मुख्य किस्में जो भारत में पैदा की जाती हैं वे ये हैं :—

सुल्ताना, काशमीरी, ब्लैक प्रिंस, खलीली, मस्कट, थॉम्पसन, भोकरी, फकादी, पंढारी, साहबी, पचद्राक्षाई और बंगलौर ब्लू।

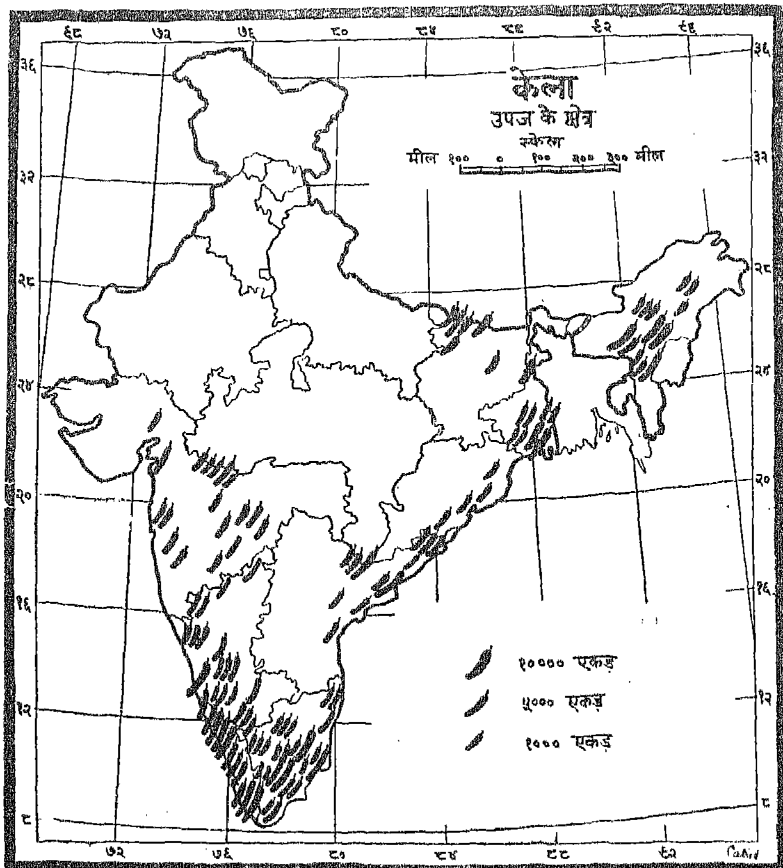
प्रतिवर्ष काफी मात्रा में अंगूर और दाख अफगानिस्तान, पाकिस्तान, आस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमरीका से आयात किये जाते हैं।

(२) केला (Banana)—केला उष्ण कटिबन्ध का फल है। इसे उपजाऊ भूमि, अधिक वर्षा और ऊँचे तापक्रम की आवश्यकता होती है। भारत में सबसे उत्तम प्रकार का केला दक्षिणी भारत में पैदा किया जाता है। यहाँ बसराई वेलची, लाल-वेलची, राजेली, मोंथन, सीरूमलाई किस्म के केले पैदा किये जाते हैं। केरल; महाराष्ट्र के सूरत, खैरा, कोलाबा, पूर्वी खानदेश; आंध्र के उस्मानाबाद, हैदराबाद, प्रभानी और गुलबर्गा जिले, मद्रास के तंजौर, तिरूचिरापल्ली, सलेम और कोयम्बटूर, तथा मध्य प्रदेश के अमरावती और आकोला जिले के प्रमुख उत्पादक हैं। मैसूर जिले में 'रसबाला' किस्म का केला पैदा किया जाता है।

पूर्वी प्रदेश में 'मालभोग', 'चीनी चम्पा', 'चम्पा, 'अलफान', 'अबेश्वर', 'दूध-सागर' और सब्जा किस्म का उत्पादन बिहार के चम्पारन, सारन, मुज्जफरपुर, दरभंगा, और भागलपुर जिलों में होता है। इन किस्मों के अतिरिक्त 'बसराई' और 'रायकेला' का उत्पादन उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद और बनारस जिलों तथा मध्य प्रदेश के कुछ भागों में किया जाता है। उड़ीसा में 'मारीशस' और 'मर्तबान' तथा पूर्वी गोदावरी, कृष्णा और विशाखापट्टनम जिलों में 'रसथली', 'वामनकेली', 'सिंगापुर' और 'चकराकेली' किस्म के केलों का उत्पादन होता है। बंगाल में मालदा, मुर्शिदाबाद, बर्दवान और चौबीस परगना तथा आसाम में खासी और जयन्तियों की पहाड़ियों, कछार, कामरूप और गोलपाड़ा, नवगांव, सिवसागर और लखीमपुर जिलों में भी केलों का उत्पादन बहुत होता है।

भारत के भिन्न २ राज्यों में केले की प्रति एकड़ उपज भिन्न २ है। मद्रास में प्रति एकड़ से ६८ से २७२ मन केला प्राप्त होता है, बंगाल में ५०० मन, महाराष्ट्र में १३५ मन, आसाम में २०० मन, बिहार में ९० मन, केरल में ३० से ४५ मन और मैसूर में ३५ मन होता है।

केलों का अधिकांश देश में ही खप जाता है। इसमें अन्तर्राज्यीय व्यापार ही अधिक होता है।



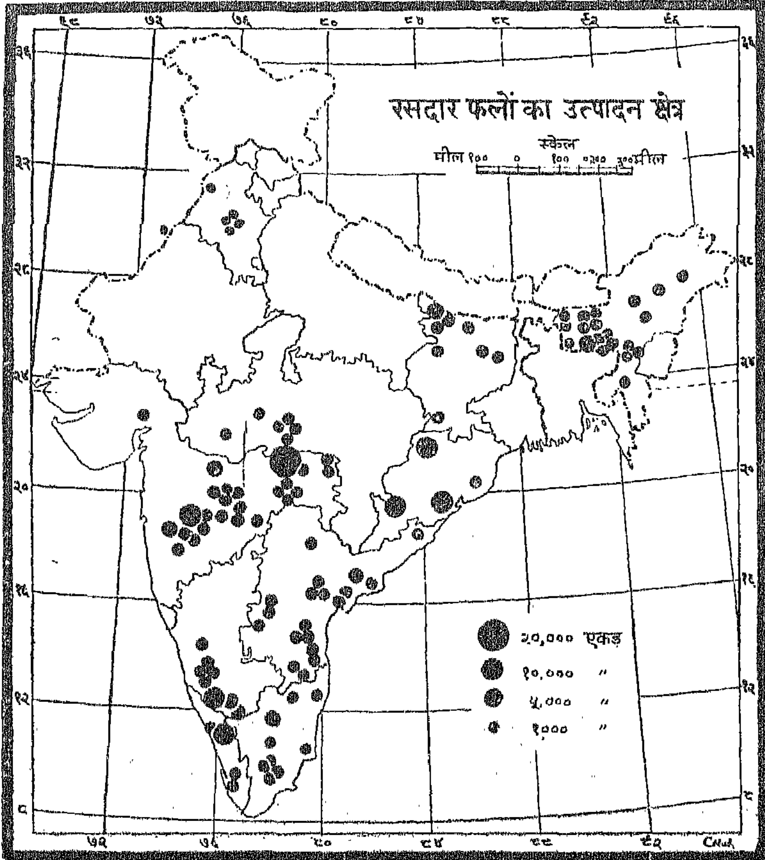
चित्र १४२—प्रमुख केला उत्पादन क्षेत्र

(३) **रसदार फल** (Citrus Fruits)—इन फलों के अंतर्गत मुख्यतः नारंगी, नीबू, संतरे और मौसमी सम्मिलित होते हैं। इनके लिए पर्याप्त जल, नम जलवायु और गहरी चूनेदार मिट्टी की आवश्यकता होती है। अधिक सर्दी के कारण इनके पौधे मुरझा जाते हैं।

भारत में नारंगी, नीबू आदि की कई किस्में पैदा की जाती हैं इनमें से मुख्य ये हैं :—

किस्म	उत्पादन क्षेत्र
(क) **संतरा** : (i) देशी, नागपुरी, एम्पदर, लड्डू ······	कुमायूं, उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, तथा देहरादून जिले।

(ii) देशी, कुर्ग, लाहौर······पठानकोट के निकटवर्ती भागों में।
(iii) नागपुर··············मध्य प्रदेश के उत्तर पश्चिमी जिलों में; उत्तर प्रदेश के नीमाड़ जिले और महाराष्ट्र के नागपुर जिले में।
(iv) खासी नारंगी या दार्जिलिंग······बंगाल के दार्जिलिंग जिले और आसाम में ब्रह्मपुत्र की घाटी में।



चित्र १४३—रसदार फलों के उत्पादक क्षेत्र

(ख) माल्टा : मौसम्बी, ब्लडरैड, जाफ्का, वाशिंगटन, मजोरका आदि······उत्तर प्रदेश के मेरठ बनारस और सहारनपुर जिलों तथा सम्पूर्ण पंजाब में; बिहार के रांची जिले में; आंध्र प्रदेश के औरंगाबाद, प्रभानी जिले; गुजरात के अहमद-नगर और महाराष्ट्र के पूना, नासिक और खानदेश जिले तथा मध्य प्रदेश के अमरावती

और अकोला जिले और मद्रास के सलेम और कोयम्बटूर जिले ।

खट्टे और मीठे नीबू (Acid & Sweet Limes)

कागजी नीबू, मीठे नीबू....उत्तर प्रदेश के सहारनपुर और मेरठ जिले; कुमायूं पहाड़ियाँ, हिमाचल प्रदेश और पंजाब; पूर्वी प्रदेश के सभी भागों में; मद्रास के मदुराई, कोयम्बटूर और सलेम जिले तथा महाराष्ट्र के खानदेश और अहमदनगर जिले ।

संतरे की प्रति एकड़ उपज जलवायु, खाद, मिट्टी, तथा कीड़ों से बचाव और वृक्षों की उम्र पर निर्भर रहती है । नीचे तालिका में संतरे की विभिन्न किस्मों की अनुमानिक वार्षिक औसत उपज प्रति पौंडों में दी गई है :—

संतरे की किस्म	प्रति एकड़ उपज (मनों में)
मद्रास (कमला, खट्टा आदि)	७५ से २०० तक
मध्य प्रदेश (संतरा)	९५ से २५० तक
बम्बई (संतरा)	१ ०
आसाम (सिलहट)	१०९ से ३६४
बंगाल (सिक्किम)	५० से २०१
उत्तर प्रदेश (संतरा, माल्टा)	६० से १००
आंध्र (मौसम्बी)	१८०

भारत में संतरा की प्रति एकड़ औसत उपज ९८ मन होती है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में १३२ मन, ब्राजील में १२५ मन, स्पेन में ८५ मन, इटली में ६० मन और दक्षिणी अफ्रीका में ७२ मन होती है ।

(४) **आम** (Mango)—आम भारत का प्रसिद्ध फल है । यह देश के प्रायः सभी भागों में पैदा किया जाता है किन्तु वर्षा के काफी होने के कारण एवम उपजाऊ और चिकनी मिट्टी होने के कारण गंगा-यमुना के मैदानों में आम बहुत होता है । उत्तरी भारत में आम पकने का मौसम जून से अगस्त तक और दक्षिण भारत में इससे कुछ पहले जून से अप्रैल तक आरम्भ हो जाता है ।

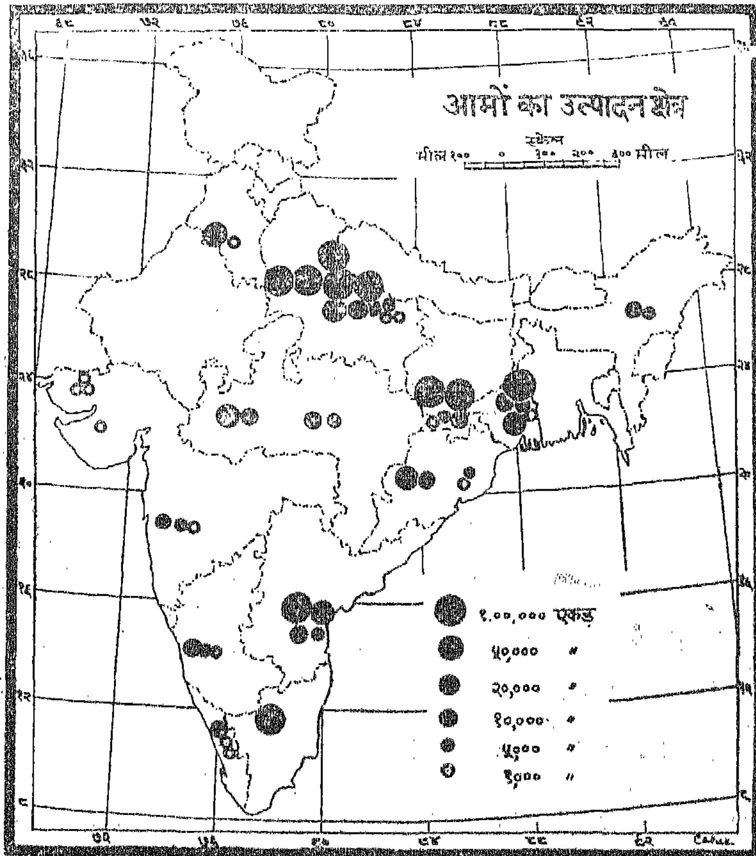
भारत में अनेक किस्म के आम पैदा किये जाते हैं किंतु इनमें मुख्य किस्में और उनके उत्पादक क्षेत्र ये हैं :—

किस्म	उत्पादक क्षेत्र
दसेरी, लंगड़ा, सफेदा लखनऊ, सफेदा मलीहाबादी, बम्बई हरा, बम्बई पीला, फजरी, गोपाल भोग, रतौल, सिरोली, माल्दा, हुस्नारा, बारामासिया, सिंदूरिया	उत्तर प्रदेश के मध्यवर्ती और पश्चिमी जिलों में मुख्यतः लखनऊ, बरेली, मेरठ, कानपुर, सहारनपुर, हरदोई जिलों में; पंजाब के होशियारपुर, अम्बाला, गुरुदासपुर, करनाल जिले और दिल्ली राज्य ।

(ii) बम्बई, फजली, सफेदा कलकत्ता, हिमसागर .... पश्चमी बंगाल के बर्दवान, हुगली, मुर्शिदाबाद, मालदा और २४ परगना जिलों में।

(iii) बिहार-हापुस, गुलाबखास कृष्ण-भोग, जरदालू, कैथल, खामुलखास बिहार के मुज्जफ्फरपुर, दरभंगा, और भागलपुर जिलों में।

(iv) शाहपसंद, वृन्दावनी, सफदर पसंद, तैमूरिया, ... उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में बनारस, इलाहाबाद, बाराबंकी, गोंडा, फैजाबाद, और सुल्तानपुर।



चित्र १४४—आमों के उत्पादक क्षेत्र

(v) लंगड़ा, दसेरी और चौसा .... बिलासपुर, होशंगाबाद, जबलपुर जिलों में।

(vi) नीलम, बेगनपाली, घूफूल खुदाबाद, सलेम ………उड़ीसा में, मद्रास में मैसूर।

(vii) स्वर्णरेखा, राजूभानू, जहाँगीर, चीनरस्म, कोट्टापल्ली, हिमायूद्दीन, कबारी, मुलगोवा, अज्जमउसमर, तोतापुरी ……आंध्र प्रदेश के गोदावरी कृष्णा और विशाखापट्टनम जिलों में।

(viii) हापुस, पैरी, राजापुरी, केसर………सौराष्ट्र, बड़ौदा और सूरत जिलों में।

भारत से आमों का निर्यात भी किया जाता है।

इन मुख्य फलों के अतिरिक्त निम्न प्रकार के फलों का उत्पादन भारत में काफी होता है :—

फल	किस्म	उत्पादक क्षेत्र
खजूर (Dates)	हिलावी, खुद्रावी, शामरान, अरबी और जैदी	पंजाब के पश्चिमी और राजस्थान के उत्तर-पश्चिमी भाग।
अंजीर (Figs)	(i) सफेद, काली, भूरी टर्की	राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं पंजाब के कुछ भाग।
	(ii) पूना, पैनूकोड़ा, कोयम्बटूर दौलताबाद, मैसावानी	आंध्र के अनन्तपुर जिले तथा महाराष्ट्र के पूना जिले और मैसूर राज्य में।
अमरूद (Guava)	(i) सफेदा, हाफजी, लखनऊ, करेला, इलाहाबादी सफेदा, हरा चिकना	उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, बरेली और फैजाबाद जिले; बिहार के चम्पारन, भागलपुर और मुज्जफरपुर जिले।
	(ii) घोलका, लखनऊ	आंध्र के भीर, प्रभानी, कडुप्पा, कर्नूल, औरंगाबाद जिले; महाराष्ट्र के पूना, नासिक, अहमदनगर, धारवाड़ और पूर्वी खानदेश जिले तथा गुजरात में अहमदाबाद।
अनन्नास (Pineapple)	मारीशस, क्यू, सिलोन, क्वीन,	आसाम, पश्चिमी बंगाल; बम्बई का बड़ौदा जिला; मद्रास में मदुराई, मैसूर तथा पश्चिमी तट पर सर्वत्र।
अनार (Pomegranate)	(i) काबुली, कंधारी, मस्कट लाल,	पंजाब, उत्तर प्रदेश।
	घोलका, हब्शी, ऊधूकुल,	मैसूर, आंध्र, मद्रास।
सेव (Apple)	(i) लाल, सुनहरी, फॉक्स, पीपीन, वरसस्टर, रिचार्ड, न्यूटन	हिमाचल प्रदेश।
	(ii) अम्बरी, काश्मीरी, लाल-	

फल	किस्म	उत्पादन क्षेत्र
	(iii) रोम-ब्यूटी, रेमर, शैनबरी	कुमायूं पहाड़ियाँ, कुलू घाटी, नीलगिरि ।
	(iv) लैंडी शैंडले, चार्ल्स रॉस, प्रिन्स, एल्बर्ट,	आसाम ।
नासपाती (Pears)	(i) थाम्पसन, कान्फ्रैंस, आदि	हिमालय प्रदेश में ५,००० फीट से अधिक ऊँचाई वाले भागों में ।
	(ii) बब्बूगोशा, चीन, कैफर	उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग, हिमाचल प्रदेश एवं पंजाब और दिल्ली में नीलगिरि, और बंगलौर जिले ।
शफ्तालू (Peaches)	एलैक्जन्डर, आगरा वाल्डो, चीन,	उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग, लखनऊ; पंजाब की पहाड़ियाँ, राजस्थान के जैपुर और जम्मू में ।
लुकाट (Loquat) और लीची (Litchi)	बेदाना, चीनी पूर्वी, कलकत्ता	उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, मेरठ, देहरादून जिले; पंजाब के गुरुदासपुर जिले; बिहार के चम्पारन, मुज्जफरपुर, भागलपुर और दरभंगा जिले ।

भारत में फलों के अंतर्गत क्षेत्रफल (१९५६-५७)[१]

राज्य	आम	रसदार फल	केला	अंगूर	प्रॉम फ्रूट	अन्य	योग
			(हजार एकड़ में)				
आन्ध्र प्रदेश	१९८	३२	१९	(a)	(a)	३०	२७९
आसाम	३	४	१९	—	—	७४	१००
बिहार	२४५	—	—	—	—	—	२४५
महाराष्ट्र + गुजरात	५९	८	५७	२	२	७९	२०६
जम्मू काश्मीर	१	(a)	(a)	(a)	१	१३	१५
केरल	१३९	६	८२	—	—	१२६	३५३
मध्य प्रदेश	५१	८	२	(a)	१	२४	८६
मद्रास	६२	१२	७८	—	—	२२	१७४
मैसूर	४४	२९	४८	१	२	१३	१३७
उड़ीसा	१६७	१	९	—	(a)	१५	१९२
पंजाब	१५	६	(a)	(a)	(a)	२६	४७
राजस्थान	(a)	२	(a)	—	२	८	१२
उत्तर प्रदेश	७४	१	१	—	(a)	१२६	२०२
पश्चिमी बंगाल	—	—	—	—	—	—	—
दिल्ली	—	—	—	—	—	४	४
हिमाचल प्रदेश	१	(a)	(a)	(a)	(a)	२	३
योग	१,०६६	११७	३२८	३	८	५९६	२,११८

१. Agricultural Situation in India, Vol XIV. No. 6 (Sept. 1959) p.732.
(a) = ५०० एकड़ से कम

भारत में फल उद्योग

भारतवर्ष में अभी तक फल उत्पन्न करने का धन्धा उन्नत अवस्था में नहीं है। इसके कई कारण हैं :—

(१) फलों के बगीचे बहुत ही छोटे छोटे और बिखरे हुए हैं। उदाहरण के लिये पंजाब में कुछ फलों के बगीचे बड़े हैं जबकि पंजाब में एक बाग का औसत क्षेत्र फतेहपुर में ८ एकड़, सीतापुर में ३ और नैनीताल में ६ एकड़ है। बहुत ही कम फलों के बाग व्यवसायिक रूप से लगाये जाते हैं। अतः इन बागों से इनके मालिकों को अधिक आर्थिक लाभ नहीं होता।

(२) इन बागों की देखभाल प्रायः ठेकेदारों के हाथों में छोड़ दी जाती है जो स्वयं फल खरीदते हैं या फिर अशिक्षित और गरीब माली ही इनकी देखभाल करते हैं। ठेकेदार भी थोड़े ही खर्चे में अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिये प्रयत्नशील रहता है किन्तु वैज्ञानिक रीति से फलों की पैदावार बढ़ाने के लिये वह कुछ नहीं करता है।

(३) फलों के बाग में पौधे एक दूसरे के इतने निकट लगाये जाते हैं कि ये साधारणतः पूरी तरह बढ़ भी नहीं पाते। पौधों के पास-पास लगाने से यद्यपि कुछ समय तक फलों की पैदावार बढ़ती जाती है किन्तु अल्प काल के पश्चात् वह घटने लगती है।

(४) फलों को बाजार जाकर बेचने के लिये हमारे यहाँ सन्तोषजनक स्थिति नहीं है। फलों के बगीचे जो नगरों के निकट होते हैं उनके लिये कोई असुविधा नहीं होती किन्तु जो बाग गांवों में होते हैं वहाँ के सभी फल नगरों को भेज दिये जाते हैं जिसके फलस्वरूप गांवों के लिये बिल्कुल फल नहीं रह जाते हैं। नगरों में भी फलों की मांग पूरी नहीं होती। अनुमान लगाया गया है कि बम्बई में प्रति व्यक्ति पीछे आधे आउन्स फल बिकते हैं जबकि लन्दन में यह मात्रा ४½ आउन्स तथा न्यूयार्क में एक पौण्ड है।

(५) फलों के पकने के समय अत्यन्त असावधानी की जाती है जिससे फल और पौधे दोनों ही प्रायः नष्ट हो जाते हैं। अधिकतर हरे और कच्चे फलों को भी तोड़ लिया जाता है। फलों को तोड़ने के लिये वृक्ष की टहनियाँ हिलाई जाती हैं जिससे बहुत से फल नष्ट हो जाते हैं।

(६) फलों को बाहर भेजते समय उन्हें डिब्बों और टोकरियों में बन्द करके भेजा जाता है। किन्तु वे हल्की और हवादार नहीं होतीं। इसके अतिरिक्त फलों के साथ साथ घास और सूखी पत्तियाँ भी भर जाती हैं जिससे फल गन्तव्य स्थान तक पहुँचने के पहले ही नष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिये बम्बई की आम विपणन समिति ने अनुमान लगा कर बताया है कि बम्बई नगर में आने वाले २० प्रतिशत आम तो इसलिये नष्ट हो जाते हैं कि वे कच्चे ही तोड़ कर पेटियों में बन्द कर दिये जाते हैं और २० प्रतिशत सड़ जाते हैं।

(७) भारतवर्ष में जो भी फल व तरकारियाँ पैदा की जाती हैं वे सब शीघ्र नष्ट हो जाने के भय से शहरों के समीपवर्ती स्थानों में बोई जाती हैं क्योंकि हमारे यहाँ शीत भंडारों की सुविधायें नहीं हैं और रेल भी इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिये विशेष प्रबन्ध नहीं करती जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में तर-

कारी व फलों को दूसरे स्थानों तक भेजने के लिये प्रतिदिन प्रात: फल और तरकारियों की एक्सप्रेस गाड़ियाँ दौड़ती हैं।

फलों का व्यापार

प्रतिवर्ष औसत रूप में डिब्बों में बन्द किए हुए फल ११ लाख रुपये की लागत के अचार और मुरब्बे आदि आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, जापान और अमेरिका से मंगाये जाते हैं। भारत से आम का अचार, मुरब्बा और चटनी आदि इंगलैंड, मध्य पूर्व के देश, सं० राज्य अमरीका, कनाडा, सिंगापुर, हांगकांग, सऊदी अरब आदि देशों को १६५८ में लगभग ११ लाख रुपये का निर्यात किया गया।

सभी प्रकार के फलों का निर्यात १६५२ में १६·४ करोड़ रुपए और १६५८ में २१·२ करोड़ रुपये का हुआ। इनके अन्तर्गत (i) ताजे फल और कठोर फल; काजू, केला, आम सुपारी, अखरोट आदि (ii) ताजा और सूखी तरकारियाँ—प्याज तथा (*iii*) फलों की वस्तुयें आदि आती हैं।

सब्जियाँ (Vegetables)

भारत में अनेक प्रकार की सब्जियों का उत्पादन किया जाता है क्योंकि देश की अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी है। सब्जियों के उत्पादन के लिये शीतोष्ण जलवायु अनुकूल होती है किन्तु पाला इसे सहन नहीं। इनके लिए रेतीली दोमट मिट्टी अच्छी होती है। भूमि की गहरी जुताई और अधिक खाद की भी आवश्यकता होती है। जल भी पर्याप्त मात्रा में मिलता रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त सब्जियाँ शहरों से अधिक दूर पैदा नहीं की जा सकती क्योंकि शीत भण्डार की सुविधाओं के अभाव में उन्हें दूर तक नहीं ले जाया जा सकता।

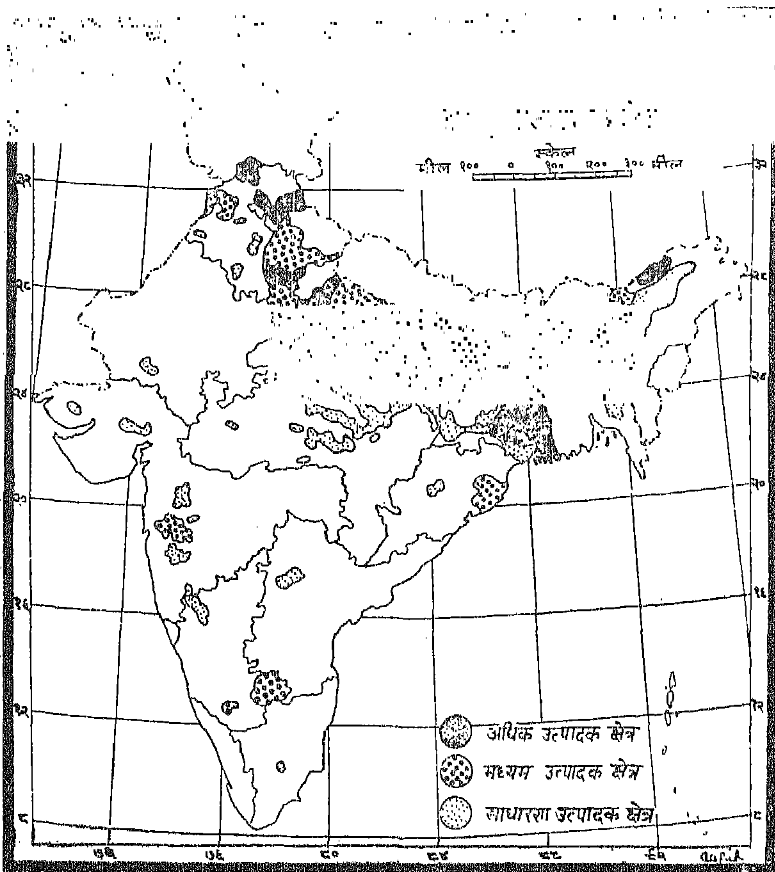
देश में अनेक प्रकार की हरी सब्जियाँ तथा गाँठदार सब्जियाँ काफी मात्रा में पैदा की जाती हैं। भींडी, करेला, तुरई, बैंगन, चवलाफली, गोभी, टमाटर, पालक, लौकी, कद्दू, अरबी, रतालू कटहल, चुकन्दर, मूली आदि सभी जगह थोड़ी बहुत मात्रा में पैदा की जाती है। किन्तु इनका महत्व स्थानीय ही है। सब्जियों में आलू का महत्व ही अधिक है।

आलू (Potato)

यह भारत की प्रमुख तरकारी है। इसके लिए नम और ठंडी जलवायु अधिक उपयुक्त होती हैं। अधिक वर्षा और कम तापक्रम वाले भागों में भी यह पैदा किया जा सकता है। इसके लिए भुरभुरी मिट्टी अच्छी होती है। यह सिंचाई और बिना सिंचाई दोनों प्रकार से पैदा किया जाता है। भारत में इसकी दो फसलें प्राप्त की जाती हैं। सर्दी की फसल सितम्बर से दिसम्बर तक बोयी जाती है और जनवरी से अप्रैल तक काटी जाती है। गर्मी की फसल फरवरी से अप्रैल तक बोयी जाती है और मई से सितम्बर तक काटी जाती है। सामान्यत: जाड़ों की फसल मैदानों में और गर्मी की फसल पहाड़ी भागों में पैदा की जाती है। जाड़े की फसल का महत्व ही अधिक होता है। कुल फसल का ६५% जाड़े की और ५% गर्मी का होता है।

भारत में आलू उत्पादक राज्य उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार और आसाम राज्य हैं। कुल उत्पादन क्षेत्र का ८० प्रतिशत इन्हीं राज्यों में है। मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, पंजाब और हिमाचल प्रदेश में भी आलू पैदा किया जाता है।

भारत में आलू का प्रति एकड़ उत्पादन ५,७०० पौंड से ७,००० पौंड तक का होता है। यहाँ देशी किस्म के अन्तर्गत फुलवा (Phulwa), दार्जिलिंग लाल



चित्र १४५—प्रमुख आलू उत्पादक क्षेत्र

(Darjeeling Red Round) और गोला (Gola) आदि किस्में मैदानी भागों में और अंग्रेजी किस्म के अन्तर्गत नवीनतम (Uptodate), ग्रेट स्काट (Great Scot) और मैगनम बोनम (Magnum Bonum) आदि किस्में पहाड़ी भागों में पैदा की जाती हैं।

विश्व के उत्पादन का केवल ०·७% आलू ही भारत से प्राप्त होता है जबकि रूस से ३२%; पौलैंड से १५%; जर्मनी से ११%; फ्रांस से ६%; सं० राज्य से ५%; इंगलैंड से ४% प्राप्त होता है। भारत में आलू का आयात इटली, साइप्रस, केनिया, ब्रह्मा और जापान से किया जाता है।

भारत में सब्जियों के अन्तर्गत क्षेत्रफल (१९५६-५७)[१]

राज्य	आलू	टैपीओका	शकरकंद	प्याज	खरीफ की अन्य सब्जियाँ	रबी की अन्य सब्जियाँ	सब्जियों का योग
			(हजार एकड़ में)				
आन्ध्र प्रदेश	२	६	९	४४	३३	१६	११०
आसाम	६९	६	९	२	६९	५३	२०९
बिहार	१२३	—	११४	—	४०	११५	३९२
बम्बई	३५	१	१९	५६	१३०	—	२४१
जम्मू काश्मीर	६	—	(a)	१	१७	३	२७
केरल	—	५१५	१९	१	३३	६५	६३३
मध्य प्रदेश	२१	(a)	१७	१७	४३	३७	१३५
मद्रास	२२	४०	९	३०	२५	१४	१४०
मैसूर	१५	१	१९	३४	३७	२२	१२९
उड़ीसा	२२	२	७७	१२	४७	८२	२४२
पंजाब	२१	(a)	२	१३	३३	३२	१०१
राजस्थान	४	१	२	६	१२	२०	४५
उत्तर प्रदेश	२३७	—	१२५	८	९०	८३	५४३
पश्चिमी बंगाल	११८	—	—	—	२१२	—	३३०
दिल्ली	(a)	—	—	(a)	३	६	९
हिमाचल प्रदेश	२२	—	—	१	३	१	२७
योग	७२०	५७२	४२३	२२५	८३०	५५४	२,३२४

१. Agricultural Situation in India, Vol XIV, No. 6 (Sept. 1959), p. 733.

(a) ५०० एकड़ से कम।

अध्याय १६

धातु-उद्योग

(Metallurgical Industries)

१. लोहे और इस्पात का उद्योग

(Iron and Steel Industry)

उद्योग का ऐतिहासिक विकास :

भारत में लोहे को पिघलाने और ढालने तथा इस्पात तैयार करने का धन्धा अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। यहाँ अगारिया नामक जाति लोहे का काम करती थी। भारत न केवल अपनी आवश्कता ही पूरी करता था किन्तु विदेशों को भी लोहा और इस्पात भेजता था। दिल्ली का विख्यात लोहे का स्तंभ भारत में जो १७०० वर्ष पूर्व बनाया गया इस प्राचीन उद्योग का ज्वलंत उदाहरण है। यह स्तम्भ २३ फीट ऊँचा और ६ टन से भी अधिक भारी है। इतना पुराना हो जाने पर भी इस पर मौसम की सांघातिक शक्तियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। संसार विख्यात डेमस्कस के तलवार और कटार की फालें भारत के इस्पात की ही बनी होती थीं। आधुनिक ढंग के लोहे और इस्पात के उद्योग के जन्म और विकास के फलस्वरूप भारत के दूसरे प्राचीन उद्योगों की तरह यह उद्योग भी नष्ट हो गया और भारत विदेशों से लोहा और इस्पात का आयात करने वाला देश बन गया। १९वीं शताब्दी के आरम्भ से इस उद्योग को आधुनिक ढंग से विकसित करने के प्रयत्न भारत में आरम्भ हुए। ये प्रयत्न १८३० में और उसके आस-पास मद्रास में पोर्टोनोवो में अँग्रेजों ने किये थे। पर ये सब असफल रहे। अन्त में १८७४ में बाराकर लोहे की कम्पनी की स्थापना हुई। सन् १८८९ में कलकत्ते की मार्टिन एन्ड कम्पनी ने इस कारखाने को ले लिया। बाद में इसी का नाम बंगाल लोहे और इस्पात का कारखाना (Steel Corporation of Bengal—SCOB) हो गया जो कुछ ही समय पूर्व भारतीय लोह और इस्पात के कारखाने (Indian Iron & Steel Co., Ltd.—IISCO) में मिला दिया गया।

हमारे यहाँ लोहे और इस्पात के उद्योग का वास्तविक इतिहास टाटा के कारखाने की स्थापना के साथ ही आरम्भ होता है। आज भी देश के इस उद्योग का वास्तविक केन्द्र यही कारखाना है। यह कारखाना १९०७ में साकची नामक स्थान में स्थापित किया गया जिसमें कच्चा लोहा १९११ में और इस्पात १९१३ में पहली बार तैयार किये गये। सन् १९१६ तक इसने पूर्ण उत्पादन क्षमता प्राप्त कर ली। सन् १९१८ में भारतीय लोहे और इस्पात का कारखाना हीरापुर में खोला गया। इसके बाद १९२१ में यूनाइटेड स्टील कारपोरेशन ऑफ एशिया मनोहरपुर में तथा १९२३ में मैसूर का भद्रावती का कारखाना और १९३९ में बंगाल लोहे की कम्पनी की स्थापना की गई। द्वितीय महायुद्ध के बाद से ही भारतीय लोहे और इस्पात के कारखानों के उत्पादन में वृद्धि होती रही है। वास्तविक रूप में इस उद्योग का

विकास तो १९२३ के बाद हुआ जबकि सरकार ने इस उद्योग को संरक्षण दिया जो १९३५ तक चलता रहा। इसके फलस्वरूप ढले लोहे का उत्पादन १९१४ में १,६२,२७२ टन से बढ़ कर १९३५ में १३,४३,००० टन हो गया। १९३५ में फिर संरक्षण दिया गया जो १९४७ तक चलता रहा।

द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप भारत में कई प्रकार के फौलाद तैयार किये जाने लगे—High Speed Steels, Hot Steels, Tap-Steels, Nickel-Chrome Steels, Special Steels for Shear Blades and Punches, Die Steels for Mints, Armour Steels—सन् १९४१ में युद्ध की मांग की पूर्ति के लिये जमशेदपुर में टाटा ने रेल के पहिये बनाने के लिए 'The Jamshedpur, Engineering and Machine Manufacturing Co.,' की स्थापना की। तब से बराबर भारत का यह उद्योग प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है।

लोह खनिज का शोधन :

इस्पात लोहे तथा कार्बन का मिश्रण होता है। विभिन्न कोटि की शक्ति और किस्म वाला इस्पात तैयार करने के लिए मैगनीज, सिलिकन, क्रोमियम और वनाडियम धातुयें मिला दी जाती हैं। लोहा अपने प्राकृतिक दशा में आक्साइड रूप में पाया जाता है। उसमें मिट्टी, गन्धक, फासफोरस तथा अन्य खनिज पदार्थ भी मिले होते हैं। इसीलिये लोहे को इन प्राकृतिक मिश्रणों से अलग करके उसमें कारबन आदि मिला देने से इस्पात तैयार हो जाता है। प्राचीन काल में लोहे को अन्य मिलावटों से अलग करने के लिये लकड़ी के कोयले से लोह खनिज गलाया जाता था। परन्तु इस प्रकार काफी लोहा तैयार नहीं होता था। १८वीं शताब्दी के मध्य में यह अनुभव किया गया कि कोई अन्य प्रकार का ऐसा ईंधन इस्तेमाल किया जाय जो प्रचुर परिमाण में तथा सस्ते दामों में प्राप्त हो। यह ईंधन पत्थर का कोयला था। परन्तु इस कोयले में आवश्यक शक्ति तथा रसायनिक गुण नहीं होते। इसलिये इसमें कोक तैयार किया जाता है जिसमें शक्ति और गुण दोनों ही होते हैं। जब लोह खनिज के साथ कोक में जलाया जाता है तो कोक का कारबन खनिज की आक्सीजन से मिल कर कार्बन मोनोआक्साइड बन जाता है जो गैस का रूप धारण करके वायु में उड़ जाता है। गन्धक, फास्फोरस और मिट्टी आदि की अन्य मिलावटें चूना मिला कर दूर कर दी जाती हैं। यह चूना अन्य मिलावटों से मिल कर नीचे तलछट के रूप में जम जाता है।

इस्पात तैयार करने का संयंत्र :

इस्पात तैयार करने के संयंत्र के चार मुख्य विभाग होते हैं :—

(१) **कोक भट्ठी** (Coke Oven)—इसमें पत्थर का कोयला फूंक कर कोक बनाया जाता है।

(२) **लपट वाली भट्ठी** (Blast Furnace)—इसमें लोह खनिज को गला कर लोहा बनाया जाता है।

(३) **इस्पात गलाने का संयंत्र** (Steel Melting Plant)—इसमें लोहे में कारबन तथा अन्य धातुएें मिला कर इस्पात बनाया जाता है।

(४) **ढलाई मिल** (Rolling Mill)—इसमें इस्पात को ढाल कर पटरियाँ, सरिये, चादरें आदि बनाई जाती हैं। इस्पात संयंत्र में जो अन्य यंत्र होते हैं उनमें ये

प्रमुख होते हैं। बिजली पैदा करने के लिये बिजलीघर, लपट वाली भट्टी में तेजी के साथ हवा धौंकने का संयंत्र, मुख्य इस्पात संयंत्र की मरम्मत करने के लिये ढाँचों तथा मशीनों का कारखाना, पानी पहुँचाने तथा ठन्डा करने की व्यवस्था, परिक्षरण तथा प्रयोग करने के लिऐ प्रयोगशालाएँ। कच्चे माल तथा अन्य सामान भरने के गोदाम और प्रशासन, बिक्री आदि के कार्यालय।

उद्योग का स्थापन :

इस उद्योग के लिए कच्चे लोहे और कोयले तथा लोहे को परिष्कृत करने के लिए कई प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता बड़ी मात्रा में होती है। ये सब पदार्थ वजन में भारी किन्तु मूल्य में सस्ते होते हैं। अत: उन्हें अधिक दूर तक ले जाने में वाहन-व्यय बहुत बढ़ जाता है। इसलिये भारत में इस उद्योग का स्थापन कच्चे माल की उपलब्धता द्वारा निर्धारित हुआ है (Raw material localised) न कि बाजार की मांग द्वारा (Market localised)।

नीचे के आँकड़ों से यह स्पष्ट होगा कि १ टन पिग-आयरन बनाने में कच्ची धातु और अन्य कच्चा माल किस परिमाण में आवश्यक होते हैं[१] :—

पदार्थ	१ टन इस्पात बनाने में इस्पात की मात्रा	
कोकिंग कोयला	१·५६५	टन
लोहा	१·६१३०	,,
मैंगनीज	०·१३०	,,
ब्लास्ट फरनेस फलक्स	०·५०६	,,
खुली भट्टी के लिए फलक्स	०·०५७	,,
फैरो-एलॉय	०·०१७	,,
डोलोमाइट	०·०६०	,,
मैंगनेसाइट	०·००६	,,
अग्नि प्रतिरोधक मिट्टियाँ	०·०२६	,,
अन्य मिट्टियाँ	०·०१७	,,
स्टीम कोयला	०·३६५	,,
चूने का पत्थर	१·३००	,,

मोटे तौर पर टैरिफ बोर्ड (Tariff Board) के अनुमानानुसार यह कहा जा सकता है कि १ टन परिष्कृत इस्पात के लिए २ टन कच्ची धातु, १$\frac{१}{६}$ टन कोकिंग कोयला और १$\frac{१}{६}$ टन अन्य कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार १ टन पिग-आयरन बनाने में १$\frac{३}{४}$ टन कच्ची धातु और १$\frac{१}{३}$ टन कोकिंग कोयला चाहिए। इनके अतिरिक्त अन्य कई पदार्थ (Flux) धातु शोधन के लिये आवश्यक है। ये सभी वजन में भारी होते हैं अत: भारत का लोहा और इस्पात का उद्योग मुख्यत: बिहार-उड़ीसा में ही केन्द्रित है। इस स्थापन के कई भौगोलिक और आर्थिक कारण हैं :—

(१) उत्तम माल को तैयार करने के लिए आवश्यक रूप से उत्पादन का मूल्य बढ़ाये बिना भारी पदार्थों को अधिक दूर तक नहीं ले जाया जा सकता। इसके अतिरिक्त लोहे और इस्पात के कारखानों में हर एक प्रकार का कोयला काम में नहीं

१. Major Industries Annual : 1952-53., p. 131.

लिया जा सकता। पश्चिमी बंगाल और बिहार के झरिया क्षेत्र में पाया जाने वाला कोकिंग कोयला ही इस कार्य के उपयुक्त है। धातु शोधन कोयला संरक्षण समिति (Metallurgical Coal Conservation Committee, 1951) के अनुसार यदि ठीक प्रकार से स्टोविंग, ब्लैंडिंग और वाशिंग किया जाय तो ज्ञातव्य कोयले के भंडारों में २० करोड़ टन कोकिंग कोयला प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ ४०० करोड़ टन कोक न बनाने योग्य कोयले के भंडार भी हैं जिनसे यदि नवीन विधियों द्वारा कोयला प्राप्त किया जाय तो यह १०० करोड़ टन कच्चे लोहे को गलाने के लिए पर्याप्त हो सकता है।

(२) इसी प्रकार बिहार और उड़ीसा की लोहे की पट्टी में मिलने वाली हैमेटाइट की कच्ची धातुएँ ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं और यही अन्य सभी भारतीय धातुओं में लौह सम्पन्न हैं। ये कच्ची धातुयें ही मयूरभंज क्षेत्र के पश्चिम में गुरूमहिसानी पहाड़ियों से लेकर क्योंझार और बोनाई क्षेत्रों में होती हुई बिहार के सिंहभूमि जिले के कोल्हान के उप-विभागों तक फैली हुई हैं। यहाँ कच्ची धातु में ६४ प्रतिशत लोहा होता है। यहाँ लोहे के २६० करोड़ टन के उत्तम भण्डार पाये जाने का अनुमान है।

(३) इस क्षेत्र में मध्य प्रदेश से लेकर पश्चिमी बंगाल तक काफी परिमाण में चूने के पत्थरों की खानें और डोलोमाइट पाया जाता है।

(४) इसी क्षेत्र में मैंगनीज और सिलीकन की खानें भी हैं जिनका प्रयोग धातुओं को परिष्कृत करने में होता है।

(५) इसी भाग में क्रोमाइट और अग्नि प्रतिरोधक मिट्टियाँ भी पाई जाती हैं जिनकी ईंटों की तह फौलाद की भट्टियों में लगाई जाती हैं।

सामूहिक रूप से कहा जाता है कि कच्चे माल की पूर्ति के सम्बन्ध में झरिया के कोयले के क्षेत्रों और लोह पट्टी के बीच की परिस्थितियाँ बहुत ही अनुकूल हैं।

भारत में इस समय लोहे और इस्पात के निम्न प्रमुख कारखाने कार्य कर रहे हैं।

(१) टाटा लोहे और इस्पात का कारखाना, जमशेदपुर। (TISCO)

(२) भारतीय लोहे और इस्पात का कारखाना कुलटी और हीरापुर। (IISCO)

(३) मैसूर का लोहे और इस्पात का कारखाना, भद्रावती। (MISW)

इन तीनों कारखानों की पिग-आयरन और स्पात तैयार करने की वार्षिक क्षमता क्रमश: १८,७८,००० टन और १०,५०,००० टन है।

इन तीन मुख्य कारखानों के अतिरिक्त १४२ ढल[illegible] (R[illegible] Mills) भी देश में रद्दी और पुराने स्पात के टुकड़ों (Scraps) [illegible] का सामान तैयार करते हैं। इस उद्योग में लगभग २७ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है और ७६,००० व्यक्ति काम करते हैं।[1] नीचे की तालिका में भारत में तैयार किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के इस्पात की वस्तुओं का उत्पादन बताया गया है :—

---

१. Govt. of India : Report on the Sixth Census of Indian Manufactures, 1951. (1955)

लोहे और इस्पात का उत्पादन (००० टनों में)

किस्म	१६४६	१६४६	१६५२	१६५५	१६५६	१६५७	१६५६
कच्चा लोहा	१,३४६	१,५२८	१,६८५	१,७५७	१,८०७	१,७८६	२,६६४
सीधी ढलाई	७६	६४	१३०	१२६	१२२	११३	४४
लोह मिश्रित धातु	१६	१६	४१	१२	२६	१०	२२
स्पात के पिंड	१,२६४	१,३५२	१,५७८	१,७०४	१,७३८	१,७१५	१,४४४
अधूरा तैयार इस्पात	१,०३१	१,१०५	१,३०८	१,४५७	१,४८४	१,४४०	२,२२०
तैयार इस्पात	८६०	६३०	१,१०३	१,२६०	१,३१६	१,३४६	१,७३६

इस समय भारत में कच्चे लोहे का उत्पादन इस प्रकार है :—

टाटा कं०	५ ब्लास्ट भट्टे	उत्पादन ११,५०,००० टन
भारतीय लोह और इस्पात कं०	४ ,,	६,६०,००० टन
मैसूर कं०	३ ,, (२ बिजली के भट्टे)	५६,००० टन
योग		१८,६६,००० टन

(क) टाटा लोहे और इस्पात का कारखाना (TISCO)—भारत में लोहे और इस्पात का सबसे बड़ा कारखाना जमशेदपुर में है। इस कारखानें में अधिकतर इस्पात बनता है अतः यह कोयले की अपेक्षा लोहे के क्षेत्र के अधिक समीप है।

यह कारखाना साकची नामक स्थान पर श्री जमशेदजी टाटा द्वारा स्थापित किया गया था। उन्हीं के नाम पर अब इस स्थान का नाम जमशेदपुर हो गया है। यह स्थान बिहार के सिंहभूमि जिले में है जिसके उत्तर में स्वर्णरेखा और पश्चिम में खोरकाई नदी बहती है। इन्हीं दोनों नदियों की ३ मील चौड़ी घाटी में यह कारखाना स्थित है।

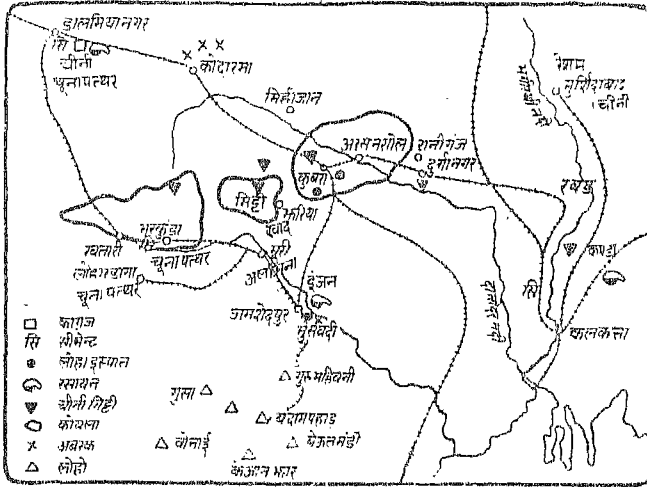
(१) इस कारखानें के लिए लोहा पार्श्ववर्ती गुरुमहिसानी की पहाड़ियों से प्राप्त होता है जो यहाँ से केवल ६० मील दूर है। प्रति वर्ष लगभग २० लाख टन लोहे की आवश्यकता पड़ती है जिसमें से लगभग ५० प्रतिशत अकेले नोआमंडी से आता है, शेष गुरुमहिषानी; बदामपहाड़ और सुलेपात से।

(२) कोयला भेरिया की खानों से मिलता है जो केवल १०० मील की दूरी पर स्थित हैं। यहाँ लगभग २५ लाख टन कोयले का उपभोग होता है जिसमें से लगभग १५ लाख टन भेरिया से और शेष अन्य खानों से आता है।

(३) चूना २०० मील की दूरी से आता है। विशेषकर बिरमित्रापुर, हाथीबारी और बराद्वआर से। पागपोश की डोलोमाइट की चट्टानें यहाँ से ३०० मील दूर हैं तथा मैंगनीज और अन्य रासायनिक पदार्थ निकट ही प्राप्त हो जाते हैं। यहाँ के मैंगनीज में ४० से ५०% धातु होती है। ६५ से ६८% वाली क्वार्टजाइट चट्टानें भी यहाँ मिलती हैं। ४० से ५०% क्रोमाइट वाली चट्टानें सिंहभूम जिले में मिलती हैं। टंगस्टन मिदनापुर और जोधपुर से प्राप्त किया जाता है टाइटैनियम दक्षिणी भारत से और अग्निमिट्टी यहाँ बेलपहाड़ से लाई जाती है।

(४) लोहे और इस्पात के लिए मीठे और साफ पानी की बहुत आवश्यकता होती है। दोनों नदियाँ छोटी होने के कारण गरमी में सूख जाती हैं। इस कारण

इनका पानी एक बड़े हौज में इकट्ठा कर लिया जाता है। स्वर्णरेखा की बालू मिट्टी लोहा ढालने के लिए उपलब्ध है।



चित्र १४६—जमशेदपुर का इस्पात क्षेत्र

(५) जमशेदपुर का कारखाना दक्षिणी पूर्वी रेलवे द्वारा कलकत्ता और बम्बई से जुड़ा है अतएव यहाँ का माल बाजारों को सुविधापूर्वक भेजा जा सकता है।

(६) इस प्रदेश में आबादी कम है और जो कुछ भी है वह संथाला लोगों की है जो कारखानों में काम करना पसंद नहीं करते इसलिए यहाँ अधिकांश मजदूर बिहार, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश से आते हैं।

इन्हीं सब कारणों से जमशेदपुर में यह उद्योग केन्द्रित हो गया है।

नई विस्तार योजना में २० कोक भट्टियों की एक नई बैटरी का निर्माण, प्रतिदिन ४,००० टन कच्चे लोहे को कुचलने, पीसने तथा छानने का सिनटरिंग प्लांट और एक नई २८ फुट व्यास की भट्टी ब्लूमिंग और बार मिल भी शामिल है। द्वितीय पंच-वर्षीय योजना अवधि में बिक्री योग्य इस्पात का उत्पादन ८००,००० टन से बढ़ कर १,५००,००० टन हो जायेगा। इस राशि में इस्पात तैयार करने के लिए टाटा के कारखाने को ३५ लाख टन कोयला; २२ लाख कच्चा लोहा; ६० हजार टन मैंगनीज; ६ लाख टन चूने का पत्थर; ६० हजार टन डोलोमाइट; ५ हजार टन फैरो-सिलीकन; ७,००० हजार टन गन्धक और ६ हजार टन स्पैल्टर की आवश्यकता होगी। इस विस्तार योजना में १२,०५४ लाख रुपये व्यय होंगे। इस्पात की यह वृद्धि दो चरणों में होगी। प्रथम चरण में आधुनिकीकरण और विस्तार कार्यक्रम के अनुसार उत्पादन क्षमता बढ़ कर ६,३१,००० टन हो जाएगी। द्वितीय चरण में यह बढ़ कर २० लाख टन इस्पात पिंड तक पहुँचेगी जिनसे १५ लाख टन साफ इस्पात तैयार होगा।

टाटा के कारखाने का वर्तमान उत्पादन इस प्रकार है :—

वस्तुएँ	१९५४-५५ (हजार टनों में)
कच्चा लोहा	१,९९२
कोयला	१,४३४
कोक	९९०
ढला लोहा	१,१५०
इस्पात की इंटें	१,०९७
तैयार इस्पात (पटरियाँ फिशप्लेट, चादरें, भारी सामान, छड़ें, पहिये, धुरिया आदि	७८०

टाटा के उद्योग के आस-पास कुछ दूसरे उद्योग भी खड़े हो गये हैं इनमें से मुख्य ये हैं—टिन प्लेट, रेलवे के डिब्बे, कास्ट लोहे के स्लीपर और स्टील और तारों के उद्योग, जमशेदपुर एंजीनियरिंग और मशीन कम्पनी, टाटानगर फाउंड्री, कृषि के औजार उत्पन्न करने वाली ऐग्रीको फैक्टरी। रेल के पहिए और टायर्स आदि भी यहाँ बनाये जाते हैं।



चित्र १४७—टाटा के कारखानें में ब्लास्ट फरनेस

(ख) भारतीय लोहे और इस्पात का कारखाना (IISCO)—(हीरापुर और कुल्टी में)—कुल्टी में भारत में लोहा तैयार करने वाला यह सबसे पुराना कारखाना है। यह पहले बंगाल आयरन वर्क्स के नाम से चलाया गया था किन्तु १८९९ में भारतीय

लोहे और इस्पात की कम्पनी ने इसे ले लिया। सन् १९३६ में इसका नाम '**भारतीय लोहे और इस्पात**' का कारखाना रखा गया। यहाँ भारत का सबसे अधिक लोहे की ढलाई का काम होता है। यह कारखाना कुल्टी में लोहे और कोयले के क्षेत्र के समीप ही दामोदर नदी की शाखा बाराकर नदी पर स्थापित किया गया है जो कलकत्ता से १४० मील उत्तर पश्चिम की ओर है। पूर्व की ओर सबसे बड़ी 'आयरन फाउन्डरी' यही है। इस कारखाने को लोहा, गुआ और कोल्हान राज्य की खानों से और कोयला रामनगर की खानों से मिलता है। भेरिया क्षेत्र की जितपूर और नूनोदिह खानों से भी कोयला मिलता है। चूने का पत्थर गंगपुर के निकट बिसरा नामक स्थान तथा पूर्वी रेलवे पर स्थित पाराधाट और बाराद्वार से आता है। यहाँ जल की पूर्ति दामोदर नदी को रोक कर बनाये गये हौज से प्राप्त कर की जाती है। यहाँ की फाउन्डरी में ५ विभिन्न खंड हैं जिनकी उत्पादन शक्ति ७०,००० टन की है।

हीरापुर (बर्नपुर) में (जो कुल्टी से ९ मील दूर है) लोहे की ढ़ली हुई वस्तुएँ बनाई जाती हैं। यहाँ केवल गला हुआ लोहा ही बनाया जाता है। यह दोनों कारखाने एक ही प्रबन्ध में हैं।

१९५३ में बंगाल स्टील कारपोरेशन कम्पनी को इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी में मिला दिया गया।

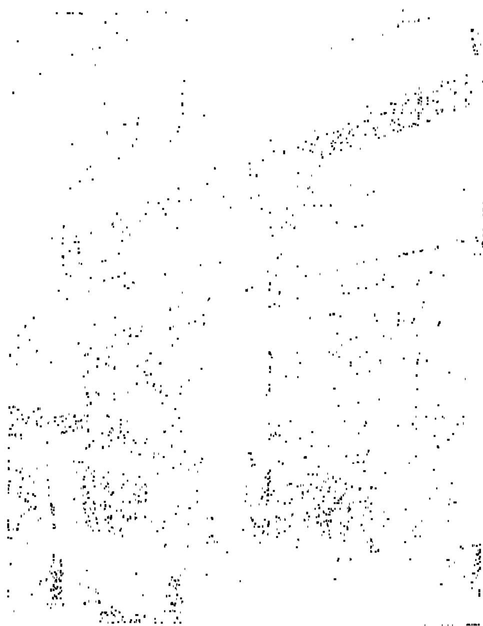
इस कारखाने की विस्तार योजना में एक नया प्लांट लगाना, लगे प्लांट का अद्यतनीकरण करना और खान से कच्चा लोहा निकालने का नियंत्रण, ये बातें भी सम्मिलित हैं। १९५६-१९६१ की अवधि में यहाँ बिक्री योग्य इस्पात का उत्पादन ३००,००० टन से बढ़ कर ८००,००० टन और कच्चा लोहा ४ लाख टन प्रतिवर्ष हो जायेगा। इस राशि में इस्पात बनाने के लिए इस कारखाने को निम्न परिमाण में वस्तुओं की आवश्यकता होगी। कोयला २४·६ लाख टन; कच्चा लोहा २१·८ लाख टन; मैंगनीज ४० हजार टन; चूने का पत्थर ६·५ लाख टन; डोलोमाइट ४० हजार टन; फैरोसिलीकन ७·५ हजार टन; गन्धक १२ हजार टन और स्वैल्टर ५ हजार टन। इस विस्तार योजना में ४९·२२ लाख रुपये व्यय होंगे।

भारतीय लोहे और इस्पात के कारखाने का वर्तमान उत्पादन

	१९५३-५४	१९६० (३१ मार्च)
कोक	७२४,६१९ टन	—
ढला लोहा	५७९,४४० टन	१,५६८,४०० टन
इस्पात	३४७,००० टन	१,५३३,७०० टन
इस्पात की वस्तुएें	२९१,७४७ टन	१,२१५,००० टन

(ग) मैसूर लोहे और इस्पात का कारखाना (MISW)—पश्चिमी बंगाल और बिहार के बाहर केवल एक ही लोहे का कारखाना है जो मैसूर राज्य में भद्रावती नामक स्थान पर है। जो भद्रा नदी की घाटी में है। यहाँ यह घाटी ८ मील चौड़ी है अतः कारखाने के लिए उपयुक्त भूमि उपलब्ध है। यह स्थान भद्रावती की घाटी में बिरूर-शिमोगा रेल लाइन पर है। इसके समीप ही बहुत बड़े जङ्गल हैं जिनकी लकड़ी के कोयले से लोहा गलाया जाता है क्योंकि पश्चिमी बंगाल और बिहार से यहाँ कोयला मँगा कर लोहा गलाना बड़ा खर्चीला पड़ता है। भारत में केवल यही एक कारखाना ऐसा है जहाँ लकड़ी का कोयला काम में आता है। यहाँ के लिए कच्चा लोहा बाबाबूदन की पहाड़ियों में स्थित केमानगुड़ी की खानों से (जो भद्रावती से

केवल २६ मील दूर है), आता है। चूने का पत्थर भांडीगुड़ा की खानों से (जो भद्रा वती से १३ मील पूर्व में है) आता है। इस कारखाने में लकड़ी से एलकोहल तथ लकड़ी का तार तैयार किया जाता है। यहाँ लोहे के मैल का उपयोग करने के लि सीमेंट का कारखाना अभी थोड़े दिनों पहले ही खोला गया है।



चित्र १४८—भद्रावती के इस्पात का कारखाने का भीतरी भाग

मैसूर की लोहे और इस्पात की माँग इतनी अधिक हो गई है कि इस कारखाने का विस्तार आवश्यक हो गया है। अतः इसके लिए निकटवर्ती महात्मा गांधी प्रपात से बिजली बनाई जाने लगी है। इसकी सहायता से इस्पात बनाने की दो भट्टी चलाई जाती हैं जिनकी प्रत्येक की वार्षिक उत्पादन क्षमता लगभग ३३,००० टन है। वर्तमान वार्षिक क्षमता को लगभग ३४,५०० टन से बढ़ा कर लगभग १००,००० टन किया जा सकेगा।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में इस उद्योग का अभी तक विदेशों की भाँति पूर्ण विकास नहीं हुआ है। इसका एक मुख्य कारण देश में औद्योगिक उन्नति का पूरा न होना है। भारत में अभी भी ऊँचे किस्म की कटलरी, इस्पात और रेलों आदि का सामान नहीं बनाया जाता। यहाँ मुख्यतः ढला लोहा, छड़ें, इस्पात के नल, चादरें, इनामेल वेयर्स, खूँटियाँ, तार, रेल के डिब्बे आदि ही बनाये जाते हैं। भारत में ढला लोहा बनाने की सुविधायें बहुत हैं, अतः विश्व में सबसे सस्ता ढला लोहा यहीं तैयार किया जाता है। इसके मुख्य कारण ये हैं :—

(१) यहाँ कच्चे लोहे में फास्फोरस केवल नाम मात्र को—(·२५%) है, जब कि यूरोप की धातु में १½% तक फासफोरस पाया जाता है।

(२) हमारे देश के कोयले में गंधक का प्रायः अभाव है, जब कि यूरोप तथा अमेरिका के कोयले में काफी गंधक रहता है, जिसको दूर करने में कुछ व्यय लगता है।

(३) हमारे यहाँ कच्ची धातु में लोहे का अंश ६० से ६९% तक रहता है। इसकी अपेक्षा यूरोप में यह अंश केवल ४०% और अमेरिका में ५०% ही होता है।

भारत में इस्पात का उत्पादन और प्रति व्यक्ति पीछे वार्षिक उपभोग अन्य देशों की तुलना में बहुत ही नगण्य है, जैसा कि नीचे दिए गए आँकड़ों से ज्ञात होगा :—[1]

देश	कच्चा इस्पात (१० लाख लाँग टनों में)	इस्पात (००० मैट्रिक टन)	उपभोग (प्रति व्यक्ति पीछे पौंड में)
भारत	१·७०	१,७१२	१२
आस्ट्रेलिया	२·२१	२,१५१	४८०
सं० रा० अमरीका	१०४·४०	८०,११५	१,२३७
रूस	४०·५९	४१,४००	२४०
इंगलैंड	१९·७९	१८,८१७	६२८
फ्रांस	१२·३९	१०,५२७	३२२

पिछले कुछ समय से देश में ढले लोहे और इस्पात का उपभोग बढ़ रहा है। १९५२ में यह क्रमशः ३,२५,८६६ टन और १,१३,१०० टन था। १९५५ में यह ४,४६,८०८ टन और १,८८,१०० टन हो गया।

भारत से ढले लोहे का निर्यात मुख्यतः कलकत्ते के बन्दरगाह से इंगलैंड, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका, जापान और चीन को होता है। पुराना लोहा व इस्पात पुनर्निर्माण के लिए जापान और इंगलैंड को भेजा जाता है। नीचे की तालिका में निर्यात बताया गया है :—

वर्ष	पुराना लोहा व इस्पात पुनर्निर्माण के लिये (००० टन)	इस्पात व लोहे का सामान (मूल्य लाख रुपयों में)
१९५०-५१	२	७८
१९५१-५२	४३	१२१
१९५२-५३	४७९	११०
१९५३-५४	२३९	११३
१९५४-५५	११८	११२
१९५५-५६	१८३	१२७

इस्पात के नये कारखाने

भारत में प्रतिवर्ष लगभग २८ लाख टन इस्पात की आवश्यकता होती है किन्तु

1. Eastern Economist Annual, 1956.

उत्पादन होता है केवल १० लाख टन ही। ढले लोहे का हमारी वार्षिक आवश्यकता ४ लाख से ४·२ लाख टन तक की होती है। अतः प्रथम व द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत इस्पात और ढले लोहे का उत्पादन बढ़ाने हेतु सरकार ने अँग्रेज, रूसी और जर्मन इन्जीनियरिंग फर्मों से भारत में तीन नये इस्पात के कारखाने खोलने का समझौता किया है। इन तीन नये कारखानों के अतिरिक्त वर्तमान कारखानों की क्षमता भी बढ़ाई जाएगी।

द्वितीय योजना काल में ढले लोहे की आवश्यकता ७५,००,०० टन की होगी। ढले लोहे और इस्पात की उत्पादन क्षमता तथा वास्तविक उत्पादन इस प्रकार होगा :

	१९५५-५६		१९६०-६१	
	क्षमता	उत्पादन	क्षमता	उत्पादन
	(दस लाख टन)		(दस लाख टन)	
तैयार इस्पात	१३	१३	४६·८	४३·०
ढला लोहा	३·८	३·८	९·८	७·५

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ६० लाख टन इस्पात की ईंटें (अर्थात् ४३ लाख टन इस्पात) उत्पादन करने की योजना है।

नीचे के आँकड़ों से इस्पात के उत्पादन का अनुमान लग जायेगा।

	वर्तमान क्षमता (तैयार इस्पात)	क्षमता में वृद्धि (तैयार इस्पात)
वर्तमान योजनाओं में वृद्धि		
टाटा लोहे और इस्पात का कारखाना	८५०,००० टन	१,५००,००० टन
इंडियन लोहे और इस्पात का का०	३५०,००० टन	८००,००० टन
मैसूर लोहे और इस्पात का कारखाना	३४,५०० टन	१००,००० टन
नई योजनाएँ		
रूरकेला	—	७२० ००० टन
भिलाई	—	७७०,००० टन
दुर्गापुर	—	७९०,००० टन
योग		४,६८०,००० टन

जब १९६० के बाद नई योजनायें कार्यान्वित हो जायेंगी तो कच्चे लोहे का उत्पादन इस भाँति होगा :—

कंपनी	ब्लास्ट भट्टे	वार्षिक उत्पादन	बिक्री योग कच्चा लोहा
टाटा लोहे और इस्पात की कं०	६	१७,००,००० टन	९०,००० टन
भारतीय ,, ,,	४	१२,००,००० ,,	२,८०,००० ,,
मैसूर ,, ,,	३	६०,००० ,,	३०,००० ,,
हिन्दुस्तान स्टील	३	१०,००,००० ,,	५०,००० ,,
भिलाई स्टील	३	११,१०,००० ,,	३,२१,००० ,,
दुर्गापुर स्टील	३	११,२५,००० ,,	३,५०,००० ,,
योग	२२	६१,९५,००० टन	११,२१,००० टन

इस सब के फलस्वरूप द्वितीय योजना के अन्त में ६० लाख टन इस्पात तैयार होने लगेगा—३० लाख टन नये कारखानों से और शेष वर्तमान कारखानों की विस्तृत योजनाओं से।

पहला कारखाना उड़ीसा में रूरकेला नामक स्थान पर; दूसरा कारखाना मध्यप्रदेश में भिलाई में और तीसरा कारखाना पश्चिमी बंगाल में दुर्गापुर नामक स्थान पर बनाये गये हैं। पहला देमाग और क्रप्स नामक जर्मन कम्पनियों के साथ; दूसरा रूसी कम्पनी के साथ और तीसरा वृटिश कम्पनी के साथ स्थापित किए गये हैं। इन तीनों कारखानों की उत्पादत क्षमता इस प्रकार होगी :—[1]

कारखाना	कोयले से कारबन बनाना		ढला लोहा	इस्पात के पिंड	तैयार इस्पात	विक्री के लिए अतिरिक्त ढला लोहा	शक्तिगृह Kw
कोयले का कारबन (मात्रा १० लाख टन में)							
रूरकेला	१·६	१·०८	·६४	१·०	·७२	·०३	७५,०००
भिलाई	१·६५	१·१४	१·११	१·०	·७७	·३०	२४,०००
दुर्गापुर	१·८२	१·३१	१·२७	१·०	·७६	·३५	१५,०००

(i) हिन्दुस्तान स्टील वर्क्स, रूरकेला—रूरकेला से कुछ पश्चिम की ओर साँख और कोइल नदियाँ ब्राह्मणी नदी में गिरती हैं। इस्पात के इस कारखाने के लिये २० लाख टन खनिज लोहे, ५,००,००० टन चूने के पत्थर और १,५०,००० टन खनिज मैंगनीज की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त १६ लाख टन कोयला भी आवश्यक होगा। अतः इस्पात के कारखाने के लिये वही स्थान आदर्श माना जा सकता है जहाँ समीप ही कोयला और उपर्युक्त अन्य कच्चे माल उपलब्ध हो सकें।

रूरकेला से केवल ५० मील की दूरी पर बोनाई रियासत में तालडीह नामक स्थान पर अच्छे खनिज लोहे की बड़ी-बड़ी खानें हैं। यहाँ ७,००० लाख टन धातु के भन्डार पाये जाने का अनुमान है। चूने का पत्थर बिरमित्रापुर में और खनिज मैंगनीज भी निकट ही उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त १६ लाख टन कोयला, लगभग १५० मील की दूरी पर स्थित बोकारो नामक स्थान से और लगभग २०० मील की दूरी पर स्थित झरिया से लाना पड़ेगा। किन्तु समीप ही २६ लाख टन खनिज और चूने उपलब्ध होने के सम्मुख कोयला ढोने की उपर्युक्त कठिनाई विशेष महत्व नहीं रखती।

इस्पात के कारखाने के समीप जल की पर्याप्त उपलब्धि आवश्यक है। कारखाने और इसके आस-पास बसे नगर को बहुत अधिक परिमाण में १२५ घनफुट प्रति सैकिंड की अनवरत जलधारा अथवा प्रतिदिन लगभग ७०० लाख गैलन जल की आवश्यकता होगी। अतः ब्राह्मणी और महानदी नदी के जल का प्रवाह पूरे वर्ष जल उपलब्ध करने के लिये पर्याप्त होगा।

लपट वाली पहली भट्ठी फरवरी १९५९ से काम करने लगी है और पूरा कारखाना १९६० के अन्त तक तैयार होकर कार्य करने लगेगा। इस कारखाने में १७० करोड़ रुपया व्यय होगा।

१. Second Five Year Plan :1956, p. 396.

कारखाना पूरा हो जाने पर उसका स्वरूप होगा कि यहाँ एक बड़ा तापीय शक्ति केन्द्र (Thermal Power Station) होगा जो ७५,००० किलोवाट विद्युत शक्ति तैयार करेगा। शक्ति का वास्तविक उत्पादन कम रहेगा क्योंकि इसकी उत्पादन क्षमता अधिकतम आवश्यकता का सामना करने के लिये सुरक्षित रखी जायगी। इसके अतिरिक्त कारखाने को ४०,००० से ६०,००० किलोवाट विद्युत शक्ति हीराकुण्ड योजना से प्राप्त हो सकेगी। द्वितीय मुख्य विभाग में कोक बनाने वाली भट्टियों की तीन बैटरियाँ होंगी। इसमें से प्रत्येक प्रतिवर्ष ३००,००० टन कच्चा लोहा तैयार कर सकेगी। तैयार किये जाने वाले इस्पात के तीन-चौथाई भाग का उत्पादन एक नयी प्रणाली द्वारा किया जायगा जिसका विकास सर्व प्रथम आस्ट्रिया में लिन्ज (Linz) नामक स्थान पर किया गया था। इसलिये इसे लिजर डुसेन स्टाल (Linzer Dusen Stale) प्रणाली कहा जाता है। गलाया हुआ लोहा बड़े बड़े अण्डाकार बर्तनों में उड़ेल दिया जाता है जिनमें ४० टन वजन आ सकता है। फिर इसमें लगभग २० मिनट तक, ध्वनि से भी अधिक द्रुतगति से आक्सीजन फूंकी जाती है। यह उस प्रकार का इस्पात तैयार करने की शीघ्रता और अपेक्षाकृत कम लागत वाली प्रणाली है जिसे पारिभाषिक रूप से "नरम इस्पात" कहा जाता है। इस प्रकार के इस्पात की आवश्यकता चादरें तैयार करने के लिए होती है। इस्पात का एक चौथाई उत्पादन सीधी खुली भट्टी प्रणाली (Open Hearth Process) द्वारा किया जायगा। पिघलाया हुआ लोहा उन पात्रों में उड़ेल दिया जाता है जिन्हें 'पिण्ड के सांचे' (Ingot Moulds) कहते हैं। उन्हीं में उसे ठण्डा होने दिया जाता है और फिर उसे ८ टन से भी अधिक भारी चतुर्भुजाकार पिण्डों के रूप में निकाल लिया जाता है।

इस्पात कारखानों के शेष भागों को ढलाई कारखाने (Rolling Mills) कहते हैं। यहाँ बड़े बड़े पिंडों को अभीष्ट आकार तथा चौड़ाई की प्लेटों, चादरों तथा पत्तियों का रूप दिया जाता है। पिंडों को पहले 'सोकिंग पिट' (Soking pit) नामक भट्टियों में तपाया जाता है जिससे वे नरम पड़ जाएँ और उन्हें दबा कर अभीष्ट आकार दिया जा सके। एक ओर ये पिंड अपने इसी रूप में भीतर जाते दिखाई देते हैं और दूसरी ओर से वे कुछ इंच मोटी और लम्बी २ सिल्लियों के रूप में निकलते जाते हैं। प्लेट अथवा पत्ती (Strip) के कारखानों में प्रविष्ट होने से पहले इन सिल्लियों को फिर तपाया जाता है। इन कारखानों में से ये सिल्लियाँ बड़ी बड़ी प्लेटों तथा सैंकड़ों गज लम्बी चादरों के रूप में बाहर निकलती हैं।

रूरकेला इस्पात के ढलाई कारखाने की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ केवल चपटे आकार की वस्तुएँ उदाहरणार्थ, अलग-अलग मोटाई की प्लेटें, चादरें, पत्तियाँ और टीन की प्लेटें तैयार की जायेंगी। इनमें से प्रथम की आवश्यकता जहाज अथवा रेल के डिब्बे बनाने तथा अन्य प्रकार के कार्यों के लिये होगी। इसके आस-पास स्थापित होने वाले उद्योगों में से एक में लपट वाली भट्टियों से निकलने वाले मैल द्वारा सीमेंट बनाया जायगा।

(२) भिलाई इस्पात कारखाना—सरकारी क्षेत्र में दूसरा कारखाना मध्य प्रदेश में भिलाई नामक स्थान पर बनाया जा रहा है। इसमें १३१ करोड़ रुपये खर्च होंगे। इस कारखाने की उत्पादन क्षमता १० लाख टन सिल्लियों की रखी गई है जिनसे ७५,००० हजार टन चादरें तैयार की जा सकेंगी। ४ फरवरी १९५९ में कच्चा लोहा और अक्टूबर १९५९ में पहली बार इस्पात का उत्पादन यहाँ किया गया। भिलाई स्थान को निम्न सुविधाओं के कारण चुना गया है :—

(१) इस कारखाने के लिए कच्चा लोहा यहाँ से २० मील दूर धाली राजहरा पहाड़ियों से प्राप्त होगा, इसमें धातु का अंश ६५% तक है। यहाँ लोहे की पहाड़ी २० मील तक ४०० फीट की ऊँचाई में फैली है। कच्चा लोहा हाहालदी, कोंन्डापुखा, चारगाँव और रावघाट में भी मिलता है। द्रुग, चाँदा और बस्तर जिलों में १६,५०० लाख टन के भंडार सुरक्षित हैं।

(२) यहाँ के लिये उत्तम किस्म का कोकिंग कोयला १४० मील दूर से प्राप्त होगा। यहाँ से ६६० लाख टन कोयला मिल सकेगा। इसके अतिरिक्त झरिया और कोरबा का कोयला ६५ : ३५ के अनुपात में मिला कर धातु शोधन के उपयुक्त बनाया जा सकेगा। इसमें कार्बन का प्रतिशत ७६ और राख का अंश २१·४% होगा।

(३) इस कारखाने के लिये प्रतिदिन लगभग १,७५० लाख गैलन साफ जल की आवश्यकता होगी। यह जल-प्राप्ति तंदुला नहर से मिलेगी। गोंदी योजना भी इसमें सहायक होगी।

(४) चूना द्रुग, रायपुर और बिलासपुर जिलों से प्राप्त हो सकेगा जहाँ लगभग १५,००० वर्गमील में कई खानें फैली हैं।

(५) डोलोमाइट भानेवर, कासोंदी, पारसोदा, खरिया, रामतोला और हरदी (बिलासपुर जिले में) तथा भाटपारा और पाटपार (रायपुर) से प्राप्त होगा। यहाँ रेलें, भारी सामान, छड़ें तथा रेल की पटरियाँ बनाई जायेंगी।

(३) दुर्गापुर इस्पात कारखाना—यह कारखाना ब्रिटेन और भारत सरकार के संयुक्त उपक्रम से दुर्गापुर में खोला जा रहा है। इसकी उत्पादन क्षमता १० लाख टन सिल्लियों की होगी। इसको बिहार की खानों से कोयला तथा लोहा प्राप्त होगा। इस कारखाने में १३८ करोड़ रुपये खर्च होंगे। यहाँ कच्चा लोहा गुआ से तथा कोकिंग कोयला झरिया की खानों से प्राप्त किया जायेगा। यहाँ अधिकतर पहिये, टायर, एक्सेल, रेल की पटरियाँ, बिलेट आदि बनाये जायेंगे।

नीचे की तालिका में इन तीनों कारखानों के लिए पड़ने वाली विभिन्न कच्चे माल की आवश्यकताओं को बताया गया है :—

	रूरकेला	भिलाई	दुर्गापुर
		(लाख टन में)	
कोयला	१६·००	१७·९०	१८·३०
कच्चा लोहा	१७·००	१९·४०	१९·४०
मैंगनीज	१·१२	०·३३	०·६४
चूना	५·२३	५·२१	६·१७
डोलोमाइट	०·२८	०·०९	०·४२
बिजली (किलोवाट)	८५,०००	५०,०००	४०,०००

जब उपरोक्त तीनों कारखानों में उत्पादन आरंभ हो जायेगा तो इनमें और कई वस्तुएँ भी तैयार होने लगेंगी।

रूरकेला के कारखाने में लघुतेल (Light Oil); प्रांगविक तेल (Carbolic Oil); उर्त्तरेण्यल तेल (Naphthelene Oil); बॉश आयल, विधामिण्य तेल

(Anthracene Oil) और निराल (Pitch) तैयार करने की व्यवस्था की गई है। लघ्र-तेल से बैंजोल, टूलोल और जिलोल तथा विक्षामेण्य तैयार किया जायेगा। उर्तेरेण्यल से उर्तेरेण्यल तेल तैयार किया जायेगा। इसके अतिरिक्त यहाँ नेत्रजन और उर्वरक नेत्रजन भी बनाया जावेगा।

भिलाई कारखाने में अमोनिया सल्फेट, बैंजोल, टूलोल, जिलीन, सोलवेंट नेपथा, कारबोलिक एसिड, नैपथलीन तेल, एवजार्पशन आयल, ऐन्थ्रासीन आयल, ऐन्थ्रासीन, नैपथलीन, निराल आदि तैयार किये जायेंगे।

दुर्गापुर कारखाने में अमोनिया सल्फेट, बैंजीन, टूलोल, जिलीन, सालवैंट-नेपथा, नैपथलीन और सडकों पर बिछाया जाने वाला कोलतार आदि बनाये जायेंगे।

लोहे और इस्पात का चौथा कारखाना बुकारो में बनाया जा रहा हैं।

तृतीय पंच वर्षीय योजना में इस्पात और कच्चे लोहे के उत्पादन में इस प्रकार वृद्धि की जायेगी :—

कारखानों में वृद्धि	लक्ष्य इस्पात (लाख टन में)	कच्चा लोहा
भिलाई	२५	३
दुर्गापुर	१६	३
रूरकेला	१८	—
मैसूर लोह और इस्पात उद्योग	१	—
बुकारो इस्पात केन्द्र	१०	३·५
योग	७०	९·५

तृतीय योजना के अंत तक १०२ लाख टन इस्पात और १५ लाख टन कच्चे लोहे की बिक्री के लिये आवश्यकता होगी।

रोलिंग मिल्स (Re-Rolling Mills)

भारत में रोलिंग मिलों (Rolling Mills) की स्थापना के पूर्व देश से टूटा-फूटा लोहा और इस्पात (Scrap) बहुत अधिक मात्रा में सं० रा० अमरीका, जापान, इंगलैंड आदि देशों को निर्यात किया जाता था। किंतु १९२० में जब भारत में ही स्क्रेप से छड़ें, लट्ठे तथा अन्य सामान बनाये जाने लगे तो स्क्रेप का निर्यात बन्द हो गया। १९२८ में पहली रोलिंग मिल कानपुर में खुली। अब तो भारत में १४२ रोलिंग मिलें हैं। जिनकी उत्पादन क्षमता ७,१८,००० टन वार्षिक है इन मिलों में से २७ पश्चिमी बंगाल में; २३ उत्तर प्रदेश; ४० पेप्सू; १६ पंजाब; १४ बम्बई; ५ दिल्ली; ५ राजस्थान; ५ मध्य प्रदेश; ३ सौराष्ट्र; २ मद्रास और १-१ बिहार और उड़ीसा में है। इन १४२ मिलों में से ६ की उत्पादन क्षमता प्रत्येक की २०,००० टन वार्षिक से अधिक; और ६ की उत्पादन क्षमता प्रत्येक की १० से २० टन की है।

इन मिलों में से ३० मिलें बिलेट (billet) से और शेष स्क्रेप से रोल करती हैं किंतु कच्चे माल की इन मिलों को बड़ी असुविधा रहती है। आगे की तालिका में इन मिलों का उत्पादन बताया गया है :—

१६४७	४६,६७० टन	१६५१	६८,६६७ टन
१६५०	६५,५७६ ,,	१६५६	१८१,५३३ ,,

(२) अल्यूमीनियम उद्योग (Aluminium Industry)

बाक्साइट धातु से अल्यूमीनियम बनाया जाता है। बाक्साइट की कच्ची धातु को शुद्ध करके ही सफेद रंग का रवेदार पदार्थ **'अल्यूमीना'** प्राप्त किया जाता है। इसे क्रोमाइट के घोल में बिजली की भट्टियों में गला कर अल्यूमीनियम धातु प्राप्त की जाती है। साधारणतः १ टन अल्यूमीनियम बनाने में निम्न मात्रा में विभिन्न पदार्थों की आवश्यकता होती है :—

बाक्साइट	४·५ टन
पैट्रोलियम कोक	०·७५ ,,
पिच	०·२० ,,
कोयला	४·०० ,,
फरनेस-तेल	०·५० ,,
कास्टिक सोडा	०·१६ से ०·२ टन
क्रायोलाइट	०·०७ ,, ०·१० ,,
अल्यूमीनियम फ्लूराइड	०·०३५ से ०·०४ टन
फ्लूरोस्फर	०·००७ से ०·००८ ,,
बिजली	२०,००० से २४,०००० किलोवाट

सौभाग्य से भारत में बाक्साइट के उत्तम जमाव लगभग ३५० लाख टन के हैं और सभी प्रकार के जमाव २,५०० लाख टन के हैं। अतः ५०,००० टन प्रति वर्ष अल्यूमीनियम उत्पादन करने वाले कारखाने १५० वर्षों तक चलाये जा सकते हैं। किन्तु अन्य कच्चा माल कास्टिक सोडा, क्रायोलाइट, अल्यूमीनियम फ्लूराइड तथा कार्बन विदेशों से मंगवाना पड़ता है।

भारत में एलूमीनियम पहले पहल १६४३ में विदेशों से मंगाये गये एलूमीना (Bauxite) धातु से बनाया गया। इस समय भारत में एलूमीनियम बनाने वाले दो बड़े कारखाने हैं जो एलूमीनियम के पिण्ड बनाते हैं।

(१) पहला कारखाना **दी इण्डियन एलूमीनियम कम्पनी** है जिसमें लगभग २ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है और लगभग १½ हजार मजदूर काम करते हैं। बाक्साइट के क्षेत्र, शक्ति के साधन और आर्थिक व्यवस्थाओं के कारण इस कम्पनी का कार्य भिन्न-भिन्न स्थानों में किया जाता है—(अ) बाक्साइट की खानें बिहार में लोहारडागा जिले में हैं जहाँ से प्रति महीने १ हजार टन धातु निकाला जाता है। (ब) एलूमीनियम साफ करने का कारखाना बिहार में मुरी नामक स्थान पर है, यहाँ कच्ची धातु से एलूमीना बनाया जाता है। वार्षिक उत्पत्ति लगभग ५,००० टन है। (स) एलूमीना से एलूमीनियम बनाने का कारखाना (Reduction and Extrusion Works) केरल राज्य में अलवाये के निकट अलूपुरम् में है क्योंकि यहाँ पापानासम् जल-विद्युत शक्ति गृह से सस्ती बिजली प्राप्त हो जाती है। (द) बंगाल में हावड़ा के निकट एलूमीनियम के पिण्ड बनाने का कारखाना (Rolling Mill) कलकत्ता के निकट बैलूर में है तथा पाऊडर और पेस्ट बनाने का कारखाना महाराष्ट्र में थाना के निकट कलवा में है।

(२) **एलूमीनियम कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड** नामक दूसरी कम्पनी का कारखाना बिहार में आसनसोल के निकट जे० के० नगर में स्थित है। इसमें ६०

लाख की पूंजी लगी है तथा लगभग १,५०० मजदूर काम करते हैं। यह पूरी तौर पर स्वावलम्बी कारखाना है क्योंकि एलूमीना को ठीक करने, वैज्ञानिक विश्लेषण करने और उसको गला कर पिण्ड बनाने का सभी काम एक ही स्थान पर होता है।

इन दोनों कारखानों की सम्मिलित उत्पादन क्षमता ७,२०० से ७,५०० टन एलूमीनियम पिण्ड तैयार करने की है। अल्यूमीनियम के बर्तन तथा अन्य वस्तुओं को ढालने के लिये उपरोक्त कारखानों के अतिरिक्त अनेक छोटे छोटे कारखाने उत्तर भारत में हैं।

नीचे की तालिका में एल्यूमीनियम का उत्पादन दिया गया है :—

१९४८	३,३६२ टन	१९५४	४,८८६ टन
१९४९	३,४९० ,,	१९५५	७,२२५ ,,
१९५०	३,६६६ ,,	१९५६	६,५०० ,,
१९५१	३,८४८ ,,	१९५७	७,७७१ ,,
१९५२	३,५६६ ,,	१९५८	८,१८२ ,,
१९५३	३,७५८ ,,	१९५९	७,०५३ ,,

भारत में अल्यूमीनियम की मांग लगभग २० हजार टन वार्षिक की है, जब कि यहाँ की उत्पादन क्षमता ७,२०० से ७,५०० टन एल्यूमीनियम पिंड तैयार करने की ही है। अतः शेष मात्रा विदेशों से सं० रा० अमरीका, कनाडा आदि देशों से आयात करके पूरी की जाती है। द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अन्त में यह मांग बढ़ कर ४० हजार टन की होने का अनुमान लगाया गया है। इसमें से १३,००० टन A.C.S.R. और A.A.C. तारों में; ८,००० टन बर्तन बनाने में; ३,५०० टन गाड़ी के डिब्बों आदि के लिए चादरें बनाने में; ५०० टन पाऊडर और पेस्ट बनाने में; १,००० टन एक्सट्रूजन और कास्टिंग बनाने में; १,००० टन भवन निर्माण क्रिया में; ५०० टन कनस्तर आदि बनाने में और २,५०० टन फॉयल स्टाक बनाने में होगा। इस योजना के अंत में २५ हजार टन के उत्पादन का आयोजन किया गया है। इसकी पूर्ति के लिए हीराकुंड बांध के समीप एक कारखाना ७½ करोड़ रुपये की लागत से **'अल्यूमीनियम लिमिटेड ऑफ कनाडा'** के सहयोग से बनाया गया है। यह प्रति वर्ष आरम्भ में १०,००० टन अल्यूमीनियम बनाया करेगा किंतु अन्ततः इसकी उत्पादन क्षमता २०,००० टन तक होगी। यह १९५८ तक समाप्त हो गया है। रिहान्द योजना से भी पूरा होने पर इतना ही अल्यूमीनियम तैयार किया जायेगा। एक दूसरा कारखाना मद्रास राज्य में मैट्टूर नामक स्थान पर खोलने का निश्चय किया गया है जहाँ १०,००० से २०,००० टन अल्यूमीनियम बनाया जा सकेगा। वर्तमान कारखानों का विस्तार कर अल्वाये में ५,००० टन तथा आसनसोल में ७,५०० टन अल्यूमीनियम बनाया जायेगा। इस प्रकार १९६०-६१ में हमारी उत्पादन क्षमता ३० हजार टन और वास्तविक उत्पादन २५,००० टन का होगा। १९६५-६६ में लक्ष्य ८२,५०० टन का है। इसके लिये तृतीय योजना में निम्न प्रकार से वृद्धि की जायेगी :—

(i) हीराकुंड के कारखाने में १०,००० टन प्रति वर्ष की वृद्धि की जायेगी।

(ii) रिहान्द में एक स्मैल्टर लगाया जायेगा जिसकी वार्षिक क्षमता २०,००० टन की होगी।

(iii) एक एक स्मैल्टर कोयना में २०,००० टन और सलेम में १०,००० टन की वार्षिक क्षमता के और लगाया जायेगा।

अध्याय २७

इंजीनियरिंग उद्योग
(Engineering Industries)

निर्माण कला के आधार भूत उद्योग धंधे व्यवहारिक रूप में भारत में प्राय: नहीं के बराबर हैं। इन उद्योग-धंधों के बिना देश की औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकती। हमारे कुछ उद्योग धंधे—कपास, जूट, शक्कर, सीमेंट और सूत के उद्योग तो काफी विकास कर चुके हैं किन्तु इन उद्योग-धंधों की मशीनें अभी तक हमारे यहाँ बहुत ही कम बनाई जाती हैं। प्राय: सभी मशीनें विदेशों से मंगवानी पड़ती हैं। इन उद्योगों की प्रगति के लिए विशेष तौर से शिक्षित कुशल मजदूरों की व्यवस्था, *यातायात की पूर्ण सुविधा, रेलवे किराये में सहानुभूति पूर्ण नीति का पालन,* उदार कर नीति, सस्ते दामों पर अच्छे कोयले की व्यवस्था आदि का होना आवश्यक है।

निर्माण कला संबंधी उद्योगों में कई प्रकार के उद्योग सन्निहत हैं। इनके अन्तर्गत स्ट्रकचरल इंजीनियरिंग (जिसके अन्तर्गत पुल आदि बनाना, तेल के कुँए, हैंगर्स आदि दूसरे इस्पात के कामों का निर्माण करना आता है); औद्योगिक प्लान्ट और मशीनरी के निर्माण का उद्योग; एंजिन बनाने का उद्योग, मोटर आदि बनाने का उद्योग; हवाई जहाज बनाने का उद्योग; मशीनटूल्स (जिसके अन्तर्गत वे तमाम यांत्रिक उपकरण आ जाते हैं जो लकड़ी या धातु के काटने, पालिश करने या उन पर काम करने के लिये आवश्यक होते हैं); हल्की निर्माण कला के उद्योग (साइकल, सिलाई की मशीनें, लालटेन बनाने के उद्योग); बिजली के सामान संबंधी उद्योग (पंखे, बत्तियाँ, मोटर्स, तार, सूखी बैटरीयाँ, प्लग, ट्रान्सफोर्मर्स आदि) डीजल एंजिन संबंधी उद्योग; विद्युत की मशीनें; रेडियो और टेलीफोन के सामान बनाने का उद्योग आदि उद्योगों का समावेश किया जाता है।

निर्माण कला उद्योग में कच्चे इस्पात से पक्के इस्पात का बनाना (Steel forging) और पेंट करना, मशीनिंग, ड्रिलिंग तथा रिवेटिंग आदि की क्रियाएँ (Steel fabrication) जिनके द्वारा 'रोल्ड स्टील' को जिस काम में वह आने वाला हो उसके योग्य बनाया जाता है—भी आ जाती हैं। इन उद्योगों की गिनती आधार भूत उद्योगों में की जाती है और इनकी प्रगति लोहे और इस्पात के उद्योग पर ही अधिकांश में निर्भर होती है। भारत में इन उद्योगों के लिए कच्चे माल की उपलब्धता है किन्तु अभी कुशल मजदूरों की नितांत कमी है।

१. इस्पात के ढांचे बनाने का उद्योग :

ढांचा निर्माण उद्योग एक महत्वपूर्ण विशिष्ट उद्योग है जिसके लिए बड़े वर्कशॉपों की तथा बहुत से मशीनी उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। इसके प्रशिक्षित तथा अनुभवी इंजीनियरों और कुशल कारीगरों की भी आवश्यकता होती है। अनेक उद्योगों के विपरीत ढांचा निर्माण उद्योग एक-सी ही वस्तुऐं नहीं बनाता बल्कि यह तो जैसे ढाँचे की मांग हो, वैसा ही ढांचे बनाता है। दूसरे शब्दों में उन्हीं

मशीनों का अनेक प्रकार के ढाँचे बनाने में प्रयोग किया जाता है। इस देश में इस उद्योग का श्रीगणेश इस शताब्दी के आरम्भ में स्थापित किये गये इंजीनियरी के कारखाने में हुआ जिससे रेलों तथा सरकारी निर्माण विभागों आदि की जरूरतें पूरी की जा सकें। प्रतिरक्षा विभाग की अत्यधिक माँग के कारण यह उद्योग दूसरे महायुद्ध के दिनों में खूब बढ़ा-पनपा। महायुद्ध के बाद यद्यपि निर्माण कार्यक्रमों की बहुत माँग रही फिर भी इस्पात की कमी के कारण यह उद्योग अपनी पूरी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं कर सका। लेकिन हाल ही में इस स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गया है।

विभिन्न प्रकार के ढाँचे :

अधिक सामान्य किस्मों के जो ढाँचे बनाये जाते हैं उन्हें मोटे तौर पर निम्न शीर्षों के अंतर्गत रखा जा सकता है :—

(१) वर्कशापों, मालगोदामों, बिजलीघरों, विमानशालाओं आदि के लिये आवश्यक ढाँचे।

(२) सड़क, रेल तथा नदियों के पुलों, जहाजों पर से उतरने के स्थान तथा जहाज घाटों के ढाँचे।

(३) इस्पात संयंत्र, कोक भट्टी संयंत्रों, सीमेन्ट, कागज मिल, रासायनिक संयंत्रों आदि के लिये आवश्यक ढांचे।

(४) मशीनों द्वारा सामान इधर-उधर पहुँचाने के क्रेनों, विन्चों तथा डैरिकों जैसे उपकरणों के लिये इस्पात के ढांचे।

(५) पानी में प्रयोग किये जाने वाले इस्पात के ढांचे जैसे नहर आदि में पानी छोड़ने या रोकने के फाटक, उन फाटकों को चलाने वाले गीयर, बाढ़ का पानी निकालने वाले फाटक। ये ढांचे जल-विद्युत तथा सिंचाई योजनाओं के काम आते हैं।

(६) रस्सों तथा तारों के बने हुये वायुयानों से सामान इधर-उधर हटाने के उपकरण जैसे पिंजड़े, ट्राली तथा सहायक पाढ़े आदि।

(७) विद्युत प्रेषक स्तंभ।

(८) पानी तथा तेल भरने के लिये इस्पात की की ढाली हुई अथवा झाली हुई टंकियाँ।

(९) ढालकर, झालकर अथवा रिपट लगाकर बनाये गये अन्य विविध प्रकार के ढांचे।

इनके अतिरिक्त रेल के माल ढोने के डिब्बे, डिब्बों के नीचे लगने वाले ढांचे, सवारी डिब्बे, सिगनल के सामान तथा जहाजों के निर्माण में भी ढांचों का बहुत प्रयोग करना होता है।

उत्पादन क्षमता :

इस समय ढाँचे बनाने का काम ६९ कारखानों में होता है। इन ६९ कारखानों की कुल उत्पादन क्षमता लगभग १,२६,००० टन है। विभिन्न राज्यों में यह क्षमता निम्न प्रकार है :—

राज्य	कारखानों की संख्या	उत्पादन क्षमता एक पाली के आधार पर (टन)
पं० बंगाल	२५	७८,१४४
गुजरात + महाराष्ट्र	२४	३०,१२०
मद्रास	१०	४,६८०
बिहार	३	७,६८०
उत्तर प्रदेश	१	४८
मध्य प्रदेश	१	१०८
दिल्ली	१	४००
अन्य राज्य	४	४,६७६
योग	६९	१,२६,४५६

आधे से अधिक कारखाने छोटे-छोटे हैं और उनकी उत्पादन क्षमता १,००० टन वार्षिक से भी कम है। यद्यपि ढांचे बनाने वाली फर्में महाराष्ट्र और मद्रास में, बिहार में (इस्पात के कारखानों के पास) तथा देश के आन्तरिक भाग में स्थित एक महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र कानपुर में हैं तथापि फिलहाल यह उद्योग मुख्य रूप से कलकत्ते के आस-पास ही है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों में जो कारखाने हैं, वे मुख्य रूप से हलके ढांचे ही बनाते हैं।

इन्जीनियरी उत्पादन क्षमता का सर्वेक्षण करने वाली समिति के अनुसार २५ प्रतिशत क्षमता का उपभोग भारी ढांचे बनाने में, ४० प्रतिशत कम भारी ढांचे बनाने में और ३५ प्रतिशत क्षमता का प्रयोग हलके ढांचे बनाने में किया जा सकता है। भारी ढांचे बनाने की कुल क्षमता का ७० प्रतिशत भाग देश के पूर्वी प्रदेश में तथा शेष भाग पश्चिमी प्रदेश में है। कम भारी तथा हलके ढांचे बनाने की अधिकांश क्षमता पूर्वी तथा पश्चिमी प्रदेश में है।

कच्चा माल :

ढांचा निर्माण उद्योग में विभिन्न वर्गों के हलके तथा भारी ढांचों, प्लेटों, कम तथा तेज तनाव रोकने वाली इस्पात की सलाखों, बोल्ट तथा ढिबरियों, रिपटों, ढाले हुए लोहे और इस्पात, जस्ता चढ़ी चादरों और तारों को कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है। ये सभी वस्तुएँ देश में ही तैयार होती हैं और कभी-कभी कमी पूरी करने के लिये इनका आयात भी किया जाता है, विशेष रूप से चौड़ी प्लेटों तथा ढांचों के उन भागों का भी आयात किया जाता है, जिनकी ढलाई भारत के कारखानें नहीं कर सकते हैं। हाल के वर्षों में इस उद्योग को जिन प्रमुख कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनमें से दो प्रमुख कठिनाइयाँ लोहे की सामान्य कमी तथा आयातित इस्पात के ऊँचे दाम होने की है दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में इस्पात उद्योग के विस्तार हो जाने से ढांचा निर्माण उद्योग के विकास मार्ग की बड़ी बाधा दूर हो जायगी। इसी प्रकार भारी ढलाई-घर तथा भारी गलाई-घर स्थापित होने से यह आशा है कि भारी ढलाई और गलाई की आवश्यकतायें भी पूरी हो जायँगी।

इस उद्योग में करीब ११-१२ करोड़ रु० लगा हुआ है।

दूसरी योजना में बने बनाये ढांचों की माँग मुख्यत: निम्न कारणों से बढ़ेगी :—

(१) इस्पात उद्योग का विस्तार। अनुमान है कि तीन नये इस्पात कारखाने स्थापित करने के सिलसिले में २३ लाख टन ढांचे १९५७ से लेकर १९६० तक बनाने पड़ेंगे।

(२) नंगल, रूरकेला, तथा नेवेली में खाद बनाने के तीन कारखानों की स्थापना जिनकी कुल क्षमता २,३०,००० टन स्थायी नाइट्रोजन बनाने की होगी।

(३) अन्य प्रमुख औद्योगिक संस्थानों की स्थापना जैसे बिजली का भारी सामान बनाने का संयंत्री ढलाईघर तथा भारी गलाईघर और छोटी रेल्वे लाइन के सवारी डिब्बे बनाने का कारखाना।

(४) कालटैक्स के पेट्रोल शोधक कारखाने की स्थापना।

(५) सीमेन्ट, भारी रासायनिक पदार्थ, चीनी तथा कागज बनाने की मिलों की स्थापना।

(६) हीराकुण्ड में १०,००० टन अलूमीनियम शोधने का कारखाना तथा इतने ही बड़े दूसरे कारखाने की स्थापना।

(७) उष्मा विद्युत के संयंत्रों की स्थापना जिनकी कुल क्षमता ११ लाख किलोवाट होगी।

(८) कोरबा तथा अन्य स्थानों में नयी कोयला खानों का विकास, दक्षिणी अरकाट में लिगनाइट की खानों का विकास तथा कोल भट्टी संयंत्रों की स्थापना।

अनुमान है कि इन सब विकास कार्यक्रमों के लिये इस्पात के ढाँचे बनाने की, जिसमें दूसरी योजना के अन्तर्गत रेल के वैगन बनाने की मांग भी सम्मिलित है, औसत मांग ४,५०,००० टन प्रतिवर्ष के स्तर की होगी और १९६०-६१ तक यह माँग बढ़ कर ५ लाख टन प्रतिवर्ष हो जायगी।

२. जहाज बनाने का उद्योग (Ship-Building)

जहाज-निर्माण उद्योग के लिए दो बातें मुख्य हैं। प्रथम तो जहाँ जहाज बनाये जावें वहाँ ऐसी नदी हो जिसमें बड़े-बड़े जहाज चलाये जा सकें और नदी उस स्थान से समुद्र तक खेने योग्य हो। दूसरी आवश्यकता यह है कि उसके निकट जहाज बनाने का सामान सरलता से उपलब्ध हो सके। पहले जब जहाज लकड़ी के बनाये जाते थे तो उनके केन्द्र उन स्थानों पर थे जहाँ पर या तो लकड़ी मिलती थी या बाहर से सरलतापूर्वक मँगाई जा सकती थी। परन्तु जब से लोहे के जहाज बनाये जाने लगे ये केन्द्र हट कर उन स्थानों पर चले गये जहाँ लोहा तथा कोयला उपलब्ध है।

भारत में समुद्री जहाज बनाने का धंधा (Ship Building Industry)

द्वितीय महायुद्ध के पहले तक कलकत्ता और विजगापट्टम में केवल नावें ही बनाई जाती थीं अथवा जहाजों की मरम्मत होती थी, किन्तु सन् १९४१ में सिंधिया कम्पनी ने विशाखापट्टम में समुद्री जहाज बनाने का उद्योग आरम्भ किया जिसमें अब तक कई प्रसिद्ध जलयान बन कर अवतरण कर चुके हैं। यहाँ जहाज बनाने के उद्योग को निम्न सुविधायें प्राप्त हैं :—

(१) यह बन्दरगाह पूर्वी तट पर कलकत्ता और मद्रास के केन्द्रवर्ती भाग में स्थिति है अतः दोनों ओर से आने-जाने की सुविधा है।

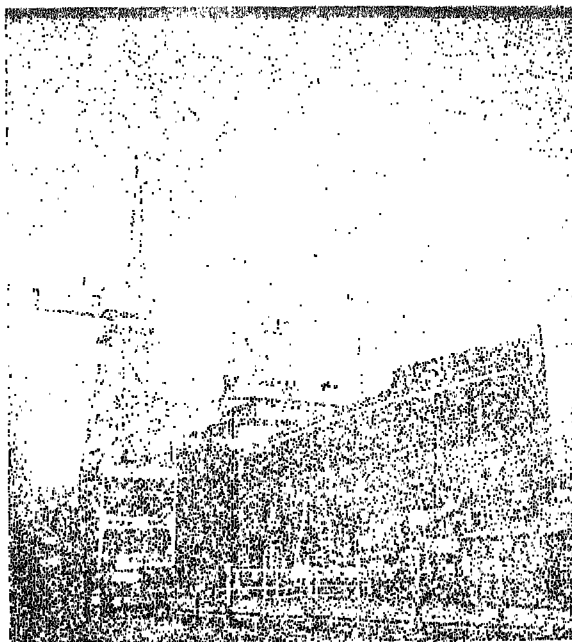
(२) इसका बन्दरगाह गहरा है अतः बड़े-बड़े जहाजों के ठहरने की सुविधा है।

(३) बंगाल और बिहार के लोहे तथा कोयले के क्षेत्र बहुत ही निकट हैं। विजगापट्टम दक्षिण-पूर्वी रेलवे द्वारा ताता नगर से जुड़ा है। (जो केवल ५५० मील दूर है) अतः इस्पात मिलने की सुविधा है।

(४) जहाज बनाने के उपयुक्त मजबूत लकड़ी बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर के जंगलों से प्राप्त हो जाती हैं।

(५) कुशल और दक्ष मजदूर बंगाल और मद्रास से आ जाते हैं।

(६) छोटा नागपुर से अच्छे किस्म की लकड़ी भी मिल जाती है जो जहाज निर्माण में डेक, कमरे आदि बनाने के काम आती है। १९५२ में विशाखापट्टम पोत-निर्माण क्षेत्र हिन्दुस्तान शिपयार्ड कं० लि० के हाथ में आ गया है। इस कम्पनी में भारत सरकार का ७५% और सिंधिया क० का २५% धन लगा है। इस कारखाने में मई १९५६ तक ११ जहाज बनाये जा चुके हैं जिनका वजन ७७,००० DWT १९५१ में भारत की जहाजी शक्ति ३९०,७०७ GRT थी। १९५६ में यह बढ़ कर ६००,७०७ GRT हो गयी। द्वितीय योजना के अंत में यह बढ़ कर ९०१,७०७



चित्र १४९ – विशाखापट्टनम जलयान गृह

GRT हो जायेगी। तृतीय योजना में वह १४·२ लाख टन हो जायेगी। इसमें से १०·८ लाख टन विदेशी व्यापार में और ३·४ लाख टन तटीय व्यापार में होगी। इस कारखाने में ३,४०० व्यक्ति लगे हैं।

समुद्री जहाज बनाने के व्यवसाय का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है क्योंकि जिन कच्चे मालों की आवश्यकता पड़ती है वे भारत में ही मिल जाते हैं। किन्तु मद्रास व बम्बई के बन्दरगाहों में जहाज निर्माण का कार्य नहीं हो सकता। बम्बई लोहा व कोयला उत्पादन केन्द्रों से सैकड़ों मील दूर है तथा मद्रास कृत्रिम बन्दरगाह और पानी छिछला है अत: बड़े जहाजों का बनाना बड़ा कठिन है। कोचीन के समुद्री जलाशय में जहाजों की मरम्मत के लिये उचित सुविधायें हैं।

१९५२ से अब तक इस कारखाने में निम्न मुख्य जहाज बन कर तैयार हो चुके हैं:—

जहाज	भार	स्वामित्व
१. जगरानी	८,०००D.W.T.	ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन
२. जलप्रताप	,,	सिंधिया स्टीमशिप कं०
३. जलपुष्पा	,,	,,
४. भारत-रत्न	,,	भारत-लाइन्स लि०
५. जलपुत्र	,,	सिंधिया स्टीमशिप कं०
६. जलविहार	७,००० D.W.T.	,,
७. जलविजय	,,	,,
८. जलविष्णु	,,	,,
९. स्टेट ऑफ कच्छ	८,०००D.W.T.	ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन
१०. कोर्ट नोजल टग		मद्रास बन्दरगाह
११. एंडमान	४,००० D.W.T.	गृह-मंत्रालय, भारत सरकार
१२. स्टेट ग्राफ उड़ीसा	८,००० D.W.T.	ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन
१३. जलविक्रम	५,००० D.W.T.	सिंधिया स्टीमशिप कं०
१४. जल-वीर		

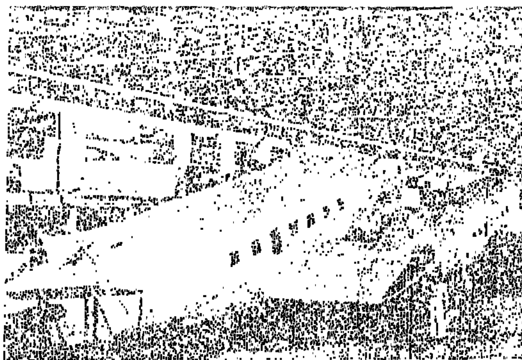
इस कारखाने में १९ जहाज अब तक निर्मित किए जा चुके हैं जिनमें से १२ जहाज ८,००० D.W.T. भार के जलउषा किस्म के जहाज; ४ जहाज ७,००० D.W.T. भार के मेरफार्म डीजल जहाज; २ मेरफार्म किस्म के ८,००० D.W.T. भार वाले जहाज और १ यात्री तथा माल ढोने वाला जहाज।

३. भारत में हवाई जहाज बनाने का उद्योग

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में हवाई जहाज बनाने वाला कोई कारखाना नहीं था। उस समय कुछ इंजीनियरिंग वर्कशॉप मरम्मत आदि का कार्य करते थे। टाटा लाइन्स, इण्डियन नेशनल ऐयरवेज, एयर सर्विसैज आफ इण्डिया आदि कम्पनी इस कार्य में संलग्न थीं, किन्तु द्वितीय महायुद्ध में इस उद्योग की तीव्र आवश्यकता अनुभव हुई। अस्तु १९४० में मैसूर सरकार और वालचन्द हीराचंद की फर्म की साझीदारी में **हिन्दुस्तान ऐयरक्राफ्ट कम्पनी** की स्थापना बंगलौर में की गई। इसकी देखरेख करने को अमेरिकन विशेषज्ञ भी रखे गये और अधिकृत पूँजी ४ करोड़ रुपये रखी गई। १९४१ में भारत सरकार भी इस कम्पनी में हिस्सेदार बन गई। किन्तु अप्रेल १९४२ में भारत सरकार ने सुरक्षा के निमित्त इस कम्पनी को वालचंद हीराचंद से खरीद लिया और अब व्यवस्था सम्बन्धी सारा काम भारत सरकार के ही हाथ में है। इस कम्पनी ने १९४१ में पहला हवाई जहाज बना कर तैयार किया और अब

उसकी प्रगति अच्छी हो रही है। यहाँ 'H. T. 2' नामक वायुयान बनकर समाप्त हो चुका है।

बंगलौर में इस कारखाने की स्थापना के कई कारण थे—(१) हवाई जहाज के लिए एल्यूमिनियम की आवश्यकता होती है जो पास ही ट्रावनकोर के कारखाने से प्राप्त हो जाता है। (२) फौलाद मैसूर राज्य के भद्रावती लोहे के कारखाने से मिल जाता है। (३) दक्षिणी मैसूर में जल विद्युत शक्ति की उन्नति होने के कारण कारखाने के लिए शक्ति भी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। (४) भारतीय वैज्ञानिक संस्था भी बंगलौर में है जिससे टेकनीकल सहयोग भी प्राप्त होता है।



चित्र १५०—बंगलौर में वायुयान के कारखाने का एक भाग

वायुयानों की माँग दिन प्रति दिन बढ़ रही है। शांति के समय इसके द्वारा व्यापार में खूब वृद्धि होती है और युद्ध के लिए इनका होना अनिवार्य है। सामरिक दृष्टि से भारत का बड़ा महत्त्व है। दक्षिण-पूर्वी एशिया और मध्य-पूर्व के बीच होने के कारण हमारी शक्ति में वृद्धि करना आवश्यक है। व्यापारिक दृष्टि से भी भारत के यूरोप और आस्ट्रेलिया के मध्य में स्थित होने के कारण इसका महत्त्व अधिक है क्योंकि इन दोनों महाद्वीपों में आने-जाने वाले वायुयान भारत होकर ही गुजरते हैं। अस्तु, देश में वायुयान बनाने के और अधिक कारखाने खुलने की आवश्यकता है। इसके लिए आसनसोल और जमशेदपुर सम्भावित स्थान हैं क्योंकि यहाँ पर इस व्यवसाय में जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है वे सभी उपलब्ध हैं।

५. भारत में मोटर उद्योग (Motor Building in India)

भारत में औसतन २० करोड़ रुपये से अधिक की मोटरें, मोटर-साइकलें, बसें और उनके विभिन्न भाग आयात किये जाते हैं। देश में लगभग ४.६ लाख मोटर-गाड़ियाँ हैं। देश के विस्तार और जनसंख्या को देखते हुए यह संख्या बहुत कम है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ५६३ लाख, कनाडा में ३५ लाख, ग्रेट ब्रिटेन में ३९ लाख और फ्रांस में ३० लाख मोटर गाड़ियाँ हैं। इस दृष्टिकोण से भारत की दशा बहुत ही दीन है जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा—

प्रति मोटर पीछे जनसंख्या का अनुपात

ग्रेट ब्रिटेन	१५	फ्रांस	१४
कनाडा	८	न्यूजीलैण्ड	४७
सं. रा.अमेरिका	३	ब्राजील	८४
बेल्जियम	१३	जर्मनी	३२
भारत	१,२६६		

भारतीय जनता की आय कम होने तथा उसके रहन-सहन का दर्जा नीचा होने के कारण ही मोटर गाड़ियों की माँग अधिक नहीं है। इसके साथ-साथ दो अन्य असुविधाएं भी हैं—उत्पादन का अधिक मूल्य तथा सड़कों की हीन और पिछड़ी दशा भारत में मोटर गाड़ी बनाने के उद्योग की सबसे बड़ी समस्या घरेलू माँग की कमी होना है और इसी कारण देश में इस उद्योग ने वैसी उन्नति नहीं की जैसी अन्य विदेशी राष्ट्रों ने। भारत-सरकार की ओर से इस उद्योग को संरक्षण प्राप्त है किन्तु फिर भी इस उद्योग की आशातीत प्रगति नहीं हो पाई है क्योंकि विदेशों से आयात की गई पुरानी मोटर-गाड़ियाँ तथा डीजल एंजिन से ट्रकों से भी भारतीय उद्योग को प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है।

उद्योग के केन्द्र :

कुछ समय पूर्व से ही कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विभिन्न भागों में एकत्रित करके मोटर-गाड़ी तैयार करने का उद्योग शुरू किया गया है। इस समय देश में १२ कारखाने हैं, यथा—५ महाराष्ट्र में, ३ मद्रास में, और ४ कलकत्ता में[1]। इनमें ८,००० व्यक्ति लगे हैं। तथा ४२ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है। इन केन्द्रों में विदेशी मोटरों के भागों को मिला कर गाड़ियाँ तैयार की जाती हैं।

कलकत्ता केन्द्र में १९४४ में हिन्दुस्तान मोटर कम्पनी ने काम शुरू किया। इस कम्पनी के पास पूरी मोटर व ट्रक तैयार करने की मशीनें हैं। केवल इन गाड़ियों का शरीर नहीं बन सकता है। ग्रेट ब्रिटेन की मोरिस मोटर कम्पनी तथा संयुक्त राष्ट्र की स्टूडीबेकर कम्पनी के साथ मिलकर 'हिन्दुस्तान' व 'स्टूडीबेकर' गाड़ियाँ भारत में तैयार की जाने की योजना है। कलकत्ता के उत्तर में पारा स्थान पर इस प्रकार के एकत्रीकरण का एक विस्तृत करखाना बनाया गया है।

बम्बई केन्द्र में भी १९४४ में ही कार्य आरम्भ हुआ था। यहाँ की मुख्य कम्पनी प्रीमीयर ऑटोमोबाईल कम्पनी है। इसका सम्पर्क संयुक्त राष्ट्र की चेस्लर ग्रूप से है। यहाँ मोटर कारें व ट्रकें बनाई जाती हैं।

बर्नपुर और जमशेदपुर में इस उद्योग के लिए विशेष सुविधाएँ हैं। ये दोनों ही स्थान लोह-क्षेत्रों के मध्य में स्थित हैं। यहाँ आयात की हुई मशीनों व

1. महाराष्ट्र में : (१) जनरल मोटर्स लि०; (२) फोर्ड मोटर कं०; (३) प्रीमीयर ओटोमोबाइल लि०; (४) महेन्द्र एण्ड महेन्द्र लि०; (५) रूट्स ग्रूफ।
मद्रास में : (१) एडीसन एण्ड कं०; (२) स्टैन्डर्ड मोटर कं०; (३) अशोक मोटर्स।
कलकत्ता में : (१) पेनिन्सुला मोटर कारपोरेशन; (२) फ्रैंच मोटर कं०; (३) हिन्दुस्तान मोटर्स (४) देवार्स गैरेज एण्ड एंजीनियरिंग वर्क्स।

मोटरों के भागों को आसानी से लाया जा सकता है। चूंकि इन केन्द्रों में इंजीनियरिंग उद्योग पहले से ही स्थापित है इसलिये कुशल मजदूरों को भी प्राप्त किया जा सकता है।

वास्तव में मोटर उद्योग निर्माण व एकत्रीकरण दोनों रीतियों का सम्मिश्रण है। संसार के किसी एक मोटर कारखाने में सभी आवश्यक कल-पुर्जे नहीं बनाये जाते। अतः भारत को भी मोटर गाड़ियों के सभी कल-पुर्जे निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है। अस्तु, भारत में भी जो कुछ भागों को बनाया जा सकता है और अन्य कल-पुर्जों की आवश्यकता आयात द्वारा पूरी की जा सकती है। ऐसा अनुमान है कि शीघ्र ही भारतीय उद्योग में मोटर सम्बंधी ७५ प्रतिशत कल पुर्जे बन सकेंगे।

नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा कि भारत में विभिन्न श्रेणी की गाड़ियों का कितना प्रतिशत भाग भारत में ही बनाया जाता है :—

कारें :	
फायट ११००	३१ प्र० श०
हिंदुस्तान एम्बैसेडर	६० ,,
स्टैण्डर्ड वैनगार्ड	३३ ,,
स्टैण्डर्ड १०	३० ,,
ट्रकें :	
लेलैंड	३६ प्र० श०
डॉज (हल्के पैट्रोल)	३७ ,,
डॉज	३३ ,,
डॉज (मध्यम डीजल)	५० ,,
टाटा—मर्सीडीज बैंज	४७ ,,
जीपें :	
विली जीप	५२ प्र० श०

सरकार ने देश में धीरे-धीरे सम्पूर्ण मोटर गाड़ियाँ तैयार करने की नीचे लिखी फर्मों को स्वीकृति दी है। नीचे की तालिका में बताया गया है कि वे किस प्रकार की गाड़ियाँ तैयार करेंगी :—[1]

फर्म का नाम	गाड़ियाँ	ट्रक और यात्री ढोने वाला	वर्तमान क्षमता
(१) हिंदुस्तान मोटर्स, कलकत्ता	हिंदुस्तान १४, स्टूडीबेकर; मौरिस माइनर	स्टूडीबेकर	६,०००
(२) प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स लि०, बम्बई	डॉज, डिसोटो, प्लाईमाऊथ, फायट ११००	डॉज, डिसोटा, फॉरगो	५,०००
(३) स्टैण्डर्ड मोटर प्रोडक्शन्स इण्डिया लि०, मद्रास,	स्टैण्डर्ड वैनगॉर्ड स्टैण्डर्ड ८	—	३,०००

१. Major Industries of India Annual : 1954-55. p. 231

(४) अशोक लेलैंड लि०, मद्रास,	—	लेलैंड (डीजल)	३,०००
(५) टाटा मर्सीडीज बेंज लि०, जमशेदपुर		मर्सीडीज, बेंज (डीजल)	६,०००
(६) महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा, कं० लि०, बम्बई	विलीज जीप		३,०००
		योग	२६,०००

अभी तक भारत में समूची मोटर गाड़ियों का निर्माण आरम्भ नहीं हुआ है। अभी यह देश में बने पुर्जों और विदेशों से आयात किये गये पुर्जों से बनाई जाती हैं। अगली तालिका में मोटर गाड़ियों का उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	कारें	ट्रकें बसें सवारी गाड़ियाँ	योग
१९४९	६,६७२	१५,१३२	२१,८०४
१९५०	६,५८८	८,०१६	१४,६०४
१९५१	१२,३८४	९,८८८	२२,२७२
१९५२	६,९४८	८,३४०	१५,२८८
१९५३	४,९३२	८,९८८	१३,९२०
१९५४	५,४३५	९,०२७	१४,४६२
१९५५	९,५२८	१३,५६०	२३,०८८
१९५६	१२,९६०	१८,६६३	३१,६२३
१९५७	११,५०४	२०,४२८	३१,९३२
१९५८	७,८१२	१८,९८४	२६,७९६
१९५९	११,७१२	२९,४६०	४१,१७२

तृतीय योजना के अंतर्गत ३०,००० सवारी गाड़ियाँ, ६०,००० व्यापारिक गाड़ियाँ और १०,००० जीपें आदि प्रति वर्ष बनने लगेंगी।

६. साइकल उद्योग (Cycle Industry)

भारत में साइकल उद्योग १९३८ में आरंभ हुआ जबकि **मैसर्स इंडिया मैन्यूफैक्चरिंग कं०, कलकत्ता** की स्थापना साइकल के पुर्जे बनाने के लिए हुई। उसके दो साल बाद दो कंपनियाँ—**हिंदुस्तान बाईसिकल मैन्यूफैक्चरिंग एंड इन्डस्ट्रियल कारपोरेशन, पटना** और **मैसर्स हिंद साइकल लि० बम्बई** सम्पूर्ण साइकलें बनाने के लिए स्थापित हुईं। द्वितीय महायुद्ध काल में यह उद्योग अधिक उन्नति नहीं कर सका किन्तु १९४७ के बाद इसने विशेष प्रगति की है। तीन नये कारखानें स्थापित किए गए हैं—(१) **टी० आई० साइकल ऑफ इंडिया**, मद्रास; (२) **सैन—रैले इंन्डस्ट्रीज ऑफ इंडिया**, आसनसोल और (३) **एटलस साइकल इंडस्ट्रीज कं०, सोनीपत**।

साइकिलों की माँग अधिकाधिक बढ़ने से पुर्जों से साइकिलें बनाने के अधिकाधिक कारखाने स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव हुई। अतः नवम्बर १९५२ से अब तक इसके लिए १२ योजानओं की स्वीकृति दी जा चुकी है। इन सभी योजनाओं के कार्यान्वित हो जाने से सब कारखानों की एक पाली की निर्धारित उत्पादन क्षमता

बढ़कर ८,५०,००० साइकलें प्रति वर्ष बनाने की हो जायेगी। कुछ कारखानों में दो पालियाँ भी चलेंगी इससे संभावित उत्पादन क्षमता १० लाख साइकिलें बनाने की हो जायेगी।

भारत में बड़े-बड़े साइकल बनाने वाले कारखानों का वितरण और उनकी उत्पादन क्षमता इस प्रकार है :—

	संख्या	उत्पादन क्षमता (एक पाली के आधार पर)
बम्बई	१	१००,०००
बिहार	१	६०,०००
दिल्ली	२	८४,०००
मद्रास	१	२००,०००
पंजाब	६	२२६,०००
उत्तर प्रदेश	६	७०,०००
प० बंगाल	३	१५५,०००
योग	१८	८६५,०००

इन बड़े कारखानों के अतिरिक्त देश में ७८ छोटे कारखानें भी हैं जिनमें साइकिलें बनाई जाती हैं। इनमें से २२ पंजाब में, १४ दिल्ली में, १० पंजाब में, ६ उत्तर प्रदेश में, ८ महाराष्ट्र में, ४ मध्य प्रदेश में और २ मद्रास में हैं। शीघ्र ही राजस्थान के ५, मैसूर के २ और आंध्र और उड़ीसा के ६-१ कारखानें में साइकिलें बनायी जाने लगेंगी।

नीचे की तालिका को पूरी तैयार साइकलों और हिस्सों का उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	पूरी तैयार साइकलें (संख्या)	हिस्से (मूल्य ००० रुपये)
१६५०	१०३,१५२	६,४५२.४
१६५१	११४,२७८	६.४८८.४
१६५२	१६६,६५६	८,२४७.६
१६५३	२६४,१६८	१०,१६४.०
१६५४	३७२,३६०	१३,०८०.०
१६५५	४६१.१७२	१६,४१६.८
१६५६	६५६,४२४	२३,२२४.८
१६५७	८००,८३२	२७,५४३.६
१६५८	६१२,६२४	३२,०१६.०
१६५६	६६०,८१६	२८,०४०.०

भारत की प्रमुख साइकल बनाने वाली कंपनियाँ ये हैं—

सैनरेले इण्डस्ट्रीज आफ इंडिया,	**आसनसोल**	**'सैनेरेले'**
टी० आई० साइकल ऑफ इंडिया लि०,	**मद्रास**	**'अम्बट्टूर'**
एटलास साइकल कं० लि०	**सोनीपत**	**'इस्टर्न इस्टार'**
हिंदुस्तान बाईसीकल मैन्यूफैक्चरिंग एण्ड		

इंडस्ट्रियल कारपोरेशन,	पटना	
हिंद साइकल्स, लि०,	बम्बई	'हिंद साइकल्स'
वियर-वैल साइकल कं०,	फरीदाबाद	'वियरवैल'
पर्ल साइकल इंडस्ट्रीज,	देहली	'रायल सुप्रीम'
आर भल्ला एण्ड संस,	देहली	'फारवर्ड'
एवन साइकल कं०,	लुधियाना	'एवन'
मैटल गुड्स मैन्युफैक्चरिंग कं०,	वाराणसी	'एशिया'
रामपुर इंजीनियरिंग कं०,	रामपुर	'हंसा'
पापुलर साइकल मैन्युफैक्चरिंग कं०,	आगरा	'जयहिंद'

इन बड़े कारखानों के अतिरिक्त भारत में लगभग ४६५ कुटीर-प्रणाली की इकाइयाँ भी हैं जिनमें लगभग ५½ हजार व्यक्ति लगे हैं। इनमें सबसे अधिक इकाइयाँ पंजाब में (२९५) हैं। पेप्सू में २५; उत्तर प्रदेश में ६५; दिल्ली में २२ तथा पश्चिमी बंगाल में १६ और १०–१० मद्रास तथा हैदराबाद में हैं। शेष मध्य प्रदेश (१३) तथा बम्बई में (८) हैं।

साइकल उत्पादन में वृद्धि होने के साथ इस उद्योग में जिन पुर्जों की आवश्यकता पड़ती है, उनमें अधिकांश अब यहीं बनाये जाने लगे हैं। यह पुर्जे निर्माण का कार्य बड़े-बड़े कारखानों, मध्य दर्जे के उद्योग और लघु उद्योग द्वारा भी किया जाता है। चेन, फ्री-ह्वील, हब और रिम आदि प्राय: सभी पुर्जे भारत में बनने लगे हैं। यहाँ लगभग २३ निर्माता इस कार्य को करते हैं। इनके द्वारा प्रति वर्ष लगभग १½ करोड़ रु० से अधिक मूल्य के पुर्जे तैयार किए जाते हैं। इनमें से ३ निर्माता पंजाब; ५ उत्तर प्रदेश; ४ महाराष्ट्र, ३ दिल्ली, ६ बंगाल और १ मद्रास में हैं।

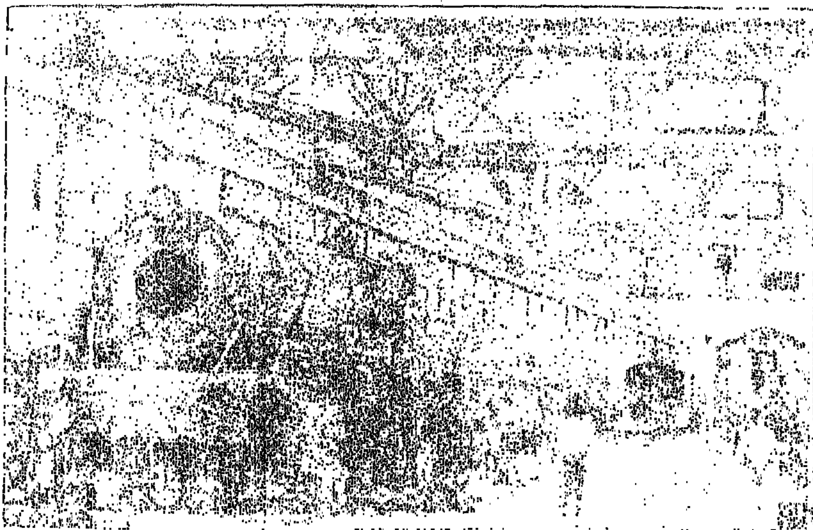
१९६०–६१ तक साइकल बनाने का लक्ष्य यह रखा गया है कि सब बड़े कारखाने १० लाख साइकलें प्रति वर्ष बनाने लगें और छोटे पैमाने पर चलने वाले कारखाने २५०,००० साइकलें बनाने लगें। इनमें से ११ लाख साइकलें देश में ही खप जाया करेंगी और शेष १·५ लाख साइकलें निर्यात की जायेंगी। साइकल बनाने वाले कारखानों की संख्या भी १३ से बढ़ कर १९ हो जाएगी। तृतीय योजना में २० लाख साइकलें बनने लगेंगी।

इस उद्योग में ६,००० कर्मचारी काम करते हैं। और कुल ३० लाख रुपये की पूँजी लगी है।

(७). रेल के इंजिन बनाने का उद्योग :

भारतीय रेलें लगभग ३४,००० मील चलती हैं और लगभग ८,६०० एंजिन काम में लाती हैं किन्तु कई वर्षों तक भारतीय रेलों को विदेशों से एंजिन आयात करने पड़ते थे। १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रेलों का विकास आरंभ होने के बाद जी० आई० पी० रेलवे ने जमालपुर और बी० बी० एंड सी० आई रेलवे ने अजमेर में वर्कशॉप स्थापित कर रेल के इंजिन बनाने का कार्य आरंभ किया। बहुत शीघ्र ही इस कार्य में सफलता मिली। इसके फलस्वरूप १८८५ और १९२३ के वर्षों में जमालपुर के कारखाने में २१४ बड़ी लाइन के इंजिन और १०३ बॉयलर बनाये गये। इसी प्रकार १८९६ और १९४० के बीच अजमेर के कारखाने में ४४६ इंजिन ३४३ बॉयलर तैयार किये गये, किन्तु विदेशी सरकार के इस उद्योग को प्रोत्साहन न देने की नीति के फलस्वरूप यहाँ कार्य बन्द कर दिया गया।

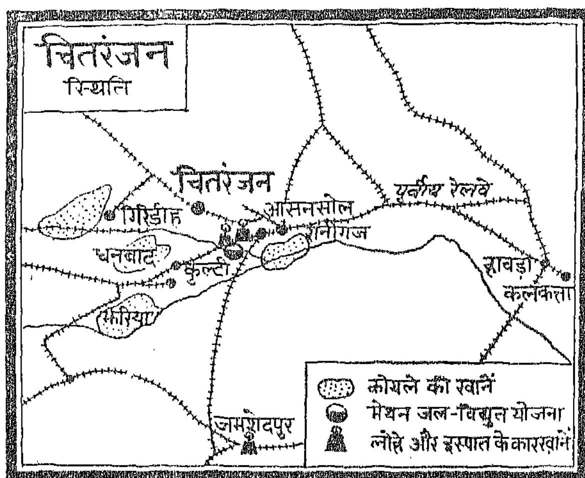
जब प्रथम महायुद्ध के समय इंजिनों का आयात कठिन हो गया तो तत्कालीन सरकार ने भारत में ही इञ्जिनों का बनाना आवश्यक समझ कर एक घोषणा १९२१ में की। अतएव शीघ्र ही १९२१ में पेनिन्सलुर लोकोमोटिव कं० (Peninsular Locomotive Co.) की स्थापना सिंघभूम में इञ्जिन बनाने के लिए की गई। इसका लक्ष्य २०० इञ्जिन प्रति वर्ष बनाने का रखा गया किन्तु पुन: सरकार से संरक्षण न मिलने के कारण यह कारखाना सरकार को बेच दिया गया। सरकार ने यह कारखाना ईस्ट इण्डियन रेलवे को दे दिया। यहाँ निचले ढांचों का उत्पादन आरम्भ किया गया, किन्तु शीघ्र ही कारखाना आर्डर न मिलने से बन्द करना पड़ा। द्वितीय महायुद्ध में सुरक्षा विभाग ने सैनिक गाड़ियों के उत्पादन के लिये यह कारखाना ले लिया। युद्ध की समाप्ति पर यह कारखाना टाटा कंपनी को बेच दिया गया जिसने १९४५ में टाटा इञ्जिनियरिङ्ग और लोकोमोटिव कं० के नाम से नया कारखाना आरंभ किया इस कंपनी का लक्ष्य प्रति वर्ष १०० इञ्जिन और १०० बॉयलर तैयार करने का रखा गया है।



चित्र १५१—चित्तरंजन वर्क्स का भीतरी भाग

युद्ध की समाप्ति पर सरकार ने एक और कारखाना खोलने का निश्चय किया। फलस्वरूप चांदमारी नामक स्थान इसके लिए चुना गया किंतु विभाजन हो जाने से यह आवश्यक समझा गया कि इस स्थान को न चुन कर मिहीजाम को चुना जाय क्योंकि यह पाकिस्तान की सीमा के बहुत समीप था। इसी स्थान पर १९४८ में कार्य आरम्भ किया गया और २६ जनवरी १९५० को कारखाना चालू कर दिया। आरम्भ में इस कारखाने का लक्ष्य प्रतिवर्ष १२० औसत आकार के इञ्जिन और ५० बॉयलर तैयार करने का रखा गया किंतु अब यह लक्ष्य क्रमश ३०० इंजिन और १०० बॉयलर बनाने का रखा गया है। इस कारखाने का नाम चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स रखा गया। यहाँ १९५० से ही W.G. इंजिन तैयार किये जा रहे हैं जो भारी किस्म

के होते हैं और बड़ी लाइनों पर माल ले जाने वाली गाड़ी में प्रयुक्त किये जाते हैं। ये इञ्जिन ७८ फीट लम्बे होते हैं तथा खाली इंजिन का वजन १२४ टन और पानी तथा कोयले सहित १७३ टन होता है। इन इञ्जिनों में ५३,०० से अधिक हिस्से होते हैं अब इनमें से ४,४०० से अधिक हिस्से यहीं बनाये जाते हैं। शेष विदेशों से आयात किये जाते हैं। आरंभ में प्रति इञ्जिन ७.५ लाख रुपये की लागत का बना किंतु अब यह लागत ५ लाख तक ही आती हैं।



चित्र १५२—चितरंजन स्थिति

चितरंजन में इस कार्य के लिये निम्न सुविधाएँ उपलब्ध हैं :—

(१) यह पश्चिमी बंगाल के कोयला क्षेत्र से केवल १० मील पर स्थित है।

(२) दामोदर घाटी योजना से पानी और जल-विद्युत शक्ति भी सुगमता पूर्वक प्राप्त की जा सकेगी।

(३) यह टाटा और भारतीय लोहे व इस्पात के कारखानों के भी निकट है।

(४) यहाँ संथाल परगना क्षेत्र से सस्ते व मजबूत श्रमिक मिल सकते हैं।

(५) कलकत्ता से केवल १४५ मील दूर होने से इङ्गलैंड व अमेरिका से आवश्यक हिस्से सुगमता से प्राप्त किये जा सकते हैं :—

१९५७ तक चितरंजन कारखाने में ६२५ इंजिन बन कर समाप्त हो चुके थे इस कारखानें से १००वाँ इंजिन इसकी स्थापना के ४ वर्ष बाद (६ जनवरी १९५४ को) निकाला गया। २००वाँ इंजिन ५ फरवरी, १९५५, को, ३००वाँ इञ्जिन ३०वीं नवम्बर, १९५५ को, ४००वाँ इञ्जिन १२ अगस्त, १९५६ को; ५००वाँ इञ्जिन २५ मार्च १९५७ को और ६००वाँ इञ्जिन नवम्बर १९५७ को बनाकर निकाला गया। इससे इस कारखाने की प्रगति स्पष्ट होती है।

नीचे की तालिका में उपरोक्त दोनों कारखानों का लक्ष्य, वास्तविक उत्पादन और विदेशों से आयात किये गये इंजिनों का विवरण दिया गया है :—[1]

	चितरंजन		टैल्को		
वर्ष	लक्ष्य	उत्पादन	लक्ष्य	उत्पादन	आयात
१९५१-५२	२०	१७	७	१०	९३
१९५२-५३	३२	३३	३०	३०	१५०
१९५३-५४	५२	६४	३३	२२	९१
१९५४-५५	७२	९८	५०	४७	२४७
१९५५-५६	९२	१२९	५०	५०	४८१
योग	२६८	३४१	१७०	१५९	१,०६२
१९६०-६१ का लक्ष्य	३००	—	१००	—	—

तृतीय योजना के अंतर्गत चितरंजन के कारखानें में बिजली से चलने वाले इंजिन बनाये जायेंगे। १९६५-६६ के अंत तक ११७५ इंजिन भाप से चलने वाले, ४३४ डीजल और ६० बिजली से चलने वाले बनने लगेंगे।

८. डीजल इञ्जिन (Diesel Engines) बनाने का उद्योग

डीजल इञ्जिन का आविष्कार सन् १८९२ में डा० रूडाल्फ डीजल ने किया था। ये इंजिन विभिन्न प्रकार के पंप चलाने, छोटे बड़े पैमाने पर बिजली तैयार करने, रेल के डिब्बे काटने तथा बड़ी लाइनों के इञ्जिन चलाने और सभी प्रकार के जलयानों को चलाने के काम आते हैं। व्यापारिक परिवहन, खेती के काम में आने वाले ट्रैक्टर तथा मिट्टी हटाने के यंत्रों और सड़क बनाने की मशीनें चलाने के लिये डीजल इञ्जिन से बढ़िया कोई भी चालक नहीं है। इसका सबसे बड़ा गुण है ईंधन पर कम खर्च होना।

भारत में डीजल इञ्जिन बनाने का कारखाना १९३२ में पूना के निकट सितारा में स्थापित हुआ था। द्वितीय महायुद्ध के बाद इसकी माँग बहुत अधिक बढ़ी। १९५१ में डीजल इञ्जिन के कारखानों की संख्या ५ थी जिनकी स्थापित अधिकतम उत्पादन क्षमता ६,३२५ इञ्जिन प्रतिवर्ष बनाने की थी। १९५९ में यह संख्या १९ और उत्पादन क्षमता २३,२२५ इञ्जिन प्रतिवर्ष की थी। १९६५ में इनकी उत्पादन क्षमता ७२ हजार और वास्तविक उत्पादन ६६ हजार का होगा।

इन इंजिनों का उत्पादन इस प्रकार है :—

वर्ष	उत्पादन
१९४७	६८४
१९४९	२,०७६
१९५१	७,२९३
१९५३	५,२४४

१. उद्योग व्यापार पत्रिका : दिसम्बर १९५६, पृ० ५८२-५८३.

वर्ष	उत्पादन
१९५४	९,२७३
१९५५	१४,१००
१९५६	१५,३९६
१९५७	२६,५५२
१९५८	३०,१२०
१९५९	३८,७६०

भारत में तीन प्रकार के डीजल इञ्जिन बनाये जाते हैं : (१) कम अश्व शक्ति वाले जो ३ अश्व शक्ति तक के होते हैं; (२) मध्यम अश्व शक्ति वाले जो ३ से ५० अश्व शक्ति के होते हैं, और (२) ऊँची अश्व शक्ति वाले जो ५० से भी अधिक अश्व शक्ति के होते हैं। भारत में ४ से ५० अश्व शक्ति बनाने वाले १७ कारखाने हैं जो बम्बई, पूना, सतारा, कोल्हापुर, दिल्ली, कोयम्बटूर, अम्बाला, कलकत्ता, अहमदाबाद, राजकोट और फरीदाबाद में हैं।

शक्ति चालित पम्प (Power Pumps) बनाने वाले भारत में ३७ कारखाने हैं जिनकी स्थापित उत्पादन क्षमता लगभग ८४,११६ पम्प वार्षिक है। इनमें से १० महाराष्ट्र में; ९ मद्रास में; ४ बंगाल में तथा मध्य प्रदेश और दिल्ली में १-१ और उत्तर प्रदेश में २ हैं। इस प्रकार के पम्प किर्लोस्करवाड़ी, कोयम्बटूर, सतारा, बड़ौदा, ईडाथारा, अहमदाबाद, बम्बई, हावड़ा, कोल्हापुर, कलकत्ता, मेरठ, दिल्ली, गाजियाबाद, नाहन, खंडवा और मद्रास में बनाये जाते हैं।

डीजल इञ्जिन और पम्पों का उत्पादन इस प्रकार है :—

	उत्पादन १९५६	आयात १९५५	द्वितीय योजना में लक्ष्य	तृतीय योजना में
डीजल इञ्जिन	१,५४,८८०	७.६ करोड़ रु०	६२,०००	६६,०००
शक्ति चालित पंप	५६,१८०	१.८ ,,	८६,०००	१५०,०००

९. विद्युत मोटरें (Electric Motors) बनाने का उद्योग

भारत में विद्युत मोटरें बनाने के २० कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता १९५९ में ६,०२,५२० अश्व शक्ति थी।

प्रयोग की विविधता और उपलब्ध बिजली की किस्म के अनुसार विद्युत मोटर प्रायः दो प्रकार की होती है : (१) डी० सी० बिजली के मोटर और (२) ए० सी० बिजली के मोटर। नीचे की तालिका में विद्युत मोटरों के उत्पादन और आयात के आँकड़े दिये गये हैं :—

१९५१	१४२.८ हजार अ० श०	१९५५	२५२.० हजार अ० श०
१९५२	१५७.२ ,,	१९५६	३५८.८ ,,
१९५३	१६२.० ,,	१९५७	४६९.२ ,,
१९५४	१८७.२ ,,	१९५८	६२४.० ,,
		१९५९	५७३.६ ,,

भारत में ए० सी० विद्युत मोटरों की माँग ३२१,००० और ३३०,००० अश्व शक्ति के बीच में अनुमानित की गई है। १९६०—६१ तक २०० अश्व शक्ति तक के विद्युत मोटरों की माँग ६ लाख अश्व शक्ति तक पहुँच जायगी। इतना उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करने के लिए ७,५०० टन कच्चा लोहा और लोहे की ढली वस्तुएँ; ७,५०० टन हल्के इस्पात की विद्युत चादरें, १,१२० टन हल्के इस्पात की छड़ें, सरिये और चादरें; ९५० टन ताँबे के तार, पट्टियाँ, पिंड और अल्यूमीनियम के पिंड; १,५०,००० बाल बार्यरिंग; ७५ टन विसंवाहक पदार्थ और ३०,००० गैलन विसंवाहक रङ्गलेप और वारनिश की आवश्यकता होगी। इनमें से कच्चा लोहा, लोहे की ढली हुई वस्तुएँ, हल्की इस्पात की छड़ें, सरिये और चादरें, बाल बियरिंग भारत में ही उपलब्ध हैं। अन्य पदार्थ विदेशों से आयात करने पड़ते हैं। इस्पात उद्योग की विस्तार योजनाओं के अन्तर्गत सिलीकन इस्पात की चादरें भी भारत में ही उपलब्ध हो सकेंगी।

(१०) मशीन-उद्योग (Machine Industry)

मशीन टूल्स (Machine Tools)

लोहे और इस्पात के उद्योग से सम्बन्धित ही मशीन टूल्स बनाने का उद्योग भी है। बड़े-बड़े कारखानों में लोहे और इस्पात के पिंड, छड़ें, रेलें तथा चादरें बनाने से ही इस उद्योग की समाप्ति नहीं हो जाती। यद्यपि इनमें से कई तैयार माल के रूप में निकलती हैं किन्तु लोहे और इस्पात के पिंड कई अन्य उद्योगों के लिये कच्चे माल का काम देते हैं। अतः इनसे जो अन्य वस्तुएँ बनाई जाती हैं उन उपकरणों को ही मशीन-टूल्स कहते हैं। इनके द्वारा अनेक प्रकार की नई मशीनें बनाई जाती हैं। "मशीन टूल एक प्रकार का शक्ति चालित यंत्र होता है जो धातु को काटकर एक विशिष्ट रूप देने के कार्य में प्रयुक्त होता है।"[1]

मशीन टूल दो प्रकार के होते हैं : (१) विशेष प्रयोजन के लिये काम में आने वाले—जैसे मोटर गाड़ी के एक्सिल बनाने वाली मशीन जो एक घण्टे में १५० एक्सिल तैयार करती है। (२) साधारण प्रयोजन वाली मशीनें जो विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ मिलींग और प्लानिंग मशीनें बनाने के काम आती हैं।

मशीनी—औजार उद्योग एक आधार भूत उद्योग है अतः इसके विकास के लिए भारत सरकार ने 'जलहली' नामक स्थान पर एक कारखाना खोला है जिसका लक्ष्य ८½ रेंज गोलाई वाली ४०० खरादें प्रतिवर्ष बनाने का है। यहाँ दांते काटने की मशीनें और चक्करदार बरमें भी बनाये जायेंगे। बँगलौर की **हिन्दुस्तान मशीनी औजार कारखाने** तथा हैदराबाद के 'प्राग टूल्स' कारखाने में भी मशीनी औजार बनाये जाते हैं। द्वितीय पंच वर्षीय योजना में १० करोड़ रूपये के और तृतीय योजना में ३० करोड़ रुपये के मशीनी औजार बनने लगेंगे।

भारत में मशीनी औजारों का उत्पादन इस प्रकार है :—

---

१. "A machine tool is a power-driven complete metal-working machine not portable by hand that is used to cut or shape metal—" Smith, Phillips and Smith : Industrial Geography, p. 433.

१९५२	४४.४	लाख रु० के
१९५३	४४.१	,,
१९५४	५०.०	,,
१९५५	७४.४	,
१९५६	८६.९	,,
१९५७	३५०.०	करोड़ रु०
१९५८	३७६.१	,,
१९५९	४३८.७	,,

द्वितीय योजना काल में इस्पात, खान और भारी रसायन आदि उद्योगों की मशीनें बनाने के कारखाने स्थापित किए जाएँगे।

(१) **भारी मशीनों का कारखाना** संभवतः रांची में स्थापित किया जायगा। इसकी आरंभिक उत्पादन क्षमता ४५,००० टन मशीनों की प्रति वर्ष की होगी। यह बढ़ कर बाद में ८०,००० टन की हो जायेगी। आरंभ में इस कारखानें में इस्पात पिघलाने की भट्टियाँ, इस्पात की चादरें बनाने की मशीनें, क्रेन आदि लगाये जायेंगे। इस पर प्रथम चरण में २० करोड़ रुपये व्यय होंगे।

(२) **भारी मशीनों के पुर्जे बनाने और ढलाई का कारखाना** भारी मशीनें बनाने के कारखानें के पास ही स्थापित किया जायेगा। यह कारखाना प्रतिवर्ष २८,००० टन इस्पात का ढलाई का सामान, ३०,००० टन लोहे की ढलाई का सामान और २५,००० टन मशीनी पुर्जे तैयार करेगा। बाद में इसकी उत्पादन क्षमता दुगुनी हो जाएगी। इसमें भी २० करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है।

(३) **खानों की मशीनें तैयार करने वाला कारखाना** प्रति वर्ष ३०,००० टन मशीनें तैयार करेगा। इस कारखाने में कोयला लादने और ढोने की मशीनें, खानों में काम आने वाले एंजिन, पंप और पंखे तैयार होंगे इस पर लगभग १२ करोड़ रुपये खर्च होंगे।

(४) **भारी मशीनी औजार बनाने का कारखाना** जो भारी मशीन और भारी इंजीनियरी सामान बनाने के कारखानों के लिए मशीनी औजार बनायेगा— प्रतिवर्ष ३½ से ५½ हजार टन तक मशीनी औजार तैयार करेगा। इस पर ५ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है।

(५) **भारी इमारती सामान और भारी पात्र** आदि बनाने के कारखानों पर ६.३ करोड़ खर्च होंगे। ये कारखाने १०,००० से १२,००० टन तक भारी पत्तरें और पात्र बनाएगें।

(११) खेती के यंत्र बनाने का उद्योग (Agricultural Machinery)

भारत में खेती के कार्य के लिए यंत्र और मशीनें बनाने वाले ६२ कारखाने हैं। इन सबमें टाटा एग्रीको कं०, जमशेदपुर सबसे बड़ी है जिसकी उत्पादन क्षमता १२,००० टन की है। नाहन फाऊँड्री, पंजाब और मैसूर इम्प्लीमैंटस् फैक्ट्री, मैसूर दोनों ही सरकारी कारखाने हैं। इन कारखानों का क्षेत्रीय वितरण इस प्रकार है :—

राज्य	कारखानों की संख्या	उत्पादन क्षमता
बिहार	३	१२,४६०
बम्बई	११	४,४२८

राज्य	कारखानों की संख्या	उत्पादन क्षमता
पंजाब	१३	२,६६०
उत्तर प्रदेश	१२	१,६६०
प० बंगाल	५	१६,८०
दिल्ली	४	८०४
पेप्सू	१	७४४
आंध्र	३	६८८
मद्रास	४	३६८
मध्य प्रदेश	२	३००
मैसूर	२	७२०
हिमाचल प्रदेश	१	३००
हैदराबाद	१	४८
योग	६२	२६,८८० टन

इन बड़े कारखानों के अतिरिक्त ३५० छोटे-छोटे घरेलू कारखानें भी कृषि-योग्य यंत्रों का उत्पादन करते हैं। कारखानें निम्न प्रकार की मशीनें बनाते हैं :—

(१) **खेतों में प्रयुक्त होने वाले यंत्र आदि**—हल, बीज बोने, रोपने तथा फसल काटने की मशीनें।

(२) **कृषि के यंत्र जो हाथ से चलाये जाते हैं**—फावड़ा, कुदाली फसल को काटने छांटने और गोड़ने की मशीनें।

(३) **कृषि उत्पादन को साफ करने आदि की मशीनें**—तेल की घानियाँ, गन्ना-निचोड़ने, भूसा काटने, मूँगफली का छिलका साफ करने, तम्बाकू की पत्तियाँ छांटने, आदि की मशीनें।

(४) **दूध के उद्योग में प्रयुक्त होने वाली मशीनें**—चलनियाँ, चर्खियाँ, शहद निकालने तथा मलाई निकालने वाली मशीनें।

(५) **पौधों की रक्षा करने वाली मशीनें**—दवाइयाँ छिड़कने वाली मशीनें।

(६) **खेतों की फसल ढोने वाले यंत्र**—गाड़ियाँ, हाथ के ठेले, पहिये आदि।

बड़े-बड़े कारखानों द्वारा १९५० में १७,१५८ टन; १९५२ में १८,१९५ टन; १९५४ में १२,७२८ टन तथा १९५५ में १३,८७५ टन मशीनों का उत्पादन किया गया। देश में कृषि यंत्रों का उत्पादन कम होने से हमें विदेशों से इनका आयात करना पड़ता है। प्रस्तुत तालिका में इनके आयात सम्बन्धी आँकड़े दिए गए हैं :—

वर्ष	खेती के यंत्र	हल और पुर्जे आदि	अन्य	योग	ट्रैक्टर तथा पुर्जे आदि (लाख रु०)
१९५०-५१	२४·६	१११·६	६८·४	२०४·६	५२०·४
१९५१-५२	२·०	१२१·३	१५१·५	२७४·८	७८२·७
१९५२-५३	१·५	३७·३	५८·२	९७·०	३३७·९
१९५३-५४	३७·४	१०·२	१८·४	६६·०	३७०·५
१९५४-५५	५४·८	१३·३	१७·१	८५·२	३८५·९

भारत से इन मशीनों का निर्यात भी किया जाता है किन्तु थोड़ी मात्रा में। यह निर्यात दक्षिणी पूर्वी एशिया और मध्य-पूर्व के देशों, पूर्वी अफ्रीका तथा कैरेबियन तटीय देशों को होता है।

औद्योगिक मशीनें (Industrial Machinery)

द्वितीय महायुद्ध के संकटपूर्ण दिनों तथा स्वाधीनता प्राप्ति के बाद तेजी से हो रहे देश के औद्योगीकरण ने भारत में मशीनें बनाने के उद्योग को जन्म दिया। सुव्यवस्थित ढंग से इस उद्योग का आरम्भ १९४६ में हुआ जब कलकत्ता की एक फर्म ने वस्त्र-मिलों के लिए स्पिनींग-फ्रेम (Spinning Frame) बनाने आरम्भ किए। इसके अतिरिक्त इनके महत्वपूर्ण पुर्जे, तकुए, रिंग, फ्लेट्ड बार आदि भी बनाये जाने लगे। इस समय वस्त्र उद्योग की मशीनें बनाने वाले ११ कारखानें हैं :—

(१) नेशनल मशीनरी मैन्यूफक्चरर्स, बम्बई।
(२) टैक्समैको, कलकत्ता।
(३) टैक्स-टूल्ज, कोयम्बटूर।
(४) लक्ष्मी रतन इन्जीनियरिंग वर्क्स, बम्बई।
(५) मशीनरी मैन्यूफक्चरर्स कारपोरेशन, कलकत्ता।
(६) टैक्समैको, ग्वालियर।
(७) दी मैसूर मशीनरी मैन्यूफैक्चर्स, बंगलौर।
(८) कपूर इन्जीनियरिंग लि०, सतारा।
(९) वसन्त इंडस्ट्रियल, एण्ड इन्जीनियरिंग वर्क्स, बम्बई।
(१०) कैलिको इंडस्ट्रीयल इन्जीनियर्स, बम्बई।
(११) मानिकलाल मैन्यूफैक्चरिंग कं० बम्बई।

उपरोक्त कारखानों में कताई, बुनाई, धुनाई तथा सफाई आदि के लिए मशीनें बनाई जाती है।

कताई, धुनाई और बुनाई की मशीनों का उत्पादन इस प्रकार है :—

	१९५१	१९५३	१९५५	१९५८	१९५९
१. धुनाई की मशीनें (Carding machines)	×	१९२	६४९.	१,१५२	७६८
२. कताई की मशीनें (Spinning frames)	२७६	२८४	८६३	८७६	१,०८०
३. बुनाई की मशीनें (Looms)	२,२८०	१२,१२	२,७८७	३,११२	४,२२४

इस उद्योग में ५,००० मजदूर लगे हैं तथा ५ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में १७ करोड़ के मूल्य की मशीनें बनाने का आयोजन है।

२. जूट उद्योग की मशीनरी (Jute Mill Machinery)

जूट मिलों की मशीनें बनाने का कार्य कलकत्ता में **'ब्रिटानिया इन्जीनियरिंग वर्क्स'** तथा **'टैक्सटाइल मशीनरी कारपोरेशन'** द्वारा किया जा रहा है। एक तीसरी कंपनी **'लेगन जूट मशीनरी कं०** के नाम से और स्थापित की गई है। इनकी उत्पादन क्षमता क्रमशः २४०, ३०० और १२० की है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में २·५ करोड़ रुपये के मूल्य की मशीनें बनाई जायेंगी।

३. चीनी उद्योग की मशीनें (Sugar Mill Machinery)

चीनी उद्योग के लिए गन्ना पेरने तथा रस को साफ करने, वाष्पीकरण और केन्द्रीयकरण करने के लिए मशीनों की आवश्यकता होती है। इनका उत्पादन (१) पश्चिमी बंगाल में बैरी ब्रॉदर्स, चौबीस परगना; (२) सरन इन्जीनियरिंग क०, मरहौरा; (३) रिचार्डसन एण्ड क्रूडास, बम्बई; (४) आर्थर बटलर एण्ड कं०, मुजफ्फरपुर; (५) पोर्ट इन्जीनियरिंग वर्क्स, कलकत्ता तथा (६) भारतीय चीन और सामान्य इन्जीनियरिंग निगम अम्बाला द्वारा किया जारहा है।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत प्रतिवर्ष ४ करोड़ और तृतीय योजना में १० करोड़ रुपये के मूल्य की मशीनें बनाई जायेंगी।

४. चाय उद्योग की मशीनें (Tea Industry Machinery)

मैसर्स ब्रिटानिया इन्जीनियरिंग वर्क्स, कलकत्ता; मैसर्स मार्शल एण्ड सन्स, गैन्सबटो की सहायता से चाय की पत्ती तैयार करने की मशीनें और चाय उद्योग की अनेक मशीनें बना रहा है।

५. अन्य उद्योगों की मशीनें—

भारत में उपरोक्त मशीनों के अतिरिक्त तेल पेराई, चावल कूटने, आटा पीसने, सीमेंट, रसायन, औषध इत्यादि की मशीनें भी तैयार की जाती हैं।

इन मशीनों के बनाने के मुख्य केन्द्र कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली, बटाला, नाहन, बम्बई, गाजियाबाद तथा अमृतसर आदि हैं।

भारत में मशीनें बनाने के उद्योग के लिए विकास की बड़ी संभावनायें हैं। दूसरी योजना में कई उद्योगों—वस्त्र, जूट, चीनी, सीमेंट और कागज बनाने के उद्योग—का बड़ा पैमाने पर विस्तार तथा आधुनीकरण किया जायेगा। इन उद्योगों के विस्तार के लिए पुरानी मशीनें बदलने के लिए और अभिनवीकरण करने के लिए मशीनों की आवश्यकता होगी अत: इनके लिए १० करोड़ रुपया खर्च किया जायेगा।

अध्याय १८

रसायन और उनसे संबंधित उद्योग
(Chemical and Allied Industries)

(१) रासायनिक उद्योग (Chemical Industry)

"रासायनिक उद्योगों के अन्तर्गत वे उद्योग आते हैं जो अन्य उद्योगों के लिये आधारभूत रासायनिक पदार्थ बनाते हैं; इसके अतिरिक्त वे उद्योग भी आते हैं जिनमें रासायनिक क्रियाओं द्वारा पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं।"[1] इस दृष्टि से इन उद्योगों के अन्तर्गत कई प्रकार की वस्तुऐं बनाना—जैसे रंग और रोगन, कृत्रिम रबर, कृत्रिम रेशे, प्लास्टिक, दवाइयाँ, कृत्रिम तेल आदि।

भारी रासायनिक पदार्थ वे रासायनिक तत्व होते हैं जिनका प्रयोग मुख्यतः औद्योगिक और उसी सम्बन्धित उद्योगों में किया जाता है। साधारणतः इन पदार्थों का औद्योगिक उपयोग ही अधिक होता है। ये वस्त्र, कागज, साबुन, काँच, चमड़ा, रंग, वारनिश, प्लास्टिक, मोटर स्प्रिट इत्यादि उद्योगों में कच्चे माल की तरह काम में लाये जाते हैं। इम्पीरियल रासायनिक उद्योग के चेयरमेन के अनुसार, "यह उद्योग सभी उद्योगों में सबसे अधिक बहुपति वाला उद्योग है क्योंकि यह उद्योग रसायन-वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों, इन्जिनियरों आदि की सहकारिता पर निर्भर करता है।" इस उद्योग का शान्ति व युद्ध दोनों ही काल में बड़ा महत्व है। आधुनिक काल में जिस देश में इन उद्योगों का जितना अधिक विकास होता है वह देश उतना ही सभ्य और औद्योगिक माना जाता है।

रासायनिक उद्योग दो प्रकार के होते हैं :—

(१) **भारी रासायनिक पदार्थ** (Heavy Chemicals)—इसके अन्तर्गत गन्धक का तेजाब, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, शोरे का तेजाब, विभिन्न प्रकार के सलफेट, कॉस्टिक सोडा, सोडा एश, एमोनिया, ब्लीचिंग पाउडर क्लोरीन, पोटेशियम क्लोरेट, और रासायनिक खादें—अमोनियम सल्फेट, पोटेशियम नाइट्रेट, सुपरफोसफेट, शोरा आदि का उत्पादन आता है।

(२) **कीमती और हल्के रासायनिक पदार्थ** (Fine Chemicals)—इनके अन्तर्गत फोटोग्राफी में काम आने वाले रसायन, दवाइयाँ, रंग और रोगन आदि सम्मिलित किये जाते हैं।

उद्योग की विशेषतायें :

इस उद्योग की कुछ विशेषताऐं हैं जो और उद्योगों में नहीं पाई जाती :—

---

१. "The Chemical Industry includes establishments producing basic chemical and establishments manufacturing products by [illegible] chemic : [illegible] . S. A. Census of Manufacturing.

(१) अनुसंधान और नई खोजों के लिये उसे उद्योग में अन्य उद्योगों की अपेक्षा अधिक खर्च की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये अमेरिका की ड्यू-पौण्ड (Du-Pont) नामक उद्योग में नाइलन के १ मौजे जोड़ी बनाने में लगभग २७० लाख डालर खर्च किये थे।

(२) उस उद्योग में वस्तुएँ बनाने की क्रियाओं और उनके उत्पादन में अन्य उद्योगों की अपेक्षा शीघ्र परिवर्तन होते हैं। इसका मुख्य कारण नई खोजों का होना है। एक ही पदार्थ से कई वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं।

(३) इस उद्योग को आरम्भ करने के पूर्व वस्तुओं के उत्पादन की पूरी रूपरेखा गवेषणाशालाओं में तैयार की जाती है। उसके उपरान्त वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है।

(४) अन्य उद्योगों की अपेक्षा इस उद्योग की मशीनों और उपकरणों का ह्रास जल्दी होता है, अतएव उन्हें जल्दी-जल्दी बदलना पड़ता है।

(५) यह उद्योग विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाता है जैसे विस्फोटक पदार्थ, प्लास्टिक, कृत्रिम रबर, कृत्रिम रेशे, कृत्रिम रेशम और रोगन आदि। अतएव अपरोक्ष रूप में यह नये उद्योगों को जन्म देता है।

(६) इस उद्योग में वैज्ञानिक और तांत्रिक शिक्षा प्राप्त किये हुए मजदूर ही काम कर सकते हैं।

(७) इस उद्योग के अधिकतर कच्चे माल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं, जैसे—वायु, जल, कोयला नमक और लकड़ी आदि।

भारत में रासायनिक उद्योग :

रसायन-उद्योगों के विस्तार को औद्योगिक विकास और समृद्धि का सब से महत्त्वपूर्ण प्रमाण कहा जा सकता है। मशीनी उत्पादन की व्यवस्था में उपभोग्य वस्तुओं के तैयार होते-होते कच्चे माल और अन्य सामानों को कई बार बड़ा रूप-परिवर्तन करना पड़ता है। इस काम को सुविधा और उत्कृष्टता से करने के लिए तरह-तरह के रसायनों (अम्लों, क्षारों और अन्य वस्तुओं) की आवश्यकता पड़ती है। कागज, काँच, साबुन, कपड़ा, चीनी, चमड़ा, दवाइयाँ और लोहे और इस्पात के उद्योगों में हर जगह और पग-पग पर रसायनों की आवश्यकता पड़ती है और इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि रसायनों की उपलब्धि पर्याप्त मात्रा में न हो तो कोई भी देश आजकल अपनी औद्योगिक संभावनाओं से पूरा लाभ नहीं उठा सकता। रसायन-उद्योगों का विकास औद्योगिक समृद्धि की एक बड़ी आवश्यक शर्त है।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व हमारे भारी रासायनिक उद्योगों की स्थापना हुए अधिक दिन नहीं हुए थे। गंधक के तेजाब और उससे बनने वाली वस्तुएँ—फिटकरी, नीलाथोथा, फैरस-सल्फेट इत्यादि इनी-गिनी वस्तुएँ ही—तैयार की जाती थी। किंतु युद्धकाल में विदेशों से रासायनिक पदार्थों के न मिलने के कारण यहाँ सोडा एश विद्युत प्रणाली से तैयार किया गया। कॉस्टिक सोडा, क्लोरीन, बाइक्रोमेट, कैलशियम क्लोराइड, सोडियम साइनाइड और ग्लिसरीन आदि पहली बार बनाये जाने आरम्भ हुए। इसके पश्चात् तो रासायनिक पदार्थों के उत्पादन की वृद्धि होती गई। सुनियोजित प्रयत्नों और संरक्षण के लिए किए गए उपायों के फलस्वरूप पिछले कुछ वर्षों से देश में [illegible], कैलशियम कारबाइड, कारबन डाइसलफाइड, डी० डी० टी०,

बेनजीन हैक्साक्लोराइड, टाइटेनियम डाइआक्साइड, अमोनियम क्लोराइड, विशेष लवण, रङ्ग प्लास्टिक आदि बनाये जा रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में रासायनिक पदार्थों के उत्पादन में जो वृद्धि हुई वह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

भारी रासायनिक पदार्थों का उत्पादन (टनों में)

रसायन	१९५१	१९५४	१९५८	१९५९
गंधक का तेजाब	१०६,९३२	१५०,८७६	२२७,०१६	२३५,१२४
कास्टिक सोडा	१४,७२४	२९,३०४	५७,१९२	६८,७४४
सोडा एश	४७,५३२	४२,२८८	८९,४३६	९५,३२८
तरल क्लोरीन	५,२६८	९,७८०	१९,८२४	२४,७८०
ब्लीचिंग पाउडर	३,५८८	२,९२८	६,५०४	५,१८४
बाइक्रोमेट	३,२७६	३,२४०	३,५४४	४,३२०
सुपर फास्फेट	६१,०२०	१०५,०६०	१३७,८००	१४४,४२८
अमोनियम सल्फेट	५२,७०४	३४०,२२४	३८४,२८८	३७८,५५५
तूतीया	५०४	८४०	२,०८८	३,०९६

पिछले वर्षों की वृद्धि देखकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इसे तीन-चार गुना कर देने *का आयोजन किया गया है जैसा कि नीचे तालिका से स्पष्ट होगा :—*

उत्पादन और लक्ष्य (टन)

रासायनिक पदार्थ	१९५१	१९५५-५६	१९६०-६१ के लक्ष्य
अमोनियम सलफेट	५२,६६४	३,९३,०९५	१,६०,०००
सुपर फासफेट	६१,०२०	७४,१६५	७,२०,०००
गंधक का तेजाब	१०६,९३२	१६४,८४२	४,७०,०००
सोडा एश	४७,५३२	७७,२७२	२,३०,०००
कॉस्टिक सोडा	१४,७२४	३४,२५३	१,३५,४००
तरल क्लोरीन	५,२६८	११,५७७	१७,०००
ब्लीचिंग पाउडर	३,५८८	२,६९८	१५,०००
बाइक्रोमेट	३,२७१	२,९२९	६,०००
सोडियम कारबोनेट	१,६३०	४,१२५	८,०००
पोटेशियम क्लोरेट	१,५९३	२,१३५	३,८००
कैलशियम कारबाइड	—	३,११०	२४,०००
फिटकरी	२,४६०	४,३७०	५०,०००
ऐलम सलफेट	१३,२५०	२७,६९०	
कापर सलफेट	५०५	१,०४५	३,०००
अमोनियम क्लोराइड	—	१,६८३	५,०००
एसेटिक एसिड	—	२,३७५	—
बैनजीन हैक्साक्लोराइड	—	१,६०३	३,०००
डी. डी. टी.	—	१७२	३,०००
हाइड्रोजन पैरोक्साइड	—	—	१,५००
सोडियम हाइड्रोसल्फाइड	—	—	४,०००

भारी रासायनिक पदार्थों के काम में आने वाले महत्वपूर्ण उद्योगों में १९६०-६१ तक जो उत्पादन लक्ष्य रखे गये हैं वे यह हैं—अलूमीनियम, कागज, रेयन, औषधियों और भेषजों, साबुन और वनस्पति। किन्तु भारत में रासायनिक पदार्थों का इतना उत्पादन होते हुए भी प्रति व्यक्ति पीछे उपभोग बहुत कम है जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—[१]

उपभोग प्रति व्यक्ति पीछे (पौंड में)

	भारत	सं०राष्ट्र अमेरिका	इंगलैंड	प० जर्मनी	रूस	जापान
सोडा एश	०·७	६२	३६	४२	१३	६२
कॉस्टिक सोडा	०·५	४१	२०	२२	६	५२
गंधक का तेजाब	१·२	१७०	८५	६३	४१	२१०
खाद	०·७	३४	१६	२१	६६	१४

भारत में इस उद्योग की निम्न विशेषतायें हैं :—

(१) इन वस्तुओं को तैयार करने के लिए साधारणत: छोटे-छोटे कारखाने हैं। इनमें गंधक और गन्धक तेजाब तैयार करने में लागत भी अधिक पड़ती है।

(२) आधारभूत रासायनिक पदार्थों—सोडा एश, गंधक का तेजाब, कास्टिक सोडा—का मूल्य बहुत अधिक पड़ता है। इन पदार्थों का लागत कम रखने के उद्देश्य से भविष्य में स्थापित होने वाले नये कारखानों का न्यूनतम आकार निर्धारित कर दिया गया है।

(३) हमारे देश में रसायन-उद्योग अभी बड़ी पिछड़ी हुई अवस्था में है। अन्य रसायन की तो बात ही नहीं, गंध-आम्ल (Sulphuric acid) और सोडा एश जैसी बड़ी जरूरी चीजों का उत्पादन भी हमारे देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। पहले महायुद्ध के बाद गन्ध अम्ल बनाने वाले उद्योग का विकास अवश्य हुआ है, किन्तु चूँकि इसके लिए हमें अधिकांश मात्रा में गंधक विदेशों से मंगाना पड़ता है, इसलिए इस स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। सोडा एश—जिसके बिना काँच-उद्योग का अस्तित्व ही कठिन है—बनाने के लिए देश भर में केवल दो मिलें हैं। अन्य विविध रसायनों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है।

(४) रासायनिक पदार्थों की पूर्ति के लिये हम विदेशी आयातों पर निर्भर हैं। इन आयातों के लिए हमें पहले महायुद्ध के बाद ही से अधिकाधिक द्रव्य विदेशियों को देना पड़ता है। १९१३-१४ में रासायनिक पदार्थों के कुल आयात का मूल्य १९५ लाख रुपया था। संरक्षण मिलने से उद्योगों की कुछ प्रगति होने के परिणामस्वरूप १९२८-२९ में इन वस्तुओं के लिये १,४८७ लाख रुपया देना पड़ा। १९३९ में आयातों का यह मूल्य १,०७२ लाख रुपया था और १९५९ में ८,५२० लाख रुपये।

(५) रसायन उद्योगों के निर्माण के लिए आवश्यक कच्चे माल की कमी है। इस हेतु सोनामाखी (Pyrites) और जिप्सम (Gypsum) से गन्धक आदि बनाने के लिये गवेषणा की जा रही है।

(६) इस समय सोडा एश, कास्टिक सोडा और कैलशियम कार्बाइड तैयार करने वाले उद्योग लट-कर संरक्षण पाकर अपना विकास कर रहे हैं। इसका कारण

१. Capital Supplement : Dec. 20, 1956, p. 147.

यह है कि उनकी उत्पादन लागत आयातित माल के मूल्य की अपेक्षा अधिक पड़ती है। उत्पादन मूल्यों को घटाने से ही दूसरे उद्योगों में इन पदार्थों की खपत बढ़ाई जा सकती है। इनके घटाने का मुख्य उपाय यही है कि इन्हें तैयार करने वाले कारखानों के आकार बढ़ाये जायें और इन्हें ऐसे स्थानों पर रखा जाय जहाँ कच्चे माल, बिजली और ईंधन आदि की सुविधाएँ हों। उपोत्पादनों और रद्दी माल का उपयोग करने के उद्देश्य से कई प्रकार के रासायनिक पदार्थों को ही कारखानों में तैयार करने का प्रयत्न होना चाहिए।

गंधक का तेजाब (Sulphuric Acid) :

गंधक के तेजाब का स्थान तेजाबों में सबसे महत्वपूर्ण है। अन्य तेजाबों—शोरे का तेजाब, हाइड्रोक्लोरिक एसिड—के उत्पादन के लिये भी गंधक के तेजाब की आवश्यकता होती है। गंधक का तेजाब बनाने का पहला प्रयत्न १९वीं शताब्दी के अन्त में किया गया और १९१४ के पहले की मिलों में बंगाल की 'डी० वाल्डी कम्पनी' और बंगाल कैमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स, तथा मद्रास की पैरी कम्पनी और बम्बई की ईस्टर्न कैमिकल कम्पनी प्रमुख थीं। ज्वलनशीलता के कारण गंधक के तेजाब का आयात अधिक मात्रा में संभव नहीं है और इसलिए गंधक का तेजाब बनाने की नई मिलें खोली गईं। दि टाटा कम्पनी ने जमशेदपुर में लोहे और इस्पात के उद्योग के लिए एक मिल खोली। विदेशी स्पर्धा के कारण उद्योग को दूसरे महा-युद्ध के पहले बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। १९३९ में उस उद्योग की उत्पादन क्षमता ५७,००० टन थी, किन्तु उत्पादन इस क्षमता का केवल ५०% ही था। दूसरे महायुद्ध के फलस्वरूप इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला। तभी से इसका उत्पादन वृद्धि पर है। इस समय इसकी उत्पादन क्षमता ३७४,०८४ टन है। इस समय देश में ३५ मिलें हैं जिनमें १३ पश्चिमी बंगाल व बिहार में ; १२ बम्बई में ; ६ पंजाब तथा ४ उत्तर प्रदेश में हैं। इस उद्योग में २ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है।

गंधक के तेजाब के लिए गंधक अभी विदेशों से ही आयात किया जाता है। १९५१ में आयात की मात्रा लगभग ३७,००० टन थी। १९५५-५६ में गंधक की मांग लगभग २ लाख टन थी। अतः द्वितीय योजना में गंधक के तेजाब का उत्पादन का लक्ष्य ४,७०,००० टन रखा गया है और तृतीय योजना में १,२५०,००० टन।

सोडा ऐश या सज्जी (Soda Ash) :

सज्जी की सबसे अधिक आवश्यकता कांच, वस्त्र उद्योग और कपड़ा धोने में होती है। सज्जी के उत्पादन के लिये देश में दो कारखाने हैं—टाटा कैमिकल वर्क्स मिथारपुर' और 'धारंगध्रा कैमिकल कं०', बम्बई जिनकी उत्पादन क्षमता १९५९ में ११०,००० टन थी। वास्तविक उत्पादन ९६,१२८ टन होता है। प्रतिवर्ष लगभग ७०,००० टन का आयात किया जाता है। कोयले और चूने की खानों से बहुत दूर होने के कारण सज्जी उद्योग में यातायात व्यय की समस्या बड़ी गम्भीर रही है, अतः योजना आयोग ने इन दोनों कारखानों के विकास के अतिरिक्त पश्चिमी बंगाल और बिहार में नये कारखाने खोलने की सिफारिश की है। किन्तु ३ नये कारखाने क्रमशः पोरबंदर, नैवैली और बनारस में खोले जा रहे हैं जिनके फलस्वरूप १९६०-६१ तक हमारी उत्पादन क्षमता २,३०,००० टन हो जायगी तथा कारखानों की संख्या ५ हो जावेगी। तृतीय योजना में उत्पादन क्षमता ५३०,००० टन और उत्पादन ४५०,००० टन होगा।

कास्टिक सोडा (Caustic Soda) :

अम्लों के अतिरिक्त उद्योग में क्षारों (Alkalies) का भी बहुत काम पड़ता है। इन क्षारों में कास्टिक (दाहक) सोडा और सोडा एश (सज्जी) प्रमुख हैं। साबुन, कागज, कपड़ा, घी और वनस्पति घी, रेलों आदि में कास्टिक सोडा की बहुत आवश्यकता पड़ती है। अनुमान है कि इन सब उद्योगों में मिला कर लगभग ५५ हजार टन कास्टिक सोडा की जरूरत है। १९५५ में 'टाटा कैमिकल कम्पनी' और ११ अन्य कारखानों की कुल उत्पादन-सामर्थ्य ४४,३०० टन प्रतिवर्ष थी। १९५२ में 'मैट्टूर कैमिकल एण्ड इंडस्ट्रियल कारपोरेशन' और 'दिल्ली क्लाथ मिल्स' ने भी कास्टिक सोडा बनाने के कारखाने खोले हैं। कागज की कुछ मिलों ने भी अपने लिए कास्टिक सोडा बनाने की मशीनें लगाई हैं। फिर भी हमारा उत्पादन अभी आवश्यकता से बहुत कम है। १९५९ में कास्टिक सोड़ा बनाने वाले १७ कारखानें थे जिनकी उत्पादन क्षमता ९८,९४५ मैट्रिक टन और उत्पादन ७०,००० टन था।

सन् १९६०-६१ तक यह उत्पादन क्षमता १,५०,४२४ टन हो जायेगी जिसमें से २,७,६०० टन सज्जी से और १,२२,८२४ टन इलैक्ट्रोनिक प्रणाली से उत्पादन होगा। तृतीय योजना में उत्पादन लक्ष्य ३४०,००० टन और क्षमता ४००,००० टन होगा।

क्लोरीन (Chlorine) :

इसका उत्पादन भी कास्टिक सोडा के साथ साथ ही होता है। इसका मुख्य उपयोग ब्लीचिंग पाउडर, डी० डी० टी०, अमोनियम क्लोराइड, मैथिल क्लोराइड, हाइड्रोक्लोराइड तेजाब, कई प्रकार के रङ्ग, तथा कीटाणुनाशक पदार्थों के तयार करने में होता है। अभी देश में इसका उपभोग बहुत कम होता है। इसके उत्पादन के देश में १२ कारखानें हैं जिनकी उत्पादन क्षमता ३६,००० टन की है। इन रासायनिक पदार्थों के मुख्य उत्पादन केन्द्र कलकत्ता, बम्बई, धारङ्गध्रा, मैसूर, जमशेदपुर, बङ्गलौर, अहमदाबाद, बड़ौदा, कानपुर, दिल्ली, ओखा और मद्रास हैं।

रासायनिक खादें (Chemical Fertilizers) :

भारत में रासायनिक खाद के उद्योग का विकास द्वितीय महायुद्ध के बाद ही, हुआ है। १९३९ में मैसूर के बेलेगुला स्थान पर 'मैसूर कैमिकल फर्टीलाइजर्स' के नाम से एक खाद का कारखाना खोला गया जिसमें प्रतिदिन २० टन अमोनियम सलफेट बनाया जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में रासायनिक खाद बनाने का कोई अलग कारखाना नहीं था, केवल 'कोक ओवन' (Coke Oven) के प्लांट से सहकारी उत्पादन के रूप में प्रति वर्ष लगभग २५,००० टन अमोनियम सलफेट बनता था। उस समय रासायनिक खाद का आयात भी सीमित था। सन् १९२२-२३ में अमोनियम सलफेट का आयात ३०६ टन था, यह १९३८-३९ में बढ़ कर ७६,७४८ टन हो गया।

१९४७ में भारत में रासायनिक खाद का एक और कारखाना 'फर्टीलाइजर्स ऐंड कैमिकल्स लि०' के नाम से ट्रावनकोर में अलवाये नामक स्थान पर खोला गया जहाँ प्रतिदिन १५० टन अमोनियम सलफेट तथा १०० टन सुपरफास्फेट बनाया जाने लगा। इस क्षेत्र में कोयला नहीं मिलता। अतः अमोनियम गैस बनाने के लिए यहाँ गैस-जैनरेटर की बैटरियों में लकड़ी का ईंधन प्रयोग में आता है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद रासायनिक खाद के उद्योग ने बड़ी उन्नति की है।

इस उन्नति की पृष्ठ भूमि में १९४३ का अकाल तथा भारत के कृषि उत्पादन, का निरंतर ह्रास और उसकी जाँच के हेतु बनाई गई 'अनाज नीति समिति' (Food Grains Policy Committee) की सिफारिशें हैं। इस कमेटी ने एक और कारखाना खोलने की सिफारिश की जो ३,५०,००० टन अमोनियम सलफेट प्रति वर्ष बनाया करे।

भारत में पिछले कुछ वर्षों से रासायनिक खादों का उपयोग बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। इनकी खपत १९५१–५२ में ५०,००० टन थी। १९५६–५७ में ४,६३,३३७ टन अमोनियम सलफेट; ४,२९६ टन अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट; १३,१०३ टन यूरिया; ५७ टन केलशियम अमोनियम और २९८ टन पोटाश का मूरियट वितरण किया गया।

देश	प्रति एकड़ पीछे रासायनिक खादों का प्रयोग १९५६–५७
नीदरलैंड	१७४·९ पौंड
नार्वे	१२५·३ ,,
जापान	१९३·२ ,,
प० जर्मनी	१२१·३ ,,
ब्रिटेन	१०१·८ ,,
अमेरिका	२४·९६
भारत	१·०५

सिन्दरी का कारखाना :

स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने धनबाद से १५ मील की दूरी पर स्थित सिन्दरी गाँव में २३ करोड़ की लागत से रासायनिक खाद का एक कारखाना खोला। इस कारखाने को बनाने में ५–६ वर्ष की अवधि लगी और नवम्बर १९५१ से यहाँ अमोनियम सलफेट की खाद का उत्पादन आरम्भ होगया। यह एशिया का सबसे बड़ा खाद बनाने वाला कारखाना है और इसे विश्व में नवीनतम प्लान्टों से युक्त एक आधुनिक कारखाना माना जाता है १६ जनवरी १९५२ को इसे फर्टिलाइजर्स एन्ड केमिकल्स लिमिटेड कम्पनी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है।

यह कारखाना मुख्यतः ५ विभागों में विभक्त है—(१) पावर प्लान्ट, (२) गैस प्लान्ट, (३) अमोनिया प्लान्ट, (४) सलफेट प्लान्ट, और (५) नया बना हुआ कोक ओवन प्लान्ट।

सिन्दरी में "अर्द्ध जल गैस जिप्सम पद्धति" अमोनियम सल्फेट बनाने के लिये प्रयोग में लाई जाती है। इस प्रणाली में पहले अमोनिया नाइट्रोजन की और हाइड्रोजन की सिन्थेसिस से बनाई जाती है। इस अमोनिया को फिर अमोनियम कारबोनेट में कारबन डाई आक्साइड के रिएक्शन से परिवर्तित किया जाता है। इसके बाद पीसे हुए जिप्सम को अमोनियम कारबोनेट से मिलाकर अमोनियम सलफेट बनाते हैं और चाक स्लज नामक अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त करते हैं जो सीमेन्ट बनाने के लिये उपयोगी होता है। निम्न पंक्तियों में सिन्दरी के विभिन्न प्लान्टों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

पावर प्लान्ट जो ८०,००० किलोवाट शक्ति का है, फैक्ट्री को बिजली तथा प्रोसेस स्टीम देता है।

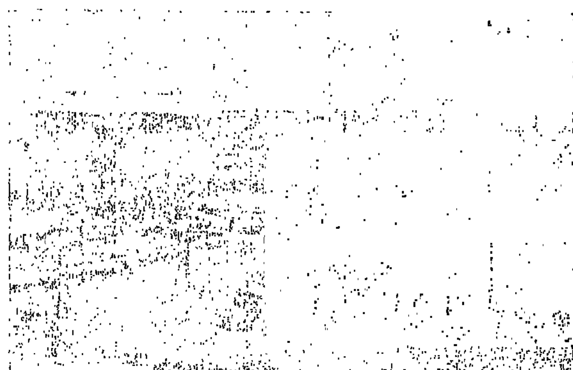
गैस प्लान्ट गैस मिक्सचर बनाता है, जो कि सफाई के बाद अमोनिया

सिन्थेसिस बनाने के काम आता है। प्रतिदिन यहाँ ४४ मिलियन क्यूबिक फुट गैस बनती है।

अमोनिया सिंथेसिस प्लाण्ट में गैस प्लाण्ड की परिवर्तित गैस कारबन डाई आक्साईड से मुक्त की जाती है और नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के बचे हुए मिक्सचर को केटेलिस्ट के साथ सिन्थेसाइस्ड किया जाता है। यह प्लाण्ट प्रतिदिन (२४ घन्टों में) २७० टन अमोनिया बनाता है।

सलफेट प्लाण्ट में जिप्सम और अमोनियम कारबोनेट के घोल को मिलाया जाता है और कुछ केमिकल प्रोसेसों के बाद अमोनियम सलफेट बनता है, जिसे क्रिस्टल (दाना) का रूप दिया जाता है और केलशियम कारबोनेट स्लज को अलग कर दिया जाता है, जिसका प्रयोग सीमेण्ट बनाने के लिये किया जाता है।

कोक की आवश्यकता पूर्ति के लिये बनाया गया नया कोक ओवन प्लाण्ट प्रतिदिन ६०० टन कोक का उत्पादन करता है और इससे बहुत से अतिरिक्त उत्पादन भी प्राप्त होते हैं।



चित्र १५३-- सिंदरी में खाद का कारखाना

सन् १९५५-५६ में सिन्दरी का उत्पादन निर्धारित मात्रा से ६,०६२ टन अधिक था। सन् १९५५-५६ में सिन्दरी का कुल उत्पादन ३,२६,०६२ टन अमोनियम सलफेट था। अब तक रासायनिक खाद का सिन्दरी का उत्पादन १२ लाख टन लगभग रहा है जिससे ४० करोड़ से अधिक मूल्य की विदेशी मुद्रा की बचत रही है। दूसरे शब्दों में सिन्दरी के खादों के प्रयोगस्वरूप २३ लाख टन अतिरिक्त अन्न की पैदावार हुई है जिससे ६५ करोड़ रु० से अधिक मूल्य के खाद्यान्नों की पैदावार में वृद्धि हुई है। मूल्य की कमी और रासायनिक खादों की उपयोगिता की वृद्धि के साथ ही साथ रासायनिक खाद की माँग में भी बढ़ोतरी हुई है। निम्न तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा।

१९५२	२,७६,००० टन
१९५३	४,२२,००० ,,
१९५४	५,५०,००० ,,

१६५५-५६	६,००,००० टन
१६५६-५७	८,००,००० ,,

६ लाख टन मांग के विपरीत भारत में सब मिलाकर ३,८०,००० टन रासायनिक खादों का उत्पादन सन् १६५५-५६ में हुआ था। इससे स्पष्ट है कि हमारी माँग और वर्तमान उत्पादन में प्रतिवर्ष २,२०,००० टन का अन्तर है, जिसकी पूर्ति रासायनिक खादों के आयात द्वारा की जाती है।

सिन्दरी में प्रतिदिन औसतन ३०० टन अमोनिया का उत्पादन होता है। सिन्दरी का नया कोक ओवन प्लाण्ट प्रतिदिन ६०० टन कोक बनाता है जो सिन्दरी की अपनी आवश्यकता से अधिक होता है। कोक के अतिरिक्त अन्य अतिरिक्त उत्पादन भी कोक ओवन प्लाण्ट से होते हैं, जैसे कोलतार, मोटर बेनजाल, बेनजीन, टोलूइन तथा जेलीन आदि। निम्न तालिका से कोक ओवन बाई प्रोडक्टस के होने वाले प्रतिवर्ष के उत्पादन का अनुमान लग जायगा :—

	१६५१	१६५५
कोका (टन)	१२७१,००० टन	६६८,००० टन
कोलतार (टन)	५५,३०० ,,	५६,१०० ,,
मोटर बेनजाल (गैलन)	१३६०,००० ,,	६६८,००० ,,
बेनीजीन	३१,५०० ,,	२५४,६०० ,,
नैपथा	८४,००० ,,	६६,८०० ,,
टूलीन	१७२,००० ,,	८३,१०० ,,

प्रतिदिन अमोनियम सलफेट के बनाने में लगभग ६०० टन चाक स्लेज बाई प्रोडक्ट बन जाता है। यह अतिरिक्त उत्पादन सीमेन्ट बनाने के काम आता है। सिन्दरी के रासायनिक खाद के कारखाने के निकट ही एसोशिएटेड सीमेन्ट कम्पनी ने एक सीमेन्ट बनाने का कारखाना स्थापित किया है जो प्रतिदिन ६०० टन चाक स्लज सम्प्रति लेता है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में रासायनिक खाद उद्योग के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है और सिन्दरी जैसे तीन नए कारखाने खोले जा रहे हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में १०० करोड़ रु० की रकम नये रासायनिक खाद के कारखानों को खोलने के लिये रखी गई है। सन् १६६१ तक नाइट्रोजन की आवश्यकता ३७३० लाख टन अथवा १८,६५,००० टन अमोनियम सलफेट होगी। फासफेटिक खादों की आवश्यकता द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक २०,००० टन अनुमानित है।

रासायनिक खादों के उपयोग का विकास-क्रम द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में इस प्रकार है :—

१६५६-५७	१,५०,००० टन
१६५७-५८	१,६०,००० ,,
१६५८-५६	२,४०,००० ,,
१६५६-६०	३,००,००० ,,
१६६०-६१	३,७०,००० ,,

फर्टिलाइजर्स मिशन, सन् १६५३, के आरम्भ में भारत में रासायनिक खादों

के प्रचार, प्रसार एवं सिन्दरी के विकास के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा संसार के दौरे पर भेजा गया था। मिशन का मत था कि सिन्दरी में ७० टन प्रतिदिन यूरिया बनाने वाला प्लाण्ट तथा ११० टन अमोनियम नाइट्रेट बनाने वाला प्लान्ट लगाया जाय अथवा ३५ टन यूरिया और १५० टन अमोनियम नाइट्रेट उत्पादन करने वाले प्लाण्ट लगाये जायें।

इसके अतिरिक्त इस मिशन ने नये फर्टिलाइजर्स प्रोजेक्टों के स्थापित करने के पहले निम्न तथ्यों पर भी ध्यान देने के लिये कहा—

(१) कोक ओवन गैस मिलने की नई सम्भावनाएँ (स्टील प्रोजेक्टस के पास)।

(२) आयल रिफाइनरी के बम्बई तथा विशाखापट्टनम में खोले जाने की सम्भावनायें।

(३) जल विद्युत केन्द्रों के निकट सस्ती जल विद्युत मिलने की सम्भावनायें।

सिन्दरी के कोक ओवन प्लाण्ट से १०० लाख क्यूबिक फुट गैस पैदा होती है जिसका उपयोग यूरिया और अमोनियम नाइट्रेट नामक खाद बनाने में किया जायगा। फर्टिलाइजर्स मिशन की सिफारिशों के आधार पर सिन्दरी में प्रतिदिन ७० टन यूरिया तथा ४०० टन अमोनियम नाइट्रेट बनाई जा रही है।

सिन्दरी के विकास की दूसरी योजना को "बैलेन्सिंग एक्सपैन्सन स्कीम" के नाम से जाना जाता है, जिसके अनुसार प्रयत्न किया जा रहा है कि पूरी कार्यक्षमता के अनुसार होने वाले उत्पादन और वर्तमान उत्पादन का अन्तर कम से कम हो सके।

द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में एक ओर वर्तमान रासायनिक खादों के उत्पादन को बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है और दूसरी ओर तीन नये कारखाने खोले जा रहे हैं। सन् १९६१ तक प्रति-वर्ष २,५०,००० टन कुल मिला कर रासायनिक खाद की आवश्यकता होगी। अतः लगभग १,७०,००० टन की कुल उत्पादन शक्ति वाले रासायनिक खाद के कारखानों को बनाने की आगामी पंचवर्षीय योजना में व्यवस्था की गई है। निम्नांकित तीन फर्टिलाइजर्स प्रोजेक्ट द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में बनाये जायँगे :—

(i) नंगल प्रोजेक्ट (Nangal Project) :

फर्टिलाइजर्स प्रोजेक्ट कमेटी की सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने नंगल प्रोजेक्ट बनाया है, जिसकी उत्पादन क्षमता ७०,००० टन (अमोनियम नाइट्रेट) प्रतिवर्ष होगी तथा साथ ही साथ यहाँ हेवी वाटर भी बनाया जायगा। इस प्रोजेक्ट का सारा कार्य लगभग समाप्त हो गया है और नंगल फर्टिलाइजर्स एण्ड कैमिकल्स प्राइवेट लिमिटेड नामक कम्पनी का निर्माण किया गया है जो इस प्रोजेक्ट का कार्यभार ले लेगी। यह प्रोजेक्ट सन् १९५९-६० तक पूरा हो जायगा और इसको बनाने में लगभग २२ करोड़ रु० लगेगा। १९६०-६१ में इससे ४०,००० टन नेत्रजन बनाया जायेगा।

(ii) रूरकेला फर्टिलाइजर प्रोजेक्ट (Rourkela Fertilizer Project) :

द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में एक प्रोजेक्ट रूरकेला में बनाया जा रहा है जो ८०,००० टन नाइट्रो लाइम स्टोन प्रतिवर्ष बनाएगा।

(iii) नैवेली प्रोजेक्ट (Navelli Project) :

नैवेली प्रोजेक्ट दक्षिण भारत में बनाया जा रहा है। नैवेली प्रोजेक्ट लिगनाइट प्रोजेक्ट का एक हिस्सा है जो प्रतिवर्ष ७०,००० टन सलफेट नाइट्रेट और यूरिया की खाद बनायेगा।

भारत में रासायनिक खादों के उद्योग का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। आगामी कुछ वर्षों में हमें रासायनिक खादों के सम्बन्ध में विदेशों पर निर्भर न रहना पड़ेगा।

हमें शायद इस तथ्य को मानना ही होगा कि गंधक से बने गंधक का तेजाब प्रयोग करके अमोनियम सल्फेट का उत्पादन अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। अभी तक हमें देश के अन्दर गंधक के किसी भण्डार का पता नहीं चला है; यद्यपि जोधपुर, बीकानेर और सौराष्ट्र में विविध वर्गों के जिप्सम के ८,००,००,००० टन के भण्डार हैं, फिर भी बात ध्यान में रखनी चाहिये कि अकेले सिन्दरी को ही प्रतिवर्ष ८७ प्र. श. शुद्धता वाली ७,५०,००० टन जिप्सम की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष ३,५,००० टन जिप्सम सीमेंट में मिलाने के लिये चाहिये। आगामी वर्षों में सीमेंटउद्योग की आवश्यकता काफी बढ़ेगी। इसलिये यह आवश्यक है कि अन्य नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों जैसे नाइट्रोला इमस्टोन अमोनियम सल्फेट और अमोनियम नाइट्रेट का द्विगुणित लवण, यूरीया अमोनियम फास्फेट आदि के उत्पादन का विचार किया जाय,

नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों का लाभप्रद उत्पादन तभी संभव हो सकता है जब संश्लेषित अमोनिया कम लागत पर तैयार होने लगे। संश्लेषित अमोनिया के लिये सस्ती बिजली, और कोयला अथवा कोक की भट्टी या पेट्रोलियम शोधक कारखानों से निकलने वाली गैस या प्राकृतिक गैस की आवश्यकता पड़ती है जो साधन उपलब्ध हैं उनको तथा इस बात को ध्यान में रखते हुए कि आजकल उर्वरक मिश्रणों में एक से अधिक पोषण पदार्थ मिलाने की प्रवृत्ति है, निम्न स्थानों पर लाभप्रद ढंग से विविध प्रकार उर्वरक तैयार करने की सम्भावना पर विचार किया जा सकता है:—

स्थान	उर्वरक की किस्म
(१) आसाम	
(क) प्राकृतिक गैस पर आधारित	यूरिया
(ख) अधिक गन्धक युक्त कोयले पर आधारित	अमोनियम सल्फेट
(२) आसाम में निकलने वाले अशोधित पेट्रोल को साफ करने का कारखाना जहाँ कहीं भी खुले	यूरिया
(३) बम्बई के पेट्रोल शोधक कारखाने	यूरिया — नाइट्रोफास्फेट, द्विगुणितलवण (बशर्ते कि सौराष्ट्र में ठीक किस्म की जिप्सम काफी मात्रा में प्राप्त हो)
(४) राजस्थान	अमोनियम सल्फेट का हो सके तो निचली श्रेणी के जिप्सम से प्राप्त गंधक के तेजाब से उत्पादन करना।

स्थान	उर्वरक की किस्म
(५) मैसूर (भद्रावती)	अमोनियम नाइट्रेट नाइट्रो लाइम स्टेन, अमोनियम फास्फेट नाइट्रो फास्फेट द्विगुणित सुपर फास्फेट
(६) केरल–(अलवाय के समीप)	अमोनियम फास्फेट, नाइट्रोफास्फेट, द्विगुणित सुपर फास्फेट
(७) आन्ध्र (सिंगरेणी और रामगुडुम कोयला क्षेत्र)	यूरिया
(८) उत्तर प्रदेश (रिहन्द)	अमोनियम नाइट्रेट, नाइट्रो लाइम स्टोन
(९ मध्य प्रदेश	यूरिया
(१०) नये इस्पात के कारखाने और मौजूदा कारखानों का विस्तार स्वतन्त्र रूप से स्थापित होने वाली कोक की भट्टियाँ	यूरिया, यदि हाइड्रोजन कारबनडाइ आक्साइड के उत्पादन के लिये कोक भट्टी से प्राप्त गैसों का प्रयोग किया जाय। अमोनियम नाइट्रो लाइमस्टोन, यदि केवल हाइड्रोजन ही निकाली जाय।
(११) कॉस्टिक सोडा क्लोरिन संयंत्र (तूतीकोरन, बम्बई, दिल्ली, अलवाय आदि के बड़े कारखाने और स्थापित किये जाने वाले अन्य नये कारखाने)	डाई केलसीयम फोसफेट

२. भारत में रङ्ग-लेप उद्योग (Indian Paints Industry)

रङ्ग-लेप उद्योग भारत का एक प्रतिष्ठित उद्योग है। इस समय देश में कम से कम २०० कारखाने रङ्ग-लेप, इनेमल और वार्निश तैयार कर रहे हैं। इन कारखानों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है :—(१) विदेशी उत्पादकों के सहयोगी (कारखानों की संख्या ६), (२) व्यवस्थित भारतीय क्षेत्र (मुख्य कारखानों की संख्या ३६), और (३) अव्यवस्थित पैमाने के उत्पादक। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व इस उद्योग के व्यवस्थित क्षेत्र की अधिकतम उत्पादन क्षमता ४,००० टन प्रति मास थी। उस समय यह उद्योग मुख्यत: कलकत्ता, बम्बई और लाहौर में केन्द्रित था। उस समय से अब तक निम्न-लिखित ७ नये कारखाने खोले गये हैं :—

वर्ष	कारखानों की संख्या	स्थान
१९४७	१	कलकत्ता
१९४८	२	मद्रास, मोदीनगर
१९४९	१	बम्बई
१९५०	१	कानपुर
१९५१	२	कलकत्ता, नागपुर

रङ्ग-लेप उद्योग की वास्तविक उत्पादन क्षमता ३,००० टन प्रति मास है।

रङ्ग-लेप उत्पादन के लिए जिन मूल-भूत वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनमें से अनेक भारत में प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। इनमें खड़िया, मिट्टी, चीनी

मिट्टी, चपड़ा, राल, अलसी का तेल, अरण्डी का तेल, ग्लीसरीन, सफेद स्पिरिट, तारपीन आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त रङ्ग भी देश में ही आसानी से मिल जाते हैं। रङ्ग-लेपों में होने वाले अनेक सुधार तो वस्तुतः अच्छे कच्चे माल के ही स्वाभाविक फल होते हैं। इस उद्योग के आधुनिक ढङ्ग पर विकसित करने के लिए यह आवश्यक है कि अनेक नये कच्चे माल विदेशों से मँगाये जायँ। पिछले कुछ वर्षों में ऐसे कच्चे माल का आयात बहुत बढ़ा है। इस समय प्रति वर्ष लगभग २ करोड़ रु० का माल मंगवाया जा रहा है।

स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त सरकार ने रङ्ग-लेप उद्योग के विकास के लिये निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये थे :—(१) संश्लिष्ट वस्तुओं, नाइट्रो सेलूलोज लेकर्स (Nitro cellulose lacquers) और विशेष औद्योगिक स्थानों पर प्रयुक्त होने वाले रङ्ग-लेपों का अधिकाधिक उत्पादन, (२) स्थानीय रूप से मशीनें तैयार करना, (३) उस समय जो कच्चा माल आयात किया जाता था उसका देश में ही उत्पादन, (४) स्थानीय कच्चे माल का अधिकतम उपयोग, (५) अच्छी किस्म का माल तैयार करना तथा बाजार से घटिया माल को बाहर निकाल देना, और (६) निर्यात के लिए बाजार ढूँढ़ कर बेकार क्षमता को काम में लगाना।

प्रयोग की दृष्टि से तैयार रङ्ग-लेपों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है : (१) घरों, सार्वजनिक इमारतों, कारखानों, क्रेनों, पुलों, बाँधों आदि के लिए काम आने वाले, (२) परिवहन के साधनों (रेल के डिब्बों, ट्रामों, मोटरकारों, बसों तथा व्यावसायिक गाड़ियों आदि) के लिए काम आने वाले, और (३) सामान्य औद्योगिक कामों में प्रयुक्त होने वाले (मशीनों, पंखों, फर्नीचर आदि के लिए रोगन और वस्त्र तथा बिजली उद्योगों के लिए वार्निशें)।

भारत में १९५० में २७,९४८ टन रंग-लेप का उत्पादन किया गया और १९५९ में ५७,७९२ टन का। इस उद्योग में होने वाला विकास मुख्य रूप से इन वस्तुओं में देखा जा सकता है :—इमारतों के लिए प्लास्टिक इमल्शन पेन्ट, हवाई जहाजों के लिए रोगन, रेफ्रीजरेटरों के लिए रंग, उद्योगों में प्रयुक्त होने वाले लहरियेदार रंग-लेप, पोलीक्रोमेटिक रंग-लेप, बहुत अधिक ताप सह सकने वाले रंग-लेप, तलवार की म्यानों पर की जाने वाली सुनहरी वार्निश, चमड़े पर की जाने वाली सुनहरी वार्निश, बिजली के तारों के लिए अति संश्लिष्ट इनेमल, खाने के बर्तनों पर की जाने वाली सुनहरी वार्निश तथा चमकने वाले रंग-लेपों की दिशा में भी तत्काल उत्पादन कार्य आरम्भ किया जा सकता है।

३. प्लास्टिक उद्योग (Plastic Industry)

वर्तमान समय में पश्चिमी देशों के आर्थिक जीवन में प्लास्टिक का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इससे जो वस्तुएँ बनाई जाती हैं वे बहुत ही सस्ती, हल्की, टिकाऊ और जंग न लगने वाली होती हैं। प्लास्टिक से बनाई जाने वाली चीजें विशेषतः ऐसी होती हैं जो घरेलू प्रयोग, बिजली के उद्योगों तथा अन्य प्रकार के उद्योगों में काम आती हैं। ये वस्तुएँ रेडियो की खोलियाँ, मशीनी खिलौने, ब्रुश, ग्रामोफोन के रेकार्ड, प्लास्टिक की चद्दरें, बटुए, थैले, किताबों की जिल्दें तथा सादा और खुरदरा चमड़ा जैसा दिखायी देने वाला प्लास्टिक, मोटरों, हवाई जहाजों, नकली दांतों, सिगरेट की रकाबियां, वार्निश, मीनाकारी स्वच्छता के उपकरण आदि हैं।

प्लास्टिक मुख्यत: दो प्रकार से बनाया जाता है :—(१) सांचों में दबाकर, अथवा (२) उसमें तरल पदार्थ डाल कर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाने में होता है। पहली रीति के अनुसार इस्पात के गरम साँचों में प्लास्टिक बनने वाले कच्चे माल को रक्खा जाता है। इन साँचों को ऊँचे तापक्रम पर गर्म किया जाता है, और इन पर प्रति वर्ग इंच पर १ से ८ हजार पौण्ड का दबाव डाला जाता है। दूसरे तरीके से साँचों में तरल प्लास्टिक डालकर उसको खूब गरम किया जाता है और प्रति वर्ग इंच पर १० से ३० हजार पौण्ड का दबाव डाला जाता है।

इस उद्योग के लिये सेलुलोज तीन प्रकार से प्राप्त किया जाता हैं, : (१) लकड़ी, कपास, गन्ने, अथवा मक्की के डन्ठलों से इस प्रकार प्राप्त किये गये सेलूलोज को शोरे के तेजाब से मिला कर नाइट्रो सेलूलोज प्राप्त किया जाता है, (२) सेलूलोज सोयाफली, दूध, सूखा हुआ रक्त आदि से भी प्राप्त किया जाता है, और (३) आजकल कारबोलिक एसिड, फिनौल और फोरमेल-डी-हाइड नामक वस्तुओं से भी प्लास्टिक बनाया जाता है। इन वस्तुओं के अतिरिक्त प्लास्टिक बनाने में कई प्रकार के रंग और चिकने तेल आदि की भी आवश्यकता होती है।

भारत में भी इसका उत्पादन द्वितीय महायुद्ध के बाद आरम्भ हुआ है। यहाँ इस समय साँचों में दबा कर अथवा उनमें तरल प्लास्टिक डालकर उपयोग की कई वस्तुएें बनाई जाती हैं।

भारत में १२० सुव्यवस्थित कारखाने हैं, जबकि १९३६ में केवल ५ कारखाने थे। १९५६ में इन कारखानों से ६ करोड़ रुपये से अधिक की वस्तुओं का उत्पादन हुआ। देश में अमृतसर, कानपुर, कोयम्बटूर और हैदराबाद में प्लास्टिक की वस्तुएें बनाई जाती हैं किन्तु बम्बई और कलकत्ता तो इसके गढ़ ही हैं।

प्लास्टिक उद्योग के मुख्य कच्चे माल के रूप में जिन कृत्रिम रालों और ढलाई के चूरे का प्रयोग होता है—यूरीया, फारमेल्डी-हाइड, पोलिस्टाइरीन, पौलीथीन, सेलूलोस एसीटेट, एसीटेट बुटाइरेट, सैलूलाइट, एक्राइलिक, नाइलन, मोनोफिल और स्टारीन बुटाडीन—वे लगभग ५,००० टन के विदेशों से मंगाये जाते हैं। तृतीय योजना में प्लास्टिक उद्योग की उत्पादन क्षमता ८५,००० टन और वास्तविक उत्पादन ४७,००० टन होगा।

४. सीमेंट उद्योग (Cement Industry)

पोर्टलैंड सीमेन्ट (Portland Cement) इमारतें बनाने का ऐसा मसाला है जिसका चलन हुए अभी अधिक दिन नहीं हुए। १८२४ में इङ्गलैंड के लीड्स नामक स्थान के एक राज ने जिसका नाम जोसेफ एस्पडिन था, वर्तमान सीमेन्ट से मिलते-जुलते एक मसाले का आविष्कार किया। कंकड़-पत्थर आदि को पीस कर बनाये जाने वाले साधारण ढंग के चूने और सीमेन्ट का प्रयोग तो सदियों से होता आया है।

पोर्टलैण्ड सीमेन्ट बनाने की विधि संक्षेप में इस प्रकार है :—चूने के पत्थर (अथवा केल्शियम युक्त किसी अन्य पदार्थ जैसे खड़िया, मिट्टी, संगमरमर अथवा समुद्री सीपियों) की मिट्टी को उचित परिमाण में मिला कर चूरा कर लेते हैं। फिर उसे ऊँचे तापमान (प्राय: १,४०० अंश सेन्टी० से १,५०० अंश सेन्टी०, तक) पर घूमने

वाली अथवा स्थिर मिट्टी में भूनते हैं। इस प्रकार तैयार होने वाली वस्तु को क्लिकर (Clinker) कहते हैं। इसे ठन्डा करके बारीक पीस डालते हैं। इसमें थोड़ा सा जिप्सम (Gypsum) मिला देते हैं। इस प्रकार पोर्टलैण्ड सीमेन्ट बन कर तैयार हो जाता है जो आज मजबूती और आकर्षण, दोनों ही दृष्टियों से इमारतों के बनाने में जादू का काम करता है। इसे प्लास्टिक के समान किसी भी रूप में ढाला जा सकता है। इसकी सहायता से ठोस अथवा पोले किसी भी प्रकार की वस्तुएं तैयार की जा सकती हैं। एक ओर इससे सुन्दर बेल-बूटों वाली सुन्दर जालियाँ बनाई जाती हैं तो दूसरी ओर भारी-भारी बाँध और लम्बे-चौड़े हवाई अड्डे अथवा सड़कें बनाई जाती हैं।

सीमेन्ट बनाने की दो प्रमुख विधियाँ हैं :—(१) गीली विधि, और (२) सूखी विधि।

भारत में अधिकतर गीली विधि से ही सीमेन्ट बनाया जाता है। इस विधि से कच्चे माल को उपयुक्त परिमाण में मिला कर बारीक पीस डालते हैं। फिर उसे पानी में गाढ़ा घोल लेते हैं।

गीली विधि में सूखी की अपेक्षा ईंधन अधिक खर्च होता है, परन्तु विभिन्न कच्चे माल भली प्रकार और सरलता से मिल कर एक हो जाते हैं। इधर सूखी विधि से भी विभिन्न प्रकार के कच्चे माल को मिला कर एक कर देने की अच्छी प्रणालियाँ निकल आई हैं।

सीमेन्ट बनाने में कई कच्चे पदार्थों की आवश्यकता होती है। उनमें मुख्य चूने का पत्थर, चिकनी मिट्टी, कोयला और जिप्सम हैं। अनुमान लगाया गया है कि १ टन सीमेन्ट तैयार करने में १·६ टन चूने का पत्थर, ·४ टन जिप्सम और ३·८ टन कोयले की आवश्यकता होती है। इस अनुपात के कारण सीमेन्ट का उद्योग अधिकतर चूने के पत्थर वाले स्थानों के निकट स्थापित किया जाता है।

सीमेन्ट बनाने के लिये भट्टियों में जलाने को उच्चकोटि का कोयला ही उपयुक्त समझा जाता है जिसमें कम से कम राख के अंश हों। सीमेन्ट बनाने के लिए जिप्सम की भी आवश्यकता पड़ती है।

उद्योग का एतिहासिक विकास :

भारत में संगठित ढंग से पहली बार सीमेन्ट तैयार करने का श्रेय मदरास को है। वहाँ १९०४ में मुख्यत: समुद्री सीपियों से सीमेन्ट बनाने का कारखाना खोला गया। परन्तु यह कारखाना चला नहीं। इसके बाद दूसरा प्रयत्न १९१९ में पोरबन्दर (सौराष्ट्र) में किया गया। यहाँ इण्डियन सीमेन्ट क० लि० ने अपना कारखाना स्थापित किया। इसमें स्थिर खड़ी भट्टियां लगाई गईं, परन्तु शीघ्र ही इनके स्थान पर घूमने वाली भट्टियां लगा दी गईं। यहाँ ४०,००० टन सीमेन्ट प्रति वर्ष बनता था। इसी समय राजस्थान में बूंदी, और मध्य प्रदेश में कटनी में भी सिमेंट के कारखाने स्थापित किये गये जिनमें उत्पादन १९१४-१६ में आरम्भ हुआ। इसकी सम्मिलित उत्पादन क्षमता १ लाख टन से कुछ ही कम थी।

प्रथम महायुद्ध से भारत में सीमेन्ट उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला और १९२३ तक देश में सीमेन्ट उत्पादन की क्षमता ८५,००० टन वार्षिक से बढ़ कर ५·८ लाख टन वार्षिक तक जा पहुँची। और इस बीच सीमेन्ट के ७ नये कारखाने

खुले। परन्तु यह तेज और प्रतिबन्धहीन विस्तार योजनापूर्वक नहीं हुआ और इसका उद्योग पर बुरा प्रभाव पड़ा। फिर प्रथम महायुद्ध के बाद विदेशों से सीमेन्ट का पुनः आयात होने लगने के कारण १९२४ के आस-पास भारतीय सीमेन्ट उद्योग के आगे संकट आ उपस्थित हुआ। विभिन्न कम्पनियों द्वारा तैयार किये जाने वाले सीमेन्ट के मूल्य गिराये गये और एक समय तो विक्रय मूल्य लागत से भी कम हो गये। परन्तु भारतीय सीमेन्ट उद्योग के सौभाग्य से उस समय देश में एक ऐसा व्यक्ति उपस्थित था जिसने आगे आकर इसे मरने से बचा लिया। वह व्यक्ति था स्वर्गीय श्री० एफ० ई० दीनशा। उन्हीं के प्रयत्न से इण्डिया सीमेन्ट मैन्युफैक्चरर्स एसोसियेशन, कंक्रीट एसोसियेशन आफ इण्डिया, सीमेन्ट मारकेटिंग कं० आफ इण्डिया लि० की स्थापनायें क्रमशः १९२६, १९२७ और १९३० में हुईं और यह उद्योग संकट से पार हो गया। औद्योगिकों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बहुत सीमा तक समाप्त हो गई और कंक्रीट एसोसियेशन आफ इण्डिया ने निःशुल्क सहायता सलाह देकर जनता को सीमेन्ट के लाभ समझाने आरम्भ किये। परन्तु फिर भी कहीं १९३६ में जाकर उद्योग की दशा कुछ स्थिर हुई, जबकि तत्कालीन ११ कारखानों में से १० के हिस्सेदारों ने मिलकर दी। एसोसियेटेड सीमेन्ट कं० लि० नामक एक नया संगठन बनाना मंजूर कर लिया।[1] इस कम्पनी के निर्माण से इस उद्योग का विकास संगठित ढंग पर होने लगा। आरम्भ में इनकी सम्मिलित उत्पादन शक्ति ९,९०,००० टन वार्षिक थी किन्तु दो ही वर्षों में यह ११,००,००० टन हो गई। १९३७ के बाद देश में सीमेन्ट उद्योग का निरन्तर विस्तार होता गया।

१९३८ में डालमिया समूह के ५ कारखानों ने—सिंध में शांतिनगर और डालमियादादरी; मद्रास में डालमियापुरम्; बिहार में डालमिया नगर और पंजाब में दंदोत जिनकी उत्पादन क्षमता ५,००,००० टन थी—ए०सी०सी० कम्पनियों से तीव्र प्रतियोगिता करना आरंभ कर दिया। १९४० में इन दोनों समूहों में समझौता हो गया और इन दोनों के उत्पादन की केन्द्रीय बिक्री के लिये सीमेंट मारकेटिंग कंपनी फिर कार्य करने लगी।

द्वितीय महायुद्ध आरंभ हो जाने पर कच्चे माल की कीमत बढ़ने से सीमेंट की कीमत बढ़ गई। निर्यात् और देश की मांग में भी क्रमशः वृद्धि हुई और युद्धकाल में मध्य और सुदूर पूर्व के लिये भारत से सीमेंट का निर्यात किया जाने लगा। युद्ध की समाप्ति पर सरकारी माँग में कमी हुई, किंतु देश में वैयक्तिक रूप से सीमेंट की माँग बढ़ती गई। फलतः १९४७ तक सीमेंट के कारखानों की संख्या २३ और उनकी स्थापित उत्पादन क्षमता २६ लाख टन हो गई।

अगस्त १९४७ में देश का विभाजन होने पर १८ कारखाने जिनकी कुल स्थापित उत्पादन क्षमता २१·१५ लाख टन थी भारत में रहे और ५ कारखाने पाकिस्तान को चले गये। १९४८ में डालमिया सीमेंट समूह और ए०सी०सी० समूह में कीमतों के विषय में मतभेद होने से दोनों समूह फिर से अलग-अलग हो गये हैं।

देश में सीमेंट की मांग अब इतनी अधिक बढ़ गई कि कारखानों की उत्पादन क्षमता बढ़ाई गई और १९५०–५१ के अन्त तक भारतीय कारखानों की

१. ये कारखाने क्रमशः ये थे—मध्यप्रदेश में कटनी, कैमूर और यूनाइटेड कम्पनियाँ; मद्रास में मधुकरी सीमेन्ट फैक्टरी और मैसबाड़ा का कारखाना; बिहार में खालारी; सौराष्ट्र में पोरबन्दर और ओखा के कारखाने; राजस्थान में बूंदी; पंजाब में सूरज और ग्वालियर की फैक्ट्री।

उत्पादन क्षमता में १० लाख टन की और वृद्धि की गई। इस वर्ष ३१·९ लाख टन सीमेंट तैयार किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सीमेंट उत्पादन का लक्ष्य ४८ लाख टन रखा गया था। यह उत्पादन १९५५ में ४५ लाख टन और १९५९ में ६७ लाख टन का हुआ। इस समय भारत में सीमेंट बनाने की ३२ फैक्ट्रियाँ हैं जिन में ३३,००० व्यक्ति काम करते हैं तथा ३५–४० करोड़ की पूंजी लगी है। इसमें लगभग ५ करोड़ रुपये के लागत का ईंधन और १० करोड़ की लागत का कच्चा माल काम में लाया जाता है। १९५९ में इस उद्योग ने ९६० लाख टन चूना पत्थर तथा मिट्टी; ३ लाख टन जिप्सम; २४ लाख टन कोयला; ७२ करोड़ किलोवाट घंटा बिजली, १८०–२४० लाख गैलन पानी और ९६० लाख बोरियाँ प्रयोग कीं।

उद्योग का स्थापन :

भारतीय सीमेंट के उद्योग को प्रकृति की ओर से बड़ा लाभ प्राप्त है। उत्तम प्रकार के चूने का पत्थर भारत के कई भागों में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है, किन्तु अधिकतर विन्ध्याचल का चूने का पत्थर ही काम आता है क्योंकि यहाँ के पत्थर में चिकनी मिट्टी की मात्रा पर्याप्त होती है। अन्य स्थानों के पत्थरों में चूनेदार पत्थर अथवा स्थानीय धरातल की सिल्ट होती है। सामान्यत: चूने का पत्थर रेलवे लाइनों के निकट ही होता है और इसीलिए सीमेंट के कारखाने चूने के पत्थर की खानों के पास ही स्थापित हो गये हैं। शायद ही कोई कोई फैक्ट्री चूने के पत्थरों की खानों से २० या ३० मील की दूरी से अधिक होगी। ग्वालियर (बानमोर) की सीमेंट फक्ट्री चूने का पत्थर रेल द्वारा केवल १३ मील की दूरी से मँगाती है। सौराष्ट्र में पोरबन्दर की फैक्ट्री ३२ मील की दूरी से चूने का पत्थर मंगाती है। मध्य प्रदेश के कटनी के सीमेंट के कारखाने की पूर्ति उसके पास के ही चूने के पत्थरों से होती है; वैसे बढ़िया पत्थर २० मील की दूरी से मंगाया जाता है। बिहार में जालना और दालमियानगर की फैक्ट्रियाँ चूने का पत्थर रोहतास की पहाड़ियों से प्राप्त करती हैं। दूसरे अधिकांश कारखाने चूने के पत्थर अपेक्षाकृत बहुत ही कम दूरी से मंगाते हैं।

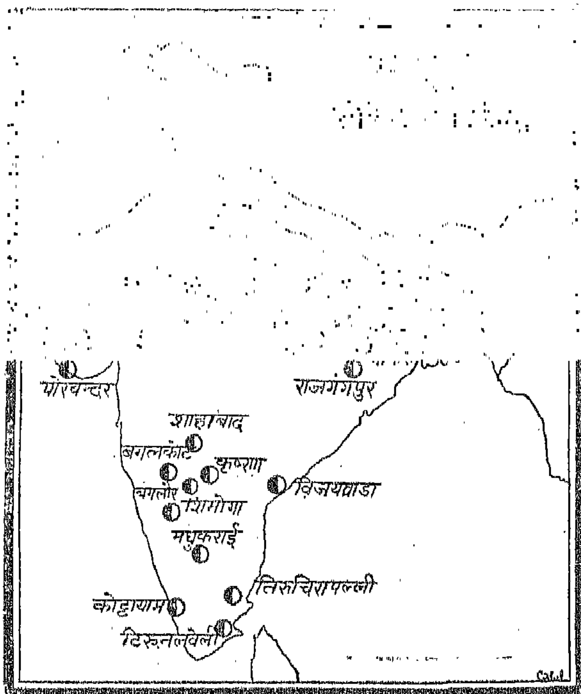
सीमेंट बनाने के लिए दूसरा मुख्य पदार्थ कोयला है। कोयले की दृष्टि से अधिकतर कारखाने असुविधा में रहते हैं। मुख्यत: कोयला बंगाल और बिहार के क्षेत्रों से प्राप्त किया जाता है। सीमेंट की भट्टियों में उच्च कोटि का कोयला ही काम में काता है जिनमें कम से कम राख का अंश हो। अत: वे कारखाने जो बिहार अथवा मध्य प्रदेश में कोयले की खानों के निकट वर्तमान हैं शक्ति उत्पन्न करने के लिए निम्न श्रेणी का कोयला प्रयोग कर सकते हैं, किंतु फिर भी कम से कम आधा कोयला उन्हें बंगाल और बिहार के क्षेत्रों से मंगाना पड़ता है। मद्रास के कारखानों को छोड़ कर सभी जगहों पर यही कोयला काम में लाया जाता है।

जिप्सम भी सीमेंट बनाने में काम आती है। यह जोधपुर, बीकानेर डिविजनों से प्राप्त की जाती है किन्तु कारखानों तक लाने में काफी व्यय हो जाता है। सौराष्ट्र के कारखाने जिप्सम की पूर्ति जामनगर मे करते हैं। बूंदी के कारखाने में तो जोधपुर से ही जिप्सम मंगाकर काम में लिया जाता है।

जहाँ तक बाजारों का प्रश्न है देश के भीतरी भागों में छोटे शहरों को यह लाभ है कि उन्हें सीमेंट के कारखानों को कम भाड़ा देकर ही सीमेंट मिल जाता है और उन्हें बाहर से आयात हुए सीमेंट पर अधिक व्यय नहीं करना पड़ता; किंतु सीमेंट

के मुख्य बाजार बन्दरगाहों पर ही स्थित हैं। इस विचार से भारत की अधिकांश सीमेंट की फैक्टरियाँ असुविधा में रहती हैं। कटनी के कारखाने बम्बई और कलकत्ता से क्रमशः ६८० और ६७० मील दूर हैं। सोन घाटी के सीमेंट के कारखाने कलकत्ता से ३७० मील दूर हैं। बूंदी बम्बई से ६१० मील है। सौराष्ट्र की फैक्टरियाँ बम्बई से २६० मील दूर हैं।

सभी परिस्थितियों को लेते हुए मध्य प्रदेश और रविहा सीमेंट उद्योग के लिये अनुकूल क्षेत्र हैं। यहाँ चूने का पत्थर और कोयला उचित दूरी पर ही मिल जाते हैं और बंगाल-बिहार के औद्योगिक क्षेत्रों के बाजार भी यहाँ से अधिक दूर नहीं पड़ते। कोशी, महानदी और दामोदर नदियों की घाटियों में विकसित होने वाली तीनों बहु-मुखी योजनाएँ भी निकट हैं।



चित्र १५४—भारत सीमेन्ट उद्योग केन्द्र

जैसा कि ऊपर कहा गया है देश में ३२ फैक्ट्रीयाँ हैं जिनकी उत्पादन क्षमता ८,१२०,००० टन है। इनमें से ६ बिहार में; ५ बम्बई में, ६ आंध्र और मद्रास में; २-२ मध्य प्रदेश और राजस्थान में तथा शेष अन्य राज्यों में हैं।

सीमेंट उद्योग के केन्द्र (१९५८)

क्षेत्र	संख्या	केन्द्र	उत्पादन क्षमता
बिहार	६	दालमियानगर, जापला, चैबासा, कल्यानपुर, खलारी, सिन्द्री।	१,१२२,००० टन

क्षेत्र	संख्या	केन्द्र	उत्पादन क्षमता
मध्य प्रदेश	२	कैमोर, कटनी, ग्वालियर (बनमोर)	४१०,००० टन
मद्रास और आंध्र	६	मधुकराई (कोयम्बटूर) विजयवाड़ा मङ्गलागिरी, डालमियापुरम्, तिरुनल-वैली, शहाबाद।	८३१,००० ,,
पंजाब	२	सूरजपुर, डालमियादाद्री।	३७०,००० ,,
राजस्थान	२	सवाई माधोपुर, बूँदी।	५२५,००० ,,
बम्बई	५	ओखामंडल, जामनगर, द्वारका, सिवालिया।	७९२,००० ,,
मैसूर	१	बंगलौर।	८६,००० ,,
केरल	१	कोट्टयाम।	५०,००० ,,
उड़ीसा	१	राजगंगपुर।	१६५,००० ,,
पश्चिमी बंगाल	१	चौबीस परगना।	,, ,,
उत्तर प्रदेश	१	मिर्जापुर (चुर्क)	२००,००० ,,
	२८		६६३०,००० टन

देश में सीमेंट का उत्पादन निम्न तालिका में बताया गया है :—

बिहार से ग्वालियर तक के ही क्षेत्र में भारत का लगभग आधा सीमेंट बनाया जाता है क्योंकि मांग के क्षेत्र गंगा की घाटी के अधिक जनसंख्या वाले प्रदेशों के निकट हैं, दूसरे, कोयला बिहार की खानों से प्राप्त हो जाता है और यातायात की पर्याप्त सुविधायें प्राप्त हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र जापला, देहरी-ऑन-सोन, कल्याणपुर खलारी, चैबासा, सिंद्री, चुर्क, कैमूर बनमोर आदि हैं।

१९४७ में कारखानों की उत्पादन क्षमता का ७०% ही प्रयोग किया जाता था, वहाँ १९५९ में लगभग ८१% प्रयोग किया गया। नीचे की सारिणी से यह बात स्पष्ट हो जायेगी :—

वर्ष	कारखानों की संख्या	उत्पादन क्षमता (००० टनों में)	उत्पादन (००० टनों में)	प्रयुक्त क्षमता का प्रतिशत
१९४७	१८	२१,१५,	१४,४८	७०
१९४८	१८	२१,१५	१५,५३	७३
१९४९	२१	२८,१५	२१,०२	८०
१९५०	२१	३१,१३	२६,१३	८४
१९५१	२२	३५,५५	३१,९५	९०
१९५२	२३	३७,९५,	३५,३७	९०
१९५३	२४	४१,८८	३७,८०	९०
१९५४	२५	४४,४३	४३,९७	९८
१९५५	२७	४६,९८	४४,९६	९५
१९५६	२८	५८,००	४९,२९	९२
१९५७	२९	६६,३०	५६,००	८५
१९५८	३१	६६,३०	६०,६८	९२
१९५९	३२	८१,२०	६६,८७	८१

देश में अब उत्पादन बढ़ने से सीमेंट का आयात कम होता जा रहा है। १९४८-४९ में विदेशों से १,४७,७०४ टन सीमेंट आयात किया गया। १९५६ में विदेशों से १ लाख ८ ह० टन सीमेंट आयात हुआ।

हमारे यहाँ से थोड़ा निर्यात ईराक, लङ्का और इंडोनेशिया को होता है।

सीमेंट उद्योग के आकार को ही देख कर देश की औद्योगिक और सामाजिक प्रगति का पता लगाया जा सकता है। नीचे की तालिका से पता लगता है कि भारत तथा अन्य देशों में प्रति व्यक्ति पीछे कितना सीमेंट खर्च होता है[1] :—

देश	पौंड	देश	पौंड
अमेरिका	६००	भारत	४०
ब्रिटेन	४५०	जर्मनी	६५०
स्वीडन	६६०	फ्रांस	४५०
बेलजियम	७१७	इटली	४२०
डेनमार्क	४९०	नीदरलैंड्स	४४०
जापान	१००	स्विटजरलैंड	८५०

इस समय भारत में सिमेंट उद्योग नियंत्रण कई कंपनियों के हाथ में है। ३२ फैक्ट्रियों में से १३ का नियंत्रण एसोशिएटेड सिमेंट कम्पनी के आधीन; ५ दालमिया-ग्रुप के अंतर्गत; २ उत्तर प्रदेश और मैसूर सरकार के आधीन और शेष निजी कम्पनियों के हाथ में है।

द्वितीय और तृतीय योजना में :

द्वितीय पंच वर्षीय योजना में इस उद्योग की वर्तमान उत्पादन क्षमता ४६ लाख टन से बढ़ कर १०० लाख टन हो जाएगी और कारखानों की संख्या २८ से बढ़ कर ५५ हो जाएगी। यह अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त करने के लिए देश में २५ गए कारखानें खोले जायगें जिनकी उत्पादन क्षमता ४७ लाख टन होगी। इन कारखानों में से ७ आंध्र प्रदेश में; ७ बम्बई ; ३ राजस्थान; ३ मध्य प्रदेश, २ आसाम, २ पश्चिमी बंगाल और २ मद्रास में तथा १-१ बिहार, उडीसा, पोंडीचेरी, मैसूर और उत्तर प्रदेश में होंगे। वर्तमान २९ कारखानों का भी विस्तार किया जायेगा इससे उनकी उत्पादन क्षमता बढ़ कर ४० लाख टन हो जायेगी। इस विस्तार योजना में ५०-६० करोड़ रूपये की पूंजी और लगानी पड़ेगी तथा इससे ५०-५५ हजार लोगों को रोजगार मिल सकेगा। इन नई योजनाओं में से ११ योजनायें (जिनकी कुल उत्पादन क्षमता १८ लाख टन होगी) १९५८ के अंत तक समाप्त होगी; ११ योजनायें (जिन की उत्पादन क्षमता ११४ ला० टन होगी) १९५९ के अंत तक और शेष १९६०-६१ तक समाप्त होगीं। तीसरी योजना में (१९६१-६६) में सीमेन्ट की उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन क्रमशः १५० लाख टन और १३ लाख टन होगा।

इस विस्तार का कार्य क्रम इस प्रकार है :—

वर्ष	कंपनियों की संख्या	कारखानों की संख्या	वार्षिक वर्तमान कारखानों की क्षमता	नये लगे कारखानों की क्षमता	(लाख टनों) में योग
१९५७	१६	२८	६३.३२	—	६३.३२

1. Supplement to 'Capital' of 23rd June 1960, p. 17.

वर्ष	कंपनियों की संख्या	कारखानों की संख्या	वार्षिक वर्तमान कारखानों की क्षमता	नये लगे कारखानों की क्षमता	(लाख टनों में) योग
१६५८	२१	३४	७४.०३	८.६६	८४.६४
१६५६	२८	४२	८०.३३	२१.५६	१०५.२२
१६६०	२८	४४	६१.७१	२१.५६	१२०.२५
१६६१	३३	५३	६८.५६	३३.२७	१४८.२७
१६६२	३३	५५	६८.५६	३३.२७	१५१.५७

एसबस्टस सीमेंट की चादरें और नल :

यह औद्योगिक विकास, नगर निर्माण तथा बस्तियों के निर्माण को प्रभावित करने वाला मुख्य उद्योग है। इस समय सीमेंट की चादरें बनाने वाले ६ कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता १४०,००० टन की है। १६५० में इन चादरों का उत्पादन ८६,४०० टन था जो बढ़ कर १६५६ में १८२,४०० टन हो गया। ये कारखानें देश के निर्माण भागों में हैं। इन चादरों की वर्तमान आवश्यकता २ लाख टन और प्रैशर-पाइपों (Pressure Pipes) की आवश्यकता ४८ लाख गोलाकार फीट कूती जाती है। ये आवश्यकताएँ भविष्य में और भी बढ़ेंगी। इसके अतिरिक्त असबस्टस की विशेष वस्तुएँ जैसे ब्रेकलाइनिंग, पैंकिंग, जौइंटिंग तथा अन्य आवरण पदार्थ भी देश में बनाये जाते हैं।

चीनी मिट्टी के बर्तनों का उद्योग (Potteries)

चिकनी मिट्टी से बरतन बनाने का उद्योग बहुत प्राचीन है। सबसे पहले इसका जन्म लगभग १००० वर्ष से भी पूर्व चीन में हुआ। वहाँ इसके बनाने में कैओलीन (Kaolin) नामक मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। यह उद्योग प्राचीन काल में बैबीलोनिया, मिस्र और भारत में भी किया जाता था। विश्वास किया जाता है कि चीनी मिट्टी के बरतन तथा छोटी मूर्तियाँ पहले-पहल जापान में ईसवी की प्रथम सदी में बनीं। १३वीं सदी तक जापान में चीनी बर्तनों की निर्माण की प्रगति अत्यन्त मंद रही। इसी समय कातीसीरो नामक जापानी कुंभकार चीनी मिट्टी बनाने की गुप्त विधि सीखने चीन गया। इसके बाद से ही वहाँ चीनी मिट्टी का सामान बनाने की अधिक प्रगति हुई है। १७वीं शताब्दी में ब्रिटेन में चीनी मिट्टी का सामान बनाने का उद्योग इतनी पूर्णता पर पहुँच गया जितना यूरोप में और कहीं नहीं पहुँचा। ब्रिटेन में स्टैफर्डशायर के कुम्हार सबसे अच्छे चिकनी मिट्टी के बर्तन बनाते थे।

वर्तमान युग में इस उद्योग ने काफी उन्नति की है। उन्नति केवल निर्माण-प्रणाली में ही नहीं वरन् नई डिजायनों का माल तैयार करने में भी हुई है। चीनी मिट्टी के उद्योग में यंत्रों का प्रयोग अन्य उद्योगों की अपेक्षा कम होता है क्योंकि :—

(१) चीनी मिट्टी के बर्तनों आदि के उद्योग में प्रयोग होने वाले पदार्थों में सरलता से मशीनों का प्रयोग नहीं हो पाता।

(२) चीनी मिट्टी के कारखानों में प्रायः विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ (ईंटें, टाइल, तीव्र गर्मी सह सकने वाली ईंटें, इन्सूलेटर आदि) बनाई जाती हैं जो अन्य उद्योगों में नहीं होता।

(३) चिनी मिट्टी के उद्योग में इंजिनीयर बहुत थोड़े होते हैं।

उत्पादित वस्तुएँ :

इस उद्योग में ऐसी मिट्टियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें लोहा नहीं होता। इस उद्योग की बनी चीजों का बहुत व्यापक प्रयोग होता है। एक ओर वे मकानों के निर्माण तथा भवन-सज्जा में काम आती हैं, दूसरी ओर धातुओं के निर्माण अथवा विद्युत उपयोग के इन्सूलेटरों के लिये, रासायनिक पदार्थ, स्वच्छता उपकरण (Sanitary wares), पानी और गंदगी निकालने की नालियों के निर्माण में काम आती हैं। चीनी मिट्टी से ही खपरैलें (tiles), कप-तश्तरियाँ (Crockery) तीव्र गर्मी सहने वाली ईंटें और चमकदार टाइलें भी बनाई जाती हैं।

कच्चा माल :

चीनी मिट्टी के बर्तनों के लिए चिकनी मिट्टी (China clay) या कैओलीन मिट्टी की ही अधिक आवश्यकता होती है। इस मिट्टी को सरलता से ३,०००° फा० तक गर्म किया जा सकता है। यह उद्योग अधिकतर मिट्टी के क्षेत्र के पास ही केंद्रित होता है।

भट्टियों में जलाने के लिए काफी मात्रा में कोयले की भी आवश्यकता पड़ती है। रासायनिक पदार्थ—फैलसपार, क्वार्ट्ज आदि की भी आवश्यकता बर्तनों पर चमक और मजबूती लाने के लिये होती है।

इस उद्योग के बने माल काफी भारी होते हैं अतः उन्हें परिवहन के लिए सस्ते और सुरक्षित साधनों की आवश्यकता होती है। इसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार काफी बढ़ा-चढ़ा होता है क्योंकि कांच के बर्तनों से यह अधिक सस्ते और मजबूत होते हैं।

भारत के उद्योग का विकास :

भारत में चीनी मिट्टी के बर्तनों के लिए उपयुक्त मिट्टी राजमहल की पहाड़ियों में तथा जबलपुर, रानीगंज और कुमारधूबी में मिलती है। बर्तनों पर चमक लाने के लिए हड्डी की राख, चकमक पत्थर और फैलसपार निकटवर्ती क्षेत्रों में ही मिल जाते हैं।

भारत में आधुनिक ढंग का पहला कारखाना १८६० में रानीगंज में बर्न एन्ड कम्पनी ने स्थापित किया तथा दूसरा कारखाना भी इसी वर्ष बिहार में भागलपुर जिले में पत्थरघट्टा नामक स्थान पर खोला गया, किन्तु यह शीघ्र ही बंद हो गया। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में बंगाल पॉटरीज लि० की स्थापना कलकत्ते में हुई। चीनी के बर्तनों की मांग बढ़ जाने से शीघ्र ही अन्य कारखाने भी स्थापित किये गए। पत्थर का सामान बनाने का पहला कारखाना तेलगाँव के पैसा फंड संस्था ने सौराष्ट्र में थान नामक स्थान पर थान पॉटरीज के नाम से स्थापित किया। यहाँ बने चीनी मिट्टी के अमृतबान बड़े लोकप्रिय हुए। अतः बाजार की बढ़ती हुई मांग पूरी करने के लिए ग्वालियर पॉटरीज, ग्वालियर तथा दिल्ली और बंगाल पॉटरीज कलकत्ता ने चीनी के अमृतवान बनाने आरंभ कर दिये। द्वितीय महायुद्ध में आयात कम हो जाने से इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला और कई छोटे-छोटे कारखाने स्थापित हो गये। बड़े कारखानों ने भी अपना उत्पादन बढ़ा दिया और कइयों ने क्रॉकरी तथा बिजली के इंस्युलेटर बनाने आरंभ किये।

इस समय भारत में बर्तन बनाने वाले कुल ६६ कारखाने हैं, जबकि १९४९ में केवल ४३ कारखाने ही थे। इनका उत्पादन २४,००० टन से बढ़कर ७५,००० टन हो गया। मुख्य ये हैं :—

कारखाने	केन्द्र	उत्पादन
१. बंगाल पॉटरीज लि०	कलकत्ता	क्रॉकरी और इंस्युलेटर।
२. बर्न एंड कम्पनी.	रानीगंज ; जबलपुर	नालियों के पाइप, स्वच्छता उपकरण।
३. मैसूर स्टोनवेअर पाइप्स एंड पॉटरीज लि०	बंगलौर	नलियों के पाइप ।
४. परशुराम पॉटरीज वर्क्स	बीकानेर, थानागढ़, नजराबाद	क्रॉकरी, टाइलें, स्वच्छता उपकरण, पत्थर का सामान
५. ईस्ट इण्डिया डिस्टीलरी एन्ड सुगर फैक्ट्री लि०	रानीपेठ	तेजाब के अमृतबान।
६. कुंडारा फैक्ट्री	तिरवांकुर	क्रॉकरी
७. हिंदुस्तान पॉटरीज लि०	रूपनारायनपुर	चीनी के मोटे पाइप।
८. रिलायन्स-फाइर ब्रिक्स एंड पॉटरीज लि०	बम्बई	मिट्टी के बर्तन, स्वच्छता उपकरण, तेजाब के बर्तन।
९. स्टोनवेअर पाइप्स लि०	त्रिवेल्लोर (मद्रास)	चीनी के मोटे पाइप।

कलात्मक बर्तन :

भारत में कुटीर उद्योग कलात्मक बर्तन भी तैयार करते हैं। ये बर्तन चाक पर गीली मिट्टी दबा कर या मोड़कर बनाये जाते हैं। दीनापुर के लाल पालिश वाले बर्तन, कोटा व अमरोहा के काली तथा सुनहरी पोलिश वाले बर्तन, मद्रास के बिना पालिश वाले तथा पंजाब के पालिश वाले बर्तन मुख्य हैं। चुनार के बर्तन तथा खिलौने; खुरजा के गुलदस्ते, फूल पत्ती कढ़े बर्तन, पानी के जग, पाऊडर के बर्तन, तश्तरियाँ, क्रॉकरी आदि तथा निजामाबाद के और लखनऊ के बर्तन सुन्दर डिजाइनों, हल्केपन और चमकीले होने के कारण बड़ी मांग में रहते हैं।

टाइलें अधिकतर समस्त मलाबार तट और हुगली तट पर नदियों द्वारा लाई गई पुरानी रेत से बनाये जाते हैं। पहले मिट्टी को पीसा जाता है और फिर हैंडप्रैसों या साँचों में ईंटों के रूप में बना लिया जाता है।

इन ईंटों को निरन्तर जलने वाले भूमिगत भट्टों में पकाया जाता है। इन स्थानों के कारखानों के अतिरिक्त टाइलें मध्य प्रदेश के बोगरा; उड़ीसा के जैपुर; और मद्रास के राजमहेन्द्री नामक स्थानों में भी बनाई जाती हैं।

अगली तालिका में भारत में तैयार होने वाले विभिन्न प्रकार के चीनी मिट्टी के बर्तनों का उत्पादन बताया गया है :—

वर्ष	चीनी के बर्तन	स्वच्छता के उपकरण	पत्थर का सामान	चीनी की पालिश वाली टाइलें	तापसह ईंटें	इंस्युलेटर
१९४८	४४८ टन	१२२ टन	१,३०० टन	—	—	२,१६,१००
१९५०	६,०६० ,,	१,७८८ ,,	२६,४०० ,,	९२,४०० दर्जन	२,३६,४०० टन	१४,५३,०००
१९५३	१०,४४० ,,	१,३३२ ,,	३३,६०० ,,	३,७४,४० ,,	२,२८,००० ,,	२९,५३,०००
१९५५	१०,२२४ ,,	२,४८४ ,,	३९,६०० ,,	३,७६,८०० ,,	३,७२,००० ,,	४५,१६,०००
१९५६	१५,०२४ ,,	२,७१२ ,,	४४,४०० ,,	४५८,००० ,,	३,१८,००० ,,	३७,९२,०००
१९५७	१५,५४० ,,	३,४३२ ,,	५१,६००	५,२०,८०० ,,	३,९२,४०० ,,	४७,४३,०००
१९५८	१८,८०४ ,,	४,५७२ ,,	६१,२००	५,४६,००० ,,	४,३४,४०० ,,	५०,०४,०००
१९५९	२४,५५२ ,,	५,०३८ ,,	६० ८०० ,,	७०६,८०० ,,	४,८५,६०० ,,	४,६२२,४००

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत ३० नये कारखाने स्थापित करने तथा वर्तमान कारखानों के विस्तार के लिए लाइसेंस दिए गए हैं जिनसे इनकी उत्पादन क्षमता १,९०,००० टन हो जायेगी अभी यह ९७,२५५ टन है। यह वृद्धि इस प्रकार होगी :—

वस्तुएं	वर्तमान क्षमता टन	१९६०-६१ तक प्राप्त क्षमता टन
क्रॉकरी	१६,८९६	३४,०४०
मल पात्र	२,६४०	१०,७२०
चीनी की टाइलें	४,१०४	८,७४९
S. W. पाइप	५७,४२४	१,०४,४३४
S. W. जार	९,३५७	९,७६३
हाई टैंशन इन्सुलेटर	८००	५,७८०
लो टैंशन इन्सुलेटर	५,४२४	१६,८८०
चीनी का बना बिजली के काम का अन्य सामान	—	१६२
अन्य	६००	१,२०६
योग	९७,२५५	१,९१,७३४

तापसह ईंटें (Refractories)

इस समय देश में तापसह ईंटें बनाने के ४२ कारखाने हैं जिनकी उत्पादन क्षमता ७,२४,३२० टन वार्षिक है तथा उत्पादन ४·९ लाख टन। इन कारखानों में निम्न प्रकार की ईंटें बनाई जाती हैं :—

१. अग्नि-ईंटें (Fire-Bricks)—सामान्य तथा उच्च ताप सहने वाली।

२. सिलिका ईंटें।

३. बेसिक ईंटें (मैगनेसाइट, क्रोमाइट, मैगनेसाइट-क्रोमाइट, क्रोमाइट-मैगनेसिया ईंटें)।

४. सीमेंट तापसह ईंटें (सीमेंट की बनी)।

इन ईंटों की उत्पादन क्षमता इस प्रकार है :—

फायर क्ले तापसाह ईंटें—३,२०,००० टन; सिलिका ३०,००० टन; बेसिक १०,००० टन; हाई अलूमिनिया १०,००० टन; आवरण ४,००० टन तथा सीमेंट तापसह ईंटें ७०,००० टन।

पिछले १२ वर्षों में तापसह ईंटों का उत्पादन १९४७ में १,७५,००० टन से बढ़ कर १९५९ में ४,८५,६०० टन हो गया। इस उद्योग से १,५,००० लोगों को रोजी मिली हुई है तथा इसमें ७ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है। मूल उद्योगों की निरन्तर बढ़ने वाली आवश्यकताएं पूरी करने के लिए इनका उत्पादन बढ़ा कर १०-११ लाख टन किया जाएगा। ३३ नये कारखाने और खोले जायेंगे जिनकी ७ लाख टन ईंटें बनाने की क्षमता होगी। इस विस्तार योजना से ४०,००० लोगों

को रोजी मिलेगी और २० करोड़ रुपये खर्च होंगे। इस समय जो ४२ कारखाने हैं उनमें से ८ बिहार; ३ पश्चिमी बंगाल; ४ महाराष्ट्र; ३ मद्रास; ५ मध्य प्रदेश; २ सौराष्ट्र; ३ मैसूर; १ उड़ीसा और २ दिल्ली में हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत इस्पात और लोहे के उद्योग के अतिरिक्त तापसह ईंटों की आवश्यकता कांच उद्योग में १६,००० टन; सिरैमिक्स में ६,००० टन; तापसह ईंटों के उद्योग में ४०,००० टन; सीमेंट ३६,००० टन; रेलवे २०,००० अन्य उद्योग ८०,००० टन—योग १,९८,००० टन। लोहे और इस्पात उद्योग में ९,४७,००० टन ईंटों की आवश्यकता होगी। तृतीय योजना में तापसह ईंटों की उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन क्रमशः २० लाख टन और १६ लाख टन का होगा।

(६) काँच का उद्योग (Glass Industry)

कांच मुख्यतः बालू मिट्टी से बनाया जाता है किंतु इसके निर्माण में सोडा एश, चूना, टूटे हुए कांच के टुकड़े, सोडियम सल्फेट, पोटेशियम कारबोनेट, शोरा, सुहागा, बोरिक एसिड, सीसा, सुरमा, संखिया और बेरियम मिलाये जाते हैं। इनके मिश्रण से उत्पादित काँच मजबूत, टिकाऊ अच्छी प्रकार पिघलने वाला होता है। इन सब पदार्थों को बालू मिट्टी के साथ मिलाकर बहुत ऊंचे तापक्रम (२,५०० से ३,००० फा०) पर गर्म किया जाता है। यह पदार्थ पिघल कर चिपचिपा और बेरवेदार हो जाता है। ठण्डा होने पर इसे किसी भी शक्ल में बनाया जा सकता है। कांच बनाने के लिये ऐसे बालू की आवश्यकता होती है जिसमें सिलिका के कण अधिक किंतु लोहे के कण कम हों।

इस उद्योग के स्थानीयकरण पर कच्चे माल का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि कच्चे माल का मूल्य उत्पादन व्यय में १० से १५% तक ही होता है, अतएव यह उद्योग बाजारों के निकट ही अधिक पनपता है क्योंकि इसके कच्चे माल भारी होते हैं तथा तैयार माल हल्के होने के साथ-साथ दूर भेजने में टूटने का खतरा रहता है और किराया भी अधिक लगता है। अतएव यथा सम्भव काँच के कारखाने माँग के निकट वाले क्षेत्रों में ही अधिक स्थापित किये जाते हैं। प्राकृतिक गैस या कोयले की शक्ति इसके लिए आवश्यक है।

आधुनिक समय में कई प्रकार का काँच बनाया जाता है जैसे—पारदर्शी, अपारदर्शी, शीघ्र टूटने वाला, न टूटने वाला और लोहे की तरह मजबूत काँच के रेशों से सूती कपड़े भी बनाये जाते हैं। काँच की ईंटें विविध प्रयोगों में ली जाती हैं—काँच की चादरें, काँच के बोतल, बर्तन आदि भी बनाये जाते हैं।

उद्योग का एतिहासिक विकास :

भारत में काँच का उद्योग बहुत पुराने समय से चला आ रहा है। भारत में बेलगाँव, मैसूर और उत्तर प्रदेश में तो १७वीं और १८वीं शताब्दी में भी कांच का उद्योग का होना पाया जाता है। आधुनिक ढङ्ग के उद्योग को गत शताब्दी के अंतिम दस वर्षों में आरम्भ करने के कई प्रयत्न किए गये किन्तु सफलता नहीं मिली। स्वदेशी आन्दोलन के समय भी कई काँच के कारखाने स्थापित हुए, किन्तु उनमें से कुछ ही पनप सके। वास्तविक प्रोत्साहन तो इस उद्योग को प्रथम महायुद्ध के समय ही

मिला। सन् १९३२ में इसे संरक्षण भी दिया गया। तभी से इस उद्योग ने काफी प्रगति की है।

भारत में काँच का सामान बनाने का उद्योग दो भागों में विभक्त है—(१) प्रथम प्रकार के कारखाने वे हैं जो कुटीर उद्योग के रूप में काम करते हैं, और (२) दूसरे प्रकार के वे कारखाने हैं जो आधुनिक फैक्टरियों के रूप में काम करते हैं।

(१) प्रथम प्रकार के कुटीर धंधे के रूप में काँच के सामान बनाने के उद्योग का मुख्य केन्द्र फिरोजाबाद और दक्षिण में बेलगाँव है। फिरोजाबाद में १०० से भी ऊपर छोटी २ फैक्टरियाँ हैं जो काँच की रेशमी तथा साधारण चूड़ियाँ बनाती हैं। उत्तर प्रदेश में काँच का कुटीर उद्योग एटा, फतहपुर, शिकोहाबाद आदि स्थानों में भी चलाया जाता है। इनसे भारत की चूड़ियों की माँग की ¾ पूर्ति हो जाती है किंतु जैकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया, जापान, बेलजियम, इटली और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से आयात की गई चूड़ियों से इन्हें प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है। फिरोजाबाद में चूड़ियाँ बनाने के धंधे से ५०,००० लोगों को व्यवसाय मिलता है तथा यहाँ वार्षिक उत्पादन १६,००० टन है जिसका मूल्य ४ करोड़ रुपये है।

(२) भारत में काँच बनाने की आधुनिक फैक्टरियाँ विशेषकर उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब, मध्य प्रदेश, बिहार, मद्रास और उड़ीसा में केन्द्रित हैं। इनका प्रादेशिक वितरण (१९५६ में) इस प्रकार था :—

राज्य	काँच के कारखानों की संख्या	उत्पादन क्षमता (टन)
प० बंगाल	२८	९०,८००
उत्तर प्रदेश	२४	६३,६००
महाराष्ट्र+गुजरात	१८	४९,१००
मद्रास	९	१०,८००
बिहार	८	३९,६००
मध्य प्रदेश	५	३,६६०
पंजाब	३	९,३००
दिल्ली	३	४,४००
आंध्र	२	४,८००
राजस्थान	२	२,७००
मैसूर	२	१,१६०
अन्य राज्य	५	१०,८००
	१०९	२,९१,०२०

१९५९ में कांच की शीशियाँ बनाने के १९३ कारखाने थे। जिनकी उत्पादन क्षमता २,१०,९१८ टन थी। यह कार्यशील चिमनियाँ बनाने वाले ८२ कारखानें, प्रयोगशाला की वस्तु बनाने वाले १५ कारखानें थे। इनकी उत्पादन क्षमता क्रमश ३५ हजार टन की थी।

इन कारखानों में मुख्यत: चार प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती हैं :—

(१) चूड़ियों के लिए शीशे की बट्टी।

(२) मोती, बोतलें, चिमनियाँ, शीशियाँ, बरतन ।
(३) कांच की चद्दरें और दरवाजे, खिड़कियों में लगाने के काँच ।
(४) चीर-फाड़ करने व प्रयोगशालाओं में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ ।

उद्योग का स्थापन :

यह उद्योग अधिकतर गंगा की ऊपरी घाटी में ही केन्द्रित है । इसके निम्न कारण हैं :—

(१) काँच निर्माण के योग्य सबसे अच्छा बालू उत्तर प्रदेश में विंध्याचल पर्वत के लोघरा (Loghra) और बोरगढ़ (Borghar) नामक स्थानों पर बालू के परिवर्तित जलज पत्थर को पीस कर प्राप्त किया जाता है । इन स्थानों के अतिरिक्त बरार, पूना, जबलपुर, इलाहाबाद इत्यादि जिलों में तथा जयपुर, बीकानेर, बूँदी, बड़ौदा आदि स्थानों में भी उत्तम श्रेणी की बालू अथवा बालू के पत्थर पाये जाते हैं जिनका प्रयोग इन कारखानों में किया जाता है ।

(२) इन कारखानों के लिए कोयला बिहार की खानों से प्राप्त किया जाता है । यह बात ध्यान देने योग्य है कि यहाँ के कारखाने बालू की पूर्ति के लिहाज से उचित दूरी पर हैं, किन्तु कोयला इन्हें कुछ दूर से मँगाना पड़ता है ।

(३) उत्तर प्रदेश के कारखानों को सबसे बड़ा लाभ कुशल मजदूरों का पर्याप्त मात्रा में मिल जाना है । आगरा के निकट कुछ जातियाँ—शीशगर मिलती हैं जो पीढ़ियों से काँच का सामान तैयार करती आ रही हैं । ये कुशल मजदूर आधुनिक ढंग के काँच बनाने के काम में भी बहुत जल्दी सिद्धहस्त हो जाते हैं ।

(४) इस भाग में रेलों का जाल-सा बिछा है जिससे सब सामान इकट्ठा करने में सुविधा रहती है और तैयार माल के लिए जनसंख्या की अधिकता के कारण बाजार भी विस्तृत है ।

(५) काँच बनाने में प्रयोगित दूसरे मुख्य पदार्थ सोडा-मिट्टी, सोडा सल्फेट और शोरा है । भारत के अनेक तेजाब के कारखानों में सोडा-सल्फेट उप-प्राप्ति के रूप में रह जाता है । राजस्थान की नमकीन झीलों से भी सोडा के कार्बोनेट और सल्फेट दोनों मिलते हैं । मध्य प्रदेश के बुल्ढाना जिले की कोलनार झील से सोडा कार्बोनेट प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त भारत के कई शुष्क भागों में कहीं-कहीं भूमि पर रेह नामक पदार्थ एकत्रित हो जाता है । यह भी काँच बनाने के प्रयोग में लिया जाता है । इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बंगाल और बिहार के अनेक स्थानों की मिट्टी में शोरा भी मिलता है जिससे काँच के लिए क्षार प्राप्त होता है । यही वस्तुएँ उत्तर प्रदेश के कारखानों में प्रयुक्त की जाती है ।

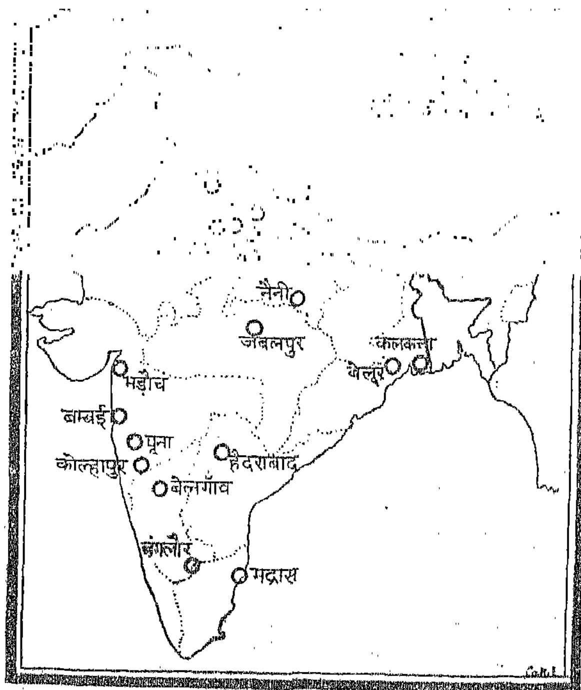
साधारणत: ७५ पौंड काँच तैयार करने में २४ पौंड बालू, ६४ पौंड सोडा-एश तथा ६ पौंड चूने का पत्थर आवश्यक होता है ।

पश्चिमी बङ्गाल में हावड़ा में काँच के २८ कारखानें हैं । इनके लिए राज-महल पहाड़ में मङ्गलघाट (Mangalghat) और पाथरघाट (Patharghat) नामक स्थानों पर गोंडवाना काल का उत्तम श्रेणी का सफेद बालू का पत्थर पीस कर काँच के लिए उपयुक्त बालू प्राप्त किया जाता है । कोयले की दृष्टि से बंगाल के काँच के कारखानों की स्थिति बहुत ही अनुकूल है, परन्तु अधिकांश बालू उन्हें उत्तर प्रदेश से मंगवानी पड़ती है । बंगाल के काँच के कारखानों को एक लाभ यह है कि वे

बंगाल के उन औद्योगिक केन्द्रों के पास ही स्थित हैं जहाँ रासायनिक पदार्थ तैयार किये जाते हैं। यहाँ अधिकतर लैंप, लालटेनों के हिस्से, बोतलें, शीशे के ट्यूब, फ्लास्क ट्यूब ग्लास, शीशे की प्लेटें आदि बनाई जाती हैं। यहाँ के मुख्य केंद्र बेलघरिया, बेलगछिया, सीतारामपुर, रानीगंज और आसनसोल हैं।

उत्तर प्रदेश में २४ काँच के कारखाने हैं। भारत का लगभग ४०% कांच का सामान इसी राज्य से प्राप्त होता है। यहाँ इस उद्योग के लिए ये सुविधायें पाई जाती हैं:—(१) उत्तर प्रदेश में लोगढ़, पन्हाई आदि स्थानों में काँच बनाने योग्य बालू मिल जाती है; (२) चूने का पत्थर विन्ध्याचल पर्वत से मिल जाता है; (३) फीरोजाबाद के शीशगर इस कार्य में बड़े निपुण हैं; (४) अधिक जनसंख्या होने के कारण काँच के सामान की बड़ी खपत रहती है; और (५) इसकी स्थिति केंद्रवर्ती होने के कारण यातायात के साधनों का पर्याप्त उपयोग हो जाता है। अतएव यहाँ इस उद्योग के मुख्य केंद्र नैनी, बहजोई, रामनगर, सासनी, शिकोहाबाद, इटावा, फिरोजाबाद, हिरनगऊ, गाजियाबाद, कीरतपुर तथा बालावाली हैं।

महाराष्ट्र और गुजरात राज्य में १८ कारखाने हैं। इन कारखानों में प्लास्टिक टेस्ट-ट्यूब, बोतलें तथा बीम आदि बनाये जाते हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र बम्बई, पूना, मोरवी, भड़ौंच, बड़ौदा, नागपुर, सितारा, कोल्हापुर और पंचमहल हैं।



चित्र १५५—भारत में काँच के उद्योग के केन्द्र

मद्रास राज्य में ६ कारखाने हैं। यहाँ अधिकतर काँच के बर्तन, चिमनियाँ,

काँच की चादरें तथा वैज्ञानिक प्रयोगशाला की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। मुख्य केन्द्र कोयम्बटूर, सलेम और मद्रास हैं।

इन राज्यों के अतिरिक्त अन्य मुख्य केन्द्र हैदराबाद, बंगलौर, जबलपुर, गोंदिया, झाँसा, कटक, कांड़ा, भवानीनगर, अंबेरना, धौलपुर, जयपुर, दिल्ली, अम्बाला अमृतसर तथा शाहदरा हैं।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में काँच बनाने के पदार्थ पर्याप्त मात्रा में वर्तमान हैं और यहाँ काँच की खपत भी काफी है, किन्तु दुर्भाग्यवश भारत के अधिकांश कारखाने ऐसे स्थानों पर बने हैं जहाँ काँच के लिए कच्चे पदार्थ, बालू और खार तथा कोयला बहुत दूर से मँगाने पड़ते हैं; इस कारण ये पदार्थ बहुत मँहगे पड़ते हैं। काँच का उद्योग कच्चे माल की निकटता में स्थापित होने वाला उद्योग है। काँच-उद्योग की सलाहकारिणी-परिषद् ने सुझाया है कि काँच के कारखानों की स्थापना पर कच्चे माल की निकटता से बाजारों की निकटता का अधिक प्रभाव होना चाहिए क्योंकि काँच शीघ्र ही टूट जाने वाला पदार्थ है। काँच का कारखाना स्थापित करने का सबसे उत्तम स्थान बंगाल या बिहार के कोयले के क्षेत्रों के पास है।

उत्पादन, व्यापार आदि :

इस समय भारत में काँच के सामान बनाने के लगभग १४४ कारखाने हैं जिनमें ३०,००० व्यक्ति लगे हैं। इस उद्योग में लगभग १० करोड़ रुपये की पूँजी लगी है। इन कारखानों का वार्षिक उत्पादन निम्न तालिका में बताया गया है :—

वस्तुएँ	१९५१	१९५४	१९५९
काँच की चादरें	११,०८९ ह० वर्ग फुट	३३,११३ ह० वर्ग फुट	८०,५६५ ह० वर्ग फुट
प्रयोगशालाओं का सामान	१,९८० टन	१,५१२ टन	५,२०८ टन
बिजली के बल्बों के खोल	१४४ ला० बत्तियाँ	२२४ ला० बत्तियाँ	३८८ ला० बत्तियाँ
काँच का अन्य सामान	९०,३२४ टन	८५,०८८ टन	१५७,३०८ टन

पिछले वर्षों से भारत से काँच के सामान का निर्यात मुख्यतः अपने पड़ोसी देशों को होता है। ये देश क्रमशः अदन, बहरीन टापू, लङ्का, बर्मा, मलाया, अरब, ईरान, अफगानिस्तान, इंडोनेशिया और हिंदचीन हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में काँच के सामान की उत्पादन की वर्तमान किस्मों का विकास और नयी किस्मों का निर्माण किया जायगा। काँच के कारखानों की उत्पादन क्षमता तथा उत्पादन १९५६ में क्रमशः २,९१,००० टन तथा १,२५,००० टन से बढ़कर ३,५४,००० टन तथा २००,००० टन हो जायेगा तृतीय योजना के अंतर्गत काँच व काँच की वस्तुएँ बनाने की उत्पादन क्षमता ६१५ हजार टन और वास्तविक उत्पादन ४४० हजार टन का होगा।

अध्याय २९

कागज उद्योग
(Paper Industry)

एतिहासिक विकास :

यदि यह कहा जाय कि आधुनिक सभ्यता का मूलाधार कागज ही है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी क्योंकि जिस देश में जितने अधिक कागज का उपभोग होता है वह उतना ही सभ्य और उन्नतिशील समझा जाता है। सभ्यता की प्रगति के साथ-साथ कागज की माँग भी निरंतर बढ़ रही है और इस बढ़ती हुई माँग के साथ-साथ कागज का उत्पादन भी बढ़ता जा रहा है। संसार के औद्योगिक व्यापार में इसका स्थान ऊँचा है। कागज का आविष्कार होने के पूर्व बैबीलोन, निनैवा और मैसोपोटैमिया के निवासी अपने विचारों को मिट्टी की टिकियों पर लिखकर उन्हें पकाकर रख देते थे। मिस्री लोग पैपीरस (Papyrus) नामक पतला पदार्थ लिखने के प्रयोग में लाते थे। कागज बनाने का आविष्कार सबसे पहले सन् १०५ ई० में एक चीनी साईलुन (Tsai Lun) द्वारा किया गया। उसने चिथड़ों द्वारा कागज बनाने की क्रिया ज्ञात की। उसी समय से इस कला का विस्तार मध्य एशिया होता हुआ अरब और वहाँ से सन् ९०० ई० में यूरोप में हुआ। स्पेन और इटली में कागज के कारखानों का स्थापन ११५० में, फ्रांस में ११८९ में, जर्मनी में १२९१ में और इंग्लैंड में १३३० में हुआ। १९वीं शताब्दी तक कागज बनाने के लिए चिथड़ों का ही प्रयोग किया जाता रहा। आज भी लिनेन और सूती कपड़े के चिथड़ों द्वारा मजबूत, और टिकाऊ ऊँचे किस्म का लिखने और पुस्तक छापने का कागज बनाया जाता है।

अस्तु, आधुनिक काल में कागज उद्योग में काम आने वाला कच्चा माल लकड़ी की लुब्दी (pulp) ही है। यह लुब्दी मुख्यत: स्प्रूस, पीली चीड़, हैमलॉक, फर आदि वृक्षों की लकड़ी से बनाई जाती है। इनकी लकड़ी को पीस कर चूरा बनाकर लुब्दी बनाई जाती है। इसे 'यांत्रिक लुब्दी' (Mechanical pulp) कहते हैं। इससे घटिया कागज बनाया जाता है।

पोपलर, एस्पेन तथा अन्य चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों की लकड़ी से रासायनिक विधि द्वारा लुब्दी बनाई जाती है। इसे 'रासायनिक लुब्दी' (Chemical pulp) कहते हैं। इसका उपयोग मुख्यत: उत्तम किस्म के कागज बनाने में किया जाता है।

भारत में कागज प्राचीन काल से ही बनाया जाता है। आज भी आधुनिक ढंग के कारखानों के साथ २ घरेलू प्रणाली पर भी कागज बनाया जाता है। ऐसे प्रमुख स्थान मथुरा, कालपी, आरवाल, सांगानेर आदि हैं। किंतु आधुनिक ढंग पर कागज बनाने का पहला प्रयास १७१६ में डा० विलियम कारे द्वारा मद्रास के तंजौर जिले में स्थित ट्रंकूबार नामक स्थान पर हुआ, किन्तु यह प्रयास सफल नहीं हुआ। सन् १८६६ में हुगली नदी के किनारे बाली स्थान पर 'बाली कागज मिल' की स्थापना हुई, किन्तु यह भी सफल न हो सकी। इसको टीटागढ़ पेपर मिल ने खरीद लिया

जो १८८४ में चालू हुई। १८९४ में कानकिनारा स्थान पर 'इम्पीरियल पेपर मिल' खोली गई। बाद को यह मिल भी 'टीटागढ़ पेपर मिल' में विलीन हो गई। धीरे २ अन्य कारखाने भी स्थापित होते गये। १९०० में कागज बनाने के ७ कारखाने थे जिनमें प्रतिवर्ष १९,००० टन कागज बनता था।

१९१३ में जब प्रथम महायुद्ध आरंभ हुआ तो उद्योग को आयात की कमी के कारण अप्रत्यक्ष रूप से विकास करने का प्रोत्साहन मिला। फलस्वरूप १९१८ में 'नेहाटी पेपर मिल' की स्थापना हुई। किंतु युद्ध की समाप्ति पर उद्योग को प्रतियोगिता और युद्धोत्तर मंदी का सामना करना पड़ा। किंतु फिर भी १९२४ तक कागज का उत्पादन ३३,००० टन हो गया और कागज की मिलों की संख्या ९ हो गई। १९२५ में इस उद्योग को ७ वर्षों के लिए तटकर संरक्षण प्राप्त हो गया और आयात किये जाने वाले कई प्रकार के कागज पर २५% शुल्क लगा दिया गया। १९२५ से १९३३ तक की अवधि में कागज का उत्पादन निरन्तर बढ़ता गया। १९३३ में कागज का उत्पादन ४४,००० टन हो गया। सन् १९२३ में आयात की हुई लकड़ी की लुब्दी ३·१३% प्रयोग की जाती थी, वहाँ १९३१ में ५५% होने लगी। १९३२ में दूसरे तटकर बोर्ड ने छापने और लिखने के कागज पर लगने वाला शुल्क बढ़ा कर १८·७% कर दिया और अखबारी कागज तथा पुराने अखबारों पर आयात शुल्क २५% कर दिया। आयातित लकड़ी की लुब्दी पर भी आयात कर बढ़ा दिया गया। अत: १९३७ में मिलों की संख्या १० और कागज का उत्पादन ४८,५०० टन हो गया। इसी बीच १९३० में स्ट्राबोर्ड (Straw Board) बनाने का पहला कारखाना सहारनपुर में खोला गया जिसका उत्पादन १९३७ में ८,००० टन था।

१९३९ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने से यह उद्योग बहुत ही बढ़ा। १९३० से १९५५ के बीच कागज का उत्पादन ४५०% बढ़ गया। १९३१ में उत्पादन केवल ४०,००० टन था; यह १९५५ में १,८५,००० टन हो गया और १९५९ में २५३,००८ टन। इस उद्योग को १९२५ से लगा कर १९४७ तक सरकार द्वारा संरक्षण मिला है।

इस समय भारत में कागज बनाने की २१ मिलें हैं। २४ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है जिसमें से ६५% भारतीय पूँजी है तथा श्रमिकों की संख्या २७,५०० है। अनुमान लगाया गया है कि वर्तमान विकास योजनाओं की पूर्ति के लिए २० करोड़ रुपये की पूँजी का और विनियोग होगा तथा लगभग ६,००० अधिक श्रमिकों को कार्य मिलेगा। नीचे की तालिका में इस उद्योग का क्रमिक विकास बताया गया है :—

वर्ष	कारखानों की संख्या	वार्षिक उत्पादन क्षमता	वार्षिक उत्पादन (टनों में)
१९००	७	—	१९,०००
१९२४	९	३७,०००	३३,०००
१९३७	१०	अप्राप्य	४८,०००
१९४३	१५	१,०३,८००	१,००,०००
१९४८	१६	१०५,०००	९८,०००
१९४९	१६	११०,०००	१,०३,०००
१९५०	१६	११४,०००	१०,९,०००
१९५१	१७	१३७,०००	१३,१,०००

वर्ष	कारखानों की संख्या	वार्षिक उत्पादन क्षमता	वार्षिक उत्पादन (टनों में)
१९५२	१८	१४७,०००	१,३८,०००
१९५३	१९	१,५३,५००	१,३९,७०३
१९५४	२०	१,५५,०००	१,५४,३३७
१९५५	२०	२१,०,०००	१,८४,८८४
१९५६	२०	२,८३,५००	१,९३,४०४
१९५७	२०	२,८०,०००	२,१०,०००
१९५९	२१	३,२१,०००	२,९८,४८१

उद्योग का स्थापन :

कागज का उद्योग कच्चे माल की प्राप्ति के स्थानों के निकट स्थापित होने वाला धंधा है क्योंकि कागज बनाने के लिए भारी पदार्थों—बाँस, लकड़ी, घास, चिथड़े, कोयला आदि की आवश्यकता होती है। कई कारखानों में तो कागज बाँस, लकड़ी और घास की लुब्दी से ही बनाया जाता है। अतः जिन भागों में ये पदार्थ निकट ही प्राप्त हो जाते हैं वहीं कागज के उद्योग का केन्द्रीयकरण हो गया है। जिन कारखानों में चिथड़े, रद्दी कागज इत्यादि से कागज बनाया जाता है वे उपरोक्त वस्तुओं की प्राप्ति स्थान के निकट नहीं होते, बल्कि ये कारखाने बाजारों के निकट ही स्थापित होते हैं।

लकड़ी की लुब्दी और कागज बनाने वाले कनाडा, स्वीडेन, नार्वे आदि प्रमुख देश अपने कच्चे माल के लिए शीतोष्ण वनों की नर्म लकड़ी पर ही निर्भर रहते हैं, किंतु भारत में इन लड़कियों के वन अधिकांशतः हिमालय पर्वतों पर पाये जाते हैं जिनमें लकड़ी काटने और यातायात की कठिनाइयों के कारण इस लकड़ी से रासायनिक लुब्दी बनाने के काम में कठिनाई पड़ती है। साधारणतया भारत के मिलों के लिए लड़की की लुब्दी तथा रासायनिक पदार्थ विदेशों से ही आयात करने पड़ते हैं। किंतु काश्मीर में उगने वाले चीड़ के वृक्षों का उपयोग लुब्दी बनाने के लिए किया जा सकता है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि बाँस और घासों की उत्पत्ति की दृष्टि से भारत काफी सम्पन्न देश है। कई मिलों में सबाई, भावर, मूँज, हाथी घास आदि का प्रयोग कागज बनाने में किया जाता है। उत्तम प्रकार का कागज बनाने के लिए सबाई घास का उपयोग किया जाता है। अब तो बाँस से भी लुब्दी बनाई जाने लगी है। भारत में बाँस का उत्पादन आसाम, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास और बिहार में होता है। भारत में बाँस के उत्पादन का अनुमान इस प्रकार लगाया गया है—मध्य प्रदेश, ४५,०,००० टन; आसाम २,६१,००० टन; महाराष्ट्र २,२०,००० टन; उड़ीसा २,५५,००० टन; आंध्र, १५०,००० टन और मद्रास १४५,००० टन। कागज और गत्ते का हमारा वर्तमान उत्पादन १,९३,००० टन है। इसके उत्पादन में हम ३,२५,००० टन बाँस का प्रयोग करते हैं। द्वितीय योजना में ६ लाख टन कागज और गत्ता बनाने के लिए १६ लाख टन बाँस की आवश्यकता होगी। बाँस से लुब्दी [illegible] लाभ यह है कि बाँस के एक पेड़ को दुबारा काटना चार वर्ष [illegible] जाता है जबकि कई लकड़ियाँ तो ऐसी हैं कि जो ६० वर्ष बाद ही दुबारा काटी जा सकती

हैं। औसत रूप में एक टन कागज बनाने के लिए लगभग २·३८ टन बाँस की आवश्यकता होती है। सवाई घास की अपेक्षा बाँस से तैयार हुई लुब्दी मात्रा में अधिक और दाम में सस्ती पड़ती है किंतु बाँस का कागज सवाई घास के कागज की अपेक्षा मामूली और खुरदरा होता है।

अखबारी कागज के उत्पादन में सलाई की लकड़ी का प्रयोग किया जा रहा है। यूक्लिप्टस, बैटल और शहतूत आदि की लकड़ी की जाँच-पड़ताड़ की गई है और उसे कागज बनाने के उपयुक्त पाया गया है। यूक्लिप्टस की एक किस्म ब्लूगम (Blue Gum) के पेड़ २,००० एकड़ में और बैटल के पेड़ मद्रास में २,४०० एकड़ में हैं। ब्लूगम का पेड़ १५ वर्षों में तैयार हो जाता है, उससे प्रति एकड़ ५० टन लकड़ी प्राप्ति होती है और बैटल का पेड़ १० वर्ष में ही पूरा हो जाता है किंतु इससे २० टन प्रति एकड़ ही लकड़ी प्राप्त होती है। शहतूत का पेड़ ७ से १० वर्षों में ही तैयार हो जाता है।

कागज और लुब्दी बनाने के लिए गन्ने की छोई (Bagasse) का प्रयोग किया जा सकता है। मामूली कागज तैयार करने के लिए कपड़े का गूदड़, सन व पटुआ, पटशन का शेषांश, रद्दी कागज, चिथड़े आदि का भी प्रयोग किया जाता है। इन सभी वस्तुओं को पीस कर और उबाल कर रासायनिक पदार्थों द्वारा कागज की लुब्दी के योग्य मुलायम बना लिया जाता है। इस लुब्दी को पानी में मिला कर बहुत पतले बुने हुए तारों के परदों के बीच से बहाया जाता है। जब पानी बह जाता है तो कागज की एक पतली तह रह जाती है। यह गीला कागज एक मशीन में डाल कर सुखाया जाता है। तब यह तैयार हो जाता है और आवश्यकतानुसार इसे काट लिया जाता है।

कच्चे माल के अतिरिक्त इस उद्योग के लिए कई रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है जिनमें मुख्य ये हैं :—कॉस्टिक सोडा, राल, चूना, क्लोरीन, लाहौरी नमक, गंधक, फिटकरी, विशेष प्रकार की मिट्टी, ब्लीचिंग पाउडर, अमोनियम सल्फेट, सोडा एश। इनमें से केवल गंधक और कॉस्टिक सोडा विदेशों से आयात किए जाते हैं, शेष यहीं से प्राप्त होते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है इस समय देश में कागज बनाने की २१ मिलें हैं, जिनकी स्थापित वार्षिक उत्पादन क्षमता ३२१,००० टन की है। इनमें से ४ मिलें बंगाल में, २-२ मिलें उत्तर प्रदेश और मैसूर में तथा उड़ीसा, बिहार, पंजाब, मध्य प्रदेश, आंध्र, मद्रास और केरल में एक-एक मिल है। गुजरात और महाराष्ट्र में ४ मिलें हैं। इनका वितरण इस प्रकार है :—

राज्य	मिलों की संख्या	केन्द्र	वार्षिक उत्पादन क्षमता टनों में
प० बंगाल	४	(i) टीटागढ़ पेपर मिल्स टीटागढ़। (ii) बंगाल पेपर मिल्स, रानीगंज। (iii) इण्डियन पेपर मिल, नैहाटी। (iv) इम्पीरियल पेपर मिल काँकिनारा।	६६,१००

राज्य	मिलों की संख्या	केन्द्र	वार्षिक उत्पादन क्षमता टनों में
बम्बई	४	(i) दक्कन पेपर मिल्स, पूना । (ii) गुजरात पेपर मिल्स, अहमदाबाद । (iii) पद्मजी पेपर मिल्स, बंबई ।	११,६००
उत्तर प्रदेश	२	(i) अपर इण्डिया पेपर मिल, लखनऊ । (ii) स्टार पेपर मिल, सहारनपुर ।	६,५००
मैसूर	२	(i) मैसूर पेपर मिल, भद्रावती । (ii) कावेरी वैली पेपर मिल, ननजनगॉड	११,०००
उड़ीसा	१	ओरिएँट पेपर मिल, ब्रजराजनगर ।	३६,०००
बिहार	१	रोहतास इण्डस्ट्रीज, दालमियानगर ।	२६,०००
पंजाब	१	श्रीगोपाल पेपर मिल्स, जगाधरी ।	१५,०००
केरल	१	पुन्नलूर पेपर मिल्स, पुन्नलूर ।	६,०००
मद्रास	१	आंध्र पेपर मिल, राजमहेन्द्री ।	६००
आंध्र	१	सिरपूर पेपर मिल्स, सिरपूर ।	२,०००
मध्य प्रदेश	१	नीपा पेपर मिल्स, नीपानगर ।	८,०००
योग	२०		२१०,०००

बंगाल—कागज बनाने का उद्योग मुख्यत: बङ्गाल में ही केन्द्रित है जहाँ कुल उत्पादन का लगभग ५०% प्राप्त होता है। (१) पश्चिमी बङ्गाल की मिलों में कागज बनाने के लिए बाँस की लुब्दी ही काम में ली जाती है। बाँस आसाम के जङ्गलों से प्राप्त किया जाता है। सबाई घास मध्य प्रदेश और बिहार से मंगाई जाती है। (२) कोयला बिहार के कोल क्षेत्रों से। किंतु सामूहिक रूप में बङ्गाल के कागज के मिल, कच्चे माल के दृष्टिकोण से बहुत अच्छी स्थिति में नहीं है। (३) कोयला और रासायनिक पदार्थों के निकट होने तथा कलकत्ता जैसे औद्योगिक नगर के निकट होने के कारण (जहाँ छापेखाने तथा दफ्तर आदि खूब होने से कागज की खपत ज्यादा होती है) इन मिलों का महत्त्व अधिक है। (४) घनी जनसंख्या के कारण मजदूर भी आसानी से मिल जाते हैं। इन्हीं अनुकूल परिस्थितियों के कारण कागज के उद्योग के मुख्य केन्द्र पश्चिमी बंगाल में ही हैं। टीटागढ़, रानीगंज, नैहाटी और कांकिनारा।

उत्तर प्रदेश—कागज के उद्योग में दूसरा स्थान उत्तर प्रदेश के मिलों को प्राप्त हैं। लखनऊ के कागज के मिल सबाई घास पूर्वी क्षेत्रों से तथा सहारनपुर के मिल पश्चिमी क्षेत्रों से प्राप्त करते हैं। कोयला बिहार उड़ीसा की खानों से प्राप्त किया जाता है तथा घनी जनसंख्या के कारण मजदूर भी खूब मिल जाते हैं।

उड़ीसा के संबलपुर जिले में ब्रजराजनगर बाँस उत्पन्न करने वाले क्षेत्र में स्थित है और यह रायपुर की कोयले की खानों के भी पास है। बिहार के मिल की स्थिति भी कच्चे माल और कोयले की दृष्टि से बड़ी अच्छी है।

मैसूर और केरल राज्यों के कागज के मिल बाँस के जंगलों के निकट हैं। जल-विद्युत शक्ति और बाजार के दृष्टिकोण से भी इनकी स्थिति अच्छी है।

महाराष्ट्र व गुजरात के मिलों की स्थिति कोयला और कच्चे माल दोनों की ही दृष्टि से विशेष लाभदायक नहीं है। यहाँ लकड़ी की लुब्दी विदेशों से मंगवाई जाती है। बाँस कनारा व सूरत जिलों से प्राप्त किया जाता है। यहाँ के मुख्य केन्द्र पूना, बम्बई, बलारपुर और अहमदाबाद हैं।

इन कारखानों के अलावा अब २२ नये कारखाने और स्थापित किये जा रहे हैं—वर्तमान कारखानों में से ८ का विस्तार किया जा रहा है जिससे इनकी उत्पादन क्षमता में १,०६,५०० टन की वार्षिक वृद्धि होगी। इन योजनाओं की पूर्ति पर देश की वार्षिक उत्पादन क्षमता ३,५०,८०० टन हो जायगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत उद्योग का विकास कार्यक्रम इस प्रकार होगा :—

	१९५५—५६		१९६०—६१	
कागज के प्रकार	उत्पादन क्षमता	वास्तविक उत्पादन	उत्पादन क्षमता	उत्पादन
अखबारी कागज	३०,०००	४,२००	६०,०००	६०,०००
कागज और गत्ता	२,१०,०००	२,००,०००	४,५०,०००	३,५०,०००

इसके अतिरिक्त उत्पादन से देश में कागज के उपभोग की मात्रा १९५५-५६ में १·४ पौंड से बढ़ कर १९६०-६१ में ३ पौंड हो जायेगी।

तृतीय योजना के अंतर्गत अखबारी कागज और कागज तथा गत्ते की उत्पादन क्षमता क्रमशः १२०,००० टन और ८२०,००० टन होगी तथा वास्तविक उत्पादन क्रमशः १२०,००० टन और ७००,००० टन होगा।

अभी भारत में अखबारी कागज के उत्पादन का एक ही कारखाना मध्य प्रदेश में नीपानगर में है, जिसकी उत्पादन क्षमता ३०,००० टन की है। लेकिन अभी ५० टन कागज ही प्रतिदिन बनाया जाता है। यहाँ सलाई वृक्ष की लकड़ी और बांस से कागज की लुग्दी बनाई जाती है। यहाँ १९५५ में २,५६३ टन; १९५६ में १०,७९२ टन; १९५७ में १४,६४५ टन और १९५८ में २३,५००० टन अखबारी कागज बनाया गया जबकि इसकी वार्षिक माँग १ लाख टन से भी अधिक की है अतः द्वितीय योजना के अन्तर्गत इसकी उत्पादन क्षमता १.४ लाख टन की करने का लक्ष्य रखा गया है। इस हेतु दो नये कारखाने खोले जायेंगे जिनकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ६०,००० टन होगी। अखबारी कागज बनाने का एक कारखाना हैदराबाद के निकट शङ्करनगर में खोला जायगा जिसमें ३० हजार टन अखबारी कागज बनेगा तथा दूसरी योजना के अन्त तक देश की सारी जरूरत पूरी हो सकेगी। कागज बनाने के लिए आसाम में रासायनिक लुब्दी तैयार करने का कारखाना स्थापित किया जा रहा है जिसमें प्रतिदिन १०० टन और वर्ष में ३० हजार टन लुब्दी बनाई जावेगी।

उत्पादन और व्यापार :

इस समय भारत में कई प्रकार का कागज बनाया जाता है जैसे—मोटे गत्ते, आर्ट और क्रोमो कागज, सिगरेटों में प्रयोग होने वाला पतला और चिकना कागज, चैक का भारी कागज और सैलूलोज फिल्म। कागज के उत्पादन को मुख्यतः चार प्रकारों में बाँटा जा सकता है :—

(१) लिखने और छापने का कागज।

(२) विशेष प्रकार का कागज।

(३) औद्योगिक प्रयोग का कागज और लपेटने के काम में आने वाला कागज —सामान्य तथा चिकना कागज, बादामी कागज, दियासलाई में लगने वाला नीला कागज, परतदार गत्ता, और जमाया हुआ कागज।

(४) अखबारी कागज।

नीचे की तलिका में विभिन्न प्रकार के कागजों का उत्पादन बताया गया है :—

कागज की किस्में	१९५०	१९५५	१९५८	१९५९
		(टनों में)		
छपाई और लिखाई	७०,१५५	१,१९,४९६	१५५,४१६	२७७,४२०
पैक करने का कागज	१४,६१६	२८,३२०	४०,३८०	५५,६३२
विशेष किस्म का	५,१९६	५,६०४	६,३००	५,३२८
गत्ते	१८,९४८	३१,४६४	५१,३७२	५५,६६८
योग	१,०८,९१२	१,८४,८८४	२५३,००८	२९४,००८

इस समय हमारा कागज उद्योग छापने और लिखने के कागज की ८०%; विशेष कागज की ५०%; पैक करने और वस्तुएँ लपेटने के कागज की ३०% तथा कागज और लुब्दी के गत्तों की ९५% आवश्यकताएँ पूरी करता है। शेष कमी कागज का आयात करके पूरी की जाती है।

औद्योगिक रूप से उन्नत देशों में कागज की जो खपत होती है उससे अनुमान लगाया जाता है कि कागज की सामान्य खपत भारत में इस अनुपात से होनी चाहिए—

लिखने पढ़ने का कागज	कुल का	४०%
विशेष कागज	,,	४%
औद्योगिक प्रयोग का कागज व गत्ते	,,	४०%
अखबारी कागज	,,	१६%

भारत में अभी विदेशों की तुलना में प्रति व्यक्ति पीछे कागज का उपयोग बहुत ही कम है केवल १·४ पौंड, जबकि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह मात्रा ३०० पौंड; कनाडा में २७५ पौंड; इंगलैंड में १५० पौंड; न्यूजीलैंड में १२४ पौंड; जर्मनी में ७० पौंड; जापान में ५० पौंड; रूस में १४ पौंड है। इस निम्न उपभोग का मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होना है। देश में साक्षरता की वृद्धि से कागज की खपत भी काफी बढ़ेगी। १९५०-५१ में देश में २,०९,००० टन कागज और कागज की चीजें काम आई थीं। १९५५-५६ में इनकी खपत ३,१७,००० टन हो गई तथा देश का उत्पादन इस अवधि में १,१४,००० टन से बढ़कर २,०२,००० टन हो गया। फिर भी हमें ४९,००० टन कागज, ८०,००० टन अखबारी कागज और १२,००० टन रेयन की लुब्दी बाहर से मँगानी पड़ती है। नीचे की तालिका में कागज और गत्ता तथा अखबारी कागज का आयात और उपभोग बताया गया है। भारत में कागज का आयात नार्वे, जर्मनी, ब्रिटेन, स्वीडेन, जापान और हालैंड से किया जाता है।

वर्ष	आयात		उत्पादन	उपभोग
	कागज और गत्ता (००० टन)	अखबारी कागज (००० टन)	(००० टन)	(००० टन)
१९५१-५२	३३·०	५०·०	१३५·०	१६८·०
१९५२-५३	३९·०	५४·०	१३७·०	१७६·०
१९५३-५४	४२·०	७०·०	१३७·०	१७९·०
१९५४-५५	३८·०	७९·०	१६९·०	२०७·०
१९५५-५६	३८·०	७५·०	२००·०	२३८·०

उद्योग की समस्याएँ :

(१) कागज के कारखानों में अधिकांशतः पुराने यंत्रों का ही उपयोग हो रहा है। आजकल कुछ कारखानों में आधुनिकरण के लिए पर्याप्त पूँजी लगाई गई है, क्योंकि उत्पादकों ने यह अनुभव किया कि आधुनिक यंत्रों से पूरा लाभ उठाने के लिये कारखानों की उत्पादन क्षमता में अधिकतम सीमा तक वृद्धि करनी होगी।

(२) अभी भी कारखानों के अधिकांश यंत्र तथा कागज निर्माण में प्रयोगित वस्तुओं का आयात करना पड़ता है, इसलिए हमारे इंजीनियरिंग उद्योग को जल्दी से जल्दी इन कारखानों के उपयोग में आने वाले यंत्रों का निर्माण करना चाहिए। १९५५-५६ में कागज बनाने की यंत्र और मशीनें आदि १·८७ करोड़ रुपये की आयात की गई।

(३) कच्चे माल की भी कमी है।

८. मद्यसार उद्योग (Alcohol Industry)

मद्यसार एक परिवर्तनशील औद्योगिक कच्चा माल है जिसे बहुत से उद्योगों में विशेषतः रासायनिक पदार्थ और घुलनशील पदार्थ बनाने के उद्योगों में लाभपूर्वक प्रयोग किया जाता है। मद्यसार शीरे (Molasses) से बनाया जाता है जो कि चीनी उद्योग का एक उपोत्पादन है। मद्यसार का उपयोग न केवल मोटरों में ईंधन के रूप में ही किया जाता है वरन् इसे शराब की भांति पीया भी जाता है तथा अब इसका उपयोग प्लास्टिक की वस्तुएँ—जैसे पौलीएथीलीन, सैलूलोज एसीटेट और पौली विनील, क्लोराइड, घुलनशील पदार्थ जैसे बूटानोल, ईथर, एसीटोन, कृत्रिम रबड़ और अनेक महत्वपूर्ण प्रांगारिक रासायनिक पदार्थ भी बनाये जाते हैं।

भारत में मद्यसार उद्योग का विकास उस समय हुआ जब गत महायुद्ध में मोटर में प्रयोग होने वाले ईंधन की बहुत कमी होगई थी। इससे पहले भभके से खींचे हुए मद्यसारीय-पेय पदार्थ बनाने में ही प्रयोग किया जाता था। इस तरह का पेय पदार्थ या तो शीरे से बनाया जाता था या महुआ के फूलों से। पोटेबल-स्प्रिट बनाते समय प्राप्त उपोत्पादन के रूप में अल्प परिमाण में विकृत स्पिरिट भी बनाई जा रही थी। इस शताब्दी के तृतीय दशक के प्रारंभिक काल में चीनी उद्योग का बड़ा विकास हुआ जिससे उपोत्पादन के रूप में बहुत सा शीरा सुलभ हो गया। इससे

मद्यसार बनाया जा सकता था। अतः युद्ध काल में मोटर में प्रयुक्त होने वाले पैट्रोल की कमी से भारत में शक्ति-मद्यसार बनाने का उद्योग तेजी से स्थापित हुआ।

भारत में इस समय पॉवर अल्कोहोल या शक्ति मद्यसार बनाने वाली १७ फैक्ट्रियाँ हैं जिनकी उत्पादन क्षमता १६७ लाख गैलन है। इसके अतिरिक्त भारत में ५१ डिस्टीलरियाँ भी हैं जो पोटेबल (Potable) और औद्योगिक मद्यसार बनाती हैं। इनकी उत्पादन क्षमता १७८ लाख गैलन की है। नीचे की तालिका में इनका क्षेत्रीय वितरण तथा उत्पादन क्षमता बताई गई है (१९५६)।[1]

राज्य	शक्ति मद्यसार और औद्योगिक मद्यसार की उत्पादन क्षमता			पोटेबल और औद्योगिक मद्यसार उत्पादन की क्षमता	
	संख्या	(००० गैलन)		संख्या	(००० गैलन)
		शक्ति मद्यसार	औद्योगिक मद्यसार		
उत्तर प्रदेश	१२	१०,१६४	१,३४५	४	१,४४०
बिहार	२	१,२९०	२१६	३	१,०९८
बम्बई	२	१,०९०	५४०	३	१,४४७
हैदराबाद	१	१,०२०	६०	—	—
मैसूर	१	५४०	५४०	१	३००
पेप्सू	१	८००	२००	—	—
पंजाब	—	—	—	२	८१६
मद्रास	—	—	—	१	७२०
ट्रावनकोर-कोचीन	—	—	—	१	१८०
प० बंगाल	—	—	—	३	१,५५०
आंध्र	—	—	—	३	१,२२४
विंध्य प्रदेश	—	—	—	१	२४०
राजस्थान	—	—	—	१	१८७
भोपाल	—	—	—	१	१८०
योग	१९	१४,९०४	२,९०१	२४	९,३८२

इस उद्योग में २४७ लाख रुपये की पूँजी लगी है तथा ४,७५० व्यक्ति काम करते हैं।

भारत में १९५७–५८ में शीरे का उत्पादन विभिन्न राज्यों में इस प्रकार था:—

	हजार टन		हजार टन
उत्तर प्रदेश	३,९२६	प० बंगाल	२९
बिहार	१,०४९	उड़ीसा	२०

१. Second Five Year Plan, 1956. pp. 329-330.

	हजार टन		हजार टन
गुजरात+महाराष्ट्र	१,१४१	मैसूर	३०४
आँध्र	६७६	मध्य प्रदेश	१४२
पंजाब	२६८	राजस्थान	६६
मद्रास	३५८		

किन्तु इस समय देश में प्राप्त शीरे के केवल ७०% का ही मद्यसार बनाया जाता है। उत्तर प्रदेश और बिहार में तो सारे के सारे शीरे का मद्यसार बना लिया जाता है किन्तु महाराष्ट्र व दक्षिणी भारत में ३०% शीरे का ही मद्यसार बनाया जाता है। नीचे की तालिका में मद्यसार का उत्पादन बताया गया है :—

अल्कोहल (००० गैलनों में)

वर्ष	शक्ति मद्यसार	शुद्ध स्पिरिट	मिश्रित स्पिरिट
१६५०	४,४६७	३,४३६	१,४७७
१६५१	५,८०६	५,०२०	१,६६७
१६५२	७,७४२	४,६६८	२,१७८
१६५३	८,१२०	४,३७६	२,४६४
१६५४	८,००७	४,६३१	२,८३६
१६५५	१०,४३३	५,१५६	२,६८६
१६५६	१०,२४३	४,०००	३,१६३
१६५७	१०,१३६	५,०६४	३,४६२
१६५८	८,५०६	५,६५१	३,८२६
१६५६	७,७४४	७,७४७	४,७१८

शक्ति मद्यसार बनाने की वर्तमान क्षमता १·६ करोड़ गैलन की है और औद्योगिक काम में आने वाले मद्यसार की क्षमता लगभग १ करोड़ ७७ ला० गैलन। इस तरह कुल उत्पादन क्षमता ३ करोड़ गैलन की है किंतु वास्तविक उत्पादन लगभग १·४५ करोड़ गैलन का ही है। द्वितीय योजना के अन्तर्गत प्रस्तावित लक्ष्य १८० लाख गैलन शक्ति मद्यसार और १२० लाख गैलन औद्योगिक मद्यसार उत्पन्न करने और उनकी कुल उत्पादन क्षमता ३६० लाख गैलन करने की है।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत २०,००० टन कृत्रिम रबड़ बनाने में १०० से १२० लाख गैलन मद्यसार प्रति वर्ष की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार पौलीएथीलीन के २ कारखानों में ५,००० टन से अधिक उत्पादन के प्रति वर्ष ३०–४० लाख गैलन मद्यसार खप सकेगा। एसीटेट रेयन बनाने में ४०–५० लाख गैलन मद्यसार खपेगा। संक्षेप में औद्योगिक मद्यसार की खपत ४० लाख गैलन के वर्तमान स्तर से बढ़ कर १६६०–६१ तक ३००–३५० गैलन वार्षिक तक हो जायेगी।

६. भारत में रबड़ उद्योग (Rubber Industry)

भारत में रबड़ की बनी वस्तुएं तैयार करने का उद्योग अपेक्षाकृत नया है। कदाचित भारत ही एकमात्र देश है जहाँ कच्चे रबड़ का उत्पादन और आधुनिक ढंग

पर रबड़ की वस्तुएँ तैयार करने के उद्योग एक साथ ही प्रतिष्ठित हैं। भारत में रबड़ चढ़ा कपड़ा तैयार करने वाले सर्व प्रथम कारखाने ने १९२० में काम करना आरम्भ किया। इसके उपरान्त केबिल बनाने का एक कारखाना स्थापित किया गया। १९२८ में तिरुवांकुर की सरकार ने त्रिवेन्द्रम में विभिन्न प्रकार की रबड़ की वस्तुओं का एक कारखाना खोला। इस पथ पर प्रथम महत्वपूर्ण कदम १९३३ में उठाया गया। इस वर्ष मैसर्स बाटा शू कम्पनी की स्थापना हुई। अगले ही वर्ष १९३४ में जार्ज स्पेन्सर मोल्टन एण्ड कम्पनी की इण्डियन सब्सीडियरी कं० का जन्म हुआ। जार्ज स्पेन्सर मोल्टन एण्ड कम्पनी ब्रिटेन में मशीन द्वारा रबड़ की वस्तुएँ तैयार करने वाली प्रमुख कम्पनी थी। भारत में टायर उद्योग १९३५-३६ में आरम्भ हुआ। उस वर्ष पश्चिमी बंगाल में मैसर्स डनलप का एक कारखाना खुला। यहाँ प्रसंगवश यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि टायर उद्योग एक बहुत ही विशिष्ट ढंग का उद्योग है और वह अनवरत तथा स्थायी प्रगति तभी कर सकता है जब इस दिशा में निरन्तर अनुसंधान कार्य होता रहे। टायर उद्योग के इतिहास में १९३५-३६ के बाद १९३८-४० का विशेष महत्व है जब मैसर्स फायरस्टोन ने बम्बई में टायर बनाने का एक कारखाना स्थापित किया। द्वितीय महायुद्ध ने इस उद्योग को विशेष बल दिया है।

भारत में ५७ कारखाने रबड़ की वस्तुएँ तैयार कर रहे हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की रबड़ की वस्तुएँ उदाहरणार्थ मोटर गाड़ियों, टैक्सियों, हवाई-जहाजों तथा ट्रेक्टरों के टायर-ट्यूब, रबड़ के जूते, कचकड़ा, औद्योगिक पट्टे, पंखों के पट्टे, रबड़ की नलियाँ, मुलायम स्पंज और रबड़ चढ़े कपड़े आदि तैयार होती हैं।

अनुमान है कि रबड़ उद्योग में लगभग १३ करोड़ रु० की पूँजी लगी हुई है और यह उद्योग लगभग १८,००० व्यक्तियों को जीविका प्रदान कर रहा है।

पिछले तीन वर्षों में हमने प्रतिवर्ष औसतन १ करोड़ ९८ लाख रुपये के मूल्य का रबड़ का सामान विदेशों में भेजा और इसी अवधि में औसतन ५१'७ लाख रुपये का माल प्रतिवर्ष बाहर से मंगाया।

यदि देश को रबड़ की बनी वस्तुओं के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर होना है तो यह आवश्यक है कि देश के रबड़ उद्योग का विकास इन दिशाओं की ओर भी किया जाय :—

(१) हवाई जहाज में ईंधन डालने वाली नलियों, तैरने वाली टैंकर, डिस्चार्ज नलियाँ और हाइड्रोलक ब्रेक नालियाँ।

(२) आग बुझाने वाली नलियाँ जो प्रतिवर्ग इंच २०० पौंड का भार सह सकें।

(३) बैटरी सेपेरेटर और सर्जरी या चीर-फाड़ में काम आने वाला रबड़ का सामान।

(४) भारतीय जल सेना के लिए रबड़ की प्राण-रक्षक जैकिटें।

इस उद्योग में काम आने वाले कच्चे माल में गंधक और काले कार्बन का प्रमुख स्थान है। इनके अतिरिक्त जिंक आक्साइड, विशेष प्रकार की मिट्टियों तथा बेराइट्स, टायर कॉर्ड (Tyre Cord), बीड वायर (Bead Wire), एक्सलैरेटर

(Accelerators), एन्टी आक्सीडेन्ट्स (Anti-Oxidents) तथा ऐसे ही अन्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से कुछ विदेशों से मँगाये जा रहे हैं।

भारतीय रबड़-उद्योग प्रतिवर्ष लगभग २७,००० टन कच्चा रबड़ काम में ला रहा है (इसके विपरीत देश में प्रतिवर्ष लगभग २२,००० टन कच्चे रबड़ का उत्पादन होता है।) रबड़ उद्योग में लगभग ६,००० टन काला कार्बन प्रयुक्त हो रहा है।

प्रमुख वस्तुओं का अभीष्ट विस्तार अगली सारिणी में दिया गया है :—

क्रमांक	वस्तु का नाम	१९५४	उत्पादन क्षमता	१९६०–६१ तक अभीष्ट क्षमता	वृद्धि मोटे तौर पर
१.	बहुत भारी टायर	३,०५,४९५	५,८३,४००	७,५०,०००	१,६०,०००
२.	बहुत भारी ट्यूबें	२,४८,७९२	५,६२,४००	६,५०,०००	९०,०००
३.	यात्रा के लिए टायर	१,४०,७५३	३,३७,०००	४,००,०००	६०,०००
४.	यात्रा के लिए ट्यूबें	१,५०,०३०	३,६१,०००	४,००,००१	४०,०००
५.	साइकिलों के लिए टायर	३०,१३,४८१	५७,७०,३००	१,२०,००,०००	६०,००,०००
६.	साइकिलों के लिये ट्यूबें	२९,२५,७२०	८१,२७,६००	१,२०,००,०००	४०,००,०००
७.	ट्रेक्टरों के टायर	११,११६	२६,१३६	३२,०००	६,०००
८.	ट्रेक्टरों की ट्यूबें	११,७८४	२६,९७६	३०,०००	६,०००
९.	हवाई जहाज के टायर	२,३६५	६,६००	७,०००	४००
१०.	हवाई जहाज की ट्यूबें	१,००८	५,७००	६,०००	३००
११.	रबड़ के जूते	१,६५,९४,५७२ जोड़े	४,११,३१,२०० जोड़े	५,००,००,००० जोड़े	९०,००००० जोड़े

१०. भारत में चमड़ा व जूता उद्योग
(Indian Leather and Shoe Industry)

हमारी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में चमड़ा और चमड़े की वस्तुओं के उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में जितने पशु हैं उतने पशु संसार के किसी देश में नहीं हैं। हमारे यहाँ प्रतिवर्ष ५०० लाख चाम और खालें होती हैं।

चमड़ा उद्योग का वर्गीकरण निम्न चार मुख्य विभागों में किया जा सकता है :—

(१) चाम और खालों का कमाना।

(२) जूते बनाना।

(३) यात्रा का सामान आदि बनाना।

(४) मशीनों के पट्टे और उद्योगों में काम आने वाली अन्य चीजों यथा पिकर, पिकिंग बैण्ड और रोलरों के खोल आदि का निर्माण।

चमड़ा कमाने के उद्योग में निम्न चार वर्ग हैं :—

(i) **गाँवों से पुराने ढङ्ग से चमड़ा कमाने का उद्योग** (Village tanners)—इस धंधे में व्यवस्थित रूप से लगे हुए लोगों की संख्या का निश्चित अनुमान नहीं है। पर भारत के प्रत्येक गाँव में चर्मकारों के घर होते हैं जो इस धंधे को कुटीर उद्योग के आधार पर करते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ५०० ग्रामीण कारखानों में लगभग १६० से १७० लाख टुकड़े गाय-भैंस के चमड़े के और २० से ४० लाख टुकड़े भेड़-बकरी के चमड़े के गाँवों में फैले हुए चर्मकारों द्वारा प्रति वर्ष कमाये जाते हैं।

(ii) **चीनी क्रोम चमड़ा पैदा करने वाले** (Chinese Chrome tanners)—भारत में लगभग २५० क्रोम चमड़ा तैयार करने वाले कारखाने (tanneries) हैं जो सभी चीनी लोगों के नियंत्रण और व्यवस्था में हैं। ये अधिकतर कलकत्ता के तांगरा क्षेत्र में स्थित हैं। जूतों के ऊपरी भाग में लगने वाला क्रोम-चमड़ा इन टेनरीज में तैयार किया जाता है। इनमें लगभग १२५० लाख चमड़े के टुकड़े (४ करोड़ रुपये के मूल्य के) कमाये जाते हैं। इनमें लगभग ३,००० व्यक्ति काम करते हैं।

(iii) **ईस्ट इण्डिया कमाया चमड़ा तैयार करने वाली टैनरीज**—यह चमड़ा मद्रास और बम्बई स्थित अर्द्ध-कुटीर उद्योग के आधार पर चलने वाली टैनरीज में तैयार किया जाता है। **ईस्ट इण्डिया टेन्ड लेदर** के नाम से यह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रसिद्ध है। इन कुटीर उद्योगों की संख्या ५०० के लगभग है जिनमें १ करोड़ ६० लाख **स्किन** और १ करोड़ **हाइड** तैयार होते हैं। इसमें लगभग ३४,५०० व्यक्ति लगे हैं।

(iv) **यंत्रचालित टैनरीज**—इनकी संख्या लगभग ३४ के है जिनमें २६ बड़ी-बड़ी टैनरीज हैं। इनमें वनस्पतियों द्वारा चमड़ा कमाया जाता है। इनकी उत्पादन शक्ति लगभग ३२ लाख **वेजीटेबल टेंड चमड़े** और २० लाख टेंड **क्रोम** की है। लगभग ८,००० व्यक्ति इनमें काम करते हैं। कानपुर, कलकत्ता और मद्रास इनके प्रधान केन्द्र हैं।

चमड़ा कमाने के बड़े-बड़े कारखाने शहरी क्षेत्रों में मख्यत: मद्रास, कानपर,

कलकत्ता और बम्बई के आस-पास हैं। देश में जितना चमड़ा कमाया जाता है, उसका २५% माल इन बड़े कारखानों में तैयार होता है।

देश में चमड़ा कमाने के ७२४ कारखाने हैं। इस उद्योग में कुल ९॥ करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है। चमड़ा कमाने के उद्योग का मुख्य कच्चा माल है चाम और खालें। विभाजन हो जाने और पाकिस्तान बन जाने के कारण गाय-भैंसे की कच्ची खालों की पर्याप्त उपलब्धि में कुछ कठिनाइयाँ पैदा हो गई हैं। इन कच्ची खालों की उपलब्धि ने कुछ महत्वपूर्ण केन्द्र पाकिस्तान में रह गये और खालें कमाने के अधिकांश कारखाने भारत में आये। चमड़ा कमाने के देशी उद्योग पर इस स्थिति का काफी हानिप्रद प्रभाव पड़ा। मद्रास, बंगाल, उत्तर प्रदेश और बिहार गाय की खाल उत्पन्न करने में सर्व प्रथम हैं। भैंस की खाल के उत्पादन में मद्रास सबसे बड़ा उत्पादक है जो देश की २७% भैंस की खालें उत्पन्न करता है। शेष उत्तरी बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब से प्राप्त होती हैं।

भेड़ और बकरियों की खालों की उपलब्धि की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। बकरी की खाल का उत्पादन हमारे देश की आवश्यकताओं से पर्याप्त अधिक है और हम भेड़-बकरियों की खालों का बड़ी मात्रा में निर्यात करते हैं। भेड़-बकरियों की खालों में मद्रास, मैसूर और आंध्र अग्रणी हैं। अतः यह स्पष्ट है कि गाय, बैल, भेड़ और बकरी की खालों के उत्पादन की दृष्टि से मद्रास और मैसूर सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र पंजाब से बंगाल तक फैले हुए उत्तरी भारत के मैदान का है।

कमाने के काम आने वाली बनस्पतियों के बारे में भारत पूर्णतः आत्मनिर्भर नहीं हैं। इन बनस्पतियों में बबूल की छाल और उसका सत बहुत अधिक महत्वपूर्ण है और इसका आयात पूर्वी अफ्रीका से करना होता है।

भारत में बबूल का उत्पादन पश्चिमी राजस्थान से उत्तरी पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक होता है। चमड़ा कमाने के काम आने वाला अन्य महत्वपूर्ण बनस्पति पदार्थ आँवला और आँवले का सत, हर्र, बहेड़ा, अवाराम की छाल है। चमड़ा कमाने में कुछ अन्य वस्तुओं का भी प्रयोग किया जाता है यथा चूना, सोडियम सल्फाइड, बोरिक एसिड, बाइ-क्रोमेट आफ सोडा, गंधक का तेजाब आदि। इनमें से अधिकांश वस्तुओं के बारे में देश आत्म-निर्भर ही सा है। इसके अतिरिक्त कॉड, हैरिंग और सील मछलियों का तेल भी काम में लाया जाता है। बनस्पतियों की छालों के अलावा अल्यूमीनियम, अन्डों की जर्दी, जैतून का तेल और आटे के साथ भी चमड़ा कमाया जाता है।

भारत में जो चमड़ा कमाया जाता है वह मुख्यतः निम्न वस्तुओं के बनाने में प्रयोग किया जाता है—जूते, सफर में काम आने वाला सामान तथा औद्योगिक वस्तुएँ यथा पट्टे, पिकर, पिकिंग बैण्ड और रोलरों के खोल। अभी तक चमड़े का सर्वाधिक प्रयोग जूते बनाने में ही होता है। देश में पशु-बध से जो २५ लाख खालें प्रतिवर्ष प्राप्त होती हैं, उनमें से एक-तिहाई खालें तो असावधानी से खाल उतारने के कारण खराब हो जाती हैं और वे जगह-जगह कट जाती हैं। अनुमान है कि दोषपूर्ण ढंग से खाल उतारने के कारण प्रतिवर्ष १६ लाख रुपये की हानि होती है। जो जानवर अपने आप मरते हैं उनकी खाल उतारने में खाल में बीच-बीच में निशान तो नहीं आते लेकिन उनके साथ माँस अधिक कट आता है जिससे उनको कुछ समय तक रखने में बड़ी कठिनाई आती है। इस प्रकार जो हानि होती है वह ६० लाख रुपये तक होने का अनुमान है। यह हानि कभी-कभी ७०-८० लाख रुपये तक पहुँच जाती है।

भारत में कमाये चमड़े का क्रोम और वनस्पति से कमाये चमड़े का उत्पादन इस प्रकार है :—

	१९५०	१९५६	१९५९
क्रोम से कमाया चमड़ा	४९,५३,०००	७४,१६,०००	६५,०४,०००
वनस्पति से कमाया चमड़ा	७४,१६,०००	१७,१३,६००	२४,६६,७००

इस समय भारत से भेड़-बकरी की ७ करोड़ रु० की बिना कमाई खालें; ११ करोड़ रु० की कमाई खालें और ८ करोड़ रु० का कमाया चमड़ा निर्यात करते हैं।

जूता उद्योग (Shoe Industry) :

भारत में जितना चमड़ा बनता है उसका दो-तिहाई भाग जूता बनाने के उद्योग में खपता है। भारत में जूते बनाने के १२ बड़े कारखाने हैं जिनमें ५० से अधिक व्यक्ति काम करते हैं और उन्हें चलाने में विद्युत शक्ति प्रयोग की जाती है। इस उद्योग में भारत भर में ५·८ लाख व्यक्ति लगे हुए हैं। इनमें से २·१ लाख उत्तरी भारत में और ३·७ लाख दक्षिणी भारत में हैं। इन १२ कारखानों में से ७ कारखानें उत्तर-प्रदेश में हैं और मद्रास, प० बंगाल, पंजाब, बिहार तथा मैसूर में एक-एक कारखाना है। ये कारखानें साल में पश्चिमी ढंग के ५९·७५ लाख जोड़े जूते तैयार कर सकते हैं किन्तु पूर्ण उत्पादन क्षमता से इनमें काम नहीं होता है। उत्पादन के आँकड़े इस प्रकार हैं :—

जूतों का उत्पादन (लाख जोड़ों में)

	१९५०	१९५३	१९५७	१९५८	१९५९
पश्चिमी ढंग के जूते	२८·३६	३३·४८	४३·६९	४२·७१	४४·१४
देशी ढंग के जूते	१९·९६	२२·०४	३०·३८	३२·८६	४१·०३

भारत में दो प्रकार के जूते बनाये जाते हैं। पश्चिमी ढंग के जूतों में मुख्यत: आक्सफोर्ड, डरबी, अलबर्ट, स्लीपर, न्यूकट, सेलिम और औरतों के जूते तथा पुलिस और फौजी बूट आते हैं।

देशी जूतों में मुंडा, नागरा, पेशावरी चप्पल, जरी की जूतियाँ और चट्टियाँ आती हैं।

जूता बनाने के मुख्य केन्द्र आगरा, कानपुर, दिल्ली, जलंधर, अमृतसर तथा मलेर कोटला और जयपुर उत्तरी भारत में हैं। पंजाब तथा दिल्ली पेशावरी चप्पलों, जरी की चप्पलों और लाल सैंडलों के लिए प्रसिद्ध हैं। कानपुर में चप्पल और बूट अधिक बनाये जाते हैं। राजस्थान में देशी जूतों का उत्पादन अधिक होता है। जयपुर में मखमल की जूतियाँ अधिक बनती हैं।

भारत में चमड़े के जितने जूते बनते हैं उनको ६% ही बड़े कारखाने बनाते हैं। शेष कुटीर उद्योग द्वारा बनाये जाते हैं। ऐसे बड़े-बड़े कारखाने ये हैं—(१) कूपर एलन ए० कं०, कानपुर; (२) बाटा शू कं०, फरीदाबाद; (३) मॉडल इंडस्ट्रीज, दयालबाग; (४) कर्जन शू फैक्टरी, आगरा और नर्दर्न इंडिया टैनरीज, कपूरथला।

१९५५-५६ में देश के अन्दर ८८९ लाख जोड़े जूते खपे और १५ लाख जोड़े निर्यात किए गए। जूते के बड़े बड़े कारखानों ने १९५५-५६ में ५४ लाख जोड़े जूते

तैयार किए। भारत में शहरी क्षेत्रों में प्रति दो व्यक्ति पीछे प्रति वर्ष १ जोड़ी जूता लिया जाता है और ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति ५ व्यक्ति पीछे १ जोड़ी जूता लिया जाता है। नीचे की तालिका में विभिन्न देशों में जूतों की वार्षिक खपत बताई गई है :—[1]

जूतों की खपत (जोड़ों में)

देश	चमड़े के जूते	अन्य जूते	कुल (प्रति व्यक्ति पीछे)
सं० रा० अमरीका	३·२	०·६	३·८
ब्रिटेन	२·९	०·७	३·६
फ्रांस	१·९	०·६	२·५
स्वीडेन	१·६	१·२	२·८
डेनमार्क	१·४	१·०	२·४
जर्मनी	१·३	०·५	१·८
नार्वे	१·२	०·५	१·७
भारत	०·५	०·१	०·६

जूतों का निर्यात पिछले कुछ वर्षों में बढ़ा है। १९५२-५३ में १० लाख जोड़े (मूल्य ११७ लाख रु०) निर्यात किए गए। १९५४-५५ में यह मात्रा बढ़कर १६ लाख जोड़े हो गई (मूल्य ८१ लाख रु०)। हमारे मुख्य ग्राहक थाइलैंड, लंका, बर्मा, द० पू० एशिया, पूर्वी अफ्रीका, पश्चिमी एशिया के देश तथा ब्रिटिश पश्चिमी द्वीप समूह हैं।

चमड़े के जूते बनाने के अतिरिक्त बड़े कारखाने (१९) रबड़ के तले वाले जूते भी बनाते हैं इनका वार्षिक उत्पादन ३७९ लाख जोड़ी है और उत्पादन क्षमता ४५८ लाख जोड़ी की।

द्वितीय योजना के अंतर्गत बड़े कारखानों से ७० लाख जोड़े जूते और लघु कुटीर उद्योगों से १०० लाख जूते बनाने का आयोजन है। १९६०-६१ तक देश में जूतों की खपत १५० लाख जोड़े होने का अनुमान है जिसके अनुसार आगामी ५ वर्षों में आंतरिक खपत में १८% की वृद्धि होगी।

११. दियासलाई का उद्योग (Match Industry)

भारत में दियासलाई का धन्धा कुटीर उद्योग और कारखाना उद्योग दोनों ही प्रकार का है। इस उद्योग का विकास भारत में १९२२ के बाद से ही हुआ है जब कि दियासलाई पर लगने वाले आयात कर को दुगुना कर दिया गया था। इसके पूर्व अपनी आवश्यकतानुसार दियासलाइयाँ विदेशों से मुख्यतः स्वीडेन व नार्वे से आयात की जाती थीं। १९२२ में आयात कर लग जाने से देश में ही विदेशी पूँजी से (मुख्यतः स्वीडिश) इस उद्योग की प्रगति होने लगी। स्वीडेन निवासियों ने वैस्टर्न इंडिया मैच कंपनी (Western India Match Co.) के नाम से भारत में कई कारखाने खोले। ये कारखाने क्रमशः बरेली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, धुबरी आदि स्थानों में स्थापित किये गये। स्वीडेन के इन कारखानों से देश की ८०% माँग की पूर्ति होती है।

१. उद्योग व्यापार पत्रिका, नवम्बर, १९५७, पृ० ४२३.

सन् १९२८ में जब इस उद्योग को रक्षण दिया गया तभी से इसकी विशेष प्रगति हुई है। इस समय भारत में दियासलाई बनाने वाले ५९ कारखाने हैं इनकी उत्पादन क्षमता ८८७,९८४ ग्रॉस बक्सों की है जिनमें ६० सलाइयाँ होती हैं। इनमें २४,५०० मजदूर काम करते हैं तथा ४·५ करोड़ रुपयों से अधिक की पूँजी लगी है।

उद्योग का स्थापन :

दियासलाई के मुख्य कारखाने पश्चिमी बंगाल और मद्रास में ही केन्द्रित हैं क्योंकि इस उद्योग के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ इन राज्यों में पाई जाती हैं। इस उद्योग के लिए निम्न बातों की आवश्यकता पड़ती है :—

(१) दियासलाई बनाने में लकड़ी ही प्रधान कच्चा माल है। इसी से दियासलाई की सीकें और डिब्बियाँ बनाई जाती हैं। सीकों के लिए मुलायम लकड़ी जो शीघ्र आग पकड़ सके अच्छी रहती है तथा डिब्बियों के लिये ऐसी लकड़ी जिसके पतले पर्त बनाये जा सकें आवश्यक है। अतः इन कार्यों के लिए सेमल, धूप, गुरकत, सुन्दरी, सलाई आदि लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है। सुन्दरी बङ्गाल में, सेमल तराई व भाभर में, आम के वृक्ष महाराष्ट्र व उत्तर प्रदेश में मिलते हैं लेकिन इनकी पूर्ति किसी भी भाग में काफी नहीं है। अतः अंडमान से पपीता, धूप, दीदू व बकोता की लकड़ियाँ मँगायी जाती हैं। ये मंहगी पड़ती हैं।



चित्र १५६—भारत में दियासलाई बनाने वाले केन्द्र

(२) दियासलाई बनाने में पोटेशियम क्लोरेट, पोटास, पैराफीन आदि

रसायनों की भी आवश्यकता लकड़ी पर बिंदु बनाने और फासफोरस मिश्रण, घर्षण पृष्ठ आदि के लिए पड़ती है। ये सब प्रायः बाहर से मँगवाये जाते हैं।

(३) देश की घनी जनसंख्या होने से न केवल उद्योग के लिए सस्ते और पर्याप्त मजदूर मिल जाते हैं बल्कि दियासलाई की माँग भी अधिक रहती है। दियासलाई के कारखाने मुख्यतः बम्बई, मद्रास व प० बङ्गाल में स्थित हैं। प० बंगाल इनमें सबसे मुख्य है क्योंकि :—

(१) यहाँ सुन्दरबन से जैनेवा नामक ताजी लकड़ियाँ वर्ष के अधिकांश समय में मिलती रहती हैं अतः अधिक समय तक लकड़ी इकट्ठा करके रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उत्तम जल-मार्गों के कारण लकड़ी के यातायात में कम व्यय पड़ता है। स्वीडेन से 'ऐस्पेन' तथा नीकोबार और अंडमान से धूप, पपीता आदि की लकड़ियाँ भी कलकत्ता बन्दरगाह द्वारा सुविधापूर्वक मँगवाई जा सकती हैं।

(२) पोटेशियम क्लोरेट, फोस्फोरस आदि रासायनिक पदार्थ कलकत्ता से प्राप्त हो जाते हैं।

(३) कोयला भेरिया की खानों से मिल जाता है।

(४) बिहार-उड़ीसा राज्यों से सस्ते मजदूर मिल जाते हैं।

यहाँ के मुख्य केन्द्र २४ परगना में हैं। कलकत्ता में अधिक दियासलाइयाँ बनाई जाती हैं।

गुजरात-महाराष्ट्र में कारखानों के लिए लकड़ियाँ पंचमहल के निकटवर्ती जंगली क्षेत्रों से मिल जाती है। यहाँ सेमल, सलाई व आम की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। स्वीडेन से 'एस्पेन' लकड़ी भी आयात की जाती है। यहाँ के मुख्य केन्द्र बम्बई, अहमदाबाद, थाना, पूना, अम्बरनाथ, पेटलाद (बड़ौदा), चाँदा आदि हैं।

मद्रास में अधिकांश कारखाने रामनाथापुरम जिले में हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र चिंगलपुट, रामनाथापुरम, तिरूनलवैली मद्रास आदि हैं।

दियासलाई के अन्य कारखाने उत्तर प्रदेश में मेरठ और बरेली ; मैसूर में शिमोगा ; केरल राज्य में त्रिवेन्द्रम ; आंध्र प्रदेश में हैदराबाद और वारंगल ; आसाम में धुबरी ; राजस्थान में कोटा ; मध्य प्रदेश में बिलासपुर में हैं।

भारत में १९५१ में छोटी और बड़ी सब मिलाकर २३८ फैक्ट्रियाँ थी जिनकी उत्पादन क्षमता ३५३ लाख पेटियों की थी (प्रत्येक पेटी में ६० तीलियों वाली ५० ग्रुस दियासलाइयाँ आती हैं)। इनमें से सबसे मुख्य **वैस्टर्न इंडिया मैच कं०** (WIMCO) और **आसाम मैच कं०** (AMCO) थीं। इनकी उत्पादन क्षमता २२८ लाख पेटियों की थी। १९५५-५६ में कारखानों की संख्या बढ़कर २४२ होगई। इनमें से ८ कारखानों का वार्षिक उत्पादन ५ लाख ग्रुस पेटियाँ था ; १०४ फैक्ट्रियों का वार्षिक उत्पादन ५ लाख ग्रुस पेटियों से कम किन्तु १०० ग्रुस पेटियाँ प्रतिदिन का था ; ७७ कारखानों का दैनिक उत्पादन २५ से १०० ग्रुस पेटियाँ और ५३ कारखानों का २५ ग्रुस पेटियों से भी कम का था।

नीचे की तालिका में भारत में दियासलाई की पेटियों का उत्पादन दिया गया है :—

वर्ष	उत्पादन (पेटियाँ)
१६५०	५२३,२००
१६५१	५७८,४००
१६५२	६१६,०००
१६५३	६१८,०००
१६५४	५२६ २००
१६५५	६१५,८००
१६५६	५८६,२००
१६५७	५७७,०००
१६५८	६१४,०००
१६५६	६४८,०००

१६५६ में भारत में ३१० लाख दियासलाई की पेटियों की आवश्यकता थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस उद्योग की उत्पादन क्षमता, आवश्यकता तथा उत्पादन इस प्रकार होगा :—

	१६५५-५६	१६६०-६१
उत्पादन क्षमता	३५३ ला० ग्रुस	३५३ लाख ग्रुस
आवश्यकता	३१० ,,	३५० ,,
उत्पादन	३२० ,,	३५० ,,

अध्याय ३०

वस्त्र उद्योग
(Textile Industry)

(१) सूती वस्त्र उद्योग
(Cotton Textile Industry)

उद्योग का ऐतिहासिक विकास :

सूती कपड़े का उद्योग भारत में एक प्राचीन उद्योग रहा है। आज से ५,००० वर्ष पूर्व भी भारत में उत्तम कपड़ा बुना जाता था। सिंध की घाटी में ईसा से ३,००० वर्ष पूर्व के हड़प्पा और मोहनजोदड़ो स्थानों की खोज ने इस बात को प्रमाणित किया है। मिस्र में ईसा से २,००० वर्ष पूर्व पिरामिडों में मृत-शरीर भारतीय मलमल में लिपटे हुए पाये जाते हैं। प्राचीन रोम में भारतीय मलमल और छींट के वस्त्र पहनने में रोमन महिलायें गौरव समझती थीं। ढाका की मलमल से यूनानी भी परिचित थे जिसे वे गंगा के देशवाली (Gangetica) कहते थे। वास्तव में ढाका की मलमल को इतना पसंद किया जाता था कि इसे विदेशियों ने अनेक नाम दे रखे थे। उदाहरणार्थ- 'प्रवाहित-जल' (Running Water), 'वायुवितान' (Woven-Air) तथा 'सांध्य सीकर' (Evening Dew)।[१] भारतीय सूती वस्त्र के उद्योग के सम्बन्ध में मुगल यात्री ट्रैवर्नियर लिखता है कि "भरतीय वस्तुएं इतनी सुन्दर थीं कि वे तुम्हारे हाथ में हैं यह ज्ञान भी नहीं होता था। यह अति कोमलता से काते हुए तागों से बुना जाता था तथा एक पौंड रुई में २५० मील लम्बा धागा बुना जाता था।" यह मलमल ४०० नम्बर से भी ऊपर के सूत की बनाई जाती थी। इससे एक युवा स्त्री का शरीर ढक जाता था और यह मलमल का टुकड़ा अंगूठी में से निकाला जा सकता था।[२] आश्चर्य तो यह है कि यह सारा उद्योग उस समय हाथ करघों द्वारा ही होता था। यह उद्योग १८ वीं शताब्दी तक चलता रहा, किन्तु यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति से इसको बड़ा धक्का पहुँचा। मशीन युग के बड़े उत्पादन ने इस उद्योग को और भी जर्जर बना दिया। भारत में रेलों का विकास तथा पूर्व-पश्चिम के बीच-स्वेज मार्ग का खुलना भारत के इस उद्योग के लिए अंतिम आघात था। इन कारणों से भारत का गौरवशाली उद्योग अतीत के गर्भ में विलीन हो गया। इस सम्बन्ध में श्री बुकानन ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं : "भारत के लिए सूती उद्योग अतीत का गौरव, भूत और वर्तमान का संकट और सदैव की आशा रहा है।"[३]

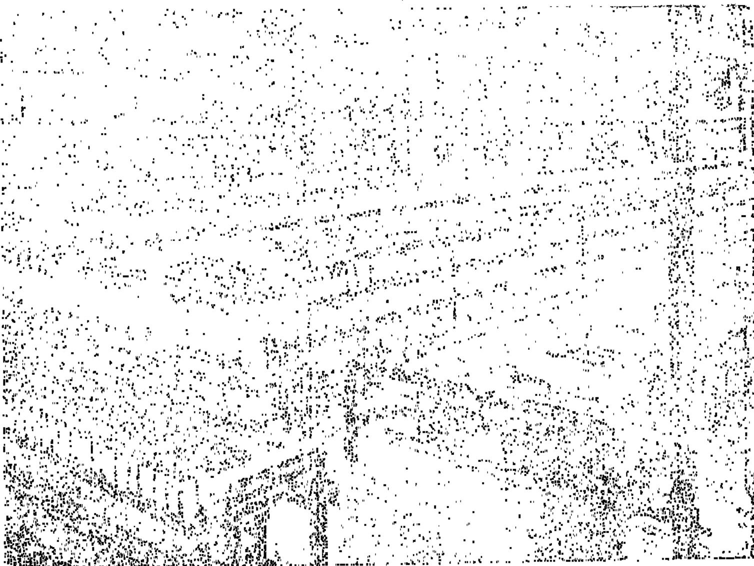
---

१. Birdwood : Industrial Art of India, p.259.

२. D. H. Buchanan : Development of Capitalistic Enterprise in India, 1934 p. 195.

३. D. H. Buchanan : Ibid, p. 195.

आधुनिक ढंग के कारखाने भारत में १९वीं शताब्दी के अर्द्ध भाग से ही आरंभ हुए हैं। यद्यपि पहिला कारखाना कलकत्ता में १८१८ में स्थापित किया गया था किंतु यह असफल रहा। सन् १८५१ में बम्बई में एक कारखाना खोला गया। इसके पश्चात् १८५४ में भारतीय पूँजी तथा साहस से पहला कारखाना बम्बई में कावसजी डावर द्वारा स्थापित किया गया किन्तु १८६१ तक इसकी प्रगति साधारण रही। इस कारखाने की सफलता देख कर अनेक नये कारखाने स्थापित किये गये। फलत: १८६१ तक भारत में १२ मिल हो गये। किन्तु १८६१ से १८६५ तक अमेरिकन गृह युद्ध के कारण इंग्लैंड की मिलों को जब अमेरिका से कपास मिलना बन्द हो गया तो भारत से इङ्गलैंड को कपास का निर्यात होने लगा। धीरे-धीरे भारत में इस प्रकार कमाये गए धन से नये कारखाने स्थापित होने लगे। १८८१ तक इनकी संख्या ५६ हो गई। बीसवीं शताब्दी में इस उद्योग की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। १९०० में १९३ कारखाने थे जिनमें १·६ लाख श्रमिक काम करते थे। १९०५ में स्वदेशी आंदोलन हुआ जिससे देशी उद्योगों को प्रोत्साहन मिला इसके फलस्वरूप कारखानों की संख्या बढ़ती गई। १९१४ तक यह २७२ हो गई जिसमें २·६ लाख मजदूर काम करते थे। १८८० से १९१४ तक सूती वस्त्र उद्योग के विकास की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ थीं—तकुओं की अपेक्षा कर्घों की संख्या में द्रुत गति से वृद्धि होना और अच्छे वस्त्र के निर्माण की प्रवृत्ति।



चित्र १५७—बम्बई की मिल का कताई विभाग

प्रथम युद्ध के आरंभ होने पर इस उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला क्योंकि युद्ध के कारण विदेशों से आने वाले कपड़े की मात्रा कम हो गई। अतः भारत में ही कपड़े का उत्पादन बढ़ने लगा। युद्धोत्तर काल में इस उद्योग को जापानी कपड़े का

काबला करना पड़ा, विशेषत: बन्दरगाही शहरों में। इसके अतिरिक्त मूल्य स्तर में रावट, रुई की कीमतों में वृद्धि एवं सूत के बाजारों में माँग की कमी और त्पादन का संचय होने से कताई उद्योग को गहरा धक्का लगा। द्वितीय महायुद्ध के र्व भारत में ३७६ कारखाने थे जो भारतीय माँग का ६४% पूरा करते थे और प में से २७% की पूर्ति हाथकर्घा उद्योग तथा ६% आयात द्वारा पूरी होती थी। स समय ५०% सूत का उत्पादन २० नम्बर सूत से अच्छा नहीं था। इस समय श में १०० लाख तकुए तथा २०२ हजार कर्घे थे।

द्वितीय महायुद्ध काल में विदेशों से कपड़े का आयात कम हो जाने से इस द्योग को पुन: प्रोत्साहन मिला। अत: १६४५ में कारखानों की संख्या ४१७ तथा कुओं की संख्या १०,२·३ लाख और कर्घों की संख्या २·० लाख हो गई। ाथ ही कारखानों को बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए पूरी उत्पादनशीलता कार्य करना पड़ा। फलत: इस समय सूत एवं कपड़े का उत्पादन मश: १६८ करोड़ पौंड और ४८७ करोड़ गज हो गया। इस काल में भारत से देशों को कपड़े का निर्यात बढ़ता गया तथा देश में माँग भी अधिक होती गई। स समस्या को हल करने हेतु सरकार ने इस उद्योग पर नियंत्रण आदेश लागू ये। इनका उद्देश्य कपड़े के उत्पादन, वितरण एवं मूल्यों पर नियंत्रण रखना, पड़े का स्थानीय उत्पादन बढ़ाना और कपड़े के यातायात पर नियन्त्रण रखना तथा पड़े के उत्पादन के लिये आवश्यक कच्चे माल एवं अन्य साधनों की कीमतों पर यन्त्रण रखना था। जनवरी १६४७ से वस्त्र उद्योग से मूल्य नियन्त्रण हटा या गया।

अगस्त सन् १६४७ में देश के विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान को विभाजित रत के १५ कारखाने तथा अच्छे किस्म की रुई उपजाने वाला ७३% प्रदेश मिला। लत: भारत में ४०८ मिलें रह गईं। दूसरे, विभाजन के कारण पाकिस्तान से रुई आयात दुर्लभ हो गया तथा भारतीय कारखानों का रुई न मिलने के कारण रने लगा। फलत: सूत एवं कपड़े का उत्पादन जो सन् १६४८-४६ में क्रमश: १४७ रोड़ पौंड तथा ४३८ करोड़ गज था वह सन् १६५१-५२ से १३२ करोड़ पौंड और २६ करोड़ गज ही रह गया। भारतीय कारखानों के लिये अच्छे किस्म की रुई प्त करने के लिये पाकिस्तान के साथ १६४८ में व्यापारिक समझौता किया गया न्तु उसमें आशातीत सफलता न मिली। अतएव 'अधिक अन्न उपजाओ' आंदोलन Grow More Food Campaign) के अंतर्गत रुई का उत्पादन बढ़ाया गया। ाथ ही मिश्र, अफ्रीका व अन्य देशों से भी रुई का आयात होने लगा। १६५१-५२ फिर उत्पादन बढ़ने लगा।

अगली तालिका में भारत के इस उद्योग के विकास सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत ए गए हैं[1] :—

---

१. (i) M. P. Gandhi : Indian Cotton Textile Industry, Annual. 954-55. and 1957-58.

(ii) R. A. Podar, The Indian Cotton Textile Industry, 1959. p. 62-64 and pp. 73-74.

वर्ष	मिलों की संख्या	तकुए (Spindles) (००० में)	कर्घे (Looms) (००० में)	औसत मजदूर	कपास का उपभोग (हजार गाँठों में)	मिल उत्पादन की उपलब्ध मात्रा (करोड़ गज में)
१८८०	५६	१,४६१	१३	४४,४००	—	—
१९००	१९३	४,९४५	४०	१,६१,१८९	१,४५३	—
१९१५	२७२	६,८४८	१०८	२,६५,३४६	२,१०२	—
१९३०	३४८	९,१२४	१७९	३,८४,०८२	२,५७३	—
१९३९	३८९	१०,०५९	२०२	४,४१,९४९	३,८१०	३७९
१९४७	४०८	१०,२६६	१९७	४,८३,६८३	४,२१०	३५७
१९५०	४४५	१०,८४९	२००	६,७६,५२३	३,६३०	३६६
१९५२	४५३	११,४२७	२०४	७,४०,६४०	४,४६०	४६०
१९५४	४६१	११,८८८	२०८	७,४०,०००	४,६९०	४९९
१९५५	४६१	१२,०६८	२०७	७,५८,०००	४,८८५	५०९
१९५६	४६५	१२,३७५	२०७	८,०६,७०२	४,९९१	५३०
१९५७	४९९	१२,९०६	२०६	८,००,०००	५,२६२	५३२
१९५८	५११	१३,२७२	२०६	८,००,०००	४,९०४	४९३

उद्योग का स्थापन :

सूती वस्त्र उद्योग का स्थानीयकरण विशेषत: कच्चे माल, ईंधन, रसायन, यंत्र, मजदूर और कपड़े की माँग पर निर्भर है। इन कारणों में से किसी एक की प्रचुरता इस उद्योग के स्थापन के लिए पर्याप्त है। स्थापन की दृष्टि से रुई को शुद्ध रेशा माना जाता है क्योंकि निर्माण क्रिया में रुई वजन में अधिक नहीं घटती और इसीलिए रुई और सूती माल के यातायात के व्ययों में अधिक अन्तर नहीं पड़ता। अत: यह आवश्यक नहीं कि सूती कपड़े के मिल रुई पैदा करने वाले क्षेत्रों के पास ही स्थापित किये जावें। यह उद्योग बाजार की समीपता से प्रभावित होता है न कि कच्चे माल की निकटता से। (It is market localised rather than raw-material localised)।

अधिकतर यह उद्योग वहीं स्थापित किया गया है जहाँ मजदूरों अथवा विस्तृत बाजार की सुविधा है। अत: इस उद्योग का महत्वपूर्ण क्षेत्र गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्य है जहाँ देश के लगभग ५३% कर्घे और तकुए पाए जाते हैं। गुजरात राज्य, बम्बई और अहमदाबाद की मिलों से समस्त देश के उत्पादन का प्राय: आधा सूत और दो-तिहाई वस्त्र मिलते हैं। इस उद्योग के प्रमुख क्षेत्र ये हैं:—

(i) गुजरात और सौराष्ट्र
(ii) मालवा का पठार
(iii) खान देश और बरार (ताप्ती तथा पूर्णा नदियों की घाटी में)
(iv) बम्बई-दक्कन (भीमा और हगारी नदियों के मध्यवर्ती भाग में)

(v) दक्षिणी मद्रास
(vi) पंजाब में (सतलज नदी के निकटवर्ती भागों में)
(vii) गंगा की ऊपरी घाटी (दिल्ली से कानपुर तक का क्षेत्र).
(viii) पश्चिमी बंगाल (हुगली के निकटवर्ती क्षेत्र में)

भारत में सूती कपड़े की मिलों का वितरण (३१ अगस्त १९५८ को)

राज्य	मिल	तकुए	कर्घे	औसत मजदूर	गाठों का उपयोग
बम्बई नगर एवं महाद्वीप	६५	३२,१२,६५०	६४,४२६	२००,४४६	१२,५२,३७०
अहमदाबाद	७१	२०,७८,६१८	४१,६७५	१३१,२३९	७,१२,८५६
वृहत बम्बई राज्य के शेष भागों में	७६	१६,९५,१२२	३३,२९३	१०८,४६७	५,९९,४७८
राजस्थान	११	१,७२,६२४	३,४१२	११,४४२	९८,५४६
पंजाब	६	१,२६,८८०	१,६११	७,२३८	८९,२६८
दिल्ली	७	१,८८,३५६	३,९५४	१५,७९४	१,७३,७८४
उत्तर प्रदेश	२९	८,५९,३०८	१३,८१८	५३,९७६	३,६४,३९८
आंध्र प्रदेश	१६	१,९२,०८४	१,६६९	११,२१८	९२,७२२
मध्य प्रदेश	२०	५,०७,५५८	१२,४१३	४४,३२२	३,०२,३१८
बिहार	२	२७,५४०	७४७	७६१	५,९८८
उड़ीसा	४	६२,८४८	१,०२४	५,९४५	३१,३२२
प० बंगाल	३९	५,८५,२३६	१०,८६४	४४,७९६	२,२२,८६८
मद्रास	१३०	२८,५४,५२८	७,७३०	१००,०३०	४,२६,८२६
केरल	१४	१,९१,५२८	१,८९०	९,१२९	५९,१३६
मैसूर	१८	४,४१,५४६	४,९५५	२५,६३७	१,८६,०५८
पांडीचेरी	३	७५,४६४	२,११७	५,३७५	३३,२८८
योग	५११	१३२,७१,८९०	२०५,५९८	७७५,८६५	५०,५१,७२६

इस उद्योग की विशेषतायें इस प्रकार हैं :—

(१) यह देश का सबसे बड़ा व्यवस्थित उद्योग है जिसमें १२९ करोड़ रुपये की चुकता पूँजी लगी है। यह देश में मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियों में लगी कुल चुकता पूँजी का १२ प्रतिशत है।

(२) देश की राष्ट्रीय आय में इस उद्योग द्वारा १३३ करोड़ रुपये का योग दान होता है।

(३) देश में औद्योगिक उत्पादन का कुल मूल्य १,१२३ करोड़ रुपये आंका गया है। इसका (४७३ करोड़ रुपया) इसी उद्योग के उत्पादित माल का होता है। इस उद्योग द्वारा विदेशी व्यापार से ६२ करोड़ रुपये की प्राप्ति होती है।

(४) इस उद्योग द्वारा सरकार को कर आदि के रूप में १०० करोड़ से अधिक तथा मजदूरों में ११८ करोड़ रुपये प्रति वर्ष मिलते हैं। इस उद्योग में ८ लाख (या सम्पूर्ण उद्योगों में लगे ३० लाख मजदूरों में से ३०%) व्यक्ति लगे हैं। हाथ कर्घा उद्योग लगभग १५ लाख बुनकरों को रोजगार प्रदान करता है।

(५) सूती कपड़े की मिलों में प्रतिवर्ष २० लाख टन से अधिक कोयला तथा लकड़ी; ५०० लाख गैलन तेल और लगभग ९,००० लाख किलोवाट शक्ति का उपभोग होता है। इनका मूल्य १५ करोड़ रुपये से अधिक का होता है तथा लगभग ५० लाख रुई की गाठों (प्रत्येक गांठ में ३९० पौंड रुई होती है) का उपयोग होता है। इसका अनुमानित मूल्य २०० करोड़ रुपये से भी अधिक का होता है।

विश्व में सूती वस्त्र उद्योग में भारत का स्थान प्रमुख है। तकुओं की संख्या की दृष्टि से भारत का स्थान तीसरा; कर्घो की दृष्टि से चौथा तथा वस्त्र उत्पादन की दृष्टि से दूसरा स्थान है। यह तथ्य नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—

देश	तकुए (१९५८)	कर्घे (१९५८)	कपड़े का उत्पादन (१९५७)
भारत	१३,२७१,८९०	२०५,५९८	५,३,१७० लाख गज
सं० रा० अमरीका	२०,७२६,०००	३५०,१०९	९,५,३९० लाख गज
इङ्गलैंड	२६,०७०,०००	२५२,२००	१,६,२८० लाख गज
जर्मनी	५,९५४,०००	१२३,३०२	२,८,७२० लाख गज
जापान	९,०२०,७७२	३८०,४६१	३,७,०६० लाख गज
चीन	६,२९०,०००	८५,०००	—

गुजरात राज्य :

यह राज्य भारत के सूती कपड़े के उद्योग में अग्रणी है। इसके निम्नांकित कारण हैं :—

(१) सारा रुई पैदा करने वाला प्रदेश बम्बई बन्दरगाह का पृष्ठ देश है। इसलिए सारी रुई विदेशी निर्यात के लिए बम्बई को आती है और बम्बई की मिलों के लिए रुई की विशेष मांग करने की आवश्यकता नहीं होती। लम्बे रेशे वाली रुई मिश्र और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से मंगवाने की भी सुविधा है।

(२) बम्बई यूरोप का सबसे निकट का बन्दरगाह है इसलिये मिलों के लिए आवश्यक मशीनें और अन्य सामान इङ्गलैंड, जर्मनी और अमेरिका आदि देशों से मंगवाने की सुविधा प्राप्त है।

(३) बम्बई समुद्र के किनारे स्थित है और नम मानसूनी हवाओं के प्रवाह क्षेत्र में है इसलिए यहाँ की मिलों में सूत का धागा पतला और लम्बा आता है और बार-बार नहीं टूटता है।

(४) बम्बई की मिलों को पहले पश्चिमी बंगाल के कोयले की खानों पर निर्भर रहना पड़ता था—किन्तु अब पश्चिमी घाट पर स्थित टाटा जल-विद्युत योजना से सस्ती विद्युत शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त सामुद्रिक मार्ग द्वारा दक्षिणी अफ्रीका और इङ्गलैंड से भी कोयला मंगवाया जा सकता है।

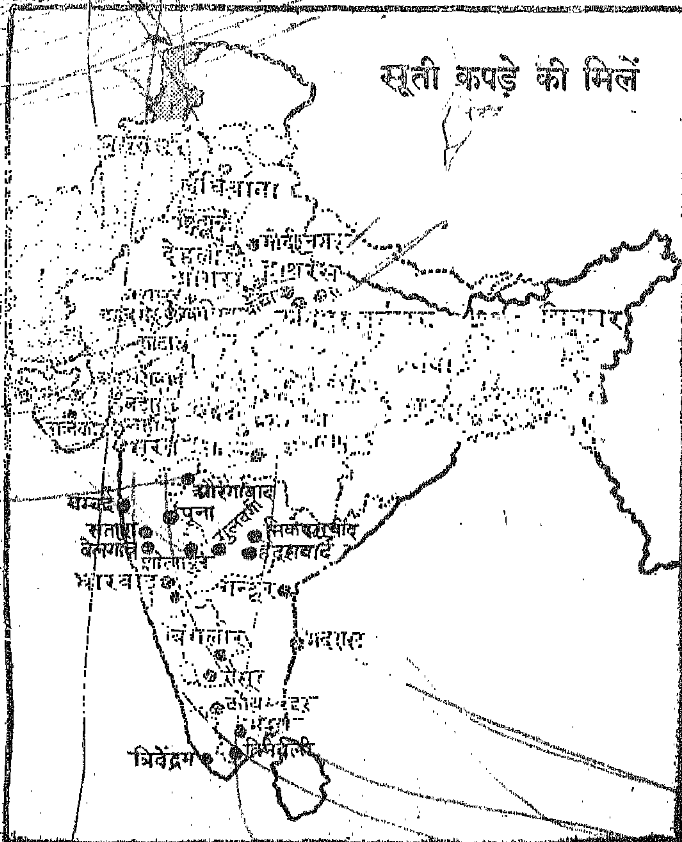
(५) बम्बई देश का प्रधान व्यापारिक केन्द्र है। इसलिए अपने पृष्ठदेश द्वारा रेलों से जुड़ा है। अतः तैयार माल भीतरी भागों को सुविधापूर्वक भेजा जा सकता है।

(६) बम्बई में पूँजीपतियों का जमाव अधिक है। अतः नई मिलों के लिए पूँजी काफी मात्रा में मिल जाती है।

(७) बम्बई की मिलों में काम करने के लिए मजदूर कोंकन, सतारा, शोलापुर और रत्नागिरि जिलों तथा दक्कन, राजस्थान और उत्तर प्रदेश से भी आते हैं।

(८) बम्बई के प्रमुख पारसी और भाटिया व्यापारियों ने विदेशी व्यापार में बहुत धन अर्जित किया था—विशेषतः चीन के साथ होने वाले कपास और अफीम के व्यापार में। अमेरिकन गृह युद्ध के कारण विदेशों को निर्यात किये जाने वाली कपास की मात्रा बढ़ गई इसमें उन्हें काफी लाभ हुआ। इसी धन का उपयोग बम्बई में सूती कपड़े की मिलें खोलने में किया गया।

(९) बम्बई के अधिकांश व्यापारियों को कपास के व्यापार का पूरा अनुभव था तथा उनका संबंध विदेशी कम्पनियों से होने के कारण उन्हें इस उद्योग का भी अनुभव होगया। इसके लिए पर्याप्त मात्रा में तांत्रिक सहायता अंग्रेजी मशीन बनाने वाली फर्मों से मिल गई।



चित्र १५८—भारत में सूती वस्त्र उद्योग

इन कारणों से ही बम्बई में प्रथम सूती कपड़े के मिल स्थापित हुए और

बम्बई भारत के सूती वस्त्रों के व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र हो गया है। यहाँ सूत बनाना और कपड़ा बनना दोनों ही कार्य किये जाने लगे। फलस्वरूप १८६० तक बम्बई द्वीप में ७० मील खुल गए। १९वीं शताब्दी के अन्त तक भारत में कुल उत्पादन क्षमता की आधे से भी अधिक क्षमता बम्बई में स्थित थी। इसी कारण बम्बई को भारत की कपास की राजधानी (Cottonopolis) कहा जाता है।[1]

इन सब सुविधाओं के होते हुए भी १९२९ से बम्बई में इस उद्योग का भावी विकास कुछ रुक सा गया है क्योंकि अब बम्बई को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है :—[2]

(१) बम्बई में पहले से ही ६५ से भी अधिक कारखाने हैं और अधिक विस्तार के लिए यहाँ स्थान का अभाव है क्योंकि यह नगर एक छोटे से टापू पर स्थित है।

(२) स्थान की कमी के कारण मजदूरों के रहने के लिए मकान की समस्या बड़ी विकट हो गई है तथा मकानों के किराये और भूमि का मूल्य बहुत बढ़ गया है।

(३) चूंकि बम्बई पश्चिमी घाटों द्वारा कुछ अलग सा हो गया है अतः दैनिक व्यवहार की वस्तुओं—दूध, घी, शाक-सब्जी, आदि—की कमी रहती है। अतः बम्बई में रहन-सहन का खर्च काफी होता है।

(४) सरकारी टैक्स आदि भी अधिक हैं।

(५) देश के भीतरी भाग के कारखानों से, जो कपड़े की खपत के प्रदेश में हैं, बम्बई की स्पर्धा बढ़ गई है।

(६) पहले बम्बई अधिकतर विदेशों के लिए सूत तैयार करता था किन्तु अब देश में सूत की अपेक्षा कपड़ा अधिक बनाया जाने लगा है। अतः इस दृष्टि से बम्बई का महत्त्व कुछ कम हो गया क्योंकि कपड़े की खपत के केन्द्रों से यह भीतरी केन्द्रों की अपेक्षा कुछ दूर पड़ता है। अतः कपड़े के यातायात में अधिक खर्च पड़ जाता है।

(७) रेलों ने देश के भीतरी भागों से बन्दरगाहों पर ले जाने वाले माल के लिए जो रियायतें दी थीं वे अब बन्द करदी हैं।

(८) बम्बई में मजदूरों की मजदूरी भी बढ़ गई इससे कपड़े के उत्पादन में अधिक व्यय होने लगा।

अतः इन सुविधाओं के कारण नये मिल बम्बई द्वीप के बाहर ही खोले जाने लगे। बम्बई के अतिरिक्त जो नई मिलें अन्य स्थानों में खोली गईं उनमें निम्न कारण सहायक हुए :—

(१) देश के भीतरी भागों में यातायात के साधनों का विकास हुआ जिससे इस उद्योग को भीतरी भागों में निकटवर्ती क्षेत्रों से कच्चा माल आदि प्राप्त होने लगा। फलतः नागपुर, इंदौर, कोयम्बतूर, बंगलौर, शोलापुर आदि स्थानों में इस उद्योग का

१. T. R. Sharma, Location of Industries in India, 1951.
२. T. R. Sharma : Ibid, p. 22.

विकास हुआ । यह सभी केन्द्र कच्चे माल और तैयार माल की पूर्ति की दृष्टि से बड़ी लाभदायक स्थिति में हैं ।

(२) भीतरी भागों में पूंजी तथा व्यवस्था संबंधी सुविधायें भी उपलब्ध हो गईं ।

(३) भीतरी भागों में कई स्थानों पर विशेष कर रामनाथापुरम, तिरुनलवैली, सलेम, तिरुचिरापल्ली, पुद्दूकोटा, मदुराई, उज्जैन, हाथरस, ब्यावर, आगरा, भड़ौंच आदि स्थानों पर मजदूरों के वेतन मँहगे नहीं हैं ।

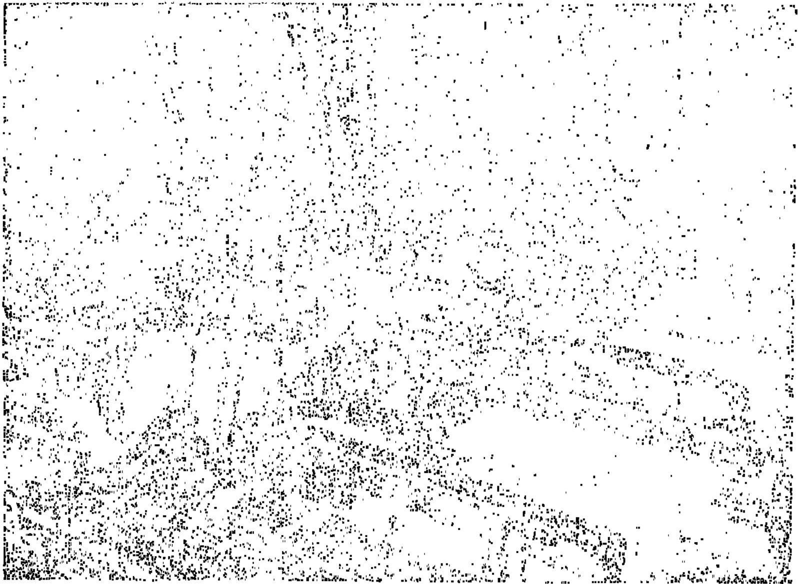
सबसे पहले अहमदाबाद में १८५९ ई० में कपड़े की मिलें स्थापित की गईं । यहाँ इस उद्योग के लिए ये सुविधायें प्राप्त हैं :—

(१) यहाँ साहसी व्यापारियों और सेठों की कमी नहीं है जिनसे उद्योग के लिए पर्याप्त पूंजी मिल जाती है ।

(२) यह सौराष्ट्र और गुजरात के कपास उत्पादन केन्द्रों के मध्य में स्थित है । अतः धोलेरा और भड़ौंच नामक उत्तम कपास बहुत मिल जाती है ।

(३) सौराष्ट्र तथा गुजरात के बन्दरगाहों द्वारा विदेशों से मशीनें आदि सुगमतापूर्वक मँगवाई जा सकती हैं ।

(४) यहाँ बहुत प्राचीन काल से ही घरेलू धन्धे के रूप में कताई और बुनाई का उद्योग होता रहा है । अतः मिलों के लिए चतुर मजदूर मिलने की सुविधा है ।



चित्र १५९—बम्बई की मिल का कताई विभाग

(५) तैयार माल पंजाब, उत्तर प्रदेश राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में आसानी से भेजा जा सकता है । यहाँ के कपड़े की माँग दिल्ली, कानपुर और अमृतसर तक है ।

इन कारणों से अहमदाबाद भारत में सूती कपड़े बनाने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे 'पूर्व का बोस्टन' कहते हैं। यहाँ ७१ मिलें है।

धीरे-धीरे अहमदाबाद के अतिरिक्त नये मिल गुजरात व महाराष्ट्र में पेटलाद, बरसी, अमरावती, आकोला, वर्धा, अंजार, सिद्धपुर, हिंगनघाट, धूलिया, नाड़ियाद, सूरत, भड़ौंच, बड़ौदा, शोलापुर, पूना, हुबली, बेलगाँव, सतारा, कोल्हापुर, जलगांव, राजकोट, मोरवी, कलोल, वीरमगांव, नवसारी, सांगली, बिलीमोरिया, नागपुर, आमलनेर, भावनगर आदि नगरों में भी खुल गये हैं।

महाराष्ट्र की मिलों में भीतरी क्षेत्रों की मिलों से स्पर्धा होने के कारण अब बढ़िया कपड़ा ही अधिक बनने लगा है। इन मिलों में लट्ठा, मलमल, वायल, विभिन्न प्रकार की छींटें, चद्दरें, 'टी क्लाथ', कमीजों के टुकड़े, धोतियाँ आदि तथा कई प्रकार के रंगीन कपड़े बनाये जाते हैं। अहमदाबाद में भी उत्तम और महीन कपड़ा अधिक बनाया जाता है—विशेषतः छोटे रूमाल, धोतियां, शर्टिङ्ग, कोटिंग, मलमल, वायल आदि। कपड़े की किस्म के अनुसार अहमदाबाद में लंकाशायर की मिलों की तरह *'मिस्री कपड़े' और बम्बई में 'अमरीकी कपड़े' अधिक बनाये जाते हैं।*[1]

पश्चिमी बंगाल :

पश्चिमी बंगाल में कलकत्ता के आसपास ३० मील की परिधि में २४ परगना, हावड़ा और हुगली जिलों में हुगली नदी के किनारे पर सूती कपड़े की ३९ मीलें है। इस स्थापन के कारण ये हैं :—

(१) कलकत्ता बन्दरगाह के समीप होने के कारण विदेशों से मशीनें और रुई आसानी से इन मिलों के लिए आ जाती हैं।

(२) रानीगंज और झरिया की खानों से कोयला प्राप्त हो जाता है। रेल मार्गों और जल मार्गों का जाल सा बिछा होने के कारण तैयार माल आस-पास के स्थानों को भेजा जा सकता है—विशेषतः आसाम, मनीपुर, त्रिपुरा, बिहार और उड़ीसा को।

(३) कलकत्ता में पूंजी और अन्य व्यापारिक सुविधायें भी प्राप्त हो जाती हैं।

(४) मजदूर विशेषकर बिहार, उत्तर प्रदेश व आसाम से आ जाते हैं।

(५) घनी जनसंख्या वाले प्रदेश के केन्द्र में होने से यहां कपड़े की माँग अधिक है।

(६) यहाँ का जलवायु उद्योग के अनुकूल है तथा सालभर ही सूती कपड़ा पहनने का मौसम रहता है।

इन्हीं सब कारणों से यहाँ सूती बस्त्रों के व्यवसाय की उन्नति हो पायी है। इसके मुख्य केन्द्र सोदपुर, पनिहाट्टी, सीरामपुर, मौरीग्राम, शामपुर, पाल्टा, फुलेश्वर,

---

१. "From the point of view of progress in quality Ahmedabad resembles what they call in Lancashire the 'Egyptian Section of the Cotton Industry', while Bombay the 'American Section of the British Cotton Industry'—Vide T. R. Sharma ; Op. Cit., p. 52.

लिलुआ, रिश्रा, बेलगरीया, सल्कीया और घुसेरी आदि हैं। इन मिलों में भूरा और ब्लीच किया हुआ कई प्रकार का कपड़ा बनता है। पश्चिमी बंगाल में इस व्यवसाय की और भी उन्नति होने की आशा है क्योंकि निकटवर्ती प्रदेशों में सूती कपड़े की मिलों का अभाव है तथा कलकत्ता विश्व का सबसे बड़ा सूती कपड़े का बाजार है।[1]

बंगाल के उद्योग को कुछ असुविधायें भी हैं—

(१) यहाँ कच्चे माल की बहुत कमी है अतः कपास काफी दूर से मंगवानी पड़ती है।

(२) यहाँ के आरम्भिक पूँजीपतियों और व्यवसायियों ने जूट उद्योग के विकास की ओर ही अधिक ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त चाय, कोयला और यातायात के उद्योग में ही अधिक धन लगाया।

उत्तर-प्रदेश :

सूती वस्त्र उद्योग में उत्तर प्रदेश का स्थान चौथा है। यहां १९वीं शताब्दी के अन्त में इस उद्योग का विकास हुआ। उत्तर प्रदेश में यद्यपि मुरादाबाद, बनारस, आगरा, बरेली, अलीगढ़, मोदीनगर, हाथरस, सहारनपुर, रामपुर, इटावा आदि स्थानों में सूती कपड़े की मिलें पाई जाती हैं किन्तु कानपुर इस उद्योग का प्रमुख केन्द्र है। इसे **'उत्तरी भारत का मानचेस्टर'** कहते हैं। इसके कारण ये हैं :—

(१) यह गंगा की घाटी के कपास के क्षेत्र की सीमा पर है जहाँ से यहाँ कपास आती है। यह कपास छोटे रेशे वाली होती है अतः यहाँ मोटा कपड़ा ही अधिक बनाया जाता है।

(२) यह नगर न केवल उत्तर प्रदेश के नगरों से ही मिला है वरन् अमृतसर, दिल्ली और कलकत्ता से भी उत्तम रेलों और सड़कों द्वारा जुड़ा है। अतः मिलों की मशीनें व रासायनिक पदार्थ सरलता से प्राप्त हो सकते हैं।

(३) यह रानीगंज, भेरिया और डाल्टनगंज की कोयले की खानों के निकट है।

(४) उत्तर प्रदेश की अधिक जनसंख्या और कृषकों की अधिकता के कारण कपड़े की माँग अधिक रहती है।

(५) घनी आबादी के कारण मजदूर सस्ते और अधिक परिमाण में मिल जाते हैं।

मद्रास :

दक्षिणी भारत में भी सूती कपड़े की मिलों का आधिक्य है। इसका मुख्य कारण पायकरा योजना से सस्ती जल-विद्युत शक्ति और कपास का अधिक परिमाण में मिलना है। मजदूर भी बहुत मिल जाते हैं। दक्षिणी भारत के मिल समस्त देश का १६% सूत बनाते हैं। यहाँ सूती मिलें मद्रास में मदुराई, कोयम्बटूर, सलेम, पेराम्बूर, तिरूनलवैली, तिरूचिरापल्ली, गुडियाटम, अम्बेगोडे, रामनाथापुरम, तूतीकोरिन, तंजौर, कोकोनाडा और एलोरा में हैं। यहाँ पांडीचेरी और कोयम्बटूर सबसे बड़े केन्द्र हैं।

१. P. S. Loknathan: Industrial Organisation in India, p. 63.

आँध्र में सूती कपड़े की मिलें पूर्वी गोदावरी, गंतूर, हैदराबाद, वारंगल, तादेपल्ली, सिकन्दराबाद में हैं।

केरल में इस उद्योग के मुख्य केंद्र त्रिवेन्द्रम, क्विलोन, अलगप्पानगर, अलवाये, चलागुरम, कनानोर, अलप्पी और पापिनीसेरी हैं।

मैसूर राज्य में बंगलौर, मैसूर, बेलगाँव, गुलबर्गा, बलारी, देवनगरी, बंगलौर और चीतलदुर्ग हैं।

अन्य मुख्य केंद्र पंजाब में भिवानी, लुधियाना, अमृतसर तथा फागवाड़ा और बिहार में पटना, गया, भागलपुर और मदानी में हैं।

मध्य प्रदेश की वर्धा और पूर्णा नदियों की घाटी में कपास खूब उत्पन्न होता है तथा पिछड़ी जातियों की अधिकता से मजदूर भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं। बरोरा की खानों से कोयला मिल जाता है। सूती कपड़े की मिलें रतलाम, इन्दौर, ग्वालियर, देवास, निमार, राजनन्दगाँव, सतना, भोपाल, उज्जैन, बुड़नेरा, बुरहानपुर, एलीचपुर और पूलागांम में हैं।

राजस्थान में यह उद्योग पाली, ब्यावर, विजयनगर, किशनगढ़, भीलवाड़ा और कोटा में केंद्रित है। यहाँ कोयला बिहार की खानों से मंगवाया जाता है किन्तु कपास की प्राप्ति स्थानीय ही होती है। कपड़े की माँग भी यहाँ इतने बड़े क्षेत्र की है।

उत्पादन और उपभोग :

मिलों में सूती कपड़े का उत्पादन कुछ सीमा तक तो उपलब्ध मशीनों के अनुसार और कुछ सीमा तक देश में उपलब्ध रुई के अनुरूप होता है। देश की रूई का अधिकांश भाग मोटे और मध्यम श्रेणी के कपड़े के उत्पादन के लिये बहुत ही उपयुक्त है। भारत में सूती कपड़े की मिलें जो सूत तैयार करती हैं वह बहुत मोटा है। अधिकांश सूत ३० नम्बर से कम का होता है। ३० नम्बर से ऊपर का सूत तो बहुत ही कम उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में अच्छी और लम्बे रेशे वाली कपास का उपयोग कम किया जाता है। केवल बम्बई और अहमदाबाद की मिलों में जो ४० नम्बर से भी अधिक का बारीक सूत काता जाता है वह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मिस्र तथा पाकिस्तान से आयात की गई कपास से तैयार किया जाता है। अब ऊँचे नम्बर का सूत भी भारतीय मिलों में तैयार किया जाने लगा है। इससे महीन कपड़े का निर्माण किया जाता है। अधिकांशतः हमारी कपास मोटे रेशे वाली होने के कारण केवल मोटा और मध्यम श्रेणी का कपड़ा ही अधिक बनाया जाता है।

(दस लाख गज में)

वर्ष	मोटा कपड़ा	मध्यम कपड़ा	बारीक	बहुत ही बारीक	योग
१९५०	४२२	१,७८१	१,२००	२६२	३,६६५
१९५१	३६४	२,०८१	१,३४७	२८४	४,०७६
१९५२	५०३	२,७०६	१,१९४	१९५	४,५९८
१९५३	५९९	३,१३६	८३९	३०४	४,८७८

वर्ष	मोटा कपड़ा	मध्यम कपड़ा	बारीक	बहुत ही बारीक	योग
१९५४	५१०	३,६९१	४६२	३३५	४,९९८
१९५५	५७२	३,७५९	४६२	३०१	५,०९४
१९५६	७१९	३,७९६	४४४	३४७	५,३०६
१९५७	१,१६३	३,५०३	३८३	२६८	५,३१७
१९५८	९७०	३,३९६	३०३	२५८	४,९२७
१९५९	९८२	३,५००	२४२	२९१	४,९२५

इन मिलों में कई प्रकार का कपड़ा बनाया जाता है जैसा कि निम्न तालिका ा स्पष्ट होगा :—

(लाख गजों में)

	१९५०	१९५४	१९५८
चद्दरें	२६४	३६०	४१०
धोतियाँ	५,०१६	११,४६०	१०,४६२
ड्रिल और जीन	१,२८४	१,५००	२,१६०
शर्टिंग और लट्ठा	९,४६८	१२,५४०	१२,१७०
चादर के काम का कपड़ा	२,४१२	३,६९६	३,८७०
रंगीन कपड़ा	११,४१२	१४,८०८	१६,४१०

नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का सूत और कपड़े का उत्पादन दिया या है।

सूत और कपड़े का उत्पादन

वर्ष	सूत (लाख पौंड)	कपड़ा (लाख गज)
१९३०	८,६७०	२४,९४०
१९४०	१२,७६०	४०,९२०
१९५०	११,७४०	३६,६५०
१९५१	१३,०४०	४०,७६०
१९५२	१४,४९०	४५,९९०
१९५३	१५,०५०	४८,७८०
१९५४	१५,६१०	४९,९८०
१९५५	१६,३००	५०,९४०
१९५६	१६,७१०	५३,०६०
१९५७	१७,८०१	५३,१७०
१९५८	१६,८५३	४९,२७०
१९५९	१७,२२८	४९,२५४

भारत में प्रति व्यक्ति पीछे वर्ष भर में १६·८ गज कपड़े का उपभोग किया ाता है जबकि संयुक्त राज्य में खपत की यह मात्रा ६४ गज; कनाडा में ३८ गज;

पश्चिमी यूरोपीय देशों में ३२ गज; जापान में २० गज तथा मिश्र में १६ गज है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर भारत में खपत की मात्रा १८½ गज हो जायेगी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कपड़े का उत्पादन १९५५–५६ में ६७,००० लाख गज से बढ़ कर ८४,००० लाख गज तथा सूत का उत्पादन १६,३०० लाख पौंड से १९,५०० लाख पौंड का अनुमान किया गया है। कपड़े के १७,००० लाख गज अतिरिक्त उत्पादन का ब्यौरा इस प्रकार होगा :—

हाथ कर्घों द्वारा	७,००० लाख गज
शक्ति–कर्घों द्वारा	२,००० ,,
अम्बर चर्खे द्वारा	३,००० ,,
मिल उद्योग द्वारा	३,५०० ,,
बाद में निर्णीत किया जाने वाला	१,५०० ,,

मिल उद्योग का उत्पादन बढ़ाने के लिये मिलों में १८,००० स्वचालित कर्घों को लगाया जायेगा। अभी भारत में स्वचालित कर्घों की संख्या केवल १४,११८ है। जबकि इंग्लैंड ऐसे कर्घों की संख्या ४४,८९३ सं० रा० अमरीका में ३५०,१०९; जापान ६५,५३६; जर्मनी ५८,१६७; अन्य दक्षिणी अमरीका के देश ६६,०३८ और उत्तरी अमरीका के देश (सं० रा० को छोड़ कर) ३१,४४९ तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों में २७८,४२३ है। इन देशों की तुलना में भारत में कुल कर्घों का केवल ६·६% स्वचालित कर्घे हैं जबकि इंग्लैंड में यह प्रतिशत १४·४; सं० रा० में १००; जापान में ६६·५ तथा पश्चिमी यूरोप में ४३·२; उत्तरी अमरीका में ५३·२ और द० अमरीका में ४२·७ हैं।[1]

तृतीय योजना के अन्तर्गत सूत की उत्पादन क्षमता २२·५ करोड़ पौंड और उत्पादन भी २२·५ करोड़ पौंड रखा गया है। सूती कपड़ा उद्योग की उत्पादन क्षमता एवं वास्तविक उत्पादन भी ५८ करोड़ गज ही होगा। हाथ करघा उद्योग द्वारा ३५ करोड़ गज कपड़ा और बनाया जायेगा जिसमें से २१·२ करोड़ गज हाथ कर्घों से ; ४ करोड़ गज शक्ति कर्घों से और शेष खादी होगी।

व्यापार:

भारत से सूती कपडों का निर्यात पिछले कुछ वर्षों से कम होता जारहा है, क्योंकि विश्व के अन्य रूई उत्पादक देश अब अपने यहाँ से अधिक मात्रा में सूती वस्त्र उत्पादन कर निर्यात करने लगे हैं। अतएव, जहाँ १९४२ की अवधि में हमने १०,६१० लाख गज कपड़ा निर्यात किया वहाँ १९४९ में ५,०९० लाख गज तथा १९५३ में ६,२८० लाख गज; १९५४ में ८९८० लाख गज निर्यात किया गया। १९५६ में ६,८४० लाख गज; १९५७ में ८,३९० लाख गज और १९५८ में ५,३६० लाख गज कपड़ा।

भारत को कपड़े के निर्यात द्वारा १९५१ में ७२ करोड़, १९५५ में ४९ करोड़ और १९५६ में ४८ करोड़ रुपये की १९५७ में ५९ करोड़ रुपये की और १९५९ में ६१ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। १९६१ में ३७५ करोड़ रुपये की आय होने का अनुमान है। इस वर्ष १०,००० लाख गज कपड़ा निर्यात होगा।

१—Times of India, Industries Supplement, July, 1, 1957.

कपड़े के अतिरिक्त हमारे यहाँ से सूत का भी निर्यात होता है। १९५२ में १८० लाख पौंड सूत का निर्यात हुआ। १९५६ में यह २३०लाख पौंड का हुआ। भारत से विदेशों को जो कपड़ा निर्यात होता है उसमें मुख्यत: कमीज का कपड़ा, लट्ठा, चादरें, कोटिंग, मलमल, वायल तथा छींटें आदि हैं।

भारत से कपड़े का निर्यात मुख्यत: उन देशों को होता है जहाँ भारतीय अधिक संख्या में जाकर बस गये हैं विशेषत: हिन्दमहासागर के किनारे वाले देशों में। नीचे की तालिका में मुख्य देशों को होने वाले निर्यात को बताया गया है :—

भारत से निर्यात, (१० लाख गज) में

देश	१९५०	१९५६	१९५८ (११ महीने)
इंग्लैंड	७०९	९१०	९३४
अदन	८६७	३८२	२९८
बर्मा	१,३३२	१७०	—
लंका	४७९	२६७	१४८
सिंगापुर	१,९९९	३०३	१५४
नाईजीरिया	२२९	४१९	३९५
केनिया–जंजीबार	३५९	४३०	३०६
टैंगेनिका	१८८	२०१	१७४
सूडान	५३९	८५४	५६२
आस्ट्रेलिया	४५१	४०२	४३२
पाकिस्तान	५०४	३१	—
इंडोनेशिया	—	४८८	१००

सूती कपड़े के निर्यात की महत्वपूर्ण बातें ये हैं :—

(१) भारत का अधिकांश निर्यात द० पू० अफ्रीका, ईराक, ईरान, लंका, अदन, बर्मा, सीरिया, थाइलैंड, और अरब देशों को होता है।

(२) हमारे कुल निर्यात का ९०–९२% भाग मोटा और मध्यम श्रेणी का कपड़ा होता है।

(३) कपड़े के कुल निर्यात में बहुत बड़ा भाग बिना धुले कोरे कपड़े का होता है जिसे आयातक देश पुनर्निर्यात के लिए मंगवाते हैं।

(४) निर्यात का बहुत कम भाग रंगा या छपा और अन्य प्रकार से भेजा जाता है।

भारत-सरकार ने सूती कपड़े के निर्यात को बढ़ाने में निम्न महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं :—

(१) विदेशों में सूती कपड़े के बाजारों की स्थितियों का गहन अध्ययन करने तथा निर्यात बढ़ाने के लिए सूती वस्त्र निर्यात संवर्धन परिषद (Expert Promotion Council) की स्थापना की गई है।

(२) निर्यात होने वाले माल पर लगे उत्पादन शुल्क में छूट देना।

(३) निर्यात किये जाने वाले कपड़े पर किस्म नियंत्रण तथा निरीक्षण की योजनायें लागू करना।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनियों में भाग लेना और विश्व के मुख्य केन्द्रों में व्यापार केन्द्र तथा वाणिज्यिक प्रदर्शन-कक्ष चलाना ।

(५) निर्माताओं और निर्यातकों को निर्यात के लिए माल बनाने को आवश्यक कच्चा माल समय पर तथा उचित दामों पर दिलाने में सहायता देना ।

सूती वस्त्र उद्योग की समस्यायें :

इस उद्योग की वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं है । यद्यपि देश की मांग की पूर्ति की दृष्टि से भारत आत्म निर्भर है । भारतीय सूती मिलों में इस समय लगभग १५० ऐसे मिल जो अलाभकारी (Uneconomic) कहे जाते हैं । एक लाभकारी मिल में साधारणत: २५,००० तकुए और ६०० करघे होते हैं किन्तु १५० मिलों में आकार की तुलना में उत्पादन कम होता है । इनमें से २५ बंद होगए हैं; ३५ घाटे में चल रहे हैं तथा ९० मिलों में उत्पादन केवल सीमान्त रेखा तक ही होता है । पूँजी के अभाव, कुप्रबन्ध तथा कच्चे माल के अभाव में ये मिल अनार्थिक रूप में स्थित हैं । अत: इन मिलों का पुनर्संगठन करके इनकी व्यवस्था में पुनर्निर्माण करने की आवश्यकता है ।

(२) भारतीय मिलों की उत्पादन शक्ति क्रमश: गिरती जारही है । इगलैंड, अमरीका और जापान की अपेक्षा उत्पादन-दर कम है अत: अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में भारत इन देशों से स्पर्धा में नहीं टिक सकता । गिरते हुए उत्पादन से प्रति इकाई उत्पादन व्यय बढ़ता जाता है अत: उत्पादित वस्तुएें मंहगी पड़ती हैं । अत: सूती मिल उद्योग को वैज्ञानिक स्तर पर पुनर्संगठित किया जाय । इसका एक मात्र उपाय अभीनवीकरण (Rationalisation) द्वारा ही हो सकता है ।

(३) अधिकांश भारतीय मिलों में पुरानी घिसी हुई व जर्जरित मशीनें लगी हुई हैं अत: उनसे अधिक उत्पादन नहीं किया जा सकता । बम्बई मिल संगठन के अनुसार बम्बई नगर में ९० प्रतिशत मशीनें २५ वर्ष से भी अधिक पुरानी हैं । द्वितीय युद्धकाल में इनकी दशा और भी बिगड़ गई । १९१० में लगाये गए यंत्र आज भी लगे हैं । इनसे उत्पादन में ह्रास हो गया है । अत: यह आवश्यक है कि जितनी शीघ्र हो सके (१० और १५ वर्षों के बीच में) सभी मिलों में पुराने ढंग की मशीनों का अभीनवीकरण कर देना चाहिए और उनके स्थान पर नवीनतम प्रकार के उन्नत यंत्रों और मशीनों की प्रतिस्थापना करनी चाहिए । ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रति-स्थापना के लिए १०,००० स्वचालित करघे और ७,५०० साधारण करघे चाहिए तथा द्वितीय योजना-काल में निश्चित-उत्पादन प्राप्त करने हेतु २४,००० स्वचालित तथा १७,००० साधारण करघे लगाना आवश्यक है ।

(४) भारत की मिलों को सदा ही रुई का अभाव रहा है मात्रा में कम होने के साथ साथ कपास उत्तमता की दृष्टि के भी निम्नकोटि की है । अत: उत्तम वस्त्र बुनने के लिए भारत को विदेशों से रुई का आयात करना पड़ता है । विभाजन के कारण कच्चे माल की समस्या और भी दुरूह हो गई है । किन्तु अब देश के विभिन्न भागों में ही लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन बढ़ाया जा रहा है । इस समय पंजाब में L. L. 54; दक्षिणी पूर्वी पंजाब में H. 14 ; बम्बई में 170-C 2 ; खानदेश में Virnar 197-3 ; अमरेली (बम्बई) में C. J. 73 · भड़ौंच में 'दिग्विजय' ; धारवाड़ में 'लक्ष्मी' और 'जयधर' ; मद्रास में M. C. V. I. तथा

M. C. V. 2 ; मध्य प्रदेश में H. 420 ; 13 A; 59 A और मैसूर में M. A. 5 तथा आंध्र में 'गारोनी' किस्म की लम्बे रेशे वाली रुई अधिक सफलता प्राप्त कर सकी है।

१९६१ तक लम्बे रेशे वाली कपास केरल, मैसूर और आसाम राज्य की लगभग ३ लाख एकड़ भूमि पर पैदा की जायेगी।

भारतीय मिलों में १९४४ में भारतीय रुई की ४,१६० हजार गाँठें तथा विदेशी रूई की ६८४ हजार गाँठें उपभोग में ली गईं। १९५८ में यह मात्रा क्रमशः ४,४४० हजार तथा ५२९ हजार तथा १९५९ में ४,६१६ हजार और ४५५ हजार थी।

(५) मिल उद्योग और करघा उद्योग एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी न होकर उनके पूरक हैं। अतः दोनों का उचित समन्वय होना आवश्यक है।

२. जूट का उद्योग (Jute Industry)

जूट भारत के प्रमुख उद्योगों में से है। विश्व में भी जूट का पक्का माल तैयार करने में भारत का स्थान प्रथम है। यहाँ यह उद्योग बहुत समय से होता आया है। बंगाल में इसे कपाली लोग कुटीर प्रणाली पर करते आये हैं। इस उद्योग की कई विशेषतायें हैं जिनके कारण इसका इतना अधिक महत्व है :—

(१) इस उद्योग से हमारे देश को अमित आय होती है। यह भारत का सबसे अधिक डॉलर कमाने वाला उद्योग है जैसा कि अगली तालिका से ज्ञात होगा :—

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	जूट का सामान		चाय		सूती वस्त्र		लाख और चमड़ा		भारत का कुल निर्यात
	पावना	%	पावना	%	पावना	%	पावना	%	
१९५२-५३	१२९	२३·३	८०	१४·४	७०	१२·६	२६	४·७	५५५
१९५३-५४	११४	२२·०	१०२	१९·७	७२	१२·६	३१	६·०	५१८
१९५४-५५	१२४	२१·७	१४७	२५·७	६६	११·५	२६	४·५	५७२
१९५५-५६	११३	१९·९	१४३	२३·३	५७	९·४	२३	३·७	६१४
१९५६-५७	११३	१९·४	१५३	२६·६	६५	११·५	२२	३·६	६३८
१९५९	११०	१९·३	१६६	२०·२	६६	१०·५	२९	४·६	६२३

(२) पाट से बनी हुई वस्तुएँ बहुत उपयोगी होती हैं। सामान बाँधने के लिए संसार में अन्य कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जिसमें पाट जैसी मजबूती और सस्तापन हो। पाट के बोरों का उपयोग उनके मजबूत होने के कारण सामान बांधने के लिए अनेक बार किया जा सकता है। अत: ये काफी सस्ते पड़ते हैं। इनकी मरम्मत आसानी से की जा सकती है तथा ये सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जा सकते हैं।

(३) विभाजन के पूर्व भारत से ही विश्व के उत्पादन का ९९% कच्चा जूट प्राप्त होता था, अतएव विश्व में जूट के उद्योग में भी भारत का एकाधिकार था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी यह उद्योग विश्व में सबसे अधिक भारत में ही केन्द्रित और विकसित हुआ है। विश्व में कुल जूट के कर्घों का ५६% अब भी भारत में ही पाया जाता है, जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा :—[१]

विश्व में जूट के कर्घों का वितरण

देश	कर्घे		विश्व का प्रतिशत	
	१९५१	१९६०	१९६०	१९५५
भारत	६८,५५७	७२,१२५	५६·१	५३.०
ग्रेट ब्रिटेन	११,१५१	७,०१०	५·४	८.०
फ्रांस	७,६९८	८,७००	६·३	६·४
जर्मनी	६,३४९	५,०००	५·२	३·७
ब्राजील	४,९८७	४,९८७	४·१	३·७
बेल्जियम	४,८०७	३,७१०	३·९	२·७
इटली	४,६३१	५,०००	३·८	३·७
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२,७५०	४,०००	२·२	३·०
जैकोस्लोवाकिया	२,०००	२,०००	१·८	१·४
पोलैंड	१,६००	१,६००	१·३	१·२
रूस	१,३१५	२,९०९	१·१	१·०
पाकिस्तान	१,०००	८,५००	६·६	४·९
द० अमेरिका	१,०००	१,०००	०·८	०·७
स्पेन	८००	४,०००	०·७	३·०
चीन	७५६	१,३१७	०·६	१·०
आस्ट्रिया	७३५	५००	०·६	१·७
जापान	६१५	१,०००	०·५	
अन्य देश	१,७५९	१,७५९	१·४	
योग	१,२२,५१०	१२८,५४१	१००·०	१००·०

(४) सूती वस्त्र उद्योग के बाद यह सबसे प्रमुख उद्योग है। चतुर नियंत्रण और कुशल संचालन व संगठन में यह उद्योग सब उद्योगों में अद्वितीय है।[२]

१. Major Industries Annual : 1975—58, p. 99; and Second Five Year Plan, 1956, p. 355 ; Commerce 11th June, 1960, p. 1042.
२. P. P. Pillai, Economic Conditions in India.

(५) इस उद्योग में ६७·२ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है जिसमें से २२·६ करोड़ की स्थायी पूँजी और ४३·१३ करोड़ की कार्यशील पूँजी है। इसमें से विदेशी पूँजी केवल १५·०७ करोड़ रुपया है। अतः यह उद्योग मुख्यतः भारतीयों के ही अधिकार में है। इस उद्योग में २,६४,४४६ व्यक्ति लगे हैं।

उद्योग का ऐतिहासिक विकास :

१६वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में यह उद्योग कुटीर-प्रणाली पर किया जाता था। इस समय जूट और जूट के उत्पादन का निर्यात भी विदेशों को होता था। १८२८–२९ में भारत से १०,१३,२७७ बोरे तथा टाट के टुकड़ों का निर्यात किया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रयत्नों से विश्व जूट तथा उसके रेशे से परिचित हुआ। १८३२ में यन्त्रों की सहायता से डंडी में जूट का माल बनना आरम्भ हुआ, किन्तु भारत में १८५५ तक यह उद्योग कुटीर रूप में ही होता रहा।[1] इस वर्ष जार्ज आकलैंड नामक एक स्कॉट निवासी ने जूट की कताई के लिए कलकत्ते से १० मील दूर हुगली नदी के किनारे रिश्रा नामक स्थान पर पहला कारखाना खोला। इसके २ वर्ष बाद १८५६ में बुनाई के लिए शक्ति-संचालित कर्घे का उपयोग 'दी बोर्नियो कं०' में किया गया। इससे भारत में यंत्र निर्मित जूट की वस्तुएँ—थैले, बोरे, टाट, बैडमिटन-जाल आदि—बनाये जाने लगे। १८७३ तक चार कारखानें और स्थापित हुए। १८६४ से १८८२ तक मिलों की संख्या २२ हो गई जिनमें २७,४९४ व्यक्ति काम करते थे और ७७,८४० तकुए तथा ४,७४६ कर्घे थे। इनमें से १७ मिलें अकेले कलकत्ता के निकटवर्ती भाग में थीं जहाँ उन्हें कच्चे माल और निर्यात दोनों की सुविधा थीं। जूट के माल की विदेशी माँग होने से मिलों की संख्या बढ़ती गई। १८९५ में भारत में २९ मिल थे जिनमें २,०१,३१७ तकुए और १०,०४८ कर्घे थे। तथा ७५,१५७ व्यक्ति काम करते थे। इस समय भी २६ मिलें कलकत्ता के आस-पास ही थीं और शेष बंगाल के अन्य भागों में। १९१४ तक मिलों की संख्या ६४, तकुओं की संख्या ७,४४,२८९, कर्घों की संख्या ३६,०५० हो गई तथा मजदूरों की संख्या भी २,१६,२८८ हो गई। इस काल में कर्घों और तकुओं की संख्या बढ़ रही थी।

प्रथम महायुद्ध के समय इस उद्योग को काफी प्रोत्साहन मिला, अतएव मिलों का उत्पादन बढ़ गया। युद्धकाल में औसतन ५५ लाख जूट की गाँठें खपत में आती थीं। किंतु युद्ध समाप्ति पर जब युद्धजन्य आदेश बन्द हो गये तो भारतीय बोरों और जूट के माल की माँग कम हो गई। कच्चे जूट की कीमतें और श्रम-व्यय बढ़ने लगा। युद्ध काल में कमाये गए धन से नये मिलों की स्थापना तथा पुरानी मिलों ने अपना विस्तार आरम्भ किया। कोयले की भी कमी हो रही थी तथा विश्वव्यापी व्यापारिक मंदी आरम्भ हो रही थी। इन सब कारणों से उद्योग संकट में आ गया। अतएव काम के घंटे कम कर दिये गये तथा कम कर्घे काम में लाये जाने लगे। यह स्थिति १९२९ तक रही। इस समय भारत में ९५ मिल थे जिनमें ११,४०,४३५ तकुए और ३५,९०० कर्घे थे तथा ३,४३,२५७ व्यक्ति काम करते थे।

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने पर एक बार पुनः उद्योग को प्रोत्साहन

---

१. इसी समय विश्व के अन्य देशों में भी जूट की मिलें खोली गईं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १८४८, फ्रांस १८५७, जर्मनी १८६१, बेल्जियम १८६५, रूमानिया व इटली १८८५ में। रूस, पोलैंड, जैकोस्लोवाकिया, स्पेन, नार्वे और फिनलैंड में भी इस शताब्दी में मिलें खुलीं।

मिला। किंतु १९४० में जूट वस्तुओं की माँग कम हो गई तथा उत्पादन पर दो बातों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। कोयला-विद्युत शक्ति की कमी तथा यातायात की असुविधा हो गई और १९४३ में अकाल पड़ गया। १९४७ में देश का विभाजन हो जाने से इस उद्योग को भारी धक्का लगा क्योंकि उत्तम जूट पैदा करने वाले भाग पूर्वी पाकिस्तान को चले गये जो अविभाजित भारत का ७३% जूट पैदा करते थे। किंतु जूट के सभी कारखाने भारत में रहे। अतः इन मिलों के लिए कच्चे जूट की कमी पड़ गई। फलस्वरूप सरकार ने जूट की माँग पूरी करने के लिए पाकिस्तान से जूट आयात का समझौता किया गया। कच्ची जूट की खरीद के अधिकतम मूल्य नियत किये और देश में ही जूट की उपज बढ़ाने के प्रयत्न किये। फलतः देश में जूट की खेती बढ़ने लगी है।

उद्योग का स्थापन :

मिलों के प्रादेशिक वितरण को देखने से ज्ञात होता है कि यह उद्योग मुख्यतः पश्चिमी बंगाल में ही केन्द्रित है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

राज्य	मिल	टाट और बोरे बनाने के कर्घे	अन्य कर्घे	योग
पश्चिमी बंगाल	१०२	६६,५७३	३,७८८	६६,५७३
बिहार	३	१,०२६	—	१,०२६
आँध्र प्रदेश	४	१०,१०६	४२	१,०१०६
उत्तर प्रदेश	३	८६१	—	८६१
मध्य प्रदेश	१	२२०	—	२२०
	११३	६६,०४४	३,०८१	७२,१२५

इन मिलों में कुल ७२,१२५ कर्घे हैं, जिनमें से ६६,०४४ टाट और बोरे बनाने वाले तथा ३,०८१ अन्य सामान तैयार करने वाले हैं। इन मिलों की मासिक उत्पादन क्षमता १ लाख टन की है जिसके लिए ७० लाख गाँठों की आवश्यकता होती है। इन मिलों में एक पारी में प्रति सप्ताह ४८ घंटे काम होता है। इनसे प्रतिवर्ष लगभग १ अरब ६० करोड़ रुपये की कीमत की जूट की वस्तुऐं तैयार की जाती हैं।

पश्चिमी बंगाल में इस उद्योग के स्थापन के मुख्य कारण ये हैं :—

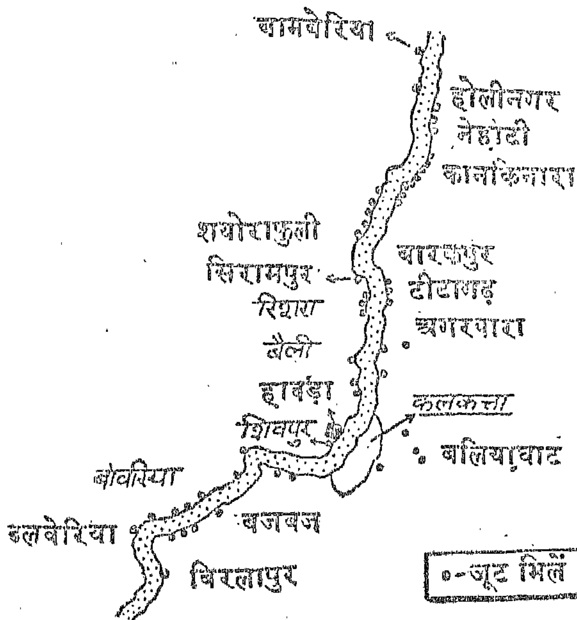
(१) जूट की खेती गंगा-ब्रह्मपुत्र के डेल्टा में होती है जहाँ प्रति वर्ष नदियों द्वारा उपजाऊ मिट्टी लाकर जमा कर दी जाती है। अतः कच्चा माल सुगमता से मिल जाता है। बंगाल के डेल्टा से भारत का ६० प्रतिशत जूट प्राप्त होता है। तिपैरा, माइमैनसिंह और फरीदपुर की जलवायु जूट उत्पादन के अनुकूल है।

(२) गंगा-ब्रह्मपुत्र और मेघना नदियों और उनकी सहायकों द्वारा सस्ते जल यातायात की सुविधा प्राप्त है। ये कच्चे जूट को मिलों तक पहुँचा देती हैं। जूट पहुँचाने के लिए श्रीरामपुर तक जहाज चलाये जाते हैं।

(३) कारखानों के लिए कोयला रानीगंज और आसनसोल के क्षेत्रों से उपलब्ध हो जाता है जो यहाँ से केवल १२० मील दूर पड़ते हैं।

(४) इस क्षेत्र में मिल-उद्योग से पहले ही जूट का कुटीर-उद्योग चालू था क्योंकि इसमें स्कॉटिश और अंगरेजों द्वारा पूंजी लगाई गई थी। इससे उत्साहित होकर यहाँ जूट उद्योग का विकास किया गया।

(५) जूट अधिकतर विदेशी व्यापार के लिए ही था। हुगली नदी और कलकत्ता का बन्दरगाह निर्यात के लिए सुविधाजनक थे। मशीनों और अन्य आवश्यक रसायन विदेशों से आयात किए जा सकते हैं।



चित्र १६०—पश्चिमी बंगाल का जूट-मिल क्षेत्र

(६) कलकत्ता एक औद्योगिक केन्द्र है जहाँ विविध प्रकार के कारखानें पाये जाते हैं। अतः इनके लिए श्रमिक बिहार, उड़ीसा, आसाम, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास से भी आते हैं। इस समय भी ६०% मजदूर इन्हीं राज्यों से यहाँ आते हैं।

(७) यहाँ नम और गरम जलवायु उद्योग के लिए उपयुक्त है।

(८) कलकत्ता नगर में अनेक बैंक, बीमा कम्पनियाँ आदि होने से रुपये के लेन-देन में सुविधा रहती है तथा व्यापार का केन्द्र होने से क्रय-विक्रय की सुविधा रहती है।

इन्हीं कारणों से भारत में जूट का उद्योग हुगली नदी के उत्तरी किनारे कलकत्ता से ३५ मील ऊपर और त्रिबेनी से २५ मील नीचे उलूबेरिया तक ६० मील लंबी और २ मील चौड़ी पट्टी में स्थापित हो गया है। इस क्षेत्र में भारत की ६०% जूट

की उत्पादन क्षमता पाई जाती है। इसमें भी सबसे अधिक केन्द्रीयकरण १५ मील लंबी पट्टी में ही पाया जाता है जो उत्तर में रिश्रा से दक्षिण में नैहाटी तक फैली है। यहाँ के मुख्य केन्द्र बाली, अगरपारा, रिश्रा, टीटागढ़, श्रीरामपुर, बजबज, शिवपुर, सल्किया, हावड़ा, श्यामनगर, बंसबरिया, उलूबरिया, कांकिनारा, बिरलापुर, नैहाटी, होलीनगर और बारकपुर हैं।

गंगा-सिंधु के मैदान के ऊपरी भागों में जूट का उद्योग इसलिए उन्नति नहीं कर सका कि जलवायु की अनुकूलता और बन्दरगाहों के सामीप्य की दृष्टि से वे भाग अत्यन्त अनउपयुक्त हैं। किंतु अब बिहार व उत्तर प्रदेश में—दरभङ्गा, कटियार, पूर्णिया में और शाहजहाँनवा (गोरखपुर) तथा कानपुर में कुछ मिलें स्थापित हो चुकी हैं क्योंकि खेती की उपज विशेषकर शक्कर भरने के लिए बोरों की यहाँ माँग अधिक है तथा यहाँ अन्य रेशे वाले पदार्थ भी पैदा किये जाते हैं। फिर भी जूट के उत्पादन के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इन मिलों का कोई महत्त्व नहीं है। मद्रास और आंध्र में भी नॉलीमारला, चिलवलशाह, गंतूर और पूर्वी गोदावरी जिले में और १ मध्यप्रदेश में रायगढ़ में जूट की मिलें हैं किंतु समृद्ध पृष्ठभूमि के अभाव में ये उतनी उन्नत नहीं हो सकीं जितनी कि बंगाल की मिलें।

उद्योग का उत्पादन, व्यापार आदि :

भारत की जूट मिलों में जो वस्तुएँ बनाई जाती हैं उन्हें मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) जूट के बोरे (Gunny bags) जो चावल, जूट, गेहूँ, तिलहन एवं शक्कर आदि कृषि की पैदावार भरने के काम आते हैं।

(२) टाट (Hessians) जो गाँठें बांधने के काम आता है।

(३) मोटे कालीन और फर्शपोश।

(४) रस्से, तिरपाल आदि।

नीचे की तालिका में विभिन्न प्रकार के उत्पादन को बताया गया है :—

वर्ष	टाट	बोरे (हजार टनों में)	अन्य	योग
१९५२—५३	३४७·७	५१०·४	३३·४	८९१·५
१९५३—५४	३९०·४	४४४·८	३०·५	८६५·७
१९५४—५५	३९९·२	५५७·५	३८·१	९९४·८
१९५५—५६	४०१·०	५७५·०	५१·०	१०,२७·०
१९५६	४१५·२	६०५·५	७२·१	०,९२·८
१९५७	४१४·३	५४८·७	६६·९	१०,२९·९
१९५८	४०७·१	५८२·४	७२·९	१०,६१·८

नीचे की तालिका में जूट मिलों का विकास, उनका उत्पादन तथा निर्यात बताया गया है :—

वर्ष	मिलें	उत्पादन (००० टन)	मजदूर (००० में)
१९४७-४८	१०४	१,०३५	३१५
१९४९-५०	१०४	८२५	२७८
१९५१-५२	१०४	९४५	२७६
१९५३-५४	१०४	८६५	२७४
१९५४-५५	१०४	९२७	२७५
१९५५-५६	११२	१,०२७	३००
१९५६-५७	११२	१,०९३	२६४
१९५७-५८	११२	१,०२७	३००
१९५८-५९	११२	१,०५२	३००

जूट का उद्योग मुख्यत: निर्यात उद्योग है। भारत से जूट के सामान का निर्यात कई देशों को होता है। जूट के थैले आदि संयुक्त राज्य अमरीका, क्यूबा, आस्ट्रेलिया, चीन, इङ्गलैंड तथा अर्जेन्टाइना को और टाट कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, इङ्गलैंड और अर्जेन्टाइना को तथा टिल और रस्से लिवैन्ट, मिश्र, द० अमरीका और दक्षिणी तथा पश्चिमी अफ्रीका को निर्यात किए जाते हैं।

नीचे की तालिका में जूट के बोरों और टाट का निर्यात बताया गया है :—

	बोरे		टाट	
वर्ष	मात्रा (००० टन)	मूल्य (लाख रुपयों में)	मात्रा (००० टन)	मूल्य (लाख रुपयों में)
१९५०-५१	३४५	५,५३९	२९६	५,२९१
१९५१-५२	४७३	१३,५२९	२८७	१२,४५८
१९५२-५३	३७१	६,१३९	३०४	४,०२४
१९५३-५४	३५४	४,०२४	३८९	६,९४३
१९५४-५५	४५१	५,६८५	३६०	६,२५१
१९५५-५६	४५२	५,४१९	३९२	५,९०८
१९५६-५७	४१७	—	४२८	—
१९५७-५८	४०६	—	४००	—

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जूट के माल का उत्पादन उसकी उत्पादन क्षमता (१२ लाख टन) के बराबर ही होगा। योजना काल में डेढ़ करोड़ की लागत का एक मिल आसाम में खोला जायेगा।

उद्योग की समस्यायें :

कई देशों में बोरे आदि बनाने के लिए कई नई किस्म के रेशों का प्रयोग और प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है तथा कई देशों में आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है; इससे जूट उद्योग को काफी धक्का पहुँचा है। क्यूबा, इक्वेडोर और हॉलैंड में पाट की वस्तुओं के आयात पर रोक लगा दी गई। जर्मनी, रूमानिया और लिथूनिया में पाट के सामान का आयात सरकारी आज्ञानुसार ही किया जा सकता था। जर्मनी ने ऊन व कोयला भरने के लिए पाट के थैलों का प्रयोग बन्द कर दिया।

इटली में पाट के साथ अन्य देशी रेशे काम में लेने का प्रयत्न होने लगा। इन सब कारणों से बहुत से विदेशी राष्ट्रों में पाट की माँग कम होने लगी। माँग की यह कमी तीन रूपों में प्रकट हुई। (१) आस्ट्रेलिया, कनाडा और अर्जेनटाइना में अनाज को भंडारों से बैग ही जहाजों में लादने की प्रणाली से बोरों की मांग कम कर दी गई। (२) बहुत से देशों में---युद्ध के कारण जब भारतीय माल मंगवाने की असुविधा होगई तो पाट के बोरों के स्थान पर कागज, कपड़े, सन व पटुए के थैले काम में लाये जाने लगे; विशेष कर आस्ट्रेलिया, कनाडा, स्वीडन, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका व दक्षिणी अफ्रीका संघ में। (३) न्यूजीलैंड टिनैक्स (Tenax) नामक रेशों से बने थैल में ऊन भरा जाने लगा। रूस और अर्जेन्टाइना में अलसी के रेशों का प्रयोग बढ़ा। पूर्वी अफ्रीका में सिसल (Sisal), मैक्सिको में हेनेक्वीन (Henequin), कोलंबिया में फिक (Fique), ब्राजील में केरोओ (Caroa), स्पेन में एस्पार्टो घास (Esparto Grass), इटली में जूलीटल (Julital), और जावा में रोसेला (Rosella); न्यूजीलैंड में टैनेक्स (Tenax) नामक पौधों के रेशे से बोरे बनाये गये हैं। जूट के अन्य प्रतिस्पर्धी मनीला हैम्प (Manila hemp), बो-स्ट्रिंग हैम्प (Bow string hemp), नौफ (Knof), बिम्ली जूट (Bimli Jute) और बम्बई हैम्प (Bombay hemp) हैं। किन्तु अभी तक भारत के जूट के बने बोरों से किसी भी अन्य प्रकार के बोरे लाभदायक सिद्ध नहीं हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जूट सस्ता होता है और इसके बने बोरों को बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है अथवा पुराने बोरों को बेचकर धन प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किसी भी मौसम तथा किसी भी प्रकार इन्हें उठाया-रक्खा जा सकता है। अतएव इन्हीं गुणों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जूट के स्थान पर अन्य पदार्थों का स्थानापन्न किया जाना लाभदायक नहीं होगा।

इसके अतिरिक्त पाट के रेशे के उपभोग की अनेक संभावनायें हैं। खोज से इसके नये उपयोग मालूम किये जा सकते हैं। भारतीय केन्द्रीय जूट समिति ने पाट के निम्न नये उपयोग ढूँढ निकाले हैं :—

(i) **घर निर्माण में**—ताप निरोधक, प्लास्टिक की मेज-कुर्सियाँ, कालीन, पर्दे, सोफा आदि पर बिछाने के कपड़े, कम्बल, दीवालों पर टांगने की वस्तुएं आदि।

(ii) **यातायात**—मोटर-गाड़ियों की गद्दी का कपड़ा, पानी निरोधक ढक्कन, जीन, रस्सी, डोरी, डांडियों का कपड़ा।

(iii) **उद्योग**—बिजली प्रवाह निरोधक, प्लास्टिक को मजबूत बनाने के लिए।

(iv) **वस्त्र**—चिकने व मुलायम धुले हुए रेशों को ऊन व सूत के साथ मिला कर।

देश में जूट की मांग अधिक होने तथा उत्पादन कम होने से जूट की खेती बढ़ाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। ये प्रयत्न उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और केरल राज्य में सफल हुए हैं। द्वितीय योजना के अन्तर्गत १९५५-५६ में ४० लाख गाँठों से बढ़कर १९६०-६१ में ५० लाख गाठों का उत्पादन होने का अनुमान है। अतः कुछ समय के लिए फिर भी जूट को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ेगा। जूट उत्पादक विभिन्न राज्यों की हलचलों का एकीकरण हेतु भारत-सरकार ने एक केन्द्रीय देख-रेख संगठन स्थापित किया है। यह संगठन प्रति एकड़ अधिक उपज करने फसल की किस्म को सुधारने का ध्यान रखता है। इसके लिए यह अच्छे बीज उर्वरक,

खेती की अच्छी प्रणालियों, पौधों की रक्षा, डंठल सड़ाने के लिए अधिक तालाबों की व्यवस्था करने पर भी ध्यान देता है।

भारत सरकार ने इस उद्योग की उन्नति के लिए जूट जाँच आयोग की स्थापना की थी। इस आयोग ने मुख्य सुझाव दिये हैं :—

(१) भविष्य में पाट की खेती बढ़ाने के बजाय उसकी किस्म को सुधारने पर अधिक ध्यान दिया जाय।

(२) नई मिलों के खोलने की आज्ञा प्रदान न की जाय, क्योंकि इस समय जो मिलें हैं उनके पास ही पूरा काम नहीं है, अतः लक्ष्य यह होना चाहिए कि वर्तमान मिलें पूरा काम करें।

(३) पटसन की बिक्री के बारे में बम्बई की East Indian Cotton Association की तरह ही पटसन के लिए भी एक व्यापारिक संस्था स्थापित की जाय।

(४) कलकत्ते में जूट के गोदामों का उचित उपयोग, काम के घंटे बढ़ाकर सप्ताह में ४८ घंटे करने, विविध प्रकार का माल बनाने, तथा उद्योग के विकास और उन्नति के लिए अपने ही साधनों पर निर्भर रहना तथा लाभांश कम रखना आदि अन्य सुझाव दिए गये हैं।

(५) मशीनों को समय-समय पर बदला जाय तथा व्यय को घटाया जाय।

इस समय यह उद्योग दो लक्ष्यों की पूर्ति की ओर बढ़ रहा है :—

(१) उत्पादन के अभिनवीकरण तथा बढ़ी हुई कार्य-क्षमता द्वारा पुरानी मंडियों में अधिकतम प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति प्राप्त करना।

(२) बाजारों का विस्तार और जूट के सामान के लिए नये क्षेत्रों की खोज।

३. रेशम का उद्योग (Silk Industry)

भारत के आधुनिक उद्योगों में रेशम का उद्योग भी एक है। किन्तु भारत के आर्थिक जीवन में उद्योग का महत्व थोड़ा है। भारत में रेशम का धन्धा १७वीं और १८वीं शताब्दी से ही चला आ रहा है, किन्तु रेशम के मिल-उद्योग का भारत में इसी शताब्दी में आरम्भ हुआ। कई कारणों से इस उद्योग की प्रगति धीमी रही है—(१) इसके उत्पादन में कलात्मक दृष्टि का अधिक महत्व है जो आधुनिक ढंग के कारखानों में संभव नहीं हो सकती। (२) कुशल मजदूर और उपयुक्त मशीनरी का भारत में अभाव रहा है। (३) अलग-अलग राज्यों में रेशमी वस्त्रों की मांग भी एक सी नहीं है क्योंकि जगह-जगह की पोशाक और रुचि में भी बहुत अन्तर है। रेशमी वस्त्र विशेषकर दक्षिणी भारत और उत्तर के धार्मिक केन्द्रों में ही अधिक व्यवहृत किये जाते हैं। पिछले वर्षों से इस उद्योग के मार्ग में कई कठिनाइयाँ आई हैं। संसारव्यापी आर्थिक मंदी; स्वर्णमान के परित्याग के बाद मुद्रा के मूल्यों में ह्रास; चीन, जापान, इटली तथा फ्रांस आदि देशों के माल की प्रतिस्पर्द्धा तथा विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा अपने-अपने देश के रेशम उद्योग को मिलने वाली सहायता के कारण भारत के रेशम के उद्योग को पर्याप्त हानि हुई है।

रेशम के उद्योग में हाथ-करघे का विशेष महत्व है और मिल-उद्योग का कम। रेशम के उद्योग की अधिकांश उत्पादन क्षमता काश्मीर और मैसूर राज्य में ही सीमित है क्योंकि अधिकांश कच्चा रेशम (शहतूत के कीड़े का रेशम, टसर,

एंडी और मूंगा) मैसूर, मद्रास, पश्चिमी बंगाल, काश्मीर और आसाम में ही पैदा होता है। समस्त भारत में २४ लाख पौंड कच्चा रेशम उत्पन्न होता है उससे देश की ६०% मांग पूरी होती है। बाकी का रेशम जापान, इटली आदि देशों से आयात किया जाता है। भारत में रेशम पर बहुत ऊँचा आयात कर होने पर भी बाहर का रेशम सस्ता पड़ता है और वह बढ़िया भी होता है।

अविभाजित भारत की २८० मिलों में से २७४ मिलें भारत में रहीं। इसका अर्थ यह है कि रेशम का मिल उद्योग भारत में ही केन्द्रित है। विभाजन के पूर्व रेशम और नकली रेशम के यांत्रिक शक्ति द्वारा सचालित करघों की कुल संख्या १२,००० थी। इसमें पाकिस्तान का भाग तो नगण्य था—१०० करघों से भी कम। इन मिलों में लगभग ५० हजार आदमी काम करते हैं और इनका वार्षिक उत्पादन १५ करोड़ गज रेशम और नकली रेशम का माना जाता है। सन् १९४९ में रेशम के मिल उद्योग में लगभग १८ हजार करघे लगे हुए थे। इसके अलावा ८ हजार हाथ के करघे भी इस उद्योग में लगे हुए हैं।

काश्मीर में श्रीनगर में रेशम का सबसे बड़ा कारखाना है जो बिजली की शक्ति द्वारा कार्य करता है। रेशम के कीड़े पालने और रेशम की कुकड़ी बनाने के काम में चतुर कुशल मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है और यहाँ इन कामों को करने वाले कुशल मजदूर मिल जाते हैं। यहाँ की सरकार भी इस उद्योग के विकास में बड़ी रुचि रखती है। यहाँ उत्तम प्रकार की रेशमी साड़ियाँ तथा सूट के कपड़े बनाये जाते हैं। रेशम बुनने के अन्य मुख्य केन्द्र पंजाब में अमृतसर, जालंधर तथा लुधियाना; उत्तर प्रदेश में मिरजापुर, वाराणसी, प्रतापगढ़, शाहजहाँपुर; पश्चिमी बंगाल में बांकुड़ा, मुर्शिदाबाद तथा बिश्नूपुर, हावड़ा, पनीहाट्टी, सोनामुखी, चौबीस परगना बरहामपुर, मद्रास में सलेम, तंजौर, तिरुचिरापली, कोयम्बटूर और पांडीचेरी; महाराष्ट्र में नागपुर, पूना, सांगली, अम्बरनाथ, हुबली, शोलापुर, गुजरात में अहमदाबाद, सूरत, भावनगर, पोरबन्दर, और बिहार में भागलपुर और मैसूर में बंगलौर, बेलगांव, कोलार, मैसूर तथा चन्ना पटना हैं।

रेशम के उद्योग की कुछ समस्याएँ बड़ी विषम हैं। रेशम के उद्योग का विकास पूर्ण रूप से हो सके इसके लिए रेशम-कमेटी (Silk Panel) ने कई बातों में सुधार करने के आदेश दिए हैं—यथा (१) शहतूत की खेती की उन्नति (क्योंकि रेशम का कीड़ा उसी पर पलता है)। (२) बढ़िया बीज की, जो रोग-मुक्त हो, पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता। (३) रेशम के कीड़ों की बीमारियों का नियंत्रण। (४) रेशम के कीड़े पालने, बीज तैयार करने, संगठन और बिक्री का प्रबन्ध। (५) रेशम कातने के उद्योग का विकास और उप-प्राप्ति (by-products) का पूरा-पूरा उपयोग और उपर्युक्त सब मामलों में विभिन्न राज्यों में सहयोग।[1] इन सब दिशाओं में आवश्यक सुधार करने

१. सन् १९४९ में टैरिफ-बोर्ड (Tariff Board) ने रेशम के उद्योग की उन्नति के बारे में ये सुझाव दिये :—

(१) रेशम सम्बन्धी खोज के लिए पर्याप्त सुविधा और साधन की व्यवस्था ; (२) विदेशी रेशम के कीड़ों के लिए एक केन्द्रीय बीज के स्टेशन की स्थापना; (३) रेशम के कीड़ों के रोगों का कानून द्वारा नियंत्रण ; (४) रोग मुक्त बीजों का धीरे-धीरे अनिवार्य उपयोग ; (५) चर्खी द्वारा रेशम की रील तैयार करने के काम में सुधार; (६) विदेशों में विशेषज्ञों द्वारा शिक्षा की व्यवस्था ; (७) रेशम के उद्योग के लिए आवश्यक मशीनरी तथा दूसरा सामान प्राप्त करने में सरकार द्वारा सहायता आदि।

की दृष्टि से भारत-सरकार ने एक केन्द्रीय रेशम मण्डल (Central Silk Board) की स्थापना की है।

रेशमी कपड़े का उद्योग कलात्मक और सुरुचिपूर्ण कपड़े तैयार करता है। विभिन्न प्रकार के रेशमी अंगोछों, साड़ियों, दुपट्टों, पहनने के कपड़ों, पर्दों के लिये सादे कपड़े, बिछाने की चादरों और मेजपोशों की अमरीका मध्य पूर्व के देशों, लंका, मलाया, हांग-कांग और ब्रिटेन में हैं। १९५७ में विदेशों को २,३०,६४० गज रेशमी कपड़े का निर्यात किया गया जिसका मूल्य १७,९५,३२५ रु० था। १९५५ में निर्यात की मात्रा १,९८,३०० गज और मूल्य २३,९०,६०५ रु० था।

(४) रेयन उद्योग (Rayon manufacture)

६० वर्ष पहले रुई, ऊन, रेशम और पटसन ये चार वस्तुएँ ही कपड़ा बनाने के लिए प्रयुक्त होती थीं। किन्तु अपनी अनवरत गवेषणा और विकास कार्य के फलस्वरूप मनुष्य ने आज २० प्रकार के निर्मित रेशे इस सूची में बढ़ाये हैं। अब रेयन (Rayon), ओरलोन (Orlon), केपरन (Kapron), एक्रीलीन (Acriline), डिनल (dynel), सरन (Saron), डैकरेन (Dacron), टैरीलीन (Terriline), पौलीएथिलीन (Poliaethelin), और काँच के रेशे विकारा (Vicara) कपड़ा बनाने के लिये सुलभ हुए हैं। मनुष्य निर्मित इन सभी रेशों में इसका उत्पादन सर्वाधिक है और कपड़े बनाने के काम में आने वाली सभी प्राकृतिक और मनुष्य निर्मित वस्तुओं में कपास के बाद इसी का स्थान आता है। संसार भर में रेयन उद्योग का विकास अद्भुत गति से हुआ है। १८९० में रेयन का उत्पादन केवल ३०,००० पौंड था, १९५५ में यह ४५० करोड़ पौंड हो गया।

रेयन तैयार करने की प्रणाली

रेयन तैयार करने की कई प्रक्रियाएँ हैं—यथा नाइट्रो सिल्क (Nitro-silk), कुपर अमोनियम (Cuper-ammonium), विस्कोज (Viscose) या छलनी द्वारा तार निकाल कर सूत तैयार करने की प्रणाली और एसीटेट प्रणाली (Acetete)। किन्तु इनमें सबसे मुख्य और अधिक प्रचलित विस्कोज प्रणाली है। भारत में एक कारखाने को छोड़कर शेष सभी कारखाने इसी प्रणाली का प्रयोग करते हैं। केवल एक कारखाना नकली रुई से सूत कातने की प्रणाली प्रयोग कर रहा है।

छलनी प्रणाली से रेयन तैयार करने में सबसे पहले लुब्दी की तहों को एक यन्त्र के अन्दर कास्टिक सोडा के घोल में डाल कर तैयार किया जाता है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य होता है लुब्दी की तहों पर जो भी गन्दगी है, वह कास्टिक सोडा में घुल कर उतर जाए और साथ ही लुब्दी में कास्टिक सोडा का कुछ अंश भी मिल जाए। इसके बाद एक यन्त्र में रख कर उसमें अलकली सैलूलोज मिलाया जाता है जिससे उसके बहुत से टुकड़े हो जाते हैं। इन टुकड़ों को नरम करने के लिये उन्हें विशेष बाल्टियों में रखा जाता है और उस समय तापमान तथा वातावरण की आर्द्रता को नियन्त्रित रखा जाता है। इसे नरम करने का उद्देश्य सैलूलोज और कास्टिक सोडा की मंद रसायनिक क्रिया का नियन्त्रण करना तथा उसे एक स्थिति विशेष तक ले जाना है। इसके बाद टुकड़ों को मथने के लिये ले जाया जाता है। और उसमें कुछ मात्रा में कारबन-डाई-सलफाइड मिलाया जाता है। इस मिश्रण क्रिया के बाद अलकली, सैलूलोज तथा कारबन डाइ सलफाइड के इस मिश्रित पदार्थ

को नियंत्रित स्थितियों के अन्दर घुले हुए कास्टिक सोडे में मिलाया जाता है। इस प्रकार बने विस्कोज घोल को पकाने के कमरे में ले जाते हैं, जहाँ इसे उपयुक्त यन्त्र के द्वारा छाना जाता है और छने हुए पदार्थ को उसी कमरे में तब तक रखा जाता है जब तक कि वह कातने योग्य नहीं हो जाता। रेयन की छलनी प्रणाली में कताई की क्रिया वस्त्र मिलों की कताई से सर्वथा भिन्न है। दोनों क्रियाओं में 'कताई' शब्द को छोड़ कर और किसी बात में साम्य नहीं। विस्कोज घोल को छलनी जैसे कताई यन्त्र में डाला जाता है जिसमें पतले-पतले अनेक छेद होते हैं। रेयन का जितना पतला धागा बनाना हो, उतने पतले छेद उस छलनी यंत्र में रखे जाते हैं। छलनी यंत्र को गंधक के तेजाब, सोडियम सल्फेट, जिंक ऑक्साइड आदि के प्रवाहित घोल में डूबा हुआ रखा जाता है। जब कास्टिक सोडा युक्त विस्कोज घोल उस घोल में मिलता है जिसमें गंधक का तेजाब भी है और जिसमें छलनी यंत्र डूबा हुआ होता है, तब गंधक के तेजाब के प्रभाव से कास्टिक सोडा का अंश समाप्त हो जाता है और सैलूलोज धागे का रूप धारण कर लेता है। इस धागे को एक घूमते हुए बर्तन में एकत्र किया जाता है और एक बर्तन हटाकर दूसरा बर्तन लगाते जाते हैं। इन बर्तनों में आये धागे की गुच्छियों को ठंडे और गरम पानी से धोया जाता है, गंधक के तेजाब के अंश निकाले जाते हैं, उसमें ब्लीच लगाई जाती है और तब उचित उप-करण से उसे सुखाया जाता है। इन गुच्छियों को बाद में ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ उनमें हल्की आर्द्रता आ जाए और इसके बाद ये बेची जाती हैं। कभी-कभी इनकी पुण्डियाँ आदि बनाकर बेचा जाता है।

छलनी प्रणाली से रेयन का तार बनाने में कताई क्रिया में पहले जो प्रक्रिया प्रयुक्त होती है वही प्रक्रिया नकली रुई प्रणाली से रेयन तार बनाने में प्रयुक्त होती है। दोनों प्रणालियों से तार बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाली कताई क्रियाओं में बहुत अन्तर है। नकली रुई प्रणाली में छलनी यंत्र छलनी प्रणाली के छलनी यंत्र से बहुत बड़ा होता है—इसमें कई हजार छेद होते हैं। (छलनी प्रणाली के अनुसार बनने वाले सूत के छलनी यन्त्र में २० से लेकर १०० तक छेद होते हैं)। रेयन के तारों के रूप में जो सैलूलोज निकलता है, उसको बिना लपेटे एक जगह ही एकत्र किया जाता है। (छलनी प्रणाली के अनुसार छलनी यन्त्र से निकलने वाले तार को घूमते बर्तन में लिया जाता है जिससे वह लिपट जाता है) एकत्रित सैलू-लोज को आवश्यक लम्बाई वाले रेशों के रूप में काट लिया जाता है, उसे धोकर और सुखाकर गाँठें बाँध दी जाती हैं। रेशे वाले इन रेयन तन्तुओं को 'नकली रुई' भी कहा जा सकता है। इस नकली रुई को उपयुक्त बुनाई मिल में काता जाता है और रेयन का सूत बनाया जाता है। कुछ सीमा तक यह नकली रुई लम्बे रेशे वाली रुई का स्थान ले सकती है।

छलनी प्रणाली के रेयन-कारखानों में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख कच्चे माल हैं—लुब्दी, कास्टिक सोडा और गंधक। एक पौंड रेयन बनाने के लिये १·१५ पौंड लुब्दी, १ पौंड कास्टिक सोडा और ०·६ पौंड गंधक की आवश्यकता होती है। इस समय भारत रेयन बनाने के लिये इन सभी कच्चे मालों का आयात कर रहा है।

भारत में यह उद्योग अत्यन्त नवीन उद्योग है। कृत्रिम रेशम सबसे पहले फ्रांस में सन् १८६५ में बनाया गया था। वहीं से मध्य यूरोप के देशों में यह उद्योग फैला। इसमें प्रयुक्त होने वाले कच्चे माल के पदार्थ बहुत सस्ते हैं। इसलिए इनका

उत्पादन अब इतना बढ़ चुका है कि असली रेशम से भी अधिक हो गया है। सूत, असली रेशम तथा ऊनी धागों के साथ मिलाकर भी इसका कपड़ा बनाया जाता है। इससे मोजे, साड़ियाँ, शर्टिंग, चद्दरें, बनियान, टाइयाँ, पैरेशूट कपड़ा बहुत बनते हैं। सौंदर्य, मजबूती और कम कीमत के कारण रेयन अब बहुत ही लोकप्रिय हो गया है।

हमारे देश में सन् १९३६ से पहले इस धन्धे को कोई जानता भी न था किंतु जब इस वर्ष सूती कपड़े के उद्योग को संरक्षण देने के लिए सरकार ने रेयन के वस्त्र पर आयात कर बढ़ा दिया तभी से इस उद्योग का विकास हुआ।

गत महायुद्ध के बाद भारत में यह उद्योग बहुत बढ़ गया है। छलनी से निकाला हुआ रेयन का सूत, काता हुआ रेयन का सूत और दोनों प्रकार का सूत प्रयोग करने वाले ३५,००० शक्ति-चालित कर्घे और ७५,००० हाथ करघे इस समय रेयन तैयार कर रहे हैं। इस उद्योग के लिये प्रति दिन ८ करोड़ पौंड सूत की आवश्यकता होती है—यह माँग १९६०-६१ तक १४ करोड़ हो जायेगी। छलनी प्रणाली से रेयन तैयार करने का पहला कारखाना ट्रावनकोर रेयन लि० रेयनपुरम (केरल) १९५० में और दूसरा कारखाना नेशनल रेयन कारपोरेशन लि० कल्याण (महाराष्ट्र) में चालू हुआ। नकली रुई तैयार करने का कारखाना १९५३ में और कताई प्रणाली से रेयन बनाने का कारखाना १९५४ में चालू हुआ। यह कारखाना सिर सिल्क लि० सिरपुर (आंध्र) में है। चौथा कारखाना १९५४ में ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी के नाम से नागदा में खोला गया। इन वर्तमान कारखानों की कुल वार्षिक उत्पादन क्षमता २·४ करोड़ पौंड है और नकली रेशम के कारखाने की उत्पादन क्षमता १·२ करोड़ पौंड है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत तक छलनी से निकाले गये तथा काते हुए रेयन के सूत का उत्पादन ८ करोड़ पौंड और निकली हुई रुई का ६ करोड़ पौंड होगा। इस समय इस उद्योग में १५ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है और ३ लाख मजदूर काम करते हैं। इसमें ४५,००० शक्ति-चालित करघे और ७५ हजार हस्त-चालित करघे हैं।

यह उद्योग बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, अमृतसर, दिल्ली, सूरत और ग्वालियर में स्थापित हैं। रेयन के तार केरल, बम्बई व आंध्र में बनाये जाते हैं। नीचे की तालिका में रेयन उद्योग का उत्पादन बताया गया है :—

रेयन का उत्पादन

वर्ष	फिलामेंट मात्रा (टन)	[illegible] मात्रा (टन	[illegible] मात्रा (टन)
१९५१	२,०४०	—	—
१९५२	३,५८८	—	—
१९५३	४,३५६	—	—
१९५४	४,९४४	३,०८४	—
१९५५	५,७३६	५,७१२	१,०४४
१९५६	७,२९६	७,८४८	१,४१६
१९५७	९,३९६	८,००४	१,६०८
१९५८	१३,१२८	१३ ९०८	१,८१२
१९५९	१५,०६०	२०,५४४	१,४१६

रेयन के कपड़ा बुनने के देशी उद्योग की उत्पादन क्षमता ५४ करोड़ गज वार्षिक की है किन्तु रेयन के कपड़े का वार्षिक उत्पादन इससे काफी कम है। इसका मुख्य कारण रेयन तागे की उपलब्धि अपर्याप्त होना है। नकली रेशम तथा मिले जुले कपड़े की देश में कितनी उपलब्धि थी यह नीचे के आँकड़ों से ज्ञात होगा :—

वर्ष	देशी उत्पादन	आयात	निर्यात	खपत के लिये उपलब्ध कपड़ा
		(लाख गज)		(लाख गजों में)
१९५६	२,४३१	८८	२९	२,४९०
१९५७	२,९५८	७५	३२	३,०००
१९५८	२,७०८	२५	२४	२,७०९

(५) ऊनी कपड़े का उद्योग (Woollen Industry)

कपास और जूट के उद्योगों के मुकाबले में ऊनी कपड़े के उद्योग का देश के आर्थिक जीवन में बहुत कम महत्त्व है। यह उद्योग प्राय: उत्तरी भारत में ही केन्द्रित है। ऊनी उद्योग तीन प्रकार का है :—(१) ऊनी मिल उद्योग, (२) ऊनी गृह-उद्योग, और (३) गलीचे का उद्योग। गलीचे का उद्योग, गृह उद्योग और फैक्टरी उद्योग दोनों ही तरह का है। ऊनी मिलें भी तीन प्रकार की है। पहली प्रकार के वे मिलें हैं जिनमें 'वूलन' (निम्न दर्जे का) और 'वर्स्टेड' (बढ़िया) दोनों ही प्रकार के कपड़े तैयार किये जाते हैं। दूसरी प्रकार की मिलों में केवल उपरोक्त में से एक ही प्रकार का कपड़ा तैयार किया जाता है। तीसरी श्रेणी में वे मिलें हैं—जो तैयार सूत खरीद कर उसकी बुनाई और रंगाई आदि करती हैं। पहली श्रेणी की मिलें कानपुर और धारीवाल तथा तीसरी श्रेणी की मिलें अमृतसर में हैं।

भारत में सबसे पहली ऊन की मिल १८७६ ई० में कानपुर में स्थापित की गई जहाँ कच्चे माल और विस्तृत बाजार दोनों ही की सुविधा थी। दूसरी मिल १८८२ ई० में धारीवाल में खोली गई और फिर बम्बई में १८८२ ई० में तथा बंगलौर में १८८६ में अन्य ऊनी मिलें स्थापित हुईं। प्रथम महायुद्ध के बाद से ही ऊनी मिलों की संख्या में वृद्धि हुई है। १९३९ में ऊनी कपड़े की केवल १५ मिलें भारत में थीं। किन्तु द्वितीय महायुद्ध काल में यह संख्या बढ़ कर २४ हो गई। इनके अतिरिक्त ५० छोटे-छोटे कारखाने भी थे। १९५६ में ऊन कातने के १५ और शक्ति-चालित कर्घों के ७९ कारखानें और कताई तथा बुनाई दोनों काम करने वाले २५ संयुक्त मिलें थीं। इसमें से १२ मिल बम्बई में, ९४ पंजाब में, ४ यू० पी० में, ५ पश्चिमी बंगाल, १ काश्मीर और ३ मैसूर में थीं। इन मिलों में लगभग ९·५ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है और १७,००० व्यक्ति काम करते हैं।

इन समस्त कारखानों की उत्पादन क्षमता इस प्रकार है :—

राज्य	मिलों की संख्या	सामान्य ऊन के तकुए (Woollen Spindles)	श्रेष्ठ ऊन के तकुए (Worsted Spindles)	शक्ति तकुए (Power looms)
बम्बई	१२	१२,२२६	४०,६३०	६०५

राज्य	मिलों की संख्या	सामान्य ऊन के तकुए (Woollen Spindles)	श्रेष्ठ ऊन के तकुए (Worsted Spindles)	शक्ति तकुए (Power looms)
सौराष्ट्र	१	२,१३०	७,०३२	८४
मैसूर	३	१०,४७८	—	२२१
उत्तर प्रदेश	४	१२,३५८	६६७२	३६८
काश्मीर	१	१,५४२	१,५००	१८
प० बंगाल	५	१,३८०	५,०६४	७६
मध्य भारत	१	५१६	—	२०
पंजाब	६४	२०,४०२	२५,१८२	२,५५८
दिल्ली	१	—	—	—
योग	१२२	६१,०३२	६६,४१६	३,६५०
उत्पादन क्षमता	—	१७० लाख पौंड	२१० लाख पौंड	४८० लाख पौंड

ऊनी वस्त्र उद्योग का विस्तार मुख्य रूप से १६१६-२० और १६५०-५७ के बीच हुआ है, जैसा कि निम्न आँकड़ों से ज्ञात होगा :—

उद्योग की क्षमता

	१६४६	१६५७
ऊन कातने के तकुए	५०,०००	६,०६,७६
वर्स्टेड ,,	३७,५००	१,१७,३५६
शक्ति चालित करघे	२,३००	४,०४२

कच्चे माल की पूर्ति और तैयार माल के बाजारों के दृष्टिकोण से पंजाब, काश्मीर तथा दक्षिणी भारत की स्थिति बहुत अनुकूल है। इन्हीं क्षेत्रों में ऊनी उद्योगों के सबसे अधिक महत्वपूर्ण केन्द्र स्थापित हो गये हैं। उत्तर प्रदेश में कानपुर में **लाल इमली मिल्स** और पंजाब में धारीवाल में **'न्यू इजरटन मिल्स'** हैं। यहाँ ऊनी मिलों के स्थापन होने का मुख्य कारण आस-पास के भागों में ऊन का बहुतायत से मिलना है। बम्बई में ऊनी मिलों का होना अपवादस्वरूप है। देश के भीतरी मिलों की आवश्यकता पूरी करने के लिए जो ऊन विदेशों—इटली, इङ्गलैंड, आस्ट्रेलिया आदि देशों—से आती है वह बम्बई के बन्दरगाह पर उतारी जाती है। बम्बई में यही ऊन काम में ली जाती है। बम्बई के दो बड़े मिलों में ('बम्बई वूलन मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी' तथा 'रेमंड वूलन मिल्स') क्रमशः १०% और १५% मजदूर काम करते हैं। बंगलौर, बड़ौदा, श्रीनगर, अमृतसर और मिर्जापुर में भी ऊन के कारखाने हैं।

शक्ति की दृष्टि से कानपुर और मिर्जापुर दो ही ऐसे मिल हैं जिन्हें बिहार से कोयला मिल सकता है, अन्यथा शेष बम्बई, पंजाब, मैसूर तथा काश्मीर के मिलों को पूर्णतः बिजली पर ही निर्भर रहना पड़ता है। भारतीय ऊन की मिलों को एक कठिनाई का और सामना करना पड़ता है और वह यह है कि गर्म कपड़ों की माँग देश में केवल शीत-ऋतु में ही होती है। अतः वर्ष के शेष भाग में मजदूरों को मिलों में काम नहीं मिल सकता। कुछ मिल तो सरकारी ठेकों पर निर्भर रहते हैं जिससे वे पूरी वर्ष कुछ न कुछ कार्य करते ही रहते हैं।

ऊन के उद्योग का एक बड़ा भाग फर्श और शाल बनाने में लगा हुआ है। फर्शों में घटिया किस्म की ऊन का प्रयोग किया जाता है। मध्य और दक्षिणी भारत में जो ऊन पैदा होती है वह सामान्यतः इसी श्रेणी की होती है। बढ़िया शाल बनाने

चित्र १६१—भारत में रेशमी व ऊनी कपड़े की मिलें

के लिए मुलायम और बारीक बालों की ऊन (जिसे 'पशम' कहते हैं) प्रयोग की जाती है। यह काम काश्मीर में ही अधिक होता है जहाँ कारीगर बहुत हैं। भारतीय मिलों में कई प्रकार का ऊनी कपड़ा बनाया है जिसमें मुख्य कोट का कपड़ा, पट्टू, ट्वीड, शाल, दुशाले, कंबल, गलीचे, मोजे, बनियान, मफलर, जारायाँ, नमदे, फलालैन, सर्ज, वर्स्टेड, आदि।

नीचे की तालिका में भारत में ऊनी वस्त्रों का उत्पादन बताया गया है :—

१९४६	२७० लाख पौंड
१९४९	२१० ,,
१९५०	१८४ ,,
१९५१	१६५ ,,

१९५२	१६९ लाख पौंड
१९५३	१९५ ,,
१९५४	१८७ ,,
१९५५	२०७ ,,
१९५६	२५६ ,,
१९५७	२७८ ,,
१९५८	२९५ ,,

पहले तीन वर्षों में उत्पादन निम्न प्रकार रहा है :—

	१९५५	१९५६	१९५७
ऊनी तागा (ला० पौंड)	१०३	११६	१३१
वर्स्टेड तागा (ला० पौंड)	१०४	१४०	१४७
ऊनी वर्स्टेड कपड़ा (ला० गज)	१४०	१६३	१८४

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत ऊनी तागे के उत्पादन का लक्ष्य १·२ पौंड; वर्स्टेड तागे का १·५ करोड़ पौंड और ऊनी वर्स्टेड कपड़े का १·५ करोड़ गज रखा गया है। तृतीय योजना में ऊनी और वर्स्टेड धागे का उत्पादन लक्ष्य ६·७ करोड़ पौंड तथा ऊनी कपड़े का ४·८ करोड़ पौंड और उत्पादन ५·२ करोड़ पौंड और ३·५ करोड़ पौंड होगा।

व्यापार :

भारत के बनाये गलीचे, कालीन तथा अन्य प्रकार के ऊनी कपड़े विशेषतः संयुक्त राज्य अमरीका, इंगलैंड, कनाड़ा और आस्ट्रेलिया को निर्यात किए जाते हैं। औसतन प्रतिवर्ष ८½ करोड़ रुपये की मूल्य का कपड़ा आदि निर्यात किया जाता है। विदेशों से गलीचे, कालीन, होजियरी का सामान, ऊनी कपड़े, वर्स्टेड कपड़े, शाल तथा लोइयाँ आयात की जाती हैं।

भारत के मिलों में काम आने वाले ऊन को निम्न प्रकार से बाँटा जा सकता है :—

(१) साधारण भारतीय ऊन—

मोटी ऊन—जो कालीन और गलीचे बनाने के काम आती है।

उम्दा ऊन—ट्वीड, रग, सर्ज, सूत और ओवरकोट का कपड़ा आदि में।

(२) पहाड़ी ऊन—निम्न प्रकार के होजियरी के सामान तथा फौज के लिए कम्बल ओवर कोटिंग तथा हल्के शाल आदि बनाने में।

(३) दोगली ऊन—वरस्टेड, ट्वीड और मध्य प्रकार के होजियरी सूत आदि बनाने में।

(४) मैरीनो ऊन—फ्लैनेल, गैवरडीन, बैडफोर्ड, उत्तम ऊनी कपड़े आदि बनाने में।

अध्याय ३१

खाद्य उद्योग

(Food Industry)

१. शक्कर का उद्योग (Sugar Industry)

उद्योग का महत्व

(१) सूती कपड़े के उद्योग के बाद भारत का दूसरा बड़ा उद्योग शक्कर का है जिसकी व्यवस्था, नियन्त्रण और पूँजी आदि सभी भारतीयों की है। इस उद्योग में कुल मिलाकर १४३ मिलें हैं जिनके द्वारा २० लाख टन तक शक्कर का उत्पादन किया जाता है जिसका मूल्य १२० करोड़ रुपये से भी अधिक का होता है। इस उद्‌योग में ६१ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है तथा यह व्यवसाय १·१ लाख कुशल एवं अकुशल श्रमिकों तथा ३५,००० विश्वविद्‌यालय के स्नातकों को जीविका प्रदान करता है।

(२) इस व्यवसाय के लिये गन्ने की खेती में भारत में लगभग २ करोड़ किसान लगे हैं जो ४८ लाख एकड़ भूमि पर ७०६ लाख टन गन्ना पैदा करते हैं। (१९५८-५९)

(३) इस उद्‌योग ने विदेशी शक्कर की आयात में खर्च होने वाले वार्षिक विनिमय में १६ करोड़ रुपये की बचत कर भारत को इस वस्तु के सम्बन्ध में आत्म-निर्भर बनाया हैं। गुड़ एवं शक्कर दोनों का उत्पादन लगभग २६० करोड़ रुपये का आँका गया है। १९३२-३३ से १९५४-५५ तक कुल मिलाकर १,१७५ करोड़ की शक्कर का उत्पादन किया गया। १९५७-५८ में १९७ लाख टन गन्ना पेला गया जिससे १९·७ लाख टन दानेदार शक्कर बनाई गई। इसके अतिरिक्त २३/४ लाख टन खांडसारी शक्कर बनाई गई जिसके लिये ३१ से ४६ लाख टन गन्ना पेला गया।

(४) आरम्भ से ही उद्योग एवं उत्पादन तथा उसकी कीमतें गन्ने के उत्पादन, उसकी अच्छाई तथा उसकी कीमत पर निर्भर हैं। इसके विपरीत अन्य उद्योगों में कच्चे माल का उत्पादन, उसकी अच्छाई एवं कीमत उद्‌योग की माँग पर निर्भर रहती है।

उद्योग का ऐतिहासिक विकास :

भारत को गन्ने की जन्म भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि सन् १९३१ तक भारत को अपनी शक्कर की माँग के लिए विदेशों (विशेष कर जावा) पर निर्भर रहना पड़ता था। देश में गृह-उद्‌योग के रूप में हाथ से शक्कर बनाने का धन्धा प्रचलित था और कुछ कारखानें भी थे किन्तु वे देश की माँग को पूरा करने में असमर्थ थे। टैरिफ बोर्ड की सिफारिश पर भारत सरकार ने शक्कर के उद्योग को सन् १९३१ में १५ वर्ष के लिये (अर्थात ३१ मार्च १९४६ तक) संरक्षण प्रदान किया। तभी से देश में शक्कर के उद्‌योग में आश्चर्यजनक रूप से प्रगति हुई है। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि १९३१-३२ में

३१ शक्कर मिलें थीं। जिनमें १,५८,००० टन शक्कर का उत्पादन होता था। संरक्षण के बाद चार वर्ष के अन्दर ही मिलों की संख्या १३५ और शक्कर का उत्पादन ९,१९,००० टन हो गया। आरम्भ में जैसे-जैसे शक्कर का उत्पादन बढ़ता गया वैसे-वैसे विदेशी शक्कर का आयात कम होता गया। पर १९३५-३६ में यद्यपि शक्कर का उत्पादन लगभग ३॥ लाख टन से बढ़ गया किंतु आयात में उसी अनुपात में कमी नहीं हुई। १९३६-३७ में गन्ना बहुत पैदा होने से उत्तर प्रदेश और बिहार की सरकारों ने मिलों को उत्पादन कम नहीं करने दिया इसके परिणाम स्वरूप शक्कर का उत्पादन आवश्यकता से अधिक बढ़ गया; इससे माल का मूल्य गिरने लगा इसी समय शक्कर-सिण्डीकेट (Sugar Syndicate) की स्थापना की गई ताकि शक्कर की बिक्री का सिंडीकेट द्वारा ऐसा नियन्त्रण किया जावे कि शक्कर का मूल्य गिरने से रोका जाये। सिंडीकेट इस प्रयत्न में सफल हुआ। शक्कर का उत्पादन कम किया गया और १९३८-३९ में केवल ६,५१,००० टन शक्कर ही बनाई गई। द्वितीय महायुद्ध के समय शक्कर के उद्योग की स्थिति संतोषजनक नहीं रही। उत्पादन में घटा-बढ़ी होती रही। जहाँ १९३८-३९ में मिलों से ६॥ लाख टन शक्कर बनी वहाँ १९३९-४० में उत्पादन बढ़कर १३.९ लाख टन हो गया। आयात शक्कर की मात्रा में कमी हो गई। १९३९-४० से १९४१-४२ तक ३४ हजार टन से कम होकर २४ हजार टन के लगभग रह गई। इसके बाद से ही शक्कर के उत्पादन में वृद्धि होती रही है। १९४२ में शक्कर के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए निर्यात प्रतिबन्धों को हटा दिया गया, किन्तु उत्पादन का कोटा (Quota) केवल उत्तर प्रदेश व बिहार राज्यों में ही था, जिससे शक्कर उत्पादन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। एक ओर युद्ध के कारण माँग बढ़ रही थी, दूसरी ओर उत्पादन कम हो रहा था, अतः शक्कर की कीमतें बढ़ने लगीं। अतएव, आयात कर बढ़ाकर ७) से ११।।≈) प्रति हंडरवेट कर दिया गया। सन् १९४७ में शक्कर का विनियंत्रण कर दिया गया जिससे शक्कर की कीमतें बढ़ने लगी। तथा शक्कर का अभाव प्रतीत होने लगा। अतः गन्ने के कर (Cess) में ५०% की कमी की गई। कारखानों में उत्पादन ४% अधिक होने पर सरकार ने ऐसे कारखानों के आबकारी कर में छूट कर दी (जो प्रति हंडरवेट पीछे ३ रु० था)। कारखानों के विस्तार के लिए सीमेंट, लोहा आदि सामग्री पर्याप्त मात्रा में दी गई। गन्ने का मूल्य भी कम किया गया। अतः १९४७-४८ और १९४८-४९ में शक्कर का उत्पादन बढ़ा, किन्तु गन्ने के कृषि क्षेत्र में कमी और गन्ने से प्राप्त होने वाले रस में कमी होने से १९४९-५० में शक्कर का उत्पादन कम हुआ। १९५० में शक्कर के उद्योग पर से संरक्षण उठा लिया गया। १९५२-५३ से शक्कर की वार्षिक खपत १६ लाख टन हो गई जो पहले १२ लाख टन थी। इससे शक्कर का आयात पुनः करना पड़ा। यह आयात १९५३-५४ में २.५ टन और १९५४-५५ में ७.६ लाख टन था। अब शक्कर की वार्षिक खपत १८ लाख टन है। १९५५-५६ में कुल उत्पादन १९ लाख ७५ हजार टन का हुआ। इतना उत्पादन पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ भागों में पेराई का मौसम कुछ बढ़ा देने से ही सम्भव हो सका। १९५७-५८ में उत्पादन १९.७ लाख टन का हुआ।

अगले पृष्ठ की तालिका में इस उद्योग के विकास सम्बन्धी आँकड़े प्रस्तुत किये गए हैं।

उद्योग का स्थापनः

समस्त देश के लगभग ६५% कारखाने उत्तर प्रदेश और बिहार में स्थित

हैं जिनमें कुल देश के उत्पादन का ७५% प्राप्त होता है, शेष बम्बई, आंध्र और अन्य राज्यों से। इन दोनों राज्यों को पूर्वारम्भ का लाभ प्राप्त है। यहाँ १८४१-४२ ई० में उत्तरी बिहार में डच लोगों द्वारा तथा १८९९ में अँग्रेजों द्वारा शक्कर की मिलें स्थापित करने का प्रयत्न किया गया किन्तु इसमें उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली। फिर भी इन दोनों राज्यों में १९०३ से शक्कर के उद्योग का विकास होने लगा। १९३१-३२ में सम्पूर्ण भारत के ३१ मिलों में से १४ उत्तर प्रदेश और १२ बिहार में थे। १९५०-५१ में १३८ मिलों में से अकेले उत्तर प्रदेश में ६७ और बिहार में २९ मिल थे। १९५७-५८ में इन राज्यों में क्रमश: ६८ और २८ मिल थे जबकि देश में १४३ मिल थे। इस उद्योग के उत्तरी भारत—उत्तर प्रदेश और बिहार—में केन्द्रित होने के निम्न कारण हैं—

(१) गंगा नदी की घाटी की उर्वरा शक्ति अधिक है जिसमें लाई हुई मिट्टी में गन्ने के उत्पादन में बहुत कम व्यय होता है। भूमि अधिक उपजाऊ होने के कारण मुख्य गन्ने की पट्टी में गन्ना बिना ही सिंचाई के पैदा किया जाता है। पश्चिमी भागों में नल-कूपों द्वारा सिंचाई की सुविधायें प्राप्त हैं।

(२) चूँकि गन्ना तौल में घट जाने वाला पदार्थ है (गन्ने में ९ से १२% तक शक्कर मिलती है। खेत काटने के २४ घन्टे के अन्दर ही यदि गन्ने को पेरा जाय तो अधिक शक्कर निकलती है) अत: इस प्रदेश के अधिकांश कारखाने ऐसे ही स्थानों में स्थित हैं जहाँ गन्ना शीघ्र प्राप्त हो सकता है।

(३) शक्कर बनाने के लिए गन्ना पेरने के बाद जो पाते (Bagasse) बच रहते हैं उन्हीं को भट्टों में जलाकर शक्ति उत्पादन करते हैं। उत्तर भारत में इस पाते के अतिरिक्त बहुत से कारखानों में (जो तराई प्रदेश के निकट हैं) लकड़ी भी जलाने के लिए आसानी से मिल जाती है अत: कोयले के क्षेत्रों से दूर पर भी इनको शक्ति सम्बन्धी समस्यायें अधिक कठिनाई नहीं देतीं।

(४) शक्कर के कारखानों में जल की आवश्यकता को नहरों अथवा नलकूपों द्वारा पूरा किया जा सकता है।

(५) शक्कर के धंधे में कुशल मजदूरों की आवश्यकता बहुत कम होती है। अकुशल मजदूर गाँवों में सस्ती मजदूरी पर सब कहीं यथेष्ट संख्या में मिल जाते हैं।

(६) उपभोग के लिए विस्तृत बाजार भी पास ही है, अत: कारखानों से उपभोग के केन्द्रों तक शक्कर पहुँचाने में अधिक व्यय नहीं होता।

शक्कर उद्योग की प्रगति

वर्ष	मिलों की संख्या	शक्कर बनाने के मौसम की अवधि	कार्य औसत दिवस	गन्ना पेला गया (००० टन)	कुल शक्कर का उत्पादन (००० टन)	गुड़ का उत्पादन (००० टन)	गन्ने में रस की प्राप्ति (प्र० श०)
१९४६-४७	१५३	११२	९२	९१,१७	९०१	४,५२१	९·८८
१९४७-४८	१५३	१२९	११०	१०९,१०	१,०७४	४,९१३	९·८५
१९४८-४९	१५६	११७	१०१	१०१,१६	१,००७	५,२६९	९·९६
१९४९-५०	१५७	१०९	९२	९९,०१	९७८	४,८६९	९·८८
१९५०-५१	१५६	१२२	१०१	११०,१५	१,१००	४,९३२	९·९९
१९५१-५२	१५८	१५३	१३३	१५४,९६	१,४८६	५,६१६	९·५९
१९५२-५३	१५८	१३०	११२	१३०,२५	१,२९७	६,०६८	९·९६
१९५३-५४	१५८	९९	८६	९९,३२	१,०००	५,२६०	१०·०७
१९५४-५५	१५८	१४४	१२९	१६०,११	१,५९०	५,७६०	९·९३
१९५५-५६	१६०	१६३	१४४	१८९,६९	१,८६२	५,८५९	९·८३
१९५६-५७	१५९	—	१४३	२०७,०१	२,०२१	७,८९१	९·७६
१९५७-५८	१४३	१६०	१४५	१९७,४८	१,९७५	३,४५४	१,००१

(७) उत्तरी भारत में बड़े-बड़े चौरस मैदान हैं जिनमें गन्ने की फसलों के चक के चक बना दिये जाते हैं। यह बात आधुनिक बड़े-बड़े शक्कर के मिलों की माँग पूरी करने के लिये बहुत आवश्यक है। जबकि दक्षिणी भारत में जहाँ कि टूटे हुए पठार हैं (बम्बई दकन के कुछ मिलों की जागीरों को छोड़ कर) गन्ने की फसलों के बने चक कहीं नहीं पाये जाते। बम्बई और मद्रास में लगभग ९५ और ९७% तथा मैसूर और आंध्र में १००% गन्ना सिंचाई द्वारा पैदा किया जाता है। इन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन भी अत्यन्त सीमित हैं इसलिए यहाँ गन्ने के बड़े-बड़े चक नहीं बनाये जा सकते।

शक्कर उद्योग (१९५७-५८)

राज्य	फैक्ट्रियाँ	औसत कार्य-शील दिवस	गन्ना पेरा गया (०००टन)	शक्कर बनाई गई (००० टन)	गुड़ (००० टन) १९५६-५७	शीरा (००० टन) १९५७-५८	शक्कर की प्राप्ति (%) (१९५७-५८)
पश्चिमी बंगाल	१	७५	५९	५,५७५	८४	२९	९·३९
बिहार	२८	१११	२,२७०	२७४,५५०	२४	१,०४९	९·९१
उत्तर प्रदेश	६८	१२७	९,४८४	९४१,९५८	१,७८६	३,२९६	९·९३
उड़ीसा	१	११६	४२	३,९६७	—	२०	९·४५
पंजाब	४	१२२	८७४	८२,३७२	३८८	२९८	९·४२
मद्रास	४	१६८	७८२	६७,९६१	२४२	३५८	८·३९
आंध्र प्रदेश	९	१३१	१,५६९	१३२,३०३	२८	६७९	९·७०
बम्बई	१५	१६५	२,८५७	३१९,४५१	२८३	१,१४१	११·१५
मध्य प्रदेश	५	१०७	३४७	३३,८४४	६१	१४२	९·७६
मैसूर	४	१२५	७११	७३,१८२	२२६	३०४	१०·२८
राजस्थान	३	१०३	१५२	१४,२६८	२१	६९	९·३७
केरल	१	१३०	१०१	८,३६३	—	४२	८·३०
योग	१४३	१२९	१९,७४८	१,९७७,७९४	३,५५७	७,४९७	१०·०१

शक्कर के उत्पादन में उत्तर प्रदेश का स्थान प्रथम है। यहाँ ६८ शक्कर की मिलें हैं। इनसे भारत की लगभग ६०% शक्कर बनाई जाती है, १५% बिहार से और शेष बम्बई, आंध्र तथा अन्य राज्यों से प्राप्त होती है।

उत्तर प्रदेश में उपयुक्त भौगोलिक दशाओं के कारण (जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है) ही शक्कर की मिलों का केन्द्रीयकरण अधिक हुआ है। यहाँ शक्कर की मिलों के दो विशिष्ट क्षेत्र हैं : (१) तराई क्षेत्र के अन्तर्गत गोरखपुर तथा रुहेलखण्ड कमीश्नरी के ऊपरी जिले आते हैं। इस क्षेत्र में मुख्य केन्द्र इस प्रकार हैं :—

जिला	केन्द्र
देवरिया	भटनी, बेतालपुर, गौरीबाजार, देवरिया, कैप्टेनगंज, लक्ष्मीगंज, रामकोला भेरवा, छितौनी आदि
गोरखपुर	सरदारनगर, पिपराइच, घुघली, आनन्दनगर, रामचन्द्री, सिसवाबाजार
बस्ती	बस्ती, वाल्टरगंज, बरहनी, खलीलाबाद, मुन्दरवा
गोंडा	नवाबगंज, तुलसीपुर, बलरामपुर
बाराबंकी	बाराबंकी, बरहावल
जौनपुर	शाहगंज
सीतापुर	हरगाँव, महोली, बिसवाँ
हरदोई	हरदोई
बिजनौर	बिजनौर, धामपुर, स्योहारा

(२) गंगा और यमुना का दोआब क्षेत्र के अन्तर्गत मेरठ कमीश्नरी के दक्षिणी तथा पश्चिमी जिले आते हैं। इस क्षेत्र के मुख्य शक्कर के केन्द्र ये हैं :—

सहारनपुर	सहारनपुर, लकसर, देवबन्द
मुजफ्फरनगर	मनसूरपुर, खतौली, शामली
मेरठ	मेरठ, दौराला, मुहीउद्दीनपुर, मोदीनगर, सिंभावली
नैनीताल	किच्छा, काशीपुर
मुरादाबाद	अमरोहा, मुरादाबाद
बुलन्दशहर	बुलन्दशहर
फैजाबाद	मोतीनगर
एटा	नेवली
कानपुर	कानपुर
पीलीभीत	पीलीभीत
बरेली	बरेली, बहेड़ी
इलाहाबाद	भूँसी, नैनी

बिहार राज्य का स्थान शक्कर के उत्पादन में दूसरा है। यहाँ शक्कर की २८ मिलें हैं। यह उद्योग विशेषतः उत्तरी बिहार में केन्द्रित है जहाँ सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा आदि जिलों में शक्कर की अनेक मिलें हैं। अब कुछ मिलें दक्षिणी बिहार में भी खोली गई हैं। विशेषतः बिहटा, बक्सर, जामी और डालमिया नगर में। इस प्रकार यहाँ निम्न जिलों में शक्कर की मिलें पाई जाती हैं :—

जिला	केन्द्र
सारन	सीतलपुर, मरहौरा, महाराजगंज, पंचरुखी, सिवान, सिधौलिया, सासा-मुखा, गोपालगंज, हथवा
चम्पारन	बड़ा चकिया, मोतीहारी, सुगौली, मझौलिया, चम्पतिया, लौरिया, नरकटियागंज, हरिनगर, नरायणपुर
मुजफ्फरपुर	मोतीपुर, रीगा
दरभंगा	सकरी, लोहाट, तारसराय, हसनपुर रोड
गया	गुराक, वारसालीगंज
शाहाबाद	बिक्रमगंज, डालमिया नगर, बक्सर
पटना	बिहटा

महाराष्ट्र में शक्कर की मिलें मुख्यतः मनमाड़, पूना, नासिक, अहमदनगर, मिराज तथा शोलापुर और कोल्हापुर आदि जिलों में है। मुख्य केन्द्र मालीनगर तथा श्रीपुर, हरगांव; तिलकनगर, बेलवाड़ी; सक्करवाड़ी, लक्ष्मीवाड़ी, चंगदेवनगर; रावलगाँव, कोल्हापुर, किरलूर, उगर-खुर्द और ढोला हैं।

पश्चिमी बंगाल में चीनी की मिलें मुर्शिदाबाद जिले में बेलडांगा, नादिया जिले में प्लासी और चौबीस परगना में हावड़ा व बशीरघाट हैं।

मद्रास में शक्कर की मिलें उत्तरी अरकाट, दक्षिणी अरकाट, मदुराई और तिरूचिरापल्ली जिलों में हैं। यहाँ के मुख्य केन्द्र क्रमशः मेलपट्टी, नेलीकुपम, पोराटूर और पुगालूर हैं।

आंध्र प्रदेश में अधिकांश शक्कर की मिलें उत्तरी सरकार प्रदेश में स्थित हैं। यहाँ के मुख्य क्षेत्र बैजवाड़ा, हासपेट, कोर्दे, सामलकोट, पीथापुरम, हैदराबाद, सीता-नगरम्, बोबीली तथा अनाकापाले हैं।

मध्य प्रदेश में चीनी की मिलें सिहोर, डाबरा, जावरा, पालंदा सारंगपुर, महीदपुर, कोटरकोरा आदि स्थानों में हैं।

पंजाब में हमीरा, फागवाड़ा, अमृतसर, धुरी, भोगपुर, जगाधरी, पानीपत व रोहतक में शक्कर की मिलें हैं।

कुछ मिलें उड़ीसा, राजस्थान, केरल तथा मैसूर राज्यों में भी हैं।

पिछले कुछ समय से शक्कर के उद्योग का स्थापन दक्षिणी भारत में मद्रास, आंध्र, बम्बई में भी होने लगा है। शेष विश्व के प्रतिकूल ८० से ९० प्रतिशत गन्ना अर्द्ध-उष्ण कटिबन्ध (Sub-Tropical Regions) से प्राप्त करता है जहाँ सर्दी की ऋतु में नीचा तापक्रम रहने के कारण पतले किस्म का गन्ना पैदा होता है किन्तु दक्षिणी भारत पूर्णतः अयनवृत्तीय क्षेत्र में स्थित होने के कारण इसे उत्तरी भारत की अपेक्षा कुछ विशेष लाभ प्राप्त हैं। जैसे :—

(१) अयन वृत्तीय क्षेत्र के गन्ने से अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र के गन्ने की अपेक्षा अधिक मिठास और रस की मात्रा प्राप्त होती है। साधारणतः यहाँ १० मन गन्ने से १ मन शक्कर बन जाती है। बम्बई में प्रति एकड़ गन्ने की औसत उपज

४० टन और उससे प्राप्त शक्कर की मात्रा ३ टन होती है। दक्षिण में कई क्षेत्रों में एक एकड़ भूमि से १०० टन गन्ना तथा ११ टन शक्कर प्राप्त की जाती है। जबकि उत्तरी भारत में ११ से १३ टन गन्ने से १ टन शक्कर प्राप्त होती है तथा प्रति एकड़ गन्ने का उत्पादन ११ से १८ टन तक का ही होता है।

(२) गन्ने से शक्कर बनाने के मौसम भी जलवायु सम्बन्धी कारणों से दक्षिणी भारत में उत्तरी भारत से अधिक होता है। १९३८ में टैरिफ बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार उष्ण-कटिबन्धीय क्षेत्रों में गन्ना पेलने का समय १३२ दिन था जबकि अर्द्ध-उष्ण कटिबन्धीय भागों में यह समय १२८ दिन था। १९५७-५८ में बम्बई में शक्कर बनाने का समय १६५ दिन, मद्रास में १६८ दिन था, जबकि उत्तर प्रदेश में यह समय १२७ दिन और बिहार में १११ दिन था। अस्तु, दक्षिणी भारत में चीनी बनाने का मौसम लम्बा होने से ऊपरी खर्चों (Overhead Charges) का औसत घट जाता है तथा सहायक उद्योग स्थापित होने में—जिनमें गन्ने के रस निकालने के बाद बचे छूलें प्रयोग में लाते हैं—भी सहायक होते हैं।

(३) दक्षिणी भारत में चीनी के कारखानें गन्ना स्वयं पैदा करते हैं अतः आवश्यकतानुसार गन्ना प्राप्त किया जा सकता है। बहुत से कारखानें चीनी के मौसम के बाद मूंगफली का तेल निकालने लगते हैं।

किन्तु दक्षिणी भारत के चीनी उद्योग ने अधिक विकास नहीं किया है क्योंकि (१) यहाँ गन्ने के छोटे छोटे खेत होने से सिंचाई की बड़ी असुविधा रहती है। (२) इसके अतिरिक्त जिन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं वहाँ किसान के सम्मुख गन्ने के अतिरिक्त अन्य व्यापारिक फसलें—मूंगफली, तम्बाकू, कपास, मिर्ची और केले हैं—जो आपस में प्रतिस्पर्धा करती हैं। (३) अयन वृतीय क्षेत्र में गन्ना पैदा करने के खर्चे और स्थानों की अपेक्षा अधिक हैं। बम्बई में सिंचाई की मंहगाई और खाद के कीमती होने से यह खर्चा उत्तरी भारत से भी अधिक पड़ता है।

पश्चिमी बंगाल में शक्कर उद्योग के विकास के लिए उपयुक्त सँभावनायें हैं। यह उत्तर प्रदेश और बिहार की अपेक्षा अच्छी स्थिति में हैं क्योंकि :—

(१) बंगाल की जलवायु उत्तर प्रदेश व बिहार की अपेक्षा गन्ने के लिए अधिक अनुकूल है।

(२) यहाँ गन्ने की प्रति एकड़ उपज अधिक है जब उत्तर प्रदेश व बिहार में गन्ने की प्रति एकड़ उपज १५ या १६ टन है तो पश्चिमी बंगाल में यह ३० से ४० टन है।

(३) शक्ति के लिए कोयला मिल जाता है। रेलों द्वारा यह कोयला मिलों तक आसानी से लाया जा सकता है।

(४) स्थानीय बाजार चीनी के उद्योगपतियों और उपभोक्ताओं दोनों के लिए लाभदायक है।

किन्तु पश्चिमी बंगाल के कई जिलों में गन्ने की प्रतिस्पर्धा में चावल, जूट, नील आदि की पैदावार ने गन्ने के क्षेत्र को काफी हानि पहुँचाई है। इसके अतिरिक्त बंगाल की मिलों को बाहरी स्पर्धा का भी सामना करना पड़ता है क्योंकि कलकत्ता के बन्दरगाह द्वारा विदेशों से चीनी आयात की जा सकती है।

उत्पादन तथा उपभोग :

भारत की शक्कर के उत्पादन को तीन विभागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) आधुनिक शक्कर बनाने वाली मिलें जो मशीनों से गन्ने पेर कर दानेदार शक्कर बनाती हैं; (२) आधुनिक फैक्टरियाँ जो गुड़ से शक्कर बनाती हैं और (३) शक्कर बनाने का पुराना तरीका जिसको खांडसारी (Khandsari) शक्कर कहा जाता है। इन सबमें प्रथम प्रकार का शक्कर बनाने का तरीका उत्तम और सस्ता है। हमारे देश में अधिकांश शक्कर इसी तरीके द्वारा बनाई जाती है। पिछले कुछ वर्षों से भारतीय शक्कर के कारखानों और खाँडसारी से इतनी अधिक शक्कर उत्पन्न होने लगी है कि वह भारत की मांग से अधिक होती है अतः भारत अब शक्कर के मामले में आत्म-निर्भर हो गया है। मिलों में पेले गये गन्नों के ५५ प्रतिशत से गुड़ और खांडसारी शक्कर बनाई जाती है तथा २५ प्रतिशत से दानेदार शक्कर।

देश में शक्कर की माँग चाय पीने की आदत के साथ-साथ बढ़ती जा रही है। इस समय हमारे देश में प्रति व्यक्ति पीछे प्रतिवर्ष शक्कर की खपत २७ पौंड होती है और इसमें गुड़ की खपत भी शामिल है। भारत के विभिन्न भागों में यह खपत इस प्रकार है—पंजाब में २३ पौंड, उत्तर प्रदेश में ६ पौंड, बम्बई में २५ पौंड, बंगाल में २१ पौंड, बिहार में केवल ७ पौंड, मध्य प्रदेश में १० पौंड, मद्रास में ५½ पौंड, उड़ीसा में ३ पौंड और आसाम में १० पौंड है जबकि विदेशों में प्रति व्यक्ति पीछे शक्कर की खपत काफी अधिक है—यथा संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका और कनाडा में १०३ पौंड; इङ्गलैंड में ८६ पौंड; डेनमार्क में १०० पौंड; आस्ट्रेलिया और क्यूबा में १३० पौंड; न्यूजीलैंड में १०८ पौंड; जर्मनी में ७१ पौंड; फ्रांस में ६० पौंड और आयरलैंड में ११६ पौंड है। अतः यह आवश्यक है कि देश में शक्कर के उत्पादन के साथ-साथ शक्कर के उपभोग में भी वृद्धि करने के उपाय किए जायँ।

व्यापार :

सन् १६३७ के शक्कर सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार भारत बर्मा को छोड़ कर अन्य किसी देश को शक्कर नहीं भेज सकता था, किन्तु १६४७ में युद्ध छिड़ जाने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय समझौता नहीं चल सका। उसी समय भारत में शक्कर का उद्योग इस तेजी से बढ़ा कि देश की आन्तरिक आवश्यकता से भी अधिक उत्पादन होने लगा। अतएव भारत को ब्रिटेन को शक्कर भेजने की अनुमति मिल गई। जब जापान से युद्ध छिड़ गया और जावा तथा फिलीपाइन से शक्कर मिलना बन्द हो गया तो बृटिश राज्य में केवल भारत ही शक्कर उत्पादन करने वाला देश रह गया। अतः भारत को बृटिश साम्राज्य, ईरान, ईराक आदि देशों को भी शक्कर भेजनी पड़ी। भारत में शक्कर का बाजार बड़ा प्रयत्नशील है क्योंकि शक्कर के मूल्य में वृद्धि हो जाने से माँग में कमी आ जाती है। देश को विदेशी मुद्रा की आवश्यकता के कारण चीनी के निर्यात का प्रश्न फिर अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। फिलहाल ५० हजार टन चीनी के निर्यात की अनुमति सरकार द्वारा दी गई है।

भारत में शक्कर का उपभोग १६५२ से ही बढ़ने लगा है। १६५१-५२ में देश में ११·७ लाख टन शक्कर की खपत हुई। खपत की यह मात्रा १६५२-५३ में १६·६ लाख टन; १६५३-५४ में १८·१ लाख टन; १६५४-५५ में १७·२ लाख टन और १६५५-५६ में १६·० लाख थी। अतः बढ़ती हुई शक्कर की मांग पूरी करने के लिए

विदेशों से शक्कर का आयात किया गया। १९५२-५३ में ५९,००० टन आयात की गई। १९५४-५५ में आयात की मात्रा ५,६८,००० टन हो गई।

शक्कर उद्योग की समस्यायें :

इस उद्योग के मार्ग में कई प्रकार की कठिनाइयाँ हैं जिनमें से मुख्य यह हैं :—

(१) भारतीय मिलों को पर्याप्त मात्रा में गन्ना नहीं मिलता और जो गन्ना मिलता है वह बढ़िया प्रकार का नहीं होता तथा उसमें जो रस की मात्रा होती है वह भी कम होती है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत के मोटे गन्ने में मिठास का अँश अधिक होता है। यहाँ १० मन से भी कम गन्नों में १ मन शक्कर निकल आती है। दक्षिण में कई जगह एक एकड़ भूमि से १०० टन गन्ना और ११ टन शक्कर प्राप्त की गई है। किन्तु उत्तरी भारत में ११ से १६ मन गन्नों में १ मन शक्कर बैठती है। शक्कर की मिलों को पर्याप्त मात्रा में गन्ना नहीं मिलने का मुख्य कारण यह है कि बहुत-सा गन्ना गुड़ पैदा करने में उपयोग में आ जाता है।

(२) गन्ने की प्रति एकड़ उपज बहुत ही कम है। भारत में गन्ने की प्रति एकड़ उपज क्युबा की १/३, जावा की १/४ और हवाई की १/५ है। गन्ने की खेती के तरीकों में उन्नति करने के साथ-साथ यह आवश्यक है कि गन्ने की खेती का दक्षिण में अधिक प्रचार हो जहाँ प्रति एकड़ पीछे अधिक पैदावार होती है। भारत में अभी तक एक एकड़ गन्ने के खेत से १·३ टन शक्कर मिलती है जबकि क्युबा और हवाई में २·० टन और ६·४ टन शक्कर प्राप्त होती है। अर्जेनटाइना में ५ टन; रियूनियन में ६·४ टन; जावा में २·२ टन; इंडोनेशिया में ६·४ टन; फिलीपाइन्स में ३·६; दक्षिणी अफ्रीका में २·४ टन होती है। सिंचाई की सुविधा देने, अच्छी तथा पूरी मात्रा में खाद का प्रयोग करने, कीड़ों और बीमारियों पर नियंत्रण करने और कृषि के वर्तमान वैज्ञानिक साधनों द्वारा करने से गन्ने की प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाई जा सकती है :

(३) गन्ना पैदा करने वाले प्रदेश अधिकतर मिलों के पास नहीं हैं। जिससे गन्ना खेतों से मिलों तक पहुँचता है जब तक बहुत सा रस सूख जाया करता है। इसके अतिरिक्त खेतों से मिलों तक गन्ना ले जाने के लिए यातायात के साधनों की भी कठिनाई रहती है। पश्चिमी देशों की तरह हमारे यहाँ बहुत थोड़ी मिलें स्वयं गन्ना पैदा करती हैं।

जावा में गन्ने के खेत शक्कर की मिलों के समीप हैं और वहाँ शक्कर बनाने की रीतियों में गन्ने के मिठास की क्षति नहीं होती। जावा में शक्कर बनाने में कई गौण वस्तुएँ भी प्राप्त होती हैं जिनमें शराब (Rum) और स्प्रिट (Mythelated Spirit) विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। भारत में ऐसी कोई सुविधा नहीं है। यहाँ गन्ने की खेती किसानों के हाथ में है जिन पर शक्कर के मिल मालिकों का कोई प्रभाव नहीं होता। इन किसानों के पास छोटे-छोटे खेत होते हैं और बहुधा फसल के तैयार होने पर गन्ना नहीं काट पाते। गन्नों के ये खेत शक्कर की मिलों से बहुत दूर होते हैं। अतः शक्कर की मिलों तक गन्नों को लाने में बड़ा खर्च पड़ता है। इससे शक्कर का उत्पादन व्यय भी बढ़ जाता है।

(४) गन्ने सम्बन्धी कठिनाई के अलावा दूसरी कठिनाई मिलों की कार्यक्षमता

से सम्बन्ध रखती है। हमारे मिलों की कार्य-क्षमता काफी नीची है क्योंकि मिलों की मशीनरी आदि पुरानी है तथा मिलों की बनावट व साइज आदि में भी कई दोष हैं। भारतीय मिलों की औसत उत्पादन क्षमता ७००-८०० टन प्रतिदिन की है जब कि जावा की मिलों की उत्पादन क्षमता १,२०० से १,५०० टन और आस्ट्रेलिया में २,४०० टन प्रतिदिन की है। १९५५-५६ में १४३ मिलों में से ३१ मिलों की दैनिक उत्पादन क्षमता ७०० टन से भी कम थी।

(५) कई मिलों की स्थिति ही कच्चे माल और बाजार की दृष्टि से ठीक नहीं मालूम पड़ती। बम्बई में शक्कर की खपत सबसे अधिक है जबकि उत्पादन सबसे कम है। इसके विपरीत बिहार में उत्पादन बहुत अधिक है किन्तु खपत बहुत कम है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि शक्कर के मिल उद्योग का दूसरे राज्यों में प्रसार हो। शक्कर उद्योग की विकास परिषद के सिफारिश के अनुसार जिन क्षेत्रों में गन्ने की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं होती वहाँ से मिलों का स्थानान्तरण अन्यत्र किया जाये। अब तक पंजाब की हमीरा और उत्तर प्रदेश के किच्छा स्थानों की मिलें क्रमशः उत्तर प्रदेश में अधिक गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में ले जाई गई हैं—ये स्थान इकबालपुर और बुलन्दशहर हैं। इसी प्रकार बम्बई के श्रीपुर और काश्मीर जम्मू के रणबीरसिंहपुरा की मिलें हटा कर क्रमशः पंजाब में हमीरा और धूरी में लगाई गई हैं।

(६) शक्कर के उत्पादन के परिणामस्वरूप जो 'शीरा' (Molasses) उत्पन्न होता है उसके समुचित उपयोग की भी कोई व्यवस्था हमारे देश में नहीं है। इसको अधिकतर जलाने के काम में लाया जाता है। इससे सामान बांधने का मोटा कागज, गत्ते व दफ्ती तैयार किये जा सकते हैं। इसी प्रकार शीरा मिला हुआ जल, जो गंदा और बदबूदार होता है, फेंक दिया जाता है किंतु इसका उपयोग खाद के लिए किया जा सकता है। शीरे से अलकोहल और मैथिलेटिड स्प्रिट तैयार की जा सकती है।

(७) यह उद्योग भारत में एक मौसमी उद्योग है। उत्तरी भारत में चीनी के मिल वर्ष में ४ या ५ महीने चालू रहते हैं, परन्तु दक्षिणी भारत में यह समय ८-९ महीने का होता है। उत्तर प्रदेश में १०० दिन; बिहार में १११ दिन; प० बंगाल में ७५ और पंजाब में १२१ दिनों तक गन्ने की पेराई होती है; अतः इतने खाली समय में कई जगह मजदूरों को कार्य नहीं मिलता।

(८) भारतीय चीनी उद्योग की प्रमुख कठिनाई उसके ऊँचे उत्पादन मूल्य का होना है। साधारणतः चीनी का उत्पादन व्यय लगभग २२ रुपया प्रति मन बैठता है, जबकि जावा, मारीशस आदि में यह व्यय १२ से १८ रुपये प्रति मन है। अस्तु भारतीय तट कर आयोग ने इस बात पर जोर दिया है कि शक्कर का मूल्य घटाने के लिए गन्ने की कीमत घटानी चाहिए। आजकल उत्तर प्रदेश और बिहार में गन्ने का मूल्य १।≡) प्रति मन है तथा शक्कर का मूल्य प्रति मन ३७) रु० है। भारत में शक्कर की दर ऊँची है अतः इसकी खपत मध्यम श्रेणी के लोगों तक ही सीमित है। निम्न वर्ग के लोग इसका प्रयोग नहीं कर सकने के कारण गुड़ का ही प्रयोग अधिक करते हैं। अतः यदि इसके मूल्य को थोड़ा कम कर दिया जाये तो निम्न वर्ग भी इसका उपयोग कर सकते हैं।

इसी दृष्टि से भारतीय तटकर आयोग ने शक्कर के उत्पादन का मूल्य कम करने और उद्योग को बढ़ाने हेतु ये सुझाव दिए हैं :—

(१) उत्तर प्रदेश व बिहार की मिलों को वहाँ से हटा कर अधिक उपयुक्त स्थानों पर स्थापित किया जाय।

(२) भारतीय गन्ना समिति (Indian Sugarcane Committee) को गन्ना व उद्योग अनुसंधान की योजना पर कार्य करने के निमित्त पर्याप्त धन दिया जाय।

(३) गन्ने व शक्कर के मूल्य का उचित स्तर पर निर्धारित करना।

गन्ने की विकास परिषद (Development Council), १९५४ के अनुसार शक्कर के उत्पादन को बढ़ाने के लिए निम्न उपाय करने चाहिए :—

(१) वर्तमान फालतू कारखानों को उत्पादन कार्य में लगाना।

(२) नये कारखानों की स्थापना।

(३) वर्तमान उत्पादन क्षमता का पूर्णतम उपयोग।

(४) शक्कर के कारखानों की उत्पादन क्षमता की वृद्धि एवं विकास।

(५) कारखानों को अनुपयुक्त स्थानों से हटाकर उपयुक्त स्थानों पर ले जाना।

भारत में अच्छे किस्म की शक्कर का उत्पादन होना अत्यन्त आवश्यक है। १९४१-४२ में समाप्त होने वाले पाँच वर्षों में गन्ने का प्रति एकड़ उत्पादन १३·७ टन था। यह १९४६-४७ में १३·२ टन ही रह गया। किन्तु गन्ने के विकास की योजनाओं के लागू हो जाने से यह प्रति एकड़ पैदावार पुनः १३·४ टन हो गई। अधिक अनुकूल दशाओं में यह प्रति एकड़ उत्पादन १२·७ टन से बढ़ कर १७·३ टन (उत्तर प्रदेश में); बिहार में १२ से १६ टन; महाराष्ट्र में ३१ से ४२ टन; मद्रास में २५ से ३५ टन; पंजाब में १३ से २१ टन और पश्चिमी बंगाल में १६ से २० टन हुआ है।

उद्योग का भविष्य :

शक्कर के उद्योग की दृष्टि से भारत का भविष्य उज्ज्वल है तथा अधिक विकास की सम्भावनायें हैं। महाराष्ट्र के अहमदनगर, शोलापुर, सतारा जिलों तथा मद्रास और आंध्र के कृष्णा गोदावरी नदियों के डेल्टा में गन्ना पैदा कर शक्कर की मिलें खोली जा सकती हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में चीनी की उत्पादन क्षमता २५ लाख टन बढ़ा देने का लक्ष्य रखा गया है तथा इसका उत्पादन लक्ष्य २२·५ लाख टन रखा गया है।

तृतीय योजना के अंतर्गत शक्कर का उत्पादन लक्ष्य और वास्तविक उत्पादन दोनों ही ३०-३० लाख टन के रखे गये हैं।

मध्यम दर्जे का चीनी का एक कारखाना प्रतिदिन १ हजार टन गन्ना पेलता है और यह कारखाना १२० से १५० दिन तक चालू रहता है। गन्ने के भार पर एक प्रतिशत प्रेस-मड (Press-mud) मिलता है। इसमें ७ से १५% तक मोम होता है। इस प्रकार एक कारखाने से कम से कम ९६ टन अपरिष्कृत मोम मिल सकता है। इस समय यहाँ १८० कारखानें हैं जिनमें से १५० स्लफीटेशन विधि द्वारा चीनी बना रहे हैं और उनसे निकले हुए 'प्रेस-मड' से लगभग १४ हजार टन अपरिष्कृत मोम मिल सकता है। इस अपरिष्कृत मोम को पोटैशियम या सोडियम डाइक्रोमेट और गंधक के तेजाब से आक्सीकृत किया जाता है। इस परिष्कृत मोम का उपयोग कार्बन के कागज बनाने के लिए और पालिशिंग क्रीमों के बनाने में किया जाता है।

२ वनस्पति तेल उद्योग (Vegetable Oils)

भारत विभिन्न प्रकार के तिलहनों का मुख्य उत्पादक है अतः यहाँ कई प्रकार का तेल भी बनाया जाता है। १९५६ में भारत में २,०९७ तेल बनाने वाली मिलें थीं। इनके अतिरिक्त शक्ति चालित मिलों की संख्या भी ३,२०० थी। साधारण मिलों की संख्या इस प्रकार हैं :—

आसाम	७३	पश्चिमी बंगाल	३९
बिहार	९२	हैदराबाद	२९८
गुजरात+महाराष्ट्र	३७५	मध्य भारत	१०१
मध्य प्रदेश	१०१	मैसूर	२३
मद्रास+आंध्र	५४०	पैप्सू	१२
उड़ीसा	७	राजस्थान	२९
पंजाब	३९	सौराष्ट्र	१२०
उत्तर प्रदेश	१२५	ट्रावनकोर-कोचीन	५६
'ग' राज्य	४०		

योग २,०९७

इन मिलों की तेल-बीज दबाने की क्षमता ५६ लाख टन प्रति वर्ष की है। भारत में लगभग ४ लाख देशी घानियाँ भी हैं जिनकी तेल निकालने की क्षमता ७ लाख टन की है। इस प्रकार सम्पूर्ण क्षमता ६३ लाख टन की है। किन्तु देश में तेल-बीजों का उत्पादन ५० से ५५ लाख टन के बीच ही रहता है अतः अधिकांश क्षमता बन्द पड़ी रहती है। नीचे की तालिका में प्रमुख तेलों का उत्पादन बताया गया है :—

तेल	१९५०-५१ (००० टन)	१९५४-५५ (००० टन)
मूंगफली	७४८	९३८
रेंडी	७	३९
तिल	१३६	१८४
राई और सरसों	२२१	२९१
अलसी	८२	११४
योग	१,१९५	१,५६६

भारत में वनस्पति तेलों का उत्पादन (करडी, जीरा, बिनौले और नारियल सभी को मिलाकर) १,७६० टन का होता है। इसमें से १,१३९ हजार टन खाने में; २५९ हजार टन वनस्पति घी बनाने में और २२४ हजार टन वार्निश, रंग-रोगन, साबुन तथा चिकना आदि करने में; और १३८ हजार टन निर्यात करने में होता है।

भारत में लंका, सिंगापुर और मलाया से नारियल का तेल मंगाया जाता है। थोड़ी मात्रा में विदेशों से अलसी का तेल भी आयात किया जाता है। भारत से **रेंडी का तेल** सं० रा० अमरीका, इंगलैंड और आस्ट्रेलिया को; **मूंगफली का तेल** नीदरलैंड्स, इंगलैंड; आस्ट्रेलिया, बर्मा, बेल्जियम तथा इटली को; तथा अलसी का तेल नीदरलैंड्स, आस्ट्रेलिया और इंगलैंड को निर्यात किया जाता है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत तेल-बीजों और तेल का उत्पादन इस प्रकार होगा :—

	तेल बीज (००० टन)	तेल (००० टन)
मूंगफली	४,७००	१,०६७
तिल	६५१	२०२
अलसी	४२८	१२६
राई और सरसों	१,०६०	३२३
रेंडी	१६१	५६
	७,०००	१,७७४

सब मिलाकर इस योजना काल में २,११४ हजार टन तेलों का उत्पादन किया जायेगा।

१९५७ में देश में २८.२६ लाख टन वनस्पति तेल का उपभोग हुआ।

३. भारत में वनस्पति घी उद्योग (Vegetable Ghee Industry)

भारत में वनस्पति तैयार करने का पहला कारखाना १९३० में खोला गया। परन्तु उस समय केवल २९८ टन ही उत्पादन हुआ। इससे पहले वनस्पति का यूरोप के कुछ देशों से आयात किया जाता था। १९२८ में प्राय: २३,००० टन का आयात हुआ था। देश में वनस्पति का कारखाना खुल जाने पर उसके आयात पर शुल्क लगा दिया गया जिसके कारण देश में इस उद्योग की स्थापाना को प्रोत्साहन मिला। दूसरे महायुद्ध में साधारण जनता और फौज के लिये वनस्पति की माँग बहुत हुई। घी के भाव तेजी से बढ़ जाने के कारण यह माँग बढ़ने के कारण देश में वनस्पति का उत्पादन भी तेजी से बढ़ा। १९३९ में जहाँ केवल ५२,००० टन उत्पादन हुआ था वहाँ १९४६ में १·३५ लाख टन हुआ।

१९४४ में भारत सरकार ने इस उद्योग का नियन्त्रण करने के लिये कानून बनाने की कार्यवाई की। इसी सम्बन्ध में वनस्पति तेल उत्पादन कंट्रोलर (Vegetable Oil Products Controller) का कार्यालय खोला गया और वनस्ती तेल उत्पादन नियन्त्रण आदेश (Vegetable Oil Products Control Order) लागू किया गया। इसके द्वारा उत्पादन की किस्म को प्रतिमानित किया गया और नये कारखानों के लिये उत्पादन आरम्भ करने से पहले अनुमति लेना जरूरी कर दिया गया। उद्योग के विस्तार और स्थापना के स्थानों का भी लायसेंस प्रणाली द्वारा नियमन किया जाने लगा। युद्ध के ठीक बाद की अवधि में लगभग ५९ कारखानों को लाइसेंस दिये गये। इनकी कुल उत्पादन-क्षमता प्राय: ४ लाख टन थी। उस समय यह अनुमान लगाया गया था कि १९५० तक वनस्पति की वार्षिक माँग ४ लाख टन हो जायगी। इसमें ५०,००० टन निर्यात के लिये भी शामिल था। १९४७ में उद्योग में कुछ मन्दी आई। पर उसके बाद उसमें बराबर अच्छी उन्नति होती गई। युद्ध के कारण उत्पन्न हुई सम्पन्न स्थिति के कारण इस उद्योग में पर्याप्त पूँजी लगाई गई। फल यह हुआ कि १९५१ तक ४८ कारखाने स्थापित हो गये, जिनकी वार्षिक उत्पादन-क्षमता ३,३३,००० टन थी। इसके अतिरिक्त १३ अन्य कारखाने भी खड़े किये जा रहे थे और अब तो कुल उत्पादन-क्षमता का अनुमान लगभग ४·१२ लाख

टन है। इस समय भारत में ५१ कारखाने हैं जिनकी उत्पादन-क्षमता ४,१२,००० टन है। इस उद्योग में २२ करोड़ रुपये की पूँजी लगी है तथा १०,००० व्यक्ति काम में लगे हैं।

१९४६ से अब तक हुई इस उद्योग की उन्नति का आभास नीचे लिखे आँकड़ों में लगाया जा सकता है :—

वर्ष	क्षमता (००० टन)	उत्पादन (००० टन)
१९४६	१९२	१३५
१९४७	२०३	९५
१९४८	२१६	१३०
१९४९	२८४	१५६
१९५०	३००	१७२
१९५१	३२६	१७२
१९५२	३१९	१९१
१९५३	३६८	१९२
१९५४	३६८	२३१
१९५५	३८०	२६१
१९५६	४१२	२५६
१९५७	४००	३०१

राज्यों के अनुसार कारखानों की स्थिति और उनकी उत्पादन क्षमता नीचे के आँकड़ों में दिखाई गई है :—

राज्य	कारखानों की संख्या	वार्षिक उत्पादन-क्षमता (टन)
महाराष्ट्र+गुजरात	१०	१,१४,६००
पश्चिमी बंगाल	८	६०,५००
मद्रास	६	२२,९००
उत्तर-प्रदेश	५	५४,०००
सौराष्ट्र	४	३०,०००
मैसूर	४	१०,८००
आन्ध्र	३	१८,०००
पंजाब	२	१०,५००
दिल्ली	२	४२,०००
मध्य प्रदेश	२	२१,३००
अन्य राज्य	५	२७,५००
योग	५१	४,१२,१००

मद्रास राज्य का एक कारखाना सरकारी है (Government Hydrogenation Factory, Kozhikode) जो कोजीखोड स्थान पर है। इसकी वार्षिक उत्पादन-क्षमता ३,००० टन है। सरकारी क्षेत्र का यही एकमात्र वनस्पति बनाने वाला कारखाना है।

उपर्युक्त कारखानों के सिवाय ७ नये कारखाने बनकर तैयार हो गये हैं। ये कारखाने क्रमशः मद्रास, हॉसपेट, चितूर, हैदराबाद, राखील, पालनपुर और दोराहा में हैं। इनकी कुल उत्पादन-क्षमता ३३,००० टन है। उद्योग अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड क्षमता में यदि इसे जोड़ दें तो इस उद्योग की कुल उत्पादन-क्षमता लगभग ४,४५,००० टन वार्षिक हो जायगी।

पहली पंचवर्षीय योजना में इस उद्योग के उत्पादन का लक्ष्य ३ लाख टन रखा गया था।

वनस्पति का सबसे पहले निर्यात १९५१-५२ में हुआ, जब ६१,२३१ हण्डरवेट और १७,९८० हण्डरवेट का निर्यात हुआ; १९५४-५५ में निर्यात फिर बढ़कर १,९६,००० हण्डरवेट हो गया। इसके बाद १९५५-५६ में यह और भी बढ़कर २,५७,९६३ हण्डरवेट हो गया। निर्यात में यह वृद्धि होने का कारण कुछ तो उत्पादन बढ़ जाना था जिसके फलस्वरूप निर्यात की क्षमता बढ़ गई और कुछ मूल्यों का घट जाना था। ब्रिटेन ने सबसे पहले वनस्पति खरीदना आरम्भ किया। १९५४-५५ और १९५५-५६ में निर्यात हुए वनस्पति में से ब्रिटेन ने क्रमशः ७३ और ६० प्रतिशत माल लिया। अन्य देशों में आस्ट्रेलिया और ब्रह्मा भी भारतीय वनस्पति खरीदते रहे हैं।

पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में वनस्पति की खपत २,००,००० टन प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़ी है यह मानते हुए दूसरी पंचवर्षीय योजना अवधि में यह वृद्धि २५,००० टन प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ती जायगी। १९६०-६१ तक देश में वनस्पति की खपत बढ़कर अनुमानतः ३,००,००० टन हो जाने की आशा है। १९६०-६१ में उत्पादन क्षमता का अनुमान ४,४५,००० और उत्पादन का अनुमान ४,००,००० टन है। इस प्रकार लगभग २०-२५ हजार टन माल निर्यात के लिये मिल सकेगा। देश में ४,००,००० वनस्पति घी के उत्पादन के लिए इस अवधि में ४,०६,००० टन मूंगफली का तेल; २४,३०० टन तिल का तेल; ४,००० टन ब्लीचिंग अर्थ; २,००० टन कास्टिक सोडा; ४०० टन निकल फारमेट और ३½ टन कृत्रिम विटेमिन 'ए' की आवश्यकता होगी।

विदेशों में वनस्पति की काफी माँग है। बहुत से देशों में खाना पकाने के लिये यह अत्यन्त लोकप्रिय हो चुका है। कुछ देशों में प्रति व्यक्ति पीछे वनस्पति की खपत इस प्रकार है :—

	पौण्ड
नारवे	५१·६
नीदरलैण्ड	४०·८
डेनमार्क	४०·१
प० जर्मनी	२८·१
स्वीडन	२७·८
ब्रिटेन	२६·९
अमेरिका	१८·४
कनाडा	१६·८
आस्ट्रेलिया	७·१
भारत	१·६

अध्याय ३९

भारत में यातायात—(१) स्थल यातायात

(Transport in India)

किसी देश के आर्थिक जीवन में यातायात अथवा परिवहन के साधनों का बड़ा महत्व है। यदि कृषि और उद्योग धन्धे किसी देश के आर्थिक जीवन का शरीर और हड्डियाँ मानी जायें तो यातायात को उस आर्थिक ढांचे की स्नायु-प्रणाली मानना चाहिये। देश की औद्योगिक उन्नति, व्यापार और कृषि सभी को यातायात के साधनों की आवश्यकता होती है। विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में यातायात के साधनों का विकास, देश के विस्तार की दृष्टि से, अधिक नहीं हुआ है।

नीचे की तालिका में भारत में परिवहन संबंधी आंकड़े प्रस्तुत किए गये हैं :—

सड़कें (मार्च १९५८)		३५७,५०० मील
पक्की सड़कें	१,३३,९०० मील	
कच्ची सड़कें	२२३,६०० ,,	
मोटरें (मार्च १९५८)		४९९,२७३
मोटर साइकलें	५४,८२७	
प्राइवेट कारें व जीपें	२,२३,०५६	
टैक्सी कारें व बसें	५९,६९२	
ट्रकें	१,३३,४७६	
अन्य-वाहन	२८,२२२	
रेलमार्ग (मार्च १९५९)		३५,८०१ मील
बड़ी लाइन (५ १½′)	१६,१४२ मील	
छोटी लाईन (३—३⅜″)	१५,३०५ ,,	
तंग लाइन (२½—२′)	३,२८८ ,,	
यात्री ले जाये गये		१४४,०९,२० हजार
माल ढोया गया		१,३६१,०० हजार
कुल स्टेशन		६,००० हजार
रेलों में लगी पूंजी		१,३६३ करोड़ रु०
रेलों को माल ढुलाई द्वारा आय		२३७ करोड़ रु०
रेलों को यात्रियों को ले जाने में आय		११८ करोड़ रु०
रेल उद्योग में लगे व्यक्ति		११,४३,९१८
जलमार्ग (१९५८—५९)		५,१४४ मील
यंत्र चालित नावों द्वारा खेई जाने योग्य		१,५५७ मील
देशी नावों द्वारा खेई जाने योग्य		३,५८७ मील

सामुद्रिक यातायात (दिसम्बर १९५९)

८९ जहाज समुद्र तटीय व्यापार में लगे	२,७०,००० GRT भार
६८ जहाज समुद्र पार व्यापार में लगे	४,६५,००० ,,
योग १४२ जहाज	७,३६,००० GRT भार
टैंकर	५,००० GRT भार

वायुमार्ग (१९५९)

उड़ान	२,४९,१३,००० मील
यात्री ले जाये गये	७,२२,००० मील
माल ढोया गया	७,३६,२०,००० पौंड
डाक लेजाई गई	१,४९,८१,००० पौंड
नागरिक हवाई अड्डे	८४
उड़ान सिखाने के क्लब	१४

१. भारत में सड़क यातायात (Road Transport) :

अति प्राचीन काल से ही भारतीय शासक राष्ट्र की उन्नति में सड़कों का महत्व समझते रहे हैं। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा में जो खुदाई की गई, उससे इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिले है कि भारतीय ५,००० वर्ष पूर्व भी सड़कें बनाने की कला में निपुण थे। २,५०० और ३,५०० वर्ष पूर्व जो नगर विद्यमान थे, उनमें सड़कें काफी चौड़ी थीं तथा पानी के लिए भी उचित प्रबन्ध था। आर्य काल में भी उत्तम सड़कों का अभाव नहीं रहा। राजा बिम्बसार द्वारा ६ठी शताब्दी में बनाया गया एक महापथ (Mahapath) अब भी पटना जिले के दक्षिणी पूर्वी भाग में स्थित है। मौर्य काल में भी सड़कों की व्यवस्था बड़ी उत्तम थी। इसका प्रमाण कौटिल्य अर्थशास्त्र से मिलता है। कौटिल्य के अनुसार राजकीय मार्ग (जिन पर रथ चलते थे) तथा चरागाहों को जाने वाली सड़कें २४ फीट चौड़ी होती थीं। युद्धस्थलों, श्मशानों और गांवों को जाने वाली सड़कें ४८ फीट तथा बागों, बगीचों और जंगलों को जाने वाली सड़कें २४ फीट और मनुष्यों तथा चौपाये के उपयोगार्थ ३ फीट चौड़ी सड़कें बनाई जाती थीं। चन्द्रगुप्त के राज्य-काल में सड़कों की व्यवस्था की देख-रेख करने के लिये एक यातायात-विभाग होता था तथा निश्चित दूरी पर जगह-जगह ऊंचे खम्बे गड़े हुए थे जिन पर दूरी अंकित रहती थी। एक मुख्य सड़क पटना से उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त को जोड़ती थी। स्ट्रेबो (Strabo) का मत है कि इस मार्ग के सहारे-सहारे ईरस्टथनीज और मेगस्थनीज दो यूनानी विद्वानों ने भारत का भ्रमण किया। इन सड़कों का बीच का भाग कुछ उन्नतोदर होता था जिससे पानी सुगमतापूर्वक बहकर चला जा सकता था।

सम्राट अशोक ने भी अपने राज्य-काल में सड़कें बनाने में बड़ा ध्यान दिया। उसके समय के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसके राज्य में सड़कों के दोनों किनारे बड़ आदि के छायादार वृक्ष लगाये जाते थे, जिसके नीचे यात्री और पशु थकान दूर करने के लिये विश्राम करते थे। प्रत्येक आधे कोस की दूरी पर आम, जामुन आदि फलों के वृक्ष लगे हुए थे। सड़कों के किनारे यात्रियों की सुविधा के लिये मीठे पानी के कुएँ और पक्की धर्मशालाएँ भी निर्माण की गई थीं। ५ वीं शताब्दी में आने वाले चीनी यात्री फाह्यान ने उस समय की सड़कों की स्थिति की बड़ी प्रशंसा की है। इस प्रकार हिन्दू राज्य काल में ऐसी सड़कें अधिक थीं जो देश के विभिन्न भागों

को राजधानी से जोड़ती थीं। ईसा के ७०० वर्ष पश्चात् ताओसुन नामक चीनी यात्री ने भारत की यात्रा की, और उसने यहाँ के मार्गों की बड़ी प्रशंसा की। इसके अनुसार भारत से चीन जाने के लिये तीन सड़कें थीं। एक नैपाल से तिब्बत होते हुए लाप झील तक, दूसरी शानशेन से कोतान तक और तीसरी पटना के दक्षिण में थी।

मुस्लिम काल में भी रोड निर्माण में काफी प्रगति होती रही। मुहम्मद तुगलक ने एक ट्रंक रोड दिल्ली से दौलताबाद जिसके बारे में मुस्लिम यात्री इब्नबतूता का कहना है कि यह यात्रा ४० दिन में समाप्त होती थी। १८ वीं शताब्दी में लिखी चहार गुलशन (Chahar Gulshan) नामक पुस्तक में २४ सड़कों का वर्णन मिलता है जिनमें से १३ मुख्य सड़कें इस प्रकार थी :—(१) आगरा-दिल्ली, (२) दिल्ली-लाहौर, (३) लाहौर-गुजरात, अटक, (४) अटक-काबुल, (५) काबुल-गजनी-कन्धार, (६) गुजरात-श्रीनगर, (७) लाहौर-मुलतान, (८) दिल्ली-अजमेर (९) दिल्ली-बरेली बनारस-पटना, (१०) दिल्ली-कोल, (११) आगरा-इलाहाबाद, (१२) बीजापुर-उज्जैन और (१३) सिरौंज-नरवाड़ा।

हिन्दू और मुगल कालीन सड़कें अधिकतर देश की सुरक्षा के लिए युद्ध की दृष्टि से ही बनाई गई थीं, अतः व्यापारिक और नागरिक (Civilian) कार्य के लिए सड़कों का अभाव सा ही था। मुख्य सड़कों ने दूर के स्थानों में तो यातायात के साधनों का नितान्त अभाव था। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद भारतीय सड़कों का व्यवस्थित रूप से विकास किया जाने लगा। किन्तु इस समय भी पहले उन्हीं सड़कों को बनाया गया जिनका सैनिक अथवा शासन सम्बन्धी महत्व ही अधिक था, अस्तु देश के व्यापार अथवा आर्थिक विकास के लिए सड़कों का बनाया जाना पूरी तरह नहीं किया गया। सबसे बड़ी योजना जो पुनः कार्यान्वित की गई, वह थी ग्राण्ड ट्रंक रोड (Grand Trunk Road) जिसकी १८५८ में ५० लाख रुपये की लागत से लाहौर पेशावर तक के २६४ मील लम्बे टुकड़े की मरम्मत की गई, इस पर १०३ पुल भी निर्माण किये गए। किन्तु सड़कें बनाने की नीति में लार्ड डलहौजी ने नागपुर योजना के अनुसार भारत की सड़कों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :—

(१) **राष्ट्रीय राजमार्ग** (National Highways)—इस प्रकार की सड़कें समस्त देश को न केवल आर्थिक दृष्टि से ही बल्कि सैनिक दृष्टि से भी एक सूत्र में बांध देती हैं। इन सड़कों द्वारा राज्य की राजधानियां, बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यापारिक नगरों, मुख्य-मुख्य बन्दरगाह आपस में एक दूसरे से मिला दिये गये हैं। भारत को ब्रह्मा, नैपाल और तिब्बत से भी ये सड़कें मिलाती हैं। विभाजन के पश्चात् इन सड़कों की कुल लम्बाई १३,९०० मील है जिसमें से लगभग ११,८०० मील लम्बी वो सड़कें [illegible] १,६०० मील लम्बे बीच-बीच के टुकड़े छूटे हुए हैं। ये [illegible] (Surfaced) हैं। १९५०-५१ के अन्त तक इन सड़कों की लंबाई ३२,००० मील होगी।

(२) **प्रान्तीय राजमार्ग** (Provincial Highways)—ये प्रान्तों और राज्यों की प्रमुख सड़कें हैं जिनका महत्त्व व्यापार और उद्योग की दृष्टि से बहुत अधिक है। ये सड़कें राष्ट्रीय सड़कों द्वारा अथवा निकटवर्ती राज्यों की सड़क से मिली हुई हैं। प्रान्तीय सरकारों पर इन सड़कों के निर्माण और उनको ठीक दशा में रखने की जिम्मेदारी है। इस समय इन सड़कों की लंबाई लगभग ३५,००० मील है जिसे बढ़ा कर १९५०-५१ तक ७०,००० मील किया जायेगा।

(३) जिले की सड़कें (District Roads)—ये जिले के विभिन्न भागों को आपस में जोड़ती हैं अर्थात् उनका कार्य उत्पत्ति क्षेत्रों को बाजारों या मंडियों से जोड़ना है। बड़ी सड़कों तथा रेलों से भी उनका सम्बन्ध है। इनको बनाने का जिम्मा जिला बोर्डों के अधीन है। इनमें से अधिकांश सड़कें कच्ची हैं जो वर्षा के दिनों में सर्वथा अनुपयुक्त हो जाती हैं। इन सड़कों की लंबाई लगभग १,७३,५०० मील है जो १९८०-८१ तक ३,३०,००० मील कर दी जायेगी।

(४) गांव की सड़कें (Village Roads)—ये सड़कें गाँवों को आपस में एक दूसरे से मिलाती हैं। इनका सम्बन्ध निकटवर्ती जिले और प्रान्तों की सड़कों से भी होता है। प्रायः ये पगडंडियाँ मात्र हैं। ये अधिकतर गाँव वालों के सहयोग से ही निर्माण की जाती हैं। इन की लंबाई १,५६,७०० मील है। १९८०-८१ तक यह २,२५,००० मील होने की सम्भावना है।

नागपुर सम्मेलन के सुझावों के फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने निश्चय किया कि १९४७ के पश्चात् राष्ट्रीय राजमार्ग बनाने का उत्तरदायित्व वह अपने ऊपर ले लेगी। इसी निर्णय के अनुसार १ अप्रैल १९४७ से इन सड़कों को बनाने और उनकी ठीक दशा में रखने का जिम्मा भारत सरकार ने ले लिया।

सड़कों की वर्तमान स्थिति (Present Position of Roads)

हमारे देश में सड़कों की वर्तमान स्थिति असंतोषजनक है। अविभाजित भारत मे २,६३,००० मील पक्की सड़कें थीं किन्तु विभाजन के फलस्वरूप अब देश में केवल १,५७,५०० मील पक्की सड़कें ही रह गई हैं। इसका अर्थ यह है कि हमारे यहाँ प्रति वर्ग मील क्षेत्रफल पीछे केवल ०·२० मील लम्बी सड़कें थीं जबकि इतने ही क्षेत्र फल के पीछे अमेरिका में १·०२ और ब्रिटेन में २·०२ मील, फ्रांस में १·८४ मील और जर्मनी में ०·९५ मील थी। नीचे की तालिका में अन्य देशों के मुकाबले में भारत की सड़कों सम्बन्धी स्थिति बताई गई है[१] :—

देश	क्षेत्रफल वर्गमील लाख	जन संख्या (लाख में)	मोटर योग्य सड़कें	मोटर अयोग्य सड़कें	कुल लम्बाई (मीलों में)
सं. रा. अमेरिका	३०·२७	१३२०·००	१,०००,०००	२,००९,०००	३,००९,०००
यूनाइटेड किंगडम	०·८९	४६०·००	१६०,१२०	१९,१७०	१७९,२९०
फ्रांस	२·१३	३४१८·००	—	—	
भारत	१२·१७	५६०·००	१८१,४०६	५७,५६५	२३९,०८१
पाकिस्तान	३·६५	७१·००	५,५५९	४८,१११	५५,६१३

मुख्य राज्यों में सड़कों का विस्तार निम्न भांति है:—

राज्य	पक्की सड़कें	कच्ची सड़कें	योग	प्रति १०० वर्गमील पीछे	प्रति १०० व्यक्तियों पीछे
आसाम	१,३६९	९,९९९	११,२६८	१३.४	१.३
बिहार	३,३१५	२९,२२८	२२,६०३	४६.४	.८
बम्बई	१२,४५५	११,३६६	२३,८२१	२१.४	.७
मध्य प्रदेश	१०,४८२	५,८२८	१६,३०४	९.३	.६
मद्रास	२६,५९२	१२,७१८	३९,३१०	३०.८	.७

१. केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित "Our Road" पृ० ५७.

राज्य	पक्की सड़कें	कच्ची सड़कें	योग	प्रति १०० वर्गमील पीछे	प्रति १०० व्यक्तियों पीछे
उड़ीसा	२,६३४	६,०२२	८,६५६	१४.४	.६
पंजाब	२,६४८	६,६११	९,२५९	२४.८	.७
उत्तर प्रदेश	१०,१८०	२५,२८५	३५,४६५	३१.३	.६
बंगाल	३,४९५	२०,२०९	२३,७०४	७७.०	१.०
मैसूर	६,९९७	३,००८	१०,००५	३३.९	१.१
राजस्थान	३,३७२	७,३९२	१०,७७०	८.२	.७
केरल	२,४८६	३,८९४	६,३८०	६९.८	.७

यह आश्चर्यजनक बात है कि देश की कुल सड़कों का आधे से अधिक भाग दक्षिण के पठार पर है क्योंकि वहाँ सड़कें बनाने के लिये कड़ी चट्टानें पाई जाती हैं तथा धरातल पहाड़ी होने के कारण सड़कें उत्तरी भारत की अपेक्षा मजबूत होती हैं। अतः दक्षिणी भारत में पक्की सड़कें ही अधिक पाई जाती हैं जब कि उत्तरी भारत में पत्थरों की कमी होने से अधिकांशतः सड़कें कच्ची हैं। राजस्थान, मालवा का पठार और आसाम राज्य में रेतीले मैदानों अथवा वर्षा अधिक होने के कारण सड़कें बनाना बड़ा व्ययसाध्य हो जाता है। इसलिए सड़कों का अभाव है। गंगा के मैदान में अच्छी सड़कों की कमी है क्योंकि लगभग प्रतिवर्ष नदियों की बाढ़ आजाने के कारण सड़कें टूटती रहती हैं। यहाँ अधिकतर कच्ची सड़कें पाई जाती हैं।

नीचे की तालिका में कुछ प्रमुख देशों में प्रति वर्ग मील और प्रति १,००,००० व्यक्तियों के पीछे सड़कों का विस्तार दर्शाया गया है जिससे ज्ञात होगा कि सड़कों के विस्तार की दृष्टि से भारत की स्थिति बहुत ही दयनीय है[1] :—

देश	प्रति वर्ग मील पीछे	प्रति एक हजार वर्ग मील पीछे	प्रति १००,००० व्यक्तियों पीछे	विशेष
	(सड़कों की लम्बाई मीलों में)			
कनाडा	—	१६०	४,३९८	—
इटली	०·८९	१,४६७	३७६	मोटर योग्य
जापान	३·००	३,९८८	७२८	,,
इङ्गलैंड	२·०२	२,०७०	३८१	,,
फ्रांस	१·८४	—	९३४	,,
जर्मनी	०·९५	—	२७०	,,
सं. रा. अमेरिका	१·०३	१·००६	२,४११	,,
भारत	०·२२	२०१	७३	केवल ३५% मोटर योग्य
पाकिस्तान	०·१५	—	?	?
आस्ट्रेलिया	–	१६८	६,६०२	—

इस तालिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रति १००,००० व्यक्तियों पीछे २,४११ मील और कनाडा में ४,३९८ मील लम्बी सड़कें हैं वहाँ भारत में उतने ही व्यक्तियों पीछे ७३ मील। इस समय भारत में

1. Eastern Economist Annual, 1952, p. 1064.

३५७,५०० मील लम्बी सड़कें हैं। जिनमें से १३३,६०० मील पक्की और २२२,९०० मील कच्ची सड़कें हैं।

भारत में मुख्य सड़कें ये हैं :

(१) ग्रांड ट्रंक रोड :

यह भारत की सबसे मुख्य सड़क है। यह कलकत्ता से आसनसोल, बनारस, इलाहाबाद, अलीगढ़, दह[illegible] होती हुई अमृतसर तक जाती है। आगे यह लाह[illegible] होती हुई पेशावर तक पाकिस्तान देश में जाती है।

(२) कलकत्ता मद्रास रोड :

यह सड़क कलकत्ता से सम्बलपुर, रायपुर, विजयानगरम, विजयवाड़ा, गन्तूर होती हुई मद्रास तक गई है।

(३) बम्बई आगरा रोड :

यह सड़क बम्बई से नासिक, इन्दौर, ग्वालियर होती हुई आगरा तक जाती है। इसको ग्रांड ट्रक रोड में मिलाने के लिये आगरा से अलीगढ़ तक सड़क बनी है।

(४) ग्रेट डेकन रोड :

यह सड़क मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) से जबलपुर, नागपुर होती हुई हैदराबाद (दकन) तक और उससे आगे बंगलौर तक गई है। नागपुर से छोटी-छोटी सड़कों द्वारा इसको दक्षिणी भारत की अन्य बड़ी सड़कों से जो बम्बई कलकत्ता को जाती हैं, मिला दिया गया है। इसी प्रकार मिर्जापुर से एक छोटी सड़क द्वारा इसे माधोसिंह के समीप ग्रांड ट्रंक रोड से मिलाया गया है।

(५) बम्बई कलकत्ता रोड :

यह सड़क कलकत्ता से सम्बलपुर, रायपुर, नागपुर, बलिया होती हुई आमलनेर स्थान पर बम्बई आगरा रोड से मिल जाती है। नागपुर पर यह सड़क ग्रेट डकन रोड से मिलती है।

(६) मद्रास बम्बई रोड :

यह सड़क मद्रास से बंगलौर, बेलगाँव पूना होती हुई बम्बई गई है।

(७) पठानकोट जम्मू रोड :

यह सड़क पठानकोट से जम्मू तक जाती है। वहाँ से इसका सम्बन्ध श्रीनगर जाने वाली सड़क से है। यह सड़क देश-विभाजन के बाद काश्मीर से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये बनाई गई है।

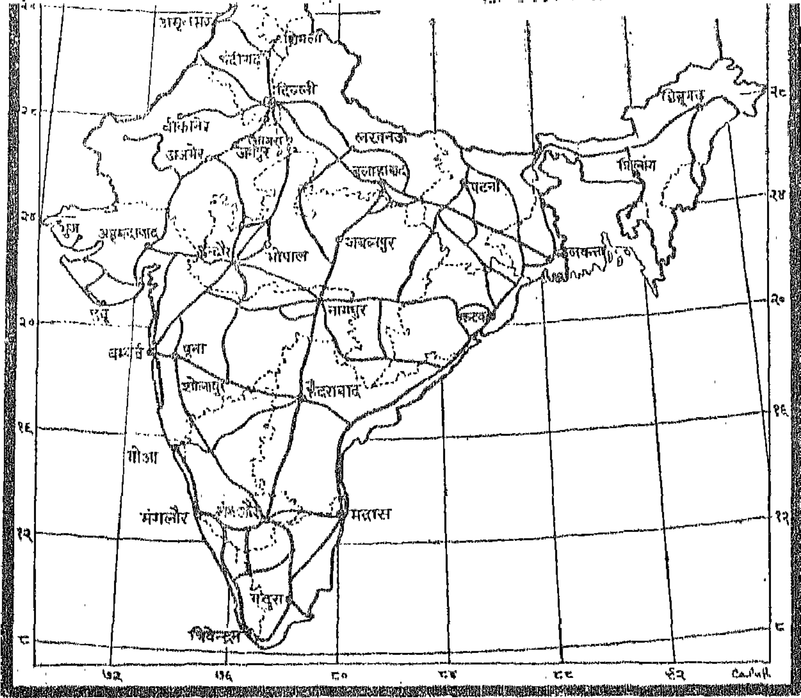
(८) गोहाटी चेरापूँजी रोड :

यह सड़क भी विभाजन के बाद ही गोहाटी से शिलांग होती हुई चेरापूँजी तक के लिये गई है।

उपर्युक्त सड़कों के अतिरिक्त अन्य सड़कें निम्न हैं :—

(१) पूर्णिया-दार्जिलिंग रोड।
(२) बरेली नैनीताल अलमोड़ा रोड।
(३) अम्बाला-कालका शिमला रोड जो कि अम्बाला से तिब्बत को जाती है।
(४) पठानकोट-कुल्लू रोड।

(५) मनीपुर-कोहिमा-इम्फाल-सिल्चर रोड ।
(६) देहरादून-मसूरी रोड ।
(७) पठानकोट डलहौजी रोड ।



चित्र १६२—भारत की प्रमुख सड़कें

(८) मद्रास- कोजीखोड़ रोड ।
(९) मद्रास-ट्रावनकोर रोड ।
(१०) बनारस-नागपुर-हैदराबाद, कर्नूल-बंगलौर-कुमारी अंतरीप
(११) दिल्ली-अहमदाबाद-बम्बई ।
(१२) दिल्ली-जयपुर-अजमेर-ब्यावर-उदयपुर-डूंगरपुर-अहमदाबाद ।

हमारे देश की छोटी सड़कों पर तो नदियों पर पुलों का अभाव है ही बड़ी सड़कों पर भी पर्याप्त पुल नहीं हैं। उदाहरणार्थ कलकत्ता से मद्रास जाने वाली सड़क पर बहुत जगह पुल नहीं हैं। ग्रांड ट्रंक रोड पर सोन नदी पर सड़क का पुल

नहीं है, मोटरें आदि रेल से पार उतारी जाती हैं। बहुत सी सड़कें बाढ़ के समय नष्ट हो जाती हैं अतएव इन सड़कों पर वर्षा ऋतु में यात्रा करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। कभी-कभी तो नदियों आदि पर पुल न होने के कारण गंतव्य स्थान तक पहुँचने के लिये काफी लम्बा चक्कर लगाकर जाना पड़ता है। वर्षा ऋतु में सड़कों पर भारी बोझ ले जाना दुष्कर हो जाता है अस्तु, अधिकांशतः कुली आदि के सिर पर रख कर ही सामान इधर से उधर ले जया जाता है। सड़कों में कई जगह गड्ढे पड़े हैं जिनसे भी आने जाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। गाँव की अधिकांश सड़कों द्वारा वर्षा ऋतु में आना जाना नहीं हो सकता अतः वर्ष के इन दिनों में ग्रामों का सम्बन्ध नगरों से टूट-सा जाता है और इन पगडण्डियों पर केवल मनुष्य ही आ जा सकते हैं।[1]

जब से भारत में यातायात का आरम्भ हुआ है तब से सड़कों का महत्व बहुत बढ़ गया है। इन पर १ करोड़ बैलगाड़ियाँ चलती है जिनमें २६१ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है और लगभग १ करोड़ [illegible] को रोजगार मिलता है तथा यह १३ करोड़ टन [illegible] वर्षों में मोटरों का प्रचार बहुत बढ़ गया है किन्तु फिर भी [illegible] यप्ति वृद्धि हुई है। १९४७-४८ में जहाँ ८,५६९ ५६९ गाड़ियाँ थीं वहाँ १९५१ में यह संख्या ९,८६३,३११ हो गई। इस प्रकार ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था में बैलगाड़ियों का बहुत महत्व है। आजकल रेल-निर्माण के साथ-साथ सड़कों के निर्माण का कार्य भी आवश्यक माना जाने लगा है यद्यपि देहातों में बैलगाड़ियाँ अधिक चलती हैं फिर भी सड़कों के विस्तार से लारियों और ट्रकों का प्रचार बढ़ रहा है। इनकी गति तीव्र होने के कारण यातायात शीघ्र हो सकता है। अतएव बैलगाड़ियों और ताँगों तथा इक्कों का स्थान धीरे-धीरे मोटर और लारियाँ ले रही हैं। अतः सड़कों को पक्की बनाना तथा उनको ठीक दशा में रखना और आवश्यक हो गया है। नगरों के आस-पास हरी तरकारियाँ, दूध, मक्खन आदि शीघ्र नष्ट हो जाने वाले पदार्थों को नगरों में पहुँचाने के लिये लारियों की जरूरत पड़ती है। भारत कृषि-प्रधान देश है जहाँ के अधिकांश निवासी गाँवों में निवास करते हैं। परन्तु उनको अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दिन प्रति दिन शहरों में आना जाना पड़ता है। न्याय तथा शासन और शिक्षा व अस्पताल आदि के केन्द्र नगरों में ही होते हैं अस्तु, गाँवों से शहरों का सम्पर्क बढ़ाना बहुत आवश्यक है। इसके लिए तीव्रगामी यानों (Vehicles) की आवश्यकता है। खेतों में उत्पन्न होने वाले पदार्थों को भी उपभोग के क्षेत्रों और औद्योगिक तथा व्यापारिक मंडियों तक भेजने के लिए भी मोटर, ट्रकों और गाड़ियों की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त नगरों में उद्योग-धन्धों की वृद्धि होने से मजदूरों का आना जाना भी बढ़ रहा है जिसके लिये शीघ्रगामी यानों की आवश्यकता है। दूसरे नगरों का भीड़ भड़क्का कम करने के लिये धन्धों का विकेन्द्रीकरण (Decen alisation) एवम् जनसंख्या का वितरण आवश्यक है। इनके लिए भी शीघ्रगामी यानों की अत्यधिक आवश्यकता है। संक्षेप में देश की आर्थिक उन्नति के लिए सड़कों के विस्तार की अत्यधिक आवश्यकता है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय सड़कों के बारे में इस प्रकार से प्राथमिकता का निर्णय किया गया है :—

1. D. R. Gadgil: 'Modern Industrial Evolution of India, 1948, p 4.

(१) अभी कुल राष्ट्रीय सड़कों की लम्बाई १३,९०० मील है[1] जिनमें से केवल ११,८०० मील लम्बी सड़कें बनी हैं और लगभग १,६०० मील लम्बे बीच-बीच में टुकड़े छूटे हुए हैं। सड़कों के बीच में इन छूटे हुए टुकड़ों को बनाना है। पंच-वर्षीय योजना के अनुसार १,६०० मील में से ७०० मील टुकड़े पाँच वर्षों में बनाये जायेंगे।

(२) सड़कों के ऊपर की सतह में सुधार करना ताकि वे अधिक बोझा सह सकें। वर्तमान समय में ११,८०० मील में से केवल ४,३०० मील सड़कें ही अच्छी सतह वाली हैं शेष ७,५०० मील लम्बी सड़कों में से केवल ३,५०० मील ही लम्बी सड़कों की सतह में आगामी ५ वर्षों में सुधार किया जायगा।

(३) पुराने पुलों में सुधार करना ताकि उन पर होकर अधिक भारी बोझा ढोया जा सके। अभी राष्ट्रीय सड़कों के बीच में ११२ पुलों की जगह छूटी हुई है, अस्तु आगामी ५ वर्षों में ४० पुलों को तैयार किया जायगा। इनके अतिरिक्त लग-भग १,५०० मील लम्बी सड़कों की मरम्मत की जायगी। दूसरी योजना के आरंभ से मार्च १९५९ के अन्त तक ४५० मील लम्बी लिंक सड़कें और २६ बड़े पुल बनाये गये, २,४००मील लम्बी सड़कें सुधारी गईं और ७०मील लम्बी सड़कों को चौड़ा किया गया।

१९४३ में नागपुर योजना बनने के बाद से अब तक परिस्थितियाँ काफी बदल गई हैं। इसलिये इंजीनियरों की समिति ने सरकार को २० वर्ष (१९६१ से १९८१) के लिए अखिल भारतीय सड़क विकास योजना सरकार को प्रेषित की है। इस योजना में यह व्यवस्था की गई है कि (१) उन्नत कृषि क्षेत्र का प्रत्येक गाँव पक्की सड़क से अधिक से अधिक ३ मील; (२) अर्ध-विकसित क्षेत्र का प्रत्येक गांव पक्की सड़क से अधिक से अधिक ५ मील; और (३) अविकसित क्षेत्र का प्रत्येक गाँव पक्की सड़क से अधिक से अधिक ९ मील रहे। इस २० वर्षीय योजना पर लगभग ५२ अरब का खर्च होने का अनुमान है।[2] इस योजना के फलस्वरूप देश में सड़कों की लंबाई ६५७,००० मील अथवा लगभग दुगुनी हो जायेगी।

२ रेलमार्ग (Railways)

भारत में रेल मार्गों को बनाने के मुख्य उद्देश्य ये रहे हैं:—

(१) अधिकांश रेलें उन क्षेत्रों में बनाई गई हैं जो बहुत उपजाऊ और घने बसे हैं, क्योंकि ऐसे ही क्षेत्रों से रेलों को मुसाफिर और माल ढोने को मिलता है। फलत: रेलमार्गों का विस्तार गंगा की घाटी में अधिक हुआ है।

(२) रेलें प्रसिद्ध बन्दरगाहों को औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्रों से जोड़ती हैं और विदेशों से आयातित माल को भीतरी भागों में वितरण करने में सहयोग देती हैं तथा कृषि क्षेत्रों के उत्पादन को कारखानों तक पहुँचाती हैं।

(३) अकाल अथवा दैवी आपत्ति के समय अकाल पीड़ित और बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों को अन्न और अन्य आवश्यकीय सामग्री पहुँचाने में योग देती हैं।

---

१. विभिन्न राज्यों में राष्ट्रीय सड़कों का विस्तार इस प्रकार है:—

आंध्र १३९५ मील; आसाम ७९५ मी०; बिहार १,११३ मी०, बम्बई २,१७० मी०; केरल २४८ मी०; मध्यप्रदेश १,३९९ मी; मद्रास १,०४३ मी०; मैसूर ६०७ मील; उड़ीसा ३५१ मी०; पंजाब ७६९ मील; राजस्थान ७४० मील; उत्तर प्रदेश १,३८५ मील तथा प० बंगाल ७२८ मील है।

२. भारतीय समाचार, वर्ष २, अंक १९ (१ नवम्बर १९५९), पृ० ६२४।

भारत में रेलमार्गों का विकास १९वीं शताब्दी से ही हुआ है। सर्वप्रथम १८४५ ई० में लार्ड डेलहौजी के राज्यकाल में तीन रेल मार्गों की स्वीकृत दी गई। पहला रेल मार्ग, ईस्ट इंडियन रेलवे थी जो कलकत्ता से रानीगंज तक १२० मील लम्बा था। यह १८४५ में बनाया गया। दूसरा रेलमार्ग १८५३ में ग्रेट इंडियन पेनिसुला रेलवे पर बम्बई से थाना के बीच २१ मील लम्बा बनाया गया। १८५४ ई० में कलकत्ता और पंडुआ के बीच ३९ मील लम्बा रेलमार्ग बनाया गया। १८५६ में मद्रास रेलवे पर मद्रास से अरकोनम तक ३९ मील लम्बा रेल मार्ग बनाया गया। शनैः शनैः भारत में रेल मार्गों के निर्माण में प्रगति होने लगी इसका अनुमान नीचे के आंकड़ों से स्पष्ट होगा :—

वर्ष	रेलमार्गों की लम्बाई	लागत पूंजी लाख रु.	कुल आय	यात्री ले जाए गए हजार	माल ढोया गया
१८५३	२०	३८	९० ह० रु.	—	—
१८७३	५,६९७	९,१७२	७२३ला०रु.	१९,२८३	३,५४२
१८९३	१८,४५९	२३,३१८	२,४०८ ,,	१२२,८५५	२६,१५९
१९०३	२६,९५६	३४,१११	३,६०१ ,,	१९४,७४९	४३,३९२
१९१३-१४	३४,६५६	४९,५०९	६,३९९ ,,	३८९,८६३	७१,२६८
१९३३-३४	४२,९५३	८८,४४१	९,९५८ ,,	५०४,८३६	७५,४७५
१९५१-५२	३४-११९	८६,१५५	२९,४१४ ,,	१२,३२,०७३	९८,०२५
१९५५,५७	३४,७४४	१०७,८२३	३५,०५५ ,,	१३,८२,५४०	१,२५,३८०
१९५७-५८	३४,८८९	१२२,८६४	३८,२९९ ,,	१४,३१,०५९	१,३३,३६५
१९५८-५९	३५,०८१	१३२,८९	३९ २३३ ,,	१४४,०९,२०	१,३६,१००

देश में रेलों की लम्बाई का लगभग आधा भाग भारत के सतलज और गंगा के मैदान में स्थित है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि इस मैदान में भारत की अधिकांश जनसंख्या बसी हैं, यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है और यहीं भारत के बड़े-बड़े नगर बसे हैं। भूमि का धरातल समान होने ने कारण रेल मार्ग बनाने की सुविधाएँ भी यहाँ अधिक पाई जाती हैं। देश के विभाजन के पूर्व यहाँ की सबसे लम्बी रेलवे लाइन (N. W. Ry.)—६,९०० मील थी। इसी देश की सबसे अधिक सामान ढोने वाली रेलवे (E. I. Ry.), जिसकी आय प्रति वर्ष २७ करोड़ रुपये थी, इसी मैदान में है। भारत की सबसे अधिक लाभ देने वाली रेलवे (शहादरा-लाइट रेलवे), जिससे १०% लाभ प्रति वर्ष होता था, इसी मैदान में है।

इस मैदान की रेलों की विशेषता यह है कि मीलों तक उनका मार्ग सीधा है, धरातल सपाट होने के कारण उन्हें अधिक इधर उधर मुड़ने की आवश्यकता नहीं। यद्यपि धरातल समतल होने से रेल मार्ग बनाने में बड़ी सुविधा होती है किन्तु यहाँ की घनी वर्षा और हिमालय से आने वाली अनेक नदियों द्वारा रेल मार्गों को बहुधा हानि पहुँचती है। बाढ़ के समय कहीं-कहीं रेलवे-लाइनें कट जाती हैं अथवा उनके पुल टूट जाते हैं। इसके अतिरिक्त रेल मार्गों के किनारे डालने के लिए पत्थर की गिट्टी बहुत दूर से इस मैदान में मंगवानी पड़ती है।

इस मैदान की रेलों की दूसरी विशेषता यह है कि इनकी शाखायें बहुत अधिक हैं। सम्भवतः रेलों की संख्या अन्यत्र नहीं मिलती। ये शाखायें विशेषतः कोयला-क्षेत्रों

में अधिक पाई जाती हैं। जहाँ कोयला ढोने के लिये रेलों की आवश्यकता पड़ती है।

तीसरी विशेषता यह है कि इस मैदान की रेलों का अन्त कलकत्ता में होता है। वहाँ समुद्री व्यापार का सम्बन्ध इन रेलों द्वारा ढोये गये स्थलीय व्यापार से होता है। इस मैदान के उत्तर की ओर अथवा पश्चिम में कोई ऐसा एक केन्द्र नहीं है जहाँ सभी रेलों का अन्त होता हो जैसा कि कलकत्ते में देखा जाता है। मैदान के उत्तर में हिमालय पर्वत है जिसमें रेलों का प्रवेश नहीं हुआ है। यद्यपि दार्जिलिंग, शिमला, काँगड़ा आदि स्थानों में पहाड़ों को पार कर रेल की छोटी लाइनें पहुँची हैं।

दक्षिण के पठार पर जो रेल मार्ग पाये जाते हैं वे प्राय: टेढ़े मेढ़े हैं इसका मुख्य कारण पठार के धरातल का ऊँचा-नीचा होना और टूटी-फूटी पहाड़ियों का अधिक होना है। इनसे बचने के लिए तथा भूमि के अधिक ढाल से दूर रहने के उद्देश्य से रेल मार्ग बहुधा टेढ़े-मेढ़े बनाना ही आवश्यक हो जाता है। पठार में कहीं-कहीं रेल मार्ग को इतने अधिक खड़े ढाल पर चलना पड़ता है कि वहाँ रेलगाड़ी में एक इंजिन पीछे ठेलने के लिए लगाना आवश्यक होता है। इस प्रकार के ढाल मध्य-प्रदेश में होशंगाबाद और महाराष्ट्रमें इगतपुरी में देखने को मिलते हैं। पठार में कहीं-कहीं रेल मार्गों को निकालने के लिये पहाड़ों में सुरंगें भी बनानी पड़ी हैं, विशेषत: ऐसे भागों में जहाँ घूम कर पहाड़ के दूसरी ओर रेलें नहीं जा सकती। पठार में चलने वाले सभी रेल-मार्गों में कहीं न कहीं सुरंगें बनी हैं। अत: रेल मार्गों का बनाना न केवल दुसाध्य ही होता है वरन् खर्च भी अधिक होता है। पश्चिमी घाटों में थलघाट, भोर घाट, पाल घाट आदि सुरंगें और उदयपुर तथा जोधपुर डिवीजनों के बीच अरावली श्रेणियों में गोरमघाट में सुरंगें बनानी पड़ी हैं।

भारत के रेल मार्ग के मानचित्र को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ कई क्षेत्रों में रेल मार्गों का प्राय: अभाव है—पश्चिमी राजस्थान के थाट की मरुभूमि और बिहार के छोटा नागपुर और उड़ीसा के पहाड़ी भाग तथा आसाम राज्य में। यहाँ प्रथम तो भूमि बड़ी ऊँची नीची अथवा बालू मिट्टी वाली है तथा जनसंख्या थोड़ी होने से रेलों की आवश्यकता भी कम ही है।

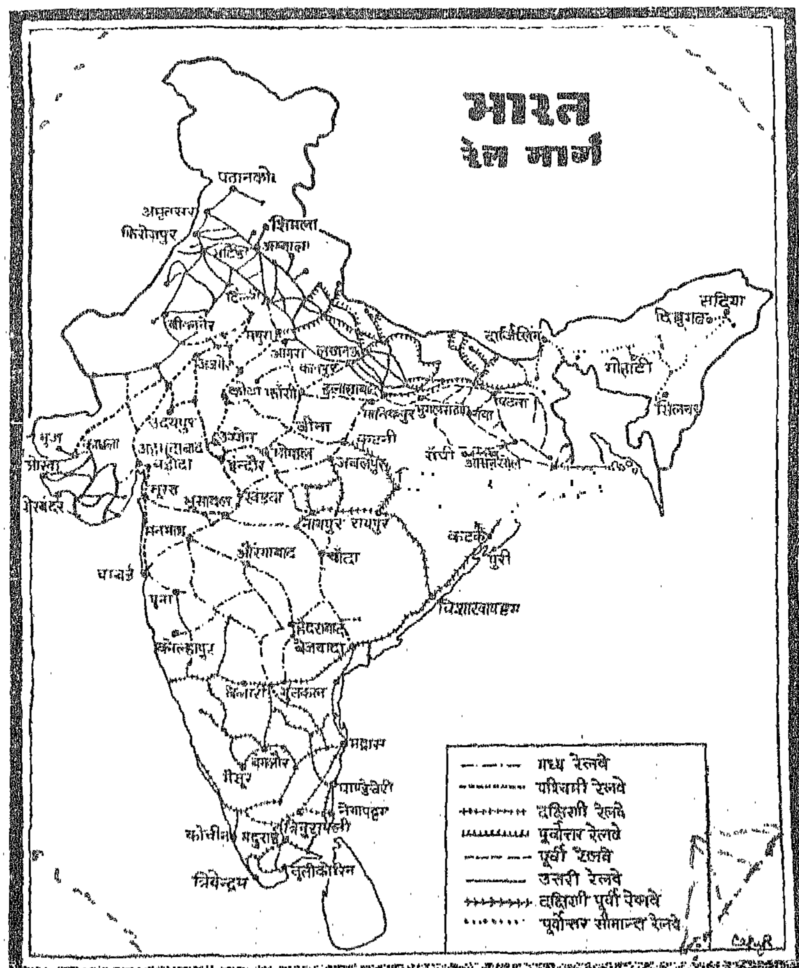
भारतीय रेल-प्रणाली एशिया में सबसे लम्बी और विश्व में चौथी है। यह तथ्य इन आँकड़ों से स्पष्ट होगा :—

प्रमुख देशों में रेल मार्ग

	कुल लम्बाई मी०	प्रति १००० वर्ग मील पीछे	प्रति १ लाख व्यक्तियों के पीछे
सं० रा० अमरीका	२२४,८१६	७४	१३८
रूस	५७,४८७	—	—
कनाडा	४१,१५८	१२	२७२
भारत	३४,७४	२७	६
फ्रांस	२५,६००	१२०	६०
जापान	१२,५५६	८७	१४
इंगलैंड	१९,१५१	२०४	२७

भारत में रेल प्रणाली का संचालन केन्द्रीय सरकार के आधीन है। इनके द्वारा भारत में होने वाले व्यापार में बड़ी सहायता मिलती है। ये देश के ८०% माल और

७०% यात्रियों को ढोती है। १९५९ में प्रति दिन औसतन ४० लाख व्यक्तियों ने ६,४०० स्टेशनों से ५,००० रेलों में यात्रा की। रेलों द्वारा वर्ष भर में १८४ करोड़ व्यक्तियों ने यात्रा की तथा इसके द्वारा १३६ करोड़ टन माल भी ढोया जिससे रेलों को २३७ करोड़ रुपये की आय हुई। भारतीय रेलों में १,३६३ करोड़ रुपये की पूंजी लगी है तथा ११ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलता है। अतएव भारत के यातायात में रेलों का बड़ा योगदान है।



चित्र नं० १६३—भारत के रेल मार्ग

रेलों का पुनर्वर्गीकरण (Regrouping of Railways)

१९४९ तक भारतीय रेलवे ९ सरकारी रेलवे प्रणालियों और भारतीय रेलवे

प्रणालियों में विभक्त थीं।

सरकारी रेलें ये थीं :—

(१) ईस्ट इन्डिया रेलवे (East India Railway)
(२) बंगाल नागपुर रेलवे (Bengal Nagpur Railway)
(३) अवध तिरहुत रेलवे (Oudh Tirhoot Railway)
(४) आसाम रेलवे (Assam Railway)
(५) साउथ इंडियन रेलवे (South Indian Railway)
(६) मद्रास, साउथ मराठा रेलवे (M. S. M. Railway)
(७) बम्बई बड़ौदा एन्ड सैंट्रल इण्डिया रेलवे (B. B. & C. I. Railway)
(८) ग्रेट इन्डियन पेनिनसुलर रेलवे (G. I. P. Railway)
(९) पूर्वी पंजाब रेलवे (East Punjab Railway)

प्रमुख भारतीय रेलें निम्नांकित थीं :—

(१) बीकानेर रेलवे (२) कच्छ स्टेट रेलवे (३) धौलपुर स्टेट रेलवे (४) जयपुर स्टेट रेलवे (५) जोधपुर स्टेट रेलवे (६) मैसूर स्टेट रेलवे (७) निजाम स्टेट रेलवे (८) सौराष्ट्र रेलवे (९) सिंधिया स्टेट रेलवे (१०) राजस्थान रेलवे (११) बेजवाड़ा रेलवे (१२) दार्जिलिंग हिमालयन रेलवे।

सरकार रेलवे प्रणाली में एक ओर तो ईस्ट इण्डिया थी और दूसरी ओर आसाम रेलवे। इनकी लम्बाई क्रमशः ४,३८० और १,२३९ मील तथा वार्षिक मिश्रित आय क्रमशः ५४ करोड़ रुपये थी। भारतीय राज्यों की रेल प्रणाली में निजाम स्टेट रेलवे का फैलाव १३,९१६ मील और मिश्रित वार्षिक आय ५·३ करोड़ थी। धौलपुर राज्य रेलवे सबसे छोटी थी। यह केवल ५५ मील लम्बी थी और इसकी आय भी ७·६ लाख थी।

इस समय भारतीय रेल-व्यवस्था ८ भागों में बंटी है :—

(१) उत्तरी रेल-मार्ग
(२) उत्तरी पूर्वी रेल-मार्ग
(३) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त रेल मार्ग
(४) पूर्वी रेल-मार्ग
(५) दक्षिणी पूर्वी रेल-मार्ग
(६) पश्चिमी रेल मार्ग
(७) मध्यवर्ती रेल मार्ग
(८) दक्षिणी रेल मार्ग

रेलों के इस नवीन वर्गीकरण से निम्न लाभ वांछनीय हैं :—

(१) प्रत्येक प्रदेश अथवा क्षेत्र में सवारी व माल के भाड़े की दरें एकसी होंगी।

(२) रेलवे जंकशनों तथा प्रमुख यातायात केन्द्रों पर अधिक एकाकीकृत नियंत्रण रहेगा जिनके फलस्वरूप रेल गाड़ियों के संचालन में सुविधा रहेगी और असावधानी तथा खतरों का भय कम रहेगा।

इस प्रकार अब सम्पूर्ण रेलवे प्रणाली का विस्तार निम्न प्रकार है [१]:—

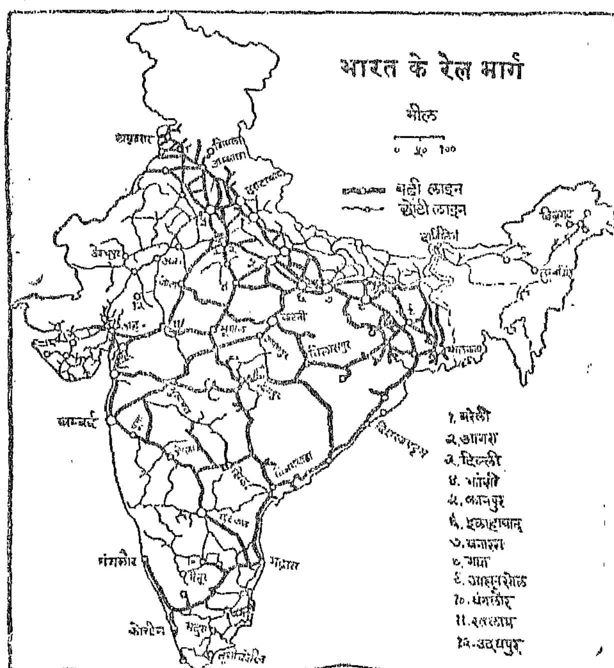
क्षेत्र	कौन कौन सी रेलें मिलाई गईं	केन्द्रीय कार्यालय	उद्घाटन तिथि	बड़ी लाइन	सम्पूर्ण छोटी लाइन	लंबाई तंग लाइन	कुल लंबाई ३१ मार्च, १९५७ को
१. दक्षिणी रेलवे (Southern)	(१) मद्रास और दक्षिणी मरहठा (२) दक्षिणी भारत रेलवे और (३) मैसूर रेलवे	मद्रास	१४ अप्रैल १९५१	१८०७	६१९७	९५	६,१००
२. केन्द्रीय रेलवे (Central)	(१) ग्रेट इंडियन पेनिनसुला; (२) निजाम स्टेट (३) धौलपुर और (४) सिंधिया रेलवे	बम्बई	५ नवम्बर १९५१	३६९८	७७२	७२५	५,२९६
३. पश्चिमी रेलवे (Western)	(१) बम्बई, बड़ौदा और मध्य भारत रेलवे; (२) सौराष्ट्र-कच्छ (३) राजस्थान और (४) जयपुर रेलवे	बम्बई (चर्च गेट)	५ नवम्बर १९५१	१५८६	३६६८	७५८	६,०१३
४. उत्तरी रेलवे (Northern)	(१) पूर्वी पंजाब रेलवे; (२) जोधपुर बीकानेर रेलवे (३) ईस्ट इंडिया के ३ भाग; (४) बी. बी. एंड सी. आई के कुछ भाग	दिल्ली	१४ अप्रैल १९५२	४१७१	२००६	१६१	६,३४०
५. पूर्वी रेलवे (Eastern)	(१) ईस्ट इंडिया रेलवे का अधिकांश भाग	कलकत्ता	१ अगस्त १९५५	२३०४	—	१७	२,३२१
६. द. पूर्वी रेलवे (S.E.Rly)	(१) बंगाल नागपुर रेलवे	कलकत्ता	१ अगस्त १९५५	२४९८	—	९२५	२३ ३,४
७. उत्तरी पूर्वी रेलवे (North-Eastern)	(१) अवध-तिरहुत रेलवे, आसाम रेलवे—बम्बई-बड़ौदा रेलवे का फतहगढ़ जिला :	गोरखपुर	१४ अप्रैल १९५२		३०६०	—	३,०६०
८. उत्तरी—पूर्वी सीमांत रेलवे (N. E.Frontier)		पांडु	१५ जनवरी १९५८	२$\frac{३}{४}$	१६८६	५०	१,७३८

(३) सामूहीकरण द्वारा रेलवे उद्योग को सामूहिक रूप में तथा प्रत्येक प्रदेश को वैयक्तिक रूप में भी बड़े पैमाने के उत्पादन की भाँति बाह्य बचत प्राप्त होगी।

(४) रेलों की कार्य क्षमता में वृद्धि होगी क्योंकि शक्ति, सामान तथा वर्कशॉप की सुविधाओं का अधिक गहन उपयोग संभव हो सकेगा। रेल सेवाओं में समय की पाबन्दी होगी। सुरक्षा के सम्बन्ध में समुचित उपायों को शीघ्रतापूर्वक लागू किया जा सकेगा।

(५) रेलवे अनुसंधान को भी प्रोत्साहन मिलेगा और कर्मचारियों के शिक्षण की व्यवस्था भी ठीक होगी।

(६) प्रशासनिक खर्चों में अधिक मितव्ययता होगी।



चित्र १६४—भारत के रेल मार्ग

१. **उत्तरी रेलमार्ग** (Northern Railway)—६,३४० मील लम्बा है और पूर्वी पंजाब, पेप्सू, दिल्ली, उत्तरी व पूर्वी राजस्थान तथा बनारस तक उत्तर-प्रदेश से होकर फैला हुआ है। इस प्रकार इस रेल मार्ग के अन्तर्गत पूर्वी पंजाब रेलवे, जोधपुर रेलवे, बीकानेर रेलवे और ईस्ट इंडियन रेलवे का पश्चिमी भाग मिला दिया गया है। इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में है। इस रेल मार्ग की निम्नलिखित शाखायें बड़ी लाइनें हैं :—

(१) दिल्ली से अटारी तक की ३३३ मील लम्बी शाखा जो मेरठ, सहारनपुर, अम्बाला, लुधियाना, जालन्धर और अमृतसर होकर जाती है। अमृतसर से एक उप-शाखा पठानकोट होती हुई काश्मीर जाती है।

(२) दिल्ली से रोहतक, भटिंडा होती हुई फिरोजपुर तक—इस शाखा लम्बाई २४१ मील है।

(३) दिल्ली से अम्बाला होकर एक शाखा कालका तक जाती है और फिर कालका से शिमला तक एक संकरी लाइन जाती है।

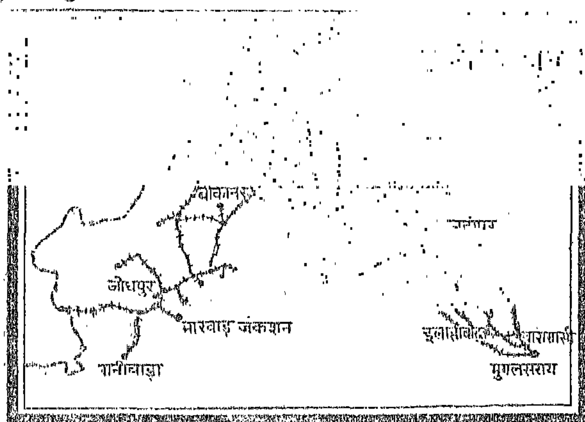
(४) दिल्ली से खुरजा, अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद और मुगलसराय होती हुई एक शाखा बनारस तक जाती है।

(५) सहारनपुर से लखनऊ व जंघई होकर एक मार्ग बनारस तक जाता है।

(६) एक शाखा मुगलसराय-बनारस, लखनऊ-बरेली-मुरादाबाद-नजीबाबाद-हरिद्वार होती हुई देहरादून को जाती है।

(७) दिल्ली-रेवाड़ी-हिसार-रत्नगढ़-जोधपुर-पाकिस्तान की सीमा तक।

(८) जोधपुर-बीकानेर-भटिंडा।



चित्र १६५—उत्तरी रेल मार्ग

भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली उत्तर रेलवे में आने के कारण इस रेलवे का महत्व बहुत बढ़ गया है। यहां से चारों ओर को रेल लाइनें बिछी हुई हैं। इसी रेलवे द्वारा उत्तर में प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान शिमला का भ्रमण किया जा सकता है। चीनी, वस्त्र, तम्बाकू, कागज, एवं चमड़े के कारखानों को इससे सहायता मिलती है।

२. उत्तरी पूर्वी रेल मार्ग (North Eastern Railway)—यह ३,०६० मील लम्बी है और छोटी लाइनें हैं। यह उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग और उत्तरी बिहार, पश्चिमी बंगाल तथा आसाम के उत्तरी भाग में फैली हुई है। पहले की अवध तिरहुत रेलवे व आसाम रेलवे को मिलाकर इस रेल मार्ग को बनाया गया है। इसका प्रधान कार्यालय गोरखपुर में है। इस मार्ग का प्रदेश खेती के दृष्टिकोण से विशेष उन्नत है और गन्ना, चाय, तम्बाकू, जूट और चावल का व्यापार इसी के द्वारा होता है। इस रेल मार्ग का विभिन्न मोटर बसों सड़कों तथा गंगा व ब्रह्मपुत्र नदियों से भी संतोषजनक संपर्क रहता है। इसकी प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं :—

(१) गोरखपुर से अमिन गांव (आसाम) तक। यह छपरा व कटिहार होती हुई जाती है और सिलीगुड़ी में नई रेलवे लाइन से मिल जाती है। पूर्वी पाकिस्तान के बन जाने से आसाम और पश्चिमी बंगाल के बीच का सीधा रेलमार्ग हाथ से निकल गया। सन १९५० में कटिहार और सिलीगुड़ी को रेल द्वारा मिला दिया गया है। यह मार्ग

दलदली व रोग ग्रस्त भूमि से होकर जाता है। सिलगुड़ी से मदाड़ी हाट तक रेल मार्ग पहले से ही था मदारी हाट से फकीरा ग्राम तक नई रेल बना दी गई है।

(२) गोरखपुर लखनऊ होती हुई कानपुर तक। इसकी कुल लम्बाई ५३० मील है। लखनऊ से एक शाखा बरेली तक जाती है।

(३) गोरखपुर से सारन होती हुई बनारस तक।

(४) मनीपुर रोड होती हुई पांडू से गुवाहाटी व तिनसुखिया तक। इसकी लम्बाई ३२५ मील है। यह मार्ग ब्रह्मपुत्र की घाटी के साथ साथ आगे बढ़ता है और इसलिए सम्पूर्ण मार्ग में कहीं भी पुल द्वारा ब्रह्मपुत्र नदी को पार नहीं करना पड़ता।

(५) इलाहाबाद—वाराणसी—मऊ—गोरखपुर।

(६) बरेली—सीतापुर, गोंडा, गोरखपुर-छपरा-हाजीपुर, झाँसी-कटिहार।

(७) वृन्दावन-हाथरस-कासगंज-बरेली-काठगोदाम।

यह सम्पूर्ण रेलमार्ग कानपुर, लखनऊ और बनारस में उत्तरी रेल मार्ग से मिल जाता है। इस क्षेत्र में उत्तर प्रदेश से आसाम तक यात्रा की जा सकती है। बिहार की सीमा पर स्थित नैपाल इसी रेलवे के साथ जोड़ा गया है। इस क्षेत्र में बनारस, प्रयाग, मथुरा आदि तीर्थ स्थान हैं। क्षेत्र में आसाम के तेलकूप बहुत काम के हैं। कानपुर में चमड़े का काम होता है। यह चमड़ा इसी रेल द्वारा बाहर से कानपुर पहुँचाया जाता है।

(३) **पूर्वी सीमान्त रेलवे** (North East Frontier Railway)—यह रेलमार्ग उत्तरी-पूर्वी रेल मार्ग का ही पूर्वी भाग है। इसकी लम्बाई १,७३८ मील है और इसका प्रधान कार्यालय पाँडु में है। यह रेलमार्ग समस्त आसाम तथा पश्चिमी बंगाल और बिहार के कुछ भागों से होकर निकलता है। इसके द्वारा पैट्रोलियम, चाय, कोयला, लकड़ी, जूट आदि ढोया जाता है।

यह रेल मार्ग उत्तरी-पूर्वी रेलमार्ग से कटिहार और मुरलीगंज में तथा पूर्वी रेलवे से मनिहार घाट में और पाकिस्तान की पूर्वी बंगाल रेलवे से राधिकापुर, सिंदबाद, हल्दीबारी, चन्द्रबन्धा और करीमगंज स्टेशनों पर मिलता है। इसकी सभी लाइनें छोटी लाइनें हैं। केवल २३ मील लम्बा टुकड़ा [हल्दीबारी से छिहाटी (पाकिस्तान) तक] बड़ी लाइन का है। तंग लाइन का एक ५० मील लम्बा मार्ग सिलीगुड़ी से दार्जिलिंग तक चला गया है।

(४) **पूर्वी रेल मार्ग** (Eastern Railway)—इसकी लम्बाई १,३२१ मील है और मुगलसराय और हुगली के बीच गंगा के पूर्वी मैदान में चलता है। पश्चिमी बंगाल तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग इसी की शाखाओं द्वारा संबंधित है। ईस्ट इंडियन रेलवे के पूर्वी भाग (इसमें पांच डिवीजन हैं—दीनापुर, धानबाद, हावड़ा, आसनसोल और सियालदाह।) तथा बंगाल-नागपुर रेलवे को मिला कर यह रेलमार्ग बनाया गया है। इस पर सबसे अधिक यात्री (लगभग ५३ लाख) सफर करते हैं और सबसे अधिक माल (१५ लाख टन) ढोया जाता है। इस मार्ग से ले जाये जाने वाले माल में कोयला, लोहा, मैंगनीज, पटसन, अभ्रक और इसी प्रकार की अन्य खनिज वस्तुओं का महत्व बहुत अधिक है। पूर्वी रेलवे, प० बंगाल और बिहार के जूट उत्पादन क्षेत्रों में, पश्चिमी बंगाल और बिहार की कोयले की खानों तथा कच्चा लोहा और मैंगनीज की खानों, सिंद्री की खाद रसायनशाला तथा चितरंजन इंजिन के कारखानों में सहायता

प्रदान करती है। इस रेलवे में कई तीर्थस्थान तथा यात्रियों के लिये दर्शनीय स्थान पड़ते हैं। वास्तव में पूर्वी गंगा के मैदान में इस रेल मार्ग के द्वारा विविध आर्थिक लाभ होते हैं। इस आर्थिक क्रियाशीलता का कारण यह है कि कलकत्ता बन्दरगाह है और इस प्रदेश में उद्योग धन्धों का केन्द्रीकरण भी विशेष है। इसका कार्यालय कलकत्ते में है। इसकी मुख्य शाखायें निम्नलिखित हैं :—

(१) हावड़ा से वर्दवान, आसनसोल, गया व डेहरी-ऑन-सोन होती हुई मुगलसराय तक यह शाखा जाती है।

(२) हावड़ा से आसनसोल—पटना होती हुई यह शाखा मुगलसराय तक जाती है। इसकी लम्बाई ४११ मील है।

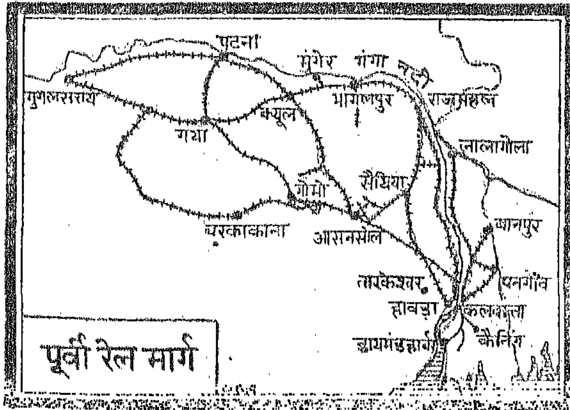
ये दोनों ही लाइनें मुगलसराय में उत्तरी रेलों की शाखाओं से मिल जाती हैं और फिर उनके द्वारा दिल्ली, सहारनपुर व उसके आगे तक भी चली जाती है।

(३) हावड़ा से बरहरवा, साहिबगंज, भागलपुर व जमालपुर होकर किऊल तक जाती है। यह शाखा २५४ मील लम्बी है।

(४) कलकत्ता-मुर्शिदाबाद-लालगोलाघाट।

(५) गोमो-डालटनगंज-डेहरी-ऑन-सोन।

इन सभी शाखाओं को कई उपशाखाओं द्वारा एक दूसरे से मिला दिया गया है।



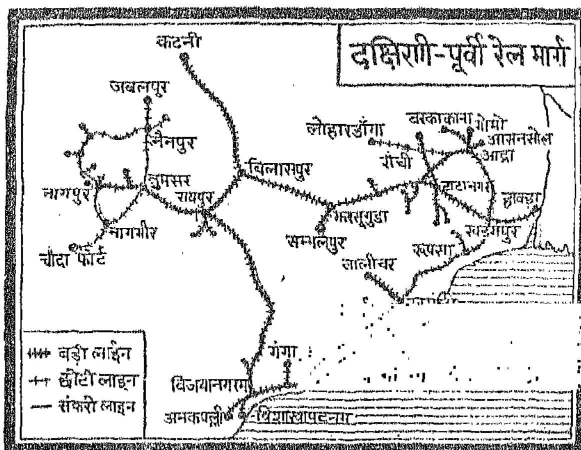
चित्र १६६—पूर्वी रेल मार्ग

(५) **दक्षिणी पूर्वी रेल मार्ग** (South Eastern Railway)—यह रेल मार्ग बंगाल-नागपुर रेलमार्ग को अलग करके बनाया गया है। इसकी लम्बाई ३,४२३ मील है और इसका कार्यालय कलकत्ता में है। यह पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, तथा मध्यप्रदेश के लगभग १८५, ६०० वर्ग मील भूमि की सेवा करता है। इसके द्वारा आंध्र, बिहार, विशाखापट्टनम और कलकत्ता जुड़े हैं। इसके पृष्ठ-देश में अभ्रक, कोयला, ताँबा, मैंगनीज, चूना, बाक्साइट आदि मिलती है। इसी रेलमार्ग पर हीराकुन्ड योजना, विशाखापट्टनम में जहाज-निर्माण शाला, तथा तेल शोधनशाला और बर्नपुर तथा टाटानगर के इस्पात के कारखानें स्थित हैं। इसकी प्रमुख शाखायें ये हैं :—

(१) हावड़ा से नागपुर तक। यह मार्ग ७०३ मील लम्बा है और टाटानगर, बिलासपुर, रूरकेला, भिलाई, गोंडिया और रायपुर इस मार्ग पर केन्द्रित है। इस शाखा के मार्ग में पड़ने वाले क्षेत्र खनिज पदार्थों में धनी है तथा औद्योगिक विकास में आगे बढ़े हुए हैं। इसके द्वारा कोयला, मैंगनीज, लोहा आदि का आवागमन होता है। टाटानगर जैसा प्रमुख केन्द्र भी इसी मार्ग पर स्थित है। टाटानगर को बोनाई, क्योनभर, और सिंघभूमि की लोहे व मैंगनीज की खानों से संबंधित करने केलिये कई छोटी-छोटी उप शाखाओं का निर्माण हो गया है।

(२) हावड़ा से बालासोर, कटक, बरहामपुर और विजयानगरम होकर वाल्टेयर तक जाती है। यह शाखा कुल ५४७ मील लंबी है। यह शाखा मद्रास तक भी चली जाती है।

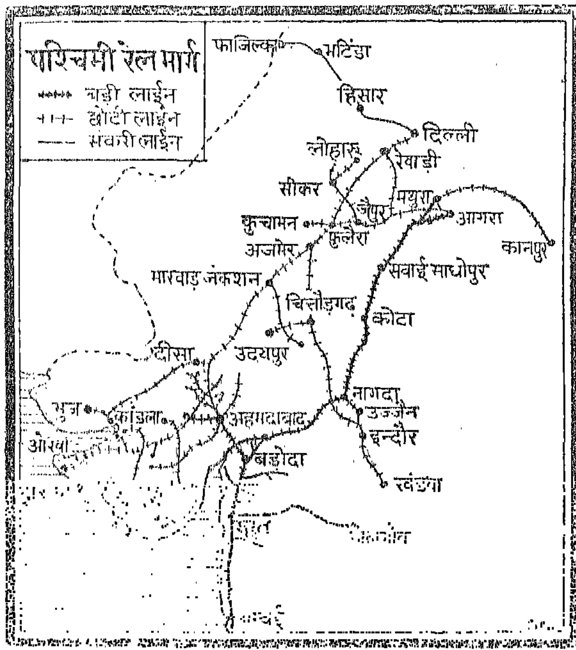
(३) इसकी एक उपशाखा जो रायपुर और वाल्टेयर को मिलाती है बड़ी ही महत्वपूर्ण है। इस लाइन के बन जाने से पूर्वी रेलवे का महत्व बहुत बढ़ गया है। निर्यात की जो वस्तुएं पहले कलकत्ता तक ले जाई जाती थीं अब वे वाल्टेयर से ही बाहर भेज दी जाती हैं। इस शाखा पर लगभग २०० लाख यात्री और १८० लाख टन माल को लाया ले जाया जाता है।



चित्र १६७—दक्षिणी-पूर्वी रेल मार्ग

(६) **पश्चिमी रेल मार्ग** (Western Railway)—यह ६,०१३ मील से भी अधिक लंबा है और बंबई, राजस्थान, मध्यप्रदेश, तथा मध्य भारत के लगभग १½ लाख वर्ग मील भूमि में से निकलता है। इस मार्ग को बंबई, बड़ौदा, सेंट्रल इंडिया रेलवे, सौराष्ट्र व राजस्थान रेलवे और जयपुर रेलवे को मिलाकर बनाया गया है। इस मार्ग के द्वारा कपास व सूती कपड़े, अनाज, नमक, तिलहन और अभ्रक का व्यापार बहुत अधिक होता है। बंबई, अहमदाबाद और बड़ौदा के औद्योगिक केन्द्र इसी मार्ग पर पड़ते हैं। देश विभाजन के बाद करांची के हाथ से निकल जाने से इस मार्ग पर यात्रियों की भीड़ व माल का भार बहुत अधिक हो गया है। इस मार्ग के द्वारा लगभग १ करोड़ टन माल और ८० लाख मनुष्य आते जाते हैं। इसका प्रधान कार्यालय बंबई में है।

पश्चिमी रेलवे अहमदाबाद, इन्दौर, राजकोट, भावनगर आदि की सूती कपड़े की मिलों, लाखेरी, सेवालिया, द्वारका और पोरबन्दर के सीमेंट के कारखानों तथा मीठापुर की रसायनिक कारखानें आदि की सेवा करती है। इस रेलवे को भारत के साँभर, सरगोधा, कुड़ा आदि नमक के प्राचीनतम क्षेत्रों के यातायात एजेन्सी के रूप में काम करने का सौभाग्य तो विरासत में मिला ही है, पश्चिमी तट के दूसरे बड़े बन्दरगाह काँडला की उन्नति में और उदयपुर की उदीयमान जस्त की फैक्टरी को (जो स्वेज के पूर्व में अपनी किस्म की अकेली फैक्टरी है) माल वगैरह पहुँचाने में भी यह रेल सहायक है।



चित्र १६८—पश्चिमी रेल मार्ग

इस रेलवे पर दर्शकों के लिये आंबेर, माँडू, फतहपुर सीकरी, आगरा और उदयपुर स्थान हैं। पवित्र तीर्थ स्थानों के यात्रियों की आवश्यकताओं का अपना महत्व है। पश्चिमी रेलवे पर स्थित बंबई के उपनगर बाँदरा में सितंबर में होने वाले 'लेडी आफ दी माउन्ट' के फीस्ट फैयर, मार्च अप्रेल में अजमेर में होने वाले 'ख्वाजा साहब के उर्स' तथा अक्टूबर महीने में अजमेर के निकट पुष्कर में होने वाले मेले को लीजिये। दूर दूर से हजारों यात्री इनमें आते हैं। द्वारका, सोमनाथ, पालीताना, अंबाजी, नाथद्वारा, मथुरा, क्षिप्रा, ओंकारेश्वर आदि भी वे पवित्र स्थान है जो देश भर के हजारों यात्रियों को आकर्षित करते हैं।

इसकी मुख्य शाखायें ये हैं :—

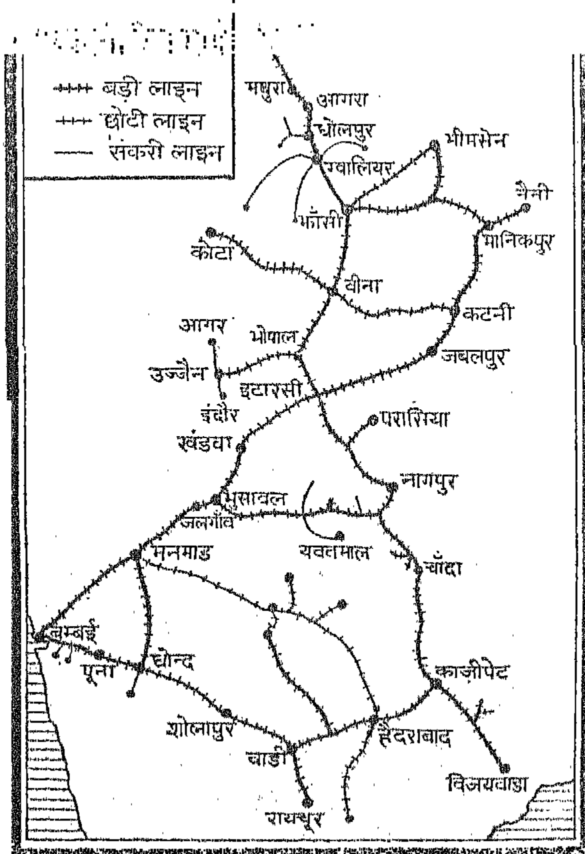
(१) एक शाखा बम्बई से सूरत, बड़ौदा, रतलाम, नागदा, कोटा, सवाईमाधो-

पुर, बयाना होकर दिल्ली तक जाती है। बयाना से एक लाइन आगरा को जाती है। और आगरा व कानपुर के बीच छोटी लाइन द्वारा सम्बन्ध है।

(२) बम्बई से सूरत व बड़ोदा होकर अहमदाबाद तक जाती है। यह शाखा ३०६ मील लम्बी है और भुसावल से एक उपशाखा द्वारा मिला हुआ है और भुसावल नागपुर से सम्बन्धित है।

इसकी प्रमुख छोटी लाइनें इस प्रकार हैं:—(१) अहमदाबाद से आबूरोड, अजमेर-फुलेरा, रेवाड़ी होती हुई दिल्ली तक। इस शाखा की लम्बाई ५३९ मील है और आबूरोड, ब्यावर, अजमेर, जयपुर और अलवर रास्ते में पड़ते हैं। अजमेर से एक उपशाखा चित्तौड़, इन्दौर होती हुई खंडवा तक जाती है। (२) पोरबन्दर से डाहाला, राजकोट से वेरावल, कांडला से भुज और सुरेन्द्रनगर से ओखा तक अन्य शाखायें हैं।

(७) **मध्यवर्ती रेल मार्ग (Central Railway)**—इसकी सम्पूर्ण लम्बाई



चित्र १६९—मध्यवर्ती रेल मार्ग

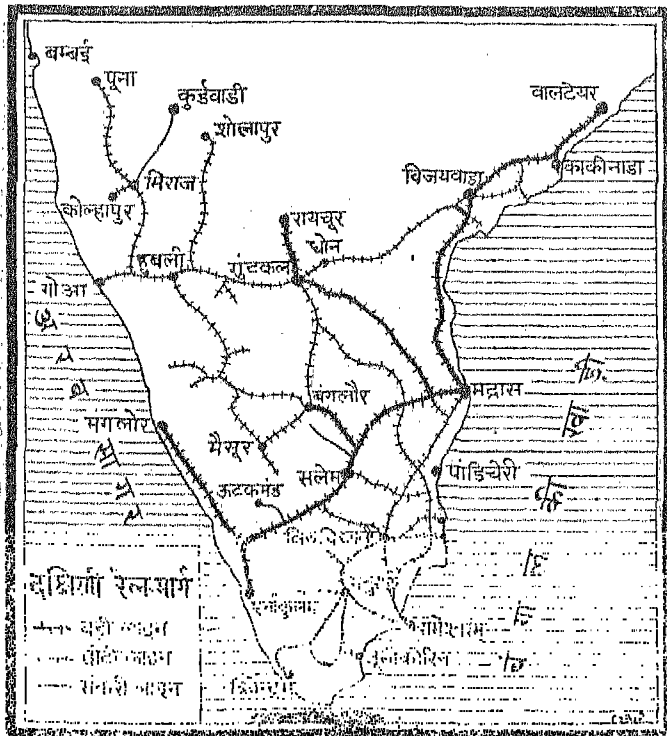
५,२९५ मील है और यह मध्य प्रदेश तथा मद्रास के उत्तरी पश्चिमी भाग से होकर जाती है। जी० आई० पी० रेलवे और सिन्धिया रेलवे को मिलाकर यह रेल मार्ग बना है। यह रेल मार्ग २,१०,००० वर्गमील क्षेत्र में फैला है। इसकी प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं :—

(१) बम्बई से भुसावल, खंडवा, इटारसी, भोपाल, झांसी, ग्वालियर, आगरा, मथुरा होकर दिल्ली तक जाती है। यह शाखा ९५८ मील लम्बी है। इटारसी एक उपशाखा द्वारा इलाहाबाद व नागपुर से भी सम्बन्धित है।

(२) बम्बई से रायचूर तक। रास्ते में पूना, धोंद, शोलापुर व वादी पड़ते हैं। इसकी कुल लम्बाई ४४३ मील है। यह शाखा आगे बढ़ कर बंगलौर तक भी चली जाती है।

(३) दिल्ली से विजयवाड़ा तक इटारसी, नागपुर, वर्धा और काजीपेट होती हुई यह शाखा मद्रास तक चली जाती है। एक उपशाखा द्वारा काजीपेट हैदराबाद से सम्बन्धित है।

इस मार्ग से बम्बई, मध्य प्रदेश और भोपाल को विशेष लाभ पहुँचता है। मध्य प्रदेश की कपास व मैंगनीज, तांबा, अल्यूमीनियम और पीतल तथा भोपाल की



चित्र १७०—दक्षिणी रेल मार्ग

लकड़ी इसी मार्ग द्वारा व्यापार में आती है। साधारणतया इस पर ५०० लाख यात्री यात्रा करते हैं और ११० लाख टन माल लेजाया जाता है । इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है।

(८) दक्षिणी रेल मार्ग (The Southern Railway)—मैसूर रेलवे, मद्रास और साउथ मरहट्टा रेलवे तथा साउथ इण्डिया रेलवे को मिलाकर यह रेल मार्ग बनाया गया है। इसकी कुल लम्बाई ६,०६२ मील है। इसमें छोटी व बड़ी दोनों ही प्रकार की लाइनें मिली हुई हैं। इसका प्रधान कार्यालय मद्रास में है। मद्रास, मैसूर, केरल तथा दक्षिणी महाराष्ट्र और आंध्र के कुछ भाग इसके मार्ग में पड़ते हैं। इसकी बड़ी लाइन वाली शाखाएँ निम्नलिखित हैं :—

(अ) मद्रास से वाल्टेयर तक—नेलोर और विजयवाड़ा होती हुई यह शाखा ४९८ मील लम्बी है इनके द्वारा मद्रास और कलकत्ते के बीच सम्बन्ध स्थापित होता है।

(आ) कडुपा द्वारा मद्रास से रायपुर तक इसकी लम्बाई ३५१ मील है यह शाखा मद्रास व बम्बई को मिलाती है।

(इ) मद्रास से बंगलौर तक—इसकी कुल लम्बाई २२२ मील है।

(ई) जलारपत से मङ्गलौर तक यह शाखा ४२३ मील लम्बी है और सलेम, ईरोड़, कोयम्बटूर व तैलीचेरी से होकर जाती है। जलारपत, बंगलौर और उटकमंड से मिला हुआ है।

छोटी लाइन की प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं :—

(अ) पूना से हरिहर तक—यह पूरा मार्ग ४१५ मील है। मद्रास बम्बई तक आने का यह वैकल्पिक मार्ग है। हरिहर से एक लाइन बंगलौर तक जाती है।

(आ) गुन्तकल से मसलीपट्टम तक—यह लाइन ३२० मील लम्बी है और विजयवाड़ा होकर जाती है।

(इ) मद्रास से धनुषकोटि तक तन्जोर और तिरूचिरापल्ली होता हुआ यह मार्ग ४२२ मील लम्बा है।

(ई) मद्रास से त्रिवेन्द्रम तक—यह शाखा तिरूचिरापल्ली, विरुधनगर, मदुराई और क्विलन होती हुई ५१२ मील का अन्तर पार करती है। विरुधनगर से एक उपशाखा तूतीकोरन तक जाती है।

कई शाखायें व उपशाखायें मद्रास, कोचीन, तूतीकोरन, अलप्पी, क्विलन और कोजीखोड़ को मिलाती हैं। खाद्यान्न, कपास, तिलहन, नमक, चीनी, तम्बाकू, लकड़ी और खाल व चमड़े इस मार्ग से ढोई जाने वाली विभिन्न वस्तुयें हैं। इस रेल द्वारा २७० लाख यात्री यात्रा करते हैं और १० करोड़ टन माल ढोया जाता है।

आय के अनुसार भारतीय रेलों को तीन भागों में बाँटा गया है :—

(१) **प्रथम श्रेणी** (First Class) की रेलें वे हैं जिनकी वार्षिक आय ५० लाख या इससे ऊपर रुपयों की होती है। ऐसी रेलों की लम्बाई ३३,५८१ मील मानी गई है। १९४८ में प्रथम श्रेणी की १३ रेलें थी।

(२) **द्वितीय श्रेणी** (Second Class) के अन्तर्गत वे रेल मार्ग आते हैं जिनकी वार्षिक आय १० लाख से ५० लाख रुपये तक होती है। इनकी लम्बाई २९६ मील कूंती गई है। १९४८ में द्वितीय श्रेणी की १० रेलें थीं।

(३) तृतीय श्रेणी (Third Class) की रेलें वे हैं जिनकी आय १० लाख रुपये वार्षिक से भी कम हैं। इनकी लम्बाई केवल ४६१ मील है। १९४८ में तृतीय श्रेणी की १९ रेलें थीं।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में केवल ३५,०८१ मील लम्बी रेल मार्ग है, जिसमें से १६,१४२ मील बड़ी लाइन (५½'), १५,३५० मील छोटी लाइन (३'—३⅜") और ३,२८८ मील तंग या सकरी लाइन (२-६" और २') है। समस्त देश के विस्तार, क्षेत्रफल और जन संख्या को देखते हुए यह बिल्कुल ही अपर्याप्त है। अन्य देशों की तुलना में तो यह विस्तार नगण्य सा ही है जैसा पहले दी गई तालिका से ज्ञात होगा।

भारत में रेलों से लाभ

(१) रेलवे लाइनों से एक बड़ा लाभ यह हुआ कि देश में पड़ने वाले दुर्भिक्षों की भयंकरता बहुत कम हो गई। भारत में जो दुर्भिक्ष काल में असंख्य मनुष्यों तथा पशुओं की मृत्यु हो जाती थी वह बन्द हो गई है। अब रेलवे लाइनों के बन जाने से खाद्यान्न का अकाल नहीं रहता वरन् द्रव्य का अकाल भर होता है। रेलों द्वारा खाद्य पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर सरलता पूर्वक भेजे जा सकते हैं। १९४३ में जो बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ा था यह एक अपवाद था।

(२) रेलों के खुल जाने से भारत के किसान का सम्बन्ध संसार के बाजारों से हो गया है।[1] आज भारत के गाँवों में खेती का धंधा गांव की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं किया जाता। जिन प्रदेशों में रेलों का विस्तार नहीं हुआ है वहाँ खेती स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अब भी की जाती है, वरन् व्यापारिक खेती (Commercial Agriculture) बहुत बढ़ गई है इसका मतलब यह है कि किसान अब स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नहीं वरन् सुदूर बाजारों के लिये खेती की पैदावार करता है। अब वह जूट, गन्ना, कपास, तिलहन इत्यादि की खूब पैदावार करता है और उसके बदले में उन्नत बीज, नवीन औजार, रासायनिक खाद और मशीनें तथा निर्मित वस्तुयें प्राप्त करता है।

(३) भारत जैसे विशाल देश को एक बनाने में रेलों का बहुत हाथ रहा है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में रहने वालों के एक दूसरे के मिलने के कारण देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ है, साथ [illegible] भी रेलों द्वारा देश में शांति बनाये रखने में सहायता मिली है। [illegible] की सुविधा होने के कारण छूआ-छूत तथा मानसिक रूढ़ियाँ भी कम हुई हैं। रेलों में यात्रा करने पर निवासियों का कट्टरपन नहीं चल सकता और क्रमशः वे उन रूढ़ियों को छोड़ते जाते हैं।

(४) यातायात के साधनों का विकास होने से मजदूरी की गतिशीलता बढ़ी है, जिन प्रदेशों में जनसंख्या बहुत कम थी वहाँ घने आबाद प्रदेशों से आकर लोग बस गये हैं और उनकी सहायता से वहाँ की पैदावार बढ़ गई है। आसाम तथा पूर्वी पंजाब का नहर—उपनिवेश इसके मुख्य उदाहरण हैं। मुख्य औद्योगिक केन्द्रों में कई प्रदेशों से आये हुए मजदूर काम करते पाये जाते हैं। यह भी रेलवे के कारण ही सम्भव हो सका है।

1. Report of the Royal Commission on Agriculture, p. 362.

(५) रेलों के कारण देश में बहुत से धन्धे आरम्भ हुए और आज भी उनके कारण ही वे पनप रहे हैं। बड़े-बड़े कारखाने तब तक स्थापित नहीं हो सकते थे जब तक अत्यधिक राशि में कच्चा माल, मशीनें इत्यादि लाने और तैयार माल को दूर-दूर के बाजारों में भेजने की सुविधा रेलों द्वारा प्राप्त न हो जावे। कोयला, लोहा, स्टील तथा अन्य खनिज धन्धे और लकड़ी का धन्धा बहुत कुछ रेलों की मांग पर निर्भर है। यही नहीं रेलवे का एक बहुत बड़ा धन्धा है जिसमें १९५६ में प्रति दिन ११ लाख व्यक्ति काम करते थे। रेल वर्कशापों में बहुत बड़ी संख्या में मजदूर काम करते हैं। भारत में रेलवे के कारण ही ईंटें बनाने, इंजीनियरिंग तथा मिस्त्रीगीरी का उद्योग आरम्भ हुआ।

(६) सूती, ऊनी, वस्त्र व्यवसाय, लोहा और इस्पात का उद्योग, जूट उद्योग, तथा चीनी, सीमेंट, दियासलाई आदि उद्योगों के विकास का श्रेय रेलों को ही है। तेजी से रेलों द्वारा वस्तुयें एक स्थान से दूसरे स्थान भेजी जा सकने के कारण देश के व्यापार में बहुत वृद्धि हुई। आज देश विदेशों की वस्तुयें कोने-कोने में पहुँचती हैं। दूध, घी, फल, सब्जी, अंडे, मछली जैसे नष्ट होने वाले पदार्थ भी आज बड़े-बड़े नगरों में दूर-दूर से पहुँचते हैं जो पहले सम्भव नहीं था। बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि बड़े नगरों में दूध, मक्खन, सब्जी, मछलियाँ आदि की पूर्ति २५—३० मील के क्षेत्रों से होती है।

रेलों द्वारा होने वाली हानियाँ :

(१) रेलों से केवल लाभ ही नहीं हानियाँ भी हुई हैं। रेलों की सुविधा होने के कारण व्यापारी ऐसे पदार्थ को भी देश से बाहर भेज देते हैं जिनकी देश को बहुत आवश्यकता होती है। रेलों ने विदेशी माल को कोने-कोने में पहुँचाकर देश के कुटीर अथवा गृह उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया इसका फल यह हुआ कि जो असंख्य कारीगर (जुलाहे, लुहार, तेली इत्यादि) गृह-उद्योग-धंधों में लगे हुए थे, बेकार हो गये और उन्हें खेती में लगना पड़ा। इसका एक बुरा परिणाम यह हुआ कि खेती पर आवश्यकता से अधिक लोग निर्भर हो गए।

(२) रेलों ने पुराने नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों को महत्वहीन कर दिया और नए केन्द्रों को उत्पन्न कर दिया। उससे एक हानि यह हुई कि देश का पुराना आर्थिक संगठन नष्ट हो गया किन्तु नया सन्तुलित आर्थिक संगठन अच्छे प्रकार से स्थापित नहीं हुआ। रेलों ने जिन व्यापारिक केन्द्रों का निर्माण किया वे विदेशी माल को बेचने की मण्डियाँ मात्र थीं।

(३) जिस समय रेलवे लाइनों को बनाया गया उस समय देश के प्राकृतिक बहाव की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि रेलवे लाइनों ने बहुत से स्थानों पर प्राकृतिक बहाव को रोक दिया जिससे देश में मलेरिया का प्रकोप बढ़ गया।

(४) रेलवे लाइन आरम्भ में विदेशी कम्पनियों के हाथ में थीं, इस कारण उसकी सदैव यह नीति रहती थी कि देश में विदेशों से पक्का माल आ सके और कच्चा माल विदेशों को भेजा जा सके। देश के उद्योग-धंधों को उन्होंने कभी भी प्रोत्साहन नहीं दिया। अधिकतर उनकी नीति देश के उद्योग धन्धों के हितों के विरुद्ध रही।

(५) रेलों से एक हानि यह हुई कि विदेशों से आने वाली बीमारियाँ भी देश के कोने-कोने में पहुँच गईं।

विद्युत चालित रेलों का विकास (Electric Trains) :

भारत में बम्बई और मद्रास में सबर्बन रेलों के विद्युतीकरण पर सबसे पहले १९३० में विचार किया गया, किन्तु पहले विश्वयुद्ध के कारण विचार को कार्यरूप में परिणित करने में देरी हुई। काम १९२५में आरम्भ हुआ। बिजली की रेल का सबसे पहला सेक्शन विक्टोरिया टर्मिनस (कुरला) था। १९२८ तक जी० आई० पी० रेलवे ने इस सेवा का विस्तार बम्बई से लगभग ३४ मील दूर कल्याण तक कर दिया। १९२८ में बी. बी. एण्ड सी. आई. रेलवे ने भी चर्चगेट-बोरीविली सेक्शन में और बाद में विरार तक की लगभग ३६ मील की दूरी में बिजली की रेल चला दी। १९३१ से मद्रास और तम्बरम के बीच की लगभग १८ मील की दूरी भी बिजली की रेल द्वारा तय की जाने लगी। १९३६ के बाद भारत में बिजली की कोई वृद्धि नहीं हुई।

बम्बई में विद्युत-चलित सबर्बन गाड़ियां बहुत लोकप्रिय हुई हैं और उससे बम्बई की बस्तियों का बहुत विस्तार हुआ है। वहाँ की जनसंख्या १९३० में लगभग १५ लाख थी जो १९५०-५१ में ३५ लाख हो चुकी थी। १९२६-२७ में बम्बई की इन गाड़ियों में ४८० लाख लोगों ने यात्रा की थी और १९५१-५२ में यह संख्या बढ़कर ३,००० लाख हो गई थी। बम्बई में आजकल मध्य और पश्चिमी रेलों की प्रतिदिन लगभग ७०० सबर्बन गाड़ियां चलती हैं, किन्तु यात्रियों की संख्या और भीड़ को देखते हुए वे भी अपर्याप्त हैं। १९५१-५२ में दक्षिणी रेलवे की बिजली से चलाने वाली उपनगरीय गाड़ियों में २८० लाख व्यक्तियों ने यात्रा की। बम्बई के पूर्व में पश्चिमी घाट की चढ़ाई-उतराई में भाप के एन्जिनों से गाड़ियाँ ले जाने में बहुत कठिनाई और खर्च बैठता था, इसलिए बम्बई से पूना और बम्बई से इगतपुरी के सेक्शनों में भी १९२७ से बिजली की रेल चलाई जाने लगीं। दिसम्बर १९५७ में १४ मील लम्बे टुकड़े पर हावड़ा और शिवराफूली के बीच प्रथम बार बिजली की गाड़ी चलाई गई।

३१ मार्च १९५९ को केवल ३२८·८७ मील लम्बे रेल मार्ग का संचालन बिजली के एन्जिनों द्वारा हुआ—मध्यवर्ती रेल १८४·८५ मील बम्बई-कुरला, कल्याण; पूना-इगतपुरी और कुरला-मनकुर्द; पश्चिमी रेलवे ३७·२५ मील (मद्रास-लम्बरन) और पूर्वी रेल ८८·६३ मील और दक्षिणी रेलवे १८·१४ मील (बम्बई-बौरीविली-विरार)।

भारत में रेलें चलाने के लिए १.५०० वोल्ट डी० सी० बिजली काम में लाई जाती है। बम्बई में सबसे अधिक बिजली रेलें खर्च करती हैं, जिनमें प्रतिवर्ष २,८७० लाख यूनिट बिजली खर्च होती है। अधिकांश बिजली रेलों के अपने बिजली-घर से सप्लाई होती है।

नीचे के आंकड़ों से ज्ञात होगा कि अभी तक भारत में बिजली से चलने वाली रेलों का विकास बहुत ही कम हुआ है :—

देश	रेल मार्ग (Route Mileage) मीलों में	रेल पटरी (Track)
ग्रेट ब्रिटेन	९०५	२,३०३
जापान	३,५१९	६,००८
जर्मनी	१,८४३	४,३००
अमेरिका	२,७०८	४,५२५
फ्रांस	२,५२०	४,६७४
इटली	३,२०५	६,४५८

देश	रेलमार्ग (Route Mileage) मीलों में	रेल पटरी (Track)
स्वीडन	३,६१५	५,८६३
स्विट्जरलैंड	३,००८	२,५६५
भारत	२५४	५२३
रूस	१,०४०	१,५६५

द्वितीय योजना के अन्तर्गत १,४४२ मील लम्बा रेल मार्ग विद्युत शक्ति द्वारा संचालित होगा। यह इस प्रकार होगा :—

	मील
पूर्वी रेलवे—	
कलकत्ता—क्षेत्र, बर्दवान—आसनसोल, आसनसोल—गुमह	७३०
दक्षिणी-पूर्वी रेलवे	
हावड़ा—खड़गपुर	४२०
मध्यवर्ती रेलवे	
ईगतपुरी—भुसावल	१९२
दक्षिणी रेलवे	
मद्रास-ताम्ब्रम-विलूपुरम	१००
	१,४४२ मील

बढ़ते हुए रेलों के भार को कम करने हेतु कई स्थानों के बीच रेल लाइनों को दुहरा भी किया जायगा। जैसे—पूर्वी रेल मार्ग, ४३ मील; द० पू० रेल मार्ग ६०५ मील; मध्यवर्ती रेल मार्ग २१४ मील; द० रेल मार्ग ४०२ मील; उत्तरी रेल मार्ग १५१ मील; पश्चिमी रेल मार्ग १६३ मील; और उत्तरी-पूर्वी रेल मार्ग, २९ मील—योग १,६०७ मील।

दक्षिणी रेलवे के २६५ मील लम्बे टुकड़े को बड़ी लाइन में भी बदला जायेगा।

तृतीय योजना के अन्तर्गत १,२०० मील लंबी नई रेल की लाइनें बनाई जायेंगी। इस काल में न केवल द्वितीय योजना काल में आरम्भ की गई (i) गढ़वारोड-रोबर्टस्गंज; (ii) संबलपुर-तितलागढ़ और (iii) बिमलगढ़-किरीबुरू शाखाओं को ही समाप्त किया जायेगा वरन् इन नई शाखाओं पर भी काम आरम्भ होगा:—

(१) भुज-कांडला,
(२) माधोपुर-कठुवा,
(३) उदयपुर-हिम्मतनगर,
(४) पथारकंडी-धर्मनगर,
(५) गूना-माक्षी,
(६) रांची-बोंदामुंडा,
(७) हिंदुमलकोट-श्रीगंगानगर,
(८) गाजियाबाद-तुगलकाबाद,
(९) बैलादिला-कोटवलसा

इनके अतिरिक्त कोयला क्षेत्रों में भी २०० मील लम्बा रेलमार्ग बनाया जायेगा।

अध्याय ३३

(२) जल और वायु यातायात

(Water and Air Transport)

अति प्राचीन काल से ही भारत में नदियाँ भीतरी भागों में यात्रियों को ले जाने और माल ढोने के काम में आती रही हैं। श्री रैनेल ने इस बात का उल्लेख किया है कि "सिंध और उसकी सहायक नदियों द्वारा सिंध की राजधानी टाटा और मुलतान तथा लाहौर के बीच २०० टन वाले जहाज आसानी से आते-जाते थे और इन स्थानों के बीच औरंगजेब के राज्य काल में भी बहुत व्यापार होता था। किन्तु अब्ब सिन्ध की सरकार के ढीलेपन और सिक्खों की लड़ाकू प्रकृति के कारण इस यापार में कमी हो गई है।"

गंगा और ब्रह्मपुत्र के बारे में उनका लिखना है कि "इन दोनों नदियों ने अपनी शाखाओं सहित सम्पूर्ण बंगाल में इस प्रकार का जाल फैला रखा है कि जिसके द्वारा सभी भागों को जल मार्गों द्वारा पहुँचाया जा सकता है। इन नदियों द्वारा निकाली गई नहरें भी इसी प्रकार पूर्णता को पहुँच गई हैं कि बर्दवान तथा बीर भूमि की ऊँची भूमि को छोड़कर हम यह कह सकते हैं कि राज्य के सभी भागों में—ग्रीष्म काल में भी—कुछ मार्ग २५ मील की दूरी तक भी नाव्य हैं।"

भारत में जल यातायात को तीन भागों में बाँटा जा सकता है : (१) भीतरी जल मार्ग (क) नहरें, (ख) नदियाँ; (२) सामुद्रिक जलमार्ग।

(१) भीतरी जलमार्ग :

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय नदियों का उपयोग यातायात के लिये होता रहा है। किन्तु नदी-यातायात का ह्रास रेल के विकास के साथ-साथ १८५५ ई० से आरम्भ हुआ। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत सरकार के प्रधान इंजीनियर सर आर्थर काटन (Sir Arthur Cotton) ने पार्लियामेंट की एक कमेटी के सम्मुख कहा था, "मेरा कहना है कि भारत के लिये जलमार्ग अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। रेलों पर जितना व्यय हुआ है उससे आठवें भाग में नहरें बनाई जा सकती हैं जो माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहुत कम खर्च में ले जा सकती हैं। इन नहरों से सिंचाई भी होगी और वे व्यापारिक जलमार्ग का काम भी देंगी।" सर काटन ने नहरें बनाने की पूरी योजना बनाई थी जिसमें ३ करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान लगाया गया था। यह योजना इस प्रकार थी :—

(क) कलकत्ता से करांची—[illegible]।

(ख) कोकोनाडा से सूरत—[illegible] मिलाकर।

(ग) तुङ्गभद्रा से एक नहर निकालकर, अरब सागर के किनारे कारबर तक जाने का मार्ग।

(घ) पोनंग नदी द्वारा पायनघाट और कोयंबटूर से होते हुए एक मार्ग।

इस योजना द्वारा समस्त भारत में नहरों का एक जाल बिछा देने का विचार था किन्तु ब्रिटिश पूँजीपतियों ने इसका विरोध किया क्योंकि उनकी अधिकांशत: पूँजी रेलों में लगी थी। अस्तु, भारत सरकार ने भीतरी मार्गों को उन्नत करने का कोई प्रयास नहीं किया। बीसवीं शताब्दी में भारत में सिंचाई के लिये नहरों को बनाने का कार्य बड़े उत्साह से किया गया। इसका प्रभाव भी नदी-यातायात पर बुरा पड़ा क्योंकि नदियों में मुख्यत: ऊपरी भागों में नहरों में जल दिये जाने से जल की कमी होने लगी। इन नहरों में भी देश की बहुत पूंजी लगी हुई है किन्तु भारत सरकार ने नहरों को जलमार्ग बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप देश में जल मार्गों की उन्नति नहीं हो सकी।

(क) नहरें (Canals)—भारत की कुछ नहरें भी जलमार्गों का काम देती है। भारत में नावें चलाने योग्य नहरों की लम्बाई इस प्रकार है :—

(१) पूर्वी पंजाब की सरहिन्द नहर में हिमालय पर्वत की लकड़ियाँ बहाकर लाई जाती हैं।

(अ) बंगाल-मिदनापुर नहर ५५ मील, हिजली नहर ५० मील, उड़ीसा तटीय नहर ५४ मील, कलकत्ता और पूर्वी नहर ८३४ मील।

(ब) मद्रास-गोदावरी नहर ५०० मील; कृष्णा ४०० मील; बकिंघम नहर २६८ मील; वैदनारायणम नहर ३५ मील; पश्चिमी तटीय नहर ४०० मील।

(स) गंगा की नहरें ३३६ मील।

(द) बिहार उड़ीसा की नहरें, ५०० मील।

(२) गंगा यमुना की नहरों में भी थोड़ी बहुत खेती की पैदावार एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाई जाती है

(३) बंगाल का पश्चिमी भाग तो नहरों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। भारत के विभिन्न भागों से निर्यात के लिये जो माल कलकत्ता को आता है उसका लगभग २५% जल मार्गों द्वारा ही लाया जाता है। इसका भी ६३% तो अकेले आसाम से ही नदियों और नहरों द्वारा आता है। कलकत्ता के जल-मार्गों द्वारा किये जाने वाला व्यापार प्रतिवर्ष लगभग ४५ लाख टन होता है जिसमें ३४% स्टीमरों द्वारा और ६६% देशी नावों द्वारा ढोया जाता है। यात्री भी नावों द्वारा अधिक आते-जाते हैं। हिजली, सरकूलर, पूर्वी नहर, मिदनापुर और उड़ीसा द्वारा पश्चिमी जिलों की पैदावारें कलकत्ता तथा अन्य व्यापारिक मण्डियों को पहुँचाई जाती हैं।

(४) दक्षिणी भारत में बकिंघम नहर कोरोमण्डल तट पर दक्षिण की ओर २७६ मील तक चली जाती है और मद्रास को कृष्णा के डेल्टा से जोड़ती है।

(५) गोदावरी में दोलेश्वरम तक तथा कृष्णा नहर में ४०० मील तक नावें चलती हैं।

(६) कर्नूल कडप्पा नहर भी १९० मील तक नावें चलाने योग्य है। दक्षिणी भारत में नदियों के डेल्टा की कपास, चावल आदि इन्हीं नहरों द्वारा ढोया जाता है। केरल के तटीय भागों में आवागमन के लिये नहरों का अधिक उपयोग किया जाता है।



चित्र १७१—केरल में यातायात का प्रमुख साधन—नहरें

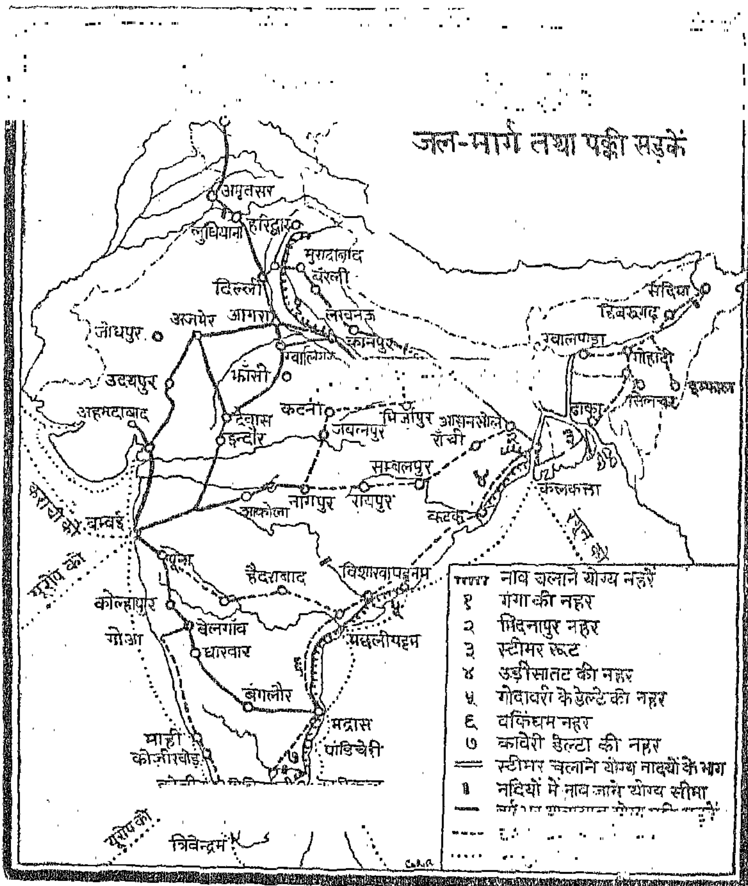
(ख) **नदी यातायात (River Transport)**—सम्पूर्ण भारत में जल-मार्गों की लम्बाई ४१,००० मील है जिनमें से २६,००० मील लम्बी नाव्य नदियाँ और १५,००० मील लम्बी नहरें हैं। भारत में साल भर जारी रह सकने वाले जल-मार्गों पर स्टीमर्स और बड़ी-बड़ी देशी नावें चलती हैं। उत्तरी भारत में नदियों में २,००० मील तक जहाज चलते हैं। जल-मार्गों की दृष्टि से बङ्गाल, आसाम, मद्रास तथा बिहार महत्वपूर्ण हैं। भारत में जल-मार्गों की लम्बाई उत्तर प्रदेश में ७४५ मील; बिहार में ७१५ मील पश्चिमी बङ्गाल में ७७७ मील, आसाम में ९२० मील, उड़ीसा में २८७ मील और मद्रास में १,७०० मील है। भारत के परिवहन मन्त्रालय के अनुसार शक्ति चालित नावें चलाने योग्य जल-मार्गों की लम्बाई ५,७६० मील है। इसमें से २,७४८ मील का नहर मार्ग तथा पृष्ठ-जल मार्ग है जो छोटी देशी नावों के योग्य है। [illegible] मील के जल मार्ग देशी नावों के यातायात योग्य एवं १,५३७ मील स्टीमरों [illegible] के योग्य है।

इन आँकड़ों में बड़े-बड़े जहाजों और बड़ी-बड़ी नावों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले मुख्य-मुख्य जल-मार्ग ही शामिल हैं। इसमें से १,७६२ मील में बड़े-बड़े जहाज चल सकते हैं, जैसा कि निम्न तालिका में प्रतिभासित होगा[1] :—

ब्रह्मपुत्र नदी :	
डिब्रूगढ़ से सदिया तक (केवल वर्षा ऋतु में)	६० मील
भागीरथी नदी :	
कलकत्ता से गङ्गा नदी तक (केवल वर्षा ऋतु में)	१८० ,,
ब्रह्म पुत्रा नदी :	
डिब्रूगढ़ से धूबरी	४०० ,,
सहायक नदियों से सेवाएँ	३७५ ,,

1. *Indian Year Book : 1952-53, p., 283.*

सुरमा घाटी में सहायक सेवायें	७५ मील
हुगली नदी :	
कलकत्ता से सुन्दरवन	१५० ,,
घाघरा नदी :	
गङ्गा के संगम से वरहज	६७ ,,
गंगा नदी :	
पटना से बक्सर	१०० ,,
पटना से लालगोला	३१५ ,,
जोड़	१,७६२ ,,



चित्र १७२—भारत के जल मार्ग

दक्षिणी भारत में गोदावरी, कृष्णा, नर्बदा तथा ताप्ती नदियों के निचले भागों में ही नावें चल सकती हैं। इनका शेष भाग पठारी है। गंगा नदी में मुहाने से ५०० मील ऊपर तक (जहाँ लगातार रूप से नदी ३० फीट गहरी है) कानपुर तक स्टीमर चला करते हैं। छोटी-छोटी नावें तो हरिद्वार तक जा सकती हैं किन्तु रेलों के बन जाने से गंगा का महत्व कम हो गया है। सन् १८५४ तक इलाहाबाद से ४०० मील और ऊपर गढमुक्तेश्वर तक स्टीमर चले जाते थे किन्तु अब केवल बक्सर तक ही नदी पर नावें चलाई जा सकती हैं।

यमुना नदी में प्रयाग से राजापुर तक साल भर नावें चलती हैं।

ब्रह्मपुत्र नदी में मुहाने से डिब्रूगढ़ तक ८६० मील तक नावें चलती हैं किन्तु इस नदी में नावें चलाने में कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। नदी के मार्ग में प्रायः नये-नये द्वीप बनते रहते हैं जिसमें नावों को खेने में बड़ी अड़चन पड़ती है तथा वर्षा-ऋतु में जल की तेजी के कारण नावों के उलट जाने का डर रहता है। हुगली नदी में भी नादिया तक जहाज पहुँच सकते हैं। छोटी-छोटी नहरें बड़ी-बड़ी नदियों को जोड़ती हैं, इसलिए कलकत्ते से आसाम तक स्टीमर चलते हैं। अधिकांश जूट, चाय, लकड़ी और चावल नावों से ही बड़े-बड़े शहरों में पहुँचाया जाता है।

यद्यपि भारत में नदियाँ बहुत हैं किन्तु फिर भी आन्तिरिक आवागमन के लिए उनका पूर्ण उपयोग नहीं होता। इसका मुख्य कारण भूमि की रचना तथा अब तक विदेशी सरकार का ध्यान केवल रेल-मार्गों की उन्नति करना ही रहा है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित मुख्य कारण हैं :—

(१) भारत की अधिकांश नदियों में वर्षा के दिनों में बाढ़ आ जाती है। इस समय नदी की धारा तेज होती है अतः उसमें नाव खेना बड़ा कठिन होता है।

(२) गर्मी के दिनों में अधिकाँश नदियाँ सूखी रहती हैं। जो कुछ थोड़ा बहुत जल नदियों में मिलता है वह जाड़ों और गर्मियों के आरम्भ में यहाँ की विशाल नहर व्यवस्था को जल देने के लिए उपयोग में आ जाता है। सिंचाई के लिए जल को इस तरह अलग कर देने से नदियों में सूखी ऋतु में जल नहीं रहता।

(३) दक्षिण की नदियाँ तो पठारी भूमि पर बहने के कारण नावें चलाने के योग्य हैं ही नहीं क्योंकि इनके मार्गों में जगह-जगह प्रपात पड़ते हैं।

(४) कभी-कभी नदियाँ अपने मार्ग भी बदला करती हैं इस कारण भी उनका उपयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर पतली धारा के रूप में बहने लगती हैं। अधिकतर नदियों के किनारे बहुत दूर तक रेती रहती है। इस कारण नदी के किनारे तक लदी हुई गाड़ियों का आना कठिन हो जाता है।

(५) प्रायः सभी नदियाँ छिछले तथा बालूमय डेल्टाओं में गिरती हैं अतः समुद्री किनारे से देश के भीतरी भागों में जहाज नहीं जा सकते।

भारत में नदी यातायात को विकसित करने की बड़ी आवश्यकता है। पिछले महायुद्ध के समय इसका महत्व विशेष रूप से सामने आया। अभी तक जल यातायात प्रान्तीय सरकारों का विषय रहा है इस कारण से भी इसके देशव्यापी विकास की कोई योजना नहीं बन सकी। देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जो विधान बना है उसमें

अन्तर्राज्यीय नदियों और जल मार्गों का यातायात भारत सरकार का विषय कर दिया गया है और केन्द्रीय जल शक्ति, सिंचाई और नौका संचालन आयोग (Central Waterways, Irrigation and Navigation Commission) के जिम्मे देश के नदी यातायात को एक योजना के आधार पर विकसित करने का काम सौंपा गया है। पूना में एक नदी यातायात अनुसंधानशाला (River Research Institute) की स्थापना भी की गई है।

इस प्रश्न पर यह आयोग दो दृष्टियों से विचार कर रहा है। एक तो वर्तमान जलमार्गों का सुधार और नये जलमार्गों की स्थापना करना और उनको नावें चल सकने योग्य बनाना। दूसरे, संगठन और व्यवस्था में सुधार करना जिससे व्यापारियों का अधिक से अधिक सहयोग मिल सके। नदी यातायात के मार्ग में एक बड़ी कठिनाई है कि सिंचाई की नहरों के कारण जल की कमी आ जाती है। इसका उपाय यह है कि जल संचय (Water Conservation) की उचित व्यवस्था की जावे। यह व्यवस्था बड़ी खर्चीली होती है और केवल जल-यातायात के लिये इतना खर्च करना संभव नहीं हो सकता। इसलिये नदियों से बहुमुखी योजनाओं (सिंचाई, बिजली, बाढ़-नियन्त्रण, यातायात, आदि) के बनने पर ही यह व्यवस्था संभव है। इसलिए भारत सरकार ने नदियों की बहुमुखी योजना की नीति को स्वीकार किया है। इससे जल यातायात की कठिनाई दूर हो जायगी।

केन्द्रीय जलशक्ति, सिंचाई तथा नौका संचालन आयोग्य ने भारत के विभिन्न भागों में जल मार्गों की उन्नति करने की जो योजना बनाई है वह यह है :—

(१) बंगाल में दामोदर घाटी योजना (Damodar Valley Project) के फलस्वरूप रानीगंज की निचली कोयले की खानों को हुगली नदी से एक जल यातायात की नहर के द्वारा मिलाया जायगा तथा गंगा बैरेज प्रोजेक्ट के अन्तर्गत भी एक नहर बनाने की योजना है जो भागीरथी से झांसीपुर के पास मिलेगी। गंगा नदी और भागीरथी के बीच के जल मार्ग, तीस्ता-नदी योजना अन्तर्गत उत्तरी बंगाल के जल मार्ग तथा पूर्वी बंगाल और कलकत्ते के बीच के जलमार्गों का पुर्ननिमारण किया जायगा। इस योजना के अनुसार गंगा नदी पर बिहार में स्थित साहिबगंज से २४ मील नीचे राजमहल स्थान पर एक बाँध बनाया जायेगा। इसकी सहायता से गंगा नदी के जल को एक नहर द्वारा भागीरथी नदी की तलहटी में डाल दिया जावेगा। यह योजना कई उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाई जा रही है—(i) बंगाल-बिहार की सीमा पर गंगा नदी के आर-पार बाँध बनाया जावेगा। (ii) इस प्रकार भागीरथी तथा पश्चिमी बंगाल की अन्य नदियों में अधिक जल की व्यवस्था हो सकेगी। (iii) कलकत्ता और गंगा के बीच का जल-मार्ग नाव्य हो जायगा। (iv) हुगली नदी में अधिक जल आ जायगा और उसके फलस्वरूप यह नदी नाव चलाने के योग्य बनी रह सकेगी। इस योजना के पूरे होने पर दो लाभ होंगे—(अ) भागीरथी में साल भर जल भरा रहेगा (ब) हुगली नदी के जल का खारापन भी जाता रहेगा।

(२) आसाम की दीहींग, डिब्रू, धनसीरी, कलांग नदियों का पुनरुत्थान करना।

(३) बिहार में गंडक और कोसी नदियों तथा उनकी सहायक नदियों का पुनर्निमारण करना तथा सोन घाटी योजना के अन्तर्गत सोन नदी को १५० मील तक यातायात के योग्य बनाना।

(४) बेतवा और चम्बल नदियों की बाढ़ के जल को रोककर ऐसी व्यवस्था करना जिसके फलस्वरूप शीत ऋतु में भी यातायात के लिए पर्याप्त जल की मात्रा उपलब्ध हो सके।

(५) महानदी योजना के अन्तर्गत हीराकुण्ड बाँध के पूरा हो जाने पर महानदी का ३०० मील का टुकड़ा जल यातायात के योग्य हो सकेगा।

(६) उड़ीसा की तटीय नहरों को बढ़ाकर मद्रास की नहरों से जोड़ दिया जाय जिससे आसाम से मद्रास तक जल यातायात का सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

(७) मध्य प्रदेश में नर्मदा और ताप्ती नदियों को भी यातायात के योग्य बनाने का प्रश्न विचाराधीन है।

नीचे की तालिका में भारत और अन्य देशों में जल-मार्गों का विस्तार बताया गया है :—

जलमार्गों की लम्बाई

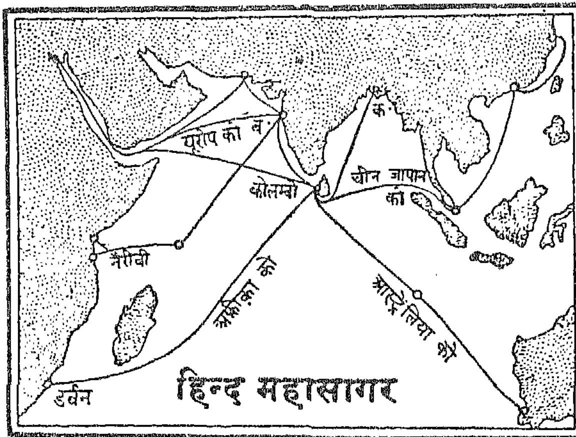
देश	प्रति १०,००० वर्ग मील पीछे लम्बाई (मीलों में)	प्रति १,००० व्यक्तियों पीछे लम्बाई (मीलों में)	सम्पूर्ण लम्बाई (मीलों में
नीदरलैण्ड	३४०·७	४·५	४,३४०
बेलजियम	९१·०	१·२५	१,०५४
चेकोस्लोवेकिया	३४·४	१·५	१,८६०
फ्रांस	२८·०	१·४३	५,९५०
इङ्गलैण्ड	२५·५	०·४८	२,४००
जर्मनी	२१·५	०·६	३,९००
पोलैण्ड	१८·२	१·१४	२,७३०
सं० रा० अमेरिका	९·८	१·९५	२८,०००
मिश्र	५·४	१·०९	२,०८१
भारत	३·८	०·१५	४,७०९

(ii) सामुद्रिक यातायात (Shipping) :

भारत के प्रधान सामुद्रिक मार्ग इन पांच प्रधान बन्दरगाहों से आरम्भ होते हैं—बम्बई, कोचीन, मद्रास, विशाखापट्टनम तथा कलकत्ता। भारत हिन्द महासागर के सिरे पर स्थित है जिसमें होकर पूर्व से पश्चिम को व्यापारिक मार्ग निकलते हैं। यहाँ से पूर्व और दक्षिण पूर्व को सामुद्रिक मार्ग चीन, जापान, पूर्वी द्वीप समूह और आस्ट्रेलिया को; दक्षिण और दक्षिण पश्चिम में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, यूरोप तथा अफ्रीका और दक्षिण में लंका को जाते हैं। इस प्रकार भारत पश्चिमी कला कौशल प्रधान देशों को पूर्वी खेतिहर देशों से मिलाने के लिए एक कड़ी का काम करता है। भारत के बन्दरगाहों पर मिलने वाले प्रधान जल मार्ग ये हैं :—

(क) **स्वेज जलमार्ग** (Suez Route)—इस मार्ग के खुल जाने से भारत और यूरोप के बीच का व्यापार बहुत बढ़ गया है। यह जल मार्ग पी० एण्ड ओ० (P & O) तथा बी० आई० एस० एन० (B. I. S. N.) कम्पनियों के नियन्त्रण

में है। जहाँ तक भारत का यूरोप के व्यापार से सम्बन्ध है। भारत यूरोप को कच्चा माल और खाद्य पदार्थ भेजता है तथा बदले में तैयार माल और मशीनें मँगवाता है।



चित्र १७३—हिन्द महासागर के जलमार्ग

(ख) **आशा अन्तरीप जलमार्ग** (Cape Route) भारत को दक्षिणी अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका से जोड़ता है। कभी-कभी दक्षिणी अमेरिका जाने वाले जहाज भी इसी मार्ग से जाते हैं। भारत इस मार्ग से अपने यहाँ रुई, कोयला, शक्कर आदि मंगवाता है।

(ग) **सिंगापुर जलमार्ग** (Singapore Route) का आवागमन की दृष्टि से स्वेज जलमार्ग के बाद दूसरा स्थान है। यह मार्ग भारत को चीन और जापान से जोड़ता है। इस मार्ग द्वारा भारत, कनाडा और न्यूजीलैंड के बीच का व्यापारिक सन्तुलन भी होता है। भारत में इस मार्ग से सूती-रेशमी कपड़ा, लोहे व इस्पात का सामान, मशीनें, चीनी के बर्तन, खिलौने, रासायनिक पदार्थ, कागज आदि आते हैं और बदले में रुई, लोहा, मैंगनीज, जूट. लाख, अभ्रक आदि निर्यात होते हैं।

(घ) **सुदूर पूर्व का जल मार्ग** (Australian Route) भी क्रमशः महत्व-पूर्ण बनता जा रहा है। यह मार्ग भारत को आस्ट्रेलिया से जोड़ता है। इस मार्ग से भारत में गेहूँ, कच्ची ऊन, घोड़े और फल आदि वस्तुओं का आयात होता है और बदले में जूट, चाय, अलसी आदि निर्यात होते हैं।

भारतीय जहाजी बेड़ा :

भारत के सामुद्रिक मार्ग विशेषतः कलकत्ता, विशाखापट्टनम, मद्रास, कोचीन एवं बम्बई के बन्दरगाहों से ही आरंभ होते हैं। नीचे की तालिका में इन बन्दरगाहों से आरंभ होने वाले प्रमुख समुद्री-मार्गों को बताया गया है :—

कलकत्ता :

कलकत्ता - सिंगापुर - न्यूजीलैंड।
कलकत्ता - कोलम्बो - पर्थ - एडीलेड़।
कलकत्ता - कोलम्बो - अदन - पोर्ट सईद।

कलकत्ता - सिंगापुर - हाँगकांग - टोकियो ।
कलकत्ता - विशाखापट्टनम - मद्रास ।
कलकत्ता - रंगून
कलकत्ता - सिंगापुर - बटाविया ।

विशाखापट्टनम :

विशाखापट्टनम - रंगून ।
विशाखापट्टनम - मद्रास - कोलम्बो ।
विशाखापट्टनम - कलकत्ता ।
विशाखापट्टनम - कोलम्बो - अदन - पोर्ट सईद ।

मद्रास :

मद्रास - कोलम्बो - मॉरीशस ।
मद्रास - कोलम्बो - अदन - पोर्ट सईद ।
मद्रास - रंगून - सिंगापुर ।
मद्रास - कलकत्ता ।
मद्रास - बम्बई ।

कोचीन :

कोचीन - बम्बई - कराँची ।
कोचीन - बम्बई - अदन - पोर्ट सईद ।
कोचीन - कोलम्बो - कलकत्ता ।
कोचीन - कोलम्बो - कलकत्ता - पर्थ ।

बम्बई :

बम्बई - कोलम्बो - पर्थ - एडीलेड ।
बम्बई - मोम्बासा - डरबन - केपटाऊन ।
बम्बई - कोलम्बो - सिंगापुर ।
बम्बई - कराँची - अदन ।
बम्बई - पोर्ट सईद ।
बम्बई - कोलम्बो - मद्रास ।

यद्यपि भारत का सामुद्रिक किनारा स्वाभाविक बन्दरगाहों में पूर्ण नहीं है, फिर भी इसकी स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय जल-मार्ग के लिये बहुत महत्व पूर्ण है । अपनी स्थिति, विशालता तथा आर्थिक उन्नति के विचार सेइस देश का समुद्री व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान होना आवश्यक है । बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय अच्छे नाविक रहे हैं । श्री हाजी के अनुसार, "पुरानी दुनिया के महाद्वीपों के बीच में एक की तरह स्थित, ४,००० मील से भी अधिक समुद्र-तटीय रेखा तथा अपनी भूमि की उर्वरा शक्ति के लिए प्रख्यात देश भारत प्रकृति की कृपा से ही समुद्री व्यापार करने के उपयुक्त है ।"[१] डा० राधाकमल मुखर्जी का तो यहाँ तक कहना है कि भारतीय जहाजी शक्ति के विकास के फलस्वरूप ही भारतीय सभ्यता अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी जिसका प्रभाव विदेशी सभ्यताओं पर बहुत अधिक पड़ा ।[२] पूरी तीस शताब्दियों तक भारत की स्थिति पुरानी दुनिया के मध्य में उसी प्रकार महत्वपूर्ण

1. S. N. Haji : Economics of Shipping, p. 365.
2. R. K. Mukerjee : History of Indian Shipping, p. 4

रही जैसे मानव शरीर में हृदय की और भारत विश्व के सामुद्रिक राष्ट्रों में एक अग्रणी राष्ट्र और महान सामुद्रिक शक्ति बना रहा। पीगू, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो व जापान तक के सुदूर पूर्वी देशों में उस समय भारतीय उपनिवेश थे। दक्षिणी चीन, मलाया प्रायद्वीप, अरब, ईरान के सभी मुख्य नगरों व अफ्रीका के सारे पूर्वी तट पर भारत की व्यापारिक बस्तियाँ थीं। भारत का व्यापारिक सम्पर्क एशिया के ही नहीं यूरोप के साथ भी था। उस समय भारत का प्रभाव इतना अधिक था कि देश को इतिहासकारों ने 'पूर्वी सागरों की रानी' (Mistress of the Eastern Seas) की उपाधि दी है।[1]

वास्तव में तीस शताब्दियों तक भारत पुरानी दुनिया के मध्य में स्थित विश्व की सबसे प्रमुख सामुद्रिक शक्ति रहा है जिसका व्यापारिक सम्बन्ध न केवल एशिया के सीमान्त प्रदेशों से ही प्रत्युत उस वक्त की ज्ञातव्य दुनिया के सभी देशों से था। इस बात के प्रमाण अब भी विद्यमान हैं। अस्तु, यह बात निर्विवाद सत्य है कि बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय जहाजों द्वारा समुद्री व्यापार होता था। सिकन्दर की फौजें जब लौटने लगीं तो तो २,००० जहाजों के बेड़े का उन्होंने अपनी समुद्री यात्रा के लिये उपयोग किया था।

द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात् :

सितम्बर १९३९ में जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तो भारत सरकार को यह अनुभव हुआ कि भारतीय जहाजी बेड़े की कितनी आवश्यकता है। इस काल में बहुत से भारतीय जहाज सरकार ने युद्ध कार्य के लिये अपने अधिकार में ले लिये जिससे देश की रक्षा की जा सके। कई जहाज शत्रुओं द्वारा नष्ट भी कर दिये गये। युद्ध के पश्चात् भारतीय जहाजों की संख्या केवल ६२ थी जिनका टनभार १,३१,७४८ टन था। इनमें से ६ जहाज तो अकेले सिंधिया कम्पनी के ही थे। सम्पूर्ण जहाजों के भार का यह ९१% था।

१९४५ में एक युद्धान्तर पुनर्विकास नीति उपसमिति (Postwar Reconstruction Policy Sub-Committee) नियुक्त की गई। इस कमेटी ने भारतीय जहाजी बेड़े के विकास के इतिहास का पूर्ण अध्ययन किया और अँग्रेज सरकार की अब तक इस सम्बन्ध में बरती गई उपेक्षापूर्ण नीति का कड़ा विरोध किया और कहा कि "भारतीय जहाजी बेड़े के विकास का इतिहास वचन भंग की दर्दनाक कहानी है।" इस कमेटी ने अनुमान लगाया कि युद्ध के पूर्व भारत में केवल ३० जहाज थे जिनकी सम्पूर्ण टन शक्ति १,५०,००० थी। इस रिपोर्ट के अनुसार १९३८-३९ में ३,२५० विदेशी जहाज—जिनकी कुल जहाजरानी १,१०,१०,७६९ टन थी भारतीय बन्दरगाहों में आये और यहाँ से १,६०,६१,००० टन सामान ले गये। भारत के तटीय व्यापार में जहाँ विदेशियों का भाग ५१,१८,६५२ टन रहा वहाँ भारत के हिस्से में केवल १७,६०,६४७ टन ही रहा अर्थात् तटीय व्यापार पर विदेशियों का ७४·४० प्रतिशत और भारतीय का २५·६० प्रतिशत भाग रहा।

इस समिति की मुख्य सिफारिशें ये थीं—

(१) भारतीय जहाजी बेड़े से अभिप्राय उस जहाजी बेड़े से होगा जिस पर विशुद्ध भारतीयों का स्वामित्व तथा अधिकार और व्यवस्था होगी। किसी भी जहाज को भारतीय जहाज मानने के पूर्व इन शर्तों का पूरा होना आवश्यक होगा :—

1. R. K. Mukerjee: History of Indian Sbipping, P.5.

(क) भारत के किसी भी बन्दरगाह या बन्दरगाहों पर ऐसे जहाजों की रजिस्ट्री होनी चाहिये।

(ख) जहाजी कम्पनियों के हिस्सों और ऋणपत्रों में कम से कम ७० % भाग भारतवासियों का होना चाहिये।

(ग) सभी संचालक भारतीय ही हों।

(घ) मैंनेजिंग एजेन्ट भी, यदि कोई हों, भारतीय ही हों।

(२) भारतीय तट का शत प्रतिशत व्यापार, बर्मा तथा लंका के साथ भारतीय व्यापार का ७५ %, समीपवर्ती देशों—अफ्रीका, मध्यपूर्व के देश, थाईलैंड, हिन्दचीन, मलाया तथा पूर्वी द्वीप समूह—के व्यापार ७५% और दूरवर्ती देशों के साथ के व्यापार का ५०% तथा उस पूर्वी व्यापार (Oriental Trade) का ३० प्रतिशत जिसे जर्मनी, इटली आदि धुरी-शक्तियों (Axis Powers) ने द्वितीय महायुद्ध में खो दिया है, आगामी ५–७ वर्षों में भारत के हाथ में आ जानी चाहिये।

(३) यद्यपि हमारी वर्तमान शक्ति को देखते हुए इतना व्यापार हमारी शक्ति के बाहर दिखाई पड़ता है तो भी कोई कारण नहीं कि अपनी टन शक्ति बढ़ा लेने पर हम अपने व्यापार को—१०० लाख टन माल और ३० लाख यात्रियों को—संचालित न कर सकें। अस्तु इस व्यापार को ले जाने के लिये हमें २० लाख टन जहाजी बेड़े की आवश्यकता है (देशी नावों को छोड़ कर)।

(४) चूँकि भारतीय जहाजी उद्योग अभी अपनी बाल्यावस्था में ही है अतः इस समिति ने उसकी टन शक्ति का निर्धारण करना उचित नहीं समझा और न ही उनके द्वारा होने वाले पूँजीगत खर्चों पर ही कोई रोक लगाई, किन्तु इस बात की ओर अधिक जोर दिया कि एकाधिकार की व्यवस्था को यथाशक्ति रोका जाय।

(५) भारतीय जहाजों को मिलने वाले विभिन्न नये देशों के व्यापार को सभी कम्पनियों में समान रूप से वितरित किया जाय।

(६) जहाजी बेड़े की टन शक्ति और व्यापार आदि के आँकड़ों के संचयन तथा प्रकाशन में आमूल परिवर्तन किया जाय।

(७) भारत सरकार का वाणिज्य विभाग पोर्ट ट्रस्ट आदि की शासन व्यवस्था यातायात विभाग से अपने हाथों में ले ले।

इन सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिये इस समिति ने ये उपाय भारत सरकार के सन्मुख रखे :—

(१) एक जहाजी परिषद् (Shipping Board) की अविलम्ब नियुक्ति की जाय जिसमें जहाजी कम्पनियों के स्वामी, अन्य व्यापार तथा उद्योगकर्त्ता सभी सदस्य हों तथा उसका सभापतित्व एक ऐसे निष्पक्ष व्यक्ति के हाथ में हो जो चतुर, अनुभवी और न्याय में दक्षता रखता हो। इस परिषद का काम यह होगा :—

(क) भारतीय तटीय और विदेशी व्यापार में लगे भारतीय जहाजों की आर्थिक सहायता के लिए दिए गए प्रार्थना पत्रों पर विचार करना और उसको अपनी उचित सिफारिशों सहित भारत सरकार के सन्मुख रखना। इसके अतिरिक्त यह परिषद इस

(iv) समुद्र तटीय व्यापार का रक्षण—१९४५ से बिठाई गई 'व्यापारी नीति समिति' की सिफारिशों के अनुसार १९५० में भारत सरकार ने भारतीय तटीय व्यापार को भारतीय जहाजों के लिए ही सुरक्षित रखना आरम्भ कर दिया है। १९३९

बात पर भी अपनी राय प्रकट करेगी कि जिन कम्पनियों को भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है उनके नियन्त्रण में भारत सरकार का हाथ कहाँ तक होगा।

(ख) भाड़ा प्रतिस्पर्धा और आस्थागित फिरौती प्रथा (Deferred Rebates) तथा एकाधिकार के दोषों को दूर करने के लिये भारत सरकार को उचित राय देना।

(ग) भारतीय जहाजी कम्पनियों को आज्ञापत्र (Licenses) देकर तटीय व्यापार को पूर्ण रूप से व्यवस्थित और नियन्त्रित करना।

(२) २० लाख टन जहाजी बेड़े को बनाने के लिए अँग्रेजी जहाजी कम्पनियों से उचित व्यापारिक समझौते करना। इसके अतिरिक्त भारत में ही देशी कम्पनियों द्वारा जहाजी उद्योग को प्रोत्साहन देना और संयुक्त राष्ट्र से भी कुछ जहाज भारत के लिए खरीद लेना आदि।

इस नीति को व्यावहारिक रूप देने के लिए ब्रिटेन की सरकार और ब्रिटेन की जहाजी कम्पनियों से समझौता करना आवश्यक समझा गया। अत: जुलाई १९४७ में भारत सरकार ने श्री वालचन्द हीराचन्द के नेतृत्व में भारतीय जहाज मालिकों का एक शिष्ट मण्डल लन्दन भेजा। किन्तु कई कारणों से यह प्रयत्न असफल रहा। अत: सरकार ने स्वयं ही भारतीय जहाजी व्यवसाय को सहायता देने का संकल्प किया और इसी को मूर्तरूप देने के निमित्त ३ नवम्बर १९४७ को बम्बई में एक जहाजी सम्मेलन बुलाया गया जिसके सभापति श्री एच० सी० भाभा थे। इस सम्मेलन में भारतीय जहाजी व्यवस्था की मूल समस्याओं पर विचार किया गया और यह निर्णय हुआ कि भारत सरकार यथाशक्ति जहाज के स्वामियों को इस व्यवसाय में सहयोग देगी। इस सम्मेलन के समक्ष दो समस्यायें प्रमुख थीं : (१) जहाजों की कमी किस प्रकार दूर की जाय, तथा (२) योग्य कर्मचारियों के अभाव को किस भाँति दूर किया जाय। इस हेतु निम्न कार्यक्रम अपनाया गया है :—

(i) **भारत में ही जहाजों का निर्माण करना**—भारत में जहाज बनाने का सर्व प्रथम कारखाना १९४७ में विशाखापट्टनम में बनकर तैयार हुआ। १९४८ में इस कारखाने में प्रतिवर्ष दो जहाज बनने लगे। किन्तु १९४९ से जब सिंधिया कम्पनी ने इस कारखाने को चलाने में असमर्थता प्रकट की तो १ मार्च १९५२ में भारत सरकार के अधीन ही 'हिन्दुस्तान शिपयॉर्ड लिमिटेड' नामक कम्पनी की स्थापना की गई। इस कारखाने में १९५९ के अन्त तक २४ समुद्री जहाज तथा २ छोटे जहाज बन चुके थे।

(ii) **तटीय व्यापार में लगे बड़े जहाजों को सामुद्रिक व्यापार म संलग्न करना**— १९५९ में भारत के तटीय व्यापार में लगे ८९ जहाज थे जो २.७४ लाख टन शक्ति के थे। इन जहाजों को विदेशी व्यापार के लिए उपयोग में लाने और उनके स्थान पर छोटे छोटे जहाज बनाने की नीति का अनुसरण किया गया है।

(iii) **पाल से चलने वाले जलयानों का उपयोग**—भारत के समुद्र तटीय व्यापार में अनेक पाल से चलने वाले जलयान भी भाग लेते हैं। १९४८ में बिठाई गई एक समिति (Sailing Vessels Committee) की जाँच के अनुसार भारत में लगभग ८०,००० पाल से चलने वाले जलयान हैं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष लगभग १५ लाख टन माल समुद्र तट पर लाया और ले जाया जाता है। इनकी माल ले जाने की क्षमता लगभग २,५०,००० टन है। इसके द्वारा समुद्रतटीय व्यापार का १/४ व्यापार होता है किन्तु इन जलयानों की दशा बड़ी दयनीय है। अत: इस समिति ने सुझाव दिया कि उनकी सेवा का उचित उपयोग करने के लिये उन्हें सुसंगठित किया जाय। इसी हेतु १९५५ में जहाजों के सामान्य विभाग के अन्तर्गत एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की गई है।

में अपने तटीय व्यापार का केवल ३३% भारतीय जहाज ले जाते थे। १६४८ में उनका भाग ५३%; १६४६ में ६२% और १६५० में यह ७५% से अधिक हो गया। नीचे की तालिका में भारतीय जहाजों का तटीय व्यापार में क्या स्थान है यह बताया गया है :—

वर्ष	तटीय व्यापार में चलने वाले जहाजों की क्षमता (टनों में)	भारतीय तटीय व्यापार का % जो भारतीय जहाजों द्वारा ले जाया गया
१६५०—५१	२,०५,०००	८०
१६५१—५२	२,१०,०००	६४
१६५२—५३	२,५४,०००	६६
१६५३—५४	२,५६,०००	१००
१६५८	२,५७,६४५	१००
१६५६	२,७४,०००	१००

(v) व्यापारिक नीति समिति की विस्तृत रिपोर्ट में दी गई विभिन्न सिफारिशों पर विचार कर भारत सरकार ने एक बड़ी व्यापारिक योजना बनाई जिसमें राष्ट्रीय जहाजी निगमों (Shipping Corporations) की स्थापना की व्यवस्था है। प्रत्येक निगम के जिम्मे विभिन्न क्षेत्रों के जहाज संचालन का कार्य है। प्रथम निगम वैस्टर्न जहाजी निगम (Western Shipping Corporation) भारत और फारस की खाड़ी, भारत और लाल सागर के बीच तथा मिश्र के बन्दरगाहों और भारत-पोलैंड और भारत रूस मार्ग के बीच व्यापार संचालन करता है। द्वितीय निगम भारत-पूर्वी अफ्रीका आदि, भारत-ऑस्ट्रेलिया, भारत-मलाया, पूर्वी द्वीप समूह और भारत-पूर्वी अफ्रीका आदि के बीच व्यापार करता है। इसका नाम पूर्वी जहाजी निगम (Eastern Shipping Corporation) है। तीसरा निगम भारत और पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका और इंगलैंड के बीच व्यापार संचालन का कार्य करेगा।

नीचे की तालिका में भारतीय समुद्री यातायात में प्रगति बताई गई है :—

वर्ष	जहाज	कम्पनियाँ	भार शक्ति (टनों में)
१६३६	५३	६	१,२६,७०६
१६४६	४२	११	६८ २८६
१६४७	६०	१४	१,८६,२२६
१६४८	७२	१५	२,४६,२६१
१६४६	८४	२०	३,३२,४६०
१६५०	६०	२३	३,६४,६३२
१६५१	६२	२३	३,६६,६४६
१६५२	१००	२६	३,८३,६११
१६५३	१११	२५	४,२२,७३४
१६५४	११८	—	४,३५,७८६
१६५५	११८	—	४,८०,५५५
१६५७	१३२	—	५,८२,०००
१६५८	१४१	—	६,३६,७०८
१६५६	१५७	—	७,३६,०००

यहाँ हम नीचे तालिका में उन मुख्य जहाजी-कम्पनियों की जहाजी शक्ति का वर्णन देते हैं जिनके जहाजों की टन शक्ति १०,००० टन से भी अधिक है :—[1]

जहाजी कम्पनियों का नाम		उद्घाटन की तिथि	ग्रास टन	मूल्य (करोड़ रुपयों में)
१.	सिंधिया स्टीम नैवीगेशन कं०	१९१९	२०,००,२४०	१२.२
२.	बम्बई स्टीम नैवीगेशन कं०	१९०६	२२,१७१	३·१०
३.	भारत लाइन लि०	१९४५	५४,६८६	२·२७
४.	इन्डियन नेशनल स्टीमशिप कं०	१९५०	११,५३६	०·१८
५.	न्यू धौलेमा स्टीमशिप लि०	१९३७	१२,५०५	०.८०
६.	ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग कं० लि०	१९४८	१५,२८२	१·१
७	इण्डियन स्टीमशिप लि०	१९२८	५८,३३२	३·७
८.	ईस्टर्न शिपिंग कारपोरेशन लि०	१९५०	१४,४३३	२·४४

भारतीय जहाजी कम्पनियों का हमारे विदेशी व्यापार में केवल ६% ही भाग रहता है। भारतीय कम्पनियों के जहाजों का टन भार ७.३९ लाख टन है। इस समय निम्नांकित ५ बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ विदेशी मार्गों पर अपने जहाज चलाती हैं :—

१. सिंधिया कं०,—१९७,२८८ G. R. T.
२. इण्डियन स्टीमशिप कं०,—७३,२९३ G. R. T.
३. भारत लाइन्स, ६४,८४९ G. R. T.
४. ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग कं०,—३८,१६७ G. R. T.
५. वैस्टर्न शिपिंग कॉर्पोरेशन,—

भारत के जहाज अभी तक सभी मार्गों पर नहीं जाते हैं। नीचे की तालिका में विदेशी व्यापार में लगे जहाजों की संख्या और उनका टन भार बताया गया है :—

विदेशी मार्गों पर	जहाजों की संख्या	२८ फरवरी १९५८ को टन भार G. R. T.
भारत-इंगलैंड अफ्रीका महाद्वीप	२७	१९५,१६०
भारत-फारस की खाड़ी	३	९,८६१
बम्बई-पूर्वी अफ्रीका	१	८,५२१
भारत-जापान-सुदूर पूर्व	३	१७,९७५
भारत-आस्ट्रेलिया	३	१८,०८३
भारत-मलाया-सिंगापुर	१	८,५८०
ट्रैम्प व्यापार	३	२३,१९०
भारत-रूस	३	२१,६६६
भारत-पश्चिमी अफ्रीका	३	१३,८३४
	४८	५,८६,००० टन

नीचे की तालिका में भारत की जहाजी शक्ति का विवरण और द्वितीय योजना के बाद उसका क्या विस्तार होगा बताया गया है :—

1. R. Owens : Op. Cit., p. 370.

	प्रथम योजना के पूर्व	प्रथम योजना के बाद	द्वितीय योजना के अन्त में
		(ग्रास रजिस्टर्ड टन)	
तटीय व्यापार	२,१७,२०३	३,१२,२०२	४,१२,२००
सामुद्रिक व्यापार	१,७३,५०५	२,८३,५०५	४,०५,५०५
ट्रैम्प	—	—	६०,०००
टैंकस	—	५,०००	२३,०००
योग	३,९०,७०७	६,००,७०७	९,००,७०५

द्वितीय योजना काल के अंत में हमारी जहाजी शक्ति में ३,००,००० टन की वृद्धि होगी। इसके फलस्वरूप विदेशी व्यापार में १२ से १५%; तटीय व्यापार में ५०% तक हमारा भाग हो सकेगा। अभी यह भाग क्रमश: ५ और ४० प्रतिशत ही है।

तृतीय योजना के अन्तर्गत हमारी जहाजी शक्ति बढ़ कर १४,२०,००० टन हो जायेगी। इसमें से १०,८०,००० टन विदेशी व्यापार में और ३,४०,००० टन तटीय व्यापार में लगे जहाजों में वृद्धि होगी। अर्थात् १९६५-६६ तक जहाजी शक्ति में ५,२०,००० टन की वृद्धि होगी।

यद्यपि भारत की तट रेखा लगभग ३,५०० मील लंबी है किन्तु फिर भी विश्व के अन्य देशों की तुलना में यहाँ की जहाजी शक्ति विश्व की केवल ०.५२% है। १ जुलाई १९५९ को विश्व में कुल जहाजों का टन भार ११०,२४६,००० हजार ग्रॉस टन था इसमें से संयुक्त राज्य अमरीका का २५,९११ हजार; इंग्लैन्ड का १९,८५७ हजार; नार्वे ८,४८८ हजार; साईबेरिया, ७,४६६ हजार; इटली ४,५५२; हजार; जापान, ४,४१५ हजार; नीदरलैंड्स ४,३३५ हजार; पनामा ४,१२९ हजार; जर्मनी ३,६०६ हजार; स्वीडेन ३,०४८ हजार; रूस २,७०९ हजार; डेनमार्क १,८५७ हजार; कनाडा १,५२१ हजार और भारत का ५३९ हजार टन था।

(३) भारत में वायु यातायात (Air Transport) :

भारत में सर्व प्रथम हवाई उड़ान १९११ में आरम्भ हुई। इस समय कुछ स्थानों में केवल प्रदर्शन की दृष्टि से हवाई उड़ान की व्यवस्था की गई थी। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से हवाई यातायाय का हमारे देश में वास्तविक विकास आरम्भ हुआ। इस समय भारत सरकार ने कुछ जहाज उतरने के स्थानों (Landing Gronnd) की व्यवस्था की। प्रथम युद्ध काल में भारत को यह बात पूरी तरह अनुभव हो गई कि पूर्वी देशों और यूरोप को मिलाने के लिये भारत एक कड़ी का काम करता है अस्तु भारत में हवाई यातायात के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है। सन १९१९ में महायुद्ध की समाप्ति पर विश्व के ३० प्रमुख देशों और भारत ने मिलकर पेरिस नगर में हवाई यातायात को व्यवस्थित रखने के लिये बनाये गये अन्तर्राष्ट्रीय समझौते पर हस्ताक्षर किए। इन समझौते को स्वीकार करने का अर्थ यह था कि सभी समझौता करने वाले देश आपस में एक दूसरे के हवाई जहाजों को अपने देश में से गुजरने में

सहयोग देंगे और जहाँ तक सम्भव होगा हवाई यातायात, वायुयान संचालकों तथा वायुमार्गों को नियन्त्रित करने वाले नियम सभी देशों में लगभग एक से ही होंगे किंतु इस समझौते पर हस्ताक्षर कर लेने के बाद भी भारत सरकार ने हवाई यातायात के विकास में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया। केवल कुछ उड्डयन क्लब (Flying Clubs) अवश्य खोल दिए जहां विदेशी वायुयान आकर ठहर सकें।

सन् १९२६ में एक हवाई यातायात परिषद (Air Board) स्थापित की गई। उसने इस बात पर जोर दिया कि हवाई यातायात की दृष्टि से भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। वायुमण्डल सम्बन्धी अवस्थायें भी यहाँ अनुकूल ही हैं और वर्ष के अधिकांश भागों में (केवल वर्षा ऋतु को छोड़कर) वायुमण्डल स्वच्छ रहता है। इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न प्रान्तों में स्थित व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र एक दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं अस्तु उनको जोड़ने के लिए हवाई यातायात का विकास करना नितान्त आवश्यक है।

अस्तु १९२७ में एक नागरिक उड्डयन विभाग की स्थापना की गई। शीघ्र ही देश में एयरोड्रोम्स और उड्डयन क्लबों की स्थापना भी की गई जिनमें हवाई जहाज चलाना सिखाया जाने लगा। दिल्ली, करांची, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, लखनऊ, लाहौर और पटना में उड्डयन क्लब खोले गए। सन् १९२९ में भारत और लन्दन के बीच नियमित रूप से साप्ताहिक हवाई यातायात आरम्भ हुआ। इस मार्ग का संचालन एक अंग्रेजी कम्पनी **इम्पीरियल एयरवेज** (Imperial Airways) के हाथ में था। इस मार्ग को सन् १९३० तक दिल्ली तक बढ़ा दिया गया। इसके द्वारा भारत सरकार ने दिल्ली और करांची के बीच डाक भेजने का समझौता भी किया किन्तु १९३१ में यह समझौता भी भंग कर दिया गया। सन् १९३२ में भारत में **टाटा एयर लाइन्स** (Tata Air Lines) के वायुयान, इलाहाबाद, कलकत्ता और कोलम्बो के बीच चलने लगे। इसी समय भारतीय रियासतों और सरकार के बीच एक समझौता यह भी हुआ कि वे अपने राज्यों में होकर भारतीय वायुयानों को निकलने देंगे। सन् १९३३ में भारत सरकार और **ब्रिटिश एयरवेज लि०** (British Airways Ltd.) नामक अंग्रेजी कम्पनी के साथ समझौता करके करांची, सिंगापुर तक डाक तार ले जाये जाने का कार्य एक अर्द्ध भारतीय कंपनी **इंडियन ट्रांसकांन्टीनेन्टल एयरवेज** (Indian Trans-Continental Airways) को सौंपा। यह कम्पनी अपने वायुयान करांची से सिंगापुर, साप्ताहिक रूप में और कलकत्ता से ढाका, करांची से लाहौर सप्ताह में दो बार चलाने लगी। इसी समय टाटा-बन्धुओं ने टाटा एयर सर्विस नामक विशुद्ध भारतीय कम्पनी स्थापित करके करांची से अहमदाबाद, बम्बई और बलारी होते हुए मद्रास तक आकाश-मार्ग से डाक और यात्री ले जाने का काम आरंभ किया। इस कम्पनी ने धीरे-धीरे बड़ी प्रगति की और उनके द्वारा देश के प्रसिद्ध नगरों का संबंध स्थापित हो गया। टाटा कंपनी के स्थापित हो जाने के साथ ही एक अन्य भारतीय कंपनी इंडियन नेशनल एयरवेज भी सन्१९३३ में दल्ली में स्थापित की गई। सन् १९३५ में **एयर सर्विस आफ इन्डिया** (Air Service of India)—जो बंबई और काठियावाड़ के बीच में चलने लगी—की स्थापना की गई। इस कंपनी की प्रगति बड़ी शीघ्र हुई यहाँ तक कि सम्पूर्ण हवाई व्यापार का ७०% इसी कंपनी द्वारा किया जा रहा था किन्तु आर्थिक हानि होने से १९४० में इसे बन्द हो जाना पड़ा। सन् १९३८ में समस्त ब्रिटिश साम्राज्य को जोड़ने और डाक ले जाने वाली हवाई योजना

(All-up Empire Mail Service) की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत विभिन्न देशों की डाक विदेशों को ले जाई जाने लगी। भारत में भी इस योजना को सहयोग देने के लिए **टाटा एयर लाइन्स** (जो कराँची से बम्बई तक डाक ले जाती थी) और **इन्डियन नेशनल एयरवेज** (जो कराँची से बम्बई तक डाक ले जाती थी) का संबंध उपर्युक्त कंपनी से किया गया। इस प्रकार महायुद्ध के पूर्व भारत में इंडियन ट्रांस कान्टीनैन्टल एयरवेज लि०; टाटा एयर लाइन्स; इंडियन नेशनल एयरवेज लि० और एयर सर्विसेज ऑफ इन्डिया के वायुयान चलते थे। किन्तु १९४० में आर्थिक कठिनाइयों के कारण चौथी कम्पनी बन्द कर दी गई। इस समय चार विदेशी हवाई सर्विसे भी चल रही थीं यथा BOAC; Dutch Air Lines; Air France और German Air Service.

द्वितीय महायुद्ध के आरंभ होने के साथ ही विदेशी आकाश मार्ग एक दम कम कर दिये गये। जहाँ पहले इंग्लैंड—भारत— आस्ट्रेलिया सर्विस सप्ताह में ५ बार चलती थी वह घटाकर केवल २ ही बार कर दी गई। सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य की हवाई योजना भी समाप्त कर दी गई और डाक आदि ले जाने के किराये में भी वृद्धि कर दी गई। देशी सर्विसों द्वारा नागरिकों के लिए उपयोग भी कम किया गया। इण्डिया नेशनल ऐयरवेज की सर्विस जो कराँची से लाहौर तक चलती थी सप्ताह में दो बार और टाटा लाइन्स जो बंबई कलकत्ता तक चालू थी सप्ताह में चार बार ही कर दी गई। युद्धोत्तर काल में वायुयान का अधिकाधिक उपयोग देश के बचाव में किया जाने लगा। जब बह्मा और मलाया भी युद्ध क्षेत्र घोषित कर दिये तो करांची से लाहौर जाने वाली हवाई सर्विस बन्द कर दी गई और एक नया मार्ग दिल्ली से कलकत्ता होता हुआ रंगून को खोला गया। जब ब्रह्मा जापानियों के अधिकार में आ गया तो इसी मार्ग को रंगून से जोरहट के मार्ग में बदल दिया गया। १९४३ के अन्त में देश में १७ नये मार्ग चालू किये गये जिनमें ७ ब्रिटिश ओवरसीज ऐयर कं०, टाटा कंपनी और इंडियन नेशनल कंपनियों के अन्तर्गत शाही वायुसेना (Royal Air Force) और एक चाइनीज नेशनल ऐयरवेज कंपनी के अन्तर्गत थे। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध ने हवाई यातायात की बड़ी वृद्धि की।

१९४४ में नागरिक उड्डयन के विकास के लिये एक समिति बनाई गई जिसने १५ हवाई अड्डे बनवाने तथा ११,२०० मील हवाई मार्गों की लम्बाई बढ़ाने का सुझाव दिया। १९४६ में भारत में वायु-यातायात इंडियन नेशनल एयरवेज, टाटा एयर लाइन्स, एयर सर्विसेज ऑफ इण्डिया लि० और डैकन एयरवेज कम्पनियों के हाथ में था। इस समय करांची, बम्बई, मद्रास, बिहार, बंगाल तथा दिल्ली आदि में ७ उड्डयन क्लब भी थे। देशी कम्पनियों के अतिरिक्त B. O. A. C. के भी जहाज इंग्लैंड और भारत के बीच चल रहे थे। १९४७ में विभाजन के समय वायुयानों ने पाकिस्तान से शरणार्थियों तथा माल ढोने में बड़ा सहयोग दिया। १९४८ से भारत में ७ कम्पनियाँ ३३ मार्गों पर १३,९७५ मील वायुयान चला रही थीं। १९४७ में भारत और नीदरलैण्ड के बीच, १९४८ में भारत और फ्रांस, भारत और ईरान, भारत और स्वीडेन; भारत और पाकिस्तान के बीच हवाई यातायात सम्बन्धी समझौते हुए। १९५५ में भारत, ईराक और जापान के बीच तथा १९५६ में भारत और थाईलैंड के बीच हवाई यातायात समझौता हुआ। अब तक फ्रांस, स्वीडेन, फिलीपाइन्स, मिश्र, लंका अफगानिस्तान, इंगलैंड और स्विटजरलैंड के बीच समझौते हो चुके हैं। १९५३

में हवाई यातायात का राष्ट्रीयकरण हो गया और सभी कम्पनियों को दो नवनिर्मित निगमों के अन्तर्गत कर दिया गया।

इंडियन एयर लाइन्स निगम (Indian Air Lines Corporation)—के अन्तर्गत आठ कम्पनियों के हवाई जहाज हैं। ये कम्पनियाँ क्रमशः एयरवेज (इंडिया); हिमालय एविएशन लि०; कलिंगा एयर लाइन्स; भारत एयरवेज; ऐअर-इंडिया, लि०; एयर सरविसेज ऑफ इंडिया; डैकन एयरवेज लि०; तथा इंडियन नेशनल एयरवेज हैं। यह निगम देश के भीतरी भागों तथा समीपवर्ती देशों के साथ वायुयान-यातायात की व्यवस्था करता है। इस निगम के पास ५७ डकोटा, १२ विकिंग्ज, ५ स्काई मास्टर, ७ हैरोन, और १० विस्काउट हैं जो देश के प्रमुख केन्द्रों को २२,७०० मील मार्गों पर सम्बन्धित करते हैं। इंडियन एयर लाइन्स कार्पोरेशन के विमानों ने १९५८-५९ में १९५ लाख मील की उड़ान की। इस अवधिमें उन्होंने ६ लाख यात्री; ४८ लाख पौंड माल और ५७ लाख पौंड डाक ढोयी।

एयर इंडिया इन्टरनेशनल (Air India International)—निगम के अन्तर्गत भूतपूर्व की एयर इंडिया नेशनल कं० के वायुयान हैं। यह निगम विदेशों के लिये वायुयान-यातायात की व्यवस्था करता है। इस निगम के पास ९ सुपर कान्स्टेलेशन, तथा १ डेकोटा है। यह निगम २३,४८३ मील लम्बे वायुमार्गों द्वारा विश्व के १९ देशों से भारत का सम्बन्ध स्थापित करता है। १९५८-१९५९ में इस निगम के विमानों ने लगभग ८४ लाख मील की उड़ान की। इन्होंने ८८ हजार यात्री १६ लाख पौंड माल और ८ लाख पौंड डाक ढोयी।

भारतीय नागरिक उड्डयन विभाग (Indian Civil Aviation Deptt.). इस विभाग के अन्तर्गत ८५ हवाई अड्डे हैं। विभागों द्वारा उड़ान लेने अथवा उतरने की सुविधाओं को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय हवाई अड्डों को निम्न चार श्रेणियों में बाँटा गया है :—

(१) **अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के हवाई अड्डे**—ये क्रमशः शान्ताक्रूज (बम्बई), डमडम (कलकत्ता) और पालम (दिल्ली) में है। यहाँ विदेश जाने वाले विदेशी वायुयान भी ठहर सकते हैं।

(२) **प्रथम श्रेणी के हवाई अड्डे**— यहाँ छोटे-बड़े सभी वायुयान उतर चढ़ सकते हैं। अगरतला, अहमदाबाद, बेगमपत (हैदराबाद), सफदरगंज (दिल्ली), गोहाटी, मद्रास (सेंट थामस माऊंट), नागपुर और तिरूचिरापल्ली ऐसे ही अड्डे हैं।

(३) **मध्यम श्रेणी वाले हवाई अड्डे**— ये अड्डे क्रमशः इलाहाबाद, अमृतसर, औरंगाबाद (हैदराबाद), बाघडोगरा (पं० बंगाल), बनारस, बलूरघाट, जूहू (बम्बई), बड़ौदा, बेलगांव, बैरकपुर (पं० बंगाल), भावनगर, भूपाल, भुज, कोयम्बटूर, भुवनेश्वर, (कटक) गया, इन्दौर, जयपुर, जूनागढ़, चंडीगढ़, कूचबिहार, गोरखपुर, अमावसी, (लखनऊ), मदुरा, बाजपी (बंगलौर), मोहनबारी, लीलाबारी, (आसाम), पटना, पोरबन्दर, राजकोट, तेजपुर (आसाम), पासीघाट, कमालपुर, खोवाई, त्रिवेन्द्रम, विजयवाड़ा विशाखापट्टनम, रुपसी, कुंभीरग्राम और कैलाशशहर में हैं।

(४) **निम्न श्रेणी के हवाई अड्डे**—ये अड्डे क्रमशः आकोला, आसनसोल, बरेली, बिलासपुर, चकुलिया (बिहार), कड्डपा (आंध्र), डानाकोंदा (मद्रास),

झांसी, झारसुगुदा (उड़ीसा), जबलपुर, कानपुर, खंडवा, कोल्हापुर, कोटा, ललितपुर, मदुराई, मनीपुर रोड (आसाम), मैसूर, मुजफ्फररोड, सतना, पालनपुर (दीसा), पन्नागढ़, रायपुर, राजमहेन्द्री, रामनाथापुरम, रांची, सहारनपुर, शैला (आसाम), शोलापुर, तंजौर, उदयपुर, बैलोर और वारंगला में है। नये हवाई अड्डे रक्सूल, जोगबानी, तुलीहल, कांडला, माल्दा और हल्दवानी में बनाये जा रहे हैं।

नागरिकों को हवाई उड़ान में शिक्षा देने के लिये कुल मिलाकर १६ उड्डयन क्लब हैं जिनको भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। यह क्रमशः ये हैं—दिल्ली, बम्बई, मद्रास, बैरकपुर, पटना, भुवनेश्वर, लखनऊ, जयपुर, इन्दौर, जलंधर, नागपुर, गोहाटी, त्रिवेन्द्रम और बंगलौर। इनके अतिरिक्त तीन क्लब ऐसे भी हैं जैसे हैदराबाद (Hyderabad State Aero Club), जोधपुर (State Aviation Club) और बंगलौर (Mysore Government Flying Club) जिनको सरकार द्वारा कोई आर्थिक सहायता नहीं प्राप्त होती है।

भारत के तटीय भागों में दोनों ही ओर वायुयानों के मार्ग हैं जैसे—कोलम्बो से मद्रास, विशाखापट्टनम और भुवनेश्वर होती हुई पूर्व तटीय भागों के सहारे कलकत्ता तक। पश्चिमी तटीय भागों के सहारे त्रिवेन्द्रम से कोचीन, मंगलौर, बम्बई, जामनगर होता हुआ भुज को।

दूसरा क्षेत्र भीतरी भागों में है। वायु मार्ग इस क्षेत्र में मद्रास को बम्बई तथा बंगलौर, हैदराबाद और पूना से बम्बई और कलकत्ता को बनारस, प्रयाग, लखनऊ और नागपुर से जोड़ते हैं।

तीसरा प्रमुख वायु मार्ग दिल्ली को काश्मीर और देश के अन्य भागों से जोड़ते हैं।

चौथा मार्ग कलकत्ता से इम्फाल और आसाम को जोडते हैं।

भारत में इस समय निम्नलिखित वायु मार्ग हैं :—

मार्ग नं० १—(भूतपूर्व की ऐयरवेज लिमिटेड)—

कलकत्ता—विशाखापट्टनम-मद्रास-बंगलौर	सप्ताह में ४ बार
कलकत्ता—गोहाटी	दिन में २ बार
कलकत्ता—बंगलौर (दार्जिलिंग के लिये)	दिन में २ बार
कलकत्ता—नागपुर-बम्बई	दिन में २ बार
कलकत्ता—ढाका	दिन में ३ बार
कलकत्ता—भुवनेश्वर-मद्रास-बंगलौर	सप्ताह में ३ बार

मार्ग नं० २—(भूतपूर्व की भारत ऐयरवेज लिमिटेड)—

कलकत्ता—चटगाँव	दैनिक
कलकत्ता—बंकोक-सिंगापुर-जकार्ता	सप्ताह में १ बार
कलकत्ता—पटना-बनारस-लखनऊ-दिल्ली	दैनिक
कलकत्ता—अमरतला-सिलचर-इम्फाल	दैनिक
अगरतला—गोहाटी	सप्ताह में २ बार
गोहाटी—सिलचर-इम्फाल	सप्ताह में २ बार
कलकत्ता—काठमांडू-पटना	

मार्ग नं० ३—(भूतपूर्व की हिमालयन एविएशन लि०)

बम्बई—करांची—जहीदन—काबुल सप्ताह में ३ वार

मार्ग नं० ४—(भूतपूर्व की इण्डिया नेशनल ऐयरवेज लिमिटेड, नई दिल्ली) :—

दिल्ली से लाहौर होकर पेशावर तक दैनिक
दिल्ली से अमृतसर होकर श्रीनगर तक दैनिक
दिल्ली से कानपुर व प्रयाग होकर कलकत्ता दैनिक
दिल्ली से जोधपुर होकर करांची तक सप्ताह में ५ वार
दिल्ली-आगरा-ग्वालियर-भोपाल-इंदौर-औरंगाबाद-बम्बई ।

मार्ग नं० ५—(भूतपूर्व की दक्खन ऐयरवेज इंण्डिया लिमिटेड, बम्बई) :—

दिल्ली, भोपाल, नागपुर, हैदराबाद, मद्रास दैनिक
हैदराबाद बंगलौर सप्ताह में ४ वार
हैदराबाद —बम्बई दैनिक
बम्बई—नागपुर—कलकत्ता दैनिक

मार्ग नं०६—(भूतपूर्व की एयर इण्डिया लिमिटेड, बम्बई):—

करांची—अहमदाबाद, बम्बई दैनिक
बम्बई—मद्रास, कोलम्बो दैनिक
बम्बई—कलकत्ता दैनिक
मद्रास—बंगलौर—कोयम्बटूर—कोचीन—त्रिवेंद्रम । दैनिक
बम्बई—दिल्ली— दैनिक

मार्ग नं० ७—(भूतपूर्व की एयर सर्विस आफ इंडिया लिमिटेड, बम्बई) :—

बम्बई से पोरबन्दर, जामनगर से भुज तक सप्ताह में ५ वार
बम्बई—भावनगर-राजकोट साप्ताहिक
बम्बई—ग्वालियर—दिल्ली—लखनऊ सप्ताह में २ वार
बम्बई—बेलगाँव-कोचीन सप्ताह में ३ बार

मार्ग नं० ८—(भूतपूर्व की एयर इण्डिया इन्टरनेशल लि०)

कलकत्ता—दिल्ली-बम्बई-काहिरा-रोम सप्ताह में ३ वार
डेसलडर्फ—जिनेवा-पेरिस-लन्दन
बम्बई—करांची-अदन-नैरोबी " २ "

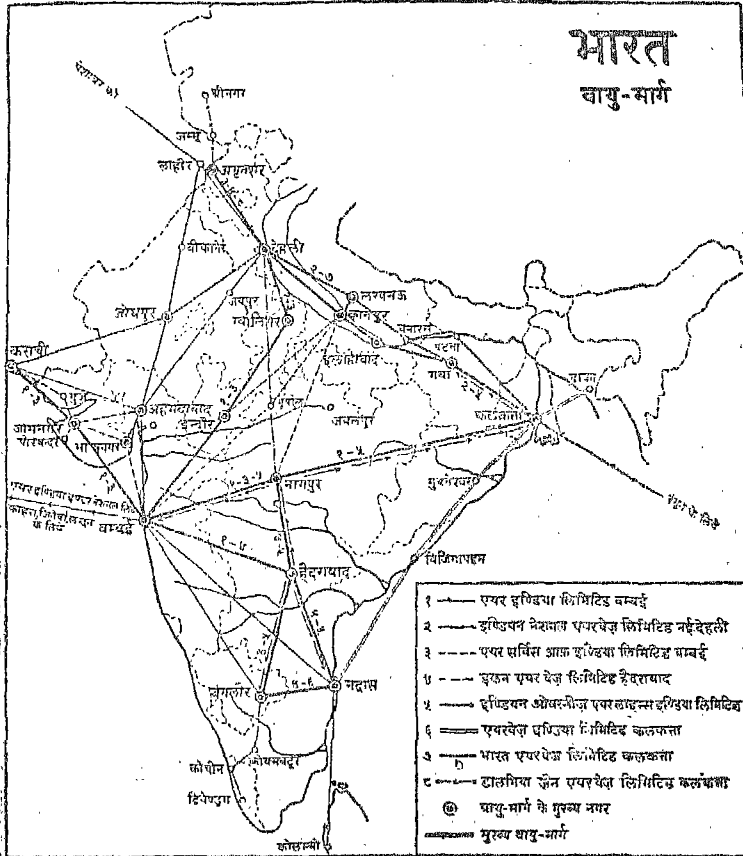
उपर्युक्त सर्विसों के अतिरिक्त भारत की कम्पनियाँ संयुक्त राज्य, वर्मा, चीन और जापान के साथ समुद्र पार सर्विसों का भी नियन्त्रण करती हैं। भारत में होकर जाने वाली मुख्य विदेशी कंपनियों के मार्ग इस प्रकार हैं :—

(१) ब्रिटिश ओवरसीज ऐयरवेज कारपोरेशन (BOAC)

१. लंदन—माल्टा—काहिरो—बसरा—कराँची
दिल्ली—कलकत्ता

२. साउथहैम्पटन—काहिरा—वेहरीन—करांची—
कलकत्ता होकर रंगून—बैंकाक हाँगकाँग को

३. लन्दन—रोम—काहिरा—करांची—कलकत्ता होकर सिंगापुर—डार्विन—सिडनी को
४. लंदन—त्रिपोली—काहिरा—बसरा—करांची—दिल्ली
५. लन्दन—काहिरो—बसरा—करांची—बम्बई—कोलम्बो



चित्र १७४—वायु-मार्ग

(२) चाइना नेशनल ऐयरवेज कारपोरेशन (Chinese National Airways Corporation)

१. शंघाई—हांगकांग—कूमिंग—रंगून—कलकत्ता

(३) ऐयर सीलोन (Air Ceylon)

१. कोलम्बो—कांकेनसंतुराई—मद्रास
२. कोलम्बो—कांकेनसंतुराई—त्रिरूचिरापल्ली

(४) ऐयर फ्रांस (Air France)

१. पेरिस--त्रिपोली--काहिरा--दमिश्क--बसरा --
करांची--कलकत्ता होता हुआ सैगाँव को

(५) रायल डच ऐयर लाइन्स (K. L. M.)

१. न्यूयार्क--ग्लासगो--लन्दन--अमस्टरडैम --
काहिरो--बसरा--करांची--कलकत्ता होता हुआ
बैंगकोक--बटाविया से शंघाई को

२. एमस्टरडैम--रोम--काहिरो--बसरा--करांची--
कलकत्ता होता हुआ बैंगकाक--सिंगापुर और
बटाविया को

(६) ओरियन्ट ऐयरवेज लि० (Orient Airways Ltd.)

१. कलकत्ता--चिटगाँव--अक्याव--रंगून
२. करांची--दिल्ली--ढाका--कलकत्ता

(७) पैन अमेरिकन वर्ल्ड ऐयरवेज (Pan American World Airways)

न्यूयार्क--ब्रुसेल्स--इस्तंबुल--दमिश्क--करांची--
दिल्ली--कलकत्ता होता हुआ बैंककाँक--शंघाई--मनीला--
टोकियो होनोलूलू और सैनफ्रांसिसको को

(८) ट्रान्स वर्ल्ड ऐयर लाइन्स (TWA)

न्यूयार्क--शैनन--पेरिस--जिनोवा--रोम--एथेंस--बम्बई तक
काहिरा--बसरा--बम्बई को।

(९) पाक ऐयरवेज (Pak Airways Ltd.)

१. करांची--दिल्ली
२. ढाका--कलकत्ता
३. करांची--बम्बई
४. कलकत्ता--चिटगाँव
५. ढाका--दिल्ली
६. दिल्ली--लाहौर

(१०) क्वेन्टास ऐम्पायर ऐयरवेज (Quantas Empire Airways)

१. सिडनी--डार्विन--सुराबिया--सिंगापुर--रंगून
कलकत्ता--करांची होता हुआ बेहरीन--बसरा
काहिरा--मारसलीज और साउथ हैम्पटन को

२. सिडनी-डार्विन--सिंगापुर--रंगून--कलकत्ता
काहिरा--रोम--लंदन को

(११) स्कैन्डेनेवियन ऐयरवेज (Scandanavian Airways)

इस समय हमारे यहाँ से हवाई-सर्विसें न केवल पार्श्ववर्ती देशों--लंका, ब्रह्मा, पाकिस्तान, ईरान, थाईलैण्ड और नैपाल को ही जाती हैं बल्कि पूर्वी भागों में सिंगापुर और पश्चिम की ओर काहिरा, रोम, जिनोवा, पेरिस, लंदन, अदन तथा नैरोबी को भी जाती हैं।

नीचे की तालिका में भारत में वायु-यातायात की प्रगति बताई गई है :--

वर्ष	कुल उड़ान (मीलों में)	यात्रियों की संख्या ले जाई गई	डाक लेजाई गई (पौंड में)	माल ढोया गया (पौंड में)
१९३३	१५३	१५५	२२,४००	—
१९३८	१,४१२	२,१०४	५४६,५६०	—
१९४७	९,३६२,०००	२५५,०००	१,४०५,०००	५,६४८
१९५०	१८,८९६,०००	४५३,०००	८,३५६,०००	८०,००७,०००
१९५५	२१,३२६,०००	५६८,५००	११,४७८,०००	९७,१९९,०००
१९५६	२३,४१८,०००	५३८,०००	१२,४८१,०००	९७,५५४,०००
१९५७	२३,३४५,०००	५९४,०००	१२,९४२,०००	८५६,९१,०००
१९५८	२४,०८६,०००	६८३,०००	१३,१८०,०००	९३६,४०,०००
१९५९	२४,९१३,०००	७२२,०००	१४९,८१,०००	—

१९४७ से यात्रियों के ट्रैफिक ने दुगुनी से अधिक माल ढोने में १७ गुनी, डाक ले जाने में ९ गुनी और उड़ान में २१२ गुनी प्रगति हुई है।

भारत के वायु-यातायात सम्बन्धी समझौते अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, लंका, मिश्र, फ्रांस, इटली, जापान, लैबेनान, नीदरलैंड, पाकिस्तान, फिलीपाइन्स, स्विटजरलैंड, थाईलैंड, ईराक, संयुक्तराज्य अमरीका, इंगलैंड तथा रूस से हुए हैं।

अध्याय ३४

बन्दरगाह
(Ports)

बन्दरगाह के विकास के तत्व :

समुद्र तट पर स्थित जिन नगरों द्वारा किसी देश का व्यापार विदेशों से होता है वे **बन्दरगाह** कहलाते हैं। कोई भी बन्दरगाह समुद्र से भूमि में जाने का प्रवेश द्वार होता है। वास्तव में जल मार्ग पर बन्दरगाह एक ऐसा स्थान होता है जहाँ व्यापारिक माल उतारने और लादने के लिए जहाज ठहर सकते हैं। समुद्री बन्दरगाह भूमि और समुद्र दोनों के व्यापार के नाभिविन्दु (Nodal points) कहे जा सकते हैं।

किसी देश में बन्दरगाह की उत्पत्ति के लिये कई बातें आवश्यक हैं, जैसे : (१) जिस स्थान पर बन्दरगाह बनाये जावें वहाँ की जमीन कड़ी होनी चाहिये क्योंकि बालू भूमि में बन्दरगाह बनाने और बाद में मरम्मत करने में बहुत खर्च हो जाता है। (२) समुद्र तट के निकट जल काफी गहरा होना चाहिये जिससे ज्वार भाटा के कारण बड़े-बड़े जहाज तट के निकट आकर ठहर सकें। (३) बन्दरगाहों पर ठहरने वाले जहाजों का तूफान अथवा आँधी से भी बचाव होना चाहिये अन्यथा वर्षा में जब समुद्र में आँधी आती है तो जहाजों के टूट जाने का डर रहता है। (४) बन्दरगाह के आसपास के समुद्र में नदियों द्वारा बहा कर लाई गई रेत और मिट्टी जमा न होनी चाहिये अगर ऐसा हुआ तो समुद्र का तल ऊँचा होता रहेगा और तब या तो जहाजों को समुद्र में दूर ठहरना पड़ेगा अथवा लगातार उस मिट्टी को यन्त्रों द्वारा निकालने का प्रयत्न करना पड़ेगा इसमें अधिक व्यय होगा। (५) बन्दरगाह का सम्बन्ध देश के भीतरी भागों (पृष्ठ देश) से रेल मार्गों, सड़कों अथवा नव्य योग्य नदियों से होना आवश्यक है तथा विदेशों का आयात माल देश के कोने-कोने में भेजा जा सकेगा और देश की तैयार वस्तु अथवा कच्चा माल विदेशों को भेजा सकेगा। यह तभी सम्भव हो सकता है जब किसी बन्दरगाह का पृष्ठ-देश उपजाऊ, घना आबाद और आवागमन के मार्गों से पूर्ण हो।

भारत की तट रेखा लगभग ३,५३५ मील लम्बी है, किन्तु यह कम कटी-फटी है तथा सपाट है। इसके अतिरिक्त किनारे के निकट पानी बहुत छिछला है और किनारे अधिकतर चपटे और बालूमय हैं। नदियों के मुहाने पर अधिकतर बालू इकट्ठी होती रहती है इसलिये बन्दरगाह तक जहाज नहीं पहुँच सकते। पश्चिमी समुद्र तट पर तो बम्बई और गोआ बन्दरगाहों को छोड़कर कोई अच्छा बन्दरगाह नहीं है। प्राय: सभी बन्दरगाह (इन दोनों को छोड़कर) मानसून के दिनों में व्यापार के लिये बन्द रहते हैं इसके कई कारण हैं :—(१) नदियों द्वारा लाई गई बालू और मिट्टी के कारण ताप्ती और नर्वदा का मुहाना बहुत ही कम गहरा है। (२)

इसके अतिरिक्त मई से अगस्त तक पश्चिमी तट पर मानसून हवाओं का प्रकोप अधिक रहता है, जहाजों की सुरक्षा के लिये कोई सुरक्षित स्थान नहीं है। (३) समस्त पश्चिमी भाग थोड़ी-बहुत कटानों के अतिरिक्त प्राय: सपाट और पथरीला है।

भारत के पूर्वी तट पर यद्यपि नदियों के डेल्टा अधिक हैं किन्तु इन नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से समुद्री तट अधिक पटता रहता है। कलकत्ता के बन्दरगाह पर भी यही कठिनाई रहती है। कभी-कभी तो घण्टों तक जहाजों को ज्वार भाटे की बाट जोहनी पड़ती है। इस भाग में कलकत्ता का बन्दरगाह ही प्राकृतिक है। मद्रास और विशाखापट्टनम तो कृत्रिम हैं। कलकत्ता के बन्दरगाह की मिट्टी झामों द्वारा निकाली जाती है।

भारत का लगभग ९८% व्यापार इन बन्दरगाहों द्वारा ही होता है क्योंकि उत्तर की ओर के सीमान्त प्रदेश पहाड़ी और अनउपजाऊ हैं या बहुत ही कम बसे हुए भाग हैं। भारत में दो प्रकार के बन्दरगाह पाये जाते हैं। बड़े (Major) और छोटे बन्दरगाह (Minor)। प्रधान या बड़े बन्दरगाह केन्द्रीय सरकार तथा गौण या छोटे बन्दरगाह राजकीय सरकारों द्वारा प्रकाशित किए जाते हैं। इन दोनों प्रकार के बन्दरगाहों में मुख्य अन्तर निम्न बातों में होता है :—

(१) पोताश्रय सुरक्षित होता है।

(२) आवागमन के साधन सुविस्तृत होते हैं।

(३) जहाजों के ठहरने के लिए जेटी, डॉक और लंगर-स्थानों का सुप्रबन्ध होता है।

(४) स्थानान्तरण के लिए पर्याप्त सुविधायें होती हैं।

(५) रेलों व सड़कों द्वारा पृष्ठ देश के दूरस्थ स्थानों से भी यातायात का सम्बन्ध होता है।

(६) सुरक्षा व सैनिक दृष्टिकोण से बन्दरगाह उपयुक्त रहता है।

(७) व्यापार व गमनागमन की अधिकता के कारण साल भर लगातार जहाजों की मांग रहती है।

भारत के प्रमुख बन्दरगाह ६ हैं :—

कांधला, बम्बई, कोचीन, मद्रास, विशाखापट्टनम, कलकत्ता। इन्हीं बन्दरगाहों द्वारा भारत के विदेशी व्यापार का लगभग ९०% से भी अधिक होता है।

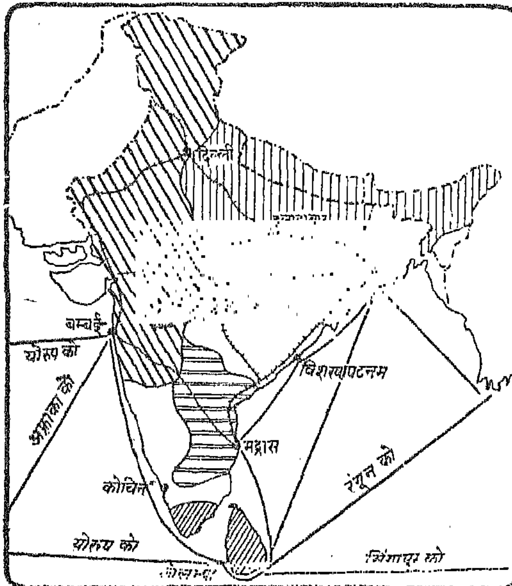
इन बड़े बन्दरगाहों के अतिरिक्त भारत में लगभग १५० छोटे या गौण बन्दरगाह भी हैं। इनका व्यापार ५० लाख टन वार्षिक का होता है। इनमें से १८ प्रमुख बन्दरगाह इस प्रकार हैं।

भावनगर, पोरबन्दर, बेरी, नवलखी, ओखा, मंगलौर, मारमुगोआ, कोजीखोड़, अलप्पी, तूतीकोरिन, क्विलोन, काकीनाड़ा, मसूलीपट्टम, कड्डालोर, नागापट्टम, पांडिचेरी, सूरत आदि।

भारत के समुद्री-व्यापार का औसत ३१० लाख टन प्रति वर्ष है। द्वितीय योजना के अन्तर्गत इसमें ३०% की वृद्धि होने का अनुमान है। सन् १९५१–५२ और १९५७–५८ में विभिन्न बन्दरगाहों पर हुए व्यापार के आंकड़े इस प्रकार हैं :—

	१९५१–५२			१९५७–५८		
	(लाख टनों में)					
बन्दरगाह	आयात	निर्यात	योग	आयात	निर्यात	योग
बम्बई	४६·७५	१९·४३	६६·१८	९३·०२	३८·०८	१३१·१०
कलकत्ता	३३·१९	६३·५४	९६·७३	५५·१६	४६·४१	१०१·५७
मद्रास	१८·०७	३·१५	२१·२२	२०·०३	६·७३	२६·७६
कोचीन	१२·२५	३·२६	१५·५१	१४·०४	३·९६	१८·००
विशाखापट्टनम	२·९	९·३	१२·२	११·४७	१३·४७	२४·९३
काँधला	—	—	—	६·०९	२·३५	८·४४

इन बन्दरगाहों में सामुदायिक व्यापार के केन्द्रित होने के कई कारण है :—भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्राचीनता ने भी इनके व्यापारिक विकास में सहायता दी है। बम्बई, मद्रास और कलकत्ता काफी समय से शासन के केन्द्र रहे हैं। फलत: वहाँ जनसंख्या का घनत्व बढ़ा और साथ-साथ व्यापारिक और औद्योगिक काम-धन्धों का भी विकास हो चला। इसके अतिरिक्त १९वीं शताब्दी के अन्त में रेलों का निर्माण इन्हीं बन्दरगाहों से आरम्भ किया गया। इस प्रकार राजनैतिक व यातायात के केन्द्रों से बढ़कर ये प्रमुख बन्दरगाह बन गये।



चित्र १७५—भारतीय बन्दरगाहों की पृष्ठ-भूमि

वर्तमान काल में कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कोचीन तथा विशाखापट्टनम बन्दरगाहों की सम्मिलित भार वहन की शक्ति ३१० लाख टन की है। किन्तु यह देश के व्यापार को देखते हुए बहुत ही थोड़ी हैं। अस्तु, पंचवर्षीय योजना में इन

पाँच बन्दरगाहों को सुधारने, आधुनिकीकरण करने तथा उनका विस्तार करने का प्रयास किया जा रहा है। काँडला के बन्दरगाह के बन जाने से वहाँ ८,५०,००० टन प्रति वर्ष के हिसाब से व्यापार में वृद्धि हो सकेगी। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कलकत्ता के बन्दरगाह पर गार्डन रीच जेटी का पुनरुद्धार, डिब्बे तथा इंजनों की उपलब्धि, भारी मशीनों को उठाने के लिये क्रेन की स्थापना तथा कोयला आदि जमा करने को दो बर्थों का बनाया जाना सम्मिलित है। बम्बई के बन्दरगाह पर प्रिन्स और विक्टोरिया डाक्स का आधुनिकीकरण करने, वहाँ माल रखने के गोदामों का करने तथा एलेक्जेन्ड्रिया डाक्स में विद्युतचालित-क्रेनों को लगाये जाने का आयोजन किया गया है। मद्रास में एक तर-डॉक (Wet Docks) तथा पैट्रोलियम जमा करने के लिए एक बर्थ बन रहा है।

भारत के मुख्य बन्दरगाह ये है :—

पूर्वी तट पर—

(१) **कलकत्ता** का बन्दरगाह हुगली नदी के बायें किनारे पर है। नदी के किनारे से यह ८० मील उत्तर की ओर है। अतः यहाँ डायमंड हारबर का निर्माण किया गया है जहाँ ज्वार आने के समय तक जहाज खड़े रह सकें। ज्वार के साथ ही जहाजों को आना और भाटे के साथ पुनः लौटना पड़ता है। कलकत्ता में जहाजों में माल लादने और उतारने के लिये किद्दरपुर में स्थायी डॉक्स बनाये गये हैं। हुगली नदी में मिट्टी का जमाव अधिक होने के कारण जहाजों को बड़ी कठिनाई पड़ती है अतः लगातार ड्रेजरों द्वारा मिट्टी को निकाला जाता है। कलकत्ता भारत का ही नहीं सम्पूर्ण एशिया का प्रमुख बन्दरगाह है। यह सिंधु-गंगा की घाटी का मुख्य सामुद्रिक द्वार है। इसका पृष्ठ-देश धनी है। इसके पृष्ठ-देश में आसाम, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, पूर्वी पंजाब और मध्य प्रदेश सम्मिलित हैं। यह बन्दरगाह अपने घने आबाद और उपजाऊ पृष्ठ-देश से रेल-मार्गों (पूर्वी और उत्तर-पूर्वी तथा मध्य), नदियों और नहरों द्वारा जुड़ा है। अतः गंगा की घाटी की पैदावार—गेहूँ, चावल, गन्ना, कोयला, चाय आदि-सहज ही में कलकत्ता लाई जा सकती है और विदेशों से प्राप्त माल को भिन्न-भिन्न भागों में पहुँचाया जा सकता है।

हुगली नदी में कलकत्ते से समुद्र-तट तक अनेक मोड़ हैं तथा कई स्थानों पर बालू पड़ गई है जहाँ जल का गहराई बहुत ही कम हो गई है। इसमें से जहाज नहीं निकल सकते। हुगली नदी में इन स्थानों में बालू पड़ गई है : पंचपरिय, संकराल, मनीखोली, पीर सिरांग, पुजाली, मोयापुर, रोयापुर, फुल्टा जेम्स, पूर्वी घाट, कुकराहाटी, बलारी, ऑकलैंड बार; गंगासागर और मिडिलटन। इनमें से सबसे अधिक महत्व सागर का है। इस स्थान पर केवल २४ से ३० फीट तक जल गहरा रहता है। अतः बन्दरगाह में जहाज आने के पूर्व इस बात की परीक्षा करली जाती है कि यहाँ पानी इतना ही गहरा है। यदि कारणवश जहाज छोड़ने के बाद गंगासागर में जल कम हो जाता है तो जहाजों को हुगली नदी के गहरे पानी में खड़ा रहना पड़ता है।

कलकत्ता के बन्दरगाह में जहाजों के खड़े होने के लिये पाँच सूखे हुए डॉक्स (Dry Docks) हैं। आरम्भ में यह बन्दरगाह कोशीपुर से गार्डन रीश तक ६ मील की लम्बाई में फैला हुआ था किन्तु अब इसे बढ़ा कर १६ मील कलकत्ता से नीचे की ओर बजबज तक और उत्तर में ९ मील की दूरी पर कोनगढ़ तक कर दिया गया है।

कलकत्ता भारत का व्यावसायिक केन्द्र भी है। इसके पृष्ठ-देश में जूट, कागज, चमड़े, चावल, सूती कपड़े, दियासलाई, रेशम, चीनी और लोहे के कारखाने हैं।

यहाँ कारखानों की अधिकता होने का मुख्य कारण पृष्ठ-देश में घनी आबादी, सस्ते मजदूर, पर्याप्त जल और कच्चा माल तथा रानीगंज और भरिया के कोयले की खानों का निकट होना है। कलकत्ते से विदेशों को जाने वाली मुख्य वस्तुएँ जूट और जूटका तैयार माल, रस्से, चाय, शक्कर, लोहे का सामान, तिलहन, चमड़ा, अभ्रक, मैंगनीज और कोयला हैं। बाहर से आने वाले मुख्य आयात रुई का तैयार माल, ऊनी-सूती-रेशमी वस्त्र, मशीनें, शक्कर, मोटरें, काँच का सामान, कागज, पैट्रोल, रासायनिक पदार्थ हैं। १६५८-५६ में इस बन्दरगाह द्वारा ५१ लाख टन का आयात और ४१६ लाख टन का निर्यात हुआ।

कलकत्ता में अधिकतर भारी पदार्थों का व्यापार होता है जो इतने मूल्यवान नहीं होते जितने कि बम्बई बन्दरगाह के होते हैं। यहाँ मुसाफिरी जहाज बहुत कम आते हैं।

नीचे की तालिका में कलकत्ता द्वारा होने वाले व्यापार की मात्रा बताई गई है :—

वर्ष	आयात (लाख टन)	निर्यात (लाख टन)	योग (लाख टन)
१६५१-५२	४,०६३	५,४८६	६,५८२
१६५२-५३	३,३१६	६,४५४	६,६७३
१६५३-५४	२,७२३	५,३३६	८,०५६
१६५४-५५	३,२४०	४,५७३	७,८१३
१६५५-५६	३,४०६	४,६२१	८,०३०
१६५६-५७	४,३५३	४,३४२	८,६६५
१६५७-५८	५,५१५	४,६४०	१०,१५५
१६५८-५६	५,०६५	४,१३३	६,१६८

(२) मद्रास—पूर्वी तट पर दूसरा प्रमुख बन्दरगाह है। यह कृत्रिम बन्दरगाह है। यहाँ तट से लगभग २ मील दूर समुद्र में २ कंक्रीट की दीवारें बना कर २०० एकड़ समुद्र को घेरा गया है जहाँ वर्षा और तूफानों के समय जहाज ठहर सकते हैं किन्तु अक्टूबर-नवम्बर में जब तूफान उठते हैं तो जहाजों को बन्दरगाह छोड़ देना पड़ता है।

मद्रास के पृष्ठ-देश में संपूर्ण पूर्वी प्रायद्वीप का भाग सम्मिलित है जिसमें आंध्र, मद्रास तथा पश्चिमी मैसूर राज्यों के भाग हैं। यद्यपि मद्रास के पृष्ठ-देश में कई उद्योग-धंधे केन्द्रित हैं किंतु व्यापार की दृष्टि से कलकत्ता या बम्बई के बन्दरगाह से यह तुलना नहीं कर सकता क्योंकि इस भाग में यूरोपीय देशों में माँग वाली वस्तुएँ अधिक नहीं होती। दूसरे कोरोमंडल व मलाबार तट पर स्थित अनेक छोटे-छोटे बन्दरगाह इससे स्पर्धा करते हैं।

इस बन्दरगाह के मुख्य निर्यात चमड़ा, हल्दी, मूँगफली, अभ्रक, तम्बाकू और सूती तथा रेशमी वस्त्र हैं। यहाँ के मुख्य आयात कोयला, कोक, अनाज, मिट्टी का तेल, लकड़ियाँ, धातुयें, मोटरें, मशीनें तथा रासायनिक पदार्थ हैं।

नीचे की तालिका में मद्रास के बन्दरगाह द्वारा होने वाले व्यापार की मात्रा बताई गई है :—

वर्ष	आयात (००० टन)	निर्यात (००० टन)	योग (००० टन)
१९४५-४६	१,८३३	३३६	२,१६९
१९४९-५०	१,५८२	१९१	१,७८३
१९५०-५१	१,९२९	२४८	२,२७८
१९५३-५४	१,५६९	४७१	२,०४१
१९५४-५५	१,५९४	४६५	२,०५९
१९५५-५६	१,७१६	४८५	२,२०१
१५९६-५७	२,०३३	६३२	२,६६५
१९५७-५८	१,८८५	६१८	२,५०३
१९५८-५९	१,७३७	७०३	२,४४०

(३) विशाखापट्टनम :—यह बन्दरगाह कोरोमंडल तट पर कलकत्ता से ५०० मील दक्षिण में तथा मद्रास से ३२५ मील उत्तर में स्थित है। कलकत्ता की तुलना में मध्य प्रदेश, उड़ीसा और आंध्र का व्यापार इस बन्दरगाह द्वारा अच्छी प्रकार हो सकता है। इसका पृष्ठ-देश उत्तरी मद्रास, आंध्र, पूर्वी मध्य प्रदेश औरउड़ीसा तक फैला है। इन राज्यों की उपज के निर्यात के लिए यही बन्दरगाह उत्तम है इसमें कलकत्ता की अपेक्षा पहुँचने में कम समय लगता है और खर्चा भी कम पड़ता है। अतएव यह व्यापार में कलकत्ता से स्पर्धा करने लगा है। इसका संबंध पूर्वी रेल मार्ग द्वारा मध्य प्रदेश से है। यहाँ जहाज बनाने तथा तेल साफ करने की शोधनशाला भी है।

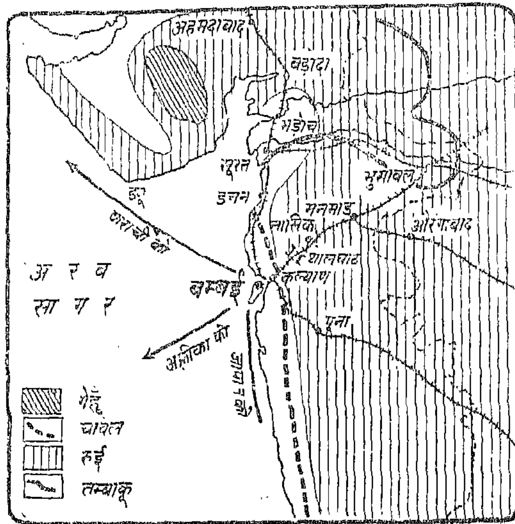
यहाँ के मुख्य निर्यात लकड़ियाँ, कोयला, चमड़ा और खालें, हर्ड-बहेड़ा, मूँगफली और मैंगनीज हैं। आयात में सूती कपड़ा, लोहा और इस्पात का सामान, मशीनें आदि मुख्य हैं।

पश्चिमी तट के बन्दरगाह :

(१) **बम्बई** :—यह भारत का ही नहीं दुनिया के प्रमुख बन्दरगाहों में से है। इसका बन्दरगाह बड़ा सुरक्षित है अतः यहाँ मानसून के तूफानी दिनों में भी जहाज बड़ी आसानी से ठहर सकते हैं। समुद्र के निकट जहाजों के ठहरने के लिये एक १४ मील लम्बी और ६ मील चौड़ी तथा २३ फीटगहरीएक खाड़ी सी बन गई है इसी में जहाज आकर ठहरते हैं। जिस स्थान पर बम्बई का बन्दरगाह बना है वहाँ जल की गहराई ३७ फीट है। इस गहराई में वे सभी जहाज निकल सकते हैं जो स्वेज नहर से होकर निकलते हैं क्योंकि स्वेज नहर की गहराई भी इतनी ही है। यह बन्दरगाह यूरोप तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के अधिक निकट पड़ता है। अतः कलकत्ता या मद्रास की अपेक्षा यहाँ व्यापार अधिक होता है।

यद्यपि पश्चिमी तट को पश्चिमी घाट देश के भीतरी भागों से अलग करता है किन्तु बम्बई के ठीक पीछे थाल घाट और भोर घाट दर्रे हैं जो बम्बई को उत्तरी भारत और गुजरात या दक्षिणी भारत से पश्चिमी रेलवे द्वारा जोड़ते हैं। इसका पृष्ठ-देश, दक्षिण में मद्रास के पश्चिमी भाग से लेकर उत्तर में काश्मीर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और गुजरात तक फैला है। यह पृष्ठ-देश खेती की पैदावार के लिए बड़ा उपजाऊ है। यद्यपि बम्बई के निकटवर्ती २०० मील तक न तो कोयला है और न नाव्य-जल-मार्गों की ही सुविधा है फिर भी प्राकृतिक पोताश्रय होने के कारण यहाँ व्यापार बहुत अधिक होता है।

इस बन्दरगाह से अलसी, मूंगफली, चमड़ा, तिलहन, लकड़ी, ऊन, ऊनी कपड़ा, सूती कपड़े, खालें, मैंगनीज, अभ्रक आदि वस्तुयें बाहर भेजी जाती हैं और बाहर से सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र, मशीनें, नमक, कोयला, कागज, रंग, फल, रसायनिक पदार्थ, मिट्टी का तेल और लोहे का सामान मँगवाया जाता है।



चित्र १७६—बम्बई

यहाँ मक्का, मदीना तथा यूरोप को जाने वाले मुसाफिर-जहाज अधिक आते हैं। पिछले कुछ वर्षों से सौराष्ट्र के बन्दरगाहों ने बम्बई से प्रतिद्वन्द्विता करनी आरम्भ कर दी है। इस दृष्टि से कलकत्ता का स्थान सुरक्षित है क्योंकि उसके आस-पास ऐसे बन्दरगाह नहीं है। किंतु बम्बई के बन्दरगाह से यात्री जहाज अधिक जाते हैं क्योंकि ऐसे जहाज अधिक टन भार वाले होते हैं जो बम्बई के बन्दरगाह में अच्छी प्रकार ठहर सकते हैं।

नीचे की तालिका में बम्बई के बन्दरगाह द्वारा होने वाले व्यापार के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं :—

वर्ष	आयात (लाख टन)	निर्यात (लाख टन)	योग (लाख टन)
१९४५-४६	४,५४८	१,९०२	६,४५०
१९४९-५०	४,९२७	१,३५८	६,२८५
१९५१-५२	५,८०६	१,६७३	७,४७९
१९५३-५४	४,७७५	१,६५१	६,४२६
१९५४-५५	५,६३०	१,५९४	७,२२४
१९५५-५६	६,६४७	३,५२८	१०,१७५
१९५६-५७	८,२३९	३,७४०	११,१७९
१९५७-५८	९,३०२	३,८०८	१३,११०
१९५८-५९	८,४१८	३,३३३	११,७५१

(२) **भावनगर :**—यह खंभात की खाड़ी के उपर पश्चिम की ओर स्थित है। बन्दरगाह में माल को सुरक्षित रखने से लिये सभी सुविधायें हैं और बन्दरगाह रेलवे लाइन द्वारा भिन्न-भिन्न बन्दरगाहों से संबंधित हैं। जहाज बन्दरगाह से लगभग आठ मील दूरी पर ठहरते हैं और माल नावों द्वारा बन्दरगाह पर लाया जाना है। बन्दरगाह में रेत जमने के कारण १९३७ में नया गहरा बन्दरगाह बनवाया है जिसमें दो जहाज एक साथ रह सकते हैं। भावनगर का व्यापार तेजी से बढ़ रहा है।

(३) **बेदी बन्दर :**—सौराष्ट्र मे सबसे पहले इसी बन्दरगाह ने उन्नति की। यह कच्छ की खाड़ी में स्थित है। इस बन्दरगाह का समुद्रतट जहाजों के लिये बहुत उपयुक्त है और वर्ष के सब मौसमों में यह खुला रहता है। चूंकि किनारे के निकट जल कम गहरा है अत: बड़े जहाज किनारे से २-३ मील दूर खड़े रहते हैं।

(४) **ओखा :**—गुजरात का यह मुख्य बन्दरगाह है। यह सौराष्ट्र प्रायद्वीप की उत्तर-पश्चिम की सीमा पर स्थित है। इस कारण जितने भी जहाज समुद्र तट पर चलते हैं उनकी पहुँच के अन्दर है। इस बन्दरगाह में केवल एक दोष है। इसका मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा और चक्करदार है और उसमें खतरा है। साथ ही यह जनसंख्या बाहुल्य प्रदेशोंसे बहुत दूर है। यहाँ से तिलहन, नमक, सीमेंट बाहर भेजी जाती है तथा बाहरसे कोयला; पेट्रोलियम; रासायनिक पदार्थ व मशीनें आती हैं।

(५) **नवलखी :**—मोरवी का यह प्रसिद्ध बन्दरगाह है और कच्छ की छोटी खाड़ी में स्थित है जहाज बन्दरगाह से एक मील पर ठहरते हैं फिर भी यह बन्दरगाह वर्ष भर खुला रहता है।

(६) **पोरबन्दर :**— यह एक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह है और पूर्वी अफीका से इसका अधिक व्यापार होता है किन्तु वर्षा के दिनों में बन्दरगाह बन्द रहता है क्योंकि यह बिल्कुल खुला है। यहाँ से नमक व सीमेंट का निर्यात और कोयला खजूर तथा मशीनों का आयात होता है।

(७) **मारमुगाओ :**—यह कोनकन तट पर स्थित है। यह पुर्तगीज भारत में है। इसका व्यापार क्षेत्र बंबई, आंध्र और मैसूर तक फैला हुआ है। यहाँ से मैंगनीज, मूंगफली, कपास और नारियल विदेशों को भेजी जाती हैं।

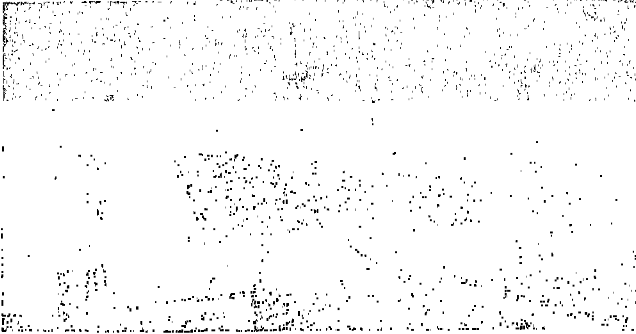
(८) **कोजीखोड़ (कालीकट)**—यह कोचीन से ९० मील उत्तर में है। मानसून के आरंभ में यह बन्द रहता है। यहां समुद्र छिछला है इस कारण जहाजों को बन्दरगाह से तीन मील दूर समुद्र में खड़ा होना पड़ता है। यहाँ से नारियल की रस्सी, खोपरा, कहवा, चाय, सोंठ, मूँगफली तथा मछली की खाद बाहर भेजी जाती है। यहाँ के मुख्य आयात अनाज, मिट्टी का तेल, मशीनें और सूती वस्त्र हैं।

९ **कोचीन :** यह केरल का एक बहुत महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह है। बंबई और कोलम्बो के बीच में यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ से नारियल के रेशे के रस्से, खस की चटाइयाँ, कोपरा, नारियल का तेल, चाय और रबर विदेशों को भेजी जाती हैं। यहाँ वर्ष भर ही जहाज सुरक्षित खड़े रह सकते हैं।

१. कांधला (Kandla) :

कांधला का बन्दरगाह कच्छ राज्य के लिए १९३० में बनाया गया था। यहाँ उस समय एक जेटी थी जिसमें साधारण आकार का केवल एक जहाज खड़ा हो सकता था। किंतु विभाजन के फलस्वरूप जब करांची बन्दरगाह पाकिस्तान के अधिकार में हो गया तो इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि एक ऐसे बन्दरगाह की उन्नति की जाये जो कच्छ, सौराष्ट्र, गुजरात के उत्तरी भाग, राजस्थान, पूर्वी

पंजाब काश्मीर तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लिए मुख्य व्यापार-द्वार का काम दे सके। अस्तु १६४६ में कांधला के बन्दरगाह की विकास योजना कार्यान्वित की गई। यह बन्दरगाह एक समुन्द्री कटान पर स्थित है और भुज नगर से केवल ३० मील दूर तथा कच्छ की खाड़ी के पूर्व सिरे पर है। इसमें जल की औसत गहराई ३० फीट तक रहती है अत: जहाज सुविधा से आकर ठहर सकते हैं। इसका पोताश्रय सुरक्षित एवं प्राकृतिक है।



चित्र १७७—कांधला बन्दरगाह की जेटी

इस बन्दरगाह के पूर्ण विकास के लिए एक रेल मार्ग १६५२ में बनाया गया जो इसकी छोटी लाइन द्वारा दीसा स्थान से तथा बड़ी लाइन द्वारा झुंड से जोड़ती है। चूंकि इस प्रदेश का पानी लोहा गलाने वाला है अत: इस मार्ग पर डीजल एंजिन चलाये जाते हैं। कांधला के निकट ही गांधीधाम नामक नई बस्ती भी बसाई गई है।

सम्पूर्ण योजना के पूर्ण होने पर कांधला के बन्दरगाहों को यह सुविधायें प्राप्त होंगी : (१) गहरे पानी में माल उतारने, लादने के चार स्थान; (२) चार भंडार-गृह; (३) बहाव में जहाजों के ठहरने के लिए चार लंगर स्थान; (४) बड़े-बड़े तेल-ले जाने वाले जहाजों को ठहरने का एक स्थान; (५) छोटे-छोटे जहाजों के लिए एक तैरता हुआ शुष्क डॉक; तथा (६) यात्री जहाजों पर चढ़ने उतरने का तैरता हुआ स्थान। इन सुविधाओं के बन जाने से कांधला द्वारा वर्ष भर में ८½ लाख टन माल का व्यापार किया जा सकेगा।



चित्र १७८—कांधला की पृष्ठ भूमि

इसका पृष्ठ देश मछली पकड़ने, सीमेंट बनाने, जिप्सम, लिगनाइट और बाक्साइट आदि श्रोतों में धनी है।

अध्याय ३५

व्यापार
(Trade)

भारत को व्यापार को चार भागों में विभाजित किया जाता है :—

(१) आंतरिक व्यापार　　(२) तटीय व्यापार
(३) पुनः निर्यात करना　　(४) विदेशी व्यापार

१. आंतरिक व्यापार (Internal Trade) :—

भारत जैसे विशाल देश के लिये आन्तरिक व्यापार का महत्व बहुत अधिक है। यह व्यापार विदेशी व्यापार का १५ गुना से भी अधिक होता है। अनुमानित प्रतिवर्ष भारत का आंतरिक व्यापार ७ से ८ हजार करोड़ रुपयों तक का होता है।

समस्त भारत को आंतरिक व्यापार की सुविधा से ३६ भागों में बांटा गया है तथा आंतरिक व्यापार की वस्तुयें भी इन श्रेणियों में विभाजित की गई हैं—कोयला और कोक, कच्ची रुई, सूती वस्त्र, दाल, अनाज और आटा, कच्चा चमड़ा, जूट, जूट के बोरे और टाट, लोहे और इस्पात का सामान, तिलहन और शक्कर।

नीचे की तालिका में रेल और नदियों द्वारा आने जाने वाली वस्तुओं की मात्रा बताई गई है :—

आंतरिक व्यापार (लाख मनों में)

	१९५१-५३	१९५५-५६	१९५६-५७	१९५७-५८
कोयला और कोक	५.४१३	५,८०१	५,७५२	६,५८९
रूई	१२१	७७	—	८३
सूती कपड़े	६६	८७	७०	७५
चावल	२२३	२२१	४५४	४८७
गेहूँ	५२१	४४०	२९८	५०१
जूट	१२६	९४	९१	१०४
लोहे और इस्पात का सामान	४६५	५१३	६६१	७५८
तिलहन	२२२	२५३	२५१	२५३
नमक	३३८	३०२	२९४	३१९
शक्कर	१७४	२२२	२४५	३०३

आंतरिक व्यापार में रेलों द्वारा ले जाये गये माल की मात्रा का अनुमान नीचे के आँकड़ों से मिलता है :—[1]

1. Reserve Bank of India, Bulletin, July 1958, p. 869

डिब्बे लादे गए (हजार में)			
	१९५२–५३	१९५५--५६	१९५८--५९
कोयला और कोक	२,६३५	२,७७२	२,६५५
अनाज और दालें	९४९	९७२	१,२९६
तिलहन	१७१	२१३	२०६
रुई	१०८	१११	९२
सूती वस्त्र	७०	६७	३६
जूट	१८८	१५०	२२१
जूट का माल	२१	२९	२३
शक्कर	१६९	१७०	१८४
गन्ना	—	३४८	२७५
सीमेंट	२९७	४१२	४८३
ढला लोहा	२५	४१	३६
लोहा और इस्पात	२६०	३३७	५५४
चाय	४६	४८	४६
मैंगनीज	१५६	१४८	११३
लोह-धातुयें	३२५	३८७	५३२
अन्य वस्तुयें	१३	२७	३८
कुल योग	११४,१३	१२७,६१	१४,३६५

आंतरिक व्यापार देश के विभिन्न भागों से रेलों और नदियों द्वारा देश के प्रमुख बन्दरगाहों को तथा विभिन्न राज्यों के बीच भी होता है। प्रथम प्रकार के व्यापार के अंतर्गत देश की कृषि-अन्य एवं उद्योगों की निर्मित वस्तुयें निर्यात के लिये बन्दरगाहों को लाई जाती हैं और विदेशों से आयात माल बन्दरगाहों द्वारा देश के भीतरी भागों को वितरित किया जाता है। यह व्यापार कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, विशाखापट्टनम, कोजीखोड़ और कोचीन बन्दरगाहों से होता है।

दूसरे प्रकार का व्यापार देश के विभिन्न राज्यों के बीच में होता है। इस व्यापार में बंगाल, बिहार, आँध्र और मध्यप्रदेश अपने यहाँ से वस्तुओं का निर्यात अधिक करते हैं और उत्तर प्रदेश 'राजस्थान, मद्रास, बम्बई, पंजाब, दिल्ली तथा मैसूर राज्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अन्य राज्यों से आयात करते हैं। रेलों और नदियों द्वारा होने वाले इस व्यापार की मात्रा लगभग ७६ करोड़ मन की है, जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होता है।

अन्तर्राज्यीय व्यापार (मनों में)

राज्य	आयात	निर्यात	शुद्ध आयात निर्यात
आसाम	४९	३५	+ १४
बंगाल	७५६	१,९१३	+१०५७
बिहार	५०४	२,८९४	+२३९०
उड़ीसा	९७	११५	+ १८
उत्तर प्रदेश	९५५	२७४	— ६८१
पंजाब	४५३	९३	— ३६०
दिल्ली	२२२	१३	— २०९

राज्य	निर्यात	आयात	शुद्ध आयात निर्यात
मध्य प्रदेश	१६६	४६१	—२६५
बम्बई	७६६	२८२	—५१४
मद्रास	६६५	१५३	—५१८
राजस्थान	१८५	१३२	—५३
मध्य भारत	१७६	१५१	—२८
आंध्र	८७	२१४	—१२७
मैसूर	१२६	१७	—१०६
योग भारत	७,०३७	७,५३७	—

रेल और नदियों के मार्ग से मुख्यत: नमक, चीनी, गुड़, गेहूँ, जूट, इस्पात, तिलहन, लकड़ियाँ, कोयला, रुई और चावल आदि वस्तुऐं लाई ले जाई जाती हैं जैसा कि पीछे दी गई पृष्ठ की तालिका से स्पष्ट होगा। बंगाल से कोयला, जूट व लोहे का सामान, मशीनें, दवाइयाँ, सूती कपड़े, कागज आदि; बिहार से कोयला, लोहा और इस्पात का सामान, शक्कर, तिलहन; उड़ीसा से जूट, चावल, तिलहन, कोयला; उत्तर प्रदेश से चीनी, गुड़, सूती कपड़े, कागज, काँच का सामान; पंजाब से रुई, चावल; आसाम से मिट्टी का तेल, जूट, चाय; मद्रास से तिलहन, सूती कपड़े, चीनी, मैंगनीज, अभ्रक; राजस्थान से नमक, चमड़ा, खालें, अभ्रक, घीया पत्थर, पशु, घी, अनाज, तिलहन, इमारती पत्थर; मध्य प्रदेश से रुई, सूती कपड़े, गेहूँ, संतरे, तिलहन; मैसूर से ऊनी और रेशमी कपड़े और चीनी आदि अन्य राज्यों को निर्यात की जाती हैं।

सीमा प्रान्तीय व्यापार (Over-Land Trade) :

भारत की स्थलीय सीमा ६,४२५ मील है जो उत्तर, उत्तर-पश्चिम और पूर्वी भागों में फैली है। केवल उत्तर-पश्चिम को ही व्यापारिक मार्ग उपलब्ध है, शेष ओर ऊँची गगनचुम्बी चोटियाँ, घने जंगल और गहरी घाटियाँ हैं। भारत का सीमा प्रान्तीय व्यापार मुख्यत: उसके पड़ौसी देशों से—अफगानिस्तान, पाकिस्तान, तिब्बत, ईरान, ईराक, शान की रियासतें, चीन, नैपाल, भूटान और मध्य एशिया के देशों से होता है। इन सभी देशों में प्राकृतिक साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं किंतु उत्पादन कम होने और देश गरीब होने से न तो अधिक वस्तुयें खरीदी ही जाती हैं और न अधिक बेची ही जाती हैं। अतएव, समुद्री व्यापार की तुलना में सीमा प्रान्तीय व्यापार प्राय: नगण्य सा है।

सीमा प्रान्तीय व्यापार की मुख्य निर्यात की वस्तुयें भारत से विदेशी और देशी सूती कपड़े, रंग, मशीनें, कटलरी, मिट्टी का तेल, शक्कर, तम्बाकू, चमड़े का सामान, चावल, गेहूँ, दालें और रेशमी वस्त्र हैं। मुख्य आयात अनाज, कच्चा ऊन, जूट, तम्बाकू, तिलहन, पशु, सुहागा, फल आदि हैं।

अफगानिस्तान से भारत को फल और तरकारियाँ, खालें, दवाइयाँ, हींग तिलहन, अनाज, ऊन आदि वस्तुयें आती हैं तथा भारत से चाय, चमड़ा व चमड़े का सामान, सूती-रेशमी वस्त्र, शक्कर, मसाले, जूते, दवाइयाँ, साबुन आदि वस्तुयें निर्यात की जाती हैं। १९५९ में अफगानिस्तान से ५७० लाख रुपये का आयात और भारत से ४४८ लाख रुपये का निर्यात हुआ।

भारत से पाकिस्तान को सूती कपड़ा, जूट का सामान, गुड़, लोहा और इस्पात, कोयला, चाय, सीमेंट, कागज, सूत, मशीनें, दवाइयाँ, वनस्पति तेल, नमक, मसाले आदि निर्यात किए जाते हैं और पाकिस्तान भारत को जूट, कपास, अनाज, फल, चमड़ा और खालें, पशु, गलीचे, तिलहन, लकड़ियाँ आदि वस्तुऐं निर्यात करता है। १९५९ में पाकिस्तान से ५४६ लाख रुपये का आयात हुआ तथा भारत से ६३२ लाख रुपये का निर्यात।

भारत और तिब्बत के बीच भी स्थल मार्गों द्वारा व्यापार होता है। भारत तिब्बत को अनाज, सूती वस्त्र, लेखन-सामग्री, रंग, धातुयें, शक्कर, तम्बाकू और चमड़ा निर्यात करता है तथा तिब्बत से भारत में ऊन, सुहागा, नमदे आदि आते हैं।

नीचे की तालिका में सीमा प्रान्तीय व्यापार संबंधी आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—

(करोड़ रुपयों में)

सन्	आयात	निर्यात	कुल सीमा प्रान्तीय व्यापार
१९५२-५३	२५·२	१०·८	४४·००
१९५३-५४	२२·९	७·५	३०·३
१९५४-५५	२३·४	५·७	२९·१
१९५५-५६	२९·४	६·२	३५·६

२. समुद्र तटीय व्यापार (Coastal Trade) :

देश की तट रेखा के अनुपात में भारत के तट पर बन्दरगाहों का अभाव है तथा हमारा तटीय व्यापार भी उतना अधिक उन्नत नहीं है। यह तटीय व्यापार दो तरह का होता है। **देशी तटीय व्यापार** (Internal Trade) जो एक ही राज्य के दो या दो से अधिक बन्दरगाहों के बीच होता है। **विदेशी तटीय व्यापार** (External Trade) एक राज्य के बन्दरगाहों और दूसरे राज्य के बन्दरगाहों के बीच होता है।

तटीय व्यापार की दृष्टि से भारतीय तट को इन भागों में बांटा गया है : (१) पश्चिमी बंगाल; (२) उड़ीसा; (३) मद्रास और आंध्र; (४) केरल; (५) कोचीन बन्दरगाह; (६) महाराष्ट्र तथा (७) सौराष्ट्र, ओखा और कच्छ।

१९५६-५७ में ३४३ करोड़ रुपये का तटीय व्यापार हुआ जिसमें से आयात का मूल्य १८० करोड़ और निर्यात का मूल्य १६३ करोड़ रुपया था। १७९ करोड़ के आयात में से १२.६ करोड़ रुपये का विदेशी तटीय व्यापार और १६६.८ करोड़ रुपये का देशी तटीय व्यापार हुआ। नीचे की तालिका में तटीय व्यापार के आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :—[1]

तटीय व्यापार (लाख रुपयों में)

	१९५३-५४	१९५५-५६	१९५६-५७
आयात :			
भारतीय व्यापार	१४,३८०	१६,४५२	१६,६८७
विदेशी व्यापार	१,१३१	१,३७०	१,२६६
ट्रेजर	५	—	—
योग आयात	१५,५१६	१७,८२३	१७,९५३

1. India, 1960, p. 346.

निर्यात :	१९५३-५४	१९५५-५६	१९५६-५७
भारतीय व्यापार	१३,८९२	१४,३८३	१४,६९३
विदेशी व्यापार	१,१७५	१,५९०	१६२१
ट्रेजर	२	६	—
योग निर्यात	१५,०६९	१५,९७९	१६,३१४
कुल व्यापार	३०,५८५	३३,८०२	३४,२६७

भारत का विदेशी व्यापार विभिन्न देशों के जहाजों द्वारा होता है। नीचे की तालिका में यही बात बताई गई है :—

	अंग्रेजी		भारतीय		अन्य देश		योग	
	आ०	नि०	आ०	नि०	आ०	नि०	आ०	नि०
वर्ष	(००० टनों में)		(००० टनों में)		(००० टनों में)		(००० टनों में)	
१९५२-५३	४,२५१	४,३१८	६६४	६८०	३,७०१	४,१४१	८,९१७	९,४५३
१९५४-५५	४,६३२	४,३०९	७४३	९८२	३,८९१	४,२०९	९,२६७	९,५०१
१९५५-५६	४,४६८	३,७७३	७२५	८४१	४,५८६	४,०९५	९,७८०	८,०११
१९५६-५७	५,९९६	३,४१६	८५८	७३६	५,०६८	४,०५३	९,९२३	८,२०५

तटीय व्यापार में आने वाली मुख्य वस्तुएँ कोयला, नमक, चावल, तिलहन, लकड़ियाँ, मसाले और मछलियाँ आदि हैं।

३. पुन:निर्यात व्यापार (Entrepot Trade) :

भारत के विदेशी व्यापार का एक भाग ऐसा है कि यहाँ दूसरे देशों से माल आता है और फिर वही माल पड़ौसी देशों को निर्यात कर दिया जाता है। इसी व्यापार को पुन: निर्यात व्यापार कहते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि विदेशी जहाज जो माल भर कर लाते हैं वह भारतीय बन्दरगाहों पर उतार देते हैं। यही माल यहाँ से उन निकटवर्ती देशों को, जिनका अपना समुद्र तट नहीं है, पुन: निर्यात कर दिया जाता है।

पुन: निर्यात व्यापार करने के लिये निम्न बातों का होना आवश्यक है :—

(१) देश की स्थिति मध्यवर्ती होनी चाहिए जिससे समीपवर्ती पड़ौसी देशों व विदेशों से आयात किया गया माल सुगमता पूर्वक भेजा जा सके। इस दृष्टि से भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। हिंद महासागर के सिरे पर स्थित होने से यह दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के देशों से पुन:निर्यात व्यापार करने की स्थिति में है।

(२) विदेशों से आयत माल को पुन: वितरण करने के लिए देश का जहाजी बेड़ा मजबूत और अच्छा होना चाहिए। दुर्भाग्यवश भारतीय जहाजी बेड़ा हालैंड और इंगलैंड जैसे छोटे देशों की तुलना में भी बहुत पिछड़ा हुआ है।

३) पुन:निर्यात करने वाले देश की पृष्ठ-भूमि भी धनी होनी चाहिए तथा जनसंख्या भी अधिक जिससे वस्तुओं के आयात और निर्यात में सुविधा हो।

भारत का पुन: निर्यात व्यापार मुख्यत: नैपाल, थाइलैंड, अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत, पश्चिमी चीन, फारस, मध्य एशिया, आदि देशों से ही अधिक किया जाता है। इसके अतिरिक्त पूर्वी देशों से आये माल को भारत के बन्दरगाहों द्वारा ही निर्यात किया जाता है। जर्मनी, इंगलैंड, अमेरका, जापान, लंका, सूडान आदि देशों को भारत से पुन: निर्यात होता है।

कच्चा, रेशम, चाय, मसाले, फल, खालें, समूर आदि वस्तुऐं चीन, अफगानिस्तान, पूर्वी द्वीप समूह, इंडोनेशिया आदि देशों से मंगवाकर पश्चिमी देशों को भारतीय बन्दरगाहों द्वारा पुन: निर्यात की जाती हैं।

इसी प्रकार पश्चिमी देशों व अमरीका से सूती व ऊनी वस्त्र, दवाइयाँ, यंत्र-मशीनें आदि मंगवाकर हिंद महासागर के तटवर्तीय देशों को पुन: निर्यात की जाती हैं।

१६५५-५६ में ६.४६ करोड़ रुपये का पुन: निर्यात व्यापार किया गया।

४. विदेशी व्यापार (Foreign Trade)

भारत की भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक सम्पत्ति के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। शान्ति-काल में व्यापारिक राष्ट्रों में भारत का स्थान ५वाँ है। प्रथम चार देश क्रमश: सं० रा० अमरीका, संयुक्त राज्य, जर्मनी और फ्रांस हैं। इसमें कोई संशय नहीं कि देश की भौतिक परिस्थितियों में अंतर के कारण यहाँ विभिन्न श्रेणी के प्राकृतिक श्रोत उपस्थित हैं। विश्व में इलमैनाइट, अभ्रक, मोनेजाइट, जिरकन आदि खनिजों के उत्पादन में हमारा स्थान विशिष्ट है। इसी प्रकार कृषि-उत्पादन में भी विश्व के देशों में भारत का स्थान महत्वपूर्ण है। विश्व में सबसे अधिक गन्ना भारत में ही पैदा किया जाता है। चावल, मोटे अनाज, चाय, मूंगफली, तिलहन और अलसी के उत्पादन में भारत की स्थिति महत्वपूर्ण है। लाख के उत्पादन में भारत का एकाधिकार है। कपास में भारत का स्थान अमरीका और अलसी में अर्जेंटाइना तथा मोटे अनाजों में चीन और अफ्रीका के बाद मुख्य है। चीन के बाद चावल और चाय पदा करने वाला सबसे बड़ा देश भारत ही है। लोहा, मैंगनीज आदि धातुओं के निर्यात में हमारा स्थान मुख्य है। जूट का तैयार माल भी यहाँ सबसे अधिक उत्पन्न किया जाता है। वस्तुत: भारत में कृषि, खदानों और कारखानों से विभिन्न प्रकार की वस्तुऐं प्राप्त की जाती हैं जिनका उपयोग देश के लिए दुर्लभ मुद्रा प्राप्त करने में किया जाता है किंतु दुर्भाग्यवश पूँजीगत वस्तुओं (मशीनों आदि) रासायनिक खाद, मिट्टी का तेल, लंबे रेशे वाली कपास, मोटर गाड़ियाँ, जूट और रूई, अनाज तथा कई प्रकार के खनिज पदार्थों में देश निर्धन है अत: इन वस्तुओं को आवश्यकतानुसार आयात किया जाता है।

यद्यपि भारत में विश्व के लगभग ⅙ जनसंख्या निवास करती है किंतु जनसाधारण की दरिद्रता देश के व्यापार में वृद्धि होने में रुकावटें डालती है। भारत का विदेशी व्यापार ग्रेट ब्रिटेन जैसे छोटे देश की तुलना में बहुत थोड़ा है। देश का आंतरिक व्यापार भी कम ही है क्योंकि यहाँ की उत्पादन शक्ति कम है। हम न केवल कृषि में ही वरन उद्योग-धन्धों में भी पिछड़े हुए हैं। अत: जब तक देश की सर्वांगीण उन्नति नहीं की जाती हमारा व्यापार भी उन्नत नहीं हो सकता। भारत की मुख्य समस्या पहले अधिक उत्पादन की है और फिर उसके उचित वितरण की।

भारत के विदेशी व्यापार में बाधा डालने वाले अन्य कई कारण भी हैं जैसे देश के आंतरिक भागों में अब तक सड़कों का समुचित विकास नहीं हो पाया है फलत: खेतों से औद्योगिक केन्द्रों अथवा रेलों के केन्द्रों तक कृषि पैदावार ले जाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। यद्यपि अब न केवल सड़कों के निर्माण में ही वन रेल मार्गों आदि में भी आशातीत प्रयत्न हुए हैं। स्वेज नहर के खुल जाने से भारत के व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला है।

भारत के विदेशी व्यापार की कई विशेषतायें हैं, जिनमें निम्नांकित मुख्य हैं :—

(१) अधिकांश भारतीय व्यापार (लगभग ६५ से ६८% तक) समुद्री मार्गों द्वारा ही होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत के पड़ौसी देश-अफगानिस्तान, तिब्बत, मध्य एशिया, आदि पिछड़े हुए निर्धन हैं। इन देशों का व्यापार अधिक नहीं होता। ये भारत से न तो अधिक खरीदते हैं और न अधिक बेचते ही हैं। इन देशों का धरातल ऊबड़-खाबड़ है हिमालय पर्वतों के कारण भारत और इन देशों के बीच के मार्गों की सुविधा नहीं है अस्तु, हमारा व्यापार समुद्री बन्दरगाहों द्वारा ही अधिक होता हैं १९५५-५६ में भारत का कुल विदेशी व्यापार १,२७६ करोड़ रुपये के मूल्य का हुआ था इसमें से स्थलीय व्यापार (जो अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ब्रह्मा और इरान से हुआ) का मूल्य केवल २९·० करोड़ रुपया था।

(२) देश के विभाजन के पूर्व हमारे विदेशी व्यापार का संतुलन हमारे पक्ष में ही रहता था क्योंकि विदेशी व्यापार में निर्यात माल की अधिकता रहती थी, किंतु विभाजन के पश्चात् इस परिस्थिति में परिवर्तन हो गया और देश में खाद्यान्नों एवं कच्चे माल के अभाव में व्यापार में कायात माल की वृद्धि हुई वस्तुत: व्यापार का संतुलन देश के विपक्ष में हो गया। यद्यपि आयात और निर्यात दोनों ही मूल्य में बड़े हैं किंतु व्यापार का संतुलन निरंतर बिगड़ता गया है, जैसा कि निम्न आंकड़ों से स्पष्ट होगा :—

व्यापार का संतुलन

वर्ष	आयात	निर्यात	व्यापार का अंतर
	(करोड़ रुपयों में)		
१९४८—४९	५४२.९	४२३.३	— ११.९६
१९४९—५०	५६०.५	४८५.२	— ७५.३
१९५०—५१	५६४.५	५५६८८	+ २१.४
१९५१—५२	९६२.९	७३०.१	— २३१.८
१९५२—५३	६३३.०	६०१.९	— ३१.१
१९५३—५४	५९१·८	५३९.७	— ५२.१
१९५४—५५	६८१.६	५९६.६	— ८८.०
१९५५—५६	७४७.७	६४२.२	— १०५.५
योजना काल में	३,६१७.०	३,४१०.५	— ५०६.५
१९५६—५७	८४२.५	६०१.३	— २४१.२
१९५७—५८	१,०३६.३	६३५,७	— ४००.५
१९५८—५९	७७९.६	५६६.७	— २२९.७
१९५९—६०	८६७.७	६४३.६	— २२४.०

व्यापार संतुलन की प्रतिकूलता बढ़ने का मुख्य कारण मशीनों तथा लोहे और इस्पात के सामान के आयात में वृद्धि होना है।

जहाँ तक व्यापार की दर (Terms of Trade) का संबंध है यह अधिकांश समय तक भारत के ही पक्ष में रहा है कारण कि निर्यातित वस्तुओं के मूल्य की अपेक्षा अधिक तीव्र रहती है। जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—[1]

1. India, 1957, p. 333; for 1958, p. 364; for 1959, p. 351; & Eastern Economist—Records and Statistics, Vol. II. No. 3 pp. 154-156.

नीचे की तालिका में कुछ मुख्य देशों से होने वाला व्यापारिक संतुलन बताया गया है :—

देश	१९५२	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७	१९५८	१९५९
			(करोड़ रुपयों में)				
इंगलैंड	— २५·५	+२४·७	+ ६·५	—२१·४	— ७७·४	+ ७·१	— ०·५५
प० जर्मनी	— १२·६	—२३·८	—३८·१	—६६·९	—१०६·४	—७९·१	— ९९·१
फ्रांस	— ७·८	— ७·६	—१०·३	—११·४	— १८·४	— ९·८	— १०·८
रूस	+ १·१	+ १·२	— ·५६	— २·४	— ५·१	+ १·६	+१३·७१
नीदरलैंड्स	— २·३	— ३·२	+ ४·२	— २·०	— ४·५	— ३·०	— ४·०
जापान	+ ५·५	— ०·६	— ५·९	—११·९	— २७·०	— १३·८	— ६·५
पाकिस्तान	+ १७·२	— ७·७	—१६·३	—१२·८	— ६·६	+ ·०८	+ ·०८
लंका	+ १५·४	+११.१	+११·२	+१०·७	+ ११·३	+१५·७	— १६·२
ब्रह्मा	— ७·५	—२७·४	— ८·७	+ ४·५	+ ·०१	—३८·०	— ०·०५
मिश्र	— १३·५	—१८·७	— ८·७	— ४·४	+ ·०६	+ २·५	+ ०·८४
संयुक्त राज्य अमरीका	—१५९·१	+११·९	+ २·४	— ३·५	— ३८·४	— ६८·३	—१००·०
कनाडा	— १७·३	+ ५·३	+ ९·०	+ ८·५	— ·०३	—२०·१	— ७·०
अर्जेनटाइना	+ ४·२	+१३·६	+१०·९	+ ५·५	+ ९·७	+ ९·२	+ ७·९
आस्ट्रेलिया	+ ८·४	+ ८·१	+ ७·५	+११·०	+ ८·३	+ ६·१	+ ७·४
न्यूजीलैंड	+ १·५	+ २·२	+ २·४	+ २·४	+ ३·९	— ४·५	+ ३·६

आयात और निर्यात के सूचनांक (१९४८-४९=१००(१९५२-५३ तक)
फिर (१९५२-५३=१००)

	आयात		निर्यात	
वर्ष	परिमाण	मूल्य	परिमाण	मूल्य
१९४९-५०	१०५	१०३	९४	९८
१९५०-५१	८३	१०६	११०	१२९
१९५१-५२	१०८	१४७	८९	१७८
१९५२-५३	७४	१२८	९४	११६
१९५३-५४	९५	९३	९९	९४
१९५४-५५	१०५	९१	१०२	१००
१९५५-५६	११४	९४	११५	९०
१९५६-५७	१३७	९१	११०	९४
१९५८	१४०	९२	१०८	९३
१९५९	१४८	९०	११९	९१

(३) द्वितीय महायुद्ध काल और उसके पश्चात् के काल में भारत द्वारा होने वाली आयात व्यापार की वस्तुओं के रूप मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। अब भारत में कच्चे माल और खाद्यान्नों का निर्यात कम किंतु आयात अधिक होने लगा है इसके दो मुख्य कारण हैं : (१) देश के विभाजन के फलस्वरूप कपास, जूट तथा खाद्यान्न अधिक पैदा करने वाले भाग पाकिस्तान को चले गए फलत: भारत में इन वस्तुओं का अभाव हो गया; (२) भारत में युद्धोत्तर काल में आर्थिक पुनर्गठन के लिए जो योजनायें बनाई गई उनमें औद्योगीकरण को अधिक महत्व दिया गया अत: विभिन्न उद्योगों के लिए अधिक मात्रा में कच्चे माल की आवश्यकता पड़ने लगी। खाद्यान्नों का आयात १९४७-४८ में २२·७% से बढ़कर १९५३-५४ में २७·६% हो गया। कच्चे माल का आयात १९·९% से बढ़ कर ३१·०% हो गया। १९३८-३९ में खाद्यान्नों और कच्चे माल का आयात कुल आयात का क्रमश: १५·८% और २१·८% था।

किंतु प्रथम योजना काल में दी गई विभिन्न कृषि-संबंधी आयोजनाओं के कारण देश में खाद्यान्नों और कच्चे मालके उत्पादन में वृद्धि होनेके कारण १९५५-५६ में इनका आयात कुल आयात का क्रमश: १० प्रतिशत और २९·६% ही रहा।

नीचे की तालिका में मुख्य कृषि-पदार्थों का आयात दर्शाया गया है :—

	१९५१-५२	९५३-५४	१९५५-५६	१९५६-५७
		(लाख रुपयों में)		
गेहूँ	१५,२२३	३,८३१	१,२०८	२७२
चावल	३,८१९	१,३३०	४७०	७०
जूट	६,७०७	१,४७१	१,९३१	१,३८२
रुई	१३,८९९	५,२७५	५,७३३	५,३५९
ऊन	२५८	१६८	१४२	९९४
रेशम	१५६	५९	५३	१,७४०
लकड़ियाँ	६०१	२४२	३५७	३५५
स्टैप्ल रेशे	१,०१०	३७८	१९२	४००

(४) भारत से कारखानों में बने माल का निर्यात अधिक होने लगा है और उसके आयात में कमी हो गई है। इसका मुख्य कारण देश में ही औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि होना है। आयात माल में अधिकतर पूंजीगत वस्तुओं—मशीनें, औजार और यंत्र आदि का प्राधान्य होता है क्योंकि अभी तक इन वस्तुओं का उत्पादन भारत में नाम मात्र को ही होता है। १९४७-४८ में कुल आयात में कारखानों की बनी हुई वस्तुओं का भाग ५२·०% था। यह १९५३-५४ में ५०% था। १९३८-३९ में यह प्रतिशत ६०·९ था।

(५) हमारे विदेशी व्यापार में युद्धोत्तर काल में जहाँ तक आयात और निर्यात का प्रश्न है, इंग्लैंड और अन्य कॉमनवैल्थ राष्ट्रों का भाग कम हो रहा है किंतु अमरीका और अन्य देशों के साथ बढ़ रहा है। विभाजन के पूर्व इंग्लैंड और उसके अन्य उपनिवेश भारत को अधिक माल निर्यात करते थे और यूरोप अमरीका तथा एशिया के अन्य देश हमारे से अधिक माल मंगवाते थे किंतु अब इस परिस्थित में अंतर आ गया है। सं० रा० अमरीका, पश्चिमी जर्मनी एवं सुदूर पूर्व के देशों से हमारा विदेशी व्यापार बढ़ रहा है। नीचे की तालिका में यह बात बताई गई है :—

देश	आयात		निर्यात	
	१९५०-५१	१९५९	१९५०-५१	१९५९
	(करोड़ रुपयों में)			
इंगलैंड	१३१,४०	१७२·७	१३९·८५	१७२·२
सं. रा. अमरीका	११७·८७	१९५·४	११५·३८	९५·४
पश्चिमी जर्मनी	१०·२९	११८·७	१०·९०	१९·६
जापान	१०·११	४०·१	१०·२८	३४·५
कनाडा	२१·०१	२२·२	१३·७९	१५·१

करैंसी प्रदेशों के आधार पर स्टर्लिंग प्रदेशों से होने वाले आयात और निर्यात व्यापार दोनों में ही ह्रास हुआ है। डॉलर प्रदेशों से आयात कम किंतु निर्यात अपेक्षत: अधिक होता है। यह तथ्य निम्न आँकड़ों से स्पष्ट होता है :—

वर्ष	स्टर्लिंग प्रदेश		डॉलर प्रदेश		ओ. ई. ई. सी. देश		अन्य अ-स्टर्लिंग प्रदेश	
	आ०	नि०	आ०	नि०	आ०	नि०	आ०	नि०
	(करोड़ रुपयों में)							
१९५२-५३	२७२	२९२	२१४	१३९	९९	६६	८५	८०
१९५४-५५	३३४	३३५	१०१	११५	१३१	६५	८८	७९
१९५५-५६	२१८	३१०	९२	११०	१५७	८१	१२६	९६
१९५६-५७	३३३	३१३	११६	११५	२२५	६५	१५९	१०९
१९५७-५८	३५२	२८४	१७९	१६	२५८	५४	२११	१४१
१९५८-५९	२०९	२८९	१७९	१६२	२५७	४८	१५७	१२४

(६) भारत का विदेशी व्यापार प्रति मनुष्य पीछे अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है क्योंकि देश की निर्धनता के कारण सम्पत्ति कम है। भारत में प्रति व्यक्ति पीछे होने वाले विदेशी व्यापार का मूल्य केवल ८ डालर माना गया है, जबकि जापान जैसे छोटे देश में यह मूल्य १७ डॉलर का है। कनाडा में प्रति व्यक्ति पीछे ४४४ डा०; आस्ट्रेलिया में ४१५ डा०; डेनमार्क में ३४९ डा०; इंगलैंड में ३०५ डा०; सं० रा०

(८) खेल-कूद के सामान की निर्यात संवर्धन परिषद
(९) तम्बाकू ,,
(१०) रासायनिक पदार्थों ,,
(११) चपड़ा ,,

इन परिषदों का मुख्य काम निर्यात योग्य वस्तु की विदेश में बिक्री हो सकने की सम्भावनाओं का सर्वेक्षण, विदेशी बाजारों का सर्वेक्षण तथा देशी उद्योग का सर्वेक्षण करना है। ये परिषदें विदेशों को प्रतिनिधि मण्डल भेजती हैं, माल के प्रतिमान बनाती है, निर्यात होने वाले माल की किस्म पर नियंत्रण रखती है, आयातक और निर्यातकों के झगड़े सुलझाती है, विदेशों में होने वाले मेलों और प्रदर्शनियों में अपने माल का आकर्षक प्रदर्शन करने के लिए प्रवन्ध करती है तथा विदेशी आयातकों से भारतीय निर्यातकों का सम्पर्क कराती है।

आयात और निर्यात व्यापार :

भारत का आयात और निर्यात व्यापार तीन श्रेणियों में बाँटा गया है :—

(१) प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत खाद्य, पेय और तम्बाकू आदि (Food, Drink and Tobacco) सम्मिलित किये जाते हैं। इस श्रेणी में मुख्य वस्तुयें अनाज, दालें, आटा, मछली, फल, तरकारी, चाय, तम्वाकू, कहवा और मसाले हैं।

(२) दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत मुख्यत: कच्चा माल और (Raw materials and Unmanufactured goods) होता है। जैसे—खनिज पदार्थ, चमड़ा-खालें, तिलहन, गोंद, चपड़ा, राल, नारियल, रबड़, कपास, जूट, कच्चा ऊन, इमारती लकड़ी आदि।

(३) तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत मुख्यत: निर्मित माल (Wholly or mainly manufactured) होता है—जैसे, सूत और सूती कपड़े, ऊनी व रेशमी कपड़े, लोहे और इस्पात का तैयार माल, टाट, बोरियाँ, नारियल की जटा से बनी वस्तुयें, यन्त्र, उपकरण आदि, कांच व मिट्टी का सामान, कागज, कमाया हुआ चमड़ा व खालें।

नीचे की तालिका में इन तीनों श्रेणियों में होने वाले आयात और निर्यात को वताया गया है :—

वर्ष	प्रथम श्रेणी		द्वितीय श्रेणी		तृतीय श्रेणी	
	(करोड़ रुपयों में)					
	आ०	नि०	आ०	नि०	आ०	नि०
१९४९–५०	१२२	११७	१४४	११०	२८८	५५३
१९५०–५१	१०६	१६३	१९८	१४०	२५२	३११
१९५२–५३	१७८	१४४	१८३	१४८	२७९	२६३
१९५४–५५	१३२	२०४	१८७	११३	३११	२५७
१९५५–५६	५५	१६७	१६४	१६९	४२७	२५१

निर्यात (Exports)

भारत से निर्यातित मुख्य वस्तुओं के निर्यात मूल्य निम्न तालिका में दिये गये हैं :—

निर्यात व्यापार
(करोड़ रुपयों में)

देश	१९५४	१९५५	१९५७	१९५९
चाय	१३१·३	११२·८	२३·४	१२६·५
काजू की गिरी	१०·३	११·६	११४·७	१५·१
अन्य फल और तरकारियाँ	२·५	०·२	०·३	०·६
काली मिर्च	१०·०	०·४	०·६	४·२
अन्य मसाले	४·५	५·७	८·४	५·९
तम्बाकू	११·९	१३·३	१२·८	१४·७
कपास (रद्दी या रुई)	१८·४	३४·७	१८·६	१६·३
कच्चा ऊन	८·१	८·१	१२·९	१२·२
लाख	९·२	१२·५	७·१	—
अभ्रक	६·५	८·०	९·७	
मूंगफली	०·९	३·१	—	—
कोयला	६·३	४·४	५·१	४·६
मैंगनीज धातु	१५·१	१०·४	२२·७५	१२·७
कच्चा चमड़ा और खालें	९·८	६·७	६·९	१०·७
वनस्पतिक तैल	७·०	३२·५	११·४	७·४
सूती कपड़े	६६·९	५७·७	६५·१	६७·६
कमाया हुआ चमड़ा और खालें	२२·४	२२·५	२१·७	—
अन्य सूती सामान	५·३	५·९	५·५	४·७
जूट का सामान	१२१·३	१२६·१०	११३·२	१०५·६
ऊनी कम्बल व गलीचे	३·७	४·०	४·०	४·९
नारियल की जटा का सामान	८·१	९·०	९·८	८·६
अन्य वस्तुएं	८०·५	१०१·५	९३·८	—
योग	५५७·९	६०२·५	६३८·०	...

हमारे विदेशी व्यापार का भौगोलिक वितरण इस प्रकार है । इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि इंगलैंड, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, बर्मा, जापान, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी आदि देशों का भाग हमारे निर्यात व्यापार में अधिक रहता है :—

भारत द्वारा विदेशों को निर्यात
(करोड़ रुपयों में)

देश	१९५४	१९५८	१९५९
इंगलैंड	१७६·१	१७५·७	१७२·१
सं० रा० अमरीका	८५·५	९३·०	१९·२
आस्ट्रेलिया	२२·६	२१·४	१:·६
बर्मा	१६·४	७·५	३४·४
जापान	१६·२	२५·८	१५·१
कनाडा	१५·०	१४·५	

देश	१९५४	१९५८	१९५९
प० जर्मनी	१४·६	१४·८	१९·६
नीदरलैंड्स	९·९	६·८	९·०
पाकिस्तान	९·९	७·१	६·३
सिंगापुर	६·९	१०·५	७·७
केनिया	६·९	४ ८	४·६
मिश्र	६·२	८·७	८·९
इटली	५·९	५·५	५·७
फ्रांस	५·२	७·२	८·३
सऊदी अरब	२·८	४·०	३·८
बहरीन द्वीप	२·२	३·१	२·४
रूस	२·५	२३·३	—

भारत के प्रमुख निर्यात ये हैं :—

(१) **जूट का तैयार माल** का भारत के निर्यातों में सबसे अधिक महत्व है क्योंकि इन्हीं के द्वारा विदेशी मुद्रा का लगभग ३५% प्राप्त होता है और डालर-मुद्रा का ६२% से अधिक किंतु पिछले कुछ समय से जूट के सामान के मंहगे होने के कारण विश्व के अन्य भागों में प्रतिस्थापन (Substitutes) पैदा किए जाने लगे हैं अतः जूट के पक्के सामान के निर्यात में कुछ कमी होने लगी है। जूट के सामान में बोरे, टाट, मोटे कालीन और फर्शपोश, गलीचे और रस्से, तिरपाल आदि निर्यात किए जाते हैं। भारतीय जूट के सामान के मुख्य खरीददार सं० रा० अमरीका, इंगलैंड, अर्जेनटाइना, पाकिस्तान, आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि देश हैं। १९५९ में ११०६ करोड़ रुपये के मूल्य का जूट का सामान निर्यात किया गया।

(२) **चाय**—भारत से चाय का अधिकाँश निर्यात इंगलैंड, सं०रा० अमरीका, रूस, पाकिस्तान, कनाडा, आस्ट्रेलिया, ईरान, अरब, आयरलैंड, नीदरलैंड्स, सूडान, मिश्र और प० जर्मनी को होता है। इनमें इंगलैंड भारतीय चाय का सबसे बड़ा खरीददार है। १९५९ में १२६ करोड़ रुपये की चाय निर्यात की गई।

(३) **कच्चा और कमाया हुआ चमड़ा**—भारत से दोनों ही प्रकार का चमड़ा विदेशों को निर्यात किया जाता है। भारतीय चमड़े की मांग मुख्यतः इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस, पाकिस्तान और सं० रा० अमरीका में होती है। १९५९ में दोनों प्रकार के चमड़े का निर्यात ५६ करोड़ रुपये के मूल्य का हुआ।

(४) **तम्बाकू**—देश में उत्पादित तम्बाकू का अधिकांश भाग बीड़ी, सिगरेट, चुरूट आदि के रूप में देश में ही खप जाती है शेष तम्बाकू, ब्रिटेन, जापान, पाकिस्तान, अदन, चीन, आस्ट्रेलिया आदि देशों को निर्यात को निर्यात की जाती है। तम्बाकू के अतिरिक्त बीड़ी, सिगरेट और चुरूट का निर्यात पाकिस्तान, लंका, सिंगापुर और मलाया को किया जाता है। १९५९ में १४ करोड़ रुपये के लागत की तम्बाकू का निर्यात किया गया।

(५) **तिलहन**—भारत से विभिन्न प्रकार के तिलहन और तैलों का बीज निर्यात किया जाता है। **मूंगफली** का निर्यात फ्रांस, सं० रा० अमरीका, पाकिस्तान, ईराक, कनाडा, इटली, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया, जर्मनी और हंगरी को होता है। **अलसी**

इटली, फ्रांस, हौलैंड, बेल्जियम और इंगलैंड को निर्यात की जाती है। भारत से तिल का तेल इङ्गलैंड, अरब, लंका, मारीशस, फ्रांस, मिश्र, जर्मनी, बेल्जियम और इटली को; रेंडी और रेंडी का तेल सं० रा० अमरीका, इटली, जर्मनी, स्पेन, कनाडा और बेल्जियम को निर्यात किया जाता है। १९५९ में २½ करोड़ रुपये की मूँगफली; ५ करोड़ रुपये का रेंडी का तेल; ३ करोड़ रुपये का अलसी का तेल और १५.८ करोड़ रुपये का मूँगफली का तेल निर्यात किया गया।

(६) **सूती वस्त्र**—भारत से मोटा और उत्तम दोनों ही प्रकार के कपड़े का निर्यात किया जाता है। मोटा कपड़ा मुख्यतः हिंद महासागर के तटीय देशों को निर्यात किया जाता है जिनमें ईरान, ईराक, अरब, पूर्वी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, द० अफ्रीका, लंका, पाकिस्तान, बर्मा, थाईलैंड, मिश्र, टर्की, चीन, सिंगापुर और इंडोनेशिया मुख्य हैं। १९५९ में इन देशों को ६१ करोड़ रुपये की लागत का निर्यात किया गया।

(७) **लाख**—भारतीय लाख के मुख्य खरीददार इङ्गलैंड, सं० रा० अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि हैं। १९५७ में ७ करोड़ रुपये के लागत की लाख भारत से निर्यात की गई।

(८) **मसाले**—भारत से काली मिर्च और लाल मिर्च, लौंग, इलायची, सुपारी, हल्दी, अदरक आदि मसालों का निर्यात काफी समय से हो रहा है किन्तु इनमें काली मिर्च और हल्दी का निर्यात ही अधिक होता है। मसालों का निर्यात सं० रा० अमरीका, स्वीडेन, सऊदी अरब, ब्रिटेन, पाकिस्तान, लंका रूस, इटली, चीन, डेनमार्क, इंगलैंड और कनाडा को होता है। १९५९ में १० करोड़ रुपये के मसाले निर्यात किये गए।

धातु निर्मित वस्तुओं का निर्यात :

आजकल हम विविध आकार प्रकार और मूल्य की कम से कम १०२ धातु निर्मित वस्तुओं का निर्यात कर रहे हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

बिजली के पंखे, बल्ब, लोहे व ताँबे के तार, बैटरियाँ, चादरों से बने बर्तन जैसे—बाल्टियाँ ताँबे, पीतल, अमोनिया और तामचीनी के बर्तन, सिलाई की मशीनें, रेजर, ब्लेड, पानी ठण्डा करने कागज बनाने, प्लास्टिक की ढलाई करने, छपाई करने, जूता सीने, चीनी और चाय बनाने की मशीनें, मोटर गाड़ियाँ और उनके पुर्जे, ताले, कुन्डे सांकलें और चटकनियाँ लोहे और इस्पात की मेज-कुरसी और अल्मारियाँ और पेटियाँ, खेती के औजार, डीजल इंजन, ढले हुए पाइप पम्प, छाता तथा छाता बनाने के काम में आने वाली वस्तुएँ, लोहे से ढालकर बनाई गई चीजें, क्राऊन-कार्ब, गैस बत्तियाँ और रेगमाल आदि।

सुदूर देशों को निर्यात :

इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि आज केवल भारत के निकटवर्ती देशों जैसे—दक्षिण पूर्व एशिया, पश्चिमी एशिया और अफ्रीका में ही भारत का बना हुआ धातु का माल नहीं जाता किन्तु सुदूर देशों जैसे—आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अमरीका, कनाडा आदि में भी भेजा जाता है।

पिछले वर्ष हमने निम्नलिखित वस्तुओं का निर्यात किया :—

बिजली के पंखे	३० देशों को
बिजली का अन्य सामान	२५ देशों को
बल्ब और राड्स	१२ देशों को
सिलाई की मशीनें	१४ देशों को
डीजल एंजिन	२३ देशों को
ढलाई का माल	२६ देशों को
दरवाजे व खिड़कियों में लगने वाला सामान	४३ देशों को

पिछले दो वर्षों में विभिन्न वस्तुओं का निर्यात-क्रम इस प्रकार रहा :—

	१६५६ रु. (लाख)	१६५८ रु. (लाख)	१६५७ रु० (लाख)	१६५६ रु० (लाख)
डीजल एन्जिन	१४	१०	४·२८	१०
सिलाई की मशीनें	३२	२०	४·३	५·६
पंखे	४१	३८	१२·७	१८
पम्प	१३	३	·५३	१·२
खेती का सामान	—	—	८·८	११·२
चाकू, छुरी, चम्मच आदि	१२	१०	४·८	८
तेल निकालने की मशीनें	—	—	८·६	१४·२
कपड़ा बुनाई मशीनें	२०	१३	१·५	२·२
पिसाई और कुटाई की मशीनें	३	२	·३४	१·४
जूते सिलाई की मशीनें	—	—	१·६२	३·८५

दक्षिण पूर्व एशिया भारत की धातु निर्मित वस्तुओं का सबसे बड़ा ग्राहक है। १६५७ में हुए कुल ४·६६ करोड़ के धातु निर्मित वस्तुओं के निर्यात में विभिन्न क्षेत्रों का भाग इस प्रकार है :—

दक्षिण पूर्व एशिया	१·३ करोड़
पश्चिमी एशिया	१·१८ ,,
अफ्रीका	·७६ ,,
आस्ट्रेलिया	·०५ ,,
न्यूजीलैंड	·०२ ,,
अन्य देश	·६८ ,,
	४·३६ ,,

भारत के अन्य निर्यात ये हैं :—

वस्तुएँ	कहाँ जाती हैं ?
सूखे फल (काजू, अखरोट) फल और तरकारियाँ	कनाडा, ब्रिटेन, सं० रा० अमरीका, आस्ट्रेलिया पाकिस्तान, बर्मा, लंका, मलाया, सिंगापुर।
अभ्रक	ब्रिटेन, सं० रा० अमरीका, बेल्जियम, फ्रांस, जापान।

वस्तुएँ	कहाँ जाती हैं
मैंगनीज	इटली, फ्रांस नार्वे, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, स्वीडेन, इटली और सं० रा० अमरीका।
ऊन	ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, सं० रा०।
कोयला	पाकिस्तान, लंका, बर्मा, चीन, सिंगापुर, जापान।
कहवा	जर्मनी, नीदरलैंड्स, इटली, बेल्जियम, ब्रिटेन।
नारियल और उसकी जटाओं की वस्तुएँ	ब्रिटेन, सं० रा० अमरीका, नीदरलैंड्स, आस्ट्रेलिया।
रासायनिक पदार्थ	ब्रिटेन, जापान, सं० रा० अमरीका।
ऊनी कम्बल आदि	ब्रिटेन, कनाडा, सं० रा० अमरीका, जर्मनी, नीदरलैंड्स, आस्ट्रेलिया।

मुख्य आयात (Imports)

नीचे की तालिका में भारत के प्रमुख आयात बताये गए हैं :—

वस्तुयें	१९५४	१९५७	१९५८
	(करोड़ रुपयों में)		
गेहूँ	६·८	३४·७	१०२·६
चावल	४०·८	१६·९	४४·०
तरकारी और फल	१२·२	१५·८	१२·३
प्रौवीजन्स आदि	३·९	१४·३	—
मसाले	४·५	२·९	—
कपास	५७ ५	४८·६	३०·६
जूट	१२·३	७·२	३·४
मशीनें और मिल स्टोर्स	८१·८	१७१·८	१३९·८
यंत्र और उपकरण आदि	१९·४	६१·१	४९·०
मिट्टी का तेल	२८·७	२९·९	१५·५
धातुयें	५०·०		—
रासायनिक पदार्थ	१७·०	७·९	५·५
दवाइयाँ	१२·८	१६·३	१०·२
यातायात के उपकरण	८·५	७५·८	५९·८
बनावटी रेशमी सूत	१५·९	१२·९	—
ऊन	८·०	१२·९	११·१
अखबारी कागज	६·२	६·४	—
रंगने का सामान	१७·४	१०·८	६·७
कागज	५·८	१२·५	८·०
लोहे और इस्पात का सामान		१४६·९	९७·८
वनस्पति तैल	६·३	५·२	३·८
योग	६१५.७	१०२५.८	८६४.२

भारत का आयात व्यापार कई देशों से होता है किंतु इनमें से मुख्य का व्यापार निम्न तालिका में बताया गया है—

देश	१९५४	१९५८	१९५९
	(करोड़ रुपयों में)		
इंग्लैंड	१४६.०	१६८.५	१७२.७
सं० रा० अमरीका	७३.८	१६१·५	१९५.४
बर्मा	४४.०	४५.६	१३.१
प० जर्मनी	३५.२	९३.९	११८.७
मिश्र	१५.०	६.२	८.०
इटली	२१.२	२५.५	२५.८
बहरीन टापू	२१.१	२.९	४.२
पाकिस्तान	१७.८	६.३	५.५
सऊदी अरब	१७.४	१९.६	२०.०
केनिया उपनिवेश	१७.२	११.५	११.६
सिंगापुर	१६.७	९.३	९.०
जापान	१६.६	३९.०	४०.९
आस्ट्रेलिया	१४.२	१५.३	११.८
नीदरलैंड्स	१३.४	९.१	१३.१
बेल्जियम	११.२	१६.६	१३.४
स्वीटजरलैंड	१०.२	९.७	७.८
फ्रांस	९.६	१७.०	१९.१
लंका	७.२	४.३	६.०
मलाया	६.२	१०.७	१०.६
स्वीडेन	६.०	८.९	१०.७
कनाडा	५.३	३४.६	२२.२
ईरान	३.२	३३.०	३५.६
रूस	१.१	२१.७	—

भारत के मुख्य आयात ये हैं :—

(१) मशीनें—भारत में युद्धोपरांत आर्थिक विकास योजनाओं के फलस्वरूप मशीनों का आयात बढ़ रहा है जो इस बात का द्योतक है कि देश में औद्योगिक योजनायें तीव्र गति से कार्यान्वित की जा रही हैं। इन मशीनों में बिजली की मशीनों का आयात सबसे अधिक होता है। कपड़ा बुनने की मशीनें, कृषि की मशीनें (अर्क निकालने, तेल पेरने, कागज बनाने, धान कूटने, भूसा साफ करने, आटा पीसने, लकड़ी चीरने, चारा दबाने), कपड़ा सीने, भूमि को समान करने वाले ट्रैक्टर, बुल डोजर, शीत भंडार, चमड़ा कमाने की मशीनें, चाय व शक्कर तैयार करने की मशीनें हल, वायु-स्फीड़क, स्क्रू और कब्जे, खनिज उद्योग की मशीनें तथा अन्य प्रकार की मशीनें विदेशों से—मुख्यतः ब्रिटेन, सं० रा० अमरीका, पं० जर्मनी, बेल्जियम, जापान, जैकोस्लोवाकिया और कनाडा से मंगवाई जाती हैं। १९५९ में २६७ करोड़ रुपये की मशीनें विदेशों से निर्यात की गई जिनमें ४६% ब्रिटेन, २१% प० जर्मनी, १४% सं० रा० अमरीका और शेष अन्य देशों से आईं। द्वितीय योजना में १५६० करोड़ रुपये की मशीनों का अनुमान लगाया गया है।

(२) कपास और रद्दी रूई (Raw & Waste Cotton)

भारत में अधिकांशत छोटे रेशे वाली कपास उत्पन्न होती है अतः उत्तम श्रेणी का कपड़ा बनाने के लिये लंबे रेशे वाली कपास और विभिन्न प्रकार के कपड़ों के लिये रद्दी रूई विदेशों से मंगवानी पड़ती है। इसके दो कारण हैं—देश का बंटवारा और देश में खाद्यान्नों के अभाव में अत्यधिक मात्रा में कपास के अन्तर्गत क्षेत्रों पर खाद्यान्नों का उत्पादन किया जाना। फलतः देश में रुई का आयात मिश्र, सं० रा० अमरीका, केनिया, सूडान, पीरू, टैंगेनिका और पाकिस्तान आदि देशों से होता है। १९५९ में ४६.८ करोड़ रुपये की रुई का आयात किया गया।

(३) धातुयें और लोहे तथा इस्पात का सामान :

विदेशों से आने वाले माल में लोहे और इस्पात के बने माल तथा धातुओं का स्थान दूसरा है। अल्यूमीनियम, पीतल, तांबा, कांसा, सीसा, जस्ता, टीन आदि धातुएँ विदेशों से अधिक मात्रा में आयात की जाती हैं क्योंकि इनके उत्पादन में देश प्रायः दरिद्र ही है। **अल्यूमीनियम** ब्रिटेन, कनाडा व स्विटजरलैंड से; **तांबा** ब्रिटेन, सं. रा. अमरीका, स्वीडेन, बेल्जियम, कांगों और मोजम्बीक से; **सीसा** आस्ट्रेलिया और वर्मा से; **टीन** सिंगापुर, वर्मा, मलाया और ब्रिटेन से; **जस्ता** उत्तरी रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, जापान से मंगवाया जाता है। १९५९ में १२७.६ करोड़ रुपये की धातुओं का आयात किया गया।

लोहे (मुख्यतः कच्चा लोहा, लोहे के एंगल, टी छड़ें, चटखनियाँ आदि) इस्पात और इस्पात का सामान (स्प्रिंग, टी छड़ें आदि) और लोहे व इस्पात का सामान, (लंगर, कांटेदार तार, नल, चादरें, पेंच, कीलें, चटखनियाँ,संवाद के तार आदि) विशेषतः ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, बेल्जियम, रूस, सं. रा अमरीका, स्वीडेन, नार्वे इटली और जैकोस्लोवाकिया से मंगवाया जाता है। १९५९ में २४० करोड़ रुपये की धातुएं और लोहे का सामान आयात किया गया।

(४) खनिज तेल (Mineral Oil) :

भारत में खनिज तेल के श्रोतों का बड़ा अभाव है। इस तेल के अंतर्गत मिट्टी का तेल (Kerosene), जलाने का तेल (Fuel oil), उपस्नेहल तेल (Lubricating oil) और पैट्रोल आदि आते हैं। द्वितीय युद्ध काल से ही खनिज तेलों की मांग में वृद्धि हो जाने से आयात में वृद्धि हुई है। फलतः १९५९ में ९.३ करोड़ रु० का मिट्टी का तेल तथा ६८.६ करोड़ रुपये की मिट्टी के तेल से संबंधित वस्तुओं का आयात किया गया।

मिट्टी का तेल मुख्यतः ईराक, बहरीन द्वीप, सऊदी अरब, बर्मा, ईरान, बोर्नियो, सं. रा. अमरीका व सिंगापुर आदि से आयात किया जाता है।

पैट्रोल बहरीन द्वीप, फ्रांस, इटली, अरब, सिंगापुर, सं. रा. अमरीका, ईरान और सुमात्रा से मंगवाया जाता है।

जलाने का तेल ब्रिटेन, बहरीन द्वीप, सिंगापुर, अरब और संयुक्त राज्य से मंगवाया जाता है।

उपस्नेह तेल सिंगापुर, ब्रिटेन, ईरान व संयुक्त राज्य से आता है।

(५) खाद्यान्न :

विभाजन के परिणाम-स्वरूप तथा निरंतर अनुपयुक्त मौसम के कारण देश में खाद्यान्नों का उत्पादन कम होता रहा है जबकि देश में जनसंख्या में वृद्धि होती रही है। अतः खाद्यान्नों का अभाव पूरा करने के लिए विदेशों से अनाज आदि आयात किए जाते हैं। १९५९ में हमने ३१ लाख टन अनाज १२ करोड़ रुपये के मूल्य का विदेशों से आयात किया। खाद्यान्नों का आयात इस प्रकार होता है :—

गेहूँ—कनाडा, आस्ट्रेलिया, रूस, अर्जेनटाइना, सं. राज्य।

चावल—वर्मा, चीन, थाइलैंड, जावा, मिश्र, पाकिस्तान, लंका, इंडोचीन।

जौ—ईराक, आस्ट्रेलिया और अर्जेन्टाइना।

दालें—वर्मा, ईराक, सूडान, पाकिस्तान, केनिया उपनिवेश।

ज्वार-बाजरा—पूर्वी अफरीका, सं.रा. अमरीका।

(६) रासायनिक पदार्थ (Chemicals) :

रासायनिक पदार्थों के उत्पादन में भारत अभी भी स्वावलंबी नहीं है। युद्धोपरांत काल में इनके आयात में निरंतर वृद्धि होती रही है। रासायनिक पदार्थों के अन्तर्गत अमोनियम सल्फेट, नाइट्रेट ऑफ सोडा, सुपर-फास्फेट, एसेटिक एसिड़, साइट्रिक एसिड़, बोरिक और टारटरिक एसिड़, सोड़ा एश, ब्लीचिंग पाउडर, गंधक अमोनियम क्लोराईड आदि वस्तुऐं सम्मिलित की जाती हैं। इनके आयात का मुख्य कारण देश में उद्योगों की उन्नति होना है। रासायनिक पदार्थ सं.रा. अमरीका, ब्रिटेन, इटली, फ्रांस, जर्मनी, जापान, बेल्जियम आदि से मंगवाये जाते हैं। १९५९ में ८५·२० करोड़ रुपये के रासायनिक पदार्थ और ८·८ करोड़ रुपये के खाद का आयात किया गया।

दवाइयों का आयात मुख्यतः ब्रिटेन, स्विटजरलैंड, कनाडा और सं. राज्य अमरीका से होता है।

(७) कागज दफ्ती तथा स्टेशनरी आदि
(Paper Paste-Board and Stationery)

देश में शिक्षा में प्रगति होने के साथ साथ कागज तथा लेखन सामिग्री का आयात बढ़ रहा है। लिखने का कागज, अखबारी कागज, दफ्ती कागज, किताबें छापने का सफेद कागज, स्याहीसोख, कार्ड बोर्ड तथा पेस्ट-बोर्ड आदि बड़ी मात्रा में नार्वे, स्वीडेन, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, सं. रा. अमरीका, आस्ट्रिया, फिनलैंड और सं. राज्यों से आयात किया जाता है। अन्य लेखन सामिग्री ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, सं. रा. अमरीका देशों से मंगवाई जाती है। १९५९ में ९·७ करोड़ रुपये का कागज विदेशों से आयात किया गया।

आयात की अन्य वस्तुऐं इस प्रकार हैं :—

वस्तुयें	कहाँ से आती हैं
बिजली का सामान :— (पंखे, टेलीफोन, तार, लैंप, चिमनियां)	ब्रिटेन, चीन, जापान, नीदरलैंड्स, सं० रा० अमरीका, स्वीटजरलैंड, प० जर्मनी।
कांच का सामान	बेल्जियम, जर्मनी, फ्रांस, हालैंड, ब्रिटेन।

वस्तुयें	कहाँ से आती हैं।
चीनी	मॉरीशस, जावा, प० द्वीप समूह, फिलीपाइन्स, द्वीप समूह।
सूत और सूती वस्त्र	ब्रिटेन, जापान, इटली, स्विटजरलैंड।
ऊनी वस्त्र	ब्रिटेन, जापान, इटली, बेल्जियम।
मोटर गाड़ियाँ, बाइसिकलें	ब्रिटेन, फ्रांस, सं० रा० अमरीका, इटली, कनाडा, जर्मनी।
रबड़ का सामान	जर्मनी, इंग्लैंड, जापान, सं० रा० अमरीका।
जूट	पाकिस्तान।
रेशमी वस्त्र	चीन, जापान, इटली, ब्रिटेन।

अध्याय ३६

भारत में जनसंख्या का वितरण

(Population Distribution in India)

भारत का क्षेत्रफल समस्त विश्व का २·२% है और आबादी कुल जनसंख्या की १४% है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व के चार बड़े देशों में से एक है। किन्तु भारत की दो तिहाई जनसंख्या उसके एक तिहाई भाग—मुख्यतः उत्तरी मैदान और तटीय मैदानों में जहाँ अपेक्षतया मिट्टी, जल, समतल भूमि व आवागमन की सुगमता आदि सुविधायें वर्तमान हैं—में केन्द्रित है। उत्तरी मैदान का क्षेत्रफल समूचे भारत का १७·३% है पर जनसंख्या ३६·७% है। इसी प्रकार तटीय मैदानों का क्षेत्रफल १४% है और जनसंख्या २४·६%, दक्षिण के पठारी भाग पर तटीय प्रदेशों की अपेक्षा जनसंख्या अधिक है किन्तु यहाँ का घनत्व तटीय भागों की तुलना में ¾ ही है। पठारी प्रदेश की कतिपय कछारी घाटियों और मैदानों में जनसंख्या का घनत्व मैदानी भाग के समान ही मिलता है। पठारी प्रदेश की उच्च भूमियों में कुल आबादी का २०सवाँ भाग पलता है। यह कुछ घाटियों में ही केन्द्रित है।

क्षेत्रीय वितरण के अनुसार भारत की जनसंख्या का वितरण निम्न प्रकार है :—

क्षेत्र	प्रतिशत	जनसंख्या
उत्तरी भारत (उत्तर प्रदेश)	१८%	६·३६ करोड़
पूर्वी भारत (बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, आसाम, मनीपुर, त्रिपुरा)	२५%	६·० करोड़
दक्षिणी भारत (मैसूर, मद्रास, आन्ध्र, केरल)	२१%	७·५ करोड़
पश्चिमी भारत (बम्बई, सौराष्ट्र, कच्छ)	११%	४·७ करोड़
मध्य भारत (मध्य प्रदेश)	१५%	५·२ करोड़
उत्तरी पश्चिमी भारत (राजस्थान, पंजाब, देहली, हिमाचल प्रदेश, जम्मू, काश्मीर)	१०%	३·५ करोड़

जनसंख्या का घनत्व

जनसंख्या और भूमि के क्षेत्रफल का सम्बन्ध मनुष्य और भूमि का अनुपात (Manland Ratio) या गणित घनत्व कहलाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रति वर्गमील या किलोमीटर भूमि पर कितने मनुष्य रहते हैं। नीचे की तालिका में भारत में भूमि और मनुष्यों का अनुपात दर्शाया गया है :—

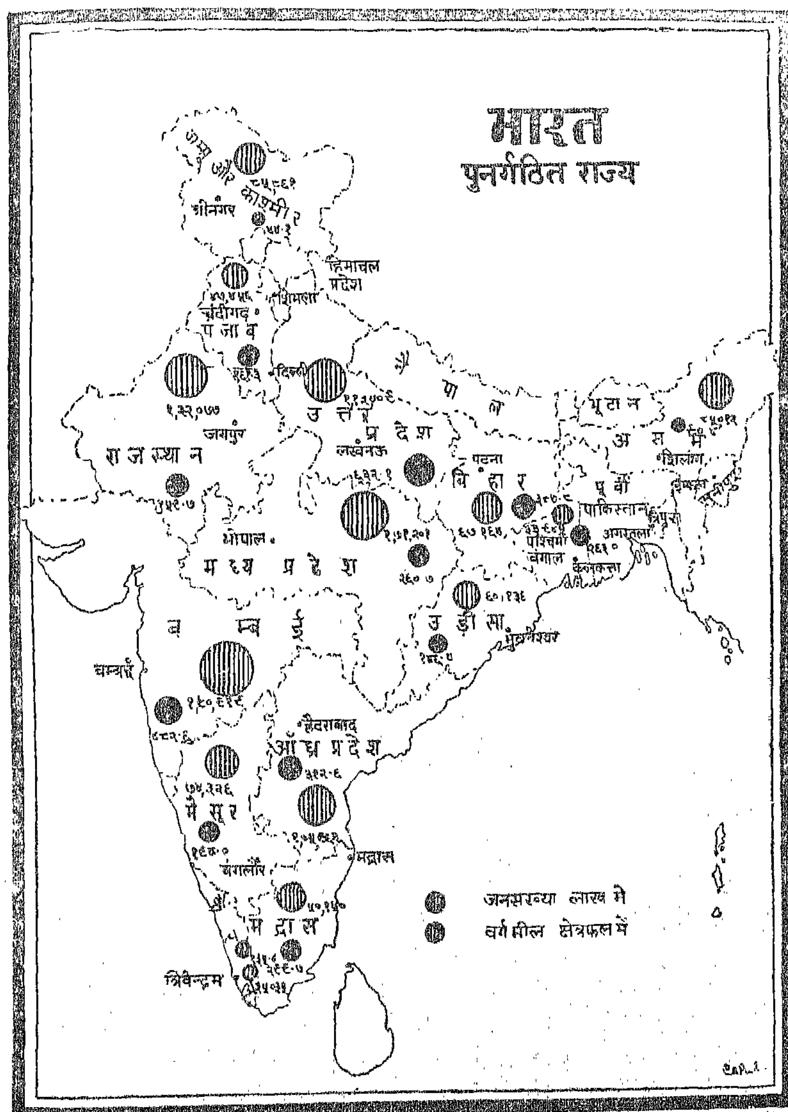
भारत के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या का गणित घनत्व

राज्य	क्षेत्रफल मीलों में	आबादी दस लाख आँकड़ों में	१९५१ में प्रति वर्ग-मील आबादी का घनत्व	१९५१ में प्रतिव्यक्ति पीछे भूमि (एकड़ में)
आन्ध्र राज्य	१०,५७०	३१·२	९९६	२·१६
आसाम	८५,०६२	९·०	१७१	६·०२
बिहार	६७,११३	३८·७	५७८	१·११
गुजरात + महाराष्ट्र	१,९०,६६८	४८·२	२५३	२·५३
केरल	१४,९३७	१३·५	९०७	०·७१
मध्य प्रदेश	१,७१,३००	२६·०	१५२	४·२०
मद्रास	५०,१०४	२९·९	५९०	१·०७
मैसूर	७४,८६१	१९·८	२५९	२·४७
उड़ीसा	६०,२५०	१४·६	२४२	२·६३
पंजाब	४७,०६२	१९·१	३४३	१·८८
राजस्थान	१,३२,०९८	१५·९	१२१	५·२९
उत्तर प्रदेश	१,१३,८२३	६३.२	५५७	१·१५
पश्चिमी बंगाल	३३,००५	२६·३	७७६	०·८२
जम्मू व काश्मीर	८५,८६१	४·४	५१	१२·४६
दिल्ली	५७३	१·७	३०४४२	०·२०
हिमाचल प्रदेश	१०,९२२	१·१	१०२	६·३४
मनीपुर	८,६२९	०·५	६७	९·५५
त्रिपुरा	४,०२२	०·६	१५९	६४·०४
अंडमान निकोबार	३,२१५	०·०३	१०	६६·३०
लंकाद्वीप, मिनीकोय व अमीन-दीवी द्वीप	४२	०·०२	५०१	१·२८
समस्त भारत	११,५९,७९७	३६१·१	३१२	२·२३

भारत की जनसंख्या का औसत घनत्व ३१२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। किन्तु एक स्थान से दूसरे स्थान के घनत्व में बड़ा भारी भेद पाया जाता है। जैसे दिल्ली का औसत घनत्व ३,०४४ है, केरल का ९०७, आसाम का १७४, राजस्थान का१२१, हिमाचल प्रदेश का १०२, जम्मू व काश्मीर का ५१ और अन्डमान-निकोबार का केवल १० मनुष्य प्रति वर्ग मील ही है। पश्चिमी बंगाल, मद्रास, बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश और उड़ीसा की स्थिति इसके बीच की है। इनका औसत घनत्व क्रमशः ७७६,५९७,५७८,२५५,५५७ और ३४३ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। इसकी तुलना विश्व के कुछ प्रमुख देशों के घनत्व से करिये। यह रूस में २३; संयुक्त राष्ट्र में ५०; जावा और मदुरा में ८१८; चीन में १२३; पाकिस्तान में ३०७; इटली में ३५८; इंग्लैंड और वेल्स में ७५३; जापान में ६२३; बेल्जियम में ७५५; नीदरलैन्डस में ७९३; आस्ट्रेलिया में ३; कनाड़ा में ४ और जर्मनी में ५०६ है।

भूमि के उपयोग के अनुसार जमाव (Land-use Concentration)

हमारे देश में दक्कन के पठार और राजस्थान की शुष्क पेटी में जनसंख्या का समूहीकरण कम है। इस प्रकार वे क्षेत्र जिनका औसत घनत्व भारत के औसत घनत्व



चित्र १८०—भारत के राज्यों का क्षेत्रफल और जनसंख्या

(३१२) के समान या उससे ऊपर है गुजरात के तट से पश्चिमी बंगाल तक फैले हुए हैं। जहाँ कहीं बीच में पहाड़ी भाग आ गये है वहां यह औसत क्रम टूट जाता है। तटीय प्रदेश में छोटे उपजाऊ व कछारी मैदानी भागों का घनत्व अधिक है। उदाहरणतः गुजरात में ४५०, केरल में-कोट्टियाम में ६०४, मलाबार में ७८३, क्वीलोन में ११४३, त्रिचूर में ११७७और त्रिवेन्द्रम में १५६२,तामिलनाड़ में-कोयमबटूर में ५२४, चिंगलपेट में ६०६, मदुराई में ५८६, तंजौर में ७६० है; पूर्वीतट के डेल्टाओं में श्री काकुलम में ५४४, पश्चिमी गोदावरी में ५६८, कृष्णा में ५२५, पूर्वी गोदावरी में ४५३और कटक में ५९७है; पश्चिमी बंगाल में, कलकत्ता में २५४,८६६,हुगली में१३१८, बर्दवान में ८०७, नादियों में ७५० और चौबीस परगना में ८६६ है। तटीय मैदानों और नदी घाटियों में कुल जनसंख्या की दृष्टि से घनत्व यूरोप के सबसे घने बसे बेल्जियम देश से अधिक है। जनसंख्या के इस घनत्व से यह प्रकट होता है कि उत्तम खेतीहर भूमि और घनी जनसंख्या में घनिष्ट सम्बन्ध है। भारत की तीन चौथाई आबादी खेतीहर है और मुख्यतः गहरी खेती पर ही आश्रित है। प्रायः द्वीप के समस्त दक्षिणी भागों में पुल्लीकट से दक्षिणी कनारा तक आबादी का घनत्व ३०० व्यक्तिओं से ऊपर है। कुर्ग, नीलगिरी, हसन, तुमकुर और शिमोगा जिलों में आबादीका घनत्व क्रमशः १४४,२७१,२८१ और १६३ मनुष्य प्रति वर्ग मील है क्योंकि यह सब पहाड़ी भाग है।

प्रायद्वीप के उत्तर में समस्त गंगा का मैदान घना बसा हुआ है। पीलीभीत (३७३) और खेरी (२५६) जिलों को छोड़कर सर्वेच्च ही आबादी का औसत ४५० के ऊपर है। कई भागों में तो यह औसत ८०० के ऊपर पाया जाता है। उदाहरणतः यह बलिया में १०११, देवरिया में १००७, जौनपुर में ६५६ मेरठ में ६८२, दरभंगा में ११०७, मुज्जफरपुर ११६७, पटना में ११६६, और सारन में ११८२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। आसाम का औसत केवल १७१ ही है किन्तु ब्रह्मपुत्र की घाटी में लखीमपुर तक आबादी का औसत ३६० तक मिलता है। पश्चिम की ओर सतलज यमुना दोआब में (मुख्यतः असिंचित अम्बाला जिले में) आबादी का घनत्व ३४३ है। इसके बाद पंजाब के पहाड़ी भाग में जहाँ जाड़ों में अच्छी वर्षा होती है औसत ४०० से ऊपर पहुँच जाता है। अमृतसर, गुरूदासपुर और जालन्धर में जहाँ सिंचाई की सुविधा प्राप्त है औसत क्रमशः ६०५, ६२५ और ७६१ है। काशमीर का औसत ५१ है किन्तु उसकी घाटी में अंनत नाग का औसत २०० के लगभग है।

दक्षिण में जनसंख्या के उल्लेखनीय केन्द्र ताप्ती की घाटी में (पूर्वी खान देश ३३२) और छतीसगढ़ के मैदान में स्थित है। हैदराबाद, नागपुर और शोलापुर यहाँ के मुख्य केन्द्र हैं।

जनसंख्या के बितरण पर स्पष्ट ही भौगोलिक प्रभाव देखा जाता है। घनी आबादी भारत के उन्ही भागों में पाई जाती है जहाँ उपजाऊ कछारी मैदान है; जहाँ सिंचाई की सुविधा है अथवा जहाँ अच्छी वर्षा होती है। इसके विपरीत न्यूनतम आबादी शुष्क अथवा पहाड़ी भागों में पाई जाती है जैसे बीकानेर में ३२; जैसलमेर में ७ और मिकर व उत्तरी कछार पहाड़ियों में २६ व्यक्ति ही प्रति वर्ग मील में रहते हैं। कुछ जिलों में जनसंख्या ६०० के ऊपर पाई जाती है। इनका अध्ययन बड़ा ही रुचिकर है। दिल्ली, लखनऊ और अमृतसर जिले अपने समीपीय जिलों की

अपेक्षा बहुत ही घने बसे हैं। यही बात हुगली; हावड़ा; २४ परगना जिलों के लिये भी सही है। मेरठ और जालन्धर सामान्य घने बसे हुए भाग में स्थानीय केन्द्र है। वस्तुत: उल्लेखनीय क्षेत्र उत्तर प्रदेश, बिहार की सीमा के पास और पश्चिमी बंगाल में हैं। प्रथम क्षेत्र में केन्द्रीयकरण ९ जिलों में हुआ है जिनका औसत १०० व्यक्तिओं से ऊपर है और क्षेत्रफल २१,७७९ वर्ग मील है। इनमें से चार जिलों (बनारस, सारन, दरभंगा, पटना) का औसत १०० से ऊपर है। यहाँ वर्षा का औसत ४० इन्च से ऊपर है। वर्षा विश्वसनीय और निश्चित है। खादर की उपजाऊ भूमि में चावल पैदा होता है। सिंचाई द्वारा रबी की फसल (गेहूँ और जौ) भी अच्छी होती है।

दक्षिण में केरल बहुत ही घना बसा राज्य है। इसका कुल क्षेत्रफल १४,९३७ वर्गमील है। जनसंख्या का औसत समस्त राज्य के लिये ९०७ है किन्तु कई भागों का औसत १,००० से १,५९० तक है। जनसंख्या के घनी होने का मुख्य कारण ऊँचे तापक्रम और अच्छी वर्षा का होना है। शुष्क मौसम बहुत ही छोटी होती है। इस कारण यहाँ चावल की दो फसलें पैदा की जाती हैं। जहाँ चावल पैदा नहीं होता वहाँ नारियल के कुंज पाये जाते हैं। तापक्रम और वर्षा की ऐसी दशायें ऊँचे घनत्व के लिये आदर्श है। बंगाल के तटीय भागों में भी एसी दशायें मिलती हैं। हुगली से दूर पश्चिम की ओर रेत व लैटेराइट मिट्टी का मलेरिया ग्रस्त क्षेत्र आजाता है। इस क्षेत्रका घनत्व अपेक्षतया कम है। यहाँ घनत्व इस प्रकार है :—वीर भूमि ६०८, वाकुंरा ४९७ और नादिया ६००।

जिन भागों में खनिज और उद्योग धन्धे के कारण जनसंख्या का जमाव हुआ है उनमें दामोदर घाटी, कोलार की खानें और जमशेदपुर उल्लेखनीय हैं। पश्चिम की ओर थार के निकट सिंचाई योजनाओं के कारण आबादी बढ़ गई है।

भारत में जन संख्या का सबसे बड़ा जमाव हुगली के किनारे कलकत्ता में हुआ है। यहाँ की जनसंख्या भारत की कुल शहरी जनसंख्या की ४५ लाख या ९% है। दूसरा बड़ा क्षेत्र बम्बई है। बम्बई की जनसंख्या शहरी जनसंख्या की ५% या २८ लाख है। इनके विपरीत मद्रास की जनसंख्या १४ लाख, हैदराबाद की १० लाख, दिल्ली की ११ लाख, अहमदाबाद की ८ लाख और कानपुर की ७ लाख है।

नीचे उच्च, मध्यम और निम्न घनत्व वाले भाग बताये गये हैं :—

प्रदेश का नाम	भूमि का क्षेत्रफल लाख ऐकड़ में	जनसंख्या लाखों में	प्रतिवर्ग मील घनत्व	प्रति व्यक्ति पीछे भूमि औसत।
उच्च घनत्व के क्षेत्र :				
निम्न गंगा का मैदान	५३८	७००	८३२	७७
ऊपरी गंगा का मैदान	३६६	३८९	६८१	९४
मलवार कोंकण	२३९	२३८	६३८	१००
दक्षिणी मद्रास	३५५	३०७	५५४	१५५
उत्तरी मद्रास व उड़ीसा का तट	१,२९३	२११	४६१	१३९
योग	१,७९१	१,९४५	६९०	९७

प्रदेश का नाम	भूमि का क्षेत्रफल लाख एकड़ में	जनसंख्या लाखों में	प्रतिवर्ग मील घनत्व	प्रति व्यक्ति पीछे भूमि औसत।
मध्यम घनत्व के क्षेत्र :				
गंगा के मैदान का अन्तिरिम क्षेत्र	४९९	२५९	३३२	१९३
दक्षिण के पठार का दक्षिणी भाग	८१७	३१५	२४७	२५९
दक्षिण के पठार का उत्तरी भाग	६२१	२३९	२४६	१,२६०
गुजरात सौराष्ट्र	४५६	१६१	२२६	२८३
योग	२,३९३	९७४	२६०	२४६
निम्न घनत्व के क्षेत्र :				
मरूस्थल	४८२	४६	७१	१०४७
पश्चिमी हिमालय	८५२	९०	६८	९४४
पूर्वी हिमालय	६७४	१२४	११८	५४२
उत्तरी पश्चिमी पहाड़ियाँ	४०९	१०४	१६३	३९४
उत्तरी मध्य की पहाड़ियाँ और पठार	४३७	१३८	१६४	३८९
उत्तरी पूर्वी पठार	९६७	२९०	१९२	३३३
योग	३,९२१	७९२	१२९	४९५

उपरोक्त विवरण से निम्न तथ्य प्रकट होते है—

(क) ५०.४ % जनसंख्या २२ प्रतिशत भूमि पर निर्भर करती है।
(ख) ४८.३ % भूमि केवल २१.९ जनसंख्या को पालती है और
(ग) ०.३ % भूमि केवल आबादी के १% भाग का पालन करती है।

जनसंख्या के इस वितरण से यह विदित हो जाता है कि भूमि पर जनसंख्या का भार अत्याधिक है। जनसंख्या के इस आसमान वितरण के कारण देश के साधनों का उचित उपयोग रुक गया है। जहाँ जनसंख्या कम है वहाँ जनबल के अभाव में साधनों का उपयोग नहीं हो पा रहा है। इसके विपरीत कुछ भाग आबादी से घनीभूत हो उठे हैं। भूमि पर जनसंख्या का भार किस प्रकार है इसका सही आभास निम्न आँकड़ों से हो जाता है। देश के समस्त लोगों को पर्याप्त भोजन देने के लिये प्रति व्यक्ति पीछे २'५ एकड़ भूमि न्यूनतम मानी गई है किन्तु प्रति व्यक्ति पीछे २'२३ एकड़ भूमि ही प्राप्त है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि बोई गई भूमि का प्रति व्यक्ति पीछे औसत ०.८२ एकड़ ही है। भूमि पर अत्यधिक भार केरल, पश्चिमी बगांल, बिहार, मद्रास, पंजाब और उत्तर प्रदेश में है। जहाँ प्रति व्यक्ति पीछे प्राप्त भूमि क्रमश: ०.७१, ०.८२, १.११, १'०७, १'८६ और १'१५ एकड़ है। इसके विपरीत भूमि का यह औसत भार राजस्थान में ५'२९ एकड़, मध्य प्रदेश में ४'२९ एकड़, आसाम में ६'०२ प्रकड, उड़ीसा में २'६३ एकड़ और बम्बई में २'५३ एकड़ है।

नीचे भारत की भूमि और जनसंख्या के अनुपात की तुलना विश्व के अन्य देशों के साथ की गई है। इससे भारत की जनसंख्या की सही स्थिती प्रकट हो जाती है।

भारत और अन्य देशों की भूमि और मनुष्य का अनुपात—

प्रमुख बातें	भारत	रूस को छोड़ कर	यू.एस.ए.	रूस	विश्व
जनसंख्या (करोड़ों में)	३६.१	३९.६	१५.१	१९.४	२४०
भूमि (करोड़ एकड़ों में)	८१.३	१२१.८	१९०.५	५९०.४	३२५१
प्रति व्यक्ति पीछे भूमि (समस्त भूमि)	२२५	३०७	१२६४	३०४६	१३५४
कृषि क्षेत्र	९३	१५२	७४१	४४८	३५१
कृषि क्रिया क्षेत्र	९७	९२	३०२	२८७	१२६

उपरोक्त आँकड़ों से विदित हो जाता है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और रूस के लोगों के पास संसार की काम में लाई जाने योग्य भूमि का बहुत अधिक भाग है किन्तु भारत और यूरोप की तुलना से निम्न परिणाम निकलते है :—

(१) यद्यपि यूरोप विश्व का सबसे घना बसा महाद्वीप है किन्तु भारत उससे भी घना बसा आबाद है। यूरोप में भूमि और मनुष्य का औसत (Manland ratio) भारत की अपेक्षा दो तिहाई अधिक है।

(२) औसत भारतीय अपनी खेतीहर और पड़त भूमि से ९७ सैन्ट प्राप्त करता है जबकि एक यूरोपीय ९२ सैन्ट प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त एक भारतीय अपनी ४३% भाग भूमि पर खेती करता है जबकि यूरोपीय ३०% भाग पर ही खेती करता है।

(३) यूरोप में खेतीहर भूमि का ६१% भाग स्थायी रूप से चरागाहों के लिये छोड़ा जाता है जबकि भारत में चरागाहों के लिये कोई भूमि उपलब्ध नहीं है।

यहाँ एक बात का और उल्लेख कर देना आवश्यक है। प्रति वर्ग मील भूमि पीछे कितने आदमियों का भरण पोषण होता है यह अपने आप में एक बहुत महत्वपूर्ण बात है किन्तु इसका तब तक बहुत अधिक महत्व नहीं है जब तक कि हमें ज्ञात न हो जाय कि वहाँ की जनसंख्या का जीवन स्तर कैसा है और लोगों को किस सीमा तक सुविधायें प्राप्त हैं। भारत में आबादी का औसत यद्यपि अधिक है किन्तु यह सबसे ऊंचा नहीं है। इंगलैंड, वेल्स, जर्मनी, नीदरलैण्डस, इटली, बेल्जियम, जावा और जापान की तुलना में भारत का औसत बहुत नीचा है। इस प्रकार भारत पश्चिमी और कुछ पूर्वीय देशों की तुलना में घना आबाद नहीं है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि भारत की तुलना ऊपर जिन देशों से की गई है वे अपने आकार प्रकार में भारत से बहुत छोटे है और इस प्रकार की तुलना से कोई परिणाम निकालना सही नहीं होगा। यदि हम ब्राजील, संयुक्त राष्ट्र, चीन, कनाडा और आस्ट्रेलिया जैसे समान क्षेत्र वाले देशों से भी इसकी तुलना करें तो हमें ज्ञात होगी कि भारत की आबादी का घनत्व असाधारण रूप से ऊँचा है। भारत में आबादी का औसत घनत्व ३१२ व्यक्ति वर्ग मील है जो संयुक्त राष्ट्र से छः गुना, चीन से लगभग तिगुना और ब्राजील से इक्कीस गुना है।

किसी भी देश के औसत घनत्व से उस देश की आर्थिक अवस्था का सही ज्ञान कर लेना सम्भव नहीं है। उदाहरणतः इंगलैंड और वेल्स का घनत्व पश्चिमी बंगाल के समान ही है किन्तु दोनों से यह अधिक धनी है। इसके विपरीत संयुक्त-

राष्ट्र और इंगलैंड व वेलस के बीच घनत्व में बड़ा भारी विभेद है किन्तु इससे दोनों देशों के समान आर्थिक स्तर प्राप्त करने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। यदि कोई देश बहुत ही घना आबाद है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह निश्चय ही सम्पन्न भी हो। आबादी का सामान घनत्व सामान आर्थिक सम्पन्नता का कदापि द्योतक नहीं है। संयुक्त राष्ट्र विश्व का सबसे धनी देश है पर उसकी आबादी का घनत्व बहुत ही नीचा है। आस्ट्रेलिया के लोग भी सामान्यतः धनी हैं पर वहाँ आबादी का औसत प्रति वर्ग मील ३ व्यक्ति है। ब्रिटेन में उच्च घनत्व और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में निम्न घनत्व होते हुए भी दोनों ही देश बड़े सम्पन्न हैं।

(ख) जनसंख्या का आर्थिक घनत्व (Economic Density)

यह देखा गया है कि कई प्रदेशों में आबादी का वितरण बड़ा विस्तृत और समान होता है किन्तु साधारण भूमि मनुष्य अनुपात (Man land ratio) से उस प्रदेश का सही घनत्व ज्ञात नहीं होता। कारण यह है कि समान क्षेत्र होते हुए भी उनके साधनों में भिन्नता होती है। फलतः उनकी आबादी के भरण पोषण की क्षमता में भी अन्तर आ जाता है। आबादी के घनत्व का सही अन्दाज तभी हो सकता है जब कि यह बताया जा सके कि प्रति वर्ग मील पीछे ऊपजाऊ भूमि का क्षेत्र कितना है। भूमि की उत्पादकता, जलवायु, स्थलरूप (Configuration) मिट्टी, वनस्पति, और खनिज साधनों आदि पर निर्भर करती है अतः यदि पूर्वी और पश्चिमी हिमालय के पहाड़ी क्षेत्रों का घनत्व १०० हो तो वह घना आबाद (Over-populated)ही कहा जायगा क्योंकि उक्त आबादी के पोषण के लिये वहाँ पर्याप्त साधन नहीं हैं। इसके विपरीत गंगा का मैदान और तटीय मैदानों में प्रति वर्ग मील १०० से भी कई गुने लोगों का पालन हो सकता है फिर भी वह घना आबाद नहीं कहा जायेगा। अतः यदि भूमि मनुष्य अनुपात के साथ साथ प्रति वर्ग मील भूमि की उत्पादकता भी प्रकट की जा सके तो उससे भी आबादी के घनत्व का अधिक सही अनुपात प्राप्त हो सकता है। साधारणतः इसी को जनसंख्या का आर्थिक घनत्व कहा जाता है किन्तु यह एक बड़ी ही जटिल समस्या है और आज तक विश्व के किसी भी देश में इस प्रकार का घनत्व निकालने का प्रयास नहीं किया गया है।

(ग) कृषि भूमि का घनत्व (Physiological Density)

यह घनित्व गणित घनत्व से (Arithmetic density) अधिक सही और महत्व पूर्ण है क्योंकि इससे जनसंख्या तथा कृषि के योग्य भूमि का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। उदाहरणतः भारत में कृषि योग्य भूमि का कुल क्षेत्र फल ५'७ लाख वर्ग मील है और जनसंख्या ३६'१ करोड़ है। अतः इसकी कृषि भूमि का घनत्व ६३० मनुष्य प्रति वर्ग मील है। विश्व के अन्य देशों में कृषि भूमि का घनत्व इस प्रकार है।

प्रमुख देशों की कृषि भूमि का घनत्व (१९५१)

देश	प्रति वर्ग मील कृषि भूमि का घनत्व	देश	प्रति वर्ग मील कृषि भूमि का घनत्व
जापान	४,०००	यूरोप (रूस को छोड़कर)	३२१
हालैंड	२,५००	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	७७

देश	प्रति वर्ग मील कृषि भूमि का घनत्व	देश	प्रति वर्ग मील कृषि भूमि का घनत्व
इंगलड और वेल्स	२,१००	कनाडा	७७
न्यूजीलैंड	६००	डेन्मार्क	५००
बेल्जियम	१,७००	दक्षिणी अमेरिका	२४
इटली	८००	अफ्रीका	३५
फ्रांस	४७०	ओसनिया	३
चीन	३००-३६०	मध्यपूर्व	४५६
अर्जेन्टाइना	१५४	दक्षिणी पूर्वी एशिया	३८०
		भारत	६३०

कृषि भूमि पर जन संख्या के घनत्व सम्बन्धी उपयुक्त आंकड़े प्रस्तुत करते हुए श्री कालिन क्लार्क (Colin Clark) कहते हैं कि, "यदि किसी देश में डेनमार्क की आधुनिक कृषि पद्धति का सहारा लिया जाय तो उस देश में प्रति वर्ग मील कृषि भूमि पीछे ५०० व्यक्तियों का निर्वाह हो सकता है" । इस स्तर के अनुसार विश्व के अधिकांश देशों में कृषि योग्य भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक नहीं कहा जा सकता किन्तु जापान, बेल्जियम, हालैंड में निःसन्देह खेतीहर भूमि पर अधिक भार है । जर्मनी का स्तर मर्यादित है किन्तु भारत की अवस्था निश्चय ही डेनमार्क की सीमा के ऊपर है । बेल्जियम, जर्मनी, इंगलैंड व वेल्स आदि देशों में घनत्व बहुत अधिक दिखाई देता है किन्तु इन देशों में लोग केवल कृषि भूमि पर ही निर्भर नहीं है, बहुत बड़ी संख्या निर्यात उद्योगों में भी लगी हुई है । इस प्रकार ये लोग अतिरिक्त पैदावार वाले देशों से खाद्यान्न प्राप्त कर लेते हैं । वस्तुतः इनकी स्थिति जैसी दिखाई पड़ती है वैसी शोचनीय नहीं है ।

हम देखते हैं कि भारत में जनसंख्या का घनत्व ऊँचा है किन्तु यदि बेकार भूमि को सुधारा जाय, प्राप्त आर्थिक साधनों का अधिक उचित उपयोग किया जाय, उद्योग धन्धों व विदेशी व्यापार का विकास और विस्तार किया जाय तथा भूमि में गहरी खेती के तरीकों को अपनाने की चेष्टा की जाय तो यहाँ और भी अधिक जन-संख्या का निर्वाह हो सकता है ।

नीचे दी गई तालिका में भारत के विभिन्न राज्यों में कृषि भूमि का घनत्व बताया गया है—

भारत में कृषि भूमि का घनत्व (१९५१)

राज्य	१९५१ में कुल जनसंख्या (हजारों में)	१९५१ में कृषि भूमि वर्ग मीलों में	प्रति वर्ग मील कृषि भूमि पीछे जनसंख्या का घनत्व
आन्ध्र प्रदेश	३१.२६०	५३.५६७	५८४
आसाम	९.०४४	९.७१४	९३१
बिहार	३८.७८४	४१.२०३	९४१
बम्बई	४८.२६५	१.०९.३५९	४४१

राज्य	१९५१ में कुल जनसंख्या (हजारों में)[1]	१९५१-५२ में कृषि वर्ग मीलों में	प्रति वर्ग मील कृषिभूमि पीछे जनसंख्या का घनत्व
केरल	१३.५४९	७.५०२	१.८०६
मध्य प्रदेश	२६.७७२	६९.०५८	३७८
मद्रास	२९.९७५	२७.९५२	१.०७२
मैसूर	१९.४०१	४३९८०	४४१
उड़ीसा	१४.६४६	२५.७३९	५६९
पंजाब	१८.१३५	२९.४७३	५४७
राजस्थान	१५.९७१	५८.४१४	२७३
उत्तर प्रदेश	६३.११६	६८.७०३	९२०
पश्चिमी बंगाल	२६.३०२	२२.४७५	१.१७०
जम्मू काशमीर[2]	४.४१०५	३.१००	१.४२३
हिमाचल प्रदेश	११०९	११२३	९९
मनीपुर	५७८	३३३	१.७३६
त्रिपुरा	६३९	७३८	८६६
अन्डमान निकोबार	३१	२०	१.५५०
लंकादीव मिनिकोय	२१	—	—
समस्त भारत	३'६१,१५२	५.७२.८३०	६३०

जनसंख्या का कृषि घनत्व (Agricultural Density) :

यह घनत्व खेतीहर जनसंख्या तथा खेतहर भूमि के पारस्परिक सम्बन्ध को सूचित करता है। इसमें कृषि योग्य भूमि के प्रति वर्ग मील में कृषकों की संख्या निकालते हैं। उदाहरण १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत में ४·३ करोड़ खेतीहर जनसंख्या है और खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल ५·७ लाख वर्ग मील है। अतः भारत की जनसंख्या का कृषि घनत्व ४३५ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। इसी प्रकार जापान में कृषि भूमि का घनत्व तो ४.००० व्यक्ति प्रति वर्ग मील है किन्तु कृषि घनत्व १००० व्यक्ति प्रति वर्ग मील ही है। इससे यह विदित होता है कि जापान की लगभग आधी जनसख्या खेतीहर है। इंगलैंड और वेल्स में जहाँ खेतीहर जनसंख्या केवल ८% है कृषि भूमि का घनत्व २१०० है और घनत्व १७० व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। इन्डोनेशिया में यह घनत्व १००० के लगभग है।

१९५० में भारत की जनसंख्या का कृषि घनत्व

राज्य	१९५१ में खेती पर आश्रित जनसंख्या (हजारों में)	कृषि भूमि (वर्गमीलों में)	प्रति वर्ग मील कृषि भूमि पीछे घनत्व
आन्ध्र प्रदेश	२१,०५०	५३,५६७	३९३
आसाम[3]	६,६३३	९,७१४	६८३

१· इसमें आदि वासी क्षेत्रों की गणना नहीं है क्योंकि १९५१ की जनगणना में उसकी गिनती नहीं की गई थी।

२· १९५१ की जनगणना में इस प्रान्त की गणना नहीं हुई थी फलतः अनुमानित आंकड़े लिये गये हैं।

३· इसमें आदिवासी क्षेत्रों की गणना शामिल नहीं है !

राज्य	१९५१ में खेती पर आश्रित जनसंख्या (हजारों में)	कृषि भूमि (वर्ग मीलों में)	प्रति वर्ग मील कृषि भूमि पीछे घनत्व
बिहार	३२,९२०	४१२०३	७९९
बम्बई	२९,८६७	१,०३५	२७३
केरल	७,२६६	७,५०२९	९६९
मध्यप्रदेश	२०,३५	६९०५८	२९५
मद्रास	१८,८१४	२७,९५५	६७३
मैसूर	१३,८२०	४३,९७०	३१४
उड़ीसा	११,६२२	२५,७३९	४५१
पंजाब	१०,६०४	२९,४७३	३६०
राजस्थान	११,१०८	५८,४१४	१९०
उत्तरप्रदेश	४६,९८७	६७७०३	६०२
पश्चिमी बंगाल	१५,८८६	२२,४७५	७०७
जम्मू काश्मीर	N.A.	३१००	—
दिल्ली	१७२	३७७	४५६
हिमाचल प्रदेश	१,०२८	१,१२३	९१५
मनीपुर	४८२	३३३	१,४४७
त्रिपुरा	४८१	७३८	६५२
अंडमान निकोबार	४	२०	२००
लंकादीव मीनिकोय	२	—	—
समस्त भारत	२,४८,९९६	५,७२,८३०	४३५

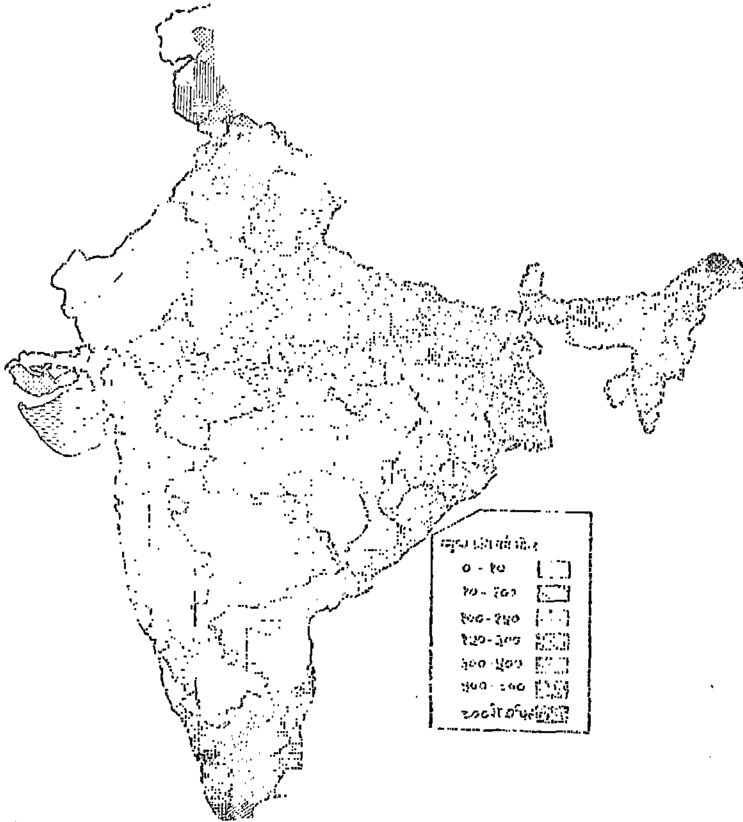
(१) **घनी जनसंख्या के क्षेत्र** :—यहाँ प्रति वर्ग मील में ५०० व्यक्तियों से अधिक मनुष्य रहते हैं। ऐसे भागों में पश्चिमी बंगाल, पूर्वी पंजाब, दक्षिणी प्रायद्वीप का दक्षिणी पश्चिमी समुद्र तट—केरल, उड़ीसा, आंध्र तथा मद्रास का तट सम्मिलित है। यह भाग संसार के सबसे अधिक घने बसे भागों में से है। यह समतल भूमि, घनी वर्षा, उपयुक्त गर्मी और यातायात के साधनों की सुगमता के कारण ही जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

(२) **अच्छी जनसंख्या वाले भाग**:—यहाँ प्रति वर्ग मील में ३०० से ५०० व्यक्ति तक रहते हैं। ऐसे भाग दक्षिणी नदियों के डेल्टा पूर्वी बिहार, गुजरात-महाराष्ट्र, दक्षिणी पंजाब, कोकन तट और पश्चिमी उत्तर प्रदेश है। यहाँ की भूमि उपजाऊ है। और वर्षा की कमी सिंचाई द्वारा पूरी की जाती है।

(३) **मध्यम जनसंख्या वाले भाग** :—जहाँ १५० से ३०० व्यक्ति प्रति वर्ग मील में रहते हैं इसमें सम्पूर्ण दक्षिणी प्रायद्वीप (तट की घनी बस्ती) तथा उत्तर और पूर्वी पहाड़ी वनों के कम बस्ती के जंगलों को छोड़कर आसाम और हिमालय प्रदेश शामिल हैं। मध्य प्रदेश, बिहार के खनिज क्षेत्र, प० आंध्र, मैसूर, मद्रास, सौराष्ट्र, ब्रह्मपुत्रा की घाटी (गोहाटी जिले को छोड़कर), मध्यप्रदेश के ग्वालियर तथा राजस्थान के जयपुर जिले इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

N. A. Not available.

(४) **कम जनसंख्या वाले भाग** :—यहाँ प्रति वर्गमील में १०० से १५० मनुष्य से भी कम रहते हैं । इसमें राजस्थान का पूर्वी भाग, पश्चिमी मध्य प्रदेश, आंध्र का दक्षिणी भाग शामिल हैं । यहाँ की भूमि अनुपजाऊ, कम वर्षा, यातायात के साधनों की कमी और जलवायु भी विषम है ।



चित्र १८१—जनसंख्या का घनत्व

(५) **बहुत ही कम जनसंख्या वाले भाग**—यहाँ प्रति वर्ग मील में १०० से भी कम मनुष्य रहते हैं । उ० प० राजस्थान, तराई, आसाम की पहाड़ियाँ, हिमाचल प्रदेश, मनीपुर, कच्छ, काश्मीर-जम्मू, सुन्दरबन, छोटा नागपुर का पठार तथा उड़ीसा के सूखे भाग इस क्षेत्र में शामिल हैं ।

जनसंख्या सम्बन्धी उपर्युक्त आंकड़ों के अध्ययन से हम इन परिणामों पर पहुँचते हैं । भारत में जनसंख्या का घनत्व वर्षा के परिणाम के साथ घटता जाता है । अर्थात् अधिक वर्षा वाले भागों की अपेक्षा ज्यादा घनी आबादी है । उदाहरण के लिए बंगाल में जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक है । जैसे जैसे पूर्व से पश्चिम की

ओर बढ़ते जाते हैं । वर्षा की मात्रा के साथ साथ जनसंख्या भी घटती जाती है । इस स्वर्ण नियम के कुछ अपवाद भी हैं । यद्यपि पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के भागों में वर्षा की मात्रा बहुत कम है । किन्तु उपजाऊ भूमि तथा सिंचाई की सुविधा के कारण वहाँ भी अधिक जनसंख्या है । छोटा नागपुर के पठारी क्षेत्र में भी खनिज पदार्थों के आकर्षण से अधिक घनी आबादी है । आसाम राज्य का पर्वतीय भाग बहुत कम आबाद है यद्यपि वहाँ अधिक वर्षा होती है । इसके ये कारण हैं । (१) यहाँ वनों की अधिकता है (२) यहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है (३) सीमा प्रान्तीय क्षेत्र में होने के कारण यह सुरक्षित भी नहीं है ।

चावल उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में (जैसे बंगाल तथा बिहार) अधिक आबादी है क्योंकि (१) अन्य उपजों की अपेक्षा चावल की उतनी ही मात्रा से अधिक मनुष्यों की उदरपूर्ति हो जाती है । (२) चावल में भोजन के अधिक पोषक तत्व होते हैं । (३) चावल की प्रति एकड़ पैदावार भी बहुत अधिक होती है । चावल की फसल तैयार भी शीघ्र होती है । (४) अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में चावल का उत्पादन अधिक सुगम होता है ।

उत्तरी मैदानी क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा के कारण जनसंख्या का घनत्व अधिक हैं । यातायात तथा सन्देश वाहन के साधनों की यहाँ विशेष सुविधा है । जीवन की समस्त आवश्यक वस्तुऐं यहाँ उपलब्ध हैं । दिल्ली राज्य में सबसे अधिक आबादी है क्योंकि (१) यह भारत सरकार की राजधानी है । (२) व्यापार, उद्योग तथा यातायात सभी दृष्टियों में बढ़ा चढ़ा है । (३) देश के बंटवारे के कारण यहाँ शरणार्थी भी अधिक आ बसे हैं ।



चित्र १८२—भारत की जनसंख्या

केरल राज्य की जनसंख्या का घनत्व सब राज्यों से अधिक है : (१) क्योंकि यह चावल उत्पादन करने वाला क्षेत्र है । यहाँ मृत्यु संख्या बहुत कम है । यहाँ ४५% व्यक्ति साक्षर हैं । (२) उद्योग धन्धों में अच्छी उन्नति हुई है ।

दक्षिणी पठारी क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है क्योंकि यह एक ऊँचा नीचा पठार है । जहाँ कृषि की सुविधायें बहुत कम हैं । यातायात के साधनों की भी यहाँ कमी है । यह बौछार का प्रदेश है । किन्तु पूर्वी तथा पश्चिमी तटीय भागों में जनसंख्या का घनत्व अधिक है क्योंकि यहाँ चावल की खेती होती है तथा जलवायु भी स्वास्थ्यवर्धक है । कला-कौशल के केन्द्रों में भी जनसंख्या अधिक है जैसे इन्दौर, बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर, जमशेदपुर आदि ।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में औद्योगिक नगरों में बन्दरगाहों के आसपास, नदियों की घाटियों में, समतल मैदानों में और खनिज पदार्थों

में पाये जाने वाले स्थानों में जहाँ जीवनयापन और आवागमन के साधनों के मार्गों की समुचित सुविधायें प्राप्त हैं अधिक घनत्व पाया जाता है। इसके विपरीत पहाड़ी, पठारी, रेगिस्तानी क्षेत्रों में जहाँ जलवायु प्रतिकूल और जल का अभाव होता है। घनत्व कम है। इसके अतिरिक्त भारत की कृषि पट्टी में जनसंख्या का घनत्व बहुत ही अधिक है। यह कृषि पट्टी पंजाब के सिंचाई वाले क्षेत्र से आरम्भ होकर उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल होता हुई पूर्वी घाट के मद्रास, आंध्र, मैसूर होती हुई पश्चिमी घाट के केरल, महाराष्ट्र और गुजरात तक जाती है।

किया है[1]। अतः इस सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जा सकता है वह केवल यह है कि यूरोप की भांति भारत में अतीत काल में जनसंख्या आज की अपेक्षा कम ही थी किन्तु शनै. शनैः इसमें वृद्धि हुई है। १८७२ में पहली व्यवस्थित जनगणना की गई। तबसे प्रत्येक दसवें वर्ष जनगणना होती चली आई है। नीचे की तालिका में डा० डेविस के अनुसार ऐतिहासिक युग में जनसंख्या के अंक इस प्रकार थे[2] :—

भारत की जनसंख्या का अनुमान ईसा के ३०० वर्ष पूर्व से १८७१ तक

वर्ष	(दस लाख में)	वार्षिक वृद्धि प्रतिशत में
ईसा के २०० पूर्व	१००–१४०	—
१५०० वर्ष	१००	—
१८००	१३००	०·०६
१८३४	१२	०·२४
५१८ ५	१३०	—
८१४ ५	१७५	२·९७
१८६७	१९५	०·८६
१८७१	२५५	६·८४

विभिन्न जनगणनाओं के आधार पर भारत की जनसंख्या निम्नलिखित रही है :—

भारत में जनसंख्या की वृद्धि १८९१ से १९५१ तक[3]

वर्ष	जन संख्या (दस लाख में)	दशाब्दी में वृद्धि (दस लाख में)	वृद्धि का प्रतिशत
१८९१	२३५·५	—	—
१९०१	२३५·९	०·४	+ ०.२
१९११	२४९·०	१३.५	+ ५.६
१९२१	२४८·१	०.९	— ०.६
१९३१	२७५·५	२७.४	+ १०.४
१९४१	३१२·८	३७.३	+ १२.७
१९५१	३५६·९	४४.१	+ १३.२

१९५२ से १९५९ के बीच के वर्षों में भारत की जनसंख्या इस प्रकार थी :—

१९५२	...	...३६.७५ करोड़	१९५६	...	३८.७५ करोड़
१९५३	...	...३७.२३ करोड़	१९५७	...	३९.२४ करोड़
१९५४	...	...३७.०१ करोड़	१९५८	...	३९.७५ करोड़
१९५५	...	...३८.२४ करोड़	१९५९	...	४०.२८ करोड़

उपर्युक्त तालिका से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दो जनगणनाओं के बीच की जनसंख्या वृद्धि में समानता नहीं है। कुछ दशाब्दियों में वृद्धि बहुत ही

१. R. K. MUKERJEE : Food Planning for 400 Millions, 1938, p. 3.
२. K. DAVIS . Op. cit, : P. 25.
३, Census of India, 1951, Val, I. pt. I. A. p. 112 and 126.

कम रही है जब कि दूसरी दशाब्दियों में यह अत्यधिक रही है । १८७२ से १९२१ तक भारत की जनसंख्या यदि एक दशाब्दी में शीघ्र गति से बढ़ी है तो उसकी तत्कालीन दूसरी दशाब्दी में धीमी गति से बढ़ी है । यह भारतीय जनसंख्या की महत्वपूर्ण धारा है जो १८७२ से लेकर १९२१ तक रही और जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत की जनसंख्या की वृद्धि तीव्र न हो सकी । १८९१ और १९२१ के बीच में भारत की जनसंख्या में १.२ करोड़ की वृद्धि हुई अर्थात् प्रति दशाब्दी पीछे १.७% की किन्तु अगले तीस वर्षों में (१९२१-१९५१) यह वृद्धि ११ करोड़ की हुई है अर्थात् प्रति दशाब्दी में १२% की गति से जिस अवधि में भारत की वृद्धि दर अत्यन्त कम है उसमें अकाल, प्लेग, महामारी आदि घटनायें हुई हैं जिन्होंने स्वाभाविक वृद्धि को कम कर दिया है। उदाहरण के लिये सन् १८७६-७८ में दक्षिणी भारत में भयानक अकाल पड़ा था तथा १८९० और १९०० में प्लेग और अकाल ने वृद्धि रोकने में एक दूसरे का साथ दिया । अकाल आयोग (Famine Commission 1901) के अनुसार १९०० और १८९६ और १८९७ के अकाल के कारण कुल मिलाकर ५० लाख व्यक्ति मृत्यु के मुँह में पहुँचे और १८७५ से लगा कर १९०० तक कुल मिलाकर २६० लाख मौतें अकेले अकालों के कारण हुई । अतः १८९१ और १९०१ के बीच जनसंख्या की वृद्धि ही कम हुई ।

सन् १९०१ से १९११ तक के समय को कृषि की मध्यम सम्पन्नता का समय कहा जाता है । यदि प्लेग और मलेरिया महामारी के रूप में उत्तर प्रदेश और पंजाब में अत्यधिक मृत्यु के कारण न बनते तो जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई होती । इस अवधि में भारत की जनसंख्या ५.६% की दर से बढ़ी । १९११-२१ की अवधि में १९१८ में होने वाले भीषण अकाल और इन्फ्लुएंजा की महामारी के महानाश के कारण ही १२० से १३० लाख तक व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हुए[1] । इन महामारियों ने प्रजनन-आयु की जनसंख्या को विशेष रूप से प्रभावित किया था अतः इस अवधि में जनसंख्या की वृद्धि बहुत ही कम रही ।

सन् १९२१ से ३१ तक की अवधि जनसंख्या की वृद्धि के लिये विशेष रूप से अनुकूल थी । जनसंख्या की वृद्धि २७४ लाख अथवा १०·६% की गति से हुई । इस दशक में कोई बड़ा अकाल नहीं पड़ा तथा हैजा, प्लेग, काला अजर जैसी महामारियों को रोकने की विधियों में भी सुधार हुआ । बंजरभूमि को सिंचाई के द्वारा उत्पादक बनाकर अकालों को रोकने का प्रयत्न भी हुआ तथा जनगणना करने के तरीकों में भी सुधार हुए । १८९१ से १९३१ तक भारत की जनसंख्या औसतन ११·१% की गति से बढ़ी और वास्तविक वृद्धि ३९६ लाख की हुई—जो तत्कालीन फ्रांस, इटली, पोलैंड और स्पेन की सम्मिलित जनसंख्या के बराबर थी[2] । इस गति को तीव्र मानकर डा० हटन ने कहा था, "कई दृष्टियों से यह वृद्धि हर्ष का विषय न होकर खतरे की सूचना है"[3] । किन्तु यदि विश्व के अन्य देशोंमें हुई वृद्धि से तुलना की जाय तो समस्या गंभीर नहीं दिखाई देती । १८८१ से १९३१ तक संयुक्त राज्य में जनसंख्या ८६%; जापान

1. R. K. Mukerjee: Op. Cit., p. 27; किन्तु डा० डेविस के अनुसार इंफ्लूएंजा के कारण भारत में २०० लाख मौतें हुई —p. 337
2. Census of India, Vol I. pt, I P. 29.
3. "This increase is from most point of view a cause for alarm rather than satisfaction"—Census of India, 1931.

में ७४%; इंग्लैंड में ५४.१%; इटली में ४६.८%; स्विटजरलैंड में ४३.५%; जर्मनी में ४२.९%; और स्पेन में ३६.८% की दर से बढ़ी।

सन् १९३१ की तुलना में १९४१ में ३७३ लाख की वृद्धि हुई। इस दशक में यह वृद्धि १२.७% की दर से हुई। इस तीव्र वृद्धि का मुख्य कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी अवस्थाओं में सुधार, अकालों में कमी तथा यातायात के साधनों में वृद्धि होना माना जाता है। इस गति से प्रो० बौरी (W. D. Borrie) के अनुसार भारत की जनसंख्या एक शताब्दी से भी कम में दुगनी हो जायेगी[1]। इतना सब होते हुये भी यदि विदेशों में जनसंख्या की वृद्धि की जो गति रही है उसकी भारत की जनसंख्या की वृद्धि गति से तुलना करें तो इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारत में जनसंख्या तीव्रता से नहीं बढ़ी है। १८७१ से १९४१तक यह वृद्धि औसतन ०.६% वार्षिक रही है जबकि इस अवधि में संसार की औसतन वार्षिक प्रतिशत वृद्धि ०.६९ थी।

१९५१ में भारत की जनसंख्या ३,५६८ लाख थी। अतः सन् १९४१ की तुलना में ४४१ लाख की वृद्धि हुई। जनगणना के अनुसार यह वृद्धि प्रतिवर्ष १·३% या दशाब्दी में १३·२% की है[2]। आधुनिक समय में भारतीय जनसंख्या की वृद्धि का मुख्य कारण आर्थिक विकास न होकर राजनैतिक सुरक्षा है।

भारत में मुख्य समस्या जनसंख्या की प्रतिशत वृद्धि में नहीं है किन्तु उसकी वास्तविक वृद्धि है जो प्रतिवर्ष अबाध गति से बढ़ती जा रही है। पिछले २० वर्षों में हमारी जनसंख्या में ८१० लाख की वृद्धि हो गई है। यह वृद्धि इंगलैंड की जनसंख्या की १$\frac{१}{२}$ गुनी; कनाडा की ५$\frac{३}{४}$ गुनी और ब्राजील की १$\frac{१}{२}$ गुनी है। इससे ज्ञात होता है कि हमारी जनसंख्या देश के आर्थिक साधनों के लिये पर्याप्त से अधिक है।

नीचे की तालिका में प्रमुख राज्यों में जनसंख्या की वृद्धि बताई गई है :—

भारत के कुछ राज्यों में जनसंख्या की वृद्धि

राज्य	१९०१-१९१० (दस लाख)	१९११-१९२१ (दस लाख)	१९२१-१९३१ (दस लाख)	१९३१-१९४१ (दस लाख)	१९४१-१९५१ (दस लाख)
उत्तर प्रदेश	४८·१	४६·४	४९·७	५६·४	६३·२
प० बंगाल	१६·७	१६·४	१७·६	२१·८	२६·८
पंजाब	९·४	९·७	१०·७	१२·६	१३·६
बिहार	२९·५	२९·१	३२·२	३६·५	४२·२
उड़ीसा	११·३	११·१	१२·४	१३·३	१४·६
आसाम	४·४	५·३२	६·३	७.५	९·०
बम्बई	२२·३	२२·३	२५·२	२९.३	३५·९
राजस्थान	१०·५	९·८	११·२	१३.३	१५.२
सम्पूर्ण भारत	२४९·०	२४८·१	२७५·५	३१२·८	३५६·९

4. W. D. Borrie : Population Trends and Policies, p. 21.

5. १९५१ में वृद्धि की दर अन्य देशों में इस प्रकार थी : आस्ट्रेलिया २·५%; मिश्र १·९०%; मैक्सिको २·[illegible]%; सं० रा० अमेरिका १·३६%; लंका १·५५%; चीन २·४१%; जापान १·३६%; टर्की २·१५%।

(Demographic Year Book, 1953)

१९५१ में भारत की जनगणना की सुविधा के लिये छः भागों में बाँटा गया था । उनमें निम्न प्रकार से जनसंख्या में वृद्धि हुई है[1] :—

भारत के विभिन्न भागों में जनसंख्या की वृद्धि

क्षेत्र (Zone)	जनसंख्या (लाख में) १८९१	१९२१	१९५१	लाख में वृद्धि (+) या ह्रास (—) १८९१–१९२०	१९२१–१९५१	प्रति दशक में वृद्धि % में १८९१–१९१०	१९२१ १९११–
उत्तरी क्षेत्र	४७९	४६७	६३२	−१२	+१६५	−०.८	+१०·०
पूर्वी क्षेत्र	५६३	६२८	९०१	+६५	+२७३	+३.७	+११·९
द० क्षेत्र	४२६	५१७	७५६	+९१	+२९९	+६·५	+१२·५
प० क्षेत्र	२९३	२५४	४०३	−९	+१५३	—१·४	+१५·४
मध्य क्षेत्र	३५९	३७३	३२३	+१४	+१५०	+१·२	+१६·२
उ. पे. क्षेत्र	२६९	२४२	३५०	—२७	+१०८	—३·६	+१२·२
संपूर्ण भारत	२;५५९	२,४८१	३,५६९	+१२२	+१,०८८	+१·७	+१२·०

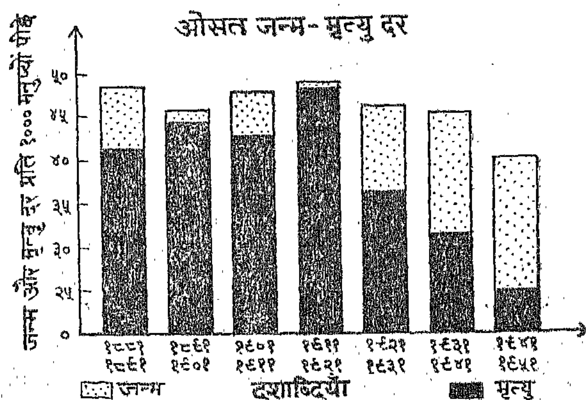
१९५१ से १९५६ के बीच की अवधि में अनुमानतः ३९६ लाख मनुष्यों की वृद्धि हुई है । इस वृद्धि का मुख्य कारण मलेरिया तथा राजयक्ष्मा जैसे रोगों की रोकथाम में सफलता मिलना, एन्टीवायोटिक और सल्फा दवाइयों का अधिकाधिक उपयोग जिनसे रोगों को रोकने की शक्ति बढ़ी है तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं का विस्तार और स्वच्छ जल आदि की सुविधायें हुई हैं इनसे इट के रोगों में कमी हुई है फलतः मृत्यु संख्या में कमी हुई हैं । किन्तु जन्म दर वही रही है ।

२. जनसंख्या की वृद्धि के कारण

जनसंख्या की वृद्धि दो मुख्य बातों पर निर्भर करती है :—

(i) जन्म दर तथा मृत्यु दर का अन्तर, और

(ii) आवास तथा प्रवास की संख्या का अन्तर ।



चित्र ८४—औसत जन्म-मृत्यु दर

1. Census of India, 1951, Vol. I. Pt. I. A. pp. 124-126.

चूंकि भारत में आवास तथा प्रवास का महत्व बहुत ही नगण्य है विश्व के अन्य देशों में भारतीयों की संख्या लगभग ४० लाख है। (जो हमारी वर्तमान जनसंख्या का लगभग १% है) अस्तु, मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत की जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि जन्म और मृत्यु दर द्वारा ही निश्चित होती है। दुर्भाग्यवश भारत विश्व में सबसे अधिक वार्षिक जन्म और मृत्यु दर वाले देशों में से है जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा[1] :—

देश	जन्मदर प्रति १००० पीछे			मृत्युदर प्रति १००० पीछे		
	१८८१–९१	१९४६–५०	१९५५	१८८१–९१	१९४६–५०	१९५५
इंगलैंड	३२.५	१७.९	१५.४	१९.२	१३.६	११.७
स्वीडेन	३९.१	१७.७	१४.८	१६.९	१०.१	९.४
फ्रान्स	१३.९	२०.९	१८.४	२२.२	१२.९	१२.०
सं.रा. अमेरिका	१७.२	२४.३	२४.६	१०.९	९.८	९.३
		(१९३१–१९३५)			(१९३१–३५)	
जापान	२७.२	३२.२	१९.४	१९.९	१२.२	७.८
भारत	३५.९	२६.०	२०.५	२७.४	१७.२	१२.७

१९५१ की जनगणना के अनुसार जन्म और मृत्यु दर की वार्षिक दरें २४.९ और १४.४ प्रति १००० थीं। प्रगतिशील देशों में जन्म और मृत्यु दर की घटने की प्रकृति बराबर बनी रही है जैसा कि उपर्युक्त अंकों से ज्ञात होगा किन्तु भारत में ये दरें अब भी बहुत ऊँची हैं। इनमें अन्य देशों की तरह कमी नहीं हुई है। इसके विपरीत कभी-कभी दोनों में ही वास्तविक वृद्धि हुई है जैसा कि निम्न तालिका से ज्ञात होगा[2] :—

वर्ष	जन्मदर प्रति हजार	मृत्युदर प्रति हजार
१९३१	३५	२५
१९३९	३४	२४
१९४७	२६.६	१९.७
१९५१	२४.९	१४.४
१९५४	२४.४	१२.५
१९५५	२७.०	११.७
१९५६	२१.६	९.८
१९५७	२१.५	११.०

भारत में जन्म दर अधिक होने के निम्न कारण हैं :—

(१) भारत में धार्मिक तथा सामाजिक रीतियाँ विवाह करने की प्रवृति को प्रोत्साहित करती हैं। "भारत में प्रत्येक हिन्दू को विवाह और सन्तानोत्पत्ति करनी चाहिये ताकि पुत्र उसकी अन्त्येष्टि क्रिया कर सके और उसकी आत्मा पृथ्वी के शून्य

१. League of Nations Statistical Year Book, 1941-42 and Demographic Year Book, 1952, U. N. Monthly Bulletin of Statistics, June, 1956.

२. S. Chandrasekhar : Population and Planned Parenthood in India, 1955, pp. 92-93; India, 1960, p. 39.

भागों में अशान्त होकर न भटके[१]।" सामाजिक निन्दा से बचने के लिये लड़कियों का विवाह रजस्वला होने के पहले ही कर दिया जाता है क्योंकि यदि हिन्दू कुमारी रजस्वला होने पर भी अविवाहित रहती है तो उसकी यह दशा परिवार को सामाजिक निन्दा का पात्र बना देती है।[२] संयुक्त परिवार की प्रथा भी इसे और अधिक प्रोत्साहित करती है। नव विवाहित दम्पति के लिये परिवार के साधन अनिश्चित समय तक उपलब्ध होने के कारण भारत में उन विचारों का कोई प्रभाव नहीं है जिनके कारण यूरोप में विवाह स्थगित करने पड़ते हैं। सन् १९३१ में कुल जनसंख्या में से ४७% पुरुष और ४९% स्त्रियाँ विवाहित थीं और शेष अविवाहित तथा विधुर थे किन्तु १९५१ में ५१% पुरुष और ४९% स्त्रियाँ विवाहित थे। भारत में प्रति १०,००० व्यक्तियों में से ५,१३३ पुरुष और ४,८६७ स्त्रियाँ हैं। इनमें से केवल २,५२१ पुरुष और १,८८६ स्त्रियाँ अविवाहित थीं (अर्थात् प्रति १००० में से ४५८ पुरुष और ४८२ स्त्रियाँ विवाहित थीं) अविवाहित स्त्री और पुरुषों की संख्या मिला देने पर कुल जनसंख्या का ४४·१% भाग अविवाहित हैं।[३] अन्य देशों की तुलना में अविवाहित स्त्री पुरुषों का अनुपात भारत में सबसे कम है।

(२) बाल-विवाह की प्रथा भी भारत में अभी तक प्रचलित है। ५०% लड़कियों का विवाह उनके १५ वर्ष की होने के पूर्व ही हो जाता है। इससे सन्तानोत्पत्ति भी शीघ्र होने लगती है। १५ वर्ष से कम आयुवाली लड़कियों का अनुपात सन् १९४१ में ९·६ प्रतिशत था जबकि १९५१ में यह ७·६% था। किन्तु संख्यात्मक दृष्टि से ९२ लाख युवक युवतियाँ ऐसे थे जिनकी शादी १४ वर्ष की उम्र से पहले ही हो चुकी थी। १९५१ की जनगणना के अनुसार केवल २०% पुरुष और ६% स्त्रियाँ अविवाहित थीं जिनकी उम्र १५ या उससे अधिक थी। जबकि अन्य देशों के लिये ये आंकड़े क्रमशः इस प्रकार थे।[४]

इंगलैंड	२७% और २६%	पश्चिमी जर्मनी	२९% और २९%
सं० रा० अमेरिका	३३% और २६%	फ्रांस	३१% और २५%

किन्तु अब बाल-विवाह में कमी हो रही है। जब विवाह छोटी उम्र में कर दिया जाता है तो उसका अवश्यम्भावी परिणाम अधिक सन्तानोत्पत्ति होता है। अनुभव एवं जाँच से ज्ञात हुआ है कि १५ से २० वर्ष की आयु का भाग सन्तानोत्पत्ति के लिये अधिक अनुकूल होता है। इसके बाद का आयुकाल कम अनुकूल होता है और ४५ वर्ष तक पहुँचते पहुँचते यह काल समाप्त होजाता है। १९४१ की जनगणना के अनुसार यदि विवाह के समय पत्नी की उम्र १५—२० वर्ष हो उस परिवार की सन्तान संख्या ७ होगी और २०—२५ की उम्र में, तथा २५—३० की उम्र में ४.९। यह स्थिति इस बात की द्योतक है कि ज्यों-ज्यों उम्र अधिक होती जाती है उसकी सन्तानोत्पत्ति की शक्ति में ह्रास होता जाता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यदि सन्तानोत्पत्ति का काल ३० वर्ष (१५ वर्ष की आयु से लगातार ४५ वर्ष तक) का माना जाय तो यह निष्कर्ष निकलता है कि इस अवधि के पूर्वार्द्ध में

१. P. K. Wattal : Population Problem in India, p. 23.
२. H. Risely : Peoples of India, 1901. p. 154.
३. Census of India, 1951, Vol. I pt. I. A, p. 72.
४. Census of India, 1951, Paper No. 3. p. 73.

सन्तानोत्पत्ति शक्ति तीव्र होती है और उत्तरार्द्ध में कम। वस्तुत: जहां भारतीय स्त्री इस अवधि में ६ से ७ बच्चों को जन्म देती है वहां इंगलैंड में ३-४; जर्मनी में ४-३, इटली में ४-६, पौलेंड में संयुक्त राज्य अमेरिका में ३.३, जापान में ५.२, ब्राजिल में ६ और रूस में ७ बच्चे पैदा होते हैं। यदि यह कहा जाय कि भारत में परिवार में वृद्धि शीघ्र और तीव्र गति से होती है तो कोई अत्युक्ति न होगी। अनुमान लगाया गया है कि भारत में वर्ष भर में प्रति १००० पीछे ४० बच्चे उत्पन्न होते हैं इसमें ८ से पहली संतानें; १६ दूसरी संतानें; २३ तीसरी संतानें और १७ चौथी होती हैं। भारत में ऐसी माताओं की संख्या जिनके ३ या ४ संतानें हो चुकी है ४२.८ प्रतिशत है। ऐसी माताओं का प्रतिशत जापान में ३३.६, सं० राज्य अमेरिका में १६.२; इंग्लैंड में १४; फ्रांस १६.३ और जर्मनी में १२.३ है। यह जानकर आश्चर्य होगा कि ज्यों-ज्यों अविवेकपूर्ण मातृत्व (Improvident parenthood) में वृद्धि होती है त्यों त्यों जीवन अवधि में भी कमी होती जाती है। भारत में यह मातृत्व ४३% है और जीवन अवधि केवल ३२ वर्ष इंग्लैंड में यह १४% है और जीवन अवधि ६६; संयुक्त राज्य में यह १६% है और जीवन अवधि ६१ है तथा जापान में यह ३४% है और जीवन अवधि ५४ वर्ष।

(३) देश की आर्थिक अवनत दशा तथा दरिद्रता ने भी जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहन दिया है। **श्री एडम स्मिथ के** अनुसार, "दीनता व निर्धनता सन्तानोत्पत्ति के वायुमंडल के अनुकूल होती है।" यह कथन भारत के लिये पूर्ण रूप से लागू होता है। यह एक निश्चित तथ्य है कि जीवन का अन्य कोई अवलम्बन न होने पर यह *प्रवृति स्वाभाविक रूप से वृद्धि पर होती है। जहाँ उज्जवल भविष्य और वर्तमान दशा* में सुधार की संभावना नहीं होती वहाँ उत्पन्न होने वाले बच्चों की अवस्था भी उतनी ही दयनीय होती है जितनी माता पिता की। निर्धनता इस प्रवृति को बढ़ावा देती है और यह वृद्धि निर्धनता को प्रोत्साहित करती है। अस्तु, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भारत में निम्न वर्ग के लोगों में अधिक संतानें पाई जाती हैं और ज्यों-ज्यों सामाजिक स्तर में परिवर्तन होता जाता है सन्तानों की संख्या में भी कमी होती जाती है। उदाहरण के लिये, १६३१ की जनगणना के अनुसार भारत में कायस्थ परिवारों में संतान की संख्या ६ थी, ब्राह्मणों में ५; अनुसूचित जातियों में ५; ईसाइयों में ५; जैनियों में ४·२; पारसियों में ४.२; हिन्दुओं में ४.१ और मुसलमानों में ४.३ थी[1]। **डा० पर्ल** (Pearl) के अनुसार; "जो उच्चवर्ग व श्रेणियाँ हैं वे शारीरिक *मानसिक और नैतिकता की दृष्टि से ही ऊँची नहीं, वरन् वे सन्तानोत्पत्ति की शक्ति* (Genetic power) की दृष्टि से भी उच्च होती हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश भारत में अधिकांश जनसंख्या मध्यम वर्ग की है जो अपनी सन्तानोत्पत्ति के लिये दोषी है।" अस्तु, भारत में अवांछनीय सन्तानों की संख्या इसलिये अधिक नहीं है कि हमें उनकी आवश्यकता है वरन् इसलिये कि हमें उनके जन्म का कोई विचार नहीं।

(४) देश में शिक्षा का स्तर भी बहुत नीचा है, केवल १७% व्यक्ति पढ़े लिखे हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में शिक्षा का घोर अभाव है। सम्पूर्ण जनसँख्या में २५% पुरुष और ८% स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी हैं। शिक्षा के अभाव में न तो वे ऊँचे जीवन-स्तर के महत्व को ही समझते हैं और न परिवार के अत्यधिक विस्तार को। अनपढ़ लोगों का विश्वास है कि बच्चे भगवान की देन हैं, इस पर किसी का बस

१. Census of India, 1931, pp. 207-8.

नहीं। अतः एक सन्तान के जन्म के अर्थ उनके लिये एक मुख को भरण-पोषण देना किन्तु दो हाथों को काम में लगाने के लिये पाना है। जब तक इस विचारधारा में अन्तर नहीं आता, समस्या का हल होना असंभव है।

(५) देश में अभी भी निम्न वर्ग की बात छोड़ भी दें तो मध्यम वर्ग के लोगों में भी जनसंख्या के उपायों तथा तरीकों का पूर्ण ज्ञान नहीं है। सामाजिक और धार्मिक कारणों से अथवा व्यक्तिगत कारणों से चिकित्सकों से इस सम्बन्ध में राय लेना भी उचित नहीं समझा जाता। इसके अतिरिक्त अभी भी देश में संतति-निरोध के उपकरण आदि प्राप्त करने की न तो सुविधा ही है और न वे सस्ते ही हैं। अतएव मध्यम श्रेणी का परिवार इन व्यय साध्य उपायों का अवलंबन नहीं कर सकता। सौभाग्यवश अब इस स्थिति में परिवर्तन हो रहा है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब संतानोत्पत्ति में ह्रास करने के लिये परिवार नियोजन कार्यक्रमों में जन-संख्या की रुचि होने लगी है।

(६) भारत में जन्म दर अधिक होने के साथ मृत्यु दर भी बहुत अधिक है इससे प्राकृतिक वृद्धि भी अन्य देशों की अपेक्षा अधिक होती है। भारत में प्राकृतिक वृद्धि की यह दर १८८१-९१ में ८ प्रति हजार थी किन्तु १९२१-३१ में यह दर बढ़ कर १०·१ हो गई है; १९३१-४१ में १४·० और १९४१-५१ में १२·५ प्रति हजार। १९५६ में वृद्धि की यह दर प्रति १००० पीछे १५·३ थी। अन्य देशों में प्राकृतिक वृद्धि की यह दर इंग्लैंड में प्रति १००० पीछे केवल ५; फ्रांस में ६; बेल्जियम में ४; डेनमार्क में ९; जापान में १३; स्विटजरलैंड में ७ तथा जर्मनी में ५ है। अस्तु: ज्ञात होता है कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि बढ़ती जा रही है। जनसंख्या के सिद्धान्त के अनुसार, "जब कभी न केवल वनस्पतिक वरन् पशु-जीवन में प्रतिकूल वातावरण के कारण पौधों या पशुओं की संख्या नष्ट होती जाती है तो प्रकृति उनकी जाति का संरक्षण और उनकी निरंतर वंश वृद्धि के हेतु उनमें सन्तोत्पति कि शक्ति को बढ़ा देती है"। इस सिद्धान्त के अनुसार जब मानव जाति में अधिक बच्चों की मृत्यु होने लगती है तो माता-पिता भविष्य की सुरक्षा के लिये अधिक सन्तानोत्पति करते जाते हैं, फलतः जनसंख्या में वृद्धि होने लगती है।

जनसंख्या वृद्धि और उसका भविष्य

न केवल भारत में ही वरन विश्व के अन्य देशों में भी जनसंख्या में वृद्धि बड़ी तीव्र गति से हो रही है। अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष विश्व की जन-संख्या में ३४० लाख की वृद्धि हो रही है। वृद्धि का ब्यौरा इस प्रकार है[१] :—

चीन	६५ लाख	
रूस	३० ,,	
पूर्वी यूरोप	१० ,,	
साम्यवादी देशों का योग		१०५ लाख
भारत	५० लाख	
शेष एशिया	६० लाख	

१. U. N. Statistical Year Book, 1954 Table I a.

एशिया का योग		११० लाख
सं० रा० अमरीका	३० लाख	
यूरोप, ओसीनिया और कनाडा आदि देश	२५ लाख	
इन देशों का योग		५५ लाख
लेटिन अमरीका	४० लाख	
अफ्रीका	३० लाख	
संपूर्ण विश्व का योग		३४० लाख

संयुक्त राष्ट्र संघ के जनसंख्या विभाग के अनुसार विश्व की जनसंख्या में वृद्धि होने की दर प्रति वर्ष १·२ प्रतिशत है। चीन को छोड़ कर विश्व की जनसंख्या में प्रतिवर्ष १ प्रतिशत की दर से वृद्धि होती है। इस दर से ऐसा अनुमान किया गया है कि आगामी ५० वर्षों में ही विश्व की जनसंख्या दुगनी हो जायेगी[1]। १९५५ में विश्व की जनसंख्या २६५२० लाख थी, यह आगामी ५० वर्षों में दुगनी होने की संभावना व्यक्त की गई है। सच तो यह है कि वृद्धि की वर्तमान गति से विश्व की जनसंख्या दूर भविष्य में नहीं बल्कि हमारे बच्चों के जीवनकाल में ही ४,००० बिलीयन तक बढ़ जायेगी[2]।

भारत में जनसंख्या की आगामी वृद्धि

भारत में वृद्धि की प्राकृतिक दर १३ प्रति १००० है। इस गति से भारत के जनगणना आयुक्त के अनुसार भारत की जनसंख्या १९५१ में ३,५६० लाख से बढ़कर १९६१ में ४,१०० लाख; १९७१ में ४,६०० लाख और १९८१ में ५,२० लाख हो जायेगी[3]। इस भविष्यवाणी करने में श्री गोपालास्वामी का आधार यह है कि (१) आगामी तीन दशाब्दियों में वृद्धि की औसत दशाब्दी गति वही होगी जो १९२१-५० के बीच के समय में रही है। (२) वृद्धि की औसत दशाब्दी गति (Mean decennial rate) वही होगी जो अंतिम दशाब्दी में रही है (अर्थात् १९४१-५१ में) इस अनुमान के अनुसार भारत में जनसंख्या की वृद्धि १९५१-६१ के बीच४४० लाख; १९६१-७१ के बीच ४६० लाख; १९७१-८१ के बीच ४५० लाख और १९७१-८१ के बीच ६३० लाख की होगी। किंतु श्री गोपालास्वामी का यह अनुमान वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जिस गति से हमारी स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि की जा रही है तथा आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओं की प्रगति के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति पीछे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से जीवन-स्तर में जो वृद्धि होगी और मृत्यु दर में ह्रास होने से मानव संख्या में जो बचत होगी उससे हमारी जनसंख्या में और भी अधिक वृद्धि होने की संभावना है। अभी भी हमारी वास्तविक प्रजनन-गति (Net Reproduction Rate) १·४५४ है जो अन्य देशों की तुलना में अधिक ही कही जा सकती है। इंग्लैंड में यह दर

१. प्रतिवर्ष ०.२५% की दर से जनसंख्या २७८ वर्षों में; ०.५% की दर से १३९ वर्षों में; १% की दर से ७० वर्षों में; १.३३% की दर से ५० वर्षों में; १.५% की दर से ४७ वर्षों में और २% की दर से ३५ वर्षों में दुगुनी हो जाती है—P. E. P. Report World Population & Resource, p. I)

२. U. N. Determinants and Consequences of Population Trends, pp. 160-161.

३. Census of India, 1951, Vol. I. Pt. I. A. p. 190.

१.०७०; फ्रांस में १·३१; नीदरलैंडस में १.१२०; स्विटजरलैंड में १.०५० और जर्मनी में ०.९७ तथा बेल्जियम में ०.८५ है[1]।

भारत की जनसंख्या की वृद्धि के बारे में और भी कई अनुमान किए गए हैं। डा० स्वरूप की गणना के अनुसार भारत की जनसंख्या सन् २,३०० में ७,००० लाख होगी; किंतु डा० राजा और श्री लाल का अनुमान है कि यह संख्या सन् २२०० तक में ही बढ़ जायगी। डा० डेविस ने भी भारत की जनसंख्या वृद्धि के बारे में भविष्य-वाणी की है। उनका अनुमान है कि सन् १९७० में भारत की जनसंख्या अधिक से अधिक ४,४८० लाख और कम से कम ३,७९० लाख तक बढ़ जायेगी। सन् २,००० में यह संख्या क्रमशः ६,४०० लाख और ४,५४० लाख होगी। किन्तु इन आंकड़ों को पूर्णतः विश्वासजनक नहीं कहा जा सकता क्योंकि अनुमान लगाने में डा० डेविस ने १९५१ की वास्तविक जनसंख्या को दृष्टिगत नहीं रखा। इसके अतिरिक्त उन्होंने स्वास्थ्य सेवाओं में जो विकास इन वर्षों में हुआ है उसका भी कोई विचार नहीं किया है। यही दोष श्री गोपालास्वामी के अनुमान के बारे में भी कहा जा सकता है।

किन्तु इस दृष्टि से जो नवीनतम अनुमान श्री कोल और हूवर (Coale & Hoover) ने लगाया है वह अधिक विश्वासजनक कहा जा सकता है। इन विद्वान लेखकों का कथन है कि इस समय जो देश-व्यापी स्वास्थ्य सुधार हो रहे हैं उनके फल-स्वरूप मृत्यु दर में बड़ी कमी हो जायेगी। फलतः सन् १९५६ में ३,८४० लाख जन-संख्या के आधार पर, वर्तमान वृद्धि की गति से, भारत की जनसंख्या सन् १९८६ तक दुगनी हो जायेगी। उन्होंने दो और अनुमान लगाये हैं जो दोनों ही इस बात पर आधारित हैं कि भारत में जो परिवार नियोजन कार्यक्रम किये जा रहे हैं उनके फल-स्वरूप सन् १९५६ से सन् १९८६ के बीच के ३० वर्षों में जनसंख्या की वृद्धि पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा। इन लेखकों का उच्चतम अनुमान ७,७५० लाख और निम्नतम अनुमान ५,८९० लाख का है। उच्चतम अनुमान तब सही होगा जब कि जनसंख्या की प्रजनन-गति वही रहती है। यदि सन् १९६६ और १९८१ के बीच प्रजजन गति में ५०% कमी हुई तो जनसंख्या १९८६ में ६,३४० लाख होगी किंतु यदि १९५६ और १९८१ के बीच जनसंख्या की प्रजनन गति में ५०% की कमी हुई तो जनसंख्या १९८६ में केवल ५,८९० लाख होगी। यह अनुमान श्री डेविस और गोपालास्वामी दोनों के ही अनुमानों से अधिक सही ज्ञात होते हैं क्योंकि इनके लगाने में न केवल स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार का वरन् देश में हो रहे परिवार-नियोजन कार्यक्रमों के प्रभाव का भी ध्यान रखा गया है। श्री कोल और हूवर का विश्वास है कि जितनी जल्दी जन्मदर में कमी होगी उतनी ही शीघ्र देश की आर्थिक अवस्था में भी सुधार होगा[2]।

वस्तुतः सत्य यह है कि भविष्य में भारत की जनसंख्या में और अधिक वृद्धि होगी। यदि भारत की मृत्युदर में लंका की तरह कमी की जा सके और जन्मदर यही रहे तो प्रति वर्ष लगभग १०० लाख व्यक्ति वृद्धि हो जायेगी। किंतु यदि जन्मदर आधी की जा सके तो वार्षिक वृद्धि में तो तीव्र कमी हो सकेगी। डा० स्वरूप के

१. Demographic Year Book, 1949-50.

२. A. Coale & E. Hoover, Population Growth and Economic Development in India, 1956-1986 (Office of the Population Research, Princeton University, 1959)

अनुसार यदि १९५१-६१ में शिशु मृत्यु दर में २५% की भी कमी हो सकी तो १९६१ की जनगणना के समय भारत की जनसंख्या में १२० लाख व्यक्ति अधिक हो जायेंगे। इसके अर्थ यह हुए की देश में जनसंख्या का भार और अधिक असहनीय हो जायेगा और जब तक इस वृद्धि को रोकने के प्रयास नहीं किये गये तब तक देश की भुखमरी व्याधियों, बेरोजगारी और खाद्यान्न-स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो सकेगा। डा० विलियम वोग्ट के शब्दों में "यह देश (बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण) विश्व के लिये खतरे का चिन्ह (Danger Spot) होगा[१]।"

जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के उपाय

जन्म संख्या की तीव्र वृद्धि को रोकने में निम्न उपाय उचित होंगे :—

१. **विवाह की आयु में वृद्धि**—लड़के और लड़कियों के विवाह की न्यूनतम उम्र बढ़ाई जाय। यह कम से कम लड़कियों के लिये २० और लड़कों के लिये ३० होनी चाहिये, गर्म भागों में यह आयु क्रमशः १८ और २५ हो सकती है। जितनी देर में विवाह किया जाता है उतने ही कम बच्चे वैवाहिक जीवन में उत्पन्न होते हैं। इस सम्बन्ध में **श्री डनलप** (Dunlop) का कहना है कि "जब लड़की २० से २५ साल तक की होती है तो एक वर्ष देर से विवाह करने में ०·४५ बच्चे कम पैदा होते हैं; २५ से ३० वर्ष की उम्र में ०·३७ ; ३० से ३५ तक ०·३२ ; ३५ से ४० तक ०·२९ और ४० से ४५ तक ०·१९।"[२] अधिक उम्र में विवाह करने का प्रभाव जन्म दर को कम करने में होता है क्योंकि बड़ी उम्र में विवाह होने से लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने और अन्य सांस्कृतिक कार्यों में भाग लेने की ओर रुचि बढ़ेगी, इससे अपरोक्ष रूप में सन्तानोत्पत्ति का प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। अस्तु, जितनी देरी से विवाह किया जायेगा उतनी ही कम सन्तान होने की सम्भावना रहेगी।

२. **उत्पादन में वृद्धि**—करने से मनुष्य की भौतिक रुचि बढ़ जाती है और उसका रहन स्तर ऊंचा हो जाता है और भविष्य के लिए योजनाएँ बनाने लगता है। उसके सम्मुख "बच्चे की अपेक्षा आस्टिन कार रखना ही" उद्देश्य हो जाता है। अस्तु, कृषि और औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करना आवश्यक है। कृषि की पुनर्व्यवस्था निम्न प्रकार से की जा सकती है :—

(क) काम में आने वाली भूमि की गहरी जुताई करना। यह कार्य उन्नत बीज, और कृषि के आधुनिकतम साधनों का प्रयोग करके किया जा सकता है।

(ख) कृषि क्षेत्र का विस्तार [illegible] पड़त भूमि का उपयोग किया जाय तथा सिंचाई [illegible] किया जाय।

(ग) भू-स्वत्वों, कृषि ऋण तथा निरक्षरता के कारण उत्पन्न होने वाली आपत्तियों को तात्कालिक सुधारों द्वारा दूर किया जाय। इसके अतिरिक्त जिन भागों में अभी तक औद्योगिक उन्नति नहीं हुई है उनका औद्योगीकरण किया जाय। इस हेतु अधिकतर छोटे और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिये क्योंकि छोटे उद्योग जब व्यवस्थित

१. W. Vogt : Road to Survival, 1948, p. 228.
२. H. G. Duncan : Population and Race Problem, p. 302-3.

किये जाते हैं तो वे कृषि और बड़े पैमाने के उद्योग के बीच एक आवश्यक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। इसके साथ ही साथ वे ग्रामीण और नागरिक आय के बीच की खाई को कम करके जीवन-यापन की अवस्था में भी अन्य साधनों के कारण विकास करते हैं।

औद्योगिक विकास देश में जनसंख्या की वृद्धिको रोकता है क्योंकि "औद्योगिक क्षेत्रों में कई विषम परिस्थितियों के पैदा हो जाने से मानव की जनन क्षमता पर अहितकर प्रभाव पड़ता है। भोजन प्राप्ति के लिये दिन भर व्यस्त रहने अथवा सामाजिक कार्यों में लिप्त रहने से प्रजजन शक्ति का प्रयोग पूरे प्रकार नहीं हो पाता, फलत: सन्तानोत्पत्ति भी कम होने लगती है, क्योंकि मनुष्य को अनेक प्रकार की मानसिक और शारीरिक चिन्ताएं घेरे रहती हैं तथा यौन सम्बन्ध के अतिरिक्त भी मानसिक संतुष्टि के कई अन्य साधन उपलब्ध हो जाते हैं। अत: यौन मिलन की अवधि कम होती जाती है। यही कारण है कि विश्व के सभी देशों में प्रजनन दर औद्योगिक क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा कम होती है।"[1] अस्तु, पिछड़े हुये द० पूर्वी एशिया के देशों में औद्योगीकरण करना इस दृष्टि से लाभदायक सिद्ध हो सकता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता होनी चाहिये। विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशों का अनुभव यह बताता है कि आर्थिक आयोजन की सफलता तथा उसके फलस्वरूप धन की वृद्धि में तुरन्त ही जनसंख्या के बढ़ने की सम्भावना रहती है, किन्तु बाद में आर्थिक उन्नति के साथ-साथ यह वृद्धि कम होती जाती है। आर्थिक उन्नति और शिक्षा के एक सीमा तक पहुँचने पर शहरी औद्योगिक सभ्यता के प्रसार के साथ-साथ सह-सम्बन्ध में प्रारम्भ में मृत्यु दर में तीव्र कमी होती है और उसके बाद जन्म दर तेजी से घट जाती है।

३. **सन्तति सुधार शास्त्र** (Eugenics) : अक्सर यह कहा जाता है कि मनुष्य पौधों और घरेलू जानवरों के लिये जो कुछ कर सका है वह अपने लिये नहीं कर सका। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि जाति सुधार के लिये मनुष्य पर प्रयोग करना या संभोग के नियमन के लिये उन्हें पौधों और जानवरों की तरह बरतना असम्भव है। किन्तु अब यह बात सर्वमान्य हो गई है कि जनसंख्या में गुणात्मक सुधार करना भी आवश्यक है। "सामाजिक अर्थ व्यवस्था, पारिवारिक सुख और राष्ट्रीय नियोजन के हित में परिवार नियोजन और संतान की सीमा तो आवश्यक है ही किन्तु इसके साथ ही साथ संतति सुधार कार्यक्रम में भयंकर प्रकृति के छूत या संक्रामक रोगों—मृगी, उन्माद, शरीर के आयोग्य, मस्तिष्क के खोखले एवं नैतिक पतन तथा परम्परागत बीमारियों के बीज समाहित करने वाले व्यक्तियों से ग्रस्त व्यक्तियों के विवाह और सन्तानोत्पत्ति पर पूर्ण प्रतिबन्ध भी होना चाहिये।" संतति सुधार शास्त्र की किसी भी व्यवहारिक योजना के सकारात्मक (Positive) और नकारात्मक (Negative) दोनों ही पहलू हो सकते हैं अर्थात् वह उपयुक्त व्यक्तियों के प्रजनन को प्रोत्साहित करेगी और अनुपयुक्त व्यक्तियों के प्रजनन को हतोत्साहित करेगी। अपराधियों एवम् अवांछित व्यक्तियों के सम्बन्ध में यही रास्ता अपनाना चाहिये कि कानून द्वारा उनको बन्ध्य बना दिया जिनसे उनकी यौन क्रियाएं तो ज्यों की त्यों बनी रहें किन्तु प्रजनन की शक्ति नष्ट हो जाये। संयुक्त-राज्य की कैन्टकी रियासत में मृगी रोग से पीड़ित या दुर्बल मस्तिष्क वाले व्यक्ति कानून द्वारा विवाह करने से रोके जाते हैं। इसी प्रकार मोंटाना में निर्बुद्धि एवं मृगी रोग से पीड़ित व्यक्तियों की

1. Report of The Royal Commission on Population.

ऑपरेशन द्वारा प्रजनन शक्ति समाप्त कर दी जाती है। इंग्लैंड, रूस, जर्मनी और कनाडा आदि देशों में भी ऐसे कानून प्रचलित हैं। भारत जैसे देश में भी—जहाँ १९३१ की जनगणना के अनुसार प्रति १००,००० व्यक्तियों पीछे ३४ पागल, ६६ बहरे और गूंगे, १७२ अंधे तथा ४२ कोढ़ी हैं—इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि देश की अवांछनीय जनता में जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिये कानून की शरण ली जाय।

४. देशवासियों की आर्थिक क्षमता को बनाये रखने के लिये सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सफाई पर ध्यान देना आवश्यक है। यद्यपि आधुनिक विज्ञान ने कई रोगों का—लाल जूड़ी, कुष्ट, हैजा, प्लेग आदि का अस्तित्व ही मिटा दिया हैं किन्तु फिर भी उष्ण कटिबन्धीय देशों में अधिकतर, हुकवर्म, गिनीवर्म, मलेरिया, क्षय, पेचिस आदि बीमारियों के कारण असंख्य जानें जाती हैं। ये बिमारियाँ "स्थानीय प्रचलित बीमारियों के उस दुखान्त नाटक की दुष्ट अभिनेत्रियाँ हैं जिन पर कभी पर्दा नहीं गिरता।" ये बीमारियाँ जितने व्यक्तियों को मारतीं नहीं उससे दुगुने तिगुने व्यक्तियों को अपना शिकार बना कर शक्तिहीन कर देती हैं। अतः इन्हें दूर करना आवश्यक होगा। यद्यपि इस कार्य में प्रारम्भिक व्यय बहुत अधिक होगा किन्तु यह वांछनीय होगा क्योंकि इससे आर्थिक क्षमता की अत्यधिक वृद्धि अवश्य होगी।" राष्ट्र के स्वास्थ्य पर किया हुआ सार्वजनिक व्यय डूबने से बचाने वाली नौका या आग बुझाने वाले इंजिन पर किये हुये व्यय के समान है। इतना ही नहीं वह दीर्घकालीन विनियोग है। उस पर निश्चयात्मक रूप से सौगुना व्याज प्राप्त होता है, परन्तु कुछ वर्षों बाद और कभी-कभी कुछ पीढ़ियों बाद।" जहाँ तक स्वास्थ्य सेवाओं का प्रश्न है, देश में अधिकाधिक चिकित्सालय खोले जावें और रोग निवारण के लिये आधुनिक विज्ञान का सहारा लिया जाय। नर्सों, दाइयों एवं परिचारिकों की संख्या में वृद्धि की जाय। गाँवों में पीने के लिये स्वच्छ जल का उचित प्रबन्ध किया जाय तो ग्रामीणों को स्वास्थ्यप्रद जीवन व्यतीत करने के साधन बनाये जायें।

५. परिवार के आकार को रोकने में शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा से मनुष्य अधिक उत्तरदायी और विवेकपूर्ण होकर जीवन के प्रति बुद्धि-संगत दृष्टिकोण रखता है। उसकी दृष्टि विस्तृत हो जाती है और प्रबुद्ध लोगों में जनसंख्या का आकरण नियंत्रित करने की आवश्यकता और गर्भ-निरोधक प्रयोग से सम्बन्धित ज्ञान का प्रसार संभव है। यथासंभव देश के सभी भागों में अनिवार्य शिक्षा चालू की जाये। इससे गाँवों के बच्चों को खेतों से हटा कर पाठशालाओं की ओर आकर्षित किया जा सके। इससे नागरिक क्षेत्रों में व्यक्ति की आय में वृद्धि होगी, स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी और अन्ततः लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठेगा। इससे अपरोक्ष रूप में विवाह की उम्र में भी परिवर्तन होगा और फलतः जन्म दर कम होगी। गाँवों में भी शिक्षा का प्रचार होने से औसत व्यक्ति का जीवन स्तर ऊँचा उठेगा और उसमें अपने परिवार को अपनी आय के अनुसार सीमित करने की भावना जाग्रत होगी।

६. देश के सभी आर्थिक क्रियाओं में लगे व्यक्तियों के लिये सामाजिक सुरक्षा का होना भी आवश्यक है क्योंकि इनके बिना वे भविष्य में विश्वास नहीं कर सकते। बुढ़ापे, बेरोजगारी अथवा दुर्घटना आदि से सुरक्षा न होने पर ही साधारण व्यक्ति बड़े परिवार की इच्छा रखता है जिससे उसके बाद परिवार की देख रेख उचित ढंग

से हो सके। वास्तव में "बच्चे दरिद्र लोगों की सम्पत्ति हैं और एक प्रकार का बोझा भी।" अतः इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये सामाजिक सुरक्षा का होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में भूमि का पुनः वितरण, सहकारी कृषि तथा जाति में समानता आदि लाने का कार्यक्रम सफल सिद्ध होगा।

डा० हटन (Hutton) के शब्दों में, "जन्म दर पर ऐच्छिक नियंत्रण के अतिरिक्त अन्य कारण जिनसे मृत्यु दर कम कर देते हैं। धन और मानसिक कार्यों की वृद्धि के साथ प्रजनन क्षमता भी कम हो जाती है। सार्वजनिक स्वास्थ्य-सुधार, जीवन स्तर में सुधार, शिक्षा का प्रसार, स्त्रियों का घरेलू काम काज के अतिरिक्त अन्य उपयोगी कार्य क्षेत्रों में पदार्पण आदि सुधार, जनसंख्या की अनियमित और तीव्र गति को रोकने के लिये वांछनीय हैं"।[1] पश्चिमी देशों में ऐसा ही हुआ है और यदि हम यह विश्वास करें तो अनुचित न होगा कि इस प्रकार के कारणों का प्रभाव भारत में भी वैसा ही होगा। अतः जनाधिक्य का सबसे आशाजनक हल यह है कि हर दिशा में आर्थिक विकास का प्रयत्न किया जाय।

७. **प्रवास या विदेश गमन** (Emigration)—जनसंख्या का विश्व वितरण बड़ा ही असमान है। आज भी संसार में ऐसे क्षेत्र हैं जहां पृथ्वी पर मानव भार, असह्य हो रहा है—मुख्यतः चीन, जापान, हिंदेशिया, भारत आदि दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में—जहां मानवता अर्द्धनग्न, अर्द्ध वस्त्र-विहीन और अर्द्ध भूखी रहती है। इन देशों में त्राहि-त्राहि मच रही है और शांति एक भीषण क्रांति में परिणत हो रही है। इसके विपरीत ऐसे भी विस्तृत क्षेत्र हैं—मुख्यतः आस्ट्रेलिया, अर्जेनटाइना, उत्तरी पश्चिमी अमेरिका, अफ्रीका, कनाडा तथा लेटिन अमरीकी देशों में—जहां जनशक्ति के अभाव के कारण भूभागों पर स्वच्छन्दता से पशु, भेंड़ आदि पाले जाते हैं और जहां मानव द्वारा निर्मित कृत्रिम ऊंचे जीवन स्तर को सुरक्षित रखने के लिये सरकार आवास नीतियों (Immigration Policies), कोटा पद्धति (Quota system) तथा अन्य प्रकार के प्रतिबंध लगा कर विदेशियों को इन भूभागों पर आकर बसने में रोक लगाती है। इस प्रकार आर्थिक और सामाजिक विषमतायें विश्व शांति के लिये वास्तव में घोर बाधा हैं।[2] इन कृत्रिम बाधाओं के स्वरूप नये देशों की आर्थिक उन्नति ठप्प पड़ गई है तथा मानव उनके यथोचित प्रतिदान से सर्वथा वंचित हैं। परन्तु जनसंख्या की समस्या उस कड़ाही के समान है जिसमें तेल लबालब भरा है और जोरों से उफान ले रहा है, खतरा यह है कि यह उफान कहीं आग न लगा दे न कि यह समस्या उस कड़ाही के समान है जिसमें तेल केवल पेंदी में ही पड़ा है।

नीचे की तालिका में यह बताया गया है कि कौन से देश जनसंख्या की दृष्टि से 'पूर्ण' (full) और कौन से अभी तक 'रिक्त' (Empty) हैं :—

जनसंख्या से पूर्ण देश	घनत्व प्रति वर्गमील	जनसंख्या से विहीन देश	घनत्व प्रति वर्गमील
बेल्जियम	७३४	आस्ट्रेलिया	३
हॉलैंड	८२६	कनाडा	४

१. Census of India, 1931, Vol. I, p. 43.
२. R. K. Mukerjee, Races, Lands and Food, 1946, p. 7.

जनसंख्या से पूर्ण देश	घनत्व प्रति वर्गमील	जनसंख्या से विहीन देश	घनत्व प्रति वर्गमील
इंगलैंड	७२४	साईबेरिया	५
इटली	३९७	अर्जेनटाइना	६
जर्मनी	५०५	अफ्रीका	०·५
जापान	५८३	ब्राजिल	१३
चीन	१२३	लैटिन अमेरिका	०·२८
भारत	३१२	न्यूजीलैंड	४·५
इंडोनेशिया	८१८	सं० राज्य अमेरिका	५०
पाकिस्तान	२०८	उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका	११·५
		रूस	२३

इस तालिका से ज्ञात होता है कि ब्राजील में प्रतिवर्ग मील पर १३ व्यक्ति ही; लैटिन अमेरिका में २८; उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका में ११·५; अर्जेनटाइना में ६ और कनाडा और आस्ट्रेलिया में केवल ४ और ३ व्यक्ति ही निवास करते हैं जबकि एशिया के देशों में प्रतिवर्ग मील पीछे १०५ से लेकर ८१८ व्यक्ति तक रहते हैं। अस्तु, यदि यह मान भी लिया जाय कि कनाडा या साईबेरिया में शीत जलवायु के कारण एशियायी निवासियों का रहना असम्भव है तो भी आस्ट्रेलिया, अर्जेनटाइना, लैटिन अमेरिका, गिनीतट, जंजीबार प्रदेश की जलवायु आदि भारतवासियों के सर्वथा अनुकूल है। आस्ट्रेलिया के बारे में श्री फॉरसिथ (Forsyth) का कथन है कि, "पिछले १५० वर्षों में अंग्रेजों द्वारा केवल १०% भूमि का उपयोग रहने के लिये किया गया है और आज भी 1% से अधिक पर खेती नहीं की जाती। महाद्वीप के ⅓ भाग पर १० लाख से भी कम व्यक्ति निवास करते हैं और शेष ⅓ में (जिनमें क्वीन्सलैंड, उत्तरी साउथ बेलस, विक्टोरिया, टसमानिया आदि सम्मिलित हैं) लगभग ६० लाख व्यक्ति निवास करते हैं और शेष ⅓ भाग में अनुपयुक्त (Unoccupied) भूमि का लगभग १०% है। इस कथन से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि आस्ट्रेलिया में भूमि के अभाव की कथा (Myth of Open Spaces) काल्पनिक नहीं वास्तविक है।[1] किन्तु इस विचार का खंडन करते हुए डा० थाम्पसन (Thompson) का विचार है कि "इसमें कोई सन्देह नहीं कि उष्ण कटिबन्धीय आस्ट्रेलिया में गहरी खेती के लिये भूमि का उपयोग कम ही किया जारहा है कि यदि परिवारिक खेतों में इसका उपयोग किया जाय तो इस पर अधिक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।[2] डा० टेलर (G. Taylor) ने जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों दोनों को दृष्टि में रखते हुए अनुमान लगाया है कि पश्चिमी देशों के जीवन स्तर पर यह महाद्वीप १५० से ५०० लाख व्यक्तियों को निवास स्थान दे सकता है। अर्थात् वर्तमान संख्या से तीन गुनी जनसंख्या को आस्ट्रेलिया में भूमि मिल सकती है। किन्तु अनुपयुक्त जलवायु के कारण यहाँ अंग्रेज नहीं रह सकते परन्तु भूमि का वांछनीय उपयोग करने के लिये डा० टेलर की राय में सीमित मात्रा

१. W. D. Forsyth : The Myth of Open Spaces, 1942, p. 68.
२. W. S. Thompson : Population and Peace in the Pacific, 1946, p.p. 18-20.

में चीनी, भारतीय और जापानियों को आवास के लिये निमंत्रित किया जा सकता है।[1] कनाडा के भूगोल शास्त्री श्री किम्बल (Kimble) का अनुमान है कि आस्ट्रेलिया में ३०० लाख व्यक्ति रह सकते हैं।[2]

इसी प्रकार लैटिन अमेरिका में विस्तृत अमेजन की घाटी, अर्जेनटाइना के पम्पा क्षेत्र, दक्षिणी चिली के वन प्रदेश, वैनेजुएला के गायना पठार—आदि भागों में भी निस्संदेह अधिक जनसंख्या को निवास स्थान दिया जा सकता है। अर्जेनटाइना में प्रो० किम्बल के मतानुसार, यदि 'एस्टैनशिया' (Estancias) प्रकार के खेतों को बन्द कर सामान्य कृषि प्रणाली का अवलंबन किया जा सके तो वर्तमान से भी अधिक जनसंख्या को स्थान दिया जा सकता है। इसी प्रकार पश्चिमी संयुक्त-राज्य अमेरिका तथा कनाडा में लाखों नवागन्तुकों को आश्रय मिल सकता है।

अस्तु, यदि इन देशों में एशिया निवासियों को बसने दिया जाय तो इन देशों का आर्थिक विकास पूर्ण रूप से हो सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास कानून (International Immigration Act) को स्वीकार्य कर यदि देशान्तर गमन के निर्विरोध अवसर एशियायी निवासियों को दिये जायं तो इसमें कोई संदेह नहीं कि अपनी वंशानुगत बुद्धि और चावल की गहरी खेती के ढंग से सूडान, नाइजीरिया, मौजेम्बिक, मैडागास्कर, ब्रिटिश गायना, दक्षिण पूर्वी आस्ट्रेलिया, दक्षिणी-अफ्रीका संघ जैसे कम बसे देशों में समृद्धि का नया युग आरम्भ कर सकते हैं।

किन्तु यहाँ यह बात स्मरणीय है कि जनसंख्या के बड़े मात्रा में देशान्तर गमन की समस्या का तब तक हल नहीं हो सकता जब तक कि विश्व बन्धुत्व की भावना को हम न समझें और अन्तर्राष्ट्रीय देशान्तर गमन की आज्ञा किसी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा न दी जाय। अस्तु, यह आवश्यक है कि विश्व की जनसंख्या के पुनर्वितरण के लिये एक विश्वव्यापी आन्दोलन किया जाय। यह आन्दोलन इस दृष्टि से किया जाय कि समस्त मानव प्राणी को पृथ्वी के प्रत्येक कोने में भौतिक साधनों को दृष्टिगत रखते हुये बसाया जाय।

७. **परिवार-नियोजन**—(Family Planning)—उपरोक्त सुझावों को कार्यान्वित करने में समय लग सकता है, अतः इस बीच में जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिये अल्प-कालीन उपाय काम में लाने चाहियें। क्योंकि यदि पश्चिमी विज्ञान और तांत्रिक सहायता द्वारा भारतीयों के स्वास्थ्य में सुधार होने के फलस्वरूप मृत्यु दर में कमी होगई किन्तु यदि जन्म दर को न रोका गया तो जनसंख्या में वृद्धि और भी तीव्रगति से होगी। अतएव मृत्यु दर में कमी करने के साथ विज्ञान की सहायता से जन्म दर में कमी करना आवश्यक होगा। इस हेतु परिवार नियोजन के कार्य-क्रम को विकसित करना होगा।

प्रत्येक विवाहित दम्पति का यह कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों के प्रति उनकी शिक्षा, उचित लालन पालन, रोगों से मुक्ति तथा स्वास्थ्यपूर्ण जीवन बनाने के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक रहें। इससे उन्हें जीवन में विकास करने का अवसर मिल सके। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पति का अपनी पत्नी के प्रति भी यह कर्तव्य है कि उस पर सन्तानोत्पत्ति का इतना अधिक भार न डाले कि उसका स्वास्थ्य जर्जर हो जाये—

१. G. Taylor : Australia, 1940, p. 118.
२. G. H. T. Kimble : The World's Open Spaces, 1946, p. 58.

वरन् इस प्रकार जीवन का ढंग बनाये कि दो प्रसव कालों के बीच में बच्चे की मां को स्वास्थ्य लाभ करने का पूर्ण अवसर मिल सके। इसके लिये परिवार नियोजन की आवश्यकता पड़ती है। परिवार नियोजन का मुख्य उद्देश्य अपने परिवार की सुख-समृद्धि के लिये परिवार के सदस्यों की संख्या को सीमित करना है।

वर्तमान युग में न केवल भारत में ही वरन् विश्व के अधिकांश पुराने देशों में प्रजनन दर अधिक होने से जनसंख्या में बड़ी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। इसका आवश्यक परिणाम यह हुआ है कि लाखों अतिरिक्त व्यक्ति थकी हुई पृथ्वी पर बोझ बन जाते हैं जो उनका पालन नहीं कर सकती।[1] अस्तु, यदि इस राष्ट्रीय अपव्यय को बचाना है तो आवश्यक है कि विज्ञान द्वारा प्रस्तुत आधुनिक गर्भ-निरोधक (Contraceptives) दवाइयों का अथवा यांत्रिक उपकरणों का सहारा लिया जाय। यद्यपि वैवाहिक जीवन में नैतिक संयम (Moral Restraint) का अधिक महत्व है किन्तु दीर्घकाल तक आत्मनिरोध का प्रचार अति जनसंख्या के दोष निवारण के लिये वैसा ही है जैसा कि भूख को मिटाने के लिये पेट को काट कर अलग कर देना। इन दोनों को ग्रहण करने के लगभग बराबर अवसर हैं।[2] इसके अतिरिक्त दीर्घकाल तक लगातार आत्म-निरोध साधारणतया रोग से भी बुरी औषधि है, क्योंकि विवाहित लोगों के मस्तिष्क और शरीर पर इसकी हानिप्रद क्रियायें होती हैं।[3] अस्तु, यह स्पष्ट है कि राष्ट्र और परिवार के जीवन में सन्तति निग्रह की वर्तमान विधियों द्वारा ही जनसंख्या का नियंत्रण करना उचित होगा।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने साधनों के अनुसार परिवार को सीमित करना चाहिये जिससे उनकी सन्तान को जीवन में कम से कम अपने बराबर तो अवसर मिल सके। जिस प्रकार पौधों के विकास के लिये बहुत से घने बीज नहीं होने चाहिये, उसी प्रकार उचित विकास के लिये परिवार में बहुत अधिक संतान भी नहीं होनी चाहिये। अधिक संतान होने से जीवन-शक्ति क्षीण हो जाती है और शिशु-मृत्यु दर बढ़ जाती है। अस्तु यह आवश्यक है कि बच्चे उस समय तक पैदा न किये जायें जब तक उनके उचित पालन पोषण के लिये वह व्यक्ति समर्थ न हो। व्यक्ति का हित समूचे समाज का हित भी है। यदि अधिकांश व्यक्ति बिना सोचे समझे बच्चे पैदा करते रहेंगे तो रहन-सहन का सामान्य स्तर अवश्य ही नीचा हो जायेगा[4] जो न केवल परिवार के लिये वरन् देश के लिये भी दुखदायी होगा।

आर्थिक विकास से जनसंख्या की वृद्धि के अल्प भाग का ही काम चल सकता है। यदि मानव की प्रजनन क्षमता को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाय तो अवश्य ही युद्ध, महामारी, अकाल जैसी दुष्ट शक्तियाँ अपना कार्य आरम्भ कर देंगी[5]।

---

१. "The World and specially India is paying the penalty of unchecked procreation, so that the superfluous millions go down to fatten the tired earth which could not fatten them."

२. जथार और बैरी : भारतीय अर्थशास्त्र, भाग १, १९५६, पृ० ७९.

३. L. Darwin : What is Eugenics, p. 36.

४. H. Cox : The Problem of Population, p. 118.

५. "मानव की जनन क्षमता इतनी अधिक है कि स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा १७५० वर्षों में दुनिया की वर्तमान जनसंख्या के बराबर सन्तति उत्पन्न कर सकता है अर्थात् २० लाख बिलियन (१०^{१८}) या पृथ्वी और समुद्र के प्रतिवर्ग पीछे १००० व्यक्ति से भी अधिक" Swinburne : Population and Social Problems, 1924, p. 16.

आर्थिक विकास को जनसंख्या का एक अस्थायी उपचार ही मानना चाहिये तथा हर स्थिति में उसे ऐच्छिक और विवेकपूर्ण नियन्त्रण से पुष्ट करना चाहिये। इसी नियन्त्रण में विवेकशील प्राणी और खरगोशों का अन्तर परिलक्षित होता है। भारतीय जनगणना आयुक्त श्री गोपाल स्वामी का कथन बिल्कुल ही उपयुक्त है। वे यह कहते हैं कि जब किसी व्यक्ति की मृत्यु को स्थगित करने के लिये हम डाक्टर की सहायता लेने में हिचकते नहीं तो जन्म के स्थगन के लिये हम समान रुख क्यों नहीं अपनाते? अस्तु, यदि हम प्रकृति को मृत्यु थोपने में छूट नहीं देते हैं तो जन्म को भी उसी तरह नहीं होने देना चाहिये[१]। अतः जनसंख्या को विवेकपूर्ण नियन्त्रित करने के लिये एक संगठित प्रयत्न आवश्यक प्रतीत होता है। "उत्पादन और प्रजनन का अर्थशास्त्र घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। उत्पादन का युक्तिकरण तभी और उतना ही हो सकता है जबकि और जितना प्रजनन का युक्तिकरण किया जायगा"[२]। जन्म निरोध के कौन से उपाय काम में लाये जायें यह बात दम्पतियों तक ही छोड़ी जाय। वे चाहे आत्म संयम द्वारा अथवा वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा इस कार्य को कर सकते हैं किन्तु सरकार को परिवार नियोजन के कार्यक्रम को सफल एवं सार्वभौमिक बनाने के लिये निम्न कार्य करने चाहिये :—

१. अत्यन्त विश्वासजनक एवं प्रभावोत्पादक गर्भ निरोध के उपकरणों का निर्माण कराये। इन उपकरणों में कम से कम यह गुण अवश्य होने चाहिये—वह सस्ता हो, विश्वास जनक हो, उसका प्रयोग सरलता से किया जा सके। वह सभी स्थानों पर उपलब्ध हो सके और उसका उपयोग धर्म विशेष के विरुद्ध न हो। संभवतः ऐसा उपकरण गोलियों के रूप में हो सकता है जिन्हें स्त्रियां अपने मासिक धर्म काल में निगल सकें। इनका प्रभाव कम से कम १ महीने तक रह सके। तभी यह गोलियां सफल हो सकती हैं।

२. जो व्यक्ति दवाइयाँ अथवा वैज्ञानिक उपकरणों की जानकारी और उनका उपयोग सीखना चाहें उनके लिये उचित परामर्श अथवा सूचना किसी परिवार नियोजन गृह, प्रसूतिका गृहों, अस्पतालों, बच्चों के विकास केन्द्रों आदि में देने की व्यवस्था की जाय।

३. गरीब व्यक्तियों अथवा गाँवों के निवासियों में इन उपकरणों और दवाई का प्रचार निशुल्क किया जाय।

४. इस प्रचार कार्य में सामाजिक संस्थाओं, सामुदायिक विकास खंडों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं की सहायता भी ली जा सकती है।

५. प्रचार कार्य के लिये विभिन्न भाषाओं में विभिन्न प्रकार के विज्ञापन-पोस्टर्स, पुस्तिकाएँ, फिल्में, चित्र, गाने, कविताएँ तथा अन्य तरीकों से किये जायें। इसके साथ-साथ नर्सें अथवा डाक्टर भी व्यक्तिगत रूप से अधिक बड़े परिवार की हानियों को बताते हुए उसके नियोजन पर जोर दें।

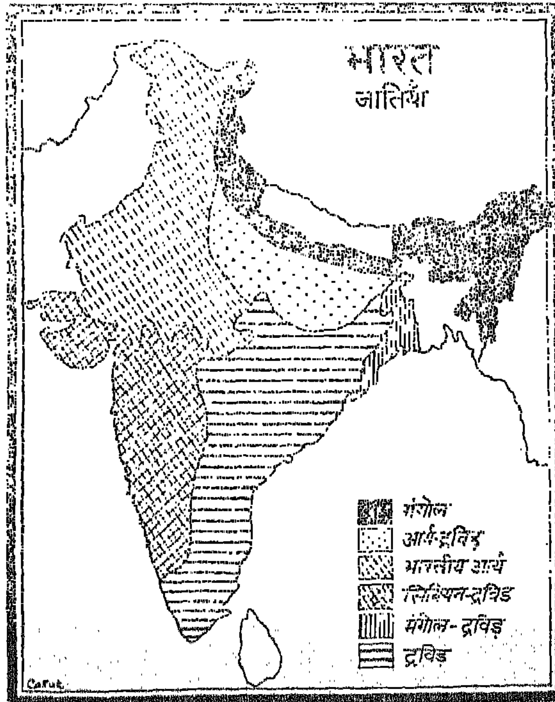
६. विश्वविद्यालयों और कालेजों में यौन-शिक्षा (Sex Education) सम्बन्धी

१. Census of India, 1951, Vol. I. Pt. I. A.

२. Prof. Goldchield, quoted by N. V. Sovani: Regional Approach to Population Problems. p. 208.

वाली आर्य तथा सिथियन, मंगोल आदि प्रजातियों के सम्पर्क से इनकी नस्ल में बड़ा अन्तर आ गया है। ये भारत के दक्षिण में मद्रास, हैदराबाद, छोटा नागपुर और मध्य प्रदेश के दक्षिणी भागों में रहते हैं। मलाबार के पनियान, उड़ीसा के जुआंग, पूर्वी घाट के कोंड, मध्य प्रदेश के गोंड, नीलगिरी के टोडा और छोटा नागपुर के संथाल लोग इसी प्रजाति के प्रतिनिधि हैं। इनका कद छोटा और रंग बहुत ही काला होता है—इनकी आँखें काली, सिर लम्बा तथा घने बालों वाला (जो कभी-कभी घुंघराले होते हैं) और नाक बहुत चौड़ा होता है (जो कभी-कभी जड़ों में दबा हुआ होता है) यह प्रजाति भारत की जनसंख्या का २० प्रतिशत है।

(२) **भारतीय आर्य** (Indo-Aryans)—ऐसा अनुमान किया जाता है कि ईसा से २,००० वर्ष पूर्व आर्य लोग मध्य एशिया से भारत में आए और इन्होंने यहाँ बसने वाली द्रविड़ जाति को दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। इस समय साधारणतः यह प्रजाति पूर्वी पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, और काश्मीर में पाई जाती है। इस प्रजाति के वर्तमान समय में राजपूत, खत्री व जाट मुख्य सदस्य हैं। इनका कद लम्बा, रंग गोरा, सिर ऊँचा, नाक ऊँची, नुकीली और लम्बी होती है और इनके चेहरे पर भरपूर बाल होते हैं। भारत की ७५ प्रतिशत जनसंख्या इस प्रजाति का ही रूप है। हिन्दुओं के तीन उच्च वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-आर्य प्रजाति के ही वंशज हैं।



चित्र १८६—भारत की प्रजातियाँ

(३) **मंगोल** (Mongoloids)—यह प्रजाति हिमालय प्रदेश, नैपाल और

आसाम में फैली हुई हैं। लाहुल और कुल्लू के कनेत और सिक्किम व दार्जिलिंग के लेपचा, (Lepchas), नैपाल के लिम्ब, मर्मी और गुरूंग तथा आसाम के बोड़ लोग इस प्रजाति में मुख्य हैं। इनका कद छोटा, सिर चौड़ा, नाक चौड़ी, चेहरा चपटा, भौंहे टेढ़ी, पीला रंग तथा शरीर पर बाल कम होते हैं।

(४) **आर्य द्रविड़** (Aryo-Dravidians)—यह प्रजाति आर्य और द्रविड़ लोगों के सम्मिश्रण से बनी है। यह उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान के कुछ भागों में फैली हुई है। उच्च कुलों में हिन्दुस्तानी ब्राह्मण और निम्न कुलों में हरिजन इसका प्रतिनिधित्व करते हैं। इन लोगों का सिर प्रायः लम्बा या मध्यम प्रकार का होता है। कद विशुद्ध आर्यों से कुछ छोटा, नाक मध्यम से चौड़ी और रंग हल्का भूरा या गेहूँआ होता है।

(५) **मंगोल द्रविड़** (Mongolo-Dravidians)—या बंगाली-यह बंगाल और उड़ीसा में पाई जाती हैं। बंगाली ब्राह्मण और बंगाली कायस्थ इसके मुख्य प्रतिनिधि हैं। यह प्रजाति द्रविड़ और मंगोल तत्वों से बनी हैं। उच्च वर्गों में भारतीय आर्य लोगों के रक्त का अंश भी देखा जाता है। इन लोगों का कद मध्यम और कभी कभी छोटा होता है। सिर चौड़ा और गोल, रंग काला, बाल घने और नाक चौड़ी होती है।

(६) **सिथो द्रविड़** (Sytho Dravidian)—यह प्रजाति सिथियन और द्रविड़ लोगों के सम्मिश्रण से बनी हैं। ये लोग केरल, सौराष्ट्र और मध्य प्रदेश के पहाड़ी भागों में फैले हुए हैं। समाज के उच्च वर्गों में सिथियन तत्व और निम्न वर्गों में द्रविड़ तत्व प्रमुख हैं। ये लोग अपने कद में छोटे और काले रंग के होते हैं। इनका सिर अपेक्षतया लम्बा और नाक मध्यम होती हैं। इनके शरीर पर बाल कम होते हैं।

(७) **तुर्क ईरानी** (Turko-Iranian)—वर्तमान समय में यह प्रजाति अफगानिस्तान और विलोचिस्तान में पाई जाती है।

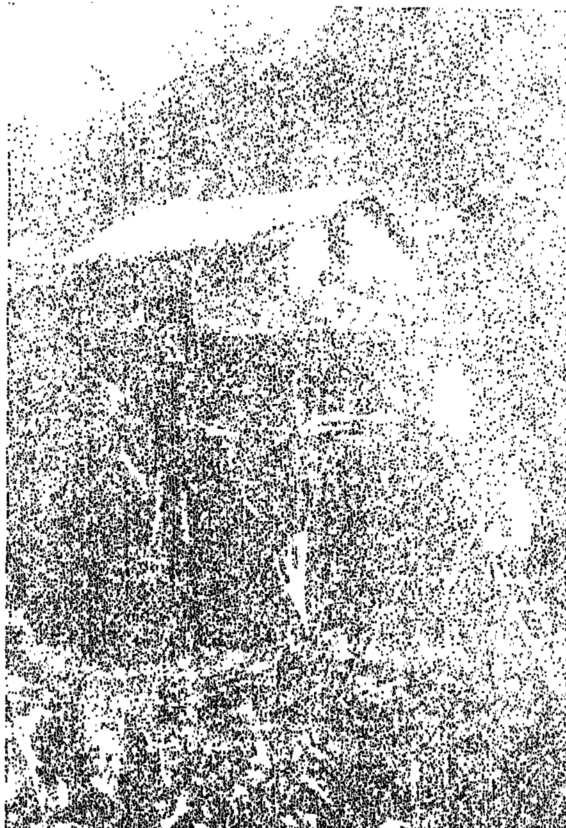
श्री रिजले ने भारतीय जन संख्या में निग्रीटों तत्व का कोई जिक्र नहीं किया है किन्तु भारत द्रविड़ों से पूर्व की प्रजातियों में निग्रीटों तत्व की उपस्थिति को मना नहीं किया जा सकता। अय्यर महोदय ने कड़ार (Kadars), कोचीन के पुलाया और यूराली व कानिकर लोगों के घुंघराले बालों के उदाहरण से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि भारत में निग्रीटों तत्व का प्रवेश निश्चय ही आठवीं और दसवीं शताब्दी के बीच हुआ होगा। डा० हैड़न (Haddon) ने सुसियाना (Susiana) में बहुत पूर्व की काली नीग्रो प्रजाति का जिक्र किया है। इसका भारत में प्रवेश कर जाना असम्भव नहीं दिखाई देता। लैपिक (Lapique) ने भी दक्षिण भारत के वन प्रदेशों के समीप कुछ विशेष नीग्रों चेहरे पाये हैं। डा० हटन (Huttan) के अनुसार भारत के पूर्वी सीमान्त की जनसंख्या में भी निग्रीटों तत्व विद्यमान हैं।

रिजले के पश्चात मानव शास्त्र के कई विशेषज्ञों ने भारतीय लोगों का वर्गीकरण करने की चेष्टा की है किन्तु १९३१ की जन गणना तक कोई भी उचित और वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं दे सका। इनमें से प्रमुख वर्गीकरण इस प्रकार हैं :—

(क) **ग्यूफ्रिड़ा का वर्गीकरण** (Giuffridas Classification)—श्री ग्यूफ्रिड़ा के अनुसार भारत के लोगों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है :—

(१) निग्रीटो (Negritos) के अन्तर्गत लंका के वेद्द (Vaiddahs) और कुछ दक्षिणी भारतीय जंगलों की जन जातियाँ (Tribes) हैं।

(२) पूर्व द्राविड़ या अस्ट्रोलोइड (Pre-Dravidians or Australoid)—इनके मुख्य उदाहरण वैदिक (Veddic), संथाल (Santhals), ओरन (Orans), मुन्डा (Mundas) व होस (Hos) आदि।



चित्र १८७—केरल में वृक्षों पर बनाया गया यूरालियों का घर

(३) द्रविड़ (Dravidians)—तेलुगू और तामिल भाषा-भाषी लोग।

(४) ऊँचे कद के लम्बे सिरवाले (Tall Dolicho-Cephalic Elements) जैसे टोडा (Todas)।

(ख) श्री हैडन का वर्गीकरण—(Haddon's Classification)—श्री हैडन के अनुसार भारत मुख्यतः तीन भौगोलिक प्रदेशों में बँटा है—हिमालय प्रदेश, उत्तरी मैदान और दक्षिण का पठार। उनकी राय में भारत का मानव प्रजाति इतिहास (Racial history) अभी भी पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है। उनके अनुसार भारत में निम्न प्रजातियों के तत्व पाये जाते हैं : (अ) हिमालय प्रदेश में :—

(१) **भारतीय आर्य** (Indo-Aryans)—कनेर लोग जो पंजाब के पूर्व में पाये जाते हैं और उनमें तिब्बती रक्त का अंश मिलता है।

(२) **मंगोल** (Mongoloid)—नेपाल और उच्च पर्वतीय भागों में पाये जाते हैं।

(ब) मैदानी भाग में भारतीय अफगान (Indo Afgan) तत्व प्रमुख हैं। जाट और राजपूत इसके प्रतिनिधि हैं।

(स) दक्षिण के पठार के लोगों के लिये हैडन द्रविड़ शब्द का प्रयोग करते हैं। दक्षिण में उनके अनुसार निम्न मुख्य तत्व हैं :—

(१) निग्रीटो (Negrito) और काड़ार लोग (Kadars) इसके प्रतिनिधि हैं।

(२) पूर्व द्राविड़ (Pre-Dravidians)—संथाल और मुंडा लोग इसके उदाहरण हैं।

(३) द्राविड़ (Dravidians) मलाबार, कोचीन और ट्रावनकोर के लोग व तामिल ब्राह्मण इसमें सम्मिलित हैं।

(४) दक्षिणी चौड़े सिरवाले (Southern-Brachy Cephals) तामिल जिले के परियन (Pariyan) और तिरूनलवैली तट के पारावा (Parava) मछुए आदि हैं।

(५) पश्चिमी चौड़े सिर वाले (Western-Brachy Cephals)—नागर ब्राह्मण व कुर्ग आदि—

टोड़ाओं की स्थिति विपरीत है—

(ग) **श्री इक्सटेड** (Eicktedts) **का वर्गीकरण**—श्री इक्सटेड ने भारतीयों का भौतिक और सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से वर्गीकरण दिया है। उसने चार मुख्य प्रजातियाँ स्वीकार की हैं :—

(१) **वैंडीड** (Weddid) या प्राचीन भारतीय-वन प्रदेशों के अति प्राचीन निवासी जो निम्न श्रेणियों में बँटे हैं—

(क) **गोंडिड** (Gondid) ये लोग गहरे भूरे रंग और घुँघराले बाल वाले होते हैं। ये जादू टोना में विश्वास करते हैं इनमें ओरन (Orans) और गोंड आदि मुख्य हैं।

(ख) **मालिड** (Malid) ये घुंघराले बाल वाले और काले भूरे रंग के होते हैं। कुरूमबास और वेद्द इनके मुख्य उदाहरण हैं।

(२) **मलेनिड** अथवा काले भारतीय (Malanid or Black Indians) यह एक मिश्रित जाति है यह निम्न भागों में बाँटी गई है।

(क) **दक्षिण मलेनिड** (South Melanid) भारत के सुदूर दक्षिणी मैदानों के काले भूरे लोग। यनादि (Yanadi) इनका उदाहरण हैं।

(ख) **कोलिड** (Kolid) दक्षिण के उत्तरी वन प्रदेशों के अति प्राचीन निवासी जो काले भूरे रंग के होते हैं। संथाल और मुन्डा इनके उदाहरण हैं।

(३) **इन्डीड या नवीन भारतीय** (Indid or New Indians) खुले प्रदेश के कुछ उन्नत लोग। ये निम्न भागों में विभाजित हैं—

(क) ग्रेसाइल इन्डीड (Gracile Indid) पीत वर्ण के लोग पैतृक परिवार को मानने वाले जैसे बंगाली आदि—



चित्र १८८—बिहार की संथाली कन्यायें

(ख) उत्तरी इन्डीड (North Indid) हल्के भूरे रंग वाले–प्रारंभ से ही पैतृक परिवार के मानने वाले जैसे टोडा व राजपूत लोग—

(४) पूर्व मंगोल (Pale-Mongoloid) वाईनाड (Wynad) के पलायन (Palayan) लोग—

(घ) डा० गुहा का वर्गीकरण :

इन वर्गीकरणों में सबसे मुख्य और सर्वमान्य वर्गीकरण डा० गुहा (Guha) द्वारा १९३१ की जनगणना रिपोर्ट में प्रस्तुत किया गया है।

डा० गुहा का वर्गीकरण इस प्रकार है—

१. निग्रीटो (The Negrito)

२. प्रोटो-ओस्ट्रोलोइड 'पूर्व–द्राविड' (The Proto-Austroloid)

३. मंगोल (The Mongoloid)

(क) पूर्व मंगोल (Pale Mongoloid)

(ख) लम्बे सिरवाले (Long headed type)

(ग) चौड़े सिर वाले (Broad headed type)

(घ) तिब्बती मंगोल (Tibeto Mongoloid)

४. भूमध्य सागरीय (The Mediterranean)
(क) पूर्व भूमध्य सागरीय (Pale Mediterranean)
(ख) भूमध्य सागरीय (Mediterranean)
(ग) पूर्वी लोग (Oriental type)

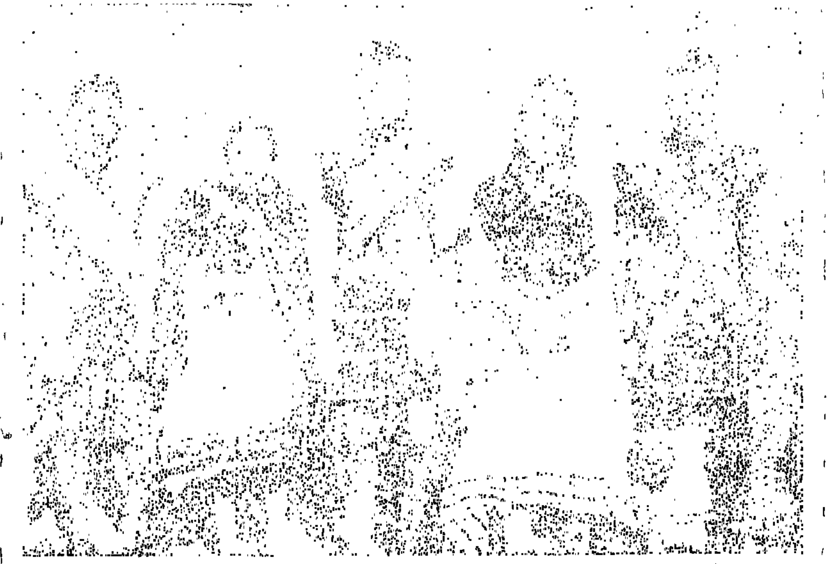
५. पश्चिमी चौड़े सिर वाले अथवा एल्पो-डिनारिक (The Western Brachy-cephals or the Alpo-Dinaric)
(क) एल्पीनोइड (Alpinoid)
(ख) डिनारिक (Dinaric)
(ग) आरमीनोइड (Armenoid)

६. नोर्डिक (The Nordic)
निग्रीटो (The Negrito)

भारतीय जनसंख्या में निग्रीटो तत्व का समावेश एक संदिग्ध और विवादास्पद विषय है। वस्तुत: निग्रीटों तत्व फिलीपाइन, न्यूगिनी, अन्डमान द्वीप और मलाया प्रायद्वीप के सेमाँग (Semangs) और सकाई (Sakais) में मिलते हैं। भारत में इन लोगों की उपस्थिति के बारे में निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। लैपीक के अनुसार भारत में निग्रीटो जाति का अंश दक्षिण भारत की जंगली जातियों में पाया जाता है। ट्रावनकोर कोचीन के कड़ार (Kadars) और पुलियान (Palayans) व वैनाड (Wynad) की प्राचीन जन जातियां और इरूला (Irulas) लोगों के सिर पर प्राय: ऊन जैसे बाल (Woolly hairs) देखे जाते हैं जो मानव प्रजाति शास्त्र के दृष्टिकोण से नीग्रो रक्त को इंगित करते हैं। किन्तु थर्स्टन (Thurston) महोदय ने उपरोक्त मत का खंडन किया है। इसके विपरीत ग्यूफीदा रूजीरी (Guiffrida Ruggeri) का विचार है कि दक्षिण भारत की जंगली जातियों में पाये जाने वाले निग्रीटो जो वहाँ पूर्व द्रविड़ों के पहले के माने जाते हैं—आज भी विद्यमान हैं। हैड़न ने भी स्वीकार किया है कि यद्यपि दक्षिण में निग्रीटो जाति होने की शंका की जाती है किन्तु इसकी वास्तविक सत्यता अभी ज्ञात नहीं है। डा० हैडन ने निग्रीटो समस्या पर विशेष ध्यान दिया है उनके अनुसार भारत के पूर्वी सीमान्त की जनसंख्या में निग्रीटो तत्व पाया जाता है। उन्होंने मनीपुर व कछार की पहाड़ियों के कुछ अंगामी (Angami) नागाओं में विशेष ऊन जैसे बाल देखे हैं। डा० गुहा ने भी कड़ार (Kadars) और कुछ अन्य पहाड़ी जातियों में निग्रीटो तत्व को स्वीकार किया है। डा० सरकार ने राजमहल पहाड़ियों की आदिम जातियों में घुंघराले बाल पाये हैं। डा० हैडन ने इन सब तथ्यों पर विचार करने के उपरान्त लिखा है कि भारतीय प्रायद्वीप के सबसे पूर्व के निवासी सम्भवत: नीग्रो जाति के ही थे। किन्तु बाद में उनका शीघ्रता से ह्रास होता चला गया। यद्यपि वे अण्डमान द्वीप में आज भी वर्तमान हैं परन्तु भारतीय भूमि पर उनके बहुत कम अंश शेष हैं। सुदूर दक्षिण के जंगलों के कड़ार व उरूला लोगों में यदा-कदा छोटे कद, घुँघराले बाल और नीग्रो आकृति के लोग देखे जाते हैं जो वास्तव में भारत में निग्रीटो प्रजाति के अवशेष को स्पष्ट करते हैं। ग्यूफीदा भारत और फारस की खाड़ी के बीच निग्रीटो लोगों की उपस्थिति ऐतिहासिक काल के पूर्व मानते हैं।

बंगाल की खाड़ी, मलाया प्रायद्वीप, फीजी द्वीप समूह, न्यूगिनी, दक्षिण भारत और दक्षिणी अरब में निग्रीटो अथवा आंशिक नीग्रो लोगों की उपस्थिति यह मान

लेने को प्रेरित करती है कि किसी पूर्व ऐतिहासिक काल में निग्रीटो लोग एशिया महाद्वीप के बहुत बड़े भाग—विशेष कर दक्षिणी भाग—को घेरे हुए थे। बाद में पूर्व-द्राविड़ और द्राविड़ों के आने पर जो उनसे अधिक शक्तिशाली थे—इन लोगों की समाप्ति होगई अथवा उनमें विलीन हो गये—वर्तमान समय में ये लोग कहीं-कहीं पर अवशेष रूप में हो जाते हैं।



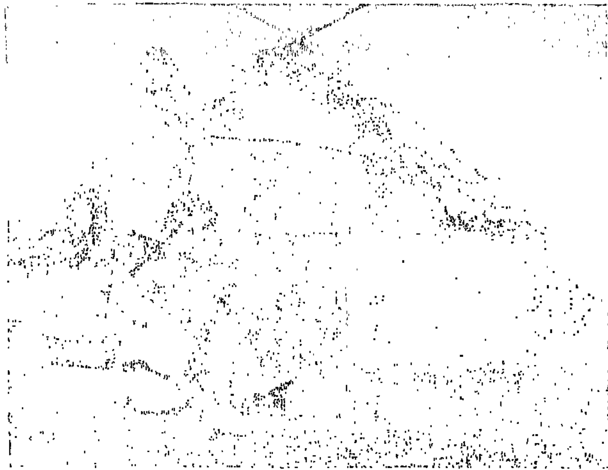
चित्र १८९—अंगामी नागा लोगों का परिवार

इन लोगों की मुख्य विशेषता यह है कि ये कद में बहुत छोटे हैं। इनकी औसत ऊँचाई ५ फीट से कम होती है। इनका सिरा छोटा किन्तु ललाट उभरा हुआ होता है इनके बाल सुन्दर और ऊन जैसे होते हैं ये रंग में काले होते हैं। सिर की बनावट गोल, लम्बी अथवा मध्यम जैसी भी हो सकती है। हाथ पैर कोमल होते हैं। चेहरा छोटा और नाक चपटी व चौड़ी होती है तथा होठ मोटे और मुड़े हुए होते हैं।

भारतीय संस्कृति को निग्रीटो लोगों की क्या देन है? यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह अनुमान लगाना सही होगा कि पीपल (Fices) पेड़ का धर्म (cult) उन्हीं की देन हैं।

(२) पूर्व द्रविड़ (*The Proto-Austroloids*)—सम्भवतः भारत में आने वाली दूसरी प्रजाति पूर्व द्राविड़ थी। यद्यपि इनके आदि पूर्वज फिलीस्तान में देखे जा सकते हैं परन्तु भारत में ये कब और कैसे आये यह अभी ज्ञात नहीं है। किन्तु भारत की वर्तमान आदिम जातियों में इस प्रजाति का अंश ही सर्वाधिक है। इन लोगों में लंका के वेद्द (Veddaha), आस्ट्रेलियन और मलेनेशियन लोगों के रंग चेहरे, बाल आदि में इतनी समानता पाई जाती है कि उससे यह स्पष्ट आभास होता है कि ये चारों एक ही प्रजाति के वंशज हैं। भारत में ये लोग बाहर से आये हैं अथवा

भारत से ही ये बाहर के देशों में पहुँचे हैं यह तथ्य अभी भी विवादास्पद है। चूंकि ये आस्ट्रेलियन लोगों से बहुत मिलते जुलते हैं अतः इन्हें पूर्व द्रविड़ नाम दिया गया है। वास्तविक आस्ट्रेलियन लोगों की नाक चेहरे से पिचकी हुई, छाती मजबूत और शरीर पर घने बाल होते हैं जो आदिम भारतीय जातियों में प्रायः नहीं देखे जाते। किन्तु दक्षिण भारत के चेन्चू (Chencho), मलायन (Malayan), कुरुम्बा (Korumba) और यरूबा (Yarubas) तथा मुन्डा, कोल, संथाल व भील समूहों में ऐसे बहुत लोग पाये जाते हैं जिनमें उपरोक्त विशेषताएं देखी जाती हैं। भारत में अछूत गिनी जाने वाली जातियाँ प्रधानतः इसी प्रजाति से बनी हुई मानी जाती हैं।



चित्र १९०—द० पू० राजस्थान का भील परिवार

ये लोग कद में नाटे और गहरे भूरे रंग के होते हैं। इनका सिर लम्बा और नाक चौड़ी, चपटी या पिचकी हुई होती है। इनके बाल घुँघराले और होठ मुड़े हुए होते हैं।

इस प्रजाति ने भारतीय संस्कृति को बहुत योग दिया है। भोजन सम्बंधी कई विचार, जादू टोने में विश्वास और भूत प्रेतों से बचाव आदि कई बातें जो आज भी हमारे यहाँ पाई जाती हैं इन्हीं की देन है। अन्तर्जातीय विवाह की रोक (जो आज जाति व्यवस्था का आधार हैं) इन्हीं के द्वारा प्रचलित की गई हैं।

(३) **मंगोल** (The Mongoloid) मंगोल लोग भारत में अपने घर (उत्तरी-पश्चिमी चीन) से ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्य में आये। बाद में धीरे-धीरे ये लोग उत्तरी पूर्वी बंगाल के मैदान और आसाम की पहाड़ियों तथा मैदान में घुसते चले गये—यद्यपि उत्तर और पूर्व के कठिन स्थल मार्गों ने उनके यहाँ बड़ी मात्रा में प्रवेश में रोड़े अटकाये हैं। परन्तु फिर भी वे बराबर यहाँ प्रवेश करते रहे हैं यही कारण है कि आज भी भारत के उत्तरी पूर्वी भागों में नैपाल, आसाम और पूर्वी काश्मीर में तीन प्रकार के मंगोल लोग पाये जाते हैं। मंगोल जाति अन्य जातियों से निम्न बातों में भिन्न हैं : (१) इनका मुँह चपटा और गाल की हड्डियाँ उभरी हुई

होती हैं; (२) आँखें बादाम की आकृति की होती हैं (३) तथा चेहरे और शरीर पर बाल कम होते हैं।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है मंगोल समूह में तीन जातियाँ होती हैं जैसे (क) पूर्व मंगोल (The Palae Mongoloid) ये बहुत ही प्राचीन प्रकृति के लोग हैं। ये शीघ्रता से पहचाने नहीं जा सकते। इनके सिर की बनावट नाक व रंग से पहचाना जा सकता है। ये दो श्रेणियों में बंटे हैं; लम्बे सिर, मध्यम आंखें, छोटा और चपटा मुंह तथा हल्के भूरे रंग वाले मंगोल लम्बे सिर वाले किस्म (Long headed type) के होते हैं। ये उप हिमालय प्रदेश आसाम और ब्रह्मा की सीमा पर रहने वाली आदि जातियां (जैसे नागा लोगों में बहुत ही अधिक पाये जाते हैं)। (२) इस समूह की दूसरी जाति चौड़े सिर वाली (Broad headed type) है। चिटगांव की पर्वतीय आदि जातियाँ जैसे चकमास (Chakmas) इसी किस्म के हैं। कलिम्पोंग की लेपचा जाति भी इसी में सम्मिलित की जाती है। इनका सिर चौड़ा, रंग काला और नाक मध्यम होती हैं। चेहरा छोटा और चपटा होता है। सिर के बाल सीधे परन्तु कुछ घुंघराली प्रवृति लिये होते हैं।

(ख) **तिब्बती मंगोल** (The Tibeto Mongoloid)—ये लोग लम्बे कद, चौड़े सिर और हल्के रंग के होते हैं। चौड़ी चपटी नाक, लम्बा चपटा मुंह और शरीर पर बालों का अभाव इनकी अन्य विशेषतायें हैं। ये लोग सिक्किम और भूटान में पाये जाते हैं।

मंगोल जाति ने भारत की संस्कृति पर बड़ा भारी प्रभाव डाला है। हमारे यहाँ दूध, चाय, चावल, कागज, सुपारी, सीढ़ीनुमा खेती, सिर का शिकार आदि का प्रयोग उन्हीं की देन हैं।

(४) [illegible] editerraneans)—भारत की आदिम जातियों में तीन प्रमुख [illegible] ..विड़ और मंगोल तत्व ही अधिक हैं। इनके अतिरिक्त साधारण जनसंख्या मुख्यत: भूमध्य सागरीय, एल्पो डिनारिक और नार्डिक जातियों से बनी हैं। इसमें भूमध्य सागरीय समूह सबसे बड़ा है। इस प्रजाति की कोई एक किस्म नहीं है बल्कि कई किस्में हैं जो लम्बे सिर, काले रंग और अपनी ऊंचाई द्वारा पहचानी जाती हैं। भारत में इस जाति की तीन किस्में देखी जा सकती हैं :—

(क) **पूर्व–भूमध्य सागरीय** (The Palae-Mediterranean)—ये लोग काले रंग और लम्बे सिर वाले होते हैं। संकीर्ण चेहरा, चौड़ी नाक, मध्यम कद और चेहरे पर कम बाल इनकी विशेषतायें हैं। दक्षिण भारत के तेलुगू और तामिल ब्राह्मणों में इस जाति का अत्यधिक प्रभाव देखा जाता है।

मिट्टी के बर्तन बनाने का काम, मनुष्य बलि और जन्म संस्कार जैसी कई प्रथायें इनके द्वारा ही चलाई गई हैं। मातृत्व परिवार का प्रारम्भ और दक्षिण भारत के समाज में स्त्री के ऊंचा स्थान होने का श्रेय इन्हीं लोगों को है।

(ख) **भूमध्य सागरीय जाति** (The Mediterranean type)—भारत की सिन्धु घाटी सभ्यता को जन्म देने का श्रेय इन्हीं लोगों को है। २,५०० ईसा पूर्व के लगभग जब आर्य भाषा बोलने वाले वैदिक आक्रमणकारी उत्तरी मैसपोटेमिया से ईरान द्वारा गंगा के मैदान में आये तो ये लोग इधर उधर फैलते गये—आज उत्तरी भारत की जनसंख्या में यही तत्व सबसे अधिक विद्यमान है। इस जाति के

लोग आजकल पूर्वी पंजाब, काश्मीर, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में फैले हुये हैं। मध्य प्रदेश के मराठा और उत्तर प्रदेश, कोचीन, बम्बई व मलाबार के ब्राह्मण इस जाति के प्रतिनिधि स्वरूप हैं।

ये लोग मध्यम से लेकर लम्बे कद के होते हैं। उनकी नाक सकड़ी परन्तु दाढ़ी उन्नत होती हैं। चेहरा और सिर प्रायः लम्बा और रंग काला अथवा भूरा होता है। शरीर पर घने बाल, बड़ी खुली आंखें और पतला शरीर इनकी अन्य विशेषताएें हैं।

इस जाति ने सिन्धु घाटी सभ्यता को अपनाया और उन्नत किया है। वर्तमान भारतीय धर्म और संस्कृति का अधिकतर भाग भी इन्हीं द्वारा निर्मित हैं। अधिकतर सामान्य पालतू पशु, नदी यातायात, वस्त्र तथा आभूषण, भवन निर्माण कला, ईंटों का प्रयोग और शहरों की रचना आदि सब इन्हीं द्वारा प्रचलित हुये हैं। भारतीय लिपि और खगोल शास्त्र में भी उनका महत्वपूर्ण योग है।

(ग) **पूर्वी जाति** (The Oriental Race or Semitic type)—सदा से यह जाति टर्की और अरब में रही है—अस्तु यहीं से यह जाति भारत की ओर आई। यह जाति भूमध्य सागरीय जाति से बहुत कुछ मिलती जुलती है। किन्तु इनकी नाक की बनावट में थोड़ा अन्तर है। इन लोगों की नाक लम्बी और नतोदर (Convex) होती है। भारत में ये लोग पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाये जाते हैं।

(५) **पश्चिमी चौड़े सिर वाले** (The Western Brachy-Cephals)—भारत में ये लोग पश्चिम से आये हैं। इन लोगों को एल्पोनोईड़, ड़िनारिक और आरमिनोइड तीन भागों में बाँटा जाता है। इनके ये नाम यूरोप में जिस प्रदेश से सम्बन्धित हैं उस आधार पर रखे हैं।

(क) **एलपोनोईड़** (Alponoids)—यह लोग मध्यम या कभी कभी छोटे कद के होते हैं। इनका सिर और चेहरा गोल और नाक पतली व नुकीली होती है। रंग भूमध्यसागरीय लोगों से हल्का और शरीर मोटा व मजबूत बना होता है। शरीर और चेहरे पर बाल बहुतायत से होते हैं। संभवतः यह लोग दक्षिणी बिलोचिस्तान से सिन्ध, सौराष्ट्र, गुजरात और महाराष्ट्र के द्वारा, कन्नड़, तामिलनाड़, लंका और गंगा के सहारे बंगाल में पहुँचे हैं। इस जाति के लोग सौराष्ट्र (काठी), गुजरात (बनिया) और बंगाल (कायस्थ) में पाये जाते हैं। बंगाल और बम्बई की जनसंख्या में अधिकतर इसी जाति का अंश है।

(ख) **ड़िनारिक** (Dinaric)—ये लोग लम्बे कद और कुछ काले रंग के होते हैं। सिर बहुत छोटा परन्तु अधिक चौड़ा नहीं होता। नाक लम्बा और प्रायः नतोदर होती है। ये लोग बंगाल, उड़ीसा और केरल में भूमध्यसागरीय लोगों के साथ मिले हुए पाये जाते हैं।

(ग) **आरमिनोइड़** (The Armenoid)—ये लोग गोरी चमड़ी और छोटे अथवा मध्यम कद के होते हैं। इनका सिर चौड़ा और नाक पतली होती है। बम्बई के पारसी लोग इसके मुख्य प्रतिनिधि हैं। बंगाली कायस्थ और वैद्य लोगों में भी इस जाति के लोग पाते जाते हैं।

(६) **नार्ड़िक** (The Nordics)—नार्ड़िक जाति के लोग भारत में सबसे अन्त में आये। ये अपने निवास स्थान उत्तरी स्टेप प्रदेश को छोड़ कर धीरे धीरे दक्षिण

पश्चिम की ओर खिसकने लगे और ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी में भारत के उत्तरी पश्चिमी भाग में घुस आये। शारीरिक बनावट में ये लोग गोरे, चट्टे और लम्बे होते हैं। इनका सिर लम्बा और प्राय: मध्यम प्रकार का होता है। ललाट जरा गोलाई लिए हुए होता है तथा नाक पतली और नुकीली होती है। भारत में ये लोग उत्तरी भागों में पाये जाते हैं पर बहुत अधिक भूमध्य सागरीय लोगों से मिल गये हैं। इस जाति के कुछ लोग भारत के पश्चिमी और पूर्वी भागों में भी पहुँच गये हैं।

भारतीय संस्कृति को इन लोगों का बहुत बड़ा योग मिला। ये लोग घोड़ा, लोहा और अच्छे किस्म के गेहूँ अपने साथ लाये। दूध और मद्य पदार्थों का प्रयोग, सिले हुए कपड़ों और रथ दौड़ (Chariot racing) का उपयोग इन्हीं लोगों से प्रारम्भ हुआ। भारतीय सामाजिक जीवन में पैत्रिक कुटुम्ब (Patriarchy) की स्थापना का श्रेय भी इन्हीं लोगों को है इन सब के अतिरिक्त इनकी सबसे बड़ी देन 'आर्य भाषा' की है। यही नहीं प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में भारतीय साहित्य, भारतीय दर्शन और भारतीय कला की उज्ज्वलता के कारण भी ये ही लोग हैं।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होगा कि भारत की वर्तमान जनसंख्या आधुनिक संसार की लगभग समस्त मानव जातियों का सम्मिलित रूप है और इनमें जो कुछ थोड़ी बहुत विपरीततायें दिखाई पड़ती हैं वे यहाँ के जलवायु और वातावरण के प्रभाव का ही प्रतिफल है। यद्यपि नरत्व विज्ञान की (Anthropology) दृष्टि से भारत प्रजाति विशेष की प्रमुखता के आधार पर कई क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि प्रजातियों का आपस में मेल जोल इतना अधिक हुआ है कि सही रूप से उनको अलग करना सम्भव नहीं है। निग्रीटो लोग अब लगभग समाप्त हो चुके हैं। पूर्व द्राविड़ दक्षिणी पश्चिमी और मध्य भारत के एकान्त और बहुत ही दूर के पहाड़ी और जंगली भागों में रहते हैं। मंगोल लोगों का मेल जोल सब लोगों के साथ नहीं हो सका। भूमध्यसागरीय लोग धीरे धीरे सिन्धु की घाटी और वर्तमान मरुस्थलीय प्रदेशों में आबाद हो गये तथा गंगा की घाटी के सहारे आगे बढ़ गये। इनका निरन्तर आगे की ओर अभियान और आबाद होना अनेक युद्ध और जय पराजय के फलस्वरूप हुआ। कालान्तर में एल्पाईन, नार्डिक और ये लोग तीनों ही विशाल उत्तरी मैदान में बस गये और आपस में मिल जुल गये। गंगा की घाटी में ऊपर की ओर भूमध्य सागरीय और नीचे की ओर (बंगाल में) एल्पो-डिनारिक लोगों की प्रधानता पाई जाती है। भूमध्य सागरीय और एल्पो डिनारिक समूह कुछ पूर्व द्रविड़ों के साथ विन्ध्याचल के दक्षिणी क्षेत्र में आबाद हो गये और मिल जुल गये। दक्षिण में नार्डिक और पूर्व-नार्डिक लोग तो कठिनाई से ही पाये जाते हैं यद्यपि मध्य प्रदेश में कुछ लोग यदा-कदा अवश्य दिखाई दे जाते हैं।

अध्याय ४१

भारत की जनजातियां
(Tribes of India)

भारत की जनसंख्या में आदिवासी जनजातियों की एक बहुत बड़ी संख्या पायी जाती है। ये लोग शिकार करके, मछली मारकर या बहुत ही साधारण किस्म की खेती द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं। विभिन्न विद्वानों ने इन्हें विभिन्न नामों से पुकारा है। सर हरबर्ट राइजली, श्री लेसी, श्री अलविन और श्री ए० वी० ठाकर ने इन्हें 'आदिवासी,[1] नाम दिया है। सर बेन्स ने उन्हें 'पहाड़ी जनजाति[2] की श्रेणी में शामिल किया है। श्री ग्रिगसन ने उन्हें 'पहाड़ी जनजातियाँ और जंगली आदिवासी' कहा है और शूबर्ट ने उन्हें 'आदिवासी'[3] कहा है। टैलेन्ट्स, सेजविक और मार्टिन[4] ने उन्हें 'प्रेतवादी' माना है और डा० हट्टन ने उन्हें 'प्राचीन जनजाति'[5] कहा है। बेन्स ने उन्हें 'जंगली लोग', 'जंगली जनजाति अथवा जंगल निवासी'[6] कहा है। अल्विन ने बैगा लोगों को 'देश का आदि स्वामी'[7] बतलाया है। प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री और मानव रचना शास्त्री डा० घुरे ने उन्हें 'पिछड़ा हिन्दू'[8] कहा है। डाक्टर दास और दास ने उन्हें 'विलीन मानवता'[9] कहा है। भारतीय विधान की धारा ३४२ का सम्बन्ध अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित एक विशेष व्यवस्था से है। उसमें अनुसूचित जनजातियों की परिभाषा करते हुए कहा कहा गया है कि इनमें वे "जनजातियां, जनजातीय सम्प्रदाय, या जनजातियों और जनजातीय समुदायों के हिस्से या वर्ग" शामिल होंगे, "जिन्हें राष्ट्रपति सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा घोषित करेंगे।" ऐसा माना जाता है कि जनजातियों के लोग राष्ट्रीय जनसंख्या के प्राचीनतम मानव समु-

---

१. एच. राइजली : दी पीपुल्स आफ इण्डिया, (१९०४), पृष्ठ २१८ ; लेसी : सेंसस आफ इण्डिया (बिहार और उड़ीसा की रिपोर्ट), १९३१, पृ० २८८-९ ; वी० आल्विन : दी लास आफ नर्व्स, पृ० १ ; ए. वी. ठाकर : दी प्राब्लेम्स आफ ऐबओरिजिन्स इन इण्डिया (१९४१), पृ० १।

२. बेन्स : एथनोग्रैफी, पृष्ठ ११२, ११३।

३. शूबर्ट : सेंसस आफ इण्डिया (सी. पी. और बरार की रिपोर्ट), १९३१, पृष्ठ २१२।

४. टैलेण्ट : सेंसस आफ इण्डया (बंगाल और उड़ीसा की रिपोर्ट), १९२१, पृ० १२५ ; सेजविक : बाम्बे सेंसस रिपोर्ट, १९२१, पृ० ६७ ; मार्टिन : सेंसस आफ इण्डिया, १९२१, भाग १ खण्ड १, पृ० ११०-१११।

५. हट्टन : सेंसस आफ इण्डिया (१९३१), भाग १, खण्ड १, पृ० ३९१।

६. बेन्स : सेंसस आफ इण्डिया, १८९१, भाग १, पृ० १५८।

७. वी. अल्विन : दी बैगास, पृष्ठ ५१९।

८. जी. एस. घुरये : दी एबओरिजिनल्स—दी सोकाल्ड—एण्ड देयर फ्यूचर (१९४३) पृ० २१।

९. डा. आर. के. दास और एस. आर. दास : इण्डियाज सबमर्ज्ड ह्यूमैनिटी, माडर्न रिव्यू, (अक्तूबर १९५५), पृ० २६९।

दाय का प्रतिनिधित्व करते हैं। इधर कुछ समय से इन वर्गों को 'आदिवासी' (आदि-प्रारम्भिक, वासी—निवासी) नाम से पुकारा जाने लगा है।

यहाँ यह बता देना जरूरी है कि प्रशासकों, वकीलों, समाज शास्त्रियों और मानव रचना शास्त्रियों ने अपनी-अपनी परिभाषा का भिन्न-भिन्न और प्राय: परस्पर विरोधी आधार रखा है। ये आधार हैं : रंग, धर्म, भाषा, रीति-रिवाज, जनजातीय परिस्थितियाँ और रहन-सहन का स्तर। जहाँ कहीं भी ऐसे लोगों की संख्या अधिक है वहाँ अपने विशेष ढंग पर अपनी-अपनी परम्पराओं, इतिहास, सामाजिक संघठन और नीतियों के अनुसार, इन जातियों की परिभाषा की समस्या सुलझा ली गयी है।

इनका मूल स्रोत :

भारत की अनुसूचित जातियों के मूल स्रोत की खोज करने पर पता चलता है कि वे प्रोटो-आस्ट्रोलाई जैसी जातियों से निकली है जो कभी सारे भारत में छाई हुई थी। इनका दूसरा स्रोत मंगोल जाति के लोगों को माना गया है जो अब भी आसाम में पाये जाते हैं। इनका तीसरा स्रोत निग्रीटो या हब्शी जाति को माना जाता है। इस स्रोत की जनजातियों में अण्डमान द्वीप के आदि-वासी और दक्षिण-पश्चिम के कडार शामिल हैं जैसा कि उनके घुंघराले बालों से स्पष्ट है।

भारत की अनुसूचित जनजातियों के लोग इस देश के आदिवासी या देशी लोग हैं। ये प्राचीन लोग क्रमश: पश्चिम, उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व से आने वाले द्रविड़ों, भारतीय आर्यों और मंगोलों के आक्रमण से अपनी रक्षा न करने के कारण धीरे-धीरे पीछे हटने के लिये बाध्य हो गये क्योंकि आक्रमणकारी न केवल संख्या में बल्कि हथियारों की शक्ति में भी उनसे अच्छी स्थिति में थे। अत: इन आदिवासियों को पहाड़ी हिस्सों और और घने जंगलों में शरण लेने के लिये बाध्य होना पड़ा जहाँ आज भी वे एक बड़ी संख्या में निवास करते हैं। अनुमान लगाया गया है कि उनकी संख्या लगभग ५० लाख है। इनमें से जो मैदानी इलाकों में छूट गये थे वे धीरे-धीरे बाहर से आने वाली जातियों में घुल-मिल गये अथवा सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण लुप्त हो गये।

भारत की आदिवासी जनजातियाँ बहुत सी उप जनजातियों में विभाजित हैं जो स्वयं अपने-आप में परिपूर्ण हैं। इनमें से प्रत्येक के मूल फिरके हैं और/या ऐसी उपजातियां हैं, जो इनसे निकली हैं, जिनमें उनके अपने-अपने रीति-रिवाज प्रचलित हैं। किन्तु, इन सभी जनजातियों में कुछ सामान्य विशेषतायें पाई जाती हैं जो इस प्रकार हैं :—

(१) वे सभ्य संसार से दूर जंगलों और पहाड़ों के ऐसे हिस्सों में रहती हैं जहाँ पहुँचना कठिन होता है।

(२) इनके मूल स्रोत तीन हैं : निग्रीटो, आस्ट्रोलाई और मंगोल। उनका उद्भव इन्हीं में से किसी न किसी एक से हुआ है।

(३) वे एक ही जनजातीय भाषा बोलती हैं।

(४) वे एक प्राचीन धर्म को मानती हैं जिसे 'प्रेतवाद' कहा जाता है और भूत-प्रेतों की पूजा ही सबसे महत्वपूर्ण बात मानी जाती है।

(५) वे प्राचीन पेशों से अपना निर्वाह करती हैं। ये पेशे हैं : बिनाई, शिकार और जंगल की उपजों का इकट्ठा करना।

(६) वे अधिकांशतः मांसाहारी हैं।
(७) वे नग्न या अर्द्ध नग्न रहती हैं और कपड़ों के स्थान पर पेड़ की छाल और पत्तियों का इस्तेमाल करती हैं।
(८) उनकी आदतें खानाबदोशों जैसी होती हैं और उन्हें मदिरा पान और नृत्य से बहुत प्रेम है।[1]

भारतीय समाज-कल्याण कार्य सम्मेलन के आयोजन में कलकत्ता में जन-जातीय कल्याण समिति की जो बैठक हुई थी, उसमें बहुत से समाज-सेवी कार्यकर्त्ता और मानव-रचना शास्त्री सम्मिलित हुए थे। उस समिति ने वर्तमान जनजातियों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित करने का सुझाव दिया था :—

(१) जनजातीय समुदाय, अथवा वे जो अभी पुराने जंगली निवास-स्थानों पर रहते हैं और जिनके रहन-सहन का ढंग भी वही पुराना है।

(२) अर्द्ध जनजातीय समुदाय, अथवा वे जो प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में बस गये हैं और खेती या उससे सम्बन्धित पेशों को अपना चुके हैं।

(३) सभ्य जनजातीय समुदाय, अथवा वे जो शहरी या अर्द्धशहरी इलाकों में चले गये हैं और आधुनिक उद्योगों पर पेशों में लग गये हैं। इन्होंने बहुत कुछ आधुनिक सांस्कृतिक विशेषताएँ अपना ली हैं।

(४) पूर्ण रूप से घुल मिल गये जनजातीय समुदाय, अर्थात् वे जो भारतीय जनसंख्या में एकदम हिल मिल गये हैं।

जनजातीय जनसंख्या का वितरण :

जनजातीय लोग मुख्य रूप से जंगलों और पहाड़ों के ऐसे इलाकों में रहते हैं जो बंजर हैं या बहुत ही कम आबाद हैं। ये स्थान समूचे पूर्वी सतपुड़ा में फैले हैं और गुजरात की पूर्वी सीमा पर स्थित मध्य भारत पठार के दक्षिण से होते हुए विन्ध्याचल पहाड़ियों में पूर्व और पश्चिम की ओर चले गये हैं। एकमात्र दूसरा क्षेत्र, जहाँ ये लोग बड़ी संख्या में पाये जाते हैं, आसाम की बाहर की ओर फैली पहाड़ियाँ और वह पहाड़ी प्रदेश है जो आसाम को ब्रह्मा से पृथक् करता है।

भारत की आदिवासी जनजातियों का भौगोलिक वितरण तीन मुख्य प्रदेशों में हुआ है :

१. **प्रथम**, जनजातियों के लोग हिमालय के उप-प्रदेश और भारत की पूर्वी सीमा की पहाड़ी घाटियों में बँटे हुए हैं जो ब्रह्मा की दक्षिण-पूर्वी सीमा से मिली हुई है। इन पहाड़ी इलाकों में आसाम, केन्द्रीय खासी और गारो पहाड़ियाँ शामिल हैं।

आसाम और तिब्बत के बीच रहने वाली मुख्य जनजातियों में सुवर्णश्री नदी के पश्चिम में रहने वाली **आका, दफला, मीरी** और **अपातमी** जातियों का और डिहांग घाटी में रहने वाली **गैलांग, मिन्यांग, पासी, पदम** और **पांगी** का उल्लेख किया जा सकता है। **मिस्मी** जनजाति के लोग डिबांग और लोहित नदियों के बीच वाले इलाके में रहते हैं। **चुलिकाटा** और **बेलेजिया** लोग पश्चिमी क्षेत्रों में तथा **डिगारु** और **मेजू** लोग पूर्वी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। उससे भी पूर्व की ओर **खामटी**

१. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कमिश्नर की रिपोर्ट।

इन तीन प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों के अतिरिक्त देश के कुछ अन्य भागों में अथवा भारत की राजनीतिक सीमाओं के भीतर कुछ छोटे जनजातीय वर्ग पाये जाते हैं। इनमें अण्डमानी और निकोबारी भी, जो अण्डमन और नीकोबार के द्वीपों में पाये जाते हैं, अत्र भौगोलिक दृष्टि से भारत की प्रमुख आदिवासी जातियों से पृथक हैं। किन्तु जातीय विशेषताओं के दृष्टिकोण से वे भी भारत की प्रमुख जनजातियों से सम्बद्ध हैं।

जनजातियों की संख्या एवं उनका विकास :

एशिया की उन जनजातियों में जिन के सम्बन्ध में बहुत कुछ विस्तृत सूचनाएं उपलब्ध हैं, भारतीय जनजातियों की जनसंख्या सबसे अधिक है। उनकी संख्या की विश्वसनीयता के सम्बन्ध में दो कारणों से संदेह प्रकट किया जाता है। पहला, वर्गीकरण की कठिनाई के कारण और दूसरा जान-बूझकर झूठा विवरण प्रस्तुत करने के कारण। सन् १९०९ के बाद धर्म के आधार पर पृथक निर्वाचन पद्धति लागू करने के कारण, देश के धार्मिक वर्गों ने जनसंख्या-गणना में अपनी संख्या अधिक दिखलाने के उद्देश्य से बढ़ा-चढ़ा कर अपनी संख्या अधिक बताने की नीति अपना ली। इससे बड़ी गड़बड़ी उत्पन्न हो गयी। इन गड़बड़ियों के फलस्वरूप जन जातियों की संख्या सम्बन्धी आंकड़े जनसंख्या-गणना के सभी आंकड़ों में सबसे अधिक गलत रहे। इन सब का अन्तिम परिणाम यह हुआ है कि जनजातीय लोगों की संख्या कम दिखलायी गयी है जब कि अन्य वर्गों की संख्या बहुत अधिक।

उनकी संख्या के बारे में जो ताजे विवरण प्रस्तुत किये गये हैं उनमें से कुछ में सन् १९४१ की गणना के आंकड़ों की अविश्वसनीयता पर खास तौर से जोर दिया गया है। "भारतीय विज्ञान सम्मेलन के पिछले अधिवेशन में वैज्ञानिकों ने आदि-वासियों (अब जनजातियों को इसी नाम से पुकारा जाता है) की संख्या ३ करोड़ से कम नहीं मानी है। हम जानते हैं कि जनजातियों के दूसरी जातियों में घुल-मिल जाने और सभ्य बन जाने की क्रिया सदियों से लगातार जारी रही है। साथ ही, जनसंख्या-गणना में आदिवासियों की संख्या सम्बन्धी निर्दिष्ट आंकड़े अविश्वसनीय सिद्ध हो चुके हैं। अतः, यह कहना सत्यता के अधिक निकट होगा कि जातीय विशेषताओं की दृष्टि से जन-जातियों की संख्या जनसंख्या-गणना में दिखाये गये आँकड़े के लगभग ४ गुने के बराबर होगी।" एक अन्य सूत्र में बताया गया कि "इन लोगों के बारे में सन् १९४० की गणना के आंकड़े भ्रमोत्पादक सिद्ध हो चुके हैं क्योंकि जनसंख्या-गणना के विवरणों में कहीं-कहीं आदिवासियों को भ्रमवश तथा-कथित अछूतों में शामिल कर लिया गया है। निस्सन्देह, गत २० वर्षों में देश की शेष जनसंख्या की भाँति ही उनकी भी संख्या में वृद्धि हुई होगी। यदि हम उनकी संख्या २॥ करोड़ मानें तो यह वास्तविकता से दूर नहीं होगी......आदिवासियों और हरिजनों अथवा तथा-कथिक अछूतों में कोई भी समानता नहीं हैं क्योंकि हरिजन अथवा अछूत जातीय दृष्टिकोण से हिन्दुओं के समान हैं।"[२]

१. आई. सिंह. : डेवलपमेंट ऐण्ड आदिवासीज इन एशियन लेबर, भाग १, संख्या ४ (जनवरी १९५०), पृष्ठ ५२।

२. एस. चन्द्रशेखर : इण्डियाज पापुलेशन—फैक्ट्स एन्ड पालिसी, (१९५०), पृष्ठ ३०-४०।

निम्नलिखित तालिका में जनजातीय धर्म वाले लोगों की पूर्ण संख्या दी गयी है :—[1]

वर्ष	संख्या	संख्या प्रति दस हजार	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
१८८१	६४,२६,५११	२५८	२·५८
१८९१	९१,१२,०१८	३२३	३·२३
१९०१	८५,८४,१४८	२९२	२·९२
१९११	१,०२,९५,१६५	३२८	३·२८
१९२१	९७,७५,०००	३०९	३·०९
१९३१	८२,८०,०००	२३६	२·३६

सन् १९३१ की और उसके पहले वाली गणनाओं में एक तालिका दी गयी थी जिसमें धर्म के आधार पर जनसंख्या का वर्गीकरण किया गया था। एक अन्य तालिका भी प्रकाशित हुई थी जिसमें जनसंख्या का विश्लेषण मूल जाति/जाति/जनजाति के अनुसार हुआ था। सन १९४१ में इस प्रणाली को बदल दिया गया। दो तालिकाओं की बजाय एक ही सूची तैयार की गयी जिसमें गणना के 'धर्म' तथा 'मूल जाति/जाति/जनजाति' संबंधी प्रश्नों के संदर्भ में मिश्रित आधार पर जनसंख्या के वर्गों का पृथक्करण हुआ था। वर्गीकरण संबंधी इस परिवर्तन के अनुसार, जनजातीय लोगों की संख्या सन् १९३१ के २,२६,१५,७०८ के स्थान पर सन् १९४१ में २,५४,४१,४८९ हो गयी। इन दोनों संख्याओं के अनुसार, आदिवासियों की संख्या कुल जनसंख्या के १२॥ प्रतिशत या उससे कुछ ही कम होगी।[2]

सन १९४८ में जनजातीय लोगों के संबंध में सामाजिक कार्यकर्ताओं का जो सम्मेलन हुआ था उसने उनकी संख्या का अनुमान २·५ करोड़ लगाया था। इसमें से २ करोड़ तो मैदानी इलाकों में रहते हैं और प्राय: दूसरे लोगों में घुल मिल गये हैं। केवल ५० लाख ही ऐसे हैं जो पहाड़ी इलाकों में रहते हैं।[3] सन १९५१ की जनसंख्या-गणना के अनुसार उनकी संख्या लगभग २ करोड़ है और वे भारत की कुल जनसंख्या के लगभग ५·६ प्रतिशत के बराबर हैं।

किसी जन जाति की जनसंख्या कुछ सैंकड़े से लेकर २० लाख तक हो सकती है। उदाहरण के लिए, संथालों की संख्या २७,३२,२६६ (१९४१ में), भीलों की २३,३०,२७० और गोंडों की ३२,०१,००४ है। कुछ जनजातियों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है जब कि कुछ ऐसी भी हैं जिनकी जनसंख्या बहुत ही अधिक घट गयी है और वे नाम मात्र के लिए ही अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। नीचे की तालिका में यह दिखलाया गया है कि भारत की जनजातियों की जनसंख्या में किस प्रकार परिवर्तन हुए हैं :

१. सेंसस आफ इन्डिया, १९०१, पृष्ठ ५७६; वही १९२१ के लिए, पृ० ११०; वही १९३१ के लिए, पृष्ठ ५८७।

२. सेंसस आफ इण्डिया १९३१, भाग १, खण्ड २ पृष्ठ ५२२-२३ तथा खण्ड १, पृष्ठ ५०३।

३. रिपोर्ट आफ दी कान्फ्रेंस आफ़ दी सोशल वर्कर्स एण्ड एन्थ्रोपालोजिस्ट्स फार ट्राइबल पीपुल इन इण्डिया, (१९४८), पृष्ठ २-३।

जन जाति का नाम	१९२१	१९३१	१९४१
चेन्चू	१२,४०२	१०,३४२	१२,८९८
कोटा	१,२०४	१,१२१	९५२
टोडा	६४०	५९७	६३०
नायदी	३०१	२९६	२५०
मविल्लार	१,७३७	१,३४१	—
गड़ाबा	५३,७७०	४८,१५४	७४,८१३
मालपहारी	३८,९७२	३७,४३७	४०,४९८
भोकसा	७,६२८	७,६१८	२७४
बडागा	४५,८२१	४३,०७५	५६,०४७
नागा कबीले	१,४७,२६२	१,३९,९६५	२,८०,३७०
अंगामी नागा	५१,७३०	४९,२३९	५२,०८०
ल्होटा नागा	१८,३०९	१८,२३८	१९,३७४
अण्डमानी	७८६	४६०	—

निम्नलिखित तालिका में उन बड़े जन जातीय वर्गों की जन संख्या के परिवर्तन दिखलाये गये हैं जिनकी संख्या में (१) बहुत अधिक वृद्धि हुई है अथवा (२) वृद्धि तो हुई है किन्तु वह वृद्धि क्रमिक नहीं रही है[१] :

जन जाति का नाम	१९११	१९२१	१९३१	१९४१
असुर	३,७१६	२,२४५	२,०२४	४,५६४
भील	१०,६७,७९२	१७,९५,८०८	२०,१३,१७७	२२,४८,१५२
बिरहोर	२,२९९	१,८१०	२,३५०	२,७५५
गोंड	—	२९,०२,५९२	३०,६९,०६९	३२,,०१,००४
हो	४,२०,१७९	४,४०,१७४	५,२३,१८४	३ ८३,७३७
जुआंग	१२,८२३	१०,४५४	१५,०२४	१७,०३२
काटकारी	९१,८४१	८१,२०२	८८,३३६	,९९,१७०
कचारी	—	२,०७२६६	३,४५,२४८	४ २८,७३३
खराई	१,३३,६५७	१,२४,५२१	१४६,०३७	१,६७,६९९
खोंड़	७,५०,२८९	६,९८,६६८	७,४१,०७८	७,४४,९०४
खोरवा	२,००,०७७	१,८५,५५३	२,३७,४४७	२,०५,६३८
मुण्डा	५,५८,२००	५,५९,६६२	६,५८,४५०	७,०६,८६९
ओरांव	८,३५,९९४	८,४२,९०२	१०,२१,७५५	११,२२,९२६
संथाल	२०,७८,०३५	२१,८९,५११	२५.०८,७८९	२७,३२;२६६
थारू	६३,६२९	६१,७५१	६४,४०३	६१;३६६

ऊपर की तालिका से पता चलेगा कि भारत में सबसे प्रमुख जन जातियां गोंड, संथाल, भील, ओरांव, खोंड़ और मुण्डा हैं। सन् १९४१ में इन सबकी जनसंख्या मिलाकर १,८८,३८,२३९ थी। अन्य जनजातियां संख्या में १८० थीं और इनमें से प्रत्येक की जनसंख्या ५ लाख से कम थी।

सन् १९५१ की जनसंख्या-गणना में साम्प्रदायिक भेदभाव को निरुत्साहित

१. सैंसस आफ इन्डिया, १९२१, भाग १, खंड १, पृ० ११२; वही, १९३१, भाग १, खंड १, पृ० ३९१; वही, १९४१। बाद के आंकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं।

करने की सरकार की नीति को ध्यान में रख कर मूल जाति। जाति और जनजाति सम्बन्धी सूचना केवल कुछ ऐसे वर्गों के लोगों से ही एकत्र की गयी जिनका विधान में स्पष्ट उल्लेख हुआ है। इसके अनुसार कोई व्यक्ति 'विशेष वर्ग' का सदस्य उसी दशा में माना गया है जब वह किसी 'अनुसूचित जाति', 'अनुसूचित जनजाति' या पिछड़े वर्ग का सदस्य हो, अथवा 'ऐंग्लो इण्डियन' हो। अतः अधिकांश 'विलीन हुए लोग' तीन वर्गों, अर्थात् अनुसूचित जातियों, अनुसूचित व जन जातियों तथा पिछड़े वर्गों में शामिल किये गये हैं। इनकी जनसंख्या क्रमशः २ करोड़, ५.५ करोड़ तथा ३ करोड़ ५६ लाख अथवा कुल संख्या का ५.६, १५.३ तथा ६.३ प्रतिशत है। अन्य शब्दों में भारत की कुल जनसंख्या में से ११.०६ करोड़ अथवा ३०.२ प्रतिशत जनसंख्या सामाजिक.शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक विकास की दृष्टि से पिछड़ी हुई है, जैसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट है :—

सन् १९५१ में भारत की विलीन जनसंख्या

विलीन जनसंख्या	(संख्या १० लाख में)	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
अनुसूचित जातियां	२०.९	५.६
अनुसूचित जनजातियां	५०.०[1]	१५.३
पिछड़े वर्ग	३५.६	९.३
कुल पिछड़े लोग :	११०.६	३२.२

ऊपर के तीन वर्गों के अतिरिक्त १९८ गैर-अपराधी जनजातियां भी हैं किंतु उनकी ठीक-ठीक संख्या ज्ञात नहीं है।

निम्नांकित तालिका में देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में जनजातियों के वितरण पर प्रकाश डाला गया है, और यह बतलाया है कि देश में कुल जनसंख्या में उनका क्या प्रतिशत है :[2]

राज्य	अनुसूचित जनजातियों की कुल जन-संख्या	कुल जनसंख्या से अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का प्रतिशत[3]
आसाम	१७,३५,२४५	३३.९
बिहार	४०,४९,१८३	१४.१
बम्बई	३३,५९,३०५	९.२
मध्य प्रदेश	२४,७७,०२४	२२.६
मद्रास	६,३५,९७९	१.१
उड़ीसा	२९,६७,३३४	२५.४
उत्तर प्रदेश	—	०.५
पश्चिमी बंगाल	११,६५,३३७	६.५
मध्य भारत	१०,६०,८१२	१५.४
मैसूर	१५,३१०	०.१

१. इण्डियागैग, भारतीय दूतावास, वाशिंगटन १८ जुलाई १९५५, पृष्ठ ७४२।
२. सेंसस आफ इण्डिया, पत्र संख्या ४, १९५३, विशेष वर्ग—१९५१ गणना पष्ठ १६।
३. फर्स्ट फाइवइयर प्लान, पृष्ठ ६३६।

राज्य	अनुसूचित जनजातियों की कुल जन-संख्या	कुल जनसंख्या से अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का प्रतिशत
राजस्थान	३,१६,३४८	११·७
त्रिवांकुर-कोचीन	२६,५८०	१·८
अजमेर	६,८१८	१५·६
भोपाल	५६,११४	६·०
कुर्ग	२१,०८४	११·६
मणीपुर	१,९४,२३६	२६·८
त्रिपुरा	१,९२,२३६	६·४
विन्ध्यप्रदेश	४,१८,२८२	५·६
कुल :	१,९१,१६,४९८	१००

कहा जाता है कि १९११ के बाद जनजातियों की जनसंख्या ह्रासोन्मुखी रही है। इस सम्बन्ध में हम कहना चाहते हैं कि यद्यपि आदिवासी जनजातियों की जनसंख्या सामान्य तौर पर बेहद अधिक बढ़ने वाली है फिर भी अधिकांशतः वे ऐसे इलाकों में रहती हैं जहाँ मलेरिया का गहरा प्रकोप पाया जाता है।

दूसरे, *आसाम में मैदानी इलाकों में और उत्तरी कच्छार पहाड़ियों में* जनजातियां सचमुच हिन्दू धर्म में घुल-मिल गयी हैं।

तीसरे, लुशाई, खासी और जैनतिया के पहाड़ी इलाकों में तथा मध्य प्रदेश और त्रिवांकुर-कोचीन में ईसाई धर्म के प्रचार ने भी इनकी जनसंख्या घटाने में पर्याप्त योग दिया है।

चौथे, दूसरे लोगों के सम्पर्क में आने से और उनके रहन-सहन के तरीके अपनाने से बहुत-सी जनजातियों के लोग काफी बदल गये हैं। जब कोई जनजाति सभ्यता के निकट-सम्पर्क में आती है तब वह अपने पड़ोसी की कुछ विशेषताओं को ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार उसकी कुछ मौलिक विशेषताएं लुप्त हो जाती हैं और जनजातीय भाषा का स्थान आर्य भाषाएं ले लेती हैं। मैदानी इलाकों के प्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण इन लोगों के जनजातीय अन्धविश्वास मिटते जा रहे हैं।

यहाँ पर उन तत्वों पर विचार कर लेना अनुचित न होगा जिनके कारण जनजातियों का अपने पड़ोसियों से सम्पर्क स्थापित कर लेना आसान हो गया है। इस प्रकार का सम्पर्क निम्नलिखित कारणों से हो सकता है :—

१. बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल के विभिन्न भागों में स्थित जनजातीय इलाकों में खानों और खनिजों का अस्तित्व मिलने के कारण दूर-दूर के लोग वहाँ काम करने जाते हैं जिनमें से कुछ वहीं बस जाते हैं। इन क्षेत्रों में कोयले और लोहे की खानें पाई जाती हैं।

२. जनजातियों के मजदूर दूर-दूर स्थित खानों और कारखानों में काम करने के लिए अपना निवास-स्थान छोड़ कर वहाँ चले जाते हैं। आसाम और पश्चिमी बंगाल के बागानों में इस तरह के श्रमिक काफी संख्या में काम करते हैं। इन लोगों के घरबार छोड़ कर इन स्थानों पर जाने का मुख्य कारण जनजातीय कृषक-स्वामित्व का समाप्त होना रहा है।

३. यातायात और संचार के साधनों के प्रसार के कारण जनजातीय इलाकों से सम्पर्क स्थापित होना भी एक प्रधान कारण है। रेलों और सड़क यातायात ने जनजातीय लोगों की लज्जा को बड़ी तेजी से कम कर दिया है और बहुत से भूमिहीन परिवार सड़कों के अगल-बगल बस गये हैं। दूसरे, बहुत से लोग बाहर से आकर अपने बीच बस गये लोगों की सेवा-टहल करते हैं। इस तरह उनका सम्पर्क बढ़ रहा है।

४. सुदूर स्थित स्थानों और उन इलाकों में जहाँ पहुँचना कठिन है ईसाई मिशनरियां स्थापित हो गयी हैं। इससे सांस्कृतिक सम्पर्क काफी बढ़ा है। इन मिशनरियों ने जनजातीय लोगों को दुख और बीमारी में तथा जमींदारों और बनियों से लड़ाई होने पर उनकी हर तरह से सहायता की है। इन लोगों ने इन सहायताओं के बदले ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है।

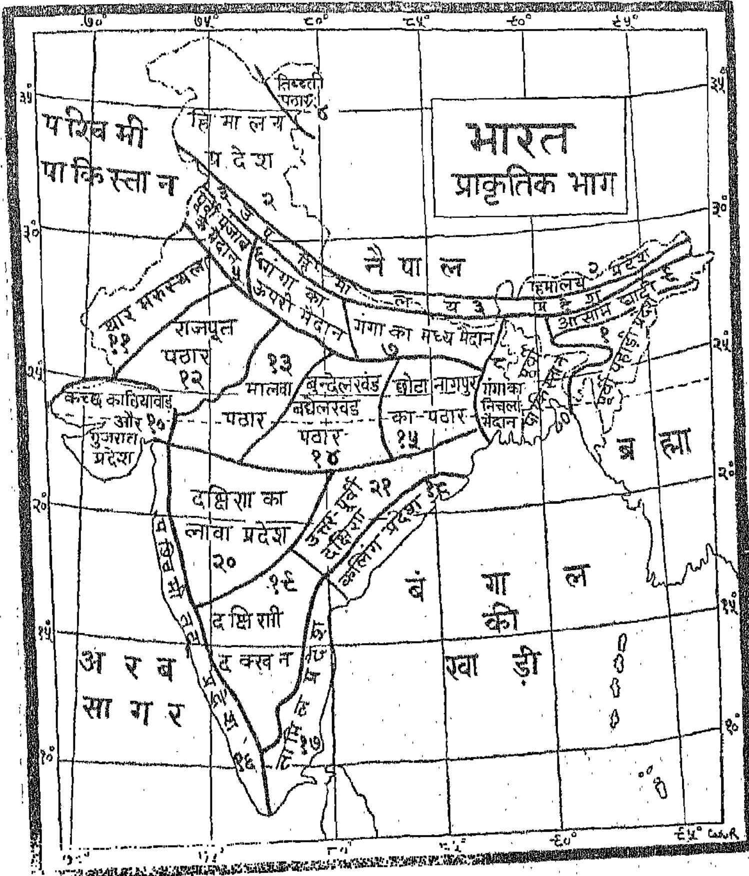
५. प्रशासन के अधिकारियों, सार्वजनिक चिकित्सा-सेवा के कर्मचारियों, जंगल विभाग के अधिकारियों और उनके गुर्गों, ठेकेदारों, व्यापारियों, बनियों, मुकदमेबाजों, वकीलों, पटवारियों, माल मुहकमें के गुर्गों तथा दूसरे लोगों के सम्पर्क में आने से भी जनजातियों की पुरानी मौलिक विशेषताएँ मिटी हैं और उनके निजी संस्कार परिष्कृत हुए हैं।

अध्याय ४१

भारत के प्राकृतिक खंड

(Major Natural Regions of India)

भारत एक विशाल देश है जिसमें भौतिक परिस्थितियों, जलवायु, वनस्पति और उन पर निर्भर रहने वाले पशु और मनुष्यों का रहन-सहन एवं उनकी आर्थिक



चित्र १६२—भारत के प्राकृतिक विभाग

क्रियाओं में एक स्थान से दूसरे स्थान में विषम अन्तर पाया जाता है। कहीं ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ सैकड़ों इंच वर्षा होती है तो कहीं बहुत ही कम। कहीं भूमि का धरातल बड़ा

ही समतल है जहाँ कंकड़-पत्थर का भी अभाव पाया जाता है, तो कहीं भूमि काफी ऊँची-नीची और ऊबड़-खाबड़ है। एक ओर गगनचुम्बी हिमालय की शृंखलायें अभेद्य दीवार की भाँति खड़ी हैं तो दूसरी ओर दक्षिण की पुरानी चट्टानों वाली विस्तृत उच्च भूमि। कहीं सघन वन प्रदेशों का आधिपत्य है तो दूसरी ओर लम्बी चौड़ी मरु-भूमि। स्पष्ट है कि भारत में भौगोलिक परिस्थितियां सर्वत्र एक समान नहीं हैं। इन्हीं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण भारत के अनेक प्राकृतिक खंड किये गये हैं जिनमें भूमि की रचना, जलवायु, वनस्पिति, पशु और मानव जीवन और मनुष्यों की आर्थिक क्रियायें प्रायः एक सी पाई जाती हैं। भारत के विभिन्न भागों की सच्ची जानकारी इन प्राकृतिक प्रदेशों के अध्ययन द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

साधारणतः भारत को तीन भौतिक विभागों (Physical Divisions) में बाँटा गया है, जो क्रमशः इस प्रकार हैं :—

(१) हिमालय पर्वत और उनकी शाखायें।
(२) उत्तर का विस्तृत मैदान।
(३) दक्षिण का पठार एवं उसके दोनों ओर के तटीय मैदान।

इन भौतिक विभागों को पुनः भूगर्भिक रचना, भूमि की बनावट, मिट्टी, जलवायु एवं वनस्पति और भूमि के वर्तमान मानव उपयोग के आधार पर अनेक उपविभागों में बाँटा गया है। भू-भौतिक दृष्टि से तीन प्रमुख भागों में बड़ा विभेद पाया जाता है। हिमाचल पर्वत धरातल पर सबसे नये और युवा पर्वत हैं जो सबसे अधिक ऊँचे भी हैं। उत्तरी मैदान एकत्रिकरण (Aggradational Plains) का विशाल स्थलरूप है जबकि दक्षिण का प्रायद्वीप कठोर चट्टानों का बना विशाल पठार है जिसने अपने जीवन काल में अनेक भूगर्भिक परिवर्तनों का अनुभव किया है।

उपरोक्त तीन प्रमुख विभागों को निम्न उप-विभागों में बाँटा गया है :—

(१) **हिमालय पर्वत और उनकी शाखाओं** के अंतर्गत निम्न प्राकृतिक खंड सम्मिलित किये गये हैं :—
(क) पश्चिमी हिमालय प्रदेश
(ख) मध्य हिमालय प्रदेश
(ग) पूर्वी हिमालय प्रदेश
(घ) पूर्वी पहाड़ी प्रदेश

(२) **उत्तरी मैदान** के अंतर्गत निम्न प्राकृतिक खंड हैं :—
(क) पूर्वी पंजाब का मैदान
(ख) ऊपरी गंगा का मैदानी प्रदेश
(ग) मध्य गंगा का मैदान
(घ) गंगा का निचला मैदान
(ङ) ब्रह्मपुत्र घाटी का प्रदेश

(३) **दक्षिण का पठार** विभाग के अंतर्गत ये खंड सम्मिलित हैं :—
(i) **सतपुड़ा के दक्षिण की ओर का भाग :**
(क) दक्कन प्रदेश
(ख) दक्कन-लावा प्रदेश
(ग) उत्तरी पूर्वी पठारी प्रदेश

(ii) **नर्मदा के उत्तर की ओर का प्रदेश :**
(क) मध्य भारतीय अग्र-प्रदेश
(ख) राजस्थान की उच्च-भूमि प्रदेश
(ग) थार प्रदेश

तटीय मैदानों के अंतर्गत निम्न प्राकृतिक खंड हैं :—

(i) **पश्चिमी तटीय मैदान—**
(क) कच्छ, सौराष्ट्र एवं गुजरात का मैदान
(ख) कोंकन प्रदेश
(ग) मलाबार प्रदेश

(ii) **पूर्वी तटीय मैदान—**
(क) कर्नाटक अथवा तामिलनाड़ प्रदेश
(ख) उत्तरी सरकार प्रदेश

नीचे की तालिका में उक्त प्राकृतिक खंडों का क्षेत्रफल, जनसंख्या और उसका घनत्व (१९५१ की जनगणना के आधार पर) बताया गया है :—

प्राकृतिक खंड	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	जनसंख्या (लाख में)	घनत्व प्रति वर्गमील
हिमालय प्रदेश :—			
(क) पश्चिमी हिमालय	८५,८६१	४४.१	५१
(ख) मध्य हिमालय	४६,६७७	९२.०	१९७
(ग) पूर्वी हिमालय	८५,०६२	९०.४३	१७१
(घ) पूर्वी पहाड़ी प्रदेश	८,२६९	५.७७	६७
उत्तर का बड़ा मैदान :—			
पूर्वी पंजाब का मैदान	३८,०५८	१६७.७	४४०
ऊपरी गंगा का मैदान	६०,५५६	३८०.२७	६२८
मध्य गंगा का मैदान	७४,३४७	४७९.९	६४६
गंगा का निचला मैदान	२८,३३३	२४०.१	८४७
ब्रह्मपुत्र का घाटी प्रदेश	२१,७०१	६६.६	३०२
दक्षिण का प्रायद्वीप पठार :—			
दक्कन का मुख्य पठार	१०५,२०१	२७०.६९	२५७
दक्कन-लावा प्रदेश	१०२,२८८	२३९.९७	२३५
उत्तरी-पूर्वी पठारी प्रदेश	२०१,३७३	४१०.००	२०१
मध्य भारतीय अग्र प्रदेश	५०,६१५	८३.७६	१६५
राजस्थान की उच्च भूमि	११७,९९६	२०५.६४	१७३
थार प्रदेश	७५,३४५	४५.९९	६०
तटीय मैदान :—			
कच्छ, सौराष्ट्र एवं गुजरात	६०,६९५	१६०.४२	२६७
कोंकन प्रदेश	१५,७०७	७४.९४	४७८
मलाबार प्रदेश	१८,१८७	१४८.७६	८२९
कर्नाटक प्रदेश	४९,१९०	२९६.६	६०३
उत्तरी सरकार प्रदेश	४८,७१३	२११.०१	४३३

(१) हिमालय प्रदेश (Himalayan Region)—

हिमालय पामीर की गांठ से आसाम की सीमा तक लगभग १,५०० मील की लम्बी और १५० से ३०० मील की चौड़ाई में फैले हुए हैं। हिमालय में तीन समानांतर श्रेणियाँ हैं जिनके बीच में विशाल पठार और घाटियाँ हैं। इनमें से कुछ तो जैसे काश्मीर और कूलू की घाटियाँ—न केवल विस्तृत और उपजाऊ ही हैं बल्कि इनकी प्राकृतिक छटा भी अवर्णनीय है। एशिया की ९४ बड़ी बड़ी चोटियाँ, जिनकी ऊँचाई २०,००० फीट से अधिक है, लगभग सब हिमालय में ही हैं। केवल दो चोटियाँ कराकोरम में हैं। अत्यधिक ऊँचाई के कारण हिमालय के इधर उधर का आवागमन कुछ दर्रों तकही सामित है जैसे—जेलपला और नाहूला दर्रे भारत और तिब्बत के बीच प्रमुख व्यापारिक मार्ग हैं। हिमालय की इस ऊँचाई के कारण ही भारत अपनी ही कला, उद्योग और संस्कृति का विकास कर सका। काश्मीर की घाटी के उपरान्त यातायात मूलतः पशु और मनुष्यों द्वारा होता है। पूर्व में भारत और ब्रह्मा के बीच लगभग ६ मार्ग हैं किन्तु घने जंगल और तेज बहने वाली नदियों के कारण किसी का भी अधिक उपयोग नहीं होता।

हिमालय की शृंखला काश्मीर में बड़ी ही जटिल है किन्तु पूर्व की ओर यह सुगम होती चली गई है। उत्तर में ये श्रेणियाँ अत्यधिक ऊँची हो गई हैं परन्तु पूर्व में बहुत नीची हैं। गारो, खासी, जैन्तिया और नागा की पहाड़ियाँ जो लगभग पूर्व-पश्चिम को फैली हुई हैं, लुशाई और अराकान पहाड़ियों की शृंखला को जोड़ती हैं। हिमालय की ऊँची श्रेणियाँ महान् नदियों के उद्गम स्रोत हैं जो बड़ी मात्रा में जल और उपजाऊ मिट्टी बहा लाती हैं। मध्य एशिया से आने वाली ठंडी हवाओं को भी ये श्रेणियाँ भारत आने से रोक देती हैं। जलवायु की दृष्टि से मानसून इन्हीं श्रेणियों से टकराता है जिससे उत्तरी भाग में खूब वर्षा होती है। हिमालय मनुष्य के आकर्षण का भी केन्द्र बिन्दु है। यहाँ की प्राकृतिक छटा और ऊँची-ऊँची चोटियाँ संसार के भिन्न-भिन्न भागों से यात्रियों और पर्वतारोहियों को आकर्षित करती हैं। जातिगत दृष्टि से हिमालय के निवासी संभवतः मंगोल जाति के हैं। यह कद में छोटे, गोल सिर और चौड़े चेहरे वाले होते हैं इनके गालों की हड्डियाँ उभरी हुई और चेहरा केश रहित होता है। ये विभिन्न भाषायें बोलते हैं। इन लोगों के आकार प्रकार ही नहीं अपितु इनके रीति, रिवाज, आदतें और पोशाक आदि भी हमारे से भिन्न होती हैं। इसका एकमात्र कारण इन लोगों का लम्बे समय से घाटियों में सुरक्षित रूप से अलग रहना ही है जिसके कारण इन्हें आवागमन और सामाजिक आदान प्रदान की बहुत अल्प सुविधायें प्राप्त हुई हैं। ये लोग भी गोरखा और नागाओं के समान बड़े ही साहसी, हट्टे-कट्टे और स्वतंत्रता प्रिय हैं। इन लोगों की न केवल सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ही भिन्न है वरन् इनकी आर्थिक गतिविधियाँ भी उतनी ही विपरीत हैं। यद्यपि खेती इनका आधार है किन्तु पहाड़ी ढालों पर पशु चारण का व्यवसाय भी बड़ा उन्नत है। इसी तरह इनका सामाजिक संसार भी भिन्न है। लद्दाख में बहुपति प्रथा (Polyandry) एक सामान्य बात है परन्तु पहाड़ों के दक्षिण में यह प्रथा कदाचित ही देखी जाती है। इस प्रदेश में गाँव अधिकतर पहाड़ी ढालों पर बसे हैं।

१. काश्मीर में पाँच श्रेणियाँ हैं—कराकोरम श्रेणी, लाद्दाख श्रेणी, भीतरी हिमालय (जास्कर श्रेणी); मध्य हिमालय (पांगी श्रेणी) और बाहरी हिमालय (पीर पंजाल श्रेणी) आसाम में मुख्य और भीतरी हिमालय श्रेणियाँ हैं।

हिमालय प्रदेश के मुख्य उप-विभाग ये हैं :—

(क) पश्चिमी हिमालय प्रदेश (West Himalayan Region)—

इसमें काश्मीर और जम्मू राज्य सम्मिलित हैं। यह सम्पूर्ण प्रदेश लगभग पहाड़ी है और तीन क्षेत्रों में बँटा हुआ है। उत्तर में तिब्बत और अर्द्ध-तिब्बतीय

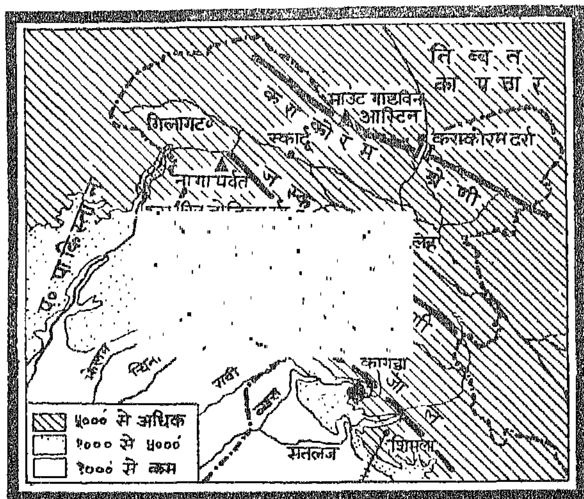


चित्र १९३—हिमालय पर्वत के ढालों पर बसा एक गाँव

भाग (इसमें लद्दाख और गिलगित के जिले शामिल हैं); और दक्षिण में काश्मीर की घाटी का मध्य भाग तथा जम्मू का बड़ा समतल भाग। इस प्रदेश का क्षेत्र फल ८५,८६१ वर्गमील और आबादी ४४·१ लाख है। आबादी का घनत्व जम्मू में ३२७, मीरपुर में २३८, रियासी और काठुना में १४४ से १७४ प्रति वर्ग मील है।

यह प्रदेश उत्तर की ओर लगभग ६ महीने बर्फ से ढका रहता है। दक्षिण की ओर वर्षा पूर्वी भाग में ३५ इन्च और पश्चिमी भाग में २८ इन्च तक होती है। प्राय: गहरी घाटियों में वर्षा का औसत बहुत ही कम रहता है। पहाड़ी प्रकृति के कारण कृषि यहाँ बहुत कम होती है। यहाँ के निम्न प्रदेश ज्वर-ग्रसित रहते हैं। अत: कृषि व्यवसाय सामयिक रूप से पहाड़ी लोगों की सहायता से चलाया जाता है। रबी की फसल में गेहूँ, जौ आदि बोये जाते हैं और खरीफ में मक्का और बाजरा मुख्य फसलें हैं। बाहरी निम्न श्रेणियों पर छुटपुट शुष्क झाड़ियाँ और भीतरी श्रेणी पर चीड़ के जंगल पाये जाते हैं।

काश्मीर की घाटी यहाँ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है जो पीर पंजाल और मुख्य हिमालय के बीच में स्थित है। यह एक बड़ा विस्तृत मैदान है जो ८५ मील



चित्र १९४—पश्चिमी हिमालय प्रदेश

लम्बा और २५ मील चौड़ा है। भेलम के बाढ़ के मैदान में समुद्र तल से इसकी ऊँचाई ५,२०० फीट है। यहाँ जलवायु महाद्वीपीय प्रकार की है। जाड़ा अत्यन्त ही ठंडा होता है। जाड़े की औसत वर्षा २६ इंच रहती है। घाटी के पहाड़ी भाग पर्वतीय वनस्पति से ढके रहते हैं। साधारण ढालों को सीढ़ीनुमा काट कर फलदार वृक्ष उगाये जाते हैं। नदी तट के समीप की भूमि कृषि के लिये सर्वोत्तम है। इसी महत्व के कारण यहाँ चाँवल और शहतूत उगाया जाता है। चाँवल की फसल को खूब खाद देकर सींचा जाता है। कारेवां (Karewas) पर शुष्क फसलें और कृषि योग बनाई गई नर्म दल-दल भूमियों पर राई और सरसों बोई जाती है। कम उपजाऊ पथरीली भूमियों पर गेहूँ (buck wheat) और मक्का ८,००० फीट के नीचे बोया जाता है। काश्मीर में कुल बोई गई भूमि का केवल ४३ प्रतिशत भाग सींचा जाता है और १० प्रतिशत भाग पर एक से अधिक फसलें बोई जाती हैं।

तैरते हुए द्वीप काश्मीर की खेती के अन्य आकर्षण हैं। यहाँ के किसान लकड़ी के लट्ठों से डूंडे बनाकर उन पर मिट्टी और खाद डाल कर सब्जी और फूल पैदा करते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ झीलों के छिछले तटों पर पानी में विलों (willows) के पेड़ लगाकर और बीच की भूमि में झील की मिट्टी और कीचड़ डालकर नई भूमि तैयार कर लेते हैं। यह नई भूमि फल, तरकारी और अन्य फसलों के लिये काम में लाई जाती है। छोटी-छोटी क्यारियों में केशर भी बोई जाती है।

पशु पालन और रेशम की कीड़े पालना यहाँ के निवासियों के दो मुख्य उद्यम हैं। लकड़ी पर खुदाई का काम, मिट्टी, कुट्टी का काम, चाँदी के बर्तन बनाने का काम, नम्बादा बनाना, रेशम और ऊन का कपड़ा बुनना, कसीदा निकालना और शाल

दुशाले बनाना यहाँ के अन्य प्रमुख कुटीर उद्योग हैं। पर्यटन व्यवसाय भी बहुत बढ़ा चढ़ा है। यहाँ खनिज व्यवसाय कोई महत्व नहीं रखता। झेलम से विद्युत उत्पन्न की जाती है जो श्रीनगर के रेशम के कारखानों में काम आती है। रियाँसी जिले में थोड़ा 'एन्थ्रासाइट' जाति का उत्तम कोयला पाया जाता है।

चित्र १९५--काश्मीर के कुटीर उद्योग की कुछ प्रमुख वस्तुयें

इस घाटी का महत्त्व इसकी स्थिति से भी है। यह हिमालय के मार्गों के लिये एक आधार का काम करती है। यह घाटी बहुत ही घनी बसी हुई है अनंतनाग में आबादी का घनत्व ३०३ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है जो बोई गई भूमि के अनुपात में बहुत ही अधिक है। इसकी तुलना में सिन्ध की घाटी में केवल १० व्यक्ति ही रहते हैं। यहाँ के निवासी केवल घुमक्कड़ गडरिये हैं। काश्मीर के अधिकतर आबाद भाग गाँव प्रायः उच्च भूमियों पर पानी की सुविधा को देखते हुए बनाये जाते हैं। यहाँ के मकान पास-पास और लम्बोत्तर आकार के होते हैं। घाटी में जहाँ सीढ़ीनुमा खेती की जाती है वहाँ आबादी बहुत छितरी हुई पाई जाती है।[1]

1. K. H. Buschmann, Settlements & Habitations in India, II. Geographical Review of India. Vol. XVI No. 4. 1954.

(ख) मध्य हिमालय प्रदेश (Central Himalayan Region) :

इस प्रदेश में शिमला और कांगड़ा जिले; हिमाचल प्रदेश; यू० पी० का कूमायूँ डिवीजन और देहरादून, टिहरी गढ़वाल और सहारनपुर जिले तथा नेपाल सम्मिलित हैं।[1] इस प्रदेश का क्षेत्रफल ४७,६७७ वर्ग मील और आबादी ९२ लाख है। आबादी का घनत्व १९३ प्रति वर्ग मील है।

साधारण रूपरेखा में यह प्रदेश भी काश्मीर के समान है। यहाँ की पर्वतीय जलवायु ऊँचाई के अनुसार बहुत ही विपरीत होती जाती है। काँगड़ा घाटी में धोलाघर के पास १०० इंच वर्षा होती है किन्तु कुछ ही उत्तर की ओर कूलू की घाटी में यह औसत ३०-४० इंच ही रहता है। सतलज मार्ग बहुत ही शुष्क है और स्पिति घाटी में जो कुछ थोड़ी सी वर्षा होती है वह हिम के रूप में होती है। शिमला का औसत ६२ इंच है। यहाँ के अधिकतर लोग कृषक हैं। ९४ प्रतिशत व्यक्ति कृषि से ही अपना जीवन-यापन करते हैं। उत्तर की ओर पशुपालन और काफिला व्यापार (Caravan trading) का दिनों दिन महत्व बढ़ रहा है।[2] काँगड़ा घाटी में गेहूँ, जौ और चना रबी की फसल के रूप में और चावल व मक्का खरीफ की फसल के रूप में बोये जाते हैं। चाय और आलू भी यहाँ उगाये जाते हैं। १५ प्रतिशत भाग पर जंगल हैं जिनसे



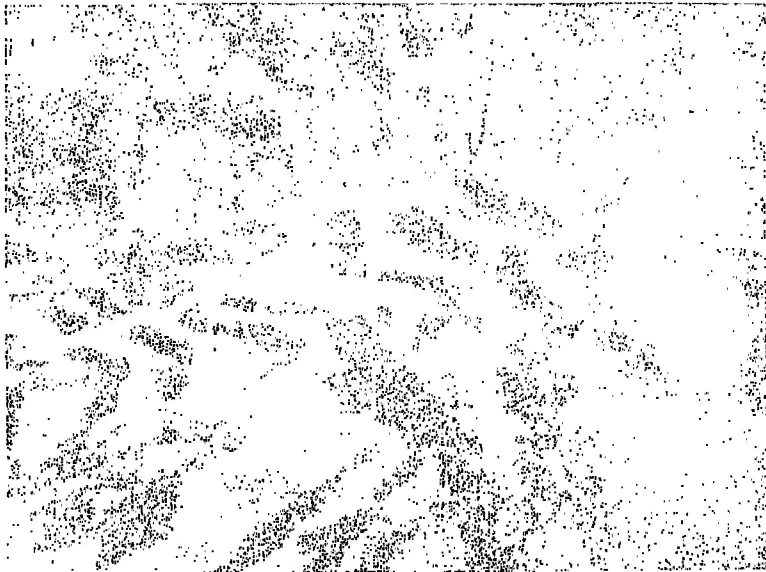
चित्र १९६—गढ़वाली चरवाहे

१. नेपाल का अध्ययन विषयान्तर होने से यहाँ छोड़ दिया गया है।
२. Y. D. Malhotra. "The Semi-Nomadic Gaddies of the Dhauladhar", Scottish Geographical Magazine, Vol. II 1935. pp. 14-21.

बाँस, लकड़ी और भावर घास मिलती है। यहाँ के खेत सीढ़ीनुमा होते हैं। जहाँ ढाल तीव्र होता है वहाँ खेत बिलियर्ड टेबल से बड़े नहीं होते परन्तु जहाँ भूमि कम कटी-फटी है वहाँ खेतों का आकार बड़ा होता है।[1] कम ऊँचे ढालों पर फल उगाये जाते हैं। खनिजों में यहाँ स्लेट, एन्टीमनी, जस्ता और ताँबा मुख्य हैं। मंडी जिले में जल विद्युत भी उत्पन्न की जाती है।

इस भाग में आबादी बहुत ही घनी है। दक्षिण की ओर दून (Doons) में यह यह घनत्व और भी अधिक है। आबादी का औसत स्पिति और लाहुल में ४ या ५, कांगड़ा में ६८, हिमाचल प्रदेश १०२, सिरमूर में १५२ और बिलासपुर में १८२ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। आबादी केन्द्रित न होकर छितरी हुई है। दो-तिहाई लोग ५०० व्यक्तियों के समूह में रहते हैं। मकान प्रायः लकड़ी और पत्थर के बने होते हैं। शिमला और डलहौजी के अतिरिक्त शहरी आबादी नगण्य है।

कूमायूँ में यमुना, गंगा, रामगंगा और शारदा के उद्गम स्थान सम्मिलित हैं। इसका क्षेत्रफल १६,५०० वर्गमील और आबादी २२ लाख है। आबादी का औसत १३१ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। देहरादून और गहरी घाटियों के अलावा



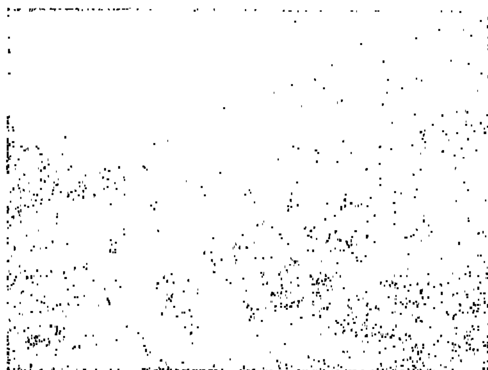
चित्र १६७—टेहरी गढ़वाल में सीढ़ीदार खेत

अधिकतर प्रदेश अत्यन्त ही कटा फटा है (६,००० से १२,००० फीट ऊँचा है)। जलवायु ग्रीष्म में गर्म और जाड़ों में ठंडी होती है। ५,००० फीट नीचे की घाटियों में ग्रीष्म का अधिकतम तापमान ११०° फा० रहता है। किन्तु ऊँचे भागों पर यह तापक्रम ६४°

१. Punjab Gazetteer, 1908 Vol. I, p. 363.

फा० ही होता है। ६,००० से ७,००० फीट की ऊँचाई तक जाड़ों का तापमान ४०° फा० नीचे चला जाता है। वर्षा अलमोड़ा में ४०" से ५०" और रानीखेत में ८०" से १००" तक होती है। जाड़ों में कुछ हिम भी गिरता रहता है।

कृषि की यहाँ बड़े ही विस्तृत ढंग से व्यवस्था की जाती है। प्राय: समस्त पहाड़ी ढाल सीढ़ीनुमा खेतों से ढके रहते हैं। कुछ गाँवों में तो ऐसी ६,००० से अधिक सीढ़ियाँ पाई जाती हैं (सीढ़ियाँ ५ से ८ फीट ऊँची और १० से १२ फीट चौड़ी होती हैं) ३० और ४० इंच वर्षा वाले भाग में शुष्क फसलें बोई जाती हैं। गेहूँ, मक्का, चना और घास बहुतायत से उगाई जाती है। फसलों का हेरफेर भी बड़ा सामयिक और चतुरतापूर्ण होता है। यहाँ के कस्बे छोटे-छोटे व्यापारिक केन्द्रों का कार्य करते हैं जैसे अल्मोड़ा, नैनीताल और रानीखेत।



चित्र १९८—गढ़वाल की पहाड़ियों में एक गाँव का दृश्य

इस जिले में, पर्याप्त वर्षा होते हुए भी, भूमि के तीव्र कटाव और भूमि की ऊपरी मिट्टी की हल्की सतह होने से यहाँ कृषि की अवस्था अच्छी नहीं है। साधारणत: यहाँ गेहूँ, रागी, चावल, जौ, तिलहन, मक्का, आम आदि उगाये जाते हैं। देहरादून और मसूरी इस भाग के पहाड़ी स्थान हैं। हरिद्वार एक विशेष संयोजक स्थल है।

(ग) पूर्वी हिमालय प्रदेश (Eastern Himalayan Region) :—

इस भाग में नेपाल, सिक्किम, दार्जिलिंग-जिला और भूटान का क्षेत्र सम्मिलित है। इस भाग में हिमालय पहाड़ मैदान से एक दम ऊँचे उठ गये हैं। अस्वास्थ्यकर तराई प्रदेश का क्षेत्र यहाँ कम है। यहाँ कोई भी पहाड़ १८,००० फीट से कम ऊँचा नहीं है। दार्जिलिंग में औसत १०० इन्च वर्षा होती है। प्राय: समस्त क्षेत्र जंगलों से ढका है किन्तु १६,००० फीट के बाद हिम रेखा आ गई है। इस प्रदेश की अगम्यता के कारण जंगलों का कोई उपयोग सम्भव नहीं हुआ है। यहाँ के पहाड़ी भाग में यत्र-तत्र कुछ गाँव पाये जाते हैं जहाँ कुछ झोपड़ियाँ ही देखी जा सकती हैं। यहाँ कृषि 'झूमिंग' प्रणाली द्वारा की जाती है और मोटे अनाज पैदा किये जाते हैं। दार्जिलिंग में चाय के बागान पाये जाते हैं। आबादी का घनत्व बहुत कम है। प्रति वर्गमील औसत १०० से भी नीचा है। सिक्किम में यह औसत ३० व्यक्ति प्रति वर्गमील है। इस क्षेत्र के प्रमुख निवासी गोरखा, लैप्चा और भूटानी हैं।

हिमालय और गंगा के मैदान के बीच में दो समानान्तर पट्टियाँ आगई हैं। एक पट्टी जो मैदान के पास है, समतल और दलदली है। यह लम्बी मोटी घास से ढकी है। उत्तरी बंगाल में इस पट्टी को 'तराई' या 'दुआर' के नाम से पुकारते हैं। दूसरी पट्टी में पहाड़ियों की शृंखला और उप-हिमालय के निम्न ढाल आगये हैं। यह सम्पूर्ण भाग अस्वास्थ्यकर जलवायु और भूकम्पों से प्रभावित होने के कारण आबादी से अछूता था। किन्तु अब तराई में दलदलों को साफ किया जाकर खेती की जाती है। कुछ भागों में तो पहाड़ी ढालों पर बड़े पैमाने पर सीढीनुमा खेती की जाती है। भूतपूर्व सरकारी कर्मचारियों, भूमिहीन किसानों और शरणार्थियों को आबाद किये जाने से दक्षिणी भाग अब बस गया है। भाभर के अन्दर साल के घने जंगल पाये जाते हैं। यद्यपि जलपाईगुड़ी जिले में आबादी का औसत ३०० व्यक्ति प्रति वर्गमील है फिर भी तराई की जनसंख्या नितान्त ही कम है। पीलीभीत, सहारनपुर, खेरी, बहराईच, मोतीहारी और जलपाईगुड़ी इस प्रदेश के प्रमुख शहर हैं। ये सब गंगा के मैदान के ऊपरी भाग में हैं और रेल द्वारा जुड़े हुए हैं।

(घ) पूर्वी पहाड़ी प्रदेश (Eastern Hill Region) :—

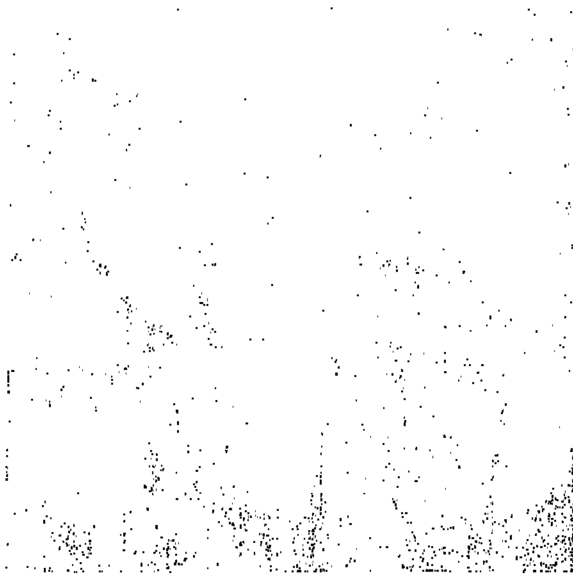
इस प्रदेश में हिमालय की पूर्वी शाखायें आगई हैं जो बंगाल की सीमा से पूरे आसाम में फैली हुई हैं। इस पहाड़ी सिलसिले में खासी, जैन्तियाँ, गारो की पहाड़ियाँ तथा शिलांग का पठार मुख्य हैं। ये पहाड़ियाँ बहु कम ऊँची हैं किन्तु इन पर वर्षा खूब होती है। पहाड़ियों के सब दूर सामानान्तर रूप से फैले होने के कारण आवागमन में बड़ी बाधा उपस्थित होती है। पहाड़ी ढाल घने सदाबहार जंगलों से ढके हुए हैं। चोटियों पर घास पाई जाती है। यहाँ कई वन-जातियाँ (tribes) 'झूमिंग प्रणाली' द्वारा खेती करती हैं जिससे कई भाग जंगलों के जला दिये जाने से नष्ट हो गये हैं। विषम प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण यहाँ आबादी बहुत ही छितरी हुई है। यहाँ कुछ छोटी वन्य-जातियाँ ही निवास करती हैं। नागा, अभोर, चिन्स और चिनलोक यहाँ की मुख्य जातियाँ हैं। एक घाटी से दूसरी घाटी को आने जाने की कठिनाई के कारण यहाँ के लोगों के रीति-रिवाज और बोलियों में बड़ा अन्तर पाया जाता है। यहाँ के गाँव प्रायः झरनों के समीप पहाड़ी के बाहर निकले हुए भागों पर बसे होते हैं। इसका मुख्य कारण सुरक्षा है। समीप के खेतों पर पहाड़ी चावल उत्पन्न किया जाता है। मनीपुर में उपजाऊ भूमि पाई जाती है अन्यथा सर्वत्र ही भारी वर्षा के कारण फसलें और मिट्टी दोनों ही भूमि से साफ हो जाती हैं।



चित्र १६६—पूर्वी पहाड़ी प्रदेश

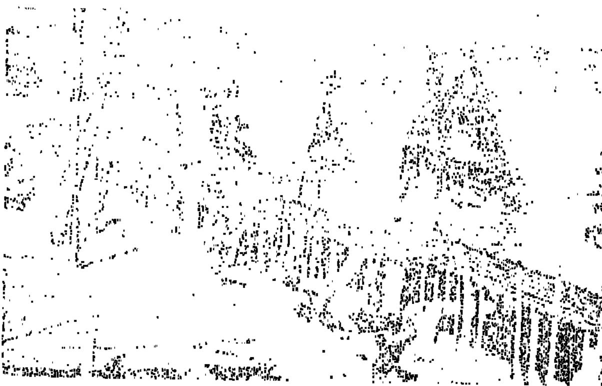
आसाम के पठार के दक्षिणी छोर पर भारी वर्षा होती है। चेरापूंजी का वार्षिक औसत ४२५ इंच रहता है। अन्यत्र यह औसत कम होता जाता है। उत्तरी

ढालों पर असंख्य चाय के बागान आ गये हैं। गारो की पहाड़ियों पर कपास और नारंगियाँ पैदा की जाती हैं। खेती और आबादी का यहाँ अब उत्तरोत्तर विस्तार हो



चित्र २००—कोन्याक नागा लोग

रहा है क्योंकि अभी भी आबादी यहाँ कम है। इस समूचे प्रदेश की आबादी का घनत्व ५० से ६० व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। आबादी का यह औसत मिकिर (Mikir)



चित्र २०१—आसाम में एक आदिवासी गाँव

और उत्तरी कछार पहाड़ियों (North Cachar Hills) में २८, खासी और जैन्तिया

पहाड़ियों में ६६, मिजो (Mizo) में २४ और नागा पहाड़ियों में ४८ व्यक्ति प्रति वर्ग मील पड़ता है। इसके विपरीत त्रिपुरा और मनीपुर में यह औसत क्रमशः १५६ और ६७ है। यहाँ कृषि योग्य भूमि की कमी (लगभग ४ %), अपेक्षतया नहीं जोती गई भूमि की अधिकता (१३%) और बेकार भूमि (५०%) होने से ही आबादी की कमी है।

२. उत्तरी मैदान (Northern Plains)—

यह मैदान सतलज नदी के मोड़ से बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ है। यह १,५०० मील लम्बा और १५० से २०० मील चौड़ा है। सतलज, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र और इनकी सहायक नदियां इसमें बहती हैं। इस मैदान की ३,००,००० वर्ग मील भूमि में कच्छारी मिट्टी बिछी हुई है जिसकी गहराई का अभी तक कोई पतानहीं लग सका है। मैदान में १,३०० फीट की गहराई तक भी कहीं चट्टानी पेंदा नहीं पाया जाता[1]। किन्तु मैदान में मिट्टी का यह जमाव सर्वत्र सामान नहीं है। पूर्व की ओर नदियों द्वारा लाई गई कच्छार का खूब जमाव पाया जाता है परन्तु पश्चिम में पवन द्वारा लाये गये पदार्थों की अधिकता है। भूमि की बनावट की दृष्टि से समस्त भाग एकसा है। मैदान में सैकड़ों मीलों तक बहुत ही कम ऊँचाई देखी जाती है।[2] इस आकार-हीन मैदान में ढाल और रूप (aspect) में थोड़ा अन्तर अवश्य पाया जाता है, जैसे भावर (Bhabhar) तराई (Terai) और भूर (Bhur)। भाबर की रचना कंकड़, पत्थर द्वारा हुई है। तराई में बारीक मिट्टी का जमाव पाया जाता है और भूर एक प्रकार से शुष्क रेतीली मिट्टी के टुकड़े हैं।

गहन अध्ययन की दृष्टि से यह क्षेत्र हमारे लिये विशेष महत्व का है। इसकी विशाल लम्बाई चौड़ाई, भौतिक रूप, विभिन्न प्रकार की जलवायु, मिट्टी और फसलें यहाँ की आबादी और आवास के वितरण में अनेक भिन्नितायें प्रस्तुत करती हैं। भौगोलिक दृष्टि से इस विशाल मैदान का अध्ययन निम्न शीर्षकों में किया जाता है—(क) पूर्वी पंजाब अथवा सतलज का मैदान (ख) गंगा का मैदान—इसके उप-विभाग इस प्रकार किये गये हैं—ऊपरी, मध्य और निचली गंगा का मैदान, और (ग) ब्रह्मपुत्र नदी का मैदान।

(क) पूर्वी पंजाब का मैदान (East Punjab Plain)—

इस मैदान का क्षेत्रफल लगभग ३८,००० वर्ग मील तथा आबादी १६६ लाख है। इस मैदान के दक्षिण पूर्व में अरावली श्रृंखला की कुछ पहाड़ियाँ बिखरी हुई दृष्टिगोचर होती हैं अन्यथा समस्त मैदान कच्छारी मिट्टी सेबना हुआ है। उत्तर की ओर शिवालिक की पहाड़ियाँ हैं जो अत्यधिक भूमिके कटाव के कारण प्रायः नंगी हो गई हैं। रोपड़ नगर के समीप भूमि के कटाव की तीव्रता को अच्छी तरह देखा जा सकता है।

उत्तर की ओर स्थित होने से यह मैदान जाड़ों में बहुत ठंडा (औसत तापक्रम ६०° फा० से कम) हो जाता है। जाड़ों में प्रायः पाला पड़ता है। किन्तु

---

१. इस महा खंड को स्वैस ने भूसंनति (Fore Deep) और बुराई ने दरारी घाटी माना है। विशेष ज्ञान हेतु देखिये—D. N. Wadia, Geology of India. 1954.

२. सूक्ष्म पर्यवेक्षण से यह ज्ञात होगा कि मैदान में कई उच्च व निम्न भूमियां आ गई हैं पुरानी कच्छारों की भूमियों को बांगर (Bangar) और नवीन कच्छार की निम्न भूमियों को खादर (Khadir) कहते हैं। ये दोनों कई १०० फीट ऊँचे नदी तटों द्वारा अलग हो जाता हैं। नदियों के समीप उच्च भूमियां बीहड़ों में (Ravines) बदल गई हैं।

ग्रीष्म में पहाड़ी भागों को छोड़कर समस्त मैदान गर्म रहता है। उत्तर और पूर्व की ओर वर्षा बढ़ती जाती है। जाड़ों में चक्रवातों द्वारा अच्छी वर्षा होती है। वर्षा का औसत २०" से ३०" रहता है किन्तु यह औसत प्रति वर्ष बदलता रहता है।

चित्र २०२—पूर्वी पंजाब का मैदान

बिस्त का दोआब (Bist Doabs) कृषि की दृष्टि से इस प्रदेश का सबसे उत्तम क्षेत्र है। यहाँ नहरों द्वारा सिंचाई की सुविधा प्राप्त है। किन्तु उत्तरी पश्चिमी भाग में या तो दलदली क्षेत्र हैं या चोस (Chos)। इस भाग में भूमि के कटाव और रेत के फैलाव के कारण बहुत अधिक अच्छी भूमि नष्ट होती जा रही है किन्तु सरकार के प्रयत्नों से वृक्षारोपण द्वारा अब भूमि के कटाव को बहुत हद तक रोक दिया गया है। मक्का, बाजरा, गेहूँ और गन्ना इस क्षेत्र की मुख्य फसलें हैं। उपजाऊ भूमि और जल की सुविधा के कारण जगह-जगह गाँव बसे हुए हैं।

सरहिन्द या हरयाना (सतलज यमुना दोआब) क्षेत्र में मिट्टी हल्की है और सर्वत्र कुओं द्वारा सिंचाई होती है। दक्षिणी पश्चिमी भाग में जल तल बहुत ही नीचा है। किन्तु रेतीली दोमट मिट्टी में शुष्कता को सहने की अपार शक्ति है अतः फसलें कदाचित ही नष्ट होती हैं। चना, गेहूँ, जौ और ज्वार बाजरा यहाँ के महत्वपूर्ण अनाज हैं। गाँव यहाँ प्रायः बहुत बड़े होते हैं।

हिसार में (सरहिन्द हरियाना को छोड़ कर) जल तल बहुत गहरा है। वर्षा भी अनिश्चित और कम होती है। किसानों के पास खेत आवश्यकता से बड़े हैं। खेत प्रायः ७.५ से १० एकड़ तक और कहीं कहीं तो ६० एकड़ तक पाये जाते हैं। जलाशयों के अभाव में यहाँ गाँव बड़े हैं और अपनी आवश्यकता तालाबों से पूरी करते हैं। यहाँ अधिकतर गेहूँ, जौ, बाजरा और रागी बोया जाता है। पशु पालन यहाँ का

महत्वपूर्ण धन्धा है। हिसार या हरियाना की गायें अपनी उत्तम जाति के लिये समस्त भारत में प्रसिद्ध हैं।

यहाँ के अधिकतर भागों में सिंचाई की अत्यधिक आवश्यकता रहती है। पश्चिमी यमुना नहर, सरहिन्द नहर, पूर्वी नहर, और ऊपरी बारी दोआब नहर लगभग ४५ लाख एकड़ भूमि को सींचती हैं। सिंचाई के द्वारा यहाँ लम्बे रेशे वाली अमेरिकन कपास, गेहूँ, गन्ना और कुछ चावल पैदा किया जाता है। सतलज नदी के ऊपर भाखरा नाँगल बाँध योजना कार्यान्वित की जा रही है ताकि उसके जल द्वारा बहुमुखी आवश्यकतायें पूरी हो सकें। इस बाँध की लागत लगभग १७२·५४ करोड़ रुपया होगी। यह बांध १९५९-६० तक पूरा हो गया है। इस बाँध से राजस्थान व पंजाब में लगभग ३६ लाख एकड भूमि में सिंचाई होगी[१] और ३.६ लाख किलोवाट जल विद्युत उत्पन्न होगी जिसके द्वारा पंजाब, राजस्थान, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के ७० से अधिक नगरों और सैकड़ों गाँवों को विद्युत्-शक्ति प्राप्त होगी।

इस प्रदेश में आबादी का घनत्व ४४० व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। पहाड़ी तथा शुष्क भागों की अपेक्षा मैदानी भागों में उपजाऊ भूमि और सिंचाई की सुविधा होने से आबादी का घनत्व अधिक है। बिस्त (Bist Doab) के दोआब में जालन्धर और होशियारपुर जिलों की आबादी का औसत क्रमशः ७९१ और ४८९ है (इनमें शिवालिक के कम घने भाग भी सम्मिलित हैं)। सतलज की घाटी में भी आबादी का औसत अधिक है। लुधियाना में ६११ व्यक्ति प्रति वर्ग मील का औसत है जबकि दक्षिण के शुष्क हिसार जिले में यह औसत १९४ और उत्तरी पहाड़ी भाग में ९८ ही है। यहाँ लोग मुख्यतः छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं। घर झोंपड़ियों के रूप में होते हैं जो मिट्टी और फूस की बनी होती हैं। झोपड़ियों की छतें चपटी होती हैं जो यहाँ की शुष्क जलवायु को प्रकट करती हैं। सामान्यतः गाँव के चारों ओर दीवार अथवा खाई बनी रहती है ताकि पशु चुराने वालों और लुटेरों से रक्षा हो सके। गाँव में घुसने के एक या कुछ ही द्वार होते हैं। अमृतसर, चण्डीगढ़, लुधियाना, अम्बाला और पटियाला यहाँ के बड़े नगर हैं।

भारत की राजधानी देहली, सिंध और गंगा के ठीक जल-विभाजक पर स्थित है। इसकी स्थिति बड़ी उत्तम है। देश के समस्त भागों को यहाँ से रेलें व सड़कें जाती हैं। साथ ही यह औद्यौगिक और व्यापारिक केन्द्र भी है।

(ख) ऊपरी गंगा का मैदानी प्रदेश (Upper Ganges Plain's Region)—

यह उप-हिमालय की पेटी और मध्य भारत के अग्र प्रदेश के ढालों के बीच स्थित है। मोटे तौर पर ४० इन्च वाली वर्षा रेखा इस प्रदेश की सीमा रेखा मानी जा सकती है। इसमें पश्चिमी यू० पी० का दो तिहाई भाग सम्मिलित है। किन्तु उत्तर के पहाड़ी जिले (जैसे देहरादून, गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल) तथा दक्षिण में प्रायःद्वीपीय अग्र भाग के जिले (जैसे झांसी, बांदा और हमीरपुर जिले) इसमें सम्मिलित नहीं हैं। लगभग आधा प्रदेश गंगा व यमुना के दोआब के बीच में स्थित है। समस्त मैदान उपजाऊ कच्छार का बना हुआ एक आकारहीन प्रदेश है। उत्तर में थोड़ा तराई का भाग और पश्चिम में भूर भूमि (Bhur-lands) आ गई हैं। इस

---

१. सन् १९५५-५६ तक नांगल बाँध की लहरों द्वारा पंजाब की [illegible] लाख एकड़ और राजस्थान की १·४ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई हुई।

प्रदेश में अनेक प्रकार की मिट्टियां हैं। एक ओर पश्चिम में भारी ऊसर चीका है और दूसरी ओर अधिक शुष्क भागों में नमकीन रेह पाई जाती है। कहीं कहीं बलुही भूर और कहीं दोमट मिट्टी मिलती है। किन्तु खादर की मटियार चीका चावल की खेती के लिये सबसे उत्तम है।

यहाँ का औसत तापमान जनवरी में ५५° से ६४° और मई में ९०° से ९५° रहता है। वार्षिक तापान्तर ११५° फा. से भी अधिक रहता है। उत्तरी पश्चिमी भाग से जाड़े की मौसम विशेष महत्व की होती है। जनवरी में रात्रि को पाला पड़ता है और फरवरी मार्च में ओलों की वर्षा होती है इसके फलस्वरूप कभी-कभी रबी की फसल (गन्ना) को भारी क्षति पहुँचती है। सुदूर उत्तरी पश्चिमी भाग में जाड़ों में वर्षा (जनवरी में एक से दो इन्च तक) होती है जो सहारनपुर और मुज्जफरनगर में गेहूँ की फसल के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध होती है। उत्तरी भागों में जहाँ वर्षा लगभग १५ इन्च हो जाती है बिना सिंचाई के गेहूँ पैदा किया जाता है। उत्तरी पूर्वी भाग में वर्षा की मात्रा ५० इन्च तक पहुँच जाती है। किन्तु दक्षिण पश्चिम में घट कर ३० इन्च हीं रह जाती है।

पश्चिमी जिलों में बिना सिंचाई के काम नहीं चलता। समस्त प्रदेश में बोई जाने वाली फसलों में केवल ३६% फसलें ही सिंचित भूमि पर बोई जाती हैं। दोआब में यह औसत ५०% और मेरठ में ५७% है। इस भाग में नल कूपों (४,३४०) का आधिक्य है। ये नलकूप गंगा के दोनों ओर दोआब की उच्च भूमि पर स्थित हैं जहाँ नहरों द्वारा सिंचाई सम्भव नहीं है। अत: मुरादाबाद, बिजनौर, बुलन्दशहर और बाँदा जिलों में जहाँ भूर मिट्टी आगई है इनका बड़ा महत्व है। प्रत्येक नलकूप से लगभग ३०० एकड़ भूमि सींची जाती है। इन कलकूपों को शक्ति गंगा नहर विद्युत ग्रिड योजना से प्राप्त होती है। नहरों द्वारा भी यहाँ बड़े पैमाने पर सिंचाई होती है। यू० पी० की कुल १२३ लाख एकड़ सिंचित भूमि में से अधिकतर इसी प्रदेश में है। यहाँ की प्रमुख नहरें—पूर्वी यमुना नहर, ऊपरी गंगा नहर और निचली गंगा नहर हैं। ये तीनों नहरें दोआब के लगभग ५०% भाग को सींचती हैं। आगरा व शारदा नहरों के द्वारा ५·१ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होती है। इसके अतिरिक्त दक्षिण प्रायदीप के अग्रप्रदेश के गाँवों में तालाबों द्वारा भी खूब सिंचाई की जाती है।

सिंचाई की सुविधाओं के कारण इस प्रदेश में खेतिहर भूमि का औसत अधिक है। यहाँ का औसत लगभग ६९ प्रतिशत है। यहाँ के खेत बसन्त की फसल के बाद तथा ग्रीष्म के महीनों के अलावा कभी पडती नहीं रहते। यह भूमि पर आबादी के अत्यधिक भार का सूचक है। जंगलों का इस प्रदेश में लगभग अभाव-सा है। जंगल केवल तराई अथवा नदियों के किनारों तक ही सीमित हैं। यहाँ की बोई गई कुल भूमि के तीन चौथाई भाग में गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, चना व मक्का आदि भोज्य फसल उत्पन्न की जाती हैं। चावल के सिवाय लगभग सब फसलें पश्चिम के शुष्क भाग में बोई जाती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मात्रा में तम्बाकू और तिलहन की भी खेती की जाती है। इस प्रदेश में भारत के किसी भी भाग से अपेक्षतया अधिक पशु (Cattle) पाले जाते हैं। जाड़ों की वर्षा और उत्तम कृषि के कारण सहारनपुर, मुज्जफरनगर और मेरठ में बोई गई भमि के १०% से भी अधिक भाग में चारे की फसलें पैदा की जाती हैं। अलीगढ़ और आगरा दुग्ध उद्योग (Dairy Industry) के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये हैं। बंजर भमि की कमी (कुल क्षेत्र केवल

१५%) के कारण मेंड़ व बकरियाँ कम पाई जाती हैं। यहाँ के खेत बहुत छोटे हैं। समस्त राज्य में ८१% से भी अधिक खेत ५ एकड़ से कम के हैं।

इस प्रदेश का क्षेत्रफल ६०,५५६ वर्ग मील और आबादी ३८०·३७ लाख है। प्रति वर्ग मील आबादी का घनत्व ६२८ है। अधिकतर भाग में मिट्टी उपजाऊ है और वर्षा भी अच्छी होती है फिर भी भूमि पर आबादी का दबाव बहुत अधिक है। यमुना और घाघरा के बीच लगभग सर्वत्र ही आबादी का घनत्व ६०० से ८०० के बीच है। विभिन्न जिलों में आबादी का घनत्व इस प्रकार है—रामपुर में ६०७, कानपुर में ८२३, बरेली में ७६८, आगरा में ८०७, अलीगढ़ में ७६५, मेरठ में ६८२, इलाहाबाद में ७३२ और लखनऊ में १,११५ है। सुदूर उत्तर और दक्षिण में पशु संख्या अधिक है और जनसंख्या कम है।

साधारणत: ८८% जनसंख्या ५,००० से कम आबादी वाले गांवों में रहती है। अधिकतर गाँव नदियों के समीप बसे हैं। गाँव की झोपड़ियाँ मिट्टी और फूस से बनी होती हैं गाँव के आसपास नीम, पीपल और आम के कुंज पाये जाते हैं। सुदूर उत्तर तथा शुष्क भागों में मलेरियाप्रद जलवायु और अनुपयुक्त भूमि के कारण गाँव छोटे और पिछड़े हुए पाये जाते हैं। गहरी खेती वाले भागों में खेतों और मकानों के बीच जगह के लिये बड़ी प्रतिस्पर्धा दृष्टिगोचर होती है। ऐसे भागों में आबादी का घनत्व ६०० व्यक्ति प्रति एकड़ तक पाया जाता है। सुदूर पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में मकानों की छतें चपटी होती हैं कुछ पूर्व की ओर छतों के लिये लकड़ी और कीचड़ का प्रयोग किया जाता है। सुदूर पूर्व में झोपड़ियाँ मिट्टी की बनी होती हैं।[1]

गांवों के साथ साथ यहाँ ५,००० से १०,००० आबादी वाले अनेक नगर हैं। इनकी संख्या कोई ३०० के लगभग है जिनकी कुल आबादी २० लाख के लगभग है। नगर या धार्मिक केन्द्र अथवा पुरानी राजधानियाँ हैं जैसे मथुरा, इलाहाबाद, लखनऊ और आगरा। कुछ नगर कृषि की मंडियाँ और कुछ औद्योगिक केन्द्र हैं जैसे मेरठ, बरेली, कानपुर और मुरादाबाद।

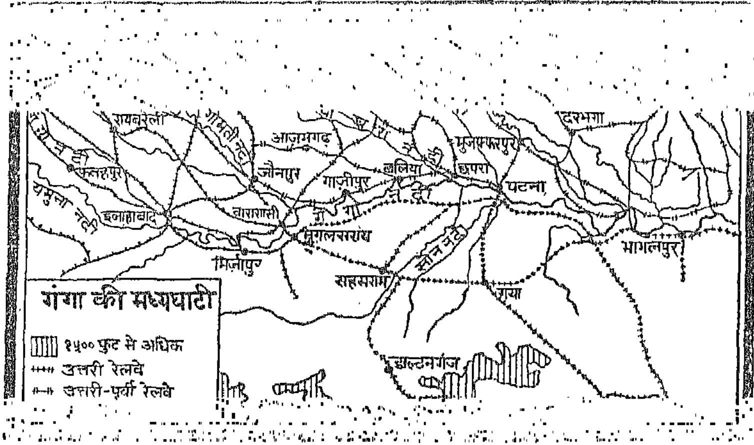
यहाँ के अधिकतर उद्योग कृषि की पैदावार से सम्बन्धित हैं। जैसे शक्कर, बनाना, तेल पेरना, गुड़ बनाना और कपास लोढ़ना, ओटना तथा गाँठें बाँधना। कुटीर उद्योग भी यहाँ काफी उन्नत हैं। इस प्रदेश में रेलों और सड़कों की भी अच्छी व्यवस्था है।

(ग) मध्य गंगा का मैदान (Middle Ganges Plain's Region)—

इस प्रदेश में गंगा के उत्तर की ओर का समस्त बिहार और दक्षिण की ओर गंगा के समीप ही गया, पटना, शाहबाद तथा अन्य जिलों के भाग और यू. पी. में इलाहाबाद के पूर्व का भाग सम्मिलित है। इसका क्षेत्रफल ७४,३४७ वर्ग मील और जनसंख्या ४७६·६ लाख है। यह प्रदेश ऊपरी गंगा के मैदान के शुष्क दोआब (मुख्यत: बांगर) और आर्द्र निम्न गंगा के मैदान के बीच का एक अन्तरिम क्षेत्र है। वर्षा पश्चिम में ४० इन्च और उत्तर में पूर्णिया जिले में ६० इन्च तक होती है। वर्षा की मात्रा हिमालय से गंगा की ओर कम होती जाती है। इस प्रदेश की जलवायु कम विषम है। जाड़ों में अधिकतम और न्यूनतम तापक्रम क्रमशः ८५° फा. और

१. गंगा के मैदान में गांवों के विस्तृत अध्ययन के लिये पढ़िये—K. H. Buschmann, op. cit. pp 16-22.

५०° फा. रहते हैं। गर्मी में जब गरम 'लू' चलती है तो तापक्रम १००° फा. तक हो जाता है। यह प्रदेश कभी कभी वर्षा के अभाव के कारण अकाल ग्रस्त हो जाता है।



चित्र २०३—गंगा का मध्य मैदान

यह प्रदेश एक लम्बा चौड़ा मैदान है जिसकी ऊँचाई ५०० फीट से भी कम है। इस मैदान में गंगा और उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं। ये सब नदियाँ हिमालय से आने के कारण बड़ी मात्रा में अपने साथ मिट्टी बहा लाकर घाटियों में जमा कर देती हैं। इन नदियों के मार्ग बदल देने से मैदान में यत्र-तत्र अनेक छिछली झीलें और दलदल पाये जाते हैं। कहीं कहीं निम्न भूमियों के कारण भी ऐसी झीलें पाई जाती हैं। अब ये दलदल किसी प्रकार सुखा लिये गये हैं और वहाँ खेती की जाने लगी है। इस प्रदेश के ७५% भाग पर खेती की जाती है।

कोसी नदी की भीषणता को रोकने के लिये इस पर एक विशाल बांध बनाया जा रहा है। सोन तथा अन्य नदियों से सिंचाई की जाती है। सोन नहर से लगभग ६·५ लाख एकड़ भूमि सींची जाती है। शेष प्रदेश में पायन (Pynes) द्वारा सिंचाई होती है। कुओं का यहाँ कम महत्व है। सारन जिले में रबी की फसल कुओं द्वारा सींची जाती हैं।

गंगा के दक्षिण में कच्छार का जमाव कम है। वस्तुतः यह पठारी भाग है जो बहुत ही उबड़ खाबड़ है। यह पश्चिम में ८५ मील चौड़ा है। पूर्व में राजमहल की पहाड़ियाँ सीधी गंगा के पास चली गई हैं। इस मैदान का अधिकतर भाग बांगर (Bangar) क्षेत्र है।

यहाँ की समस्त भूमि का ७५% भाग कृषि योग्य, १३% बेकार और शेष १२% कृषि के लिये अलभ्य है। उत्तर की ओर तराई को छोड़ कर अन्य जगह जंगलों का अभाव है। तराई में साल के वृक्ष और लम्बी मोटी घास पैदा होती है। बोई गई फसलों में चांवल का स्थान प्रथम है। चावल के बाद गेहूँ और जौ का स्थान है। फसलों के सापेक्षिक महत्व का अन्तर ४० इन्च वर्षा वाली रेखा के समीप स्पष्ट

देखा जाता है। उदाहरणत: फैजाबाद में गेहूँ का क्षेत्र चावल के क्षेत्र की तुलना में आधा है। किन्तु पूर्व की ओर गोरखपुर, तिरहुत, पटना और भागलपुर में गेहूँ का औसत १२ से १५ प्रतिशत ही रह जाता है। ज्वार, बाजरा और कपास की फसलों का लगभग कोई महत्व नहीं है। परन्तु काफी बड़े भाग में तम्बाकू और तिलहन की खेती है। इलाहाबाद में चावल की फसल ही अधिक महत्वपूर्ण है। पूर्वी भाग में जूट और गन्ना प्रचुरता से बोया जाता है।

बिहार की कुल बोई भूमि के २१% भाग में सिंचाई होती है। इसके विपरीत यू० पी० में ३०% भाग में सिंचाई होती है। पूर्वी भाग आर्द्र होने से वहाँ वर्ष में तीन फसलें उत्पन्न की जाती हैं। यहाँ पश्चिम की खरीफ के बजाय पतझड़ की भदानी (Bhadani) और जाड़ों की 'अगहनी' (Aghani) फसल बोई जाती हैं। ये फसलें उत्तर पूर्व में अधिक महत्वपूर्ण हैं।[1]

औद्योगिक दृष्टि से इस प्रदेश का विशेष महत्व नहीं है। यहा के उद्योगों में शक्कर, सीमेन्ट, सिगरेट बनाने और चावल कूटने के उद्योग प्रमुख हैं।

इस प्रदेश में आबादी का घनत्व बहुत ऊँचा है। यहां के २३ जिलों में से बहराइच और पूर्णिया जिले में ही घनत्व कम है क्योंकि इनका बहुत सारा भाग तराई में आ गया है और जलवायु भी मलेरियाप्रद है। इनका घनत्व क्रमश: ५१० और ५२४ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। साधारणत: इस प्रदेश में आबादी का घनत्व ६०० से ९७५ व्यक्ति प्रति वर्ग मील के बीच में है। बालिया, दरभंगा, सारन और मुज्जफरपुर का एक पूरा क्षेत्र १०,२२४ वर्ग मील है, जिसमें आबादी का घनत्व १,०१२ से १,१८२ तक पाया जाता है। इसमें कुछ शहरी आबादी भी शामिल है। किन्तु यहां बड़े बड़े शहर कम और दूर दूर हैं। यहां शहरों की संख्या कुल १३ ही है जिनमें ५०,००० से ऊपर जनसंख्या है। यहां की कुल ४ से ४½ करोड़ जनसंख्या में से करीब १२ लाख लोग ही शहरों में रहते हैं। जनसंख्या का अधिकतर भाग ५०० से १,००० आबादी वाले गाँवों में रहता है। बिहार के मैदानी भाग के गांव एक प्रकार से झोपड़ियों के समूह हैं जो कृषि पर निर्भर हैं। यहाँ के साधारण घर मिट्टी के बने होते हैं। इनकी छतें फूस अथवा बाँस की होती हैं। जमींदार तथा धनी वर्ग के लोग ऊँचे स्थानों पर ईंट के पक्के मकानों में रहते हैं। यहां भूमि पर आबादी का दबाव इतना अधिक है कि प्रतिवर्ष यहाँ के लोग बेकारी के मौसम में आसाम के बगीचों, बंगाल की गोदियों में काम करने जाते हैं।

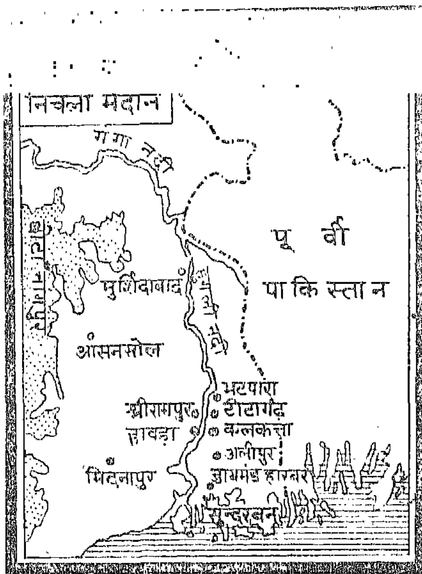
(घ) **गंगा का निचला-मैदान** (The Lower Ganges Plain's Region)—

इस प्रदेश में जलपाईगुड़ी, दार्जिलिंग और कूचबिहार जिलों को छोड़कर समस्त पश्चिमी बंगाल सम्मिलित है। इसका क्षेत्रफल २८,३३३ वर्ग मील और आबादी २४० लाख है। यहाँ की जलवायु एकदम नम है। नमी के कारण ग्रीष्म में गर्मी विशेष तीव्र नहीं होती। ठंडी मौसम अपेक्षतया बहुत छोटी होती है। वर्षा का औसत ५० से ६० इन्च के बीच रहता है। वर्षा की मात्रा उत्तर की ओर बढ़ती जाती है। मार्च और अप्रेल में यहाँ नोरवेस्टर्स (Norwesters) के द्वारा भारी वर्षा होती है। जूट

---

१. बिहार में फसलों के क्रमिक परिवर्तन के लिये देखिये—P. Dayal's Agricultural Geography of Bihar. pp. 262-65 Quoted by. Dr. Spate.

तथा ग्रॉस (Aus) चावल की फसलों के लिये यह वर्षा बहुत ही महत्वपूर्ण होती है।



चित्र २०४—गंगा का निचला मैदान

तटीय मैदान में सुन्दर वन फैले हुए हैं। वह प्रदेश समुद्रतल से ५० फीट से अधिक ऊँचा नहीं है। इसके पश्चिम में प्रायद्वीप पठार की कठोर चट्टानें आ गई हैं। इस ओर पठार से बहकर अजय, दामोदर और रूपनारायण नदियां बहकर आती हैं जो भागीरथी और हुगली में मिल जाती हैं। दक्षिण की ओर मिदनापुर की निम्न भूमि आगई है जो अंशतः डेल्टा का ही भाग है।

तराई में साल के जंगलों के सिवाय शुष्क भूमि पर बहुत ही कम वनस्पति पाई जाती है। यहां की कुल भूमि के ६५% भाग पर कृषि होती है। यहां बोई जाने वाली फसलों में जूट और चावल का विशेष स्थान है। यहां की कुल १३२ लाख एकड़ बोई गई भूमि में से १०१ लाख एकड़ में चावल और १६ लाख एकड़ में जूट पैदा होता है। इनके अतिरिक्त तम्बाकू, गन्ना और चाय भी बोई जाती है। यहाँ के औसत खेत ३ एकड़ के हैं—६२ प्रतिशत खेत ५ एकड़ से कम हैं। फलस्वरूप यहां भूमि पर दबाव अधिक है।

कलकत्ता और हुगली यहां का बड़ा औद्योगिक क्षेत्र है। इस क्षेत्र में जूट, कपड़े तथा इन्जीनियरिंग सम्बन्धी अनेक कारखाने हैं। दामोदर घाटी खनिज पदार्थों का भंडार है। इस घाटी १००% तांबा और काइनाईट, ८३% लोहा, ८०% कोयला, ७०% क्रोमाईट और अभ्रक, ५% फायरक्ले, ४५% चीनी मिट्टी; २०% चूने का पत्थर; १०% मैंगनीज और १०% इमारती पत्थर भरा पड़ा है[१]।

यहां की जनसंख्या पूर्णतः बंगला भाषा-भाषी है। यहां की कुल आबादी का २४ प्रतिशत भाग शहरों में रहता है। इस शहरी आबादी का भी आधा भाग हुगली प्रौद्योगिक क्षेत्र में रहता है। कलकत्ता में १० वर्ग मील के अन्दर लगभग २५ लाख मनुष्य रहते हैं। हुगली भागीरथी क्षेत्र में ३,००० वर्ग मील में १०० लाख लोग रहते हैं। गांवों में आबादी का घनत्व २,००० व्यक्ति प्रति वर्ग मील पड़ता है। यहाँ के गांवों में घर मिट्टी के बने होते हैं तथा छतें फूस की छायी रहती हैं।

(ङ) ब्रह्मपुत्र घाटी का प्रदेश (Brahamputra Valley Region)—

यह प्रदेश गंगा नदी के विस्तृत कच्छारी मैदान से भिन्न है। ब्रह्मपुत्र की घाटी ५०० मील लम्बी और ५० मील चौड़ी है। नदी चौड़ी होने से अनेक स्थानों पर यह कई

१. D. N. Wadia: Geoglogical & Geographical Distribution of India's Minerals. 1949.

भागों में बँट जाती है और पुन: मिल जाती है। इसके क्षेत्र में ऊँचे कंकड़ीले चबूतरे और बाढ़ग्रस्त दलदली भाग तथा उपजाऊ कच्छारी मैदानी भाग सम्मिलित हैं। यह घाटी

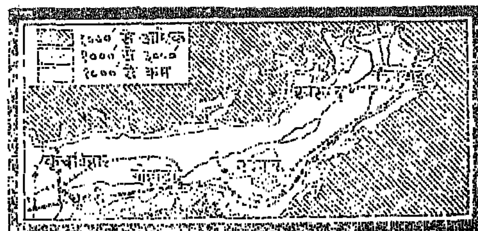


चित्र २०५—बंगाल के गांव का एक घर

बहुत ही उपजाऊ है। यहाँ वर्षा का औसत ८०″ के ऊपर रहता है। जाड़ों में यह बंगाल के डेल्टे की अपेक्षा ठंडा रहता है। जाड़ों में प्राय: पाला गिरा करता है।

चावल यहाँ की मुख्य फसल है। इसके बाद चाय और जूट का स्थान है। चाय के बाग नदी के साधारण ढालों पर पाये जाते हैं। पूर्वी सीमान्त के पास कुछ छोटे तेल के कुएं पाये जाते हैं। जल विद्युत शक्ति घाटी का महत्वपूर्ण प्राकृतिक साधन है।

इस प्रदेश का क्षेत्रफल २१,०७१ वर्ग मील और आबादी ६६·६ लाख है। गंगा के निचले मैदान की अपेक्षा यहाँ आबादी का घनत्व कम है। यहाँ आबादी का अधिकतर जमाव घाटी के पश्चिमी सिरे पर हुआ है। गोलपारा और कामरूप जिले में आबादी का घनत्व क्रमश: २७८ और ३८८ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। इसके विपरीत धरांग में प्रति वर्ग मील आबादी के घनत्व का मुख्य कारण बेकार भूमि की अधि-



चित्र २०६—ब्रह्मपुत्र की घाटी

कता है। यहाँ के कुल क्षेत्रफल का ४८ प्रतिशत भाग बेकार है और केवल २१ प्रतिशत भाग में ही कृषि होती है। इसके अतिरिक्त बहुत सा भाग घने जंगलों, दलदलों और बाढ़ के मैदान की झीलों से घिरा हुआ है। यहाँ अधिकतर आबादी प्रायः नदी उत्तलों के समीप छुटपटे झोपड़ों में रहती है। गाँवों की संख्या कम है। झोपड़ियों के चारों ओर बाँस, खजूर तथा फलों के वृक्ष लगे होते हैं। यहाँ किसानों के पास खेत ५ एकड़ से भी कम होते हैं जिन पर चावल बोया जाता है। कुछ टुकड़ों पर गन्ना और सुपारी भी पैदा होती है।

यहाँ अधिकतर लोग घने आबाद बंगाल, बिहार और नैपाल से चाय के बागों व खेतों में काम करने आते हैं। फलस्वरूप आसाम की आबादी बढ़ गई है और बेकार पड़त भूमि भी उपयोग में लाई गई है। भूमि सुधार के कारण कई बस्तियाँ बसाना भी संभव हुआ है। यहाँ की आबादी का ५ प्रतिशत नगरों में रहता है और केवल दो लाख व्यक्ति ही १० हजार से अधिक आबादी वाले नगरों में रहते हैं।

३. दक्षिण का पठार (Deccan Plateau)—

दक्षिण का पठार उत्तर के मैदान से पश्चिम से पूर्व को फैली हुई विशाल पहाड़ी श्रेणियों द्वारा अलग हो गया है। इन पहाड़ी श्रेणियों में सतपुड़ा, महादेव और मैकाल प्रमुख हैं। इनके उत्तर में विन्ध्याचल, उत्तर-पश्चिम में अरावली और दक्षिण में अजन्ता की पहाड़ियाँ हैं। भौगोलिक दृष्टि से से यह प्रदेश अत्यन्त प्राचीन और स्थिर भूखंड है। इसी कारण यह भूकम्पों के प्रभाव से मुक्त है। इस पठार का अधिकतर भाग अति प्राचीन युग (Archean) की अत्यन्त रूपान्तरित मणीभीय चट्टानों द्वारा हुआ है। इन चट्टानों में नीस और शिष्ट मुख्य हैं। कहीं-कहीं धारवाड़ युग की ग्रेनाईट प्रकार की चट्टानें भी पाई जाती हैं। इन चट्टानों में अमूल्य सम्पदा छिपी पड़ी है। बिहार और उड़ीसा खनिज सम्पदा की दृष्टि से भारत के सर्वाधिक समृद्ध राज्य हैं। यहाँ न केवल भारत का $\frac{3}{4}$ से अधिक कोयला ही छिपा हुआ है अपितु बड़ी मात्रा में लोहा, मेंगनीज, तांबा, बोक्साइट, क्रोमियम, अभ्रक, चूने का पत्थर और फोस्फेट भी पाया जाता है। मैसूर भारत का एकमात्र सोने का उत्पादक है। क्रोमियम और पीली मिट्टी भी यहाँ निकलती है। तेलंगाना में कोयला, अभ्रक, ग्रेफाईट व ताँबा तथा मध्य प्रदेश और दक्षिणी पूर्वी राजस्थान में कोयला, बालुका प्रस्तर, स्लेट, चूने का पत्थर, संगमरमर व हीरा निकलता है। आगरा, दिल्ली और जयपुर की इमारतों के लिये पत्थर सब यहीं से प्राप्त हुआ है। पठार का बहुत सारा भाग क्रिटेसियस काल में निकले पैठिक लावा से ढका हुआ है जो कपास की खेती के लिये वरदान सिद्ध हुआ है। पठार के शेष भाग में लाल और लेटराइट मिट्टी बिछी हुई है जो अनउपजाऊ है। इन पर केवल ज्वार, बाजरा उत्पन्न किया जाता है।

यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि यहाँ की कठोर चट्टानें खनिज पदार्थों में धनी हैं किन्तु अनउपजाऊ हैं। वर्षा का जल बहुत शीघ्र ढलुवाँ पठार से होकर नदियों द्वारा बह जाता है। नर्मदा और ताप्ती पठार के जल को अरबसागर में एवं महानदी, कृष्णा, गोदावरी व कावेरी बंगाल की खाड़ी में उड़ेलती हैं। पठार का धरातल नदियों की काँट-छाँट के कारण बहुत ही ऊँचा-नीचा हो गया है। जहाँ नदियाँ पठार से नीचे उतर आती हैं यहाँ झरने और प्रपात बनाती हैं। इन प्रपातों से मद्रास, मैसूर, केरल और पश्चिमी घाट पर जल-विद्युत उत्पन्न की जाती है।

नदी की घाटी पठार को दो असमान भागों में बाँटती है। एक मालवा का

पठार और दूसरा दक्षिण का मुख्य पठार। नर्मदा नदी पठार को नहीं अपितु भारत की दो प्रमुख जातियों को भी अलग करती है। इसके उत्तर में आर्य भाषा-भाषी आर्य जाति है और दक्षिण में द्रविड़ भाषा-भाषी द्रविड़ जाति के लोग हैं। पठार दक्षिण पश्चिम में सबसे अधिक ऊँचा है और शनैः शनैः पूर्व की ओर ढालू हो गया है। इसके पश्चिमी किनारे पर पश्चिमी घाट पहाड़ खंड हैं। यह पहाड़ ३,००० फीट ऊँचे और अत्यन्त ढालू हैं। पूर्वी सिरे पर पूर्वीघाट पहाड़ हैं जो कम ऊँचे और विशृंखलित हैं। कई बड़ी-बड़ी नदियाँ इनके बीच में होकर बहती हैं। पूर्वी और पश्चिमी दोनों घाट नीलगिरी के समीप मिल गये हैं।

प्रायःद्वीपीय भारत दो मुख्य भागों में बंटा हुआ है। एक सतपुड़ा के दक्षिण की ओर का भाग और दूसरा नर्मदा के उत्तर का भाग। प्रथम भाग में (१) दक्कन प्रदेश (२) दक्कन लावा प्रदेश या महाराष्ट्र जो बम्बई में है और (३) पठार का उत्तरी पूर्वी प्रदेश सम्मिलित हैं। पठार का उत्तरी-पूर्वी प्रदेश पाँच उप-भागों में बँटा है।

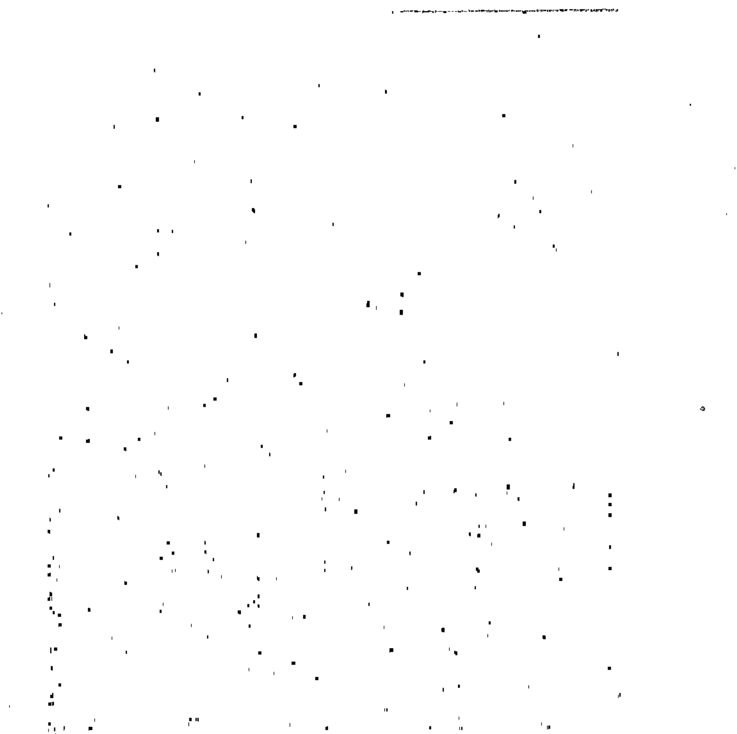
(क) मध्य भारत की उच्च भूमियाँ, (ख) छोटा नागपुर का पठार, (ग) पूर्वी घाट या बस्तर-उड़ीसा की उच्च भूमि, (घ) छतीसगढ़ का मैदान या महानदी की घाटी और (ङ) गोदावरी की घाटी। द्वितीय भाग में (क) मध्य भारत का अग्र-प्रदेश, (ख) राजस्थान का उच्च प्रदेश और (ग) थार का रेगिस्तान सम्मिलित है।

(१) सतपुड़ा के दक्षिण ओर का भाग—

(क) दक्कन प्रदेश (Deccan Region)—इस प्रदेश का क्षेत्रफल १,०५,२०१ वर्ग मील और जनसंख्या २७० लाख है। इस प्रदेश में समस्त मैसूर राज्य और तेलंगाना तथा महाराष्ट्र का धारवाड़ जिला शामिल है। दक्षिण का अधिकतर भाग २,००० फीट से ऊँचा है। निम्न भाग में कृष्णा व उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं।

जलवायु की दृष्टि से यह पश्चिमी घाट का मुख्य वृष्टि छाया प्रदेश है। पहाड़ी तलैटियों को छोड़कर वर्षा का औसत ४०″ से कम है। कुछ भागों में तो यह औसत २०″ से भी कम है। इस भाग की वर्षा बड़ी अनियमित है। तटों की अपेक्षा तापक्रम काफी ऊँचे रहते हैं। जाड़ों में ऊँचाई के कारण कम तापमान रहता है। लाल मिट्टी सिंचाई के उपयुक्त है। कृषि तालाबों की सिंचाई पर निर्भर है। यद्यपि यहाँ के ५४ प्रतिशत भाग पर खेती की जाती है परन्तु फसलों का उत्पादन बहुत कम होता है। इनके पीछे मूल कारण मिट्टी का कम उपजाऊ होना है। यहाँ का वन क्षेत्र लगभग १६ प्रतिशत है। वन मुख्यतः आर्द्र पश्चिमी भाग में पहाड़ों के ढालों पर केन्द्रित हैं। मलाद (मैसूर का पश्चिमी आधा आर्द्र भाग) में मिश्रित पतझड़ वाले जंगल हैं जिनमें सागौन, शीशम व चन्दन के पेड़ मिलते हैं। **मैदान** (मैसूर का शुष्क आधा पूर्वी भाग) में गन्ना और चावल और नारियल के खेत मिलते हैं। पूर्व की ओर लाल मिट्टी वाली उच्च भूमियों पर रागी तथा अन्य शुष्क फसलें पैदा होती हैं। मध्य का पथरीला भाग चरागाहों से ढका है। दक्षिण में नीलगिरी पर्वत सागौन, चन्दन, यूकिलिप्टस और सिनकोना आदि पेड़ों के जंगलों से ढके हैं। नीलगिरि के दक्षिण में अनामलाई और इलायची की पहाड़ियाँ हैं। इन पर वन जातियों द्वारा झूमिंग खेती की जाती है। यहाँ चाय और कॉफी के कुछ बागान भी पाये जाते हैं।

जल-विद्युत का भी यहां अच्छा विकास हुआ है। पल्लीवासल और मैटूर योजना यहाँ की दो प्रसिद्ध जल-विद्युत योजनायें हैं। शुष्क पहाड़ी ढालों पर भेड़ें पाली जाती हैं। गाय भैंसें भी इस प्रदेश में बहुत हैं। मैसूर की नस्ल तो काफी प्रसिद्ध है। शुष्क भागों में पशुओं के लिये घास आदि की फसलें बोई जाती हैं। चावल और ज्वार-बाजरा यहाँ की मुख्य फसलें हैं। खनिज पदार्थों में मैंगनीज, लोहा, सोना और क्रोमाईट खोदा जाता है।



चित्र २०७—दकन प्रदेश

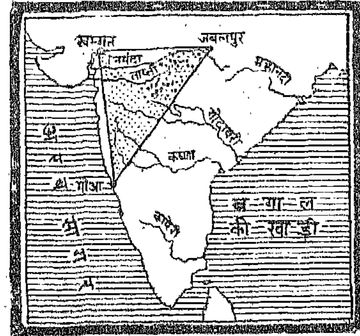
तेलंगाना में अधिकतर भूमि १,६०० से २,००० फीट के बीच में ऊँची है। यहाँ पर हल्की लाल मिट्टी पाई जाती है। यहाँ का औसत तापमान ६०° फा० और वर्षा २५″ से ३५″ तक होती है। कुछ घाटियों को छोड़कर शेष भाग में जीवन कठिन है। तालाबों द्वारा सिंचाई का प्रचार अधिक है चावल की अधिकतर खेती करनूल और कड़प्पा जिलों की सिंचित घाटियों में केन्द्रित है। चावल के अतिरिक्त ज्वार, बाजरा, रागी, तिलहन, कपास, तम्बाकू और दालें बोई जाती हैं किन्तु यह क्षेत्र खाद्यान्नों की दृष्टि से अभावपूर्ण क्षेत्र है। वर्षा की कमी को दूर करने के लिये तुंगभद्रा योजना का निर्माण किया गया है। यह बाँध ८,००० फीट लम्बा और १७० फीट ऊँचा है। इसके द्वारा ८·३ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होने की आशा है।

आबादी इस प्रदेश में कम है। आबादी का औसत हैदराबाद में २२; मैसूर में ३००, अनन्तपुर में २०१, कड़प्पा में १९६ और करनूल में केवल १७४ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। इस प्रदेश के दक्षिण पश्चिम में लगभग सब लोग कन्नड़ भाषा-भाषी हैं। शेष भाग में तेलुगू मुख्य भाषा है। मैसूर और कर्नाटक में आवास बड़ा ही जटिल है। उत्तर में बड़े-बड़े गाँव और मुख्य सड़कें बाढ़ के भय से नदियों के किनारों से काफी दूर स्थित हैं। घर सामान्यत: जलाशयों के निकट मिलते हैं। यहाँ घरों की छतें चपटी और दिवारें मिट्टी की बनाई जाती हैं। शुष्क तथा ऊँचे अनउपजाऊ भागों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में गाँव बड़े और सम्पन्न हैं। तेलंगाना में गाँव मुख्यत: तालाबों के समीप केन्द्रित हैं। यहाँ मकान मिट्टी और पत्थर से बनाये जाते हैं और छतें थापी हुई होती हैं।[1]

मैसूर, बंगलौर, बेलगाँव, धारवाड़, बीजापुर, बलारी, करनूल, हैदराबाद और वारंगल इस प्रदेश के महत्वपूर्ण औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र हैं।

(ख) दक्कन लावा प्रदेश (Deccan Lava Region)—

इस प्रदेश का क्षेत्रफल १०,२२,०८ वर्ग मील और आबादी २३९ लाख है। इसमें धारवाड़ जिले को छोड़कर समस्त महाराष्ट्र आधा पश्चिमी आंध्र और आधा पश्चिमी मध्य प्रदेश सम्मिलित है। यह "महाराष्ट्र" अथवा "मराठवाड़ा" के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह पश्चिमी घाट के वृष्टि छाया (२०″–३०″) प्रदेश में स्थित है किन्तु इसका उत्तरी पूर्वी भाग बंगाल की खाड़ी के मानसून के प्रभाव में रहता है अत: यहाँ ४०″ वर्षा होती है। बेलगाँव में ५०″ और पूना में २७″ वर्षा होती है। बीजापुर और अहमदनगर २०″ से ३०″ वर्षा के क्षेत्र में हैं। इस भाग में तालाबों की संख्या अपेक्षतया कम है। कुएँ ही सिंचाई के मुख्य साधन हैं। यहाँ पर बनी हुई हुथा (Hutha) और निरा (Nira) नहरों द्वारा लगभग २ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होती है। अहमदनगर, शोलापुर, आकोला, बुलढ़ाना, अमरावती और यवतमाल आदि सभी जिलों में सिंचाई की जाती है। मालवाड़ में सिंचाई की सुविधा सीमित ही है।



चित्र २०८—लावा प्रदेश

सतपुड़ा पर्वत और पश्चिम में घाट तक का भाग काली मिट्टी तक ढका है। उत्तरी पश्चिमी दक्कन का भाग एक ऊँचा नीचा मैदान है जहाँ से चपटे सिरे वाली पहाड़ी श्रेणियाँ ऊँची उठती हैं। ये पहाड़ियाँ लावा से बनी होने के कारण सीढ़ीनुमा कटी हुई प्रतीत होती हैं। यहाँ की मिट्टी काली और नमी को रखने वाली है। पठार की अपेक्षा घाटियों में मिट्टी गहरी और उपजाऊ है। हाँ तालाबों की संख्या अपेक्षतया कम है। दक्षिण की ओर भूमि नीची है। पूर्णिया की घाटी तथा वर्धा और ताप्ती नदी का ऊपरी भाग लगभग १,००० फीट ऊँचा है। दक्षिण का

१. W. Burns, Sons of the Soil, 1941. p.5.

मुख्य पठार वस्तुतः बरार और नागपुर के इन ऊँचे मैदानों के दक्षिण से प्रारंभ होता है।

यहाँ की कुल भूमि के ५०% भाग में खेती की जाती है। लगभग १७% भूमि बेकार है और १८% जंगलों से ढकी है। वर्षा की कमी और सिंचाई के अन-उपयुक्त भूमि होने से चावल का बहुत ही कम महत्व है। घाटों के नीचे तथा अमरावती और वर्धा घाटी में सिंचाई द्वारा चावल की खेती की जाती है। वर्षा और मिट्टी दोनों ही ज्वार बाजरे की खेती के लिये उपयुक्त हैं। अस्तु, ये दोनों ही यहाँ की मुख्य खाद्य फसलें हैं। कृषि भूमि के आधे भाग में ज्वार, बाजरा ही उत्पन्न किया जाता है। उत्तर की ओर गेहूँ का महत्व अधिक है। उत्तर पश्चिम में कपास और तिलहन मुख्य फसलें हैं। यह क्षेत्र भारत का अद्वितीय कपास उत्पादक क्षेत्र है। यहाँ अधिकतर छोटे रेशे वाली कपास होती है।

यद्यपि यहाँ की भूमि के लगभग ६७ प्रतिशत भाग पर खेती होती है किन्तु आबादी का घनत्व साधारणतः १७० से ३०० व्यक्ति प्रति वर्ग मील के बीच ही पाया जाता है। मालनद (Malnad) में घनत्व सबसे अधिक है। यह प्रदेश हृष्ट-पुष्ट मराठों का घर है। मराठी यहाँ की मुख्य भाषा है। मराठवाड़ा (अर्थात् पश्चिमी हैदराबाद) और तेलंगाना (अर्थात् पूर्वी हैदराबाद) के बीच आबादी के घनत्व में बहुत कम अन्तर है। विभिन्न जिलों में आबादी का औसत प्रति वर्ग मील क्रमशः इस प्रकार है—आदिलाबाद १२८; औरंगाबाद १८७; अहमदनगर २१३; निजामाबाद २८२; उसमानाबाद २१८ और हैदराबाद में २२५। इसके विपरीत अनन्तपुर में २०१; कडप्पा में १९६ और करनूल में १७४ है।



चित्र २०९—आंध्र प्रदेश के मेधक जिले का रामतीर्थ गांव

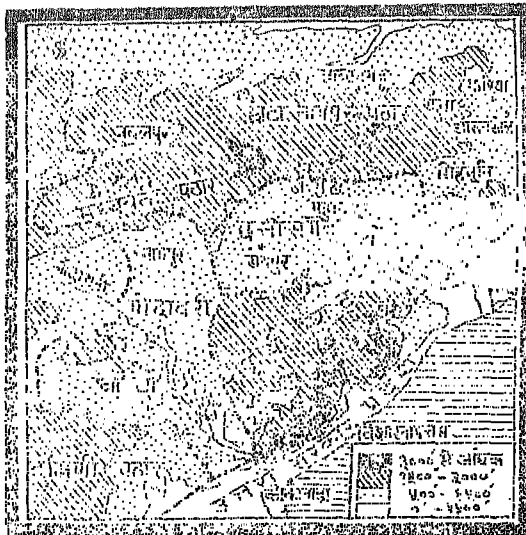
लावा की भूमियों पर गांव प्रायः बड़े और सघन आबाद हैं। साधारणतः सब समान दूरी पर पाये जाते हैं किन्तु गंगा की घाटी की अपेक्षा इनके बीच की दूरी अधिक होती है। मकान प्रायः ईंट और पत्थर के बने होते हैं जिनकी छतें कोल्हू से ढकी होती हैं। कई गांव एक छोटे दुर्ग के आसपास स्थित पाये जाते हैं।

प्राय: गांव घाटियों में कुओं के समीप बसे पाये जाते हैं। इसकी तुलना में तेलंगाना की भूमि पथरीली है। यहाँ तालाबों के आसपास रागी और चावल पैदा किया जाता है। अत: यहाँ के गांव प्राय: छोटे और छितरे हुए पाये जाते हैं। प्रत्येक गांव किसी तालाब के निकट ही बसा होता है।

अहमदनगर, औरंगाबाद और कोल्हापुर यहाँ के मुख्य व्यापारिक और प्रशासनिक नगर हैं। नासिक एक तीर्थ स्थान है। आकोला, वर्धा, यवतमाल, अमरावती और गुलबर्गा प्रमुख मंडियाँ हैं। पूना और शोलापुर महत्वपूर्ण औद्योगिक शहर हैं।

(ग) उत्तरी पूर्वी पठारी प्रदेश (North East Plateau Region)—

यह प्रदेश सतपुड़ा, महादेव और मैकाल का पूर्वी भाग है। यह पठार समुद्र तल से ५०० फीट से अधिक ऊँचा है। कहीं कहीं इसकी ऊँचाई २,००० फीट तक पाई जाती है। यह पठार प्राचीन चट्टानों का बना हुआ है किन्तु कहीं कहीं घाटियों में कच्छार और पुरानी तलछट भी पाई जाती है। इन चट्टानों में लोहा, बोक्साइट, अभ्रक, कोयला और चूने का पत्थर आदि महत्वपूर्ण खनिज पाये जाते हैं। यहाँ की औसत वर्षा ४०" से ऊपर है। हजारीबाग पठार के उत्तरी भाग और दामोदर की निम्न घाटी में ५०" से कम वर्षा होती है किन्तु पठार के उच्च भाग तथा रांची के दक्षिण पश्चिम में ६०" से भी अधिक वर्षा होती है। पठार के अधिकतर भाग में कमजोर और मिट्टी की पतली तह पाई जाती है। यहाँ बलुही अथवा लाल चीका मिट्टी मिलती है। मिट्टी में नाइट्रोजन और चूने की बड़ी कमी पाई जाती है। जंगलों के अविवेकपूर्ण नाश के कारण अधिकतर भाग में नदियों द्वारा बड़ी मात्रा में कटाव होता है। भूमि के कटाव की यह क्रिया पूर्वी घाट के ओर के भाग में अधिक होती है।



चित्र २१०—उत्तरी पूर्वी पठार

पठार की भूमि का अधिकतर भाग जंगलों से ढका है। जंगलों में साल,

सागौन, बांस, महुआ, सबाई घास और लाख आदि के पेड़ बहुतायत से पाये जाते हैं। पठार के चौड़े भागों में लम्बे चौड़े घास के मैदान अथवा झाड़ियों के क्षेत्र पाये जाते हैं। छोटा नागपुर के पठार, मध्य के उच्च प्रदेश और पूर्वी घाट के भागों में गोंड, सन्थाल आदि वन्य जातियों द्वारा झूमिंग प्रणाली द्वारा कृषि की जाती है। छोटा नागपुर के पठार पर सन्थाल लोग चौड़ी घाटियों में रहते हैं और भैंसों के बड़े झुण्डों को पालते हैं। उच्च भागों में पहारिया (Paharia) लोग पहाड़ी ढालों पर मक्का, ज्वार-बाजरा, तिलहन और दालों की खेती करते हैं। मध्य के उच्च प्रदेश में (जो कि कम उपजाऊ भाग है) बाणगंगा और पंचनदी की घाटियों में ज्वार, कोदम, गेहूँ और कुछ कपास तथा गन्ना पैदा किया जाता है। अन्यत्र कृषि छोटे-छोटे खेतों तक सीमित है। नदियों की चौड़ी घाटियों तथा घाटी के ढालों पर चावल बोया जाता है। महानदी के ऊपरी बेसिन में भी कई स्थानों में चावल बोया जाता है। रायपुर और बिलासपुर जिलों में यद्यपि दालें, तिलहन और गेहूँ भी बोया जाता है किंतु चावल यहाँ की महत्वपूर्ण पैदावार है। महानदी के ऊपरी उपविभाग में जहाँ वर्षा ५५" ही होती है, सिंचाई की आवश्यकता होती है। नहरी सिंचाई शीवनाथ महानदी दोआब में होती है। दोआब के ऊपरी भागों में तालाबों द्वारा सिंचाई की जाती है। कुओं की सिंचाई पान की खेती के लिये की जाती है। सम्बलपुर के समीप महानदी के सकड़े मार्ग पर हीराकुण्ड नामक बाँध बनाया जा रहा है। इस योजना के द्वारा १० लाख एकड़ में सिंचाई होगी। दामोदर घाटी योजना इस क्षेत्र की दूसरी महत्वपूर्ण योजना है। इस योजना के अन्तर्गत दामोदर व उसकी सहायक नदियों पर आठ बाँध बनाये जा रहे हैं। इनसे न केवल सिंचाई ही होगी बल्कि ३·७ लाख किलोवाट जल-विद्युत् भी उत्पन्न होगी। श्री स्पेट का उत्तरी पूर्वी पठारी प्रदेश के बारे में यह कथन है कि "यदि हम सम्पूर्ण प्रदेश को लें तो सिवाय खनिज साधनों के यह प्रदेश संभवतया भारत का सर्वाधिक जंगली भाग है।" यह भारत का सबसे अधिक जंगली और कम परिचित भाग है। यह भारत के आदिवासियों के लिये सदा से ही एक शरण-स्थल रहा है।

इस प्रदेश में आबादी का वितरण अत्यन्त ही असमान है। कृषि योग्य भूमि की अपेक्षतया कमी होने के कारण, छोटा नागपुर पठार पर आबादी का घनत्व उत्तरी मैदान की तुलना में बहुत ही कम है। उदाहरणतः सारन और हजारीबाग जिलों में आबादी का घनत्व क्रमशः १,१८२ और २७६ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। यदि हम सम्पूर्ण बोये गये क्षेत्र को दृष्टि में रखें तो घनत्व क्रमशः १,२७२ और १,१७२ बैठता है। अन्यत्र पठार पर आबादी कम है। आबादी का औसत रांची में २६५; पालामऊ में २००, संथाल परगना में ४२५, सरगुजा में ९५ और सुन्दरगढ़ जिलों में १४४ है। मध्य के उच्च प्रदेश में छिन्दवाड़ा में यह औसत १३६ ही है। पूर्वी घाट और बस्तर में आबादी का घनत्व गंजाम जिले में ११३, कालाहांडी में १६६, कोरापत में १२९ और बस्तर जिले में केवल ६० व्यक्ति प्रति वर्ग मील में रहते हैं। गोदावरी की घाटी में भी बहुत कम आबादी पाई जाती है। आबादी का औसत माँडला में १०७, बालाघाट में १६४, भंडारा में २९९, चाँदा में १०६, द्रुग में १९६ और नागपुर में ३२१ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है।

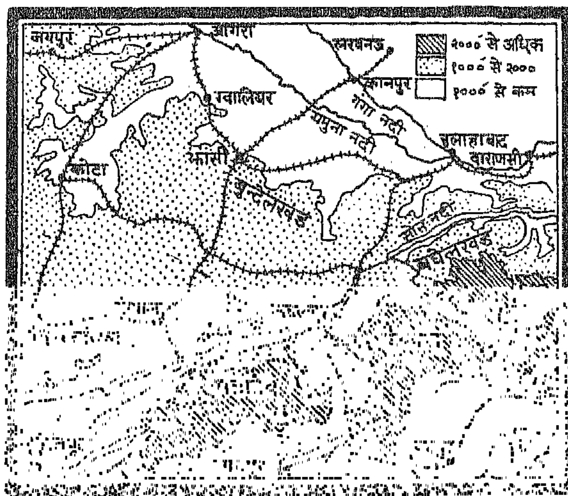
इस क्षेत्र में गाँव प्रायः किसी घाटी में तालाब व कुएं के समीप केन्द्रित पाये जाते हैं। गाँवों में मकान काफी पास-पास और मिट्टी के बने होते हैं। कहीं-कहीं

पत्थरों का भी प्रयोग किया जाता है। यातायात के साधनों का बहुत कम विकास हुआ है। गोदावरी की घाटी में गोदावरी नदी कुछ समय के लिये नाव्य होती है। एक रेल मार्ग रायपुर से विशाखापट्टनम तक गया है। छोटा नागपुर के पठार पर सड़कें ही यातायात के लिये एक मात्र साधन हैं। यद्यपि यह प्रदेश खनिज पदार्थों और वनों की दृष्टि से धनी है किन्तु आर्थिक और औद्योगिक दृष्टि से समस्त क्षेत्र बहुत ही पिछड़ा हुआ है। नागपुर, रायपुर और राँची इस प्रदेश के महत्वपूर्ण शहर हैं जो अपने सूती वस्त्र तथा लाख व्यवसाय के लिये प्रसिद्ध हैं।

(ii) नर्बदा के उत्तर की ओर का प्रदेश

(क) मध्य भारतीय अग्र प्रदेश (Central India Highlands)—

यह एक पठार है जो गंगा के मैदान से क्रमशः ऊँचा उठता है और दक्षिण में सोन तथा नर्मदा की घाटियों के निकट समाप्त हो जाता है। नदी घाटियों के समीप जहाँ यह समाप्त होता है वहाँ इसका अत्यन्त ही खड़ा ढाल है। इस पठार का सारा पानी गंगा में प्रवाहित होता है। नर्मदा और सोन नदियाँ इसे दक्षिण के मुख्य पठार से अलग करती हैं। यह समस्त प्रदेश मणीभीय चट्टानों से बना हुआ है। इस पठार के अधिकतर भाग में वर्षा का औसत ४०" रहता है। बुन्देलखण्ड का औसत ४५" और रीवाँ का ४०" से ५०" के बीच रहता है। सिंचाई का मुख्य साधन यहाँ तालाब हैं। सोन की घाटी में साल के जंगल हैं। विन्ध्याचल की पहाड़ियाँ जंगलों से ढकी हैं जिनमें भील लोग बसते हैं।



कृषि में यहाँ चावल का विशेष महत्व है। चावल अधिकतर सोन की घाटी में बोया जाता है। कपास तो यहाँ कठिनाई से ही देखने को मिलती है। बुन्देलखण्ड में विस्तृत खेती का प्रचार है। तालाबों द्वारा सिंचाई करके यहाँ अनाज और दालें उगाई जाती हैं। यद्यपि रीवाँ के पठार पर अच्छी वर्षा होती है, मिट्टी उपजाऊ है

और सिंचाई के साधन भी उपलब्ध हैं किन्तु समस्त प्रदेश बहुत ही पिछड़ा हुआ और एकान्त में आ जाने से यहाँ २० से २५% भाग पर ही खेती होती है। चावल, गेहूँ, मक्का और कोदों यहाँ की मुख्य फसलें हैं।

यहां आबादी छितरी हुई है। इसका क्षेत्रफल ५०,६१५ वर्ग मील और आबादी ८३·७६ लाख है। आबादी का औसत घनत्व प्रति वर्ग मील १६५ व्यक्ति है। आबादी का यह औसत पन्ना में ६५; सतना में १६७; होशंगाबाद और सागर में १४६; सिद्धी में ११४; शाडोल में १२०; मिर्जापुर में २३३; झांसी में २६६; टिकमगढ़ में १८८; और बांदा तथा जबलपुर जिलों में २६८ है। गाँव यहाँ के छोटे होते हैं किन्तु घर मजबूत पत्थरों के बने होते हैं। शहर कुछ गिने चुने ही हैं। जबलपुर, झांसी, रीवाँ और मिर्जापुर मुख्य औद्योगिक नगर हैं।

(ख) राजस्थान की उच्च भूमि प्रदेश (Rajasthan Upland Region)—

इस प्रदेश का क्षेत्रफल ११७,६६६ वर्ग मील है और आबादी लगभग २०,५६४ लाख है। इस प्रदेश में नर्मदा की घाटी, मालवा का पठार, पूर्वी राजस्थान की घाटियाँ, दक्षिणी राजस्थान की वनाच्छादित पहाड़ियाँ, अरावली की श्रेणी तथा उत्तरी पूर्वी भाग शामिल हैं। इस प्रदेश का ढाल उत्तर पूर्व में गंगा की घाटी की ओर है। फलत: इसका पानी यमुना और उसकी सहायक नदियों द्वारा प्रवाहित होता है। मालवा का



चित्र २१२—मालवा का पठार

पठार यद्यपि दक्षिण के लावा से ढका है। किन्तु उत्तर और उत्तर पश्चिम में मणीभीय चट्टानें पाई जाती हैं। मालवा का पठार गंगा व अन्य नदियों के समीप कटा-फटा है। ये कटे फटे भाग घने बीहड़ क्षेत्र हैं और नितान्त ही अनउपजाऊ हैं।

जलवायु की दृष्टि से यह प्रदेश शुष्क है। वर्षा का औसत ४०" से भी कम है। प्रायः यहाँ सूखा पड़ा करता है। जब वर्षा अच्छी होती है तो फसलें भी खूब पैदा होती हैं किन्तु जब वर्षा नहीं होती है तो फसलें भी नहीं होती हैं। भूमि के ऊँचे नीचे होने के कारण सिचाई नहीं होती है। फसलें पूर्णतः वर्षा पर निर्भर रहती हैं। दक्षिणी राजस्थान में तालाबों द्वारा थोड़ी सिचाई होती है। यहाँ चंबल बहुउद्देशीय योजना का निर्माण हो रहा है। इस योजना के पूर्ण होने पर ११ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होगी और ६६,००० किलोवाट विद्युत उत्पन्न की जायगी।

यहाँ की पहाड़ियों पर अच्छे जंगल लगे हैं। कहीं कहीं इन जंगलों को भील लोगों ने खेती के लिए नष्ट कर दिया है। ये जंगल शुष्क प्रकार के हैं और अन्त में झाड़ियों वाले प्रदेश में लुप्त हो जाते हैं। यहाँ की लगभग ४० प्रतिशत भूमि पर खेती की जाती है। वर्षा की अनिश्चितता के कारण यहाँ कृषि योग्य भूमि की कुछ कमी और बेकार भूमि की अधिकता (२१ प्रतिशत) है। यह प्रदेश ज्वार बाजरे की पैदावार के लिये भारत भर में प्रसिद्ध है। गेहूँ, जौ, तिलहन और कपास भी यहाँ बोया जाता है। केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन ने मालवा के पठार की कांस-युक्त भूमि को बहुत कुछ साफ कर दिया है। अब वहाँ गेहूँ बोया जाता है। अरावली के क्षेत्र में मैंगनीज, बेरियल, अभ्रक, एसबस्टस, संगमरमर, तांबा, जस्ता, सीसा और पन्ना की खानें पाई जाती हैं किन्तु इनका विदोहन अभी पूरी तरह प्रारम्भ नहीं हुआ है।

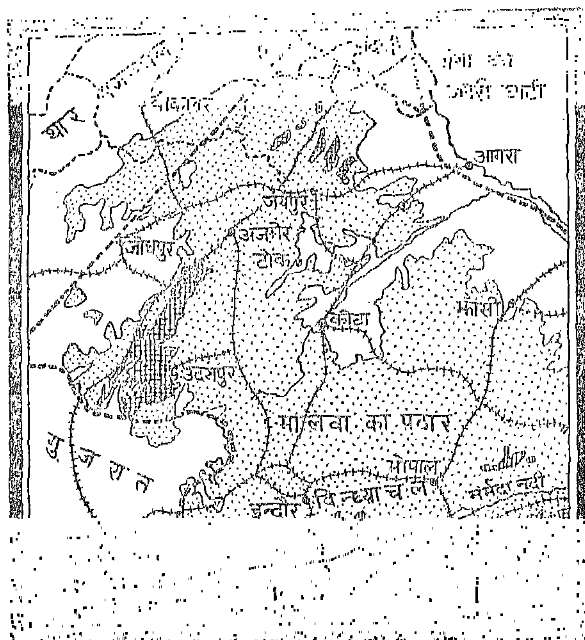
आबादी यहाँ बहुत ही फैली हुई है। आबादी का घनत्व मालवा के पठार और नर्मदा की घाटी में १७६ (भिंड में १३४; गूना में ११२; झाबुआ में १४६ और खण्डवा में १२७) तथा पूर्वी राजस्थान में २४० व दक्षिणी राजस्थान में १६५ व्यक्ति है। जयपुर, अजमेर, इन्दौर, ग्वालियर, भोपाल, उज्जैन, उदयपुर इस प्रदेश के प्रमुख शहर हैं। इस भाग में मकान ईंट व पत्थर के बनाये जाते हैं। मकान की छतें केलुओं से ढकी जाती है। कहीं कहीं बड़े मकानों में सीमेन्ट की चपटी छतें भी मिलती हैं।

दक्षिणी पूर्वी राजस्थान में भीलों के घर अलग पहाड़ी टेकरियों पर होते हैं। कभी कभी इनकी दूरी आधा मील से एक मील तक होती है। खुले मैदानों में आबादी किसी कुएँ के समीप केन्द्रित रहती है। अरावली की पहाड़ियों में गाँव प्रायः कई अलग अलग झोपड़ों में बँटे होते हैं।

(ग) थार प्रदेश (Thar Region)—

यह प्रदेश अरावली के पश्चिम में स्थित है। यहाँ की मिट्टी रेतीली होने से चारों ओर रेत के टीबे ही टीबे दृष्टि-गोचर होते हैं। नदियों के शुष्क पेटों में उपजाऊ मिट्टी मिलती है। यहाँ की वर्षा का औसत केवल १०" है जो भी अनियमित रहता है। कई वर्ष तो वर्षा बिल्कुल होती ही नहीं। फलस्वरूप बड़ी संख्या में पशु और निवासी इस प्रदेश को छोड़कर राजस्थान, पंजाब व गुजरात के समीपीय भागों में चले जाते हैं। यहाँ जाड़ों व गर्मी के औसत तापक्रम क्रमशः ६०° फा० और ९५° फा० रहते हैं। दैनिक तापान्तर २०° से ३०° तक चले जाते हैं। कई भागों में जैसे श्री गंगानगर में तापमान १२०° फा० तक ऊँचा हो जाता है। यहाँ मरुस्थल का कारण जल का अभाव ही है। यहाँ भूमि प्रायः नग्न ही मिलती है। कुछ स्थानों पर शुष्क झाड़ियाँ देखने को मिल जाती हैं। दक्षिण में अवस्थायें कुछ अच्छी हैं। वर्षा अच्छी होने पर अच्छी घास उत्पन्न हो जाती है। गंगानगर में

नहरी सिंचाई द्वारा गेहूँ, कपास आदि की फसलें उत्पन्न की जाती हैं। अन्य स्थानों पर कृषि की अवस्था बड़ी शोचनीय है। सामान्यतः अर्द्ध निम्न भागों में जहाँ उम्दा मिट्टी एकत्र हो जाती है कृषि की जाती है। बाजरा, मोठ और मूंग इस भाग की मुख्य फसलें



चित्र २१३—मालवा का पठार

हैं। यहाँ १९६२ ई० तक एक ४२५ मील लम्बी राजस्थान-नहर बनने वाली है। इस नहर के बन जाने पर यह आशा की जाती है कि यह प्रदेश भारत के अन्न भंडार में परिणित हो जायगा। जोधपुर और बीकानेर डिविजन में पशु-चारण एक प्रमुख व्यवसाय है। ऊँट, भेड़ें और बकरियाँ यहाँ के मुख्य पशु हैं। मरुस्थल के विकास को रोकने के लिये इस भाग में वृक्षारोपण कार्य किया जा रहा है।

इस प्रदेश में बहुत ही कम आबादी है। आबादी का औसत जैसलमेर में ७; गंगानगर में ७७; बाड़मेर ४३; बीकानेर में ३२; चुरु में ८१; जालोर में ९४ और जोधपुर में ८१ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। जल का अभाव ही आबादी की कमी का मुख्य कारण है। गाँव इस भाग में बहुत ही छोटे होते हैं।

(४) तटीय भाग (Coastal Plains)—

दक्षिण के पठार के पश्चिम और पूर्व में पश्चिमी तटीय मैदान स्थित हैं। इन मैदानों की रचना पठार के घिसने से हुई है।

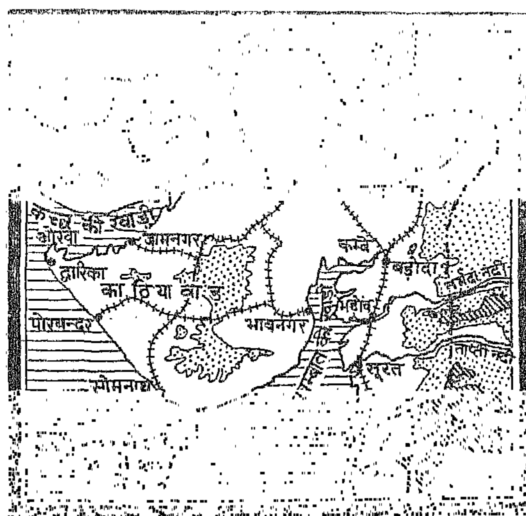
(i) पश्चिमी तटीय मैदान—

यह एक अत्यन्त ही सँकरा मैदान है जो खम्भात की खाड़ी से कुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ है। इसकी चौड़ाई ३० से ४० मील है। यह मैदान तान

भागों में बँटा हुआ है : (क) उत्तर में कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरात का मैदान, (ख) मध्य में उत्तरी पश्चिमी कोंकन का प्रदेश और (ग) दक्षिण में मलाबार प्रदेश।

(क) कच्छ-सौराष्ट्र और गुजरात का मैदान (Cutch Saurastra Gujerat Plain)

यह प्रदेश थार के मरुस्थल और पश्चिमी तट के बीच एक अन्तरिम क्षेत्र है। यह समुद्र तल से १,००० फीट से भी कम ऊँचा है। कच्छ का भाग नग्न और चट्टानी है। वृक्ष कदाचित ही दिखाई पड़ते हैं। समस्त प्रदेश नमकीन और बेकार है। कच्छ में वर्षा १२ से १५" तक होती है। यहाँ लोग पशु-चारण और खेती दोनों ही कार्य करते हैं। आबादी का औसत ३३ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। सौराष्ट्र का अधिक भाग लावा से बना हुआ है। इसके मध्य में जंगलों से ढकी हुई पहाड़ियाँ फैली हुई हैं। शेष भाग चट्टानी और अनपजाऊ है। इसके तटीय भाग में १५ से २० इंच तक वर्षा होती है। वर्षा का औसत मध्यवर्ती क्षेत्र में अधिक (४०") रहता है। साधारणतः यहाँ की वर्षा अनिश्चित है। अतः कृषि मुख्यतः पठार की तलैटियों में अथवा नदियों के किनारे पर की जाती है।



चित्र २१४—कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरात का मैदान

इसका उत्तरी भाग शुष्क है और वहाँ रेतीली मिट्टी पाई जाती है। कोली (Kolis) इस भाग के निवासी हैं। यहाँ की उपजाऊ भूमि पर गेहूँ तथा ज्वार-बाजरा उगाया जाता है। मध्य गुजरात अपेक्षतया आर्द्र भाग है। यहाँ की मिट्टी भी अधिक उपजाऊ है। नदी तटों पर चावल तथा अन्य स्थानों पर कपास व बाजरा उत्पन्न किया जाता है। पूर्वी भाग में कटीले जंगल हैं। जलवायु यहाँ का स्वास्थ्यवर्धक है। फलतः आबादी घनी है। खेड़ा जिले में गाँव काफी बड़े पाये जाते हैं। इन गाँवों की औसत आबादी १,००० से भी ऊपर पाई जाती है। पंच महल के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर आबादी का औसत ६०० से ७०० मनुष्य प्रति वर्ग मील है। पंच महल में यह औसत ५०० से भी कम पड़ता है। यहाँ मकान सामान्यतः घास और कीचड़ के बनाये जाते हैं। अहमदाबाद, बड़ौदा और भड़ौच यहाँ के महत्वपूर्ण औद्योगिक

केन्द्र हैं। ये सूती वस्त्र व्यवसाय के लिये प्रसिद्ध हैं। दक्षिणी गुजरात बहुत ही अधिक आर्द्र है। यहाँ वर्षा का औसत ६० से ७०" है। समुद्र तट के किनारे जलवायु सम और स्वास्थ्यवर्धक है। किन्तु तट के समीप क्षारयुक्त मिट्टी की एक संकरी पट्टी है जो अनउपजाऊ है। इस पेटी के पीछे उम्दा उपजाऊ मिट्टी का एक विस्तृत क्षेत्र आ गया है जो चावल, गन्ना और कपास की पैदावार के लिए बहुत ही उपयुक्त है। किन्तु इस तटीय भाग से भीतर की ओर जाने पर महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ मिट्टी कमजोर है और आबादी बहुत ही कम है।

(ख) कोंकन प्रदेश (Konkan Region)—

यह प्रदेश अरब सागर और पश्चिमी घाट के शिखर के बीच एक संकीर्ण पेटी है। उत्तर में नर्मदा और ताप्ती के डेल्टाओं के कारण यह पेटी चौड़ी हो गई है। बम्बई के उत्तरी भाग को छोड़कर सर्वत्र वर्षा ८०" से ऊपर होती है। किन्तु यहाँ पश्चिमी तट के दक्षिणी भाग की अपेक्षा शुष्क ऋतु अपेक्षतया लम्बी होती है। इसी प्रकार वार्षिक तापान्तर भी कुछ अधिक होता है। पश्चिमी घाट के तेज ढालों पर सामान्यतः घने मानसूनी और उष्ण कटिबन्धीय जंगल पाये जाते हैं। इन जंगलों में अनेक प्रकार के पेड़ मिलते हैं किन्तु सागवान सबसे महत्वपूर्ण है।

यहाँ बहने वाली अनेक छोटी और तेज नदियों से विद्युत-शक्ति उत्पन्न की जाती है। घाट के समीप इन नदियों ने कच्छारी शंकुओं का निर्माण किया है। तटों के समीप लहरों ने बालुका स्तूप खड़े कर दिये हैं। इन बालुकास्तूपों के कारण नदियाँ समुद्र तक नहीं पहुँच पाती। परिणामस्वरूप जल प्रायः चारों ओर फैल जाता है जिससे छिछली लैगून झीलें बन जाती हैं। इन झीलों के किनारों पर नारियल और केले के पेड़ लगाये जाते हैं। यहाँ दलदली भूमियाँ भी पाई जाती हैं। लैगून झीलों के क्षेत्र में कई गाँव पाये जाते हैं और वहाँ का प्रत्येक भूमि का टुकड़ा चावल की खेती के काम में लाया जाता है। इस भाग में गाँव की प्रत्येक झोपड़ी का अपना बगीचा होता है जिसमें नारियल, केले आदि के पेड़ होते हैं।



चित्र २१५—कोंकन प्रदेश

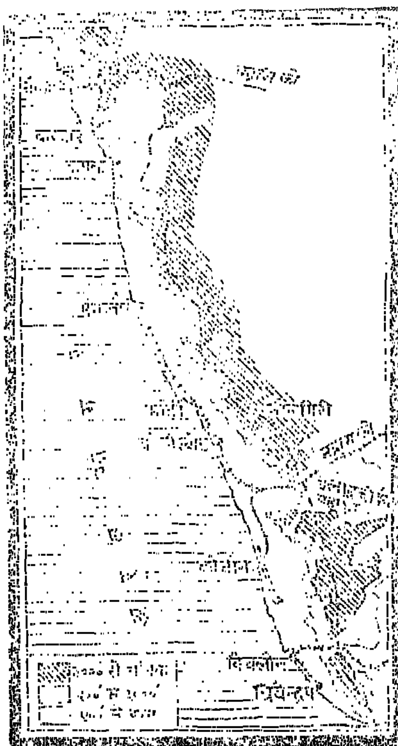
यह प्रदेश बहुत ही घना आबाद भाग है। यहाँ आबादी का औसत प्रति वर्ग मील २०० व्यक्तियों से ऊपर है। उत्तरी कनारा

और तटीय तालुकाओं में तो यह औसत २४० से ३४० तक पाया जाता है। परन्तु यहाँ की आधी भूमि में ही खेती होती है। अतः खेती हुए भूमि के अनुपात में आबादी का घनत्व लगभग १,२०० व्यक्ति पड़ता है। घाटों पर जंगलों में और मलेरिया युक्त भागों में आबादी का औसत २० से १०० व्यक्ति ही है। तट से भीतरी भागों को पहुँचने के लिये आवागमन के साधन बड़े ही दुर्गम हैं। पोताश्रयों के लिये उपयुक्त खुले स्थान बहुत कम हैं। अतः यहाँ बन्दरगाहों और शहरों का अभाव है। बम्बई यहाँ का महत्वपूर्ण नगर और स्थान है।

(ग) मलाबार प्रदेश (Malabar Region)—

यह प्रदेश कोंकन से बहुत ही मिलता जुलता है। उत्तरी कनारा के सिवाय समस्त भाग केरल राज्य में है। दक्षिणी कनारा कच्छारी मिट्टी का एक निम्न प्रदेश है। इनके पीछे लेटराइट मिट्टी का एक नीचा पटार है जो घनी वर्षा के होते हुए भी अन-उपजाऊ है। लेटराइट के फैलाव और पहाड़ी तलैटियों के कारण कृषि बहुत ही सीमित है। यहाँ अधिकतर भाग वनों से घिरा हुआ है।

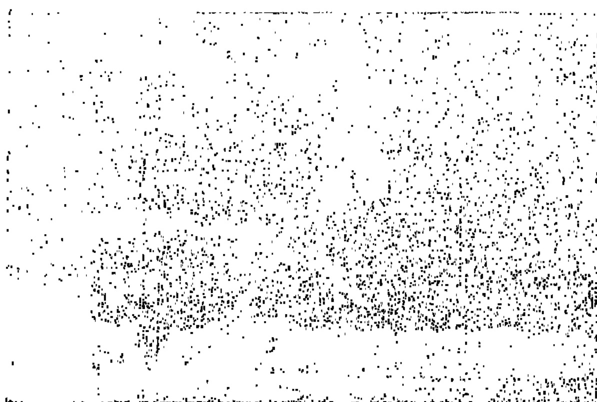
कृषि यहाँ का मुख्य व्यवसाय है। दोमट कच्छारी मिट्टी में चावल और लेटराइट भूमि पर नारियल, रागी और दालें भी पैदा की जाती हैं फसलों का यह भेद आबादी में दृष्टिगोचर होता है। मंगलौर ताल्लुका के बीच आबादी का औसत ७६४ और कारीकाल में २४४ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है। इस भाग का एक मात्र मुख्य नगर मंगलौर है।



चित्र २१६—मलाबार प्रदेश

मलाबार और केरल में शुष्क ऋतु छोटी होती है। वार्षिक तापान्तर कोंकन प्रदेश की अपेक्षा (त्रिवेन्द्रम में ५° फा०) कम रहता है। वर्षा बहुत अधिक होती है। इस प्रदेश के तीन लम्बे भाग दिखाई पड़ते हैं। समुद्रतट के समीप कच्छारी भाग, लेटराईट का नीचा पठारी भाग और पहाड़ी तलैटी भाग। (अ) तटीय कच्छारी भाग में अनेक लैगून झीलें हैं जो १५० मील की लम्बाई तक अच्छे जलमार्ग बनाती हैं। इनके तटों पर नारियल के बगीचे देखे जाते हैं और भूमि की चावल बोया जाता है। इनके अतिरिक्त यहाँ काली मिर्च, सुपारी व अन्य गर्म मसाले तथा काजू के पेड़ बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। रबड़ की बागवानी दक्षिण तक ही सीमित है। इस प्रदेश में लगभग सभी घरों का अपना

बगीचा होता है जिनमें फलदार वृक्ष आदि लगे होते हैं। (ब) लेटराइट का एक नीचा पठार है जो २०० से ६०० फीट ऊँचा है। पठार पर घास और झाड़ियां पैदा होती हैं। (स) पहाड़ी भाग सदा बहार जंगलों से ढके हैं। इस भाग में अधिकतर बागाती कृषि होती है जो चाय, रबड़ और काली मिर्च तक सीमित है। पल्लीवासल विद्युत-गृह से उत्पन्न जल-विद्युत शक्ति इस भाग की कृषि व उद्योग धन्धों के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है। केरल में मछली पकड़ने का व्यवसाय भी बड़ा महत्वशाली है।[1] केरल तट के समीप अणु-शक्ति उत्पादन के लिए उपयोगी इलमैनाइट और मोनोजाइट बालू भी पाया जाता है।



चित्र २१७—द० केरल में गांव के निकट वृक्षों का समूह

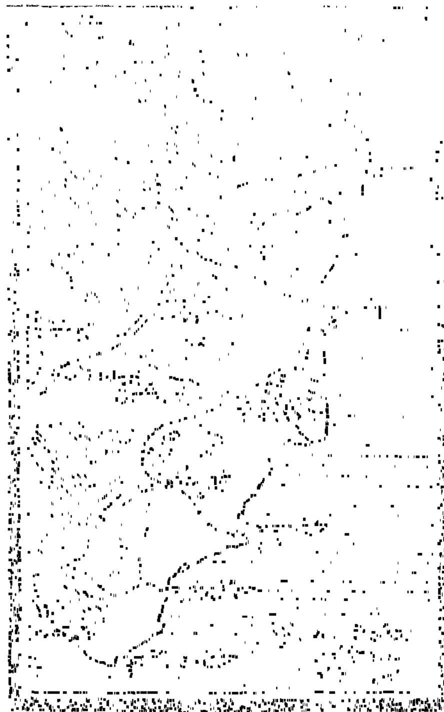
यह प्रदेश भारत के अत्यन्त घने आबाद भागों में से है। केरल में आबादी का औसत १,००० व्यक्ति प्रति वर्ग मील से भी अधिक है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय रूप से इसका घनत्व २,००० से ४,००० तक पहुँच जाता है। निम्न क्षेत्रों के खेतिहर भागों में औसत २,२५० और पहाड़ी तलैटियों में १,००० व्यक्ति प्रति वर्ग मील पाये जाते हैं। घनी आबादी के कारण यहाँ गाँव भी पास-पास हैं। तट के सहारे लम्बाई में सब दूर आबादी फैली हुई है। मंगलोर, कोजीकोड़, कोचीन, त्रिवेन्द्रम्, अलप्पी और क्वीलोन यहाँ के महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र और बन्दरगाह हैं।

(ii) **पूर्वी तटीय मैदान**—यह पूर्वी घाट और बंगाल की खाड़ी के बीच स्थित है। यह मैदान दो भागों में बँटा हुआ है :—(क) कर्नाटक और तामिलनाड़ प्रदेश और (ख) उत्तरी सरकार। पश्चिमी तटीय मैदान की अपेक्षा यह मैदान चौड़ा है। इस मैदान में अनेक तीव्रगामी नदियाँ बहती हैं।

(क) कर्नाटक अथवा तामिलनाड़ प्रदेश (Carnatic or Tamilnad

१. केरल की फसलों और आबादी के विशेष अध्ययन के लिए देखिये—
G. Kuriyan,-"The Industrial Crops of Kerala", Journal of Madras Geographical Association, Vol. XI, 1937 pp. 283-90; "Population and Its Distribution in Kerala", Indian Geographical Journal: Vol XIII 1935. pp. 125-46.

Region) —इस प्रदेश में वर्षा जून से सितम्बर के बीच में अपेक्षतया कम होती है। वर्षा का औसत ४०" से कम रहता है। यहाँ अधिकतर वर्षा अक्टूबर में होती है जो दिसम्बर तक रहती है। जनवरी से जून तक शुष्क मौसम रहता है। किन्तु अप्रैल और मई में छोटे छोटे तूफान चलते हैं जिनसे अच्छी वर्षा हो जाती है। इस प्रदेश का तटीय भाग आर्द्र है। यहाँ वर्षा का औसत ४०" से ऊपर रहता है। पश्चिम की ओर पहाड़ी भागों में वर्षा ४०" से कम होती है। यह पहाड़ी भाग सदा से भारत के मुख्य अकाल क्षेत्रों (Famine Zones) में से रहा है। अकाल के प्रभाव को दूर करने के लिये यहाँ नहरों और तालाबों द्वारा सिंचाई की जाती है और यातायात के साधन भी उन्नत किये गये हैं। पेरियर, पालर (Palar), पीयोनी (Pioni), चियार योजनायें और कावेरी डेल्टा की नहरें सिंचाई के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।



समुद्र के निकट भूमि चौड़ी और समतल है किन्तु भीतर की ओर छोटी छोटी पहाड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं।

पश्चिमी भाग तो एक दम पहाड़ी है। तटीय मैदान मुख्यतः कच्छारी मिट्टी से बना हुआ है। कहीं कहीं नवीन प्रस्तरी-भूत चट्टानें भी मिलती हैं। परन्तु पहाड़ी भाग प्राचीन मणीभीय चट्टानों का बना है। ये पहाड़ियाँ कच्छारी मैदानों से एक दम ऊपर उठती हैं और अत्यन्त ढालू हैं।

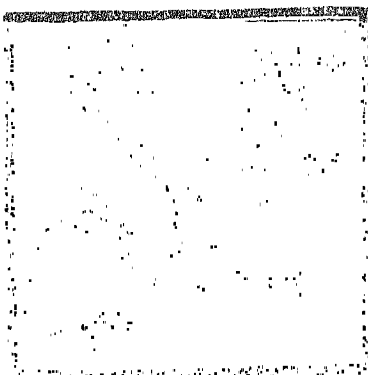
यहाँ मैदानी क्षेत्र के दो तिहाई-भाग में खेती है। वन प्रदेश और बेकार पड़ी भूमि का प्रतिशत कम है। तटीय क्षेत्रों की मुख्य फसल चावल है। कावेरी डेल्टे में सर्वत्र चावल होता है। तंजौर की बोई गई भूमि के ७७ प्रतिशत भाग पर चावल बोया जाता है। किन्तु पश्चिम की ओर चावल का महत्व उत्तरोत्तर कम होता जाता है। त्रिची जिले में चावल का क्षेत्र २० प्रतिशत ही है। बिना सिंचाई वाले भागों में कुम्बू (Cumbu), चोलम और रागी बोई जाती है। पहाड़ी भागों में जहाँ चौरस भूमि उपलब्ध है किन्तु वर्षा कम होती है वहाँ चावल के बजाय ज्वार बाजरा उत्पन्न किया जाता है। गेहूँ यहाँ पैदा नहीं होता। हल्की शुष्क और कम उपजाऊ मिट्टी पर मूँगफली उगाई जाती है। दक्षिणी अर्काट इसका प्रमुख क्षेत्र है। नीलगिरी पर चाय के बागात पाये जाते हैं। शुष्क ढालों पर भेड़ें अधिक चराई जाती हैं। अच्छी वर्षा वाले भागों में सागौन और चन्दन के वन मिलते हैं। यहाँ खनिज सम्पदा महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु अभ्रक, ताँबा, लोहा और चूने का पत्थर खोदा जाता है। तट के समीप समुद्र से नमक प्राप्त किया जाता है। मछली पकड़ना भी यहाँ महत्वपूर्ण उद्योग है।

इस प्रदेश में आबादी का औसत प्रति वर्ग मील ५०० व्यक्ति के ऊपर है। कहीं कहीं यह औसत २,००० तक पहुँच जाता है। कावेरी का डेल्टा बहुत ही घना आबाद है। तंजौर जिले के डेल्टाई भाग में आबादी का घनत्व ७९८ है और कुंभकोनम् ताल्लुका में ग्रामीण क्षेत्र का घनत्व १,१०४ व्यक्ति है। कावेरी डेल्टा के पश्चिमी भागों में तालाबों के पास आबादी का केन्द्रीयकरण अधिक है। पूर्व की ओर, जहाँ तालाब कम हैं, गाँव छोटे और छितरे हुए हैं।

मद्रास, तूतीकोरन, कड्डालोर, नागापट्टम, तिरुचिरापल्ली, सलेम, मदुराई और तंजौर इस भाग के प्रमुख व्यापारिक औद्योगिक केन्द्र हैं।

(ख) उत्तरी सरकार प्रदेश (Northern Circar Region)—

यह प्रदेश महानदी गोदावरी और कृष्णा के विशाल डेल्टाओं से बना हुआ है। इसमें गोदावरी, कृष्णा, विशाखापट्टनम्, गंतूर, नैलोर जिले और कुछ उड़ीसा का तटीय भाग शामिल है। इसका क्षेत्रफल ८,१७३ वर्ग मील और आबादी २११ लाख है।

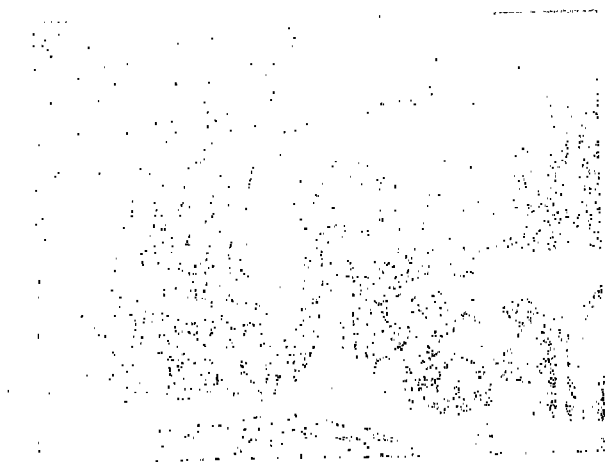


चित्र २१९—उत्तरी सरकार प्रदेश

इस भाग में जलवायु का बड़ा अन्तर देखा जाता है। उत्तरी भाग बंगाल की खाड़ी के मानसून के प्रभाव में रहता है अतः यहाँ ६०" से ऊपर वर्षा हो जाती है किन्तु दक्षिणी उड़ीसा में औसत ५०" है और यह भी अनिश्चित है। दक्षिण उड़ीसा में नैलोर तक का भाग उत्तरोत्तर शुष्क होता जाता है।

यह मैदान बीच-बीच में नदियों द्वारा कट गया है। गोदावरी और कृष्णा मैदान का बहुत बड़ा भाग घेरे हुए हैं। यहाँ यह ६० से ८० मील के लगभग चौड़ा है। उत्तर की ओर अनेक छोटी-छोटी पहाड़ियाँ

बीच में आ गई हैं। मैदानी भाग नवीन प्रस्तूरी-भूत चट्टानों और कच्छारी मिट्टी का बना हुआ है। किन्तु पहाड़ी भाग की संरचना प्राचीन मणीभीय चट्टानों से हुई है। यहाँ के मुख्य खनिज ग्रेफाइट, मैंगनीज, अभ्रक, इल्मेनाइट, लेटराइट, इमारती पत्थर, तटीय नमक और चूने के शंख-सीपी आदि हैं। तट के सहारे प्रायः बलुही पट्टी पाई जाती है। कभी कभी यहाँ से बड़ी मात्रा में रेत हवा द्वारा उड़ कर खेतों में जमा हो जाता है। फलतः भीतरी भागों में इस प्रकार कृषि भूमि की बड़ी हानि पहुँचती है। नदी के डेल्टाओं के चारों ओर दलदल पाये जाते हैं। पूर्वी-घाट पहाड़ों के ढाल वनों से ढके हुए हैं। साल इन वनों का मुख्य पेड़ है। तट के निकटवर्ती भागों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।



चित्र २२०—उड़ीसा का मछुआ परिवार

यहाँ का एक चौथाई भाग छोटे-छोटे ऊँचे-नीचे पहाड़ी टीलों से घिरा है। यह भाग कृषि के लिये अयोग्य है किन्तु यह भेड़ों के लिये अच्छा चरागाह बनाता है। बीस प्रतिशत भाग में जंगल और बेकार भूमि फैली हुई है।

४०" वर्षा की रेखा शुष्क और आर्द्र पेटियों की फसलों के बीच विभाजक रेखा बनाती है। कटक के पास (जहाँ वर्षा ५०" से ऊपर होती है) बोये गये क्षेत्र के ८०% भाग में चावल पैदा किया जाता है। ज्वार बाजरा तो यहाँ कहीं देखने में भी नहीं आता। गंजाम जिले में (वर्षा का औसत ४५") ५४% भाग में चावल और १२% भाग में ज्वार बाजरा होता है। दक्षिण की ओर तट के समीप उत्तरोत्तर वर्षा कम होती जाती है। फलतः चावल का क्षेत्र घटता जाता है और ज्वार-बाजरा का क्षेत्र बढ़ता जाता है। विशाखापट्टनम् में (वर्षा का औसत ४०") २५ प्रतिशत भाग में चावल और १७ प्रतिशत भाग में मोटे अनाज बोये जाते हैं। गोदावरी (३९"), कृष्णा (३६"), गंतूर (३१") और नैलोर (३४") के अन्दर चावल और ज्वार-बाजरे का प्रतिशत क्रमशः ५ और १३; ५ और २०; ३ और २८; तथा २१ और २६ है।

इस प्रदेश में आबादी बहुत अधिक है। प्रति वर्ग मील आबादी का औसत ४३३ व्यक्ति है। आबादी का घनत्व कटक जिले में ५९७, पश्चिमी गोदावरी में ५६८, श्री काकाकूलम में ४४३, पुरी में ३९३, नैलोर में २२६ और विशाखापट्टनम् में ३९९ हैं। आन्ध्र और उड़ीसा में डेल्टाओं को छोड़ कर कोई भी भाग घना आबाद नहीं है।[1]

---

१. K. M. Buchmann, Op. Cit., Vol. XVI No. 4. p. 33.

परिशिष्ट १

बृहत् उद्योगों संबंधी आवश्यक आंकड़े

निर्माण उद्योगों की गणना १९५७

उद्योग	पंजीयत कारखानों की संख्या	कुल विनियोजित पूंजी (लाख रु० में)	मजदूरों की संख्या (००० में)	बिक्री के लिए वस्तुओं का उत्पादन (लाख रु० में)	उत्पादन द्वारा मूल्य में वृद्धि (Value added by Manu-facture) (लाख रु० में)
आटा पीसना	८८	७०८·२६	७·६८	४२३२·५१	३११·३०
चावल साफ करना	१७४४	२०६७·०१	६३·९५	९९९२·१६	६०१·२४
बिस्कुट बनाना	९५	३७८·६५	५·३७	६९७·१०	१९४·८९
फल और सब्जी तैयार करना	३२	१०९·४७	१·४७	१४ ·७३	३६·५१
शक्कर	१८५	९१३३·३७	११७·०६	११२१० ९०	२९१६·९९
शराब और अर्क निकालना	५०	४०३·५३	५·२५	४९३·२०	२१२·७७
स्टार्च	१२	३६१·०४	१·८७	४९७·९८	९६·९५
वनस्पति तैल	११३७	२८२८·९९	४४·९६	१२९१८·५६	५४०·०७
खाद्य-वनस्पति तैल	३०	१३०४·६५	८·४६	६०२४·६४	४५३·१६
रंग-रोगन	५३	४६५·१९	५·४१	१०४१·७५	४०३·४९
साबुन	३०	१०४८·९२	५·६६	२०७७·५८	५९८·०६
चमड़ा रँगना	१३४	४३४·३५	१०·५९	१२६०·५०	१४२·२४
सिमेंट बनाना	२८	५२६३·३२	३६·०४	३५०२·१५	१०८५·४६
कांच व कांच का सामान	१०६	७३१·०१	२३·९४	७९९·८५	३२४·६१
चीनी मिट्टी का सामान	८१	८५६·६६	२३·१०	२८२·३०	४१५·४८
प्लाइवुड और चाय की पेटियाँ	६५	३७४·३०	६·९९	४७८·५०	१८७·१७
कागज और गत्ता	५८	३३३३·८४	३१·६०	३१८७·३७	११९८·८६
दियासलाई	४७	३८१·९७	१६·३८	७६१·६७	३७४·४२
सूती वस्त्र	५७०	३१७४३·१९	७६१·७५	४७३३९·९४	१४६०५·९१
ऊनी वस्त्र	५६	१०८४·०५	१६·००	१६७१·६२	४०२·६३
जूट	११२	८५३२·५४	२४५·३१	१३२०९·८३	३५९०·७१
रासायनिक पदार्थ	३६७	४७४२·६३	५८·८५	८६९२·८६	३४९०·५७

उद्योग	पंजीयत कारखानों की संख्या	कुल विनियोजित पूँजी (लाख रु० में)	मजदूरों की संख्या (००० में)	बिक्री के लिए वस्तुओं का उत्पादन (लाख रु० में)	उत्पादन द्वारा मूल्य में वृद्धि (Value added by Manufacture) (लाख रु० में)
अल्यूमीनियम, तांबा आदि	२४१	२३१६'५३	२२'६२	४०८८'३६	१००८'७४
लोहा और इस्पात	१५०	११६२७'८५	६१'६८	११७७२'०२	५२१६'६१
बाईसिकलें	८२	७०६'६५	६'१७	६६६'३८	३७८'२३
सिलाई की मशीनें	२६	३१०'३५	५'१५	४७६'१४	१८२'७०
बिजली के लैम्प	१५	१८१'६७	२'६६	२६२'४३	१०५'७७
बिजली के पंखे	२३	३०६'६३	४'६५	३४०'७०	१२२'०८
सामान्य एन्जीनियरिंग उद्योग	२१३७	१०२१७'५५	१८६'०५	१४७६१'६५	५२६७'७२
योग	७७५४	१०६२६०'८६	१८१३'१२	१६४०१७'२०	४४४६५'७३

प्रमुख उद्योगों में उत्पादन क्षमता और वास्तविक उत्पादन (१९५९)

उद्योग	मात्रा	कारखानों की संख्या	स्थापित क्षमता	उत्पादन
कृषि यंत्र	टन	४९	२३७८८	१५८८६
बाइसिकलें	संख्या	१९	१०५०५००	१०६७६००
मशीन-स्क्रू	ग्रोस	१०	१६२५०००	१०५७४००
रेजर-ब्लेड	लाख	५	६२९.०	३६२.०
सिलाई की मशीनें	संख्या	६	९१७००	२४६७६०
औद्योगिक मशीनें :				
कृषि की मशीनें	रुपया	३५	—	१,४३,९३,६८१
सिमेंट बनाने की मशीनें	,,	५	—	४६,४६,०००
घी-दूध की मशीनें	,,	२	—	४,३२,७५६
सड़क कूटने के एंजिन	संख्या	३	४१४	१७७
जूट मिल की मशीनें	रुपये	१०	—	१७,८३१,६९५
खानों ,,	,,	३	—	११,८६,०००
तेल मिल ,,	,,	५१	—	५०,६०,२३५
शक्कर मिल ,,	,,	१५	—	२,५०२०,०००
चाय तैयार करने की मशीनें	,,	५	५,६५५	८१,९७,०००
मशीन-टूल्स	,,	—		४०,२७३२४७
मोटरें	संख्या	६	४९८००	३४२५९
डीजल एंजिन	संख्या	१९	२३२२५	३०२१७
शक्ति चालित पंप	,,	३७	८४११६	८१६१२
ट्रैक्टर	,,	२	३०००	१८८
बिजली के पंखे	,,	२३	७८०९००	७४३०७०
बिजली की मोटरें	हार्स पावर	२०	६०२५२०	५९०५५०
शक्ति-ट्रांसफारमर्स	(K.V.A.)	१६	१२०४०००	११०८४००
रेडियो-रिसीवर्स	संख्या	१९	२६७१८०	२१४५२४
धातु शोधन उद्योग :				
अल्यूमीनियम	टन	३	१७५००	१६५००
सुरमा	,,	१	९००	६००
तांबा	,,	१	७२००	७९००
सीसा	,,	१	६०००	३५००
अल्यूमीनियम की चादरें	,,	८	१७०००	१५०००
अल्यूमीनियम की छड़ें	,,	३	१३८००	२२००
तांबा पीतल की चादरें	,,	१७	४६०००	३००००
सीसे की चादरें	,,	१	१०९२	३०
फैरो मैंगनीज	,,	५	८५८००	६०,०००
रासायनिक उद्योग :				
गंधक का तेजाब	टन	३५	३७४०८४	३०००००
आमोनियम सल्फेट	,,	८	४३२००५	३९५०००

उद्योग	मात्रा	कारखानों की संख्या	स्थापित क्षमता	उत्पादन
बाइक्रोमेट	टन	७	६८४८	४०००
ब्लीचिंग पाउडर	मैट्रिक टन	३	१४५४०	५५००
कास्टिक सोडा	,,	१७	९८९४५	७००००
तरल-क्लोरीन	,,	१२	३६०६०	२२०००
पोटेशियम क्लोरेट	,,	२	३६६०	२६००
सोडा-एश	,,	२	१११०००	९६१२८
सोडियम सल्फेट	टन	१९	२१५८७	२००००
सुपर-फास्फेट्स	,,	१५	३३०६७०	२३०,०००
औषधि-तैल :				
यूक्लीप्टस तैल	पौंड	—	—	३,००,०००
अगिनघास तैल	टन	—	—	११००
रोशा तैल	,,	—	—	१००
चंद का तैल	पौंड	६	२६६००	२७१०४८
तारपीन का तेल	गैलन	३	७३५०००	६०५६०९
रंग रोगन	टन	५३	७११६०	५५०००
धातु उद्योग :				
सिमेंट	टन	३२	८·१२ (लाख)	६,६८७,४२७
अग्नि प्रति रोधक ईंटें	दसलाख	२२	३०·००	१६·५०
कांच का सामान-शीशियाँ	टन	९३	२१०,९१८	९३००२
कांच का सामान-चिमनियाँ	टन	८२	३४७००	२००००
कांच का सामान-चादरें	१० लाख वर्गफीट	४	१०६·६	८८००
कागज और गत्ता	टन	२१	३२१,०००	२९८,४८१
दियासलाई	६० सलाइयों वाली पेटियों के ग्रुस	५९	८८७९८४	६३७१७६
चमड़ा उद्योग :				
वनस्पति से रंगा हुआ चमड़ा	—	३२	४४४२१२०	२४१५०८५
क्रोम-टैनिंग	चमड़ा	१३	१५७९८००	६०९८२९
पश्चिमी ढंग के जूते	जोड़े	१२	६६८७६००	४१५८८२३
देशी ढंग के जूते	जोड़े	१२	—	४०३४९६५
रबड़ के जूते	जोड़े	१९	४५८४६०६०	३७९३८०८०
अन्य उद्योग :				
सिगरेट	दसलाख	१५	३१८७८	३१४४४
बिस्कुट	टन	४०	३०५२८	१७६९०
आटा पीसना	टन	६४	१८६४०४४	८८०,०००
शक्ति अलकोहल	गैलन	—	—	—

परिशिष्ट २

तृतीय योजना के अंतर्गत कृषि-कार्य क्रम

	मात्रा	१९६०-६१ में उत्पादन	लक्ष्य १९६५-६६	१९६०-६१ के अनुपात में प्रतिशत वृद्धि
खाद्यान्न	दस लाख टन	७५·०	१००-१०५	३०-३३%
कपास	,, लाख गाँठे	५·४	७·२	३३
गन्ना	,, लाख टन	७·२	९·०-९·२	२५-२८
तिलहन	,, ,,	७·२	९·२-९·२	२८-३२
जूट	,, लाख गाठें	५·५	६·५	१८
चाय	,, लाख पौंड	७२५	८५०	१७
तम्बाकू	,, हजार टन	३००	३२५	८
मछली	दस लाख मेट्रिकटन	१·४	१·८	२
दूध	,, लाख मन	६००	६९०	१५·०
ऊन	,, लाख पौंड	७२	९०	२५·०
नारियल	,, लाख नारियल	४५००	५७५०	२८
सुपारी	हजार टन	९३	१००	२८
काजू	,,	७३	१५०	१०६
काली मिर्च	,,	२९	३०	३
इलायची	,,	२·२६	२·६२	१६
लाख	,,	५०	६२	२४
कॉफी	,,	४५	८०	७८
रबर	,,	२६·४	४५	७१
योग	,,	—	—	३०-३३
सचित क्षेत्र (कुल योग)	दस लाख एकड़	७०	९०	२९
भूमि प्राप्ति (अतिरिक्त क्षेत्र)	,,	१·२	१·०	—
भूरक्षण (अतिरिक्त भूमि की प्राप्ति)	,,	२·०	१३	५५०
नाइट्रोजन खाद का उपभोग	हजार टन	३६०	१०००	१७७·७
फासफेट खाद का उपभोग	हजार टन	६७	४००-५००	४९७-६४६
बीज के खेत	संख्या	४०००	४५००	१२·५
बिजली (उत्पादन क्षमता)	दस लाख किलोवाट	५·८	११·८	१०३
बिजली (उत्पन्न)	,,	२०·७००	४२२५०	१०४
शहरों एवं गाँवों को प्राप्त बिजली	हजार	१९·०	३४·०	७८·९

तृतीय योजना में मुख्य उद्योगों का प्रस्तावित विकास

उद्योग	मात्रा	१९६०-६१ अनुमानित क्षमता	अनुमानित उत्पादन	१९६५-६६ के लक्ष्य क्षमता	उत्पादन
लौह एवं इस्पात :					
(i) कच्चा इस्पात	दस लाख टन	६·०	३·५	१०·२	९·५
(ii) इस्पात	,,	४·५	२·६	७·५	६·९
(iii) कच्चा लोहा	,,	०·९	७·९	—	१·५
औद्योगिक मशीनें :					
(i) सूत वस्त्र उद्योग	करोड़ रुपये	१०·०	९·०	२२·०	२०·२
(ii) सीमेन्ट	,,	१·१	०·८	४·५	४·५से५·०
(iii) चीनी	,,	१०·५	४·४	११·०से१२·०	१०·०
(iv) कागज़	,,	०·७	—	८·५	६·५से७·०
(v) दूध	,,	०·२५	—	२·५	२·५
(vi) बायलर	,,	३·७	०·६	२९·०	२५·०
(vii) क्रेन	हजार टन	२·५	१·५	६०	६०
(viii) मशीनी औजार	करोड़ रुपये	७·०	५·५	३०·०	३०·०
(ix) भारी उद्योग मशीनें (इस्पात एवं रसायन उद्योग)	हजार टन	—	—	८०	—
(x) कोयला खान मशीनें	,,	—	—	४५	३०
मोटर एवं उससे सम्बन्धित उद्योग :					
(i) यात्री वाहक कारें	(०००) संख्या	२०	२०	३०	३०
(ii) व्यावसायिक मोटरें	(०००) संख्या	२८	२८	६०	६०
(iii) जीप एवं स्टेशन वेगन	,, संख्या	५·५	५·५	१०	१०
कृषि यंत्र एवं मशीनरी :					
(i) शक्ति चालित पम्प	(००० संख्या)	१८४	८६	१८४	१५०
(ii) डीजल एंजिन	,,	६२	३३	७२	६६
(iii) ट्रेक्टर	,,	७·५	२·०	१२·०	१०·०
साइकिल	लाख (संख्या)	२·२	१·०५	२·२	२·०
सीने की मशीनें	(०००) संख्या	२२८	३००	५००	४५०
जहाज रानी	०००(G.R.T.)	२०	२०	५०से६०	५०से६०
बिजली के ट्राँसफोर्मर्स	लाख किलोवाट	२·२	१·३५	४·०	३·५
बिजली की मोटरें	लाख हार्सपावर	१·२५	०·८	३·०	२·५
बिजली के पंखे	दस लाख	२.२	७.९	२.८	२.५
उर्वरक :					
(i) नाइट्रोजन	हजार टन	२३४	२१०	१०००	१०००
(ii) फासफेट	,,	८२	७०	५००	४००

उद्योग	मात्रा	१६६०-६१ अनुमानित क्षमता	१६६०-६१ अनुमानित उत्पादन	१६६५-६६ के लक्ष्य क्षमता	१६६५-६६ के लक्ष्य उत्पादन
भारी रसायन					
(i) सल्फरिक एसिड	हजार टन	५२१	४००	१५००	१२५०
(ii) सोडा ऐश	,,	३०४	२४०	५३०	४५०
(iii) कास्टिक सोडा	,,	१५०	१२५	४००	३४०
(iv) केलशियम कारबाइड	,,	२८	२०	६७	६०
रंग	दस लाख पौंड	१६.२	११.५	२२.४	१८.०
(i) कागज एवं गत्ता	हजार टन	३६३	३२०	८२०	७००
(ii) अखबारी कागज	,,	३०	२८	१२०	१२०
(iii) नोट बनाने का कागज	,,	—	—	१५००	१५००
सिमेन्ट	दस लाख टन	१०.०	८.८	१५.०	१३.०
अग्नि प्रतिरोधक ईंटें	,,	०८.७	०.६	२.०	१.६
सूती उद्योग					
(i) सूत	दस लाख पौंड	२१००	१६००	२२५०	२२५०
(ii) कपड़ा	दस लाख गज	५३००	५०००	५८००	५८००
जूट का समान	हजार टन	१२००	११००	१३००	११००
रेयन व लम्बा रेशा उद्योग					
(i) रेयन के तार	दस लाख पौंड	५२.३	४७.०	१४०.०	१४०.०
(ii) कृत्रिम रेशे	,,	४८.०	४२.०	७५.०	७५.०
(iii) रासायनिक गूदा	हजार टन	—	—	१००.०	६०.०
ऊन उद्योग					
(i) ऊनी धागा	दस लाख पौंड	६७	३४	६७	५२
(ii) ऊनी कपड़ा	,, लाख गज	४८	२३	४८	३५
नमक	दस लाख टन	३.६	३.५५	६.५	५.४
शक्कर	,,	२.२८	२.२५	३.०	३.०
वनस्पति	हजार टन	४३४	३५०	५५०	५००
कोयला	दस लाख टन	—	५३	—	६७
कच्चा लोहा	,,	—	१२	—	३२
कांच एवं कांच का सामान	हजार टन	४५७	२४०	६१५	४४०

BIBLIOGRAPHY.

1. General Reference Books.

Bergsmark, D. R. ... Economic Geography of Asia.
Cressy, G. B. ... Asia's Lands and People.
Dobby, H. A. G. ... South East Asia, 1950.
Mamoria, C. B. ... *Arthik Aur Vanijia Bhugol*, Second Ed., 1960.
Stamp, L. D. ... Asia, 1957.
Spate, O. H. K. ... Changing Face of Asia.
Spencer, J. E. ... Asia—East by South.
Wickizer, V. D., and Bennet, M. K. ... Rice Economy of Monsoon Asia.

2. India. (General)

Anstey, V. ... Economic Development of India, 1956.
Cotton, C. W. E. ... Hand book of Commercial Information for India, 1937.
Cunningham, A. ... Ancient Geography of India, 1871.
Dubey, R. N. ... Economic Geography of the Indian Republic, 1959.
Das Gupta, A. ... Economic and Commercial Geography, 1959.
Frew, D. ... A Regional Geography of the Indian Empire.
Government of India. ... (i) India In World Economy, 1958.
(ii) India, 1960.
Holdisch. ... India, 1904.
Imperial Gazetteer of India. ... Vol. I, III, and IV, 1908.
Lorenzo, A. M. ... Atlas of India, 1948.
Morisson. ... A New Geography of India, 1933.
Owen, R. ... Economic and Commercial Conditions in India, 1953.
Sharma, T. R. ... Economic Geography of India.
Spate, O. H. K. ... India and Pakistan, 1959.
Stamp, L. D. ... India, Pakistan, Ceylon and Burma, 1957.
Vakil, C. N. ... Economic Consequences of Divided India, 1948.
Venktachar, C. S. ... Geographical Realities in India. 1958.

Wadia, P.A. & Merchant, K. T. ... Our Economic Problem, 1957.

Reports, Periodicals and Annuals Etc.

First Five Year Plan.
Second Five Year Plan.
Draft of the Third Plan.
India—A Reference Annual.
Directory of Times of India, Annual.
Indian Geographical Review (Quarterly), Calcutta.
Indian Journal of Geography (Quarterly), Madras.
[illegible] (Weekly and Annual Nos.)
Commerce (Weekly and Annual Nos.)
Capital (Weekly and Annual Nos.)

3. Physiography and Geology.

Burrad, S. G. ... On the Origin of Himalaya Mountains, 1912.

Burrad, S. G. & Hayden, H. H. ... Geography and Geology of the Himalayan Mountain and Tibet, 1932.

Chibber, H. L. Physical Basis of Geography of India, Vol, I., 1948.

Fox, C. S. Physical Geography for Indian Students, 1938.

Gregory, J. W. The Structure of Asia, 1929.

Government of India (i) Geology in India, 1957.
(ii) Rivers of India, 1957.

Hora, S. L. (Ed) An Outline of Field Sciences of India.

Imperial Gazetteer of India. ... Vol. I., 1908.

Kazi, H. L. Principles of General Geography, 1937.

Krishnan, M. S. (i) Geology of India and Burma, 1956.
(ii) The Structural and Tectonic History of India (Geological Memoirs No. 81), 1953.
(iii) Structure of India in Indian Geographical Journal, XVIII, 1943.

Mason, Kenneth. ... Himalaya As a Barrier to Modern Communications.

Medlicott, H. B., & Blanford, H. T. ... Manual of Geology of India (Third Edn., 1950) by E. H. Pesco., Vol., I.

National Institute of Sciences, India ... Symposium on the Rajasthan Desert, 1952.

Oldham, R. D. (i) The Making of Indian Geography, Geographical Journal, Vol. III., 1894.
(ii) The Structure of the Himalayas and of the Gangetic Plain, Memoirs of the Geological Survey of India, XLII., 1917.

Pescoe, E. H. ... "Early History of Indus, Brahamputra and Ganga"—Quarterly Journal of Geological Society, Vol., LXXX, 1919.

Randhawa, M. S. ... Birth of the Himalayas, 1947.

Shani, B. ... The Himalayan Uplift Since the Advent of Men, 1936.

Steers, J. ... The Unstable Earth.

Wadia, D. N. ... (i) Geology of India, 1953.
(ii) Deserts of Asia–Their Origin and Growth, 1955.
(iii) Geology and Geography in India, in the Progress of Science in India, 1937.
(iv) The Sources of the Rivers Indus, Sutlej, Ganges and Brahamputra—Current Science Journal, 1942, No. 9.

Journals Etc.

Indian Geographical Journal, Madras.
Geographical Review, Calcutta.
March of India, (Monthly), New Delhi.

4. Irrigation and Water Power.

Government of India ... (i) Water Resources of India and Their Conservation and Utilization.
(ii) Major Water and Power Projects, 1957.
(iii) Planned Programme of Irrigation and Power.
(iv) Minor Irrigation.
(v) Power for Industry.
(vi) New Projects for Irrigation and Power 1948.
(vii) Multipurpose Projects in India.
(viii) Damodar Valley Project, 1948.
(ix) Hirakund Project, 1948.

Harris, D. G. ... Irrigation in India.

Khosla, A. N. ... Appraisal of Water Resources.

Kuriyan, G. ... Hydroelectric Power in India, *1948*.

Mathur, V. S. ... Ganges Valley Tube Well Scheme.

National Planning Committee. Power and Fuel, 1948.

Journals Etc.

Bhagirath (Monthly).
March of India (Monthly).
Yojna, (Fortnightly).
Indian Information (Fortnightly).

5. Climate

Blanford, H. F. ... The Climate and Weather of India, Ceylon and Burma, *1899*.

Chatterjce, S. B. ... Climatology of India, 1950.

Elliot, J. ... Climatological Atlas of India, 1906.

Kendrew, W. G. ... Climate of the Continents.

Miller, A. ... Climatology.

Normand, ... "The Weather of India" in the Field Sciences of India.

Ramdass, L. A. ... Rainfall and Agriculture, 1950.

6. Minerals

Ball, V. ... Economic Geology of India.

Brown, J. C. & Dey, A. K. Mineral Wealth of India, 1953.

Chibber, H. L. ... Physical Basis of Geography of India, Pt. III., 1948.

Dunn, J. A. ... (i) Mineral Resources of Orissa, Cuttack, *1949*.
(ii) Mineral Resources of Bihar, 1941.

Fermor, L. L. ... Manganese Ore Deposits in India, (Memoirs No. 37), 1909.

Fox, C. S. ... Bauxite and Aluminous Laterite Occurrences of India (No. 49), 1943.

Heron, A. M. ... (i) Mineral Resources of India, 1943.
(ii) Mineral Resources of Rajasthan, *1935*.

Krishnan, M. S. ... (i) Iron Ore in India.
(ii) Mineral Resources of C. P. & Berar, 1939.
(iii) Mineral Resources of Madras, 1952.

Roy, B. C. ... (i) Mineral Resources of Bombay, 1953.
(ii) Mineral Resources of Saurastra, 1954.
(iii) Mineral Resources of Rajasthan, 1959.

Journals Etc.

Geological Survey of India... Bulletins Series A.
Mineral Resources of Madhya Bharat.
Bulletins of Economic Minerals on.
1. Indian Precious Stones;
2. Manganese Ore.
3. Mica.
4. Copper.

Indian Minerals (Quarterly).
Estimates of Mineral Production in India (Bureau of Mines), 1956, 1957, 1958, 1959.
Quinquennial Reviews of Mineral Production.

6. Power—Coal And Petroleum.

Fermor, L. L. ... Indias' Coal Resources, 1935.
Fox, C. S. ... Natural History of Indian Coal. (Memoirs No. 57), 1931.
Fuel Research Institute. ... Indian Coals—Their Nature and Origin, 1949.
G. S. I. ... Bulletin of Economic Minerals on Coal.
Government of India. ... (i) Report of the Coalfields Committee, 1946.
(ii) Report of the Working Party on Coal Industry, 1950 and 1957.
(iii) Report of the Oil and Natural Gas Commission, 1959.

7. Agriculture (General)

Allan, R. G. ... Outlines of Indian Agriculture, 1940.
Baljit Singh. ... Whither Agriculture in India, 1945.
Burns, W. ... Technological Possibilities of Agricultural Development in India, 1944.
Church, A. ... Foodgrains of India, 1886.
Clouston, D ... Lessons on Indian Agriculture, 1920.

Dutt, C. P., and Pugh, B. M. — (i) Principles and Practices of Crop Production in India, 1940.
(ii) Farm Science and Crop Production in India, 1947.

Government of India. ... (i) Report of the Royal Commission on Agriculture, 1928.
(ii) Agriculture in the Indian Union, 1959.
(iii) Food for the Teeming Millions, 1958.
(iv) Agricultural Atlas of India, 1958.
(v) A Handbook of Indian Agriculture, 1957.
(vi) A Compendium on Agricultural Statistics and Information, 1959.

Howard, A. ... Crop Production in India,--A Critical Survey of Its Problems, 1924.

Howard, A., and Howard G.L.C. Development of Indian Agriculture, 1934.

India, Commercial and Statistics Dapartment. Crop Altas of India, 1939.

India, Ministry of Agriculture. Indian Agriculture in Brief, 1959.

Kapoor, A. N. & Shiv Chand. Land and Agriculture in India, 1959.

Mamoria, C. B. ... Agricultural Problems of India, Edn. 3, 1960.

Mukerji, N. Handbook of Indian Agriculture, 1915.

Nanawati, M. B., & Anjaria, J.J. Indian Rural Problem, 1951.

National Planning Committee Report on ... (i) Land Policy & Agriculture, 1948.
(ii) Crops, 1948.
(iii) Crop Planning & Production, 1948.

Randhawa, M. S. ... Agriculture and Animal Husbandry in India, 1958.

Thirumal Rao, [illegible] : Problems, 1954.

Tiwari, R. D. ... Indian Agriculture, 1939.

Yegna Narayan Aiyer, A. K. (i) Field Crops of India, Edn [illegible]

Jack, J. V., & White, R. O. — The Rape of the Earth, 1949.
Krebes. — Climate and Soil Formation in South India.

National Planning Committee Report on — (i) River Training and Irrigation, 1948.
(ii) Soil Conservation and Afforestation 1948.
(iii) Population, 1948.

Pant, K. C. — Fertilizers for More Food, 1959.
Singh & Dutt. — Crop Production in India, 1947.
Puri, A. N. — Soil Science, 1951.
Vishwanathan, B. & Ukil, A. C. — "Comparative Studies in Indian Soils Indian Journal of Agricultural Science, Vol. XIV, 1944.
Wadia, D. N. Krishnan, M. S., & Mukerjee, P.N. — "Introductory Note on Geological Foundations of the Soils in the Record of the G. S. I., Vol. LXVIII. 1955.

9. *Natural Vegetation.*

Champion, H. H. — Preliminary Survey of Forest Types in India and Burma. 1936.
Gamble, J. S. A. — Manual of Indian Timbers, 1902.
Ghosh, K. C. ... — Economic Resources of India and Pakistan, 1956.
Govt., of India. — (i) Our Forests, 1957.
(ii) National Forst Policy of India and Pakistan, 1956.
Hailey. ... — Economics of Forestry, 1928.
Howard, A. ... — Post-War Forest Policy of India, 1944.

Imperial Gazetteer of India. — Vol. I., and III., 1904.
Indian Lac [illegible] — Bulletin of Lac and Shellac.
Ministry o[illegible] Cultural Relations. — Wealth of India, Vol. I, II, III, IV. and V.

Mukrjee, R. K. ... — Regional Balance of Man, 19[illegible]3.
Randhawa, M. S. ... — Beautifying India,
Smythies, E. A. ... — Indian Forest Wealth, 1[illegible]25.
Stebbing, E. P. ... — The Forests of India, 1922.
Watts, G. ... — Commercial Products of India.

Periodicals & Annuals Etc.
Govt. of India. ... — (i) Agricultural Situation in India, Monthly.
(ii) Indian Forest Statistics. Annual.

10. Animal Husbandry.

(a) **Cattle :**

Barad, M. B. ... Cattle Problem in India, 1937.

Indian Council of Agriculture Research. ... (i) Brief Survey of Some of the Important Breeds of Cattle in India, Pt. 2., 1950., Pt. 3., 1951.
(ii) Definitions and Characteristics of Seven Breeds of Cattle of All-India Importance, 1951.

I. C. A. R.

Maniam, E. V. S. ... Cattle Wealth of India, Edn. 2, 1938.

National Planning Committee. Report on Animal Husbandry and Fisheries, 1948.

Oliver, A. ... Some of the Important Breeds of Cattle in India, 1938.

Oliver, E. W. ... Breeds of Indian Cattle, 1911.

Randhawa, M. S. ... Agriculture and Animal Husbandry in India, 1958.

Srinivasan. N. S. Cattle Wealth in India, 1953.

Ware, F. ... Further Survey of Some of the Important Breeds of Cattle and Buffaloes in India, 1952.

Wright. W. C. ... Report on the Development of Cattle and Dairy Industries in India, 1937.

White. N. C. ... Report on the Development of Cattle and Dairy Industries in India, Edn. 3, 1952.

(b) **Sheep :**

Khot, S. S. Sheep and Wool in India,

Lal, H. K. ... Breeds of Sheep in Indian Union.

(c) **Goats :**

Devalois, J. J. Milk Goats, 1942.

(d) **Fisheries :**

Chopra, B. N. ... (i) Fisheries and Fishing Industry in India, 1957.
(ii) Handbook of Indian Fisheries, 1951.

Govt., of India. ... Marketing of Fish in India, 1951,

11. Industries.

Buchanan, D. A. The Development of Capitalistic Enterprise in India, 1934.

Deshmukh, C. D. — Economic Development in India, 1957.

Engineering Association of India ... — Engineering Industries in India, 1959.

Govt., of India. ... — (i) Large Industrial Establishments.
(ii) Programmes of Industrial Development 1951-56, 1953.
(iii) Programmes of Industrial Development, 1956.
(iv) Second Five Year Plan, 1956.
(v) Draft Outline of Third Five Year Plan, 1960.
(vi) Achievements and New Targets, 1957.

Gandhi, M.P. (Ed) ... — (i) Major Industries of India, Annual.
(ii) Indian Sugar Industry, Annual.
(iii) Indian Cotton Textile Industry Annual.

Kapoor, A. N. & Shiv Chand. — Major Industries of India, 1959.

Mamoria, C.B. — Organisation and Financing of Industries, Edn. 2,1960.

National Planning Committee Report on ... — (i) Mining and Metallurgy 1948.
(ii) Manufacturing Industries, 1948.
(iii) Chemical Industries, 1948.
(iv) Engineering Industries, 1948.

Pant, Y. D. ... — A Study in Industrial Location, 1959.

Rao, B. S. ... — Survey of Indian Industry, Vols., 1 & 2, 1957, 1958.

Sharma, T. R. ... — Location of Industries in India, 1951.

Thomas, P. J. — India's Basic Industries, 1948.

Tata Iron & Steel Company. — Indian Iron and Steel Industry, 1957.

Jourals And Annuals Etc.

Eastern Economist ... — Records and Statistics (Quarterly).

Reserve Bank of India — Bulletin, Monthly.

Govt. of India ... — (i) Journal of Trade and Industry (Monthly)
(ii) *Udhyog Vyapar Patrika.*

Indian Sugar, (Monthly).

Sampada.

Arthik Samiksha.

Economic Reviews.

12. Transport.

Chauhan, D. S. ... — *Adhunik Parivahan*, 1956.

Dhekney, M. R. ... — Air Transport in India, 1953.

I. R. T. D. A. ... Roads and Road Transport in India.

Govt., Of India. ...
(i) Report of the Road Transport Reorganisation Committee, 1952.
(ii) Report of the Inland Water Transport Committee, 1959.
(iii) Road Facts About India, 1956 (1957)
(iv) Indian Railways Annual, 1959-60.
(v) Our Transport.
(vi) Our Roads, 1956.
(vii) Master Plan for Internal Navigation.
(viii) Inland Water Transport.

Mamoria, C. B. *Bharat Men Yatayat*, 1957.

Mukerjee, R. K. ... Indian Shipping, Edn. 2, 1957.

National Planning Committee. Transport Services, 1948.

Naquvi, A. ... Air Transport in India, 1944.

Pant, D. Transport Problems in India

Ramnadhan, V. V. Road Transport in India, 1948.

Report of the Port Development Authority, 1958.

13. Trade

Anstey, V. ... Trade of Indian Ocean, 1929.

Chauhan, D. S. ... Bhartiya Vyapar 1958.

Mamoria, C. B. ... *Bharat Men Vyapar*, 1957.

Federation of Indian Chamber of Commerce...
(i) Our Export Trade, Country-Wide Analysis, 1959.
(ii) India's Export Trade with South-East Asia and Oceania, 1960.

Katiyar, N. K. ... International Trade and Foreign Trade of India, 1948.

National Planning Committee. ... Trade, 1948.

Poduval, R. N. ... Recent Trends in Indian Foreign Trade.

Shiv Chand & Kapoor. ... Foreign Trade of India, 1959.

Varshney, R. L. ... India's Foreign Trade After the Second World War, 1954.

Vajpai, K. D. History of Indian Trade (Hindi), 1949.

Venkatasubbiah, H. ... The Foreign Trade of India. 1900-1940, (1946).

Journals, Periodicals Etc.

Govt., Of India. ... (i) Annual Statement of the Foreign (Sea and Air-borne) Trade of India.

(ii) Accounts Relating to the Inland (Rail and River-borne) Trade of India.
(iii) *Udhyog Vyapar Patrika* (Hindi).
(iv) Indian Trade Journal.

Eastern Economist, Records and Statistics (Quarterly)
Commerce (Weekly and Annual).
Yojna.
India, 1959, 1960.

14. Population.

Chandrasekhar, S. ... (i) Hungry People and Empty Lands, 1956.
(ii) India's Population—Facts and Policies 1950.

Coale, A. J., & Hoover, E. M. ... Population Growth and Economic Development in Low Income Countries—A Case Study of Indias' Prospects, 1959.

Davis, Kingsley. ... Population of India and Pakistan 1951.

Govt., of India. (i) *Adivasis*, 1957.
(ii) Census Report of India, 1921, 1931, 1951, Vol. I Pt., I.

Gyan Chand. (i) Indias' Teeming Millions, 1939.
(ii) Some Aspects of India's Population, 1956.

Hadon, A. C. ... Races of Mankind.

Holderness. Peoples and Problems of India.

Kapoor and Shiv Chand. ... People and Population of India, 1959.

Mamoria, C. B. (i) India's Population Problem, 1960.
(ii) Population & Family Planning in India, 1960 (Second Edn.) Chapter I & II.
(iii) Tribal Demography in India, 1958.

Mukerjee, R. K. ... (i) Food Planning for 400 Millions. 1958.
(ii) Man and His Habitation, 1938.

National Planning Committee. Population, 1948.

Riseley, H. Peoples of India, 1904.

15. Major Natural Regions.

Melhotra, I. D. ... "The Natural Regions of India," in Geographical Review, 1942.

Macferlane. ... Economic Geography.

Spate, O. H. K. India and Pakistan, 1959.

Stamp, L. D. (i) Regional Geographies of India.
(*ii*) Asia, 1957.

Saeeduddin, K. ... "Physiographic Divisions of India" in Indian Geographical Journal, 1944.

Pithawala, M. B. ... "Natural Regions," Madras Geographical Journal, 1939.